# इकाई 1 साम्राज्यवाद तथा उपनिवेशवाद : सैद्धान्तिक परिप्रेक्ष्य

## इकाई की रूपरेखा


1.0 उद्देश्य
1.1 प्रस्तावना
1.2 उपनिवेशवाद : विभिन्न दृष्टिकोण
    1.2.1 उपनिवेशवाद की प्रकृति
    1.2.2 उपनिवेश पर प्रभाव
1.3 उपनिवेशवाद की अवस्थाएँ
    1.3.1 प्रथम अवस्था
    1.3.2 द्वितीय अवस्था
    1.3.3 तृतीय अवस्था
1.4 सारांश
1.5 शब्दावली
1.6 बोध प्रश्नों के उत्तर


## 1.0 उद्देश्य

इस इकाई में साम्राज्यवाद तथा उपनिवेशवाद के स्वरूप पर विस्तृत चर्चा प्रस्तुत की गयी है। साथ ही यह प्रयत्न किया गया है कि यह चर्चा दो सौ सालों के ब्रिटिश औपनिवेशिक शासन के दौरान भारत के ऐतिहासिक विकास की मूलभूत विशेषताओं को समझने में किस प्रकार सहायक हो सकती है।

इस इकाई के अध्ययन के बाद आप जान सकेंगे :

- उपनिवेशवाद इसकी प्रकृति व विभिन्न अवस्थाएँ क्या हैं?
- उपनिवेशवाद तथा विश्व पूंजीवादी व्यवस्था के मध्य संबंध क्या हैं; और
- उपनिवेशवाद में किस प्रकार भारतीय अर्थव्यवस्था तथा समाज पूर्णतया ब्रिटिश अर्थव्यवस्था व राजनीतिक नियंत्रण के अधीन थे।

## 1.1 प्रस्तावना

साम्राज्यवाद पूंजीवादी विकास की उस प्रक्रिया की ओर संकेत करता है, जो संसार के पूर्व-पूंजीवादी देशों पर विजय प्राप्त करने और उन पर प्रभुत्व स्थापित करने के लिए पूंजीवादी देशों को प्रेरित करती है। इस भाग में हम विकसित पूंजीवादी देशों में पूंजीवाद के विकास, उनके पारस्परिक संबंध, तथा पूंजीवादी देश द्वारा पूर्व-पूंजीवादी देशों के दमन पर विचार करेंगे। (इसे यहाँ महानगरी या महानगरीय देश भी कहा गया है) संक्षेप में साम्राज्यवाद शब्द का प्रयोग महानगर देश तथा अधीनस्था देश के बीच राजनीतिक व आर्थिक प्रभुत्व के संबंधों को बताने के लिए किया गया है।

वह देश जो महानगरीय पूंजीवादी देश के अधीन हो उपनिवेश कहा जाता है, और उपनिवेश में जो घटित होता है वह उपनिवेशवाद कहलाता है। एक पूर्व-पूंजीवादी देश पर पूर्ण रूप से साम्राज्यवादी प्रभुत्व ही उपनिवेशवाद है। साम्राज्यवाद तथा उपनिवेशवाद का अध्ययन परस्पर संबंधित है और आगे हम दोनों पर चर्चा करेंगे। परन्तु यहाँ हम उपनिवेशवांद के अध्ययन पर अधिक ध्यान केंद्रित करेंगे तथा पूंजीवाद के विकास के अध्ययन में साम्राज्यवाद के मुख्य पहलुओं पर ध्यान देंगे।

## 1.2 उपनिवेशवाद : विभिन्न दृष्टिकोण

उपनिवेशवाद का क्या अर्थ है? क्या यह एक देश द्वारा दूसरे देश पर केवल राजनीतिक नियंत्रण है, या यह एक देश द्वारा दूसरे देश के आर्थिक दमन की प्रक्रिया को भी निर्दिष्ट करता है? उपनिवेशवाद की व्याख्या विभिन्न विद्वान भिन्न-भिन्न प्रकार से करते हैं। इस भाग में हम उपनिवेशवाद के विभिन्न दृष्टिकोणों तथा साथ ही अन्य संबंधित पहलुओं से आपका परिचय करायेंगे।

i) बड़ी संख्या में समाजशास्त्रियों, राजनीतिक वैज्ञानिकों व अर्थशास्त्रियों द्वारा यह विचार प्रस्तुत किया जाता है कि औपनिवेशिक समाज मूल रूप से एक परंपरागत समाज था या दूसरे शब्दों में, उपनिवेशवाद ने पूर्व-औपनिवेशिक समाज के मूल सामाजिक-आर्थिक तत्वों तथा संरचनाओं को बनाए रखा। उत्तर-औपनिवेशिक समाज परंपरागत

सामाजिक-आर्थिक ढाँचे से आधुनिकीकरण की तरफ बढ़ने लगा। अन्य कुछ उपनिवेशवाद को एक ऐसे परिवर्ती समाज के रूप में देखते हैं जो कि आर्थिक, सामाजिक, व राजनीतिक रूप से एक परंपरागत व पूर्व-औपनिवेशिक समाज से आधुनिक पूंजीवादी समाज में परिवर्तित हो रहा था।

ii) तथापि अन्य कई लेखकों का मानना है कि उपनिवेशवाद एक दोहरा समाज प्रस्तुत करता है जिसमें एक क्षेत्र आधुनिक व पूंजीवादी है, जबकि दूसरा क्षेत्र परंपरागत व पूर्व-पूंजीवादी। दोनों क्षेत्र साथ-साथ विद्यमान रहते हैं तथा दोनों ही इतने मजबूत नहीं होते कि एक दूसरे को दबा सकें या हटा सकें। कुछ लेखकों ने दोहरे स्वरूप की अधिक उग्रवादी व्याख्या का अनुसरण किया है। उनके अनुसार उपनिवेशवाद आधुनिकीकरण का कार्य प्रारंभ करता है, परंतु बीच मार्ग में ही छोड़ देने के कारण इसे पूरा करने में असफल होता है। यह औपनिवेशिक अर्थव्यवस्था व समाज के "अवरूद्ध विकास" का कारण बनता है। इसीलिए कृषि की अर्द्ध-सामन्तवादी विशेषताएँ पूर्व-औपनिवेशिक काल की अवशेष मानी जाती हैं। उपनिवेशवाद इन अर्द्ध-सामन्तवादी लक्षणों को पोषित करने या कम से कम उनको उखाड़ फेंकने में असफल होने का दोषी पाया जाता है।

iii) बहुत से लेखक उपनिवेशवाद को राजनीतिक प्रभुत्व अथवा विदेशी राजनीतिक शासन से अधिक कुछ नहीं मानते। व्यक्तिगत औपनिवेशिक प्रशासकों द्वारा अनुसरण की गयी नीतियों की कमजोरियाँ ही उपनिवेशवाद की कमजोरियाँ जानी जाती हैं।

### 1.2.1 उपनिवेशवाद की प्रकृति

उपनिवेशवाद ने एक ऐसे समाज को जन्म दिया जो कि न तो ब्रिटेन की तरह पूंजीवादी था और न ही पूर्व-औपनिवेशिक अथवा पूर्व-पूंजीवादी। इसलिए उदाहरण स्वरूप ब्रिटिश शासन में भारत न तो पूंजीवादी ब्रिटेन के समान था और न ही मूल रूप से मुगल भारत के समान था। भारत, मिस्र व इण्डोनेशिया उपनिवेशों में कृषिक संबंधों का विकास इस पक्ष को बिल्कुल स्पष्ट कर देता है। उदाहरण के लिए ब्रिटिश भारत के जमींदारी व रैयतवारी दोनों क्षेत्रों में जमींदारी व्यवस्था एक नयी चीज थी जो कि मुगल भारत में विद्यमान नहीं थी। ये ब्रिटिश शासन की देन थी। ये औपनिवेशिक शासकों द्वारा भारतीय कृषि को परिवर्तित करने के प्रयासों का ही परिणाम था। भारतीय कृषि पूंजीवादी नहीं थी परंतु इसमें बहुत से पूंजीवादी तत्व थे। उदाहरण के लिए संपत्ति संबंध पूंजीवादी थे, जमीन अब व्यक्तिगत संपत्ति थी, जो बड़े पैमाने पर स्वतंत्र रूप से खरीदी व बेची जाती थी।

वस्तुतः हम कह सकते हैं कि उपनिवेशवाद में औपनिवेशिक समाज आधारभूत रूप में परिवर्तित हो गया। वह विश्व पूंजीवादी व्यवस्था का अभिन्न अंग बन गया। उदाहरण के लिए भारत में उपनिवेशवाद उतनी ही आधुनिक घटना थी जितना कि ब्रिटेन में औद्योगिक पूंजीवाद — 18वीं शताब्दी के मध्य में दोनों एक साथ विकसित हुए थे। पूंजीवाद अपनी प्रकृति से विश्व व्यवस्था थी — जिसे संपूर्ण विश्व पर छा जाना चाहिए था परंतु यह इस तरह से संपूर्ण विश्व को आच्छादित नहीं करता; इसका एक रूप महानगरीय में तथा दूसरा उपनिवेश में रहता है। यह मैट्रोपोलिस (महानगरीय) को एक आधुनिक औद्योगिक देश के रूप में विकसित करता है और उपनिवेशों को अविकसित करता है।

वही पूंजीवादी प्रक्रिया जिसने महानगर में आर्थिक विकास को बढ़ाया और उसे विकसित पूंजीवादी देश बनाती है, उपनिवेशों में विकास को रोके रखती है तथा उन्हें औपनिवेशिक समाज में परिवर्तित करती है। उपनिवेशवाद पुराने समाज व अर्थव्यवस्था को नष्ट करता है, परंतु नया औपनिवेशिक समाज व अर्थव्यवस्था आधुनिक आर्थिक विकास के लिए उतनी ही बड़ी बाधा है जितना कि पुरानी पूर्व-पूंजीवादी अर्थव्यवस्था व समाज। उपनिवेश विश्व पूंजीवादी व्यवस्था का एक अभिन्न हिस्सा या अंग बन जाता है। परन्तु उसकी पूंजीवादी उत्पादन के विकास तथा औद्योगिक क्रांति में कोई भूमिका नहीं होती। वास्तव में, उपनिवेशवाद उपनिवेश में आधुनिक पूंजीवाद के विकास को रोकता है।

### 1.2.2 उपनिवेश पर प्रभाव

आप उपनिवेशवाद की महत्वपूर्ण विशेषताओं को जानना चाहेंगे: मुख्य रूप से उपनिवेशवाद की दो विशेषताएँ हैं।

i) एक मैट्रोपोलिस (महानगरीय) अथवा साम्राज्यवादी शक्ति की आवश्यकताओं के अनुसार उपनिवेश का अधीनस्थ होना तथा

ii) दूसरा उपनिवेश का आर्थिक शोषण अथवा महानगर द्वारा उपनिवेश के आर्थिक अतिरेक का विनियोग।

उपनिवेश में आर्थिक अतिरेक विभिन्न तरीकों से उत्पन्न किया जाता है, परंपरागत कृषि से आधुनिक खान व फैक्ट्री उत्पादन स्थापित आदि करके। परन्तु साम्राज्यवादी देश के विभिन्न वर्गों द्वारा इस अतिरेक का विनियोग ही उपनिवेशवाद का मूल है। अधीनस्थ होने का अर्थ है उपनिवेश के आर्थिक, सामाजिक व राजनीतिक विकास के मूल विषय उपनिवेश की स्वयं की आवश्यकताओं के अनुसार निर्धारित न होकर महानगरीय अर्थव्यवस्था व महानगरीय पूंजीवादी वर्ग की आवश्यकताओं व इच्छाओं के अनुसार निर्धारित किये जाते हैं।

इस प्रकार उपनिवेशवाद सिर्फ राजनीतिक नियंत्रण व औपनिवेशिक नीतियाँ ही नहीं हैं बल्कि कुछ और भी है। इससे संरचना के रूप में माना जाता है। औपनिवेशिक हित व नीतियाँ, औपनिवेशिक राज्य व प्रशासकीय संस्थाएँ, औपनिवेशिक संस्कृति व समाज, औपनिवेशिक विचार व विचारधाराएँ, ये सभी औपनिवेशिक ढाँचे के भीतर ही कार्य करते हैं।

**बोध प्रश्न 1**

1 निम्नलिखित कथनों पर सही ( √ ) या गलत पर ( X ) का चिह्न लगाइए।

i) ब्रिटिश शासन में भारत पूंजीवादी ब्रिटेन के समान था।

ii) अपनी प्रकृति से पूंजीवाद का स्वरूप स्थानीय है।

iii) उपनिवेशवाद उपनिवेश के आर्थिक विकास में बाधा डालता है।

iv) भारत के उपनिवेश बनने से पहले भारतीय कृषि में कुछ पूंजीवादी तत्व विद्यमान थे।

2 लगभग दस पंक्तियों में उपनिवेशवाद की मुख्य विशेषताओं के बारे में लिखिए।

............................................................................................................

............................................................................................................

............................................................................................................

............................................................................................................

............................................................................................................

............................................................................................................

............................................................................................................

............................................................................................................

............................................................................................................

............................................................................................................

## 1.3 उपनिवेशवाद की अवस्थाएँ

उपनिवेशवाद एक अविच्छिन्न या एकीकृत ढाँचा नहीं है। उपनिवेशवाद विभिन्न अवस्थाओं से गुजरता है। औपनिवेशिक देश का दमन व शोषण स्थिर रहता है, परंतु एक अवस्था से दूसरी अवस्था में दमन व शोषण के रूप बदलते रहते हैं। ये परिवर्तन विभिन्न कारकों से संबंधित हैं उदाहरणार्थ :

- पूंजीवाद का विश्व व्यवस्था के रूप में ऐतिहासिक विकास
- व्यक्तिगत महानगरीय (या साम्राज्यवादी) देश के आर्थिक, सामाजिक व राजनीतिक विकास के बदलते प्रतिमान।
- विश्व व्यवस्था में इसकी बदलती हुई स्थिति
- और उपनिवेश का अपना ऐतिहासिक विकास

उपनिवेशवाद को तीन अलग अवस्थाओं में बाँटा जा सकता है, जो शोषण या अतिरेक विनियोग के विभिन्न रूपों से संबंधित है। फलतः प्रत्येक अवस्था ने औपनिवेशिक अर्थव्यवस्था, समाज व राज्य व्यवस्था के दमन के भिन्न प्रतिमानों को निरूपित किया और इसलिए औपनिवेशिक नीतियाँ, राजनीतिक व प्रशासकीय संस्थाएँ, विचारधाराएँ व प्रभाव भिन्न थे तथा औपनिवेशिक जनता की प्रतिक्रियाएँ भी भिन्न थीं।

यह आवश्यक नहीं कि विभिन्न उपनिवेशों के लिए उपनिवेशवाद की अवस्थाएँ समान हों, एक स्तरीय हों। अलग-अलग समय में अलग-अलग उपनिवेशों में अलग-अलग अवस्थाएँ पायी जाती हैं। अलग-अलग देशों में अलग-अलग समय में भिन्न अवस्थाएँ विद्यमान होती हैं। परंतु एक अवस्था की विषय वस्तु मोटे तौर पर समान रहती है चाहे वह जहाँ भी, जिस समय पाई जाएँ। हमें यह भी ध्यान रखना चाहिए कि उपनिवेशवाद की अवस्था शुद्ध रूप में नहीं पायी जाती है और न ही एक अवस्था से दूसरी अवस्था के बीच सुस्पष्ट व पूर्ण विच्छेद होता है। अतिरेक विनियोग व शोषण के रूप तथा उपनिवेशवाद के अन्य लक्षण प्रारंभिक अवस्था से उत्तरकालीन अवस्था में भी बने रहते हैं। तथापि विभिन्न अवस्थाएँ विशिष्ट प्रमुख विशेषताओं द्वारा निर्दिष्ट की गई हैं — एक अवस्था से दूसरी अवस्था में गुणात्मक परिवर्तन होता है।

आधुनिक भारत में उपनिवेशवाद के इतिहास से उपनिवेशवाद की आधारभूत विशेषताएँ तथा इसकी विभिन्न अवस्थाएँ स्पष्ट की जा सकती हैं क्योंकि इतिहासकार भारत को एक आदर्श उपनिवेश के उदाहरण के रूप में मानने के लिए एकमत हैं। करीब 200 साल के अपने लम्बे इतिहास में ब्रिटिश शासन का मूल स्वरूप एक सा नहीं रहा है। विकासशील विश्व पूंजीवादी अर्थव्यवस्था में ब्रिटिश स्थिति के बदलते प्रतिमान ने भारत में ब्रिटिश उपनिवेशवाद की प्रकृति में परिवर्तन किए जैसे शोषण के रूपों व औपनिवेशिक नीतियों, उनके प्रभावों व भारतीय प्रतिक्रियाओं में परिवर्तन। अन्तिम दो पहलुओं — भारत पर उपनिवेशवाद का प्रभाव तथा भारतीय जनता की प्रतिक्रिया, पर अन्य इकाइयों में चर्चा की जाएगी। औपनिवेशिक नीतियों पर भी अन्य इकाइयों में बाद में विस्तृत चर्चा की जाएगी। परंतु अभी हम भारत में विभिन्न अवस्थाओं में उपनिवेशवाद की मूल विशेषताओं के साथ ही उपनिवेशवाद की एक अवस्था से दूसरी अवस्था में परिवर्तन के कारणों पर भी चर्चा करेंगे।

### 1.3.1 प्रथम अवस्था

यह एकाधिपत्य व्यापार तथा प्रत्यक्ष विनियोग का काल कहलाता है (अथवा ईस्ट इंडिया कम्पनी का शासन काल, 1757-1813)। 18वीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध में भारत एक एकाधिपत्य व्यापारिक निगम — ईस्ट इंडिया कंपनी — द्वारा अपने अधीन कर लिया गया। इस अवस्था में कंपनी के दो मुख्य लक्ष्य थे।

i) पहला, लक्ष्य था भारत के साथ व्यापार पर एकाधिकार प्राप्त करना। इसका अर्थ था कि अन्य अंग्रेजी व यूरोपियन व्यापारीयों व व्यापारिक कंपनियाँ भारतीय माल को खरीदने व बेचने में मुकाबला न कर सकें। और न ही भारतीय व्यापारी ऐसा कर सकें। इससे ईस्ट इंडिया कंपनी जितना सस्ता संभव हो सके उतना सस्ते में भारतीय माल खरीद सकेगी और जितने अधिक दामों में संभव हो सके विश्व बाजार में बेच सकेगी। इस प्रकार भारतीय आर्थिक अतिरेक एकाधिकार व्यापार द्वारा विनियुक्त होता था। ईस्ट इंडिया कंपनी ने ब्रिटिश सरकार को मजबूर किया कि वह उन्हें राजकीय अधिकार पत्र के द्वारा भारत व पूर्व के साथ व्यापार में एकाधिकार प्रदान करे तथा इस प्रकार अंग्रेज प्रतियोगियों को इस व्यापार में हिस्सेदार नहीं बनने दिया। यूरोपीय प्रतिद्वन्दियों के खिलाफ कंपनी ने जमीन तथा समुद्र पर लंबे तथा भीषण युद्ध लड़े। भारतीय व्यापारियों के ऊपर एकाधिकार प्राप्त करने व भारतीय शासकों को अपने व्यापार में हस्तक्षेप से रोकने के लिए तथा बढ़ते हुए राजनीतिक प्रभुत्व और देश के विभिन्न भागों पर नियंत्रण प्राप्त करने के लिए कंपनी ने मुगल साम्राज्य के विघटन का लाभ उठाया। राजनीतिक विजय के बाद कम्पनी ने भारतीय बुनकरों को रोजगार दिया। उस स्थिति में वे बाजार की कीमत से कम भाव में कपड़ा तैयार करने के लिए बाध्य किये गये।

ii) इस अवस्था में उपनिवेशवाद का दूसरा मुख्य लक्ष्य राज्य सत्ता पर नियंत्रण द्वारा सरकारी राजस्व को प्रत्यक्ष रूप से विनियुक्त करना था। ईस्ट इंडिया कंपनी को भारत में समुद्र पर तथा यूरोपीय प्रतिद्वन्दियों व भारतीय शासकों के खिलाफ युद्ध करने के लिए एवं नौ सैनिक शक्तियों, किलों, व सेना को अपने व्यापारिक स्थानों के चारों तरफ बनाये रखने आदि के लिए प्रचुर आर्थिक साधन की आवश्यकता थी। ईस्ट इंडिया कंपनी के पास ऐसे साधन नहीं थे तथा ब्रिटिश सरकार के पास भी ऐसे स्रोत नहीं थे और न ही कंपनी के हितों को बढ़ाने के लिए उन्हें प्रयोग करने की इच्छुक थी। इसलिए अत्याधिक आवश्यक आर्थिक साधन भारत में भारतीय लोगों द्वारा जुटाए जाने थे। इसने भारत में विभिन्न क्षेत्रों पर विजय प्राप्त करने की प्रेरणा दी।

भारत में आर्थिक साधन किसी और कारण से जुटाने थे। भारतीय माल को खरीदने के लिए भारतीय धन की आवश्यकता थी। यह ब्रिटिश माल को भारत में बेचकर या सोने और चांदी का भारत में निर्यात द्वारा ही प्राप्त किया जा सकता था। पहले तरीके का प्रयोग नहीं किया गया, क्योंकि ब्रिटिश ऐसा माल नहीं बना सके जिसे भारत में भारतीय उत्पादनों की प्रतिस्पर्धा में बेच सके। 19वीं शताब्दी के प्रारंभ तक ब्रिटिश औद्योगिक उत्पादन भारतीय हस्तशिल्प उत्पादन के साथ प्रतिस्पर्धा नहीं कर सका। ब्रिटिश सरकार जो वाणिज्यवाद के सिद्धांतों से अत्याधिक प्रभावित थी, ब्रिटेन से सोने व चाँदी के निर्यात पर प्रसन्न नहीं थी। सरकारी आय का विनियोग निश्चित रूप से ईस्ट इंडिया कंपनी के लाभ तथा इसके हिस्सेदारों के लाभांश को बढ़ायेगा।

दोनों लक्ष्य व्यापार पर एकाधिकार तथा सरकारी राजस्व का विनियोग पहले बंगाल व दक्षिण भारत के भागों और फिर शेष वर्षों में सम्पूर्ण भारत पर विजय के साथ बड़ी तीव्र गति से पूरे किये गये थे। ईस्ट इंडिया कंपनी ने भारतीय व्यापार व हस्तशिल्प उत्पादन पर एकाधिकारिक नियंत्रण प्राप्त करने के लिए अब अपनी राजनीतिक शक्ति का प्रयोग किया। भारतीय व्यापारियों को धीरे-धीरे प्रतिस्थापित तथा बरबाद कर दिया गया, जबकि बुनकर व अन्य शिल्पकार अपना माल कम मूल्यों पर बेचने के लिए या कंपनी के लिए कम वेतन पर काम करने के लिए बाध्य किये गये थे। यह ध्यान देने योग्य है कि इस अवस्था में ब्रिटिश उत्पादन का भारत में बड़े पैमाने पर आयात नहीं था, बल्कि इसका उल्टा हुआ, जैसे भारतीय वस्त्र के निर्यात में बढ़ोत्तरी हुई आदि। उदाहरणार्थ बुनकर इस अवस्था में ब्रिटिश आयात द्वारा बर्बाद नहीं हुए बल्कि कंपनी के एकाधिकार के कारण तथा घाटे में कंपनी के लिए उत्पादन करने के लिए बाध्य किये जाने से उनका शोषण हुआ।

राजनीतिक विजय के साथ ईस्ट इंडिया कंपनी ने भारतीय राज्यों के राजस्व पर प्रत्यक्ष नियंत्रण प्राप्त कर लिया। इसके अतिरिक्त कंपनी तथा उसके कर्मचारियों ने भारतीय व्यापारियों, अधिकारियों, अभिजात शासक वर्ग, शासकों व जमींदारों से अवैध रूप से असीम धन खींच लिया। असल में उपनिवेशवाद की प्रथम अवस्था में लूटने व अतिरेक पर प्रत्यक्ष कब्जा करने का तत्व बहुत मजबूत था। धीरे-धीरे बड़ी मात्रा में अधिक वेतन पाने वाले अधिकारी भारत में नियुक्त किए गए तथा उनके वेतन व पेंशन अतिरेक विनियोग का एक रूप बन गये। भारत में की जाने वाली ब्रिटिश नियुक्तियों के लिए ब्रिटेन में और विशेष रूप से कुलीन वर्ग और उच्च कुलीन भूपति वर्ग में तीव्र संघर्ष था।

इस काल में उपनिवेशवाद की एक मुख्य विशेषता यह थी कि उपनिवेश में प्रशासन, न्यायिक व्यवस्था, परिवहन तथा संचार, कृषि का औद्योगिक उत्पादन के ढंग, व्यापार प्रबंध व आर्थिक संगठन के रूपों में (बंगाल में स्थायी व्यवस्था को छोड़कर जो वास्तव में उपनिवेशवाद की दूसरी अवस्था से संबंधित थी) कोई मूल परिवर्तन नहीं किये गए थे। और न ही शिक्षा व बुद्धिजीवी क्षेत्र तथा सांस्कृतिक व सामाजिक संगठन में कोई परिवर्तन किये गए थे। केवल दो नयी शैक्षिक संस्थाएँ प्रारंभ की गयी थीं — एक बनारस में संस्कृत सीखने के लिए तथा दूसरी कलकत्ता में फारसी व अरबी सीखने के लिए। यहाँ तक कि क्रिशचन मिशनरी ब्रिटिश पूंजीपति जो कि आधुनिक पश्चिमी विचारों के प्रसार में एक माध्यम का कार्य कर सकते थे भारत में ब्रिटिश आधिपत्य के क्षेत्र से बाहर रखे गए। केवल

i) मिलट्री संगठन व तकनीक जोकि समकालीन स्वतंत्र भारतीय शासक भी अपनी सशस्त्र सेनाओं से सन्निविष्ट कर रहे थे तथा

ii) प्रशासन में राजस्व एकत्र करने के ढाँचे में ऊपरी पद पर ही परिवर्तन किए गए थे जिससे कि इसे कंपनी के लिए अधिक उपयुक्त व लाभकारी बनाया जा सके।

इस अवस्था में ब्रिटिश शासन परंपरागत भारतीय साम्राज्यों से बहुत अधिक भिन्न नहीं था क्योंकि वे भी भूमि राजस्व एकत्रीकरण में आस्था रखते थे।

ऐसा क्यों था? इतने कम परिवर्तन क्यों किए गए थे? क्योंकि इस अवस्था में उपनिवेशवाद के दोनों मूल लक्ष्यों को भारत में मूल सामाजिक-आर्थिक-प्रशासनिक परिवर्तन करने की आवश्यकता नहीं थी। प्रथम अवस्था थी — उपनिवेशवाद उसके विद्यमान आर्थिक, सांस्कृतिक, सामाजिक व राजनीतिक ढाँचे पर अध्यारोपित किया जा सकता था। ब्रिटिश शासकों ने अपने देशी भारतीय पूर्वाधिकारियों से अधिक गहराई से गाँवों में प्रवेश करने की आवश्यकता महसूस नहीं की जब तक कि उनको भूराजस्व एकत्र करने पर आय परंपरागत मशीनरी द्वारा सफलतापूर्वक मिलती रहती थी। इसलिए भारत के विद्यमान आर्थिक व राजनीतिक ढाँचे और प्रशासनिक व सामाजिक संगठन तथा सांस्कृतिक व वैचारिक गठन को अस्त-व्यस्त करने की कोई आवश्यकता नहीं थी।

यह परिवर्तन का अभाव प्रशासकों की विचारधारा में भी प्रतिबिम्बित था। परंपरागत भारतीय सभ्यता, धर्म, कानून, जाति-प्रथा, पारिवारिक संरचना आदि की आलोचना करने की कोई आवश्यकता अनुभव नहीं की गयी क्योंकि औपनिवेशिक शोषण की उस अवस्था में वे बाधाओं के रूप में नहीं देखे गये थे। उनको सहानुभूतिपूर्वक समझने की आवश्यकता थी ताकि राजनीतिक नियंत्रण व आर्थिक शोषण भारतीयों की धार्मिक, सामाजिक व सांस्कृतिक विचारों का विरोध किए बिना सरलता से आगे बढ़ सकें।

इस काल ने बड़ी मात्रा में भारत से धन निष्कासन को प्रभावित किया। ब्रिटेन की औद्योगिक क्रांति के लिए धन की व्यवस्था करने में इस धन ने महत्वपूर्ण भूमिका निभाई। उस समय भारत से निष्कासित धन ब्रिटेन की राष्ट्रीय आय का 2 से 3 प्रतिशत भाग था।

**बोध प्रश्न 2**

1 ईस्ट इंडिया कंपनी के दो मुख्य लक्ष्यों पर करीब दस पंक्तियों में चर्चा कीजिए।

..........................................................................................

..........................................................................................

..........................................................................................

..........................................................................................

..........................................................................................

..........................................................................................

..........................................................................................

..........................................................................................

..........................................................................................

..........................................................................................

2 निम्नलिखित कथनों में सही ( √ ) या गलत ( × ) का चिह्न लगाकर बताइए।

i) शोषण के रूपों में बिना किसी परिवर्तन के उपनिवेशवाद एक अविच्छिन्न स्वरूप है।

ii) उपनिवेशवाद के विभिन्न अवस्थाएँ सभी उपनिवेशों में साथ-साथ एक ही समय में विकसित हुई।

iii) ईस्ट इंडिया कंपनी के हितों की उन्नति के लिए ब्रिटिश सरकार अपने साधनों का प्रयोग नहीं करना चाहती थी।

iv) कंपनी के कर्मचारियों ने भारतीय व्यापारियों से असीम धन ऐंठ लिया।

3 भारत में उपनिवेशवाद की एकाधिकार व्यापार अवस्था के मुख्य लक्षणों को सूचीबद्ध कीजिए।

..........................................................................................

..........................................................................................

..........................................................................................

..........................................................................................

..........................................................................................

..........................................................................................

..........................................................................................

## 1.3.2 द्वितीय अवस्था

यह व्यापार के द्वारा शोषण का काल था और इसे 19वीं शताब्दी में मुक्त व्यापार का उपनिवेशवाद भी कहा गया है। भारत के अधिकांश भागों पर ईस्ट इंडिया कंपनी का शासन स्थापित होने के तुरन्त बाद ब्रिटेन में यह निर्धारित करने के लिए कि यह नया उपनिवेश किसके हितों की पूर्ति करेगा, तीव्र संघर्ष शुरू हो गया। सन् 1750 के बाद से ब्रिटेन औद्योगिक क्रान्ति के दौर से गुजर रहा था। नवविकसित औद्योगिक पूंजीपतियों ने ईस्ट इंडिया कंपनी तथा इसके भारत के शोषण के रूपों पर आक्रमण प्रारम्भ कर दिया। उन्होंने मांग की कि भारत में औपनिवेशिक प्रशासन व नीति को अब उनके हितों की पूर्ति करनी चाहिए जो कि ईस्ट इंडिया कंपनी के हितों से बहुत भिन्न थे। उन्हें भारतीय माल में एकाधिकार व्यापार तथा भारतीय आमदनियों पर कम्पनी के नियंत्रण से कुछ अधिक प्राप्त नहीं हुआ। वे चाहते थे कि भारत उनके यहाँ के निर्मित माल विशेष रूप से कपड़े के बढ़ते हुए उत्पादन के लिए एक बाजार के रूप में कार्य करे। उन्हें भारत से कच्चे माल और विशेष रूप से, कपास व खाद्यान्न की भी आवश्यकता थी। इसके अतिरिक्त भारत अधिक ब्रिटिश माल तभी खरीद सकता था जब वह अपना निर्यात बढ़ाकर विदेशी मुद्रा प्राप्त करे। ईस्ट इंडिया कम्पनी के लाभांशों को ताकत के बल पर प्राप्त करने के लिए तथा ब्रिटिश व्यापारियों के लाभों एवं ब्रिटिश अधिकारियों की कमाई और पेंशन ब्रिटेन को हस्तान्तरित करने के लिए भी अधिक निर्यात की आवश्यकता थी।

परन्तु भारत क्या निर्यात कर सकता था? वर्षों से अंग्रेज भारतीय वस्त्र को ब्रिटेन में आयात होने के इच्छुक नहीं थे और बाद में उनका निर्यात लाभकारी नहीं था। भारत से इन निर्यातों में केवल कृषि का कच्चा माल तथा अन्य अनिर्मित कच्चा माल था। दूसरे शब्दों में, ब्रिटिश औद्योगिक पूंजीपतियों की सुविधा के अनुकूल होने के लिए भारत में ब्रिटिश उपनिवेशवाद को अपनी दूसरी अवस्था में प्रवेश करना चाहिए। भारत को ब्रिटेन का अधीनस्थ व्यापारिक भागीदार बनना चाहिए एक ऐसे बाजार के रूप में जिसका शोषण हो सके तथा एक ऐसे आधीन उपनिवेश के रूप में जो ब्रिटेन की आवश्यकतानुसार कच्चा माल व खाद्य पदार्थ भेजे व बनाया करे। भारत की आर्थिक बचत ऐसे व्यापार के माध्यम से विनियोग होनी थी जो असमानता पर आधारित था। परिणामस्वरूप ब्रिटेन ने ऐसा माल बनाया व निर्यात किया जो कि कारखानों में विकसित तकनीक व कम श्रम शक्ति का प्रयोग करके बनाया गया था इसमें उत्पादकता व वेतन का स्तर बहुत ऊँचा था। दूसरी तरफ भारत ने उत्पादन के पिछड़े हुए तरीकों से अत्यधिक श्रम शक्ति का प्रयोग करते हुए कृषि सम्बंधी कच्चा माल बनाया जो कि कम उत्पादकता व कम वेतन का कारण बना। श्रम का यह अन्तर्राष्ट्रीय विभाजन भारत के लिए न केवल अत्यन्त प्रतिकूल था बल्कि अप्राकृतिक व बनावटी भी था तथा औपनिवेशिक शासन द्वारा बल पूर्वक प्रारम्भ व कायम रखा गया था। परिवर्तन की शुरुआत सन् 1763 के रेगुलेटिंग एक्ट तथा सन् 1784 के पिट्स इंडिया एक्ट के पास होने के साथ हुई जो कि ब्रिटिश शासक वर्गों में प्रारम्भिक रूप से तीव्र संघर्ष का परिणाम थे। सन् 1789 के बाद फ्रेंच क्रान्तिकारी युद्धों ने ईस्ट इंडिया कंपनी को कुछ राहत और सुरक्षा प्रदान की। परन्तु कंपनी धीरे-धीरे आधार खोने लगी। सन् 1813 में जब दूसरा चार्टर एक्ट पास किया गया तब कंपनी भारत में अपनी अधिकतर राजनीतिक व आर्थिक शक्ति खो चुकी थी, अब वास्तविक शक्ति ब्रिटिश सरकार के पास थी जिसने ब्रिटिश पूंजीपति वर्ग के सामूहिक हितों के लिए भारत पर शासन किया।

भारत अपनी विद्यमान आर्थिक, राजनीतिक, प्रशासनिक तथा सामाजिक-सांस्कृतिक व्यवस्था में नये तरीके से शोषित नहीं किया जा सकता था इसलिए इस व्यवस्था को छिन्न-भिन्न करना तथा पूर्ण रूप से बदलना था। ब्रिटिश भारतीय सरकार ने 1813 के बाद ऐसा करना प्रारंभ किया। आर्थिक क्षेत्र में इसका अर्थ भारत की औपनिवेशिक अर्थ-व्यवस्था को ब्रिटिश व विश्व पूंजीवादी अर्थव्यवस्था के साथ जोड़ना था। इसका मुख्य यंत्र मुक्त व्यापार को प्रारंभ करना था। भारत में सभी आयात कर या तो पूर्ण रूप से हटा दिये गए या बहुत कम कर दिए गए। इस प्रकार ब्रिटिश उत्पादों के भारत प्रवेश पर कोई रोक-टोक नहीं रह गयी। भारत में चाय, कॉफी, तथा नील के बागानों, व्यापार, परिवहन, खान व आधुनिक उद्योग-धंधे विकसित करने के लिए ब्रिटिश पूँजीपतियों को बिना रोक-टोक प्रवेश की अनुमति दी गयी थी। ब्रिटिश भारतीय सरकार ने इन पूंजीपतियों को सक्रिय राज्य सहायता दी।

स्थायी तथा रैयतवारी बंदोबस्त व्यवस्थाओं के माध्यम से भारत के कृषि संबंधी ढाँचे को पूँजीवादी दिशा में परिवर्तित करने के लिए कोशिश की गयी थी। बड़ी मात्रा में आयात व उनके आंतरिक विक्रय के लिए तथा और अधिक मात्रा में कच्चे माल का निर्यात करने एवं देश में लंबी दूरी के बंदरगाहों पर उनके संग्रह के लिए परिवहन और संचार के लिए एक सस्ती व आसान व्यवस्था की आवश्यकता थी। ऐसी व्यवस्था के बिना भारत बड़ी मात्रा में विदेशी व्यापार के लिए नहीं खोला जा सकता था इसलिए सरकार ने नदियों व नहरों का विकास किया, नदियों में वाष्प-चालित जहाज चलाने के लिए उत्साहित किया और सड़कें बढ़ायी। इन सबसे अधिक 19वीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध में इसने भारत के बड़े शहरों व बाजारों को बंदरगाहों से जोड़ने वाली रेलवे लाइन बिछाने के लिए प्रोत्साहित किया और आर्थिक सहायता दी। 1905 तक करीब 45,000 किलोमीटर रेलवे लाइन बन चुकी थी। इसी प्रकार आर्थिक लेन-देन को आसान बनाने के लिए आधुनिक डाक व टेलीग्राफ व्यवस्था को अधिक विकसित किया गया।

प्रशासनिक क्षेत्र में अब बहुत से परिवर्तन लाए गए। प्रशासन अधिक विस्तृत व व्यापक बनाया गया अब यह देश के गाँवों व दूरस्थ क्षेत्रों तक पहुँचा जिससे ब्रिटिश माल इसके भीतरी व दूरस्थ गाँवों में पहुँच सके और वहाँ से भी कृषि-उत्पादन प्राप्त किया जा सके। पूंजीवादी व्यापारिक संबंधों को बढ़ाने के लिए तथा कानून व व्यवस्था बनाये रखने के लिए भारत के कानूनी व न्यायिक ढाँचे में परिवर्तन किए गए। फिर भी अपराधी कानून, अनुबंध कानून व कानूनी प्रक्रियाएँ, पर्सनल लॉ जिसमें विवाह व उत्तराधिकार से संबंधित कानूनों से संबंधित परिवर्तन अधिकांश रूप में अछूते ही छोड़ दिए गये क्योंकि अर्थव्यवस्था के औपनिवेशिक परिवर्तन को यह किसी भी रूप में प्रभावित नहीं कर रहे थे।

इसके अतिरिक्त 1830 व 1840 में भारत में अंग्रेजी ने फारसी के स्थान पर राजभाषा का स्थान ले लिया था। 6 मार्च 1835 के लार्ड विलियम बैंटिक के प्रस्ताव में कहा गया "शिक्षा के लिए विनियुक्त कोष केवल अंग्रेजी शिक्षा में अच्छी तरह से प्रयोग किया जाएगा।"

आधुनिक शिक्षा अब मौलिक रूप से नयी, विस्तृत रूप से फैली हुई प्रशासनिक मशीनरी बनाने के लक्ष्य से प्रारंभ की गयी थी। परन्तु भारत के समाज और संस्कृति को बदलने में इससे सहायता की भी आशा की गयी थी। इस परिवर्तन की दो कारणों से आवश्यकता थी। इससे आशा की गयी :

i) परिवर्तन व विकास का वातावरण बनाने की

ii) शासकों के प्रति वफादारी की संस्कृति पैदा करने की।

यह ध्यान देने योग्य है कि इसी काल के लगभग अनेक भारतीय बुद्धिजीवियों जैसे राजा राममोहन राय ने विभिन्न कारणों से और मुख्य रूप से राष्ट्रीय पुर्नरूत्थान के लिए सामाजिक व सांस्कृतिक आधुनिकीकरण के लिए कार्य करना प्रारंभ किया।

उपनिवेशवाद की दूसरी अवस्था ने अनेक ब्रिटिश राजनेताओं व प्रशासकों के मध्य उदार साम्राज्यवादी विचारधारा को जन्म दिया। भारतीय लोगों को प्रजातंत्र व स्वशासन की कलाओं में प्रशिक्षण देने के लिए उन्होंने विचार किया। इस समय ब्रिटेन संसार की कार्यशाला था — तीव्रगति से औद्योगीकृत देश केवल यही था। परिणामस्वरूप ब्रिटेन में बहुतों का यह विश्वास था कि भारत के साथ इस रूप में व्यापार बनाये रखा जा सकता है, चाहे ब्रिटेन भारत पर अपना प्रत्यक्ष राजनीतिक व प्रशासकीय नियंत्रण हटा ले, जब तक वहाँ कानून व व्यवस्था, मुक्त व्यापार तथा व्यापार अनुबंध सुरक्षित बने हुए हैं। यहाँ तक कि उदार साम्राज्यवादियों ने भी विश्वास किया कि इन गुणों को प्राप्त करने में भारतीयों को सौ या अधिक वर्ष लगेंगे और इसलिए आने वाली शताब्दियों के लिए ब्रिटिश शासन बनाये रखा जाना चाहिए और उसे मजबूत बनाया जाना चाहिए।

यदि भारत के सामाजिक-आर्थिक ढाँचे को मूलतः परिवर्तित करना था तो इसकी विद्यमान संस्कृति व सामाजिक संगठन को अनुपयुक्त व पतनशील घोषित करना था।

भारतीय संस्कृति व समाज अब तीव्र आलोचना के विषय थे। तथापि इस आलोचना में कोई नस्लवाद सम्मिलित नहीं था क्योंकि साथ-साथ यह भी माना गया था कि भारतीय धीरे-धीरे यूरोपीय स्तर तक उठाए जा सकते हैं।

इस अवस्था में अतिरेक धन की निकासी के प्रारंभिक रूप बने रहे। यही नहीं बल्कि महंगा प्रशासन और आर्थिक परिवर्तन के लिए प्रयत्न भी करारोपण में मनमानी बढ़ोत्तरी किसानों पर बोझ का कारण बनी। सैनिक तथा नागरिक प्रशासन को बनाए रखने के लिए तथा रेलवे निर्माण के लिए धन की कमी के कारण और भूमि करों की अपनी सीमाओं के कारण औपनिवेशिक शासन निरंतर आर्थिक अभाव में रहा। फलतः अन्य क्षेत्रों में आधुनिकीकरण का रूप अंशतः अनुपात में कम कर दिया गया।

इस अवस्था में ब्रिटिश पूंजीवाद के विकास में भारत ने निर्णायक भूमिका अदा की। ब्रिटिश उद्योग-धंधे विशेष रूप से वस्त्र निर्यात पर बहुत निर्भर थे। 1860-80 के दौरान भारत ने ब्रिटिश निर्यात का 10 से 12 प्रतिशत और ब्रिटेन के वस्त्र निर्यात का करीब 20 प्रतिशत आत्मसात कर लिया। 1850 के बाद भारत भी इंजन, डिब्बों, रेल लाइनों तथा अन्य रेलवे सामानों का एक मुख्य आयातकर्त्ता था। इसके अतिरिक्त एशिया और अफ्रीका में ब्रिटिश उपनिवेशवाद फैलाने में भारतीय सेना ने महत्वपूर्ण भूमिका निभायी। इस अवस्था में शुरू से अंत तक भारतीय धन व पूंजी का ब्रिटेन द्वारा निष्कासन जारी रहा।

### 1.3.3 तृतीय अवस्था

यह उपनिवेशों के लिए विदेशी लागत और अन्तर्राष्ट्रीय प्रतिस्पर्धा का युग कहा जाता है। लगभग 1860 से भारत में उपनिवेशवाद की एक नयी अवस्था प्रारंभ की गयी थी। यह विश्व अर्थव्यवस्था में अनेक मुख्य परिवर्तनों का परिणाम था :

i) यूरोप के अनेक देशों जैसे अमेरिका व जापान में औद्योगीकरण के प्रसार के साथ संसार में ब्रिटेन की औद्योगिक सर्वोच्चता का अंत आ गया।

ii) उद्योग के लिए वैज्ञानिक ज्ञान के प्रयोग के परिणामस्वरूप औद्योगीकरण का तीव्रीकरण हुआ। आधुनिक रासायनिक उद्योग-धंधे, आंतरिक दहन इंजन के लिए पैट्रोलियम का इंधन के रूप में प्रयोग तथा औद्योगिक उद्देश्यों के लिए बिजली का प्रयोग इस काल में विकसित हुए।

iii) अंतर्राष्ट्रीय परिवहन के साधनों में क्रांति के कारण विश्व बाजार का और अधिक एकीकरण हुआ।

अनेक औद्योगीकृत देशों में नये उद्योग-धंधों ने विशाल मात्रा में कच्चा माल उपभोग किया। तीव्र औद्योगिक विकास की शहरी जनसंख्या के निरंतर विकास का कारण बना जिसे अधिक से अधिक भोजन की आवश्यकता थी। अब वहाँ नये सुरक्षित व विशिष्ट बाजारों तथा कृषक व खनिज कच्चे माल के स्रोतों और खाद्य पदार्थों के लिए तीव्र संघर्ष शुरू हो गया।

इसके अतिरिक्त आंतरिक व्यापार तथा उद्योग के विकास और उपनिवेशों व अर्द्ध-उपनिवेशों के विस्तृत शोषण ने पूंजीवादी देशों में बड़ी मात्रा में पूंजी का संचयन किया। साथ ही पूंजी का केन्द्रीकरण तथा बैंकिंग (साहूकारी) पूंजी का औद्योगिक पूंजी के साथ विलय कम से कम निगमों, व्यापार संघों व उत्पादक संघों में हुआ। इस पूंजी के लिए बाजारों की खोज करनी थी। इसने बड़ी मात्रा में पूंजी के निर्यात को प्रेरित किया। एक बार फिर विकसित पूंजीवादी देशों ने उन क्षेत्रों के लिए खोज व प्रतिस्पर्धा प्रारंभ कर दी जहाँ वे अपनी अतिरिक्त पूंजी को लगाने का एकमात्र अधिकार प्राप्त कर सकें।

इस प्रकार पूंजी निवेश के लिए बाजार, कच्चा माल और क्षेत्रों की अपनी खोज में पूंजीवादी देशों ने अपने बीच विश्व का विभाजन व पुर्नविभाजन प्रारंभ कर दिया।

इस अवस्था में उपनिवेशवाद ने भी मैट्रोपॉलिस (साम्राज्यवादी देश) में महत्वपूर्ण राजनीतिक व वैचारिक उद्देश्यों को पूरा किया। साम्राज्य के गुणगान पर आधारित अंध देश भक्ति व आक्रामक राष्ट्रवाद का प्रयोग देश में सामान्य हितों पर जोर डालकर सामाजिक विभाजनों को कम करने के लिए किया जा सकता था। उदाहरणार्थ उन श्रमिकों के मध्य गर्व व संतोष का भाव फैलाने के लिए जिनके गंदे घरों में वास्तविक जीवन में बिरले ही सूर्य निकलता था, ब्रिटेनवासियों ने "ब्रिटिश साम्राज्य में सूर्य कभी अस्त नहीं होता" का नारा लगाया। फ्रांसीसियों ने अपने "सिविलाइजिंग मिशन" पर जबकि जापान ने अखिल एशियावाद (पैन-एशियनिज्म) पर चर्चा की और एशियाई लोगों का समर्थक होने का दावा किया।

इस अवस्था के दौरान संसार में ब्रिटेन की स्थिति को प्रतिद्वन्दी पूंजीवादी देशों द्वारा लगातार चुनौती दी गयी थी तथा कमजोर की गयी थी। भारत पर अपना नियंत्रण दृढ़ करने के लिए अब इसने सशक्त प्रयत्न किए। उदार साम्राज्यवादी नीतियाँ अब प्रतिक्रियात्मक साम्राज्यवादी नीतियों में बदल गयीं। यह लिटन, डफरिन, लांसडाउन तथा कर्जन के वायसराय काल में प्रतिबिम्बित हुआ। प्रतिद्वन्दियों को बाहर रखने के लिए ब्रिटिश पूंजी को भारत में आकृष्ट करने के लिए तथा इसे सुरक्षा प्रदान करने के लिए भारत में औपनिवेशिक शासन मजबूत करना आवश्यक था। 1850 के बाद ब्रिटिश पूंजी की बहुत बड़ी रकम भारत में रेलवे, भारतीय सरकार के ऋण, व्यापार व कुछ हद तक बागान, कोयला खान, जूट कारखाने, जहाजरानी (शिपिंग) तथा बैंकिंग में लगाई गयी थी।

भारत ने भी ब्रिटेन के लिए महत्वपूर्ण भूमिका निभायी। संसार के विभाजन और पुनर्विभाजन के संघर्ष में ब्रिटेन के प्रतिद्वन्दियों से लड़ने के लिए इसकी सेना-लोग व आर्थिक स्रोत प्रयोग किए जा सकते थे। असल में अफ्रीका और एशिया में ब्रिटिश साम्राज्य की सुरक्षा, विस्तार और दृढ़ीकरण के लिए भारतीय सेना मुख्य यंत्र थी। परिणाम था एक महँगी व स्थायी सेना जिसने 1904 में भारतीय उत्पादन का 52 प्रतिशत समाविष्ट कर लिया।

राजनीतिक व प्रशासनिक रूप से उपनिवेशवाद की तृतीय अवस्था का अर्थ था भारत पर नवीकृत तथा अधिक तीव्र नियंत्रण। इसके अतिरिक्त पहले की अपेक्षा अब यह अधिक महत्वपूर्ण था कि औपनिवेशिक शासन भारत के हर स्थान और कोने में पहुँचना चाहिए। प्रशासन पहले की अपेक्षा अब नौकरशाही के रूप में अधिक मजबूत, कार्यकुशल व व्यापक हो गया। रेलमार्ग भी अब बहुत तेजी से बनाये गये।

उपनिवेशवाद की विचारधारा में अब एक मुख्य परिवर्तन आ गया। भारतीय लोगों को स्वशासन के लिए प्रशिक्षण देने की सभी बातें समाप्त हो गयीं (भारतीय राष्ट्रीय आंदोलन के दबाव के परिणामस्वरूप 1918 के बाद 20वीं शताब्दी में यह दोहराया गया) इसके अतिरिक्त ब्रिटिश शासन का उद्देश्य भारतीय लोगों पर स्थायी प्रशासन घोषित कर दिया गया था। भारतीय जनता स्थायी रूप से अपरिपक्व या अव्यवस्थित जनता घोषित कर दी गयी थी जिसे ब्रिटिश नियंत्रण या न्यायिता की आवश्यकता थी। भूगोल, "जाति", वातावरण, इतिहास, धर्म, संस्कृति व सामाजिक संगठन ऐसे तत्वों के रूप में उद्धृत किए गए थे जिन्होंने स्वशासन व प्रजातंत्र के लिए भारतीयों को स्थायी रूप से अनुपयुक्त बना दिया। इसलिए ब्रिटेन को उन पर आने वाले शताब्दियों के लिए सद्भावनापूर्ण तानाशाही का प्रयोग करना था।

इस काल में भारत के परिवर्तन के प्रयास यद्यपि एक बार फिर छुटपुट परिणामों के साथ जारी रहे। यह आंशिक रूप से पहले चर्चित आर्थिक अभाव और राष्ट्रीय आंदोलन के उदय के कारण था। फिर भी इन सीमित परिवर्तनों ने बुद्धिजीवी वर्ग को जन्म दिया जिसने उपनिवेशवाद का विरोध करना प्रारंभ कर दिया तथा औपनिवेशिक शोषण के तंत्र का विश्लेषण किया। परिवर्तन के किसी भी प्रयास में सम्मिलित इसे एक गंभीर संकट के रूप में देखा गया था। ब्रिटिश प्रशासक सामाजिक व सांस्कृतिक प्रश्नों पर तटस्थ बने रहे, और फिर सामाजिक व आर्थिक प्रतिक्रियावादियों को देशी संस्थाओं को सुरक्षित रखने के नाम पर सहायता देना शुरू कर दिया।

**बोध प्रश्न 3**

1 भारत में उपनिवेशवाद की द्वितीय व तृतीय अवस्था के दौरान अतिरिक्त बचत निष्कर्षण व शोषण के रूपों पर करीब सौ शब्दों में चर्चा कीजिए।

............................................................................................................

............................................................................................................

............................................................................................................

............................................................................................................

............................................................................................................

............................................................................................................

............................................................................................................

............................................................................................................

............................................................................................................

............................................................................................................

2 निम्नलिखित कथनों में सही (√) या गलत (×) का चिह्न लगाकर बताइये।
   i) भारत में उपनिवेशवाद की मुक्त व्यापार अवस्था के दौरान आयात कर बढ़ा दिये गये थे।
   ii) रेल मार्गों ने बाजारों के विस्तार में योगदान दिया।
   iii) ब्रिटिश औद्योगिक सर्वोच्चता को नयी चुनौतियों के कारण इसकी औपनिवेशिक नीति बदल गयी।
   iv) ब्रिटेनवासियों ने दावा किया कि "ब्रिटिश साम्राज्य में सूर्य कभी अस्त नहीं होता"।

3 19वीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध में ब्रिटिश शासन द्वारा भारत में अपनी स्थिति मजबूत करने के लिए किये गये प्रयत्नों पर करीब दस पंक्तियों में चर्चा कीजिए।

.....................................................................................................

.....................................................................................................

.....................................................................................................

.....................................................................................................

.....................................................................................................

.....................................................................................................

.....................................................................................................

.....................................................................................................

.....................................................................................................

.....................................................................................................

## 1.4 सारांश

उपनिवेशवाद में भारतीय अर्थव्यवस्था तथा समाज पूर्ण रूप से ब्रिटिश अर्थव्यवस्था के अधीन थे। परिणाम यह हुआ कि सन् 1760 के तुरन्त बाद के वर्षों में जब ब्रिटेन संसार के प्रमुख पूंजीवादी देश के रूप में विकसित हो रहा था उस समय भारत के विकास की गति बहुत धीमी रही और अंत में वह एक पिछड़े हुए उपनिवेश के रूप में परिवर्तित हो गया।

## 1.5 शब्दावली

**पूँजीवाद:** पूँजी या धन पर आधारित वह शाब्दिक एवं राजनीतिक व्यवस्था जिसमें संपत्ति का व्यापार तथा उद्योग निजी संपत्ति हो और जहाँ अर्थव्यवस्था का मुख्य आधार प्रतियोगिता हो।

**बुद्धिजीवी वर्ग:** समाज का वह वर्ग जो समाज में जागृति लाने के लिए प्रगतिशील विचारों को जन्म देने एवं फैलाने में मुख्य भूमिका निभाता है। इस वर्ग में शिक्षक, वकील, राजनेता तथा कलाकार हो सकते हैं।

**भूस्वामी वर्ग:** बेहतर एवं उच्च परिस्थिति वाले उन लोगों का वर्ग जिनके पास जरूरत से बहुत ज्यादा भूसंपत्ति थी जैसे जमींदार, तालुकेदार।

**महानगर:** विशेष रूप से पूँजीवादी प्रगति के परिणामस्वरूप अस्तित्व में आये उस नगर के लिए प्रयुक्त शब्द जो व्यापार या प्रोद्योगिक उन्नति का केन्द्र बना। जैसे दिल्ली, कलकत्ता, बंबई, मद्रास।

## 1.6 बोध प्रश्नों के उत्तर

**बोध प्रश्न 1**

1 i) × ii) × iii) √ iv) √
2 उपभाग 1.2.2 देखें

**बोध प्रश्न 2**

1 भाग 1.3.1 देखें
2 i) × ii) × iii) √ iv) √
3 उपभाग 1.3 देखें

**बोध प्रश्न 3**

1 भाग 1.3.2 और 1.3.3 देखें
2 i) × ii) √ iii) √ iv) √
3 उपभाग 1.3.3 देखें

# इकाई 2 साम्राज्यवाद और उसके सामाजिक, आर्थिक और राजनैतिक प्रभाव

## इकाई की रूपरेखा


2.0 उद्देश्य

2.1 प्रस्तावना

2.2 उपनिवेशवाद के सिद्धांत

- 2.2.1 यूरोपीय दृष्टिकोण
- 2.2.2 भारतीय राष्ट्रवादी दृष्टिकोण

2.3 उपनिवेशवाद के प्रभाव

- 2.3.1 अनौद्योगीकरण
- 2.3.2 औपनिवेशिक भारत में अकाल
- 2.3.3 कृषि का व्यावसायीकरण
- 2.3.4 व्यावसायीकरण का ग्रामीण समाज पर प्रभाव

2.4 आधुनिक उद्योग और भारतीय पूँजीपति वर्ग

2.5 औपनिवेशिक शासन

2.6 सारांश

2.7 शब्दावली

2.8 बोध प्रश्नों के उत्तर


## 2.0 उद्देश्य

इस इकाई में हम भारतीय समाज पर उपनिवेशवाद के प्रभाव के विस्तृत अध्ययन के साथ भारत में ब्रिटिश औपनिवेशिक शासन के आर्थिक, सामाजिक और राजनैतिक प्रभावों की भी चर्चा करेंगे। यह इकाई यह दर्शाती है कि औपनिवेशिक शासन बनाये रखने का एक उपकरण यह औपनिवेशिक अवस्था थी न कि भारतीय अर्थ-व्यवस्था और समाज के आधुनिकीकरण का एक उपकरण। यह इकाई पढ़ने के बाद आप इन बातों को समझने में सक्षम होंगे :

- यूरोपीय तथा भारतीय राष्ट्रीयतावादियों द्वारा प्रतिपादित उपनिवेशवाद के विभिन्न सिद्धांत
- अनौद्योगीकरण तथा कृषि के व्यावसायीकरण के संदर्भ में उपनिवेशवाद का भारतीय अर्थव्यवस्था पर प्रभाव
- भारत में आधुनिक उद्योगों का उदय तथा भारतीय पूंजीपति वर्ग की भूमिका
- औपनिवेशिक प्रक्रिया के कुछ राजनैतिक पहलू

## 2.1 प्रस्तावना

उपनिवेशवाद की प्रकृति तथा भारत पर इसके आर्थिक, सामाजिक और राजनैतिक प्रभाव को समझने के लिए यह जरूरी है कि उपनिवेशवाद को विश्व प्ररिप्रेक्ष्य में समझा जाये। यदि हम इसको सिर्फ भारत के परिप्रेक्ष्य में देखेंगे तो हम साम्राज्यवाद की संरचना के तर्क को समझ नहीं पायेंगे। इससे हमें यही लगेगा कि यह सब कुछ उन चंद व्यक्तियों के कारण हुआ जो भारत में ब्रिटिश शासक और योजना निर्माता थे। इस संदर्भ में पहले भी इन बातों की ऐतिहासिक आलोचना हो चुकी है कि कैसे एक उद्देश्यहीन गवर्नर जनरल या एक बुरे प्रबंधक या इंग्लैंड की जनता की नकारात्मक राय के कारण भारतीय जनता के लिए बुरी परिस्थितियों का निर्माण हुआ, ब्रिटिश साम्राज्य के समर्थकों ने भी कई बार इन्हीं अच्छी-बुरी नीतियों पर ही अपने विचार व्यक्त किये। यहाँ तक कि प्रारंभिक राष्ट्रवादी नेता साम्राज्य के बारे में इस सतही धारणा से पूरी तरह मुक्त नहीं थे। वे ब्रिटिश शासन के शोषक और दमनशील रूप को समझाने में तो समर्थ रहे किंतु उसे विस्तृत परिप्रेक्ष्य में देख नहीं सके, जिसे बाद के आलोचकों ने, मार्क्सवाद से प्रभावित आलोचकों को मिलाकर, पूंजीवादी साम्राज्यवाद या पूंजीवादी विश्व व्यवस्था के संदर्भ में उपनिवेशवाद को देखा। और इस प्रकार भारतीय साम्राज्य के ऐतिहासिक विकास को इन विभिन्न पहलुओं के साथ समझने में हमारी मदद की है। औपनिवेशिक विस्तार की इस घटना के प्रति समझ की इस दूसरी प्रक्रिया की जड़ें बीसवीं शताब्दी के प्रारंभिक आलोचकों—हॉब्सन, हिलफर्डिंग, रोजा लक्जेमबर्ग और लेनिन, के यहाँ देखी जा सकती हैं। भारत में यह प्रक्रिया या पद्धति कई विद्वानों के अलावा एम॰ एन॰ राय, जवाहरलाल नेहरू और आर॰ पी॰ दत्त द्वारा विकसित की गयी।

## 2.2. उपनिवेशवाद के सिद्धांत

आइए उपनिवेशवाद से संबंधित यूरोपीय एवं भारतीय राष्ट्रवादियों द्वारा प्रस्तुत सिद्धांतों को जाँचे।

### 2.2.1 यूरोपीय दृष्टिकोण

अब हम उपनिवेशवाद के संदर्भ में यूरोपीय विद्वानों के साथ ही भारतीय विद्वानों द्वारा प्रतिपादित विभिन्न सिद्धांतों का परीक्षण करेंगे।

मार्क्सवाद से बहुत अलग हॉब्सन, रीतिबद्ध ब्रिटिश लेबर पार्टी का एक विद्वान था, जिसने औपनिवेशिक साम्राज्य निर्माण का सिद्धांत प्रतिपादित किया। (उसका प्रमुख कार्य इंपीरियलिज्म (Imperialism) 1902 में प्रकाशित हुआ था। उसका विचार था कि पूंजीवाद का विस्तार या साम्राज्यवाद में परिवर्तित होना एक नियति है। उसने बताया कि पूंजीवाद प्रणाली का अर्थ है — आय का बहुत अधिक असमान वितरण। पूंजीवादियों के हाथ में लाभ का बहुत बड़ा हिस्सा पहुँच जाता है और श्रमिकों की मजदूरी बहुत कम होती है। इस प्रकार कामगारों की इतनी बड़ी संख्या में आय का स्तर बहुत कम रहता है। इसका परिणाम क्या होता है? "कम खपत" के कारण सभी औद्योगिक उत्पाद जिनका उत्पादन किया जाता है, वे देश के भीतर नहीं बेचे जा सकते, क्योंकि वहाँ, कोई खरीदार ही नहीं है। उन परिस्थितियों में पूंजीवादी क्या करें? वह कोशिश करता है कि इस अतिरिक्त उत्पाद को, जिसे देश के बाजारों में नहीं बेचा जा सकता है उसे विदेशी बाजारों में बेचा जाय। यदि सभी पूंजीवादी देश इस नीति को अपनाने लगें तो उपनिवेश के रूप में विजित बाजार तथा विजित बाजारों की सुरक्षा के लिए संघर्ष होगा। इस प्रकार हॉब्सन के अनुसार औपनिवेशिक विस्तार और विभिन्न देशों के पूंजीपतियों के बीच संघर्ष पूंजीवादी प्रणाली का अवश्यंभावी परिणाम था। आगे उपरोक्त "कम खपत" की बाधा के कारण लंबे समय के लिए पूंजीपति के लिए पूँजी निवेश के अवसर सीमित हो जाते हैं। दूसरी ओर आय बढ़ती जाती है और बचत निवेश होने का इंतजार करती रहती है। यह वह है जिसे हॉब्सन ने "अतिरिक्त बचत" कहा है, जो पूंजीपति को औपनिवेशिक विस्तार के लिए उकसाती है..... उपनिवेशों की प्राप्ति से अतिरिक्त पूंजी का निवेश संभव है। संक्षेप में "कम खपत" और "अतिरिक्त बचत" के हॉब्सन के सिद्धांत यही बताते हैं कि औपनिवेशिक विस्तार या साम्राज्यवाद पूंजीवादी प्रणाली का तार्किक परिणाम है।

हॉब्सन की पुस्तक के प्रकाशन के आठ वर्ष बाद रूडोल्फ हिलफर्डिंग ने वित्तीय पूंजीवाद पर केंद्रित एक महत्वपूर्ण विश्लेषण 1910 में प्रकाशित किया। एक सामाजिक लोकतंत्रवादी, एक प्रतिभाशाली अर्थशास्त्री और कुछ समय के लिए जर्मनी के वित्त-मंत्री हिलफर्डिंग को हिटलर और नाजीवाद के उदय के साथ भागकर पेरिस में शरण लेनी पड़ी थी और जब जर्मनी सेना द्वारा पेरिस पर कब्जा कर लिया गया था तब हिलफर्डिंग को पकड़कर मार डाला गया। मध्य-यूरोपीय समाजवादी आंदोलन के इस साहसी नेता को पूँजीवाद के अंतिम दौर के गहन विश्लेषण के लिए जाना जाता है। हिलफर्डिंग ने बताया कि इसके अंतिम दौर में पूंजीवाद बड़े-बड़े बैंकों और वित्तीय संसाधनों के दबाव में रहता है जो इजारेदार औद्योगिक व्यावसायिक घरानों के साथ मिलकर काम करते हैं। वित्तीय पूँजीवाद के इस विश्लेषण को वी. आई. लेनिन ने अपनी पुस्तिका "साम्राज्यवाद, पूंजीवाद की अंतिम अवस्था" (1916) में और बढ़ाया है। पूंजी के संचय और साम्राज्यवादी विस्तार की विभिन्न अवस्थाओं पर 1913 में रोजा लक्जेमबर्ग ने अपनी पुस्तक का प्रकाशन किया। यूरोपीय समाजवादी आंदोलन में उसने राजनैतिक और सैद्धांतिक स्तर पर एक विशेष छाप छोड़ी और वह नाज़ियों के शिकार होने तक इसमें अपनी महत्वपूर्ण भूमिका निभाती रही। जहाँ तक लेनिन का सवाल है, यहाँ यही कहा जा सकता है कि उसने साम्राज्यवाद पुस्तिका इसलिए लिखी ताकि वह विश्वयुद्ध की ओर ले जाने वाले पूंजीवादी तंत्र को बेनकाब कर सके। उसका अंतिम उद्देश्य यही था कि वह रूसी जनता को युद्ध में जाने से बचा सके जो पश्चिमी यूरोप के वित्तीय इजारेदारों के हित-संघर्ष के कारण शुरू हुआ था। वह विवादी लेखन का एक बहुत सफल हिस्सा है जिसने मार्क्सवादी इतिहास लेखन को गहरे तक प्रभावित किया।

### 2.2.2 भारतीय राष्ट्रवादी दृष्टि कोण

हॉब्सन हिलफर्डिंग और लेनिन द्वारा विकसित साम्राज्यवाद की इस आलोचना से अलग भारतीय राष्ट्रवादियों ने भारत पर औपनिवेशिक आर्थिक प्रभाव की तीखी और प्रभावशाली आलोचना पर विद्वतापूर्ण लेखन किया। दादाभाई नौरोजी, महादेव गोविन्द रानाडे और रोमेश दत्त तथा कई लोगों ने अपने लेखन द्वारा, जिन्होंने राष्ट्रवादी आर्थिक विचारधारा का विकास किया, ब्रिटिश शासन के अंतर्गत भारत के विशिष्ट अनुभवों पर प्रकाश डालते हुए उनका विश्लेषण किया। इस विश्लेषण के प्रमुख तत्व इस प्रकार हैं :

i) नौरोजी और दत्त के लेखन में संपत्ति दोहन (धन की निकासी) के विचार को विकसित किया गया है। उनके लिए इसका अर्थ था—संपत्ति का स्थानांतरण : 18वीं शताब्दी से ईस्ट इंडिया कंपनी के कर्मचारियों द्वारा लूट खसोट तथा गैर कानूनी फायदों के रूप में तथा गृह-शुल्कों, यानी इंग्लैण्ड में भारत की सरकार का खर्च मुख्यतः भारतीय जनता से विभिन्न करों के रूप में प्राप्त धन से किया जाता था, और अंततः निजी खातों के भारत से इंग्लैंड में पूंजी स्थानांतरण, लाभ और ब्याज आदि के रूप में।

राष्ट्रवादी विचारकों ने बतलाया कि किस तरह इन विभिन्न रूपों में पूँजी या संपत्ति दोहन के कारण इस देश की दशा कमजोर हुई और भारत तथा इंग्लैंड के बीच आर्थिक अंतर में वृद्धि हुई जो संपत्ति दोहन की एक नीति थी।

ii) उन्होंने यह भी बताया कि कैसे ब्रिटिश शासन ने भारत के लघु उद्योगों को तहस-नहस किया, इस प्रक्रिया को आजकल अनौद्योगीकरण के नाम से जाना जाता है।

iii) राष्ट्रवादियों का तर्क था कि मुक्त व्यापार तथा अहस्तक्षेप के विचार ने शुल्क तथा औद्योगिक नीतियों का निर्धारण किया जिसके कारण ब्रिटिश भारत में औद्योगिक विकास की संभावनाओं का खात्मा हो गया। परिणामस्वरूप भारत औद्योगिक इंग्लैंड के लिए "कृषि भूमि" बन गया, यानी इंग्लैंड से औद्योगिक आपूर्ति पर पूर्णतया निर्भर खाद्यान्न तथा कच्चे माल का एक स्रोत।

iv) कृषि में करों की दर की आर॰ सी॰ दत्त ने खूब आलोचना की है, उनके अनुसार खासकर उन क्षेत्रों में जहाँ समय-समय पर स्थायी भूमि-व्यवस्था थी, पर भूमि-राजस्व का भार बहुत अधिक था, उनके विचार से ब्रिटिश-भारत में समय-समय पर उभरनेवाली भूखमरी का यह कारण था, ग्रामीण क्षेत्रों से राजस्व एकत्र करने वाली मशीनरी द्वारा संपत्ति का शोषण किया गया, जिसके कारण आर्थिक स्तर पर खेती में इतनी अनिश्चितता हो गयी कि किसान बरसात न होने तथा अन्य प्राकृतिक आपदाओं के कारण उभर नहीं पाता था।

v) और अंत में भारत में ब्रिटिश आर्थिक नीतियों के राष्ट्रवादी विश्लेषण का प्रमुख हिस्सा सरकार की सेना, पुलिस तथा अन्य विभागों में होने वाले खर्च की आलोचना है, यह खर्च इतना अधिक था कि विकास में लगने वाले पूँजीनिवेश को नकार दिया गया। उदाहरण के लिए सिंचाई-कार्यों में इतने कम खर्च का प्रावधान था जिसे ब्रिटिश इंडिया आर्मी और रेलवे के उदार खर्च को समाने रखकर साफ-साफ समझा जा सकता है।

उपरोक्त मुद्दों पर हम बाद में विस्तार से चर्चा करेंगे। फिलहाल इस पर ध्यान दिया जाये कि इन दोनों विचारधाराओं, यूरोपीय समाजवादी साथ ही भारतीय राष्ट्रवादी की आलोचना का बहुत बड़ा हिस्सा यूरोप में वित्तीय पूँजीवाद तथा औद्योगिक पूंजीवाद की स्थिति से उपनिवेशवाद के दौर को जोड़ता है। (कृपया इकाई एक में "उपनिवेशवाद की अवस्थाएं" देखें) आगे यह भी देखा जा सकता है कि भारतीय राष्ट्रवादी आलोचना स्वभावतः "औपचारिक साम्राज्यवाद" की चारित्रिक विशेषताओं की ओर इशारा करती है। "औपचारिक साम्राज्यवाद" यानी ब्रिटिश साम्राज्यवादी ताकत के अंतर्गत उपनिवेश में औपचारिक राजनैतिक अधीनस्थीकरण के अंतर्गत भारत में देखा गया साम्राज्यवाद। हॉब्सन हिल फर्डिंग आदि ने साम्राज्यवाद का एक सामान्य तरीके से अध्ययन किया जिसमें उन्होंने "अनौपचारिक साम्राज्यवाद" को ध्यान में रखा जिसमें उपनिवेश का राजनैतिक अधीनीकरण भले ही न हुआ हो लेकिन महानगरीय औपनिवेशिक संबंधों में आर्थिक उपनिवेशवाद की चारित्रिक विशेषताएँ दिखायी देती हैं। (उदाहरण के लिए चीन और लातीनी अमरीकी देश) और अंत में हम यह भी देख सकते हैं कि भारतीय राष्ट्रवादियों, नौरोजी, रानाडे और आर॰ सी॰ दत्त द्वारा विकसित की गयी पद्धति से बिल्कुल अलग हॉब्सनकारी या लेनिनवादी पद्धति ने उपनिवेशवाद को पूंजीवादी व्यवस्था से जोड़ा हॉब्सन तथा अन्य विद्वानों के लिए औपनिवेशिक शोषण पूंजीवाद का एक प्राकृतिक तर्कपूर्ण उत्पादन था, जैसा यूरोप में दिखाई दिया। केवल इसलिए नहीं कि गलत नीतियों के कारण ऐसा हुआ। संपूर्ण रूप में भारतीय राष्ट्रवादियों द्वारा साम्राज्यवाद की आलोचना प्रभावित जनता के लिए तथा जन चेतना जगाने के लिए एक महत्वपूर्ण हथियार साबित हुई।

बाद में जवाहरलाल नेहरू जैसे राष्ट्रवादी प्रवक्ताओं ने मार्क्सवादी हॉब्सनवादी तथा लेनिनवादी पद्धतियों के कुछ तत्वों को अपनाकर साम्राज्यवाद को समझने की इस प्रक्रिया को और मजबूत तथा विकसित किया।

**बोध प्रश्न 1**

1 निम्नलिखित वाक्यों को पढ़कर सही (√) या गलत (X) का निशान लगाइये :

i) हॉब्सन के अनुसार "कम खपत" और "अधिक बचत" के कारण उपनिवेशवाद को बढ़ावा मिला।

ii) हिल्फर्डिंग तथा रोजा लक्जमबर्ग ने उपनिवेशवाद के सकारात्मक पक्षों की ओर ध्यान दिलाया।

iii) यूरोपीय सिद्धांतकार उपनिवेशवाद को पूँजीवाद की संरचना से जोड़ते हैं।

iv) प्रारंभिक राष्ट्रवादी अपने विचारों में यूरोपीय विद्वानों के अनुयायी थे।

2 उपनिवेशवाद को समझाने में प्रारंभिक राष्ट्रवादी नेताओं के योगदान पर अपने विचार लिखिए। दस पंक्तियों में।

..........................................................................................

..........................................................................................

..........................................................................................

..........................................................................................

..........................................................................................

..........................................................................................

..........................................................................................

..............................................................................................

..............................................................................................

..............................................................................................

3 "औपचारिक साम्राज्यवाद" तथा "अनौपचारिक साम्राज्यवाद" शब्द से आप क्या समझते हैं? लगभग सौ शब्दों में उदाहरण सहित लिखिए।

..............................................................................................

..............................................................................................

..............................................................................................

..............................................................................................

..............................................................................................

..............................................................................................

..............................................................................................

..............................................................................................

..............................................................................................

..............................................................................................

## 2.3 उपनिवेशवाद के प्रभाव

उपनिवेशवाद की विभिन्न अवस्थाओं के बारे में आप इकाई एक में पढ़ चुके हैं। लेकिन इस अवस्थाओं ने भारतीय अर्थव्यवस्था को किस तरह प्रभावित किया? औपनिवेशिक नीतियों के कारण शिल्पकार, कृषक, कामगार, व्यापारी यानी भारतीय समाज के लगभग सभी तबके प्रभावित हुए थे। इस खण्ड में हम उपनिवेशवाद के आर्थिक प्रभाव जानने का प्रयास करेंगे।

### 2.3.1 अनौद्योगीकरण

इस देश में पारंपरिक भारतीय उद्योगों का खात्मा उपनिवेशवाद के प्रारंभिक परिणामों में से एक था जिसे देखा और लिखा गया। यद्यपि यह बात इंग्लैंड में आधुनिक कारखानों, उद्योगों के विकास और भारतीय हस्तशिल्प उद्योगों के विनाश की शुरुआत से जुड़ी हुई है। फिर भी हम 18 वीं शताब्दी से इस बात को समझना चाहेंगे, जब वाणिज्य में भारतीय उद्योगों के उत्पाद की कीमत ऊँची मानी जाती थी। व्यावसायिक पूँजीवाद के उस दौर में ईस्ट इंडिया कंपनी के लाभ का स्रोत भारतीय औद्योगिक उत्पादों का भारत में लागत मूल्य तथा इंग्लैंड में विक्रय-मूल्य का अंतर था, जैसे सूती और सिल्क वस्त्र। यह मूल्य-अंतर जिसे हम अंग्रेजी ईस्ट इंडिया कंपनी का लाभ-दर कह सकते हैं, ज्यादा बढ़ाया जा सकता था यदि ईस्ट इंडिया कंपनी द्वारा खरीदे गये उत्पाद का भारतीय लागत-मूल्य भारतीय शिल्पकारों को कम दिया जाए। जब तक भारतीय बाजारों में प्रतिस्पर्धा थी, यानी जब तक अंग्रेजी ईस्ट इंडिया कंपनी दूसरी फ्रांसीसी, डच ईस्ट इंडिया कंपनियों के साथ-साथ भारतीय तथा एशियाई मूल के व्यापारियों के साथ प्रतिस्पर्धा रहेगी, भारतीय शिल्पकार अपने उत्पाद का अच्छा मूल्य प्राप्त करने की अवस्था में रहेगा। लेकिन 18 वीं शताब्दी के अंतिम दशकों में अंग्रेजों ने अपने प्रमुख प्रतिस्पर्धियों, विशेषकर फ्रांसीसी और डच को धीरे-धीरे हटाना शुरू कर दिया। इसके अलावा अपनी सैनिक ताकत के चलते, और कुछ क्षेत्रों में (उदाहरण के लिए 1765 में) राजनैतिक तथा प्रशासनिक नियंत्रण के कारण बंगाल में उन्हें बाजार में एकाधिकार जमाने या इजारेदार बनने में मदद की।

इंग्लिश कंपनी तथा उसके कर्मचारियों द्वारा वैयक्तिक खरीददारी मिलाकर इतनी हो जाती थी कि वह बंगाल में अच्छी किस्म के वस्त्रों का एक बहुत बड़ा हिस्सा खरीद लेते थे। जैसा कि हम सब जानते हैं कि एक इजारेदार अपने लाभ के लिए बाजार को प्रभावित कर सकता है। 18 वीं शताब्दी के अंतिम तीन दशकों तक अंग्रेज व्यापारियों को यह लाभ था जिसके चलते इस देश के शिल्पकारों को दिया जाने वाला मूल्य उन्होंने कम कर दिया जिससे यूरोपीय बाजारों में इस माल की बिक्री का लाभ बहुत अधिक बढ़ गया। भारतीय शिल्पकारों के इस अतिरिक्त शोषण ने उनकी आय का स्तर बहुत नीचा करके हस्तशिल्प उद्योगों के प्रभुत्व अधिकार को ही कमजोर कर दिया। इसने उद्योगों में पूँजीनिवेश तथा उसके तकनीकी विकास के लिए संसाधनों को जोड़ने की संभावनाओं को ही नष्ट कर दिया। जैसा कि हम जानते हैं, कि 18 वीं शताब्दी के अंतिम तथा 19 वीं शताब्दी के प्रारंभिक दशकों में इंग्लैंड में पूँजी जमाव और एक तकनीकी क्रांति हुई थीः इस तकनीकी क्रांति ने सबसे पहले यूरोप के बाजारों से भारतीय शिल्पकारों को एकदम हटा दिया। क्योंकि नये अंग्रेजी कारखानों में बड़ी मात्रा में उत्पादनों के कारण भारतीय शिल्पकारों के लिए यह संभव नहीं था कि वे कारखाना उत्पाद से प्रतियोगिता कर सकें। 19 वीं शताब्दी की शुरूआत् से देश औद्योगिक निर्यात सूती वस्त्र आदि का निर्यात धीरे-धीरे कम होने लगा और जल्द ही बंद हो

गया। कुछ और चीजें जैसे नील, अपरिष्कृत सिल्क का निर्यात होता रहा—यद्यपि सन् 1813 से ईस्ट इंडिया कंपनी नहीं, बल्कि निजी संस्थान निर्यात का काम करने लगे थे। विदेशी कारखानों ने न सिर्फ भारतीय शिल्पकारों से निर्यात बाजार ही छीना, बल्कि घरेलू बाजारों को भी आयातित उत्पादों से भर दिया।

इस प्रक्रिया को अनौद्योगीकरण कहा गया है, क्योंकि यह औद्योगीकरण की प्रक्रिया से बिल्कुल विपरीत है।

यहाँ पर हम 19 वीं शताब्दी में भारत में अनौद्योगीकरण के प्रश्न पर हुए विवाद की ओर ध्यान देंगे। रमेशचंद्र दत्त और मदनमोहन मालवीय ने भारतीय औद्योगिक आयोग को लिखे विरोध-पत्र में अपना पक्ष साबित करने के लिए आयात के आंकड़ों का उपयोग किया था। उन्होंने दर्शाया, उदाहरण के लिए, कि सन् 1860 में आयातित मैनचेस्टर कपड़ों का मूल्य 96 लाख स्टर्लिंग था जो सन् 1900 में बढ़कर 27 करोड़ स्टर्लिंग हो गया। हाल ही में कुछ लेखकों, विशेषकर मॉरिस डेविड मॉरिस, ने तर्क दिया कि यह प्रमाण निर्णायक नहीं है। उन्होंने बताया कि "पैक्स ब्रिटेनिका" के अंतर्गत जनसंख्या बढ़ गयी थी, प्रति व्यक्ति आय बढ़ गयी थी, खपत की आदतों में परिवर्तन के कारण वस्त्रों की बिक्री बढ़ गयी थी और इसलिए भारतीयों के लिए यह संभव था कि देशी शिल्पकारों के लिए बाजारों को अप्रभावित छोड़कर वे विदेशी वस्त्र खरीद सकें। संक्षेप में मॉरिस का तर्क यह है कि बाजारों की क्षमता इतनी बढ़ गयी थी कि वे मैनचेस्टर तथा भारतीय करघा उत्पादों, दोनों को शामिल कर सकें। मॉरिस इसी बात पर कायम है कि मैनचेस्टर वस्त्रों ने देशी बुनकरों के वस्त्रों को हटाया नहीं था। मॉरिस का यह विचार स्वीकार योग्य नहीं है, क्योंकि उसने 19वीं शताब्दी में जनसंख्या तथा प्रति व्यक्ति आय की वृद्धि का कोई तथ्य प्रस्तुत नहीं किया है। अनौद्योगीकरण की धारणा को बल देने वाले बहुत सारे तथ्यों को आधुनिक आर्थिक इतिहासकारों, जैसे शरद राजू (मद्रास), एन.के. सिन्हा (बंगाल), ए.वी. रामन राव (आंध्र प्रदेश), आर.डी. चौकसे (महाराष्ट्र) और ए.के. बाग्ची (बिहार) आदि, ने प्रस्तुत किया है। प्रारंभिक राष्ट्रवादी अर्थशास्त्रियों के पास आधुनिक आर्थिक इतिहासकारों द्वारा उपयोग में लाये जाने वाले स्रोतों का भंडार तथा शोध-पद्धतियाँ नहीं थी, फिर भी अनौद्योगीकरण के उनके निष्कर्ष को बाद के शोध- कर्त्ताओं ने पुष्ट किया। बाग्ची के अनुमान के अनुसार दोआब (मध्यगंगा क्षेत्र) में औद्योगिक पतन को कुछ विशुद्धता के साथ नापा जा सकता है: उद्योगों पर आश्रित व्यक्तियों की संख्या 1809-13 से जनगणना वर्ष सन् 1901 तक घटकर आधी रह गयी थी।

यह सिद्ध हो चुका है कि 19वीं शताब्दी के अंतिम दशक तक अनौद्योगीकरण की प्रक्रिया लगातार चल रही थी। क्या 19वीं शताब्दी के आखिरी दशक में नयी औद्योगिक गतिविधियों ने सामंजस्य बनाये रखा? डेनियल थॉर्नर ने एक विवादास्पद धारणा प्रस्तुत की कि सन् 1881 के बाद से उपलब्ध जनगणना के आँकड़े यह नहीं बताते हैं कि सन् 1881 से सन् 1931 तक अनौद्योगीकरण प्रगति पर था — पहली दृष्टि में जनगणना के आँकड़े यह दर्शाते हैं कि कृषि में पुरुष कार्य शक्ति 1881 के 65 प्रतिशत की तुलना में बढ़कर 1931 में 72 प्रतिशत हो गयी, जबकि सन् 1881 में औद्योगिक पतन का अनुपात 16 प्रतिशत से 1931 में 9 प्रतिशत रहा। लेकिन थॉर्नर का मानना है कि यह श्रेणीकरण भ्रांतिपूर्ण था और कृषि कार्य शक्ति को दूसरी श्रेणियों, सामान्य श्रमिक और इसी तरह के अन्य श्रमिकों से मिला देने पर व्यापार के साथ औद्योगिक कार्यशक्ति में वृद्धि होती है। यदि इसे मान लिया जाय तो पूरा दृश्य बदला हुआ दिखायी देता है। प्राथमिक क्षेत्र में संयोजित श्रेणियों की वृद्धि बहुत कम दिखायी देती है। (1881 और 1931 में 2 प्रतिशत वृद्धि) इसी तरह उद्योग तथा व्यवसाय दोनों को मिलाकर गिरावट भी बहुत कम है (1881-1931 में केवल 3 प्रतिशत गिरावट)। आगे थॉर्नर महिला श्रम-शक्ति से संबंधित आँकड़ों को भी इस आधार पर गलत बताते हैं कि जनगणना अधिकारियों के विचार में जो आँकड़े एकत्रित किए गए वे सही नहीं थे, और इस प्रकार थॉर्नर इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि 1881-1931 की जनगणना अनौद्योगीकरण का कोई समुचित आधार प्रस्तुत नहीं करती है।

थॉर्नर की धारणा के विरोध में एक सर्वविदित तथ्य यह है कि अनौद्योगीकरण की प्रक्रिया ने जनगणना के कार्य के पहले ही बहुत नुकसान कर दिया था। पहली विश्वसनीय जनगणना 1881 की मानी जाती है। इतना तो थॉर्नर स्वयं ही मानते हैं दूसरी यह कि महिलाओं के रोजगार से संबंधित आँकड़ों को नकारने में वे शायद गलत हैं। यह आँकड़े दर्शाते हैं कि 1881-1931 के दौरान कृषि में रोजगार 13 प्रतिशत बढ़ा, वहीं औद्योगिक रोजगार में 9 प्रतिशत की गिरावट आयी। भारतीय सामाजिक संदर्भ में महिलाओं का रोजगार बहुत महत्वपूर्ण है और यह शायद इस कारण हुआ कि शिल्पकारी के व्यापार में पतन होने के कारण घरेलू महिलाओं ने शिल्पकार परिवारों के पुरुषों से पहले ही औद्योगिक कार्य छोड़ दिया — (घरेलू कामकाज या कृषि श्रम के लिए)। इसके ऊपर सवाल यह है कि कार्यशक्ति के क्षेत्रीय-वितरण को औद्योगिकरण का कितना विश्वसनीय सूचक माना जाए? निर्णायक सूचक प्रति व्यक्ति उत्पादकता और राष्ट्रीय उत्पाद की तुलना में उसका मूल्य है, यानी राष्ट्रीय आय का अनुपात। थॉर्नर के दिये गए तर्कों के प्रति जयकृष्ण मूर्ति इसी धरातल पर जनसांख्यिकीय आंकड़ों के उपयोग पर शंका करते हुए उस प्रश्न का जवाब देते हैं कि क्या अनौद्योगीकरण था? और अंत में हमें यह भी ध्यान रखना चाहिए कि एक महत्वपूर्ण विचारधारा साम्राज्यवादी समर्थकों की थी जो यह तो मानते थे कि भारत का अनौद्योगीकरण हुआ है लेकिन साथ ही इस बात का भी तर्क देते हैं कि कृषिगत वस्तुओं के उत्पादन में उपनिवेश ने विशेषता हासिल कर ली इसलिए यह भारत और इंग्लैंड दोनों के लिए अच्छा था। जैसा कि 1911 में लॉर्ड जॉन मेनार्ड किन्स ने लिखा है कि भारत का औद्योगिकरण न तो संभव था न ही आवश्यक। वास्तव में भारत कृषि उत्पादों का पश्चिम से आयातित औद्योगिक वस्तुओं के साथ आदान-प्रदान कर ज्यादा समृद्धि हासिल कर सकता था। यह विचार तुलनात्मक लाभ और श्रम के अंतर्राष्ट्रीय विभाजन के पारंपरिक सिद्धांत की ओर ले जाता है और औद्योगीकृत साम्राज्यवादी देश के लिए भारत जैसे उपनिवेशों को कृषि-भूमि बनाने में मदद करता है। राष्ट्रवादी अर्थशास्त्रियों की सबसे महत्वपूर्ण उपलब्धि यह थी कि उन्होंने इस विचार को परास्त किया और स्वतंत्रता संग्राम के राजनैतिक कार्यक्रम में भारतीय औद्योगीकरण के आर्थिक कार्यक्रम को स्थापित किया।

## 2.3.2 औपनिवेशिक भारत में अकाल

यदि उपनिवेशवाद का अर्थ है पुराने उद्योगों का विनाश, तो क्या इसे कृषिगत उत्पादन में वृद्धि मानें? इसका उत्तर संभवतः नकारात्मक ही निकले। जब हम 1898 से 1947 तक की अनाज के प्रति व्यक्ति और प्रति एकड़ उत्पादकता को देखते हैं तो निश्चित रूप से इसका उत्तर नकारात्मक होता है। जहाँ तक प्रारंभिक पचास वर्षों की बात है बार-बार पड़ने वाले अकाल-मुखमरी अपनी कहानी स्वयं कहते हैं:

19वीं शताब्दी के मध्य से पड़ने वाले कई अकालों ने भारत की अवस्था दयनीय बना दी। निम्नलिखित आँकड़ों में हमने विभिन्न अकालों को दर्शाया, जिसे अंग्रेजी सरकार ने भी स्वीकार किया —

**भारतीय उपनिवेश में अकाल**

| | |
|---|---|
| 1853-55 | बंबई प्रेसिडेन्सी<br>मद्रास प्रेसिडेन्सी<br>राजपुताना |
| 1860-61 | पंजाब<br>कच्छ<br>राजपुताना<br>उत्तर प्रदेश |
| 1862 | दकन |
| 1866-67 | बिहार<br>उड़ीसा<br>उत्तरी मद्रास<br>हैदराबाद<br>मैसूर |
| 1868-70 | मध्य प्रांत (आज का मध्य प्रदेश)<br>राजस्थान<br>बंबई प्रेसिडेन्सी<br>बंगाल के कुछ क्षेत्र<br>बिहार |
| 1876-78 | उत्तर प्रदेश<br>बंबई प्रेसिडेन्सी<br>मैसूर<br>हैदराबाद<br>मद्रास प्रेसिडेन्सी |
| 1880-89 | उड़ीसा<br>बिहार |
| 896-97 | मध्य प्रांत<br>राजपुताना<br>बंबई प्रेसिडेन्सी<br>गुजरात |
| 1905-06 | बंबई प्रेसिडेन्सी |
| 1906-07 | बिहार |
| 1907-08 | उत्तर प्रदेश<br>मध्य प्रांत |

इन आंकड़ों में कुछ देशी राज्यों का समावेश किया गया है और उन क्षेत्रों के नामकरण में हुए विभिन्न बदलावों के कारण कुछ जगह (यानी उत्तर प्रदेश, मध्यप्रदेश) वर्तमान राज्यों के नाम का उल्लेख किया गया है। एक आधिकारिक अनुमान के अनुसार इन अकालों में एक करोड़ 52 लाख व्यक्तियों को अपने जीवन से हाथ धोना पड़ा और 29.7 करोड़ लोग इन विभिन्न अकालों से प्रभावित रहे।

यह बड़ी संख्या इस बात का द्योतक है कि लगातार संकट की अवस्था बनी रही। निश्चित रूप से इसका तात्कालिक कारण सूखा और फसल की बर्बादी रहा लेकिन इसकी जड़े वहाँ हैं जिसे खेतिहर उत्पादन की "सामान्य दर" कहा जाता है। कृषि तकनीक में स्थिरता, प्रति एकड़ पैदावार बढ़ाने में निवेश की असफलता, राजस्व दलालों द्वारा कृषि योग्य स्रोतों का दोहन और महाजन तथा कृषि वस्तुओं के व्यापारी भी बहुत महत्वपूर्ण पहलू थे। सिंचाई एवं अन्य विकासशील निवेशों में सरकार का अत्यल्प निवेश और 1920 के बाद से जनसंख्या में तीव्र वृद्धि भी औपनिवेशिक कृषक "नियमितत" बनाने में जिम्मेदार रही है। खाद्यान्न आपूर्ति के मामले में सामान्य अवस्था का एक महत्वपूर्ण सूचक भारत में खाद्यान्न की प्रति व्यक्ति उपलब्धिता है। इस संबंध में 1901 से 1943 तक की अवधि के तीन आकलन हमारे पास उपलब्ध हैं। ब्रिटिश भारत के लिए इन वर्षों में जॉर्ज ब्लिन के अनुमान या आकलन के अनुसार प्रति व्यक्ति खाद्यान्न उपलब्धता 0.23 टन से घटकर 0.16 टन रह गयी। शिव-सुब्रमन्यन के अनुमान के अनुसार संपूर्ण अविभाजित भारत में यह गिरावट 0.2 टन से 0.14 तक हुई। एलेन हेस्टन के अनुसार यह गिरावट 0.17 टन (1901) से 0.16 टन (1946) रही। इस प्रकार ये सारे आकलन यह दर्शाते हैं कि खाद्यान्न आपूर्ति में ब्रिटिश शासन के पचास वर्षों में गिरावट आयी, हालांकि ये आँकड़े एक दूसरे से अलग-अलग हैं।

## 2.3.3 कृषि का व्यावसायीकरण

जैसा कि हम देख चुके हैं कि खाद्यान्न उत्पादन में कोई सुधार नहीं हुआ लेकिन यह बात कुछ तथाकथित "नकद फसलों" के लिए सही नहीं थी। गैर खाद्य फसलों का कुल और प्रति व्यक्ति उत्पादन दोनों ही बढ़े और यह मुख्यतः मांग में बढ़ोतरी तथा बाहरी एवं घरेलू बाजारों में कीमतें बढ़ने के कारण हुआ। इस प्रकार की सबसे अधिक नाटकीय बढ़ोतरी 1860 के आरंभिक वर्षों में कपास की उछाल में देखी जा सकती है जो हमारा विशेष ध्यान खींचती है।

अब्राहम लिंकन द्वरा काले दासों की मुक्ति और अमेरिका में लगातार गृह-युद्ध के कारण 1860-64 के दौरान कपास की विश्व आपूर्ति में गंभीर गिरावट आयी। इसके कारण भारत से निर्यातित कपास के मूल्यों में वृद्धि हुई और भारत में कपास की खेती बढ़ी। कपास के इस उछाल ने कपास उगाने वाले क्षेत्र के भारतीय कृषकों को विश्व पूंजीवादी व्यवस्था के क्षेत्र में ला दिया। कपास की उस उछाल के कारण बंबई के महत्वपूर्ण निर्यात घरानों, बड़े शहरों के थोक-व्यापारियों, कपास निर्यात व्यापार के दलालों तथा अन्य व्यक्तियों से लेकर गाँव के महाजन, जो कृषक को कपास की खेती के लिए अग्रिम धन भी दे देता था, गाँव के महाजन के स्तर तक सभी लोगों ने भरपूर लाभ उठाया। इस लाभ के साथ ही पहले से ही अन्य व्यावसायिक फसलों जैसे अफीम और नील, के लाभ के कारण सारी पूंजी चंद भारतीय व्यापारियों के हाथों में सिमट कर रह गयी। सबसे महत्वपूर्ण बात यह है कि कपास के इस उछाल ने भारत को औद्योगीकृत पश्चिम की कृषिगत वस्तुओं तथा कच्चे माल की जरूरतों के आपूर्तिकर्ता का स्थान दे दिया। इससे अनौद्योगीकरण की प्रक्रिया को बढ़ावा मिला। कृषि में उपनिवेश द्वारा विशिष्टीकरण की भूमिका तथा पश्चिम में औद्योगीकृत देश इन्हें श्रम के अंतर्राष्ट्रीय विभाजन के समकालीन सिद्धांत में साफ-साफ दर्शाया गया है। यह सिर्फ भारत और इंग्लैंड में ही नहीं पाया गया बल्कि औद्योगिक पूंजीवादी साम्राज्यवाद की अवस्था में अन्य उपनिवेशों तथा महानगरीय क्षेत्रों में भी पाया गया।

कृषि उत्पादन के आँकड़े जहाँ गैर खाद्य-उत्पाद में वृद्धि दिखाते हैं वहीं खाद्यान्न उत्पादन में एकदम विपरीत स्थिति दिखाई पड़ती है। जहाँ 1891 से 1947 के बीच जनसंख्या में प्रति वर्ष 0.67 प्रतिशत की वृद्धि दिखाई देती हैं। वहीं कुल खाद्यान्न उत्पादन केवल 0.11 प्रतिशत बढ़ा दिखाई देता है; इस अवधि में प्रति एकड़ प्रतिवर्ष खाद्यान्न उत्पादन में 0.18 प्रतिशत की गिरावट भी दिखाई पड़ती है। दूसरी ओर बाजार में बढ़ती हुई माँग तथा बढ़ती हुई कीमतों के कारण उच्च व्यवसायिक गैर खाद्य फसलों के उत्पादन में 0.86 प्रतिशत प्रतिवर्ष और उनके कुल उत्पाद में 1.31 प्रतिशत प्रतिवर्ष की वृद्धि दिखाई पड़ती है। गैर खाद्य फसलों में प्राथमिक तौर पर कपास और जूट हैं लेकिन साथ ही तम्बाकू, गन्ना, तिलहन आदि शामिल हैं।

## 2.3.4 व्यावसायीकरण का ग्रामीण समाज पर प्रभाव

कृषि के व्यावसायीकरण ने व्यापारिक पूंजी और सूदखोरी को जन्म दिया और ग्रामीण समाज में कृषकों के बीच के अंतर को और अधिक बढ़ाया। सामान्य किसान की उधार के लिए महाजन पर निर्भरता बढ़ गयी थी। यह धन उसे फसलों की खरीदारी मंदी के मौसम में जीविकोपार्जन के लिए कर्ज के रूप में लेना पड़ा जैसे-जैसे व्यावसायीकरण बढ़ता गया भूराजस्व के भुगतान के लिए भी देनदार-व्यापारी नकद आपूर्ति करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाते रहे और महाजन आयातित औद्योगिक उपभोक्ता वस्तुओं, विशेष रूप से मैनचेस्टर वस्त्रों का ग्रामीण बाजारों में एक प्रमुख एजेंट बनकर उभरा।

जब गरीब खेतिहर बाजार के लिए फसलें उगा रहे थे वस्तुतः उस समय वे देनदार या महाजन के हाथों गिरवी हो चुके थे, खेतिहरों का थोड़ा संपन्न वर्ग तुलनात्मक रूप से स्वतंत्र था। ये लोग अपने सामानों का भंडारण कर सकते थे और कटाई के बाद भरे हुए बाजार में बेहतर कीमतों का इंतजार भी कर सकते थे। ये लोग अपनी उपज को बाजार तक ले जाकर महाजन और दलालों द्वारा गाँव में दी जाने वाली कीमत से ज्यादा कीमत पर बेच सकते थे। इसके अलावा वे इस बात का भी निर्णय कर सकते थे कि कौन सी फसल उगाई जाये जबकि गरीब खेतिहर वही फसल उगाने पर मजबूर था जो महाजन चाहता था। कुछ क्षेत्रों में ये संपन्न किसान स्वयं ही गरीब किसानों के महाजन बन बैठे। और इस प्रकार विभेदीकरण या विशिष्टीकरण की प्रक्रिया तीव्र हो गयी।

विशिष्टीकरण की इस प्रक्रिया और पैसों के लेन-देन के इस व्यापार के चलते बड़ी संख्या में खेतीहरों की जमीन छिन गयी और "गैर कृषिकरण" की प्रक्रिया के कारण वे भूमिहीन श्रमिकों में परिवर्तत हो गये। यहाँ इस बात पर जरूर ध्यान दिया जाये कि औपनिवेशिक अवधि के पहले भी भूमिहीन श्रमिक अस्तित्व में थे (विशेषकर दक्षिण भारत में कुछ जातियों के लोग बड़ी संख्या में दास थे)। गैर कृषिकरण की इस आर्थिक प्रक्रिया और भूमिहीन श्रमिकों की यह बड़ी संख्या औपनिवेशिक काल की एक प्रमुख विशेषता के रूप में उभर कर सामने आयी।

1931 की जनगणना से ग्रामीणों की सामाजिक दशा का जो चित्र सामने आता है, इस पिरामिड में सबसे नीचे भूमिहीन कृषि श्रमिक (बंधुआ श्रमिकों को मिलाकर) हैं, जो खेतिहरों का 37.8 प्रतिशत हैं। इसके ऊपर 5 एकड़ से भी कम जमीन वाले छोटे किसान (9 प्रतिशत) तथा पट्टेदारों और बटाईदार (24.3 प्रतिशत) हैं। दूसरी ऊपरी सतह पर थोड़ी बेहतर स्थिति वाले किसान हैं जिनके पास 5 एकड़ से अधिक जमीन हैं। ये कुल 25-30 प्रतिशत हैं और इस पिरामिड के सबसे ऊपरी हिस्से में वे लोग हैं जो खुद खेती नहीं करते हैं लेकिन लगान या किराया वसूल करते हैं। ये कुल खेतिहरों का मात्र 3.6 प्रतिशत हैं। सबसे बुरी हालत बंधुआ मजदूर की थी। इसे नीचे दिये गये त्रिभुजाकार आरेख से भी समझा जा सकता है।

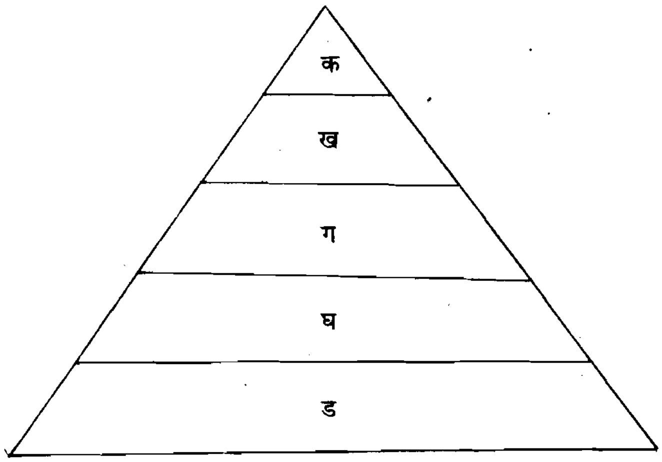


| | | | | |
|---|---|---|---|---|
| क | - | संपन्न किसान | - | 3.6 प्रतिशत |
| ख | - | बेहतर किसान | - | 25.3 प्रतिशत |
| ग | - | छोटे किसान | - | 9 प्रतिशत |
| घ | - | बटाईदार | - | 24.3 प्रतिशत |
| ङ | - | भूमिहीन किसान | - | 37.8 प्रतिशत |

1931 की गणना के अनुसार उपलब्ध आँकड़ों के अनुसार प्राप्त दृश्य।

सबसे बुरी हालत बंधुआ मजदूर की थी जो अपने मालिक के लिए जीवन भर और कभी-कभी पीढ़ी-दर-पीढ़ी काम करता रहता था। इस वर्ग की स्थिति में सुधार के प्रयास तथा पट्टेदारी के विषय में (इकाई-29, खंड 5) बाद में चर्चा की जाएगी।

**बोध प्रश्न 2**

1 मॉरिस डी. मॉरिस और डेनियल थॉर्नर किस आधार पर अनौद्योगीकरण की धारणा से इंकार करते हैं? क्या आप उनके विचारों से सहमत हैं?

2 निम्नलिखित वाक्यों को पढ़कर सही (√) या गलत (×) का निशान लगाइए :

i) जे. कृष्णमूर्ति का विचार है कि जनसांख्यिकी आँकड़े अनौद्योगीकरण के प्रश्न का उत्तर दे सकते हैं।

ii) आर.सी. दत्त का विचार है कि भारत में अनौद्योगीकरण नहीं था।

iii) 19वीं शताब्दी में लगातार पड़े अकालों को खाद्य-फसलों के कम उत्पादन द्वारा नहीं समझाया जा सकता है।

iv) कृषि के व्यावसायीकरण का अर्थ है नकद फसलों की खेती में अचानक वृद्धि।

3 निम्नलिखित शब्दों को पाँच पंक्तियों में समझाइए।

क) कपास-उछाल

..................................................................................................

..................................................................................................

..................................................................................................

..................................................................................................

..................................................................................................

ख) श्रम का अंतर्राष्ट्रीय विभाजन

....................................................................................................

....................................................................................................

....................................................................................................

....................................................................................................

....................................................................................................

## 2.4 आधुनिक उद्योग और भारतीय पूंजीपति वर्ग

औपनिवेशिक राज्य के औद्योगिक पूंजीवादी साम्राज्यवाद के रूप ने प्राकृतिक स्रोतों और कच्चे माल के शोषण के लिए इस उपनिवेश में एक आर्थिक कार्यक्रम का ढाँचा भी शामिल कर लिया, उस पहलू पर हम शीघ्र ही चर्चा करेंगे। फिलहाल यही बताना पर्याप्त होगा कि इन संरचनात्मक विकास, विशेषकर रेलवे और यातायात प्रणाली ने, न केवल कुछ क्षेत्रों (उदाहरण के लिए जूट कारखानों, कोयला खदानों, चाय-कॉफी बागानों) में विदेशी पूंजी के विकास के लिए बल्कि देशी पूंजी के लिए भी मार्ग प्रशस्त किया। ब्रिटिश भारतीय सरकार का प्रतिकूल शुल्क दर नीतियों तथा मैनचेस्टर वस्त्रों से प्रतिस्पर्धा के बाद भी देशी पूंजी का सबसे पहला औद्योगिक निवेश वस्त्रोद्योग में किया गया। 1854 में बंबई में पहली भारतीय कपड़ा मिल की स्थापना से लेकर प्रथम विश्व युद्ध तक भारतीय औद्योगिक पूंजी की प्रगति धीमी और स्थिर रही। वह युद्ध और युद्ध के बीच का समय था जिसने भारतीय पूंजी की औद्योगिक विवधिता के तीव्र विकास को देखा। यह विकास विदेशी पूंजीवादी प्रधानता से संघर्ष का एक हिस्सा था (स्पष्टतया पूर्वी भारत में)। इस विकास ने असंवेदनशील ब्रिटिश भारतीय सरकार तथा अंग्रेजी सरकार की नीतियों को प्रभावित करने वाली अंग्रेजी व्यापारिक रूचियों के खिलाफ संघर्ष को भी शामिल कर लिया। इससे हम भारतीय पूंजीपति वर्ग तथा उन राष्ट्रवादी नेताओं के बीच हुए गठबंधन को समझ सकते हैं जो देशी पूंजी के समर्थक थे।

एक औपनिवेशिक संदर्भ में राष्ट्रीय पूंजी का विकास स्वाभाविक रूप से सीमित रहा। औपनिवेशिक औद्योगिक विकास के मार्ग बहुत ही कम थे। राष्ट्रीय आय के बारे में शिव सुब्रमण्यन् द्वारा किये अनुमान से ही पता चल जाता है कि अंग्रेजी राज के अंतिम 50 वर्षों में भी औद्योगिक विकास की दर बहुत कम थी। एक औसत के आधार पर कुल राष्ट्रीय उत्पाद के अनुपात में औद्योगिक क्षेत्र का हिस्सा 1900-1904 में 12.7 प्रतिशत, 1915-19 में 16.7 प्रतिशत, और 1940-44 में 16.7 प्रतिशत था। यानी भारत वहीं रहा जहाँ वह था, कृषि प्रधान।

यह स्पष्ट है कि कुल राष्ट्रीय उत्पाद में प्राथमिक क्षेत्रों द्वारा अर्जित आय का अनुपात 1900-04 में 63.6 प्रतिशत, 1915-19 में 59.6 प्रतिशत और 1940-44 में 47.6 प्रतिशत था। केवल तृतीय क्षेत्र में तीव्र वृद्धि दिखाई पड़ती है; 1900-04 में 23.7 प्रतिशत की तुलना में 1940-44 में 35.4 प्रतिशत की वृद्धि।

दूसरे कई औपनिवेशिक तथा औद्योगिक रूप से पिछड़े हुए देशों के समान ही भारत की राष्ट्रीय आय का स्तर स्थिर ही दिखाई देता है। प्रारंभिक अंग्रेजी राज के समय में राष्ट्रीय आय का कोई सूचक उपलब्ध नहीं है। दादाभाई नौरोजी के आकलन के अनुसार 1860 में भारत में प्रतिवर्ष प्रति व्यक्ति आय मात्र 20 रुपये थी। हम यह पहले ही देख चुके हैं कि किस प्रकार दादाभाई नौरोजी तथा अन्य राष्ट्रवादी नेताओं ने भारत की इस दरिद्र अवस्था के लिए पूंजी दोहन को एक कारण माना था। इस काल में, स्पष्टतया 1870 में, (मिशेल और डीन के आकलन के अनुसार) इंग्लैंड में प्रतिवर्ष प्रति व्यक्ति आय 24 डॉलर 4 स्टर्लिंग थी, (भारतीय रुपयों में 568 रुपये)।

शिव सुब्रमण्यन् द्वारा हाल ही में किये गये आकलन के अनुसार अंग्रेजी राज के अंतिम 50 वर्षों में प्रति व्यक्ति आय लगभग स्थिर ही रही। यह 1900-04 में 52.2 रुपये, 1915-19 में 57.3 रुपये और (1938-39 की वे [illegible] थर मूल्य पर) 1940-44 में 56.6 रुपये थी। इससे हमें उस अल्प विकास और स्थिरता का आभास मिलता है जिससे औपनिवेशिक भारत पीड़ित था।

## 2.5 औपनिवेशिक शासन

उपनिवेशवाद के राजनैतिक प्रभाव और स्वतंत्रता संघर्ष के दौरान उपनिवेशवाद के विरोध का विषय इस अध्ययन में बाद में (खंड 2, 4 और 5 में) देखा जाएगा। यहाँ हम केवल औपनिवेशिक प्रक्रिया के कुछ राजनैतिक पहलुओं पर चर्चा करेंगे। औपनिवेशिक राज्य का आविष्कार इसलिए नहीं किया गया था कि अंग्रेजी साम्राज्यवादी हितों के अनुसार वह भारतीय अर्थ-व्यवस्था को एक आकार दे बल्कि उस उद्देश्य को प्राप्त करने का यह एक प्रमुख हथियार था। 19वीं शताब्दी के अंत और 20वीं शताब्दी के शुरुआत में अंग्रेज शासकों द्वारा प्रति व्यक्ति राजनीतिक विचारधारा को "अहस्तक्षेप" और पुलिस राज के रूप में जाना जाता है। लेकिन अहस्तक्षेप से विचलन बार-बार और मौलिक रूप से होता रहा। जहाँ तक भारत जैसे उपनिवेश का संबंध है इस सिद्धांत के अनुसार पश्चिमी प्रभाव के लिए देश में "सभ्यता मिशन" चलाने के लिए बार-बार कार्यशील हस्तक्षेप की जरूरत थी। इस प्रकार उदाहरण के लिए भारतीय रेलवे में निजी अंग्रेजी पूंजी को भारी सरकारी मदद

इस गारंटी के साथ थी कि इसमें नफा-नुकसान के बावजूद उनके हितों पर कोई प्रभाव नहीं पड़ेगा। स्पष्ट रूप से यह अंग्रेजी व्यापारिक हितों के लिए लाभकारी था। दूसरी ओर, अहस्तक्षेप को शुल्क दर नीतियों के घेरे में ही लागू किया गया : उदाहरण के लिए आयातित मैनचेस्टर वस्त्रों पर किसी भी तरह के शुल्क भार से इंकार अंग्रेजी हितों के लिए अच्छा और भारतीय मिल मालिकों के लिए बुरा था। दुबारा 19वीं शताब्दी के अंत और 20वीं शताब्दी के प्रारंभ में भुखमरी के दौरान सरकार द्वारा किसी भी तरह के हस्तक्षेप को हटाकर खाद्यान्न व्यापार में अहस्तक्षेप की नीति अपनायी गयी (खाद्यान्नों के निर्यात में भी)।

इंग्लैंड के राजनैतिक ढाँचे ने इस बात का विशेष ध्यान रखा कि वह संसद, भारतीय राज्य के सचिव जो ब्रिटिश कैबिनेट का सदस्य था, गवर्नर जनरल तथा भारत में उच्च प्रशासन द्वारा भारत में योजना निर्माण को महत्वपूर्ण व्यापारिक हितों के जरिये प्रभावित कर सकें। प्रथम विश्व युद्ध तक यह प्रभाव एकदम स्पष्ट थाः तथापि, बाद में ब्रिटिश भारतीय सरकार को घरेलू दबावों तथा भारतीय आवश्यकताओं के चलते कुछ समझौते करने पड़े और उनकी नीतियाँ थोड़ी उदार हुई। भारत पर शासन कायम रखने की व्यवहारिकता तथा सरकार की वित्तीय सुदृढ़ता के कारण उन्हें भारतीय पूंजीपतियों, अन्य महत्वपूर्ण हितों तथा राष्ट्रवादी दबाव के चलते कुछ समझौते करने पड़े, ये कुछ पहलू थे जिसके कारण 1920 के बाद अंग्रेजी नीतियों में उदारता आई। इन उपलब्धियों या विशेषताओं को देखते हुए यह कहा जा सकता है कि 19वीं शताब्दी के मध्य से 1947 तक औपनिवेशिक शासन भारत के औपनिवेशिकरण का एक औजार था, न कि भारतीय अर्थव्यवस्था और समाज के आधुनिकीकरण का एक ज़रिया।

**बोध प्रश्न 3**

1 आप भारतीय पूंजीपति वर्ग और राष्ट्रवादी नेतृत्व के बीच गठबंधन को कैसे व्याख्यायित करेंगे? 50 शब्दों में लिखें।

.............................................................................................

.............................................................................................

.............................................................................................

.............................................................................................

.............................................................................................

.............................................................................................

.............................................................................................

2 नीचे दी गयी पंक्तियों में औपनिवेशिक शासन की प्रकृति बताएँ।

.............................................................................................

.............................................................................................

.............................................................................................

.............................................................................................

.............................................................................................

.............................................................................................

.............................................................................................

## 2.6 सारांश

औपनिवेशिक शासन तथा उपनिवेश पर उसके प्रभावों को विभिन्न विद्वानों द्वारा अलग-अलग तरीके से व्याख्यायित किया गया है। भारतीय राष्ट्रवादी विद्वानों — दादाभाई नौरोजी, महादेव गोविंद रानाडे और आर.सी. दत्त आदि ने, मुख्यतः भारतीय संदर्भ में तथा भारतीय अर्थव्यवस्था पर अंग्रेजी राज के प्रभाव की चर्चा को ही अपने विश्लेषण के केंद्र में रखा है। उन्होंने संपत्ति-दोहन तथा अनौद्योगीकरण को अंग्रेजी राज के दुष्प्रभावों के रूप में व्याख्यायित किया। दूसरी ओर यूरोपीय विद्वानों ने उपनिवेशवाद का सामान्य सर्वेक्षण किया तथा पूंजीवाद की संरचना से उसे संघटित करके देखा। हॉब्सन, हिल फर्डिंग. रोजा-लक्जेमबर्ग तथा लेनिन आदि विद्वानों ने उपनिवेशवाद को समझने में हमारी दृष्टि काफी विकसित की है।

भारत में उपनिवेशवाद के अन्य पहलुओं में कृषि का व्यावसायीकरण तथा औद्योगीकरण की प्रक्रिया की धीमी तथा असंतुलित गति प्रमुख थी। उपनिवेशवाद की आवश्यकताओं की ओर ही भारतीय अर्थ-व्यवस्था बढ़ी और औपनिवेशिक शासन ने साम्राज्यवादी हितों के लिए भारतीय अर्थव्यवस्था को गढ़ने में एक प्रमुख भूमिका निभाई। भारतीय व्यापारिक हितों के प्रति पक्षपातपूर्ण अंग्रेजी नीतियों के कारण ही औपनिवेशिक शासन और भारतीय व्यापारिक समूहों के बीच संघर्ष की स्थिति बनी जिसके परिणामस्वरूप भारतीय पूंजीपति वर्ग भारतीय राष्ट्रीय आंदोलन से जुड़ गया।

## 2.7 शब्दावली

**गैर-कृषिकरण:** थोड़ी सी जमीन रखने वाले कृषकों के जमीन छीनने की प्रक्रिया, जिसके कारण वे बाद में कृषि-श्रमिक हो गये।

**विशिष्टीकरण या विभेदीकरण:** खेतीहरों को कई वर्गों में बाँट देना जिसके परिणामस्वरूप कुछ विशिष्ट तबके उसी वर्ग के बल पर संपन्न होते जाते हैं।

**जन-सांख्यिकीय आँकड़े:** जनसंख्या से संबंधित आँकड़े।

**साम्राज्यवादी समर्थक:** साम्राज्यवाद के प्रति नम्र दृष्टिकोण रखने वाले विद्वान वे साम्राज्यवाद के शोषक पहलुओं पर परदा डालते हुए भारत की आर्थिक अवनति के प्रति किसी भी जिम्मेदारी से उसे मुक्त करते हैं।

**'अहस्तक्षेप' व पुलिस राज:** देश की आर्थिक प्रक्रिया में किसी भी तरह से हस्तक्षेप न करने की नीति और पुलिस राज मुहावरे का अर्थ है कि देश में कानून-व्यवस्था बनाये रखना शासन का काम है। इस प्रकार सरकार तमाम जिम्मेदारियों से मुक्त हो जाती है।

**कुल राष्ट्रीय उत्पाद (नेट डोमेस्टिक प्रोडक्ट):** उद्योगों, कृषि और सेवा क्षेत्रों का मिलाजुला राष्ट्रीय उत्पाद।

**प्रति-व्यक्ति आय:** कुल राष्ट्रीय आय जिसे जनसंख्या से विभाजित किया जाए।

**प्रति व्यक्ति उत्पादन:** उत्पादन की दर जिसे बाद में कुल जनसंख्या से विभाजित किया जाए।

**प्राथमिक क्षेत्र:** कृषि, मत्स्य-पालन, पशुपालन और वन-उत्पाद।

**उत्पादकता:** उत्पादन-क्षमता।

**बटाईदार:** खेतीहरों का एक वर्ग जो दूसरों की जमीन पर खेती करता है या उस जमीन की देखभाल करता है तथा बदले में फसल में से हिस्सा प्राप्त करता है।

**पट्टेदार:** पुराने खेतीहर मालिकों का एक वर्ग जो अब नये बने हुए जमींदारों का किरायेदार हो गया है। ये जमींदार उस खेतीहर को किराया न चुकाने पर अपनी मर्जी से निकाल सकता है।

**द्वितीय क्षेत्र:** व्यापार और यातायात को मिलाकर सेवा-क्षेत्र।

**महाजन:** रुपए-पैसे देने वाला एक ग्रामीण वर्ग जो कभी-कभी खेतीहर और बाजार के बीच दलाली का काम भी करता है।

## 2.8 बोध प्रश्नों के उत्तर

**बोध प्रश्न 1**

1 i) √ ii) × iii) √ iv) ×
2 उपभाग 2.2.2 देखें।
3 उपभाग 2.2.2 से पता लगायें।

**बोध प्रश्न 2**

1 उपभाग 2.3.1 ध्यानपूर्वक पढ़ें और अपनी भाषा में उत्तर लिखें।
2 i) × ii) × iii) × iv) √
3 कृपया उपभाग 2.3.3 देखें।

**बोध प्रश्न 3**

1 भाग 2.4 से पता लगायें।
2 भाग 2.5 पढ़ें और उत्तर लिखें।

# इकाई 3 उन्नीसवीं शताब्दी में राष्ट्रीय चेतना का उद्भव और विकास

## इकाई की रूपरेखा


3.0 उद्देश्य
3.1 प्रस्तावना
3.2 भारतीय अर्थव्यवस्था का विनाश
  3.2.1 कृषि
  3.2.2 उद्योग
3.3 राष्ट्रीय चेतना के उद्भव के कारण
  3.3.1 प्रशासन का संगठित स्वरूप
  3.3.2 संचार व्यवस्था
  3.3.3 छापाखाना
  3.3.4 नवीन शिक्षा-प्रणाली
  3.3.5 अंग्रेजों की विस्तारवादी नीति
  3.3.6 बौद्धिक जागरण
  3.3.7 रंगभेद-नीति
3.4 भारतीय प्रतिक्रिया
  3.4.1 किसान और जनजातीय आन्दोलन
  3.4.2 मध्यम वर्गीय चेतना
3.5 सारांश
3.6 शब्दावली
3.7 बोध प्रश्नों के उत्तर


## 3.0 उद्देश्य

इस इकाई को पढ़ने के बाद आपः

- यह जान पाएँगे कि औपनिवेशिक शासन ने भारतीय जनता के विभिन्न वर्गों को किस प्रकार प्रभावित किया।
- यह बता सकेंगे कि राष्ट्रीय चेतना के विकास में किन महत्वपूर्ण कारकों ने योगदान दिया।
- यह व्याख्या कर सकेंगे कि किस प्रकार भारतीय जनता और मध्यम वर्ग ने औपनिवेशिक चुनौती का उत्तर दिया और किस प्रकार से राष्ट्रीय चेतना ने एक संगठित रूप ग्रहण किया।

## 3.1 प्रस्तावना

इस खंड की इकाई-1 और इकाई-2 में आपने उस प्रक्रिया का अध्ययन किया जिसके द्वारा भारत का एक अंग्रेजी उपनिवेश के रूप में शोषण हो रहा था। आपने यह भी अध्ययन किया कि किस प्रकार से औपनिवेशिक प्रक्रिया ने भारत की आर्थिक, राजनीतिक और सामाजिक परिस्थितियों को प्रभावित किया। इस इकाई में हम यह देखेंगे कि किस प्रकार अंग्रेजी नीतियों के परिणामस्वरूप 19वीं शताब्दी में भारत में राष्ट्रीय चेतना का विकास हुआ। हम इस बात पर अधिक बल देंगे कि राष्ट्रीय चेतना के विकास के लिए कौन-से तत्व उत्तरदायी हैं और हमारे अध्ययन काल में इस चेतना ने क्या रूप लिया।

19वीं शताब्दी में राष्ट्रीय चेतना का उद्भव वस्तुतः अंग्रेजी शासन का परिणाम था अंग्रेजी शासन ने जो परिवर्तन आर्थिक, राजनीतिक और सामाजिक क्षेत्र में किये थे उसके परिणामस्वरूप भारतीय जनता के सभी वर्गों का ही शोषण हुआ था जिससे कि जनता के बीच असंतोष की भावना ने एक व्यापक रूप लिया। दूसरी तरफ अंग्रेजों ने डाक और तार व्यवस्था, रेल, छापेखाने, एकरूप प्रशासन आदि का विकास किया। यद्यपि इनका विकास एक सुचारू प्रशासन चलाने की दृष्टि से किया गया था तथापि इन सभी ने राष्ट्रीय चेतना की उद्भव में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई। इस इकाई में हम राष्ट्रीय चेतना के उद्भव में इन कारकों की भूमिका का विस्तारपूर्वक वर्णन करेंगे।

## 3.2 भारतीय अर्थव्यवस्था का विनाश

भारत में अंग्रेजों ने जो आर्थिक नीतियाँ अपनाई उसके परिणामस्वरूप भारतीय कृषि और कुटीर उद्योगों को काफी धक्का लगा। इस प्रक्रिया के अंतर्गत किसानों, कामगारों और अन्य वर्गों की स्थिति निरंतर बिगड़ती चली गई। इकाई-2 के अंतर्गत आपने

पहले ही अंग्रेजी शासन के आर्थिक दुष्प्रभावों को पढ़ा है जो कि कृषि के व्यावसायीकरण, अकालों और भारतीय उद्योगों के पतन के रूप में सामने आये थे। यहाँ पर हम बहुत ही संक्षिप्त रूप से इस बात की चर्चा करेंगे कि किस प्रकार अंग्रेजी शासन ने हमारे आर्थिक जीवन को 19वीं शताब्दी में प्रभावित किया।

### 3.2.1 कृषि

अंग्रेजों की कृषि नीति मुख्यतः अधिकतम भू-राजस्व एकत्रित करने के उद्देश्य से प्रेरित थी। स्थायी बंदोबस्त के इलाकों में जमींदारों को एक निश्चित धनराशि भू-राजस्व के रूप में सरकार को देनी होती थी। जमींदार किसानों से उससे कहीं अधिक लगान एकत्र करते थे जितना कि उन्हें सरकार को देना होता था। उनकी इस माँग को पूर्ण करने के लिए किसानों को स्वतः ही महाजनों से धन उधार लेना पड़ता था और महाजन किसानों से अत्यधिक ब्याज वसूल करते थे, जब भी किसान जमींदार या महाजनों द्वारा शोषण के विरूद्ध आवाज उठाते थे तो सरकार शोषकों का ही साथ देती थी।

अंग्रेजी सरकार नगदी फसलों (जैसे कि नील, कपास, गन्ना आदि) की उगाही अपनी मनमानी कीमतों पर करती थी और इन फसलों का प्रयोग अंग्रेजी उद्योगों में कच्चे माल के रूप में किया जाता था। कपास और नील बोने वाले किसान इस शोषण नीति से सबसे अधिक पीड़ित थे। अंग्रेजी भू-राजस्व नीति के परिणामस्वरूप किसानों की एक बड़ी संख्या भूमिहीन कृषि श्रमिक बनती जा रही थी। 1901 की जनगणना के आँकड़े यह बताते हैं कि 20 प्रतिशत से अधिक आबादी देश में भूमिहीन श्रमिकों की थी।

### 3.2.2 उद्योग

जब हम उद्योगों की चर्चा करते हैं तो यह देखने में आता है कि कामगारों को भी अनेक मुसीबतों का सामना करना पड़ रहा था। अंग्रेजों ने भारत में बने कपड़े के निर्यात के ऊपर कई प्रकार के प्रतिबंध लगाये थे, जब कि इंग्लैंड में मशीन से बने कपड़े की भारत में बिक्री के ऊपर वस्तुतः किसी भी प्रकार का कर या प्रतिबंध नहीं था। भारतीय कामगार इस स्थिति में नहीं थे कि वे अंग्रेजी मशीन से बने कपड़े के साथ प्रतिस्पर्धा कर सकें। हालाँकि इंग्लैंड में मशीनों के आगमन पर वहाँ के कामगारों की हालत भी बिगड़ी थी परन्तु शीघ्र ही उन्हें कारखानों में रोजगार मिल गया था। भारत में मशीन से बना सामान इंग्लैंड से आता था और यहाँ पर कारखानों के लगाये जाने की प्रक्रिया अत्यंत ही धीमी थी क्योंकि सरकार भारत में औद्योगीकरण के पक्ष में नहीं थी। ऐसी परिस्थिति में कामगारों का बेरोजगार होना स्वाभाविक ही था। जो कुछ छोटे-मोटे कारखाने, खदानें या बागान यहाँ पर थे उनमें काम कर रहे कामगारों की स्थिति भी अच्छी नहीं थी, क्योंकि उन्हें मजदूरी बहुत कम दी जाती थी।

व्यापार, चुंगी, कर और यातायात के प्रति सरकार की नीतियों के कारण उभरते हुए भारतीय उद्योगपतियों को भी कठिनाइयों का सामना करना पड़ रहा था। वे स्पष्ट रूप से यह अनुभव कर रहे थे कि किस प्रकार से इंग्लैंड प्रारंभ में भारत का उपयोग अपने उद्योगों के लिए कच्चामाल प्राप्त करने के लिए कर रहा था और बाद में किस प्रकार थोड़ी बहुत अंग्रेजी पूँजी का निवेश भारत में किया गया था। अंग्रेजी पूँजीपतियों के पास व्यापक साधन थे और उन्हें सरकार द्वारा हर प्रकार की सुविधाएँ उपलब्ध थी। भारतीय पूँजीपति वर्ग को अभी उद्भव की दशा में होने के कारण सरकारी संरक्षण की आवश्यकता थी और वह उसे प्राप्त नहीं था।

**19वीं शताब्दी में भारत की स्थिति**

इस संक्षिप्त विवरण से आपने यह देखा कि भारतीय समाज का प्रत्येक वर्ग अंग्रेजी शासन के अधीन कठिनाइयों का सामना कर रहा था। परन्तु जनता में असंतोष की भावना एकाएक ही नवीन चेतना को जन्म नहीं देती। वास्तव में यह असंतोष विभिन्न समयों पर विद्रोह के विभिन्न पहलुओं के रूप में उभरकर सामने आया। कभी यह सरकारी अधिकारी के विरुद्ध था तो कभी जमींदार के और कभी किसी नये कानून के। वास्तव में विदेशी शासन के प्रति असंतोष की जो भावना थी उसके एक सही राष्ट्रीय चेतना के रूप में न उभरने के लिए कई कारक उत्तरदायी थे, जैसे कि देश का विस्तृत क्षेत्र, संचार साधनों का पिछड़ापन, अशिक्षा, समान भाषा की अनुपस्थिति, विभिन्न क्षेत्रों की समस्याओं का अलग-अलग होना और प्रशासन को क्रियान्वित करने के अलग-अलग रूप।

**बोध प्रश्न 1**

1 अंग्रेजी नीतियों ने भारतीय अर्थव्यवस्था को किस प्रकार प्रभावित किया?

.......................................................................................................

.......................................................................................................

.......................................................................................................

2 भारतीय समाज के उन दो वर्गों की व्याख्या कीजिए जिनका ह्रास औपनिवेशिक प्रशासन के कारण हुआ।

.......................................................................................................

.......................................................................................................

.......................................................................................................

3 औपनिवेशिक शासन के प्रारंभिक वर्षों में विदेशी शासन के प्रति भारतीय विरोध सही रूप से संगठित क्यों नहीं हो पाया?

..............................................................................................................

..............................................................................................................

..............................................................................................................

..............................................................................................................

## 3.3 राष्ट्रीय चेतना के उद्भव के कारण

ऊपर हमने जिन तत्वों के बारे में चर्चा की है उनके कारण अंग्रेजों को भी एक प्रभावशाली प्रशासनिक नियंत्रण स्थापित करने में कठिनाई हो रही थी। अतः अंग्रेजों ने कुछ नवीन प्रशासनिक तरीकों और नीतियों को अपनाया इन तरीको और नीतियों ने भारतीयों में राष्ट्रीय चेतना जागृत करने में भी सहयोग दिया। अब हम अंग्रेजों द्वारा अपनाई गई इन नीतियों और उनके प्रभावों का मूल्यांकन करेंगे।

### 3.3.1 प्रशासन का संगठित स्वरूप

भारतीय साधनों का पूर्ण रूप से शोषण करने के लिए अंग्रेजों ने देश को एक रूप प्रशासनिक व्यवस्था प्रदान की। प्रशासन में एकरूपता स्थापित करने के लिए जो महत्वपूर्ण तरीके अपनाए गये उनके अंतर्गत भू-राजस्व प्रशासन, पुलिस, कानून और व्यवस्था आदि के क्षेत्र सम्मिलित थे।

### 3.3.2 संचार व्यवस्था

डाक और तार व्यवस्था का विस्तार और सुधार किया गया। सभी मुख्य नगरों को तार व्यवस्था से जोड़ा गया। 1853 से रेल लाइनें बिछाई गई, इसके अंतर्गत योजना यह थी कि प्रांतों को एक दूसरे के साथ और उन क्षेत्रों को जहाँ से कच्चा माल प्राप्त होता था, बन्दरगाहों के साथ जोड़ा जा सके। लेकिन जैसे-जैसे रेल लाइनों का विकास हुआ यात्रियों के आवागमन में भी वृद्धि हुई और इस प्रकार दूरस्थ स्थानों पर रहने वाले व्यक्तियों को एक दूसरे के साथ संपर्क स्थापित करने का अवसर प्राप्त हुआ।

### 3.3.3 छापाखाना

छापेखाने के आगमन के परिणामस्वरूप विचारों के आदान-प्रदान और शिक्षा की प्रक्रिया भी कीमती नहीं रही। अनेक अखबार और पत्रिकाएँ छपने लगे। इन प्रकाशनों के माध्यम से विभिन्न क्षेत्रों की समस्याओं से लोग अवगत होने लगे। आप स्वयं अपने अनुभव से यह अनुमान लगा सकते हैं कि प्रेस समाज के शिक्षित वर्गों में राष्ट्रीय चेतना उत्पन्न करने में किस प्रकार की महत्वपूर्ण भूमिका निभाती है।

### 3.3.4 नवीन शिक्षा-प्रणाली

अंग्रेजों ने भारत में जिस नवीन शिक्षा प्रणाली को लागू किया वह मुख्यतः पाश्चात्य शिक्षा प्रणाली पर आधारित थी। अंग्रेजों की यह धारणा थी कि इस प्रकार की शिक्षा से भारतीयों में वह एक निष्ठावान वर्ग खड़ा कर देंगे जो कि अंग्रेजों के लिए पूर्ण स्वामीभक्ति के साथ क्लर्की आदि का कार्य कर सकें। जैसे मैकाले ने कहा था कि, उद्देश्य यह था कि "व्यक्तियों का एक ऐसा वर्ग बनाया जाए जो कि खून और रंग से तो भारतीय हो परन्तु आदर्श, विचार और अक्ल से अंग्रेज हो"।

परन्तु इस नवीन शिक्षा प्रणाली का एक दूसरा ही प्रभाव हुआ, इसके द्वारा 'भारत का शिक्षित वर्ग समानता, स्वतंत्रता और राष्ट्रवाद के विचारों से एक ऐसे समय में परिचित हुआ जबकि औपनिवेशिक शासन को लेकर सर्वत्र असंतोष फैला हुआ था। हालांकि यह शिक्षा प्रणाली भारतीयों के एक छोटे-से वर्ग तक ही सीमित थी (उदाहरण के लिए 1921 तक लगभग 92 प्रतिशत भारतीय अशिक्षित थे) तथापि इस शिक्षा के माध्यम से शिक्षित भारतीय का परिचय यूरोप में चल रहे राष्ट्रवादी आंदोलनों से हुआ (जैसे कि जर्मनी और इटली का एकीकरण और तुर्की के साम्राज्य के विरूद्ध विभिन्न जातियों के राष्ट्रीय आंदोलन)। इसके अतिरिक्त भारतीयों का परिचय कई उदारवादी लेखकों और विचारकों (जैसे जाँन मिल्टन, शेली, बेंथम, जॉन स्टुअर्ट मिल, रूसो, वालटेयर, मेजिनी और गैरी बाल्डी आदि) के विचारों और लेखन से हुआ। जो भारतीय इंग्लैंड से शिक्षा प्राप्त करके भारत लौटे तो उन्होंने यह पाया कि जो अधिकार यूरोपीय देशों के नागरिकों को स्वतः ही प्राप्त थे भारतीयों को उनसे वंचित रखा गया था।

### 3.3.5 अंग्रेजों की विस्तारवादी नीति

अंग्रेजों ने प्रारंभ से ही अपना नियंत्रण स्थापित करने के लिए भारत के विभिन्न क्षेत्रों को विजित किया था। इस काल में भी उन्होंने अपनी विस्तारवादी नीति को जारी रखा। अनेक भारतीय रियासतों को जो अंग्रेजों से संघर्षरत भी नहीं थी अंग्रेजों ने

हड़प लिया जैसे 1843 में सिंध, 1849 में पंजाब, 1856 में अवध और झांसी, सातारा और नागपुर आदि रियासतों का हड़पा जाना। इस प्रकार भारतीय राजा भी अंग्रेजों के प्रति सचेत हो उठे थे।

### 3.3.6 बौद्धिक जागरण

भारत में 19वीं शताब्दी में सामाजिक सुधार और बौद्धिक जागरण का काल प्रारंभ हुआ। बौद्धिक जागरण से हमारा अभिप्राय उस प्रयास से है जिसके द्वारा तत्कालीन समाज का आलोचनात्मक और रचनात्मक मूल्यांकन इस उद्देश्य से किया गया कि उसका परिवर्तन आधुनिक आधार पर किया जा सके। इस विश्लेषण का श्रेय उन बुद्धिजीवियों को जाता है जिन्होंने कि आधुनिक शिक्षा हासिल की थी। राजा राममोहन राय, केशव चन्द्र सेन, ईश्वर चन्द्र विद्यासागर और सर सैयद अहमद खाँ आदि ऐसे प्रमुख बुद्धिजीवी थे, जिन्होंने कि 19वीं शताब्दी में राष्ट्रीय चेतना के उद्भव में महत्वपूर्ण योगदान दिया।

अंग्रेजों ने अपने शासन को न्यायोचित ठहराने के लिए अपने से पहले के युग को (18वीं शताब्दी के पूर्वार्द्ध) एक ऐसे काल के रूप में प्रस्तुत किया जिसके दौरान भारतीय समाज में एक ठहराव की स्थिति थी, उन्होंने यह साबित करने का प्रयास किया कि विज्ञान और तकनीकी के क्षेत्र में भारत की कोई उपलब्धि नहीं थी और न ही भारतीय एक अच्छी सरकार देने के योग्य थे। शिक्षित भारतियों ने अंग्रेजों के प्रचार के विरोध में कला, साहित्य दर्शन, विज्ञान और भवन निर्माण आदि के क्षेत्र में भारतीयों द्वारा प्राप्त की गई उपलब्धियों का जिक्र किया। इन ऐतिहासिक क्षेत्रों में खोज के परिणामस्वरूप जो नवीन चेतना उभरकर सामने आई उसका उद्देश्य धर्म के नाम पर निहित बुराईयों को दूर करके भारतीय समाज में सुधार लाना था।

### 3.3.7 रंगभेद नीति

अंग्रेजों द्वारा अपनाया गया रंगभेद दृष्टिकोण भी राष्ट्रीय भावनाओं को जागृत करने में सहयोगी बना। यह भेद अंग्रेजों द्वारा केवल सामाजिक व्यवहार में ही नहीं अपनाया जाता था बल्कि न्यायिक क्षेत्र में भी इसका प्रयोग किया जाता था।

1864 में जी.ओ. ट्रैवीलियन ने जो कि एक इतिहासकार और प्रभावशाली सरकारी अफसर भी थे यह लिखा था कि "कचहरी में हमारे देश के एक व्यक्ति की गवाही, कई हिन्दुओं की गवाही के मुकाबले ज्यादा महत्व रखती है। यह एक ऐसी परिस्थिति है जो कि एक बेईमान अंग्रेज के हाथों में अत्यधिक शक्ति देती है"। वास्तव में रंगभेद की इस नीति ने व्यावहारिक रूप से जो कठिनाइयाँ और अपमान भारतीयों को दिया उससे राष्ट्रीय चेतना के विकास में अधिक बल मिला।

**बोध प्रश्न 2**

1 निम्नलिखित में से कौन-सी रियासतें ऐसी थीं जिन्हें कि अंग्रेजों ने नहीं हड़पा।

i) अंग्रेजों ने भारत में रेल लाइनें क्यों बिछाईं।

..................................................................................................

..................................................................................................

ii) छापाखाने ने ज्ञान की वृद्धि में किस प्रकार सहयोग दिया?

..................................................................................................

..................................................................................................

iii) भारतीयों को आधुनिक शिक्षा दिये जाने के पीछे अंग्रेजों का क्या उद्देश्य था?

..................................................................................................

..................................................................................................

..................................................................................................

..................................................................................................

..................................................................................................

2 निम्नलिखित में से कौन-सी रियासतें ऐसी थी जिन्हें कि अंग्रेजों ने नहीं हड़पा।

i) सिंध ii) झांसी iii) बड़ौदा
iv) ग्वालियर v) हैदराबाद vi) अवध
vii) सातारा

3 निम्नलिखित में से कौन-सा कथन सही और कौन-सा गलत है?

i) 19वीं शताब्दी न्यायिक मामलों में भारत में रंगभेद की नीति नहीं अपनायी जाती थी।
ii) अंग्रेजों ने रेलों के विकास को इसलिए महत्व दिया कि भारतीय तेजी से यात्रा कर सकें।
iii) अंग्रेजों ने भारत में एकरूप प्रशासन स्थापित करने का प्रयास किया।
iv) छापेखाने के उपयोग के कारण विचारों का आदान-प्रदान सुगम हो गया।

## 3.4 भारतीय प्रतिक्रिया

भारतीयों ने अंग्रेजी शोषण और इसके द्वारा लागू की गई नुकसानदेह नीतियों का विरोध विभिन्न स्तरों पर किया। धीरे-धीरे इस विरोध ने राष्ट्रीय आंदोलन का रूप ले लिया, हालांकि इस प्रक्रिया की गति प्रारंभिक अवस्थाओं में काफी धीमी थी। भारतीयों द्वारा अंग्रेजों के प्रति दर्शाये गये विरोध को हम दो रूपों में विभाजित कर सकते हैं।

1 किसान और जन-जातीय आंदोलन
2 मध्यम वर्ग का विरोध

### 3.4.1 किसान और जन-जातीय आंदोलन

19वीं शताब्दी में हम यह देखते हैं कि अनेक स्थानों पर किसानों और जन-जातियों ने अंग्रेजी सत्ता के विरुद्ध विद्रोह किया। यद्यपि इन प्रारंभिक विद्रोहों को राष्ट्रीय विद्रोह की संज्ञा नहीं दी जा सकती तथापि राष्ट्रीय चेतना के उद्‌भव और विकास में इन विद्रोहों का महत्वपूर्ण योगदान है। यह प्रारंभिक विद्रोह अंग्रेजों की शोषक नीति के विरूद्ध हुए थे। इतिहासकार सुमित सरकार के अनुसार प्लासी के युद्ध से लेकर अगले लगभग 100 वर्षों तक इन विद्रोहों का संचालन परंपरागत नेतृत्व के हाथ में था (जैसे कि उजड़े हुए जमींदार, मुखिया या साधु और फकीर आदि) परन्तु इन विद्रोहों में हिस्सा लेने वाले समाज के पीड़ित छोटे वर्ग थे। इतिहासकार कैथलिन गफ ने ऐसे 77 किसान विद्रोहों का उल्लेख किया है, जिनमें कि हिंसा का प्रयोग किया गया था। जन-जातियों के आंदोलन भी अत्यंत उग्र थे। कुंवर सुरेश सिंह ने इन आंदोलनों का अध्ययन कर यह धारणा प्रस्तुत की है कि भारतीय समाज के किसी अन्य वर्ग की अपेक्षा जन-जातीय आंदोलनों की संख्या अधिक थी और यह अधिक हिंसक भी थे। भारत में किसान और जन-जातीय विद्रोहों की एक लंबी सूची है और यहाँ हम केवल उनमें से कुछ का ही उल्लेख करेंगे (इन आंदोलनों पर विस्तृत चर्चा आप खंड-2 की इकाई-7 में पढ़ेंगे)। 19वीं शताब्दी के पूर्वाध में होने वाले महत्वपूर्ण विद्रोह थे:

- ट्रिवेनकोर विद्रोह (1800-1809)
- भील विद्रोह (1818-1831)
- हो विद्रोह (1820-1821)
- खासी विद्रोह (1829-1831)
- कोल विद्रोह (1831)
- संथाल विद्रोह (1855-1856)

इनके अतिरिक्त वाहवी आंदोलन 1813-1869 और फरैजी आंदोलन 1834-1847 भी इस काल के महत्वपूर्ण आंदोलन थे। इनमें से अधिकांश विद्रोहों में नेतृत्व अंग्रेजों की नीतियों के परिणामस्वरूप उजड़े हुए सामंतों ने प्रदान किया था। इन विद्रोहों को आधुनिक दृष्टि से ध्यान में रखते हुए राष्ट्रीय आंदोलनों की उपमा नहीं दी जा सकती, परन्तु इसके साथ-साथ यह स्पष्ट है कि इन विद्रोहों के पीछे प्रेरक शक्ति अंग्रेजों की शोषक नीतियों का संयुक्त विरोध था और अक्सर कई आन्दोलन किसी शोषक जमींदार, महाजन या सरकारी अधिकारी के विरूद्ध भी हुए।

इस काल में शहरों में बसने वाली जनता ने भी अंग्रेजी नीतियों के विरूद्ध आवाज उठाई। 1810-11 की बनारस की हड़ताल और 1816 का बरेली विद्रोह इसके कुछ उदाहरण हैं। बनारस में शहर की जनता ने गृह टैक्स के विरूद्ध हड़ताल की थी और बरेली में पुलिस टैक्स के विरूद्ध। यह पुलिस टैक्स जनता से इस बात के लिए उगाहा जाना था कि पुलिस उन्हें सुरक्षा प्रदान कर सके। बनारस विद्रोह के कारण अंग्रेजों को गृह टैक्स वापस लेना पड़ा, परन्तु बरेली की जनता को पुलिस टैक्स देना ही पड़ा।

**1857 का विद्रोह**

अंग्रेजी सरकार की नीतियों के परिणामस्वरूप जो व्यापक असंतोष जनता में फैल रहा था वह 1857 के विद्रोह के रूप में प्रतिभूत हुआ। उत्तरी और मध्य भारत के अधिकांश क्षेत्रों में यह विद्रोह फैला। कहने को तो इसका प्रारंभ कंपनी के सिपाहियों के विद्रोह से हुआ था, परन्तु शीघ्र ही किसानों और कामगारों ने इससे अपना संबंध जोड़ लिया। क्रांतिकारियों द्वारा दिल्ली से जारी की गई एक घोषणा में अंग्रेजों के संबंध में यह कहा गया था कि:

"प्रथम तो उन्होंने हिन्दुस्तान में तीन सौ रूपये के राजस्व की उगाही की जहाँ कि केवल दो सौ रूपये ही बनते थे और पाँच सौ रुपये वहाँ उगाहे जहाँ कि चार सौ रुपये बनते थे और निरंतर अपनी माँग बढ़ाते ही जा रहे थे। नतीजा यह हुआ कि जनता भिखारी बन रही थी और विनाश की ओर अग्रसर हो रही थी। दूसरे उन्होंने चौकीदारी कर को भी दुगुना, चौगुना और दस गुना बढ़ा दिया था और उनकी इच्छा जनता का नाश करने की थी। तीसरे अनेक सम्मानित और विद्वान व्यक्ति बेरोजगार [illegible] थे और लाखों लोगों को जीवन की आवश्यक वस्तुएँ भी प्राप्त नहीं होती थी। शासकों के अत्याचारों का हम कहाँ तक वर्णन [illegible]। धीरे-धीरे बात यहाँ तक बढ़ गई कि सरकार हर किसी का धर्म भी भ्रष्ट करना चाहती थी।"

इस विद्रोह में हम पहली बार यह देखते हैं कि जनता राष्ट्रीय भावनाओं से प्रेरित हुई थी। एस.एन. सेन ने अपनी पुस्तक 'अठारह सौ सत्तावन' में इस महत्व को दर्शाया है। अंग्रेजों ने इस विद्रोह का क्रुरतापूर्वक दमन किया लेकिन इसके साथ-साथ भारत का प्रशासन अब ईस्ट इंडिया कंपनी के हाथों से निकलकर सीधे ब्रिटिश सरकार के हाथों में चला गया, परन्तु इस विद्रोह के दमन से लोकप्रिय विद्रोहों का सिलसिला रुका नहीं। 19वीं शताब्दी के अंत तक विभिन्न क्षेत्रों में अंग्रेजी शासन के विरूद्ध विद्रोह होते रहे।

**1857 के उपरांत के किसान विद्रोह**

19वीं शताब्दी के दूसरे अर्द्ध में जो महत्वपूर्ण किसान आंदोलन हुए वे थे:

- बंगाल में नील विद्रोह (1859-60)
- त्रिपुरा में कुकी विद्रोह (1860-90)
- पंजाब में कुका विद्रोह (1869-72)
- बंगाल में पावना किसान विद्रोह (1872-73)
- महाराष्ट्र में किसान विद्रोह (1979) और
- दक्षिणी बिहार में विरसा मुंडा का विद्रोह (1899-1900)

इस प्रकार हम यह देखते हैं कि 19वीं शताब्दी में लगातार भारतीय जनता किसी न किसी क्षेत्र में अंग्रेजों के विरूद्ध संघर्षरत रही है, यद्यपि यह संघर्ष असफल रहा परन्तु इन्होंने जनता में अंग्रेजी विरोधी भावनाओं को सशक्त किया।

**बोध प्रश्न 3**

1 प्रारंभिक किसान और जन-जातीय विद्रोहों का स्वरूप क्या था?

..............................................................................................

..............................................................................................

..............................................................................................

..............................................................................................

2 उपर्युक्त उपभाग में आपने क्रांतिकारियों द्वारा 1857 में दिल्ली से जारी की गई जो घोषणा पढ़ी है उसके आधार पर भारतीय जनता की तीन मुख्य शिकायतों का वर्णन कीजिए।

..............................................................................................

..............................................................................................

..............................................................................................

..............................................................................................

## 3.4.2 मध्यम वर्गीय चेतना

19वीं शताब्दी में जन-आधारित लोकप्रिय आंदोलनों और विद्रोहों के अतिरिक्त शिक्षित भारतीय मध्यम वर्ग में एक नवीन चेतना का विकास हो रहा था। मध्यम वर्ग में जागृत इस चेतना ने ही लोकप्रिय असंतोष को एक निश्चित दिशा प्रदान की और राष्ट्रीय चेतना के विकास में एक महत्वपूर्ण कारक बना।

शिक्षित मध्यम वर्ग ने भारतीय समाज पर एक आलोचनात्मक दृष्टि डाली और इस जागरूक वर्ग ने उसमें सुधार करने के लिए अत्यधिक प्रयास किया। राजा राममोहन राय इसमें अग्रदूत बने। सामाजिक बुराइयों मे लड़ने के लिए उन्होंने 'ब्रह्म समाज' की स्थापना की। इसी प्रकार दयानन्द सरस्वती ने 'आर्य समाज' की और स्वामी विवेकानन्द ने 'राम कृष्ण मिशन' की स्थापना की। इनके अतिरिक्त इस युग में ऐसे कई और संगठन भी बने जिन्होंने कि सती प्रथा, छुआछूत और अन्य आडंबरों को दूर करने के लिए प्रयास किये। यद्यपि ये सुधार आंदोलन मुख्यतः समाज के मध्यम वर्गों तक सीमित थे परन्तु इस संबंध में भारतीय जनता के मध्य राष्ट्रीय स्तर पर एक सामाजिक चेतना जागृत करने में उन्होंने अत्यधिक ध्यान दिया और जनता में एक सामान्य संस्कृति से जुड़े होने की भावना को प्रबल किया।

सामाजिक चेतना के साथ-साथ राजनीतिक चेतना का भी विकास हो रहा था जैसे कि पहले जिक्र किया जा चुका है, भारतीय शिक्षित मध्य वर्ग भी जिसमें कि व्यापारी, वकील, अध्यापक, पत्रकार, डाक्टर आदि थे अंग्रेजी शासन के अंतर्गत कष्टों का सामना कर रहा था। किसानों और कामगारों की तुलना में यह वर्ग साम्राज्यवाद के उद्देश्यों और औपनिवेशिक शासन के स्वरूप को अधिक स्पष्टता से समझकर उनका विश्लेषण कर सकता था। प्रारंभ में इस वर्ग की यह धारणा थी कि संचार साधनों का विकास और रेल लाइन आदि भारतीयों के लिए लाभदायक साबित होंगे। इस धारणाा के कारण ही उन्होंने अंग्रेजी नीतियों का समर्थन किया था। लेकिन धीरे-धीरे उन्हें यह स्पष्ट होने लगा कि अंग्रेजों ने जो प्रशासनिक तरीके अपनाए थे वे वास्तव में अंग्रेजी शासन को सुदृढ़ बनाने के लिए अपनाए थे और उनकी आर्थिक नीतियाँ भी केवल अंग्रेजी व्यापारियों और पूंजीपतियों के हित के लिए ही थी, जैसे ही भारतीय मध्यम वर्ग को अंग्रेजी शासन के इस तथ्य की अनुभूति हुई उसने औपनिवेशिक शासन का विरोध प्रारंभ कर दिया, परन्तु किसानों, कामगारों और जन-जातियों ने जो विद्रोह का रास्ता अपनाया था उसे मध्यम वर्ग ने नहीं अपनाया। मध्यम वर्ग ने दो नवीन तरीके अपनाए:

1 इस वर्ग ने अंग्रेजी नीतियों की आलोचना करते हुए किताबें लिखीं, लेख लिखे और समाचार पत्रों के माध्यम से जनजागरण का प्रयास किया।

2 इस वर्ग द्वारा अपनाया गया दूसरा तरीका विभिन्न संगठनों और समितियों की स्थापना थी, जिनके द्वारा समान कार्यक्रम बनाया जा सके।

आइये हम पहले साहित्यिक क्षेत्र में किये गये मध्यम वर्ग के कार्यों की विवेचना करें। यह चर्चा हम पहले ही कर चुके हैं कि किस प्रकार छापाखाना के आने से विचारों के आदान-प्रदान को सहयोग मिला था। राजा राममोहन राय ने इस क्षेत्र में भी अग्रदूत का कार्य किया। उन्होंने बंगला भाषा में एक पत्रिका **संबाद कौमुदी** प्रकाशित करनी प्रारंभ की जिसमें कि विभिन्न विषयों पर लेख लिखे जाते थे, दीन बंधु मित्र ने **बंगला भाषा में नील दर्पण** नामक नाटक लिखे। जिसमें कि नील की खेती करने वाले किसानों के कष्टों का जिक्र था, बंकिम चन्द्र ने **आनंद मठ** लिखा। जो राष्ट्रीय भावना से प्रेरित था।

इसी प्रकार उर्दू की शायरी और लेखन में भी भारतीय जनता की गिरती हुई दशा का जिक्र हुआ और इस बात को भी उठाया गया कि किस प्रकार से परंपरागत भारतीय नगरों का पतन हो रहा था। मराठी, हिंदी और तमिल में भी इन्हीं विषयों पर लेख प्रकाशित हुए। अंग्रेजी के अतिरिक्त विभिन्न भाषाओं में भी समाचार पत्रों का प्रकाशन प्रारंभ हुआ। उस समय के कुछ प्रमुख समाचार पत्र जिन्होंने कि राष्ट्रीय चेतना में योगदान दिया, निम्नलिखित थे:

- बंगाल में हिन्दु पैट्रीएट, **अमृता बाजार पत्रिका**, **बंगाली** और **संजीवनी**
- बंबई में **मराठा**, **केसरी** और **नेटिव ओपीनियन**
- मद्रास में **हिंदु**, **आंध्र पत्रिका** और **केरल पत्रिका**
- संयुक्त प्रांत में **हिन्दुस्तान** और **आजाद**
- पजाब में **ट्रिब्यून** और **अखबार-ऐ-आम** आदि

1877 तक देशी भाषाओं में प्रकाशित होने वाले समाचार पत्रों की संख्या 169 हो गई थी इसके साथ-साथ कई महान साहित्यकार भी उभरकर सामने आये जिनकी कलम ने राष्ट्रीय चेतना को एक नवीन रूप दिया। इन साहित्यकारों में बंकिम चन्द्र चटर्जी, रविन्द्र नाथ ठाकुर, सुब्रह्मण्यम भारती, भारतेन्दु हरिश्चन्द्र, अलताफ हुसैन हॉली और विष्णु शास्त्री चिपलुकर आदि प्रमुख थे।

मध्यम वर्ग द्वारा अपनाया गया दूसरा रास्ता विभिन्न संगठनों और समितियों की स्थापना थी, इनमें से कुछ प्रमुख प्रारंभिक संगठन थे:

बंगाल में : लैंड होल्डर सोसायटी (1838)
बंगाल इंडिया सोसायटी (1843)
ब्रिटिश इंडिया एसोसिएशन (1851)

महाराष्ट्र में : बौम्बे ऐसोसिएशन (1852)
डेकेन एसोसिएशन (1852) आदि

मद्रास में : मद्रास नेटिव एसोसिएशन

इन संगठनों का प्रमुख उद्देश्य ऐसी अंग्रेजी नीतियों का संयुक्त रूप से विरोध करना था जो कि उनके स्वार्थों पर आघात करती थीं परन्तु विरोध का तरीका पूर्णतः सवैंधानिक था, जैसे कि कचहरी में अर्जी देना, सरकार को अर्जी देना या अंग्रेजी संसद से अपील करना। वे यह चाहते थे कि 1853 के कंपनी चार्टर के अंतर्गत व्यापक सुधार लागू किया जाए परन्तु यह चार्टर उनकी मांगों को संतुष्ट करने में असफल रहा।

1858 में भारतीय प्रशासन का उत्तरदायित्व अंग्रेजी राज ने सीधे अपने हाथ में ले लिया जिससे भारत के मध्यम वर्ग में नयी आशा जागृत हुई। उन्होंने यह सोचा कि अंग्रेज भारत का आर्थिक शोषण बन्द करके भारतीयों के कल्याण हेतु कार्य करेंगे परन्तु शीघ्र ही उन्हें यह अनुभव हुआ कि भारतीयों का शोषण तो जब भी बरकरार है। अतः मध्यम वर्ग की राजनीतिक गतिविधि तीव्र हो उठी और नये संगठनों की स्थापना की गई। भारतीयों ने इंगलैंड में लंदन इंडिया एसोसिएशन की स्थापना की और 1866 में उसे ईस्ट इंडिया एसोसिएशन में मिला दिया गया। 1870 में महाराष्ट्र में पूना सार्वजनिक सभा का गठन किया गया, बंगाल में इंडियन एसोसिएशन (1876) और इंडियन नेशनल कांफ्रेंस (1883) का गठन किया गया और मद्रास में मद्रास महाजन सभा का गठन किया गया।

यदि हम प्रारंभिक संगठनों से इन संगठनों की तुलना करें तो यह संगठन निसंदेह राजनीतिक उद्देश्यों से प्रेरित था। इनका मुख्य उद्देश्य अंग्रेजी नीतियों के विरूद्ध प्रस्तावों और अपीलों के द्वारा विरोध करना था। जन-जागृति उत्पन्न करने के लिए इन्होंने सार्वजनिक सभाओं का रास्ता अपनाया इन सभाओं में राष्ट्रीय मुद्दों पर भी बहस होती थी और विचारों का आदान-प्रदान किया जाता था। वास्तव में इन संगठनों ने ही भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस की स्थापना (1885) की भूमिका तैयार की थी। भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस के संदर्भ में आप खंड-2 में अलग से पढ़ेंगे।

इसी समय अंग्रेजी सरकार ने कुछ दमनकारी कानून भी पारित किये, जैसे कि वर्नाकुलर प्रेस एक्ट और भारतीय प्रशासनिक सेवाओं के लिए आयु का कम किया जाना। इस प्रकार के कानून वाइसराय लार्ड लिटन के काल में (1876-80) बनाये गये थे। इनके बारे में भी आगे चर्चा की जाएगी। यहाँ हम केवल इतना उल्लेख करना आवश्यक समझते हैं कि भारतीयों पर इस प्रकार के दमनकारी कानूनों की तीव्र प्रक्रिया हुई थी। बंगाल के प्रमुख समाचार पत्र **बंगाली** ने लिखा (12 जून, 1980)

> लार्ड लिटन को इस बात का श्रेय दिया जाना चाहिए कि अपने दमनकारी तरीकों के द्वारा उसने इस देश की जनता में जोश भर दिया और उसके लिए हमारे देश को उसका आभारी होना चाहिए।

**बोध प्रश्न 4**

1 1857 के उपरांत शिक्षित भारतीय मध्यम वर्ग के अंग्रेजों से निराश होने के क्या कारण थे?

..............................................................................................

..............................................................................................

..............................................................................................

..............................................................................................

2 अखबारों और पत्रिकाओं ने राष्ट्रीय चेतना के विकास में किस प्रकार योगदान दिया?

..............................................................................................

..............................................................................................

..............................................................................................

..............................................................................................

3 विभिन्न संगठनों की स्थापना ने राष्ट्रीय चेतना के विकास में क्या सहयोग दिया?

..............................................................................................

..............................................................................................

..............................................................................................

..............................................................................................

## 3.5 सारांश

इस इकाई में आपने इस बात का अध्ययन किया कि अंग्रेजी शासन के दौरान किस प्रकार भारत में धीरे-धीरे राजनीतिक चेतना का विकास हुआ। वास्तव में इस चेतना का विकास अंग्रेजों द्वारा अपनाई गई नीतियों का परिणाम था। जहाँ एक ओर जनता में विभिन्न क्षेत्रों में हो रहे लोकप्रिय आंदोलनों ने राष्ट्रीय चेतना को सशक्त किया वहाँ दूसरी ओर मध्यम वर्ग ने नवीन तरीका अपनाकर इस चेतना को एक नवीन दिशा प्रदान की जो राष्ट्रीय आंदोलन के प्रारंभ किये जाने में अत्यधिक सहायक थे।

## 3.6 शब्दावली

**बौद्धिक जागरण:** रूढ़िवादी विचारधारा में परिवर्तन के लिए किया गया प्रयास। 19वीं शती में भारतीय बुद्धिजीवियों द्वारा पुराने विचारों के स्थान पर नये विचारों के फैलाने का प्रयास जिससे समाज की प्रगति संभव हो।

**राष्ट्रीय चेतना:** किसी राष्ट्र के इतिहास में परिवर्तन का वह काल जब राष्ट्रीय नेताओं तथा शिक्षा के द्वारा लोगों में राष्ट्र की उन्नति की बात फैली हो।

**रंगभेद:** अंग्रेजी शासन के दौरान अंग्रेजों द्वारा रंग (वर्ण) के आधार पर अपनाई गई वह नीति जिसमें भारतीयों को नीचा समझा गया तथा उन्हें सामाजिक एवं न्यायिक अधिकारों से वंचित रखा गया।

## 3.7 बोध प्रश्नों के उत्तर

**बोध प्रश्न 1**

1 अंग्रेजी नीतियों ने कृषि और कुटीर उद्योगों में उत्पादन प्रक्रिया को बुरी तरह प्रभावित किया। विस्तृत रूप से अपने उत्तर के लिए देखें भाग 3.2.1 और 3.2.2

2 किसान
कामगार

3 प्रारंभिक वर्षों में संयुक्त रूप से भारतीय अंग्रेजों के प्रति अपने विरोध को एक निश्चित दिशा प्रदान करने में इसलिए असफल रहे कि देश का विस्तृत क्षेत्र होने के कारण लोगों में परस्पर विचारों का आदान-प्रदान सुगम नहीं था और यातायात के साधन पिछड़े हुए थे।

**बोध प्रश्न 2**

1 i) अंग्रेजों ने रेल लाइनें इसलिए बिछाई थी कि वह कच्चेमाल के यातायात को कम कीमत पर और शीघ्रता के साथ प्राप्त कर सकें।

ii) छापाखाने के विकास के कारण साहित्य सस्ते दामों पर प्रकाशित होने लगा था।

iii) भारतीयों को अंग्रेजी शिक्षा दिये जाने के पीछे मुख्य उद्देश्य निम्न श्रेणी की सरकारी नौकरियों में भर्ती किया जाना था।

2 (iii), (iv), (v)

3 i) गलत ii) गलत iii) सही iv) सही

**बोध प्रश्न 3**

1 प्रारंभिक किसान और जनजातीय विद्रोह एकाएक ही उठ खड़े होते थे और इनमें अधिकांशतः संगठन का अभाव था, उत्तर को अपने शब्दों में लिखने के लिए एक बार पुनः उपभाग 3.4.1 पढ़ें।

2 i) भू-राजस्व में वृद्धि

ii) चुंगी और चौकीदारी टैक्स में वृद्धि जिससे कि व्यापारियों को हानि हुई।

iii) सम्मानित व्यक्तियों का बेरोजगार होना और समाज में महत्व खोना।

**बोध प्रश्न 4**

1 1857 से पूर्व भारतीय मध्यम वर्ग यह समझता था कि अंग्रेजी शासन भारत को आधुनिकीकरण की ओर ले जाएगा जिससे कि भारतीयों का भला होगा परन्तु 1857 के बाद भी अंग्रेजों की दमनकारी नीतियाँ बढ़ती ही चली गई और जनता को किसी भी प्रकार के अधिकार प्राप्त नहीं थे। एक बार पुनः उपभाग 3.4.2 पढ़ें।

2 उपभाग 3.4.2 पढ़ें और उसके आधार पर अपना उत्तर लिखें।

3 विभिन्न संगठनों की स्थापना के लिए भारतीयों को संयुक्त रूप से अंग्रेजी नीतियों का विरोध करने का एक अवसर मिला। इसके द्वारा जनता में निहित असंतोष को एक निश्चित दिशा प्रदान की गई जो कि राष्ट्रीय स्तर पर भारतीयों के हितों की रक्षा से संबंधित थी और इन संगठनों ने राष्ट्रीय चेतना के विकास में भी महत्वपूर्ण भूमिका निभाई।

# इकाई 4 1857 का विद्रोह

## इकाई की रूपरेखा


4.0 उद्देश्य
4.1 प्रस्तावना
4.2 कारण
4.2.1 कृषकों का शोषण
4.2.2 मध्य तथा उच्च वर्ग भारतीयों का अलगाव
4.2.3 रियासतों का विलय
4.2.4 अंग्रेजी शासन का विदेशीपन
4.2.5 सिपाहियों पर प्रभाव
4.2.6 धर्म को खतरा
4.2.7 तात्कालिक कारण
4.3 संगठन
4.4 विद्रोह
4.5 नेतृत्व
4.6 पराजय
4.7 विफलता के कारण
4.7.1 एकरूप आदर्श का अभाव
4.7.2 भारतीयों में एकता का अभाव
4.7.3 शिक्षित भारतीयों के सहयोग का अभाव
4.7.4 नेताओं में फूट
4.7.5 अंग्रेजों की सैनिक श्रेष्ठता
4.8 प्रभाव
4.8.1 सत्ता का हस्तांतरण
4.8.2 सैनिक संगठन में परिवर्तन
4.8.3 फूट डालो और शासन करो
4.8.4 रियासतों के प्रति नई नीति
4.8.5 नये मित्रों की खोज
4.9 मूल्यांकन
4.10 सारांश
4.11 शब्दावली
4.12 बोध प्रश्नों के उत्तर


## 4.0 उद्देश्य

पहले की इकाइयों में आपने साम्राज्यवाद तथा उपनिवेशवाद के विभिन्न पहलुओं की जानकारी प्राप्त की है। आप जानते हैं कि देश पर अपने शासन काल के दौरान ईस्ट इंडिया कंपनी ने भारतीय जनता को शोषित तथा उत्पीड़ित किया। यद्यपि समय-समय पर भारतीय जनता के विभिन्न वर्गों ने अंग्रेजी हुकूमत का विरोध किया किंतु यह 1857 का महान् जागरण था जिसने अखिल भारतीय स्तर पर अंग्रेजी हुकूमत को जबरदस्त चुनौती दी, जिसे बहुधा प्रथम स्वाधीनता संग्राम कहा जाता है। इस इकाई को पढ़ने के बाद आप:

- 1857 के विद्रोह के कारणों का सुराग पा सकते हैं।
- विभिन्न घटनाओं तथा संघर्षों तथा विभिन्न वर्गों और उनके नेताओं की भूमिका के विषय में जान सकते हैं।
- उन क्षेत्रों का पता लगा सकते हैं जहाँ 1857 के विद्रोह में अंग्रेजी प्रभुसत्ता को सबसे गंभीर चुनौती मिली।
- उन कारणों का पता लगा सकते हैं जिनसे यह विद्रोह विफल रहा।
- इस प्रभाव को समझ सकते हैं और विद्रोह की प्रकृति के बारे में राय बना सकते हैं।

## 4.1 प्रस्तावना

1857 का विद्रोह ब्रिटिश शासन से भारतीय जनता की मुक्ति के संघर्ष के इतिहास में सबसे महत्वपूर्ण अध्यायों में से एक है। इसने भारत में ब्रिटिश साम्राज्य की नींव हिला दी और कई बार तो ऐसा लगने लगा कि भारतवर्ष में ब्रिटिश साम्राज्य का अंत हो जाएगा। यद्यपि यह एक महज सिपाही विद्रोह के रूप में शुरू हुआ था किंतु शीघ्र ही इसने उत्तर भारत के विस्तृत

क्षेत्र की जनता एवं कृषक वर्ग को भी शामिल कर लिया। इस विद्रोह ने इतना व्यापक रूप लिया कि उस समय के कुछ पर्यवेक्षकों ने इसे राष्ट्रीय विद्रोह की संज्ञा दी। फिरंगियों के प्रति घृणा का भाव इतना तीव्र एवं तीखा था कि एक पर्यवेक्षक डब्लू॰ एच॰ रसेल को बाध्य होकर लिखना पड़ा :

"गोरे लोगों की गाड़ी की ओर कोई दोस्ताना नजर से नहीं देखता....... ओह! उन आंखों की भाषा! कौन संदेह कर सकता है? कौन गलत समझ सकता है? सिर्फ इसी से मैंने जाना कि गोरे लोगों से न सिर्फ लोगों में खौफ है बल्कि सभी इससे घृणा भी करते हैं।"

इस इकाई में हम आपको इस महान् विद्रोह के विभिन्न पहलुओं से परिचित कराएंगें।

## 4.2 कारण

यह विद्रोह कैसे भड़का? इसके कारण क्या थे?

इसका मुख्य कारण अंग्रेजों द्वारा भारतीय जनता का अमानवीय शोषण था। ब्रिटिश शासन जिसका प्रारंभ विधिवत् रूप से 1757 में प्लासी युद्ध के बाद बंगाल में हुआ था, भारतीयों का शोषण कर ईस्ट इंडिया कंपनी का खजाना भरता रहा। ईस्ट इंडिया कंपनी सौदागरों और व्यापारियों द्वारा शासित थी जो स्वयं को समृद्ध करने के लिए किसी भी हद तक जा सकते थे। कंपनी सन् 1600 ई॰ में बनी और इसे महारानी एलिजाबेथ ने राजसी अधिकार पत्र दिया जिससे इसे पूर्व से व्यापार करने की विशेष सुविधा प्रदान की गयी। इनका मुख्य उद्देश्य भारत में व्यापार क्षेत्र में एकाधिकार प्राप्त करना था। यह व्यापार करने वाली कोई साधारण कंपनी नहीं थी बल्कि इसके पास प्रशिक्षित सैनिक थे जिन्होंने पुर्तगाली तथा फ्रांसीसी व्यापारिक कंपनियों से 17वीं और 18वीं शताब्दियों में एकाधिकार प्राप्त करने के लिए लड़ाइयाँ लड़ी थीं। इन प्रतिद्वंद्वी शक्तियों को पराजित करने के पश्चात इन्होंने भारतीय व्यापारियों को, जो इनसे टक्कर ले रहे थे, परास्त कर दिया। 1757 में प्लासी युद्ध जीतने के बाद उन्होंने अपने अधिकार क्षेत्र में अपने व्यापारिक नीति को सफलतापूर्वक लागू कर दिया तथा भारतीय व्यापारियों की प्रतिद्वंद्विता को भी पूरी तरह समाप्त कर दिया, उन्होंने भारतीय कारीगरों पर दबाव डाला। कारीगरों के उत्पादन को ऐसे मूल्यों पर बेचने के लिए बाध्य किया जो उनके लिए बिल्कुल अलाभकारी थे। कारीगरों को अब इतनी कम मजदूरी मिलती थी कि वे मुश्किल से गुजारा कर पाते थे। किंवदंती तो यह है कि ईस्ट इंटिया कंपनी द्वारा इतनी कम मजदूरी देने के विरोध में ढाका के बुनकरों ने, जो मलमल की बारीक बुनाई के लिए मशहूर थे, अपने अंगूठे काट लिए।

### 4.2.1 कृषकों का शोषण

यद्यपि व्यापार क्षेत्र में एकाधिकार से ईस्ट इंडिया कंपनी काफी समृद्ध हो गयी तथापि इनके आय का मुख्य स्रोत भूमि ही था। बंगाल में स्वयं को स्थापित करने के पश्चात इसने भारतवर्ष में अपनी शक्ति, युद्ध तथा संधियों के जरिए बढ़ायी। पैसा उगाहने के लिए जहाँ तक संभव हुआ भूमि व्यवस्था के नए उपाय निकाले। स्थाई, रैयतवारी, और महलवारी एक से बढ़कर एक दमनकारी। स्थायी भूमि व्यवस्था में जो बंगाल प्रेसीडेंसी तथा उत्तर भारत के बड़े हिस्से में लागू थी, कृषकों को भूमि पर वंशानुगत स्वामित्व अधिकार नहीं दिया गया जो उन्हें पहले प्राप्त था। राजभक्त जमींदार तथा राजस्व समाहर्त्ता को अब भूमि का स्वामित्व अधिकार दे दिया गया। कृषकों की हैसियत घटकर एक सामान्य काश्तकार की सी हो गयी। परन्तु नए भू-स्वामियों को भी पूर्ण अधिकार नहीं दिया गया। उनकी स्थिति को जानबूझकर अधर में लटकाए रखा गया। कृषकों से प्राप्त लगान में से 10/11 वाँ हिस्सा उन्हें कंपनी को देना पड़ता था ऐसा नहीं कर पाने पर उनकी सम्पत्ति को दूसरों के हाथ बेच दिया जाता था।

अन्य भूमि व्यवस्था भी कोई बेहतर नहीं थी। हर स्थिति मे इन कृषकों को अपनी हैसियत से ज्यादा लगान भरना पड़ता था और अगर कभी कोई प्राकृतिक विपदा जैसे—सूखा व बाढ़ हुई तो उन्हें बाध्य होकर महाजनों से कर्ज लेना पड़ता था जो उनसे अत्यधिक सूद लेते थे। इससे खेतिहर कर्ज के बोझ से इतना ज्यादा दब जाते थे कि उन्हें बाध्य होकर अपनी भूमि इन महाजनों के हाथ बेच देनी पड़ती थी। यही कारण है कि ग्रामीण समाज में ये महाजन बहुत अधिक घृणा से देखे जाते थे। प्रशासन के निम्नस्तरीय अधिकारी भी कृषकों पर अत्याचार करते थे और छोटा से छोटा बहाना बनाकर इनसे पैसा ऐंठ लेते थे। अगर ये खेतिहर न्याय की भिक्षा माँगने के लिए न्यायालय का दरवाजा खटखटाते थे तो उनकी पूर्ण बरबादी अवश्यम्भावी थी। जब फसल अच्छी होती थी तो खेतिहरों को पुराना कर्ज चुकाना होता था, और जब खराब होती तो कर्ज़ का बोझ दुगना हो जाता था। अधीनस्थ कर्मचारियों, न्यायालयों तथा महाजनों के बीच इस गठबंधन से ऐसी स्थिति पैदा हो गयी जिससे कृषक व्यग्र हो उठे और सत्ता को उखाड़ फेंकने के लिए किसी भी अवसर का स्वागत करने को तैयार हो गए।

### 4.2.2 मध्य तथा उच्च स्तरीय भारतीयों का अलगाव

महज कृषक वर्ग ही नहीं बल्कि उच्च तथा मध्य स्तरीय भारतीय भी अंग्रेजी शासन से असंतुष्ट थे। मुगल या यहाँ तक कि स्थानीय रियासतों और प्रधानों के शासन की अवधि में भारतीय हर स्तर—उच्च तथा निम्न पद पर कार्य करते थे। अब अंग्रेजी प्रशासन में भारतीय सिर्फ अधीनस्थ तथा अन्य निम्न स्तर के पद पर ही काम कर सकते थे। यहाँ तक कि प्रखर बद्धि व क्षमता के भारतीयों को भी औसत या उससे भी निम्न बुद्धि वाले उन ब्रिटिश अधिकारियों के अधीन काम करना पड़ता था जो सिर्फ अंग्रेज होने के नाते उच्च पदों के हकदार हो गए थे, फिर संस्कृति तथा कला के क्षेत्र में—कवि, नाटककार, लेखक तथा संगीतकार आदि जिन्हें देशी राज्यों में नियुक्त किया जाता था, उन्हें निकाल बाहर किया गया। धर्म के प्रतिनिधि जैसे पंडित और मौलवी भी अपनी पुरानी साख और प्रतिष्ठा खो बैठे।

### 4.2.3 रियासतों का विलय

ईस्ट इंडिया कंपनी ने अपने सहयोगियों को भी नहीं बख्शा। 1856 में नवाब वाजिद अली शाह के कुप्रशासन के बहाने अवध का देशी राज्य भी डलहौजी ने अंग्रेजी शासन में मिला लिया। इसके पहले 1848 में सतारा और 1854 में नागपुर तथा झांसी को इस बहाने मिला लिया था कि उनका कोई वंशानुगत उत्तराधिकारी नहीं था। इस विलय से इन राज्यों के शासक इतने क्षुब्ध हो उठे कि झांसी की रानी और अवध की बेगम अंग्रेजों के कट्टर दुश्मन बन गए। स्थिति और बदतर हो गयी जब अंग्रेजों ने नाना साहेब को जो पेशवा बाजीराव द्वितीय के दत्तक पुत्र थे पेंशन देने से इंकार कर दिया। अवध के विलय से सिपाहियों में भी रोष था क्योंकि अधिकांश सिपाही अवध के ही निवासी थे। इस कार्रवाई से उनके देश प्रेम और गौरव को ठेस पहुँची। इसके अतिरिक्त चूँकि उनके रिश्तेदारों को अब भूमि-कर ज्यादा देना पड़ता था इससे सिपाहियों की आमदनी पर भी बुरा प्रभाव पड़ा।

### 4.2.4 अंग्रेजी शासन का विदेशीपन

ब्रिटिश शासन की अलोकप्रियता का दूसरा कारण था उनका परायापन। वे भारतीयों से कभी भी मेल-जोल नहीं बढ़ाते थे, यहाँ तक कि उच्च वर्ग के भारतीयों का भी वे तिरस्कार करते थे। वे भारतवर्ष में बसने नहीं आए थे बल्कि सिर्फ यहाँ से पैसा घर ले जाने आए थे। इस कारण भारतीय कभी भी उनके प्रति घनिष्ठता नहीं बढ़ा पाए।

### 4.2.5 सिपाहियों पर प्रभाव

1857 की शुरूआत् सिपाही विद्रोह से हुई थी। ये सिपाही मुख्यतः उत्तर और उत्तर-पश्चिम भारत के कृषक वर्ग से आये थे। जैसा कि हमने देखा है, ईस्ट इंडिया कंपनी की शोषक नीतियों से कृषक वर्ग गरीबी तथा बरबादी की ओर अग्रसर हो रहा था। इसका प्रभाव सिपाहियों पर भी पड़ा। वस्तुतः इनमें से अधिकांश कृषि से प्राप्त आय की कमी को दूर करने के लिए सेना में भरती हुए थे जैसे-जैसे समय बीतता गया उन्होंने अनुभव किया कि ऐसा कर पाना उनके वश में नहीं है। उनको 7 से 8 रुपये का मासिक वेतन प्राप्त होता था जिसमें से उन्हें अपने भोजन, वर्दी तथा व्यक्तिगत सामानों के वहन के लिए भी चुकाना पड़ता था। एक भारतीय सिपाही का निर्वाह व्यय भारत में ब्रिटिश सिपाही पर आने वाले व्यय से एक तिहाई था। उसके अलावा भारतीय सिपाहियों के साथ ब्रिटिश अधिकारी अभद्र व्यवहार करते थे। उन्हें हमेशा गाली दी जाती थी और अपमानित किया जाता था। भारतीय जवान अपनी बहादुरी और महान् युद्ध सामर्थ्य के बावजूद सूबेदार के पद से ऊपर नहीं जा पाते थे जबकि इंग्लैंड का एक नव-नियुक्त सैनिक सीधा पदोन्नति पा जाता था।

### 4.2.6 धर्म को खतरा

सेना सुविधाओं में आई गिरावट के अतिरिक्त एक और कारण भी था जिससे सिपाही बगावत पर उतर आए। उनको ऐसा लगने लगा कि ब्रिटिश शासन द्वारा उनके धर्म पर हमला हो रहा है। ऐसा संदेह आम जनता में भी पैदा हो रहा था। मिशनरियों के धर्मपरिवर्तन के रवैये तथा कुछ ब्रिटिश अधिकारियों ने लोगों के मन में यह डर पैदा कर दिया कि उनका धर्म खतरे में है। कई स्थानों से ईसाई धर्म में परिवर्तन के समाचार मिले। सरकार चर्च को अपने खर्च से चलाती थी और कई जगह मिशनरियों को पुलिस सुरक्षा भी प्रदान करती थी। इसके बाद सिपाहियों को अपनी जाति चिह्न (तिलक आदि) लगाने पर पाबंदी लगा दी गयी और 1856 में एक ऐक्ट पास हुआ जिसके तहत नए भर्ती होने वाले जवानों को आवश्यकता पड़ने पर विदेश में भी सेवा करने की शपथ लेनी पड़ती थी। इन सबसे सिपाहियों की रूढ़िवादी मान्यताएँ हिल उठीं और उन्होंने कई बार इन नीतियों के विरूद्ध जोरदार प्रतिक्रिया व्यक्त की। जैसे उदाहरण के लिए 1824 में जवानों के 40 वें रेजिमेंट ने जो बैरकपुर में था, समुद्री रास्ते से बर्मा जाने से इंकार कर दिया क्योंकि उनका धर्म उन्हें समुद्र को पार करने की अनुमति नहीं देता था उसके जवाब में अंग्रेजों ने काफी बेरहमी दिखाई, रेजिमेंट को विघटित कर दिया तथा कुछ नेताओं को मौत के घाट उतार दिया।

1844 में सात बटालियनों ने वेतन और भत्ते के प्रश्न पर विद्रोह कर दिया। यहाँ तक कि 1837-1842 के अफगान युद्ध के समय सैनिक एकदम विद्रोह पर उतर आये थे।

सिपाहियों की तरह भारत की आम जनता भी अंग्रेजों के दमनकारी शासन के विरुद्ध विद्रोह पर उतर आई। इनमें से कच्छ (1816-32), कोल (1831) तथा संथालियों (1855-56) के विद्रोह प्रमुख हैं। परन्तु 1857 के विद्रोह की विशेषता यह थी कि यह सैनिक तथा आम जनता का मिला जुला विद्रोह था। दोनों के परस्पर सहयोग ने इस विद्रोह को अत्यंत शक्तिशाली बना दिया।

### 4.2.7 तात्कालिक कारण

वातावरण इतना उत्तेजनापूर्ण था कि छोटी सी वजह भी विद्रोह का कारण बन सकती थी। ग्रीज लगे कारतूस का प्रसंग अपने आप में इतना गंभीर कारण था कि यह कारण अकेला ही विद्रोह की शुरूआत् कर सकता था। यह सूखी लकड़ियों के ढेर के समान था जिसे आग लगाने के लिए चिंगारी की आवश्यकता थी। नए एनफिल्ड राइफल की कारतूसें जिन्हें सेना में तुरंत लाया गया था उनको ढकने के लिए ग्रीज लगा पेपर होता था जिसे रायफल में भरने से पहले दाँत से काटना पड़ता था। कई बार ग्रीज गाय व सूअर की चर्बी से बना होता था। इससे हिन्दू और मुस्लिम सिपाही क्रुद्ध हो उठे और उन्हें विश्वास हो गया कि सरकार जानबूझकर उनके धर्म को नष्ट करना चाहती है। यही इस विद्रोह का तात्कालिक कारण बना।

اشتہار

1 नए कारतूसों का जिक्र करते हुए नाना साहब का घोषणा पत्र

## 4.3 संगठन

अंग्रेजों के विरूद्ध विद्रोहियों ने किस तरह का बनाया? इस प्रश्न पर इतिहासकारों में काफी मतभेद है। एक मत यह है कि यह एक विस्तृत और सुसंगठित षडयंत्र था जबकि दूसरा मत यह है कि यह पूर्ण रूप से स्वतः स्फूर्त था। सच तो ये प्रतीत होता है कि विद्रोह के समय किसी न किसी तरह की सुसंगठित योजना तो जरूर थी परन्तु यह पूर्णतया परिपक्व नहीं हुआ था।

चूँकि विद्रोहियों ने छिपे तौर पर सब कुछ नियोजित किया था इसलिए उन्होंने इस गुप्त संगठन की प्रकृति, कार्य तथा ढाँचे का कोई लेखा-जोखा नहीं रखा था। परन्तु जो कहानियाँ हमारे सामने आयी हैं उनसे पता चलता है कि लाल कमलों तथा चपातियों को जो क्रमशः स्वतंत्रता तथा रोटी के प्रतीक थे, एक गाँव से दूसरे गाँव तथा एक रेजिमेंट से दूसरे रेजिमेंट तक पहुँचाया जाता था। इसके अलावा भाषण भी दिए जाते थे तथा भ्रमणकारी संन्यासियों तथा फकीरों ने उपदेशों के जरिए लोगों को उपनिवेशवादी ताकतों के खिलाफ खड़ा किया। इन सब ने सिपाहियों को विद्रोह के लिए तैयार करने में सहायता की।

## 4.4 विद्रोह

27 मार्च 1857 को बैरकपुर में तैनात एक युवा सैनिक मंगल पांडे ने अकेले ही ब्रिटिश अधिकारियों पर हमला करके बगावत कर दी। उसे फाँसी पर लटका दिया गया और इस घटना पर ज्यादा ध्यान नहीं दिया गया। परन्तु इससे सिपाहियों में फैले असंतोष तथा क्रोध का पता चल गया। इस घटना के एक महीने के अंदर 24 अप्रैल को मेरठ में तैनात देशी घुड़सवार सेना के नब्बे लोगों ने चर्बी लगे कारतूसों को इस्तेमाल करने से इंकार कर दिया। उनमें से 85 को बरखास्त कर दिया गया। तथा 9 मई को 10 साल के लिए जेल की सजा दे दी गई। इस पर शेष भारतीय सिपाहियों में जोरदार प्रतिक्रिया हुई और अगले

दिन 10 मई को मेरठ में तैनात पूरी भारतीय फौज ने विद्रोह कर दिया। अपने साथियों को मुक्त कराकर तथा ब्रिटिश अधिकारियों को मार कर उन्होंने दिल्ली की ओर कूच करने का निर्णय लिया। इससे पता चलता है कि उनके दिमाग में ब्रिटिश शासन का कोई न कोई विकल्प था।

दूसरी बात जिससे यह साफ पता चलता है कि यह एक महज सिपाही विद्रोह ही नहीं था वह यह कि लोगों ने जैसे ही सिपाहियों के अधिकारियों पर गोली चलाने की आवाज सुनी, आस-पास के सैनिक बाजारों को लूटना शुरू कर दिया और अंग्रेजों के बंगलों पर आक्रमण कर उन्हें जला डाला। आस-पास के गाँवों के गुर्जर शहर में घुस आये और विद्रोह में शामिल हो गए। दूरसंचार के तार काट दिए गए तथा घुड़सवारों को जो संदेश लेकर दिल्ली जाते थे, रोक दिया गया। जैसे ही मेरठ के सैनिक दिल्ली पहुँचे वहाँ भी भारतीय सेना ने बगावत कर दी और विद्रोहियों में शामिल हो गए। उन्होंने वृद्ध बहादुर शाह ज़फर को भारत का सम्राट घोषित कर दिया। इस प्रकार 24 घंटे के अंदर एक मामूली विद्रोह से शुरू होकर यह पूरे तौर पर राजनीति बगावत में परिवर्तित हो गया।

अगले एक महीने में बंगाल की पूरी फौज ने बगावत कर दी। सारा उत्तर तथा उत्तर पश्चिम भारत शस्त्र लेकर अंग्रेजों के विरूद्ध खड़ा हो गया। अलीगढ़, मैनपुरी, बुलंदशहर, इटावा, मथुरा, आगरा, लखनऊ, इलाहाबाद, बनारस, शाहाबाद, दानापुर तथा पूर्वी पंजाब जहाँ भी भारतीय सैनिक थे, उन्होंने विद्रोह कर दिया। सेना के विद्रोह करने से पुलिस तथा स्थानीय प्रशासन भी तितर-बितर हो गया। इसके तुरंत बाद शहर तथा गाँवों में विद्रोह शुरू हो गये। लेकिन कई स्थान ऐसे भी थे जहाँ के लोग सेना के विद्रोह से पहले ही बगावत कर चुके थे। जहाँ भी विद्रोह भड़का सरकारी खजाने को लूट लिया गया, गोले बारूद जब्त कर लिए गए, बैरकों और न्यायालयों को जला डाला गया और कारागार के दरवाजे खोल दिए गए। गाँवों में कृषकों तथा बेदखल किए गए जमींदारों ने महाजनों तथा नए जमींदारों पर जिन्होंने उन्हें बेदखल किया था, हमला कर दिया। उन्होंने सरकारी दस्तावेजों तथा महाजनों के बही खातों को नष्ट कर दिया। उन्होंने अंग्रेजों के बनाए न्यायालयों, राजस्व कार्यालयों, राजस्व दस्तावेजों तथा थानों को नष्ट कर दिया। इस तरह विद्रोहियों ने उपनिवेशवादी शासन के सभी चिह्नों को मिटाने का प्रयास किया।

जिन क्षेत्रों के लोगों ने बगावत में सक्रिय भाग नहीं लिया उन लोगों ने भी अपनी सहानुभूति विद्रोहियों को दी और उनकी सहायता की। ये कहा जाता था कि विद्रोही सिपाहियों को अपने साथ भोजन नहीं ढोना पड़ता था क्योंकि गाँव वाले उन्हें भोजन खिलाते थे। दूसरी तरफ ब्रिटिश फौजों के प्रति जनता का विद्वेष भी स्पष्ट था। उन्होंने उन्हें किसी भी तरह की सहायता अथवा सूचना देने से इंकार किया और कई अवसर पर उन्होंने ब्रिटिश फौजों को गलत सूचना देकर गुमराह भी किया।

मध्य भारत में भी जहाँ कि शासक ब्रिटिश शासन के प्रति वफादार थे, फौजों ने विद्रोह कर दिया। हजारों की संख्या में इंदौर सैन्यदल, इंदौर में विद्रोही सिपाहियों के साथ हो गए। इसी प्रकार से 20,000 से भी ज्यादा ग्वालियर की सैन्यदल तात्या टोपे तथा झाँसी की रानी के साथ चले गए। सारे उत्तर और मध्य भारत में ब्रिटिश शक्ति सिर्फ आगरा तथा लखनऊ तक ही सीमित हो गयी थी। अन्य जगह अंग्रेजी फौज तथा अंग्रेजी शासन ताश के पत्तों की तरह बिखर गए।

विद्रोह की सबसे ध्यान देने वाली बात हिन्दू-मुस्लिम एकता थी। मेरठ व दिल्ली के हिन्दू सिपाहियों ने एकमत होकर बहादुर शाह को सम्राट घोषित किया। सभी हिन्दू और मुस्लिम सिपाहियों ने सम्राट का आधिपत्य स्वीकार किया और विद्रोह के बाद "दिल्ली चलो" का आह्वान किया। हिन्दू और मुस्लिम ने साथ मिलकर लड़ाई लड़ी और साथ ही मरे। जहाँ भी सिपाही पहुँचते हिन्दू भावनाओं के प्रति आदर करते हुए गोहत्या पर प्रतिबंध लगा दिया जाता था।

**बोध प्रश्न 1**

1 कृषकों का शोषण कैसे और किस वर्ग द्वारा किया जाता था? दस पंक्तियों में लिखें।

..........................................................................................................

..........................................................................................................

..........................................................................................................

..........................................................................................................

..........................................................................................................

..........................................................................................................

..........................................................................................................

..........................................................................................................

..........................................................................................................

..........................................................................................................

2 नीचे लिखे वक्तव्यों को पढ़ें और सही ( √ ) या गलत ( × ) का चिह्न लगाएँ।

क) जमींदारों ने ब्रिटिश शासन के खिलाफ लड़ाई में कृषकों का साथ दिया।

ख) सिपाहियों ने ब्रिटिश शासन में अपने धर्म पर खतरे को अनुभव किया।

ग) मध्य व उच्च वर्गीय भारतीय, ब्रिटिश शासन से लाभान्वित थे।

घ) बहुत लम्बे समय से भारतीयों के अधिकतर वर्ग शोषित थे लेकिन ग्रीज लगे कारतूसों की घटना विद्रोह छिड़ने की तात्कालिक कारण बनी।

3 करीब पाँच पंक्तियों में लिखें कि बगावत कब, कहाँ और कैसे शुरू हुई?

..........................................................................................

..........................................................................................

..........................................................................................

..........................................................................................

..........................................................................................

## 4.5 नेतृत्व

विद्रोह की आँधी दिल्ली, कानपुर, लखनऊ, बरेली, झाँसी और आगरा में केंद्रित थी। प्रारंभिक तौर पर इन स्थानों के नेता पूरी तरह स्वतंत्र थे, इसके बावजूद आंदोलन के समय इन सभी ने बहादुर शाह का आधिपत्य स्वीकार किया।

2 ताँत्या टोपे

**बख्त खाँ**

दिल्ली में बहादुर शाह नेता थे। लेकिन वास्तविक अधिकार सिपाहियों के पास था। बख्त खाँ जिसने कि सिपाहियों के विद्रोह का बरेली में नेतृत्व किया था, 3 जुलाई 1857 को दिल्ली पहुँचा। उस तिथि से उसने वास्तविक अधिकार का संचालन प्रारंभ किया। उसने सिपाहियों के न्यायालय की स्थापना की जिसमें दोनों हिन्दू और मुस्लिम विद्रोही शामिल थे। परन्तु उससे पहले ही से सिपाहियों ने सम्राट के आदेशों के प्रति विशेष ध्यान नहीं दिया। बहादुर शाह ने सेना के अधिकारियों की उनके न्यायालय में बेढंगे वस्त्र में आने पर और शासन के प्रति उनके अनादर के प्रदर्शन के तरीकों की भर्त्सना की।

**नाना साहेब और ताँत्या टोपे**

कानपुर में नाना साहेब द्वारा विद्रोह का नेतृत्व किया गया जो कि पेशवा बाजीराव द्वितीय के दत्तक पुत्र थे। विद्रोही सिपाहियों ने भी नाना साहेब को सहयोग दिया और उनके नेतृत्व में सैनिक और नागरिक दोनों ने मिलकर युद्ध किया। उन्होंने अंग्रेजों को कानपुर से बाहर निकाल दिया और नाना साहेब को पेशवा घोषित किया जिन्होंने कि बहादुर शाह को भारत का सम्राट स्वीकारा। पर ज्यादातर लड़ाइयाँ ताँत्या टोपे के नेतृत्व में ही लड़ी गईं और वह एक महान् देशभक्त और ब्रिटिश विरोधी नेता के रूप में चर्चित रहे।

**अवध की बेगम**

लखनऊ में अवध की बेगम ने नेतृत्व प्रदान किया और अपने लड़के बिरजिस कदर को अवध का नवाब घोषित किया। लेकिन यहाँ भी सबसे प्रसिद्ध नेता हुए फैजाबाद के मौलवी अहमदुल्ला जिन्होंने विद्रोहियों को संगठित किया तथा अंग्रेजों के खिलाफ लड़ाई लड़ी।

**रानी लक्ष्मीबाई**

झाँसी की रानी लक्ष्मीबाई भी बहुत लोकप्रिय नेता थी। उनका यह विश्वास था कि हिन्दू कानून का उल्लंघन कर उनके शासन अधिकारों को छीना गया है। हालांकि वे आरंभिक अवस्था में हिचक रही थीं परन्तु एक बार विद्रोह में शामिल होने के बाद उन्होंने बहादुरी से युद्ध किया।

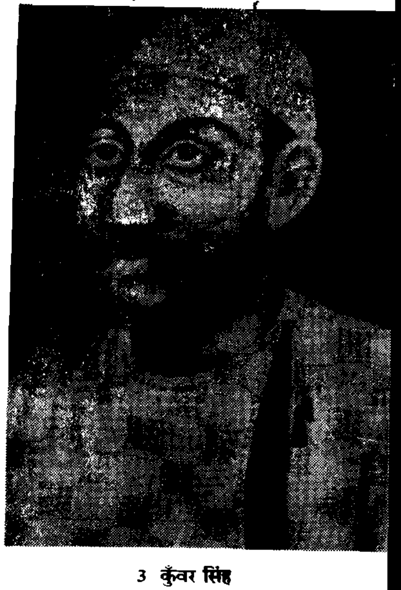

3 कुँवर सिंह

**कुँवर सिंह**

लेकिन सबसे ज्यादा लोकप्रिय और विशिष्ट नेता आरा के कुँवर सिंह थे। उनके नेतृत्व में सैनिक और नागरिक विद्रोह पूरी तरह मिल गये थे और अंग्रेज उनसे सबसे ज्यादा भयभीत रहते थे। युद्ध दल के करीब 5,000 जवानों के साथ जिनमें कि दानापुर के 600 सिपाही और रामगढ़ के विद्रोही भी शामिल थे, कुँवर सिंह ने मिर्जापुर, बांदा और कानपुर के क्षेत्रों में कूच किये। वे रेवा राज्य तक पहुँचे और यह सोचा गया कि जितनी जल्दी रेवा विद्रोहियों के हाथ आ जाएगी, ब्रिटिश बाध्य होकर दक्षिण की ओर जायेंगे। लेकिन, किसी कारणवश कुँवर सिंह दक्षिण दिशा की तरफ नहीं बढ़े। वे बांदा लौट आये और वहाँ से आरा वापस पहुँचे जहाँ कि उन्होंने ब्रिटिश दल को परास्त किया। वे गंभीर रूप से घायल हो गए और अपने पैतृक घर जगदीशपुर में 27 अप्रैल 1858 को उनकी मृत्यु हो गयी।

**अज्ञात शहीद**

अपनी वीरता और देश भक्ति के लिए याद किये जाने वाले इन नेताओं के अतिरिक्त, अनेक अज्ञात नेता सिपाहियों, कृषकों और छोटे-छोटे जमींदारों के बीच थे जो कि वीरता और शौर्य में किसी से कम नहीं थे। उन्होंने भी ब्रिटिश को भारत से बाहर निकालने के लिए अभूतपूर्व शौर्य के साथ युद्ध किया। कृषकों और सिपाहियों ने अपने धर्म और जाति के मतभेदों को भुलाकर और अपने संकीर्ण स्वार्थों से ऊपर उठकर देश की खातिर अपने जानों की कुर्बानी दी।

## 4.6 पराजय

अंग्रेजों ने 20 सितंबर 1857 को दिल्ली पर कब्जा किया। इससे पहले विद्रोहियों को कानपुर, आगरा, लखनऊ और कुछ अन्य जगहों पर मात खानी पड़ी। पर इन सब पराजयों से विद्रोहियों के जोश में कमी नहीं आई। लेकिन दिल्ली के पतन होते ही उन्हें गहरा आघात लगा। इससे अब स्पष्ट हो गया कि अंग्रेजों का ध्यान सबसे अधिक दिल्ली पर क्यों केन्द्रित था। और इसके लिए उन्हें काफी जन और माल की हानि उठानी पड़ी। बहादुर शाह को दिल्ली में कैद कर लिया गया और उसके राजकुमारों को पकड़कर कत्ल कर दिया गया।

4 बहादुर शाह जफर का समर्पण

एक के बाद एक सभी विद्रोही नेताओं की हार होती गई। नाना साहेब कानपुर में पराजित हुए और उसके बाद 1857 के शुरू में नेपाल भाग गए। उनके बारे में उसके बाद कुछ पता नहीं चला। तांत्या टोपे मध्य भारत के जंगलों में भाग गए। वहीं से गुरिल्ला युद्ध जारी रखा। अप्रैल 1857 में उनके एक जमींदार मित्र ने धोखे से सुप्तावस्था में उन्हें गिरफ्तार करवा दिया। उन पर शीघ्र मुकदमा चलाकर उन्हें 15 अप्रैल 1858 को फांसी दे दी गयी। झांसी की रानी 17 जून 1858 को लड़ाई के मैदान में मारी गयीं। 1859 तक कुँवरसिंह, बख्त खाँ, बरेली के खान बहादुर खान, मौलवी अहमदुल्ला सभी मर चुके थे जबकि अवध की बेगम नेपाल भाग गयीं थीं। 1859 के अंत तक, अंग्रेजों का भारत के ऊपर फिर से पूरी तरह और दृढ़ता से प्रभुत्व कायम हो गया।

5 अंग्रेजी फौजों द्वारा गांववालों को खदेड़ना

6 ताँत्या टोपे के हस्ताक्षर

## 4.7 विफलता के कारण

इस शक्तिशाली विद्रोह के पतन के कई कारण थे। इनमें से हम कुछ के बारे में आपको बताएंगे।

### 4.7.1 एकरूप विचारधारा एवं कार्यक्रम का अभाव

1857 के विद्रोह ने ब्रिटिश सरकार और शासन प्रणाली को कुछ समय के लिए उखाड़ फेंका, लेकिन विद्रोही यह नहीं जानते थे कि इसकी जगह पर क्या विकल्प होना चाहिए। उनके दिमाग में कोई भी दूरदर्शी योजना नहीं थी इस कारण उन्हें पुरानी सामन्त व्यवस्था की ओर देखना पड़ा। यह व्यवस्था इतनी जर्जरित हो चुकी थी और उसमें इतनी शक्ति भी नहीं रह गई थी जिससे कि अंग्रेजों का सामना कर पाए। इन शासकों की असफलता के कारण ही अंग्रेज सारे भारत को अधीन करने में सफल हो सके थे। इन लोगों पर भरोसा रखने के कारण विद्रोहियों को भारतीयों में एक नई चेतना जगाने में बाधा उपस्थित हुई। केवल राष्ट्रीय एकता ब्रिटिश शासन का सक्षम विकल्प बना सकती थी।

### 4.7.2 भारतीयों में एकता का अभाव

जैसा कि बताया जा चुका है कि भारतीयों में कोई व्यापक एकता नहीं बन पाई थी। यद्यपि बंगाल के सिपाहियों ने विद्रोह में भाग लिया था किंतु सिख तथा दक्षिण भारतीय सिपाही अंग्रेजों की ओर से विद्रोहियों का दमन कर रहे थे। इसके अतिरिक्त पूर्व एवं दक्षिण भारत के अधिकतर क्षेत्रों में कोई विद्रोह नहीं हुए। सिखों ने भी विद्रोहियों का साथ नहीं दिया। इन वर्गों के विद्रोह में भाग नहीं लेने के निजी कारण थे। मुगल शासन के पुनरूत्थान की संभावना से सिखों में भय उत्पन्न हो गया था। ये मुगलों के द्वारा बहुत सताए गए थे। इसी प्रकार राजस्थान के राजपूत राजाओं और हैदराबाद के निजाम मराठा शक्ति के पुनरूत्थान से आशंकित थे, मराठों ने इनके राज्यों में जा-जाकर लूटपाट मचायी थी। इसके अलावा, कृषकों के कुछ वर्गों ने जो ब्रिटिश शासन से लाभान्वित थे अंग्रेजों को विद्रोह के खिलाफ सहयोग दिया। बंगाल महाप्रांत के जमींदार, ब्रिटिश शासन के ही उपज थे और उनका सहयोग स्वाभाविक ही था। यही बात कलकत्ता, बंबई एवं मद्रास के बड़े व्यापारियों के साथ भी लागू होती है जो कि विद्रोहियों के साथ होने की बजाय अंग्रेजों के सहायक बने।

### 4.7.3 शिक्षित भारतीयों के सहयोग का अभाव

आधुनिक शिक्षित भारतीयों ने भी विद्रोह को सहयोग नहीं दिया क्योंकि उनके विचार से विद्रोह का रूप पिछड़ा हुआ था। यह शिक्षित मध्य वर्ग ब्रिटिश शिक्षा व्यवस्था की उपज थे और उनकी ऐसी धारण बन गयी थी कि देश को आधुनिकीकरण की ओर अग्रसर करने में अंग्रेज ही नेतृत्व प्रदान कर सकते हैं।

### 4.7.4 नेताओं में फूट

सबसे मुख्य समस्या विद्रोहियों के वर्ग में एकता के अभाव की थी। उनके नेता एक दूसरे के प्रति संदेहास्पद एवं ईर्ष्यालू थे और अक्सर छोटे झगड़ों में उलझते रहते थे। उदाहरण के लिए अवध की बेगम, मौलवी अहमदुल्ला के साथ और मुगल शासक, सेना प्रमुख के साथ झगड़ते रहते थे। नाना साहेब के राजनीतिक सलाहकार अजीमुल्लाह ने उन्हें दिल्ली न जाने की सलाह दी क्योंकि वे सम्राट बहादुरशाह के सामने छोटे पड़ जायेंगे इसलिए नेताओं के स्वार्थपन एवं संकीर्ण दृष्टिकोण ने विद्रोह को दुर्बल बना दिया और इसके एकीकरण में रुकावट डाली।

### 4.7.5 ब्रिटिशों की सैनिक श्रेष्ठता

विद्रोह की विफलता का अन्य मुख्य कारण था अंग्रेजों के पास उत्कृष्ट शस्त्रों का होना। दुनियाभर में अपनी शक्ति की ऊँचाई पर तथा ज्यादातर भारतीय शासकों एवं प्रधानों के द्वारा समर्थित ब्रिटिश साम्राज्यवाद विद्रोहियों के लिए सैन्य रूप से कहीं

ज्यादा मजबूत था। जबकि विद्रोहियों में अनुशासन एवं केंद्रीय नियंत्रण का अभाव था, अंग्रेजी सेना को लगातार अनुशासित जवानों, युद्ध सामग्रियों और पैसों का स्रोत ब्रिटेन से मुहैया होता था। सिर्फ साहस से ही शक्तिशाली एवं निर्धारित शत्रु को, जिन्होंने अपनी युद्ध नीति चतुराई के साथ नियोजित की थी, नहीं जीता जा सकता था। अनुशासनहीनता के कारण ही मुठभेड़ में विद्रोहियों को अंग्रेजों की अपेक्षा अधिक जान माल की हानि उठानी पड़ी। अंग्रेजी सेना की श्रेष्ठता देखकर भारतीय सिपाहियों में से अधिकतर अपने गाँव वापस लौट गए।

## 4.8 प्रभाव

1857 विद्रोह की असफलता के बावजूद इसने भारत में ब्रिटिश प्रशासन को गहरा आघात पहुँचाया। विद्रोह के बाद के ब्रिटिश शासन की संरचना और नीतियों में भारी फेर-बदल किया गया।

### 4.8.1 सत्ता का हस्तांतरण

पहला मुख्य परिवर्तन यह था कि भारत का शासन 1858 एक्ट के द्वारा ईस्ट इंडिया कंपनी से ब्रिटिश क्राउन के पास चला गया। अब भारत के लिए राजकीय सचिव (सेक्रेटी आफ स्टेट) जिसे एक परिषद् द्वारा सहयोग प्राप्त होगा, भारत में शासन के लिए जिम्मेवार था। पहले यह अधिकार कंपनी के निर्देशकों के पास हुआ करता था।

### 4.8.2 सैन्य संगठन में परिवर्तन

दूसरा मुख्य परिवर्तन सेना में किया गया। भविष्य में भारतीय सिपाहियों द्वारा कोई भी विद्रोह न हो इसके लिए कई कदम उठाए गए। प्रथमतः यूरोपीय जवानों की संख्या बढ़ा दी गयी और बंगाल की सेना में दो भारतीय सिपाहियों पर एक यूरोपीय, बंबई एवं मद्रास की सेनाओं में पांच भारतीय सिपाहियों पर दो यूरोपीय को नियुक्त किया गया यूरोपीयन फौज को प्रमुख भौगोलिक एवं सैन्य स्थितियों में रखा गया। सेना की प्रमुख शाखाओं जैसे तोपखानों को सिर्फ यूरोपियों के हाथों सौंप दिया गया। दूसरा सेना के भारतीय वर्ग का संगठन "फूट डालो और शासन करो" की नीति पर आधारित था। जवानों में राष्ट्रीय भावना न जागे इसलिए जाति, समुदाय और क्षेत्र के आधार पर रेजिमेंटों की स्थापित हुई।

7 बैरकपुर के सिपाहियों के शस्त्रों का जब्त किया जाना

### 4.8.3 फूट डालो और शासन करो

इस नीति को सामान्य जनता में भी लागू किया गया। चूंकि अंग्रेजों ने यह सोचा कि विद्रोह का षडयंत्र मुसलमानों द्वारा रचा गया था इसलिए इन्हें कठोर दंड दिए गए और उनके साथ लोक नियुक्तियों एवं कई अन्य क्षेत्रों में भेदभाव बरता गया। इस नीति को बाद में उलट दिया गया और मुसलमानों के लिए एक विलम्बित प्रसादन की शुरुआत हुई। 19वीं सदी के अंत में मुसलमानों को हिंदुओं से बेहतर सुविधा देने की योजना बनायी गयी जिससे कि भारतीयों में भेदभाव उत्पन्न करके आंदोलन को कमजोर किया जा सके। इन नीतियों ने भारतीय स्वतंत्रता संग्राम में समस्यायें पैदा की और सांप्रदायिकता के विकास में [illegible] दिया।

### 4.8.4 रियासतों के प्रति नयी नीति

दूसरा महत्वपूर्ण बदलाव ब्रिटिश नीतियों का रियासतों की तरफ था। विलय की पूर्व नीति को अब छोड़ दिया गया और शासकों को उत्तराधिकारी चुनने का अधिकार मिला। यह उन देशी शासकों को उपहार स्वरूप मिला जो कि विद्रोह के समय अंग्रेजों के साथ थे। हालांकि भारतीय शासकों का यह अधिकार एक निश्चित क्षेत्रों में पूर्णतया ब्रिटिश अधिकार के अधीनस्थ कर दिया गया और उनको सुविधा आश्रितों में बदल दिया गया।

### 4.8.5 नए सहयोगियों की खोज

इन परिवर्तनों के अलावा, अंग्रेजों का ध्यान भारतीयों के सबसे ज्यादा प्रतिक्रियावादी वर्ग की तरफ गया जैसे जमींदार, राजकुमार और भूपति ताकि अपनी स्थिति को इस देश में और मजबूत बना सकें। दरअसल 1857 के विद्रोह ने ब्रिटिश शासन के वास्तविक प्रतिक्रियावादी स्वभाव को धरातल पर ला दिया। ज्यादातर भारतीयों को यह अहसास हो गया कि भारत में ब्रिटिश शासन वास्तविक रूप में जन विरोधी था और यह निश्चित रूप में दमनकारी और उनके देश हित का विरोधी था।

8 दिल्ली के नागरिकों से धन की वसूली

## 4.9 मूल्यांकन

विद्रोह के कई पहलुओं पर विचार करने के बाद अंत में हम लोग देखेंगे कि 1857 की घटनाओं की कैसे तात्कालीन अधिकारियों और उनके बाद के विद्वानों ने व्याख्या की है।

1857 के विद्रोह की प्रकृति के बारे में शुरू से ही मतभेद है। ब्रिटिश अधिकारिक व्याख्या यह थी कि केवल बंगाल की सेना ने ही बगावत की और नागरिक अशांति, कानून और व्यवस्था तंत्र के टूट जाने से पैदा हुई। कई अधिकारियों ने यह सोचा कि यह केवल एक सैनिक बगावत है। लेकिन इस विचार का बेंजामिन डिजरैली (Benjamin Disraeli) ने जो कि कन्सरवेटिव (Conservative) नेता थे। जुलाई 1857 में खंडन किया। उन्होंने कहा : "साम्राज्यों का पतन मात्र ग्रीज लगे कारतूसों द्वारा नहीं हो सकता। ऐसा निश्चित कारणों और निश्चित कारणों के एकत्रित होने के अवसर पर ही होता है।" फिर उन्होंने पूछा : "क्या यह एक सैनिक बगावत है अथवा राष्ट्रीय विद्रोह?"

इन सरकारी विचारों को भारत में एक ब्रिटिश समुदाय के वर्ग ने भी चुनौती दी कर्नल जी.बी. मैलेसन (G.B. Melleson) जिन्होंने बाद में जे. डब्ल्यू. केय (J.W. Kaye) के "सिपाही युद्ध के इतिहास" को पूरा किया, अधिकारियों के सामान्य बगावत के सिद्धांत को चुनौती दी। "संकट आया : शुरू में प्रत्यक्ष रूप से एक सिपाही विद्रोह के रूप में, पर समय के साथ इसने अपना चरित्र बदल दिया और एक राष्ट्रीय विद्रोह बन गया।" वी.डी. सावरकर ने इस विद्रोह की राष्ट्रवादी व्याख्या की

और 1909 में कहा कि यह प्रथम भारतीय स्वतंत्रता संग्राम था। वी.डी. सावरकर के मतों का एस.बी. चौधरी ने समर्थन किया जिन्होंने अपने लेखों में यह प्रदर्शित किया कि 1857 "जन जागरण" था। वस्तुतः इतिहास लेखन की परंपरा में भारत और पाकिस्तान दोनों में इसी तर्क को जल्द ही स्वीकार लिया गया।

उपर्युक्त विचार से भिन्न आर.सी. मजूमदार ने विवरण लिखा। उन्होंने 1857 के स्वतंत्रता संग्राम मानने से इंकार किया। उनका मत था कि "1857 के विद्रोह को राष्ट्रीय अथवा स्वतंत्रता संग्राम मानना 19वीं सदी के भारतीय जन इतिहास के सही ज्ञान के साथ धोखा करना है।"

कुछ इतिहासकारों ने मुसलमानों के विशिष्ट वर्ग को गड़बड़ी भड़काने के लिए जिम्मेदार ठहराया है ऊटरम (Outram) ने विद्रोह को "हिन्दुओं की शिकायतों की आड़ में मुसलमानों का षडयंत्र माना है। यद्यपि दूसरे विचारक विश्वास करते हैं कि विद्रोह के दौरान लोग सिर्फ ब्रिटिश शासन के खिलाफ नहीं बल्कि सामंती संरचना के खिलाफ भी लड़ रहे थे। इन सामंती प्रधानों के धोखा देने के कारण विद्रोह असफल हो गया। तलमीज खालदून ने लिखा है कि "धनी वर्ग के धोखे की वजह से यह आसानी से कुचल दिया गया।"

बाद के इतिहास लेखक ने हालांकि विद्रोह के जनप्रिय चरित्र को स्वीकारा परंतु इसके पिछड़े दृष्टिकोण पर बल दिया। बिपिन चंद्र ने इस बात पर बल दिया है :

"सारे आंदोलन में एक एकरूपता और भविष्यगामी कार्यक्रम की कमी थी जो कि सत्ता के छिनने के बाद लागू किया जा सके।"

ताराचंद ने इस बारे में ज्यादा स्पष्टता से लिखा कि "1857 का विद्रोह एक कमजोर व्यवस्था अपनी खोयी हुई मर्यादा को पाने का अंतिम प्रयास था।"

परसिवल स्पीयर (Percival Spear) ने कहा "और यह दावे के साथ कहा जा सकता है कि यह पूर्णतया एक सैनिक विद्रोह था जो कि भारतीय सेनाओं की शिकायतों और अनुशासनहीनता तथा ब्रिटिश सैन्य अधिकारियों की गलतियों के कारण पैदा हुआ था। यह कहना कि बगावत आधुनिक स्वतंत्रता की ओर पहला प्रयास था, सच में दोषपूर्ण है। बल्कि, राजनीतिक परिप्रेक्ष्य में ये पुराने रूढ़िवादी भारत का अंतिम प्रयास था।"

हालांकि यहाँ कुछ ही व्याख्यायें दी गयी हैं पर इस मुद्दे पर बहस जारी है। आशा करते हैं कि भविष्य में हम 1857 के विद्रोह पर होने वाले शोध से और प्रबुद्ध हो सकेंगे।

**बोध प्रश्न 2**

1 नीचे दिए खाली स्थान में विद्रोह के नेताओं पर एक छोटा लेख लिखें।

..........................................................................................

..........................................................................................

..........................................................................................

2 शक्तिशाली विद्रोह की पराजय के कुछ मुख्य कारण क्या थे? 100 शब्दों में लिखें।

..........................................................................................

..........................................................................................

..........................................................................................

..........................................................................................

3 क्या 1857 की घटना ने भारतीय समाज पर कोई प्रभाव छोड़ा? नीचे दिए खाली स्थान में लिखें।

..........................................................................................

..........................................................................................

..........................................................................................

..........................................................................................

..........................................................................................

..........................................................................................

## 4.10 सारांश

1857 की घटनाएँ जिसकी कि हमने इस इकाई में चर्चा की है वह सिर्फ इसलिए महत्वपूर्ण नहीं है कि उसने विदेशी शासन के विरूद्ध जन भावना के निश्चित रूप को प्रदर्शित किया बल्कि इसलिए भी कि इसने अन्य कई परिवर्तनों की भी शुरूआत

की। ये परिवर्तन सिर्फ नीति निर्धारण और राजनैतिक संरचना से ही संबंधित नहीं थे बल्कि जन विश्वासों, भावनाओं और ब्रिटिश शासन के प्रकृति के प्रति दृष्टिकोण से भी संबंधित थे। ब्रिटिश शासन की अपराजेयता हमेशा के लिए चकनाचूर हो गयी और विदेशी शासन के खिलाफ एक लंबे और संगठित संघर्ष के लिए तैयारी हो गयी। यहीं से राष्ट्रीय आंदोलन की शुरूआत हुई जो कि अंततः 1947 में विदेशी शासन को समाप्त कर देश में आजादी ला सका।

## 4.11 शब्दावली

**पर्यवेक्षक:** देखभाल या निगरानी करने वाला

**किंवदंती:** उड़ती खबर, अफवाह

**समाहर्त्ता:** राजकर उगाहने वाला अधिकारी

**काश्तकार:** कृषक, खेतिहर

**तिरस्कार:** अनादर, अपमान

**उगाहना:** दूसरों से धन आदि लेकर इकट्ठा करना

**सुप्तावस्था:** सोने की स्थिति, सोये हुए

**पुनरूत्थान:** पतन होने के बाद फिर से उठना

**अमानवीय:** मनुष्य के स्वभाव, प्रकृति या आचरण के विरूद्ध

**प्रतिद्वंद्वी:** सामने आकर लड़ने या विरोध करने वाला

**मलमल:** एक प्रकार का महीन कपड़ा

**विलय:** किसी देशी रियासत या राज्य के आसपास के दूसरे बड़े राष्ट्र या राज्य में मिलकर एक हो जाना।

**स्वतःस्फूर्त:** अपने आप किया हुआ

**प्रतिक्रिया:** कोई क्रिया होने पर उसके विरोध में होने वाली क्रिया

**आह्वान:** बुलाना, राजा की ओर से बुलावे का पत्र।

## 4.12 बोध प्रश्नों के उत्तर

**बोध प्रश्न 1**

1 उपभाग 4.2.1 देखें
2 क) × ख) √ ग) × घ) √
3 भाग 4.3 से पता लगाएं

**बोध प्रश्न 2**

1 भाग 4.5 देखें
2 भाग 4.7 देखें
3 भाग 4.8 देखें

# इकाई 5 उपनिवेशवाद तथा प्रशासनिक व्यवस्था का विकास: 1857 के पूर्व और पश्चात्

## इकाई की रूपरेखा


5.0 उद्देश्य
5.1 प्रस्तावना
5.2 ब्रिटिश सर्वोच्चता की स्थापना
5.3 1857 से पूर्व प्रशासनिक व्यवस्था
5.3.1 ईस्ट इंडिया कंपनी और ब्रिटिश संसद की तुलना
5.3.2 आर्थिक नीति
5.3.3 भू-राजस्व नीति
5.3.4 न्याय व्यवस्था
5.3.5 ब्रिटिश प्रशासन का प्रभाव
5.4 1857 के बाद प्रशासनिक व्यवस्था
5.4.1 नई प्रशासनिक व्यवस्था
5.4.2 प्रशासन का विकेंद्रीकरण
5.4.3 आर्थिक नीति
5.4.4 सैन्य संगठन
5.4.5 प्रशासनिक सेवाएँ (Civil Services)
5.4.6 रजवाड़ों के साथ संबंध
5.4.7 विद्वेषपूर्ण प्रशासन (Hostile Administration)
5.4.8 भारत में स्वायत्त शासन (Self Government) का प्रश्न
5.5 सारांश
5.6 शब्दावली
5.7 बोध प्रश्नों के उत्तर


## 5.0 उद्देश्य

इस इकाई का उद्देश्य इस बात का अध्ययन करना है कि 1857 के पूर्व भारत में ब्रिटिश प्रशासनिक व्यवस्था का रूप कैसा था और 1857 के बाद वह कैसा हो गया। इसमें प्रशासन का स्वरूप और उसका विकास दोनों ही सम्मिलित हैं। इस इकाई को पढ़ने के बाद आप समझ सकेंगे कि:

- किस प्रकार ईस्ट इंडिया कंपनी एक व्यापारिक शक्ति से भू-भागीय शक्ति बन गई।
- किस प्रकार भारत के शासन का सीधा उत्तरदायित्व लिये बिना भारत के मामलों में ब्रिटिश संसद के नियंत्रण का विकास हुआ।
- ईस्ट इंडिया कंपनी की प्रशासनिक व्यवस्था कैसी थी।
- कैसे धीरे-धीरे भारत अंग्रेजी उपनिवेश बना।
- कैसे और कब भारत पर ब्रिटिश संसद का सीधा नियंत्रण हुआ तथा भारत में अंग्रेजी शासन का क्या परिणाम हुआ, तथा
- किस प्रकार भारत में राष्ट्रीय चेतना का उदय हुआ तथा स्वायत्त शासन की मांग की जाने लगी जिसकी परिणति भारत की आजादी में हुई।

## 5.1 प्रस्तावना

मुगलों ने भारत में प्रशासन का केंद्रीकृत रूप स्थापित किया था। उनकी प्रशासनिक व्यवस्था के सभी विभागों में व्यक्तित्व प्रमुख होता था। किन्तु इस प्रकार का व्यक्ति केंद्रित राज्य समय के थपेड़ों को नहीं सह पाया और ईस्ट इंडिया कंपनी के सामने कमजोर साबित हुआ। प्लासी की लड़ाई में हुई हार ने भारत की दुर्बलताओं का पर्दाफाश कर दिया। उसके बाद अंग्रेज भारत में एक दृढ़ शक्ति के रूप में स्थापित हो गए। इस इकाई में आप पढ़ेंगे कि पहले ईस्ट इंडिया कंपनी के शासन के दौरान तथा बाद में सम्राट के शासन के दौरान भारत में अंग्रेजी राज के प्रशासन का स्वरूप क्या था। यहाँ इस बात की चर्चा भी की जाएगी कि प्रशासन की समस्या के पीछे आधारभूत तत्व क्या थे — अर्थात् भारत में ब्रिटिश शासन का स्वरूप कैसा था और उसका लक्ष्य क्या था।

## 5.2 ब्रिटिश सर्वोच्चता की स्थापना

ईस्ट इंडिया कंपनी का आरंभ एक व्यापारिक संघ के रूप में हुआ था। इसका आर्थिक स्वरूप भी सिर्फ व्यापारिक संघ के अनुरूप ही था। इसके अंतर्गत आने वाले प्रत्येक मुख्य "कारखाने" अथवा व्यापारिक संस्थान, एक अध्यक्ष तथा उसकी परिषद् के नियंत्रण में होते थे। अध्यक्ष को बाद में गवर्नर कहा जाने लगा। परिषद् में कंपनी के वरिष्ठ कर्मचारी होते थे। नए अथवा कम महत्वपूर्ण कारखाने किसी अनुभवी व्यापारी के नियंत्रण में रखे जाते थे। इस अनुभवी व्यापारी को "फैक्टर" (Factor) कहा जाता था। जिन व्यापारिक कारखानों में अध्यक्ष प्रमुख होता था उन्हें बाद में प्रेसीडेंसी कहा जाने लगा। मद्रास, या बाम्बे तथा कलकत्ता ऐसी ही प्रेसीडेंसीयाँ थी।

कंपनी का अधिकार क्षेत्र बढ़ाने में विभिन्न प्रक्रियाओं का हाथ था। ये थीं — जमींदारी के अधिकारों की प्राप्ति, भू-भागों को जीत कर या उनकी मालगुजारी का अधिकार प्राप्त कर तथा दीवानी का अधिकार प्राप्त करके।

1698 में कंपनी ने सुतांती, कलकत्ता तथा गोविन्दपुर गाँवों की जमींदारी के अधिकार खरीद लिए। 1757 में कंपनी ने quit rent के आधार पर चौबीस परगना पर अधिकार प्राप्त कर लिया जो बाद में कंपनी को ही दे दिया गया।

1760 में मीरकासिम के बर्दवान, चटगाँव तथा मिदनापुर जिले अंग्रेजों को सौंप दिए। मुगल बादशाह शाहआलम ने इसे अपनी स्वीकृति दे दी। इस प्रकार बादशाह से अनुदान में मिले भू-भाग के संबंध में ब्रिटिश महारानी का सांविधानिक रवैया क्या था, यह तो स्पष्ट ज्ञात नहीं है।

भारत में रहने वाले अंग्रेजों के ऊपर तो कंपनी को घोषणापत्र द्वारा अधिकार प्राप्त थे किंतु भारतीयों पर कंपनी का अधिकार ऐसे जमींदार का अधिकार था जो स्थानीय फौजदार के अधीन रहता था।

1764 के बक्सर-युद्ध के बाद बंगाल में अंग्रेजों की शक्ति सर्वोपरि हो गई।

## 5.3 1857 से पूर्व प्रशासनिक व्यवस्था

बंगाल पर अधिकार कर लेने के बाद अंग्रेजों ने वहाँ ऐसा प्रशासन स्थापित करने का प्रयास किया जो उनकी आवश्यकताओं के अनुकूल होता। 1765 के पूर्व तक बंगाल का नवाब ही प्रशासन संभालता था। सिद्धांत रूप से तो वह मुगल बादशाह का प्रतिनिधि (agent) था किंतु वास्तव में उसके पास पूर्ण अधिकार थे। निजाम के रूप में उसके अधीन कानून और व्यवस्था, सैन्य शक्ति तथा फौजदारी (Criminal Justice) मामलों के विभाग थे, तथा दीवान के रूप में वह राजस्व उगाहने तथा प्रशासन एवं दीवानी मामलों के लिए उत्तरदायी था। 1764 के बक्सर युद्ध के बाद बंगाल में अंग्रेजों की शक्ति सर्वोपरि हो गई। बंगाल के प्रत्यक्ष रूप से ब्रिटिश राज में मिला लेने पर भारत कंपनी के लिए तथा इंग्लैंड की सरकार दोनों के लिए ही राजनीतिक समस्याएँ उत्पन्न हो सकती थीं। अतः अंग्रेजों ने मुगल बादशाह से एक आदेश प्राप्त किया जिसके अनुसार उन्हें बंगाल, बिहार और उड़ीसा में दीवानी अधिकार (भू-राजस्व उगाहने का अधिकार) प्राप्त हो गया। तब भी आरंभ में भू-राजस्व उगाहने का वास्तविक कार्य नवाब के कारिंदे ही करते थे। निज़ामत नवाब के ही हाथों में रही। प्रशासन का यह दोहरा रूप उस समय समाप्त हो गया जब 1772 में कंपनी ने राजस्व वसूली का वास्तविक नियंत्रण अपने हाथ में ले लिया।

अब कंपनी मुख्य रूप से व्यापारिक शक्ति न रहकर भू-भागीय शक्ति हो गई थी। प्रश्न यह था कि क्या भारत का शासन एक व्यापारिक संघ करेगा जिसका कार्य मुख्यतः अपने व्यापारिक हितों की रक्षा करना है, या यह शासनाधिकार ब्रिटिश संसद को सौंप दिया जाए।

जैसे-जैसे कंपनी की राजनीतिक शक्ति बढ़ती गई, इसके अधिकारियों द्वारा उस शक्ति का दुरुपयोग भी बढ़ता गया। कंपनी द्वारा भारत में राजनीतिक सत्ता ग्रहण करने की बात पर इंग्लैड में आपत्ति उठाई गई तथा संसद पर जोर डाला गया कि वह इस मामले में हस्तक्षेप करे। लगातार, युद्धों तथा कंपनी के अधिकारियों की मनमानी के कारण कंपनी घोर आर्थिक संकट में फंस गई थी। कंपनी ने संसद से आर्थिक सहायता के लिए याचना की। संसद इस शर्त पर कंपनी की सहायता करने को तैयार हुई कि भारत तथा इंग्लैंड दोनों ही स्थानों पर कंपनी का प्रशासन ससद के निर्देशन में होगा। इसके लिए 1773 का रेग्यूलेटिंग एक्ट (Regulating Act) पास किया गया।

### 5.3.1 ईस्ट इंडिया कंपनी और ब्रिटिश संसद की तुलना

1773 का रेग्यूलेटिंग ऐक्ट इस बात का प्रमाण था कि ब्रिटिश संसद भारत के मामलों को नियमित करने के लिए गंभीरता से सोचने लगी थी। इसने भारत के लिए पहली बार एक सर्वोच्च सरकार की स्थापना की जिसका प्रमुख बंगाल में फोर्ट विलियम का गवर्नर जनरल था। उसके साथ चार पार्षद (Counsellors) भी थे जिनको यह अधिकार था कि वे बम्बई तथा मद्रास की प्रेसीडेंसियों पर नजर रखें। प्रेसीडेंसियों को इस बात का अधिकार नहीं था कि वे गवर्नर जनरल और परिषद की आज्ञा के बिना भारतीय राज्यों के साथ युद्ध अथवा संधि कर सकें। इसमें अपवाद हो सकते थे जैसे आपातकाल होने पर अथवा ऐसी स्थिति में जब उन्हें कोर्ट ऑफ डायरेक्टर्स से युद्ध अथवा संधि करने के सीधे आदेश प्राप्त हों। इस ऐक्ट में इस बात की भी व्यवस्था थी कि कलकत्ता में एक सर्वोच्च न्यायिक न्यायालय की स्थापना की जाए।

"रेग्यूलेटिंग ऐक्ट" ने कंपनी अधिकृत भारतीय भू-भागों के नागरिक, सैन्य एवं वित्तीय मामलों को चलाने का अधिकार ब्रिटिश संसद को दिया। साथ ही यह इस बात का भी पहला प्रमाण है कि ब्रिटेन की सरकार भारत के मामलों में गंभीर रुचि लेने लगी थी। इस ऐक्ट में कतिपय आधारभूत कमियाँ थीं जिनके कारण वारेन हेस्टिंगज को काफी कठिनाइयाँ उठानी पड़ी। उसके पार्षद भी उसका साथ नहीं देते थे। इसमें यह स्पष्ट नहीं किया गया था कि गवर्नर जनरल का अपने अधीन प्रेसीडेन्सियों पर कहाँ तक अधिकार है तथा यह भी स्पष्ट नहीं था कि सर्वोच्च परिषद् एवं सर्वोच्च न्यायालय के अधिकार क्षेत्र क्या हैं। इसका परिणाम यह हुआ कि वारेन हेस्टिंगज को अपना प्रशासनिक उत्तरदायित्व निभाने में अनेक कठिनाइयों का सामना करना पड़ा तथा परिषद् में एक के बाद एक संकट उत्पन्न होते गए।

1781 में कंपनी के मामलों को और अधिक नियंत्रित करने के प्रयास किए गए। नार्थफॉक्स की मिली-जुली सरकार ने गंभीरतापूर्वक यह प्रयत्न किया कि कंपनी की शासन व्यवस्था का पुनर्गठन हो। इस उद्देश्य से दो बिल प्रस्तुत किए गए। चार्ल्स जेम्स फौक्स ने कंपनी की शासन व्यवस्था को ऐसी निरंकुश व्यवस्था कहा "जिसकी मिसाल संसार के इतिहास में नहीं मिलती।" कंपनी ने अपना संरक्षण मंत्रियों के हाथ में दिये जाने पर विरोध प्रकट किया। यह बिल हाउस आफ कॉमन्स में तो पारित हो गया किंतु हाउस ऑफ लार्डस ने इन्हें अस्वीकार कर दिया।

जब विलियम पिट ने प्रधानमंत्री का पद संभाला तो उसने "इंडिया बिल" प्रस्तुत करने का निश्चय किया। पिट को हाउस ऑफ कॉमन्स में कम समर्थन प्राप्त था। साथ ही उसे ईस्ट इंडिया कंपनी की आशंकाओं का भी निवारण करना था। पिट ने कंपनी के साथ बातचीत करके तथा उसकी स्वीकृति से एक ऐसी योजना तैयार की जो भारतीय मामलों पर संसद के नियंत्रण से संबंधित थी। यह पिट के "इंडिया बिल" के नाम से जाना जाता है। अगस्त 1784 में पास होने पर यह बिल कानून बन गया।

इस अधिनियम के अनुसार भू-भागों तथा वाणिज्य के बीच अंतर को बनाये रखना था। भू-भागों के प्रशासन का नियंत्रण संसद की एक प्रतिनिधिक सभा को दिया जाना था जबकि वाणिज्य पर कंपनी का ही अधिकार बना रहना था। भारत में सरकार अब भी कंपनी के नाम पर ही चलाई जानी थी यद्यपि राजनीतिक एवं वित्तीय मामले प्रस्तावित संसदीय सभा के नियंत्रण एवं देखरेख में होने चाहिए थे।

पिट के इंडिया बिल ने नियंत्रण, निर्देशन एवं निगरानी का एक सशक्त साधन प्रदान किया। यही व्यवस्था थोड़े-बहुत फेर बदल के साथ 1858 तक प्रयुक्त होती रही। इस समय तक भारत पर इंग्लैंड की सम्राज्ञी का पूर्व नियंत्रण स्थापित हो चुका था।

उन्नीसवीं शती के पूर्वार्ध तक ब्रिटिश भू-भागों के प्रशासन का विधिनिर्माण कुछ सीमा तक उपयोगितावादी चिंतन एवं सिद्धांतों से प्रभावित रहा। जैसा कि इरीक ऐरिक स्टोक्स ने अपनी रचना इंग्लिश यूटिलिटेरियन्स इन इंडिया (English Utilititarians in India) में दर्शाया है। इस स्थिति में 1813 में परिवर्तन आया और अब प्रवृत्ति उदारवादी सिद्धांतों की ओर हो गयी। कंपनी का प्रशासन तो कंपनी के ही हाथों में रहने दिया गया किंतु भारतीय व्यापार पर कंपनी के एकाधिकार को समाप्त कर दिया गया। 1833 के एक अधिनियम के द्वारा कंपनी ने भारत में स्थित अपनी समस्त व्यक्तिगत संपत्ति का समर्पण कर दिया तथा इंग्लैंड की सम्राज्ञी की ओर से न्यासी (Trustee) के रूप में इसकी देखभाल करने लगी। भारत में कंपनी का व्यापारिक रूप समाप्त हो गया और वह सम्राज्ञी की राजनीतिक अभिकर्ता (Political agent) बनकर रह गई। भारत सरकार का नये सिरे से गठन किया गया जिससे इसका स्वरूप भारत-व्यापी हो गया।

### 5.3.2 आर्थिक नीति

ब्रिटिश सरकार ने ऐसी आर्थिक नीति अपनाई जिससे भारत की अर्थव्यवस्था में तेजी से परिवर्तन आया और अर्थव्यवस्था उपनिवेशीय आर्थिक नीति में बदल गई जिसका स्वरूप और गठन ब्रिटेन की आवश्यकताओं के अनुकूल किया गया था। सन् 1600 से लेकर 1757 तक ईस्ट इंडिया कंपनी की भूमिका एक व्यापारिक निगम की थी जो तैयार माल तथा कीमती धातुएँ भारत में लाता था तथा उनके बदले भारतीय माल जैसे कपड़ा लेता था। प्लासी की लड़ाई के बाद कंपनी के व्यापारिक संबंधों में बहुत परिवर्तन आया। अब अपने व्यापार को बढ़ाने के लिए कंपनी राजनीतिक नियंत्रण का प्रयोग करने लगी थी। भारत को उपनिवेश बनाने में इंग्लैंड की औद्योगिक क्रांति का भी बड़ा हाथ रहा। 1793 से 1813 के बीच इंग्लैंड के उत्पादकों ने कंपनी के व्यापारिक विशेषाधिकारों के विरूद्ध आंदोलन छेड़ दिया और अंततः वे भारतीय व्यापार पर कंपनी के एकाधिकार को समाप्त करने में सफल हुए। ब्रिटिश उद्योगपति चाहते थे कि उनका बनाया माल भारत के बाजारों में बिके तथा साथ ही अपने उत्पादन के लिए उन्हें कच्चा माल भी भारत से मिलता रहे।

इस प्रकार गुलामी एवं शोषण की उपनिवेशवादी व्यवस्था ने भारत को संपूर्ण सामाजिक एवं आर्थिक व्यवस्था को अव्यवस्थित कर दिया।

अपनी स्थिति मजबूत करने के लिए कंपनी ने अपने अधीन भू-भागों पर और अधिक दबाव डालना आरंभ कर दिया। अपना प्रभाव बढ़ाने के लिए उसने अभियानों एवं युद्धों का सहारा लिया। इंग्लैंड ने अपने हिस्सेदारों को अधिक से अधिक लाभ देने, ब्रिटिश सरकार को भेंट देने तथा प्रभावशाली लोगों को रिश्वत देने के लिए कंपनी को अतिरिक्त धन की आवश्यकता थी। अतिरिक्त निर्यात (Exports Surplus) के अतिरिक्त 1813 के बाद कंपनी ने होम चार्जेस भी लागू कर दिए और इस प्रकार भारत की संपत्ति को दुहकर इंग्लैंड भेजा जाने लगा। अन्य खर्चों के अतिरिक्त इन तीन चार्जेस में भारतीय ऋण पर ब्याज भी शामिल था। 1858 तक भारतीय ऋण लगभग 695 लाख हो गया था। संपत्ति के इस निर्यात के बदले में भारत को धन अथवा वस्तुएँ कुछ भी उचित रूप से प्राप्त नहीं होती थीं। इस तथ्य को अंग्रेज अधिकारी भी स्वीकार करते हैं कि 1757 और 1857 के बीच भारतीय संपत्ति अनुचित रूप से इंग्लैंड पहुँचाई जाती रही। लारेंस सुलिवन, जो कि कोर्ट ऑफ डायरेक्टर्स का डिप्टी चेयरमेन था, ने कहा कि:

"हमारी व्यवस्था बहुत कुछ स्पंज जैसी है, जो गंगातट से सारी अच्छी वस्तुओं को सोखकर टेम्स के किनारे निचौड़ आती है।"



### 5.3.3 भू-राजस्व नीति

भारत के विभिन्न भागों पर अपना नियंत्रण स्थापित कर लेने के बाद कंपनी ने भू-राज़स्व की वसूली करने के लिए अनेक तरीके अपनाए। ये तरीके स्थानीय परिस्थितियों के अनुरूप थे। अधिकांशतया ये राजस्व कृषि के रूप में होते थे। धीरे-धीरे कंपनी को भारत में प्रणाली की जानकारी हुई। तब उसने विभिन्न क्षेत्रों के लिए दीर्घावधि की नीतियाँ बनाईं। कंपनी का उद्देश्य था अधिकाधिक कर वसूलना। उन्हें कृषि अथवा वहाँ प्रचलित परंपराओं से कोई सरोकार नहीं था। देश के विभिन्न भागों में मुख्य रूप से तीन प्रकार के बंदोबस्त लागू किए गए।

1 **स्थायी बंदोबस्त:** 1793 में बंगाल, बिहार और उड़ीसा में स्थायी बंदोबस्त लागू किया गया। इसकी मुख्य विशेषताएँ इस प्रकार थीं

   क) जमींदार अपने इलाके की संपूर्ण भूमि के स्वामी बना दिए गए। सरकार की ओर से भू-राजस्व की वसूली करना उनका कार्य था।

   ख) जो राजस्व जमींदार वसूल करता था उसके दस में से नौ भाग उसे सरकार को देने पड़ते थे। दसवां भाग वह अपने मेहनताने के रूप में रख लेता था।

   ग) जमींदारों द्वारा सरकार को दिया जाने वाला राजस्व स्थायी और निश्चित होता था। इसलिए जमींदारों को उनके क्षेत्र में पड़ने वाली समस्त भूमि का स्वामी घोषित किया गया।

स्थायी बंदोबस्त ने जमींदार को भू-स्वामी बना दिया। इसने धनी जमींदारों के एक विशेषधिकार प्राप्त वर्ग को जन्म दिया। जमींदारी प्रथा की उत्पत्ति का श्रेय पूर्ण रूप से अंग्रेज सरकार को ही जाता है। अतः अपने मूल हितों की रक्षा करने के लिए यह वर्ग अपने जन्मदाता अंग्रेजों का समर्थन करने के लिए बाध्य था। बाद में स्थायी बंदोबस्त की व्यवस्था बनारस के कुछ भागों एवं उत्तरी मद्रास में भी लागू कर दी गई। इस व्यवस्था के लागू होने से किसानों के साथ कंपनी का संपर्क बिल्कुल समाप्त हो गया और किसान पूर्ण रूप से जमींदारों की दया पर निर्भर हो गए। भू-राजस्व के स्थिरीकरण का कोई वैज्ञानिक आधार नहीं था। यह तदर्थ ही होता था। किसानों और जमींदारों के बीच चले आ रहे दीर्घकालीन संबंधों को अचानक ही समाप्त कर दिया गया था। भू-राजस्व का भार बहुत अधिक था।

ऐसी बात नहीं थी कि जमींदार वर्ग समस्याओं से मुक्त रहा हो। भू-राजस्व की किस्त न चुका सकने की स्थिति में जमींदारियाँ नीलाम कर दी जाती थीं। इससे अब वे लोग भी जमींदार बनने लगे जो वंशपरंपरा से जमींदार नहीं थे। शहरी व्यापारी, [illegible] और साहूकार इत्यादि नीलाम में जमींदारियाँ खरीदने लगे। इन लोगों को भूमि का विकास करने अथवा किसानों के कल्याण में कोई रूचि नहीं थी। परिणामस्वरूप इस क्षेत्र में अनेक किसान विद्रोह हुए। इन विद्रोहों में प्रमुख थे। 1795 [illegible] विद्रोह, 1798 का रायपुर विद्रोह, 1799 का बालासोर विद्रोह तथा 1799-1800 के बीच मिदनापुर के आसपास के गावों में होने वाले विद्रोह।

1762-63 में बंगाल से की जाने वाली उगाही की रकम 646, 000 रुपए थी किंतु 1790 तक यह बढ़कर 2680,000 रुपए हो गई। बंगाल जो कभी पूर्व का अन्न भंडार कहा जाता था, लगभग खाली था। वहाँ अब अकाल, भुखमरी मौत और बीमारी का साम्राज्य था। हाउस ऑफ कॉमन्स की विरोध समिति ने 1783 में जो रिपोर्ट दी उसका एक अंश यहाँ प्रस्तुत है:

"प्रतिवर्ष लगभग 1,000,000 रुपए बंगाल से कंपनी के खाते में जाते हैं जो चीन भेजे जाते थे और यह संपूर्ण राशि चीन से यूरोप की व्यापार में लगा दी जाती थी। इसके अतिरिक्त शांतिकाल में बंगाल भारत में स्थित उन प्रेसीडेंसियों को नियमित रूप से रसद भेजता है जो अपना बोझ स्वयं उठाने में असमर्थ है।"

2 **रैयतवारी बंदोबस्त:** उन्नीसवीं सदी के आरंभ में मद्रास तथा बम्बई क कुछ क्षेत्रों में रैयतवारी बंदोबस्त लागू किया गया। इसके अनुसार भूमि जोतने वाले को उस भूमि का स्वामी माना जाता था बशर्ते कि वह भू-राजस्व चुकाता रहे। अंग्रेजों ने उन मिरासदारों (ग्रामीण समुदायों के सदस्यों) तथा किसानों को भी मान्यता दी जो सीधे राज्य को कर दिया करते थे। ये मिरासदार छोटे-मोटे जमींदार बन गए थे। किंतु इस प्रथा से भूमि का जो स्वामित्व मिलता था उसका विशेष लाभ नहीं था। इसके तीन कारण थे:

   क) भू-राजस्व की अनुचित दर।
   ख) भू-राजस्व की दर में मनमाने ढंग से वृद्धि करने का सरकार का अधिकार।
   ग) भू-स्वामित्वधारों को हर स्थिति में भू-राजस्व देना ही पड़ता था, भले ही उसकी उपज आंशिक रूप से अथवा पूर्णरूप से नष्ट हो गई हो।

गाँव की चरागाहों एवं परती जमीन पर भी अब राज्य ने अधिकार कर लिया था। पहले इन क्षेत्रों पर ग्राम-समुदायों का अधिकार होता था। इससे भू-राजस्व का भार और बढ़ गया।

3 **महलवारी बंदोबस्त:** जमींदारी का एक और रूप था महलवारी बंदोबस्त। यह व्यवस्था गंगाघाटी, उत्तर-पश्चिमी प्रदेशों, मध्य भारत के कुछ क्षेत्रों तथा पंजाब में लागू की गई। इसके अनुसार प्रत्येक गाँव के लिए अलग बंदोबस्त होता था। जमींदार अथवा वे घराने जो जमींदार होने का दावा करते थे, उन्हीं के हाथों सरकार यह बंदोबस्त सौंपती थी।

अंग्रेजों ने परंपरा से चली आ रही भू- व्यवस्थाओं में मौलिक परिवर्तन किए। भू-व्यवस्था में हुए इन परिवर्तनों ने भारतीय गाँवों की स्थिरता, स्वायत्तता एवं सातत्य को हिला कर रख दिया।

### 5.3.4 न्याय व्यवस्था

आरंभिक घोषणा पत्रों मे कंपनी को यह अधिकार दिया गया था कि वह "उचित कानून" बना सकती है, "सांविधानिक आदेश" और "अध्यादेश" जारी कर सकती है तथा एक सीमा तक अपने कर्मचारियों को अपराध के लिए दंडित कर सकती है। किंतु इन घोषणाओं में कंपनी को भू-भाग संबंधी अधिकार नहीं दिए गए थे। 1661 में चार्ल्स द्वितीय ने प्रत्येक फैक्ट्री के गवर्नर तथा परिषद् को यह अधिकार दिया कि वे न केवल अपने कर्मचारियों अपितु उन सब लोगों के फौजदारी (Criminal) और दीवानी (Civil Jurisdiction) मामलों को देखें जो उनके अंतर्गत आते हैं।

दीवानी का अधिकार प्राप्त करने के पश्चात् कंपनी कुछ सीमा तक तो दीवानी न्याय के लिए उत्तरदायी हो ही गई थी। फौजदारी के मामलों में तो इस्लामी कानून का अनुसरण किया जाता था किंतु दीवानी के मामलों में विभिन्न पक्षों के व्यक्तिगत कानून के अनुसार ही फैसला किया जाता था। दीवानी मामलों की अपील सदर दीवानी अदालत में की जाती थी यानि प्रेसीडेंट और परिषद् में की जाती थी जबकि फौजदारी मामलों की अपील सदर निजामत अदालत में की जाती थी जो नवाब के अधीन थी। फिर भी न्यायिक प्रशासन को संगठित करने की दिशा में पहला कदम वारेन हेस्टिंग्ज ने ही उठाया। उसी ने पहली बार जिले को न्यायिक प्रशासन की इकाई बनाया। प्रत्येक जिले में दीवानी और फौजदारी अदालतों की स्थापना की गई। प्रत्येक जिले में जिलाधीश दीवानी न्यायालय का प्रमुख होता था और फौजदारी न्यायालय में एक भारतीय अधिकारी के साथ दो मौलवी बैठते थे। इन जिला न्यायालयों के ऊपर अपील न्यायालय था जो कलकत्ता में स्थित था। सदर दीवानी अदालत में गवर्नर और परिषद के दो सदस्य होते थे जिनकी सहायता के लिए वित्त विभाग का दीवान तथा प्रमुख कानूनगो इत्यादि होते थे। सदर निजामत अदालत का प्रमुख निजाम का नायब होता था तथा उसकी सहायता के लिए एक मुसलमान अधिकारी और मौलवी होते थे।

1773 के रेगयूलेटिंग ऐक्ट (Regulating Act) के अनुसार बंगाल में सर्वोच्च न्यायालय की स्थापना की गई जो सम्राज्ञी के अधीन था। सर्वोच्च न्यायालय की स्थापना के फलस्वरूप दो विरोधी न्यायिक प्राधिकार बन गए एक ओर सर्वोच्च न्यायालय का तो दूसरी ओर सदर दीवानी अदालत। इसका एक अस्थायी हल तो यह निकाला गया कि सर्वोच्च न्यायालय के मुख्य न्याधीश की नियुक्ति सदर दीवानी अदालत के प्रेसीडेंट के रूप में कर दी गई।

1790 में फौजदारी अपीलों का स्थानांतरण गवर्नर जनरल एवं परिषद् के अधीन कर दिया गया। गवर्नर जनरल तथा उसकी परिषद् की सहायता के लिए मुख्य काज़ी तथा दो मुफ्तियों को मुकर्रर किया गया। यह कदम कार्नवालिस की आम नीति का ही एक हिस्सा था। उसकी नीति सभी उच्च पदों से भारतीयों को हटाकर उनके स्थान पर यूरोपियों को रखने की थी।

कार्नवालिस ने जिला अदालतों को अंग्रेज न्यायाधीशों के अधीन कर दिया। उसने दीवानी न्यायाधीश और जिलाधीश के दो अलग-अलग पद बनाए। इन दोनों के विरूद्ध अपील करने के लिए चार अपील के न्यायालय स्थापित किए गए जो क्रमशः कलकत्ता, ढाका, मुर्शिदाबाद और पटना में स्थित थे। जिला न्यायालयों के नीचे रजिस्ट्रार के न्यायालय थे जिनके प्रमुख यूरोपीय होते थे। साथ ही उनके अधीनस्थ न्यायालय भी थे जिनके प्रमुख भारतीय होते थे जिन्हें मुंसिफ और अमीन कहा जाता था। कार्नवालिस ने शासन व्यवस्था का एक ऐसा ढाँचा तैयार किया जो अगले सौ वर्षों तक भारत की शासन व्यवस्था का आधार बना रहा। इसका आधार था भारत में विदेशी शासन को चलाते रहना तथा इस देश की संपत्ति का दोहन करना।

1801 में गवर्नर जनरल तथा उसकी परिषद् का न्यायिक सत्ताधिकार समाप्त हो गया। इसके स्थान पर सदर दीवानी अदालत अथवा दीवानी अपीली न्यायालय की स्थापना की गई और इसमें तीन न्यायाधीशों की नियुक्ति की गई। सम्राज्ञी के न्यायालयों तथा जमींदारी न्यायालयों की दोहरी नीति सिद्धांत रूप में तब समाप्त हुई जब 1861 में इंडियन हाई कोर्ट एक्ट द्वारा कलकत्ता, मद्रास और बम्बई में उच्च न्यायालयों की स्थापना हुई। इन न्यायालयों ने सर्वोच्च न्यायालय और सदर न्यायालय दोनों का ही स्थान ले लिया।

नई न्यायिक व्यवस्था की विशेषताएँ थीं : विधि का शासन (rule of law) कानून के सामने सबका समान होना, इस बात की मान्यता कि प्रत्येक व्यक्ति को अपने वैयक्तिक कानून के अनुसार न्याय पाने का हक है, तथा कुशल एवं प्रशिक्षित न्यायिक वर्ग का विकास।

फिर भी नई न्याय व्यवस्था को दोषमुक्त नहीं कहा जा सकता। इसमें अनेक कमियाँ थीं। फौजदारी मामलों में यूरोपियों के लिए अलग न्यायालय थे यहाँ तक कि अलग कानून भी। उनकी सुनवाई भी अंग्रेज न्यायाधीश करते थे जो कभी-कभी उनका अनुचित पक्ष भी लिया करते थे। दीवानी मामलों में तो स्थिति काफी गंभीर थी। न्यायालय बहुत दूर हुआ करते थे तथा न्याय की प्रक्रिया बहुत लम्बी थी। न्याय बहुत महंगा होता जा रहा था। ग्राम-समितियों एवं पंचायतों का गाँवों में भी कोई महत्व नहीं रह गया था।

### 5.3.5 ब्रिटिश प्रशासन का प्रभाव

ब्रिटिश प्रशासन के कतिपय लाभ भी थे। इससे कानून और व्यवस्था की स्थापना हुई, स्वतंत्रता में आस्था बनी तथा आधुनिकीकरण की प्रक्रिया का शुभारंभ हुआ। कानून की एक सामान्य व्यवस्था एवं एक जैसे सरकारी न्यायालयों के कारण एकता में वृद्धि हुई। प्रशासन का दूरस्थ एवं निवयक्तिक स्वरूप एक साथ ही इस व्यवस्था का गुण और दोष था। इसका सबसे बड़ा दोष यह था कि इस व्यवस्था में लोगों की भावनाओं के प्रति संवेदनशीलता का अभाव था।

ब्रिटिश प्रशासनिक नीतियों का परिणाम यह हुआ कि स्थानीय स्वायत्त शासन की देशी संस्थाओं का लोप हो गया तथा प्रशासन के उच्च पदों से भारतीय वंचित हो गए। भारतीय अर्थव्यवस्था को ब्रिटिश हितों की अनुगामिनी बना देने के अनेक दुष्परिणाम हुए। कलाकार और कारीगर बर्बाद हुए, किसान दरिद्र हो गए, पुराने जमींदारों का पतन हुआ तथा भूस्वामियों के एक नये वर्ग का उदय हुआ। कृषि के क्षेत्र में ठहराव आया और वह पतनोन्मुख हो चली।

अंग्रेजी नीतियों के परिणामस्वरूप भारतीयों में जो आक्रोश एवं असंतोष सुलग रहा था उसकी परिणति 1857 की क्रांति में हुई।

**बोध प्रश्न**

टिप्पणी i) अपना उत्तर प्रश्न के नीचे दिए गए स्थान में ही लिखिए।
ii) अपने उत्तरों को इकाई के अंत में दिए गए उत्तरों से मिलाइये।

1 वे कौन सी विभिन्न प्रक्रियाएँ थीं जिनके द्वारा कंपनी का अधिकार क्षेत्र बढ़ा?

..........................................................................................

..........................................................................................

..........................................................................................

..........................................................................................

..........................................................................................

2 ब्रिटिश संसद ने भारतीय मामलों को नियमित करने के लिए जो पहला महत्वपूर्ण अधिनियम पारित किया वह क्या था? पाँच पंक्तियों में लिखिए।

..........................................................................................

..........................................................................................

..........................................................................................

..........................................................................................

..........................................................................................

3 स्थायी बंदोबस्त की तीन महत्वपूर्ण विशेषताओं का उल्लेख कीजिए:

i) ..........................................................................................

ii) ..........................................................................................

iii) ..........................................................................................

4 नई न्यायिक व्यवस्था की तीन प्रमुख उपलब्धियों एवं तीन कमियों के बारे में लिखिए।

..........................................................................................

..........................................................................................

..........................................................................................

..........................................................................................

..........................................................................................

## 5.4 1857 के बाद प्रशासनिक व्यवस्था

कंपनी की आर्थिक और प्रशासनिक नीतियों ने समाज के सभी वर्गों में व्यापक असंतोष उत्पन्न कर दिया। यही असंतोष अन्य घटकों के साथ मिलकर 1857 के विद्रोह का कारण बना। (इस संबंध में आप इकाई-4 में पढ़ चुके होंगे) इस विद्रोह ने ईस्ट इंडिया कंपनी को हिला दिया। ब्रिटिश सरकार भी इससे चिंतित हुई। ब्रिटेन के राजनीतिक जगत में सभी इस बात पर एक मत थे कि ब्रिटिश सरकार को चाहिए कि वह भारत का शासन प्रबंध ईस्ट इंडिया कंपनी से ले ले और भारत के प्रशासन का उत्तरदायित्व स्वयं ग्रहण करे। ब्रिटेन की सम्राज्ञी ने 1858 की एक घोषणा द्वारा भारय शासन को सीधे अपने नियंत्रण में ले लिया।

### 5.4.1 नई प्रशासनिक व्यवस्था

1858 के अधिनियम के अनुसार भारत को सीधे ब्रिटिश सम्राज्ञी के द्वारा शासित होना था। रानी के नाम पर भारत के शासन का काम इंग्लैंड में एक राज्य सचिव (Secretary of State) द्वारा किया जाना था। इस सचिव की सहायता के लिए पंद्रह

सदस्यों की परिषद् की व्यवस्था थी। इनमें से नौ सदस्य ऐसे होने चाहिए थे जो कम से कम दस वर्ष तक भारत में कार्य कर चुके हों और जिन्हें भारत छोड़े हुए दस वर्ष से अधिक समय न हुआ हो। किंतु देश का प्रशासन अब भी मुख्य रूप से गवर्नर जनरल के ही अधीन बना रहा। हाँ, गवर्नर जनरल के पद का नाम बदल कर वाइसराय कर दिया गया। उसकी सहायता के लिए एक कार्यकारिणी परिषद् बनाई गई। कार्यकारिणी परिषद् के सदस्य विभिन्न विभागों के प्रमुख होते थे तथा गवर्नर जनरल के सलाहकारों के रूप में कार्य करते थे।

1861 के इंडियन कांउसिल ऐक्ट ने गवर्नर जनरल की परिषद् का विस्तार किया। अब इसके सदस्यों की संख्या छह से बढ़ाकर बारह कर दी गई। इस विस्तार का उद्देश्य परिषद् को विधि निर्माण का अधिकार प्रदान करना था तथा इस रूप में इसे इंपीरियल लेजिस्लेटिव काउंसिल कहा जाता था। इसमें विधि निर्माण के लिए भारतीयों का सहयोग भी लिया जा सकता था।

1885 में भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस की स्थापना हुई। कांग्रेस ने भारत के प्रशासन में अनेक परिवर्तनों की माँग की। इसके परिणामस्वरूप 1892 का अधिनियम पास किया गया। इस अधिनियम द्वारा कांउसिल के सदस्यों की संख्या बढ़ाकर सोलह कर दी गई। इस अधिनियम ने कांउसिल को वार्षिक वित्तीय विवरण पर बहस करने का अधिकार भी प्रदान किया। उन्हें बजट की प्रत्येक मद पर मत देने का अधिकार तो नहीं था किंतु वे सरकारी नीति की खुलकर आलोचना कर सकते थे। राज्य सचिव की भारत पर नियंत्रण एवं निगरानी बढ़ी। उसी अनुपात में ब्रिटेन की सरकार की तुलना में गवर्नर जनरल की शक्ति घट गई। नियंत्रण बोर्ड के अध्यक्ष तथा कंपनी के निदेशकों का दोहरा नियंत्रण समाप्त कर दिया गया तथा संपूर्ण सत्ताधिकार राज्य सचिव को सौंप दिया गया। 1877 के रॉयल टायटिल्स ऐक्ट ने राज्य सचिव के प्रति गवर्नर जनरल तथा उसकी कांउसिल की अधीनता को स्पष्ट कर दिया।

जैसे-जैसे राज्य सचिव की शक्ति बढ़ती गई वैसे-वैसे उसके सत्ताधिकार पर नियंत्रण भी ढीला पड़ता गया। इंडियन कांउसिल का कार्य सलाह देना मात्र रह गया। राज्य सचिव को "महान् मुगल" की तरह सम्मान दिया जाने लगा।

जब भारत के वाइसराय लार्ड मेयो ने अपनी परिषद् के सत्ताधिकार को मनवाने का प्रयास किया तो स्पष्ट रूप से कह दिया गया कि:

"सिद्धांत रूप से भारतीय मामलों का अंतिम नियंत्रण एवं निर्देशन बर्तानवी सरकार के हाथ में हैं, उन अधिकारियों के हाथ में नहीं जिन्हें सम्राज्ञी ने संसद में कानून द्वारा भारत में नियुक्त किया है।"

इन सब बातों को संभव बनाने के पीछे कतिपय कारण थे। 1870 में भारत और इंग्लैंड के बीच सीधी तार लाइन डाल दी गई थी तथा स्वेज नहर के खुल जाने तथा भाप के इंजन वाले ज़हाजों से दोनों देशों के बीच दूरी घट गई थी। इससे यातायात द्वारा तेजी से संबंध जोड़ने में सहायता मिली।

ईस्ट इंडिया कंपनी की समाप्ति कर दिये जाने के बाद इंग्लैंड की सम्राज्ञी ने भारतीय प्रशासन पर अपनी पकड़ मजबूत करनी आरंभ कर दी। वास्तव में, यह समय भारत में अंग्रेजी साम्राज्यवाद के विस्तार का समय था।

### 5.4.2 प्रशासन का विकेंद्रीकरण

विकेंद्रीकरण की दिशा में पहला कदम तो 1861 के अधिनियम के साथ उठ चुका था। इस अधिनियम द्वारा बम्बई तथा मद्रास की प्रेसीडेंसियों को विधि-निर्माण का अधिकार मिल चुका था। किंतु उन्हें किसी अधिनियम को पारित करने के लिए गवर्नर जनरल की अनुमति लेनी पड़ती थी। 1870 में लार्ड मेयो ने पहली बार प्रदेशों को निश्चित धन-राशियाँ प्रदान की जिन्हें वे अपनी इच्छानुसार पुलिस, जेल, शिक्षा, तथा स्वास्थ्य सुविधाओं पर खर्च कर सकते थे। 1877 में और अधिक आर्थिक स्वतंत्रता प्रदान की गई। जब लार्ड लिटन ने कुछ अन्य धन भी प्रदेशों को सौंप दिए। यह धन खर्च-भू-राजस्व, आबकारी, सामान्य प्रशासन इत्यादि के लिए थे। 1882 में प्रदेशों को निश्चित धनराशि देने की प्रथा समाप्त कर दी गई। इसके स्थान पर प्रदेशों को कहा गया कि वे अपने प्रादेशिक करों द्वारा एक निश्चित आय की व्यवस्था करे। इन व्यवस्थाओं के अनुसार राजस्व के कुछ स्रोत पूर्णतः तो कुछ अंशतः प्रदेशों को सौंप दिए गए और कुछ केंद्र के लिए सुरक्षित रखे गए। युद्ध और अकालों पर होने वाले खर्च की जिम्मेदारी केंद्र पर थी। यह व्यवस्था 1902 तक बनी रही।

**स्थानीय संस्थाएँ (Local Bodies)**

वित्तीय समस्याओं के कारण सरकार ने प्रशासन का और भी अधिक विकेंद्रीकरण किया तथा नगर निगमों और जिला परिषदों का कार्यक्षेत्र बढ़ा दिया। विकेंद्रीकरण की प्रक्रिया का आरंभ 1864 में हुआ। आरंभ में अधिकांश सदस्य मनोनीत (Nominated) होते थे तथा जिला मैजिस्ट्रेट उनके प्रमुख होते थे। इन संस्थाओं को अपना खर्च चलाने के लिए राजस्व स्वयं जुटाना था।

1882 के आसपास इस स्थिति में सुधार हुआ। अब स्थानीय संस्थाओं का विकास कुछ शहरों में ही नहीं अपितु समस्त देश में किया जाता था। इन संस्थाओं के निश्चित कार्य होते थे तथा उनकी पूर्ति के लिए उन्हें निश्चित धनराशि प्रदान की जाती थी। अधिकांश मनोनीत सदस्यों का स्थान अब चुने हुए सदस्यों ने ले लिया। सरकारी सदस्यों की संख्या एक तिहाई कर दी गई, शहरी संस्थाओं को स्वतंत्र कर दिया गया तथा गैर-सरकारी लोगों को भी परिषदों में बैठने का अधिकार दिया गया। किंतु इन संस्थाओं पर अब भी सरकारी नियंत्रण कठोर था। मतदान का अधिकार सीमित था तथा गैर-सरकारी सदस्यों की शक्ति बहुत कम थी। जैसा कि बिपन चंद्र ने लिखा है कि:

"कलकत्ता, मद्रास और बम्बई जैसे प्रेसीडेंसी वाले शहरों को छोड़कर, स्थानीय संस्थाएँ ठीक सरकारी विभागों की तरह कार्य करती थीं और उन्हें किसी भी प्रकार स्थानीय स्वायत्त शासन का अच्छा उदाहरण नहीं कहा जा सकता।"

### 5.4.3 आर्थिक नीति

अंग्रेजों ने भारत की अर्थव्यवस्था का शोषण जारी रखा। जो धन पहले ईस्ट इंडिया कंपनी के लंदन स्थित कार्यालय के रखरखाव तथा इसके शेयर होल्डरों को आय देने में खर्च होता था वही अब, इंडिया आफिस के सैक्रेटरी पर खर्च होने लगा। कंपनी के सैन्य अभियानों तथा विद्रोहों को दबाने के फलस्वरूप लंदन में पहले ही भारतीय ऋण की मात्रा काफी थी परंतु अब वह और बढ़ गई क्योंकि कंपनी के शेयर होल्डरों को दी जाने वाली मुआवजे की रकम भी भारत सरकार के खाते में जोड़ दी गई। होम चार्जेस के अंतर्गत आने वाले खर्च थे भारत के ब्रिटिश अधिकारियों को दी जाने वाली पेंशन की रकम तथा सेना को प्रशिक्षित करने का व्यय आदि। 1901 में होम चार्जेस की राशि 170.30 लाख पौंड हो गई।

जैसा कि दादाभाई नौरोजी एवं अन्य परवर्ती अर्थशास्त्रियों ने दर्शाया है, होम चार्जेस एवं निजी हुंडियाँ भारतीय निर्यात द्वारा भुनाई जाती थीं। पहले भारत का आर्थिक दोहन व्यापारवादी था, अब वह मुक्त व्यापार के माध्यम से किया जाने लगा। आगे चलकर यही ब्रिटिश भारत के वित्त पूंजीवाद के ढाँचे से जुड़ गया। वास्तव में उन्नीसवीं शती के अंत तक भारत का अतिरिक्त निर्यात ब्रिटिश भुगतानों के संतुलन के लिए अनिवार्य सा हो गया। उन्नीसवीं शती में यूरोप में विकसित होते पूंजीवादी अर्थशास्त्र ने चुंगी-कर की ऊँची दीवारें खड़ी कर दी। अपने माल के निर्यात के लिए ब्रिटेन को बाजार मिलना कठिन हो गया। भारत में मुक्त व्यापार का अर्थ था कि लंकाशायर के कपड़े के लिए भारत में बिक्री के लिए बाजार, साथ ही भारत के अतिरिक्त निर्यात से ब्रिटेन के घाटे में पूर्ति भी होती थी। भारतीय साम्राज्य से ब्रिटेन को सैन्य एवं युद्धनीति संबंधी लाभ तो थे ही, साथ ही उसे आर्थिक लाभ भी था।

अंग्रेजी सरकार ने अनेक प्रकार की संरचनात्मक प्रतिबंध लगाकर देसी उद्योगों पर रोक लगाई तथा उन्हें कुंठित किया। सरकारी नीतियाँ खुले तौर पर ब्रिटिश उद्यमों को प्रोत्साहन देती थी तथा भारतीयों के साथ भेदभाव का व्यवहार करती थी। रेलमार्ग तथा भारवहन के भाड़े भी बंदरगाहों पर होने वाले व्यापार को प्रोत्साहित करने की दृष्टि से बनाए गए थे। देश के भीतरी भागों में होने वाले व्यापार के अनुकूल नहीं थे। संगठित मुद्रा बाजार भी काफी हद तक अंग्रेजों के कब्जे में था। इसमें एकमात्र अपवाद थे पंजाब नेशनल बैंक तथा बैंक ऑफ इंडिया। विदेशों के साथ होने वाले अधिकांश व्यापार पर अंग्रेजों का तीव्र प्रभुत्व था क्योंकि विनिमय बैंक, आयात-निर्यात कंपनियों तथा जहाजरानी के प्रतिष्ठान उन्हीं के हाथ में थे।

अंग्रेज अपनी इस नीति को उचित ठहराते थे। उनका कहना था कि उन्होंने इस देश में रेलमार्गों, बागानों, खदानों एवं मिलों में पूंजी को लगाया है तथा ये सब बातें भारत को विकास एवं आधुनिकीकरण के मार्ग पर ले जाएँगी। किंतु सच्चाई तो यह है कि अंग्रेजों ने रेलमार्गों की स्थापना अपनी व्यापारिक एवं सामरिक आवश्यकताओं के अनुरूप ही की थी तथा बागान, खदानें एवं मिल अंग्रेजों के वित्तीय, व्यापारिक एवं औद्योगिक गतिविधि के सामंजस्य में सहायक थे। ये सब अंग्रेजों के हाथ में भारतीयों के पूंजीवादी शोषण के साधन थे।

भू-राजस्व नीति एवं वाणिज्य नीति एक दूसरे से जुड़ी हुई थीं। काफी समय तक सरकार ने कृषि में सुधार करने की दिशा में कोई ठोस प्रयत्न नहीं किए। इस दिशा में एकमात्र सरकारी प्रयास यही था कि 1870 से तकावी का नगण्य ऋण दिया जाने लगा था तथा एक नहर-व्यवस्था लागू कर गई थी जो पंजाब, पश्चिमी संयुक्त प्रांत (यू.पी.) तथा मद्रास प्रेसीडेंसी के कुछ भागों से गुजरती थी। वास्तव में उपनिवेशवादी ढाँचे ने देश को भीतर ही भीतर खोखला कर दिया था। जिसके उदाहरण थे 1870 एवं 1890 के दशकों में पड़ने वाले अकाल।

### 5.4.4 सैन्य संगठन

1857 के विद्रोह को देखते हुए सेना में कुछ महत्वपूर्ण परिवर्तन किए गए। भारत का प्रशासन इंग्लैंड के सम्राज्ञी के हाथों में जाने के साथ ही कंपनी की सेना को इंग्लैंड की सेना के साथ मिला दिया गया। सेना का पुनर्गठन करते समय अंग्रेजों ने इस बात की ओर विशेष ध्यान दिया कि 1857 की घटनाओं की पुनरावृत्ति न होने पाए। इसके लिए अनेक कदम उठाए गए :

i) सेना में यूरोपियों का अनुपात बढ़ा दिया गया (1857 में 40,000 यूरोपिय तथा 215,00 भारतीय थे) बंगाल में यह अनुपात 1:2 तथा मद्रास एवं बम्बई में 2:5 कर दिया गया।

ii) सेना के महत्वपूर्ण अंगों जैसे तोपखाने इत्यादि में भारतीय सैनिकों की संख्या नगण्य रहती थी। बाद में टैंकों और बख्तरबंद गाड़ियों के संबंध में भी यही नीति अपनाई गई।

iii) योद्धा और गैर-योद्धा जातियों के बीच भेद किया गया तथा लड़ाकू माने जाने वाली जातियों को बडी संख्या में सेना में भरती किया गया। बिहार, अवध, बंगाल तथा दक्षिण भारत के जिन सैनिकों ने 1857 के विद्रोह में भाग लिया था उन्हें गैर-लड़ाकू घोषित कर दिया गया। विद्रोह के समय अंग्रेजों का साथ देने वाली जातियों जैसे सिक्खों, गोरखाओं और पठानों को लड़ाकू घोषित किया गया।

iv) सैनिकों में भेदभाव उत्पन्न करने के लिए उन्हें जाति पर आधारित अलग-अलग कंपनियों में रखा गया।

v) सैनिकों में क्षेत्रीय भावना को उभारा गया ताकि वे राष्ट्रीय मुद्दों पर एकजुट न हो सकें। इस प्रकार सेना की एकरूपता को भंग कर दिया गया। भारत से बाहर उन स्थानों के युद्ध में भी भारतीय सैनिकों को लगाया गया जहाँ अंग्रेजों को लाभ था।

### 5.4.5 प्रशासनिक सेवाएँ

कार्नवालिस ने भारतीयों को अंग्रेजों से निम्न स्तर का दर्जा दिया था। 1833 के चार्टर ऐक्ट तथा महारानी की घोषणा के बावजूद यह स्थिति नहीं बदली। सभी ऊँचे पद यूरोपियों के लिए आरक्षित थे। भारत की प्रशासनिक सेवा के लिए अधिकारियों का

चयन एक प्रतियोगी परीक्षा द्वारा किया जाता था। कहने को तो चयन के द्वार भारतीयों के लिए भी खुले थे किंतु कभी एक या दो से अधिक भारतीय नहीं चुने गए क्योंकि :

- परीक्षा का केंद्र लंदन में था जो भारत से बहुत दूर था।
- परीक्षा उत्तीर्ण करने के लिए ग्रीक, लेटिन एवं अंग्रेजी भाषाओं का अच्छा ज्ञान होना आवश्यक था। भारतीय इसमें पिछड़ जाते थे।
- पहले परीक्षा की अधिकतम आयु 23 वर्ष थी जो 1859 में घटाकर 19 वर्ष कर दी गई।

इन बाधाओं को हटाने की दिशा में भारतीयों ने जो भी प्रयत्न किए उसका कोई विशेष लाभ नहीं हुआ।

## 5.4.6 रजवाड़ों के साथ संबंध

1857 के विद्रोह के बाद अंग्रेजों ने अनुभव किया कि भारतीय जनता के असंतोष को रोकने में रजवाड़े महत्वपूर्ण भूमिका निभा सकते हैं। अतः रियासतों को अंग्रेजी राज में मिलाने की नीति छोड़ दी गई तथा अंग्रेजी साम्राज्य को दृढ़ बनाने के लिए उनका सहयोग प्राप्त करने की योजना बनाई गई। अनेक अधिकार जो पहले रजवाड़ों से छीन लिए गए थे उन्हें लौटा दिए गए तथा यह आश्वासन दिया गया कि यदि वे ब्रिटिश साम्राज्य के प्रति वफादार बने रहें तो उन्हें कोई क्षति नहीं पहुँचाई जाएगी। किंतु रजवाड़ों को खुली छूट नहीं दी गई थी। सर्वोच्चता की नीति के माध्यम से उन पर कड़ा नियंत्रण रखा जाता था। कोई भी भारतीय राजा विदेशों के साथ स्वतंत्र रूप से कोई संबंध स्थापित नहीं कर सकता था। रियासतों के रोजमर्रा के कामकाज में भी अंग्रेज अभिकर्त्ताओं (पोलिटिकल ऐजेण्ट) का हस्तक्षेप रहता था। ये अभिकर्त्ता रेजीडेंट्स कहलाते थे। लगभग सभी रियासतों में ब्रिटिश रेजीडेंट्स और मनोनीत (nominated ministers) मंत्री होते थे। उनका काम था अंग्रेजों के हितों की देखभाल करना तथा अंग्रेजी नीतियों को क्रियान्वित करना। राजाओं के उत्तराधिकारियों का निर्णय भी अंग्रेज सरकार के हाथ में था। यदि कोई राजा अंग्रेजों के मनोनुकूल व्यवहार नहीं करता तो वे उसे हटाकर अपने अनुकूल व्यक्ति को राजा बना देते थे। 1873 में बड़ौदा तथा 1891 में मणीपुर के राजाओं को इसी प्रकार हटाया गया था। अन्य रियासतों में भी हस्तक्षेप की नीति अपनाई गई। अंग्रेजों की इन अपमानजनक नीतियों के बावजूद अधिकांश राजा अंग्रेजों का साथ देते थे ताकि उनका राज और विशेषाधिकार बना रहे।

## 5.4.7 विद्वेषपूर्ण प्रशासन

अपनी प्रशासनिक नीतियों के जरिए अंग्रेजों ने न केवल भारतीय संपदा का दोहन किया और यूरोपियों की श्रेष्ठता स्थापित की वरन् जानबूझकर भारतीयों के प्रति विद्वेषपूर्ण रवैया अपनाया। पहले की इकाइयों में इस बात का उल्लेख किया जा चुका है कि अंग्रेजी राज के क्या परिणाम हुए। यहाँ पर उन क्षेत्रों का अध्ययन करेंगे जहाँ यह भारत-विरोधी पक्षपात एवं विद्वेष अत्याधिक स्पष्ट दिखाई देता है।

i) **शिक्षा:** सन् 1833 से अंग्रेजों ने भारत में सीमित शिक्षा को प्रोत्साहन देने की नीति अपनाई थी। किंतु कलकत्ता, बम्बई और मद्रास में विश्वविद्यालयों को स्थापना से उच्च शिक्षा की दिशा में नई प्रगति हुई। किंतु शिक्षा के प्रसार के साथ भारतीयों में जाग्रति आई। अंग्रेजी सरकार के प्रति उनका दृष्टिकोण आलोचनात्मक होने लगा और राष्ट्रीय आंदोलन का संगठन होने लगा। इससे अंग्रेज सतर्क हो गए और उन्होंने उच्च शिक्षा के प्रति विद्वेषपूर्ण रवैया अपना लिया।

ii) **जन-सेवाएँ:** सेना और युद्धों पर तो अंग्रेज-सरकार अनाप-शनाप खर्च करती थी किंतु स्वास्थ्य, सिंचाई, सफाई तथा लोक निर्माण विभाग (पी.डब्लू.डी.) पर किया जाने वाला खर्च नगण्य था।

iii) **समाचार-पत्रों पर पाबंदी:** भारत में छापेखाने के विकास का श्रेय अंग्रेजों को था। किंतु जैसे ही ये जनमत तैयार करने एवं लोगों में राष्ट्रीय चेतना जगाने का कार्य करने लगे। अंग्रेज सरकार ने इस पर रोक लगाने के लिए अनेक कानून बना डाले। 1878 का वर्नाक्यूलर प्रेस ऐक्ट समाचार-पत्रों की स्वतंत्रता को सीमित करने का ऐसा ही प्रयास था।

iv) **नस्लवादी भेदभाव:** प्रशासनिक एवं सैन्य अधिकारियों की नियुक्ति में अंग्रेज भारतीयों के साथ भेदभाव पूर्ण व्यवहार करते थे। अंग्रेजों को तो सभी विशेषाधिकार प्राप्त थे जबकि भारतीयों को उनके उचित अधिकार से भी वंचित रखा जाता था।

v) **श्रम कानून:** बागानों एवं कारखानों में वृद्धि होने के साथ ही श्रमिकों की संख्या में भी वृद्धि हुई। इन श्रमिकों से बहुत अधिक काम लिया जाता था तथा इन्हें बहुत ही अस्वास्थ्यकर और खराब परिस्थिति में भी काम करना पड़ता था। बागानों और कारखानों के मालिक अधिकांशतया अंग्रेज होते थे जबकि वहाँ काम करने वाले श्रमिक भारतीय थे। श्रमिकों की सुख-सुविधा का कोई ध्यान नहीं रखा जाता था। 1881 एवं 1891 में पारित किए गए फैक्टरी अधिनियम मुख्यतः बाल-श्रम और स्त्रियों से संबंधित थे। इनसे श्रमिकों को अधिक राहत नहीं मिली। बागानों से संबंधित सभी कानून बागान मालिकों के पक्ष में थे और ये सभी मालिक यूरोपिय थे।

प्रशासन के इस विद्वेषपूर्ण रवैये ने भारतीयों को स्वायत्त शासन की मांग करने पर बाध्य किया। किंतु इस मांग का अनुकूल परिणाम नहीं हुआ। इसकी चर्चा हम आगे के अनुच्छेदों में करेंगे।

## 5.4.8 भारत में स्वायत्त शासन का प्रश्न

सन् 1857 के बाद अंग्रेजों ने भारतीयों को स्वायत्त शासन देने का विचार बिल्कुल ही छोड़ दिया। सर चार्ल्स वुड ने जोकि भारत का सेक्रेटरी ऑफ स्टेट था, कहा कि भारत के लिए प्रतिनिध्यात्मक संस्था व्यावहारिक नहीं है। अंग्रेजों का कहना था

कि भारत कोई राष्ट्र तो है नहीं। उन्होंने भेदभाव पैदा किए। ये भेदभाव मुख्यतः धार्मिक आधार पर प्रोत्साहित किए जाते थे किंतु अपने लक्ष्य के लिए अंग्रेजों ने जातीयता और क्षेत्रीयता की भावनाओं का भी प्रयोग किया। हंटर ने अपनी पुस्तक इंडियन मुसलमान्स (1870) में मुसलमानों का समर्थन करते हुए मुसलमानों की विशिष्टता और पृथकता पर बल दिया तथा उन्हें एकरूप समुदाय की संज्ञा दी। वायसरॉय लार्ड डफरिन ने 1888 में मुसलमानों को "पाँच करोड़ लोगों का राष्ट्र" कहा जिसके धार्मिक एवं सामाजिक रीति-रिवाज समान थे। वायसरॉय लार्ड एल्गिन को लिखे गए एक पत्र में वुड ने लिखा, "हमने एक भाग को दूसरे के खिलाफ खड़ा करके अपनी शक्ति को बनाए रखा है और हमें यही नीति अपनाए रखनी चाहिए।"

किंतु भारत में घटनाएँ जो मोड़ ले रही थीं उसने अंततः सरकार को जनता की आकाक्षाओं की ओर ध्यान देने के लिए बाध्य किया। सत्तर का दशक बढ़ती हुई अशांति का समय था। उस अवधि में देश को अभूतपूर्व दुर्भिक्षों का सामना करना पड़ा। 1872 में ए.ओ. ह्यूम ने लार्ड नार्थबुक को सचेत किया कि अब "हमारे और सर्वहारा के बीच केवल संगीनों का फासला रह गया है।"

इस बीच राजनीतिक आंदोलन भी जोर पकड़ता जा रहा था। 1885 में भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस की स्थापना हुई और वह लोगों की इच्छाओं और आकांक्षाओं की अभिव्यक्ति का सशक्त माध्यम बन रही थी। कांग्रेस ने उत्तरदायी शासन व्यवस्था की मांग के समर्थन में आवाज उठाई। किंतु भारतीयों की आंकाक्षाओं की पूर्ति करने का अंग्रेज सरकार का कोई इरादा नहीं था। सन् 1892 में जब ब्रिटिश सरकार अधिनियम लाने पर बाध्य हुई तो स्पष्ट हो गया कि भारतीयों को सरकार में वास्तविक भागीदारी देने का उसका कोई इरादा नहीं था।

राष्ट्रीय आंदोलन के जोर पकड़ने के साथ ही सरकार को फिर से सुलह की नीति अपनानी पड़ी जिसके परिणामस्वरूप 1909 का अधिनियम पारित हुआ। किंतु इसमें मुसलमानों के लिए अलग निर्वाचक मंडल की व्यवस्था का प्रावधान किया गया तथा 27 सीटों में से 8 सीटें मुसलमानों के लिए आरक्षित रखी गई।

भारत के राष्ट्रीय जीवन में गांधी जी के प्रवेश तथा राष्ट्रीय आंदोलन के देशव्यापी हो जाने के पश्चात् ही अंग्रेजों के दृष्टिकोण में अंतर दृष्टिगोचर होने लगा।

**बोध प्रश्न 2**

टिप्पणी : i) अपना उत्तर प्रश्न के नीचे दिए गए स्थान में ही लिखिए।
ii) अपने उत्तरों को इकाई के अंत में दिए गए उत्तरों से मिलाइए।

1 1858 के अधिनियम की तीन विशेषताओं का उल्लेख कीजिए।

..........................................................................................

..........................................................................................

..........................................................................................

2 मुक्त व्यापार की नीति ने ब्रिटिश उद्योग की किस प्रकार सहायता की?

..........................................................................................

..........................................................................................

..........................................................................................

..........................................................................................

..........................................................................................

..........................................................................................

3 अंग्रेजों द्वारा किए गए सेना के पुनर्गठन की तीन महत्वपूर्ण विशेषताओं का उल्लेख कीजिए।

i) ..........................................................................................

ii) ..........................................................................................

iii) ..........................................................................................

4 उन तीन क्षेत्रों का उल्लेख कीजिए जहाँ भारतीयों के प्रति अंग्रेजी प्रशासन का विद्वेषपूर्ण रवैया स्पष्ट दिखाई देता था।

..........................................................................................

..........................................................................................

..........................................................................................

5 सर्वोच्चता के अधिकार द्वारा अंग्रेज किस प्रकार रजवाड़ों के मामलों में दखल देते थे?

..........................................................................................

.....................................................................................................

.....................................................................................................

.....................................................................................................

## 5.5 सारांश

ईस्ट इंडिया कंपनी की शुरुआत् एक व्यापारिक निगम के रूप में हुई थी किंतु 1857 तक इसका स्वरूप बदल गया और यह व्यापारिक निगम से राज सत्ता बन गई। तब ब्रिटेन की सरकार ने भारत संबंधी मामलों की व्यवस्था करने के लिए एक योजना तैयार की। यह योजना दासता और शोषण की उपनिवेशवादी योजना थी जिसके परिणामस्वरूप भारत की सामाजिक और आर्थिक व्यवस्था विघटित हो गई।

1857 के विद्रोह के बाद ब्रिटेन की सरकार ने भारत के प्रशासन का उत्तरदायित्व स्वयं ग्रहण कर लिया। विद्रोह के बाद अंग्रेजों ने भारत में जो नीति अपनाई उसका मुख्य उद्देश्य था इस देश में अपने साम्राज्य को सुरक्षित रखना। इस बीच भारत में घटनाओं ने ऐसा मोड़ लिया कि सरकार को लोगों की इच्छाओं और आकांक्षाओं की ओर ध्यान देना पड़ा। भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस ने स्वायत्त शासन के लिए किए जाने वाले जन आंदोलन का नेतृत्व किया। अंत में भारत को स्वाधीनता मिली किंतु देश का विभाजन हो गया।

## 5.6 शब्दावली

**संपत्ति का निचोड़ा जाना (Drain of Wealth):** धन का बाहर जाना, यहां भारत के धन का ब्रिटेन को भेजे जाने के अर्थ में प्रयुक्त।

**औद्योगिक क्रांति (Industrial Revolution):** उद्योग के माध्यम से आर्थिक कायाकल्प इंग्लैंड में तेजी से हुए औद्योगीकरण की प्रक्रिया।

**अधिकार क्षेत्र (Jurisdiction):** नियंत्रक सीमा।

**उपलब्धि (Acequisition):** प्राप्ति।

## 5.7 बोध प्रश्नों के उत्तर

**बोध प्रश्न 1**

1 कंपनी का अधिकार क्षेत्र बढ़ाने में अनेक प्रक्रियाओं का हाथ था। ये प्रक्रियाएं थीं — जमींदारी के अधिकार की प्राप्ति, भू-भाग पर अधिकार तथा दीवानी अधिकारी की प्राप्ति। भाग 5.2 भी देखिए।

2 1773 का रेग्यूलेटिंग ऐक्ट भारत संबंधी मामलों को संकलित करने की दिशा में ब्रिटिश संसद का पहला महत्वपूर्ण कदम था। उपभाग 5.3.1 भी देखिए।

3 जमींदार अपनी जमींदारियों की संपूर्ण भूमि के स्वामी हो गए तथा भू-राजस्व एकत्रित करने में सरकार के अभिकर्ता बन गए। भू-राजस्व की मात्रा निश्चित होती थी तथा उसमें जमींदार को मिलने वाला भाग भी निश्चित होता था।

4 नई न्याय-व्यवस्था की महत्वपूर्ण उपलब्धियाँ थीं, विधि का शासन, कानून के समक्ष सबको समानता, अपने वैयक्तिक कानून के आधार पर न्याय पाने के व्यक्ति के अधिकार को मान्यता, तथा दक्ष एवं प्रशिक्षित न्यायिक श्रेणी का विकास। इसके दोष थे — भारतीयों के साथ भेदभावपूर्ण व्यवहार, न्याय की प्रक्रिया का लम्बी और खर्चीली होना। उपभाग 5.3.4 भी देखिए।

**बोध प्रश्न 2**

1 क) बोर्ड ऑफ कंट्रोल तथा कंपनी के डायरेक्टरों का दोहरा नियंत्रण समाप्त कर दिया गया।
   ख) भारत को अब सीधे साम्राज्ञी द्वारा तथा उसके नाम पर शासित किया जाना था। यह शासन एक स्टेट सेक्रेटरी के माध्यम से होना था।
   ग) गवर्नर जनरल को वायसरॉय की पदवी दे दी गई थी।

2 मुक्त-व्यापार की नीति ने लंकाशायर के कपड़ा उद्योग को तैयार बाजार मुहैया कराया। उपभाग 5.4.3 भी देखिए।

3 अंग्रेजों ने यूरोपियों की सर्वोच्चता को बनाए रखने के लिए सेना का पुनर्गठन किया। उन्होंने सेना में विभाजन को प्रोत्साहन दिया तथा योद्धा जातियों के सिद्धांत को प्रतिपादित किया। रेफरेंस उपभाग 5.4.4 भी देखिए।

4 शिक्षा, जन-सेवाएँ तथा समाचार-पत्र। उपभाग 5.4.7 भी देखिए।

5 उपभाग 5.4.6 देखिए।

# इकाई 6 भारत में अंग्रेजी राज का सुदृढ़ होना: सीमान्त और विदेश नीति

## इकाई की रूपरेखा


6.0 उद्देश्य
6.1 प्रस्तावना
6.2 अंतर्राष्ट्रीय स्थिति
- 6.2.1 भारतीय उपमहाद्वीप में ब्रिटेन की सर्वोच्चता
- 6.2.2 चीन का पतन
- 6.2.3 रूस से खतरा
- 6.2.4 अफगानिस्तान
- 6.2.5 द्वितीय अफगान युद्ध

6.3 उत्तरपश्चिमी सीमान्त नीति
6.4 ईरान तथा ईरान की खाड़ी
6.5 तिब्बत
6.6 नेपाल
6.7 सिक्किम
6.8 भूटान
6.9 उत्तरपूर्वी सीमांत एजेंसी (नेफा)
6.10 सारांश
6.11 शब्दावली
6.12 बोध प्रश्नों के उत्तर


## 6.0 उद्देश्य

ब्रिटिश सरकार ने शासन को दृढ़ बनाने के लिए जो नीति अपनाई उसके अंतर्गत उसने भारत में बाकायदा प्रशासनिक व्यवस्था की स्थापना की। साथ ही उसने नये जीते हुए प्रदेशों की सीमाओं को सुरक्षित रखने में भी थोड़ी ढील नहीं की। इसे ही ब्रिटिश सरकार की विदेश एवं सीमांत नीति कहा जाता है। इसे प्राय: साम्राज्यवादी नीति का नाम भी दिया जाता है क्योंकि दुनियाभर में ब्रिटिश साम्राज्य के हितों की रक्षा करने के लिए ही इस नीति का निर्माण हुआ था। इस इकाई में हम इसी नीति के तत्वों का विश्लेषण करने का प्रयास करेंगे।

इस इकाई को पढ़ने के बाद आप यह जान सकेंगे :

- कि जिस काल का अध्ययन हम कर रहे हैं उस समय अंतर्राष्ट्रीय स्थिति कैसी थी।
- अंग्रेजों ने किस प्रकार इस भारतीय महाद्वीप में अपनी सर्वोच्चता स्थापित की।
- कि किस प्रकार उन्होंने मध्य एशिया में रूस के खतरे का सामना किया।
- कि कैसे ब्रिटिश सरकार उत्तर पश्चिम भाग को अपने नियंत्रण में लाई।
- यह जान सकेंगे कि तिब्बत, नेपाल, भूटान और सिक्किम के साथ भारत की ब्रिटिश सरकार के कैसे संबंध थे।
- कि पश्चिम खाड़ी देशों तथा उत्तरपूर्वी सीमांत एजेंसी (नेफा) के संबंध में ब्रिटिश सरकार की नीति क्या थी।

## 6.1 प्रस्तावना

1918 तक अंग्रेजों ने लगभग संपूर्ण भारत को जीत लिया था। केवल पंजाब और सिंध बचे हुए थे और शीघ्र ही इनकी भी बारी आने वाली थी। भारत में साम्राज्य की स्थापना कर लेने के बाद अंग्रेजों ने दोहरी नीति अपनाई। इसका उद्देश्य एक ओर उचित प्रशासनिक व्यवस्था की स्थापना करना था तो दूसरी ओर हाल ही में जीते गए प्रदेशों की सीमाओं को सुरक्षित करना था। सीमाओं को सुरक्षित करने संबंधी नीति को ही सीमांत एवं विदेश नीति कहा जाता है। इसमें भारतीय रियासतों के साथ अंग्रेज सरकार के संबंधों की चर्चा नहीं है यद्यपि यह विषय भी विदेश विभाग के अंतर्गत ही आता था। भारत में अंग्रेजी राज की सीमाओं की सुरक्षा से संबंधित नीति को "साम्राज्यवादी नीति" भी कहा जाता है। इसका कारण यह है कि इस नीति का निर्धारण करते समय ब्रिटिश साम्राज्य के हितों को ध्यान में रखा गया। अब यहाँ प्रश्न यह उठता है कि क्या 1947 से पहले भारत की अपनी कोई स्वतंत्र विदेश नीति थी? कुछ हद तक यह कहना उचित होगा कि यह नीति स्वतंत्र थी। इस बात के समर्थन में हमारे पास निम्नलिखित तर्क हैं:

i) भारत में अंग्रेजी राज के दृढ़ होते ही अफगानिस्तान और ईरान से होने वाले आक्रमण तथा सीमांत कबीलों की लूटपाट बंद हो गई। ये आक्रमण और लूटपाट लंबे अर्से से चले आ रहे थे।

ii) ब्रिटिश साम्राज्य के एक बड़े एवं महत्वपूर्ण घटक होने के नाते अंग्रेजी सरकार की विदेश नीति के निर्धारण में भारत की महत्वपूर्ण भूमिका थी।

iii) चूंकि इंग्लैंड और भारत के बीच की दूरी अधिक थी अतः भारत की अंग्रेजी सरकार को अपने विवेक से कार्य करने का, तथा भारत की विदेश नीति निर्धारण में कुछ सीमा तक स्वतंत्र निर्णय लेने का अधिकार था।

iv) इसके अतिरिक्त कुछ क्षेत्रों में अंग्रेजों के साम्राज्यवादी हित भारत के हितों से मेल खाते थे। ये क्षेत्र रूस, ईरान तथा चीन से संबंधित थे। इससे भारत की विदेश नीति के विकास को बढ़ावा मिला।

किंतु इन तर्कों के बावजूद हमें यह नहीं भूलना चाहिए कि आखिर भारत था तो इंग्लैंड का उपनिवेश ही। उपनिवेशवादी अंग्रेजी सरकार की राजनीतिक गतिविधियों को हम भारत की विदेश नीति भले ही कह लें इनका उद्देश्य ब्रिटिश साम्राज्यवाद के हितों का पोषण करना था। यहाँ हम आपका ध्यान एक समस्या की ओर भी दिलाना चाहेंगे। यह समस्या है उस तिथि के निर्धारण की जब से कि कहा जा सकता है कि भारत की विदेश नीति का आरंभ हुआ। आमतौर पर माना जाता है कि भारत की विदेश नीति की शुरुआत तब हुई जब कंपनी सरकार ने देशी राज्यों के साथ राजनीतिक संबंध स्थापित किये। इन रियासतों को इस बात के लिए बाध्य किया गया कि वे अपने विदेश नीति संबंधी मामले कंपनी सरकार के नियंत्रण में सौंप दें। भारत की विदेश नीति के आरंभ की दूसरी तिथि 1818 मानी जाती है। तभी से भारत में अंग्रेजी राज्य के सुदृढ़ होने का युग आरंभ हुआ किंतु अंतर्राष्ट्रीय कानून की दृष्टि से भारत की विदेश नीति का समय 1858-59 माना जाएगा जब भारत के शासन का अधिकार कंपनी के हाथों से निकल कर ब्रिटेन की महारानी के हाथों में आया। कहा जा सकता है कि तभी से भारत की स्वतंत्र विदेश नीति का आरंभ हुआ। किंतु नीति की यह स्वतंत्रता ऊपर से देखने भर को थी, इसे वास्तविक स्वतंत्र विदेश नीति नहीं कहा जा सकता।

## 6.2 अंतर्राष्ट्रीय स्थिति

यदि हम अपने अध्ययन की निश्चित अवधि में अंतर्राष्ट्रीय स्थिति पर दृष्टि डालें तो एक बात स्पष्ट दिखाई देती है वह यह कि यह काल ब्रिटिश सरकार के लिए अनुकूल था। जहाँ तक तटीय क्षेत्रों तथा नौ सैनिक अड्डों की सुरक्षा का प्रश्न था ब्रिटेन की स्थिति बड़ी सुदृढ़ थी क्योंकि वह अपने पुर्तगाली, फ्रांसीसी और डच प्रतिद्वंद्वियों पर पहले ही विजय प्राप्त कर चुका था। जहाँ तक भू-सीमा को सुरक्षित करने का प्रश्न था, भारत की सैन्य नीति तथा कूट नीति में रूस तथा चीन उन्नीसवीं शती में महत्वपूर्ण बने रहे। इस व्यवस्था को ठीक से समझने के लिए हम अपने विषय को तीन भागों में बाँट कर अध्ययन करेंगे।

### 6.2.1 भारतीय उपमहाद्वीप में ब्रिटेन की सर्वोच्चता

भारत को जीतने के सिलसिले में ब्रिटेन हालैंड तथा पुर्तगाल को पहले ही हरा चुका था। अब फ्रांस तथा इंग्लैण्ड के बीच अपना प्रभुत्व स्थापित करने के लिए विश्व स्तर पर संघर्ष छिड़ गया। 1740 से लेकर 1800 तक इन दो शक्तियों का संघर्ष दक्षिणी भारत तक ही सीमित रहा। यद्यपि सप्तवर्षीय युद्ध में फ्रांसीसी अंग्रेजों से हार गए थे फिर भी फ्रांस में नेपोलियन के तथा मैसूर में हैदरअली और उसके बेटे टीपू सुल्तान के उदय के कारण अंग्रेजों को फ्रांसीसी शक्ति से बराबर खतरा बना हुआ था। नेपोलियन के मिश्र अभियान एवं उसके परिणामस्वरूप होने वाले नील नदी के युद्ध तथा टीपू सुल्तान से फ्रांस के संबंधों में अंग्रेजों को अपने लिए खतरा दिखाई देता था। 1788 में मिश्र में नेपोलियन की तथा भारत में टीपू की पराजय के साथ ही अंग्रेजों के लिए दक्षिण भारत में फ्रांसीसियों का खतरा समाप्त हो गया।

1807 के बाद संघर्ष का स्थान बदल कर उत्तर पश्चिम हो गया। समुद्री युद्धों में हारने के बाद अब नेपोलियन भूमि मार्ग से भारत पर आक्रमण करने की योजना बना रहा था। भारत की ब्रिटिश सरकार को भय हुआ कि कहीं फ्रांस, ईरान और रूस मिलकर भारत पर धावा न बोल दें। इस खतरे को टालने के लिए तत्कालीन वाइसराय लॉर्ड मिंटो ने बाध्य होकर चार राजनीतिक आयोग भेजे। इन आयोगों के अंतर्गत क्रमशः मैलकॉम को तेहरान, एलफिंस्टन को काबूल, सीटन को सिंध और चार्ल्स मेटकाफ को लाहौर भेजा गया। इन कूटनीतिक प्रयासों के परिणामस्वरूप इन राज्यों की सरकारों के साथ ब्रिटिश सरकार की मैत्रीपूर्ण संधियां हुईं जिनका उद्देश्य फ्रांस के खतरे का सामना करना था। ये प्रयास भारत की ब्रिटिश सरकार की एक स्वतंत्र विदेश नीति स्थापित करने की दिशा में प्रथम कदम कह सकते हैं। फ्रांस का खतरा तो नेपोलियन की पराजय के साथ ही खत्म हो गया किंतु इसने रूस का ध्यान भारत की ओर आकर्षित किया यहाँ यह बात ध्यान में रखने योग्य है कि उन्नीसवीं शती में गोआ में पुर्तगालियों तथा पांडिचेरी में फ्रांसिसियों की नगण्य उपस्थिति अंग्रेजों के लिए कोई गंभीर चिंता का विषय नहीं रही। किंतु उन्नीसवीं शताब्दी के अंतिम दशकों में फ्रांसीसियों ने विद्रोह भड़काने की नीयत से बर्मा में कांसुलेट स्थापित करने का प्रयास किया। फ्रांसीसियों के ओमान में नौसैनिक अड्डा की स्थापना के प्रयत्नों तथा जर्मनी के बर्लिन-बगदाद रेलवे लाइन बिछाने की योजना में भी अंग्रेजों को अपने लिए खतरा महसूस हुआ।

### 6.2.2 चीन का पतन

चीन के साथ भारत के पुराने संबंध थे तथा वहाँ से नियमित रूप से यात्री भी भारत आते रहते थे किंतु भारत को कभी चीन से आक्रमण का खतरा नहीं हुआ। इसका कारण यह था कि दोनों देशों के बीच हिमालय बाधा बनकर खड़ा था। यद्यपि

अठारहवीं सदी में चीन ने तिब्बत तथा एशिया के पूर्वी भागों पर अपनी प्रभुता स्थापित कर ली थी, तथा भारत पर इसका प्रभाव नहीं पड़ा था। किंतु उन्नीसवीं शती में चीन की शक्ति और प्रतिष्ठा दोनों का ही तेजी से पतन आरंभ हो गया। यह वह समय था जब कुछ यूरोपीय ताकतें चीन में अपना व्यापार फैलाने के लिए प्रयत्नशील थीं। अतः चीन का सारा ध्यान इन शक्तियों को रोकने में लगा रहा और वह अपनी उत्तरपूर्वी सीमाओं की ओर विशेष ध्यान न दे सका।

### 6.2.3 रूस से खतरे की आशंका

उन्नीसवीं शती के मध्य में ब्रिटेन के विदेश सचिव लार्ड पालमेंस्तन ने सर्वप्रथम रूस से खतरे का अनुमान लगाया था लेकिन प्रथम बार जब भारत के गवर्नर जनरल विलियम बैंटिक ने इसकी चर्चा की तो यह वास्तविक खतरा प्रकाश में आया। अंग्रेजों ने भूमध्य सागर से रूस का मार्ग रोक रखा था अतः वह भूमि मार्ग से अफगानिस्तान के उत्तर पश्चिम सीमांत की ओर तेजी से बढ़ने लगा। भारत में अंग्रेजों की पहुँच अभी प्राकृतिक सीमांत तक नहीं हुई थी क्योंकि पंजाब और सिंध दोनों ही स्वतंत्र राज्य थे तथा ईरान कमजोर होते हुए भी नादिरशाही युग की अपनी पुरानी शान को फिर पुर्नजीवित करने की आकांक्षा रखता था। 1834 में अपने दादा की मृत्यु के बाद मिर्जा मोहम्मद ईरान के सिंहासन पर बैठा। रूस के प्रति उसका दोस्ताना रवैया था। ऐसा लगता था कि रूस समीपस्थ क्षेत्र तथा मध्य एशिया (जिसे पश्चिमी एशिया कहा जाता है) पर अपना प्रभुत्व स्थापित करने को कटिबद्ध था। इसे अफगानिस्तान के लिए खतरा समझा गया।

### 6.2.4 अफगानिस्तान

अंग्रेज अफगानिस्तान को बचाना चाहते थे क्योंकि वह उनका व्यापार केंद्र होने के साथ उनके लिए मध्य एशिया का एकमात्र प्रवेशद्वार भी था। इस प्रकार मध्य एशिया में दो विस्तारवादी साम्राज्यों के बीच संघर्ष की तैयारी हो गई। रूस ने हेरात पर कब्जा कर लिया था तथा काबुल का अमीर दोस्त मोहम्मद अंग्रेजों से प्रसन्न नहीं था। साथ ही भारत के अंग्रेज प्रशासक अत्याधिक चिंतित थे और इन सब बातों के परिणामस्वरूप अफगान युद्ध (1838-42) हुआ जो अंग्रेजों के लिए अनर्थकारी सिद्ध हुआ। इस युद्ध का एक महत्वपूर्ण परिणाम तो यह हुआ कि 1843 में सिंध और 1849 में पंजाब अफगानिस्तान तथा ब्रिटिश भारत की सीमाएं मिल गई।

पहले अफगान युद्ध का परिणाम यह भी हुआ कि दोस्त मोहम्मद पुनः काबुल की गद्दी पर बैठ गया। किंतु यह बात अंग्रेजों के लिए अच्छी सिद्ध हुई क्योंकि 1854 में रूस के साथ इंग्लैंड के क्रीमियन युद्ध (Crimean War) तथा 1857 के भारतीय विद्रोह के समय दोस्त मोहम्मद ने पूर्ण तटस्थता की नीति अपनाई। क्रीमियन युद्ध (Crimean War) के तुरंत बाद रूसी मध्य एशिया में आगे बढ़ने लगे। 1864 में जारी किए अपने ज्ञापन में राजकुमार गार्चाडौफ ने रूस के इरादों को स्पष्ट करते हुए यह लिखा कि रूस की अफगानिस्तान की ओर बढ़ने के पीछे वही साम्राज्यवादी प्रेरणा काम कर रही है जो अंग्रेजों के हिन्दुस्तान और पंजाब के मैदानी क्षेत्रों में आगे बढ़ने तथा पहाड़ों तक पहुंचने के पीछे थी। इसी लक्ष्य का अनुसरण करते हुए रूस ने अपनी सीमाएँ 1864 में बुखारा, 1868 में समरकंद तथा 1873 में खीवा तक बढ़ा लीं। 1867 में रूसी तुर्कीस्तान का एक प्रदेश बनाया गया तथा बुखारा रूस का अधीनस्थ राज्य बन कर रह गया। 1873 में खीवा रूस के नियंत्रण में आ गया। अपनी इस विस्तारवादी नीति के पक्ष में रूस ने कहा कि उसे अंग्रेजों से उनकी महाद्वीपीय संधियों के जरिये खतरा हो सकता है जैसा कि क्रीमियन युद्ध (Crimean War) के समय हुआ था। रूस का कहना था कि उसने मध्य एशिया में अपनी सैन्य शक्ति इसलिए मजबूत की ताकि वह भारत में हस्तक्षेप का डर दिखाकर इंग्लैंड को काबू में रख सके।

रूस के इस रवैये की अंग्रेजों पर दोहरी प्रतिक्रिया हुई :

i) एक योजना तो यह थी कि अंग्रेजी फौजें मध्य एशिया में आगे बढ़कर महत्वपूर्ण स्थानों पर कब्जा कर लें तथा अफगानिस्तान में नियंत्रण स्थापित कर लें। इसे "अग्रणी नीति" कहा जाता था और आमतौर पर कंज़र्वेटिव दल के सदस्य इस नीति के समर्थक थे।

ii) दूसरी योजना को "अधिकारपूर्ण निष्क्रियता" (Masterly Inactivity) अथवा "स्थिर" नीति (Stationary School) कहा गया। इस नीति के समर्थक प्रायः उदारवादी थे। उनका विचार था कि अफगानिस्तान के संबंध में सतर्कता बरतते हुये हस्तक्षेप न करने की नीति और रूस के साथ किसी राजनीतिक समझौते पर पहुँचने का प्रयास किया जाए।

यह तय हुआ कि यदि रूस आक्रमण करे तो उसका सामना भारतीय सीमांत पर ही किया जाय क्योंकि आगे बढ़कर अफगानिस्तान पर कब्जा करना खतरे से खाली नहीं था। यह नीति 1863-75 की अवधि में अपनाई गयी। इसके अतिरिक्त रूस के सैनिक अड्डे दूर होने के कारण भी भारतीय सीमांत पर युद्ध होना अंग्रेजों के पक्ष में होता। इसके विपरीत अग्रणी नीति के समर्थकों का मत था कि अंग्रेजों को आगे बढ़कर रूसी आक्रमण का सामना करना चाहिए ताकि भारत की असंतुष्ट जनता पर इसके खतरनाक प्रभाव न पड़े। इसका अर्थ यह था कि अंग्रेजी सेनाएँ आगे बढ़कर अफगानिस्तान पर नियंत्रण स्थापित करें तथा रूसी आक्रमण को हिंदुकुश सीमांत पर ही रोक दें।

### 6.2.5 द्वितीय अफगान युद्ध

1874 के चुनावों में लिबरल दल हार गया। परिणामस्वरूप गलैटस्टन की सरकार गिर गई तथा कंज़र्वेटिव दल की नई सरकार बनी। डिजरायली का अग्रणी नीति में दृढ़ विश्वास था। उसने धीरे-धीरे भारत में ब्रिटिश सरकार को दूसरी बार अफगान

युद्ध के लिए बाध्य कर दिया। द्वितीय अफगान युद्ध के परिणाम पहले अफगान युद्ध के परिणामों से बहुत भिन्न नहीं थे। हिन्दूकुश के दूसरी तरफ रूस बेरोकटोक बढ़ा चला आ रहा था। मेर्वा (Merv) पर रूस के अधिकार से लंदन तथा कलकत्ता में अंग्रेजों के बीच खलबली मच गई। एव वर्ष पश्चात् अंग्रेजों ने पंजाब पर नियंत्रण स्थापित कर लिया और 1873 में पामीर के पठार पर भी अधिकार कर लिया। पामीर का पठार सीधा काश्मीर से जुड़ा हुआ था।

1890 तक यूरोप के राजनीतिक संबंध नया रूप धारण करने लगे। बिस्मार्क के पतन के बाद जर्मनी ने रूस से किनारा कर लिया जिसका परिणाम यह हुआ कि शक्तियों का द्वि ध्रुवीकरण हो गया। इस प्रक्रिया में इंग्लैंड के पुराने शत्रु रूस और फ्रांस एक दूसरे के करीब आ गए, जिससे आगे चलकर मित्र राष्ट्रों का त्रिगुट (Tripple Entente) बना। इस प्रकार विभिन्न महाद्वीपों में उनके विरोधी हितों से संबंधित राजनीतिक मतभेदों का समाधान हो गया।

**बोध प्रश्न 1**

1 निम्नलिखित कथनों में कौन से सही हैं और कौन से गलत? (✓) या (✗) का चिह्न लगाइए।

   i) भारत की उपनिवेशवादी सरकार की विदेश नीति का उद्देश्य ब्रिटिश साम्राज्य के अधिकतर हितों का पोषण करना था।

   ii) अंग्रेज भारत में अपने साम्राज्य को सुरक्षित रखने के प्रति उदासीन थे।

   iii) अन्य यूरोपीय शक्तियों की तुलना में अंग्रेज भारत में अपनी प्रभुता स्थापित करने में असफल रहे।

   iv) मध्य एशिया में रूस के बढ़ते चले आने से ब्रिटिश साम्राज्य के हितों को खतरा प्रतीत हुआ।

2 उन दो नीतियों का उल्लेख कीजिए जिन्हें अंग्रेजों ने मध्य एशिया में रूस की चाल को विफल करने के लिए अपनाया:

   i) ..........................................................................................

   ii) ..........................................................................................

## 6.3 उत्तर पश्चिमी सीमांत नीति

सिंध और पंजाब के अधिग्रहण से अंग्रेज सीधे पहाड़ी कबीलों के संपर्क में आ गए। पंजाब और सिंध एक प्रकार से अनौपचारिक सीमाएँ थे जिनके परे पहाड़ों का विशाल जाल फैला हुआ था। इनमें गहरी घुमावदार घाटियाँ थीं। इसके उत्तरी भाग में पठान रहते थे जिसका प्रशासन पंजाब प्रदेश के हाथ में था जबकि इसका पश्चिमी भाग जिसमें बलूची रहते थे और जो सिंध सीमांत कहलाता था, बंबई के अंतर्गत आता था। किंतु पहाड़ी कबीले एक प्रकार से स्वतंत्र थे। ये नाममात्र के लिए काबुल के अमीर के अधीन थे। इन कबीलों के लोग सूखे और कठिन भूभाग पर रहते थे, जीवन के बहुत कम संसाधन इनके पास थे, किंतु ये अत्यंत सादगी, कष्टसहिष्णु तथा सैन्य कुशल थे। ये लोग प्रायः ब्रिटिश भारत के सीमांत प्रदेशों में घुसकर लूटपाट मचाया करते थे। इन उपद्रवी कबीलाइयों ने ऐसा उत्पात मचा रखा था कि भारत की सुरक्षा के लिए अनिवार्य, स्थिर तथा शांतिपूर्ण सीमांत की बात सोचना कठिन था। चूंकि उत्तर पश्चिमी सीमांत दो भिन्न प्रांतीय सरकारों सिंध और बम्बई के अधीन था अतः सीमांत के प्रशासन एवं कबीलों के साथ संबंध बनाने के भी दो भिन्न तरीके विकसित हुए। सिंध के अंतर्गत आने वाले सीमांत प्रदेश में जहाँ घाटियाँ पंजाब की तुलना में चौड़ी थीं और जहाँ कृषि योग्य भूमि कबायली इलाकों से दूर थी, बंद सीमांत व्यवस्था को अपनाया गया इस व्यवस्था के अंतर्गत सीमांत पर पहरा होता था तथा कोई भी काबायली बिना पास के ब्रिटिश सीमा में प्रवेश नहीं कर सकता था। पंजाब सीमांत पर "खुले सीमांत" (Open Frontier) की व्यवस्था थी। तंग दर्रों की सुरक्षा के लिए किले बनवाए गए तथा तोपखानों की व्यवस्था की गई। कबीलाइयों को लूटमार से विमुख करने के लिए सरकार उन्हें ब्रिटिश भारत में व्यापार करने के लिए प्रोत्साहित भी करती थी।

आरंभ में लार्ड डलहौजी की नीति भी सीमांत पर शांति कायम रखने में बहुत सफल रही। उसकी नीति को तीन शब्दों में परिभाषित किया जा सकता है — जुर्माना, नाकेबंदी और अभियान। लूटपाट और हत्या के अपराध में जुर्माना लगाया जाता था, किसी भी संकट को एक निश्चित क्षेत्र में सीमित रखने के लिए उसकी नाकेबंदी कर दी जाती थी। उन कबीलाइयों के विरूद्ध अभियान भी चलाये जाते थे जो आम लूटपाट और मारधाड़ करते थे। इस प्रकार के दंडित करने वाले अभियानों तथा नाकाबंदी करने को "मारो और घेरो नीति" (butcher and bolt policy) का नाम दिया गया तथा बदले की बर्बर नीति कह कर इसकी आलोचना की गयी। 1849 और 1893 के बीच बयालीस ऐसे अभियान चलाये गये जिनमें अंग्रेजों के पक्ष के 2173 लोग मारे गए। इन अभियानों में मृतकों की दर को देखते हुए ब्रिटिश अधिकारी कबीलाइ इलाकों में जाने से हतोत्साहित हुए। अतः सीमांत पर अपना नियंत्रण मजबूत करने तथा स्थानीय लोगों से मैत्रीपूर्ण संबंध स्थापित करने के लिए सरकार ने मेलों-बाजारों को प्रोत्साहन देना आरंभ किया जिससे आंतरिक व्यापार में वृद्धि हुई। सरकार ने अस्पताल तथा औषधालय खोलकर निःशुल्क चिकित्सा की व्यवस्था भी की। रोजगार के अवसर भी उपलब्ध कराए गए तथा कबायलियों को सेना तथा अर्द्धसैनिक बलों में भरती होने के लिए प्रोत्साहित किया गया। उस क्षेत्र पर अपना नियंत्रण सुदृढ़ करने के लिए सरकार ने सड़कों और रेल मार्गों का निर्माण किया। अंत में सरकार ने तजारा, पेशावर, फोहाट, बन्नू, डेरा इस्माइलखान तथा डेरा गाजीखान के सीमांत ज़िलों को संगठित किया। इन सब प्रयासों द्वारा ब्रिटिश सरकार ने सीमांत क्षेत्रों में अपनी स्थिति मजबूत की और भारत की प्रथम सुरक्षा पंक्ति की स्थापना की।

पंजाब और सिंध की सीमांत व्यवस्थाओं का तुलनात्मक अध्ययन करने से ज्ञात होता है कि सिंध की व्यवस्था को अधिक सफलता मिली। कम से कम 1890 तक तो यही स्थिति बनी रही। इस सफलता का कारण इस व्यवस्था का श्रेष्ठ होना नहीं अपितु दोनों प्रदेशों की भौगोलिक स्थिति का भिन्न होना था। इसकी चर्चा पहले ही की जा चुकी है। इसके अतिरिक्त अन्य कारण भी थे। पठानों की एक परिषद् होती थी जिसे "ज़िरगा" कहा जाता था। इसमें कबीले के लगभग सभी सदस्य होते थे। बलूचिस्तान में गिने-चुने नेता थे जिनसे निपटना कठिन नहीं था। पठान मुखियों के साथ किए गए समझौते का वही महत्व नहीं होता था जो बलूच नेताओं के साथ किए गए समझौतों का होता था। एक दूसरी बात जो सिंध में प्रभावशाली सिद्ध हुई वह थी 1877 में बलूचिस्तान में ऐजेंट के पद पर मेजर सेंडीमन की नियुक्ति। उसके मैत्रीपूर्ण और समझौते की नीति अंग्रेजों के लिए बड़ी सफल सिद्ध हुई। किन्तु सेंडीमन के यही तरीके पठान कबीलों में बिलकुल कारगर नहीं हुए क्योंकि पठान नेताओं का अपने अनुयायियों पर वैसा प्रभाव नहीं था जैसा कि बलूचिस्तान के नेताओं का था।

### ड्यूरेन्ड रेखा (The Durand Line) 1893

उत्तरी-पश्चिमी सीमांत पर शांति की स्थापना बड़ी विकट समस्या थी क्योंकि काबुल का अमीर अक्सर कबीलाइयों से मिल जाता था। लार्ड लैंसडाउन की सिफारिश पर सर मोर्टिमर ड्यूरेंड को काबुल के अमीर के पास बात-चीत करने के लिए भेजा गया ताकि सीमा के संबंध में किसी समझौते तक पहुँचा जा सके और फिर सिंधु की सीमा पर कबीलों की समस्या काबुल की जिम्मेदारी रहे। 2 नवम्बर 1893 को जो समझौता हुआ वह इस प्रकार था:

i) वाखान, अस्मार, काफिरिस्तान, मोहमंड तथा वजरीस्तान का कुछ इलाका काबुल के अमीर के अधीन बना रहेगा;

ii) स्वात बाजौर, दरवान कुर्रम घाटी, छागे तथा नया चमन अंग्रेजों के अधीन बने रहेंगे। गोमाल दर्रे के कबायली इलाके भी अंग्रेजों को दे दिए गए।

इससे कबीलाइ इलाके अफगानों और अंग्रेजों के बीच बँट गए। यह भी तय हुआ कि सीमांत का सर्वेक्षण और सीमांकन करने के लिए एक आयोग बिठाया जाएगा। समझौते के अनुसार सीमांत का सर्वेक्षण और सीमांकन किया गया। मोर्टिमर ड्यूरेन्ड की देख-रेख में इस कार्य को होने में दो वर्ष का समय लगा क्योंकि इससे कबीलाइयों के मन में संदेह हो गया और वे बार-बार इसमें बाधा डालते थे। नई सीमा रेखा को ड्यूरेन्ड रेखा का नाम दिया गया। एक बार इस रेखा के बन जाने पर सीमा के दोनों ओर के प्रदेशों का स्पष्ट बंटवारा हो गया तथा अपने-अपने क्षेत्रों में कानून और व्यवस्था बनाए रखने के उत्तरदायित्व का भी बँटवारा हो गया। यह सीमा रेखा हिन्दुकुश के उत्तरी-पश्चिमी किनारे पर तेगदुमरा से मांडा दर्रे तक थी जो काफिरिस्तान को काबुल तक अलग करती थी।

ड्यूरेंड समझौते के फलस्वरूप ब्रिटिश सरकार को वाजिरी, अफ्रीदी और बाजोरी कबीलों को शासित करने का अधिकार प्राप्त हो गया। कबीलाइयों को पहले से ही अंग्रेजों पर शक था। अतः इस समझौते का परिणाम यह हुआ कि वे बार-बार अंग्रेजों के विरुद्ध विद्रोह करने लगे। इन विद्रोहों को दबाने के लिए अंग्रेजों ने सशस्त्र टुकड़ियाँ इन इलाकों में भेजी। इस समझौते के कारण अंग्रेज उस क्षेत्र में संचार के साधन विकसित करने कर वसूलने विशेषकर नमक कर, तथा उनके रीति-रिवाजों में हस्तक्षेप करने में सफल हुए। काबुल का अमीर भी इस बात से नाखुश था कि इन कबीलों पर उसका आधिपत्य नहीं रह गया था।

1899 में लार्ड कर्जन भारत का गवर्नर जनरल बना। उसका कार्यकाल 1905 तक रहा। वह इस इलाके से तथा यहाँ के लोगों से भली प्रकार परिचित था। उसने प्रस्ताव किया कि यहाँ से ब्रिटिश भारत की नियमित सैन्य टुकड़ियों को हटा लिया जाए तथा उनके स्थान पर कबीलाई रंगरूटों के दस्तों को रखा जाए। इससे दो लाभ थे — एक तो भारत में ब्रिटिश सरकार को कबीलाइयों लोगों का विश्वास प्राप्त हो जाता जिससे कानून और व्यवस्था की जिम्मेदारी बँट जाती दूसरे यह व्यवस्था कम खर्चीली थी। उसने 26 अप्रैल 1902 को लाहौर में एक दरबार भी लगाया ताकि सीमांत कबीलों के मुखियाओं के साथ सौहार्दपूर्ण संबंध स्थापित किये जा सकें। इतना ही नहीं कुशल प्रशासन तथा प्रभावी नियंत्रण स्थापित करने के लिए उसने एक नये प्रांत का निर्माण किया जिसे उत्तर पश्चिम सीमांत प्रांत (North Western Frontier Province) कहा जाता था। इस प्रकार लार्ड कर्जन सीमांत क्षेत्र में दीर्घ समय तक शांति स्थापित करने में सफल हुआ।

## 6.4 ईरान तथा ईरान की खाड़ी (Persia and Persian)

ईरान, अरब सागर के तट तथा ईरान की खाड़ी क्षेत्र अंग्रेजों के लिए सामरिक दृष्टि से बहुत महत्वपूर्ण थे क्योंकि भारत पहुँचने के भूमि एवं समुद्री मार्ग इसी क्षेत्र में पड़ते थे। भूमि मार्ग से घुसपैठ करने वालों को अंग्रेजों ने कई बार रोका था। इस मार्ग पर पहले उन्होंने फ्रांसीसी सेनाओं तथा बाद में रूसियों को रोका। ईरान द्वारा हेरात पर कब्जा करने के प्रयास को भी अंग्रेजों ने विफल कर दिया। द्वितीय अफगान युद्ध के बाद 1907 की संधि के फलस्वरूप ईरान ब्रिटिश क्षेत्र तथा रूसी क्षेत्र में बँट गया। जब इस क्षेत्र में बढ़ते हुए जर्मन प्रयास को रोकने के प्रयत्न किए जा रहे थे, 1917 में रूस में विद्रोह फैल गया और अंग्रेजों को पूरे ईरान पर अधिकार जमाने का मौका मिल गया। 1921 में रजा खान के सैनिक विद्रोह के बाद ईरान फिर से स्वतंत्र हो गया। अपने आपको बड़ी शक्तियों के हस्तक्षेप से बचाने के लिए ईरान ने अपने पड़ोसी देशों, तुर्की, ईराक तथा अफगानिस्तान के साथ एक समझौता किया जो पूर्वी-समझौते (Eastern Pact) के नाम से प्रसिद्ध हुआ। फिर भी यह प्रदेश आज तक बड़ी शक्तियों के आकर्षण का केंद्र बना हुआ है जिसके परिणामस्वरूप वहाँ के देशों में निरंतर युद्ध छिड़ा रहता है।

समुद्री मार्ग पर, विशेषकर ईरान की खाड़ी में सामरिक महत्व के समुद्री एवं समुद्र तटीय स्थानों पर कब्जा करके अंग्रेजों ने अपनी स्थिति सुदृढ़ कर ली। ये क्षेत्र या तो ब्रिटिश साम्राज्य में मिला लिए गए या संधियों द्वारा उससे संबद्ध कर दिए गए। इन स्थानों में प्रमुख थे मारीशस, जंजीबार, मस्कट, बहराइन, कुवैत, ओमान इत्यादि। लार्ड लैंसडाउन भारत का पहला वाइसराय था (1884-94) जिसने ईरान की खाड़ी का दौरा किया। उसके दस वर्ष पश्चात् अर्थात् 1903 में लार्ड कर्जन ने खाड़ी देशों के शेखों को अपने जहाज पर एकत्रित किया तथा उस क्षेत्र पर ब्रिटिश प्रभुता की घोषणा कर दी। इसी नीति के अंतर्गत ब्रिटिश सरकार ने ओमान और कुवैत जैसे समुद्र-तटीय देशों को यह वचन देने के लिए बाध्य किया कि वे फ्रांस एवं जर्मनी जैसे अंग्रेजों के यूरोपीय प्रतिद्वंद्वियों को कोई सुविधा प्रदान नहीं करेंगे। स्वेज नहर के खुल जाने के बाद यह मार्ग ब्रिटिश व्यापार के लिए अत्यन्त महत्वपूर्ण सिद्ध हुआ। समुद्र तटीय राज्यों के साथ की गई संधियों के फलस्वरूप ब्रिटिश व्यापार पहले ही सुरक्षित हो चुका था। इतना ही नहीं, जब इस क्षेत्र में खनिज तेल निकला तो सबसे पहले अंग्रेजों ने ही तेल उद्योग तथा व्यापार पर अपना नियंत्रण स्थापित किया।

**बोध प्रश्न 2**

1 निम्नलिखित में कौन से कथन सही (√) या गलत (×) हैं:

i) सीमा प्रदेश को नियंत्रण में रखने के लिए लार्ड डलहौजी ने नर्म नीति अपनाई। (          )

ii) पठान कबीलों के मुखियाओं की तुलना में बलूच मुखियाओं से बात-चीत करना अंग्रेजों को अधिक सरल प्रतीत हुआ। (          )

iii) सबसे पहले अंग्रेजों ने ही खनिज तेल के उद्योग तथा व्यापार पर अपना नियंत्रण स्थापित किया। (          )

iv) सामरिक दृष्टि से ईरान की खाड़ी अंग्रेजों के लिए बहुत महत्वपूर्ण थी। (          )

2 लगभग दस पंक्तियों में लिखिए कि अंग्रेज भारत के उत्तर पश्चिमी सीमांत पर अपनी प्रभुता स्थापित करने के लिए इतने चिंतित क्यों थे?

..........................................................................................................................

..........................................................................................................................

..........................................................................................................................

..........................................................................................................................

..........................................................................................................................

..........................................................................................................................

..........................................................................................................................

..........................................................................................................................

..........................................................................................................................

..........................................................................................................................

## 6.5 तिब्बत

हिमालय पर्वत श्रेणी भारत और चीन के बीच प्राकृतिक सीमा का कार्य करती है। हिमालय की ऊँची चोटियों में नेपाल, भूटान, सिक्किम, तिब्बत आदि अनेक राज्य बसे हुए हैं। इनमें भारत की सीमा सुरक्षा की दृष्टि से तिब्बत सबसे महत्वपूर्ण है। तिब्बत को "तपस्वी का देश" (Hermit Kingdom) भी कहा जाता है। यह देश चारों ओर ऊँची-ऊँची पर्वत श्रृंखलाओं से घिरा हुआ है। इन चोटियों की समुद्र तल से औसत ऊँचाई 10,000 फुट है। यहाँ आर्थिक संसाधनों की बहुत कमी है तथा यहाँ के लोग अलग-थलग रहना पसंद करते हैं। विदेशी खतरों से बचने के लिए इन्होंने चीनी संरक्षण का सहारा लिया जैसा कि तिब्बत को 1728 में प्रदान किया गया था। किंतु तिब्बत के ऊपर चीन की यह प्रभुता नाममात्र की थी तथा उन्नीसवीं शती में इसकी कोई व्यावहारिक मान्यता नहीं रह गई थी। तिब्बत युद्ध संबंधी गतिविधियों को कभी का त्याग चुका था और चीन सैन्य दृष्टि से दुर्बल था। अतः इन दोनों देशों से अंग्रेजों को कोई खतरा नहीं था। इस उपेक्षित भाग तिब्बत में अंग्रेजों की रुचि आरंभ में केवल व्यापारिक ही थी। वारेन हेस्टिंग्ज (Warren Hastings) ने इस क्षेत्र में तीव्र व्यापारिक रुचि दिखाई तथा दो व्यापारिक शिष्टमंडल भेजे, एक 1774 में, तथा दूसरा 1783 में। किंतु तिब्बत का शासक दलाई लामा अलगाववादी तथा संशयी प्रकृति का था। उसने ईस्ट इंडिया कंपनी के व्यापारिक प्रस्तावों को ठुकरा दिया। अंग्रेजों की रुचि तिब्बत में धीरे-धीरे बढ़ती गई। इसके अनेक कारण थे इनमें से प्रमुख थे:

i) चीन की शक्ति क्षीण होती जा रही थी। विदेशी शक्तियों द्वारा चीन में अपने अधिकार क्षेत्र स्थापित करने की होड़ लगी हुई थी। ऐसी स्थिति में ब्रिटेन तथा रूस के लिए तिब्बत का सामरिक महत्व बहुत बढ़ गया।

ii) नेपाल, भूटान तथा सिक्किम पर अंग्रेजों का आधिपत्य होने के साथ ही ब्रिटिश साम्राज्य की सीमा तिब्बत की सीमा के बहुत समीप आ गई।

iii) जब रूसी सेनाएँ बढ़ते हुए पामीर तक जा पहुँची तो उत्तर की ओर भारत की सुरक्षा के लिए खतरा पैदा हो गया।

iv) और अंत में, उन्नीसवीं शती में चाय तथा शॉल के ऊन में अंग्रेजों की रुचि बढ़ गई थी। व्यापारी सरकार पर इस बात के लिए जोर डालने लगे कि वह भूटान के माध्यम से तिब्बत के साथ नियमित व्यापारिक संबंध स्थापित करे।

मांचू राजवंश के पतन के साथ ही तिब्बत पर चीन का प्रभाव भी क्षीण हो गया। जब युवा दलाई लामा पर रीजेन्सी काउन्सिल का अधिकार नहीं रह गया तो वह चीनी प्रभाव से मुक्त होने का प्रयास करने लगा। सच तो यह था कि यह प्रभाव नाममात्र को ही था। किंतु, अंग्रेज विशेष रूप से लार्ड कर्जन, यही समझते रहे कि दलाई लामा चीन से मुक्त होने को बैचेन है। ऐसी अफवाह चल पड़ी थी कि अग्वार दोरदशी नामक एक मंगोल व्यक्ति का जो कि रूसी नागरिक दलाईलामा का कृपा पात्र बना हुआ है ल्हासा (Lhasa) और पीटर्सबर्ग (Petersburg) के बीच, बहुत अधिक आना-जाना है। अंग्रेजों के लिए इस अज्ञात देश का आकर्षण बहुत प्रबल था, साथ ही वे रूस से भयभीत भी थे। व्यापार में विस्तार करने की इच्छा भी बलवती थी। ये सब बातें लार्ड कर्जन को सक्रिय बनाने के लिए पर्याप्त थीं। विशेष रूप से इसलिए क्योंकि वह जानता था कि तिब्बतियों के पास आधुनिक शस्त्रों का सामना करने के लिए धर्म-चक्रों के अतिरिक्त कुछ और नहीं है। लार्ड कर्जन ने तिब्बत को ब्रिटिश साम्राज्य के अधीन लाने का संकल्प कर लिया।

यद्यपि इंग्लैंड की सरकार तिब्बत के मामलों में हस्तक्षेप करने के पक्ष में नहीं थी फिर भी लार्ड कर्जन ने कर्नल फ्रांसिस यंगहस्बंड को तिब्बत भेजने की आज्ञा प्राप्त कर ही ली। कर्नल यंगहस्बंड का तिब्बत अभियान सिक्किम होता हुआ अंततः 1904 को ल्हासा पहुँच गया। सात सौ तिब्बितियों को मौत के घाट उतारने के बाद उसने दलाई लामा को एक संधि स्वीकार करने पर बाध्य किया। इस संधि के अनुसार तिब्बत ब्रिटिश साम्राज्य का संरक्षित राज्य बनकर रह गया। इस संधि में अंग्रेजों को तिब्बत में व्यापार करने के लिए कुछ सुविधाएँ भी दी गई थीं। किंतु, रूस के भय का हौआ निर्मूल सिद्ध हुआ क्योंकि 1907 की संधि के द्वारा रूस ने तिब्बत पर अंग्रेजों की प्रभुता स्वीकार कर ली। वैसे पूर्वी एशिया में व्यस्त होने के कारण रूस इस स्थिति में नहीं था कि तिब्बत की ओर अधिक ध्यान दे पाता। असल में तिब्बत अभियान के पीछे अंग्रेजों की साम्राज्यवादी हवस ही क्रियाशील थी।

1911 की चीनी क्रांति के बाद दलाईलामा ने अपनी स्वाधीनता की घोषणा कर दी। किंतु चीन की नई सरकार तिब्बत को चीन से मिला लेने पर आमादा थी। तिब्बत की स्वाधीनता को स्वीकार करने के स्थान पर अंग्रेज सरकार ने मई 1913 में चीन और तिब्बत के प्रतिनिधियों को आमंत्रित करके शिमला में एक त्रिदलीय वार्ता का आयोजन किया। 13 अक्तूबर 1913 को यह वार्ता हुई तथा 1914 में दो समझौते किए गए। पहले समझौते के अनुसार अंग्रेजों ने पूर्वी क्षेत्र अथवा आंतरिक क्षेत्र पर चीन की प्रभुता स्वीकार कर ली। दूसरा, पश्चिमी क्षेत्र स्वायत्त घोषित किया गया। दूसरे समझौते के अनुसार तिब्बत और ब्रिटिश भारत के बीच सीमा रेखा खींचना तय हुआ। इस सीमा रेखा का नाम अंग्रेज प्रतिनिधि हैनरी मैकमोहन के नाम पर मैकमोहन रेखा ही पड़ गया।

## 6.6 नेपाल

भारत के उत्तर-पश्चिमी सीमांत तथा तिब्बत के छोटे-छोटे राज्यों की श्रृंखला थी। जब इस क्षेत्र में ब्रिटिश साम्राज्य का विस्तार हुआ तो ये राज्य अंग्रेजों के संपर्क में आए। साम्राज्य विस्तार की प्रक्रिया में ये राज्य भी प्रत्यक्ष या परोक्ष रूप से ब्रिटेन के नियंत्रण में आ गए। नाकि वह तिब्बत या चीन के विरुद्ध भारत की अग्रिम चौकियों के रूप में कार्य करना था। पश्चिमी छोर पर जो पहला राज्य पड़ता था वह था हिन्दू गोरखा राज्य। गोरखाओं ने 1768 में काठमांडू की घाटी पर अधिकार कर लिया था और धीरे-धीरे वे अपने पूर्वी एवं पश्चिमी भागों को हड़पते गए। यहां तक कि कुमाऊँ, गढ़वाल तथा शिमला की पहाड़ियों पर भी उन्होंने अधिकार जमा लिया किंतु गोरखाओं की पराजय के बाद 1816 की संधि के अनुसार ये क्षेत्र अंग्रेजों के अधीन हो गए।

संधि हो जाने के पश्चात् अंग्रेजों ने नेपाली शासकों के साथ संबंध बनाए रखने में बड़ी चतुराई और कुशलता से काम लिया। वे नेपाल के शासकों को प्रभुसत्ता संपन्न का दर्जा देते थे तथा उन्हें योर मेजेस्टी कह कर संबोधित करते। यह बात ध्यान देने योग्य है कि भारत की सुरक्षा के लिए अंग्रेज केवल हिमालय की ऊँची चोटियों पर ही निर्भर नहीं थे उनके लिए नेपाल, भारत, तिब्बत और चीन के मध्यवर्ती राज्य का काम करता था। अंग्रेजों के लिए सबसे संतोषजनक बात यह थी कि नेपाल ने ब्रिटिश साम्राज्य के विरुद्ध किसी भावना को समर्थन नहीं दिया। ब्रिटिश साम्राज्य के साथ नेपाल के संबंध शांतिपूर्ण सहअस्तित्व एवं विश्वास के थे। दोनों पक्ष एक दूसरे के प्रति मैत्री का भाव रखते थे। 1857 के विद्रोह के समय नेपाल पूर्णरूपेण तटस्थ बना रहा और ब्रिटिश साम्राज्य ने बड़ी संख्या में गोरखों को भाड़े के सैनिकों के रूप में अपनी सेना में भरती किया। बिना किसी औपचारिक मित्रता संधि के नेपाल सरकार ने अपनी विदेश नीति को अंग्रेजों के हितों के अनुकूल ढाल लिया। उदाहरण के लिए यह तथ्य महत्वपूर्ण है कि ब्रिटिश राजनयिक शिष्टमंडल के अतिरिक्त किसी अन्य शिष्टमंडल को नेपाल में प्रवेश करने की अनुमति नहीं थी।

**बोध प्रश्न 3**

1 निम्नलिखित कथनों में कौन से सही (√) या गलत (×) हैं :

i) चीन का तिब्बत पर दीर्घकाल तक नाममात्र का आधिपत्य रहा।

ii) तिब्बत के प्रति अंग्रेजों के इरादे साम्राज्यवादी नहीं थे।

iii) नेपाल भारत तथा तिब्बत या चीन के बीच मध्यवर्ती (mediatory) राज्य था।

iv) भारत की अंग्रेज सरकार तथा नेपाल के बीच कभी सौहार्दपूर्ण संबंध नहीं रहे।

2 लगभग दस पंक्तियों में इस बात का विवेचन कीजिए कि तिब्बत में अंग्रेजों की रुचि किन कारणों से बढ़ी।

..........................................................................................

..........................................................................................

..........................................................................................

..........................................................................................

..........................................................................................

..........................................................................................

..........................................................................................

..........................................................................................

..........................................................................................

## 6.7 सिक्किम

नेपाल और भूटान के बीच एक छोटा-सा पहाड़ी राज्य है —सिक्किम। इस राज्य में तिब्बत जाने वाले दो दर्रे पड़ते थे। एक मार्ग कालिम्पोंग तथा जेलेप दर्रे से होकर चुम्बी घाटी को जाता था तथा दूसरा मार्ग उधर तिस्ता नदी के साथ-साथ केम्पास, त्सोंग तथा सिंगास्ती को जाता था। तिब्बत पर चीनी प्रभुत्व स्थापित होने से पूर्व सिक्किम राजनीतिक एवं सामरिक दृष्टि से महत्वपूर्ण था क्योंकि यहाँ से होकर तिब्बत जाया जा सकता था। यहाँ की सभ्यता पर तिब्बती बौद्ध भिक्षुओं का प्रभाव था तथा यहाँ एक स्थानीय कुलीन वंश का शासन था। सिक्किम एक स्वतंत्र राज्य था। अठारहवीं शती के अंत तक गोरखाओं ने सिक्किम पर अस्थायी नियंत्रण स्थापित कर लिया था। किंतु अंग्रेजों ने सिक्किम की स्वतंत्रता को बहाल किया तथा 1861 में इसे ब्रिटिश संरक्षित राज्य घोषित कर दिया। दलाई लामा अंग्रेजों के इस कार्य से प्रसन्न नहीं था। 1890 में चीन ने सिक्किम पर ब्रिटिश अधिकार को मान्यता दे दी। अंग्रेजों ने सिक्किम संबंधी नीति अपने हितों की रक्षा के लिए बनाई थी।

## 6.8 भूटान

सिक्किम के पूर्वी भाग से लगा हुआ एक राज्य है — भूटान। भूटानी लोग गरीब थे और प्रायः मैदानी इलाकों में आकर लूटपाट मचाया करते थे। ऐसे ही एक अभियान में भूटानी लुटेरों ने कूचबिहार के राजा का अपहरण कर लिया। कूचबिहार अंग्रेजों के संरक्षण में था। अपहृत राजा को छुड़ाने के लिए वारेन हेस्टिंग्ज ने भूटान पर चढ़ाई कर दी। भूटान की पराजय हुई और ब्रिटिश साम्राज्य में एक छोटा सा भू-भाग और जुड़ गया। किंतु अब भी मौका पाकर, जब अंग्रेजों का ध्यान बँटा होता था, भूटानी लुटेरे लूटपाट करते रहते थे। वे तो अंग्रेज प्रतिनिधियों से दुर्व्यवहार करने से भी नहीं चुकते थे। इन गतिविधियों से क्रुद्ध होकर अंग्रेज सरकार ने दमन और प्रतिरोध की नीति अपनाई तथा भूटान पर दृढ़तापूर्वक अपनी सत्ता स्थापित कर दी। इसका परिणाम यह हुआ कि 1904-6 के यंगहस्बंड अभियान में भूटान ने अंग्रेजों का पूरा साथ दिया। अंततः सर चार्ल्सबेल के प्रयत्नों के फलस्वरूप पुनारवा में एक मित्रता संधि हुई जिसके अनुसार अंग्रेजों ने भूटान को स्वतंत्र संप्रभुता संपन्न राज्य मान लिया किंतु उसकी विदेश नीति अंग्रेजों के नियंत्रण में रही।

## 6.9 उत्तर पूर्वी सीमांत एजेंसी (नेफा)

भूटान और बर्मा के बीच के पहाड़ी क्षेत्र में भी पहाड़ी कबीले बसे हुए थे। ये कबीले हर तरह से अपने उत्तर पश्चिमी बंधुओं की भाँति ही थे, केवल जाति और धर्म में भिन्न थे और व्यावहारिक रूप से पूर्ण स्वतंत्र थे। ये लोग बड़े दुर्दांत और लड़ाके थे तथा अभावग्रस्त होने के कारण मैदानी इलाकों में लूटपाट किया करते थे। 1826 में जब असम को भारत में मिला लिया गया तो लूटपाट की ये घटनाएँ अंग्रेजों के लिए चिंता का विषय बन गईं। इस समस्या को सुलझाने के लिए अंग्रेजों ने उपहार

देने तथा संरक्षण प्रदान करने की नीति अपनाई। जब ब्रिटिश भारत की सीमा पर्वत श्रृंखलाओं तक पहुँच गई तो अंग्रेजों ने सुरक्षा चौकियों की श्रृंखला स्थापित की और तिब्बती सरकार को मैकमोहन सीमा रेखा मानने पर बाध्य किया।

भारत के सुदूर उत्तरपूर्व के प्रदेश में नागा जनजातियां रहती थीं। वहाँ भी सीमा खींचने की आवश्यकता थी। ये कबीले शीघ्र ही अंग्रेजों के नियंत्रण में आ गए। किंतु दुर्गम पर्वत श्रृंखलाओं के कारण यह प्रदेश शेष भारत से कटा ही रहा। ईसाई मिशनरियों ने कुछ नागाओं को ईसाई बना लिया था तथा उस समय के उच्च वर्ग ने पाश्चात्य तौर तरीके अपना लिए थे।

एक अन्य पहाड़ी राज्य मणिपुर भी अंग्रेजों के लिए गंभीर समस्या बना हुआ था। 1826 में मणिपुर के शासक को अंग्रेजों ने महाराजा के रूप में मान्यता दे दी थी। 1886 में तत्कालीन महाराजा की मृत्यु के बाद मणिपुर में अनेक अंग्रेज अधिकारियों की हत्याएँ हो गई। परिणामस्वरूप अंग्रेजों ने मणिपुर को संरक्षित राज्य घोषित कर दिया।

पूर्व में भारत का पड़ोसी देश था बर्मा। अठारहवीं शती के अंत तथा उन्नीसवीं के आरंभ में बर्मा साम्राज्य का निरंतर विस्तार होता रहा। चीन के आधिपत्य से मुक्त होकर बर्मा का साम्राज्य अपना विस्तार करने में व्यस्त था। उसने पूर्व में थाईलैंड तथा पश्चिम में मणिपुर और असम तक अपनी सीमाएँ बढ़ा ली थीं। अपनी इस विस्तारवादी नीति के कारण बर्मा को तीन बड़े युद्धों का सामना करना पड़ा। पहला युद्ध 1824-26 में, दूसरा 1852 में तथा अंतिम 1885 में हुआ। इन युद्धों के परिणामस्वरूप पूरे बर्मा पर अंग्रेजों का अधिकार हो गया।

**बोध प्रश्न 4**

1 निम्नलिखित कथनों में कौन से सही ( √ ) हैं और कौन से ( X ) गलत:
   i) चीन ने सिक्किम पर अंग्रेजों के अधिकार को मान्यता दे दी थी।
   ii) भूटान ने अपनी स्वतंत्र विदेश नीति को कायम रखा।
   iii) ईसाई मिशनरियों ने अधिकांश नागाओं को ईसाई बना लिया था।
   iv) 1885 तक बर्मा ब्रिटिश साम्राज्य का हिस्सा बन चुका था।

2 लगभग दस पंक्तियों में लिखिए कि उत्तर पूर्वी सीमांत एजेंसी (नेफा) में ब्रिटिश सरकार द्वारा अपनाई गई नीति का क्या उद्देश्य था।

..............................................................................................................
..............................................................................................................
..............................................................................................................
..............................................................................................................
..............................................................................................................
..............................................................................................................
..............................................................................................................
..............................................................................................................
..............................................................................................................
..............................................................................................................

## 6.10 सारांश

अब तक हमने जो विश्लेषण किया उसके मोटे तौर पर निम्नलिखित निष्कर्ष निकाले जा सकते हैं:

1 ब्रिटिश भारत की विदेश नीति मुख्य रूप से इस तथ्य पर आधारित थी कि एशिया में रूस और चीन दो शक्तियाँ थीं और उस समय भारत की राजनीतिक गतिविधियों के निर्धारण में इन दोनों देशों के संबंधों का महत्वपूर्ण हाथ था। इस समय चीन की शक्ति पतनोन्मुख थी जबकि रूस मध्य एशिया में अपनी शक्ति का विस्तार कर रहा था। अपने साम्राज्य की सुरक्षा सुनिश्चित करने एवं प्राकृतिक सीमांत की खोज में ब्रिटिश शक्ति तेजी से उत्तर पूर्व की ओर बढ़ रही थी। उन्नीसवीं शती में ब्रिटिश भारत की विदेश नीति के निर्धारण में "रूसी खतरे" (Russian Peril) की भूमिका बहुत महत्वपूर्ण रही।

2 भारत की विदेश नीति के निर्धारण में यहाँ की भौगोलिक स्थिति का भी हाथ रहा। भारत छोटी-छोटी रियासतों से घिरा हुआ था। इन रियासतों से तो भारत को कोई खतरा नहीं था किंतु सामरिक दृष्टि से ये इतनी दुर्बल थीं कि रूस जैसी विदेशी शक्तियों के मन में इन पर आक्रमण करने की बात सहज ही उठ सकती थी। उस स्थिति में भारत के लिए खतरा हो सकता था। इसके अतिरिक्त भारत के सीमांत पर लड़ाकू कबीले बसे हुए थे जिनके कारण उस क्षेत्र में अशांति बनी रहती थी इस कारण भारत के उत्तरी पश्चिमी एवं उत्तर-पूर्वी सीमांत को सुदृढ़ रक्षापंक्ति नहीं कहा जा सकता था।

3 अंग्रेजों की नीतियों का ध्यानपूर्वक अध्ययन करने से स्पष्ट हो जाता है कि उन्होंने भारत में अपना राज सुदृढ़ करने के लिए राज्य प्रशासन को व्यवस्थित किया तथा इस बात की भी पूरी व्यवस्था की कि भारत पर कोई विदेशी आक्रमण न होने पाए।

इस सबके बावजूद यह ध्यान रखना चाहिए कि भारत में अंग्रेजों की विदेश नीति का एकमात्र उद्देश्य ब्रिटिश साम्राज्य के विश्वव्यापी हितों की रक्षा करना था। अगली इकाइयों में हम इस बात पर विचार करेंगे कि भारत के राष्ट्रवादी नेताओं ने इस नीति की आलोचना क्यों की।

## 6.11 शब्दावली

**द्विध्रुवीकरण (Bipolarisation):** दो समूहों अथवा गुटों को एक दूसरे के विरोध में लाने वाली प्रक्रिया।

**व्यापारकेंद्र (Emporium):** ऐसा केंद्र जहां विभिन्न स्थानों से वस्तुएं लाकर रखी और बेची जाती हैं।

**विदेश नीति (Foreign Policy):** किसी देश की वह नीति जिसके अनुसार वह अन्य देशों के साथ बाह्य मामलों में व्यवहार करता है। इसके अंतर्गत अन्य देशों के साथ राजनयिक, आर्थिक, सैन्य तथा सांस्कृतिक संबंध आते हैं। विदेश नीति देशों की आंतरिक नीति की ही अभिव्यक्ति होती है।

**साम्राज्यवादी नीति (Imperialistic Policy):** किसी देश की अन्य कमजोर देशों पर आर्थिक एवं राजनीतिक प्रभुता स्थापित करने की नीति।

**विद्रोह (Insurgency):** स्थापित सत्ताधिकार के विरुद्ध विप्लवात्मक कार्य। इस शब्द का प्रयोग प्रायः सत्ताधिकारपक्ष विरोध अथवा विप्लव के कार्यों को नाम देने के लिए करता है।

**अलगाववादी (Isolationist):** अलग-थलग रहने की नीति का पालन करने वाला व्यक्ति।

**भाड़े के सैनिक (Mercenaries):** पैसे के लिए लड़ने वाले भाड़े के सैनिक जो पैसा देने वाले के लिए लड़ते हैं — देश के लिए नहीं।

**संरक्षित राज्य (Protectorate):** ऐसा देश जो आंतरिक मामलों में तो स्वाधीन रहता है किंतु जिसकी विदेश नीति पर बाह्य शक्ति का नियंत्रण रहता है।

## 6.12 बोध प्रश्नों के उत्तर

**बोध प्रश्न 1**

1 i) √ ii) × iii) × iv) √

2 देखिए उपभाग 6.2.4

**बोध प्रश्न 2**

1 i) × ii) √ iii) √ iv) √

2 देखिए भाग 6.3

**बोध प्रश्न 3**

1 i) √ ii) √ iii) √ iv) ×

2 देखिए भाग 6.5

**बोध प्रश्न 4**

1 i) √ ii) × iii) √ iv) √

2 देखिए भाग 6.9

# इकाई 7 जन विद्रोह : उन्नीसवीं सदी का उत्तरार्द्ध

## इकाई की रूपरेखा


7.0 उद्देश्य
7.1 प्रस्तावना
7.2 औपनिवेशिक प्रभाव
7.3 कृषक, आदिवासी और शिल्पकार
7.4 1857 तक के जन आंदोलन
- 74.1 उड़ीसा
- 74.2 संबल विद्रोह
- 74.3 1857

7.5 1857 के बाद जन—आंदोलन
- 7.5.1 नील विद्रोह
- 7.5.2 मोपला विद्रोह
- 7.5.3 पावना
- 7.5.4 दक्कन के दंगे
- 7.5.5 कोय विद्रोह
- 7.5.6 बिरसा मुंडा विद्रोह

7.6 जन-आंदोलन का स्वरूप
7.7 श्रमिक वर्ग के आंदोलन
- 7.7.1 शिक्षित वर्ग का प्रयास
- 7.7.2 हड़ताल
- 7.7.3 विशेषताएँ

7.8 सारांश
7.9 शब्दावली
7.10 बोध प्रश्नों के उत्तर


## 7.0 उद्देश्य

इस इकाई को पढ़ने के बाद आप:

- 19 वीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध में होने वाले विभिन्न कृषक और आदिवासी आंदोलनों के कारण जान सकेंगे
- इन आंदोलनों के लक्षण और विशेषताओं को बता पायेंगे
- इन आंदोलनों के प्रति औपनिवेशिक शासन का रवैया जान सकेंगे, और
- भारत में श्रमिक वर्ग के उदय के कारण जान सकेंगे
- श्रमिक वर्ग की समस्याएँ समझ पाएंगे
  श्रमिकों के प्रारंभिक संघर्ष के विषय में जान सकेंगे
- इन संघर्षों का महत्व समझ पायेंगे

## 7.1 प्रस्तावना

यह सही है कि 1857 की जनक्रांति को दबाने में अंग्रेजों ने सफलता पा ली थी लेकिन जनसाधारण — विशेष रूप से कृषकों और आदिवासियों के मन में अंग्रेज-विरोधी भावना को समाप्त नहीं किया जा सका क्योंकि दमनात्मक अंग्रेजी शासन के कुप्रभाव से ये सबसे

ज्यादा त्रस्त थे। सरकार द्वारा "जमींदारों" को "जनता का स्वाभाविक नेता" मान लिए जाने से कृषक तथा आदिवासी अंग्रेज शासक और जमींदार दोनों के द्वारा सताए जाते थे।

कृषकों और आदिवासियों ने बहुत सारे प्रदेशों में अंग्रेजों के खिलाफ बगावत का झंडा बुलंद किया। इस इकाई में आपको इन्हीं आंदोलनों से परिचित कराने की कोशिश की गई है।

भारत के ब्रिटिश उपनिवेश का अंग बन जाने के बाद अंग्रेजी पूँजीपतियों ने मुनाफा कमाने के लिए यहाँ अपनी पूँजी लगायी। रेल यातायात के शुरू होने के उपरांत कुछ आधुनिक उद्योग लगाए गए। इस तरह उद्योगीकरण, खेती और रेल के सीमित विकास के कारण एक नए वर्ग "श्रमिक वर्ग" का जन्म हुआ। प्रारंभ में इस शोषित वर्ग को संगठित होने या प्रभावकारी ढंग से अपनी आवाज उठाने का कोई तरीका मालूम नहीं था। लेकिन शीघ्र ही ये श्रमिक अंग्रेज पूँजीपतियों और पश्चिमी उपनिवेशिकों द्वारा अपने शोषण का प्रतिरोध करने लगे। यह इकाई इन श्रमिकों के प्रारंभ में संगठित होने और शोषण के खिलाफ आवाज उठाने के प्रयासों की भी चर्चा करती है।

1850-1900 के बीच कृषक, आदिवासी, शिल्पकार और श्रमिकों के जन-आंदोलनों की चर्चा करने से पहले कुछ तथ्यों का स्पष्टीकरण जरूरी है। मसलन, प्रस्तुत विषय वस्तु पर कोई भी चर्चा औपनिवेशिक परिप्रेक्ष्य में ही संभव है। यह काल मोटे तौर पर अंग्रेजी साम्राज्यवाद के दूसरे चरण यानि कि "औपनिवेशिक पूँजी" का दौर माना जाता है। पहला चरण, जिसे आमतौर पर "व्यापारिक दौर" के नाम से जाना जाता है, मूलतः व्यापार और वाणिज्य पर आधारित है। इस चरण में भारत के औद्योगिक और पूँजीवादी शोषण का विकास देखा जा सकता है। (अंग्रेजी साम्राज्यवाद के विभिन्न चरणों के लिए देखें इकाई 1, खण्ड-1)

## 7.2 औपनिवेशिक प्रभाव

भारतीय कृषि और पारंपरिक हस्तशिल्प उद्योग पर ब्रिटिश साम्राज्यवाद का प्रभाव मुख्य है:

i) भूमि बंदोबस्त (या भू-राजस्व) के नए तरीकों (जैसे स्थायी, रैयतवारी और महलवारी) ने कुछ नयी चीजों जैसे "बाजार-अर्थव्यवस्था" को जन्म दिया तथा पुरानी प्रचलित नीति जैसे चारागाह और जंगल के परंपरागत समुदायिक अधिकारों को नष्ट कर दिया। भू - संबंधी नई नीतियों और विशेषकर भू-राजस्व के नगद भुगतान जैसी नीतियों ने महाजनी (सूद पर कर्ज लेने को) को बढ़ावा दिया। बदले हुए विषम सामाजिक परिप्रेक्ष्य में महाजनी व्यवस्था ने ग्रामीण अर्थव्यवस्था और समाज को पूर्ण रूप से कुछ महाजनों के हाथ में सौंप दिया। आदिवासी क्षेत्रों में यह प्रक्रिया आदिवासियों को खेती में लगाकर उनके परंपरागत व्यवसाय में परिवर्तन लाने में सफल हुई।

ii) सामाजिक विषमता कोई नई बात नहीं थी। किंतु साम्राज्यवाद ने नये तरह का ध्रुवीकरण पैदा कर दिया। यह ध्रुवीकरण अब वैसे लोगों के बीच हो गया था जो भूमि हथिया चुके थे, धन इकट्ठा कर चुके थे और अपने धन की बदौलत न्यायालय में अपनी संपत्ति की रक्षा कर सकते थे दूसरी तरफ वे थे जिनके पारंपरिक अधिकार छीने जा रहे थे। इस विषमता ने नई समस्याओं को जन्म दिया। जिससे अमीर-गरीब के इस नये वर्ग विभाजन के मजबूत होने के साथ-साथ जाति और धर्म का विभाजन भी मजबूत होता गया। उदाहरण के लिए अगर किसी जगह का महाजन किसी खास जाति या धर्म का होता और किसान दूसरी जाति या धर्म से होते तो जाति/धर्म के इस अंतर के साथ वर्ग विषमता, जिसकी चर्चा हम ऊपर कर चुके हैं, के कारण तनाव बढ़ जाता था। इस तरह आदिवासी क्षेत्रों में बाहर से जाकर बसने वाले साहूकार और महाजनों ने इन आदिवासियों का निर्मम शोषण शुरू कर दिया।

iii) औपनिवेशिक नीति का अन्य प्रमुख पक्ष यह था कि ब्रिटिश उद्योगों के लिए कच्चा माल उपलब्ध कराने की दृष्टि से भारतीय कृषि का बल पूर्वक ज्यादा से ज्यादा व्यापारीकरण किया गया। भारतीय कृषकों के लिए यह बहुत ही खतरनाक साबित हुआ क्योंकि कृषक अन्न के अभाव के समय में भी वाणिज्यिक फ़सल, नील और रूई ही उगाने के लिए बाध्य थे।

iv) उपनिवेशवाद शिल्पकारों के लिए भी विनाशकारी साबित हुआ क्योंकि इसके कारण भारत ब्रिटेन में बने सामानों का विक्रय केन्द्र बन गया। ब्रिटेन में सामान बड़ी-बड़ी मशीनों द्वारा तैयार किया जाता था। ये सामान भारतीय शिल्पकारों द्वारा बनाए गए सामानों की तुलना में काफी सस्ता और उत्कृष्ट होता था। इस स्थिति में कपड़ा और नमक जैसे पारंपरिक उद्योगों का लगभग सफाया ही हो गया। नई स्थिति ने न केवल बहुत सारे शिल्पकारों को बेरोजगार कर दिया बल्कि इसने खेती पर बोझ भी बढ़ा दिया क्योंकि अब इन शिल्पकारों के लिए खेती के सिवा और कोई रास्ता नहीं रह गया था।

## 7.3 कृषक, आदिवासी और शिल्पकार

आगे और चर्चा करने से पहले आइये हम कृषक, आदिवासी और शिल्पकारों के विषय में कुछ जानकारी ले लें।

i) जब हम कृषकों की बात करते हैं तो उन सब लोगों की चर्चा करते हैं जो खेती की प्रक्रिया से सीधे जुड़े रहते हैं। इन लोगों में कुछ तो गरीब थे किन्तु कुछ उनकी तुलना में अधिक संपन्न थे। उपनिवेश काल में यह अंतर और भी बढ़ गया। जमीन के मालिकों की तुलना में किसानों की स्थिति और भी खराब हो गई क्योंकि सरकार जमीन पर सिर्फ जमींदारों के अधिकार को ही स्वीकार करती थी। किसान अब सिर्फ पट्टेदार ही रह गए थे क्योंकि नए कानूनों के अनुसार जमींदार पट्टेदार को किसी भी समय जमीन से हटा सकता था।

ii) भारत में बहुत सारे आदिवासी समूह थे जैसे खोंड, सवार, संथल, मुंडा, कोय,कोल आदि। लेकिन जब हम आदिवासियों की चर्चा करते हैं तो इसका मतलब सिर्फ घूम-घूमकर शिकार तथा भोजन एकत्रित करने वाले समूहों से ही नहीं है बल्कि ऐसे आदिवासी समूहों से है जो जीविकोपार्जन के लिए एक निश्चित स्थान पर बस गये थे और खेती करने लगे थे। ये आदिवासी-कृषक एक जगह बस तो गये परंतु खेती के अलावा ये लोग शिकार भी करते थे एवं वन में पाये जाने वाली लकड़ियों जैसे बाँस आदि का सामान भी बनाते थे। उनके दृढ़ जातीय बंधन और अपेक्षाकृत अलग-अलग रहने की प्रवृत्ति भी उन्हें सामान्य कृषकों से अलग करती है।

iii) शिल्पकार वे लोग थे जो कपड़ा, नमक तथा लोहे के आदि सामानों के उत्पादन में लगे थे ये व्यवसाय ज्यादातर पैतृक व्यवसाय के रूप में चले आ रहे थे। जैसा कि पहले भी बताया जा चुका है ब्रिटेन में बने मिल के सामान के आ जाने से इनके सामान बाजार में नहीं बिक पाते थे। शिल्पकार के विषय में ऐतिहासिक प्रमाण बहुत कम उपलब्ध हैं क्योंकि इन्हें अक्सर कृषक या आदिवासियों के साथ ही सम्मिलित किया जाता था।

**बोध प्रश्न 1**

निम्नलिखित कथनों में कौन सही है और कौन गलत? सही कथनों के सामने (✓) और गलत के सामने (×) का चिन्ह लगाएँ।

i) अंग्रेजों की भूमि नीति महाजनी व्यवस्था को बढ़ावा देती थी।
ii) अंग्रेजों की नीति के कारण आदिवासियों के पारंपरिक अधिकार खतरे में पड़ गए थे।

iii) अंग्रेजी सामानों के भारतीय बाजार में आ जाने से यहाँ के शिल्पकारों को काफी सहायता मिली थी।
iv) कृषक से हमारा अर्थ ऐसे लोगों से है जो कृषि कार्य से सीधे-सीधे जुड़े हुए थे।

2 पाँच पंक्तियों में लिखें कि उपनिवेशवाद ने किस प्रकार भारत में सामाजिक विषमता को बढ़ावा दिया।

.............................................................................................

.............................................................................................

.............................................................................................

.............................................................................................

.............................................................................................

## 7.4 1857 तक के जन-आंदोलन

अब हम 1857 तक के जन-आंदोलनों की चर्चा करेंगे। इसके बाद 1850 से 1900 के बीच होने वाले कृषक आदिवासी और शिल्पकारों के मुख्य आंदोलन जैसे फितुरि, मेलि, हूल तथा उलगुलन की चर्चा की जाएगी।

### 7.4.1 उड़ीसा

1850 के दशक के प्रारंभ में उड़ीसा में कुछ आदिवासी आंदोलन हुए। घुमसर के खोंड और बौड़ (1854-56) तथा पार्लियाखेमदी के सवार कई लोकप्रिय आंदोलन के प्रणेता बने।

इन आंदोलनों का श्रेय चक्र बिसोई को जाता है जो 1837 से गिरफ्तारी से बचे रहने में सफल रहा। इन आदिवासी आंदोलनों का मुख्य कारण अंग्रेज प्रशासकों द्वारा ''खोंडों'' में प्रचलित नरबलि की प्रथा - ''मेरिया'' - को रोकने का प्रयास था। बदली हुई परिस्थितियों में नये दबावों और अनिश्चितता ने खोड़ों को इस बात के लिए प्रेरित किया कि वे ''मेरिया'' के जरिये भगवान को खुश कर सकें ताकि हल्दी की अच्छी पैदावार हो सके। लेकिन सरकार इस प्रथा को रोकने के लिए कृत संकल्प थी। कुछ सरकारी अधिकारियों का मानना था कि खोड़ों की आर्थिक स्थिति अच्छी होने से ''मेरिया'' की बलि प्रथा समाप्त हो जाएगी।

चक्र बिसोई और आदिवासियों के प्रारंभिक आंदोलन के विषय में बहुत कम जानकारी उपलब्ध है। चक्र बिसोई ने एक ऐसे लड़के का मामला उठाया था जिसे खोंड मानते थे कि वो धुंमार का राजा था। कुछ ऐसे प्रमाण मिलते हैं जिससे पता चलता है कि खोड़ों ने धुंमार की कुछ बस्तियों पर हमला किया था (1854) और चक्र बिसोई का विरोध करने से इंकार कर दिया। आंदोलन को दबाने के प्रयास में पुलिस ने एक साधू को चक्र समझकर हिरासत में ले लिया ऐसा प्रतीत होता है पताना और कालाहण्डी के कुछ जमींदारों और राजाओं ने जो अंग्रेजी शासन से सशंकित थे चक्र से संपर्क बनाए रखे।

राधाकृष्ण दण्डसेना के नेतृत्व में 1856-57 में पर्लियाखेमदी में सवार आंदोलन हुआ। अंग्रेज शासक ये मानते थे कि इस आंदोलन और चक्र बिसोई जिसे गिरफ्तार करना मुश्किल था के बीच कुछ संबंध था। 1856 के बाद चक्र बिसोई के बारे में कुछ भी सुना नहीं गया। 1857 में दण्डसेना को फाँसी पर लटका दिये जाने से सवार आंदोलन ठण्डा पड़ गया। इसके बाद चक्र बिसोई जनता की स्मृति में धूमिल होता गया। ये कहना मुश्किल है कि चक्र बिसोई सचमुच ही इन आंदोलनों से जुड़ा था या सिर्फ आदिवासियों के आंदोलन का प्रतीक बन गया था।

## 7.4.2 संथल विद्रोह

1855-57 में हुए वीरभूम, बाँकुरा, सिंहभूम, हजारीबाग, भागलपुर और मुंगेर के आदिवासी विद्रोह प्रमुख हैं। इन विद्रोहों के भड़कने में औपनिवेशिक शासन के स्वरूप की अहम् भूमिका है। उत्तरी और पूर्वी भारत से कुछ ऐसे जमींदार और सूदखोरों की चर्चा मिलती है जो आदिवासियों को पूरी तरह अपने चंगुल में दबा कर रखते थे। ये सूदखोर 50 प्रतिशत से 500 प्रतिशत की दर पर पैसा उधार दिया करते थे। इसके लिए साहूकार दो तरीके अपनाते थे। एक तरफ ''बड़ा बान'' उनसे सामान लेने के लिए और दूसरी तरफ ''छोटा बान'' उनको सामान देने के लिए। वे संथलों की जमीन भी हड़प लेते थे।

जमींदारों के बिचौलिये भी निर्दयता से आदिवासियों का शोषण करते थे। यहाँ तक कि हमें बंधुआ मजदूरी और रेल लाइनों पर काम कर रही महिलाओं को अपनी हवस का शिकार बनाने का भी उदाहरण मिलता है।

जब विद्रोह शुरू हुआ तो यह प्रमुखतः महाजन और व्यापारियों के खिलाफ था न कि अंग्रेजों के। आदिवासियों ने एलान किया कि उनके नये भगवान ने उन्हें आदेश दिया था कि वे हर एक भैंस वाले हल के लिये दो आना और हर एक गाय वाले हल के लिए आधा आना की दर से सरकार को कर दें। उन्होंने सूद की दर भी तय कर दी जो कम थी। महाजनों पर हुए गुप्त आक्रमण के लिए संथलों को सजा दी जाती थी जबकि उनके शोषकों पर कोई अंकुश नहीं था, उनको डाँटा भी नहीं गया। इससे पुनः विद्रोह फैला और गलत तरीके से पैसा बटोरने वाले महाजनों के यहाँ चोरी, डकैती, सेंधमारी आदि की घटनाएँ बढ़ने लगी।

ऐसी स्थिति में सिद्दो और कानू ने यह घोषणा करके कि उनके भगवान (ठाकुर) ने उन्हें अपने शोषकों की आज्ञा का उल्लंघन करने का आदेश दिया है, बारूद में आग का काम किया। 30 जून 1855 को दस हजार संथल भागड़ीही में जमा हुए जहाँ सिद्दो और कानू ने ''भगवान के वचन'' का एलान किया कि संथल अपने शोषकों के चंगुल से बाहर आएँ। संथलों ने इस विद्रोह को ''बुराई'' पर ''अच्छाई'' की विजय का नाम दिया। उनकी यह मान्यता थी कि उनका भगवान उनके साथ लड़ेगा जिससे इस विद्रोह को एक नैतिक औचित्य भी प्राप्त हुआ।

1. संथल नेता सिद्दो

किस तरह इस विद्रोह ने तूल पकड़ा और कैसे समकालीन परिस्थितियों में इसका स्वरूप विकसित हुआ, यह जानकारी दिलचस्प है। मुख्य रूप से यह विद्रोह महाजनों और व्यापारियों के खिलाफ था परंतु बाद में पुलिस,गोरे काश्तकार, रेलवे अभियन्ता और अधिकारियों के भी खिलाफ हो गया। संथलों ने यह स्पष्ट कर दिया कि वे औपनिवेशिक शासन के भी खिलाफ हैं।

विद्रोह छह महीनों तक चला। पूर्व सूचना देकर आदिवासियों ने बहुत सारे गाँवों पर हमला कर दिया। विद्रोहियों द्वारा जमींदारों और सरकार पर बहुत दबाव डाला गया। कई इलाकों में जमींदारों ने विद्रोह को दबाने में शासन की मदद की।

2 पाकुर का किला जहाँ संथलों से मात खाकर अंग्रेज सिपाहियों ने शरण ली।

### 7.4.3 1857

इसके बाद हम संक्षेप में 1857 की जन-क्रांति के बारे में कुछ कहना चाहेंगे। इतिहासकारों में इस विद्रोह में जनता की भागीदारी को लेकर मतभेद है। कुछ विद्वान जैसे ऐरिक स्टोक्स (पीजेन्ट एण्ड राज- कैंब्रिज- 1978) लिखते हैं कि इस आंदोलन में ग्रामीण अभिजात्य वर्ग (जमींदार आदि) कृषक और शिल्पकारों का मार्गदर्शन कर रहे थे क्योंकि अंग्रेजों के आने से इनके स्वार्थों को भी धक्का लगा था। दूसरे इतिहासकार जैसे एस.बी. चौधरी और (थियोरीज ऑफ द इन्डियन म्युटिनी - 1857-59 कलकत्ता 1965) रूद्रांशु मुखर्जी (अवध इन रिवोल्ट - दिल्ली - 1984) का मानना है कि कुछ अपवादों को छोड़कर अधिकांशतया भूपति ही इसका मार्गदर्शन कर रहे थे। अधिक महत्वपूर्ण यह है कि कृषक ही विद्रोह की शक्ति थे और जो सिपाही थे वो भी वर्दी में कृषक ही थे।

सूदखोरों के खिलाफ आम असंतोष के कारण कृषक और शिल्पकार संगठित हो गए। अंग्रेज शासन "बनियों का राज" समझा जाता था और विद्रोह सूदखोरों और अंग्रेजों दोनों के खिलाफ था। इसके साथ-साथ कृषकों के प्रथागत अधिकारों में कटौती से भी क्षोभ था।

विद्रोह के स्वरूप से स्पष्ट है कि इसके अंग्रेज विरोधी सामन्त – विरोधी चरित्र का उदय इसी समय हुआ था।

फिरंगी राज के चिह्न जैसे पुलिस थाने, रेल की पटरी, टेलीग्राफ के तार आदि नष्ट कर दिए गए। 1857 के साथ जो दूसरे जन-आंदोलन हुए उनमें हमें दस्तावेज नष्ट किए जाने का भी प्रमाण मिलता है। बही खातों के नष्ट करने का अर्थ था – नई कर-नीति का विरोध। आक्रमण के लक्ष्य मुख्यतया विदेशी थे परंतु उनके भारतीय सहयोगी जैसे साहूकार, नीलामी ठेकेदार, महाजन और व्यापारी भी कुछ प्रदेशों में विरोध के लक्ष्य बने।

इस दौर में शाहजहाँपुर, साहिबाबाद, गया और पलामू में उद्योगों के नष्ट किए जाने का भी उदाहरण मिलता है। हमारे प्रमाण बहुत सीमित हैं किन्तु ये प्रमाण साफ-साफ शिल्पकारों के उद्योगीकरण के खिलाफ क्षोभ को दर्शाते हैं। शिल्पकार नए यंत्रों के आने से शंकित थे। ये प्रवृत्ति ब्रिटेन में शुरू के उद्योगीकरण के समय (1830) भी पायी जाती है।

ब्रिटिश सत्ता के समाप्त होने से और आजादी के आभास के कारण कृषक और शिल्पकारों ने अमीर सामन्तों की जमीन हड़प ली और उनके घरों को लूटा। उनकी संपत्ति के कागज और सरकारी दस्तावेज नष्ट कर दिए गए।

इस स्थिति ने विद्रोह के स्वरूप को बदल दिया। कुँवर सिंह जैसे बड़े जमींदार ने जो बिहार में विद्रोह का नेतृत्व कर रहे थे अपने अनुयाइयों को ऐसे काम से रोक दिया क्योंकि ऐसा करने पर ब्रिटिश शासन के बाद संपत्ति के सही आधिपत्य का निर्णय और एक पर दूसरे के देय का पता करना मुश्किल हो जाता।

**बोध प्रश्न 2**

1) विद्रोह और उससे जुड़े हुए नेताओं के नामों का मिलान करें :

| | |
|---|---|
| i) चक्र बिसोई | अ) सवार विद्रोह |
| ii) सिद्दो और कानो | ब) खोंड और घुमसर |
| iii) राधाकृष्ण दण्डसेना | स) संथल विद्रोह |

2) संथलों की समस्याओं का पाँच पंक्तियों में वर्णन करें।

.................................................................................................
.................................................................................................
.................................................................................................
.................................................................................................
.................................................................................................

3) निम्न वक्तव्यों में कौन सही (✓) और कौन गलत (×) है?

i) खोंड़ बलि देकर अपने भगवान को अच्छी फसल के लिए खुश करते थे।
ii) राधाकृष्ण दण्डसेना अंग्रेजों द्वारा पुरस्कृत किए गए थे।
iii) जमीदारों ने अंग्रेजों के संथल विद्रोह कुचलने में सहायता दी थी।
iv) इतिहासकारों में 1857 के विद्रोह के विषय में लोगों के भाग लेने के विषय में कोई मतभेद नहीं है।
v) शिल्पकार नई मशीनों के आगमन का स्वागत कर रहे थे।

## 7.5 1857 के बाद के जन – आंदोलन

1857 के विद्रोह के बाद जन – आंदोलन समाप्त नहीं हुए। हम देखते हैं कि इसके बाद भी बहुत सारे आंदोलन हुए। इनमें से कुछ की चर्चा हम करेंगे।

### 7.5.1 नील विद्रोह

1859 का बंगाल का नील विद्रोह एक प्रमुख विद्रोह है जिसकी चर्चा हम करना चाहेंगे। 1770 में ईस्ट इंडिया कंपनी द्वारा नील की खेती शुरू की गयी। अंग्रेज काश्तकारों द्वारा जबरदस्ती तथा कानूनी तिकड़मों द्वारा किसानों को घाटे पर भी नील उगाने के लिए बाध्य किया जाता था। चूँकि कृषक स्वयं खाने तक के लिए अनाज नहीं उगा पाते थे अतः इससे उनमें बहुत असंतोष पैदा हुआ। 1859 तक हजारों कृषकों ने नील की खेती करने से इंकार कर दिया। उन्होंने अपने संगठन बनाये तथा बागान-मालिकों और उनके सैनिकों का प्रतिरोध करने लगे। समकालीन अखबार जैसे "द बंगाली" में विस्तार से इसकी रपट प्रकाशित की गई और बताया गया कि विद्रोह सफल रहा था। दीनबंधु मित्र ने बंगला में "नीलदर्पण" लिखा और नील कृषकों की दुर्दशा को उजागर किया।

नील विद्रोह के कारण सरकार जाँच समिति गठित करने को बाध्य हो गई (1860), विद्रोह की वजह से बंगाल में बगीचा प्रथा को काफी नुकसान पहुँचा और खेतिहरों को बाध्य होकर बिहार चले जाना पड़ा।

3. बंगाल के नील विद्रोह का क्षेत्र

4. दीनबंधु मित्र

## 7.5.2 मोपला विद्रोह

1850-1900 के बीच मलाबार में मोपला विद्रोह शुरू हुआ। चूँकि जेनमी जमींदारों को पुलिस कानून और कर अधिकारियों द्वारा समर्थन मिल रहा था अतएव उन्होंने मोपला कृषकों पर अपनी गिरफ्त बढ़ाई। कृषकों ने जमींदारों और अंग्रेजों के खिलाफ विद्रोह कर दिया। यह एक रोचक तथ्य है कि उक्त विद्रोह, जो मुख्य रूप से अमीर और गरीब के बीच की लड़ाई थी, को औपनिवेशिक शासकों ने सांप्रदायिक रूप दे दिया क्योंकि जमींदार हिन्दू और कृषक मुसलमान थे। जमींदारो का अधिकाधिक बढ़ता अत्याचार 1880 तक चलता रहा। कृषकों के विद्रोह का गला घोटने के लिए उन्होंने कई विद्रोहियों को जिंदा जला दिया ताकि उनका उत्साह समाप्त हो जाए। डी.एन. धनागरे ने अपनी पुस्तक (पीजेन्ट मूवमेन्ट, इन इंडिया, 1920-50, दिल्ली 1903) में बताया है कि कैसे इन अत्याचारों के कारण कृषक बदला लेने पर उतारू हो गये।

1857 में मोपला कृषकों की ओर से मद्रास सरकार को बेनामी दरखास्त दी गयी जिसके कारण जाँच शुरू हुई। 1882-85 के बीच पुनः जमींदारों और कृषकों के बीच मनमुटाव बढ़ा और कृषकों ने लूट और आगजनी के साथ-साथ मंदिरों को भी नुकसान पहुँचाया। इन कारनामों की वजह से इस विद्रोह को जो मुख्य रूप से जमींदार और कृषकों के बीच का वर्ग संघर्ष था, हिन्दू विरोधी संघर्ष का नाम दे दिया गया। 1896 तक मोपला विद्रोह ने आक्रामक जातीय दंगे का रूप ले लिया।

## 7.5.3 पाबना

दूसरा मुख्य विद्रोह बंगाल में पाबना (1873-1885) के कृषकों ने किया। 1859-73 तक पाबना के कृषकों ने कर में वृद्धि का कोई विरोध नहीं किया और इस अधिक बढ़ी हुई दर पर बिना किसी विरोध के कर देते गए। विद्रोह की जड़ में यह कारण था कि जमींदार कृषकों से उनकी जमीन पर से उनका अधिकार छीन लेना चाहते थे। अधिकार युक्त किसानों को जबरदस्ती दस्तख्त करा कर पट्टेदार बना दिया गया।

कृषकों को नए कानूनों के ज्ञान से उन पर हो रहे अत्याचारों का बोध हो गया। कुछ स्थानों में जैसे त्रिपुरा में अनुचित उधारी की भी प्रथा थी। 1873 में पाबना के कृषकों ने "एगरेरियन लीग" बनाई जो शीघ्र ही पूरे जिले में फैल गयी। बहुत सारे अखबारों के द्वारा जैसे "अमृत बाजार पत्रिका" जो जमींदार समर्थक था लीग का विरोध किया गया। जो बात विचारणीय है वो यह कि कृषक ब्रिटिश शासन का विरोध नहीं कर रहे थे, वे कहते थे कि उनकी इच्छा "इंग्लैंड की रानी" का किसान बनने की है। वे अपने सताए जाने का विरोध कर रहे थे न कि उधार चुकाने का। वे अपने सुधार के लिए "रानी का किसान" बनना चाहते थे।

कुछ तथ्यों से हमें पता चलता है कि शुरू-शुरू में औपनिवेशिक शासन कृषकों का समर्थक रहा तथा उन पर जमींदारों के अत्याचार के मामलों में कृषकों का पक्ष लिया। जैसे-जैसे आंदोलन आगे बढ़ा और संगठित होने के नए तरीके सामने आने लगे कृषकों ने जमींदारों की असंवैधानिक माँगों के खिलाफ आवाज उठाई। कल्याण कुमार गुप्त (Pabna Disturbances and the Politics of Rent, 1873-85, NewDelhi, 1974) ने विद्रोह के कानूनी पक्ष की चर्चा करते हुए बताया है कि हिंसा की वारदात बहुत कम थी और कृषक मुख्यतः अपनी संपत्ति बचाने के लिए ही कार्य कर रहे थे।

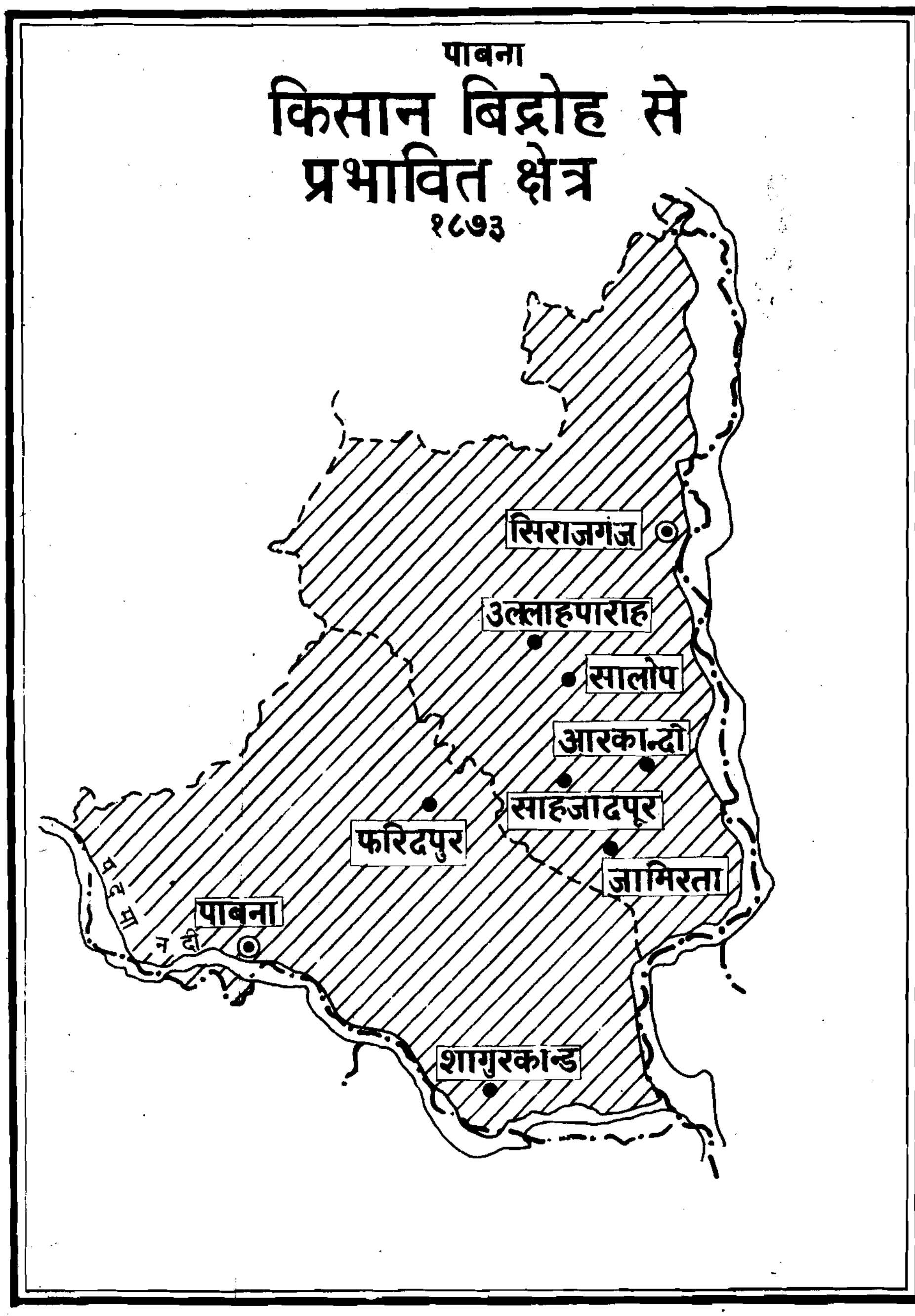


5. पाबना विद्रोह का क्षेत्र

जैसे-जैसे विद्रोह बढ़ता गया जमींदार भी बदला लेने का उपाय करने लगे। कृषकों के मुख्य रूप से मुसलमान होने के कारण (करीब दो तिहाई कृषक और 70 प्रतिशत आबादी मुसलमान थी) जमीदारों और अंग्रेजों ने इसे सांप्रदायिक दंगे का नाम दिया। लेकिन यह तथ्य महत्वपूर्ण है कि दो कृषक नेता केशवचंद्र राय और शंभुनाथ पाल हिन्दू थे।

1873 से करीब एक दशक तक पाबना विद्रोह ने जमींदारों द्वारा कृषकों के शोषण को कुछ हद तक थामे रखा। धीरे-धीरे विद्रोह ढाका, राजशाही, बाकरगंज, फरीदपुर, त्रिपुरा और बोगरा में भी फैल गया।

### 7.5.4 दक्कन के दंगे

दक्कन के दंगों (1875) का मुख्य कारण रैयतवारी प्रथा थी। हमें ऐसे सूदखोरों का उदाहरण मिलता है जो कृषकों को ऊँची ब्याज दर के जरिये (25 प्रतिशत से 50 प्रतिशत) लूट रहे थे। कर वसूली की सामूहिक व्यवस्था के लोप होने से पूर्व की तरह सूदखोर गाँव की कानूनी व्यवस्था से बाध्य नहीं था। अदालतें और नए कानून "वानि" (गाँव के सूदखोर) और कुनवी (कृषक जाति) के बीच के अंतर को उजागर कर रहे थे और वानि की सहायता भी कर रहे थे। इससे कृषकों से सूदखोरों के पास संपत्ति के स्थानान्तरण में मदद मिल रही थी। कुनवी की अचल संपत्ति को भी उगाही के लिए बेचा जा सकता था। इन सब समस्याओं के साथ-साथ आबादी भी बढ़ रही थी और औपनिवेशिक शासकों की कर वृद्धि की अव्यवहारिक नीति भी जारी थी।

इन परिस्थितियों में स्थिति विस्फोटक हो गई। पूना के सार्वजनिक सभा के युवा ब्राह्मण नेता और प्रतिष्ठित जमींदार परिवारों ने जिन्हें स्वयं समस्याओं का सामना करना पड़ रहा था कृषकों के लिए लड़ना शुरू कर दिया। टाइटिल डीड और मॉरगेज बांड,जिसे वानियों द्वारा अत्याचार का हथकंडा बना लिया गया था,कुनवी उस पर उनका स्वामित्व खत्म कराना चाहते थे।

दक्कन के दंगों ने कुनवी और वानि को अलग कर दिया। जैसा कि हम पहले भी देख चुके हैं यहां पर भी वर्ग संघर्ष को जाति संघर्ष का रंग दिया गया।

### 7.5.5 कोय विद्रोह

1879-80 के दौरान जिसे आज का आंध्र प्रदेश कहा जाता है, में कोय विद्रोह हुआ। कोय विद्रोह से उड़ीसा के कोरापुट जिले का मलकानगिरि क्षेत्र भी प्रभावित था। कोय नेता तोमा डोरा ने इस विद्रोह का नेतृत्व किया। विद्रोह आदिवासियों द्वारा महसूस की जा रही परेशानियों को उजागर करता है। आदिवासियों के जंगल पर चले आ रहे पारंपरिक अधिकार में कमी और सूदखोरों द्वारा उनकी आर्थिक स्थिति पर पूरी तरह कब्जे के खिलाफ यह विद्रोह हुआ। सूदखोर उनकी जमीन अपने नाम लिखवा रहे थे।

कोय तोमा डोरा को कोय मलकानगिरि का "राजा" मानते थे। इसके प्रमाण मिलते हैं कि मोटू में इन लोगों ने पुलिस थाने पर कब्जा कर लिया था। इसके शीघ्र बाद डोरा पुलिस गोली से मारा गया और विद्रोह लड़खड़ा गया।

### 7.5.6 बिरसा मुंडा विद्रोह

अंतिम विद्रोह जिसकी चर्चा हम करेंगे वह 1874 से 1901 के बीच का था। 1895 के बाद से इस विद्रोह का नेतृत्व बिरसा मुंडा कर रहे थे। दक्षिण बिहार के छोटानागपुर क्षेत्र के करीब 400 वर्ग मील में यह विद्रोह फैल गया था।

औपनिवेशिक शासन से आदिवासियों के लिए उत्पन्न हुई परेशानियां – पारंपरिक अधिकार में कटौती, बंधुआ मजदूरी तथा औपनिवेशिक कानून इस विद्रोह का संबंध शुरू में इसाई धर्म से था। जैसा कि के.एस. सिंह (बिरसा मुंडा एण्ड हिज मूवमेंट, 1874-1901, दिल्ली,

1983) लिखते हैं कि आदिवासी इस कारण इसाई धर्म स्वीकार कर रहे थे ताकि जर्मन मिशनरी जमींदारों के अत्याचार को खत्म कर दें। 1857 के समय कुछ जमींदारों ने मिशन पर भी हमला किया क्योंकि मिशनरी मुंडा लोगों के प्रति सहानुभति रखते थे। 1858 से हमें इसाई आदिवासियों द्वारा अत्याचारी जमींदारों के खिलाफ लड़ने का भी प्रमाण मिलता है। यह प्रवृति 1862 से 1882 के बीच बहुत आम थी। 1867 में 14,000 "इसाइयों" ने छोटानागपुर के राजा और स्थानीय पुलिस के खिलाफ औपनिवेशिक अधिकारियों को अर्जी भी दी थी। बेदखल मुंडा लोगों को जमीन पर दखल दिलाने का भी कुछ प्रयास किया गया था।

मार्च 1879 में मुंडा लोगों ने यह एलान किया कि छोटानागपुर उनका है। 1881 में कुछ सरदारों ने जॉन द वापटिस्ट के नेतृत्व में देवसा के राज्य की घोषणा कर दी। इसके बाद विद्रोह में कुछ परिवर्तन आया। जर्मन पादरियों से नाखुश होकर मुंडा लोगों ने उनसे अपना संबंध तोड़ लिया। अब वे कैथोलिक मिशन के पास चले गए। औपनिवेशिक प्रशासक और जमींदार विद्रोह को खत्म करने के लिए आपस में सहयोग करने लगे जिसका परिणाम यह हुआ कि विद्रोही सारे यूरोपीय लोगों, इसाई मिशन, सरकारी अफसर, दिकु और जमींदारों के खिलाफ हो गए।

6. बिरसा मुंडा

इन परिस्थितियों में इनका नेतृत्व बिरसा मुंडा करने लगे। बिरसा मुंडा शुरू में अपने दवा के ज्ञान और बीमारों को ठीक करने की शक्ति के कारण जाने गए थे। मुंडा एक ऐसी स्थिति की कल्पना करने लगे जिसमें न तो देशी और न ही विदेशी शोषक हों। ताकतवर शासक से जीत के प्रयास में वे "जंगल के पार्नी" पर विश्वास करने लगे और उन्हें ऐसा विश्वास हो गया कि वो उन्हें अपराजेय बना देगा। इस विद्रोह में महिलाओं की भी भूमिका महत्वपूर्ण थी। कुछ मौकों पर हिंसा भी हुई लेकिन विद्रोह में गरीब गैर-आदिवासियों के खिलाफ कोई भी भाव नहीं था।

बिरसा मुंडा का विद्रोह निर्ममता से दबा दिया गया। बिरसा को फाँसी पर लटका दिया गया और शासक तंत्र को कठोरता से पेश आने का आदेश दिया गया।

7. बिरसा के अनुयायियों की गिरफ्तारी

ऊपर दिये गए तथ्यों से कुछ निष्कर्ष निकाले जा सकते हैं। जन-आंदोलन जिनकी चर्चा हम कर रहे हैं, औपनिवेशिक शासक और भारतीय धनाढ्य (सूदखोर और जमींदार) जिसे वे दिकु कहते थे, दोनों के खिलाफ था। ध्यान देने योग्य बात यह है कि दिकु के खिलाफ यह आंदोलन इसलिए नहीं था कि वे गैर-आदिवासी थे बल्कि इसलिए था कि वे अत्याचारी थे।

## 7.6 जन-आंदोलन का स्वरूप

इन विद्रोहों के कुछ अंतर्निहित प्रमुख लक्षण थे:

i) इन सब विद्रोहों में पुराने और सुनहरे दिनों को याद करने का प्रयास था। इसमें 1857 के समय मशीनों का विरोध भी निहित था। ये विद्रोह बेहतर वर्तमान के लिए थे इन विद्रोहों में प्रचलित पद्धति जैसे साहूकारी, जमींदारी और ब्रिटिश प्रशासन का विरोध भी शामिल था। उदाहरण के लिए सिदो और कानो वर्तमान कर के बदले वार्षिक कर के पक्ष में थे।

   कई बार पारंपरिक समृद्ध वर्ग का भी नेतृत्व इन्हें मिला क्योंकि उपनिवेशवाद से उनके स्वार्थों को भी धक्का पहुँचा था।

ii) इसके विपरीत कुछ अवसरों पर ये औपनिवेशिक ताकतों के साथ मिलकर जमींदार और साहूकार के खिलाफ लड़ाई लड़े परंतु मुंडा अनुभव से ये समझने लगे कि उनका एक ही दुश्मन है और वो है उपनिवेशवाद। कुछ अवसरों पर ब्रिटिश शासन के भ्रम से भी कुछ लोगों को गलतफहमी हो गयी जैसे पाबना विद्रोह में, जिसमें लोग "रानी के किसान" बनना चाहते थे। इससे निश्चित तौर पर उपनिवेशवाद के खिलाफ आंदोलन को धक्का पहुँचा। ये विचारणीय है कि ये विद्रोही कैसे अपने मित्र और दुश्मन का निर्णय करते थे। 1857 में जो विद्रोह अंग्रेजों के खिलाफ शुरू हुआ वह मुख्यतः सामंतवाद के खिलाफ चला गया और सामंतों के लिये परेशानी का कारण बना। फिर सामंत विरोधी और इसाई बिरसा मुंडा विद्रोह भी उपनिवेशिवाद विरोधी हो गया।

iii) जिन जन-आंदोलनों की चर्चा हम कर रहे हैं वह एक ऐसे न्यायोचित समाज की

कल्पना करता था जिसमें सबको बराबरी का दर्जा हो और हर कोई प्रसन्न हो। ये कृषकों के रामराज्य की कल्पना थी। कृषक चिन्तन में सिदो, कानो और बिरसा जैसे मसीहाओं के अवतरण की उम्मीद थी।

iv) इन जन - आंदोलनों में जाति और धर्म की भी बड़ी अहम भूमिका थी। इस देश में जाति और धर्म के बहुतायत के कारण हम देखते हैं कि जब भी ये विद्रोह वर्ग संघर्ष का सीधा रूप लेने को होते थे उसमें सांप्रदायिक भाव आ ही जाता था। सामंती जमींदार समय-समय पर जब उनके अस्तित्व पर खतरा आ जाता था तो इन जन आंदोलनों को सांप्रदायिक रंग दे देते थे। मालाबार और पाबना का उदाहरण यहाँ दिया जा सकता है जहाँ जन - आंदोलनों को जमींदारों द्वारा दंगे का नाम दे दिया गया था।

धर्म और जन - आंदोलनों की चर्चा करते समय हम देखते हैं कि कैसे मालाबार और छोटानागपुर में जन-साधारण को इसने अत्याचारियों के खिलाफ संगठित किया था। इसाई धर्म इस देश में औपनिवेशिक शासन की ही देन था फिर भी यह सामंतों और औपनिवेशिक शासन के खिलाफ हो गया जो इस बात को उजागर करता है कि भारत जैसे देश में इसकी भूमिका कैसे बदली। धर्म के इस दोहरे रूप को समझना जरूरी है।

v) इन जन - आंदोलनों का दूसरा महत्वपूर्ण पहलू अमीरों के खिलाफ अपराध और लूट का था। जबकि ये अपराध सरकारी दस्तावेजों में छोटे ही माने गए हैं फिर भी ये जन आंदोलन के अंग थे। अत्याचारियों पर प्रहार करना सिर्फ उन्हें सबक सिखाने के लिए था। इसी वजह से इन अपराधों को जन सहमति मिल जाती थी और ये सामूहिक रूप से किए जाते थे।

vi कृषक आदिवासी और शिल्पकारों में एकता का भाव भी महत्वपूर्ण पहलू है। यह रोचक है कि क्षेत्रीय और जातीय बाधाएं जन - आंदोलन में टूट जाती थीं। उदाहरण के लिए पाबना विद्रोह अपने क्षेत्र से बाहर भी फैला और बिरसा विद्रोह में मुंडा और कोल दोनों ही संगठित हुए जिसमें गरीब गैर आदिवासियों के खिलाफ कोई भावना नहीं थी।

vii) ये जन - आंदोलन बुद्धिजीवी और जन साधारण के बीच फर्क को कम करने में काफी हद तक सफल रहे। यह प्रवृत्ति खास तौर से बंगाल में देखी जा सकती है जहाँ कुछ अखबारों और पुस्तकों (जैसे नीति दर्पण, 1860) में किसानों के प्रति सहानुभूति व्यक्त की गयी।

**बोध प्रश्न 3**

1) निम्न वक्तव्यों में से कौन सही (✓) और कौन गलत (×) हैं।

i) अंग्रेज बगान स्वामी कृषकों को नील उगाने के लिए बाध्य करते थे।
ii) नील विद्रोह की अखबारों में कोई चर्चा नहीं होती थी।
iii) मोपला विद्रोह को सांप्रदायिक रंग औपनिवेशिक शासकों द्वारा दिया गया।
ii) कुनबी और वानी में बहुत सौहार्दपूर्ण संबंध था।
v) मुंडाओं ने गैर आदिवासी गरीबों पर प्रहार किया।

2) नेताओं के नाम उन विद्रोहों से मिलाएं जिससे उनका संबंध था।

| | |
|---|---|
| i) तोमा डोरा | अ) पाबना विद्रोह |
| ii) शंभुनाथ पाल | ब) मुंडा बिद्रोह |
| iii) बिरसा मुंडा | स) कोय विद्रोह |

3) दस पंक्तियों में इस समय के जन - आंदोलनों के मुख्य लक्षणों की विवेचना करें।

..................................................................................................

..............................................................................................................

..............................................................................................................

..............................................................................................................

..............................................................................................................

..............................................................................................................

..............................................................................................................

..............................................................................................................

..............................................................................................................

..............................................................................................................

..............................................................................................................

## 7.7 श्रमिक वर्ग के आंदोलन

कृषक आदिवासियों और शिल्पकारों के जन-आंदोलनों की चर्चा करने के बाद हम 1850 से 1900 के बीच मिल मजदूरों की भूमिका की चर्चा करेंगे। ये मिल मजदूर कौन थे? जैसा कि हम प्रस्तावना में बता चुके हैं कि ये मजदूर वे सारे कृषक और शिल्पकार थे जिन्हें अपनी जीविका से उपनिवेशवाद के कारण विस्थापित कर दिया गया था। ये मजदूर नये उद्योगों से जुड़ गए जिसकी शुरुआत भारत में ब्रिटिश साम्राज्यवाद के कारण हुई थी। ये क्षेत्र पूर्ण रूप से ब्रिटिश पूँजीपतियों द्वारा 1840 के बाद विकसित किया गया। कच्चे माल की बहुतायत और सस्ते श्रम (श्रमिक) की उपलब्धि के कारण ब्रिटिश पूँजीपतियों ने 1839 के बाद चाय बगान और 1850 के बाद जूट, कोयला खान और रेल उद्योग तथा 1900 के बाद गोदी (पोर्ट) उद्योग पर पैसा लगाना शुरू कर दिया। कपड़ा-उद्योग अकेला ऐसा उद्योग था जिसमें भारतीय उद्योगपति पैसा लगा रहे थे। भारतीय उद्योगपति इस उद्योग में आगे थे। कपड़ा उद्योग 1850 के करीब शुरू हुआ और बंबई तथा अहमदाबाद के निकट ही इसका विस्तार हुआ।

ये आधुनिक उद्योग पूँजीवाद के पूर्ण विकास में कोई सहायता नहीं कर सके क्योंकि ये पुरानी सामंती अर्थव्यवस्था पर आधारित थे। औपनिवेशिक शासन जानबूझकर सामंती अर्थव्यवस्था को बचाए हुए था। वैसे भी यह भारत के विकास के लिए तो था भी नहीं। इसके कुछ निश्चित निहित अर्थ हैं : आधुनिक उद्योगों में मजदूर अर्ध-नग्न स्थिति में थे। 15 से 16 घंटों तक काम करने के बावजूद उन्हें बहुत कम वेतन दिया जाता था और उन्हें (महिला तथा बच्चे सहित) पीटा भी जाता था। उन्हें जेल के कैदियों से बदतर भोजन मिलता था।

म्युनिसिपैलिटी के कार्यालय से प्राप्त विवरणों से पता चलता है कि बीमारी के कारण बहुत से खेतिहर मजदूरों की जानें गई थीं। इन परिस्थितियों में मजदूर कभी संगठित नहीं हो सके। जिन विद्रोहों का हमें उदाहरण मिलता है वे प्रतिक्रियायें मात्र थी जो प्रतिकूल परिस्थितियों की स्वाभाविक उपज थी।

### 7.7.1 शिक्षित वर्ग के प्रयास

1850 से 1900 के बीच मजदूर असंगठित रूप में विरोध प्रकट करते रहे। इन विरोधों को सुकोमल सेन ने (वर्किंग क्लास ऑफ इंडिया : हिस्ट्री ऑफ इमर्जेन्स एण्ड मूवमेंट—1830 1970 कलकत्ता, 1979) प्रारंभिक विद्रोह माना है। इस बीच कुछ पढ़े-लिखे लोग मजदूरों की समस्याओं के प्रति जागरूक होने लगे थे। 1870 में ब्रह्म समाज के सासीपाद बनर्जी ने "वर्किंग मेन्स क्लब" बनाया और 1874 में कलकत्ता के निकट बड़ा नगर से "वर्किंग मेन्स" नाम की पत्रिका निकाली। 1878 में कलकत्ता ब्रह्म समाज ने "वर्किंग मेन्स मिलन" की स्थापना की ताकि मजदूरों के बीच धार्मिक उपदेशों (नैतिकता) का प्रचार किया जा सके।

1870 तक सोराबजी, सप्रूजी बंगाली और नारायण मेधाजी लोखन्दी बंबई के कपड़ा मिल

मजदूरों के हित में काम करने लगे थे। इन प्रयासों के परिणामस्वरूप 1884 में एक ज्ञापन तैयार हुआ जिसमें रविवार को छुट्टी, दोपहर में डेढ़ घंटे का अवकाश, 6.30 सुबह से सूर्यास्त तक काम, काम किए गए महीने का वेतन महीने की पन्द्रह तारीख को भुगतान, घायल होने तथा बीमारी की अवधि में पूरा वेतन तथा अपंग हो जाने पर पेंशन की व्यवस्था की माँगें थीं। इस ज्ञापन पर 5,000 मजदूरों ने दस्तख्त किए और 1884 के बंबई सरकार द्वारा गठित कमीशन को दिया गया। इसका प्रभाव 1891 के भारत के पहले इंडियन फैक्ट्रीज एक्ट पर स्पष्ट रूप से पड़ा।

24 अप्रैल 1890 को लोखुंदी ने एक सभा बुलाई जिसमें 10,000 मजदूर सम्मिलित हुए। दो महिला मजदूरों ने इस मौके पर भाषण भी दिया। इसी समय एक ज्ञापन बंबई मिल मालिकों की एसोसिएशन को भेजा गया जिसमें साप्ताहिक छुट्टी की माँग की। 10 जून 1890 को यह माँग स्वीकार कर ली गयी और इसे मजदूरों द्वारा उनकी जीत माना गया। परंतु यह संवैधानिक नहीं था और इसे लागू नहीं किया जा सका। लेकिन सभी उद्योगिक केंद्रों में सप्ताह में एक दिन की छुट्टी की माँग एक मुख्य माँग बन गई।

### 7.7.2 हड़ताल

ये सारे प्रयास मजदूरों को संगठित करने के लिए थे। इस समय के मजदूर आंदोलन स्वतः स्फूर्त हुए। बंगाल में 1853 में नदी यातायात के कुलियों की तथा 1862 में कलकत्ता में गाड़ीवानों की हड़ताल हुई। 1862 में पहली बड़ी हड़ताल उस समय हुई जब हावड़ा रेलवे स्टेशन के 1,200 मजदूर हड़ताल पर चले गए। इनकी माँग 8 घंटे के कार्य-दिवस की थी। ध्यान देने की बात है कि यह विद्रोह शिकागो के मई दिवस के विद्रोह से 24 साल पहले हुआ और एक ऐसे उद्योग में हुआ जो 1853 में शुरू ही हुआ था।

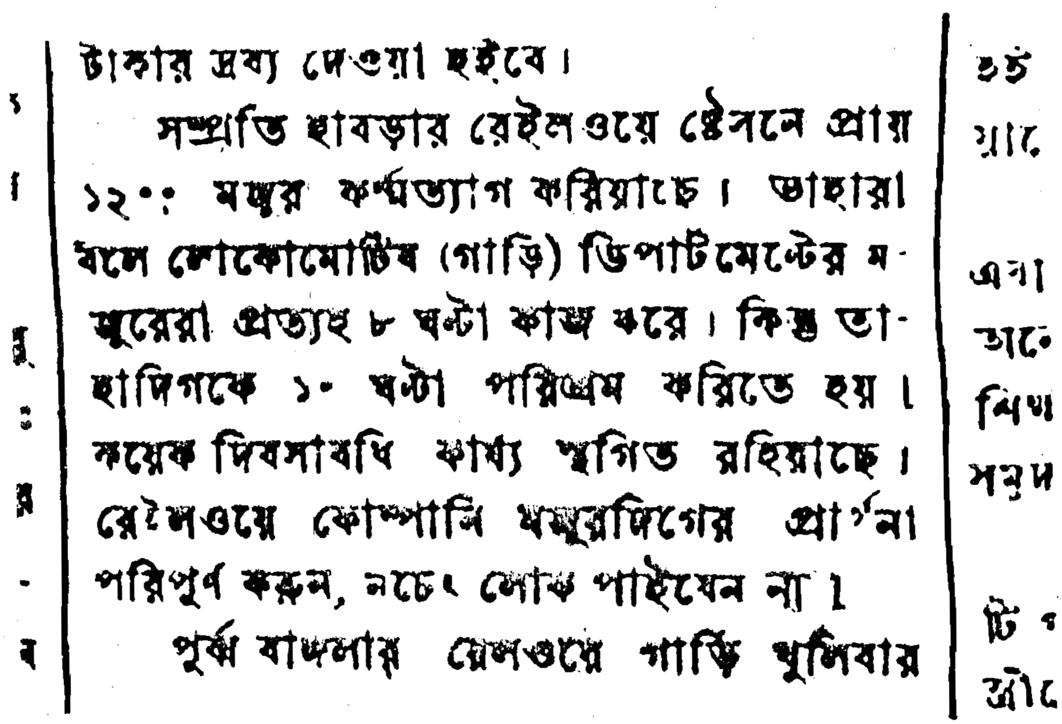
টাকার প্রব্য দেওয়া হইবে।
সম্প্রতি হাবড়ার রেইলওয়ে ষ্টেশনে প্রায়
১২০০ মজুর কর্ম্মত্যাগ করিয়াছে। তাহারা
বলে লোকোমোটিব (গাড়ি) ডিপার্টমেন্টের ম-
জুরেরা প্রত্যহ ৮ ঘন্টা কাজ করে। কিন্তু তা-
হাদিগকে ১০ ঘন্টা পরিশ্রম করিতে হয়।
কয়েক দিবসাবধি কার্য্য স্থগিত রহিয়াছে।
রেইলওয়ে কোম্পানি মজুরদিগের প্রার্থনা
পরিপূর্ণ করুন, নচেৎ লোক পাইবেন না।
পূর্ব্ব বাঙ্গলায় রেলওয়ে গাড়ি খুলিবার

8. "सोमप्रकाश" में द्वारकानाथ विद्याभूषण की रेल मजदूरों के विषय में टिप्पणी

इस रेलवे हड़ताल के बाद तमाम हड़तालें हुई। 1877 में एक बड़ी हड़ताल नागपुर के "एक्सप्रेस मिल्स" में वेतन के सवाल पर हुई। 1882 और 1890 के बीच मद्रास और बंबई प्रेसीडेन्सी में 25 हड़तालें हुईं। यह एक दिलचस्प तथ्य है कि बंबई में हुई ज्यादातर हड़तालें भारतीय उद्योगपतियों के वस्त्र उद्योग में हुईं। बंगाल में भी सभी हड़तालें कम वेतन और मजदूरों की छंटनी किए जाने के विरोध में हुई।

### 7.7.3 विशेषताएँ

इन लोकप्रिय आंदोलनों का सर्वेक्षण करते समय कुछ मुख्य बातों पर ध्यान देना चाहिए जैसे

1) इससे मजदूर और बुद्धिजीवियों के बीच की दूरी को कम करने में मदद मिली। इस समय के कुछ समाज-सुधार आंदोलनों जैसे ब्रह्म समाज, और दुनिया के अन्य भाग जैसे इंग्लैंड में हो रहे समाज-सुधार आंदोलनों के कारण यहाँ के बुद्धिजीवी मजदूरों के प्रति काफी मानवतावादी हो गए थे। यह परंपरा बीसवीं शताब्दी के आरंभ तक चलती रही। गाँधी जी की अहमदाबाद मिल मजदूरों तक पहुँचने की इच्छा और अनुसुईया बहन द्वारा इन मजदूरों को पढ़ाने के लिए 1916 में रात्रि स्कूल शुरू करना इसी दिशा में एक प्रयास था।

2) आमतौर से इनका नेतृत्व "सिरदार" करते थे जो इन मजदूरों के इलाके तथा जाति के होते थे तथा इनको नौकरी दिलाते थे। ऐसी परिस्थिति में मजदूरों के हित गौण हो जाते थे क्योंकि यह लड़ाई "सिरदार" और मालिकों के बीच की हो जाती थी। कई अन्य मौकों पर बुद्धिजीवियों ने मजदूरों का नेतृत्व किया। इन सभी परिस्थितियों का मुआयना करने पर ऐसा आभास होता है कि मजदूरों को "बाहरी" नेतृत्व पर निर्भर रहना पड़ता था। यह सही है कि सारे के सारे गाँव के विस्थापित लोग ही मजदूरी कर रहे थे और औपनिवेशिक शासन द्वारा भारतीय मजदूरों के मन-मस्तिष्क पर जमें पुराने और सामंती मूल्यों की रक्षा की जाती थी। बुद्धिजीवी नेता, जो स्वयं पुराने सामंती प्रभांव से बाहर नहीं आ पाए थे, मजदूर संगठनों और उनकी चेतना पर कोई गंभीर प्रभाव डाल पाने में असफल रहे। प्रबल सामंती प्रभाव के कारण महिला और बाल मजदूरों की बदतर स्थिति को भी पूरी तरह नजरअन्दाज किया गया। इन्हीं कारणों से इन लोकप्रिय आंदोलनों में से ज्यादातर तात्कालिक समस्याओं जैसे वेतन, नौकरी से छँटनी, या साप्ताहिक छुट्टी आदि को लेकर ही हुए।

इन सब कमियों के बावजूद हमें मजदूरों की बहादुरी की दाद देनी होगी क्योंकि वे ऐसे समय में संघर्ष कर रहे थे जब कोई संगठित ट्रेड यूनियन उनकी मदद के लिए उपलब्ध नहीं थी।

**बोध प्रश्न 4**

1 पाँच पंक्तियों में भारत में मजदूर वर्ग के उदय की चर्चा करें।

..........................................................................................

..........................................................................................

..........................................................................................

..........................................................................................

..........................................................................................

2 पाँच पंक्तियों में मजदूरों की समस्याओं का वर्णन करें।

..........................................................................................

..........................................................................................

..........................................................................................

..........................................................................................

..........................................................................................

3 यहाँ कुछ हड़तालों के नाम एवं वर्ष दिए जा रहे हैं उन्हें सही रूप से मिलाएँ

| | |
|---|---|
| i) 1853 | अ) नागपुर एप्रेस मिल |
| ii) 1862 | ब) नदी-यातायात कुली |
| iii) 1877 | स) रेल |

4 निम्नलिखित वक्तव्यों में से कौन सही (✓) और गलत (x) है।

i) जन-आंदोलन ने मजदूर और बुद्धिजीवियों के बीच की दूरी कम करने में मदद की।
ii) सिरदारों ने कभी मजदूरों के हितों की अवहेलना नहीं की।
iii) महिला और बाल मजदूरों के हितों की रक्षा इस काल में नहीं हो सकी।
iv) गाड़ीवानों की हड़ताल कलकत्ता में (1862) हुई।

## 7.8 सारांश

औपनिवेशिक नीतियाँ कृषक, आदिवासी और शिल्पकारों के प्रतिकूल थीं। वे अब दोहरे अत्याचार के शिकार हो रहे थे— एक तो औपनिवेशिक सरकार के अत्याचार के और दूसरे जमींदार और सूदखोरों के अत्याचार के। आम तौर पर ऐसे अत्याचारों का विरोध ही जन – आंदोलनों का रूप लेता था। ऐसे जन – आंदोलनों की चर्चा सरकारी दस्तावेजों में डकैती दंगा या विद्रोह के नाम से दर्ज की गयी है। लेकिन वास्तव में ये जनांदोलन भारतीय समाज के शोषक तबकों के खिलाफ प्रतिरोध की अभिव्यक्ति थे। ये जन- आंदोलन समय-समय पर विभिन्न क्षेत्रों में होते रहे। भारतीय समाज की बिभिन्नता के कारण औपनिवेशिक शासक और भारतीय शोषकों द्वारा इन जन- आंदोलनों को कभी जातीय और कभी सांप्रदायिक दंगे का भी नाम दिया गया। मुख्य बात तो यह है कि ये जन आंदोलन धनबानों के खिलाफ निर्धनों का संघर्ष था। वैसे ये जन – आंदोलन असफल अवश्य रहे। अंग्रेजों के खिलाफ माहौल तैयार करने और राष्ट्रीय आंदोलन की पृष्ठभूमि निर्मित करने में इनकी भूमिका निर्विवाद है।

ब्रिटिश शासन का दूसरा मुख्य-प्रभाव भारत में मजदूर-बर्ग के निर्माण में था। हालाँकि ये मजदूर संगठित नहीं थे फिर भी 19वीं शताब्दी के अंत तक इनकी हड़तालों के बहुत से उदाहरण हमें मिलते हैं। ये हड़तालें बेहतर कार्यस्थिति और अच्छे वेतन के लिए थीं। इनमें से बहुत सी तो भारतीय द्वारा नियंत्रित उद्योगों में हुई। इससे यह साफ हो जाता है कि मजदूरों का शोषण अंग्रेज और भारतीय दोनों उद्योगपतियों द्वारा किया जा रहा था। असल में, इस काल के संघर्षों को श्रमिक बर्ग के बड़े आंदोलनों की पृष्ठभूमि के रूप में देखा जाना चाहिए। जो भी हो, श्रमिक बर्ग द्वारा किये गये आर्थिक संघर्ष ने राष्ट्रीय आंदोलन में राजनीतिक संघर्ष को मजबूत करने में उल्लेखनीय भूमिका अदा की।

## 7.9 शब्दावली

**पट्टेदार:** बह व्यक्ति जिसे, भूस्वामी या जमींदार द्वारा किसी स्थाबर संपत्ति या जमीन के दिया गया हो उपभोग का अधिकार

**बिचौलिया:** जमींदार और किसान के बीच भूमिकर या लगान आदि बाला व्यक्ति,

**काश्तकार:** किसान, वह व्यक्ति जिसने जमींदार को लगान देकर उसकी जमीन पर खेती करने का अधिकार प्राप्त किया हो

**स्वतःस्फूर्त:** अपने आप उत्पन्न। किसी सहायता के बिना उभरना

## 7.10 बोध प्रश्नों के उत्तर

**बोध प्रश्न 1**

1 1) 2) ✓ 3) × 4) ✓
2 देखें भाग 7.2

**बोध प्रश्न 2**

1 i) ब ii) स iii) अ
2 देखें उपभाग 7.4.2
3 i) ✓ ii) × iii) ✓ iv) × v) ×

**बोध प्रश्न 3**

1 i) ✓ ii) × iii) ✓ iv) × v) ×
2 i) स ii) अ iii) ब
3 देखें भाग 7.6

**बोध प्रश्न 4**

1 देखें भाग 7.7
2 देखें भाग 7.7 तथा उपभाग 7.7.1
3 i) ब ii) स iii) अ
4 i) ✓ ii) × iii) ✓ iv) ✓

# इकाई 8 उन्नीसवीं सदी के भारत में सामाजिक सुधार आंदोलन

## इकाई की रूपरेखा

8.0 उद्देश्य
8.1 प्रस्तावना
8.2 सुधार क्यों?
8.3 सुधार-आंदोलन
8.4 सुधारों का विस्तार क्षेत्र
8.5 सुधारों की प्रणाली
8.5.1 आंतरिक सुधार
8.5.2 कानून द्वारा सुधार
8.5.3 प्रतीकात्मक बदलाव द्वारा सुधार
8.5.4 सामाजिक कार्यों द्वारा सुधार
8.6 विचार
8.6.1 तर्कवाद
8.6.2 विश्व व्यापकतावाद
8.7 महत्व
8.8 कमजोरियाँ और सीमाएँ
8.9 सारांश
8.10 शब्दावली
8.11 बोध प्रश्नों के उत्तर

## 8.0 उद्देश्य

19वीं शताब्दी में भारत के विभिन्न भागों में अनेकों सुधार-आंदोलन हुए। ये सुधार-आंदोलन भारतीय समाज को आधुनिक विचारों के अनुरूप पुनर्गठन की दृष्टि से हुए। यह इकाई उन सामाजिक-धार्मिक सुधार आंदोलनों का सामान्य व समीक्षात्मक दृष्टिकोण प्रस्तुत करने के साथ ही उन आंदोलनों के महत्व पर भी प्रकाश डालने की कोशिश करती है। हालांकि आंदोलनों के विचारों, कार्यों और नेतृत्व करने वालों के बारे में यह इकाई सिलसिलेवार वास्तविक जानकारी नहीं देती इसके बावजूद यह एक समीक्षा प्रस्तुत करती है जिससे आपको इन आंदोलनों को समझने में सुविधा होगी।
यह इकाई पढ़ने के बाद आप:

- यह जानेंगे कि भारत में ये सुधार क्यों और कैसे शुरू हुए;
- यह समझेंगे कि इन सुधारों के प्रमुख नेतृत्वकर्ता कौन थे—भारतीय समाज की प्रकृति के बारे में उनके क्या विचार थे;
- इन सुधारों के तरीकों और विस्तार क्षेत्र को समझते हुए उनकी कमियों पर रोशनी डाल सकेंगे।

## 8.1 प्रस्तावना

18वीं-19वीं शताब्दी में अंग्रेजों द्वारा भारत पर आधिपत्य ने, भारतीय सामाजिक संस्थाओं की कुछ गंभीर कमजोरियों व खामियों को उभार कर सामने रख दिया। परिणामस्वरूप अनेक व्यक्तियों और आंदोलनों ने सामाजिक सुधार व पुनरुत्थान की दृष्टि से सामाजिक

और धार्मिक परंपराओं में परिवर्तन लाना शुरू किया। ये कोशिशें, जिन्हें संयुक्त रूप से पुनर्जागरण (रेनेसां) के नाम से जाना जाता है, एक जटिल सामाजिक घटना थी। महत्वपूर्ण बात यह है कि यह घटना उस समय घटी जब भारत ब्रिटिश उपनिवेशवाद के अधीन था।

## 8.2 सुधार क्यों?

चर्चा के लिए एक महत्वपूर्ण प्रश्न यह है कि वह कौन-सी शक्ति थी जिसने भारत में जागरण की लहर को जन्म दिया। क्या यह पाश्चात्य प्रभाव के परिणामस्वरूप हुआ? या यह केवल औपनिवेशिक हस्तक्षेप का जवाब भर था। हालाँकि ये दोनों प्रश्न अंर्तसंबंधित हैं, किंतु भली-भाँति समझने के लिए दोनों को अलग-अलग करना ही अच्छा होगा। इसका एक अन्य आयाम भारतीय समाज में आ रहे उन बदलावों से जुड़ा है जिसके फलस्वरूप नए वर्गों का उदय हो रहा था। इस परिप्रेक्ष्य से सामाजिक-धार्मिक आंदोलनों को औपनिवेशिक भारत के नए उभरते मध्यम-वर्ग की सामाजिक महत्वाकांक्षा की अभिव्यक्ति के रूप में भी देखा जा सकता है।

सुधार-आंदोलनों पर शुरू में लिखे गए इतिहास-ग्रंथों में पश्चिमी प्रभाव को ही पुनर्जागरण की उत्पत्ति का मुख्य कारण माना गया है। जो प्रारंभिक इतिहास-ग्रंथ मिलते हैं, उनमें से एक जे.एन. फर्खुहार द्वारा लिखे गए इतिहास-ग्रंथ "मार्डन रिलीजिइस मूवमेंट इन इंडिया" (न्यूयार्क, 1924), के अनुसार:

"प्रेरक शक्तियाँ करीब-करीब केवल पाश्चात्य ही हैं यानि अंग्रेजी साहित्य और शिक्षण, इसाई-धर्म, पूर्वी अनुसंधान, यूरोपीय विज्ञान और दर्शन तथा पाश्चात्य सभ्यता के भौतिकवादी तत्व।"

अनेक इतिहासकारों ने इसी विचार को दोहराया तथा इसी की आगे व्याख्या की है। उदाहरण के लिए, चार्ल्स हेइमसाथ, ने न केवल विचारों बल्कि सामाजिक-धार्मिक आंदोलनों की संगठनात्मक प्रणाली को भी पाश्चात्य प्रोत्साहन से जोड़ा।

19वीं शताब्दी के समाज में हुई पुनर्जागरण की प्रक्रिया पर पाश्चात्य प्रभाव के महत्व को नकारा नहीं जा सकता। फिर भी यदि हम सुधार की इस पूरी प्रक्रिया को औपनिवेशिक कृपा-मात्र मान लें और अपने आपको सिर्फ इसके सकारात्मक पहलुओं की ओर देखने तक ही सीमित रखें तो हम इस घटना के जटिल चरित्र के प्रति न्याय नहीं कर पाएँगे। सुशोभन सरकार (बंगाल रेनेसां एण्ड अदर एसेज, न्यू देहली, 1970) ने हमारा ध्यान इस तथ्य की ओर आकर्षित किया है कि "विदेशियों का आधिपत्य और शासन पराधीन जनता के पुनर्जागरण में सहायता करने की अपेक्षा बाधा ही डालेगा"। 19वीं शताब्दी के पुनर्जागरण के कार्यक्षेत्र और आयामों को सीमित करने में औपनिवेशिक शासन की भूमिका ध्यान देने योग्य है। वह किसी भी सही तथ्य तक पहुँचने की कोशिशों का एक महत्वपूर्ण हिस्सा बन जाती है।

सुधार-आंदोलनों को विदेशी घुसपैठ द्वारा उत्पन्न चुनौती की प्रक्रिया के जवाब के रूप में देखा जाना चाहिए। वे समाज सुधार के प्रयत्न के रूप में तो महत्वपूर्ण थे ही, उससे कहीं ज्यादा उनकी महत्ता औपनिवेशिकता से उत्पन्न नई परिस्थितियों के विरुद्ध संघर्ष प्रदर्शन में थी। दूसरे शब्दों में, सामाजिक-धार्मिक सुधार अपने तक ही सीमित रहकर खत्म नहीं हो गए अपितु वे औपनिवेशिकता के विरुद्ध उभरती हुई चेतना का भी अभिन्न अंग थे।

अत: सुधारों को लाने की लालसा के पीछे, औपनिवेशिक शासन के परिणामस्वरूप समाज और इसके संस्थाओं में एक नयापन लाने की आवश्यकता थी। फिर भी सुधार-आंदोलनों के इस रूप ने पुनरुत्थान की जिन प्रवृत्तियों का परिचय दिया वे थीं भारतीय अतीत के गुणगान करने तथा भारतीय सभ्यता व संस्कृति की रक्षा करने की प्रवृत्तियाँ। हालाँकि इन

सब बातों से आंदोलनों का चरित्र संकीर्ण व पतनोन्मुख प्रतीत हुआ फिर भी जनता के बीच सांस्कृतिक चेतना जगाने और उनका विश्वास बढ़ाने में इन्होंने एक महत्वपूर्ण भूमिका अदा की।

## 8.3 सुधार आंदोलन

सुधार की सबसे पहली अभिव्यक्ति बंगाल में राममोहन राय द्वारा शुरू हुई। उन्होंने 1814 में आत्मीय सभा की स्थापना की जो उनके द्वारा 1829 में संगठित ब्रह्म समाज की अग्रगामी थी। सुधार की भावना शीघ्र ही देश के अन्य भागों में भी दिखाई देने लगी। महाराष्ट्र की परमहंस मंडली औरं प्रार्थना समाज, पंजाब तथा उत्तर भारत के अन्य भागों में आर्य समाज, हिंदू समाज के कुछ मुख्य आंदोलन थे। इस दौरान के कई अन्य धार्मिक व जातिगत आंदोलन जैसे यू.पी. में कायस्थ सभा तथा पंजाब में सरीन सभा थे। पिछड़ी जातियों में भी इन सुधारों ने जड़ पकड़ ली जैसे, महाराष्ट्र में सत्य-शोधक समाज और केरल में नारायण धर्म परिपालन सभा। अहमदिया और अलीगढ़ आंदोलन, सिंह सभा तथा रहनुमाई मजदेआसन सभा आदि ने क्रमशः मुसलमानों, सिक्खों तथा पारसियों में सुधार की भावना का प्रतिनिधित्व किया।

ऊपर दिए गए ब्यौरे से निम्नलिखित विशेषताएँ स्पष्ट हो जाती हैं:

i) इनमें से हरेक सुधार-आंदोलन कुल मिलाकर किसी एक या अन्य प्रांत तक सीमित था। ब्रह्म समाज और आर्य समाज की देश के अन्य प्रांतों में शाखाएँ थीं फिर भी वे अन्य स्थानों की अपेक्षा बंगाल व पंजाब में ही ज्यादा प्रसिद्ध थे।

ii) ये आंदोलन किसी एक ही धर्म या जाति तक ही सीमित थे।

iii) इन आंदोलनों की एक अन्य विशेषता यह थी कि वे अलग-अलग समय में देश के अलग-अलग हिस्सों में उभरे। उदाहरण के लिए, बंगाल में सुधार के प्रयत्न 19वीं शताब्दी के आरंभ में शुरू हुए जबकि केरल में इनकी शुरूआत 19वीं शताब्दी के बाद हुई। इन सबके बावजूद उनके उद्देश्य और परिपेक्ष्य काफी हद तक समान ही थे। सभी की चिंता सामाजिक व शैक्षिक सुधारों द्वारा समाज के पुनर्जागरण में थी। भले ही उनकी प्रणालियों में अंतर था।

## 8.4 सुधारों का विस्तार क्षेत्र

19वीं शताब्दी के सुधार-आंदोलन विशुद्ध धार्मिक आन्दोलन नहीं थे बल्कि वे सामाजिक-धार्मिक आंदोलन थे। बंगाल के राममोहन राय, महाराष्ट्र के गोपाल हरि देशमुख (लोकहितवादी) और आंध्र के विरेशलिंगम् जैसे सुधारकों ने धार्मिक सुधारों की वकालत "राजनैतिक फायदों और सामाजिक सुख" के लिए की थी। इन आंदोलनों और उनके नेताओं के सुधार परिपेक्ष्य की विशेषता उनकी इस मान्यता में थी कि धार्मिक और सामाजिक समस्याओं में अंतर्संबंध है। उन्होंने धार्मिक विचारों के प्रयोग द्वारा सामाजिक संस्थानों और उनकी परंपराओं में बदलाव लाने की कोशिश की। उदाहरण के लिए, महत्वपूर्ण ब्राह्मण-नेता केशव चंद्र सेन ने "देवत्व की एकता और मानव मात्र में भाई चारे" की व्याख्या समाज से जातिभेद मिटाने के लिए की थी। सुधार-आंदोलनों की सीमा के अंतर्गत आने वाली प्रमुख समस्याएँ निम्न थीं:

- नारी मुक्ति जिसमें सती-प्रथा, शिशुहत्या, विधवा तथा बाल-विवाह इत्यादि समस्याओं को उठाया गया;
- जातिवाद और छुआछूत;
- समाज के ज्ञानोदय हेतु शिक्षा।

धार्मिक क्षेत्र के मुख्य विषय थे:
- मूर्तिपूजा
- बहुदेववाद
- धार्मिक अंधविश्वास और
- पंडितों द्वारा शोषण

## 8.5 सुधारों की प्रणाली

सामाजिक-धार्मिक परंपराओं में सुधार लाने के लिए विभिन्न प्रणालियों का प्रयोग किया गया जिनमें से चार मुख्य धाराएँ निम्नलिखित हैं।

### 8.5.1 आंतरिक सुधार

आंतरिक सुधार-प्रणाली की शुरुआत राममोहन राय द्वारा की गयी थी और 19वीं शताब्दी में इसका प्रयोग हुआ। इस प्रणाली के प्रचारकों का यह विश्वास था कि किसी भी सुधार को प्रभावशाली होने के लिए यह आवश्यक है कि वह समाज के अंदर से ही हो। परिणामस्वरूप इनके प्रयास लोगों के बीच जागरूकता की भावना पैदा करने पर केंद्रित थे। यह प्रयास उन्होंने किताबें छापकर, विभिन्न सामाजिक समस्याओं पर बहस व विवाद का आयोजन इत्यादि करके किया। राममोहन राय का सती प्रथा के खिलाफ प्रचार, विद्यासागर के विधवा-विवाह पर लिखे इश्तहार तथा बी.एन. मालाबारी के शादी-विवाह की न्यूनतम आयु बढ़ाने के प्रयास इत्यादि इसके उदाहरण हैं।

### 8.5.2 कानून के द्वारा सुधार

दूसरी प्रवृत्ति कानूनी हस्तक्षेप द्वारा प्रभाव लाने के विश्वास पर आधारित थी। इस प्रणाली की वकालत करने वाले — बंगाल के केशवचंद्र सेन, महाराष्ट्र के महादेव गोविन्द रानाडे तथा आंध्र प्रदेश के विरेशलिंगम् का मानना था कि सुधार के प्रयास वास्तव में तब तक प्रभावशाली नहीं हो सकते जब तक उन्हें राज्य का सहयोग प्राप्त नहीं हो। इसीलिए उन्होंने सरकार से विधवा-विवाह, कानूनी-विवाह (सिविल मैरिज) तथा अन्य विवाहों की न्यूनतम आयु बढ़ाने जैसे सुधारों को कानूनी समर्थन देने की माँग की। हालाँकि वे यह समझने में भूल कर बैठे कि ब्रिटिश सरकार की सामाजिक सुधारों में रुचि केवल अपने संकीर्ण राजनैतिक व आर्थिक स्वार्थों के कारण थी और वे तभी हस्तक्षेप करते जब इन सुधारों से उनका स्वार्थ अप्रभावित रहता। साथ ही वे यह समझने में भी गलती कर बैठे कि बदलाव के लिए हथियार के रूप में कानून की भूमिका औपनिवेशिक समाज में ही सीमित थी क्योंकि इसे जनता की मान्यता प्राप्त नहीं थी।

### 8.5.3 प्रतीकात्मक बदलाव द्वारा सुधार

तीसरी प्रवृत्ति की कोशिश विशिष्ट विरोधी-गतिविधियों द्वारा प्रतीकात्मक बदलाव लाने की थी। यह प्रवृत्ति "डेरोजिओ" या "यंग बंगाल" तक ही सीमित थी जो सुधार-आंदोलन के बीच क्रांतिकारी धारा का नेतृत्व करती थी। इस समूह के सदस्य, जिनमें से प्रमुखतः दक्षिनारंजन मुखर्जी, रामगोपाल घोष तथा कृष्ण मोहन बनर्जी ने परंपराओं का बहिष्कार किया और समाज की मान्यता प्राप्त मानदंडों के खिलाफ विद्रोह किया। वे "पश्चिम के नए उठते विचारों" की धारा से बहुत प्रभावित थे। उन्होंने सामाजिक समस्याओं के प्रति समझौता न करने वाली क्रांतिकारी प्रवृत्ति का प्रदर्शन किया। रामगोपाल घोष ने इस समूह की क्रांतिकारिता को अभिव्यक्त करते हुए घोषणा की -"वह जो तर्क नहीं करेगा धर्मान्ध है, वह जो नहीं कर सकता, बेवकूफ है और जो नहीं करता, गुलाम है।" इन्होंने जिस प्रणाली को अपनाया उसकी मुख्य कमजोरी यह थी कि वह भारतीय समाज की सांस्कृतिक परंपरा को आकर्षित करने में सफल नहीं हो पाई। अतः बंगाल में उभरते नए मध्यम वर्ग ने इसे परंपरा के विरुद्ध पाया और स्वीकार नहीं किया।

### 8.5.4 सामाजिक कार्यों द्वारा सुधार

चौथी प्रवृत्ति सामाजिक कार्यों द्वारा सुधार की थी जैसा कि ईश्वर चन्द्र विद्यासागर, आर्य समाज और रामकृष्ण मिशन की गतिविधियों से स्पष्ट है। उन लोगों को बिना सहायक सामाजिक कार्य के विरुद्ध बुद्धिजीवी प्रयासों की सीमित सीमा का स्पष्ट ज्ञान था। उदाहरण के लिए विद्यासागर विधवा विवाह की वकालत सिर्फ प्रवचनों और किताबों के प्रकाशन करके ही खुश नहीं थे। शायद आधुनिक युग में भारत ने उनके रूप में सबसे महान मानवतावादी को जन्म दिया, जिसने अपने को विधवा-विवाह की समस्याओं से जोड़ लिया और अपनी पूरी जिन्दगी, शक्ति और धन इसी कार्य पर लगा दिया। इन सबके बावजूद वह सिर्फ कुछ-एक विधवा - विवाह ही करवा पाए। विद्यासागर का सार्थक रूप से कुछ न प्राप्त कर पाना ही इस बात का द्योतक है कि औपनिवेशिक भारत में सामाजिक सुधारों के प्रभाव की अपनी एक सीमा थी। आर्य समाज और रामकृष्ण मिशन ने भी सामाजिक कार्य द्वारा सुधार व पुनर्जागरण के विचारों को बढ़ावा देने का प्रयास किया। उनकी सीमा उनकी खुद की वह सीमित समझ थी कि सामाजिक और बौद्धिक स्तरीय सुधार समाज के संपूर्ण चरित्र व संरचना के साथ इस कदर जुड़े हैं कि उसे अलग करके नहीं देखा जा सकता। मौजूदा व्यवस्था की संकीर्णता ही उन सीमाओं को दर्शाती है जिन्हें सामाजिक और सांस्कृतिक पुनर्जागरण का कोई भी प्रयास लांघ नहीं पाया है। दूसरे सुधार-आंदोलनों की तुलना में इनकी निर्भरता औपनिवेशिक सरकार के हस्तक्षेप पर कम और सामाजिक कार्य को मत के रूप में विकसित करने पर ज्यादा रही।

**बोध प्रश्न 1**

1 निम्नलिखित कथनों को पढ़ें और उन पर सही (✓) या गलत (×) का निशान लगाएँ।

i) 19वीं शताब्दी के सुधार-आंदोलन विशुद्ध धार्मिक आंदोलन थे।
ii) एक ही समय में अनेक सुधार-आंदोलन देश के विभिन्न भागों में उभरे।
iii) इन सुधार- आंदोलनों का सूत्रपात बंगाल में हुआ।
iv) सुधार-आंदोलन में "यंग बंगाल" ने क्रांतिकारी धारा का प्रतिनिधित्व किया।

2 19वीं शताब्दी में देश के विभिन्न भागों में हुए सुधार आंदोलनों के नाम बताइए।

.....................................................................................
.....................................................................................
.....................................................................................
.....................................................................................

3 19वीं शताब्दी के सुधारकों द्वारा कौन सी विभिन्न प्रणालियाँ अपनाई गई थीं?

.....................................................................................
.....................................................................................
.....................................................................................
.....................................................................................
.....................................................................................
.....................................................................................
.....................................................................................

## 8.6 विचार

जिन दो महत्वपूर्ण विचारधाराओं ने आंदोलनों और उनके नेताओं को प्रभावित किया, वह हैं — बुद्धिवाद और विश्व-धर्म।

### 8.6.1 तर्कवाद

19वीं शताब्दी के सुधारों का सामाजिक-धार्मिक यथार्थ के बुद्धिवादी आलोचकों ने सामान्य चित्रण किया है। शुरुआती ब्रह्म सुधारकों और "यंग बंगाल" के सदस्यों ने सामाजिक-धार्मिक समस्याओं के प्रति अत्यधिक विवेकपूर्ण रवैया अपनाया था। अक्षय कुमार दत्त, समझौता न करने वाले बुद्धिवादी ने तर्क दिया कि प्राकृतिक और सामाजिक प्रवृत्ति को मात्र इसकी बनावट व मशीनी प्रक्रिया के स्तर पर अपनी बुद्धि द्वारा समझा जा सकता है तथा इसकी समीक्षा की जा सकती है। विश्वास को विवेक से बदलने का प्रयास किया गया और सामाजिक-धार्मिक परंपराओं को उनकी सामाजिक उपयोगिता की दृष्टि से आँका गया। बुद्धिवादी परिप्रेक्ष्य से ब्रह्म समाज में वेदों की अमोघता का खण्डन हुआ तथा अलीगढ़ में सर सैयद अहमद खान द्वारा स्थापित आंदोलन ने इस्लाम की शिक्षाओं को नए युग की जरूरतों व आवश्यकताओं के अनुरूप ढालने पर जोर दिया। सर सैयद अहमद खान ने धार्मिक सिद्धांतों को निर्विकार मानते हुए सामाजिक विकास में धर्म की भूमिका पर जोर देते हुए कहा कि यदि धर्म ने समय के साथ कदम नहीं मिलाया और समाज की माँगों को पूरा नहीं किया तो यह प्रभावहीन हो जाएगा जैसा कि इस्लाम के साथ भारत में हुआ है।

यद्यपि सुधारकों ने धर्मग्रंथों की सम्मति ली (जैसा कि राममोहन के सती-प्रथा की समाप्ति के लिए और विद्यासागर के विधवा-विवाह के समर्थन में दिए गए तर्कों से स्पष्ट होता है) किंतु, सामाजिक-सुधार हमेशा धार्मिक भावनाओं के अनुकूल नहीं थे। उस समय की व्याप्त सामाजिक परंपराओं को बदलने के लिए रखे गए दृष्टिकोणों में एक विवेकपूर्ण और निरपेक्ष दृष्टिकोण स्पष्टतः परिलक्षित था। विधवा-विवाह की वकालत तथा बहुपत्नी-प्रथा व बाल-विवाह का विरोध करते समय अक्षय कुमार को किसी धार्मिक विधान की खोज या भूतकाल में उनके प्रचलन की जानकारी हासिल करने में कोई अभिरुचि नहीं थी। उनके तर्क मुख्यतः समाज में होने वाले उनके प्रत्यक्ष प्रभावों पर ही आधारित थे। धर्मग्रंथों पर निर्भर होने की बजाय उन्होंने बाल-विवाह का विरोध करने के लिए डाक्टरी राय का हवाला दिया।

अन्य क्षेत्रों की अपेक्षा महाराष्ट्र में धर्म पर निर्भरता कम थी। गोपाल हरि देशमुख के लिए सामाजिक सुधारों का धार्मिक विधान सम्मत होना या न होना महत्वहीन था। यदि धर्म ने सुधारों की अनुमति नहीं दी, तो उनका मानना था कि धर्म को ही बदल दो। क्योंकि जो धर्मग्रंथों में लिखा है जरूरी नहीं कि वह समकालीन प्रसंगों के अनुकूल हो।

### 8.6.2 विश्व व्यापकतावाद

19वीं शताब्दी का एक महत्वपूर्ण विचार था– विश्वधर्म जिसका ईश्वर की एकता में विश्वास था और जो सब धर्मों के आवश्यक रूप से एक होने पर जोर देता था। राममोहन राय ने विभिन्न धर्मों को अखिल आस्तिकवाद का राष्ट्रीय अवतार माना और शुरू में ब्रह्म समाज को विश्वधर्म चर्च का दर्जा दिया था। वे सभी धर्मों के मूल तथा सार्वभौमिक नियमों वेदों के ऐकश्वरवाद तथा इसाई धर्म के अधिनायकवाद के रक्षक थे तथा इसके साथ ही उन्होंने हिंदुओं के बहुदेववाद तथा इसाई धर्म के त्रित्ववाद का विरोध किया। सैयद अहमद खान के विचारों में भी लगभग वही गूंज थी : सभी पैगंबरों का एक ही संदेश (विश्वास) था और हर देश और राष्ट्र के अलग-अलग पैगंबर थे। इस मत ने केशवचंद्र सेन के विचारों में अधिक स्पष्टता पाई जिन्होंने ब्रह्म समाज से हटकर सभी बड़े धर्मों की धाराओं को एक ही सूत्र "नव विधान" में बाँधने की कोशिश की तथा उसमें सभी प्रमुख धर्मों के विचारों का संश्लेषण करने का प्रयास किया। "सभी धर्मों में सत्य की तलाश करना हमारा कर्तव्य नहीं बल्कि यह मानना है कि विश्व के सभी प्रस्थापित धर्म सत्य हैं।"

विश्वधर्म मत पूरी तरह दर्शन का विषय नहीं था। इसने राजनैतिक और सामाजिक दृष्टिकोण को तब तक काफी प्रभावित किया जब तक धार्मिक उदारतावाद ने 19वीं शताब्दी के उत्तरार्ध में अपनी जड़ें नहीं जमा लीं। उदाहरण के लिए राममोहन मुसलमान वकीलों को उनके साथी हिंदू वकीलों की अपेक्षा ईमानदार समझते थे और

विद्यासागर ने अपनी मानवतावादी गतिविधियों में मुसलमानों के प्रति भेदभाव नहीं रखा। प्रसिद्ध बंगला उपन्यासकार बंकिमचंद्र चटर्जी भी, जिन्हें किसी विशेष धार्मिक संबंध से नहीं बल्कि हिंदू धर्म पर उनकी समझ से जोड़ा जाता है, एक व्यक्ति की दूसरे के ऊपर श्रेष्ठता को निर्धारित करने की कसौटी थे। परंतु इसका यह अर्थ नहीं है कि धार्मिक पहचान लोगों की सामाजिक दृष्टिकोण को प्रभावित नहीं करती थी बल्कि यह काफी ज्यादा ही प्रभावित करती थी। सुधारकों के विश्वधर्म पर जोर देने का उद्देश्य इस विशिष्ट खिचाव को ही शुरू करना था। हालाँकि औपनिवेशिक संस्कृति तथा विचारधारा की चुनौती में विश्वधर्म एक व्याप्त धर्मनिरपेक्ष प्रवृति को बढ़ावा देने की बजाय धार्मिक उदारतावाद में गुम हो गया।

## 8.7 महत्व

आधुनिक भारत के क्रमिक विकास में 19वीं शताब्दी के सुधार-आंदोलनों ने अति महत्वपूर्ण योगदान दिया है। उन्होंने समाज को जनतांत्रिक बनाने, घृणित रिवाजों और अंधविश्वासों को दूर करने, ज्ञान के प्रसार और एक विवेकपूर्ण तथा आधुनिक दृष्टिकोण के विकास का समर्थन किया है। मुसलमानों के बीच अलीगढ़ व अहमदिया आंदोलनों ने इन विचारों की मशाल अपने हाथों में थामे रखी। मिर्जा गुलाम अहमद से प्रोत्साहन पाकर अहमदिया आंदोलन ने 1890 में एक निश्चित स्वरूप धारण कर लिया और "जिहाद" का विरोध तथा लोगों के बीच भाईचारे व स्वतंत्र पश्चिमी शिक्षा की वकालत की। बहुविवाह का विरोध कर तथा विधवा-विवाह का समर्थन कर अलीगढ़ आंदोलन ने मुसलमान समाज में एक नया लोकाचार पैदा करने की कोशिश की। इसने कुरान की स्वतंत्र व्याख्या करने तथा पश्चिमी शिक्षा के प्रचार का समर्थन किया।

हिंदू समाज के बीच हुए सुधार-आंदोलनों ने अनेक सामाजिक व धार्मिक कुरीतियों पर प्रहार किया। इन आंदोलनों ने, बहुदेववाद और मूर्तिपूजा (जो व्यक्ति के विकास मे बाधा उत्पन्न करते हैं), दैवशक्तिवाद तथा धार्मिक प्रधानों की तानाशाही (जो अधिनायकवाद जैसी प्रकृति को दबाती है) की आलोचना की। जाति-प्रथा का विरोध न केवल आदर्श या नैतिकता के आधार पर हुआ, बल्कि इसलिए भी हुआ कि यह समाज में फूट डालने जैसी प्रवृत्ति को बढ़ावा देती है। ब्रह्म समाज के आरंभिक आंदोलनों में जाति-प्रथा का विरोध केवल सैद्धांतिक आधार पर एक निश्चित स्तर तक ही सीमित होकर रह गया, इसके विपरीत आर्य समाज, प्रार्थना समाज और रामकृष्ण मिशन जैसे धार्मिक आंदोलनों ने जाति-प्रथा से समझौता नहीं करके उसकी आलोचना की। जाति-प्रथा की आलोचना करने वालों में अधिकतर निचली जाति के लोग थे। ज्योतिबा फूले और नारायण गुरू द्वारा शुरू किये गए आंदोलनों से ही पता चलता है कि उन्होंने स्पष्ट रूप से जाति-प्रथा के उन्मूलन की वकालत की थी, नारायण दत्त का नारा था:
"मानवता के लि[illegible]वल एक भगवान और एक जाति"।

स्त्रियों की दशा मे[illegible]ार की इच्छा का आधार केवल विशुद्ध मानवीय आधार न होकर समाज में विकास ला[illegible] की खोज का ही एक रूप था। केशवचंद्र सेन ने अपना मत रखा कि: "पृथ्वी पर उस किसी भी देश ने सभ्यता की दौड़ में कभी अपेक्षित विकास नहीं किया, जहाँ की स्त्री-जाति का जीवन अंधकारमय हो।"

इन सभी आंदोलनों में समाज की तात्कालिक स्थिति में प्रचलित-मूल्यों को बदलने का प्रयास देखा जा सकता है। किसी एक तरह से या अन्य तरह से इन आंदोलनों का प्रयास था कि सामंती समाज के प्रमुख मूल्यों को बदलकर बुर्जुवा चरित्र के मूल्यों से समाज का परिचय कराया जाए।

## 8.8 कमजोरियाँ व सीमाएँ

हालाँकि 19वीं शताब्दी के सुधार-आंदोलनों का उद्देश्य भारत के विभिन्न भागों में रहने वाले लोगों के सामाजिक, शैक्षिक व नैतिक स्तर को ऊपर उठाने का था, किंतु यह उद्देश्य कई कमजोरियों व सीमाओं से वाधित हुआ। इन सुधार-आंदोलनों में एक शहरी-प्रवृत्ति भी थी, केवल आर्य समाज को छोड़कर, जिसका कि प्रभाव नीची जातियों के आंदोलनों पर व्यापक रूप से था, दूसरे सुधार-आंदोलनों का क्षेत्र ऊँची जाति व वर्ग तक ही सीमित था। उदाहरण के लिए बंगाल का ब्रह्म समाज "भद्रलोक" की समस्याओं से संबंधित था तो अलीगढ़ आंदोलन ऊँचे वर्ग के मुसलमानों की समस्याओं से। आम जनता साधारणतः इनसे अप्रभावित ही रही। सुधारकों की एक दूसरी सीमा ब्रिटिश राज्य व भारत के प्रति उनके दृष्टिकोण के प्रत्यक्ष बोध में थी। वे भ्रांतिपूर्ण ढंग से यह सोचते रहे कि ब्रिटिश शासन तो भगवान द्वारा नियोजित है और वे ही भारत को आधुनिकीकरण के मार्ग पर ले जायेंगे। चूँकि उनकी भारतीय समाज के आदर्श स्वरूप की संकल्पना 19वीं शताब्दी के ब्रिटेन का प्रतिरूप थी, इसीलिए उन्हें लगा कि भारत को ब्रिटेन जैसा बनाने के लिए ब्रिटिश शासन जरूरी है। इन सुधारकों ने हालाँकि भारतीय समाज के सामाजिक, धार्मिक स्वरूप को अच्छी तरह से समझ लिया था, किंतु इसके राजनैतिक स्वरूप को पहचानने में चूक गए; जो कि अंग्रेजों द्वारा शोषण पर आधारित था।

**बोध प्रश्न 2**

1 निम्नलिखित विषयों पर पाँच पंक्तियाँ लिखें:

क) तर्कवाद

..........................................................................................
..........................................................................................
..........................................................................................
..........................................................................................
..........................................................................................

ख) विश्वव्यापकतावाद

..........................................................................................
..........................................................................................
..........................................................................................
..........................................................................................
..........................................................................................

2 नीचे लिखे उद्धरणों को ध्यान से पढ़िये और सही (✓) या गलत (×) का निशान लगायें।

i) सुधारकों की भारतीय सामाजिक-धार्मिक यथार्थ की आलोचना तर्कवाद से रहित नहीं थी।
ii) विश्व-धर्म स्वयं को धार्मिक क्षेत्रीयता से अलग रखने में सफल रहा।
iii) अलीगढ़ आंदोलन ने बहु विवाह-प्रथा का बिरोध किया।
iv) ज्यादातर सुधार आंदोलनों का प्रभाव ऊँची जाति या बर्ग तक ही सीमित था।

## 8.9 सारांश

19वीं शताब्दी के सुधार-आंदोलनों ने द्विस्तरीय कार्य का बीड़ा उठाया। भारतीय समाज की आलोचना हुई। जाति-प्रथा, सती-प्रथा, विधवा-प्रथा, बाल-विवाह आदि संस्थाओं का कड़ा

विरोध हुआ। अंधविश्वासों और धार्मिक रूढ़ि की निंदा हुई। इसके साथ ही भारतीय समाज के आधुनिकीकरण करने का प्रयास हुआ। तर्क, बुद्धि तथा सहिष्णुता के लिए जनमानस से आग्रह किया गया। सुधार-आंदोलनों की गतिविधियों का कार्यक्षेत्र केवल किसी एक धर्म तक ही सीमित न होकर पूरे समाज तक था। हालाँकि उद्देश्य प्राप्ति में उन्होंने विभिन्न प्रणालियों का प्रयोग किया और उनके बीच समय का अंतराल भी रहा, किंतु तात्कालिक परिप्रेक्ष्य और उददेश्य में ध्यान देने योग्य एकता का परिचय उन्होंने दिया। उन्होंने एक खुशहाल, आधुनिक भारत की दृष्टि प्रस्तुत की। उनकी यह दृष्टि भारतीय राष्ट्रीय आंदोलन के साथ जुड़ गई।

## 8.10 शब्दावली

**पुनर्जागरण** : भूत को पुनर्जीवित करने की चेष्टा।
**प्रतिगामी** : पिछड़ा हुआ।
**सतीप्रथा** : विधवा को उसके मृत पति के साथ चिता पर जलाने की प्रथा।
**बहुदेववाद** : बहुत से देवी-देवताओं की पूजा में आस्था।

**विवाह की न्यूनतम आयु बढ़ाने का विधेयक:** लड़कियों की शादी की उम्र 12 साल तक बढ़ाने के लिए पारित किया गया एक विधेयक। तिलक सहित कई कांग्रेसियों ने इस विधयेक का विरोध किया था।

**अमोघ** : अचूक
**एकेश्वरवाद** : एक ही ईश्वर की अराधना
**जिहाद** : काफिरों के खिलाफ धार्मिक युद्ध
**अधिनायकवाद** : केंद्रीयकरण की विचारधारा
**आस्तिकवाद** :भगवान में विश्वास करना
**त्रि-तत्ववाद** :ईसाई विश्वास: त्रय-परमेश्वर – यानी पिता, संतान तथा पवित्र आत्मा का एक ही परमेश्वर में मिलान (द यूनियन ऑफ फादर, सॅन एण्ड होली स्प्रिट इन वन गॉड)

## 8.11 बोध प्रश्नों के उत्तर

**बोध प्रश्न 1**

1 i) × ii) × iii) ✓ iv) ✓
2 भाग 8.3 देखिए
3 भाग 8.5 पढिए तथा अपने **उत्तर** लिखिए

**बोध प्रश्न 2**

1 उपभाग 8.6.1 और 8.6.2 देखिए
2 i) ✓ ii) × iii) ✓ iv) ✓

# इकाई 9 भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस की स्थापना

## इकाई की रूपरेखा


9.0 उद्देश्य
9.1 प्रस्तावना
9.2 वातावरण
 9.2.1 नए नेतागण
 9.2.2 कला एवं साहित्य
 9.2.3 अखबार एवं पत्रिकाएँ
9.3 1985 के पूर्व की राजनैतिक संस्थाएँ
9.4 सामाजिक प्रतिक्रिया
 9.4.1 लिट्टन
 9.4.2 रिपन
9.5 शिक्षित भारतीयों की भूमिका
9.6 कांग्रेस की स्थापना
 9.6.1 पहली बैठक
 9.6.2 अध्यक्षीय भाषण
 9.6.3 उपस्थिति
 9.6.4 कार्यवाही और प्रस्ताव
9.7 कांग्रेस की उत्पत्ति से संबंधित विवाद
 9.7.1 सरकारी षड्यत्र सिद्धांत
 9.7.2 विशिष्ट वर्ग की प्रतिद्वन्द्विता और महत्वकांक्षाएँ
 9.7.3 अखिल भारतीय संस्था की आवश्यकता
9.8 सारांश
9.9 शब्दावली
9.10 बोध प्रश्नों के उत्तर


## 9.0 उद्देश्य

पहले की इकाई के अध्ययन के बाद आप जान गए हैं कि किस प्रकार 19वीं सदी में भारत में आधुनिक विचारों की उत्पत्ति एवं प्रसार ने बौद्धिक जागरण में योगदान दिया। इस जागरण का मुख्य परिणाम था भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस का गठन। कांग्रेस ने आधुनिक भारत के इतिहास में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई। इस इकाई में इस बात की चर्चा की गई है कि इसके गठन की पृष्ठभूमि क्या थी और कौन से कारण थे जिनसे इसकी स्थापना हुई। इस इकाई के अध्ययन के बाद आप :

- ज्ञान पायेंगे कि किस वातावरण में भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस की स्थापना हुई थी।
- यह जान सकेंगे कि शिक्षित भारतीयों ने इसके गठन में क्या भूमिका निभायी।
- कांग्रेस के प्रथम अधिवेशन की विस्तृत जानकारी प्राप्त कर सकेंगे तथा
- इसके गठन से संबंधित विवादों से परिचित हो पायेंगे।

## 9.1 प्रस्तावना

सोमवार, 28 दिसंबर 1885 को बंबई के गोकुलदास तेजपाल संस्कृत महाविद्यालय के सभा भवन में 72 व्यक्तियों की एक बैठक हुई। वे लोग भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस के उद्घाटन सत्र में भाग ले रहे थे। उस दिन से इस संस्था ने ब्रिटिश शासन से मुक्ति के लिए भारतीय

संघर्ष में अहम् भूमिका निभायी।

आपको पहले बताया जा चुका है कि किस तरह से भारत में औपनिवेशिक राज्य की स्थापना हुई और भारत में राष्ट्रीय जागरण के उत्थान और विकास के क्या कारण थे। इस इकाई के द्वारा आप पहले पढ़ी गई इकाई से आगे की जानकारी प्राप्त करेंगे। इसमें इस बात की चर्चा भी की गई है कि भारत में फैले राष्ट्रीय जागरण के फलस्वरूप किस प्रकार भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस का राजनैतिक संगठन के रूप में गठन हुआ।

## 9.2 वातावरण

जैसे-जैसे भारत में ब्रिटिश साम्राज्य का प्रसार होता गया, आम लोगों के बीच असंतोष की भावना बढ़ती चली गयी। यह भावना इस बात पर आधारित थी कि नयें शासकों की वजह से ही उन्हें आर्थिक कठिनाइयों का सामना करना पड़ रहा है। उन्होंने यह भी महसूस किया कि उन्हें अपने ही देश में हीन भावना से देखा जा रहा है और उनकी संस्कृति पर भी हमला हो रहा है। उनकी प्रगति के लिये उपलब्ध अवसर भी अधिक नहीं थे। सामाजिक और आर्थिक रूप से पिछड़े लोगों ने छुट-पुट विद्रोह के जरिए अपना आक्रोश व्यक्त किया। यह बगावत मुख्य रूप से जमींदारों, सूदखोरों और टैक्स जमाकर्त्ताओं के विरूद्ध थी। लेकिन मोटे तौर पर यह कहा जा सकता है कि ये विरोध अंग्रेजों द्वारा बनाई गई व्यवस्था के खिलाफ थे। इन बगावतों के जरिए विदेशी शासन के खिलाफ असंतोष की तीव्रता स्पष्ट हो गयी। देश के विभिन्न भागों में फैल जाने वाला 1857 का महान् विद्रोह जनता में व्याप्त असंतोष का ही परिणाम था।

### 9.2.1 नए नेतागण

विद्रोह की असफलता ने यह स्पष्ट कर दिया था कि विरोध की पारंपरिक विधि सक्षम नहीं थी। इसके द्वारा यह भी देखने को मिला कि पुराने कुलीन वर्ग भारतीय समाज के संरक्षक नहीं हो सकते। अंग्रेजी शिक्षित मध्य वर्ग ही भविष्य की आशा के रूप में दिखाई दिया। इस वर्ग के द्वारा चलाया गया आंदोलन का स्वरूप पूरी तरह से भिन्न था। इकाई 3 में दिए विवरण द्वारा आप जान सकते हैं कि यह वर्ग इस बात से अवगत था कि अंग्रेजों के संपर्क से भारत को क्या-क्या लाभ प्राप्त हुए। यह यूरोपीय उदारवादी अवधारणाओं से भी पूरी तरह परिचित था। इसके साथ ही इन्हें देश के गौरवशाली इतिहास पर भी गर्व था और धीरे-धीरे यह अवधारणा विकसित होने लगी कि विदेशी प्रभुत्व भारतीय जनता की आशाओं और आकांक्षाओं की पूर्ति में बाधक था। भारतीय उपमहाद्वीप के विभिन्न क्षेत्रों में निवास कर रहे लोगों में स्वत्व का ज्ञान बढ़ने लगा था। शिक्षित भारतीयों को कुछ समय के लिए यह विश्वास होने लगा कि अगर परोपकारी शासक अपना ध्यान उनकी ओर दें तो उनकी समस्याओं का समाधान हो जायेगा। इसलिए, मध्य वर्ग का आंदोलन शुरू में सिर्फ कुछ विशिष्ठ राजनैतिक और आर्थिक मुद्दों तक ही सीमित था। हालाँकि यह रास्ता कुछ समय बाद छोड़ दिया गया।

### 9.2.2 कला एवं साहित्य

इस अवधि में राष्ट्रीयता और देश भक्ति के आदर्शों को गीतों, कविताओं एवं नाटकों के माध्यम से लोकप्रिय स्वरूप दिया गया। बहुत सारे गीतों को हिंदू मेले के लिए रचा गया जिनका आयोजन 1867 के कुछ सालों बाद तक बंगाली नेताओं के एक समूह द्वारा होता था। इसका उद्देश्य राष्ट्रीय आदर्शों को फैलाना और स्वदेशी कला एवं शिल्पों को बढ़ावा देना था। इस क्रम में ब्रिटिश नीतियों को लोगों की आर्थिक विपन्नता के लिए जिम्मेवार ठहराया गया। स्वदेशी वस्तुओं के इस्तेमाल करने पर जोर डाला गया। इन विचारों को नाटकों के माध्यम से भी प्रदर्शित किया गया। 1860 के आसपास "नील दर्पण" नाम का नाटक जो काफी लोकप्रिय हुआ।जिसमें कि नील की खेती करने वालों पर बागान मालिकों

द्वारा हो रहे अत्याचारों को उभारा गया था। (इकाई 7 उपभाग 7.5.1 देखें) इस संदर्भ में बंकिम चंद्र चटर्जी का नाम काफी महत्वपूर्ण है जिन्होंने कई ऐतिहासिक नाटकों की रचना की जिसमें शासकों की निरंकुशता का विशेष रूप से उल्लेख है। उनका सबसे लोकप्रिय कार्य "आनन्दमठ" (1882) है, जिसमें उनका अविस्मरणीय गीत "बंदेमातरम्" भी है जो कि कुछ ही अर्से पहले (1875) रचा गया था। इसी तरह के राष्ट्रीय भावनाओं से भरे साहित्य, अन्य भाषाओं में भी पाए जा सकते हैं। भारतेन्दु हरिश्चन्द्र ने जो कि आधुनिक हिन्दी के जन्मदाता माने जाते हैं, अपने नाटकों, कविताओं और पत्रिकाओं से स्वदेशी वस्तुओं के उपयोग करने का आग्रह किया। ऐसी ही प्रवृत्ति मराठी साहित्य में भी देखी जा सकती है जहाँ कि प्रकाशनों की संख्या काफी बढ़ी – 1818-1827 में मात्र तीन से बढ़कर 1885-1896 के बीच 3,284 हो गयी।

## 9.2.3 अखबार एवं पत्रिकाएँ

अखबारों एवं पत्रिकाओं ने भारतीय राष्ट्रीय हित में तथा औपनिवेशिक शासन की ज्यादतियों और असमानताओं के विरोध में लोकमत बनाने में एक विश्वसनीय भूमिका अदा की। इस अवधि के कुछ जाने माने अंग्रेजी भाषा के अखबार अमृत बाजार पत्रिका, हिन्दु पैट्रियाट और सोम प्रकाश थे जिनका प्रकाशन कलकत्ता में होता था। इन्दु प्रकाश और नेटिव औपिनियन बंबई से तथा हिन्दु का प्रकाशन मद्रास से होता था। हिन्दी भाषा में प्रकाशित होने वाले कुछ महत्वपूर्ण अखबार, हिन्दुस्तान, भारत मित्र और जगत मित्र थे। उर्दू भाषा के जाने माने अखबार, जामे-जहाँनुमा और खुशदिल अखबार थे।

उस समय के ब्रिटिश पर्यवेक्षकों को राजनैतिक जागरूकता एवं एकता की भावना के चिह्न स्पष्ट रूप से दिखने लगे थे। उदाहरण के लिए, 1878 में **डबलू.बी.जौन्स**, बेरार के तत्कालीन कमीश्नर ने भारत सरकार को गोपनीय रिपोर्ट में लिखा कि "20 वर्षों के मेरे अनुभव से यह स्पष्ट है कि राष्ट्रीयता की भावना पूर्ण रूप से जागृत हो गयी है जिसका कि पहले कहीं अस्तित्व नहीं था अथवा धुंधले रूप से महसूस किया गया था – अब हम लोगों को मात्र सूबों के लोगों से ही नहीं बल्कि 20 करोड़ लोगों की एकता, जो कि सहानुभूति एवं परस्पर व्यवहार पर आधारित है, तथा जिसे कि हम लोगों ने ही पैदा किया है, का सामना करना पड़ रहा है। यहां मुझे ऐसा लगता है कि इन दिनों का सबसे बड़ा राजनैतिक सच है।"

**बोध प्रश्न 1**

1 अभी जो आपने उद्धरण पढ़ा, उसमें किन बातों को उन दिनों का राजनैतिक सच कहा गया है?

..........................................................................................................

..........................................................................................................

..........................................................................................................

..........................................................................................................

..........................................................................................................

..........................................................................................................

2 अखबारों के नामों को उनके प्रकाशन के स्थानों से व्यवस्थित करे

| | |
|---|---|
| i) हिन्दू पैट्रिऑट | बंबई |
| ii) नैटिव औपिनियन | मद्रास |
| iii) हिंदू | कलकत्ता |

3 नीचे लिखे वक्तव्यों को पढ़ें और सही (✓) अथवा गलत (×) का चिन्ह लगाएँ।

i) 1857 के विद्रोह से यह प्रदर्शित हो गया कि विरोध के पारंपरिक तरीके सफल हो सकते हैं।

ii) इस अवधि में राष्ट्रीयता की भावनाओं को गीतों, कविताओं और नाटकों की सहायता से लोकप्रिय बनाया गया।

iii) भारतेन्दु हरिश्चन्द्र ने स्वदेशी चीजों के इस्तेमाल के लिए आग्रह किया।

iv) इस अवधि में अखबारों तथा पत्रिकाओं ने साम्राज्यवादी भावनाओं को फैलाने में मदद दी।

## 9.3 1885 के पूर्व की राजनैतिक संस्थायें

भारत में स्थापित होने वाली संस्थाओं में भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस पहली नहीं थी। कई संस्थायें पहले भी स्थापित की गई थीं। भारत में संगठित रूप से राजनैतिक गतिविधियों की शुरूआत 1837 में "लैण्डहोल्डर्स" नाम की संस्था की स्थापना से होती है। यह संस्था बंगाल, बिहार और उड़ीसा के जमींदारों की थी और इसके मुख्य उद्देश्य उनके वर्ग के हितों की रक्षा थी। 1843 में बंगाल "ब्रिटिश इंडिया" नाम की एक और संस्था का प्रादुर्भाव हुआ। इसके उद्देश्य व्यापक थे जैसे कि आम जनता के हितों की रक्षा करना तथा उन्हें बढ़ावा देना। लैण्डहोल्डर्स संस्था धन के अभिजात तंत्र का प्रतिनिधित्व करती थी जबकि दूसरी ओर बंगाल ब्रिटिश इंडिया सोमायटी बुद्धि के अभिजात तंत्र का प्रतिनिधित्व करती थी। 1851 ई. में दोनों संस्थाओं का विलय हो गया जिससे कि नई ब्रिटिश इंडिया नाम की संस्था का जन्म हुआ। इसी समय ब्रिटिश ईस्ट इंडिया कंपनी के अधिकार पत्र का नवीकरण भी होना था और इस बात की जरूरत महसूस की गयी कि लंदन के शासकों को संस्था के विचारों से अवगत कराया जाये। इसी समय बंबई तथा मद्रास में भी संस्थायें बनाई गयीं। इन संस्थाओं का नाम क्रमशः बंबई एसोसियेशन तथा मद्रास नेटिव एसोसिएशन रखा गया तथा इनकी स्थापना 1852 में हुई। इन सभी संस्थाओं पर धनी जमींदारों का प्रभुत्व था। इसी तरह की संस्थायें भारत के अन्य भागों में भी बनीं पर वे उतनी जानी मानी नहीं थीं। उनमें से एक देक्कन एसोसियेशन नाम की संस्था थी।

तीनों प्रेसीडेंसी संस्थाओं ने ईस्ट इंडिया कंपनी के अधिकार पत्र में परिवर्तन के लिए सुझाव भेजे। ये सुझाव हमें उस समय की जनता के प्रति जागरूक वर्गों की मनोवृत्ति का अच्छा खासा आभास देते हैं। आवेदक यह चाहते थे कि भारतीयों को व्यावस्थापिका निकायों में नियुक्त किया जाये, नमक और नील पर कंपनी के एकाधिकर को समाप्त किया जाये और सरकार स्वदेशी उद्योगों को सहायता दे। इस बात की भी चर्चा की गयी थी कि स्थानीय सरकारों के पास अधिक शक्ति होनी चाहिए तथा भारतीयों को अपने देश के प्रशासन में बड़ी हिस्सेदारी मिले। जहाँ तक खेती से संबंधित मसलों के प्रश्न थे इस बात की इच्छा जाहिर की गयी कि उनके जमीन के तत्कालीन हितों को सुरक्षित रखा जाये। प्रत्येक अर्जी में कृषकों की स्थिति में सुधार की चर्चा की गयी थी। ब्रिटिश इंडिया एसोसियेशन के सदस्यों द्वारा भेजी गयी अर्जी में यह कहा गया था कि जबकि भारतीय इस उन्नत सरकार के अभिमन्त्रण को स्वीकार करते हैं पर वह इस बात को भी महसूस करते हैं कि जहाँ तक उनको ग्रेट ब्रिटेन के संपर्क से फायदा हो सकता था जो कि उनका अधिकार था, उतना फायदा नहीं हुआ। उनकी बहुत सारी माँगों को बाद में चलकर कांग्रेस ने अपने जिम्मे ले लिया।

जैसी की पहले चर्चा की जा चुकी है, 1860 और 1870 के दशकों में राष्ट्रीयता और देशभक्ति की भावनायें फैल गयी थीं। इस अवधि में देश के विभिन्न भागों में कई राजनैतिक संस्थाओं की स्थापना की गयी जिनका कार्य प्रशासन के विभिन्न क्षेत्रों में सुधार तथा लोगों के बीच राजनैतिक चेतना जगाना था। इन संस्थाओं में पूना सार्वजनिक सभा सबसे महत्वपूर्ण थी जिसकी स्थापना एम.जी. रानाडे, जी.पी. जोशी, एस.एच. चिपलांकर और उनके सहयोगियों ने 1870 में की थी। इस संस्था ने 1878 में एक पत्रिका निकाली जिसने राजनैतिक चेतना जगाने में काफी बड़ा योगदान दिया। इंगलैंड में राजनैतिक प्रचार करने के लिए कुछ भारतीय छात्रों जैसे फिरोजशाह मेहता, बदरूद्दीन तैयबजी, दादाभाईनारोजी और मनमोहन घोष ने ईस्ट इंडिया एसोसियेशन नाम की संस्था दिसंबर 1866 में स्थापित की।

1837 में लैण्डहोल्डर्स सोसाइटी की स्थापना के बाद के 50 वर्षों की अवधि मुख्य रूप से आकांक्षाओं की थी उपलब्धियों की नहीं। लेकिन इस अवधि के दौरान एक राष्ट्रीय स्तर के संगठन के विकास का ढाँचा तैयार हो गया था। एक राष्ट्रीय मंच की जरूरत आवश्यक रूप से महसूस की गयी। कलकत्ता में ब्रिटिश इंडियन एसोसियेशन के प्रति उदासीनता काफी बढ़ रही थी। इसकी सदस्यता शुल्क 50 रु. प्रति वर्ष था जो कि मध्य वर्ग के लिए बहुत अधिक था। (लॉर्ड कर्जन के अनुमान से 1898 में ब्रिटिश भारत में प्रति व्यक्ति आय दर 30 रु. प्रति वर्ष थी) इसलिए इसकी सदस्यता सिर्फ धनी वर्ग तक ही सीमित रह गयी थी। 1876 में कलकत्ता में इंडियन एसोसियेशन की स्थापना की गयी। इसका सदस्यता शुल्क 5 रु. प्रति वर्ष था। यह शीघ्र ही शिक्षित लोगों के बीच लोकप्रिय हो गयी और बंगाल में तथा बाद में चलकर भारत की राजनीति में एक बहुत ही बड़ी ताकत बन गयी। मध्य वर्ग के एक नौजवान सुरेन्द्रनाथ बनर्जी जिन्हें कि अपर्याप्त कारणों पर भारतीय सिविल सेना से निकाल दिया गया था, इसकी स्थापना के लिए मुख्य रूप से जिम्मेवार थे। इंडियन एसोसियेशन के उद्देश्य थे एक ताकतवर जनमत का विकास, हिन्दु-मुस्लिम जनसंपर्क की स्थापना तथा भारतीय लोगों के बीच व्यापक जागरण पैदा करना। सभी तत्व राष्ट्रीय आंदोलन के अवयव थे। सुरेन्द्रनाथ बनर्जी ने कहा कि नई एसोसियेशन संयुक्त भारत की अवधारणा पर आधारित थी जिसका प्रेरणा स्रोत मैजिनी-इटली एकीकरण के मुख्य निर्माता थे।

कई अन्य राजनैतिक संगठनों की स्थापना भारत के अन्य भागों में की गयीं जैसे कि मद्रास महाजन सभा, बंबई प्रेसीडेंसी एसोसियेशन, इलाहाबाद पीपुल्स एसोसियेशन, लाहौर की इंडियन एशोसियेशन इत्यादि। इन सभी निकायों की शाखायें छोटे शहरों में भी थी। 1885 के बाद ये सारी कांग्रेस की क्षेत्रीय इकाइयाँ हो गयीं।

## 9.4 सरकारी प्रतिक्रिया

वस्तुतः शिक्षित भारतीयों की ये सभी गतिविधियाँ व्यर्थ नहीं गई। ब्रिटिश सरकार ने बढ़ते हुए राजनैतिक असंतोष को गंभीरता से लिया और शीघ्र ही आक्रामक रवैया अपनाया। इसकी एक झलक लार्ड लिटन जो 1876 में भारत आए, की नीतियों में मिलती है।

### 9.4.1 लिटन

लिटन ने खुले रूप से प्रतिक्रियावादी और भारत विरोधी नीतियाँ अपनानी शुरू की। यह इंडियन एसोसिएशन के लिए सुनहरा अवसर था और इसने अखिल भारतीय स्तर पर कई राजनैतिक आंदोलन आयोजित किए। लिटन ने भारतीय राजस्व पर अफगानिस्तान के लिए एक खर्चीला अभियान भेजा। उसने ब्रिटिश कपड़ा उद्योग के लाभ के लिए सूती कपड़ों पर से आयात कर हटा दिए जिससे नवजात भारतीय टेक्सटाइल उद्योग की हानि हुई। इन कदमों पर राजनैतिक रूप से जागृत भारतीयों ने अपनी अप्रसन्नता जाहिर की। आंतरिक नीतियों के तहत वाइसराय ने शाही राजकुमारों और जमींदारों को जो कि ब्रिटिश शासन के महत्वपूर्ण स्तम्भ थे संरक्षण दिया। वह शिक्षित भारतीयों की अभिलाषाओं को घृणा की दृष्टि से देखता था। इस अवधि में भारतीय सिविल सेवा परीक्षा में शामिल होने की उम्र सीमा 21 वर्ष से हटाकर 19 वर्ष कर दी गयी। चूँकि परीक्षा लंदन में आयोजित होती थी, इसलिए भारतीयों के लिए इस परीक्षा में शामिल होना कष्टपूर्ण था। उम्र की सीमा घटा देने से भारतीयों को इस परीक्षा में शामिल न होने देने के एक नियोजित तरीके का पता चल गया। इंडियन एसोसियेशन ने इस मुद्दे को उठाया और सारे देश में आंदोलन शुरू कर दिया। सुरेन्द्रनाथ ने स्वयं ही 1877-78 में देश के विभिन्न भागों का दौरा किया और भारतीय स्तर पर लोकप्रियता हासिल की। एसोसियेशन ने एक जाने माने बंगाली बैरिस्टर लाल मोहन घोष को एक ज्ञापन प्रस्तुत करने के लिए इंगलैंड भेजा।

**वर्नाकुलर प्रेस एक्ट और आर्म्स एक्ट के लागू होने के विरोध में जन सभाएँ आयोजित की गयीं। पहले की तरह भारतीय भाषाओं में प्रकाशित होने वाले अखबारों और पत्रिकाओं पर**

प्रतिबंध लगा दिए गए। भारतीय समाज में इस बात पर जोरदार रोष पैदा हो गया। अमृत बाजार पत्रिका जो कि उस वक्त तक बंगाली भाषा में प्रकाशित होता था रातों-रात इस एक्ट के प्रतिबंध से बचने के लिए अंग्रेजी माध्यम में प्रकाशित होने लगा। आर्म्स एक्ट के तहत भारतीयों को शस्त्र रखने के लिए लाइसेंस शुल्क अदा करने को कहा गया, जबकि यूरोपीयन लोगों को इससे मुक्त रखा गया। जमींदारों को विशेष रियायतें दी गई। आंदोलन के दौरान इन मुद्दों पर जिले के शहरों में काफी बड़ी जनसभाएँ आयोजित की गई जिसमें कई जगहों पर दस से बीस हजार के करीब लोग सम्मिलित हुए।

## 9.4.2 रिपन

1880 में लार्ड लिट्न के हटने के बाद लार्ड रिपन आए। रिपन की नीति बिल्कुल भिन्न थी। उनका मत था कि शिक्षित भारतीयों का उनकी शिक्षा और ब्रिटिश संसद के द्वारा समय-समय पर दी शपथ को ध्यान में रखते हुए उनके द्वारा धारण किए जायज प्रेरणाओं का आदर करना चाहिए। उनका कहना था कि लिट्न के शासन ने सही अथवा गलत रूप से यह भावना भारतीयों में पैदा कर दी थी कि इंगलैंड के हित में उनके सारे हितों की कुर्बानी दी जायेगी। वे शिक्षित वर्ग की बुद्धिमत्ता ब्रिटिश शासन को मजबूत करने में लगाना चाहते थे। उन्होंने वर्नाकुलर प्रेस एक्ट को निरस्त कर दिया और स्थानीय स्वशासी संस्थाओं तथा शिक्षा के प्रचार को बढ़ावा दिया तथा अफगान युद्ध को समाप्त कर दिया। उनकी नीतियाँ हालाँकि एक सीमा से ज्यादा नहीं बढ़ सकीं क्योंकि भारत में ब्रिटिश शासन के स्वरूप ने कई व्यवधान लागू किए थे।

ऐंग्लो इंडियन्स ने जो रिपन से रूष्ट थे, एक जबरदस्त आंदोलन उनके और उनकी भारतीय समर्थक नीतियों के विरूद्ध, इलबर्ट बिल के मुद्दे पर छेड़ दिया। दण्डविधि संशोधन बिल अथवा इलबर्ट बिल जो कि वाइसराय काउंसिल के ला सदस्य के नाम पर रखा गया था ने बंगाल प्रेसीडेंसी के सभी मुकदमों में भारतीय जजों के अधिकारों को यूरोपीय जजों के अधिकारों के समान बना दिया। इसका उद्देश्य यह था कि योग्य भारतीय मुफस्सिल तहसीलों में यूरोपीय लोगों द्वारा किए अपराधों की सुनवाई कर सकें। (प्रेसीडेंसी शहरों में इन्हें पहले ही ये अधिकार मिल चुके थे) यह बिल इसलिए लाया गया था क्योंकि न्यायिक सेवा में भारतीयों की संख्या बढ़ रही थी। इसमें इस बात की संभावना बढ़ गयी कि भारतीय न्यायाधीश बिना ज्यूरी के सभी अपराधी यूरोपीयों के केस की सुनवाई कर सकें। यूरोपीयों को असंतुष्टि की स्थिति में उच्च न्यायालय में अपील के अधिकार दिये गये। इस बात पर ऐंग्लों इंडियन्स के बीच जोरदार रोष भड़क उठा। रिपन ने देखा कि सिविल सेवा के अधिकारी भी विरोधियों से सहानुभूति रखते थे। अखबारों और जनसभाओं में भारतीय चरित्र और संस्कृति की तीव्र आलोचना हुई। अंततः सरकार को विरोध मत के सामने झुकना पड़ा और बिल का संशोधन इस तरीके से किया गया कि इसका मुख्य उद्देश्य ही समाप्त हो गया।

सारा विवाद, उस समय की स्थिति में जबकि अखिल भारतीय स्तर पर एक संगठन का विकास हो रहा था, महत्वपूर्ण स्थान रखता है। यह अक्सर कहा जाता है कि भारतीयों ने राजनैतिक आंदोलन का पहला सबक इस अवसर पर ऐंग्लो इंडियन्स से सीखा। यह वास्तव में सच बात नहीं है। भारतीयों ने पहले ही इस तरीके के महत्व को महसूस किया था और सिविल सेवा परीक्षा के प्रश्न पर अखिल भारतीय स्तर पर आंदोलन भी आयोजित किया था। दरअसल वे अपने अनुभव से जान गए थे कि ऐंग्लो इंडियन कभी भी उनके अधिकारों और बेहतर सुविधाओं की माँगों में साथ नहीं दे सकते थे। सारे देश में बिल विरोधी आंदोलन के मुद्दे पर भारतीयों की प्रतिक्रिया समान ही थी। भारतीय प्रेस ने यह स्पष्ट कर दिया कि शिक्षित भारतीय जनता बिल के मूल सिद्धांतों का आदर करती हैं और इसके परित्याग करने पर तीव्र विरोध करेगी। जब बिल के मूल सिद्धान्तों का त्याग कर दिया गया तो भारतीय प्रेस ने राष्ट्रीय एकता, आत्मनिर्भरता और शक्तिशाली संगठन की तत्कालीन आवश्यकता पर चर्चा शुरू कर दी थी।

1880 के दशक के प्रारंभ में एक राष्ट्रीय संगठन की आवश्यकता का मुद्दा भारतीय प्रेस के लिए एक महत्वपूर्ण विषय बन गया था। इलबर्ट बिल विवाद ने इस आवश्यकता को

और भी आवश्यक बना दिया। जुलाई 1883 में इंडियन एसोसिएशन ने एक सभा आयोजित की जिसमें करीब 10,000 लोगों ने भाग लिया। इस सभा में यह तय किया गया कि एक राष्ट्रीय कोष की स्थापना इस उद्देश्य से की जाये कि भारत और इंगलैंड में आंदोलनों के जरिए देश का राजनैतिक विकास किया जा सके। इस प्रस्ताव का हर जगह स्वागत किया गया। हालाँकि कुछ क्षेत्रों में इसकी निंदा इस आधार पर की गयी कि इंडियन एसोसिएशन, देश के अन्य राजनैतिक संगठनों का सहयोग पाने में असफल रही थी। राष्ट्रीय कोष में मात्र 20,000 रुपए ही संग्रहित किए जा सके। लेकिन प्रेस में इस बात पर व्यापक रूप से चर्चा हुई। चर्चा के क्रम में संयुक्त राजनैतिक कदम की आवश्यकता पर बार-बार बल दिया गया और कहा गया कि विभिन्न राजनैतिक संगठनों के प्रतिनिधियों को देश के बड़े शहरों में वर्ष में एक बार मिलना चाहिए। दिसंबर 1883 में एक अंतर्राष्ट्रीय प्रदर्शनी का आयोजन कलकत्ता में होने वाला था। इंडियन एसोसिएशन ने इस अवसर का लाभ उठाने का निश्चय किया और देश के विभिन्न भागों के प्रमुख लोगों और संगठनों को मिलने का निमंत्रण दिया और सार्वजनिक हित के प्रश्नों पर विचार करने को कहा। यह सम्मेलन 28 से 31 दिसंबर तक चला और इसे राष्ट्रीय सम्मेलन कहा गया। इस सम्मेलन में न तो काई विशेष प्रतिनिधि आए और न ही यह प्रभावशाली था। लेकिन यह एक महत्वपूर्ण बात है कि इसमें तय किए गए कार्यक्रम आगे चलकर भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस द्वारा अपनाए कार्यक्रमों के समान थे। इसने 45 विभिन्न क्षेत्रों से आए शिक्षित भारतीयों को एक जगह बैठकर विचार-विमर्श करने का सुनहरा अवसर प्रदान किया। यह ठीक ही कहा गया है कि यह भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस का पूर्वगामी था।

**बोध प्रश्न 2**

1 लॉर्ड लिटन के द्वारा उठाए उन पाँच कदमों की एक सूची बनाएँ जिन्होंने भारतीयों में आक्रोश पैदा किया।

.............................................................................................................

.............................................................................................................

.............................................................................................................

.............................................................................................................

.............................................................................................................

2 नीचे दिए कौन से वक्तव्य सही (✓) अथवा गलत (×) हैं।

i लॉर्ड रिपन ने लिटन से विभिन्न रास्ता अपनाया।

ii इल्बर्ट बिल को एंग्लों इंडियन्स का पूर्ण समर्थन था।

iii यह बात सच है कि भारतीयों ने राजनैतिक आंदोलन का पहला सबक एंग्लों इंडियन्स से सीखा।

iv यह सही है कि राष्ट्रीय सम्मेलन भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस का पूर्वगामी था।

3 इल्बर्ट बिल विवाद से आप क्या समझते हैं? नीचे दी गई जगह में लिखें।

.............................................................................................................

.............................................................................................................

.............................................................................................................

.............................................................................................................

.............................................................................................................

.............................................................................................................

.............................................................................................................

## 9.5 शिक्षित भारतीयों की भूमिका

स्वाभाविक रूप से यहाँ एक प्रश्न उठता है कि इस अवधि में समाज का कौन सा वर्ग राजनैतिक क्रियाकलापों में अग्रणी की भूमिका निभा रहा था। अब हम इस प्रश्न पर विचार करेंगे।

इतिहासकारों के मतानुसार राजनैतिक क्रियाकलापों के आयोजन में "शिक्षित मध्य वर्ग" शिक्षित अभिजात्य अंग्रेज या बुद्धिजीवी वर्ग और व्यावसायिक वर्ग अग्रणी थे। भारतीयों के इस वर्ग की कुछ विशेषताओं का उल्लेख आवश्यक है जिन्होंने कि अंग्रेजी का ज्ञान हासिल किया था तथा ब्रिटिश शासन के मध्य बड़े हुए थे और जिन लोगों ने पेशे के रूप में कानून, शिक्षा तथा पत्रकारिता को अपनाया था अथवा सरकारी नौकरियाँ प्राप्त की थी। इन लोगों ने मूलतः बंबई तथा मद्रास प्रेसीडेंसी शहरों में अपनी शुरूआत की थी पर बाद में देश के हर हिस्से में फैल गए थे।

राष्ट्रीय चेतना तथा अतीत के गौरव से प्रेरित होकर मध्य वर्ग ने राजनैतिक अधिकारों के लिए संवैधानिक आंदोलन शुरू कर दिया। इसकी गति इतनी धीमी थी कि शुरू की अवधि में इस पर ध्यान ही नहीं गया। इसकी सामाजिक तथा आर्थिक जड़ें उद्योग अथवा व्यापार में निहित नहीं थी बल्कि इस वर्ग की जड़ें खेती, सरकारी सेवा अथवा व्यवसायों में थीं। इस क्षेत्र के लोग अपने को मध्य वर्ग कहलाने में गर्व महसूस करते थे जो कि जमींदारों के नीचे तथा मजदूरों के ऊपर थे। ये लोग उसी तरह की भूमिका निभाने का इंतजार कर रहे थे जैसी भूमिका पश्चिम के मध्य वर्ग ने निभायी थी अर्थात् पुनर्जागरण धर्म सुधार राजनैतिक संस्थाओं को औद्योगीकरण तथा उद्योगीकरण के जरिए सामंतवादी समाज से आधुनिक समाज तक के परिवर्तन का प्रतिनिधित्व।

मध्य वर्ग के सदस्य समाज के उस वर्ग से आते थे जो गरीब नहीं कहे जा सकते थे और सामान्यतः उच्च जाति के थे। हालाँकि, यह उल्लेखनीय है कि उच्च जाति के सभी लोग समाज में आर्थिक रूप से संपन्न नहीं थे। उदाहरण के लिए, बंगाल तथा भारत के कई अन्य क्षेत्रों के संपन्न परिवारों में ब्राह्मण जाति के रसोईये रखने की प्रथा थी। इसी प्रकार बंबई में भी, 1864 में जमा किए आँकड़ों से पता चलता है कि करीब 10,000 भीख मांगने वाले या तो चितपावन ब्राह्मण थे अथवा सारस्वत ब्राह्मण।

समाज के इस वर्ग को इस आधार पर सर्वोच्च कहा जा सकता है कि समाज का यह एक चुना हुआ अथवा एक विशिष्ट भाग था। परन्तु इस वर्ग की विचारधारा अपनी सुविधाओं की रक्षा सामाजिक स्तर के आधार पर नहीं करती थी। उनकी सबसे बड़ी धरोहर अंग्रेजी शिक्षा थी। अंग्रेजी शिक्षा को उन्होंने अपने तक ही सीमित नहीं रखा परन्तु बहुत से शिक्षित भारतीयों ने इस तरह की शिक्षा को फैलाने में अपने आप को समर्पित भी किया। बाद में उन्होंने बड़ी दिलचस्पी से अनिवार्य प्रारंभिक शिक्षा को लागू करने की माँग भी की। इसी प्रकार उन्होंने बिना संकोच के ऐसे सामाजिक सुधारों की माँग की जिनका कि उनकी सुविधाओं पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ सकता था।

भारतीय संदर्भ में "शिक्षित मध्य वर्ग" उन अवधि में उस समूहों को कहा जाता था जिन्होंने पश्चिमी शिक्षा पायी थी और जो किसी प्रकार के क्षेत्रीय अथवा राष्ट्रीय नेतृत्व देने की शुरूआत कर रहे थे। इन समूहों की सामाजिक रचना तथा दृष्टिकोण उन राजकुमारों, प्रधानों तथा जमींदारों से काफी भिन्न था जिन्होंने कि पहले अंग्रेजी शासन का विरोध किया था। 19वी सदी में इस वर्ग ने धार्मिक तथा सामाजिक सुधारों द्वारा देशभक्ति के गीतों, नाटकों तथा साहित्य के लेखन द्वारा ब्रिटिश शासन की आर्थिक आलोचना द्वारा तथा राजनैतिक संगठनों की स्थापना के द्वारा भारतीय जीवन में महत्वपूर्ण योगदान दिया।

वाइसराय लॉर्ड डफरिन ने एक बार अपनी टिप्पणी में यह कहा कि यह एक "सूक्ष्मदर्शी अल्पसंख्यक संस्था है।" इस टिप्पणी को विभिन्न इतिहासकारों ने समय-समय पर उद्धरित

किया है। इसमें कोई शक नहीं कि यह अल्पसंख्य था। परंतु यह ऐसा अल्पसंख्य था जिसकी उपेक्षा नहीं की जा सकती थी जैसा कि डफरिन खुद भी जानते थे। यह एक ऐसा अल्पसंख्यक था जिसका कि आदर्श सामान्य था और जो कि एक ही तरह की बोली बोलते थे और जिनका दृष्टिकोण अखिल भारतीय स्तर का था। हमें यह भी याद करना चाहिए कि इतिहास में देश के स्वरूप निर्धारण में सक्रिय अल्पसंख्य वर्ग की ही भूमिका अहम रही है। यहाँ एक दूसरी कहावत की चर्चा की जा सकती है जिसने कि कुछ हद तक लोकप्रियता हासिल की थी। ब्रिटिश अफसरों का कहना था कि कांग्रेस आम जनता का प्रतिनिधित्व नहीं करती थी और जबकि अंग्रेज भारतीय जनता के हितों की देखभाल करते थे और उनके माँ-बाप के समान थे। इस कहावत को विकसित किया गया था क्योंकि यह ब्रिटिश राज्य के स्थायीकरण से संबंधित साम्राज्यिक हितों में योगदान देती थी। कुछ हद तक सभी देशों के शिक्षित लोग आम जनता से अलग-थलग होते हैं। भारत में इस अलगाव को आधुनिक शिक्षा के विदेशी माध्यम ने और भी अधिक कर दिया। लेकिन अंग्रेजी का ज्ञान प्राप्त कर लेने का यह मतलब नहीं था कि लोग अपनी भाषा जानना छोड़ चुके थे। महत्वपूर्ण बात यह है कि एक वर्ग के रूप में शिक्षित भारतीयों ने कभी भी अपने आप को सरकार के हाथों नहीं बेचा।

## 9.6 कांग्रेस की स्थापना

इस खंड में हम कांग्रेस की स्थापना से संबंधित कुछ मुद्दों की चर्चा करेंगे जैसे कि इसके प्रारंभिक कार्यक्षेत्र और गतिविधियाँ, पारित प्रस्ताव और विभिन्न वर्गों की सदस्यता इत्यादि।

### 9.6.1 पहली बैठक

भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस की पहली बैठक के आयोजन का श्रेय ए.ओ.ह्यूम को जाता है। वे एक सेवानिवृत सरकारी अधिकारी थे जिन्होंने सेवानिवृति के बाद भारत में ही रहने का फैसला किया था। उनका लार्ड रिपन से बहुत ही अच्छा संबंध था और वह उनके इन विचारों से सहमत थे कि शिक्षित भारतीयों के उदय को राजनैतिक सच के रूप में स्वीकार करना चाहिए और समयानुसार ऐसा कदम उठाना चाहिए जिससे कि इस वर्ग की माँगों के लिए एक न्यायसंगत निकास की व्यवस्था हो और इस बात का भी प्रयास होना चाहिए कि उनकी महत्वाकांक्षाऐं पूरी हो सकें। उन्होंने कठिन परिश्रम करके अपने सारे संपर्कों को संघटित किया। दिसंबर 1884 के शुरू में वे रिपन को विदा करने बंबई पहुँचे। वे वहाँ करीब तीन महीने ठहरे और इस अवधि में उन्होंने प्रेसीडेंसी के प्रभावशाली नेताओं से शिक्षित भारतीयों के द्वारा उठाये जाने वाले राजनैतिक कार्यक्रमों के बारे में विचार-विमर्श किया। मार्च 1885 में यह तय किया गया कि इंडियन नेशनल यूनियन (शुरू में यही नाम अपनाया गया) का एक सम्मेलन क्रिसमस सप्ताह के दौरान पूना में आयोजित किया जायेगा। शुरू में ह्यूम और उनके सहयोगियों ने कलकत्ता में सम्मेलन बुलाने पर विचार किया। लेकिन बाद में उन लोगों ने पूना में ही आयोजन करने का निश्चय किया क्योंकि यह जगह देश के केन्द्र में थी और पूना सार्वजनिक सभा की कार्यपालिका समिति ने सम्मेलन की सारी व्यवस्था और आवश्यक कोष के इंतजाम करने की जिम्मेवारी ले ली थी।

हालाँकि दुर्भाग्य ने पूना को भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस के पहले अधिवेशन के आतिथ्य के अवसर से वंचित कर दिया। पूना में हैजा फैल जाने से स्थान को बंबई ले जाया गया। पहली सभा का आयोजन सोमवार, 28 दिसंबर 1885 को गोकलदास तेजपाल संस्कृत महाविद्यालय, बंबई में किया गया। इसमें करीब 100 लोगों ने भाग लिया जिसमें से 72 लोगों को सदस्यों की मान्यता दी गयी। कांग्रेस अध्यक्ष बनने का पहला गौरव बंगाल के डब्लू.सी. बनर्जी को मिला। वे पहले चार भारतीय बैरिस्टरों में से एक थे और उन दिनों

के अग्रणी कानूनविद् भी थे। उनके चुनाव से एक स्वस्थ मिसाल की स्थापना हुई कि अध्यक्ष का चुनाव सम्मेलन के स्थान वाले प्रांत के बाहर से होना चाहिए।

9. पहली भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस-1885

### 9.6.2 अध्यक्षीय भाषण

पहले कांग्रेस अध्यक्ष का अध्यक्षीय भाषण कांग्रेस के चरित्र, उद्देश्यों और कार्यक्षेत्र की ओर स्पष्टतः केंद्रित था। अध्यक्षीय भाषण ने कांग्रेस के प्रति पैदा होने वाली गलत धारणाओं को भी दूर करने की कोशिश की।

अध्यक्ष ने कांग्रेस के उद्देश्यों को साफतौर पर परिभाषित किया। उन्होंने उद्देश्यों का निम्नलिखित ढंग से उल्लेख किया:

- देश के लोगों के बीच मित्रता तथा आपसी मेल-मिलाप को बढ़ावा देना।
- प्रजाति, धर्ममत और प्रांतों के प्रति पैदा हुए सभी विद्वेषों को दूर करना।
- राष्ट्रीय एकता की भावनाओं को संघटित करना
- शिक्षित वर्गों द्वारा तत्कालिक मुद्दों पर व्यक्त मतों को दर्ज करना और
- जनहित में उठाये जाने वाले कदमों का निर्धारण करना।

इन माँगों के अलावा अध्यक्ष ने ब्रिटिश शासन के द्वारा भारत को दिए कृपादानों का भी उल्लेख किया। उन्होंने यह आश्वासन दिया कि शिक्षित भारतीय, सरकार के प्रति पूरे निष्ठावान तथा शुभचिंतक हैं। उन्होंने इस बात का स्पष्ट उल्लेख किया कि कांग्रेस के इस आयोजन का उद्देश्य सिर्फ अपने विचारों को शासनाधिकारियों के पास पहुँचाना है और इन लोगों को षड्यंत्रकारी और कृतघ्न कहना अनुचित है। उन्होंने ह्यूम के नेतृत्व को इसलिए स्वीकार किया क्योंकि भारत में ब्रिटिश समुदाय के ज्यादातर सदस्यों को शिक्षित भारतीयों पर भरोसा नहीं था। अन्त में अध्यक्ष ने सावधानीपूर्वक कांग्रेस के उद्देश्यों की चर्चा की।

इनकी मुख्य इच्छा यह थी कि सरकार के आधार को फैलाया जाना चाहिए। इस तरह की नीति न सिर्फ सरकार के लिए बल्कि लोगों के हित में भी सहायक होगी। यह इस बात को दर्शाता है कि कांग्रेस अपने स्वार्थ की पूर्ति के लिए सरकार में भागीदारी नहीं चाहती थी बल्कि इस संदर्भ में सारे भारतीयों के हितों के बारे में सोच रही थी। दरअसल सबसे अधिक गहराई से राष्ट्रीय एकता की आकांक्षा को ही व्यक्त किया गया था।

ब्रिटिश शासन के न्यायपूर्ण रवैये में कांग्रेस के नेताओं को असीम विश्वास था। वे अंग्रेजों को बाहर निकालने के संदर्भ में नहीं सोचते थे। वे सिर्फ यही चाहते थे कि भारतीय सरकार द्वारा अपनायी नीतियों का उद्देश्य भारतीय जनता की भलाई होनी चाहिए और यही उनके हितों की तरक्की का मतलब था। इस उद्देश्य की पूर्ति के लिए वे सरकार के संचालन में बड़ी भागीदारी चाहते थे। ऐसा प्रतिनिधित्व संस्थाओं के विकास और भारतीयों को उच्च पदों पर नियुक्ति देकर किया जा सकता था।

### 9.6.3 उपस्थिति

इस बात का जिक्र ही किया जाता है कि कांग्रेस में वकीलों का बोलबाला था। उदाहरण के लिए इतिहासकार अनिल सील का मानना है कि कांग्रेस के पहले अधिवेशन में आधे से ज्यादा (72 में 39) लोग वकील थे और आने वाले दशकों में भी एक तिहाई से ज्यादा प्रतिनिधि वकालत के पेशे से ही थे। पुराने रईस वर्ग के लोग जैसे राजाओं, महाराजाओं, बड़े जमीदारों और धनी व्यापारियों की अनुपस्थिति सुस्पष्ट थी। कृषक और मजदूर भी उसकी ओर आकर्षित नहीं हुए। इस बात से इंकार नहीं किया जा सकता है कि वकीलों का प्रभुत्व था। लेकिन यह लगभग सभी राजनैतिक संगठनों और विधायिकाओं के बारे में कहा जा सकता है। भारत में शिक्षित भारतीयों के सामने भविष्य निर्माण के बहुत कम अवसर उपलब्ध होने के कारण ज्यादातर लोगों ने कानूनी पेशे को ही अपना लिया। पुराने कुलीन वर्ग कांग्रेस की सभा में भाग नहीं लेते थे क्योंकि उनमें नए उदार और राष्ट्रीय विचारों के कारण असुरक्षा की भावना पैदा हो गई थी। हालाँकि भारत के गरीबों की चर्चा काफी समय से कई नेताओं खासकर दादाभाई नौरोजी द्वारा की गयी थी परंतु आम जनता को आंदोलन के इस दौर में शामिल करने का कोई प्रयास नहीं किया गया। जब कांग्रेस ने लोगों के हालात पर चर्चा शुरू की तब यह निश्चय किया गया कि पहला कदम प्रतिनिधि संस्थाओं के अधिकार की तरफ उठाना चाहिए। कांग्रेस द्वारा अपनाए तरीकों जैसे निवेदन पत्र देना, अपील करना तथा लेख चर्चा को देखा जाए तो ऐसा स्वाभाविक ही था।

### 9.6.4 कार्यवाही और प्रस्ताव

कांग्रेस की कार्यवाही काफी सुचारू और सफल ढंग से संचालित की जाती थी। प्रस्तावों को बडी कड़ी संसदीय प्रक्रिया के तहत विचार-विमर्श के बाद पारित किया जाता था। प्रत्येक प्रस्ताव को एक प्रांत के सदस्य द्वारा रखा जाता था और तब किसी दूसरे प्रांत के सदस्य द्वारा उसका अनुमोदन होता था और अन्य प्रांतों के सदस्य उसका समर्थन किया करते थे। उनके द्वारा दिए भाषण काफी संयमित होते थे तथा ब्रिटिश सरकार के प्रति वफादारी प्रदर्शित करते थे। इतिहासकार ब्रिटन मार्टिन (न्यू इंडिया : 1885, दिल्ली 1970) ने टिप्पणी की है कि कांग्रेस का पहला अधिवेशन एक नितांत व्यावसायिक मामला था जो कि उसी तरह के इंगलैंड और अमेरिका में होने वाले राजनैतिक संगठनों के लिए ईर्ष्या का विषय हो सकता था।

पहले कांग्रेस अधिवेशन ने नौ प्रस्ताव पास किए:

- पहले प्रस्ताव में भारतीय मसलों की छानबीन के लिए रायल कमीशन, जिसमें की भारतीयों का पर्याप्त प्रतिनिधित्व हो, की नियुक्ति की माँग की गयी।
- दूसरे प्रस्ताव में सेक्रेट्री ऑफ स्टेट की भारतीय परिषद् की समाप्ति कीं माँग की गयी। । कांग्रेस यह चाहती थी कि सेक्रेट्री ऑफ स्टेट सीधे तौर पर ब्रिटिश संसद के प्रति जिम्मेवार हो। यह माँग इस भावना पर आधारित थी कि ब्रिटिश जनता न्यायी और निष्पक्ष है और अगर उसे सही तरीके से सूचना दी जाये तो वे अपने सही रास्ते से भ्रमित नहीं होंगे।
- एक अन्य प्रस्ताव में विदेश नीति से संबंधित प्रस्ताव में ऊपरी बर्मा के विलय की भर्त्सना की गयी।

- अन्य प्रस्ताव संविधान और केंद्रीय तथा प्रांतीय विधायी परिषदों की कार्यवाही को उदारवादी बनाने, ब्रिटेन और भारत में एक ही साथ सिविल सेवा परीक्षा आयोजित करने तथा सेना परीक्षा आयोजित करने तथा सेना के खर्चे को कम करने से संबंधित थे।

अधिवेश समाप्ति से पहले कांग्रेस ने दो और निर्णय लिए:–

i) पहला यह था कि कांग्रेस द्वारा पारित प्रस्तावों को देश के अन्य राजनैतिक संगठनों द्वारा सहमति का प्रयास होना चाहिये।

ii) दूसरा निर्णय अग अधिवेशन 28 दिसंबर 1886 के कलकत्ता में आयोजित करने से संबंधित था।

iii) यह निर्णय काफी महत्वपूर्ण हैं। ये इस बात को प्रदर्शित करते हैं कि नेताओं ने कांग्रेस को एक पृथक घटना के रूप में नहीं परंतु एक आंदोलन की शुरूआत के रूप में देखा।

ऊपर की परिचर्चा में आपने देखा होगा कि सामाजिक सुधारों से संबंधित प्रश्न तक पूछे नहीं गए थे। कुछ सदस्यों ने इस प्रश्न पर विचार करने का दबाव भी डाला। लेकिन काफी बुनियादी मतभेदों के कारण ऐसा नहीं किया जा सका। हालाँकि कुछ सदस्यों ने कांग्रेस अधिवेशन की समाप्ति के तुरंत बाद उसी स्थान पर हुई जनसभा का फायदा उठाते हुए बाल-विवाह और जबरन वैधता जैसे कुछ मुद्दों पर विचार किया।

**बोध प्रश्न 3**

1 शिक्षित भारतीय समाज के किस वर्ग से आते थे? पंक्तियों में लिखें

........................................................................................................

........................................................................................................

........................................................................................................

........................................................................................................

........................................................................................................

2 **प्रथम अध्यक्ष द्वारा परिभाषित कांग्रेस के लक्ष्य और विषयों की एक सूची बनाएँ।**

........................................................................................................

........................................................................................................

........................................................................................................

........................................................................................................

........................................................................................................

........................................................................................................

........................................................................................................

........................................................................................................

........................................................................................................

3 **प्रथम कांग्रेस द्वारा पारित चार प्रस्तावों का जिक्र करें**

........................................................................................................

........................................................................................................

........................................................................................................

........................................................................................................

........................................................................................................

........................................................................................................

........................................................................................................

........................................................................................................

........................................................................................................

## 9.7 कांग्रेस की उत्पत्ति से संबंधित विवाद

चूँकि भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस ने भारत के इतिहास में अहम भूमिका निभायी है इसलिए यह स्वाभाविक था कि तत्कालीन और बाद के इतिहासकार इसकी स्थापना के कारण पर अपने-अपने विचार व्यक्त करें। सच तो यह है कि कांग्रेस की स्थापना के समय से ही इस प्रश्न पर विचार किया जा रहा है। कई विद्वानों ने इस बात का पता लगाने की कोशिश की है कि यह किसी एक व्यक्ति अथवा कई लोगों अथवा कुछ विशेष परिस्थितियों का प्रतिफल था। लेकिन सारे प्राप्त प्रमाण परस्पर विरोधी हैं। कांग्रेस की शुरूआत के 100 वर्ष बाद भी इतिहासकारों के बीच इस मुद्दे पर चर्चा जारी है। हम देखेंगे कि किस प्रकार भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस की स्थापना की व्याख्या निम्नलिखित वैकल्पिक सिद्धांतों द्वारा की जा सकती है "सरकारी षड्यन्त्र सिद्धांत, विशिष्ट वर्ग की प्रतिद्वन्द्विता तथा महत्व, अखिल भारतीय संस्था की आवश्यकता"

### 9.7.1 सरकारी षड्यंत्र सिद्धांत

अगर भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस की स्थापना किसी भारतीय द्वारा की गयी होती तो इसे एक स्वाभाविक तथा तार्किक रूप में स्वीकार कर लिया गया होता। परंतु, सच तो यह है कि अखिल भारतीय राजनैतिक संगठन की योजना को मूर्त और सुनिश्चित आकार एक अंग्रेज ए.ओ.ह्यूम नाम के व्यक्ति ने दिया जिसने कई विवादों को जन्म दिया है। ऐसा क्यों हुआ कि कांग्रेस की शुरूआत एक अंग्रेज द्वारा हुई? इसके अलावा, ह्यूम मात्र एक अंग्रेज ही नहीं बल्कि भारतीय सिविल सेवा में एक प्रशासनिक अधिकारी भी था। यह कहा जाता है कि नौकरी के उपरांत उसे कई ऐसे महत्वपूर्ण तथ्यों के बारे में पता चला जिनसे यह प्रमाणित होता था कि आम जनता के दु:खों और बुद्धिजीवी वर्ग के अलगाव ने काफी हद तक आक्रोश एकत्रित कर दिया था जो कि ब्रिटिश शासन के लिए खतरा पैदा कर सकता था। 1857 के महान् विद्रोह की यादें अभी भी ताजा थीं। इसके अलावा, ह्यूम ने खुद ही कहा था कि उसका उद्देश्य भारतीय आक्रोश को रोकने के लिए एक सुरक्षा कपाट (सेफ्टी वाल्व) का प्रबंध करना था जिससे अंग्रेजों के विरूद्ध किसी बड़े विद्रोह को रोका जा सके। बनर्जी के इस वक्तव्य ने कि ह्यूम डफरिन की सीधी सलाह से काम कर रहे थे और भी मजबूती प्रदान की। इन दो तथ्यों को एक साथ अध्ययन करने से यह तथ्य पैदा हुआ कि भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस का जन्म एक सुनियोजित ब्रिटिश चाल से हुआ जिसका उद्देश्य शिक्षित भारतीयों के बीच पैदा हुए असंतोष को शांतिपूर्ण और संवैधानिक तरीके से निकास मिल सके और इस तरह राज के खतरे को टाला जा सके।

लेकिन इतिहासकारों ने अब इस विचार को स्वीकार करने से इंकार कर दिया है और इसके लिए कई कारण प्रस्तुत किए गए हैं। सरकारी निर्णयों में ह्यूम के प्रभाव को काफी बढ़ा चढ़ा कर रखा गया है। गवर्नर जनरल लार्ड डफरिन को लिखे गुप्त पत्रों से जो अब उपलब्ध है यह प्रकट होता है कि ब्रिटिश पदाधिकारियों के द्वारा ह्यूम के विचारों को बहुत गंभीरता से नहीं लिया जाता था। इसके अतिरिक्त ह्यूम का उद्देश्य शिक्षित भारतीयों के असंतोष के निकास के लिए "सुरक्षा कपाट" (सेफ्टी वाल्व) बनाने मात्र से कहीं अधिक तथा वास्तविक और निष्कपट था। उन्हें भारतीयों के प्रति एक मानवीय सहानुभूति भी थी और वह कई वर्षों तक कांग्रेस को एक मजबूत और सक्रिय संगठन बनाने के अथक प्रयास में लगे रहे। 1885 से 1906 तक वह कांग्रेस के महासचिव रहे और इसकी गतिविधियों के दिशा निर्देशन, निश्चित आकार, सामंजस्यता तथा अभिलेखन में योगदान देते रहे। ह्यूम के लिए कहीं भी भारतीय जनता के पुनरुद्धार के लिये कार्य करने में तथा प्रबुद्ध साम्राज्यवादी विचारों में कोई असंगति नहीं थी और एक ही समय में वह यह विश्वास करते थे कि प्रबुद्ध दूरस्थ साम्राज्यवाद भारतीय जनता के सामाजिक और सांस्कृतिक पुनर्जागरण के लिए लाभदायी हो सकता था। अंततः अन्य घटनाओं के कारण जिनकी चर्चा की जा चुकी है, एक अखिल भारतीय संगठन की स्थापना की आवश्यकता महसूस की गयी और इस दिशा में कुछ प्रयास किए भी जा चुके थे। ह्यूम किसी भी मायने में सामाजिक और राजनैतिक वातावरण में परिवर्तन लाने के लिए जिम्मेवार नहीं ठहराये जा सकते थे जो कि राष्ट्रीय संगठन की नींव और टिके रहने को वास्तविक रूप में यथार्थ बना सके।

कांग्रेस के निर्माण को किसी एक व्यक्ति का ही प्रयास नहीं माना जा सकता है बल्कि इसके कई अन्य कारण थे जिनकी चर्चा पहले की जा चुकी है। ह्यूम सिर्फ एक व्यापक और सचेतन मध्यम वर्ग की आकांक्षाओं की पूर्ति के माध्यम थे जो देश के प्रशासन के संचालन में ब्रिटिश अधिकारियों के साथ हिस्सेदारी निभाने के लिए उत्सुक था।

इस संदर्भ में एक प्रश्न उठता है कि शिक्षित भारतीयों ने ह्यूम का नेतृत्व क्यों स्वीकार किया। यह प्रश्न और भी महत्वपूर्ण हो जाता है जब हम इस बात पर विचार करते हैं कि उनमें से कुछ लोग अपने क्षेत्र में करीब एक दशक से काफी सक्रिय थे। एक कारण यह भी हो सकता है कि अंग्रेज होने के नाते वे क्षेत्रीय पक्षपात से स्वतंत्र थे। लेकिन ऐसा प्रतीत होता है कि ज्यादा महत्वपूर्ण नेता सावधानीपूर्वक आगे बढ़ना चाहते थे ताकि उन्हें आधिकारिक रोष का सामना न करना पड़े।

भूतपूर्व ब्रिटिश सिविल अधिकारी के कारण आधिकारिक क्षेत्रों में विद्वेष पैदा होने की कम संभावना थी। भारतीय नेता अच्छी तरह जानते थे कि तत्कालीन परिस्थितियों में क्या संभव था। ऐसी स्थिति में वे अपने विचारों को शासकों के दिमाग में बिना कोई संदेह पैदा किए संघटित और व्यक्त करना चाहते थे। अपने भाषण में अध्यक्ष ने इन बातों का साफ जिक्र किया। उन्होंने कहा ''कई अवसरों पर कई सज्जनों ने जो वक्तव्य दिए हैं उन्हें सोच विचार कर कांग्रेस की भर्त्सना करनी चाहिए थी न कि सिर्फ ये समझ लेना चाहिए कि यह षड्यंत्रकारियों और गद्दारों का घोंसला है।'' अगर इसका संस्थापक एक अंग्रेज था तो द्वेष होने की संभावना कम थी। इसी संदर्भ में महान नेता जी.के. गोखले का वक्तव्य अक्सर उद्धृत किया जाता है:

''कोई भी भारतीय, भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस की शुरूआत नहीं कर सकता था...अगर कांग्रेस का संस्थापक एक महान अंग्रेज और विशिष्ठ पूर्व अधिकारी नहीं होता तो उन दिनों जिस नज़र से राजनैतिक आंदोलनों को देखा जाता था, अधिकारी किसी न किसी आधार पर आंदोलन को दबा देते।''

## 9.7.2 भारतीय विशिष्ट वर्ग की प्रतिद्वन्द्विता और महत्वकांक्षाएँ

पिछले दो दशकों में कई इतिहासकारों खासकार कैम्ब्रिज के विद्वानों ने कहा है कि भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस कुछ मायनों में राष्ट्रीय नहीं थी बल्कि यह स्वार्थी व्यक्तियों द्वारा चलाया गया आंदोलन था और यह उनके आर्थिक हितों और संकीर्ण विवादों की पूर्ति के लिए साधन के रूप में कार्य करता था। (इन विचारों को व्यक्त करने वाले सबसे ज्यादा, प्रभावशाली इतिहासकार अनिल सील हैं) लेकिन इस विचार को भारत में चुनौती दी गई है। यह बात सच है कि अपने स्वार्थों की पूर्ति के लिए हर कोई शक्ति पाना चाहता है। लेकिन कई अन्य व्यापक कारणों को नकारा नहीं जा सकता। इस तरह की विवेचना रंग-भेद से ठेस लगी भावनाओं, देशवासियों की उपलब्धियों पर गौरवान्वित होने की भावना और इस बात का बोध होना कि उनके देशवासियों के हितों की पूर्ति भारत और ब्रिटेन के संबंधों के पुनर्गठन से हो सकेगी की उपेक्षा करती है। इस तरह की भावना विकसित हो रही थी कि भारतीय समान संस्कृति और मौलिक आर्थिक और राजनैतिक हित के साझेदार हैं। विदेशी शासन ने लोगों की समान आकांक्षाओं और कष्टों को और बढ़ा दिया था।

भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस के संस्थापक और कई अन्य संगठन राष्ट्रवादी दृष्टि के आदर्शवाद से प्रेरित थे जिसके कारण भारतीय राष्ट्र के हित में स्वयं, परिवार, जाति तथा समुदाय के हितों को आधीनीकरण कर दिया गया। वे राष्ट्रीय दृष्टि को वास्तविकता में बदलने के प्रयास में नए रास्तों की खोज में लगे रहे। कांग्रेसी नेताओं की पहली पीढ़ी इस बात से हमेशा सचेत रही कि वे ब्रिटिश सरकार के द्वारा शासित किए जाते हैं जिसने कि भारत में कई उदार मूल्यों को लाया और उनसे पूरी तरह संबंध विच्छेद कर लेना देशवासियों के हित में नहीं हो सकता है। दूसरी तरफ वे ऐसी संरचना बनाने का रास्ता ढूंढ रहे थे जो कि उनके देशवासियों के हितों की पूर्ति कर सके।

### 9.7.3 अखिल भारतीय संस्था की आवश्यकता

व्यापक संदर्भ में देखने पर प्रतीत होता है कि भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस की स्थापना विदेशी शासन की लंबी अवधि के परिणामस्वरूप पैदा हुई विद्यमान राजनैतिक और सामाजिक आर्थिक परिस्थितियों की ही प्रतिक्रिया थी। जैसा कि हमने देखा है कि 1880 दशक के दौरान एक राष्ट्रीय संगठन बनाने का विचार काफी हद तक रंगरूप ले चुका था। दरअसल 1885 के अंतिम दस दिनों में करीब पाँच सम्मेलनों का आयोजन देश के विभिन्न भागों में किया गया था। मद्रास महाजन सभा ने अपना द्वितीय वार्षिक सम्मेलन 22 से 24 दिसंबर तक आयोजित किया। इसे ऐसे वक्त किया गया ताकि सभा के सदस्य पूना में होने वाली कांग्रेस में सम्मिलित हो सकें। इंडियन एसोसिएशन द्वारा द्वितीय भारतीय राष्ट्रीय सम्मेलन कलकत्ता में आयोजित किया गया। 1885 के दिसंबर के शुरू में जब पूना में सम्मेलन बुलाने की योजना की घोषणा की गयी तो सुरेन्द्रनाथ बनर्जी को अपना सम्मेलन स्थगित करने की राय दी गयी। लेकिन उन्होंने इस स्थिति में ऐसा करने में अपनी असमर्थता व्यक्त की। 1886 में इसका विलय भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस में हो गया। इसी अवधि में यूरोपियों द्वारा जबलपुर में तथा प्रयाग सेन्ट्रल हिन्दू समाज द्वारा इलाहाबाद में दो भिन्न सम्मेलन आयोजित किए गए। राष्ट्रीय स्तर पर शिक्षित वर्ग के आविर्भाव, उनके द्वारा व्यक्त विचारों और संगठनात्मक विकासों के द्वारा राष्ट्रीय संस्था का निर्माण लगभग अवश्यम्भावी हो चुका था। भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस शिक्षित वर्ग के राजनैतिक उद्देश्यों के लिए साथ-साथ काम करने की आवश्यकता की आवश्यकता के परिणाम का प्रतिनिधित्व करती थी। यह राजनैतिक विचारों के विकास की एक लंबी प्रक्रिया तथा 1830 के दशक से शुरू हुए संगठन की प्रक्रिया का ही परिणाम था।

यह ध्यान देने वाली दिलचस्प बात है कि तत्कालीन भाग लेने वाले और पर्यवेक्षकों ने दो बातों के प्रति अपनी जागरूकता दिखायी। एक बात यह थी कि वे लोग इतिहास बना रहे थे और दूसरी कि कांग्रेस राष्ट्रत्व की भावना के विकास का सूचक बन गयी थी। इतिहास के निर्णय ने उनके विचारों की पुष्टि कर दी है।

**बोध प्रश्न 4**

1 सेफ्टी वाल्व सिद्धांत से आप क्या समझते हैं? करीब 100 शब्दों में लिखो

..........................................................................................

..........................................................................................

..........................................................................................

..........................................................................................

..........................................................................................

..........................................................................................

..........................................................................................

..........................................................................................

..........................................................................................

2 कांग्रेस की उत्पत्ति से संबंधित ऊपर दिये गए सिद्धांतों में आप कौन सा सिद्धांत स्वीकार्य पाते हैं और क्यों?

..........................................................................................

..........................................................................................

..........................................................................................

..........................................................................................

..........................................................................................

..........................................................................................

.................................................................................................

.................................................................................................

.................................................................................................

.................................................................................................

## 9.8 सारांश

1885 में भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस की स्थापना में एक नए युग की शुरूआत हुई जिसने कि मात्र 60 वर्षों की अवधि में राष्ट्र की स्वतंत्रता, संप्रभुता तथा आत्म-निर्भरता के सपनों को पूरा होते हुए देखा। यह भारतीय लोगों के बीच बन रही एकता की भावना का स्पष्ट सूचक था। यह सच है कि शुरू में कांग्रेस एक [illegible] थत राजनैतिक संगठन नहीं था। उसकी न तो कोई नियमित सदस्यता थी और न ही कोई केन्द्रीय कार्यालय। इसके विचार भी काफी नर्म तथा संतुलित थे। लेकिन किसी ने सही ही कहा है कि महान संस्थाओं की हमेशा ही छोटी शुरूआत होती है।

## 9.9 शब्दावली

**मुफस्सिल** : जिले का एक सबडिविजन

**प्रेसीडेंसी शहर** : शुरू के ब्रिटिश अधिकृत केन्द्र जैसे कलकत्ता मद्रास बम्बई

**पुनर्जागरण** : 14वीं और 16वीं शताब्दियों के बीच पश्चिमी यूरा यरोप में होने वाली सांस्कृतिक जागरूकता और सामाजिक परिवर्तन की प्रक्रिया

**धर्म सुधार** : आधुनिकीकरण की दिशा में एक महत्वपूर्ण कदम पश्चिमी यूरोप में 15वीं शताब्दी में पुनर्जागरण के बाद

## 9.10 बोध प्रश्नों के उत्तर

**बोध प्रश्न 1**

1 खंड 9.2 पढ़ो

2 i) c,  ii) a,  iii) b

3 i) ✕  ii) ✓  iii) ✓  iv) ✕

**बोध प्रश्न 2**

1 उपभाग 9.4.1 देखो

2 i) ✓  ii) ✕  iii) ✕  iv) ✓

3 उपभाग 9.4.2 देखो

**बोध प्रश्न 3**

1 अपना उत्तर भाग 9.5 से लिखो

2 उपभाग 9.6.2 देखो

3 उपभाग 9.6.4 देखो

**बोध प्रश्न 4**

1 उपभाग 9.7.1 देखो

2 भाग 9.7 को पूरा पढ़ो और अपना उत्तर लिखो।

# इकाई 10 भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस: नरम दल और गरम दल

## इकाई की रूपरेखा


10.0 उद्देश्य
10.1 प्रस्तावना
10.2 कांग्रेस का संयोजन
  10.2.1 मध्यवर्गीय संगठन
  10.2.2 कार्य प्रणाली
10.3 नरम दल (उदारवादी)
  10.3.1 मांगे तथा कार्यक्रम
  10.3.2 कार्य का मूल्यांकन
10.4 गरम दल
  10.4.1 गरमदल का सैद्धान्तिक आधार
  10.4.2 गरम दल की कार्रवाई
10.5 नरम दल तथा गरम दल: एक विश्लेषण
  10.5.1 मतभेद
  10.5.2 व्यक्तित्वों की टकराहट
  10.5.3 खुली लड़ाई और फूट
  10.5.4 फूट के परिणाम
10.6 सारांश
10.7 शब्दावली
10.8 बोध प्रश्नों के उत्तर


## 10.0 उद्देश्य

इस इकाई में हम भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस के विकास और प्रारंभिक राष्ट्रवादी नेतृत्व की भूमिका पर विचार करेंगे। इसे पढ़ने के बाद आप:

- कांग्रेस के प्रारंभिक स्वरूप का वर्णन कर सकेंगे।
- यह जान सकेंगे कि कांग्रेस में किस प्रकार नरम दलीय और गरम दलीय, दो विपरीत दृष्टिकोण उभर कर आए।
- यह जान सकेंगे कि, दोनों दलों के मध्य मतभेद के कौन-कौन से बिंदु थे।
- यह समझ सकेंगे कि, नरम दल और गरम दल के आपसी मतभेदों ने किस प्रकार सन् 1907 में कांग्रेस के विभाजन की परिस्थितियाँ उत्पन्न की।
- यह जान सकेंगे कि, किस प्रकार इस फूट ने कांग्रेस तथा राष्ट्रीय आंदोलन को प्रभावित किया।

## 10.1 प्रस्तावना

इकाई 9 में आप पढ़ चुके हैं कि किस प्रकार तथा किन कारणों व परिस्थितियों में सन् 1885 में भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस का जन्म हुआ। कांग्रेस के घोषित उद्देश्य थे:

- देश के विभिन्न भागों के राजनैतिक कार्यकर्त्ताओं के मध्य मैत्रीपूर्ण संबंधों का विकास,
- जाति, धर्म और क्षेत्र की सीमाओं में बंधे बिना राष्ट्रीय एकता की भावना का विकास तथा उसका सुदृढ़ीकरण, तथा
- देश के कल्याण के लिए जनमत को जागृत और संगठित करना।

प्रारंभिक वर्षों, 1885-1905 में भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस का विकास हुआ। इस काल में कांग्रेस पर उदारवादी नेताओं का प्रभुत्व रहा। धीरे-धीरे एक ऐसा दल उभरकर आया जो कि उदारवादी नीतियों से सहमत नहीं था और जिसकी आस्था आक्रामक कार्यक्रम में थी। अपने आक्रामक दृष्टिकोण के कारण यह दल गरम दल कहलाया।

ब्रिटिश शासन का विरोध करने के लिए दोनों ही दल भिन्न-भिन्न राजनैतिक तरीकों में विश्वास करते थे। उनके पारस्परिक मतभेदों के कारण ही सन् 1907 में कांग्रेस का विभाजन हुआ। इस इकाई में हम कांग्रेस के इस आरंभिक काल का अध्ययन करेंगे और यह भी देखेंगे कि किस प्रकार कांग्रेस के विभाजन ने राष्ट्रीय आंदोलन को प्रभावित किया।

## 10.2 कांग्रेस का संयोजन

सन् 1885 में बंबई में कांग्रेस का पहला अधिवेशन हुआ और सन् 1886 में जब इसका दूसरा अधिवेशन कलकत्ते में हुआ तब तक इसका स्वरूप राष्ट्रीय हो गया था। सन् 1885 में कुल 72 प्रतिनिधियों ने कांग्रेस अधिवेशन में भाग लिया था, जबकि 1886 के अधिवेशन में कुल प्रतिनिधियों की संख्या 439 थी। इन प्रतिनिधियों को विभिन्न स्थानीय संगठनों व इकाइयों ने चुनकर भेजा था। इस अधिवेशन में यह निर्णय लिया गया था कि कांग्रेस का वार्षिक अधिवेशन देश के किसी भी भाग में हुआ करेगा।

### 10.2.1 मध्यवर्गीय संगठन

चूंकि कांग्रेस पूरे देश का प्रतिनिधित्व करती थी इसलिए इसमें सभी जातियों, धर्मों, पेशों व्यवसायों तथा सभी प्रांतों के लोगों का समावेश होना आवश्यक था। लेकिन इस प्रकार की व्यापक परिभाषा या सतही वर्णन इसका सही स्वरूप बताने में असमर्थ है। वास्तव में इसमें विभिन्न जातियों, धर्मों, व्यवसायों, पेशों तथा प्रांतों के लोगों का प्रतिनिधित्व बहुत असमान अनुपात में था। विभिन्न वर्गों में, शिक्षित मध्यम वर्ग के लोग ही इसमें सबसे ज्यादा थे। विभिन्न पेशों में, सबसे ज्यादा वकील इसके सदस्य थे। जाति की दृष्टि से ब्राह्मणों की संख्या इसमें अधिक थी। जैसा कि अनिल सील ने अपनी पुस्तक द इमरजेन्स ऑफ इण्डियन नेशनलिज्म (कैम्ब्रिज, 1968) में लिखा है, प्रांतों में बम्बई, कलकत्ता तथा मद्रास प्रेसिडेंसियों ने ही इसमें प्रमुख रूप से भाग लिया था। आम आदमी इससे बाहर ही रहा। इसी प्रकार भूमि से जुड़ा वर्ग इससे विलग रहा। इस तरह कुल मिलाकर कांग्रेस मध्यवर्गीय संस्था ही रही। यदि हम कांग्रेस के प्रारंभिक अधिवेशनों में सम्मिलित प्रतिनिधियों की संख्या का परीक्षण करेंगे तो इस कथन की पुष्टि हो जाएगी

तालिका 1
भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस के सदस्यों का संयोजन: 1885-1888

| अधिवेशन का स्थान व वर्ष | वकील | पत्रकार | डॉक्टर | अन्य | योग |
|---|---|---|---|---|---|
| बंबई 1885 | 39 | 14 | 01 | 18 | 72 |
| कलकत्ता 1886 | 166 | 40 | 16 | 212 | 434 |
| मद्रास 1887 | 206 | 43 | 08 | 350 | 607 |
| इलाहाबाद 1888 | 435 | 73 | 42 | 698 | 1248 |

जैसा कि तालिका-1 से स्पष्ट है, कांग्रेस के पहले अधिवेशन में आधे सदस्य वकील थे, और आगे भी कांग्रेस के अगले तमाम अधिवेशनों में वकीलों का प्रतिनिधित्व कुल सदस्यों की संख्या के तिहाई से अधिक रहा। पत्रकारों, डॉक्टरों तथा अध्यापकों की संख्या भी काफी रही। पहले अधिवेशन में केवल दो अध्यापक थे परन्तु चौथे अधिवेशन में उनकी संख्या बढ़कर 50 हो गई थी। बहुत से ऐसे भी थे जिन्होंने प्रत्यक्ष रूप से इसमें भाग नहीं लिया, किंतु इस आंदोलन के प्रति उनकी भी सहानुभूति थी। यद्यपि पुरातन आभिजात्य वर्ग (जमींदार, जागीरदार व राजा आदि) की जन-कार्यों में दिलचस्पी नहीं थी फिर भी कांग्रेस ने उनका समर्थन प्राप्त करने का प्रयास किया। यह कदम इसलिए उठाया गया था क्योंकि राजाओं और आभिजात्य वर्ग का समर्थन इस बात का परिचायक होता कि ब्रिटिश भारत तथा भारतीय राजाओं के अधीन भारत में एकता है। इससे ब्रिटेन के कंजर्वेटिव (रूढ़िवादी) पर भी अच्छा प्रभाव पड़ सकता था और आंदोलन को चलाने के लिए आवश्यक पूंजी भी उस वर्ग से प्राप्त हो सकती थी।

## 10.2.2 कार्य प्रणाली

पहले के कांग्रेस जनों को शांतिपूर्ण एवं संवैधानिक आंदोलन की प्रभावोत्पादकता में पूर्ण विश्वास था। प्रेस तथा वार्षिक अधिवेशन का मंच उनके प्रचार के माध्यम थे। प्रेस के माध्यम से ही पूरे साल कांग्रेस का प्रचार कार्य किया जाता था। अनेक नेता अंग्रेजी या भारतीय भाषाओं के समाचार पत्रों के संपादक थे और वे अपनी लेखनी का प्रभावपूर्ण प्रयोग करते थे। प्रतिवर्ष अधिवेशन का आयोजन कांग्रेस के प्रचार का दूसरा तरीका था। इन सभाओं में सरकार की नीतियों पर विचार-विमर्श किया जाता था तथा प्रभावशाली ढंग से प्रस्ताव पारित किए जाते थे। इन वार्षिक अधिवेशनों ने मध्यवर्गीय शिक्षित समुदाय तथा सरकार दोनों का ही ध्यान आकर्षित किया। लेकिन सबसे बड़ी कमी यह थी कि यह अधिवेशन साल में एक बार सिर्फ तीन दिन के लिए ही होता था। दो अधिवेशनों के अंतराल में काम करते रहने वाला इसका अपना कोई संगठन नहीं था।

कांग्रेसियों का ब्रिटिश राष्ट्र की आधारभूत न्यायप्रियता और सदाशयता में दृढ़ विश्वास था। वे इस विश्वास को लेकर कार्य कर रहे थे कि यदि इंग्लैंड में अंग्रेजों तक भारत की दशा की सही तस्वीर पहुँच जाती है तो सब कुछ ठीक हो जाएगा। वे समझते थे कि नागरिकों और उनके अधिकारों के बीच नौकरशाही आड़े आ रही है।

इसलिए उनका उद्देश्य भारतीय जनता को जागृत करना था ताकि वो अपने अधिकारों को समझ सकें। यह (कांग्रेस) ब्रिटिश जनता को भारतीयों की कठिनाइयों की जानकारी भी देना चाहती थी और उसे भारत के प्रति अपने कर्त्तव्य की याद भी दिलाती थी। अंग्रेजों तक भारत की दुर्दशा की सही तस्वीर पेश करने के इरादे से प्रमुख भारतीय नेताओं के प्रतिनिधि मण्डल ब्रिटेन भेजे गए।

सन् 1889 में भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस की ब्रिटिश समिति की स्थापना हुई। अपने प्रचार कार्य के लिए इस समिति ने 1890 में अपने मुख पत्र 'इण्डिया' को शुरू किया।

ब्रिटिश सत्ता तक भारतीय दृष्टिकोण प्रस्तुत करने के उद्देश्य से ही दादाभाई नौरोजी ने अपनी जिंदगी का एक बड़ा हिस्सा इंग्लैंड में बिताया। वे ब्रिटिश हाउस ऑफ कॉमन्स (ब्रिटिश संसद के निम्न सदन) के लिए चुने गए और वहाँ उन्होंने भारत के शुभचिंतकों का एक प्रभावशाली दल गठित किया।

**बोध प्रश्न 1**

1 कांग्रेस की स्थापना के समय के तीन प्रमुख उद्देश्यों को लिखिए।

1 ..............................................................
2 ..............................................................
3 ..............................................................

2 क्या कांग्रेस अपने प्रारंभिक वर्षों में एक मध्यवर्गीय संस्था थी? आठ पंक्तियों में इसका उत्तर लिखिए।

......................................................................................
......................................................................................
......................................................................................
......................................................................................
......................................................................................
......................................................................................
......................................................................................
......................................................................................
......................................................................................
......................................................................................

## 10.3 नरम दल (उदारवादी)

अपने पहले चरण (1885-1905) में कांग्रेस का कार्यक्रम बहुत सीमित था। उसकी माँगे हल्के फुल्के संवैधानिक सुधारों, आर्थिक सहायता, प्रशासकीय पुनर्संगठन तथा नागरिक अधिकारों की सुरक्षा तक सीमित थी

### 10.3.1 माँगे तथा कार्यक्रम

उसकी मुख्य माँगें इस प्रकार थीं:

- प्रांतीय कांउसिलों का गठन,
- इंडियन सिविल सर्विस (आई.सी.एस.) की परीक्षा का इंग्लैंड के साथ ही साथ भारत में भी आयोजन,
- न्यायपालिका का कार्य पालिका से पृथक्कीकरण,
- आर्म्स एक्ट को रद्द करना,
- सेना में भारतीयों की कमीशन्ड ऑफीसरों (सैकिण्ड लेफ्टिनेन्ट तथा उससे ऊपर के पद) के पद पर नियुक्ति,
- सैनिक व्यय में कमी, तथा
- भारत के सभी भागों में भूमि के स्थायी बंदोबस्त का प्रचलन

कांग्रेस ने सरकार द्वारा उठाए गए सभी महत्वपूर्ण कदमों और नीतियों पर अपनी राय दी और उसकी गलत नीतियों की आलोचना की तथा उनका विरोध किया।

इन माँगों को हर साल दोहराया गया किंतु सरकार ने इन पर शायद ही कभी ध्यान दिया हो। पहले बीस वर्षों (1885-1905) में कांग्रेस के कार्यक्रम में कोई विशेष परिवर्तन नहीं हुआ। उसकी मुख्य माँगें लगभग वही बनी रही जो उसके पहले तीन या चार अधिवेशनों में पेश की गई थीं।

कांग्रेस का यह काल नरम दल का युग (उदारवादियों का युग) कहलाता है। इस काल में नेतागण अपनी माँगें बड़े संयत रूप से रखते थे। वे सरकार को नाराज नहीं करना चाहते थे और इस बात का भी खतरा मोल नहीं लेना चाहते थे कि सरकार नाराज होकर उनकी गतिविधियों का दमन करे। सन् 1885 से सन् 1892 तक उनकी मुख्य माँगें यही थीं कि, विधान परिषदों का विस्तार व सुधार हो, कांउसिल के सदस्यों में जनता के चुने हुए प्रतिनिधि हों, तथा इन काउंसिलों के अधिकारों में वृद्धि हो।

ब्रिटिश सरकार को सन् 1892 का इण्डियन काउंसिल एक्ट पारित करने के लिए बाध्य होना पड़ा, लेकिन इस एक्ट की धाराओं से वह कांग्रेस के नेताओं को संतुष्ट नहीं कर सकीं। कांग्रेस के नेताओं ने यह माँग की कि भारतीय धन (सार्वजनिक क्षेत्र के) पर भारतीय नियंत्रण हो, तथा उन्होंने अमरिकी स्वतंत्रता संग्राम के समय दिए गए नारे, 'बिना प्रतिनिधित्व के कोई कर नहीं' को भी दुहराया। सन् 1905 में कांग्रेस ने स्वराज्य या भारतीयों के लिए ब्रिटिश साम्राज्य के अंतर्गत स्वशासन की माँग की। स्वशासन की माँग स्वायत्त शासित आस्ट्रेलिया और कनाडा के नमूने पर की गई थी। स्वशासन की यह माँग पहली बार जी.के. गोखले ने सन् 1905 (बनारस) में रखी थी और बाद में दादाभाई नौरोजी ने सन् 1906 (कलकत्ता) में इसे अधिक स्पष्ट शब्दों में रक्खा था।

**भारत का आर्थिक दोहन**

इस काल में राष्ट्रवादियों ने भारत के आर्थिक दोहन के खिलाफ अपनी आवाज बुलंद की। दादाभाई नौरोजी ने ब्रिटिश शासन को ऐसे अनवरत और प्रतिदिन होमे वाले विदेशी आक्रमण के रूप में देखा जो कि धीरे-धीरे भारत का विनाश करता जा रहा था। राष्ट्रवादी मत अंग्रेजों को भारतीय उद्योग धंधों के विनाश के लिए जिम्मेदार ठहराता था। भारत की निर्भरता का निदान आधुनिक उद्योग के विकास से ही संभव था। सरकार इसके विकास में तटकर विषयक संरक्षण की नीति अपना कर तथा प्रत्यक्ष वित्तीय सहायता व रियायतें देकर सहायक हो सकती थी।

हालाँकि, उन्होंने जब यह देखा कि सरकार इस विषय में कोई कार्य नहीं कर रही है तो उन्होंने भारतीय उद्योग के विकास के एकमात्र साधन के रूप में स्वदेशी की अवधारणा का, अर्थात् भारत में उत्पादित वस्तुओं के प्रयोग तथा ब्रिटिश सामान के बहिष्कार का प्रचार किया। उन्होंने माँग की:

- भारत के आर्थिक दोहन को समाप्त किया जाए,
- किसानों पर कर का बोझा कम करने के लिए भू-राजस्व को कम किया जाए,
- बागानों के मजदूरों के काम करने की स्थितियो को सुधारा जाए,
- नमक कर समाप्त किया जाए, तथा
- भारतीय शासन के अत्यधिक सैनिक व्यय में कमी की जाये।

उन्होंने प्रेस तथा अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता के महत्व को पूरी तरह समझा और इस पर प्रतिबंध लगाने के हर प्रयास की भर्त्सना की। वास्तव में, प्रेस पर लगाए गए प्रतिबंधों को हटाने के लिए किया जाने वाला आंदोलन राष्ट्रवादी स्वतंत्रता आंदोलन का एक अभिन्न अंग बन गया। इन माँगों की प्रगतिशीलता, तथा इनका भारतीय मध्यम वर्ग की आवश्यकताओं और आकांक्षाओं से सीधा संबंध, यह स्पष्ट करता है कि प्रारंभिक वर्षों में कांग्रेस, मुख्य रूप से एक मध्यवर्गीय संस्था थी।

कांग्रेस के अधिकांश नेताओं ने आर्थिक और राजनैतिक दोनों ही कारणों से व्यापक स्तर पर रेलवे, बागानों तथा उद्योगों में विदेशी पूँजी के लगाए जाने का विरोध किया, साथ ही उन्होंने सरकार द्वारा इन क्षेत्रों में विदेशी पूँजी लगाए जाने के लिए दी गई विशेष सुविधाओं का भी विरोध किया। सेना तथा नागरिक सेवाओं (सिविल सर्विस) पर किए जाने

वाले व्यय की आलोचना करके अप्रत्यक्ष रूप से उन्होंने भारत में ब्रिटिश शासन के औचित्य को ही चुनौती दे डाली। भू-राजस्व, तथा कर नीतियों की भर्त्सना करके उन्होंने ब्रिटिश प्रशासन के वित्तीय आधार को दुर्बल करने का प्रयास किया। एशिया तथा अफ्रीका में ब्रिटिश साम्राज्यवादी हितों के लिए भारतीय सेना और भारतीय राजस्व के उपयोग को उन्होंने आर्थिक शोषण का एक और उदाहरण बताया। उनमें से कुछ ने तो ब्रिटिश शासन का कुल आर्थिक भार भारतीय राजस्व पर लादने के औचित्य पर भी आपत्ति की। आर्थिक दोहन के सिद्धांत के रूप में उन्होंने जनता के समक्ष विदेशी शोषण का एक प्रबल प्रतीक प्रस्तुत किया।

भारतीय नेतागण छुटपुट क्षेत्रों में आर्थिक प्रगति के बजाय देश के समग्र आर्थिक विकास के लिए चिन्तित थे। उनके लिए सबसे बड़ा सवाल भारत की आर्थिक खुशहाली था। विभिन्न क्षेत्रों में हुई प्रगति को इसी आधार पर आँकना था कि उससे देश के आर्थिक विकास में कितनी सहायता पहुँची। यहाँ तक कि गरीबी की समस्या को भी उत्पादन में कमी और आर्थिक पिछड़ेपन के रूप में देखा गया।

राष्ट्रवादी नेताओं की इस बात के लिए तारीफ की जाएगी कि शहरी, सुशिक्षित मध्य वर्ग से सम्बद्ध होते हुए भी वे केवल अपने वर्ग के हितों के लिए ही नहीं सोचते थे। उनका दृष्टिकोण व्यापक व आम जनता की भलाई का था न कि संकुचित और संकीर्ण स्वार्थ सिद्धि का। उनकी आर्थिक नीतियाँ अवसरवादी मध्यवर्गीय संकुचित दृष्टिकोण से ऊपर थी।

**आर्थिक माँगों की प्रकृति**

हमने पहले भी कहा है कि कांग्रेस के प्रारंभिक नेताओं की राजनैतिक माँगें यद्यपि बहुत सीमित थीं पर उनकी आर्थिक मांगे इस क्षेत्र में बुनियादी परिवर्तन चाहती थीं। सैद्धांतिक रूप से भारतीय नेताओं ने साम्राज्यवाद की विरोधी आर्थिक नीतियों का समर्थन किया। उन्होंने इस बात पर जोर दिया कि भारत और इंग्लैंड के मध्य, तत्कालीन आर्थिक संबंधों में मूलभूत परिवर्तन किया जाए। उन्होंने विदेशी शासकों द्वारा भारत को कच्चा माल मुहैया करने वाले देश और ब्रिटिश उत्पादकों की मण्डी बनाए जाने के प्रयासों का, घोर विरोध किया। उन्होंने सरकार की सीमा-शुल्क, व्यापार, संचार तथा कर नीति की आलोचना की। इन्हें भारतीय उद्योग के विकास में सहायक होने के बजाए बाधक माना गया।

ब्रिटिश राज की आर्थिक बुनियाद की यह चुनौतीपूर्ण विश्लेषणात्मक आलोचना, प्रारंभिक कांग्रेस नेताओं द्वारा की गई देश की महान सेवा थी।

## 10.3.2 कार्य का मूल्यांकन

कांग्रेस द्वारा रखी गयी माँगों में चाहे जो भी कमियाँ रही हों, इस बात से इनकार नहीं किया जा सकता कि यह सच्चे अर्थों में एक राष्ट्रीय संस्था थी। इसके कार्यक्रम में ऐसी कोई भी बात नहीं थी जो किसी वर्ग विशेष के हितों के विरुद्ध हो। इसके दरवाजे सभी वर्गों और समुदायों के लिए खुले थे। यह कहा जा सकता है कि यह एक राजनैतिक दल ही नहीं था बल्कि एक समग्र आंदोलन था।

**ब्रिटिश विद्वेष**

भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस का राजनैतिक स्वर (लहजा) भले ही नम्र रहा हो, लेकिन उल्लेखनीय है कि कांग्रेस के चौथे अधिवेशन से सरकार ने इसके प्रति विद्वेषपूर्ण रवैया अपना लिया था। समय गुजरता गया लेकिन कांग्रेस को सरकार से कुछ खास हासिल नहीं हुआ। अंग्रेजों ने कांग्रेस विरोधी तत्वों को बढ़ावा दिया। उदाहरण के लिए, उन्होंने कांग्रेस के विरुद्ध अलीगढ़ आंदोलन को प्रोत्साहन दिया। उन्नीसवीं शताब्दी के अंतिम वर्षों में, लार्ड कर्जन के काल में कांग्रेस के प्रति ब्रिटिश दृष्टिकोण बहुत शत्रुतापूर्ण हो गया। उसकी (कर्जन की) सबसे बड़ी तमन्ना यह थी कि वह कांग्रेस के शांतिपूर्ण अवसान में मदद करे। लेकिन उसके द्वारा उठाए गए कदमों ने. उल्टे राष्ट्रवादियों के असंतोष को और भड़का

दिया। उसने एक तानाशाह का तरीका अपनाते हुए विश्वविद्यालयी शिक्षा पर सरकारी नियंत्रण रखना चाहा और बंगाल के विभाजन की घोषणा कर दी। इसके फलस्वरूप पूरे देश में राष्ट्रीय जागरण की प्रबल लहर दौड़ पड़ी। उसके इन कार्यों ने राष्ट्रीय जागरण को प्रोत्साहित किया।

इस काल में नरम दल (उदारवादियों) के विषय में यह आम धारणा बन गई थी कि वे राजनैतिक भिक्षुक हैं जोकि याचिकाओं और प्रार्थनाओं के द्वारा अंग्रेज सरकार से छोटी-मोटी रियायतों की भीख माँगते रहते हैं। जैसा कि आप पहले भी पढ़ चुके हैं, नरम दल (उदारवादियों) ने भारतीय राष्ट्रीय आंदोलन के नाजुक दौर में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई थी।

वास्तव में नरम दल (उदारवादियों) की विचारधारा का विकास उस परंपरा का परमोत्कर्ष था जो राजा राममोहन राय से प्रारंभ हुई थी, जिन्होंने समकालीन यूरोप की उदारवादी, बौद्धिक प्रवृत्ति का अनुगमन किया था। उनके द्वारा प्रस्तुत सुधारों के विचार ने ही आगे चलकर शुरूआत के वर्षों में, कांग्रेस की माँगों का आधार उपलब्ध किया। राजा राममोहन राय की ही भाँति कांग्रेस के प्रारंभिक नेता भी ब्रिटिश प्रशासन की उपस्थिति राजनैतिक प्रगति के लिए आवश्यक समझते थे। स्वाभाविक रूप से उनकी भाषा संयत थी, और उनकी आकांक्षाएँ सीमित थीं। लेकिन वक्त के साथ-साथ नरम दल (उदारवादियों) ने अपना दृष्टिकोण भी बदलना शुरू कर दिया। सन् 1905 तक गोखले स्वशासन को लक्ष्य बताने लगे और दादाभाई नौरोजी ने सन् 1906 में 'स्वराज' को कांग्रेस का लक्ष्य माना।

इसके बाद भी नरम दल कांग्रेस में गरम दल के बढ़ते हुए प्रभाव के कारण संकट में पड़ गया। ब्रिटिश सत्ता को भी उसकी सदाशयता पर संदेह होने लगा। राजनीति में सक्रिय रूप से भाग लेने वालों में युवा वर्ग को गरम दल आकर्षित कर रहा था। नरम दल अपनी सदाशयता, सरकार के प्रति निष्ठा और देश-भक्ति के बावजूद ब्रिटिश नौकरशाही के दाँवपेंचों के समक्ष प्रभावहीन हो गया। इस बदली हुई परिस्थिति में गरम दल ने कांग्रेस पर अपना प्रभाव अच्छी तरह से स्थापित कर लिया और वह कांग्रेस की गतिविधियों का केंद्र बन गया।

**बोध प्रश्न 2**

1 सन् 1885-1905 के मध्य कांग्रेस की पाँच मुख्य माँगें लिखिए।

1 ..........................................................................................
2 ..........................................................................................
3 ..........................................................................................
4 ..........................................................................................
5 ..........................................................................................

2 प्रारंभिक राष्ट्रवादियों ने ब्रिटिश राज की आर्थिक नीतियों की क्या समीक्षा की थी?

..........................................................................................
..........................................................................................
..........................................................................................
..........................................................................................
..........................................................................................
..........................................................................................
..........................................................................................

## 10.4 गरम दल (उग्र दल)

भारतीय राष्ट्रीय मंच पर बीसवीं शताब्दी के प्रथम दशक में उग्रवाद का उदय अचानक नहीं हो गया था। वास्तव में अप्रत्यक्ष रूप से सन् 1857 के विद्रोह से ही, धीरे-धीरे इस विचारधारा का विकास होने लगा था।

### 10.4.1 गरम दल का सैद्धान्तिक आधार

गरम दल के अनुसार सन् 1857 के विद्रोह के राष्ट्रवादी उद्देश्य स्वधर्म तथा स्वराज की स्थापना थे। उदारवादियों (नरम दल) ने जो बुद्धिवाद और पाश्चात्य आदर्शों को अपनाया था, उसके कारण वे भारत में जनसाधारण से बहुत दूर चले गए थे। इसीलिए अपने उच्च आदर्शों के बावजूद वे जनसाधारण पर अपना प्रभाव जमाने में असफल रहे। यह जरूरी था कि कोई वर्ग जनता और राजनैतिक नेतृत्व के बीच की खाई को भरता। सभी पाश्चात्य वस्तुओं की प्रंशसा और उसकी नकल करने की प्रवृत्ति के स्थान पर उन्नीसवीं शताब्दी के नवें दशक में एक ऐसा आंदोलन चला जिसमें लोगों को अपनी प्राचीन सभ्यता की ओर लौटने के लिए कहा गया। इस प्रकार की भावना दबे तौर पर तो पहले भी थी और सन् 1857 में यह अचानक उभर कर सामने आ गई थी। लेकिन पाश्चात्य शिक्षा प्राप्त समुदाय, आमतौर पर भारतीय जीवन की मुख्य धारा से अलग रहा और इस प्रवृत्ति से भी अछूता रहा। छोटे से शिक्षित समुदाय और आम जनता में जो खाई थी, उसको पाटने का ऐतिहासिक कार्य, स्वामी रामकृष्ण परमहंस और उनके अंग्रेजी शिक्षा प्राप्त शिष्य स्वामी विवेकानंद तथा वैदिक साहित्य में निष्णात स्वामी दयानंद और उनके द्वारा स्थापित आर्य समाज ने किया। श्रीमती एनीबीसेन्ट की समन्वयवादी थियोसोफिकल सोसायटी ने भी इस क्षेत्र में अपना योगदान दिया। इन समाज सुधार आंदोलनों ने राजनैतिक उग्रवाद को प्रोत्साहन दिया। अपनी संस्कृति, धर्म और राजतंत्र के प्रति लोगों में स्वाभाविक लगाव था। राजनैतिक उग्रवादी, जिन्होंने अपनी सांस्कृतिक विरासत से प्रेरणा ग्रहण की थी, परम राष्ट्रवादी थे और यह चाहते थे कि भारत सब देशों से, समान स्तर पर, और आत्मसम्मान के साथ मिले। उनमें आत्मसम्मान कूट-कूट कर भरा था और वे अपना सर ऊँचा रखना चाहते थे। वे नरम दल (उदारवादियों) को अंग्रेजों का चापलूस व मुसाहिब मानते थे इसीलिए उन्होंने उनका विरोध किया। उग्रवादियों की दृष्टि में उद्धार केवल राजनीति तक सीमित नहीं था बल्कि इसका अर्थ कहीं अधिक व्यापक और गूढ़ था। उनके लिए इसका अर्थ जीवन के समस्त व्यापारों में नवस्फूर्ति व नवशक्ति का संचार करना था। वे समझते थे कि शासक और शासित वर्ग में शक्ति परीक्षण अवश्यम्भावी है। उनका कहना था कि उनके सपनों के नए भारत के निर्माण में अंग्रेजों का कोई योगदान नहीं होगा।

गरम दल देश के तीन भागों में अधिक सक्रिय था। महाराष्ट्र दल के नेता थे तिलक, बंगाल दल के नेता थे विपिनचंद्रपाल और अरविंद तथा पंजाब दल का नेतृत्व लाला लाजपतराय कर रहे थे। बंगाल के उग्रवादी बंकिमचंद्र की विचारधारा से बहुत प्रभावित थे। बंकिम एडमण्डबर्क की भाँति उदार पुरातनपंथी थे। वे भूतकाल से संबंध विच्छेद नहीं करना चाहते थे, क्योंकि उनकी दृष्टि में इससे समस्याएँ सुलझने के बजाए और भी ज्यादा उलझ जातीं। वे सुधारों को ऊपर से थोपने के विरोधी थे। उनका विचार था कि सुधारों से पूर्व नैतिक और धार्मिक पुनरुत्थान आवश्यक है, और यह पुनरुत्थान केवल धर्म के मूल सिद्धांतों के आधार पर ही संभव है। बंकिम ने उदारवादियों की भर्त्सनापूर्ण आलोचना करके उग्रवादियों को इस विषय में दिशा प्रदान की।

उग्रवादियों का राष्ट्रवाद भावुकता से परिपूर्ण था। राष्ट्रवाद की इस प्रेरणादायक धारणा में सामाजिक, आर्थिक और राजनैतिक आदर्शों, सभी का समावेश था। यही संदेश लेकर विवेकानंद पश्चिम गए थे और उनकी सफलता ने भारतीयों में दृढ़ आत्मविश्वास और इच्छाशक्ति का संचार किया था। अरविंद ने तो देशभक्ति को ऊँचा उठाकर मातृ वंदना के समकक्ष रख दिया था। एक पत्र में उन्होंने कहा था, "मैं अपने देश को अपनी माँ मानता हूँ। मैं उसकी आराधना करता हूँ। मैं उसकी स्तुति करता हूँ।"

अरविंद दयानंद सरस्वती की शिक्षाओं से बहुत प्रभावित हुए थे। दयानंद की विचारधारा पर पाश्चात्य प्रभाव नहीं के बराबर था। अरविंद ने दयानंद को देश का सबसे बड़ा सुधारक माना क्योंकि उन्होंने देश को एक सुनिश्चित मार्ग सुझाया था। इस प्रकार बंकिमचंद्र, दयानंद और विवेकानंद आदि ने वह दार्शनिक आधार प्रदान किया जिस पर उग्रवादियों ने अपना राजनैतिक कार्यक्रम तैयार किया था।

### 10.4.2 गरम दल की कार्रवाई

तिलक ने इस बात का विरोध किया कि, एक विदेशी सरकार, जनता के निजी और व्यक्तिगत जीवन में हस्तक्षेप करे। सन् 1891 के विवाह की न्यूनतम आयु बढ़ाने वाले विधेयक को लेकर उनका सुधारकों से झगड़ा हो गया। उन्होंने सन् 1893 में गणपति महोत्सव प्रारंभ किया। सन् 1893-94 में अरविंद ने 'इन्दुप्रकाश' पत्र में 'न्यू लैम्प्स फॉर ओल्ड' का प्रकाशन किया।

तिलक ने सन् 1895 में पूना में कांग्रेस के पण्डाल में 'नेशनल सोशल कांफ्रेन्स' को अपना अधिवेशन नहीं करने दिया और इस प्रकार उसे चुनौती दी। 'नेशनल सोशल कांफ्रेन्स' उदारवादियों के प्रभाव में थी। इसी वर्ष (सन् 1895) पूना सार्वजनिक सभा पर भी उदारवादियों के स्थान पर उग्रवादियों का प्रभुत्व हो गया। शिवाजी उत्सव का आयोजन पहली बार 15 अप्रैल 1896 को हुआ। 4 नवंबर, 1896 को दक्षिण सभा की स्थापना से महाराष्ट्र में नरम दल और गरम दल का पूरी तरह अलगाव हो गया, लेकिन पूरे भारत में अभी इन दोनों दलों में मतभेद, अलगाव की स्थिति तक नहीं पहुँचे थे। उदाहरण के लिए, बंगाल के उग्रवादियों के नेता विपिनचंद्र पाल अब भी उदारवादियों के खेमे में थे। सन् 1897 में उन्होंने लिखा था, "मैं ब्रिटिश सरकार के प्रति निष्ठावान हूँ, क्योंकि मैं समझता हूँ कि ब्रिटिश सरकार के प्रति निष्ठा और अपने देश व अपने देशवासियों के प्रति निष्ठा एक ही बात है और मैं यह भी मानता हूँ कि भगवान ने हमारे उद्धार के लिए इस सरकार को हम पर शासन करने के लिए भेजा है। सन् 1902 में जाकर ही उनके विचारों में परिवर्तन आया, और उन्होंने लिखा, "कांग्रेस भारत में, और लंदन में उसकी ब्रिटिश कमेटी, दोनों ही भिक्षा माँगने वाली संस्थाएँ हैं।"

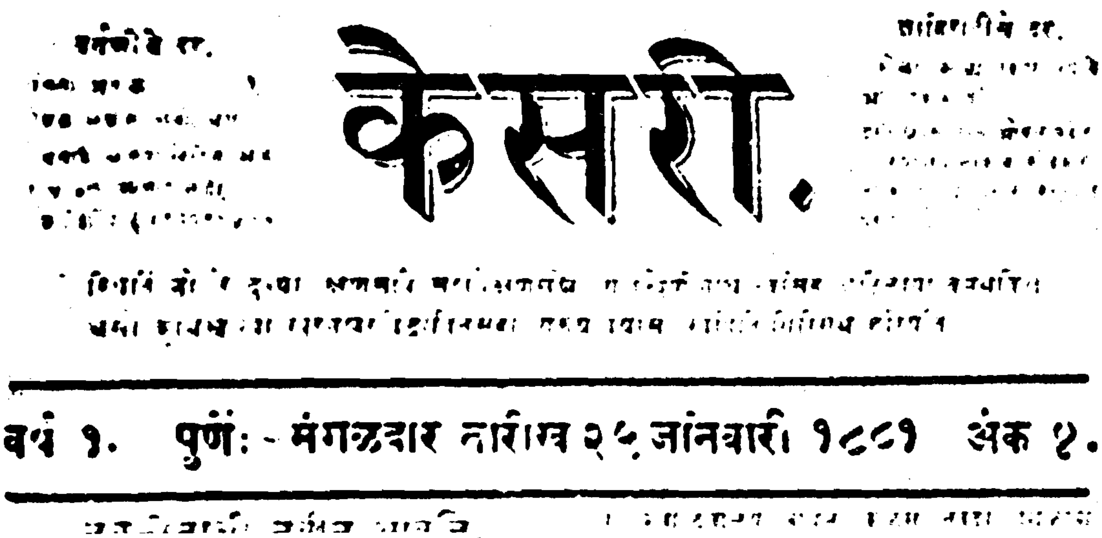
केसरी.

वर्ष १. पुणें - मंगळवार तारीख २५ जानेवारी १८८१ अंक १.

10. अखबार केसरी

कांग्रेस की नरम और अस्थिर नीतियों के कारण ही लाला लाजपतराय इसके कार्यक्रमों के प्रति आकर्षित नहीं हुए। सन् 1893 से लेकर सन् 1900 तक उन्होंने कांग्रेस के किसी भी अधिवेशन में भाग नहीं लिया। वे इस काल में कांग्रेस के नेताओं के विषय में यही सोचते थे कि उन्हें देश की चिंता से अधिक अपनी ख्याति और शान की परवाह है।

जहाँ एक ओर एक के बाद एक भ्रांतियों और उलझनों ने उदारवादियों की स्थिति कमजोर कर दी वहाँ दूसरी ओर रूस पर जापान की विजय (1904-1905) ने पूरे एशिया में नवीन उत्साह का संचार किया। इससे पूर्व सन 1896 में इथोपिया (अफ्रीकी राष्ट्र) ने इटली की

सेना को पराजित किया था। एशियायी और अफ्रीकी राष्ट्रों की इन विजयों ने यूरोप की श्रेष्ठता का जो भ्रम था उसे तोड़ दिया और उसने भारतीयों में नया आत्मविश्वास जगा दिया था।

## 10.5 नरम दल तथा गरम दल : एक विश्लेषण

नरम दल तथा गरम दल में बहुत सी बातें एक सी थीं लेकिन उनके राजनैतिक दृष्टिकोण और कार्य प्रणाली में अंतर भी था। हम इस भाग में नरम दल और गरम दल के मध्य उन मतभेदों पर विचार करेंगे जिनके कारण सन् 1907 में, सूरत में, कांग्रेस का विभाजन हुआ। इस बात पर भी विचार किया जाएगा कि इस विभाजन ने राष्ट्रीय आंदोलन को किस प्रकार प्रभावित किया।

### 10.5.1 मतभेद

तिलक ने कहा था कि, जहाँ तक नौकरशाही से सुधारों की अपील करने की बात थी, पुरानी (नरम दल) और नई (गरम दल) पार्टियाँ दोनों ही इसे प्रभावहीन और निरर्थक मानती थीं। लेकिन पुरानी पार्टी ब्रिटिश राष्ट्र से अपील करने की सार्थकता में विश्वास करती थी परंतु नई पार्टी इसमें विश्वास नहीं रखती थी। नरम दल की ही भाँति तिलक भी यह मानते थे कि अंग्रेजी शासन में उद्योगों का विनाश हुआ है तथा देश का धन चूस कर बाहर भेज दिया गया है तथा भारतीयों को गरीबी की सबसे नीची रेखा तक पहुँचा दिया गया है लेकिन तिलक का विश्वास था कि याचिकाओं के द्वारा इन समस्याओं का निदान नहीं हो सकता था। गरम दल यह मानता था कि अपने घर की चाबी स्वयं भारतीयों के पास होनी चाहिए और स्वशासन भारतीयों का लक्ष्य होना चाहिए। नया दल चाहता था कि भारतीय यह समझ जाएँ कि उनका भविष्य उनके अपने हाथों में है और वे तब तक आजाद नहीं हो सकते जब तक कि वो खुद आजाद होने का दृढ़ निश्चय नहीं कर लेते।

तिलक यह नहीं चाहते थे कि स्वशासन प्राप्त करने के लिए भारतीय शस्त्रों का सहारा लें, बल्कि वो यह चाहते थे कि भारतीय अपनी आत्मत्याग और आत्मसंयम की शक्ति का इस प्रकार विकास करें जिससे विदेशी ताकत को उन पर राज्य करने में सहायता न मिले।

तिलक ने देशवासियों को सलाह दी कि वे अपनी अदालतें खुद लगाएँ (जैसे ग्राम पंचायत आदि) और जब समय की माँग हो तो सरकार को कर देना भी बंद कर दें। तिलक ने यह दावा किया, "स्वराज्य मेरा जन्मसिद्ध अधिकार है, मैं इसे लेकर रहूँगा।"

अरविंद का दार्शनिक उग्रवाद तिलक से भी ऊँचा लक्ष्य रखता था। उनके अनुसार भारतीय सरकार भ्रष्ट पाश्चात्य प्रभाव से दूषित थी। इस भ्रष्टाचार से बचने के लिए भारत की वर्तमान शोचनीय परिस्थितियों को बदलना होगा और अपनी महान व श्रेष्ठ संस्कृति की ओर लौटना होगा। उनके विचार से राष्ट्रवाद के लक्ष्य थे:

i) भारत के लिए स्वराज प्राप्त करना, [illegible] उत्पन्न हो। जो [illegible] पूरे यूरोप [illegible] रहा है उसका पूरे [illegible]

ii) [illegible] किया जाए कि जब स्वराज प्राप्त किया जाए तो वह स्वदेशी [illegible], न कि यूरोप से आयातित किसी विदेशी शैली का। इसीलिए उनकी दृष्टि [illegible] की प्रथम अभिव्यक्ति स्वदेशी भावना में हुई। यह स्वदेशी भावना केवल विदेशी वस्तुओं के प्रयोग के विरुद्ध नहीं थी बल्कि विदेशी आचार-विचार, व्यवहार, वेशभूषा, शिष्टाचार तथा विदेशी शिक्षा के विरुद्ध भी थी और इसका उद्देश्य [illegible] को अपनी सभ्यता की ओर उन्मुख करना था।

उपर्लिखित विवेचन से यह मालूम होता है कि यद्यपि गरम दल ने अपेक्षाकृत अधिक आक्रामक और तीखी भाषा का प्रयोग किया, लेकिन जहाँ तक लक्ष्य का प्रश्न है, उसमें और नरम दल में कोई विशेष अंतर नहीं था।

जैसा कि पहले उल्लेख किया जा चुका है, गोखले ने अपने अध्यक्षीय भाषण (बनारस, 1905) तथा दादाभाई नौरोजी ने अपने अध्यक्षीय भाषण (कलकत्ता, 1906) में क्रमशः स्वशासन और स्वराज को कांग्रेस का लक्ष्य बताया था, दोनों दलों के अंतर लक्ष्य प्राप्त करने के तरीके में था।

## 10.5.2 व्यक्तित्वों की टकराहट

दृष्टिकोण तथा प्राथमिकताओं में उपर्लिखित अंतर के अतिरिक्त नरम दल और गरम दल का मतभेद तिलक के व्यक्तित्व को लेकर था। तिलक और गोखले दोनों ही पूना के थे। तिलक उग्रवादी थे। एक प्राच्यवादी के रूप में वे सरकार की हर संभव तरीके से बुराई करते थे। उनकी लेखनी बड़ी सशक्त थी और अपने पत्र 'मराठा' और 'केसरी' के माध्यम से उन्होंने जनमानस को अत्याधिक प्रभावित किया था।

गोखले विनम्र व मृदुभाषी थे। भारतीय वित्तीय समस्याओं पर उनकी अच्छी पकड़ थी। इम्पीरियल लेजिस्लेटिव कांउसिल में उनका कौशल देखते ही बनता था। वे सरकार की उपलब्धियों (खासतौर पर आर्थिक क्षेत्र में) के दावों के खोखलेपन को दिखाने में निष्णात थे। लोगों की दृष्टि में वह ऑनरेबल मिस्टर गोखले (महामना गोखले) थे। मातृभूमि की सेवा के लिए उन्होंने समर्पित कार्यकर्त्ताओं के दल को प्रशिक्षित करने के उद्देश्य से पूना में सर्वेन्ट्स ऑफ इण्डिया सोसायटी की स्थापना की थी।

सोसायटी के सदस्यों को शपथ लेकर निर्धनता का जीवन व्यतीत करना था तथा उन्हें आचरण की शुद्धता का कठोरता से पालन करना पड़ता था। उन्हें कठोर श्रम करना पड़ता था और वेतन के नाम पर सिर्फ गुजारे भर के लिए पैसा मिलता था।

तिलक और गोखले के मतभेद जानने के लिए थोड़ा पीछे जाना पड़ेगा। उन्नीसवीं शताब्दी के अंतिम दशक में पूना में दोनों व्यक्तित्वों की जोरदार टकराहट हुई थी। तिलक और जी.जी. आगरकर के मध्य वैमनस्य हो गया था, हालाँकि दोनों ही डेकेन एजुकेशन सोसायटी में सहकर्मी थे। अंत में तिलक को इस सोसायटी से निकाल दिया गया। इसके बाद से तिलक के अनुयायियों और उनके विरोधियों में निरंतर लड़ाई होती रही। तिलक के विरोधी महादेब गोबिन्द रानाडे और गोखले के अनुयायी थे और कांग्रेस के कार्यक्रमों में उन्हें बंबई के फिरोजशाह मेहता का समर्थन प्राप्त था। गोखले को कांग्रेस संगठन का भी समर्थन प्राप्त था। जैसे-जैसे नरम दल की लोकप्रियता और प्रभाव में कमी होती गई और उग्रवाद के विकास के कारण गरम दल देशवासियों के दिलोदिमाग पर कब्जा करता गया वैसे-वैसे दोनों प्रतिद्वन्द्वी दलों में महाराष्ट्र और विशेषकर पूना में, संघर्ष, कटु से कटुतर और स्पष्ट से स्पष्टतर होता चला गया।

पूरे भारत में उत्तेजना व्याप्त हो रही थी। अरविंद के नेतृत्व में बंदे मातरम् की गूंज न सिर्फ ब्रिटिश सरकार के भारत पर शासन करने के अधिकार को चुनौती दे रही थी बल्कि उसने वयोवृद्ध नेताओं को भारतीय जनता की ओर से बोलने के अधिकार को भी चुनौती दे डाली थी। बंगाल से बाहर के नेताओं में तिलक पहले नेता थे, जिन्होंने बंगाल में व्याप्त उत्तेजना तथा उसकी निहित शक्ति को पहचाना था। तिलक की दृष्टि में बंगाल का विभाजन, अंग्रेजों की भूल तो थी लेकिन उससे कहीं ज्यादा बह एक ऐसा अवसर था जब भारतीय अपनी शक्ति (संगठन व एकता के द्वारा) बढ़ा सकते थे। उन्होंने बंगाल विभाजन के विरुद्ध आंदोलन को अपना समर्थन प्रदान किया और बंगाल में उभरते हुए उग्रवादी नेताओं को प्रोत्साहित किया। सन् 1905 के (बनारस में) कांग्रेस अधिबेशन से ही, गोखले ने तिलक और बंगाल के उग्रवादियों का गठबंधन देख लिया था। तिलक और पाल के इस गठबंधन ने सरकार के लिए तो एक विकट समस्या खड़ी कर ही दी थी, साथ ही साथ कांग्रेस के अनेक नेताओं के लिए यह एक सरदर्द बन गया था। तिलक को अगर बिद्रोही

नहीं तो कम से कम एक असंतुष्ट नेता के रूप में अवश्य देखा गया। फिरोजशाह मेहता, डी.ई. वाचा तथा पूरा बंबई गुट 19वीं शताब्दी के अंतिम दशक में उठने वाले विवादों के समय से ही तिलक को अविश्वास की दृष्टि से देखता था। ये आपसी मतभेद आंशिक रूप से स्वभाव की भिन्नता के कारण थे। कम से कम पिछले पंद्रह सालों से कांग्रेस संगठन में शीत युद्ध चल रहा था जिसमें एक ओर मेहता के नेतृत्व वाला गुट था और दूसरी ओर तिलक और उनके अनुयायी थे।

**बोध प्रश्न 3**

1 उग्रवाद के उदय का सैद्धान्तिक आधार क्या था?

..........................................................................................................
..........................................................................................................
..........................................................................................................
..........................................................................................................
..........................................................................................................
..........................................................................................................
..........................................................................................................
..........................................................................................................
..........................................................................................................
..........................................................................................................

2 उग्रवादियों (गरम दल) का राजनैतिक कार्यक्रम क्या था?

..........................................................................................................
..........................................................................................................
..........................................................................................................
..........................................................................................................
..........................................................................................................
..........................................................................................................
..........................................................................................................

## 10.5.3 खुली लड़ाई और फूट

बंबई के उदारवादियों में तिलक का काफी विरोध था। वह एक चतुर रणनीतिज्ञ थे और उस अवसर की प्रतीक्षा में थे जब वह अपनी चाल चल सकें। सन् 1905 में बनारस के कांग्रेस अधिवेशन में तिलक ने जो बंगाल के उग्रवादियों के साथ गठबंधन किया था उससे उन्हें कलकत्ते के कांग्रेस अधिवेशन (1906) में बड़ा लाभ पहुँचा। कलकत्ते के कांग्रेस अधिवेशन को लेकर गोखले भी पहले से ही संशकित थे। उन्हें गड़बड़ी की आशंका थी। यह पारस्परिक अविश्वास कांग्रेस के लिए अच्छा शगुन नहीं था।

सबसे पहले अध्यक्ष पद को लेकर विवाद उठा। पाल और अरविंद तिलक को अध्यक्ष बनाना चाहते थे लेकिन नरम दल उन्हें अध्यक्ष के पद पर स्वीकार नहीं करना चाहता था। अपनी बात मनवाने के लिए नरम दल ने एक असाधारण चाल चली। उन्होंने बिना स्वागत समिति (रिसैप्शन कमेटी) से परामर्श किए, दादाभाई नौरोजी को अध्यक्ष पद स्वीकार करने के लिए तार भेज दिया। जब दादाभाई नौरोजी ने अध्यक्ष बनाए जाने की दावत कुबूल कर ली तो गरम दल को वस्तुस्थिति स्वीकार करनी पड़ी। इस तरह जब तिलक को अध्यक्ष बनाये जाने की कोशिश नाकामयाब हो गई तो गरम दल — तिलक, अरविंद, पाल, अश्विनी कुमार दत्त, जी.एस. खपरडे आदि ने कांग्रेस के अंदर एक प्रभावशाली गुट का निर्माण किया ताकि वे अपनी बात मनवा सकें। कांग्रेस में गरम दल

का बहुमत था और उसे पर्याप्त स्थानीय समर्थन भी प्राप्त था। वातावरण में बड़ा तनाव था तथा सब्जैक्ट्स कमेटी की बैठक बड़ी कोलाहल पूर्ण हुई। प्रस्तावों पर विचार-विमर्श हुआ और गरम दल के दबाव के कारण उनको संशोधन करने पड़े। फिरोजशाह मेहता को विशेषरूप से उनके क्रोध का निशाना बनना पड़ा। मेहता, मदनमोहन मालवीय तथा गोखले को प्रश्नों की बौछार से तंग किया गया। अंत में जल्दी-जल्दी एक समझौता किया गया और बंगाल विभाजन, स्वदेशी, तथा बहिष्कार विषयक प्रस्तावों को फिर से लिखा गया, जिसके फलस्वरूप उद्घाटन अधिवेशन में वे बिना किसी बाधा के पारित हो गए। लेकिन दोनों प्रतिद्वन्द्वी दलों के बीच सौहार्द स्थापित नहीं हो सका। खतरा कुछ समय के लिए टल तो गया था पर कटुता अपना निशान छोड़ गई थी।

यद्यपि कलकत्ता कांग्रेस (1906) में उग्रवादी तिलक को अध्यक्ष पद पर चुनवाने में असफल रहे थे, लेकिन वहाँ जो कुछ उन्होंने हासिल किया था, उससे वे संतुष्ट थे। वे एक मजबूत, सुसंगठित और शक्तिशाली दल के रूप में उभरकर सामने आये थे। उन्होंने उन सभी कोशिशों को नाकामयाब कर दिया जो उनकी नजर में कांग्रेस के कार्यक्रम को कमजोर बनाने के लिए की गई थीं। कलकत्ते से जाते समय नरम दल खुद को भ्रमित, अपमानित और बेचैन महसूस कर रहा था। सबसे ज्यादा परेशानी उन्हें गरम दल द्वारा किए गए उद्दण्ड व्यवहार से थी।

नरम दल और गरम दल दोनों ने ही स्वदेशी आंदोलन में भाग लिया परंतु दोनों के स्वदेशी विषयक दृष्टिकोण में भारी मतभेद था। तिलक, पाल और अरविंद के लिए बहिष्कार का दोहरा आशय था। भौतिक रूप से ये मानचेस्टर पर आर्थिक दबाव के रूप में होना था जिसकी प्रतिक्रिया भारत सरकार पर मानचेस्टर द्वारा दबाव के रूप में होनी थी। आध्यात्मिक स्तर पर यह आत्मपीड़न या आत्मप्रताड़ना की एक धार्मिक रीति थी। गोखले के लिए स्वदेशी मुख्य रूप से एक आर्थिक संदेश था— भारतीय उद्योग में नवजीवन के संचार का संदेश। यह दृष्टिकोण उन्होंने रानाडे से प्राप्त किया था। सुरेन्द्र नाथ की दृष्टि में भावना की दृष्टि से स्वदेशी आंदोलन एक संरक्षणवादी आंदोलन था। इस आंदोलन ने जनता का इसलिए अभिभूत किया क्योंकि उसकी दृष्टि में इससे "उसके लिए भौतिक समृद्धि के नये युग का सवेरा होने वाला था।" तिलक और लाजपतराय की दृष्टि में यह राजनैतिक आंदोलन का एक हथियार होने के साथ-साथ आत्म सहायता, दृढ़ निश्चय और त्याग का नैतिक प्रशिक्षण भी था। अरविंद स्वदेशी को स्वायत्तता तथा समृद्धि के सांसारिक अर्थ में नहीं लेते थे बल्कि वे स्वदेशी के माध्यम से इस विश्वास को फिर से जगाना चाहते थे कि भारत ही जगद्रक्षक की भूमिका निभा सकता है। इस प्रकार स्वदेशी को उग्रवादियों ने उदारवादियों की तुलना में अधिक व्यापक रूप में देखा।

स्वभावगत तथा सैद्धान्तिक मतभेद और व्यक्तित्वों की टकराहट ने दोनों प्रतिद्वंद्वी दलों में कटुता उत्पन्न की। गरम दल की अनवरत आलोचना ने नरम दल को सावधान कर दिया। गरम दल पहले ही बंगाल, महाराष्ट्र, बरार और पंजाब को अपने प्रभाव में ले चुका था, अब नरम दल को भय था कि शेष भारत भी उनके कब्जे में आ जाएगा। इसलिए वे हताश होकर अपने संरक्षण के लिए कुछ भी करने को तैयार थे।

कलकत्त में यह निश्चित हो गया था कि कांग्रेस का अगला अधिवेशन नागपुर में होगा। नरम दल को यह विश्वास था कि नागपुर में उसका बहुमत होगा। आगामी अधिवेशन (1907) में कांग्रेस के अध्यक्ष का चुनाव, नरम दल और गरम दल के बीच शक्ति परीक्षण के अवसर के रूप में विकसित हुआ। नरम दल तिलक को अध्यक्ष न बनने देने के लिए कृतसंकल्प था। इस तरह का रुख एक अपशकुन था। नरम दल यह तय कर चुका था कि अगर तिलक का अध्यक्ष पद के लिए चुनाव हो गया और कांग्रेस पर गरम दल का प्रभुत्व हुआ तो वह कांग्रेस को ही नष्ट कर देगा।

नरम दल तिलक को अध्यक्ष न बनने देने के विषय में एकमत था लेकिन अध्यक्ष पद पर कौन चुना जाए, इस विषय में एकमत नहीं था। गोखले प्रतिष्ठित वकील और प्रभावशाली वक्ता, रासबिहारी घोष को अध्यक्ष बनाना चाहते थे। लेकिन नागपुर में जब नरम दल ने अपनी स्थिति निराशाजनक देखी तो फिरोजशाह ने अधिवेशन का स्थान बदलकर सूरत

कर दिया, क्योंकि उनके विचार से सूरत में उनकी मर्जी के अनुसार अधिवेशन चल सकता था। गरम दल ने परिवर्तन के इस निर्णय को पसंद नहीं किया। तनावपूर्ण वातावरण और दोनों दलों के द्वारा असंगत भाषा के प्रयोग ने सूरत में उठने वाले संकट की अवश्यंभाविता की ओर संकेत किया। रासबिहारी घोष अध्यक्ष पद के लिए चुने गए। दोनों दलों के पारस्परिक संबंध और भी खराब हो गए। सभा में घोष के अध्यक्ष पद के चुनाव की घोषणा के समय खुलेआम लड़ाई शुरू हो गई। इस विषय में तिलक को अपने विचार व्यक्त करने की अनुमति नहीं दी गई। इस बात ने तिलक के अनुयायियों को हंगामा मचाने का मौका दे दिया। आरोप प्रत्यारोप लगाए गए, डंडों का प्रदर्शन भी हुआ और पगड़ियाँ उछाली गईं, कुर्सियाँ भी टूटी और कुछ लोगों को चोटें भी आईं। इस हादसे की जिम्मेदारी के लिए एक दूसरे पर आरोप और प्रत्यारोप लगाए गए। अब बहस करने से कोई फायदा नहीं था। लेकिन यह सत्य था कि इस आंतरिक कलह ने जो स्वरूप धारण कर लिया था वह सबके लिए चिंता का विषय था।

## 10.5.4 फूट के परिणाम

इस फूट के लिए चाहे कोई भी जिम्मेदार हो और चाहे इसके जो भी कारण रहे हों, यह निश्चित है कि यह देश के लिए एक महान दुर्घटना थी। गोखले इस दुर्घटना की भयावहता को समझते थे। ब्रिटिश नौकरशाही की खुशी का कोई ठिकाना नहीं था। वाइसरॉय लॉर्ड मिन्टो ने आह्लादपूर्ण स्वर में सेक्रेटरी ऑफ स्टेट लॉर्ड मोर्ले को बतलाया कि, "कांग्रेस का ढ़हना (सूरत की फूट) हम सबके लिए एक महान विजय है।" लेकिन मोर्ले वस्तुस्थिति को ज्यादा अच्छी तरह से समझते थे। एक भविष्यवक्ता की भाँति उन्होंने वाइसरॉय को बताया कि, "भले ही इस समय गरम दल का पतन हो गया है लेकिन अन्ततः कांग्रेस पर गरम दल का आधिपत्य हो जाएगा।" यह फूट कांग्रेस के लिए विशेषकर हानिकारक थी। साथ ही साथ इसने आमतौर पर राष्ट्रीय आंदोलन पर भी प्रतिकूल प्रभाव डाला था। यह कहा जा सकता है कि, नरम दल कांग्रेस का दिमाग था तो गरम दल उसका हृदय; नरम दल उसका कानून था तो गरम दल उसकी अंतः प्रेरणा। दोनों दलों का मिलजुल कर काम करना कांग्रेस के कार्यकलापों और राष्ट्रीय आंदोलनों के विकास, दोनों के लिए ही परम आवश्यक था। गरम दल के निर्वासन से नरम दल को कुछ भी हासिल नहीं होना था। लगभग दस वर्ष तक नरम दल उस स्थिति में नहीं आ सका जिसमें वह अंग्रेजों का प्रभावशाली ढंग से विरोध कर सकता। सन् 1916 के बाद ही जब कांग्रेस में गरम दल का पुनःप्रवेश हुआ और नरम दल कांग्रेस में प्रभावहीन हुआ (1918), तभी कांग्रेस में एक बार फिर से नई जान आई। लेकिन यह एक नई कहानी थी। गोखले के राजनैतिक शिष्य मोहनदास करमचंद गांधी ने गरम दल के कार्यक्रम को लेकर अपना आंदोलन प्रारंभ किया। उन्होंने विवेक और विश्वास तथा न्याय और अंतःप्रेरणा के समन्वय पर जोर दिया। उन्होंने भारतीय जनता की चिरस्थायी शक्ति का प्रतिनिधित्व किया तथा कांग्रेस को नया रूप देकर उसे फिर से गतिमान बनाया। गांधी ने राजनैतिक आंदोलन के क्षेत्र में एक नये युग का सूत्रपात किया।

**बोध प्रश्न 4**

1 सन् 1907 में, सूरत में हुई कांग्रेस में फूट की परिस्थितियाँ क्या थीं?

..........................................................................................

..........................................................................................

..........................................................................................

..........................................................................................

..........................................................................................

..........................................................................................

..........................................................................................

..........................................................................................

..........................................................................................

2 सूरत की फूट किस प्रकार राष्ट्रीय आंदोलन के विकास में बाधक हुई?

........................................................................................................
........................................................................................................
........................................................................................................
........................................................................................................
........................................................................................................
........................................................................................................
........................................................................................................
........................................................................................................
........................................................................................................
........................................................................................................
........................................................................................................
........................................................................................................

## 10.6 सारांश

कांग्रेस के पहले पच्चीस वर्ष बहुत महत्वपूर्ण थे क्योंकि इसी काल में राष्ट्रीय आंदोलन की मुख्य माँगें प्रस्तुत की गई थी। प्रारंभ में कांग्रेस ने हल्की-फुल्की माँगें रखी और उन्हें प्राप्त करने के लिए नम्र एवं संवैधानिक तरीका अपनाया। प्रारंभिक नेताओं ने यह विश्लेषण करके दिखलाया कि किस प्रकार एक सुनियोजित ढंग से अंग्रेज भारत का धन चूस रहे हैं। उन्होंने समझ लिया था कि इसी आर्थिक दोहन से जनता की गरीबी लगातार बढ़ती चली जा रही थी। कुछ वर्षों में ही कांग्रेस में एक वर्ग उदारवादियों के तरीकों को प्रभावहीन मानने लगा। यह वर्ग अंग्रेजों का सक्रिय विरोध करना चाहता था। उसकी मुख्य माँग थी स्वराज (स्वशासन) इस आंतरिक कलह ने सन् 1907 में कांग्रेस का विभाजन करा दिया। कुछ समय के लिए इस फूट से कांग्रेस कमजोर पड़ गई।

अपने पहले चरण में कांग्रेस की सबसे बड़ी उपलब्धि यह थी कि यह स्वदेशी आंदोलन (जिसे बंगाल विभाजन के विरोध में प्रारंभ किया गया था) के माध्यम से भारतीय जनता के महत्वपूर्ण वर्गों को, अंग्रेजों के विरुद्ध संघटित कर सका।

## 10.7 शब्दावली

**समावेश** : एक साथ या एक जगह रहना, एक वस्तु का दूसरे वस्तु के अन्तर्गत होना

**पेशा** : जीविका के लिए किये जाने वाला धंधा व्यवसाय

**अभिजात्य वर्ग** : कुलीन वर्ग

**सवाशयता** : सज्जन, भला-मानस

**नौकरशाही** : वह शासन जिसमें सब अधिकार बड़े-बडे राजकर्मचारियों के हाथों में रहते हैं (व्यूरोक्रेसी)

**रियायत** : छूट, कमी

**अवसान** : समाप्ति
**अनुगमन** : पीछे चलना
**समन्वयवादी** : कार्य और कारण की संगति करके चलने वाला, मिलान करने वाला
**विरासत** : उत्तराधिकार से मिला हुआ
**आत्मसंयम** : अपनी इच्छाओं को वश में रखने वाला
**उन्मुख** : उत्कंठित, उत्सुक, उद्यत
**प्राच्यवादी** : पूर्व दिशा का, पुराने विचारों में विश्वास रखने वाला
**मृदुभाषी** : मधुर बोलने वाला, जिसका कथन सुनने में प्यारा लगे।
**वैमनस्य** : शत्रुता
**विकट** : कठिन, मुश्किल
**शगुन** : (शकुन) किसी विशेष कार्य के आरंभ में दिखाई देने वाले शुभ या अशुभ लक्षण
**सौहार्द** : सज्जनता, मित्रता
**आध्यात्मिक** : आध्यात्म या आत्मा संबंधी। ब्रहम और जीव संबंधी
**कृतसंकल्प** : किया हुआ संकल्प
**अवश्यंभाविता** : जो अवश्य होने वाला हो, जो टले नहीं
**निर्वासन** : गाँव, नगर, देश आदि से दंड स्वरूप बाहर निकाल देना। देश निकाला
**सूत्रपात** : किसी कार्य का प्रारंभ होना या प्रारंभ होने का पूरा आयोजन होना

## 10.8 बोध प्रश्नों के उत्तर

**बोध प्रश्न 1**

1 देखिए भाग 10.1
2 देखिए उपभाग 10.2.1

**बोध प्रश्न 2**

1 देखिए उपभाग 10.3.1
2 देखिए उपभाग 10.3.1

**बोध प्रश्न 3**

1 देखिए उपभाग 10.4.1
2 देखिए उपभाग 10.4.2

**बोध प्रश्न 4**

1 देखिए उपभाग 10.5.3
2 देखिए उपभाग 10.5.4

# इकाई 11 बंगाल का विभाजन और स्वदेशी आंदोलन (1905-1908)

## इकाई की रूपरेखा


11.0 उद्देश्य
11.1 प्रस्तावना
11.2 बंगाल के विभाजन की योजना
11.3 योजना के पीछे मंशा
11.4 विभाजन
11.5 सरकार की गलत अवधारणा
11.6 बहिष्कार, स्वदेशी तथा राष्ट्रीय शिक्षा
11.7 समितियाँ तथा राजनैतिक प्रवृत्तियाँ
11.8 जन-आंदोलन की संकल्पना: मजदूर और किसान
11.8.1 किसान
11.8.2 मजदूर
11.9 सांप्रदायिक समस्या
11.10 क्रांतिकारी आतंकवाद का उदय
11.11 सारांश
11.12 शब्दावली
11.13 बोध प्रश्नों के उत्तर


## 11.0 उद्देश्य

इस इकाई में आपके सामने उन कारणों को प्रस्तुत करने का प्रयास किया जायेगा जिन्होंने ब्रिटिश सरकार को 1905 में बंगाल के विभाजन के लिए प्रेरित किया। यह इकाई इस कार्यवाही के फलस्वरूप उत्पन्न स्वदेशी आंदोलन द्वारा भारतीय स्वतंत्रता संग्राम में लाये गये परिवर्तनों का विवरण भी देगी। इस इकाई को पढ़ने के बाद आप :

- उस पृष्ठभूमि की व्याख्या कर सकेंगे जिसमें भारतीय राष्ट्रवादियों तथा ब्रिटिश अधिकारियों ने एक दूसरे का सामना किया
- बंगाल के विभाजन की योजना के पीछे की मंशाओं को पहचान सकेंगे
- विवेचना कर सकेंगे कि स्वदेशी आंदोलन किस प्रकार पनपा और उससे कौन सी राजनैतिक प्रवृत्तियों और कार्यप्रणालियों का विकास हुआ
- आंदोलन की शक्ति तथा उसकी राह में आई कठिनाइयों का मूल्यांकन कर सकेंगे तथा अंत में
- इस ऐतिहासिक घटना का व्यापक मूल्यांकन कर सकेंगे।

## 11.1 प्रस्तावना

19वीं शताब्दी के अंत तक शिक्षित मध्यम वर्ग के उन मुखर प्रतिनिधियों का उत्साह काफी कम हो गया था जो भारतीय समाज के नये नेताओं के रूप में उभरे थे।

ब्रिटेन में ग्लैडस्टोन और भारत में लॉर्ड रिपन जैसे व्यक्ति जो शिक्षित भारतीयों के महत्व को समझते

थे और उनकी आकांक्षाओं के साथ सहानुभूति रखते थे, कार्य संचालन में नहीं रहे थे। उनके बदले भारत का प्रशासन उन लोगों के हाथ में था जो बिना किसी अपवाद के शिक्षित भारतीयों की आकांक्षाओं के साथ सहानुभूति नहीं रखते थे और भारत पर ब्रिटेन के साम्राज्यवादी शिकंजे की पकड़ को ढीला करने के विरुद्ध थे। ये अधिकारी भारतीय मत की अवहेलना करते थे और अधिकारियों की रंगभेदी गतिविधियों को नजरअंदाज करते थे। उन्होंने उन नाममात्र रियायतों को भी नुकसान पहुँचाने की कोशिश की जो पहले समय-समय पर हिन्दुस्तानियों को बहुत ही अनिच्छा से दी जाती रही थीं। राज का विद्वेषपूर्ण रवैया शुरू के राष्ट्रवादियों को साफ दिखाई दे रहा था। 1900 तक अनेक राष्ट्रवादियों को सरकार को ज्ञापन देने और प्रार्थना करने की निरर्थकता का अहसास हो चला था। उनकी भारतीय प्रशासनिक सेवा में हिन्दुस्तानियों के लिए स्थान तथा विधान-सभाओं में कुछ सुधार जैसी माँगों पर ध्यान नहीं दिया गया। ''अन-ब्रिटिश'' कुशासन के बदले भारत में न्यायिक ब्रिटिश शासन लागू किए जाने की मांग पर भी ध्यान नहीं दिया गया। लगभग दो दशकों तक भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस के मंच से दुहराई जाती संवैधानिक रियायतों की माँगों के बदले 1892 की नगण्य रियायतें दी गईं। 20वीं शताब्दी के शुरू में लॉर्ड कर्जन जैसे वाइसराय के कारण स्थिति और भी बिगड़ गई क्योंकि वह कांग्रेस को ''अपवित्र चीज'' (Unclean thing) मानता था, उसके नेताओं के निवेदन को ''भाव-रहित उदासीनता'' द्वारा अस्वीकार करना चाहता था और सिविल सेवा को ''यूरोपियों के लिए विशेष रूप से सुरक्षित'' समझता था। साम्राज्यवादियों की तरह कर्जन कट्टर नस्लवादी था तथा उसका मानना था कि ''सत्य का सर्वोच्च आदर्श काफी हद तक पश्चिमी धारणा है'' तथा अपने सद्भावनापूर्ण भाव में वह भारतीयों के बारे में उस स्वर में बात करता था जो ''सामान्यतया हम अपने पालतू जानवरों के लिए इस्तेमाल करते हैं''। (एस. गोपाल, ब्रिटिश पॉलिसी इन इंडिया, 1858-1905, कैम्ब्रिज 1965, पृ. 227)

कर्जन के इस व्यक्तित्व से प्रारंभिक राष्ट्रवादी क्षुब्ध तथा उत्तेजित तो हुए लेकिन वे इतने हताश नहीं हुए कि हर तरह का अपमान सहते या चुप रह जाते। इस प्रकार अपने लोगों की नजर में उनका महत्व बढ़ गया। उन्होंने अपने समाज-सुधारकों तथा राजनैतिक गुरुओं से आत्मविश्वास पाया और इतना आत्मसम्मान प्राप्त किया कि वे सभ्य व्यवहार तथा स्वाभाविक न्याय की माँग करने लगे। इसके फलस्वरूप कर्जन और शिक्षित मध्यम वर्ग के राष्ट्रवादियों के बीच ठन जाना स्वाभाविक ही था। यह मुकाबला हुआ बंगाल में जहाँ भारतीय बुद्धिजीवी सबसे अधिक शक्तिशाली थे और जहाँ कर्जन का व्यवहार सबसे अधिक अपमानजनक था।

बंगाल में हमले की शुरूआत कर्जन ने की। 1899 में ही उसने कलकत्ता कॉरपोरेशन में निर्वाचित सदस्यों की संख्या घटा दी थी। यह कदम मुख्यतया शहर में यूरोपीय व्यावसायिक हितों को संतुष्ट करने के लिए उठाया गया था क्योंकि वे अक्सर लाइसेंस प्रदान करने तथा अन्य सुविधाओं में देरी की शिकायत किया करते थे। इस कार्यवाही के पीछे क्या उद्देश्य थे यह एकदम साफ था और इसका अलोकतांत्रिक स्वरूप भी निर्विवाद था। कलकत्ता के नागरिकों को लगा कि उनका अपमान हुआ है और उनके साथ अन्याय किया गया है। लेकिन इससे पहले कि वह इस अन्याय को आत्मसात् कर पाते, कर्जन ने कलकत्ता विश्वविद्यालय के स्वायत्त स्वरूप पर प्रहार कर दिया —यह विश्वविद्यालय बंगाल के शिक्षित वर्ग का गौरव था। भारतीय विश्वविद्यालय कमीशन की सिफारिशों के आधार पर, जिसके एकमात्र सदस्य (गुरुदास बैनर्जी) ने अन्यों से अपनी असहमति प्रकट की थी, कर्जन ने विश्वविद्यालय एक्ट (1904) पास कर दिया। ''सभी प्रकार से शिक्षा के स्तर को ऊँचा उठाना''—इस उद्देश्य को बहाना बनाया गया। इस एक्ट के अन्तर्गत सिनेट के निर्वाचित सदस्यों की संख्या (अधिकतर भारतीय) घटा दी गई थी और कालेजों तथा स्कूलों को संबंद्धता देने का अधिकार तथा अनुदान देने का अधिकार सरकारी अधिकारियों को सौंप दिया गया था। इस वैधानिक कदम से शिक्षित मध्यवर्ग के असंतुष्ट लोगों के मन में कोई संदेह नहीं रह गया कि वाइसराय उन्हें अपमानित करने तथा हर प्रकार से उनका मनोबल गिराने पर उतारू है। स्वाभाविक था कि मानसिक रूप से उन्हें स्वयं को इससे अधिक कठिनाइयों का सामना करने के लिए तैयार करना पड़ा व उसका मुकाबला करने के लिए तैयार होना पड़ा। सबसे बदतर कदम बहुत जल्दी ही और बहुत ही नाटकीय ढंग से उनके सामने आ गया जब 1905 में कर्जन ने बंगाल के विभाजन की घोषणा कर दी।

## 11.2 बंगाल के विभाजन की योजना

एक लेफ्टीनेंट गवर्नर के अधीन बंगाल का सूबा असमान जनसंख्या, विभिन्न भाषाओं और बोलियों

वाला इलाका था जिसके विभिन्न भागों की आर्थिक प्रगति भी असमान थी। खास बंगाल के अतिरिक्त (यानि पश्चिम तथा पूर्वी बंगाल के बंगला भाषी क्षेत्र) शुरू में इस सूबे में बिहार, उड़ीसा तथा आसाम भी शामिल थे। इससे पहले भी ब्रिटिश प्रशासन समय-समय पर प्रशासनिक सुविधा के लिए सूबे के क्षेत्र को छोटा करने के बारे में सोचता रहा था। 1874 में उन्होंने आसाम को अलग करके चीफ कमिश्नर का क्षेत्र बना दिया और स्थानीय विरोध के बावजूद उसमें सिलहट के मुख्य रूप से बंगाली भाषी हिस्से को भी जोड़ दिया। 1897 में आसाम में अस्थायी रूप से बंगाल के दक्षिणी लुशाई क्षेत्र को जोड़ कर उसका विस्तार कर दिया गया। लेकिन थोड़ा-थोड़ा करके छोटा करने की इस कार्यवाही से समस्याओं से भरे बंगाल जैसे बड़े सूबे के प्रशासन को चलाने का स्थायी हल नहीं निकला। इसलिए प्रशासनिक दृष्टिकोण से तथा सभी क्षेत्रों की समान प्रगति के दृष्टिकोण से भी बंगाल के पुनर्गठन की आवश्यकता तो थी ही। 1904 में जब कर्जन ने बंगाल के पुनर्गठन की बात की तो वह असंगत नहीं थी। अगर वह भिन्न भाषीय बिहार और उड़ीसा को प्रशासनिक कारणों से अलग करने की बात करता जैसा कि राष्ट्रवादी स्वयं बार-बार माँग रहे थे, कर्जन की नीति को सैद्धान्तिक तथा दूरदर्शी माना जाता। लेकिन वह तथा उसके मुख्य सलाहकार जिनमें बंगाल के लेफ्टीनेंट गवर्नर सर ए. फ्रेजर तथा गृह विभाग, भारत सरकार के सचिव एच.एच. रिसली शामिल थे क्षेत्रीय पुनर्गठन की इस माँग की आड़ में राष्ट्रीयता की आवाज का गला घोंट देना चाहते थे। इसलिए इस कदम के पीछे अंग्रेजों का उद्देश्य मुख्यत: भारत के पूर्व में राष्ट्रीय आंदोलन चलाने वालों को चोट पहुँचाना था जिनमें प्रमुख था बंगला भाषी शिक्षित मध्यम वर्ग। चूँकि वही सबसे पहले ब्रिटिश प्रशासन के आधीन आये थे, इसलिए बंगाली लोगों ने ही सबसे पहले अंग्रेजी शिक्षा, पश्चिमी उदारतावादी विचारों तथा राष्ट्रीय भावनाओं को व्यक्त करने वाले विचारों को अपनाया था। साम्राज्यवादी प्रशासन ने इन सबसे नाराज होकर कार्यवाही करने का निश्चय किया था।

## 11.3 योजना के पीछे मंशा

कर्जन तथा उस जैसे अन्यों की नजर में बंगाल ब्रिटिश के भारतीय साम्राज्य की सबसे कमजोर कड़ी था। उनके विचार में बंगाली "अभी से एक शक्ति बन गये थे और निश्चय ही भविष्य में बढ़ती हुई गड़बड़ी का स्रोत होंगे।" पूर्वी भारत में राष्ट्रीयता की बढ़ती हुई इस चुनौती का सामना करने के लिए कर्जन और उसके सलाहकारों ने एक प्रभावशाली समाधान ढूँढने की कोशिश की और अन्तत: वह मिला बंगाली-भाषी लोगों के विभाजन में। सरकारी मूल्यांकन इस प्रकार है: "संयुक्त बंगाल एक शक्ति है, विभाजित बंगाल विभिन्न दिशाओं में खींचने वाले दबावों के प्रभाव में आ जाएगा।" कर्जन और उसके साथी ब्रिटिश साम्राज्य के "दुश्मनों के संगठित समुदाय को विभाजित करके कमजोर बनाने" के लिए कृतसंकल्प थे। विभाजन की इस कार्यवाही या 'विभाजन और शासन' की नीति को इस प्रकार कार्यान्वित करने का निश्चय किया कि बंगालियों का भौतिक एवं मानसिक विभाजन हो सके व विभाजन की इस नीति को सफल बनाने के लिए कर्जन बंगाल के दो बड़े समुदायों – हिंदूओं तथा मुसलमानों – के बीच परस्पर संदेह तथा जलन की भावना पैदा करना चाहता था।

कर्जन और उसके सलाहकारों को पता था कि बंगाल में उनके विरोधियों में हिंदू अधिक थे क्योंकि अपने मुसलमान भाइयों के मुकाबले में इन्होंने ब्रिटिश शासन से सामाजिक आर्थिक और शैक्षिक फायदा अधिक उठाया था। कृषक होने के नाते अधिकतर मुसलमान इस प्रकार का फायदा नहीं उठा पाये थे। चालाकी से यह सुझाव देते हुए कि उनकी सरकार हिंदूओं के साथ प्रगति की होड़ में मुसलमानों का साथ देगी और उन्हें हिंदूओं के प्रभुत्व के खतरे से बचाएगी। कर्जन बंगाल के मुस्लिम बाहुल्य वाले इलाकों को अलग करके, उन्हें आसाम के साथ मिलाकर एक नया सूबा बनाना चाहता था जिसकी राजधानी ढाका हो। कर्जन को आशा थी कि इस नये प्रांत से "पूर्वी-बंगाल के मुसलमानों के बीच ऐसी एकता संभव हो सकेगी जैसी कि पुराने मुसलमान शासकों के दिनों में भी नहीं हो सकी थी।" उसे यह आशा थी कि ढाका "एक ऐसी राजधानी के रूप में उभरेगा जिसमें अगर मुसलमानों के हित प्रमुख नहीं होंगे तो कम से कम उसमें उनका शक्तिशाली प्रतिनिधित्व तो होगा।" इसीलिए कर्जन और उसके साथी बंगाल का विभाजन करके ढाका को राष्ट्रीय भावना से भरपूर कलकत्ता के मुकाबले प्रमुख राजनैतिक केन्द्र बनाना चाहते थे। हिंदूओं को प्रतिसंतुलित करने के लिए मुसलमानों का इस्तेमाल करके वे बंगाल में से मुस्लिम बाहुल्य वाला प्रान्त बनाना चाहते थे जिसमें डेढ करोड़ मुसलमान, एक करोड़ बीस लाख हिंदूओं के साथ रहते तथा बंगाल में वे बंगाली भाषियों को अल्पसंख्यक बना देना चाहते थे (जहाँ बंगाली बोलने वाले एक दशमलव नौ करोड़ लोग रहते, हिन्दी उड़ीया तथा अन्य भाषाएँ बोलने वाले साढ़े तीन करोड़ लोगों के सामने अल्पसंख्यक हो जाते)

यह शरारतपूर्ण खेल मुख्यतया शिक्षित भारतीय मध्यमवर्ग के राष्ट्रप्रेमियों की गतिविधियों पर अंकुश लगाने के लिए खेला गया था।

## 11.4 विभाजन

बंगाल को विभाजित करने की कर्जन की यह योजना धीरे-धीरे 1 जून 1903 में उसके सीमा पुनर्गठन के मिनट से लेकर 2 फरवरी 1905, जब विभाजन की योजना लंदन में गृह प्रशासन को भेजी गयी, के बीच साकार हुई। योजना उन्नीस जुलाई 1905 को भारत सरकार ने नये प्रांत "पूर्वी बंगाल तथा आसाम" के बनाये जाने की घोषणा कर दी, जिसमें चटगाँव, ढाका तथा राजशाही डिविजन और त्रिपुरा, मालदा तथा आसाम के इलाके शामिल थे। 16 अक्टूबर 1905 को बंगाल के तथा उसके 4 दशमलव 15 करोड़ लोगों के विभाजन के बाद यह नया प्रांत अस्तित्व में आ गया।

**बोध प्रश्न 1**

1 निम्नलिखित कथनों में से कौन से ठीक (✓) या गलत (×) हैं:
जब बंगाल का विभाजन हो रहा था तब

i) भारत का वाइसराय लॉर्ड कर्जन था

ii) भारत सरकार के गृह विभाग का सचिव सर ए. फेजर था

iii) बंगाल का लेफ्टीनेंट गर्वनर एच.एच. रिसली था

iv) बिहार तथा उड़ीसा प्रथक प्रान्त थे।

2 बंगाल के विभाजन के पीछे कर्जन की असली मंशा क्या थी? अपना उत्तर लगभग दस लाइनों में लिखें।.

........................................................................................................................

........................................................................................................................

........................................................................................................................

........................................................................................................................

........................................................................................................................

........................................................................................................................

........................................................................................................................

........................................................................................................................

........................................................................................................................

........................................................................................................................

## 11.5 सरकार की गलत अवधारणा

बंगालियों के प्रति तिरस्कार दिखाते हुए तथा बहुत ही ढिठाई से बंगाल का विभाजन करते समय कर्जन और उसके साथियों ने इस कदम के विरोध में होने वाले प्रतिरोध के रूप के बारे में अपनी अटकलें लगाई थीं। उन्हें पता था कि पूर्वी बंगाल के बाबुओं को क्लर्की की नौकरियों की चिन्ता होगी। उन्हें यह भी पता था कि बंगाली जमींदारों को (जिनकी जागीरें पूर्वी तथा पश्चिमी भागों में फैली थीं) दो अलग-अलग एजेन्टों तथा प्लीडरों के वर्गों की नियुक्ति से बढ़ने वाले खर्च की फिक्र होगी। कलकत्ता हाई कोर्ट के वकीलों को नये प्रांत में अलग हाई कोर्ट खुल जाने के कारण वकालत में होने वाले नुकसान की चिन्ता होगी। कलकत्ता बन्दरगाह के आसपास जूट तथा चावल का व्यापार करने वालों को डर होगा कि चटगांव एक वैकल्पिक आयात-निर्यात केंन्द्र बन जाएगा। उन्हें यह भी ज्ञान था कि कलकत्ता के राष्ट्रवादी अपने श्रोताओं तथा अनुयायिओं के बड़े भाग की हानि से चिन्तित

होंगे। लेकिन उन्हें आशा थी कि कुछ समय के बाद यह सभी चिन्तायें कम हो जाएंगी या ज्यादा से ज्यादा कुछ देर तक विरोध सभाएं तथा प्रदर्शन होंगे जिनको सहा जा सकेगा या जिनकी उपेक्षा की जा सकेगी।

सरकार को बिल्कुल भी अनुमान नहीं था कि विभाजन से एक ऐसा तूफानी राजनैतिक आंदोलन पैदा होगा जो उसे सादरपूर्ण अप्रसन्नता व्यक्त करने के पारंपरिक तरीकों से विमुख करके अप्रत्याशित लड़ाकूपन को जन्म देगा जिसके कारण जल्दी ही वह आंदोलन स्वराज की लड़ाई में बदल जाएगा। प्रशासन ने बंगालियों के सत्तावाद के विरोध का बिल्कुल गलत अन्दाजा लगाया। बंगालियों में यह विरोध उस लंबे इतिहास की देन था जिसके दौरान वे किसी भी प्रकार के नाममात्र के केंद्रीय अंकुश से स्वतंत्र रहे थे। वे बंगालियों में विशेषकर पढ़े-लिखों में अपनी उपलब्धियों के प्रति गौरव एवं एकता की भावनाओं को भी ठीक से नहीं पढ़ पाये जो पूरी 19वीं शताब्दी के दौरान शैक्षिक बौद्धिक तथा सांस्कृतिक गतिविधियों के कारण प्राप्त हुई थी। आर्थिक तथा राजनैतिक गतिविधियों का केंद्र होने के अलावा कलकत्ता शहर जो अंग्रेजों के भारत की राजधानी था, बंगाली चेतना का भी केंद्र बन गया था। यहाँ बंगाल के हर भाग से विद्यार्थी आते थे तथा यहीं से प्रांत के हर हिस्से को, कभी-कभी तो उससे भी आगे अध्यापक तथा व्यावसायिक वर्ग के लोग (विशेषकर इंजीनियर, डॉक्टर वगैरा) भेजे जाते थे। एक शक्तिशाली साहित्यिक भाषा के पनपने में कलकत्ता का महत्वपूर्ण योगदान था। शहर में बहुत से उच्चस्तरीय अखबार तथा लेखकों का जुट था जो पर्चों, पत्रिकाओं तथा विकसित साहित्य का सृजन कर रहे थे।

कलकत्ता को केंद्र बनाकर ये शिक्षित बंगाली बीसवीं शताब्दी के आरंभ में साहित्य में (रवीन्द्र नाथ टैगोर के नेतृत्व में) विज्ञान में (जगदीश चंद्र बोस तथा प्रफुल्ल चंद्र राय के नेतृत्व में), राजनीति में (सुरेंद्र नाथ बैनर्जी, उभरते विपिन चंद्र पाल तथा अरविन्द घोष के नेतृत्व में) तथा धर्म के क्षेत्र में (स्वामी विवेकानंद के रूप में) अपनी उपलब्धियों से समूचे भारत को प्रेरित कर रहे थे। लगभग उसी समय उन्होंने इस बात को भी ध्यान में रखा कि बोअर लड़ाई ने तथाकथित अभेद्य ब्रिटिश कवच में कमजोरियों को प्रकट कर दिया था। उन्हें काफी प्रसन्नता हुई तथा उनमें आत्मविश्वास बढ़ा जब कमजोर माने जाने वाले पूर्व के देश जापान ने 1904-5 में जार के द्वारा शासित पश्चिमी देश रूस को हरा दिया। उनका यह बढ़ता हुआ आत्मविश्वास डराने-धमकाने तथा भेदभाव रखने वाली नस्लवादी कार्यवाहियों के प्रति तिरस्कार का भाव दिखा रहा था।

देश के अन्य भागों में अपने प्रतिपक्षों की तरह बंगाल के मध्यम वर्गीय शिक्षित हिन्दुस्तानी भी हिन्दुस्तान से ब्रिटेन की और "सम्पत्ति निकास" की सख्त आलोचना करते थे और हिन्दुस्तान में बार-बार होने वाले दुर्भिक्ष तथा प्लेग के फैलने से चिन्तित थे। उनकी अपनी आर्थिक हालत भी अच्छी नहीं थी क्योंकि उनके व्यवसायों में बहुत अधिक प्रतिस्पर्धा थी। साथ ही उनकी भू संपत्ति बँटवारे तथा उत्तराधिकार के नियम के कारण लाभकारी नहीं रही थी। सभी वस्तुओं के दाम एका-एक बढ़ जाने से हालत और भी खराब हो गई जिसका असर सभी लोगों पर पड़ा, मध्यम वर्ग पर भी। कीमतें बढ़ी 'सबसे अधिक 1905 और 1908 के बीच - जो अधिकतम राजनैतिक उथल पुथल के वर्ष थे'। (सुमित सरकार, आधुनिक भारत 1885-1947 दिल्ली, 1983 पृ.109) कुल मिलाकर यह कहा जा सकता है कि 1905 में बंगाल और बंगाली मध्यम वर्ग कर्जन के इस हमले के सामने घुटने टेकने को तैयार नहीं था। लेकिन कर्जन को इस बात का पूरा अहसास नहीं था।

## 11.6 बहिष्कार, स्वदेशी तथा राष्ट्रीय शिक्षा

बंगाल में विभाजन-विरोधी आंदोलन हालाँकि पारंपरिक नरमपंथी राष्ट्रीय तरीके से शुरू हुआ फिर भी इसमें तीव्र प्रचार तथा रोषपूर्ण विरोध के अंश थे। समाचार पत्रों में विभाजन योजना के विरुद्ध अभियान छेड़ा गया, इसके विरोध में बहुत सी सार्वजनिक सभायें की गयीं तथा सरकार को इस कदम को वापिस लेने के लिए ज्ञापन दिये गये। कलकत्ता के टाऊन

हॉल में बड़ी सभा आयोजित की गयी जिनमें जिलों से आये हुए प्रतिनिधियों ने भाग लिया तथा अपनी क्षतिग्रस्त भावनाओं को व्यक्त किया। यह सब बहुत ही प्रभावशाली था जिससे विभाजन के विरुद्ध मध्यम वर्ग की स्थिति बहुत ही स्पष्ट हो गयी थी। लेकिन भारत और ब्रिटेन के उदासीन प्रशासन पर इसका कोई असर नहीं पड़ा। इन तरीकों की असफलता के कारण 1905 के मध्य से नये तरीकों की खोज शुरू हुई और इसके फलस्वरूप ब्रिटिश वस्तुओं का बहिष्कार एक प्रभावशाली हथियार के रूप में सामने आया। बहिष्कार का सुझाव सबसे पहले 3 जुलाई 1905 को कृष्ण कुमार मित्र ने दिया जिसे बाद में 7 अगस्त 1905 को टाउन हॉल की एक सभा में प्रमुख लोगों ने मान लिया। इस खोज के बाद रवीन्द्रनाथ टैगोर तथा रामेन्द्र सुन्दर त्रिवेदी ने विभाजन के दिन को **रक्षाबन्धन** (भाई चारे के रूप में एक दूसरे की कलाई पर धागा बाँधना) तथा अरान्धन (शोक के कारण घर में चूल्हा न जलाने की प्रथा) के रूप में मनाने का आह्वान् किया। इस कार्यवाही से आंदोलन को एक नया उत्साह मिला

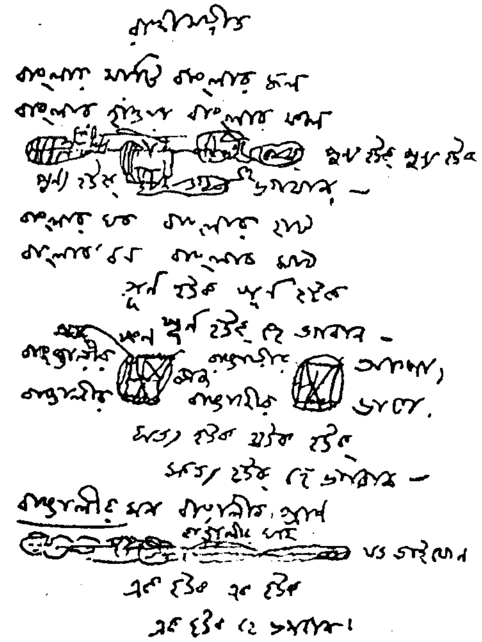

**11. राखी संगीत:**

ब्रिटिश वस्तुओं के बहिष्कार के बाद:

- स्वदेशी का समर्थन किया गया और लोगों से राष्ट्रीय कर्तव्य के रूप में भारत में बनी वस्तुओं को खरीदने का अनुरोध किया गया,
- **चरखा** (सूत कातने का चक्र) देश की जनता की आर्थिक आत्मनिर्भरता की इच्छा का प्रतीक बन गया, तथा
- हथकरघा की बनी वस्तुओं आदि को बेचने के लिए आयोजित स्वदेशी मेले एक नियमित विशेषता बन गये

स्वदेशी या भारतीय उद्यम के लिए एक नया उत्साह पैदा हो गया। बहुत से विशिष्ट भारतीय उद्योग जैसे कि कलकत्ता पौटरीज, बंगाल कैमिकल्ज, बंग लक्ष्मी कॉटन मिल्स, मोहिनी मिल्स तथा नैशनल टैनरी शुरू किये गये। आंदोलन द्वारा सृजित उत्साह के अंतर्गत विभिन्न साबुन, माचिस तथा तम्बाकू बनाने वाले उद्योग और ऑयल मिल्स, वित्तीय, गतिविधियाँ जैसे स्वदेशी बैंक इंश्योरेंस तथा स्टीम नेवीगेशन कंपनियाँ आदि भी शुरू की गई।

इस बीच ब्रिटिश वस्तुएँ बेचने वाली दुकानों के सामने धरनों के फलस्वरूप सरकार द्वारा निर्यंत्रित शैक्षिक संस्थानों का बहिष्कार भी शुरू हो गया। ब्रिटिश सरकार द्वारा धरना दे रहे विद्यार्थियों के संस्थानों के अनुदान, छात्रवृत्तियाँ तथा मान्यता वापिस लेने की धमकियों के कारण (ऐसा 22 अक्तूबर 1905 के कुख्यात सर्कुलर द्वारा किया गया था जिसे कारलाइल बंगाल सरकार के मुख्य सचिव ने जारी किया था और जिसके कारण इसे 'कारलइल सर्कुलर' भी कहते हैं) तथा विद्यार्थियों को फाइन करने तथा उन्हें निष्कासित करने के फैसलों से बहुत ही बड़ी संख्या में विद्यार्थियों ने 'दासता' के इन स्कूलों और कालेजों को छोड़ देने का फैसला किया। स्कूलों और कालेजों के बहिष्कार से स्वदेशी आंदोलन के नेताओं को बंगाल में समानान्तर शिक्षा व्यवस्था चलाने को

बाध्य होना पड़ा। जल्दी ही अपीलें जारी की गयीं, अनुदान इकट्ठे किये गये तथा विशिष्ट व्यक्ति राष्ट्रीय शिक्षा कार्यक्रम बनाने लगे। इन्हीं प्रयत्नों के फलस्वरूप बंगाल टैक्नीकल इंस्टीट्यूट की स्थापना हुई (जिसे 25 जुलाई 1906 को शुरू किया गया था और जो बाद में कॉलेज ऑफ इंजीनियरिंग एंड टैक्नोलौजी में परिवर्तित हो गया और जो आज के जादवपुर विश्वविद्यालय का आधार बना), बंगाल नैशनल कालेज तथा स्कूल (जिसे 15 अगस्त 1906 को स्थापित किया गया था और जिसके प्रिंसिपल बने थे अरविन्द घोष ) तथा जिलों में विभिन्न राष्ट्रीय प्राइमरी स्कूलों एवं सैकेंडरी स्कूलों की भी स्थापना हुई।

## 11.7 समितियाँ तथा राजनैतिक प्रवृत्तियाँ

राष्ट्रीय शिक्षा को बढ़ावा देने के लिए तथा बहिष्कार एवं स्वदेशी के संदेशों को प्रसारित करने के लिए बहुत-सी राष्ट्रीय स्वेच्छा संस्थायें या समितियाँ कलकत्ता और आस-पास के जिलों में बन गयीं। इनमें प्रमुख थीं डॉन सोसायटी (जिसका नाम उस समय की प्रसिद्ध पत्रिका 'डॉन' के नाम पर रखा गया था), एन्टी सर्कुलर सोसायटी (जो प्रारंभ में 'कारलायल सर्कुलर' के विरोध में बनायी गई थी), स्वदेशबांधव, व्रती, अनुशीलन, सुहरिद तथा साधना समितियाँ, इन समितियों का काम था स्वदेशी तथा बहिष्कार का प्रचार करना, दुर्भिक्ष तथा महामारी के दिनों में राहत कार्य करना, शारीरिक एवं नैतिक ट्रेनिंग देना, दस्तकारी एवं राष्ट्रीय स्कूल खोलना, मध्यस्था कमेटियाँ बनाना तथा गाँवों में समितियाँ खोलना। इन्होंने लोक-गायकों तथा कलाकारों (जिनमें मुकुन्द दास ,भूषण दास तथा मुफीज्जुदीन बयाती प्रमुख थे) को स्थानीय बोलियों में स्वदेशी विषयों पर आधारित कला प्रदर्शन करने के लिए प्रेरित किया। इन प्रयत्नों से महान साहित्यिक प्रतिभाओं जैसी रवीन्द्रनाथ_टैगोर, रजनीकांत सेन, द्विजेन्द्र लाल रॉय, गिरीन्द्र मोहिनी दासी, सैयद आबू मोहम्मद, गिरीश चंद्र घोष, खीरोदप्रसाद विद्याविनोद तथा अमृत लाल बोस आदि की राष्ट्रीय रचनाओं का गाँवों के स्तर पर प्रचार बढ़ा। इन समितियों के सिद्धांतों में धर्मनिरपेक्षता से धार्मिक पुनर्जागरण तक संतुलित राजनीति से सामाजिक सुधारवाद तक (रचनात्मक, आर्थिक, शैक्षिक तथा सामाजिक कार्यक्रमों द्वारा) सभी कुछ था और राजनैतिक उग्रवाद भी इन समितियों की सीमा में था।

वास्तव में बंगाल में स्वदेशी आंदोलन में बहुत-सी राजनैतिक विचारधाराएँ जन-मानस का समर्थन प्राप्त करने के लिए एक-दूसरे से होड़ कर रही थीं:

i) संतुलित राजनैतिक मत (जिसका प्रतिनिधित्व सुरेन्द्रनाथ बैनर्जी, कृष्णकुमार मित्र और नरेन्द्र कुमार सेन आदि कर रहे थे) अभी भी ब्रिटिश न्याय में आस्था रखे हुए था और आंदोलन को बहुत अधिक आगे खींचने के पक्ष में नहीं था। उदारवादी मौर्ली के ब्रिटेन में भारत सरकार के सचिव बनाये जाने पर ही उनकी आशायें आधारित थीं। लेकिन वर्तमान लड़ाकू मानसिकता के प्रति उनका अनुत्साह इतना अधिक साफ था कि वे जल्दी ही अपनी लोकप्रियता पूरी तरह से खो बैठे।

ii) सामाजिक सुधारवाद की दूसरी प्रवृत्ति जिसे रचनात्मक स्वदेशी के नाम से जाना गया का लक्ष्य राष्ट्रीय शक्ति को आत्म सहायता तथा आत्मनिर्भरता (जिसे रवीन्द्रनाथ टैगोर ने आत्मशक्ति का नाम दिया था) के द्वारा बढ़ाना था जिसके लिए स्थानीय उद्यम, राष्ट्रीय शैक्षिक प्रक्रियाएं आदि तथा गाँवों तथा शहरों के बीच की खाई को पाटने के लिए गांव सुधार समितियाँ स्थापित करने की आवश्यकता थी

वे सब जो संतुलित राष्ट्रीयवादियों के साथ सहमत नहीं थे वे शुरू-शुरू में रचनात्मक स्वदेशी के हिमायती थे। इसके प्रमुख प्रतिनिधि थे सतीश चंद्र मुखर्जी, अश्विनी कुमार दत्त, रवीन्द्रनाथ टैगोर, प्रफुल्ल चंद्र रॉय तथा नीलरतन सरकार।

iii) हालाँकि समाज सुधारवादियों का कार्यक्रम कई तरीकों से महत्वपूर्ण था, लेकिन उन उग्र दिनों में उसके आडम्बरहीन, सादा तथा उत्तेजनाहीन होने के कारण उसकी लोकप्रियता अधिक नहीं थी। वह न तो विपिनचंद्र पाल, अरविन्द घोष तथा ब्रह्मबांधव उपाध्याय जैसे राजनैतिक नेताओं के उल्लास का मुकाबला कर सकता था

और न ही बंगाल के अधीर, साहसिक युवा-वर्ग को संतुष्ट कर सकता था। ऐसे हालात में राजनैतिक उग्रवाद - तीसरी प्रवृत्ति का उभर कर आना स्वाभाविक ही था। इसको अभिव्यक्ति मिली न्यू इंडिया (जिसके संपादक थे विपिनचन्द्र पाल), बन्दे मातरम् (जिसके संपादक थे अरविन्द घोष), संध्या (जिसके संपादक थे ब्रह्मबांधव उपाध्याय) तथा युगान्तर (जिसके संपादक थे भूपेन्द्रनाथ दत्त) आदि पत्रिकाओं में। राजनैतिक उग्रवादी भारत के लिए स्वशासन (सैल्फ गवर्नमेंट) की माँग कर रहे थे जो किसी भी प्रकार से ब्रिटिश संरक्षण या ब्रिटिश प्रभुता के आधीन न हो (जैसा कि नरमपंथियों का विचार था) तथा जो ब्रिटिश संबधों तथा प्रभावों से अपना नाता तोड़ ले।

राजनैतिक उग्रवादी नेताओं ने स्वराज की स्थापना का नारा दिया और उसे प्राप्त करने के रास्तों की खोज का प्रयत्न किया। वे जल्दी ही इस निष्कर्ष पर पहुँचे कि बहिष्कार की नीति को ब्रिटिश वस्तुओं तथा शैक्षिक संस्थानों के दायरे से बढ़ाकर ब्रिटिश प्रशासन, ब्रिटिश अदालतों तथा ब्रिटिश सेवाओं तक ले जाना चाहिए ताकि भारत में ब्रिटिश प्रशासन की जड़ों को हिलाया जा सके। विपिनचंद्र पाल ने इसे 'सरकार को किसी भी प्रकार की स्वैच्छिक अवैतनिक सेवाएँ प्रदान करने का विरोध या 'निष्क्रिय विरोध' या 'अवज्ञा' की संज्ञा दी। अप्रैल 1907 में बंदे मातरम् में छापे गए कई लेखों में अरविन्द घोष ने इस योजना को और आगे बढ़ाया। उनका सुझाव था कि ब्रिटिश वस्तुओं, ब्रिटिश शिक्षा व्यवस्था, ब्रिटिश न्यायतन्त्र तथा प्रशासन का 'सुयोजित ढंग से बहिष्कार ' किया जाना चाहिए तथा अन्यायपूर्ण नियमों का नागरिक उल्लंघन द्वारा सामाजिक बहिष्कार किया जाना चाहिए।

ब्रिटिश दमन के भारतीय सहनशीलता की सीमा के आगे बढ़ जाने की स्थिति में अरविन्द घोष ब्रिटिश विरोधी सशस्त्र संघर्ष करने के लिए तैयार थे। ब्रह्मबांधव उपाध्याय ने कहा कि– सैनिक की तो बात ही क्या अगर चौकीदार, कांस्टेबल, डिप्टी, मुंसिफ या क्लर्क अपने-अपने कार्यों से इस्तीफा दे दें तो हिंदुस्तान में ब्रिटिश राज कैसे चल पायेगा।

जिस उत्साह से राजनैतिक उग्रवाद के प्रतिपादकों ने स्वराज के मामले को सामने रखा और उसकी प्राप्ति के लिए निष्क्रिय विरोध का सुझाव दिया, उसके सामने सभी अन्य बातें गौण हो गईं, यहाँ तक कि बंगाल का विभाजन, जिससे इस आंदोलन की शुरूआत हुई थी, भी उतना महत्वपूर्ण नहीं रहा। स्वराज के लिए संघर्ष के महत्व के मुकाबले बंगाल की एकता का मामला उतना महत्वपूर्ण नहीं रहा, तथा अरविन्द घोष के शब्दों में (28 अप्रैल 1907, बंदे मातरम्) यह सबसे तुच्छ तथा सबसे संकीर्ण राजनैतिक उद्देश्य, लगने लगा। इस प्रकार एक प्रादेशिक मामले के राष्ट्रीयकरण तथा उसके साथ जुड़े राष्ट्रीय उद्देश्य के लक्ष्य की स्पष्टता ने राष्ट्रीय नेताओं को दो वर्ष के समय में ही असाधारण प्रगति का अवसर प्रदान कर दिया।

**बोध प्रश्न 2**

1 निम्नलिखित पत्रिकाओं को उनके संपादकों के नामों से जोड़िये।

| | |
|---|---|
| i) बंदे मातरम् | क) विपिनचंद्र पाल |
| ii) संध्या | ख) अरविन्द घोष |
| iii) न्यू इंडिया | ग) ब्रह्मबांधव उपाध्याय |

2 लगभग दस लाइनों में स्वदेशी आंदोलन के शुरू होने के कारणों की व्याख्या कीजिए।

.....................................................................................................

.....................................................................................................

.....................................................................................................

.....................................................................................................

.....................................................................................................

.....................................................................................................

..........................................................................................
..........................................................................................
..........................................................................................
..........................................................................................

3 स्वदेशी आंदोलन के दौरान उभरी कार्यविधियों के बारे में लगभग 100 शब्दों में लिखिए।

..........................................................................................
..........................................................................................
..........................................................................................
..........................................................................................
..........................................................................................
..........................................................................................
..........................................................................................
..........................................................................................
..........................................................................................
..........................................................................................

4 स्वदेशी आंदोलन के दौरान उत्पन्न राजनैतिक प्रवृत्तियां क्या-क्या थीं? उत्तर पाँच लाइनों में लिखिए।

..........................................................................................
..........................................................................................
..........................................................................................
..........................................................................................
..........................................................................................

## 11.8 जन-आंदोलन की संकल्पना : मजदूर और किसान

स्वराज का राष्ट्रीय उद्देश्य तथा सभी क्षेत्रों में बहिष्कार और निष्क्रिय विरोध द्वारा उसकी प्राप्ति जन-मानस से न केवल व्यापक चेतना की अपेक्षा करते थे बल्कि ब्रिटिश-विरोधी जन- आंदोलनों में उनकी एक निष्ठ सहभागिता भी आवश्यक मानते थे। स्वदेशी आंदोलन की प्रगति के साथ-साथ समूचा शिक्षित मध्यम वर्ग तो जागृत हो गया था, साथ ही जमींदार वर्ग के कुछ लोग, व्यावसायिक तथा व्यापारी-वर्ग के प्रतिनिधि भी राष्ट्रीय उद्देश्य के प्रति सहानुभूति रखने लगे थे। लेकिन गरीब वर्ग का अपार जनसमुदाय, विशेषकर मजदूर-वर्ग तथा किसान, अभी इस आंदोलन में शामिल नहीं हुए थे।

### 11.8.1 मजदूर

लेकिन कुछ स्वदेशी कार्यकर्ताओं ने (विशेषकर अश्विनी कुमार बनर्जी, प्रभात कुसुम रायचौधरी, अलथ्नैसियस अपूर्व कुमार घोष तथा प्रेमतोष बोस) बंगाल के मजदूरों को संगठित करने का प्रयत्न किया और उनकी आर्थिक कठिनाइयों को राजनैतिक दिशा देने की कोशिश की।

इस दिशा में पहल की हावड़ा में बर्न कंपनी के 247 क्लर्कों ने जिन्होंने सितंबर 1905 में एक अपमानजनक कार्य-नियम के विरोध में हड़ताल कर दी। इसके बाद कलकत्ता ट्रामवेज, जूट मिलों तथा रेल वर्कशापों में हड़तालें हुई। कलकत्ता में कुलियों, वेटरों तथा

सफाई कर्मचारियों ने भी अपनी आर्थिक माँगों के लिए हड़ताल का सहारा लिया। इसी प्रकार का राजनैतिकरण छापाखानों, जूट मिलों और रेलवे के मजदूरों में भी देखा गया। सरकारी छापाखाने में एक उग्र हड़ताल के बाद पहली वास्तविक मजदूर यूनियन बनी जो थी छापाखानों के मजदूरों की यूनियन जिसकी स्थापना अक्टूबर 1905 में हुई।

इसी तरह के संघर्ष के फलस्वरूप जो इस्टर्न इंडियन रेलवे के मजदूरों ने शुरू किया था, जुलाई 1906 में रेलवेज यूनियन की स्थापना हुई। विपिनचन्द्र पाल, श्यामसुन्दर चक्रवर्ती तथा लियाकत हुसैन जैसे स्वदेशी नेताओं ने आसनसोल, रानीगंज और जमालपुर के उत्तेजित मजदूरों को संगठित करने का प्रयत्न किया जिसका नतीजा यह हुआ कि 27 अगस्त 1906 को जमालपुर वर्कशाप में पुलिस ने गोली चलाई। जूट मजदूरों ने, भी, जो 1905 से इसी प्रकार की माँगों को लेकर संघर्ष कर रहे थे, अश्विनी कुमार बनर्जी के नेतृत्व में बज-बज में अगस्त 1906 में इंडियन मिल हैंड्सज यूनियन बना ली। लेकिन बाद में सरकार के प्रतिकूल रवैये के कारण इन सभी यूनियनों को धक्का लगा। चूँकि ये राष्ट्रवादी मजदूरों के प्रति सैद्धांतिक रूप से वचनबद्ध नहीं थे इसलिए 1907 के बाद मजदूरों को संगठित करने का उनका उत्साह हल्का पड़ गया।

### 11.8.2 किसान

स्वदेशी आंदोलन के नेताओं ने मजदूरों को संगठित करने का प्रयत्न तो किया लेकिन किसानों के बारे में उन्होंने बिल्कुल भी कोशिश नहीं की। हालाँकि समितियों की ग्रामीण इलाकों में बहुत-सी शाखायें थीं (जैसे स्वदेशबांधव समिति जिसकी बरिसाल जिले में 175 शाखायें थीं) जो जन-समुदाय को निष्क्रिय प्रतिरोध के प्रति जागरूक बनाती थीं लेकिन वे किसानों को संगठित करने में असफल रहीं। अधिकतर भूखे-नंगे किसानों के लिए उनके राष्ट्रीय नारे अस्पष्ट, दूरस्थ और यहाँ तक कि थोथा शब्दाडम्बर ही रहे। इसका असली कारण इन नेताओं में कृषि की दशा सुधारने या किसान-समुदाय की हालत को बेहतर बनाने वाले कार्यक्रमों के प्रति सच्ची रुचि का अभाव था। बंगाल के मध्यम वर्ग के लोग चाहे वे व्यवसायी हों या क्लर्क या व्यापारी, उनकी आर्थिक स्मृद्धि उनकी पैतृक जमीन से आमदनी पर निर्भर थी। उनकी आय के इस स्त्रोत के कारण किसानों के संदर्भ में वे शोषक वर्ग में आते थे और उनके अपने हितों और किसानों की आकांक्षाओं के बीच एक अन्तर्विरोध पैदा हो गया था। पहले ही बंगाली मध्यम वर्ग सरकार द्वारा 1885 के टेनैन्सी एक्ट के अंतर्गत खेतिहरों को दिये गये तुच्छ पट्टेदारी के हक से अप्रसन्न था। उनके प्रतिनिधियों को "गुस्ताख रैयतों" से चिढ़ थी और "भद्रलोक" (सभ्य समाज) होने के नाते वे इन " छोटे लोग(निम्न वर्ग) को तिरस्कारपूर्ण नजर से देखते थे।

स्वदेशी आंदोलन ने किसानों के ऋण के भार, समय-समय पर जमीन से बेदखल किये जाने और बेगार (बिना मजदूरी के जबर्दस्ती काम लेना) लिये जाने के विरुद्ध बिल्कुल भी आवाज नहीं उठाई। किसी भी **समिति** ने काश्तकारों को अत्याधिक कर और किराये के खिलाफ आंदोलन शुरू करने का आह्वान नहीं दिया। यहाँ तक कि अरविन्द घोष जैसे अतिवादी नेता ने भी ऐसा आंदोलन शुरू करने से इंकार कर दिया कि कहीं राष्ट्रवादी जमींदारों के हितों को हानि न पहुँचे (अप्रैल 1907 में बंदे मातरम् में अरविन्द घोष के लेख) इससे भी दुर्भाग्यपूर्ण बात यह थी कि स्वदेशी आंदोलन में कुछ देर बाद हिंदू पुनर्जागरण के प्रतीकों तथा शब्दावली पर जरूरत से ज्यादा जोर दिया जाने लगा जिसके फलस्वरूप मुस्लिम किसानों (जो पूर्वी बंगाल के किसानों में बहुसंख्यक थे) में इस आंदोलन के प्रति अधिक उत्साह नहीं रहा।

## 11.9 सांप्रदायिक समस्या

पारंपरिक समाजों में अक्सर राष्ट्रीय भावना को उभारने का एक लोकप्रिय तरीका धर्म का इस्तेमाल करना होता हैं और सामान्यतया इसके नतीजे नुकसानदायक (परिणाम

दुर्भाग्यपूर्ण) होते हैं। स्वदेशी आंदोलन का अनुभव भी इससे भिन्न नहीं था। बंगाल में नेताओं ने हिंदू धर्म और इस्लाम से जो राजनैतिक फायदा उठाना चाहा उससे दोनों समुदायों के बीच की खाई और गहरी हो गई। बंगाल के लोगों और इलाके का बँटवारा तथा हिंदू और मुसलमानों को एक-दूसरे से लड़वाना, यह ब्रिटिश साम्राज्यवाद के जाने-पहचाने हथकंडे थे। इनकी शुरूआत हुई थी 1905 में लॉर्ड कर्जन, सर ऐन्ड्रूज फ्रेजर और सर हर्बट रिसले से और जैसा कि पहले बताया जा चुका है, इसी नीति को बनाये रखा लॉर्ड मिन्टो (जो कर्जन के स्थान पर वाइसराय बन कर आया था), सर बमफिलडे फुलर (जो पूर्वी बंगाल और आसाम के पहले लेफ्टीनेंट गवर्नर थे) और सर लैंसलौट हेयर (जो फुलर के स्थान पर आये थे) ने। जहाँ मिन्टो बंगाली राजनीतिज्ञों की ''शक्ति को कम किये जाने'' का कायल था, वहाँ फुलर ने वास्तव में ''जनसंख्या के दो मुख्य हिस्सों को (हिंदू और मुस्लिम) एक दूसरे के खिलाफ भड़काना'' शुरू कर दिया और हेयर ने सरकारी नौकरियों के मामले में हिंदुओं के मुकाबले में मुसलमानों को विशेष सहायता देने के प्रस्ताव पर विचार किया।

शिक्षित मुसलमानों को आकर्षित करने के साथ-साथ प्रशासन ने उनमें कुलीन तत्वों को मुस्लिम राजनैतिक शक्ति के विषय में विचार करने को प्रोत्साहित किया जिसके फलस्वरूप अक्तूबर 1906 में ढाका के नवाब सलीमुल्लाह के नेतृत्व में मुस्लिम लीग की स्थापना हुई। इसके अलावा, पूर्वी बंगाल के ग्रामीण इलाकों में **मुल्लाओं** और मौलवियों का बहुत असर था और वे अक्सर जमींदारों (जिनमें अधिकतर हिंदू थे) और काश्तकारों (जिनमें अधिकतर मुसलमान थे) के बीच अंतर्विरोध को धार्मिक विरोध के रूप में प्रस्तुत करते थे।

इस सबके बावजूद स्वदेशी आंदोलन के दौरान सांप्रदायिक सद्भाव के बारे में जोरदार तर्क दिये गये (जैसा कि संजीवनी के लेखों में हुआ)। हिंदू मुस्लिम भाईचारे के अत्यन्त सुन्दर दृश्य देखने को मिले (जैसे 23 सितम्बर 1906 को कलकत्ता में 10,000 विद्यार्थियों का संयुक्त प्रदर्शन)। कुछ विशिष्ट मुस्लिम नेताओं ने आंदोलन में भाग लिया (जैसे लियाकत हुसैन, अब्दुल हकीम गजनवी, अब्दुल रसूल, मनीरुज्जमान, इस्माइल हुसैन, सिराजी, अबुल हुसैन और दीन मोहम्मद)। लेकिन इन रचनात्मक कार्यों का अधिकतर प्रभाव शिक्षित, मध्यम वर्ग के राष्ट्रीय नेताओं को अपने अनुयायियों द्वारा उत्साहित करने के लिए हिंदू रूढ़िवादी **प्रक्रियाओं, बिंबों** तथा **मिथकों** के प्रयोग करने की कोशिशों से नष्ट हो गया।

बंदे मातरम्, संध्या तथा नवशक्ति जैसी राष्ट्रवादी पत्रिकाओं के हिंदूवादी **उपदेशों**, हिंदू इतिहास का गौरवगान, प्राचीन हिंदू राष्ट्र की स्मृति, स्वदेशी (ब्रिटिश वस्तुओं को न इस्तेमाल करना) की शपथ हिंदू देवता के समक्ष लेना, देवी काली के सामने आत्म-बलिदान का व्रत लेना तथा गीता से उद्धरणों आदि ने मुसलमानों को हिंदूओं के नजदीक लाने में रुकावटें पैदा की। यही नहीं इनके कारण दोनों समुदायों का एक-दूसरे के प्रति रवैया और भी कठोर हो गया। बीराष्टमी (विगत के आठ हिंदू वीरों की स्मृति में) का मनाया जाना, राष्ट्रीय शिक्षा कार्यक्रमों में पारंपरिक हिंदू मान्यताओं पर जोर देना, सार्वजनिक भाषणों में पौराणिक प्रतिमानों का प्रयोग, बंगालियों की ''अन्तरात्मा के प्रत्यक्ष प्रतिनिधि के रूप में देवी दुर्गा पर जोर देना आदि ने राष्ट्रीय आंदोलन को धार्मिक रूप दे दिया। विपिनचंद्र पाल ने ऐसे विकारों को इस आधार पर उचित बताया कि धर्म और राष्ट्रीय जीवन को एक-दूसरे से अलग नहीं किया जा सकता और ''इन्हें अलग करने का अर्थ होगा वैयक्तिक जीवन से धार्मिक और नैतिक मूल्यों को अलग कर देना'' (सुमित सरकार, द स्वदेशी मूवमेंट इन बैंगाल, 1903-1908, देहली, 1977-76) ब्रह्मबांधव उपाध्याय तो एक कदम और आगे बढ़ गये और उन्होंने अपने श्रोताओं से कहा: ''तुम कुछ भी सुनो, कुछ भी सीखो, कुछ भी करो – हिंदू बने रहो, बंगाली बने रहो...।'' **बंदे मातरम्** के संपादक अरविंद घोष तो इनसे भी कहीं आगे निकल गये जब उन्होंने हिंदू समाज के वर्ग विभाजन में जनतंत्र, यहाँ तक कि समाजवाद के बीज तक ढूँढ निकाले। (''कॉस्ट एंड डिमौक्रैसी, बंदे मातरम्, 21 सितम्बर 1907) आंदोलन की चरमसीमा के समय प्रमुख नेताओं द्वारा हिंदू जागरणवाद के प्रचार ने नवाब सलीमुल्लाह के आदमियों और मुल्लाओं को कर्जन की आशा के अनुसार मुसलमानों में सांप्रदायिक द्वेष फैलाने का अवसर प्रदान कर दिया।

इन परिस्थितियों में सांप्रदायिक तत्वों के लिए सांप्रदायिक दंगों का सहारा लेना आसान था। बंगाल के पूर्वी हिस्से में कई साम्प्रदायिक दंगे हुए, पहले ईश्वरगंज में, मई 1906 में मैमनसिंह जिले में, उसके बाद मार्च 1907 में कोमिल्ला, जमालपुर, दीवानगंज और बख्शीगंज में । अप्रैल-मई 1907 में दुबारा मैमनसिंह में दंगे हुए। दंगा करने वालों को साम्प्रदायिकतावादियों द्वारा फैलाई गई इन अफवाहों से शह मिली कि ब्रिटिश सरकार ने ढाका में प्रशासन की बागडोर नवाब सलीमुल्लाह के हाथ में दे देने का फैसला कर लिया है। दंगों से दबा हुआ कृषक जमींदार संघर्ष स्वरूप उभर कर सामने आ गया क्योंकि दंगों का निशाना अक्सर हिंदू **जमींदार** और महाजन (पैसा ब्याज पर उधार देने वाले) थे। हालाँकि राष्ट्रवादियों को इन परिस्थितियों से खतरा महसूस हो रहा था फिर भी उन्होंने सारी बात को ठीक से समझने का कोई प्रयत्न नहीं किया। उन्होंने दंगे करने वालों को अंग्रेजों के भाडे के टट्टू करार दे दिया और इस बीमारी की जड़ में जाने की कोई कोशिश नहीं की। नतीजा यह हुआ कि धर्म की सरगर्मियाँ कम होने के बजाए बढ़ती रही।

## 11.10 क्रांतिकारी आतंकवाद का उदय

लेकिन किसी भी आंदोलन की सफलता उसमें जनता के व्यापक रूप से भाग लेने पर निर्भर करती है। परंतु स्वदेशी आंदोलन में इसका अभाव रहा। कृषकों तथा मजदूरों से उसे आंशिक सफलता मिलने के कारण, सांप्रदायिक उलझन को न सुलझा पाने के कारण 1907 के मध्य तक भी स्वदेशी आंदोलन अपनी चरम सीमा तक नहीं पहुँच पाया और न ही यह पूर्णतया एक जन-आंदोलन में ही बदल सका। इसके अलावा एक प्रबल साम्राज्यवाद-विरोधी आंदोलन के रूप में इसे अपने शक्तिशाली विरोधी के दमनकारी कदम का शिकार होना पड़ा। प्रशासन ने सार्वजनिक स्थानों पर 'बंदे मातरम्' नारे लगाने पर रोक लगा दी, आंदोलन में किसी प्रकार से भी भाग लेने वाले सरकारी नौकरी के लिए अयोग्य करार दे दिए जाते थे तथा विद्यार्थियों को भाग लेने पर दण्ड देना पड़ता था या निकाल दिया जाता था। बरीसाल में गोरखों के दलों को आंदोलनकारियों को सबक सिखाने के लिए भेजा गया तथा पुलिस और अधिकारियों को उन पर शारीरिक अत्याचार तथा अपमान करने के लिए खुली छूट दे दी गई। चरम सीमा तो अप्रैल 1906 में पहुँची जब बरीसाल में प्रांतीय सभा में भाग ले रहे प्रतिनिधियों पर पुलिस ने लाठी चार्ज किया। इसके बाद धरना देने वालों को सबक सिखाने के लिए बेंत मारे जाने लगे और उनके खिलाफ मुकदमे दर्ज किये जाने लगे, सार्वजनिक सभाओं और प्रदर्शनों पर रोक लगाई जाने लगी, विपिनचंद्र पाल और लियाकत हुसैन समेत बहुत से लोगों को गिरफ्तार कर लिया गया और उन्हें सजायें दी गई। ताकत का मुकाबला ताकत से करने का प्रश्न – आतंक के विरुद्ध आतंक का करने का प्रश्न उभर कर सामने आ गया।

हिंसात्मक तरीका बंगाल के माध्यम वर्गीय युवाओं के रुमानी दु:साहस को भी खूब पसन्द आया जो जन-आंदोलन के सफल न होने पर वैयक्तिक शौर्य के कार्यों में सांत्वना ढूंढते रहे और जब खुली राजनीति सरकार को प्रभावित नहीं कर सकी तो उन्होंने अपनी उम्मीदें गुप्त सभाओं पर टिका दी। हिंसा का रास्ता उनको भी पसन्द आया जिन्हें बहुत जल्दी थी और जिनकी सहनशक्ति समाप्त हो चुकी थी। **युगान्तर** ने अगस्त 1907 में लिखा 'यदि हम बेकार बैठे रहें और विरोध में खड़े होने से इंकार कर दें जब तक कि सारी जनता में दु:साहस न भर जाये तो हम अनंत तक हाथ पर हाथ धरे बैठे रहेंगे.....।' उन्नत विशिष्ट वर्ग के सामने दमनकारियों के विरुद्ध हथियार उठाने का ही विकल्प रह गया था, जिससे वह घृणित ब्रिटिश अधिकारियों और उनके गुर्गों के दिलों में आतंक भर सकें और जन-साधारण के सामने मौत से जूझने वाला आदर्श स्थापित कर सकें। जल्दी ही कुछ समितियाँ विशिष्ट सीमित समितियों में बदल गयीं, जो चुनींदा हत्याओं के बारे में षडयंत्र रचने लगी तथा हथियार खरीदने के लिए धन जुटाने के लिए राजनैतिक डकैतियाँ डालने लगीं। इन क्रांतिकारी गतिविधियों की अगुवाई कलकत्ता के युगान्तर ग्रुप और ढाका की अनुशीलन समिति ने की।

प्रफुल्ल चकी मारा गया और कुख्यात ब्रिटिश मैजिस्ट्रेट किंगफोर्ड की हत्या पर हमले के आरोप में अठारह वर्षीय खुदीराम बोस को फाँसी दे दी गई हालाँकि किंगफोर्ड बच गया था। अप्रैल 1908 में कलकत्ता के माणिकतला क्षेत्र में बम बनाने की एक गुप्त फैक्टरी

पकड़ी गई तथा अरविंद घोष सहित बहुत से क्रांतिकारियों को गिरफ्तार कर लिया गया। लेकिन क्रांतिकारी आतंकवाद इस सदमें को सह गया। वह न केवल जारी रहा बल्कि देश-विदेश के अन्य भागों में भी फैल गया। यह हंगामाई तथा स्वदेशी आंदोलन की विरासत था।

**बोध प्रश्न 3**

1 किसानों ने स्वदेशी आंदोलन में भारी संख्या में भाग क्यों नहीं लिया। उत्तर 10 लाइनों में दीजिए।

................................................................................
................................................................................
................................................................................
................................................................................
................................................................................
................................................................................
................................................................................
................................................................................
................................................................................
................................................................................

2 आपके विचार में 1906- 07 में सांप्रदायिक परिस्थिति खराब क्यों हुई? उत्तर 10 लाइनों में दीजिए।

................................................................................
................................................................................
................................................................................
................................................................................
................................................................................
................................................................................
................................................................................
................................................................................
................................................................................
................................................................................

3 1907- 08 में "क्रांतिकारी आतंकवाद" का उदय कैसे हुआ? उत्तर 10 लाइनों में दीजिए।

................................................................................
................................................................................
................................................................................
................................................................................
................................................................................
................................................................................
................................................................................

...................................................................................

...................................................................................

...................................................................................

## 11.11 सारांश

क्रांतिकारी आतंकवाद के विकास ने भारत में ब्रिटिश सरकार को प्रातंकित तो किया लेकिन वह स्वदेशी आंदोलन की तरह उनके प्रभुत्व को चुनौती नहीं दे पाया न ही वह उन्हें किसी संकट में डाल पाया जो कि एक बढ़ते हुए जन संग्राम द्वारा ही संभव था। स्वदेशी आंदोलन का अन्ततः गुप्त संगठनों के रूप में बदल जाना इस बात का परिचायक है कि इस आंदोलन की कई कमियां और सीमायें थीं । लेकिन इन कमजोरियों के बावजूद विचारधारा के स्तर पर और राजनैतिक आंदोलन की प्रणाली और व्यवस्था के रूप में इस आंदोलन की सफलतायें न केवल आश्चर्यजनक थीं बल्कि नवीन और कई मायनों में अपने समय से कहीं आगे थीं।

स्वदेशी आंदोलन ने पहले के राष्ट्रवादियों के तरीकों– आवेदन तथा प्रार्थना करने को समाप्त किया तथा नरम राजनैतिक कार्यक्रम को लगभग अस्वीकार कर दिया। इसने हिन्दुस्तानी लोगों के सामने स्वराज या स्वतंत्रता का उद्देश्य रखा और उन्हें हिन्दुस्तान को ब्रिटिश साम्राज्यवादी शिकंजे से छुड़ाने के लिए प्रेरित किया। स्वराज की प्राप्ति के लिए इसने राष्ट्र के लिए जन विरोध का रास्ता चुना और **संविधानवाद को पीछे धकेल दिया।** इस प्रकार के विरोध की सफलता जन-समुदाय के भाग लेने पर निर्भर करती है इसीलिए स्वदेशी आंदोलन ने अपने लोकप्रिय आधार को विकसित करने का प्रयत्न किया और पूरी तरह जन-आंदोलन बन सकने में सफल न होने के बावजूद इसने आने वाली पीढ़ियों के सामने जन-आंदोलन का आदर्श रखा। इस सबके और अपने "रचनात्मक स्वदेशी" स्वरूप के कारण इस आंदोलन ने प्रथम विश्व महायुद्ध के बाद गांधी जी द्वारा शुरू किये गये जन आंदोलनों के लिए रास्ता बनाया। अहिंसा के सिद्धांत के सिवा गांधी जी का 1920 के बाद स्वराज को "असहयोग", "नागरिक अवज्ञा" तथा "रचनात्मक कार्यक्रमों" द्वारा प्राप्त करने का आंदोलन बंगाल के पंद्रह वर्ष पहले के स्वदेशी आंदोलन के बहिष्कार और निष्क्रिय विरोध से बहुत मिलता जुलता था। स्वदेशी आंदोलन ने कर्जन जैसे कट्टर साम्राज्यवादियों का कड़ा विरोध किया और उसके 1905 में चले जाने के बाद लॉर्ड मिन्टो की सरकार का भी विरोध किया। अगस्त 1906 में पूर्वी बंगाल और आसाम के लेफ्टीनेंट गवर्नर फुलर का इस्तीफा भी इसी आंदोलन का परिणाम था और अन्ततः 1911 में विभाजन को रद्द करके बंगाल के पुनर्एकीकरण में भी इसी आंदोलन का हाथ था। लेकिन समस्त भारत के संदर्भ में यह उस आंदोलन की मुख्य सफलता नहीं थी। इसकी मुख्य सफलता थी भारतीय राष्ट्रीयता को एक नयी कल्पनाशील दिशा देना तथा उसको कड़े साम्राज्यवाद-विरोधी आंदोलन के ऊँचे स्तर पर पहुँचा देना।

जैसा कि सभी राजनैतिक और सामाजिक उथल-पुथल की घटनाओं में होता है स्वदेशी आंदोलन ने भी बंगाल की सांस्कृतिक और बौद्धिक गतिविधियों पर अपनी गहरी छाप छोड़ी जिसका असर देश के विभिन्न भागों पर भी पड़ा। इसके कारण न केवल देश भक्ति से भरी रचनाओं, नाटकों और रंगमंच का सृजन हुआ बल्कि इसने रवीन्द्रनाथ टैगोर के नेतृत्व में बंगाल चित्रकला पद्धति को भी जन्म दिया, जगदीश चंद्र बोस और प्रफुल्ल चंद्र राय की देखरेख में वैज्ञानिक जिज्ञासा को जगाया, दिनेश चंद्र सेन के प्रयत्नों के द्वारा लोक-परंपराओं में रुचि पैदा की और राखालदास बैनर्जी, हरप्रसाद शास्त्री और अक्ष्य कुमार मित्र की सहायता से ऐतिहासिक अनुसंधान को बढ़ाया।

## 11.12 शब्दावली

**सर्वसत्तावाद**: एक ऐसी अवधारणा जिसमें लोगों की इच्छाओं को ध्यान में रखे बिना सत्ता को उन पर लादा जाता है।
**सिद्धांतवादी**: वे लोग जो किसी विशेष विचारधारा/सिद्धांत के प्रचार में रहते हैं।
**राजनैतिक उग्रवाद**: एक ऐसी अवधारणा जिसमें राजनैतिक समस्याओं का हल उग्रवादी तरीकों द्वारा ढूंढा जाता है।
**राजनीतिकरण**: ऐसी प्रक्रिया जिसके द्वारा राजनीति लोगों के जीवन के बारे में सोचने के ढंग का अंग बन जाती है।
**नस्लवादी**: दूसरे के मुकाबले अपनी नस्ल को समझने की भावना समझने को।
**धार्मिक पुनरूत्थानवाद**: एक ऐसी अवधारणा जिसमें धार्मिक विरास का सहारा वर्तमान के उद्देश्यों या विचारों को उचित ठहराने के लिए लिया जाता है।

## 11.13 बोध प्रश्नों के उत्तर

**बोध प्रश्न 1**

1 i) ✓ ii) × iii) × iv) ×
2 देखिए भाग 11.3

**बोध प्रश्न 2**

1 i) ख ii) ग iii) क
2 देखिए भाग 11.5
3 देखिए भाग 11.6
4 देखिए भाग 11.7

**बोध प्रश्न 3**

1 देखिए भाग 11.8
2 देखिए भाग 11.9
3 देखिए भाग 11.10

## खंड 1 और 2 के लिए कुछ उपयोगी पुस्तकें

ए.आर. देसाई, *भारतीय राष्ट्रवाद की सामाजिक पृष्ठभूमि*
रजनी पामदत्त, *आज का भारत*
तारा चन्द, *भारतीय स्वतन्त्रता–संग्राम का इतिहास*, खंड 2 और 3
बिपन चन्द्र, *भारत में आर्थिक राष्ट्रवाद का उदय*
अयोध्या सिंह; *भारत का मुक्ति-संग्राम*
कार्ल मार्क्स, फ्रे. एंगेल्स, *भारत का प्रथम स्वातंत्र्य–संग्राम*
आर.एल. शुक्ला, (स.), *आधुनिक भारत*

# इकाई 12 मार्क्सवादी और समाजवादी विचारधारा

## इकाई की रूपरेखा

12.0 उद्देश्य
12.1 प्रस्तावना
12.2 समाजवाद की परिभाषा
12.3 समाजवादी विचारधारा की उत्पत्ति
12.4 समाजवादी विचारधारा का पूर्व-इतिहास
12.4.1 संत साइमन
12.4.2 चार्ल्स फुरियर
12.4.3 राबर्ट ओवेन
12.5 मार्क्सवाद : आर्थिक व सामाजिक विश्लेषण
12.5.1 मार्क्सवाद : राजनैतिक सिद्धांत
12.5.2 मार्क्सवाद : क्रांति का सिद्धांत
12.6 सारांश
12.7 शब्दावली
12.8 बोध प्रश्नों के उत्तर

## 12.0 उद्देश्य

इस इकाई का उद्देश्य आपको समाजवादी धारणा के अर्थ और उन्नीसवीं-बीसवीं शताब्दी के यूरोप में इसकी उत्पत्ति तथा विकास से परिचित कराना है। इस इकाई को पढ़ने के बाद आप:

- समझ पायेंगे कि समाजवादी धारणा का क्या अर्थ है,
- वे कौन से घटक थे जिन्होंने यूरोप में समाजवादी विचारों के विकास में बढ़ावा दिया,
- समाजवादी विचारों व समाजवादी आंदोलन के विकास के मुख्य चरणों को ढूँढ पायेंगे,
- काल्पनिक तथा वैज्ञानिक समाजवाद में अंतर समझ पायेंगे,
- समाजवादी समाज के मूल सिद्धांतों को पहचान पायेंगे,
- सामाजिक व राजनैतिक सिद्धांत के क्षेत्र में कार्ल मार्क्स के योगदान के विषय में जान जायेंगे।

## 12.1 प्रस्तावना

आपने अनेकों बार समाजवादी व समाजवाद शब्द तथा पूँजीवादी व पूँजीवाद शब्द सुने होंगे। आपने यह भी सुना होगा कि संयुक्त राज्य अमरीका एक पूँजीवादी देश है और सोवियत संघ एक समाजवादी देश है।

शायद आपको यह स्पष्ट नहीं होगा कि वे कौन सी मुख्य विशेषताएँ हैं जो एक समाज को पूँजीवादी या समाजवादी बनाती हैं। यह कोई आश्चर्य की बात नहीं है क्योंकि कई बार इन ऐतिहासिक धारणाओं का प्रयोग बहुत असावधानी से व उनके वैज्ञानिक अर्थ के स्पष्ट संदर्भ के बिना होता है। इसीलिए सबसे पहले आपको यह जानना आवश्यक है कि इस शब्द का सही-सही क्या अर्थ है।

आज विश्व की लगभग एक तिहाई जनता समाजवादी समाज में रहती है। सैंकड़ों करोड़ों अपने देश में समाजवाद की स्थापना के लिए लड़ रहे हैं। यह किस लिए लड़ रहे हैं क्या

आप जानते हैं। वे क्यों अपने समाज को समाजवादी समाज में बदलने के लिए जानें गँवाने को तैयार हैं? क्यों इतिहास में अब तक सैंकड़ों करोड़ों लोग समाजवादी उद्देश्य के लिए जानें दे चुके हैं? यह आप तभी समझ पायेंगे जब आपको मालूम होगा कि समाजवाद का अर्थ क्या है और समाजवादी समाज किस तरह का समाज है।

मनुष्य ने सबसे पहले समाजवादी समाज के बारे में कब सोचा? कहाँ के लोगों ने सर्वप्रथम इसके बारे में सोचा? और उन्होंने इसके बारे में इतिहास के एक खास चरण में ही क्यों सोचा? मानव ने हमेशा ही एक बेहतर समाज बनाने की कल्पना की है, किंतु कब और क्यों वह समाजवाद के बारे में सोचने लगा? आप शायद उन लोगों के विचारों के बारे में जानना चाहेंगे जो पूरे विश्व में एक शोषण-मुक्त समाज बनाना चाहते थे, ऐसा समाज जो समान हो और जहाँ विश्व के संसाधनों का उपयोग समान रूप से हो। ऐसे लोगों के विचार समाजवादी विचार के रूप में जाने जाते हैं और वे जिस तरह के समाज को बनाना चाहते थे उसे समाजवादी समाज के रूप में जाना जाता है। उनके आंदोलनों जिनका उद्देश्य समाजवादी समाज को बनाना था, समाजवादी आंदोलन के रूप में जाने जाते हैं।

सबसे प्रमुख समाजवादी विचारक कार्ल मार्क्स थे, किंतु वे अपने समय के सभी समाजवादी विचारकों से आगे निकल गये उन्होंने साम्यवादी (कम्यूनिस्ट) समाज का खाका तैयार किया। उन्होंने इतिहास द्वारा समाज के वैज्ञानिक विश्लेषण को विश्व को बदलने के अपने विचारों का आधार बनाया। उन्होंने मानव-इतिहास की अंतिम अवस्था को एक ऐसी अवस्था के रूप में देखा जहाँ साम्यवादी समाज होगा। उन्होंने यह भी बताया कि ऐसा कैसे हो सकता है। इसीलिए उनके विचारों को अन्य समाजवादियों के विचारों से भिन्न रखने के लिए उनके अनुयायी अपने आपको कम्युनिस्ट (साम्यवादी) कहने लगे और उनके विचार मार्क्सवाद के नाम से पहचाने जाने लगे। हम इस पाठ में यह भी पढ़ेंगे कि समाजवादी विचारधारा में मार्क्सवाद का क्या योगदान था।

1917 की क्रांति के बाद सोवियत संघ ऐसा पहला देश था जिसमें समाजवाद, या वैसा समाज जिसके लिए कम्युनिस्ट संघर्ष कर रहे थे, की स्थापना हुई।

## 12.2 समाजवाद की परिभाषा

शुरुआत हम यह प्रश्न पूछ कर करते हैं कि समाजवाद क्या है?
समाजवाद वह सामाजिक व्यवस्था है जो समाजवादी सर्वहारा क्रांति के परिणामस्वरूप अस्तित्व में आती है। यह समाज का वह रूप है जो पूँजीवादी व्यवस्था को पलटने का परिणाम है। कोई भी समाज पूँजीवादी अवस्था से गुजरे बिना समाजवादी नहीं हो सकता। यह पूँजीवाद ही है जो समाजवादी आंदोलनों और इसकी विचारधारा के विकास के लिए और अंततः समाजवादी समाज की स्थापना के लिए परिस्थितियाँ उत्पन्न करता है। जब हम मार्क्स के विचारों की परिचर्चा करेंगे तब इसके बारे में और बातें करेंगे।

समाजवादी समाज उत्पादन के साधनों पर से निजी स्वामित्व को नष्ट करके इसके बदले में सार्वजनिक स्वामित्व की रचना करता है। इसका अर्थ है कि वे सभी संसाधन जिनसे धन-दौलत बनायी जा सकती है– भूमि, फैक्ट्रियाँ, खदान, बैंक– अब किसी एक व्यक्ति या व्यक्ति समूह की सम्पत्ति नहीं रहते। वे जन सामान्य की सम्पत्ति हो जाते हैं। इसका यह भी अर्थ है कि अब कोई सिर्फ इन साधनों का मालिक होने भर से, व अन्य व्यक्तियों से उस पर काम करा कर, धनी नहीं हो सकता। वे मजदूर ही, जो उस पर काम करते हैं, उसके असली मालिक हैं और वे उससे अपने ही श्रम द्वारा अर्जित धन-दौलत लेते हैं क्योंकि अब वे ही उन संसाधनों के मालिक हैं।

समाजवादी समाजों से पूर्व के सभी समाज, संसाधनों के मालिकों व उन संसाधनों से धन उत्पन्न करने के लिए काम करने वाले मजदूरों के बीच के वर्ग हित के अन्तर्विरोध पर आधारित वर्ग समाज है। समाजवादी समाज इस अन्तर्विरोध को समाप्त करता है क्योंकि

अब वे ही लोग उन संसाधनों के मालिक हैं जो उस पर काम करते हैं। इसीलिए समाजवादी समाज में एक वर्ग द्वारा दूसरे वर्ग का शोषण नहीं होता है और यह मानव समानता पर आधारित समाज है। यह समानता न सिर्फ राजनैनिक व कानूनी है जैसा कि पूँजीवादी समाजों में होता है बल्कि यह सामाजिक व आर्थिक भी है क्योंकि समाजवादी समाज में किसी सम्पत्ति, जो असमानता की जड़ है, का अंत हो जाता है। समाजवादी समाज इसीलिए सामाजिक न्याय द्वारा लक्षित समाज है।

यद्यपि इसका यह अर्थ नहीं है कि लोग निजी रूप से कुछ नहीं रख सकते। समाजवादी समाज में लोगों को निजी सामान रखने का अवसर भी मिलता है जैसे घर की वस्तुएँ, वाहन, मकान, अपने संचित धन हेतु बैंक एकाउंट इत्यादि।

वे सिर्फ उन वस्तुओं के उत्पादन के साधनों का मालिक नहीं बनते जिनका उपयोग वे अन्य व्यक्तियों को उनके मेहनत के फल से वंचित रखने के लिए कर सकते हैं। वास्तविकता में समाजवादी समाज में बढ़े हुए उत्पादन के फलस्वरूप जैसे-तैसे धन-दौलत बढ़ती है, सिर्फ कुछ लोग ही नहीं बल्कि सभी लोग ज्यादा से ज्यादा निजी सामान रख सकते हैं।

समाजवादी समाज में उत्पादन में वृद्धि योजनावद्ध उत्पादन से ही होती है। आपने पंचवर्षीय योजना के बारे में सुना होगा। यह समाजवादी समाज की केंद्रित योजना है जो समाज की सभी आवश्यकताओं को ध्यान में रखकर यह तय करती है कि सभी लोगों के हितों से संबंधित किस आवश्यकता को प्राथमिकता मिलनी चाहिए।

समाजवादी समाज मजदूर जनता के हित में मजदूर जनता के राज्य की भी स्थापना करता है। वह यह सुरक्षित करता है कि हर एक अपनी क्षमता के अनुसार काम करे और हर एक को उसके काम के अनुसार ही वेतन मिले। समाजवादी जनतंत्र सभी लोगों के लिए कुछ निश्चित सामाजिक अधिकारों की भी सुरक्षा करता है जैसे राज्य तथा सार्वजनिक मामलों के प्रबंध में हिस्सेदारी के अधिकार के अलावा रोजगार का अधिकार, आराम और अवकाश, स्वास्थ्य सुरक्षा, वृद्धावस्था में सुरक्षा, मकान, मुफ्त व समान शिक्षा।

एक समाजवादी समाज राजनीति और धर्म के पूर्ण अलगाव का आश्वासन देता है। इसका यह अर्थ नहीं कि लोग अपनी कोई निजी आस्था नहीं रख सकते। इसका सिर्फ यही अर्थ है कि वे धर्म को सार्वजनिक मुद्दा नहीं बना सकते या इसका उपयोग राजनीति में नहीं कर सकते या विद्यालयों में इसका प्रचार नहीं कर सकते इत्यादि। हम सभी अपने देश में होने वाले सांप्रदायिक दंगों से परिचित हैं तथा जानते हैं कि किस तरह सांप्रदायिक गुट सांप्रदायिक भावनाओं का शोषण करते हैं और इसीलिए धर्म को राजनीति से अलग करके उसे मात्र एक निजी आस्था के रूप में देखना तथा एक वैज्ञानिक मनोदशा का बनाना भी अत्यंत आवश्यक है।

एक समाजवादी समाज स्त्रियों को पूर्ण समानता भी प्रदान करता है। यह इस समानता के लिए छोटे बच्चों वाली स्त्रियों के लिए काम के कम घंटे, कार्य स्थल पर क्रेचों, ताकि दिन के समय वे अपने बच्चों को खिला-पिला सके, कार्यस्थलों पर कैंटीनों व सार्वजनिक रसोइयों, इत्यादि द्वारा भौतिक आधार भी तैयार करता है। विकसित पूँजीवादी देशों में भी ये सभी सुविधाएँ उपलब्ध हैं किंतु उनके लिए लोगों को व्यक्तिगत रूप से भारी कीमत चुकानी पड़ती है। वे मुनाफा कमाने के व्यापारिक उद्यम भर हैं और केवल धनी लोग ही इन सुविधाओं का उपयोग करने में समर्थ हो सकते हैं। यह बच्चों के लिए भत्ता देता है। बच्चों को पूरे समाज की जिम्मेदारी समझा जाता है यद्यपि परिवार ही उनकी देख-रेख व परवरिश करता है।

एक समाजवादी राज्य सभी राष्ट्रीय स्वतंत्रता आंदोलनों और शोषण के खिलाफ चल रहे मजदूरों के आंदोलनों का भी समर्थन करता है। यहाँ हम यह भी बताना चाहेंगे कि समाजवादी विचारधारा से क्या अर्थ है।

समाजवादी विचारधारा विचारों का वह हिस्सा है जो समाज का वैज्ञानिक विश्लेषण करता है और जो न केवल विश्व को समझना भर चाहता है बल्कि इसे बेहतर बनाने के लिए इसे बदलना भी चाहता है। यह मानव इतिहास के अनुभव को केवल राजाओं, शासकों और

विशेषाधिकार प्राप्त लोगों के हितों की दृष्टि से ही नहीं देखता बल्कि उत्पीड़ित जनता के हितों की दृष्टि से देखता है। यह मानव सभ्यता को बनाने और विभिन्न चरणों के दौरान समाज में हुए परिवर्तनों को लाने में मजदूर वर्ग के योगदान पर जोर देता है यह एक ऐसे समाज का खाका बनाने का उद्देश्य रखता है जो समान, मानवीय और न्यायसंगत हो और ऐसे समाज की रचना के लिए ही मजदूर जनता को संगठित करने का प्रयास करता है। इसी उद्देश्य से यह पूँजीवादी समाज की आलोचना करता है और दिखाता है कि वह किसी तरह एक असमान तथा अन्यायसंगत समाज है। एक समाजवादी विचारधारा इसी कारण पूँजीवादी व्यवस्था के अंत का भी आह्वान करती है और मजदूर जनता के संगठनों तथा आंदोलनों को बनाने में मदद करती है।

## 12.3 समाजवादी विचारधारा की उत्पत्ति

समाजवादी विचारधारा कैसे उभरी? ऐतिहासिक रूप से समाजवादी विचारधारा पूँजीवादी यथार्थ के प्रतिक्रिया स्वरूप उभरी। चूँकि पूँजीवाद सर्वप्रथम पश्चिमी यूरोप में विकसित हुआ, इसके विरोध के रूप में समाजवादी सिद्धांत भी सर्वप्रथम यूरोप में ही विकसित हुआ। 1917 की रूसी क्रांति समाजवादी आदर्शों और समाज के समाजवादी परिवर्तन पर आधारित प्रथमक्रांति थी।

यूरोप में समाजवादी आंदोलनों के उत्थान की चर्चा करने से पहले उस ऐतिहासिक संदर्भ, जिसमें कि वे उभरे, का ब्यौरा देना आवश्यक है। बहुसंख्यक जनता पर होने वाले परिणामों सहित पूँजीवाद ही वह संदर्भ है जिसने समाजवादी विचारों को जन्म दिया। पूँजीवाद समाज का वह रूप है जो पश्चिम यूरोप में उन्नीसवीं शताब्दी के दौरान अपनी विकसित अवस्था में फल-फूल रहा था। पूँजीवाद वह समाज है जहाँ उत्पादन के साधनों या धन प्राप्ति के स्रोतों जैसे भूमि, कारखाने, खदानें, कच्चा माल इत्यादि के मालिक कुछ गिने-चुने व्यक्ति होते हैं जो पूँजीपति के रूप में जाने जाते हैं।

किंतु माल के उत्पादन के लिए एक अन्य वस्तु की भी आवश्यकता है और वह है श्रम। क्योंकिं यदि कारखानों, खदानों या भूमि पर कच्चे माल के साथ काम करने के लिए कोई नहीं होगा तो माल का उत्पादन कैसे होगा? उत्पादन के लिए श्रम सबसे जरूरी आवश्यकताओं में से एक है। इसी कारण कारखाना मालिक ऐसे मजदूरों को रोजगार पर लगाते हैं जिनके पास अपने काम करने वाले हाथों के सिवाय आय-प्राप्ति का कोई अन्य साधन नहीं है।

अतः आप देख सकते हैं कि पूँजीवादी व्यवस्था में एक वर्ग उन लोगों का है जो उन साधनों के मालिक होते हैं जिनसे आय प्राप्त की जा सकती है और दूसरा वर्ग उन लोगों का है जो इन साधनों पर काम करते हैं। वे, आय साधनों के मालिक हैं, काम नहीं करते। किंतु, फिर भी दूसरे के श्रम का शोषण करते हैं। वे ही अमीर भी है। जो काम करते हैं गरीब हैं क्योंकि वे अपने द्वारा किये गये उत्पादन को बाजार में खरीद या बेच नहीं सकते।

किंतु अब आप मुझसे यह प्रश्न करेंगे कि इसमें गलत ही क्या है। आखिरकार पूँजीपति मजदूर को अपने लिए कराये गए काम का वेतन देता है तथा यदि एक को बाजार से लाभ मिलता है तो दूसरे को वेतन।

किंतु क्या आप जानते हैं कि मजदूरों को उनके द्वारा किये गये उत्पादन की पूरी रकम अदा नहीं की जाती। फैक्ट्री मालिक मजदूर को उसके द्वारा फैक्ट्री में किये गये काम के घंटों की संख्या के अनुसार अदायगी करता है। किंतु मजदूरों द्वारा फैक्ट्री में सामूहिक रूप से उत्पादित माल की कीमत ज्यादा है तथा वह बाजार में ऊँचे दामों में बेची जाती है और इस धन को फैक्ट्री मालिक अपने लिए रख लेता है। यह फैक्ट्री मालिक का लाभ है जिससे वह अमीर बनता है जबकि मजदूर जो कि वास्तविक उत्पादनकर्ता है गरीब रहता है।

असमानता का यह संबंध पूँजीवादी समाज के लिए अत्यंत महत्वपूर्ण है और यही वह संबंध है जो समाजवादी समाज को अन्यायपूर्ण बनाता है। एक वर्ग मालिक बनकर जीता है, दूसरा

वर्ग कमा कर जिंदा रहता है। एक बिना काम किये जीता है, दूसरा जब तक काम न करे जीवित नहीं रह सकता।

अब क्या आप देख सकते हैं कि पूँजीवादी समाज असमानता, सामाजिक अन्याय और बहुसंख्यक जनता के शोषण का समाज है? और किस तरह निजी संपत्ति व मुनाफे का नतीजा यह असमानता है?

इस बढ़ती हुई पूँजीवादी फैक्ट्री व्यवस्था के विरोध में दी हुई समाजवादी विचारधारा उभरी।

मनुष्य समस्या के विषय में तभी सोच सकता है जब कोई समस्या हो। पूँजीवाद समाज की समस्या के बारे में मनुष्य तभी सोच पाया जब पूँजीवाद के परिणाम देखे और अनुभव किये गये। इसीलिए समाजवादी विचारधारा पूँजीवाद के विकास के साथ ही तब उभरी, जब यह सोचना जरूरी हो गया कि फैक्ट्रियों में मजदूरों के जीवन-स्तर में कैसे सुधार लाया जाये।

किंतु क्या समाजवादी विचारक अचानक ही बुद्धिजीवी के बिना प्रकट हो गये। क्या उनसे पहले किसी और ने उत्पीड़ितों के बारे में नहीं सोचा?

नहीं, ऐसा नहीं हुआ।

किंतु मनुष्य संभावना के रूप में केवल उसी के बारे में सोच सकता है जो उसके समय और उम्र की संभावनाओं से अधिक दूर या अलग नहीं है। उदाहरण के लिए सोलहवीं शताब्दी में जब विज्ञान व तकनीक इतने विकसित नहीं थे, चाँद पर जाना केवल एक स्वप्न भर रहा होगा। मनुष्य को तब यह एक स्वप्न लगता था। बीसवीं शताब्दी में जब विज्ञान व तकनीक इतनी अधिक विकसित हो गई कि मनुष्य को लगने लगा कि चाँद पर जाना संभव है। यदि वह कोशिश करे तथा इस दिशा में काम करे तो ऐसा हो सकता है। और ऐसा हुआ भी। क्या आप सोच सकते हैं कि सोलहवीं शताब्दी में ऐसा हो सकता था। इसी तरह मनुष्य की बुद्धि सभी के जीवन की तमाम आवश्यकताओं को पूरा करने व सभी के लिए अच्छी जिंदगी की संभावनाएँ बनी थी सिर्फ पूँजीवाद और कारखानों के विकास के तहत जब उत्पादन इतना बढ़ गया कि सबकी जरूरतों-भौतिक व अन्य जरूरतें जैसे आराम, स्वास्थ्य तथा सभी के लिए शिक्षा को पूरा करने का विचार यथार्थवादी बना। इसीलिए मानव जीवन को बेहतर बनाने का विचार उसी समय से अस्तित्व में है जब से मनुष्य स्वयं अस्तित्व में है, किंतु समाजवाद का विचार उन्नसीवीं शताब्दी में ही कारखाना उद्योग के विकास के साथ ही उभरा।

पहले के विचारकों ने सामाजिक न्याय और समानता के विषय में विवाद किया था। किंतु उन्होंने न्याय और समानता को अपने समाज के शासकों, धनाढ्यों तथा शिक्षित दर्जे के लोगों के ही संदर्भ में देखा था। उदाहरण के लिए प्लेटो, जिसके विषय में आपने सुना होगा, ने अपने समय की दासता पर सवाल नहीं उठाये। मध्ययुगीन दंतकथाओं के उदान्त और वीर "नाईट" अपने समय के किसानों, जो कि अर्द्धगुलाम थे, के प्रति संवेदनशील नहीं थे। यह तो अठाहरवीं शताब्दी के प्रबुद्ध विचारक थे जिन्होंने सबकी मुक्ति का विचार दिया। किंतु मुक्ति का विचार सीमित था समाजवादियों ने इन विचारों को आगे बढ़ाया और मुक्ति के दृष्टिकोण को व्यापक बनाया। वास्तव में हम समाजवादी विचारों के बारे में अठाहरवीं शताब्दी के प्रबुद्ध विचारकों की बुद्धिजीवी परंपरा के बिना सोच ही नहीं सकते। ठीक वैसे ही जैसे कारखाना उद्योग जो कि समाजवाद के लिए परिस्थितियाँ बनाती है, के बिना समाजवाद संभव नहीं था, प्रबुद्ध विचारकों के बिना समाजवादी विचार संभव नहीं थे। इतिहास में सब कुछ निरंतरता व अर्न्तविरोध के द्वारा विकसित होता है जो संघर्ष को इसकी ऊँची अवस्था तक तेज बनाता है। अतः समाजवादी विचारधारा न केवल पूँजीवाद की ही उपज है बल्कि अठाहरवीं शताब्दी के प्रबुद्ध बुद्धिजीवी परंपरा की देन भी है।

## 12.4 समाजवादी विचारधारा का पूर्व इतिहास

यह अज्ञात है कि "समाजवाद" और "समाजवादी" शब्दों का प्रयोग सबसे पहले किसने

किया। 1800 के आस-पास इंग्लैंड और फ्रांस दोनों जगह पूँजीवाद के विरोध में किताबें, पैम्फलैट और भाषण प्रकट होने शुरू हुए। आमतौर से यह जाना जाता है "समाजवाद" शब्द सबसे पहले 1832 में "ले ग्लोब" नाम की एक फ्राँसीसी पत्रिका में छपा हुआ देखा गया।

समाजवाद के वास्तविक पथप्रदर्शक फ्रांस में चार्ल्स फुरियेर व सेंत साइमन तथा इंग्लैंड के राबर्ट ओवेन थे और प्रत्येक के इर्द-गिर्द एक बड़ा आंदोलन विकसित हुआ। उनकी किताबें पूरे यूरोप और संयुक्त राज्य अमरीका में व्यापक रूप से पढ़ी गयी। उन्होंने एक साथ मिलकर अपने समय की सामाजिक, राजनैतिक और आर्थिक उन्नति के लिए महान योगदान दिया। उन्होंने पूँजीवादी समाज की कठोर आलोचना की। उन्होंने अपने लेखों में यह दिखाया कि किस तरह से यह एक अन्यायपूर्ण व असमान समाज है तथा यह भी कि किस तरह से बहुसंख्यक जनता को अच्छे जीवन से वंचित रखना इसका मुख्य परिणाम है। यद्यपि जैसा कि उन्होंने बताया पूँजीवाद ने उत्पादन बढ़ाने की जबरदस्त संभावनाओं को बनाया।

किंतु यह रखना महत्वपूर्ण है कि वे सिर्फ पूंजीवाद समाज की आलोचन से संतुष्ट नहीं थे। उनमें से हर एक ने अपने आदर्श समाज की झलक को, यानी समाज ऐसा होना चाहिए, को सूक्ष्म से सूक्ष्म विवरण के साथ प्रस्तुत किया जिसमें वे अठाहरवीं शताब्दी के प्रबुद्ध विचारकों से कहीं ज्यादा आगे निकल गये।

प्रबद्ध विचारकों ने कहा था कि हर चीज का विश्लेषण व फैसला तर्क तथा विवेक के आधार पर होना जरूरी है और विवेकपूर्ण सरकार वह है जो तर्क संगत कानून के अनुसार चलती है व अपने नागरिकों को राजनैतिक तथा वैधानिक स्वतंत्रता देती है। उन्होंने व्यक्ति के मौलिक अधिकारों जैसे अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता, धार्मिक सहिष्णता, कानून के समक्ष समानता इत्यादि पर जोर दिया। क्योकि ये चीजें विवेकपूर्ण थी इसीलिए हर एक को उसका अधिकार होना चाहिए। उन्होंने जनप्रिय सर्वसत्ता या लोगों के द्वारा उनकी सरकार में हिस्सेदारी के अधिकार की भी बात की। आपने शायद मोन्टेस्क्यू के बारे में सुना हो जिसने "सत्ता के अलगाव" की बात की और कहा कि सभी अधिकार एक ही अधिकारी के हाथ में केंद्रित नहीं होने चाहिए। आपने शायद रूसो और उसकी आम इच्छा के बारे में भी सुना होगा।

समाजवादी विचारकों ने समानता की भी मांग की, किंतु उनकी योजना में समानता की भी माँग राजनैतिक अधिकारों या कानून के समक्ष समानता तक ही सीमित नहीं थी। उन्होंने सामाजिक और आर्थिक समानता की भी माँग की। वे न सिर्फ विशेषाधिकार की समाप्ति चाहते थे बल्कि वर्ग-भेद को ही खत्म करना चाहते थे।

दूसरे, वे पूँजीवाद का अंत चाहते थे। वे इसका अंत केवल इसलिए नहीं चाहते थे कि यह शोषक है। चूँकि वे पहचान गये थे कि यह इतिहास की शाश्वत अवस्था नहीं है। उन्होंने सोचा कि चूँकि यह असंगत है, इसमें निहित समस्याओं और अर्न्तविरोधों के कारण भी इसे तो समाप्त होना ही है। उन्होंने इतिहास को उत्पीड़ितों के हितों के परिपेक्ष्य से देखा और इसीलिए बिना किसी समझौते के पूँजीवाद का विरोध किया। उन्होंने लाभ के स्रोत के रूप में निजी सम्पत्ति का भी विरोध किया। इसीलिए वे उत्पादन के साधनों पर सामान्य या सामाजिक स्वामित्व चाहते थे इसी कारण वे समाजवादी कहलाये।

किंतु वे यह नहीं जानते थे कि इस नये तरह के समाज को अस्तित्व में कैसे लाना है। ऐसा होने का कारण यह है कि वे उस युग में जब पूँजीवाद इतना विकसित हो चुका था कि वे इसके द्वारा मजदूर जनता की दुर्गति को देख सकें किंतु अभी तक मजदूर वर्ग, जिसके हित प्रत्यक्ष और बिना किसी समझौते के पूँजीपतियों के विरूद्ध थे, ने इतनी वर्ग चेतना और संगठन विकसित नहीं किया था कि वे स्वतंत्र रूप से राजनैतिक कार्यवाही कर सकें। साथ ही पूँजीवादी व्यवस्था की कार्य प्रणाली भी अभी तक स्पष्ट नहीं थी और अभी तक यह भी ज्ञात नहीं था कि पूँजीवाद में एक व्यवस्था के रूप में इतने अधिक न टाले जा सकने वाले संकट निहित हैं। इसीलिए उनके सिद्धांतों ने पूँजीवाद की अविकसित या प्रारंभिक अवस्था की झलक दी। वे समझ नहीं पाये कि मजदूर वर्ग की ऐतिहासिक भूमिका क्या होगी। वे यह नहीं पहचान पाये कि मजदूरों और पूँजीपतियों के बीच का वर्ग-संघर्ष पूंजीवाद की आवश्यक विशेषता है। सच तो यह है कि वे वास्तव में पूँजीवाद व्यवस्था की कार्यप्रणाली को समझ

नहीं पाये। उन्होंने इस तथ्य को ध्यान में ही नहीं रखा कि मालिकों का लाभ इसी वजह से मजदूरों और पूँजीपतियों के हितों का सामंजस्य नहीं हो सकता।

उन्होंने इसके विपरीत ही सोचा। उनके लिए समाधान हृदय परिवर्तन या नये आदर्श मूल्यों के विकास में निहित था। ये नये आदर्श व सही शिक्षा, प्रचार तथा प्रयोगों द्वारा प्राप्त किये जा सकते हैं जो दूसरों के लिए उदाहरण का काम करेंगे। वे यह नहीं समझे कि अर्थव्यवस्था राजनैतिक संस्थाओं और सामाजिक जीवन में परिवर्तन के आधार पर बदलती है। इसी कारण वे काल्पनिक समाजवादियों के रूप में जाने जाते हैं।

### 12.4.1 सेंत साइमन

काल्पनिक समाजवादियों में से एक सेंत साइमन थे। उन्होंने अपने समय के समाज का विश्लेषण इस प्रकार किया कि समाज सम्पत्तिधारी निठल्लों और काम करने वाले उद्योगपतियों—दो मुख्य वर्गों से बना है। इसका अर्थ है कि दूसरे वर्ग यानी काम करने वाले में, उन्होंने न केवल मजदूरों व किसानों बल्कि धनी फैक्ट्री मालिकों, जो कि मजदूरों का शोषण करते हैं, को भी जोड़ा जैसा कि आप देख सकते हैं उन्होंने उद्योगपतियों व मजदूर वर्ग के बीच वर्गभेद नही देखा। परिणामस्वरूप उन्होंने निजी सम्पत्ति का विरोध नहीं किया जो कि जैसे हम देख चुके हैं, शोषण की जड़ है। उन्होंने सिर्फ गलत उपयोग का विरोध किया जो उनके विचारानुसार संभव था। उन्हें समाज के धीमे और शांतिपूर्वक परिवर्तन में भी विश्वास था। उन्होंने ऐतिहासिक अनुभव से यह नहीं सीखा कि कुछ लोग भले ही खुशी-खुशी उन फायदों को छोड़ दें जिनका उपयोग वे कर रहे हैं, किंतु पूरा वर्ग ऐसा नहीं करेगा। बाद में उनके अनुयायियों ने निजी सम्पत्ति का समापन तथा योजना के श्रम के मुताबिक माल के बँटवारे की माँग की। हालाँकि उन्होंने भी सोचा कि समाज के और आगे उन्नति करने से स्वतः ही समाजवाद का फल प्राप्त हो जाएगा। उन्होंने भी साधनों और बचत के बँटवारे यानी मजदूरों के शोषण के साधनों का विश्लेषण नहीं किया।

### 12.4.2 चार्ल्स फुरियेर

चार्ल्स फुरियेर के लेखों में औरतों की स्थिति सहित पूँजीवादी समाज की एक व्यवस्थागत आलोचना है। वह यह कहने वाले पहले व्यक्ति थे कि किसी समाज की आय सही-सलामती की अभिसूचना इस बात से पता चल जाती है कि वह अपनी औरतों के साथ कैसा ब[illegible]ा है। उनके पास समाज के इतिहास की भी एक निश्चित परिकल्पना थी—बर्बर, साम[illegible].आचरण की मुक्त होड़। उन्होंने यह भी पहचान लिया कि पूँजीवादी समाज में कुछ [illegible]चुने लोगों की धन-दौलत अधिकसंख्यकों की गरीबी से आयी है। वह इस बात के प्रति भी सचेत थे कि प्रत्येक ऐतिहासिक युग में एक उत्थान की अवस्था होती है और एक अवसान की। उन्होंने अपने आपको समाज की गति के सिद्धांतों की खोज में लगा दिया ठीक वैसे ही जैसे वैज्ञानिकों ने धातु की गति के सिद्धांत को खोजा था। उन्हें पता था कि पूँजीवादी इतिहास की सिर्फ एक अवस्था है—कि इतिहास की प्रत्येक अवस्था उस स्थिति में होने वाले उत्पादन की स्थिति पर आधारित है।

किंतु सेंत साइमन की तरह वे भी यह नहीं देख पाये कि पूँजीवादी समाज में अन्याय का मूल कारण क्या है। अन्य काल्पनिक समाजवादियों की तरह ही उन्होंने भी सोचा कि लोगों के हृदय परिवर्तन के साथ समाज का शांतिपूर्ण परिवर्तन संभव है।

### 12.4.3 राबर्ट ओवेन

राबर्ट ओवेन अपने सोचने के ढंग में ज्यादा वैज्ञानिक थे। वे जान गये थे कि परिवेश चेतना का निर्धारण करती है, इसका अर्थ है कि मनुष्य न केवल वंशानुगत गुणों बल्कि अपने जीवन विशेष रूप से अपने विकास काल के परिवेश की देन है। उद्योग के विकास में उन्होंने समाज के पुनर्निर्माण का आधार देखा। उस समाज का जिसमें सबके लिए प्रचुर मात्रा में हो, क्योंकि जब तक पहले उत्पादन नहीं बढ़ेगा आपके पास सबके लिए प्रचुर मात्रा में कहाँ से आयेगा। उनके नये समाज की कल्पना ऐसी थी जिसमें सम्पत्ति सार्वजनिक [illegible]गी और [illegible] पर सबके

लिए सार्वजनिक सामान बनाने हेतु काम होगा। उन्हें रिकार्डो के श्रम-मूल्य सिद्धांत पर विश्वास था यानी यह श्रम ही है जो तैयार की गई वस्तु का मूल्य निश्चित करती है। उन्होंने यह भी पहचान लिया कि पूँजीवादी व्यवस्था में मजदूर को उसके श्रम का पूरा (योग्य) मूल्य नहीं मिलता।

किंतु उन्हें हर चीज पैसे की गलती के कारण होती जान पड़ती थी। वह इस प्रक्रिया को नहीं समझ पाये जहाँ से यह असमान विनिमय आया। वे यह बताने में भी असमर्थ थे कि समाज का पुनर्निर्माण कैसे किया जायेगा। क्या उत्पादन के साधन उनके मालिकों द्वारा पूरी जनता को सरल ढंग से दे दिये जायेंगे या क्या उसको पाने के लिए जनता को लड़ाई लड़नी पड़ेगी? वह स्पष्ट नहीं थे। उन्होंने कुछ सहकारी समितियाँ स्थापित करने का प्रयत्न किया। उन्होंने सोचा कि इसके द्वारा वे परिवर्तन का एक ऐसा माप दण्ड प्राप्त कर सकेंगे जो समाज को न्यायसंगत बनायेगा किंतु सहकारी समितियाँ किसी भी चीज में कोई आधारभूत परिवर्तन नहीं ला पायी क्योंकि वे मौजूदा समाज के दायरे के भीतर ही बनी थी। लेनिन ने काल्पनिक समाजवाद का अपनी पुस्तक "मार्क्सवाद के तीन स्रोत और तीन घटक" में उपयुक्त मूल्यांकन किया है इसमें उन्होंने कहा :

> इसने पूँजीवादी समाज की आलोचना की, इसकी निन्दा की और इसे कोसा, इसने इसके नष्ट होने का स्वप्न देखा, इसके पास बेहतर व्यवस्था की कल्पना दृष्टि थी और इसने अमीरों को शोषण की अनैतिकतता के बारे में समझाने की कोशिश की, किंतु काल्पनिक समाजवाद वास्तविक समाधान की ओर इशारा नहीं कर पाया। यह पूँजीवाद के तहत वेतन-गुलामी की वास्तविक प्रकृति को नहीं समझा पाया, यह पूँजीवादी विकास के नियमों को उजागर नहीं कर पाया। यह नहीं दिखा पाया कि वे कौन सी सामाजिक शक्तियाँ हैं जिनमें नये समाज का निर्माता बन सकने का सामर्थ्य है।

**बोध प्रश्न-1**

संक्षेप में उत्तर दीजिए।

1) समाजवादी समाज और पूँजीवादी समाज में क्या फर्क है?
2) काल्पनिक समाजवादी कौन थे?
3) उन्हें काल्पनिक समाजवादी के रूप में क्यों देखा जाता था?
4) किस समय में उनके विचार सामने आये?
5) सही या गलत में उत्तर लिखिये :
   क) काल्पनिक समाजवादियों का दृष्टिकोण वैज्ञानिक था।
   ख) वे अविकसित पूँजीवाद की देन थे।
   ग) रार्बट ओवेन मजदूरों के शोषण के कारणों को समझ गये थे।
   घ) काल्पनिक समाजवादी सामाजिक न्याय के प्रति चिंतित थे।

## 12.5 मार्क्सवाद : आर्थिक और सामाजिक समीक्षा

मार्क्सवाद उन वैज्ञानिक समाजवादी विचारों से संबंध रखता है जो यूरोप में उन्नीसवीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध में विकसित हुए। वह हस्ती काल मार्क्स थी जिन्होंने इन विचारों को व्यक्त करने, विकसित करने व इन्हें विचारधारा के संकाय के रूप में एक निश्चित विशिष्टता देने के लिए सर्वाधिक कार्य किया। उन्ही के नाम से वैज्ञानिक समाजवाद के विचारों को मार्क्सवाद के नाम से भी जाना जाता है। फ्रेड्रिक ऐगल्स कार्ल मार्क्स के आजीवन मित्र और सहयोगी थे। सरल शब्दों में, 1848 में जब उनके द्वारा लिखा कम्यूनिस्ट घोषणा पत्र प्रकाशित हुआ, तो पहली बार उनके विचारों ने यूरोप को झकझोर दिया। उसके बाद उनकी किताबों का अनेक भाषओं में अनुवाद हुआ। उनके विचार उत्पीड़ितों के संघर्ष, जिनके हितों व मुक्ति के वे साथी थे, का आधार बन गये।

मार्क्स और ऐंगेल्स के विचार किसी शून्य मे जादुई रूप में नहीं आये। उन्होंने जर्मन दर्शन अंग्रेजी राजनैतिक अर्थशास्त्र व फ्रांसीसी समाजवाद के महान प्रतिनिधियों की शिक्षा को

समाविष्ट किया, उसे आगे बढ़ाया। उन्होंने उसे नये ढंग से जोड़ा।

दार्शनिक रूप से मार्क्सवाद का अर्थ है इतिहास और जीवन का भौतिकवादी दृष्टिकोण, यानी लोग अपने समाज व राजनैतिक ढाँचे को किस ढंग से बनाते हैं इस बात पर निर्भर करता है कि वे किस ढंग से अपने जीवन की आवश्यकताओं का उत्पादन करते हैं, तथा वे किस ढंग से इसके लिए अपने श्रम को संगठित करते हैं और अंततः इस पर भी कि वे किस ढंग से सोचते हैं। संक्षेप में उन्होंने दिखाया कि यह परिवेश ही है कि जो चेतना का निर्धारण करती है इसके विपरीत नहीं, क्योंकि एक भौतिक पदार्थ पहले से ही अस्तित्व में है और इस बात से स्वतंत्र है कि लोग उसके बारे में क्या सोचते हैं—उदाहरण के लिए, पेड़ अस्तित्व में था, इसीलिए लोगों ने उसे देखा, पहचाना और उसे एक नाम दिया। यदि उन्होंने ऐसा नहीं किया होता तो भी वह अस्तित्व में रहता। मानव इतिहास के अनुप्रयोग में मार्क्सवाद ने दिखाया कि जिसने इतिहास के खास दौर का निर्धारण किया वह थी मौजूदा उत्पादन-प्रणाली यानी एक समाज की उत्पादन शक्तियों और उत्पादन संबंध। दूसरे शब्दों में, समाज में जीने के भौतिक आधार आर्थिक व्यवस्था, जीने के साधनों का उत्पादन। वे कैसे करते हैं, व इसे करने के लिए वे अपने आपको कैसे संगठित करते हैं। दासता, सामंतवाद तथा पूँजीवाद ने भिन्न आर्थिक व्यवस्थाओं व भिन्न वर्ग-संबंधों को प्रस्तुत किया। यहाँ पर आपको यह जानना आवश्यक है कि वह मार्क्स ही थे जिन्होंने भिन्न सामाजिक व्यवस्थाओं की समीक्षा व वर्गीकरण किया। उन्होंने दिखाया कि जीवन के भौतिक आधार ही समाज की प्रकृति का निर्धारण करते हैं व इन भौतिक आधारों के परिणामस्वरूप उभरे वर्ग-संघर्ष ही समाज के परिवर्तन तथा विकास का कारण बनता है।

ऐतिहासिक विकास तथा परिवर्तन का निर्देशक व प्रमुख कारण मानव विचारों में परिवर्तन नहीं बल्कि वर्ग संघर्ष है। इसके बदले में वर्ग संघर्ष इस वास्तविकता का फल था कि लोगों का कुछ हिस्सा या वर्ग तो विशेषाधिकार प्राप्त व शासक वर्ग था। तथा दूसरा अधिकार विहीन उत्पीड़ित व शोषित वर्ग था। बदले में उनकी भिन्न व अर्न्तविरोधी स्थितियाँ उनके आय-साधनों के संबंध पर आधारित थीं—चाहे वे उनके मालिक हों और उस पर काम करने के लिए दूसरों को रोजगार पर लगाते हों या चाहे वे उस पर काम करके दूसरों के लिए लाभ कमाते हों। स्वाभाविक है कि दोनों के हित एक दूसरे के विरोधी थे व जिसका सामंजस्य नहीं हो सकता। संक्षेप में मार्क्सवाद ने दिखाया कि प्रचलित अर्थव्यवस्था समाज का आधार थी जिसने इसके अन्य क्षेत्रों को निर्धारित किया और वर्ग संघर्ष ऐसे किसी भी समाज का अभिन्न अंग थी जहाँ संसाधन किसी की निजी सम्पत्ति थी तथा जो दूसरों के श्रम पर जीवित रहने का जरिया बन गई थी। इसीलिए इतिहास में जब तक निजी सम्पत्ति अस्तित्व में है वर्ग संघर्ष को टाला नहीं जा सकता यानी समाजवादी क्रांति के आने तक, जहाँ संसाधनों का सामूहिक स्वामित्व होगा, यह ऐतिहासिक विकास की हर अवस्था का आवश्यक हिस्सा है। इन्हीं विचारों से ऐतिहासिक भौतिकवाद बना।

इन्हीं विचारों को आधार बनाकर उन्होंने दिखाया कि किस तरह से प्रत्येक समाज एक सी ही विकासावस्था से गुजरा-आदिम, साम्यवादी, दासता, सामंतवाद, पूँजीवाद, समाजवाद और किस तरह भले ही भिन्न देशों में कुछ विशेषताएँ फर्क हों इनमें से किसी भी अवस्था का छूट जाना संभव नहीं था।

किंतु मार्क्सवाद और ऐंगेल्स ने न केवल ऐतिहासिक विकास की समझ को व्यक्त किया, बल्कि इतिहास की उनकी अपनी अवस्था का वखूबी विश्लेषण करने के प्रति भी उनका विशेष रूप से ध्यान था। ऐसा इसलिए कि वे न केवल विश्व को समझना भर चाहते थे बल्कि इसे बदलना भी चाहते थे। इसे बदलने के लिए यद्यपि सर्वप्रथम यह समझना आवश्यक था कि मौजूदा वस्तुस्थिति की कार्यप्रणाली कैसी है, इसीलिए उनका दूसरा प्रमुख योगदान पूँजीवाद समाज की पूर्ण व कटु आलोचना करना था खासतौर से इसके परिणामस्वरूप पूँजीपति जिस तरह मजदूर वर्ग का शोषण कर रहे थे। यह होता कैसे है इसके विषय में हम इस पाठ में पहले ही चर्चा कर चुके हैं। यह मार्क्स और ऐंगेल्स ही थे जिन्होंने इस विषय पर काम किया। इस तरह उन्होंने आर्थिक सिद्धांत को भी महत्वपूर्ण योगदान दिया। उन्होंने दिखाया कि किस तरह पूंजीवाद में एक मजदूर दिन का एक हिस्सा अपने और अपने परिवार के खर्चे की कीमत (वेतन) निकालने में बिताता है, जबकि दिन के

बाकी हिस्सों में वह बिना सुविधाओं के काम करता है, क्योंकि अब वे अपने पाये जाने वाले वेतन से कहीं अधिक न ज्यादा उत्पादन कर रहा है तथा जिसके द्वारा यह अधिशेष मूल्य की रचना करता है तथा जो पूँजीपति के मुनाफे का स्रोत है और वह जरिया है जिसके चलते मजदूर को अपने श्रम का फल नहीं मिलता। अत: पूँजीवाद सिर्फ एक आर्थिक व्यवस्था ही नहीं है, यह कुछ निश्चित सामाजिक संबंधों का समूह भी है यानी पूँजीपति और मजदूर के बीच का विशिष्ट संबंध जो मजदूर के हित के खिलाफ है व जो सामाजिक रूप से न्यायसंगत भी नहीं है। मजदूर व्यवस्था का आवश्यक अंग है क्योंकि श्रम के बिना कोई भी उत्पादन नहीं किया जा सकता अत: यहाँ श्रम का एक निश्चित सामाजिक संगठन है किंतु यह सामाजिक संगठन पूंजीपतियों के स्वामित्व वाली पूँजी या धन के द्वारा शासित है और जो मजदूरों के पास नहीं है।

**बोध प्रश्न-2**

1 नीचे कुछ वाक्य दिये गये हैं, बताइए कौन से सही (✓) या गलत (×) हैं
   क) मार्क्सवाद काल्पनिक समाजवाद से पहले आया।
   ख) मार्क्सवाद का अर्थ विचारों पर आधारित जीवन तथा इतिहास की समझ था।
   ग) मार्क्सवाद का अर्थ था जीवन तथा इतिहास का भौतिकवादी दृष्टिकोण।
   घ) मार्क्स की इतिहास की समझ में वर्ग प्रमुख नहीं था।
   ङ) पूँजीवाद मात्र एक आर्थिक व्यवस्था है।

2. किस तरह पूँजीवाद सिर्फ एक आर्थिक व्यवस्था नहीं है। चार पंक्तियों में उत्तर दीजिए।

......................................................................................................................

......................................................................................................................

......................................................................................................................

......................................................................................................................

## 12.5.1 मार्क्सवाद : राजनैतिक सिद्धांत

पूँजीवाद के इस आर्थिक विश्लेषण द्वारा मार्क्स और ऐंगेल्स ने अपने राजनैतिक सिद्धांत व्यक्त किये। उन्होंने इशारा किया कि पूँजीवाद खुद ही पूँजीवादी समाज का तख्ता पलटने की परिस्थितियाँ पैदा करता है, यानी पुराने समाज के गर्भ में ही नये समाज के बीज अंकुरित होने

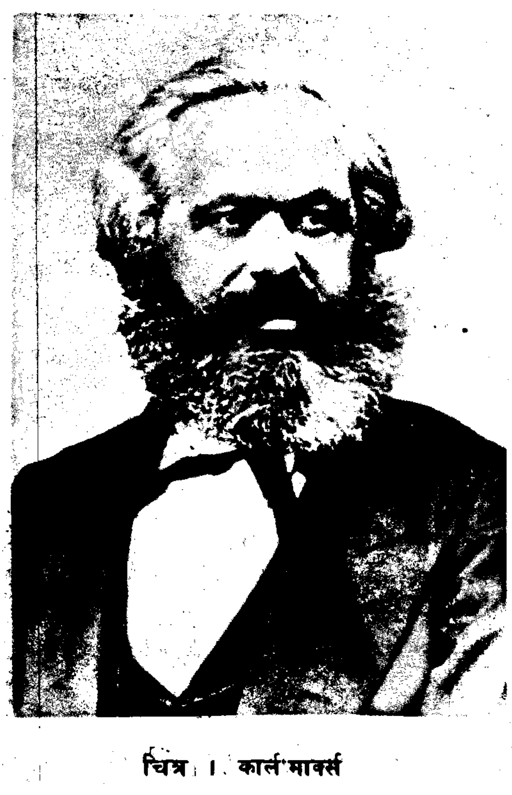

चित्र । : कार्ल मार्क्स

हैं। सर्वप्रथम, उन्होंने यह बताया कि पूँजीवाद समय-समय पर खतरों से घिरा रहेगा। ये खतरे खुद इसी की प्रकृति से आते हैं। जहाँ पूँजीवाद ज्यादा से ज्यादा उत्पादन करता है, लोग ज्यादा से ज्यादा गरीब होते जाते हैं और जो उत्पादन है उसको खरीदने में असमर्थ होते हैं। मार्क्स के अनुसार यह अधिक उत्पादन और कम खपत के खतरे तथा पूँजीपति व मजदूर के हितों के असामजस्य जैसी स्थिति की ओर धकेलती है। यह पूँजीवाद का मुख्य अन्तर्विरोध भी है। अधिक मुनाफा पाने के लिए पूँजीपति मजदूर को कम से कम वेतन देता है, किंतु अपना माल बेचने के लिए मजदूर के पास खरीदने के लिए ज्यादा से ज्यादा पैसे होने चाहिए यानी उसे उन्हें ज्यादा वेतन देना चाहिए क्योंकि उनके पास आय का कोई अन्य जरिया नहीं है। जाहिर है कि वह यह दोनों काम एक साथ नहीं कर सकता। कुछ समय के लिए पूँजीवाद नये बाजारों के पुर्नआबंटन के लिए युद्ध छेड़कर या मजदूरों को आकर्षित करने के लिए सुधार के कुछ कदम उठाकर इन खतरों से उभर सकता है। किंतु यह अनंत नहीं चलता रह सकता क्योंकि अन्तर्विरोध खुद व्यवस्था में ही है। इसलिए पूँजीवाद के आर्थिक विश्लेषण मे मार्क्स और ऐंगेल्स ने यह राजनैतिक निष्कर्ष निकाला कि पूँजीवाद के बदलने को टाला नहीं जा सकता।

उन्होंने कहा कि वह वर्ग जो इस व्यवस्था को बदलेगा मजदूर वर्ग या सर्वहारा है। उन्होंने बताया कि बडी फैक्ट्रियों की स्थापना से उसमें मजदूर वर्ग यानी सर्वहारा वर्ग भी उभरता है जिनके पास काम करके कमाने के सिवाय और कुछ नहीं है। इसीलिए निजी सम्पत्ति पर आधारित पूँजीवाद जैसी व्यवस्था में इस वर्ग का कुछ भी दाँव पर नहीं लगा है। इसीलिए पूँजीवाद के विरुद्ध संघर्ष में उनके पास अपनी बेडियों को खोने के सिवाय और कुछ नहीं है। दूसरे पूँजीवाद के तहत सर्वहारा समाज का सबसे अधिक उत्पीड़ित हिस्सा है और इस कारण बदलाव में सबसे ज्यादा रुचि रखने वाला हिस्सा है। तीसरे, सर्वहारा के पास उस व्यवस्था जो उसका शोषण करती है, के खिलाफ लड़ने के सिवाय अन्य कोई दीर्घकालिक रास्ता नहीं था, क्योंकि यदि पूरे दिन में एक मजदूर जो काम करता है उसका अधिकतर हिस्सा उसे खुद को नहीं बल्कि पूँजीपति को धनी बनाने में चला जाता है तो वह कैसे स्वतंत्र रहकर एक अर्थपूर्ण जीवन व्यतीत कर सकता है इसलिए पूँजीवाद को बदलना सर्वहारा के लिए एक आवश्यक और मनपसंद कार्य भी बन गया क्योंकि इसी पर उसके काम के कम घंटे, आराम, संस्कृति स्त्री पुरुषों के बीच समानता और अच्छे स्वास्थ्य व शिक्षा का अधिकार निर्भर करेगा।

मार्क्स और ऐंगेल्स ने यह भी संकेत किया कि मजदूर वर्ग की मुक्ति के साथ ही समाज के अन्य हिस्सों की भी मुक्ति मिल सकती है। क्योंकि यह मजदूर वर्ग ही है जो समाज की सबसे निचली तह को बनाता है। साथ ही परिस्थितियों के चलते मजदूर वर्ग ही पूँजीवाद के बदलने के संघर्ष में समझौता न करने वाला एकमात्र वर्ग हो सकता है। अतः मार्क्स और ऐंगेल्स पूँजीवाद के अपने आर्थिक विश्लेषण में जिस दूसरे मुख्य राजनैनिक निष्कर्ष पर पहुँचे वह यह है कि यह मजदूर वर्ग ही है जो संघर्ष का नेतृत्व करेगा और समाजवादी क्रांति का सेनापति होगा। अतः पूँजीवाद ने स्वयं ही नष्ट होने के साधन जुटाए।

संक्षेप में, उन्होंने कहा कि पूँजीवाद के पहले या उसके बिना कोई समाजवाद नहीं हो सकता, पूंजीवाद अपनी फैक्ट्रियों द्वारा उत्पादन बढ़ाने की संभावना बनाता है ताकि हर एक को उसके काम के मुताबिक बाँटने के लिए पर्याप्त हो। पूँजीवाद अपनी फैक्ट्री व्यवस्था द्वारा मजदूर वर्ग को भी जन्म देता है जो इसे पलट सकता है।

### 12.5.2 मार्क्सवाद : क्रांति का सिद्धांत

मार्क्स ने सवाल किया क्या पूँजीपति स्वेच्छा से और अपने आप अपने लाभ को छोड़ देंगे? कुछ विशिष्ट पूँजीपति शायद अपने लाभ का कुछ अंश दान के रूप में दे देंगे। लेकिन इससे ज्यादा कुछ नहीं। उन्होंने ऐसा अपने निजी विचार के रूप में नहीं कहा। उन्होंने विभिन्न युगों में मानव समाज के इतिहास की ओर इशारा किया – लोगों ने बिना संघर्ष किये कुछ नहीं पाया, समाज के विशेषाधिकार प्राप्त हिस्से ने तब तक कुछ नहीं दिया जब तक लड़ाई से उनका सामना नहीं हुआ। उन्होंने कहा कि इसीलिए मजदूर वर्ग की मुक्ति केवल मजदूर वर्ग के वर्ग-संघर्ष से ही हो सकती है।

लेकिन यह संघर्ष क्या रूप धारण करेगा– क्या यह शांतिपूर्ण हो सकता है? इसके जवाब में मार्क्स का यह कहना था : सशक्त फौजें व राज्य तंत्र शासक वर्ग के हाथों में है और वे इसका प्रयोग अपने प्रभुत्व को बनाये रखने के लिए ही करते हैं। पूँजीवाद के समाजवाद में परिवर्तन शांतिपूर्वक नहीं हो सकता। मजदूर वर्ग को क्रांति द्वारा राज्य शक्ति पर कब्जा करना होगा और एक नये राज्य द्वारा समाजवादी राज्य का निर्माण करने का आश्वासन देना होगा जो सर्वहारा का अधिनायकवाद होगा।

लेकिन क्या यह लड़ाई मजदूर वर्ग और पूँजीपति के बीच होने वाली केवल एक आर्थिक लड़ाई ही होगी? नहीं मार्क्स के अनुसार यह केवल एक आर्थिक लड़ाई नहीं होगी और हालांकि मजदूर वर्ग क्रांति की प्रेरक सामाजिक शक्ति होगी इसमें दूसरे भाग भी हिस्सा लेंगे। दूसरों के सामाजिक भूल के कारण यद्यपि उनकी भूमिका केवल गौण होगी और कभी-कभी ढुल-मिल भी। मार्क्स ने बताया कि पूँजीवाद का विकास गिने-चुने हाथों में धन के व्यापक केन्द्रीयकरण और अधिकतर लोगों में बढ़ती हुई गरीबी की स्थिति की ओर ले जाता है। पूँजीवाद के संकट ने न केवल मजदूर वर्ग पर प्रभाव डाला, मध्यम वर्ग पर भी, खासतौर से निम्न मध्यम वर्ग और किसानों पर इसका प्रभाव पड़ा। इसीलिए पूँजीवाद के खिलाफ लड़ाई न केवल मजदूर वर्ग द्वारा बल्कि मध्यम बुद्धिजीवी वर्ग के कुछ हिस्सों, व मध्यम वर्ग द्वारा भी लड़ी जाएगी जो मजदूर वर्ग के राजनैतिक निर्णय को अपनायेंगे क्योंकि वह राजनैतिक व सामाजिक रूप में न्याय संगत है तथा गाँवों में रहने वाले कृषि मजदूरों द्वारा भी जो कि समान रूप से शोषित हैं पर चूँकि मध्यम वर्ग का सामाजिक मूल निजी संपत्ति की जड़ में है, वे कभी भी समझौता न कर सकने वाली भूमिका नहीं निभा पायेंगे–उनमें हमेशा ढुलमुलापन रहेगा। यदि उनका एक भाग क्रांति के साथ होगा तो दूसरा बुर्जाआ की या पूँजीपतियों के साथ। अतः मुख्य भूमिका मजदूर वर्ग की ही होगी। जैसा कि मार्क्स ने जोर देकर कहा। दूसरे, लड़ाई कई क्षेत्रों में लड़ी साधनों पर पूँजीपतियों का स्वामित्व है, यह एक राजनैतिक लड़ाई होगी, क्योंकि राजनैतिक ढाँचा पूँजीपतियों के प्रभुत्व में है, सामाजिक असमानता व नैतिकता के कारण, सामाजिक होगी क्योंकि यह एक अधिक मानवीय समाज के लिए है।

राज्य शक्ति पर कब्जा करने का पहला प्रयास 1871 में पेरिस के मजदूर वर्ग द्वारा हुआ था। आपने पेरिस कम्यून के बारे में जरूर सुना होगा। पेरिस कम्यून की स्थापना करने में हजारों मजदूरों ने अपनी जानें गवाँ दीं लेकिन उन्होंने शासक वर्ग के पुराने राजकीय तंत्र को नष्ट नहीं किया। इसीलिए पेरिस कम्यून चल नहीं पाया। इसे निर्दयता से कुचल दिया गया। इस अनुभव ने मार्क्स की इस समझ के सत्य को प्रत्यक्ष रूप से दिखा दिया कि समाजवादी राज्य की स्थापना के आश्वासन को पूरा करने के लिए सर्वहारा का अधिनायकवाद तब तक जरूरी है जब तक कि समाज से शासक वर्ग के आर्थिक, सामाजिक व राजनैतिक आधार की शक्ति को समाप्त नहीं कर दिया जाता। इसे समझना अत्यंत महत्वपूर्ण है कि मार्क्स शासक वर्ग की शारीरिक रूप से समाप्ति या हत्या की वकालत नहीं कर रहे थे – वे इसी बात की वकालत कर रहे थे कि उस तबके को शासक वर्ग बने रहने की और इजाजत न दी जाये। संक्षेप में वे पूर्ण समानता-आर्थिक समानता भी-पर आधारित एक वर्गविहीन समाज की वकालत कर रहे थे।

क्रांति किस तरह से लायी जाये, इसके बारे में कहने को उनके पास कुछ और भी था। उन्होंने कहा था कि इसके उत्तराधिकार में प्राप्त अर्न्तविरोधों और इसमें मजदूर वर्ग की स्थिति के चलते पूंजीवाद के पलटने को टाला नहीं जा सकता। किंतु वे कोई ज्योतिष नहीं थे। वे एक समाज वैज्ञानिक थे। वे कोई भविष्यवाणी नहीं कर रहे थे। वे भविष्य में समाज के विकास की संभावनाओं व उस सामान्य रुख को दिखा रहे थे जिसकी ओर समाज अग्रसर था तथा कैसे इसके परिणाम अंततः इसे समाजवाद की ओर ले जायेंगे। उन्होंने भविष्य में होने वाली क्रांतियों की कोई सही समय सूची नहीं दी। उन्होंने दिखाया कि कैसे यह वर्ग संघर्ष पर निर्भर होगा जो पूँजीतियों और मजदूरों के बीच का संघर्ष है व इन संघर्षों के परिणाम क्या होंगे मजदूर वर्ग को सफल होने के लिए सर्वप्रथम क्रांतिकारी सिद्धांतों की सही समझ होनी चाहिए और इसके लिए उसे अच्छी तरह से संगठित होना चाहिए। इस उद्देश्य के लिए उन्होंने मजदूर वर्ग के बीच राजनैतिक शिक्षा और मजदूर वर्ग के संघर्ष को नेतृत्व देने के लिए मजदूर वर्ग पार्टी की स्थापना पर जोर दिया।

मार्क्स ने न केवल सिद्धांतों में ही योगदान दिया उन्होंने अन्तर्राष्ट्रीय सर्वहारा पर आधारित मजदूरों की सर्वप्रथम अन्तर्राष्ट्रीय सभा की स्थापना की। दूसरे शब्दों में, यह इस बात को मान्यता देता है कि दुनियाँ के संपूर्ण मजदूर वर्ग के हित समान हैं, इसीलिए, उन्हें एकजुट होकर लडना चाहिए। इसीलिए अन्तर्राष्ट्रीय पुरुष मजदूर सभा का नारा था– "दुनिया के मजदूरों एक हो।"

मजदूर वर्ग द्वारा सफल क्रांति सर्वप्रथम रूस में 1917 में हुई। रूस के मजदूर वर्ग ने न केवल उद्योग पर से निजी सम्पत्ति की समाप्ति की, उसने किसान वर्ग के साथ मिलकर भूमि का राष्ट्रीयकरण किया। उसने एक नये राज्य की रचना की -- मजदूर जनता के शासन पर आधारित एक समाजवादी राज्य की। उसने समाजवादी जनतंत्र पर आधारित आर्थिक समानता व सामाजिक न्याय की स्थापना की। इसके विषय में आप एक अलग पाठ में पढेंगे।

**बोध प्रश्न 3**

1 निम्नलिखित कथन सही हैं या गलत बताइये।
   क) मार्क्सवाद के अनुसार परिवेश की चेतना का निर्धारण करता है।
   ख) पूँजीवाद समाज न्यायसंगत समाज है।
   ग) क्रांति की प्रमुख शक्ति मजदूर वर्ग है।
   घ) पूँजीवाद अत्यधिक उत्पादन और कम उपभोक्ता से चरित्रित है।
   ङ) पूँजीवाद से समाजवादी समाज में परिवर्तन शांतिपूर्वक ढंग से हो सकता है।

2. पूँजीवाद में पूँजीपति को मुनाफा कैसे प्राप्त होता है और मजदूरों का शोषण कैसे होता है?

.......................................................................................................................

.......................................................................................................................

3 पूँजीवाद का मुख्य अन्र्तविरोध क्या था?

.......................................................................................................................

.......................................................................................................................

4 वे राजनैतिक निष्कर्ष क्या थे जो मार्क्स व ऐंगेल्स ने अपने पूँजीवाद के आर्थिक विश्लेषण से निकाले थे?

.......................................................................................................................

.......................................................................................................................

5 क्या पूँजीवाद के खिलाफ संघर्ष शांतिपूर्वक हो सकता है?

.......................................................................................................................

.......................................................................................................................

## 12.6 सारांश

इस इकाई में आपने देखा :

- किस तरह से समाजवादी व्यवस्था पूर्ण सामाजिक व आर्थिक समानता के पक्ष में है।
- कि, यह अन्यायपूर्ण पूँजीवादी व्यवस्था का अन्र्तविरोध ही था जिसने समाजवादी विचारधारा के उभार को बढ़ावा दिया।
- कि सर्वप्रथम, चेतना की कमी के कारण समाजवादी विचारधारा ने तर्क दिया कि पूँजीवाद के अन्याय को हृदय से नैतिकताओं में परिवर्तन से हटाया जा सकता है।
- यद्यपि पूँजीवाद की अन्दरूनी शोषण व्यवस्था की समझ के साथ, समाजवादी विचारधारा ने इस असमानता को और बढ़े हुए रूप से बनाया।
- समाजवादी समाज, अधिसंख्यक यानी सर्वहारा के राज्य की स्थापना के द्वारा ऐसी परिस्थितियाँ बनाता है जहाँ पूर्ण सामाजिक व आर्थिक समानता का आश्वासन हो।
- कि यह कार्ल मार्क्स थे जिन्होंने पूँजीवाद के साम्यहीन ढाँचे व आर्थिक आधार को सामाजिक परिवर्तन के सिद्धांत मे ठोस रूप से जोडा। ऐसा करने से काल्पनिक

समाजवाद इत्यादि विचारों पर आधारित सामाजिक सिद्धांत, जो सामाजिक परिवर्तन व अन्यायपूर्ण ढाँचों को हटाने के सिद्धांत रूप से जोड पाने में असमर्थ थे, से अलग हट गये। ऐसा करने में उन्होंने हमें एक सामाजिक सिद्धांत दिया– जो अर्थशास्त्र, राजनीति व इतिहास को आपस में जोड़ता है।

## 12.7 शब्दावली

**उत्पादन के साधन** : उत्पादन की व्यवस्था के भौतिक तत्व। आय के साधन जैसे भूमि, कारखाने, कच्चा माल इत्यादि जिससे धन प्राप्त किया जाता है।
**उत्पादन प्रणाली** : एक समाज के जीवन की जरूरतों के उत्पादन का तरीका साथ ही उत्पादन के साधनों पर स्वामित्व की प्रकृति व समाज के विभिन्न भागों का इससे संबंध।
**क्रांति** : जिंदगी का वह परिवर्तनकारी मोड़ जो एक नयी सामाजिक व्यवस्था की ओर ले जाती है। एक सामाजार्थिक व्यवस्था से दूसरे अधिक प्रगतिशील व्यवस्था में परिवर्तन।
**समाजवादी क्रांति** : क्रांति का चरित्र इसके द्वारा पूरे किये जाने वाले कार्यों व इसमें हिस्सा लेने वाली शक्तियों से निर्धारित होता है। समाजवादी क्रांति की उत्तमता के स्तर पर एक फर्क किस्म की क्रांति है क्योंकि यह उत्पादन साधनों पर से निजी स्वामित्व समाप्त करके शोषण को ही समाप्त करती है और शोषण से मुक्त एक वर्गविहीन समाज की स्थापना करती है। इससे पहले के अन्य सभी समाज शोषित थे क्योंकि उत्पादन के साधन निजी (कुछ) हाथों में थे।

## 12.8 बोध प्रश्नों के उत्तर

**बोध प्रश्न-1**

1 भाग 12.2 पैरा 1-7 देखिए साथ ही भाग 12.3 पैरा 2-7 देखिए
2 उपभाग 12.4.1, 12.4.2, 12.4.3 देखिए
3 भाग 1, 2, 4 पैरा 3-9 देखिए
4 भाग 12.4 देखिए
5 क) गलत, भाग 12.4 देखिए
ख) सही, भाग 12.4 देखिए
ग) गलत, उपभाग 12.4.3 देखिए
घ) सही, भाग 12.4 से उपभाग 12.4.3 तक देखिए।

**बोध प्रश्न-2**

1 क) गलत
ख) गलत
ग) सही
घ) गलत
ङ) गलत
2 भाग 12.5 का आखिरी पैरा देखिए।

**बोध प्रश्न-3**

1 क) सही, भाग 12.5 देखिए
ख) गलत, पूरी इकाई को ध्यानपूर्वक देखिए
ग) सही, उपभाग 12.5.1 और 12.5.1 देखिए
घ) सही, उपभाग 12.5.2 पैरा 2 देखिए
ङ) गलत, उपभाग 12.5.2 देखिए

# इकाई 13 प्रथम विश्व युद्ध : कारण एवं परिणाम

## इकाई की रूपरेखा


13.0 उद्देश्य
13.1 प्रस्तावना
13.2 प्रथम विश्व युद्ध के कारण
    13.2.1 गुप्त संधि प्रणाली
    13.2.2 सैन्यवाद
    13.2.3 राष्ट्रवाद
    13.2.4 साम्राज्यवाद की अपनी आवश्यकताएँ
    13.2.5 समाचार पत्र प्रेस एवं जनमत
    13.2.6 तत्कालिक कारण
13.3 युद्ध के परिणाम
    13.3.1 मानव जीवन की क्षति
    13.3.2 सामाजिक एवं आर्थिक परिवर्तन
    13.3.3 जनतांत्रिक आदर्श
    13.3.4 1919 का पेरिस सम्मेलन
    13.3.5 शक्ति संतुलन का समाचार
    13.3.6 नवीन अंतर्राष्ट्रीय साधन
13.4 विश्व युद्ध और भारत
13.5 सारांश
13.6 शब्दावली
13.7 बोध प्रश्नों के उत्तर


## 13.0 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के बाद आप :

- विश्व इतिहास में एक अत्यंत महत्वपूर्ण घटना के रूप में प्रथम विश्व युद्ध के महत्व की जानकारी प्राप्त कर सकेंगे,
- 1914 की भयावह परिस्थिति के कारणों की जानकारी प्राप्त कर सकेंगे,
- इस युद्ध में शामिल देशों तथा अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर, दोनों पर युद्ध के परिणामों के विषय में जान सकेंगे,
- भारत पर युद्ध के प्रभावों के विभिन्न पक्षों को समझ सकेंगे।

## 13.1 प्रस्तावना

प्रथम विश्व युद्ध के विषय पर जानकारी प्राप्त करते समय सर्वप्रथम यह ध्यान रखना आवश्यक है कि यह युद्ध 19वीं शताब्दी के अंतिम दो-तीन दशकों में यूरोप तथा विश्व के अन्य भागों में होने वाले घटना क्रम का परिणाम था, इन पृष्ठों पर आपके समझ यह स्पष्ट हो सकेगा कि यद्यपि यह केवल एक युद्ध था किंतु अंतर्राष्ट्रीय पैमाने पर इसका अभूतपूर्व प्रभाव पड़ा। इस युद्ध ने उस समय के अनेक सामाजिक-आर्थिक एवं राजनैतिक संरचनाओं को ध्वस्त कर दिया। यहाँ हमारा मुख्य उद्देश्य इस युद्ध के मुख्य कारणों एवं परिणामों से आपको अवगत कराना है।

## 13.2 प्रथम विश्व युद्ध के कारण

प्रथम विश्व युद्ध के कारण इतने पेचीदे हैं कि उनकी यथोचित व्याख्या करने का अर्थ होगा यूरोप का 1870 के बाद की राजनैतिक कूटनीति का इतिहास लिखना। दरअसल इसके कारण

ढूँढ़ने की प्रक्रिया में हमें 1789 अथवा लुई XIV के समय तक भी जाना पड़ सकता है। इस युद्ध के कारणों की गहराई में जाने के लिए यूरोप के विभिन्न देशों के अंतर्गत काफी लंबे समय तक क्रियाशील रहने वाली विभिन्न शक्तियों एवं प्रवृत्तियों की संयुक्ता पर दृष्टिपात करना होगा। आइए, हम प्रथम विश्व युद्ध के कुछ मुख्य कारणों पर विचार करें।

### 13.2.1 गुप्त संधि प्रणाली

इस युद्ध का बुनियादी कारण गुप्त संधि प्रणाली था। दरअसल यह प्रणाली बिस्मार्क की देन थी जिसने 1870 के फ्रैंको-प्रशियन युद्ध के बाद जर्मनी के शत्रु देशों के विरुद्ध इस प्रकार की संधि का तंत्र तैयार करने का प्रयास किया, इस कदम ने धीरे-धीरे यूरोप को हथियार बंद विरोधी खेमों में बाँट दिया जो कि एक दूसरे से टकराते रहे। जैसा कि अनुमान लगाया जा सकता है कि संधि प्रणाली कुछ अवसरों पर एक खेमे के सभी सदस्यों के बीच शांति स्थापित करने में सहायक रही। तथा साथ ही मित्र तथा सहयोगी गुटों पर युद्ध आरंभ करने पर भी रोक लगाती रही। तथापि इस प्रणाली के कारण युद्ध आरंभ हो जाने की परिस्थिति में यूरोप की सभी शक्तियों का युद्ध में शामिल होना अवश्यभावी हो गया।

सन् 1871 से 1890 तक बिस्मार्क यूरोपीय राजनीति का सूत्रधार रहा। नए जर्मन साम्राज्य के चांसलर के रूप में वह शांति चाहता था। उसने घोषणा की कि जर्मनी एक "संतुष्ट" राष्ट्र है। वह जानता था कि युद्ध जो कि जर्मनी को शक्ति तथा अंतर्राष्ट्रीय महत्व दे सका है, यदि पुनः छिड़ गया तो उसकी बर्बादी का ही कारण बनेगा। अतः बिस्मार्क यथा स्थिति तथा गुप्त गठबंधन प्रणाली के फलस्वरूप उभरे शक्ति संतुलन का बनाए रखने का समर्थक बन गया। वह जानता था कि फ्रांस, विशेषकर 1870 के अपमान के बाद, जर्मनी का ऐसा कट्टर शत्रु बन चुका था जिससे समझौता करना संभव नहीं था। अतएव बिस्मार्क ने अपनी सारी कूटनीतिक क्षमता एवं राजनैतिक अंतर्दृष्टि जर्मनी की रक्षा के लिए संधि तैयार करने में लगा दी। फ्रांस जर्मनी का शत्रु था तथा बिस्मार्क की सफलता फ्रांस के कूटनीतिक अलगाव में थी। इसी नीति का अनुसरण करते हुए जर्मनी ने 1879 में आस्ट्रिया के साथ इस दोतरफा बचनबद्धता के साथ संधि की कि यदि रूस दोनों में से किसी भी एक शक्ति पर आक्रमण करता है तो दूसरा उसकी सुरक्षा में सहयोग देगा। तीन वर्ष बाद सन् 1882 में बिस्मार्क ने ट्यूनिस के मुद्दे पर चली आ रही फ्रांस-इटली शत्रुता को बढ़ावा दिया तथा इटली को आस्ट्रिया के साथ चली आ रही पुश्तैनी शत्रुता समाप्त करने के लिए प्रेरित किया। सन् 1882 में जर्मनी, इटली एवं आस्ट्रिया के मध्य एक तीन पक्षीय गुप्त संधि एक ओर फ्रांस तथा दूसरी और रूस के विरुद्ध रक्षात्मक संधि के रूप में की गयी।

फ्रैंको-प्रशियन युद्ध के बाद से फ्रांस शक्तिहीन हो चुका था। यह मजबूत संधि उसके लिए काफी बड़ी समस्या प्रस्तुत कर रही थी। जब तक बिस्मार्क शक्ति का केंद्र रहा उसने शक्ति संतुलन की प्रणाली बनाए रखी जिसे उसने 1887 में रूस के साथ पुनर्रक्षा संधि के साथ पूरा किया। फ्रांस का शेष यूरोप से अलगाव बढ़ता ही जा.रहा था। किंतु 1890 के बाद जब बिस्मार्क जर्मनी का चांसलर न रहा तो उसके उत्तराधिकारियों ने उसकी कौशल पूर्ण कूटनीतिज्ञता का रास्ता छोड़ दिया। बर्लिन कांग्रेस में पूर्वीय प्रश्न के समाधान को लेकर रूस एव जर्मनी के संबंधों में कुछ कटुता आई। फ्रांस ने इस नयी परिस्थिति का लाभ उठाया एवं सावधानीपूर्वक कार्य करते हुए 1891 में रूस के साथ संधि बनाने में सफलता पायी। इस प्रकार द्विपक्षीय संधि तैयार हुई जिसने न केवल फ्रांस के अलगाव को समाप्त किया बल्कि तीनपक्षीय संधि के समक्ष प्रतिवादी शक्ति के रूप में उभरी। जर्मनी में बिस्मार्क की कूटनीति के समापन के साथ ब्रिटेन के कूटनीतिज्ञों में नीति को लेकर पुर्नविचार आरंभ हुआ। जर्मन सम्राट की दृष्टि में यह "तथ्य" ठीक नहीं था कि "जर्मनी" एक "संतुष्ट" शक्ति है। इस विचार के साथ उसने विश्व साम्राज्य स्थापित करने की नीति की घोषणा की। उसने यह भी घोषणा की कि जर्मनी का भविष्य समुद्रों पर आधारित है। जर्मनी की यह नीति ब्रिटेन के लिए चेतावनीपूर्ण थी जिसने उसे "श्रेष्ठ अलगाव" से बाहर आने पर मजबूर किया और उसे द्विपक्षीय गठजोड़ के निकट लाया। ब्रिटेन में फ्रांस के साथ सारे मतभेद समाप्त करते हुए मित्रवत् गठजोड़ (Entente Cordiace) पर समझौता किया। उसके बाद इसी प्रकार का समझौता 1907 में रूस के साथ किया। इस प्रकार फ्रांस, रूस एव इंग्लैंड ने तीन पक्षीय मित्र गठजोड़ (Triple Entente) के नाम से एक अलग राजनैतिक संधि तैयार की। तीनपक्षीय मित्र गठजोड (Triple Entente) के तीन पक्षीय संधि (Triple Alliance) के साथ टकराने के

साथ ही यूरोप की स्थिति "हथियार बंद शांति" समान हो गयी। यूरोप की महाद्वीपीय शक्तियाँ हालाँकी एक-दूसरे के साथ युद्ध तो नहीं कर रही थीं लेकिन अपने पड़ोसियों के प्रति ईर्ष्यालु रुख अपना रही थीं, जिसके कारण यूरोप के पूरे वातावरण में डर एवं शंका के बादल मँडरा रहे थे। सभी शक्तियाँ किसी बड़े टकराव की शंका से ग्रस्त होकर तेजी से सैन्यीकरण करती जा रही थीं जो कि यूरोप के दो विरोधी खेमों में बँट जाने का परिणाम था। यूरोप के दो विरोधी हथियार बंद खेमों में बँट जाने को साम्राज्यवाद के उद्भव एवं विकास के संदर्भ में देखा जाना चाहिए। यह वैसी परिस्थिति थी जिसमें यूरोपीय देश व्यापार एवं सीमाओं के विस्तार में तेजी से आगे बढ़ने के लिए तत्पर होकर नए-नए उपनिवेश तैयार कर रहे थे और इसी प्रक्रिया में एक दूसरे से स्पर्धा कर रहे थे। जाहिर है कि अंतर्राष्ट्रीय राजनीति में अपनी भौतिक शक्ति सिद्ध करने की दृष्टि से अपने को सैन्यशक्ति एवं राजनैतिक निपुणता में श्रेष्ठ बनाना आवश्यक था।

## 13.2.2 सैन्यवाद

सैन्यीकरण दरअसल गुप्त समझौतों की प्रणाली से सीधे जुड़ा हुआ था एवं युद्ध का दूसरा महत्वपूर्ण कारण था। बड़ी संख्या में सेनाएं रखना दरअसल क्रांति के दौरान फ्रांस से शुरू हुआ था और बाद के दिनों में नैपोलियन के आधीन बढ़ता गया। जर्मनी के एकीकरण के दौरान बिस्मार्क ने इस नीति का प्रभावशाली ढंग से विस्तार एवं विकास किया। 1870 के फ्रैंको-प्रशियन युद्ध के बाद सभी महाशक्तियों ने अधिक से अधिक मात्रा में सैनिक एवं समुद्री हथियार बढ़ाने आरंभ कर दिए। हथियारों की यह दौड़ सुरक्षा के नाम पर तीव्र की जा रही थी। इसके कारण राष्ट्रों के बीच भय एवं शंका का वातावरण बन गया। यदि किसी एक देश ने अपनी सैन्य शक्ति बढ़ायी अथवा किसी विशेष स्थान पर रेलवे लाइने बिछाने का कार्य किया तो उसके पड़ोसी देश तुरंत डरकर वही कार्य स्वयं करने लगते। यह सिलसिला निरंतर चलता रहा एवं प्रतिदिन हथियारों का जमाव बढ़ता गया। यह कार्य 1912-13 के बालकान युद्धों के बाद और भी तेज हो गया। ऐंग्लो-जर्मन समुद्री शत्रुता भी युद्ध का एक कारण बना।

सैन्यीकरण के फलस्वरूप थल एवं समुद्री सेना कार्य हेतु मानवीय संसाधनों के रूप में कार्यकर्त्ताओं की एक बड़ी संख्या भी आवश्यक थी जो कि मनोवैज्ञानिक रूप से शीघ्र युद्ध की "अनिवार्यता" में ढाले जाते थे। इन लोगों के लिए युद्ध शीघ्र पदोन्नति एवं महत्व के दरवाजे खोलने वाला था। ऐसा नहीं है कि वे अपने नीजि स्वार्थों के लिए ही युद्ध चाहते थे, फिर भी युद्ध की सारी तैयारी को व्यवहार में लाने के अवसर की चाह ने अपना मनोवैज्ञानिक प्रभाव अवश्य ही छोड़ा होगा।

## 13.2.3 राष्ट्रवाद

युद्ध का अन्य महत्वपूर्ण कारण पूरे यूरोप में चलने वाली राष्ट्रवाद की लहर थी। यह राष्ट्रवाद दरअसल फ्रांसीसी क्रांति की देन थी। इटली एवं जर्मनी ने अपने-अपने देशों में राष्ट्रवाद के अभूतपूर्व उद्भव को एक मजबूत राजनैतिक शक्ति के रूप में इस्तेमाल किया। इटली एवं जर्मनी का एकीकरण इसीलिए संभव हो सका क्योंकि कैवर (Cavour) एवं बिस्मार्क राष्ट्रवादी चेतना उभारने में सफल रहे थे। साथ ही इसी प्रक्रिया में लोगों के अंदर जातीय गर्व की भावना का भी विकास होने लगा। और वे अपने देशों को शेष देशों से ऊपर एवं बेहतर समझने लगे जिसके कारण उनका शेष देशों, विशेषकर पड़ोसी देशों के साथ अहंकारपूर्ण व्यवहार दिखाना स्वाभाविक ही था। राष्ट्रवादी भावना की अति ने राष्ट्रों के बीच पहले से बनी हुई खाई को और गहरा कर दिया। उदाहरण के लिए जर्मनी एवं ब्रिटेन जैसे राष्ट्रों के बीच बढ़ी हुयी शत्रुता के पीछे इस अति राष्ट्रवादी चेतना का काफी बड़ा हाथ रहा। इसके परिणामस्वरूप इन राष्ट्रों के बीच थल एवं जल सैन्यीकरण की होड़ और तेज हो गयी। इसी आक्रामक राष्ट्रवादी भावना के कारण एशिया, अफ्रीका एवं बालकान में अपने-अपने स्वार्थों को लेकर यूरोपीय शक्तियाँ आपस में एक दूसरे से टकरा रही थीं। फ्रांसीसी जनता की इसी आक्रामक राष्ट्रवादी भावना के कारण ही उनके अंदर अल्सस एवं लोरेन की क्षति को लेकर बदले की भावना बनी रही, जिसने फ्रांस को जर्मनी का सबसे बडा शत्रु बना दिया। 1886 के बाद फ्रांस एवं जर्मनी के संबंध निरंतर तनावपूर्ण बने रहे। नैपोलियन III के साथ वह पीड़ित राष्ट्रीय जनमत था जो प्रशिया की शक्ति के प्रति ईर्ष्या की भावना में और भी कटुता ला रहा था। अंधी राष्ट्रवादिता के उभार के परिणामस्वरूप

1870 में फ्रैंको-प्रशियन युद्ध छिड़ा एवं अंतर्राष्ट्रीय संबंधों में लोकप्रिय पागलपन का एक नया दौर शुरु हुआ। इसी दौरान अधूरी इटली का भी नारा उठा जो कि आस्ट्रिया से इतालवी भाषी वेरिस्ते एवं त्रैंतिनो जिले हड़पने की इटली राष्ट्रवादी आकाक्षां की अभिव्यक्ति थी। इसके लिए इटली ने जर्मनी से सहयोग मांगा।

जार साम्राज्य के पश्चिम में विद्रोही राष्ट्र विद्यमान थे। 1870 के बाद पोल एवं यूकरेनियाई, लिथूनियाई एवं फिन जातियाँ जार साम्राज्य से मुक्त होने के जबरदस्त प्रयास कर रही थीं। इन राष्ट्रों के प्रति रूस की नीति, विशेषकर अलेक्जैंडर III के आधीन 1881-1894 के दौरान, इनके रूसीकरण का जोरदार प्रयास रहा। जिसके नतीजे में इन राष्ट्रीय समूहों के सबसे अधिक देशभक्त तत्व रूसी सामाजिक क्रांतिकारियों की ओर आकर्षित हुए जिन्होंने तुरंत ही पूरे क्षेत्र में संबंध स्थापित कर लिए। इन स्थानीय आंदोलनों में कट्टरवादी भावनाएँ निहित थीं जो कि इस दौरान अपने उत्थान पर थीं।

अंततोगत्वा, असंतुष्ट बालकान जनता की असंतुष्ट राष्ट्रीय आकाक्षांओं ने बालकान प्रायद्वीप को बारूद का ढेर बना दिया जिसने पूरे यूरोप को तुरंत ही अपनी आग के घेरे में ले लिया। वास्तव में युद्ध की ओर धकलने वाली तमाम घटनाओं के पीछे राष्ट्रवाद की ही प्रेरक भावना थी।

## 13.2.4 साम्राज्यवाद की अपनी आवश्यकताएँ

हमारे उद्देश्य के संबंध में साम्राज्यवाद का अर्थ एकक्षत्र पंजीवादी दौर में विश्वस्तर पर पूंजीवादी संचय है, साम्राज्यवाद ने उत्पादन में निरंतर वृद्धि को बढ़ावा दिया जिसके कारण संबद्ध राष्ट्र नए बाजारों एवं कच्चे माल के स्रोतों की खोज में जुट गए। परिणामतः इस होड़ में लगी जनसंख्या में काफी वृद्धि हुई जिसका एक हिस्सा विश्व के उन हिस्सों में जाने के लिए तत्पर था जिन पर अभी किसी का अधिकार नहीं था। औद्योगिक क्रांति के कारण बचत पूंजी में भी वृद्धि हुई जो कि देश से बाहर निवेश की जा सकती थी। इस स्थिति ने आर्थिक शोषण एवं राजनैतिक स्पर्धा को तेज कर दिया। इन तमाम घटनाओं के कारण महान शक्तियों ने चीन में स्वतंत्र प्रभाव क्षेत्र के रूप में क्षेत्र प्राप्त करने के लिए तुर्की एवं अन्य स्थानों में रेलमार्ग बनाने के लिए आपस में अफ्रीका का विभाजन आरंभ कर दिया। 19वीं शताब्दी के अंत तथा बीसवीं शताब्दी के आरंभ में बाजारों, कच्चे माल तथा उपनिवेशों के लिए संघर्ष और भी तेज हो गया क्योंकि जर्मनी और इटली भी 19वीं शताब्दी के अंतिम दो-तीन दशकों में इस होड़ में शामिल हो गए। 1914 तक यूरोप की सभी महान्‌शक्तियों ने अफ्रीका का कोई न कोई हिस्सा प्राप्त कर लिया था। रेलमार्ग बनाने में, जोकि आर्थिक साम्राज्यवाद का सबसे अधिक महत्वपूर्ण पक्ष है क्योंकि इसमें आर्थिक लाभ के साथ-साथ राजनैतिक पक्ष भी शामिल होता है, इंग्लैंड के रेलमार्ग केप से केरो तक फैल गए, रूस ने साइबेरिया तक तथा जर्मनी ने बगदाद रेलमार्ग तैयार कर लिए। प्रथम रेलमार्ग जर्मन, फ्रांसीसी एवं बेल्जियम हितों से टकराया, दूसरे ने रूस-जापान युद्ध में भूमिका निभाई तथा तीसरे के कारण जर्मनी तथा तीनपक्षीय मित्र संधि के बीच निरंतर संघर्ष चलता रहा।

सामान्यतः किसी देश के साम्राज्यवादी रुख अपनाने के पीछे आर्थिक हित और उसके साथ जुड़े हुए राजनैतिक उद्देश्य छिपे होते थे। उपनिवेश प्राप्त करने की देशों की नीति के पीछे कुछ प्रभावशाली, क्रियाशील राजनैतिक नेताओं का हाथ होता था जो इस दिशा में सोचते अन्यथा उपनिवेश प्राप्त करने की अनिवार्यता नहीं होती थी। ब्रिटेन ने 1860 के दशक में अथवा 1870 के दशक में और इसके बाद भी उपनिवेश प्राप्त करने की ओर अधिक ध्यान नहीं दिया यद्यपि कि जनसंख्या, निर्यात एवं पूंजी बचत की आर्थिक आवश्यकताएँ लंबे समय से बनी हुई थीं। इटली एवं रूस में से किसी के पास भी निर्यात के लिए अतिरिक्त उत्पादन अथवा पूंजी नहीं थीं फिर भी वे उपनिवेश प्राप्त करने की होड़ में लग गए। जर्मनी जो कि औद्योगिक रूप से फ्रांस से कहीं आगे था। बिस्मार्क की उपनिवेश विरोधी नीति के कारण उपनिवेश प्राप्त करने की दौड़ में धीमा रहा। बिस्मार्क जर्मनी को केवल यूरोप की ही सर्वश्रेष्ठ शक्ति के रूप में देखना चाहता था। दरअसल साम्राज्यवादी प्रवृत्तियों को बढ़ावा देने के पीछे कुछ ही लोगों की सोच थी जिनमें विशेषकर, बुद्धिजीवी, अर्थशास्त्री, देशभक्त पत्रकार एवं राजनीतिज्ञ शामिल थे जो इस नीति का प्रचार कर रहे थे।

साम्राज्यवाद के राजनैतिक उद्देश्यों के अतिरिक्त अन्य पक्ष भी शामिल थे जो उपनिवेश

प्राप्त करने के लिए निरंतर प्रेरित कर रहे थे। इनमें से एक पक्ष तो अन्वेषणकर्ताओं एवं साहसिक गतिविधियों में लगे लोगों की वैज्ञानिक खोजों में रुचि अथवा साहस एवं जोखिम भरे कार्यों के प्रति रूझान अथवा धन एवं शक्ति और प्रभाव की लालसा रखता था। उपनिवेशवाद को बढ़ावा देने में ईसाई मिशनरियों की भूमिका भी काफी महत्वपूर्ण रही। इनमें सबसे अधिक प्रसिद्ध डेविड लिविंगस्टोन था जोकि लंदन मिशनरी सोसाइटी द्वारा अफ्रीका भेजा गया था। लगभग सभी यूरोपीय शक्तियों ने पूरे अफ्रीका एवं एशिया में इन मिशनरियों की गतिविधियों में हिस्सा लिया। अन्य मुख्य ईसाई मिशनरियों जिन्होंने बड़े पैमाने पर अफ्रीका में अपनी भूमिका निभाई वे चार्ल्स गॉर्डन, सन जॉन कर्क एवं लार्ड लुगार्ड थे।

## 13.2.5 समाचार पत्र, प्रेस एवं जनमत

महायुद्ध का अन्य मुख्य कारण पूरे यूरोप में समाचार पत्रों द्वारा जनमत को प्रदूषित करना था। समाचार पत्र अक्सर विदेशों की स्थिति को तोड़-मरोड़ कर अपने देश के अंदर राष्ट्रवादी भावनाएँ उभारते थे। कई मौकों पर जबकि कठिन अंतर्राष्ट्रीय समस्याओं पर शांतिपूर्ण समाधान संभव हो सकते थे, इन समाचार पत्रों के इस प्रकार के रवैये के कारण टकराव की संभावना रखने वाले देशों के अंदर स्थिति खतरनाक बन गयी। मुख्य समाचार पत्र अक्सर राष्ट्रीय एवं अंतर्राष्ट्रयी राजनीति में परिणाम प्रस्तुत करने के उद्देश्य से अनावश्यक रूप से आगे बढ़ जाते थे। 1870 में बिस्मार्क के ई.एम.एस. तार को प्रकाशित करने के कारण पेरिस में अति राष्ट्रवादी जनमत को बढ़ावा मिला। और उसने फ्रैंको-प्रशियन युद्ध की संभावनाओं को प्रबल बना दिया। इससे स्पष्ट हो जाता है कि यूरोपीय राजनीति में तनाव पैदा करने में प्रेस ने कितनी बड़ी भूमिका निभाई।

## 13.2.6 तात्कालिक कारण

आस्ट्रियन हैब्सबर्ग साम्राज्य सन् 1900 के बाद से उभरते हुए राष्ट्रवाद की चेतावनी से जूझ रहा था। बहुराष्ट्रीय साम्राज्य पर निरंतर नियंत्रण बनाए रखना दुष्कर था। ऐसी परिस्थिति में जबकि विएना में राजनैतिक एवं सैनिक नेतृत्व काउंट बर्च टोल्ड एवं कोनार्ड के हाथों में था, यह काम और भी मुश्किल हो गया था। आस्ट्रिया को सर्बिया के संदर्भ में एक और पाइडमाँट (Piedmont) अथवा एक और प्रशिया नजर आया और उन्हें जर्मनी एवं इटली के एकीकरण की प्रक्रिया में बिस्मार्क एवं कैवर के हाथों 1859 एवं 1866 में देश की अपमानजनक हार का स्मरण आया। 1914 तक सर्बिया के नेतृत्व में राष्ट्रीय एकीकरण के लिए स्लाव जनता का इसी प्रकार का आंदोलन उभरा। यद्यपि कि यह देश काफी छोटा था एवं इसकी जनसंख्या केवल पचास लाख के आसपास थी किंतु इसके जनमानस में ऐसी शक्ति एवं ऊर्जा थी जो भावी युगोस्लाविया की नींव रख सकती थी।

सर्बिया केवल हैब्सबर्ग के लिए ही चिंता का कारण नहीं था किंतु जर्मनी के एकीकरण में बाधा था एवं बालकानों के मध्य मित्रसंधि के प्रभाव का केंद्र बिंदु भी था। सर्बिया जर्मन-आस्ट्रियाई-तुर्की संधि में धुरी का काम कर सकता था। इस प्रकार साराजीवो द्वारा उत्पन्न किया गया संकट केवल आस्ट्रिया एवं सर्बिया के बीच का झगड़ा न रह गया बल्कि दोनों महान् संधियों की शक्ति परीक्षा का कारण बन गया। वह घटना जिसके कारण युद्ध आरंभ हुआ एक धर्मांध व्यक्ति द्वारा जिसके संबंध सर्बियाई सरकार से स्थापित नहीं किए जा सके, हैब्सबर्ग के सिद्धांत के उत्तराधिकारी की हत्या थी। 28 जून 1914 के आर्कड्यूक फ्रैंज फर्डिनांड और उसकी पत्नी ने साराजीवों की राजधानी बोसनियन का दौरा किया और आस्ट्रियाई सेरो, गार्विलो प्रिंसिप के द्वारा उसकी हत्या कर दी गयी। विएना ने हत्या को सर्बिया द्वारा युद्ध भड़काने का प्रयास घोषित किया और, ऐसी माँगे प्रस्तुत कीं जो नकारी ही जानी थी, फलतः 28 जुलाई को विएना की ओर से युद्ध की घोषणा कर दी गयी। संधि की भावना बनी ही हुई थी और दो हथियार बंद शक्तियाँ अंततोगत्वा टकरा कर ही रहीं। ब्रिटेन के विदेश सचिव ने इस परिस्थिति पर टिप्पणी करते हुए कहा था, "पूरे यूरोप में अंधेरा छा रहा है और हम अपने जीवन में फिर रोशनी न देख सकेंगे।"

**बोध प्रश्न-1**

1 नीचे दिए गए वक्तव्य पढ़े और सही (✓) अथवा गलत (×) के निशान लगाएँ।

*i)* प्रथम विश्व युद्ध के कारणों को जानने के लिए यूरोप के 19वीं शताब्दी के इतिहास

को जानना अत्यावश्यक है।

ii) द्विपक्षीय संधि, तीनपक्षीय संधि के विरुद्ध प्रतिक्रिया के रूप में गठित हुआ था।

iii) राष्ट्रीयवाद के उत्थान से यूरोपीय देशों में एक दूसरे के प्रति शंका एवं बैर का वातावरण बन गया।

iv) यूरोप में साम्राज्यवादी आवश्यकताओं के विस्तार ने युद्ध के तात्कालिक कारण का काम किया।

2 तीनपक्षीय संधि में शामिल देशों के नाम बताएँ। संधि का उद्देश्य क्या था?

..........................................................................................................

..........................................................................................................

3 यूरोपीय देशों पर सैन्यवाद का क्या प्रभाव पड़ा?

..........................................................................................................

..........................................................................................................

..........................................................................................................

## 13.3 युद्ध के परिणाम

आप देखेंगे कि 1914 का युद्ध कई मामलों में मानवीय इतिहास में अनोखा रहा है। इससे पहले भी यूरोपीय देशों के बीच युद्ध होते रहे थे जिनमें कई देश शामिल होते थे। किंतु यह युद्ध अत्यधिक संगठित देशों के बीच का टकराव था। जिनके पास संपूर्ण आधुनिक टेकनालॉजी के संसाधन मौजूद थे और आक्रमण एवं रक्षा के सभी दाँव पेंच उन्हें मालूम थे। यह प्रथम युद्ध था जिसके पनपने एवं सुदृढ़ होने में पूरे 19वीं शताब्दी का समय लगा था। युद्ध में शामिल शक्तियों ने इस युद्ध में पूरी निष्ठा एवं उत्तेजना के साथ हिस्सा लिया क्योंकि उनका विश्वास था कि यह युद्ध ऊँचे आदर्शों एवं अस्तित्व में बने रहने के लिए लड़ा जा रहा था। यह युद्ध जल, थल एवं आकाश में सभी तरीकों से लड़ा गया था। युद्ध में नये आर्थिक संसाधन और यहाँ तक मनोवैज्ञानिक युद्ध नीति का भी उपयोग किया गया क्योंकि युद्ध में शामिल देशों का विश्वास था कि यह युद्ध जनयुद्ध था। यह युद्ध जनसमूहों के बीच का युद्ध था केवल सेनाओं और जनसेनाओं के बीच का नहीं। युद्ध तुरंत ऐसी स्थिति में पहुँच गया जहाँ सेनाओं अथवा नेताओं के लिये यह बहुत मुश्किल हो गया था कि वे इसके भविष्य पर नियंत्रण रख सकें। स्वाभाविक ही था कि ऐसे युद्ध के दूरगामी परिणाम होते। यहाँ हम उनमें से कुछ परिणामों पर विचार करेंगे

### 13.3.1 मानव जीवन की क्षति

युद्ध के दौरान मानव जीवन और भौतिक संपदा के रूप में काफी बड़ा नुकसान हुआ। लाखों जाने गयीं। सबसे अधिक नुकसान रूस का हुआ और वहाँ मरने वालों की संख्या बीस लाख तक पहुँच गयी थी। इसी प्रकार जर्मनी के भी लगभग बीस लाख लोग मारे गये, फ्रांस और उसके उपनिवेशों को मिलाकर तेरह लाख के आसपास लोग मारे गए और ऐसी ही कुछ स्थिति आस्ट्रिया की भी रही। ब्रिटेन के भी लगभग दस लाख लोगों ने अपनी जाने गँवायीं। अमरीका के लगभग एक लाख लोग इस युद्ध में मारे गये। कुल मिलाकर लगभग एक करोड़ लोगों ने अपनी जानें गँवायीं और इनमें से अधिकतर चालीस वर्ष से भी कम आयु के थे। इस संख्या के दुगने लोग घायल हुए और अधिकांश हमेशा के लिए अपंग हो गये। एक फ्रांसीसी अनुमान के अनुसार 1914 और 1917 के बीच हर मीनट एक फ्रांसीसी अपनी जान गँवाता रहा। निश्चित रूप से मरने की ये दर किसी भी यूरोपीय युद्ध में नहीं देखी गयी थी। इतनी बड़ी संख्या में मानव-जीवन के नुकसान ने लिंग और आयु दोनों स्तरों पर जनसंख्या की संरचना को बुरी तरह प्रभावित किया। महिलाओं में जान का नुकसान कम हुआ था। इस प्रकार जहाँ 1911 में ब्रिटेन में प्रति 1000 पुरुष पर 1067 महिलायें थीं, 1921 में ये अनुपात प्रति 1000 पुरुष 1093 महिलायें पर हो गया। इस परिवर्तन के कारण समाज में विभिन्न प्रकार की समस्याओं का उभरना स्वाभाविक ही था।

### 13.3.2 सामाजिक एवं आर्थिक परिवर्तन

उन सभी देशों में जहाँ नारी उत्थान आंदोलन 1914 के पहले शुरू हो चुका था, युद्ध के कारण उनमें काफी तेजी आ गयी। 1918 में ब्रिटेन में तीस वर्ष से ऊपर की महिलाओं को संसदीय चुनाव में मत देने का अधिकार प्राप्त हो गया। ऐसा इसलिए हुआ क्योंकि युद्ध के लिए संपूर्ण राष्ट्रीय प्रयास की आवश्यकता थी और आधुनिक युद्ध में असैनिक जन समूहों में उत्साहवर्धन और औद्योगिक उत्पादन बढ़ाना उतना ही महत्वपूर्ण बन चुका था जितना कि सैनिकों को लेकर युद्ध करना। महिलाओं ने सभी गतिविधिओं में भाग लिया। फैक्ट्रियों में काम किया, दुकानों, दफ्तरों एवं स्वैच्छिक सेवाओं में भाग लिया तथा अस्पतालों और स्कूलों को चलाया। उन्होंने पुरुषों के साथ कंधे से कंधा मिलाकर काम किया और उनके समक्ष बराबरी का दावा पेश किया। उनके लिये अब उद्योगों और व्यापारों में काम करना आसान हो गया था क्योंकि काम के परंपरागत् तरीके अब समाप्त कर दिये गये थे। युद्ध क्षेत्र में बराबर के सहयोगी होने के कारण समाज के अंदर वर्ग और धन के बंधन काफी हद तक कमजोर पड़ गये थे। सामाजिक मूल्यों में भी काफी बड़ा परिवर्तन आया और युद्ध से फायदा उठाने वाले लोग समाज के अंदर विशेष रूप से नफरत की निगाह से देखे जाने लगे।

यूरोप में हुए पिछले युद्धों के मुकाबले में इस युद्ध की लागत में अद्भुत रूप से बढ़ोतरी हुई--नेपोलियन के साथ 20 वर्ष के युद्ध में ब्रिटेन के ऋण में आठ गुना बढ़ोतरी हुई जबकि 1914 से 1918 के बीच यह ऋण बारह गुना हो गया। ऐसा अनुमान है कि युद्ध में शामिल देशों का लगभग 1860 खरब (186 बिलियन) डालर का नुकसान हुआ। इतनी बड़ी धनराशि ध्वंसकारी कार्यों में लगने से निश्चित रूप से मानवीय कार्यों, चाहे वह शिक्षा हो अथवा स्वास्थ्य या कोई अन्य कार्य, का काफी बड़ा नुकसान हुआ क्योंकि यही धन इन कार्यों में भी लगाया जा सकता था। युद्ध से पूर्व विश्व व्यापार को बढ़ावा देने वाले सारे प्रयास बुरी तरह प्रभावित हुए। यह आर्थिक उथल-पुथल युद्ध का सबसे अधिक चिन्ताजनक परिणाम रही। युद्ध ने यूरोप की औद्योगिक प्रभुसत्ता समाप्त कर दी और चार वर्ष के बाद जब यूरोप ने इस झटके से उभर कर फिर से इस क्षेत्र में हाथ डाला तो बाकी देशों से स्वयं को काफी पीछे पाया। अमरीका ने निर्यात में काफी प्रगति की और दक्षिण अमरीका एवं भारत में काफी स्थानीय उद्योग पनपे। जापान ने कपड़ा व्यापार में प्रवेश किया और चीन, भारत और दक्षिणी अमरीका के बाजार माल से भर दिए। अंतर्राष्ट्रीय व्यापार का नक्शा एकदम बदल गया। जब यूरोपीय नेताओं ने सामान्य स्थिति बनाने का आह्वान किया, जिसका अर्थ 1913 की विश्व स्थिति में जाना था, तो उनके विचार में यह नहीं आया कि आधुनिक युद्ध भी एक प्रकार की क्रांति है और 1913 का विश्व इतिहास का उसी प्रकार से हिस्सा बन चुका था जिस प्रकार हैब्सबर्ग एवं रोमानोफ साम्राज्य इतिहास का हिस्सा थे। जैसा कि कहा जा चुका है, युद्ध के बाद के सभी आर्थिक नारे किसी न किसी रूप में यूरोप को विश्वयुद्ध से पहले के स्तर पर लाने से संबंधित जैसे, पुनर्निर्माण, क्षतिपूर्ति, पूर्ववत् संबंध, युद्ध ऋणों के भुगतान और सोने स्तर को पूर्ववत् बनाना आदि।

युद्ध के बाद के दौर में बालकान में राष्ट्रवाद की जड़े इतनी मजबूत हो चुकी थी कि वे एक संतुलित राष्ट्रीय अर्थव्यवस्था से कम स्तर रखने वाले किसी भी समाधान के विरुद्ध हिंसात्मक रुख अपना रहे थे, नए-नए औद्योगिक राष्ट्र अपनी रक्षा के लिए प्रयासरत् थे जबकि--पुराने औद्योगिक केंद्र नए विरोधियों के मुकाबले में अपनी टूटी हुई अर्थव्यवस्था की सुरक्षा चाहते थे।

फ्रांस को अल्सेस (Alsaece), एवं लोरेन (Larraine) उसके साथ बने रहने तथा 15 वर्षों तक सार (Saar) कोयला खदानों को पूर्ण रूप से प्राप्त कर लेने के कारण आर्थिक पुनर्निर्माण में काफी सहायता मिली। किन्तु इसके अतिरिक्त कुछ ऐसी आर्थिक समस्याएँ भी थीं जो केवल जर्मनी द्वारा क्षतिपूर्ति करने से नहीं सुलझ सकती थीं। उदाहरण के लिए बेल्जियम के महत्वपूर्ण रेलमार्ग 2400 मील की रेल पटरी ध्वस्त हो जाने के कारण बर्बाद हो गए थे और युद्ध के अंत तक केवल 20 लोकोमोटिव देश में बचे थे, इसकी 51 स्टील मिलों से आधी से अधिक बिल्कुल तबाह हो गयीं और शेष बुरी तरह प्रभावित हुईं; दरअसल इस प्रकार का नुकसान प्रत्येक राष्ट्र को हुआ था। पुनर्निर्माण के आरंभिक चरण वास्तव में काफी दुष्कर थे क्योंकि अपंग सैनिकों के लिए काम उपलब्ध कराना, बेघर हुए लोगों को घर उपलब्ध कराना, उद्योगों को सामान्य गति देना सरल कार्य न था।

### 13.3.3 जनतांत्रिक आदर्श

अपनी तमाम तबाहियों के बावजूद युद्ध के परिणामस्वरूप जनतांत्रिक आदर्श एवं विचार भी उभरे जो कि युद्ध के पूर्व जनमानस के लिए अपरिचित संकल्पनाएँ थीं: युद्ध की घोषणा विश्व को जनतांत्रिक मूल्यों के लिए सुरक्षित बनाने के लिए की गयी थीं। स्वाभाविक ही था कि नए-नए स्वतंत्र राष्ट्र अपने देश में जनतांत्रिक मूल्यों को बढ़ावा देने के लिए तत्पर थे। एक के बाद एक देश प्रजातांत्रिक संविधान तैयार करते जा रहे थे। स्वयं जर्मनी ने इस दिशा में पहल करते हुए वीमर (Weimar) गणराज्य की स्थापना में आज तक का सबसे संपूर्ण जनतांत्रिक संविधान लिखा। इस संविधान का आधार ब्रिटेन, स्विटजरलैंड, फ्रांस एवं अमरीकी प्रजातंत्र थे। किन्तु नए प्रजातंत्र का सबसे कमजोर पक्ष यह था कि यह उस सामाजिक ढांचे पर लादा जा रहा था जो कि आश्चर्यजनक रूप से बहुत ही कम परिवर्तित हुआ था। जनसमूहों को एक सूत्र में बाँधने में केवल एक ही सामान्य भावना थी और वह थी अपने राष्ट्र की हार एवं सहयोगी राष्ट्रों द्वारा शांति के शर्तों के विरुद्ध लौकिक राष्ट्रीय रोष। नयी सत्ता देर तक नहीं टिक सकती थीं क्योंकि उसमें प्रजातांत्रिक आधारों पर प्रशासन चलाने की संरचनात्मक योग्यता नहीं थी।

इसी प्रकार अन्य यूरोपीय राष्ट्रों में जहाँ भी प्रजातंत्र की नींव पड़ी, अपने अधूरे स्वरूप के कारण उनकी स्थिति डाँवाडोल रही। युद्ध के बाद थोड़े समय के लिए पूरे यूरोप में प्रजातांत्रिक मूल्य फैले। युद्ध ने पूरे विश्व को इस भावना से ओत-प्रोत किया। किन्तु शीघ्र ही ऐसा महसूस किया गया कि संसदीय प्रणाली की सरकारों ने पश्चिमी राजनैतिक मूल्य उन राष्ट्रों पर थोप रहे थे जिन्हें स्वराज्य का थोड़ा बहुत ही ज्ञान था और कुछ के पास बिल्कुल नहीं था। युद्ध के द्वारा उभरी राष्ट्रवादी भावना का चरमसीमा पर पहुँचना इन प्रयोगों के लिए उत्तरदायी था किन्तु पश्चिम का सामाजिक एवं आर्थिक जीवन अभी भी इतना अधिक प्रगति नहीं कर सका था जिसके कारण इस प्रक्रिया में कठिनाई हो रही थी। यूरोपीय शक्तियों के उपनिवेशों में भी स्वराज्य एवं स्वतंत्रता प्राप्त करने की भावना जोर पकड़ रही थी।

### 13.3.4 1919 का पेरिस सम्मेलन

1815 की विएना कांग्रेस की अपेक्षा 1919 का पेरिस सम्मेलन का स्वरूप अधिक प्रतिनिधि बोधक था। राजाओं की जगह अधिकतर देशों के प्रधान मंत्री एवं विदेश मंत्री अपने देश का प्रतिनिधित्व कर रहे थे। केवल राष्ट्रपति वुडरोन विल्सन एवं किंग एलबर्ट इसके अपवाद थे। कुल बत्तीस राष्ट्रों ने इस सम्मेलन में प्रतिनिधित्व किया। सम्मेलन ने जो कुछ भी सफलता अर्जित की उसमें समय, स्थान प्रतिनिधि संघटन, संगठन एवं सम्मेलन की कार्यवाही की प्रक्रिया आदि सभी की महत्वपूर्ण भूमिका रही।

जहाँ तक समय का प्रश्न है, यह सम्मेलन जर्मनी के साथ युद्ध विराम पर समझौता करने के नौ हफ्ते बाद रखा गया। ऐसा करते हुए अमरीका एवं ब्रिटेन की आंतरिक राजनैतिक स्थिति भी ध्यान में रखी गयी थी। राष्ट्रपति विल्सन ने स्वयं सम्मेलन में हिस्सा लेने का निश्चय किया जिसके कारण दिसंबर में उनके द्वारा कांग्रेस में "संघीय राष्ट्र" संदेश पारित करने तक सम्मेलन नहीं किया जा सका। ब्रिटेन में भी लॉयड जार्ज सम्मेलन से पूर्व चुनाव करवाना चाहते थे जो कि मध्य दिसंबर में पूरे हुए। विजय के उल्लास में "कैसर (Kaiser) को फाँसी दो", "जर्मनी क्षतिपूर्ति करो" और "वीरो की मातृभूमि" जैसे नारे उठे। चुनाव परिणामों से हाउस ऑफ कॉमन्स के स्वरूप में भारी परिवर्तन आया क्योंकि "संसद में ऐसी कठोर मुद्रा वाले लोगों का प्रवेश हुआ जैसे कि उन्होंने युद्ध में महत्वपूर्ण कार्य किए हों।" चुनाव के समय को देखते हुए इसके परिणाम आश्चर्यजनक न थे।

सम्मेलन स्थल का चुनाव भी काफी सोच-विचार कर किया गया था। आरंभ में विएना में सम्मेलन करने का सुझाव आया था लेकिन राष्ट्रपति विल्सन ने पेरिस को प्राथमिकता दी जहाँ कि भारी संख्या में अमरीकी सेनाएँ तैनात थी। यह सांकेतिक भी हो सकता था क्योंकि 1871 में वर्साइल्स में हॉल ऑफ मिरर के समक्ष प्रथम जर्मन साम्राज्य की घोषणा की जा चुकी थी इसके अतिरिक्त प्रधान मंत्री जार्ज क्लिमेंस्यू (George Clemencoy) जोकि सम्मेलन में सबसे अनुभवी नेता थे और स्वाभाविक रूप से सम्मेलन की अध्यक्षता करने वाले थे, को सेडन (Sedan) का पूरी तरह स्मरण था जबकि फ्रैंको-प्रशियन युद्ध में फ्रांस की हार हुई थीं और इसे ध्यान में रखते हुए सम्मेलन का स्थान पेरिस चुनना उस हार का जवाब हो सकता था।

सम्मेलन प्रतिनिधियों का चुनाव और भी अधिक महत्वपूर्ण था। इसमें केवल सहयोगी मित्र राष्ट्रों का ही प्रतिनिधित्व नहीं था बल्कि "संबद्ध शक्तियाँ" भी इसमें प्रतिनिधित्व कर रही थीं। युद्ध के अंतिम दिनों में मुख्यतः इस उद्देश्य से कई देश युद्ध में शामिल हो गए थे कि वे अंतिम समझौते में हिस्सेदारी कर सकें। जिन तीन मुख्य पक्षों को प्रतिनिधित्व नहीं मिला था वे थे : गैर संबद्ध शक्तियाँ, रूसी जोकि अभी भी गृह युद्ध एवं हस्तक्षेप के युद्ध का सामना कर रहे थे और भूतपूर्व शत्रु, जर्मनी, आस्ट्रिया, हंगरी, बुलगारिया और तुर्की, इन शक्तियों की अनुपस्थिति भविष्य की परिस्थितियों की दृष्टि से महत्वपूर्ण थी। विशेष रूप से जर्मनी की अनुपस्थिति से डिकटाट (Dictat) (जो कि उस पर लादी गयी व्यवस्था थी और जिसके लिए न तो जर्मनी अपने को उत्तरदायी समझता था और न ही उसके लिए जर्मनी की दृष्टि में कोई सम्मान था) के रूप में यूरोप को शांति प्राप्त हुई थी। समझौते की प्रक्रिया में यह कदम सबसे ज्यादा कमजोर पक्ष सिद्ध हुआ।

चित्र 2 : रूसी और जर्मन सैनिक साथ-साथ

अपनी तमाम सीमाओं के बावजूद, पेरिस सम्मेलन विश्व में किसी भी मौके पर हुआ सबसे बड़ा एवं महत्वपूर्ण सम्मेलन था, सम्मेलन में 32 प्रतिनिधि मण्डल शामिल थे जोकि विश्व की तीन चौथाई जनसंख्या का प्रतिनिधित्व कर रहे थे। किन्तु क्योंकि स्वयं युद्ध बड़ी शक्तियों के बीच का युद्ध था इसलिए इस मौके पर भी सारा नियंत्रण दस लोगों की एक समिति के हाथ में था। इस समिति में पाँच बड़े राष्ट्र; अमरीका, ब्रिटेन, फ्रांस, इटली एवं जापान के दो दो सदस्य शामिल थे। शीघ्र ही जापान ने कार्यवाही में रुचि लेना बंद कर दिया और अलग-थलग रहा। अप्रैल 1919 के अंत तक इटली ने भी हाथ खींच लिया और अंततः विख्यात "तीन बड़े राष्ट्र" सारी कार्यवाही चलाते रहे। जैसा कि आप जानते हैं कि इन "तीन बड़े राष्ट्रों" का प्रतिनिधित्व अमरीकी राष्ट्रपति 'विल्सन', फ्रांसीसी प्रधान मंत्री क्लीमेंस्यू एवं ब्रिटेन के प्रधान मंत्री लॉयड जार्ज कर रहे थे। जैसा कि पहले बताया जा चुका है कि सम्मेलन अंततः दो विरोधी हितों वाले व्यक्तियों के बीच समझौता था। विल्सन आदर्शवादी थे और प्रजातंत्र तथा लीग ऑफ नेशन्स के प्रति कटिबद्ध थे। दूसरी ओर क्लीमेंस्यू पुरानी परंपरा के यथार्थवादी थे और जर्मनी, जोकि फ्रांस की सुरक्षा पर प्रश्नवाचक चिन्ह लगाए हुए था, के प्रति द्वेष की भावना से ओत-प्रोत थे।

इस प्रकार सम्मेलन आदर्शवाद एवं यथार्थवाद के मूल्यों के बीच टकराव के रूप में परिवर्तित हो गया। इसके अतिरिक्त, सभी राष्ट्रों एवं अधिकतर राजनेताओं के अंतर्द्वंद्व की भी उपेक्षा नहीं की जा सकती। सम्मेलन का स्वरूप वैसा ही था जैसा कि 1919 के दौर में लोगों की मानसिकता बन चुकी थी। सम्मेलन एक ओर आशा एवं आदर्शों एवं दूसरी ओर उत्पीड़ित जनता की स्वाभाविक प्रतिक्रिया के रूप में प्रतिशोध एवं प्रतिकार की भावना के तनावों के बीच घिरी हुई थी। आप स्वयं अनुमान लगा सकते हैं कि ऐसी पृष्ठभूमि के संदर्भ में यह सम्मेलन संतोषजनक परिणाम क्यों नहीं दे सका। ऐसी परिस्थिति में जहाँ लचीलापन आवश्यक था वहाँ सम्मेलन ने कठोर रुख अपनाया और जहाँ कठोरता एवं दृढ़ता की आवश्यकता थी वहाँ कमजोरी सामने आई। इतिहासकार डेविड थामसन (David Thamson) के शब्दों में "इतिहास में पेरिस सम्मेलन एक स्पष्ट असफलता का प्रतीक है, लेकिन यह असफलता मानव बुद्धि की असफलता और अंशतः सांगठनिक एवं कार्यविधियात्मक असफलता थी। इसका कारण अति यथार्थवाद अथवा आदर्शवाद की कमी नहीं बल्कि दोनों का गलत इस्तेमाल था।"

## 13.3.5 नया शक्ति संतुलन

जैसा कि आपने पहले पढ़ा है, महायुद्ध केवल युद्ध ही नहीं था बल्कि जीवन के हर पहलू में एक क्रांति थी। सामाजिक आर्थिक एवं राजनैतिक क्षेत्र में भयानक उथल-पुथल की भाँति ही विश्व में शक्ति संतुलन के अस्थायी पुनर्वितरण की समस्या भी थी। इस युद्ध के परिणामस्वरूप पुराने रूस, आस्ट्रिया-हंगरी, जर्मनी एवं तुर्की साम्राज्यों का राजनैतिक एवं सैनिक पतन हो चुका था। युद्ध से पूर्व के जर्मनी एवं आस्ट्रिया का प्रभुत्व एक समय के लिए समाप्त हो गया। शांति के संस्थापकों का बुनियादी उद्देश्य यह निश्चित करना था कि जर्मनी पर नियंत्रण रखा जा सके और सैनिक रूप में उसे कमजोर किया जा सके। राष्ट्रीय गठन, आर्थिक उपयुक्तता एवं सैन्य सुरक्षा से संबंधित उभरती हुई नयी वास्तविकताओं की दृष्टि से पूर्वी एवं मध्य यूरोप का नए सिरे से नक्शा तैयार करने की भी एक समस्या थी।

जर्मनी को कमजोर बनाने के लिए कई उपाय किए गए। जर्मन सेनाओं को उनके द्वारा प्राप्त किए गए संपूर्ण भू-भागों से हट जाने का निर्देश दिया गया। अल्सेस एवं लोरेन फ्रांस को दोबारा प्राप्त हो गए। जर्मनी को राइन नदी (Rhine) के बाएँ किनारे को किलाबंद करने की अनुमति नहीं थी। उसकी सेना की संख्या घटाकर 100,000 कर दी गयी और हथियारों के उत्पादन पर पाबंदी लगा दी गयी। इसी प्रकार की कार्यवादी नौसेना एवं उपनिवेशों के संदर्भ में भी की गयी। जर्मन नौसेना दस हजार टन के 6 लड़ाकू जहाज 12 नाशक जहाज एवं 12 पनडुब्बी नावों से अधिक नहीं रख सकती थी। सबमैरीन जहाज रखने की उन्हें अनुमति नहीं थी। उन्हें उपनिवेशों पर से अपने सारे अधिकार समाप्त करने थे। एक निर्देश के तहत जर्मन साम्राज्य सहयोगी शक्तियों के बीच उस समय उनके द्वारा अधिकृत क्षेत्रों के आधार पर बाँटा गया। बाद में लीग ऑफ नेशन्स को इन क्षेत्रों में प्रशासन की निगरानी की जिम्मेदारी सौंपी गयी।

दूसरी महत्वपूर्ण समस्या, जैसा कि बताया जा चुका है, पूर्वी यूरोप के पुनर्गठन की थी, पश्चिमी यूरोपीय शक्तियों के समक्ष "पूर्वी प्रश्न" बड़े लंबे समय से बना हुआ था। महायुद्ध ने इस समस्या को और भी अधिक बढ़ा दिया। पुराने आस्ट्रियाई साम्राज्य पर इटली एवं पूर्वी यूरोप में उभरे नए राष्ट्रों को अपने अधिकतर क्षेत्र सौंप देने के लिए दबाव डाला गया। हैब्सवर्ग का दूसरा आधा भाग और भी कठोर बर्ताव का शिकार बना। इसका सबसे अधिक फायदा सर्बिया को हुआ जो कि युगोस्लाविया के नए दक्षिणी स्लाव राज्य में परिवर्तित हुआ।

स्वयं तुर्की युद्ध में हार के परिणामस्वरूप आंतरिक राजनैतिक उथल-पुथल के दौर से गुजरा। मुस्तफा कमाल ने सेवरज़ (Sevreg) संधि जो कि तुर्की एवं सहयोगी शक्तियों के बीच हुई थी, के विरुद्ध राष्ट्रवादी उथल-पुथल को नेतृत्व प्रदान किया। इस दबाव के कारण 1923 में "लाजेन संधि" के नाम से एक नई संधि पर हस्ताक्षर किए गए। कमाल ने अरब बाहुल्य प्रदेशों पर से सारे दावे वापस ले लिए और तुर्की राज्य के इस्लामी आधार को त्याग दिया। मुस्तफा कमाल की अध्यक्षता में एक नए तुर्की गणराज्य की स्थापना हुयी, जैसा कि आप समझ सकते हैं, पूर्वी यूरोप के इस पुनर्गठन ने लगभग उतनी ही समस्याओं को जन्म दिया जितनी समस्याओं का इसने समाधान प्रस्तुत किया। इससे कई मध्यम शक्तियों का जन्म हुआ जैसे पोलैंड, रूमानिया व यूगोस्लाविया। इससे अरब राष्ट्रीयता और फिलिस्तीन में यहूदी

राष्ट्र बनाने की आशाओं को बढ़ावा मिला जिससे कई जटिलतायें पैदा हुयीं जो अभी भी अंतर्राष्ट्रीय तनाव का कारण हैं। इस पुनर्गठन से अल्पसंख्यकों के अधिकारों और उनकी रक्षा की नयी समस्या सामने आयीं।

पूर्वी यूरोप का यह पूरा पुनर्गठन दरअसल यूरोप में बोलशेविक विचारों के फैलने के डर को देखते हुए किया गया था। इतिहासकार डेविड थॉमसन के शब्दों में :

"फिनलैंड से लेकर पोलैंड एवं रूमानिया तक पूर्वी राज्यों को अधिक से अधिक विस्तृत एवं मजबूत बनाने के जोरदार प्रयास जारी थे जिससे कि यह क्षेत्र कम्यूनिज्म के ज्वार को आगे न बढ़ने देने में रक्षा पंक्ति रूप में, उसके प्रभाव में रुकावट डालने वाले क्षेत्र के रूप में कार्य कर सकें।"

## 13.3.6 अंतर्राष्ट्रीय साधन

लीग ऑफ नेशन्स का गठन "शक्ति की राजनीति" की पुरानी प्रणाली के विकल्प के रूप में अंतर्राष्ट्रीय संस्था तैयार करने के उद्देश्य से किया गया था। यह संस्था झगड़ों के शांतिपूर्ण समाधान का साधन थी जिसने पुरानी गुप्त कूटनीतिज्ञता एवं स्वतंत्र गठबंधनों और शक्ति संतुलन के प्रयासों की पुरानी प्रणाली का विकल्प प्रस्तुत किया। आप जानते हैं कि 1914 में यूरोपीय संदर्भ में विश्व की परिस्थितियाँ कितनी असामान्य थी। ये परिस्थितियाँ "अंतर्राष्ट्रीय अराजकता" के रूप में व्याख्यायित की जाती हैं, हालाँकि यह स्थिति अर्ध-अराजक थी जबकि औपनिवेशिक, राजवंशीय एवं राष्ट्रीय झगड़ों ने पूरे यूरोप को युद्ध की भयानक आग में झोंक दिया।

लीग ऑफ नेशन्स की योजना राष्ट्रपति विल्सन ने बड़े उत्साह के साथ प्रस्तुत की। अंततः यह योजना ब्रिटेन एवं फ्रांस के प्रस्तावों को शामिल करके संशोधित की गयी। एक तरह से लीग यूरोप की एकबद्धता की संकल्पना का विस्तृत रूप में पुनर्प्रस्तुतीकरण था जोकि अब विश्व की एकबद्धता की संकल्पना के रूप में था। दूसरी ओर लीग में कुछ नयापन एवं भिन्नता भी थी क्योंकि इसके अंतर्गत प्रत्येक सहभागी को सभी झगड़ों को शांतिपूर्ण तरीके से सुलझाने तथा किसी भी आक्रमण की स्थिति जिम्मेदारी की भागीदारी की शपथ लेनी थी।

लीग किसी भी रूप में सरकार तो नहीं थी लेकिन सरकारों द्वारा शांति स्थापित करने में सहयोगी के तौर पर इस्तेमाल की जा सकती थी। ऐसा प्रकट होता है कि यह संस्था काफी अर्थपूर्ण एवं समीचीन थी लेकिन युद्धोपरांत विश्व के संदर्भ में केवल कुछ ही मान्यताओं की दृष्टि से इसे सफलता मिली। इसकी मुख्य मान्यता यह थी कि सभी सरकारें शांति चाहेंगी जो कि मारकाट एवं बर्बादी के विरुद्ध पनपी भावनाओं के संदर्भ में एक औचित्यपूर्ण मान्यता थी। यह मान्यता इस दृष्टि से और भी औचित्यपूर्ण लगती थी और जैसा कि पिछले पृष्ठों पर आपने पढ़ा है कि प्रजातांत्रिक सरकारों की संख्या बढ़ रही थी और ये प्रजातांत्रिक सरकारें पिछली नौकरशाहियों एवं राजवंशी साम्राज्यों के मुकाबले में अधिक शांतिप्रिय स्वरूप की थीं। लेकिन जैसा कि बताया जा चुका हैं कि यह प्रजातांत्रिक संविधान कमजोर सिद्ध हुआ और प्रजातांत्रिक आदर्शों को अपनाने में इनकी रुचि थोड़े ही समय तक रही। ऐसी आशा कि संतुष्ट राष्ट्रवाद अब शांति की ओर मुड़ेगा तुरंत ही गलत सिद्ध हो गयी। इस प्रकार इन मान्यताओं के दृष्टिकोण से लीग ऑफ नेशन्स को मजबूत स्थायित्व और आवश्यक कार्यशक्ति प्राप्त न हो सकी।

अमरीका का लीग का सदस्य बनने में असफलता और जर्मनी और रूस के लीग से बाहर होने के कारण लीग केवल समझौतों के लिए आधार ही तैयार कर सकी। जापान ने भी केवल नाममात्र के लिए रुचि दिखाई। केवल ब्रिटिश राष्ट्रमण्डल, फ्रांस एवं इटली ही इसके सदस्य थे। इटली ने भी शीघ्र ही अपने फासीवादी नेता मुसोलिनी की आक्रमक नीति के तहत लीग की अवहेलना कर दी। लीग शांति स्थापित करने के अपने मुख्य उद्देश्य में असफल रही, यद्यपि कि कुछ छोटे-मोटे झगड़े सुलझाने में इसे सफलता अवश्य मिली। जब भी राष्ट्रों ने ईमानदारी के साथ समाधान के प्रावधान के समक्ष झगड़े प्रस्तुत किए, लीग ने सफलता पायी। लीग ने आलैंड (Aaland) द्वीप से संबंधित फिनलैंड और स्वीडेन के झगड़े का समाधान प्रस्तुत करने में सफलता अर्जित की। तीन मौकों पर लीग ने झगड़ा ग्रसित बालकान क्षेत्र में सफलतापूर्वक हस्तक्षेप किया। इसने ईराक एवं तुर्की के सीमा संबंधित झगड़े भी

सुलझाए। जैसा कि बताया जा चुका है कि लीग के पास अपने निर्णय लागू करने के प्रभावशाली साधन नहीं थे और इसलिए जहाँ भी बड़ी शक्तियों के बीच तनाव उत्पन्न हुआ वहाँ लीग शांति स्थापित करने में सफल न हो सकी।

लीग की दो महत्वपूर्ण सहयोगी संस्थाएँ इंटरनेशनल कोर्ट ऑफ जस्टिस और इंटरनेशनल लेबर आर्गेनाइजेशन (आई. एल. ओ.) थी। पहली संस्था का कार्य राष्ट्रों के झगड़े निपटाना था और दूसरी संस्था श्रम से संबंधित समस्याओं में हस्तक्षेप करती थी। आज के संदर्भ में ये दोनों संस्थाएँ संयुक्त राष्ट्र (यूनाइटेड नेशन्स) की संरचना का महत्वपूर्ण भाग है।

## 13.4 विश्वयुद्ध और भारत

यद्यपि भारत युद्ध से प्रत्यक्ष रूप से नहीं जुड़ा हुआ था लेकिन इसके प्रभावों से यह नहीं बच सका। विश्व युद्ध ने भारतीय समाज और अर्थव्यवस्था को व्यापक रूप से प्रभावित किया। यह देखना महत्वपूर्ण है कि भारतीय जनसंख्या के विभिन्न वर्गों पर विश्व युद्ध का विभिन्न प्रकार का प्रभाव पड़ा। भारत के सबसे निर्धन वर्गों के लिए युद्ध का अर्थ निर्धनता में और अधिक वृद्धि थी। युद्ध के कारण लोगों पर भारी कर भी लगाए गए। युद्ध की आवश्यकताओं ने कृषि उत्पादनों एवं अन्य रोजमर्रा की आवश्यकताओं को दुर्लभ बना दिया। परिणामस्वरूप वस्तुओं के मूल्यों में अभूतपूर्व बढ़ोत्तरी हुयी। ऐसी भयावह स्थिति में जनता सरकार के विरुद्ध होने वाले किसी भी आंदोलन में शामिल होने को तैयार हो गई। नतीजे के तौर पर युद्ध के वर्ष तीव्र राष्ट्रवादी राजनैतिक आंदोलन के भी वर्ष हो गए। शीघ्र ही असहयोग आंदोलन के रूप में गांधी के नेतृत्व में एक विस्तृत जन आंदोलन उठ खड़ा हुआ जिसके विषय में आप अगली इकाई में जानकारी प्राप्त कर सकेंगे।

दूसरी ओर युद्ध के कारण उद्योगपतियों को बेहद लाभ पहुँचा। युद्ध के कारण ब्रिटेन में आर्थिक संकट पैदा हो गया था और युद्ध की आवश्यकताएँ पूरी करने के लिए उन्हें भारतीय उद्योगपतियों पर निर्भर होना पड़ा। उदाहरण के लिए इस अवधि में जूट उद्योग काफी तेजी से बढ़ा। इस दृष्टि से युद्ध के कारण भारत में औद्योगिक उन्नति हुई। भारतीय उद्योगपतियों ने इस अवसर का भरपूर लाभ उठाया। और वह उसे युद्ध के बाद भी सुरक्षित रखना चाहते थे। इसीलिए वे स्वयं को संगठित करने और संगठित राष्ट्रीय आंदोलन में सहयोग करने को तैयार थे।

इस प्रकार युद्ध के साथ भारतीय जनसमुदाय के विभिन्न वर्गों के अंदर राष्ट्रीयता की भावना भी आयी, यद्यपि विभिन्न वर्गों के अंतर्गत इसकी प्रक्रिया भिन्न रही। भारत की स्वतंत्र आर्थिक प्रगति भी स्वरूप लेने लगी जिसे विकसित होने में अगले कई वर्ष लगने थे। आगे की इकाई में इस विषय की विस्तृत व्याख्या की जाएगी।

**बोध प्रश्न-2**

**1 विश्वयुद्ध के कारण विभिन्न देशों में आए सामाजिक एवं आर्थिक परिवर्तनों पर एक नोट लिखिए।**

..........................................................................................

..........................................................................................

..........................................................................................

..........................................................................................

..........................................................................................

**2 लीग ऑफ नेशन्स की दो सहयोगी संस्थाओं के नाम लिखिए। उनके कार्यक्षेत्र क्या थे?**

..........................................................................................

..........................................................................................

..........................................................................................

..........................................................................................

..........................................................................................

3 निम्न वक्तव्यों में से कौन से सही (✓) हैं और कौन से गलत (×)?
   i) पिछले अधिकतर युद्धों के विपरीत प्रथम विश्व युद्ध केवल सेनाओं के बीच ही नहीं लड़ा गया बल्कि जनता के बीच भी लड़ा गया।
   ii) युद्ध के दौरान मानव जीवनों के नुकसान ने यूरोपीय जनसंख्या की संरचना को लिंग और आयु वर्ग दोनों ही रूपों में प्रभावित किया।
   iii) विश्व युद्ध के कारण जनतांत्रिक विचारों एवं मूल्यों के फैलने में रुकावट आयी।
   iv) युद्ध से भारतीय जनसंख्या के सभी वर्ग समान रूप से प्रभावित हुये।

## 13.5 सारांश

यहाँ हमारा उद्देश्य आपके समक्ष प्रथम विश्वयुद्ध के मुख्य कारण और परिणाम प्रस्तुत करना था। आपने महसूस किया होगा कि 1914 में सहयोगी राष्ट्रों का एकमात्र सामान्य उद्देश्य यूरोप से जर्मनी का प्रभुत्व समाप्त करना था। उन्होंने युद्ध रूस में समाजवादी क्रांति लाने, पुराने साम्राज्यों को नष्ट कर देने, नए अरब राष्ट्र स्थापित करने अथवा लीग ऑफ नेशन्स में नये प्रयोग करने के लिए नहीं आरंभ किया था। युद्ध का सबसे अधिक फायदा युद्ध में अंशतः शामिल देशों अथवा गैर शामिल देशों को पहुँचा। अमरीका एक बड़े आर्थिक शक्ति के रूप में उभरा। जापान ने प्रशान्त महासागर में नौसेना शक्ति और महत्वपूर्ण आर्थिक शक्ति प्राप्त की, और भारत ने स्वराज्य प्राप्त करने की ओर काफी महत्वपूर्ण प्रगति की। विजयी सहयोगी राष्ट्रों ने कुछ विशेष लक्ष्य प्राप्त कर सकने के बावजूद विश्व के समक्ष बर्बादी, ऋण, निर्धनता, शरणार्थी, अल्पसंख्यकों की समस्यायें और अपनी आंतरिक गुटबंदी के रूप में कष्टदायक विरासत पेश की।

## 13.6 शब्दावली

**सैन्यवाद** : मजबूत सैनिक आधार बनाने की नीति।
**श्रेष्ठ अलगाव** : उन्नीसवीं शताब्दी के अंतिम दौर में यूरोप के झगड़ों में गैर हस्तक्षेप की बर्तानवी नीति के संदर्भ में प्रयोग किये जाने वाला शब्द।
**पूर्वी प्रश्न** : यूरोप से मध्य पूर्व देशों की समस्याओं से संबंधित शब्द। उदाहरण के लिए तुर्की साम्राज्य के पतन की समस्या, तुर्की साम्राज्य में स्वतंत्रता के लिए यूरोपीय राष्ट्रीयता के संघर्ष और तुर्की में यूरोपीय शक्तियों के हितों में टकराव।

## 13.7 बोध प्रश्नों के उत्तर

**बोध प्रश्न-1**

1 (i) ✓ (ii) ✓ (iii) ✓ (iv) ×
2 उपभाग 13.2.1 पढ़ें।
3 उपभाग 13.2.2 पढ़ें।

**बोध प्रश्न-2**

1 उपभाग 13.3.2 देखें।
2 उपभाग 13.3.6 देखें।
3 (i) ✓ (ii) ✓ (iii) × (iv) ×

# इकाई 14 रूसी क्रांति : कारण, अवस्थाएँ, महत्व

## इकाई की रूपरेखा

14.0 उद्देश्य
14.1 प्रस्तावना
14.2 रूसी क्रांति के बारे में पढ़ने की आवश्यकता क्यों है
14.3 रूसी क्रांति के कारण
 14.3.1 कृषि संबंधी स्थिति तथा किसान-वर्ग
 14.3.2 मजदूर, उद्योगीकरण और क्रांति
 14.3.3 राष्ट्रीयता का प्रश्न
 14.3.4 राजनैतिक दल : नेतृत्व
14.4 क्रांति के चरण
14.5 क्रांति की प्रकृति और महत्व
 14.5.1 आर्थिक पक्ष
 14.5.2 सामाजिक पक्ष
 14.5.3 राजनैतिक पक्ष
 14.5.4 अन्तर्राष्ट्रीय पक्ष
14.6 भारत के राष्ट्रीय स्वतंत्रता आदोलन पर प्रभाव
14.7 सारांश
14.8 शब्दावली
14.9 बोध प्रश्नों के उत्तर

## 14.0 उद्देश्य

इस इकाई को पढ़ने के बाद :

- विश्व को प्रभावित करने वाली घटना के रूप में रूसी क्रांति के महत्व का विश्लेषण कर सकेंगे,
- रूसी क्रांति के कारणों की व्याख्या कर सकेंगे,
- क्रांति के दौर में हुई घटनाओं का वर्णन कर सकेंगे,
- भारतीय स्वतंत्रता आंदोलन से इसका संबंध जोड़ पायेंगे, और
- समझ पायेंगे कि सामाजिक, आर्थिक और राजनैतिक शब्दावली में समाजवादी समाज का क्या अर्थ है।

## 14.1 प्रस्तावना

रूसी क्रांति अक्टूबर 1917 में हुई। यह बोल्शेविक क्रांति के नाम से भी जानी जाती है। यह समाजवादी क्रांति है। पिछली इकाई (इकाई 13) में आपने पढ़ा कि समाजवाद क्या है और यह पूँजीवादी समाज से कहीं अधिक विकसित न्यायसंगत और समानतावादी है। रूसी क्रांति का उद्देश्य रूस में एक ऐसे ही समाज की स्थापना करना था। इस क्रांति का नेतृत्व रूसी समाजवादी जनवादी मजदूरी पार्टी (Russian Socialist Democratic Labour Party) (RSDLP) और खास तौर से बोल्शेविकों ने किया था। आर. एस. डी. एल. पी. ने मजदूर वर्ग का प्रतिनिधित्व किया जो क्रांति की नेतृत्वकारी शक्ति थी। किसान वर्ग ने भी महत्वपूर्ण भूमिका अदा की। वास्तविकता तो यह है कि रूसी क्रांति रूस के मजदूर वर्ग द्वारा ही लायी गयी क्योंकि वे ही सबसे अधिक शोषण से उत्पीड़ित थे। इसलिए उस सामाजिक व राजनैतिक व्यवस्था, जो उनका शोषण कर रही थी, का तख्ता पलटने में उन्हीं का हित सबसे अधिक था।

चित्र 3 : "उन्होंने क्रांति को रोकने का प्रयास किया?"
एक कार्टून

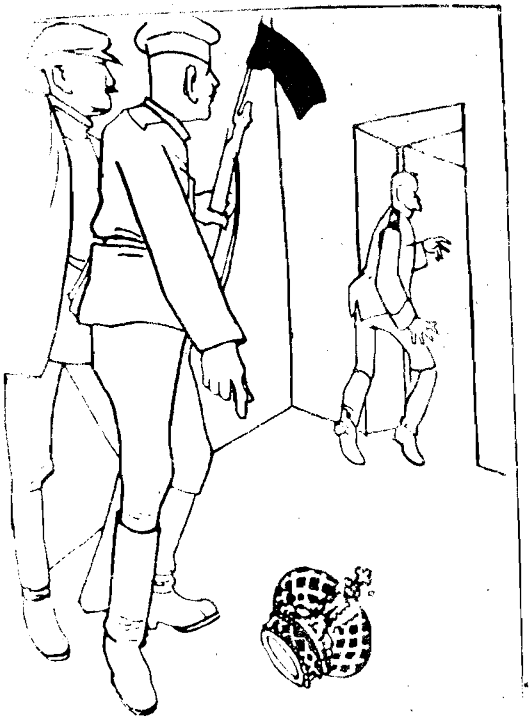

चित्र 4 : "अपना ताज साथ ले जाओ"
एक कार्टून

## 14.2 रूसी क्रांति के बारे में पढ़ने की आवश्यकता क्यों है

यहाँ यह प्रश्न उठता है कि आधुनिक भारतीय इतिहास के पाठ्यक्रम में आपको रूसी क्रांति के बारे में क्यों बताया जा रहा है?

आपके लिए यह जान लेना महत्वपूर्ण है कि सारी घटनाएँ, वह चाहे कितनी भी हिला देने वाली क्यों न हों, एक ऐतिहासिक संदर्भ में ही घटती है और फिर भविष्य में मानव विकास हेतु उस ऐतिहासिक संदर्भ का हिस्सा बन जाती हैं। समाजवादी विचारों की उत्पत्ति ने खासतौर से साम्यवाद ने मनुष्य की सामाजिक व राजनैतिक बनावट की वास्तविकता की समझ के साथ-साथ मानव इतिहास को ही बदल डाला। रूसी क्रांति ने अपने आचरण से बता दिया कि शोषित समाज को मिटा कर नये मुक्त और न्यास संगत समाज की स्थापना संभव है। इसका भारी असर तब से ही हो रहे सभी मुक्ति आंदोलनों तथा विदेशी शासन और साम्राज्यवाद से स्वतंत्रता पाने वाले आंदोलनों पर पड़ा। इसने भारत में हो रहे राष्ट्रीय स्वतंत्रता आंदोलन और खास तौर से मजदूर जनता के क्रांतिकारी संघर्ष को भी प्रोत्साहन दिया इसलिए आपके लिए रूसी क्रांति का अध्ययन आवश्यक है।

## 14.3 रूसी क्रांति के कारण

1917 तक रूस की मजदूर जनता अपनी अमानवीय स्थिति को और ज्यादा सहन करने के लिए तैयार नहीं थी। साथ ही तब तक उनका राजनैतिक स्तर पर संगठन हो चुका था। इसलिए वे पुरानी सामाजिक व राजनैतिक व्यवस्था को पलटने में समर्थ थे। किन्तु प्रश्न यह उठता है कि तब ही क्यों?

1917 के पूर्ववर्ती दशकों में रूसी समाज एक महत्वपूर्ण बदलाव के दौर से गुजर रहा था तथा ये बदलाव पुरानी व्यवस्था के लिए खतरा बन चुके थे। इन बदलावों से उत्पन्न नयी सामाजिक व आर्थिक शक्तियों के हित व महत्वाकांक्षाए भिन्न थीं। अतः 1971 तक रूस में नये और पुराने के बीच एक तीव्र अन्तर्विरोध और धुवीकरण पैदा हो गया। रूसी क्रांतिकारी

आंदोलन ने नयी शक्तियों की जनवादी आशाओं का प्रतिनिधित्व किया जबकि दूसरी ओर रूसी शासन पुराने शासक वर्ग के हितों का प्रतिनिधित्व कर रहा था। रूस में 1917 तक एक तंत्रीय सत्ता रही, जहाँ किसी भी किस्म के प्रतिनिधित्व की व्यवस्था नहीं थी। राजनैतिक संगठन बनाने का अधिकार नहीं था। नियंत्रण बहुत सख्त था और मनमाने ढंग से गिरफ्तारियाँ हुआ करती थीं। धार्मिक सहिष्णुता नहीं थी तथा रूसी के अलावा अन्य जातियों का शोषण होता था। रूसी साम्राज्य एक बहु राष्ट्रीय साम्राज्य था व जिसने अपनी शक्ति का प्रयोग यूरोप के तमाम जनवादी आंदोलनों के विरुद्ध किया। यह यूरोप के "सिपाही" (पुलिसमैन) के नाम से भी जाना जाता था।

रूसी एकतंत्र भूमिसम्पन्न कुलीन वर्ग तथा बुर्जुआ वर्ग के समर्थन से मजबूत बना रहा। इसके बदले में एकतंत्र सत्ता की जिम्मेदारी थी कि रूसी समाज में इन वर्गों के विशेषाधिकार की स्थिति बनी रहे अतः 1917 तक न केवल नयी और पुरानी शक्तियों के बीच अपितु इन नयी सामाजिक शक्तियों तथा रूसी शासन के बीच भी अन्तर्विरोध था। इसलिए रूसी क्रांतिकारी आंदोलन ने रूसी एकतंत्रीय सत्ता का तख्ता पलटने का प्रयास किया।

### 14.3.1 कृषि संबंधी स्थिति तथा किसान-वर्ग

कृषि दासता से मुक्ति के बावजूद भी रूसी किसान वर्ग समाज का सबसे अधिक शोषित हिस्सा रहा। भूमि-सम्पन्न कुलीन वर्ग की प्रभुसत्ता कायम रही। हालाँकि किसान वर्ग स्वतंत्र हो गया किन्तु किसानों को अपनी स्वतंत्रता का मूल्य चुकाना पड़ रहा था वह भी इतना ज्यादा कि वे लगातार कर्ज से दबे रहते थे। किसान वर्ग राज्य को दिये जाने वाले करों के बोझ से भी दबा हुआ था। परिणामस्वरूप किसान-वर्ग में भारी असंतोष को बढ़ावा मिला और बीसवीं शताब्दी के शुरू के वर्षों में किसान आंदोलनों की उग्रता व उनकी संख्या बढ़ी। कृषि पिछड़ी हुई दशा में ही रही क्योंकि किसानों के पास अपनी जमीन को उपजाऊ बनाने के लिए पूँजी नहीं थी। भूमि सम्पन्न कुलीन वर्ग नई तकनीक लगाना नहीं चाहता था क्योंकि उनके पास गरीब किसानों के रूप में सुलभ श्रमिक उपलब्ध थे।

चूँकि कृषि रूसी अर्थव्यवस्था का एक प्रमुख हिस्सा था और किसान इसकी जनसंख्या का एक बड़ा भाग, कृषि संबंधी और किसान वर्ग की समस्याएँ रूसी क्रांति का एक महत्वपूर्ण कारण बन गयीं और इसीलिए किसान वर्ग भी क्रांतिकारी आंदोलन का एक महत्वपूर्ण हिस्सा बन गया।

### 14.3.2 मजदूर, उद्योगीकरण और क्रांति

रूस में उद्योगीकरण की प्रकृति ने एक ऐसे मजदूर आंदोलन को जन्म दिया जो अन्य देशों की अपेक्षा कहीं अधिक राजनैतिक और जुझारू था। उद्योगीकरण के प्रथम चरणों में ही बड़े-बड़े उद्योगों की स्थापना हुई जिनमें एक बड़ी संख्या में मजदूरों को रखा गया। इस कारण एक बड़ी मजदूर संख्या के बीच सर्वमान्य शिकायतों और साथ ही एक समान संघर्ष को उभरने का मौका मिला। इसके अलावा सत्ता ने उद्योगीकरण प्रक्रिया में एक महत्वपूर्ण भूमिका निभाई। रूसी बुर्जुआ वर्ग उतना मजबूत और विकसित नहीं था जितना पश्चिम यूरोपीय देशों में, वहाँ बुर्जुआ वर्ग ने उद्योगीकरण प्रक्रिया में एक महत्वपूर्ण भूमिका अदा की। अतः रूसी बुर्जुआ वर्ग का एकतंत्रीय सत्ता से मजबूत संबंध था। उसके विपरीत रूसी मजदूर वर्ग का आंदोलन एकतंत्रीय सत्ता और रूसी बुर्जुआ वर्ग यानी पूँजीपति दोनों के ही खिलाफ था।

### 14.3.3 राष्ट्रीयता का प्रश्न

रूसी साम्राज्य बहुराष्ट्रीय साम्राज्य था। शासन करने वाला राजवंश साम्राज्य के रूसी भाग से उभरा था तथा इसने रूसीकरण की नीति का अनुसरण किया यानी दूसरी जातियों अर्थात् राष्ट्रों की भाषा, साहित्य और संस्कृति को दबाया। इन क्षेत्रों का आर्थिक रूप से भी शोषण होता था। यह संबंध वास्तव में औपनिवेशिक प्रकृति का था। इन क्षेत्रों का उपयोग केवल रूस के निजी औद्योगिक विकास के लिए कच्चा माल प्राप्त करने भर के लिए किया गया। ये राष्ट्रगत जातियाँ जैसे कोकेशियन, कजाक, करागिज, पोलिश इत्यादि अत्यधिक असन्तुष्ट

थीं और उन्होंने मौजूदा सामाजिक और राजनैतिक व्यवस्था को पलटने के क्रांतिकारी आंदोलन में महत्वपूर्ण भूमि अदा की।

### 14.3.4 राजनैतिक दल : नेतृत्व

कोई भी क्रांतिकारी दल तभी सफल हो सकता है जबकि वह मौजूदा परिस्थितियों की सही समीक्षा कर सके, उचित योजना बना सके और उसके पास जनसाधारण के लाभ के लिए कुछ हो। रूसी क्रांति में भी अनेक राजनैतिक दल सक्रिय थे, उन्होंने जनसाधारण खासकर मजदूर और किसान वर्ग की चेतना को राजनैतिक शिक्षा, राजनैतिक प्रचार व आंदोलन द्वारा जागरूक करने में एक सार्थक भूमिका निभायी। उन्होंने क्रांतिकारी आंदोलन की एकता बनाये रखने के लिए तथा उसके दिशानिर्देश के लिए मजदूरों और किसानों के संगठन भी बनाये, उन्नीसवीं शताब्दी के अंत में निम्नलिखित महत्वपूर्ण राजनैतिक प्रवृत्तियाँ विद्यमान थी जैसे जनप्रिय प्रवृति, समाजवादी क्रांतिकारी, उदारवादी तथा सामाजिक-जनवादी मार्क्सवादी खासतौर से बोल्शेविक क्रांति के बाद के द॰ में लेनिन बोल्शेविक पार्टी और रूसी क्रांति के महत्वपूर्ण नेता थे। अन्य महत्वपूर्ण नेताओं में त्रोत्सकी, बुखारिन और स्तालिन थे।

## 14.4 क्रांति के चरण

रूसी क्रांतिकारी आंदोलन उन्नीसवीं शताब्दी में उभ । शुरू में इसमें केवल मध्यम-वर्गीय बुद्धिजीवी शामिल थे। जैसे-जैसे मजदूरों और किसानों का असंतोष बढ़ने लगा तथा वे अपनी शोषित परिस्थितियों के प्रति जागरूक होने ल॰ उन्होंने भी रूसी एक तंत्रीय सत्ता के खिलाफ संघर्ष शुरू किया। बीसवीं शताब्दी के आरंभ तक रूसी क्रांतिकारी आंदोलन जनसाधारण पर आधारित आंदोलन बन गया, जिसमें मजदूरों व किसानों ने निर्णायक व निश्चित भूमिका निभायी।

चित्र 5 : **"1905 की क्रांति" वी. मकोव्सकी द्वारा बनाया गया चित्र, जनवरी 1905**

रूसी एकतंत्रीय सत्ता पर पहला प्रमुख हमला 1905 में हुआ। इसे 1905 की क्रांति या 1917 की क्रांति के "ड्रेस रिहर्सल" के नाम से भी जाना जाता है। मजदूर और किसान "जनतांत्रिक गणराज्य" की माँग करने लगे। पहली बार एक विशाल आम हड़ताल हुई। सेना की कुछ टुकड़ियों ने भी विद्रोह कर दिया। 1905 की क्रांति के दौरान ही पहला सोवियत अस्तित्व में आया। यह मजदूर जनता का क्रांतिकारी संगठन था। यह क्रांति एकतंत्रीय सत्ता का तख्ता पलटने में कामयाब नहीं हुई, किन्तु मजदूरों और किसानों द्वारा एक क्रांति के दौर में प्राप्त किये अनुभव उनके लिए मूल्यवान साबित हुए।

इस क्रांति के बाद के 5-6 वर्ष अत्यधिक दमन के वर्ष थे। इन वर्षों में बहुत से क्रांतिकारी गिरफ्तार कर लिये गये और मजदूर संगठनों को भी भंग कर दिया गया।

प्रथम विश्व युद्ध, जिसका रूसी अर्थव्यवस्था और रूसी जनता दोनों पर प्रतिकूल असर पड़ा, ने भी जनता को राजनीति से जोड़ा तथा साथ ही एकतंत्रीय सत्ता विरोध सभी राजनैतिक ताकतों को एक सूत्र में पिरो दिया।

इस राजनैतिक वातावरण में, पेत्रोग्राद में ब्रेड की कमी से, फरवरी क्रांति भड़क उठी। कुछ ही दिन बाद 'एकतंत्रीय सत्ता नष्ट हो' की आवाज गूँज उठी। पूरे शहर में लाल झंडे फहरा रहे थे। जल्द ही यह लहर दूसरे शहरों व गाँवों में भी फैल गयी। अंत में सेना भी क्रांतिकारियों के पक्ष में हो गयी। एकतंत्रीय सत्ता को कोई समर्थन न मिल सका। फरवरी क्रांति के परिणामस्वरूप एकतंत्रीय सत्ता का तख्ता पलट गया और अस्थायी सरकार की स्थापना हुई। इस क्रांति में मजदूरों और किसानों ने प्रमुख भूमिका निभायी और बुर्जुआ वर्ग ने भी इसका समर्थन किया। यह बुर्जुआ जनवादी क्रांति थी। अब जिस अस्थायी सरकार की स्थापना हुई वह बुर्जुआ व भूमि सम्पन्न कुलीन वर्ग द्वारा ही शासित थी और उन्हीं के हितों का प्रतिनिधित्व करती थी।

चित्र 6 : "स्वतंत्रता, समानता, बन्धुत्वता" एक पोस्टकार्ड, फरवरी, 1917

चित्र 7 : एक पुलिस स्टेशन के करीब लड़ाई फरवरी 1917 एन. समोकिश द्वारा बनाया गया चित्र

इसी कारण अस्थायी सरकार ने एकतंत्रीय सत्ता की नीतियों में कोई परिवर्तन नहीं किया। फिर भी वह राजनैतिक स्वतंत्रता देने को मजबूर थी क्योंकि फरवरी क्रांति के फलस्वरूप किसानों व सैनिक प्रतिनिधियों के सोवियतें बन चुके थे, जैसा कि 1905 में हुआ। इनमें रूस की कामगार जनता के हितों का प्रतिनिधित्व हुआ। इस कारण शुरू से ही दोनों के बीच अन्तर्विरोध था जो 1907 की क्रांति तक बना रहा। 1917 में अस्थायी सरकार का भी तख्ता पलट दिया गया।

चित्र 8 : अस्थाई सरकार की भूमि संबंधी नीति का मजाक उड़ाता हुआ कार्टून। जमींदार "तुम एक पाँव पर क्यों खड़े हो?" किसान, "दूसरा पाँव रखने के लिये जगह नहीं है। सारी जमीन आपकी है। मुझ पर मुकदमा चल सकता है।"

चित्र 9 : मजदूर और सैनिक साथ-साथ, जुलाई 1917

अतः फरवरी 1917 और अक्टूबर 1917 के बीच के समय में सर्वहारा समाजवादी क्रांति के लिए परिस्थितियाँ विद्यमान थीं। मजदूर, किसान व सैनिक अपनी परस्पर निर्भरता समान हितों और अस्थायी सरकार के खिलाफ अपने विरोध के प्रति सचेत हुए। अस्थायी सरकार अब उनके सामने स्पष्टतः शासक वर्ग के दलाल के रूप में प्रकट हो चुकी थी। इस दौरान कई क्रांतिकारी दल लड़खड़ा गये। उदाहरण के लिए समाजवादी क्रांतिकारी व मेन्शेविक दल जिनके विषय में हम पहले भी बतला चुके हैं, जनसाधारण के हितों का ही प्रतिनिधित्व करते थे किन्तु वे यह नहीं समझ पाये कि जनसाधारण उनसे कहीं ज्यादा आगे निकल चुका है। वे यह समझ नहीं सके कि समाजवादी क्रांति यानी क्रांति के दूसरे चरण के लिए यही समय उचित था। उन्होंने यह नहीं सोचा कि बुर्जुआ वर्ग पहले से ही क्रांति को आगे बढ़ाने के खिलाफ था। सिर्फ बोल्शेविक ही यह सब समझ पाये। वह एकमात्र राजनैतिक दल था जो समय की माँग को पूरा कर सका। उन्होंने तत्काल बिना संयोजन किये व बिना हरजाना लिये युद्ध खत्म करने की माँग के साथ यह भी माँग की कि किसानों को भूमि मिले, उद्योगों पर मजदूरों का नियंत्रण हो, राष्ट्रीयताओं को आत्मनिर्णय का अधिकार हो और सबसे मुख्य माँग रोटी की थी। शांति, भूमि, रोटी और जनतंत्र तात्कालिक और सर्वव्याप्त नारा बन गया। अतः बोल्शेविक दल जनसाधारण का नेतृत्व करने, जनसाधारण के आम संगठनों में बहुमत पाने, तथा मजदूरों, किसानों और सैनिकों को अपने पक्ष में रखने में कामयाब हुआ। अक्टूबर 1917 की क्रांति सफल हो पायी क्योंकि यह जनप्रियता पर आधारित थी।

चित्र 10 : "अस्थाई सरकार और बुर्जुवा वर्ग मुर्दाबाद" एक बच्चे द्वारा बनाया गया चित्र, 1917

**बोध प्रश्न-1**

1 आपको रूसी क्रांति के विषय में क्यों पढ़ना चाहिए?

...........................................................................................................................

...........................................................................................................................

...........................................................................................................................

...........................................................................................................................

...........................................................................................................................

2 रूस में समाजवादी क्रांति के लिए परिस्थितियाँ कब तैयार हुईं?

...........................................................................................................................

...........................................................................................................................

...........................................................................................................................

...........................................................................................................................

...........................................................................................................................

3 रूसी क्रांति को किस दल ने नेतृत्व प्रदान किया।

...........................................................................................................................

...........................................................................................................................

...........................................................................................................................

...........................................................................................................................

...........................................................................................................................

4 रिक्त स्थानों की पूर्ति कीजिए:

i) रूस का राजा.........के नाम से जाना जाता था।
ii) रूस में राजनैतिक व्यवस्था की संरचना.........थी।
iii) शोषित जनता का बहुसंख्यक हिस्सा.........थे।
iv) रूस के महत्वपूर्ण राजनैतिक दल.........थे।
v) एकतंत्रीय सत्ता का स्थान.........में पलटा गया।
vi) एकतंत्रीय सत्ता का स्थान.........ने लिया।
vii) यह.........की माँगों का प्रतिनिधित्व करती थी।
viii) मजदूर जनता का क्रांतिकारी संगठन.........के नाम से जाना जाता था।

5 निम्नलिखित कथन को पढ़िये और सही (✓) या गलत (×) का निशान लगाइये।
   i) क्रांति से पहले रूस की जनता आरामदायक ज़िंदगी बिता रही थी।
   ii) क्रांति के पहले का रूसी समाज अन्यायपूर्ण और असमानतावादी समाज था।
   iii) यूरोप के अन्य देशों की अपेक्षा रूस का मजदूर वर्ग आंदोलन कहीं अधिक जुझारू और क्रांतिकारी थी।
   iv) बोल्शेविकों ने विश्वयुद्ध को जारी रखने की माँग उठायी।

## 14.5 रूसी क्रांति की प्रकृति और महत्व

अक्टूबर क्रांति ने रूस में पूँजीवाद के आधार को मिटा कर समाजवाद की नींव डाली किन्तु नीतियों के स्तर पर इन सबका क्या अर्थ है?

### 14.5.1 आर्थिक पक्ष

अर्थव्यवस्था की दृष्टि से रूसी क्रांति का अर्थ है निजी सम्पत्ति का अंत तथा सभी सम्पत्ति के मालिकाना हकों का राज्य के आधीन हो जाना, किन्तु आपको यह समझना चाहिए कि इसका अर्थ यह नहीं था कि लोगों का निजी माल-असबाब उनसे छीन लिया गया। निजी सम्पत्ति के उन्मूलन से अर्थ है कि उत्पादन के सभी साधनों जैसे लाभ आय देने वाले साधनों को राज्य की सम्पत्ति बना दिया गया। इनमें फैक्ट्रियाँ भूमि तथा बैंक इत्यादि आते हैं। अब कोई भी व्यक्ति इन उत्पादन के साधनों का निजी मालिक बनकर श्रम से लाभ नहीं उठा सकता था।

इस क्रांति द्वारा उद्योगों पर मजदूरों के नियंत्रण की स्थापना भी हुई। इसका अर्थ है कि वे अपने प्रतिनिधियों द्वारा उत्पादन-प्रक्रिया पर नियंत्रण रख सकते थे तथा फैक्ट्री में मजदूरों के अधिकारों की भी सुरक्षा कर सकते थे। इस कदम का आधार यह विचार था कि जो उत्पादन करता है उसे अपने प्रतिनिधियों द्वारा निर्णय लेने में (केन्द्रीय स्तर तक) हिस्सेदार होना चाहिए।

अतः मजदूरों के नियंत्रण से संबंधित एक महत्वपूर्ण कदम यह भी था कि पूरे देश खासतौर से कामगार जनता की आवश्यकताओं को ध्यान में रखकर एक अर्थव्यवस्था की स्थापना करना।

इस केंद्रित अर्थव्यवस्था द्वारा उनका प्रयास आर्थिक विकास की गति को बढ़ाना तथा इस विकास के लाभ को बहुसंख्यक जनता तक पहुँचाना था। इसके द्वारा उन्होंने उत्पादन में अराजकता तथा अपव्यय को रोकने का प्रयास किया। हालाँकि पंचवर्षीय योजना देर से यानि 1928 में शुरू की गई। वास्तव में योजना एक महत्वपूर्ण योगदान था जो रूसी क्रांति ने विश्व को दिया। भारत में भी योजनाबद्ध आर्थिक विकास के लिए उसी आदर्श को अपनाया गया।

कृषि के क्षेत्र में भूमि का राष्ट्रीयकरण हुआ। इसका अर्थ है कि भूमि के मालिकाना हक केवल राज्य को ही थे और भूमि किसानों के बीच केवल उपयोग के लिए बाँटी जाती थी। किन्तु किसान उसे बेच या गिरवी नहीं रख सकता था और न ही वह इसका उपयोग दूसरों के श्रम का शोषण कर अपने लाभ हेतु कर सकता था। नवम्बर 1917 के भूमि आदेश द्वारा जमींदारी प्रथा समाप्त कर दी गई और भूमि किसानों को हस्तान्तरित कर दी गई। 1928 में कृषि के सामूहिकीकरण से सामूहिक उत्पादन और कृषि क्षेत्र में सामाजिक संबंधों में विकास हुआ।

### 14.5.2 सामाजिक पक्ष

उत्पादन-प्रक्रिया में निजी संपत्ति को समाप्त कर क्रांति ने सामाजिक असमानता की जड़ें ही काट दीं। इसने एक वर्ग विहीन समाज की नींव डाली। हर एक व्यक्ति को अपने कार्य के अनुसार ही वेतन मिलता था एक मजदूर और प्रबंधक के वेतन में या एक मजदूर और कलाकार या अध्यापक के वेतन में ज्यादा अंतर नहीं था। जैसा कि आप जानते हैं कि पूँजीवादी समाज में एक ही कार्य-स्थान पर काम करने वाले मजदूर व संचालकों के या मजदूर तथा डॉक्टर, अध्यापक, इंजीनियर इत्यादि के जीवन स्तर में जमीन-आसमान का फर्क

होता है। सोवियत राज्य ने सभी नागरिकों के लिए कुछ निश्चित सुविधाओं जैसे मुफ्त चिकित्सा, सबके लिए मुफ्त और समान शिक्षा, बेरोजगारी भत्ता, संस्कृति और संस्कृति विकास के लिए समान अवसर इत्यादि की भी जिम्मेदारी ली। ये वास्तव में जनता संविधान द्वारा दिये गये अधिकार थे।

सोवियत जनता के लिए यह सब तत्काल ही प्राप्य नहीं था। चूँकि इन सबके लिए उत्पादन और बाह्य ढाँचा साथ-साथ ही तैयार हो रहा था। किन्तु यह महत्वपूर्ण है कि राज्य ने व्यक्ति के अच्छे जीवन स्तर की जिम्मेदारी ली बशर्ते वह अपनी क्षमता के अनुसार कार्य करें।

चित्र 11 : "महिलाओं को समानाधिकार", एक पोस्ट कार्ड, 1917

संविधान द्वारा स्त्रियों के समान अधिकार की न केवल जिम्मेदारी ली गई बल्कि इस समानता को लागू करने के लिए भौतिक आधार तैयार किया गया। छः महीने के प्रसूति अवकाश, कार्य-स्थलों पर क्रेचों, सार्वजनिक कैंटीनों (जहाँ खाना सस्ता व उचित दर का था) इत्यादि की व्यवस्था थी। इन सबका उद्देश्य सार्वजनिक जीवन में स्त्रियों की पूर्ण हिस्सेदारी को संभव बनाना था। इसका पूँजीवादी समाज पर भारी असर पड़ा। समाजवादी समाज की इस चुनौती का सामना करने के लिए उन्हें भी कुछ निश्चित सुधार कार्यवाहियाँ करनी पड़ीं। वास्तव में पश्चिम में कल्याण राज्य की धारणा रूसी क्रांति द्वारा जनता को दिए गए लाभ की ही प्रतिक्रिया है। अन्यथा पश्चिम की मजदूर जनता समाजवादी समाज की उत्तमता को फौरन पहचान जाती।

चित्र 12 : "साक्षरता साम्यवाद की ओर ले जाती है" एक पोस्टर

चित्र 13 : "ज्ञान दासता की बेड़ियों को तोड़ देगा" एक पोस्टर

रूसी क्रांति का एक अन्य महत्वपूर्ण योगदान था धर्म का राजनीति तथा राज्य से अलगाव। यह माना गया कि धर्म एक विशुद्ध निजी मामला होना चाहिए, विद्यालयों में कोई धार्मिक शिक्षा नहीं दी जानी चाहिए, धर्म का कोई सार्वजनिक उपयोग नहीं होना चाहिए, जब आप इस बात पर गौर करेंगे कि हमारे देश में धर्म के नाम पर क्या कुछ नहीं घटा है तब आप इस कदम की महत्ता को पहचानेंगे। धर्म खत्म नहीं हुआ था, धार्मिक व्यक्तियों पर मुकदमें नहीं चलाए गए थे, जैसी कि आम धारणा है।

### 14.5.3 राजनैतिक पक्ष

राजनैतिक तौर पर रूसी क्रांति के फलस्वरूप सर्वहारा अधिनायकवाद के सिद्धांत पर आधारित मजदूर जनता के राज्य की रचना हुई। यह स्पष्ट किया गया कि क्रांति के विरोधी जनता के हित को खत्म कर सकते थे वास्तव में रूसी क्रांति के तुरंत बाद दस अन्य देशों ने रूसी भूमिसम्पन्न कुलीन वर्ग और बुर्जुआ वर्ग का पक्ष लिया तथा क्रांति और रूस के मजदूरों का विरोध किया। इसीलिए, कुछ समय के लिए राजनैतिक व्यवस्था में मजदूर वर्ग का प्रभुत्व

होना आवश्यक हो गया।

किन्तु यह राज्य अन्य पूँजीवादी राज्यों की तुलना में कहीं अधिक जनतांत्रिक था क्योंकि इसमें अल्पमतों (जिन्हें कि क्रांति से पूर्व विशेषाधिकार प्राप्त थे) के ऊपर जनता के बहुमत (किसी भी समाज की बहुमत मजदूर जनता ही होती है) का शासन सुनिश्चित था। इसके अलावा इसे तब तक एक अस्थायी अव्यवस्था के रूप में देखा गया जब तक कि शासक वर्ग कि शक्ति पूरी तरह से नष्ट नहीं हो जाती तथा वे क्रांति को नष्ट करने में पूर्णतः असमर्थ नहीं हो जाते। अतः बुर्जुआ जनतंत्र को समाजवादी जनतंत्र में बदलना था।

रूसी नागरिकों द्वारा उपयोग की जाने वाली स्वतंत्रता न केवल राजनैतिक स्वतंत्रता थी अपितु अर्थिक स्वतंत्रता भी थी। रूसी नागरिकों से न केवल कानूनी और सामाजिक स्वतंत्रता प्राप्त हुई बल्कि आर्थिक समानता भी मिली। अतः रूसी क्रांति द्वारा नयी व्यवस्था में स्वतंत्रता का दायरा भी बढ़ गया।

### 14.5.4 अन्तर्राष्ट्रीय पक्ष

अन्तर्राष्ट्रीय संबंधों में भी रूसी क्रांति युगान्तकारी थी। सबसे पहले बोल्शेविकों ने राजतंत्र सत्ता तथा अस्थायी सरकार द्वारा किये गये सभी गुप्त समझौतों को समाप्त कर दिया। ऐसा महसूस किया गया कि जनता को सरकार की कार्य पद्धति के विषय में जानने का अधिकार है और किसी भी देश की जनता को वाद-विवाद तथा हस्तक्षेप द्वारा अपने देश की विदेश नीति को प्रभावित करने का अधिकार होना चाहिए।

दूसरे बोल्शेविकों ने एक आज्ञाप्ति द्वारा बिना संयोजन किये और बिना हरजाना लिये तुरंत युद्ध समाप्त का प्रस्ताव रखा। पूरे विश्व में वह ही एक ऐसा राजनैतिक दल था जिसने इस तरह की घोषणा को लागू किया। उन्होंने निकटवर्ती तथा दूरवर्ती पूर्व के कई इलाकों से जिनके लिए रूसी सरकार लड़ रही थी, अपना दावा वापिस ले लिया। उन्होंने अपने आपको साम्राज्यवाद का विरोधी घोषित कर दिया तथा विदेशी आधिपत्य के खिलाफ चल रहे राष्ट्रीय स्वतंत्रता आंदोलनों को अपना सहयोग दिया। बोल्शेविकों ने उन इलाकों में, जहाँ जार का साम्राज्य था, सभी राष्ट्रीयताओं में आत्म निर्णय साथ ही संबंध-विच्छेद के अधिकारों को भी मान्यता दी। उन इलाकों में, जहाँ भूमिसम्पन्न कुलीन वर्ग तथा बुर्जुआ वर्ग तो अलग होना चाहता था किन्तु मजदूर और किसान सोवियत रूस का ही हिस्सा होना चाहते थे, बोल्शेविकों ने जनसाधारण की इच्छा को मान्यता दी और अक्टूबर क्रांति को सुदृढ़ करने में उनके साथ लड़ाई लड़ी। अधिकतर राष्ट्रों के मजदूर और किसान बोल्शेविकों के साथ थे क्योंकि वे जानते थे कि बोल्शेविकों की हार का मतलब है जमीदारों और पूँजीपतियों के शोषण का खात्मा।

## 14.6 भारत के राष्ट्रीय स्वतंत्रता आंदोलन पर रूसी क्रांति का प्रभाव

भारतीय राष्ट्रीय आंदोलन ब्रिटिश साम्राज्य द्वारा उत्पन्न सामाजिक परिस्थितियों, इसके शोषण की व्यवस्था तथा इस शोषणपूर्ण व्यवस्था द्वारा उत्पन्न सामाजिक और आर्थिक ताकतों का ही परिणाम था। किन्तु साथ ही वह समकालिक विश्व की महत्वपूर्ण लहर से भी प्रभावित था, जिसमें से सबसे महत्वपूर्ण थी समाजवादी शक्तियाँ जो कि रूसी क्रांति की देन थीं।

1905 की क्रांति भारतीय नेताओं के लिए महान प्रेरणा थी। बंगाल के विभाजन के खिलाफ उठी उत्तेजना जो कि स्वदेशी आंदोलन में प्रकट होती है 1905 की क्रांति के तुरंत बाद हुई। 1912 में मजदूर वर्ग ने बाल गंगाधर तिलक की रिहाई की माँग पर आधारित प्रथम राजनैतिक हड़ताल आयोजित की।

अक्टूबर क्रांति का भारतीय राष्ट्रीय आंदोलन पर प्रत्यक्ष प्रभाव नहीं पड़ा किन्तु रूसी क्रांति की सफलता के बाद भारतीय नेताओं ने यह महसूस किया कि न तो संवैधानिक तरीकों से

कुछ पाया जा सकता है और न बम की राजनीति से ही कुछ हासिल किया जा सकता है। अब यह स्पष्ट हो गया कि जनसाधारण का राजनैतिक संघर्ष में सम्मिलित होना जरूरी और निर्णायक है। अतः 1920 में मजदूर और किसान पार्टियाँ, आल इंडिया ट्रेड यूनियन कांग्रेस तथा मजदूरों किसानों के बढ़ते संघर्ष असहयोग आंदोलन इन विचारों और संगठनों का प्रत्यक्ष परिणाम था।

रूसी क्रांति द्वारा भारत में समाजवादी विचारों का प्रचार व प्रसार भी बढ़ा। वस्तुतः शुरू में भारतीय कम्युनिस्टों का प्रशिक्षण सोवियत रूस में ही हुआ था। भारत में भी मार्क्सवाद के प्रभाव से तथा जनसाधारण के संघर्ष में हिस्सा लेने के फलस्वरूप बहुत कांग्रेसी जन कांग्रेस से अलग हो गये और उन्होंने भारत में कम्युनिस्ट आंदोलन की नींव डाली। ए.के. गोपालन व ई.एम.एस. नम्बूदरीपाद ऐसी दो प्रमुख हस्तियाँ हैं। कम्यूनिस्ट आंदोलन के बढ़ने से भारतीय राष्ट्रीय आंदोलन को एक बिल्कुल ही नया आयाम मिल गया। तब से वर्ग संघर्ष यानी भारतीय पूँजीपति वर्ग के खिलाफ मजदूरों का संघर्ष भारतीय स्वतंत्रता संघर्ष का एक अभिन्न अंग बन गया।

वामपंथ के विकास ने सम्पूर्ण स्वतंत्रता आंदोलन को उग्रता प्रदान की। भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस के भीतर ही एक कांग्रेस समाजवाद गुट बना। जवाहरलाल नेहरू सोवियत रशिया खासतौर पर उसके साम्राज्यवाद विरोधी प्रयासों से प्रभावित हुए। इस समय के भारतीय नेताओं की शब्दावली में समाजवाद एक व्यापक शब्द बन गया। तीसरे दशक में भारतीय राष्ट्रीय आंदोलन एक ऐसे स्तर पर पहुँच गया जहाँ वामपंथ ने राष्ट्रीय आंदोलन के पूँजीवादी नेतृत्व को गम्भीर चुनौती दी। वामपंथी विचारों से प्रभावित विद्यार्थियों और लेखकों ने संगठन भी बनाये।

भारतीय राष्ट्रीय आंदोलन सोवियत यूनियन के नेतृत्व में साम्राज्यवाद के खिलाफ विश्वस्तरीय संघर्ष का एक हिस्सा बन गया और भारतीय नेताओं द्वारा भी यह इसी रूप में पहचाना जाने लगा। यदि रूसी क्रांति जिसने साम्राज्यवाद को विश्व स्तर पर कमजोर कर दिया, सफल न होती तो भारतीय जनता की ब्रिटिश साम्राज्यवाद के खिलाफ लड़ाई और अधिक कठिन साबित होती। यह कोई संयोग नहीं था कि फ़ासीवाद की हार तथा द्वितीय विश्व युद्ध के बाद उत्पन्न पूँजीवादी संकटों के पश्चात् औपनिवेशिकता की समाप्ति की प्रक्रिया में तेजी आई।

चीनी क्रांति, यूरोप में जनतंत्रों की स्थापना तथा भारतीयों की स्वतंत्रता की प्राप्ति, सोवियत यूनियन के साम्राज्यवाद के खिलाफ अटल संघर्ष से दृढ़ प्रतिज्ञ ही हुई।

भारत में आर.आई.एन. विद्रोह तथा तेभागा और तेलंगाना आंदोलनों ने (1946-48) जिसके बारे में आप बाद में पढ़ेंगे, भारतीय राजनैतिक स्वतंत्रता के इतिहास में प्रमुख भूमिका निभाई। ये आंदोलन भारतीय कम्युनिस्टों के नेतृत्व में हुए जो अपने आपको कम्युनिस्ट इन्टरनेशनल के नेतृत्व में आयोजित आंदोलन का हिस्सा मानते थे। भारतीय कम्युनिस्ट पार्टी ने अपनी योजना व रणनीति भारतीय परिस्थितियाँ तथा भारत के वर्ग शक्तियों की अंतर्संबंधो के आधार पर बनायी, परंतु फिर भी इसका नेतृत्व रूसी एकतंत्र सत्ता के खिलाफ हुये सफल क्रांतिकारी आंदोलनों से प्राप्त अनुभवों ने किया। रूस भारत की तरह आर्थिक रूप से एक पिछड़ा हुआ देश था इसलिए रूसी क्रांति के अनुभव भारत के लिए प्रासंगिक थे, रूसी अनुभव और विशिष्ट भारतीय परिस्थितियों में इसकी अनुप्रयोगता की संभावना के कारण भारतीय कम्युनिस्ट पार्टी ने भारतीय जनता के संघर्ष को द्वि-स्तरीय क्रांति के रूप में पहचाना।

अंग्रेजों ने भारत में जनसाधारण के प्रत्येक संघर्ष को कम्यूनिस्टों के द्वारा चलाया गया संघर्ष माना और उसे बोल्शेविक साजिश समझा। रूसी क्रांति के कुछ महीनों के बाद वे एक घोषणा पत्र जारी करने पर मजबूर हो गये। यह घोषणा पत्र मोंटाग्यू घोषणा के नाम से जाना जाता है तथा इसमें उन्होंने स्व-सरकार की संस्थाओं के क्रमशः विकास का वायदा किया। वे स्वतंत्रता के लिए संघर्षरत राष्ट्रों की बोल्शेविक शांति आज्ञाप्ति पर हुई प्रतिक्रिया से बुरी तरह बौखला गये।

1921 में जब पूरे उत्तर प्रदेश में किसान सभा की स्थापना हुई तब टाइम्स के संवाददाता ने लिखा कि भारत में किसान सोवियत की स्थापना हो गई है। कम्यूनिस्ट ज्यादातर भूमिगत हो

कार्य करने पर मजबूर थे और उन्हें भीषण दमन का सामना करना पड़ता था। मेरठ साजिश जाँच केस उसी का एक उदाहरण है। इसके द्वारा वे बोल्शेविक खतरे से बचने का प्रयास कर रहे थे अतः भारत में रूसी क्रांति का सकारात्मक और तीव्र प्रभाव पड़ा। भारतीय राष्ट्रीय आंदोलन में उग्रता आयी। इसके अलावा भारत में ब्रिटिश नीतियों पर भी इस क्रांति का असर हुआ। राष्ट्रीयता की लहर के प्रति ब्रिटिश ने दमनकारी रवैया अपनाया। अंग्रेजों ने भारतीय समाज के प्रतिक्रियावादी हिस्से को अपने पक्ष में शामिल करने का प्रयास किया। बोल्शेविक खतरे से निपटने में असमर्थता के कारण उन्होंने भारतीय कम्युनिस्टों को राष्ट्र विरोधी के रूप में दर्शाया ताकि उन्हें राष्ट्रीय आंदोलन की प्रमुख धारा से काटकर अलग किया जा सके। रूसी क्रांति ने एक सुदृढ़ साम्राज्यवाद विरोधी परिपेक्ष्य के विकास में सहयोग दिया तथा स्वतंत्रता आंदोलन के दौरान भारतीय राष्ट्रीय नेता भी स्पष्ट और निश्चित रूप से विश्व के जनतांत्रिक संघर्ष के पक्ष में थे। इन सबसे अधिक महत्वपूर्ण है कि रूसी क्रांति की सफलता और इसके द्वारा सोवियत जनता को प्राप्त उपलब्धियों से भारत सहित बहुत से विकासशील देशों के सामने नये प्रश्न उभर कर सामने आये—प्रश्न जैसे किस तरह का विकास, किसके लिए विकास आदि।

इसने ठोस यथार्थ के धरातल पर इसी विचार को प्रतिपादित किया कि किसी भी विकास का आधार बहुसंख्यक जनता के हित और उनकी सुरक्षा की भावना ही होनी चाहिए। इसे जनता की महत्त्वाकांक्षाओं को किसी न किसी रूप में पूरा करना ही चाहिए। उत्तमता के स्तर पर एक भिन्न समाज का निर्माण भारत जैसे देशों में विकास और सामाजिक न्याय जैसी समस्याओं के समाधान के रूप में क्रांति और समाजवाद की आवश्यकता को सर्वोपरि बना दिया।

**बोध प्रश्न – 2**

1 क्रांतिकारी शासन द्वारा कौन से आर्थिक परिवर्तन किये गये?

.......................................................................................................................

.......................................................................................................................

.......................................................................................................................

.......................................................................................................................

.......................................................................................................................

2 सोवियत यूनियन के सभी नागरिकों को कौन-सी सामाजिक सुविधायें दी गयीं?

.......................................................................................................................

.......................................................................................................................

.......................................................................................................................

.......................................................................................................................

.......................................................................................................................

3 बोल्शेविकों की अन्तर्राष्ट्रीय नीतियों के दो पहलू बताइये।

.......................................................................................................................

.......................................................................................................................

.......................................................................................................................

.......................................................................................................................

.......................................................................................................................

4 भारत के लिए रूसी क्रांति का अनुभव क्यों महत्वपूर्ण है?

.......................................................................................................................

.......................................................................................................................

.......................................................................................................................

.......................................................................................................................

.......................................................................................................................

## 14.7 सारांश

1917 की घटनाएँ विभिन्न कारणों से महत्त्वपूर्ण हैं : प्रथम वे रूस की राजनैतिक, सामाजिक व आर्थिक ढाँचे में क्रांतिकारी परिवर्तन का प्रतिनिधित्व करती है। दूसरे उन्होंने न्यायसंगत व

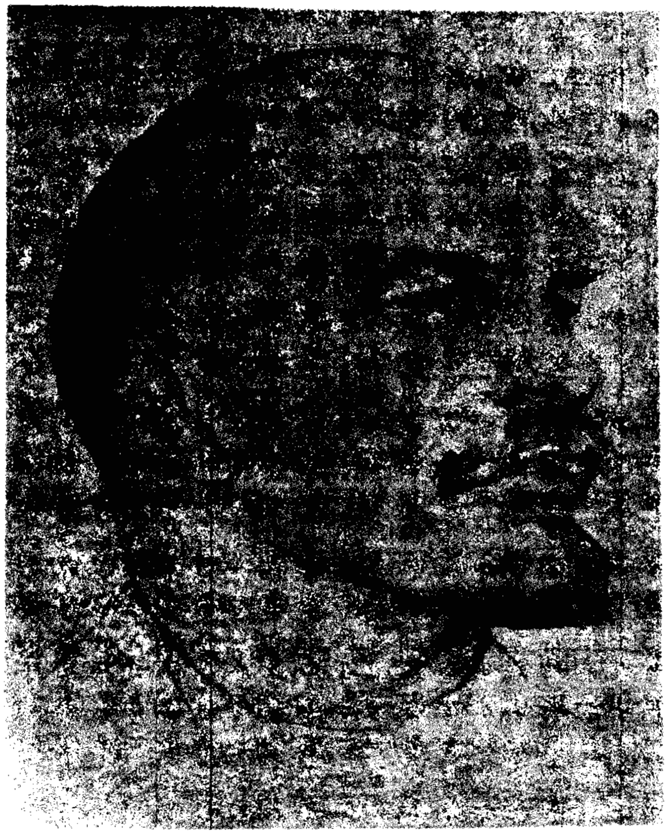

चित्र 14 : लेनिन

समान समाज की स्थापना के लिए कार्यरत शक्तियों को सक्रिय बना दिया। क्रांति के बाद का रूसी समाज सबके लिए स्व-विकास के समान अवसर के सिद्धांत पर आधारित था। तीसरे, रूसी क्रांति ने विश्व की तमाम उत्पीड़ित जनता व राष्ट्रों की स्वाधीनता व उत्तम व्यवस्था के लिए होने वाले संघर्षों को प्रोत्साहन दिया। खासतौर से भारतीय स्वतंत्रता संघर्ष ने रूसी क्रांति से गति और एक निश्चित दिशा निर्देश पाया। और अंत में, रूसी क्रांति के अनुभवों ने विश्व को सामाजिक मुक्ति, आर्थिक विकास और राजनैतिक परिवर्तन का नया आदर्श दिया।

## 14.8 शब्दावली

**एकतंत्र** : एकमात्र राजतंत्र, ऐसा शासन जिसमें सभी राजनैतिक ताकतें राजा के हाथों में ही केंद्रित हों

**बोल्शेविक** : 1903 में जब रूसी सामाजिक जनवादी पार्टी दो गुटों में बँट गयी तब जिस गुट ने केन्द्रीय समिति में बहुमत प्राप्त किया वे बोल्शेविक के नाम से जाने गये। रूसी भाषा में बोल्शेविक का अर्थ है "बहुमत"। ये बोल्शेविक ही थे जो क्रांति के महत्त्वपूर्ण नेता थे। उन्होंने क्रांति को दृढ़ किया। उन्हीं के नाम से रूसी क्रांति को बोल्शेविक क्रांति के नाम से भी जाना जाता है।

**राष्ट्रीयता** : एक जाति या राष्ट्र से संबंधित यानी सामान्य सीमा, भाषा और संस्कृति का प्रयोग करने वाले।

**योजना** : इस बात की रूपरेखा बनाना कि कुछ प्रमुखताओं, उद्देश्य और अवधि को ध्यान में रखकर एक अर्थव्यवस्था को कैसे चलाया जाये।

**राष्ट्रयीताओं के आत्मनिर्णय का अधिकार** : किसी भी राष्ट्र और जाति को स्वतंत्र होने और अपना राजनैतिक भविष्य खुद निश्चित करने का अधिकार।

**जार :** रूसी भाषा में राजा शब्द के लिए प्रयुक्त शब्द।
**मजदूरों का नियंत्रण :** मजदूरों का अपने प्रतिनिधियों द्वारा उत्पादन-प्रक्रिया के निर्णयों में तथा अपने अधिकारों की सुरक्षा हेतु हिस्सेदारी।

## 14.9 बोध प्रश्नों के उत्तर

**बोध प्रश्न-1**

1) भाग 14.2 देखिए
2) भाग 14.3 पढ़िये
3) उपभाग 14.3.4 देखिये
4) i) जार ii) एकतंत्र iii) किसान iv) जनप्रिय, समाजवादी क्रांतिकारी और सामाजिक जनतंत्र v) 1917 vi) अस्थायी सरकार vii) पूँजीपति और भूमिसम्पन्न कुलीन वर्ग viii) सोवियत
5) i) (×) ii) (√) iii) (√) iv) (×)

**बोध प्रश्न-2**

1) उपभाग 14.5.1 देखिये
2) उपभाग 14.5.2 देखिये
3) उपभाग 14.5.4 देखिये
4) भाग 14.6 देखिये

# इकाई 15 क्रांतिकारी प्रवृत्तियाँ, गदर पार्टी और होम रूल लीग

इकाई की रूपरेखा


15.0 उद्देश्य
15.1 प्रस्तावना
15.2 क्रांतिकारी प्रवृत्तियाँ
  15.2.1 क्रांतिकारी आतंकवाद के कारण
  15.2.2 आरंभिक गतिविधियाँ
15.3 गदर आंदोलन
  15.3.1 आंदोलन की पृष्ठभूमि
  15.3.2 आरंभिक गतिविधियाँ
  15.3.3 संगठन की ओर
  15.3.4 योजना एवं कार्यवाही
15.4 गदर आंदोलन : मुख्य घटनाएँ
  15.4.1 आंदोलन की आखिरी स्थिति
  15.4.2 दमन
  15.4.3 असफलता तथा उपलब्धियाँ
15.5 होम रूल लीग
  15.5.1 प्रमुख घटनाएँ, जिनसे लीगों का निर्माण हुआ
  15.5.2 दो अलग-अलग लीग
  15.5.3 तिलक की होम रूल लीग
  15.5.4 एनी बिसेंट की होम रूल लीग
  15.5.5 ब्रिटिश रवैये में परिवर्तन
  15.5.6 होम रूल लीग का पतन
15.6 सारांश
15.7 शब्दावली
15.8 बोध प्रश्नों के उत्तर


## 15.0 उद्देश्य

बीसवीं शताब्दी के शुरू में भारतीय स्वतंत्रता संग्राम में एक नया पहलू जुड़ा। क्रांतिकारी आंतकवाद का राजनैतिक हथियार के रूप में उदय हुआ। इस इकाई को पढ़ने के बाद आप:

- उन कारणों को पहचान पायेंगे जिन्होंने क्रांतिकारी आतंकवाद के उभरने में सहायता दी,
- क्रांतिकारियों की प्रारंभिक गतिविधियों तथा उनके पतन के कारणों के बारे में जान पायेंगे,
- गदर आंदोलन की योजना को समझ सकेंगे और उसका विवरण दे सकेंगे,
- गदर आंदोलन की उपलब्धियों की विवेचना कर सकेंगे, और
- होम रूल लीग की गतिविधियों तथा राष्ट्रीय आंदोलन में उनके योगदान के बारे में जान पायेंगे।

## 15.1 प्रस्तावना

1907 तक पहला देशव्यापी जन-आंदोलन-स्वदेशी आंदोलन-लगभग समाप्त हो गया था; दूसरा मुख्य प्रयास प्रथम विश्व युद्ध के बाद हुआ। बीच के वर्षों में, राष्ट्रीय आंदोलन की राजनैतिक गतिविधियों में तीन प्रयोग हुए, जिनमें से प्रत्येक ने राष्ट्रीय चेतना जगाने और उसे बढ़ाने में अपने-अपने तरीके से योगदान दिया। पहला प्रयोग था क्रांतिकारी आतंकवाद का जिसका उदय स्वदेशी आंदोलन के पतन के साथ हुआ तथा अन्य दो प्रयोग-गदर पार्टी तथा होम रूल आंदोलन-प्रथम विश्व युद्ध के वर्षों में हुए।

## 15.2 क्रांतिकारी प्रवृत्तियाँ

क्रांतिकारी आतंकवाद राजनैतिक गतिविधि का एक ऐसा रूप था जिसे राष्ट्रीय युवा वर्ग की अत्यधिक प्रेरित पीढ़ी ने अपनाया था। इस वर्ग को प्रचलित राजनैतिक गतिविधियों में अपनी रचनात्मक शक्तियों को व्यक्त करने का पर्याप्त अवसर नहीं मिला था।

### 15.2.1 क्रांतिकारी प्रवृत्तियों के कारण

गरम दल द्वारा नरम दल (उदारवादी) की राजनीति की आलोचना ने उन्हें इस बात का विश्वास दिला दिया था कि प्रार्थना तथा तर्कों द्वारा ब्रिटिश शासकों को परिवर्तित करने का प्रयास बेकार था। उन्होंने स्वदेशी आंदोलन में इस आशा और विश्वास से सक्रिय रूप से भाग लिया था कि आंदोलन के उग्र तरीकों जैसे कि बहिष्कार, सत्याग्रह आदि द्वारा राष्ट्रीय आंदोलन को उसके विशिष्ट खाँचे से बाहर निकाला जा सकेगा, उन्हें आशा थी कि इस आंदोलन द्वारा ब्रिटिश सरकार को घुटने टेकने पर मजबूर किया जा सकेगा। जैसा कि आप इकाई-11 में पढ़ चुके हैं, स्वदेशी आंदोलन जनता के बहुत बड़े हिस्से को लामबन्द करने में केवल आंशिक रूप से ही सफल हो सका। और न ही व बंगाल के विभाजन को वापिस करवा सका। यह असफलता लगभग निश्चित ही थी क्योंकि इसके द्वारा जनमानस को लामबन्द करने का यह पहला प्रयास था और दूसरे इनके तरीके इनकी वकालत करने वालों और इनको मानने से घबराने वालों, दोनों ही के लिए नये और अपरिचित थे। इसलिए अपनाने वाले कुछ हिचकिचाहट से ही उन्हें अपना रहे थे। इसके कारण युवा वर्ग में अशान्ति तथा निराशा की भावना आ गई। यह वर्ग महसूस करने लगा कि जन-जागृति के लिए शायद कुछ और अधिक नाटकीय करने की आवश्यकता थी।

गरम दल (उग्रवादी) द्वारा आंदोलन की कमियों का विश्लेषण करने या इस गतिरोध में से बाहर निकाल सकने के नये रास्ते सुझाने में असफलता के कारण इस भावना को और भी बल मिला। इसका नेतृत्व करने वाले वर्ग के ही एक हिस्से ने जिनमें अरविन्द घोष भी शामिल थे, इस प्रवृत्ति का समर्थन किया। जो इससे सहमत नहीं थे वे इसकी खुली आलोचना करने के बजाय चुप रहे, शायद यह सोच कर कि इससे सरकार को फायदा होगा।

क्रांतिकारी आतंकवाद की प्रवृत्तियों को बढ़ावा मिलने का एक कारण सरकार द्वारा स्वदेशी आंदोलन का क्रूर दमन भी था। उदाहरण के लिए, 27 अप्रैल 1906 की बरीसाल राजनैतिक कान्फ्रेंस में शरीक शांतिपूर्ण भीड़ पर पुलिस ने अकारण हमला कर दिया जिसके फलस्वरूप राष्ट्रीय अखबार "युगान्तर" ने कहा कि "बल को बल से ही रोका जाना चाहिए"। सूरत में 1907 में भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस के गरम दल और नरम दल में विभाजन के बाद सरकार की दमन की क्षमता काफी बढ़ गयी क्योंकि गरम दल के दमन से नरम दल सरकार से नाराज नहीं होता। संविधान संशोधन के वायदों के लालच से नरम दल को बहका कर सरकार ने गरम दल पर पूरी तरह हमला बोल दिया; तिलक को 6 साल के लिये बर्मा में निर्वासित कर दिया गया, अरविन्द घोष को क्रांतिकारी षड़यंत्र केस में गिरफ़्तार कर लिया गया। इस दौर में राष्ट्रवादी युवा वर्ग की एक पूरी पीढ़ी-विशेषकर बंगाल में :

- दमन के कारण नाराज़ हो गयी
- उदार दल के रास्ते की व्यर्थता के बारे में निश्चित रूप से कायल हो गयी
- अशान्त थी कि गरम दल न तो सरकार से तुरंत कोई रियाएतें ही ले पाने में सफल हुआ और न ही जन-समुदाय को पूरी तरह लामबन्द करने में।

यह युवा पीढ़ी इसलिए वैयक्तिक वीरता की कार्यवाहियों या क्रांतिकारी आतंकवाद की ओर उन्मुख हुई। यह वही रास्ता था जिसे पहले आयरलैंड के राष्ट्रवादियों और रूसी शून्यवादियों ने अपनाया था। हालाँकि वे मानते थे कि साम्राज्यवाद को उखाड़ फेंकने के लिए अंततः जनता द्वारा हथियारबन्द बगावत आवश्यक थी, उन्हें इस काम की कठिनाई, विशेषकर सेना की वफादारी को खत्म करने के प्रयत्न में मुश्किलों का भी पूरा अहसास था। इसलिए तुरंत कार्यवाही के लिए उनके सामने एक ही रास्ता था : ब्रिटिश अधिकारियों, विशेषकर जो बदनाम हों, की हत्या। ऐसा इसलिए किया गया :

- कि अधिकारियों में दहशत फैल जाये;

- लोगों की उदासीनता तथा डर दूर हो जाये तथा;
- उनकी राष्ट्रीय चेतना जागृत हो जाये।

## 15.2.2 प्रारंभिक गतिविधियाँ

हालाँकि 1907-1908 के आस-पास ही क्रांतिकारी आतंकवाद की प्रवृत्ति सही मायने में ताकत बन सकी, परन्तु इससे पहले भी इसके कुछ उदाहरण मिलते हैं :

- 1897 में पूना के चापेकर भाइयों–दामोदर और बालकृष्ण–ने दो ब्रिटिश अफ़सरों की हत्या की थी।
- महाराष्ट्र में 1904 तक वी.डी. सावरकर तथा उनके भाई गणेश ने **मित्रमेला** और **अभिनव भारत** जैसी गुप्त समितियों का संगठन किया।
- 1905 के बाद से ही कई अखबारों तथा लोगों ने इस तरह की राजनैतिक गतिविधियों का समर्थन शुरू कर दिया था। 1907 में, बंगाल के लेफ़्टीनेंट गवर्नर पर कातिलाना हमला किया गया, हाँलाकि वह असफल हो गया।

चित्र 15 : प्रफुल्ल चाकी

लेकिन इस प्रवृत्ति की असली शुरुआत अप्रैल 1908 में मानी जाती है जब खुदीराम बोस तथा प्रफुल्ल चाकी द्वारा उस गाड़ी पर बम फेंका गया जिसमें उनके अनुसार मुज्जफरपुर का बदनाम जिला न्यायधीश किंग्सफोर्ड यात्रा कर रहा था। लेकिन दुर्भाग्यवश उसमें दो अंग्रेज औरतें यात्रा कर रही थीं जिनकी अनजाने में हत्या हो गयी। पकड़े जाने के बदले प्रफुल्ल चाकी ने स्वयं को गोली से मार देना बेहतर समझा लेकिन खुदीराम को गिरफ्तार कर लिया गया और बाद में फाँसी पर चढ़ा दिया गया। सरकार ने इस अवसर को अरविन्द घोष और उसके भाई बारिन तथा कई अन्यों को एक षडयंत्र केस में फँसाने के लिए भी इस्तेमाल किया, जिसमें अरविन्द स्वयं तो छूट गये लेकिन उनके भाई सहित अन्य कई लोगों को निर्वासन तथा कठोर कारावास जैसी सजायें दी गयीं।

#### गुप्त संस्थाओं की स्थापना तथा क्रांतिकारी गतिविधियाँ

अंग्रेज़ी सरकार के दमन के फलस्वरूप गुप्त संस्थायें बनने लगीं, बहुत-सी हत्यायें हुई तथा हथियार खरीदने के लिए कई "स्वदेशी" डकैतियाँ डाली गई। बंगाल में जो क्रांतिकारियों का केंद्र था, क्रांतिकारी गतिविधियों का संचालन "अनुशीलन" और "युगान्तर" जैसी संस्थाओं द्वारा किया गया। महाराष्ट्र में पूना, नासिक और बंबई क्रांतिकारियों की गतिविधियों के केंद्र बन गये। मद्रास में "भारत माता ऐसोसिऐशन" के वांची अय्यर ने गरम दलीय नेता चिदम्बरम पिल्लई की गिरफ्तारी का विरोध कर रही भीड़ पर गोली चलाने वाले अफसर की हत्या कर दी। लंदन में मदनलाल धींगरा ने इंडिया हाउस के अफसर कर्ज़न वाइली की हत्या कर दी तथा रासबिहारी बोस ने 23 दिसम्बर 1912 को दिल्ली में प्रवेश कर रहे वाइसराय लार्ड हार्डिंग पर कातिलाना हमला किया। श्यामजी कृष्ण वर्मा, लाल हरदयाल, वी.डी. सावरकर, अजीत सिंह और मैडम कामा ने यूरोप में केंद्र स्थापित किये जहाँ से वे क्रांतिकारी संदेश प्रसारित करते रहे तथा स्वदेश में अपने सहयोगियों की सहायता करते रहे। कुल मिलाकर 1908-1918 के बीच 186 क्रांतिकारी या तो मारे गये या पकड़े गये।

## 15.2.3 क्रांतिकारी प्रवृत्ति का पतन

कठोर दमन, क्रूर नियमों और लोकप्रियता के अभाव के कारण क्रांतिकारी आतंकवाद की लहर धीरे-धीरे धीमी पड़ गई। इसमें कोई संदेह नहीं कि वैयक्तिक वीरता के कामों के कारण क्रांतिकारियों को कुछ लोकप्रियता, प्रशंसा और हमदर्दी मिली और खुदीराम बोस तथा प्रफुल्ल चाकी जैसे कई क्रांतिकारी लोग प्रसिद्ध हो गये। लेकिन जैसा कि इसकी प्रवृत्ति से ही स्पष्ट था, इस प्रकार की राजनैतिक कार्यवाही का अनुकरण केवल कुछ व्यक्तियों द्वारा ही किया जा सकता था, जन-समुदाय द्वारा नहीं। आम जनता अभी भी ऐसे आंदोलन की प्रतीक्षा में थी जो उनकी कमजोरियों को समझते हुये उनकी शक्ति का उचित उपयोग कर सके।

**बोध प्रश्न-1**

1 क्रांतिकारी आतंकवाद की प्रवृत्ति को बढ़ाने वाले दो मुख्य कारण बताइये।

..............................................................................................................................

..............................................................................................................................

..............................................................................................................................

..............................................................................................................................

..............................................................................................................................

2 क्रांतिकारी आतंकवादियों द्वारा की गई तीन मुख्य कार्यवाहियों का विवरण दीजिए।

..............................................................................................................................

..............................................................................................................................

..............................................................................................................................

..............................................................................................................................

..............................................................................................................................

3 क्रांतिकारी किन क्षेत्रों में सबसे अधिक सक्रिय थे?

..............................................................................................................................

..............................................................................................................................

..............................................................................................................................

..............................................................................................................................

..............................................................................................................................

चित्र 16 : खुदीराम बोस

## 15.3 गदर आंदोलन

1914 में प्रथम विश्वयुद्ध छिड़ गया और बहुत से भारतीय राष्ट्रवादियों को लगा कि ब्रिटेन की कठिनाइयों से लाभ उठाने का यह एक अत्यन्त दुलर्भ अवसर था। उन्हें लगता था कि लड़ाई में व्यस्त ब्रिटेन उनकी राष्ट्रीय चुनौती का समुचित उत्तर नहीं दे पायेगा। यह चुनौती दो विभिन्न प्रकार के राष्ट्रवादियों द्वारा दी गई : उत्तरी अमेरिका में रहने वाले गदर क्रांतिकारियों द्वारा और भारत में तिलक और एनी बिसेंट की होम रूल लीग द्वारा। हम पहले गदर आंदोलन की चर्चा करेंगे।

### 15.3.1 आंदोलन की पृष्ठभूमि

गदर क्रांतिकारियों में अधिकतर वे पंजाबी प्रवासी थे जो 1904 के बाद उत्तरी अमरीका के पश्चिमी तट पर जाकर बस गये थे। इनमें अधिकतर कर्ज के बोझ तले दबे, पंजाब के ज़मीन के लिए इच्छुक किसान थे इनमें विशेषकर जालंधर और होशियारपुर इलाके के किसान थे। इनमें से बहुत से ब्रिटिश भारतीय फौज में नौकरी कर चुके थे। इससे उनमें प्रवास के लिए आवश्यक विश्वास पैदा हो गया था और उनके पास उसके लिए पर्याप्त साधन भी थे। स्थानीय लोगों के विद्वेषपूर्ण रवैये जिसमें गोरे मजदूरों की यूनियनें भी शामिल थीं, प्रतिबंधक प्रवासी नियमों जिनमें भारत सचिव की मिलीभगत शामिल थी, इन सब ने भारतीय समुदाय को अहसास दिला दिया कि यदि उन्हें अपने विरुद्ध नस्लवादी भेदभाव का मुकाबला करना है तो उन्हें स्वयं को संगठित करना होगा। उदाहरण के लिए, एक भारतीय विद्यार्थी तारक नाथ दास जो उत्तरी अमरीका में भारतीय समुदाय के आरंभिक नेताओं में से था और जिसने **फ्री हिन्दुस्तान** नामक अखबार भी शुरू किया था, यह अच्छी तरह जान गया था कि ब्रिटिश सरकार भारतीय मज़दूरों को फीजी में तो काम करने को प्रोत्साहित कर रही थी क्योंकि वहाँ के ज़मींदारों को मजदूरों की आवश्यकता थी लेकिन वह उत्तरी अमरीका में भारतीयों के प्रवास को हतोत्साहित कर रही थी क्योंकि उसे डर था कि वे वहाँ आज़ादी के वर्तमान विचारों से प्रभावित हो जायेंगे।

## 15.3.2 आरंभिक गतिविधियाँ

प्रवासी भारतीय समुदाय में राजनैतिक गतिविधि की हलचल 1907 में ही शुरू हो गई जब रामनाथ पुरी नामक एक राजनैतिक प्रवासी ने **सर्कुलर-ए-आज़ादी** नामक पर्चा छापा जिसमें उसने स्वदेशी आंदोलन की सहायता का वचन दिया था। तारक नाथ दास ने **फ्री हिन्दुस्तान** निकालना शुरू किया और जी.डी. कुमार ने **स्वदेश सेवक** नामक पत्र गुरुमुखी में निकाला जिसमें उसने सामाजिक सुधारों की हिमायत की और हिन्दुस्तानी सिपाहियों को बगावत करने का सुझाव दिया। 1910 तक दास और कुमार ने सियैटल (अमरीका) में युनाइटेड इंडिया हाउस की स्थापना कर ली जहाँ वे हर हफ़्ते हिन्दुस्तानी मज़दूरों के गुटों को भाषण दिया करते थे। उन्होंने खालसा दीवान सोसायटी के साथ भी घनिष्ट संबंध स्थापित किये जिसके फलस्वरूप 1913 में लंदन में कोलोनियल सैक्रेट्री और भारत में वायसराय तथा अन्य अफसरों से मिलने के लिए एक शिष्टमंडल भेजने का फैसला किया गया। एक महीना इंतज़ार करने के बाद भी वे कोलोनियल सैक्रैट्री से मिलने में सफल नहीं हो सके लेकिन पंजाब में वे लेफ़्टीनेंट गवर्नर और वायसराय से मिलने में सफल हो गये। पंजाब में उनकी यात्रा के दौरान पंजाब के विभिन्न शहरों में बहुत-सी जन-सभायें आयोजित की गईं। जनता तथा अखबारों से बहुत सहायता मिली।

इसी बीच 1913 के शुरू में हाँगकाँग में मलाया प्रदेशों में काम करने वाले एक सिक्ख पुजारी भगवान सिंह कनाडा में वैंकूवर शहर गये और खुलेआम ब्रिटिश शासन के खिलाफ हिंसक बगावत करने का प्रचार किया। उनके प्रचार का इतना प्रभाव पड़ा कि उन्हें तीन महीने बाद कनाडा से निकल जाने को कहा गया लेकिन उनके विचारों ने श्रोताओं में नयी चेतना जगा दी थी।

## 15.3.3 संगठन की ओर

ब्रिटिश भारतीय सरकार के रवैये से हताश होकर, उत्तरी अमरीका के भारतीय समुदाय को लगा कि विदेशों में उनकी घटिया स्थिति का कारण उनका एक गुलाम देश का नागरिक होना है। लगातार राजनैतिक संघर्षों, राष्ट्रीय चेतना और भाईचारे की भावना के फलस्वरूप उत्तरी अमरीका के इस समुदाय को एक केंद्रीय संगठन एवं नेता की आवश्यकता महसूस हुई। यह नेता उन्हें लाला हरदयाल के रूप में मिला। जो 1911 में राजनैतिक प्रवासी के रूप में अमरीका आये थे और स्टैनफोर्ड विश्वविद्यालय में तथा अमरीकी बुद्धिजीवियों, उग्रवादियों तथा मज़दूरों को अराजकतावादी तथा श्रमिकसंघवादी आंदोलनों के बारे में भाषण दिया करते थे लेकिन जिन्होंने भारतीय प्रवासियों के जीवन में अधिक रुचि नहीं दिखाई थी। दिसम्बर 1912 में दिल्ली में वाइसराय पर बम द्वारा हमले की खबर से उनके व्यवहार में परिवर्तन आया क्योंकि उन्हें लगा कि क्रांतिकारी भावना अभी जीवित थी। उन्होंने भारतीय प्रवासी समुदाय का नेतृत्व संभाल लिया तथा मई 1913 में पोर्टलैंड में **हिन्दी एसोसियेशन** की स्थापना से एक केंद्रीय संगठन की आवश्यकता भी पूरी हो गई। बाद में इस संगठन का नाम बदल कर **हिन्दुस्तान गदर पार्टी** रख दिया गया। इसकी पहली मीटिंग में बाबा सोहन सिंह भाकना इसके अध्यक्ष चुने गये और लाला हरदयाल जरनल सेक्रेटरी तथा पंडित काशी राम मरोली इसके कोषाध्यक्ष बने। इस मीटिंग में अन्य लोगों के अलावा भाई परमानन्द तथा हरनाम सिंह "टुंडीलाट" ने भी भाग लिया था। 10,000 डालर की रकम भी वहीं जमा कर ली गई और फैसला किया गया कि सैन फ्रांसिस्कों में **युगान्तर आश्रम** नाम से एक मुख्यालय की स्थापना की जायेगी और गदर नामक एक साप्ताहिक अखबार निकाला जायेगा जो मुफ्त बाँटा जायेगा।

चित्र 17 : लाला हरदयाल

## 15.3.4 योजना एवं कार्यवाही

राजनैतिक कार्यवाही की योजना लाला हरदयाल द्वारा सुझाई गई थी और इसे हिन्दी ऐसोसियेशन ने स्वीकार किया था, यह योजना इस समझ पर आधारित थी कि ब्रिटिश शासन को केवल हथियारबंद विद्रोह द्वारा ही उखाड़ फेंका जा सकता था और ऐसा करने के लिए आवश्यक था कि बड़ी संख्या में भारतीय प्रवासी भारत जायें और यह संदेश जनता तथा हिन्दुस्तानी फौज के सिपाहियों तक पहुँचायें। लाला हरदयाल यह भी मानते थे कि अमरीका में मिली आज़ादी को अंग्रेज़ों के खिलाफ लड़ने में इस्तेमाल किया जाना चाहिए, अमरीकियों

के विरुद्ध नहीं क्योंकि विदेश में रहने वाले हिन्दुस्तानियों को तब तक बराबरी का दर्जा नहीं मिल सकता था जब तक कि वे अपने ही देश में स्वतंत्र नहीं हो जाते। इस समझ को स्वीकार करते हुए राष्ट्रवादियों ने एक जबर्दस्त अभियान छेड़ दिया और जिन फ़ैक्ट्रियों और फ़ार्मों पर हिन्दुस्तानी प्रवासी काम करते थे उनका दौरा करने लगे।

### अख़बार की शुरुआत और उसका प्रभाव

पहली नवम्बर 1913 को **गदर** अख़बार की शुरुआत की गई; पहला अंक उर्दू में छपा लेकिन एक महीने बाद उसका गुरुमुखी अंक भी आ गया। **गदर** अख़बार की रूपरेखा राष्ट्रवाद के संदेश को सीधे-सादे लेकिन प्रभावशाली शब्दों में व्यक्त करने के हिसाब से तैयार की गई थी। उसके नाम का ही अर्थ था विद्रोह ताकि उसकी मंशा के बारे में किसी प्रकार का संदेह न रहे। उसके ऊपर "अंग्रेज़ी राज का दुश्मन" छपा हुआ था। इसके अलावा, हर अंक के मुखपृष्ठ पर "अंग्रेज़ी राज का कच्चा चिट्ठा" छपता था जिसमें अंग्रेज़ी शासन के 14 नकारात्मक प्रभावों का विवरण रहता था। चिट्ठा वास्तव में अंग्रेज़ी शासन की समस्त आलोचना का सारांश था जिसमें भारतीय संपत्ति की लूट, ज़मीन के ऊँचे लगान, प्रति व्यक्ति निम्न आय, लाखों भारतीयों की जान लेने वाले अकाल का बार-बार पड़ना, फौज पर लम्बे-चौड़े ख़र्च, स्वास्थ्य पर नगण्य ख़र्च तथा हिन्दु-मुसलमानों को लड़वा कर "विभाजन और शासन" की नीति आदि का ज़िक्र रहता था। चिट्ठे की आखिरी दो बातें इस सबके समाधान की ओर यह कह कर संकेत करती थीं कि करोड़ों भारतीयों के मुकाबले में हिन्दुस्तान में मौजूद अंग्रेज़ों की संख्या बहुत ही कम थी और 1857 के पहले विद्रोह के बाद छप्पन वर्ष बीत गये थे और एक अन्य विद्रोह के लिए समय आ गया था।

चित्र 18 : "गदर" अखबार

**गदर** जिसका प्रसार उत्तरी अमरीका के भारतीय प्रवासियों में ख़ूब था, जल्दी ही फिलिपाइन्स, हाँग-काँग, चीन, मालाया प्रदेशों, सिंगापुर, त्रिनिदाद तथा होंडूरस के प्रवासियों तक भी पहुँचने लगा और इन केंद्रों में मौजूद हिन्दुस्तानी सेनाओं में भी। इसे भारत भी भेजा जाता था। इसने प्रवासी समुदायों में जबर्दस्त चेतना पैदा की तथा इसे पढ़ने और इसमें उठाये गये मुद्दों पर बहस के लिए कई वर्ग बनाये गये और चन्दे के ढेर लग गये। सबसे अधिक लोकप्रिय थीं इसमें छपने वाली कवितायें जिन्हें जल्दी ही **गदर की गूंज** नाम से संकलित किया गया। इन्हें भारतीयों के सम्मेलन में पढ़ा और गाया जाता था। इन कविताओं में क्रांतिकारी भावना तथा धर्मनिरपेक्षता का भाव भरा था जैसा कि नीचे की पंक्तियों से स्पष्ट है:

> न पंडित की जरूरत है न मुल्ला की
> न फ़रियाद, न प्रार्थना गीत गाना है
> इनसे डोलती है नैया हमारी
> उठाओ तलवार लड़ने जाना है।

"गदर" ने पंजाबियों से अपील की कि वे 1857 के अपने अंग्रेज़ों की हिमायत की भूमिका का उधार अब उन्हें उखाड़ फेंकने में महत्वपूर्ण भूमिका अदा करके चुका दें। वे अंग्रेज़ों द्वारा बनाई गई वफ़ादार सिपाहियों की अपनी छवि का भी खंडन करें और सिर्फ़ विद्रोही बनें जिनका एकमात्र उद्देश्य स्वतंत्रा प्राप्त करना था। गदर का संदेश इतनी तेज़ी से घर कर गया कि स्वयं हरदयाल उन लोगों की तीव्र प्रतिक्रिया से चकित रह गये जो कुछ करने के लिए बेचैन थे।

**बोध प्रश्न-2**

1 ग़दर आंदोलन के उदय के कारण बताइये।

..........................................................................................................

..........................................................................................................

..........................................................................................................

..........................................................................................................

..........................................................................................................

2 गदर पार्टी के कौन-कौन से उद्देश्य थे?

..........................................................................................................

..........................................................................................................

..........................................................................................................

..........................................................................................................

..........................................................................................................

3 गदर आंदोलन के चार महत्वपूर्ण नेताओं के नाम बताइये

..........................................................................................................

..........................................................................................................

..........................................................................................................

4 गदर अख़बार ने क्या संदेश प्रसारित किया?

..........................................................................................................

..........................................................................................................

..........................................................................................................

..........................................................................................................

..........................................................................................................

## 15.4 गदर आंदोलन : मुख्य घटनायें

1914 में घटी तीन मुख्य घटनाओं ने गदर आंदोलन की आगे की दिशा निर्धारित की, लाला हरदयाल की गिरफ्तारी, ज़मानत और स्विट्ज़रलैंड भाग जाना, कामागाटा मारू जहाज़ की यात्रा और प्रथम विश्वयुद्ध की शुरुआत:

i) मार्च 1914 में हरदयाल को गिरफ़्तार कर लिया गया। संभवतः इसका सबसे महत्वपूर्ण कारण था ब्रिटिश सरकार का दबाव जो चाहती थी कि वे गदर आंदोलन के नेतृत्व से हट जायें लेकिन जो कारण बताया गया वह था, उनकी अराजकतावादी गतिविधियाँ। उन्हें ज़मानत पर छोड़ दिया गया और उनकी पार्टी ने फ़ैसला किया कि वह ज़मानत से भाग कर स्विट्ज़रलैंड चले जायें।

ii) इस बीच, कनाडा के प्रवास कानूनों का उल्लंघन करने के लिए, जिनके अनुसार "सीधे अपने जहाज़ पर आने वालों" के सिवा सभी अन्य के आने पर प्रतिबंध था, सिंगापुर में रह रहे एक हिन्दुस्तानी कांट्रेक्टर गुरदित्त सिंह ने **कामागाटा मारू** नामक जहाज

किराये पर लिया और पूर्वी तथा दक्षिण पूर्वी एशिया के विभिन्न भागों में रहने वाले 376 भारतीय यात्रियों को लेकर वैंकूवर के लिए रवाना हो गया। रास्ते में गदर पार्टी के कार्यकर्ता जहाज़ पर आते, भाषण देते तथा साहित्य बाँटते। उनके प्रवास की पूर्व सूचना मिलने पर वैंकूवर के प्रैस ने "बढ़ते हुए पूर्व के आक्रमण" की चेतावनी दे दी और अपने कानूनों को और कड़ा करके कनाडा की सरकार इस चुनौती का सामना करने को तैयार हो गई।

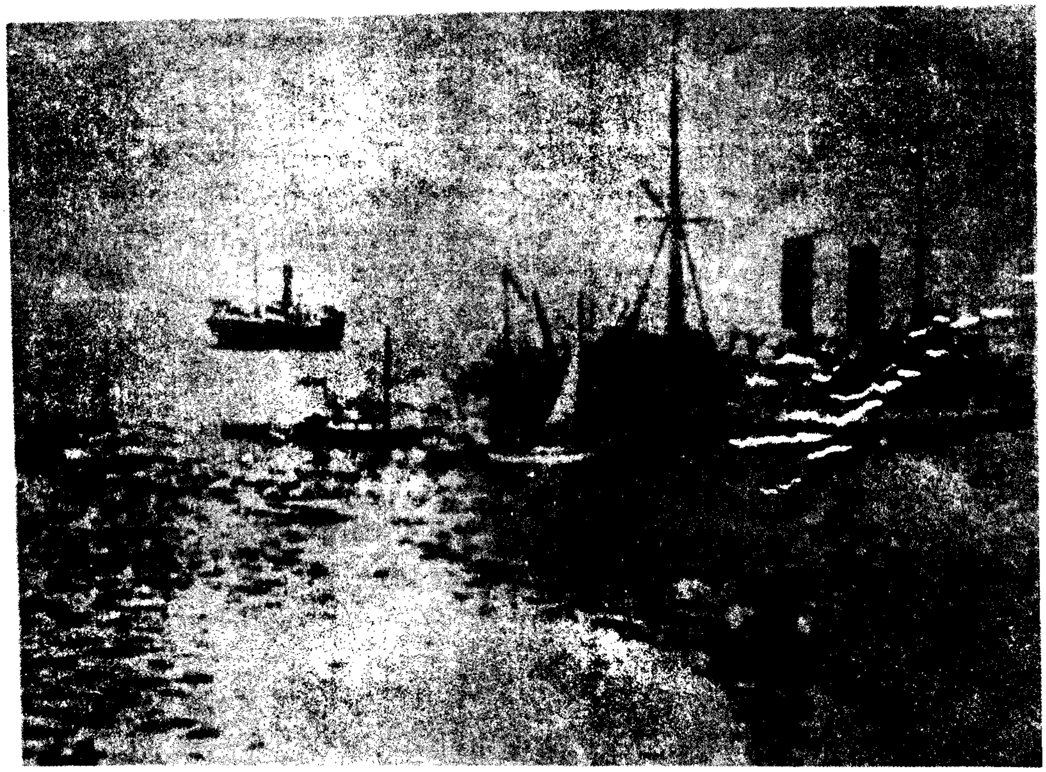

**चित्र 19 : कोमागाटा मारू**

कनाडा पहुँचने पर, जहाज़ को बंदरगाह में जाने नहीं दिया गया तथा पुलिस ने उसकी घेराबंदी कर दी। वैंकूवर में "समुद्रतट समिति" जिसके नेता हुसैन रहीम, सोहन लाल पाठक और बलवन्तसिंह थे, के प्रयत्नों के बावजूद तथा अमरीका में बर्कातुल्ला, भगवान सिंह, रामचंद्र और सोहन सिंह भकना के शक्तिशाली अभियान के बावजूद, कामागाटा मारू को कनाडा की जल सीमा के बाहर निकाल दिया गया। उसके जापान पहुँचने से पहले प्रथम विश्व युद्ध छिड़ गया तथा ब्रिटिश सरकार ने ऐलान कर दिया कि जहाज़ के कलकत्ता पहुँचने से पहले किसी यात्री को उतरने नहीं दिया जायेगा।

वापसी की यात्रा में जिस बन्दरगाह पर भी यह जहाज पहुँचा वहाँ भारतीय प्रवासियों में रोष की लहर दौड़ गई और ब्रिटिश विरोधी भावना बढ़ने लगी। जब जहाज़ कलकत्ता के पास ब्रज-बज नामक स्थान पर पहुँचा तो पुलिस के द्वेषपूर्ण रवैये के कारण संघर्ष हुआ। इस संघर्ष में 18 यात्रियों की मृत्यु हो गई, 202 को गिरफ्तार कर लिया गया तथा बाकी भाग निकलने में सफल हो गये।

iii) तीसरी और सबसे महत्वपूर्ण घटना जिसने सारी परिस्थिति में एक नाटकीय परिवर्तन ला दिया वह थी तीसरे विश्वयुद्ध की शुरुआत। यही वह अवसर था जिसके इंतज़ार में गदरवादी तैयार बैठे थे ताकि अंग्रेज़ों की कठिनाइयों का पूरा लाभ उठाया जा सके। यह अवसर उनकी आशाओं से पहले ही आ गया। अभी उनकी तैयारी भी पूरी नहीं हुई थी। फिर भी पार्टी के सक्रिय कार्यकर्ताओं की विशेष सभा हुई और यह फैसला किया गया कि काम का समय आ गया था। यह विचार किया गया कि दल की सबसे बड़ी कमजोरी हथियारों की कमी थी जिसे हिन्दुस्तानी सिपाहियों को विद्रोह के लिए उकसा

कर पूरा किया जा सकता था। गदर पार्टी ने एक पत्र **ऐलाने-जंग** (युद्ध की घोषणा) जारी कर दिया जिसे विदेशों में रहने वाले भारतीयों में बाँटा गया। गदर के कार्यकर्ताओं ने लोगों में प्रोत्साहन जगाने के लिए यात्राएँ भी आरंभ कर दी कि वे हिन्दुस्तान लौट कर संगठित विद्रोह की तैयारी करें। परिणाम बहुत ही उत्साहवर्धक था और भारी संख्या में लोगों ने स्वयं को और अपनी सारी सम्पत्ति को राष्ट्र के नाम समर्पित करने की पेशकश की। इससे उत्साहित होकर गदर पार्टी ने हिन्दुस्तान चलने का आह्वान किया तथा 1914 के पूर्वार्ध से क्रांतिकारियों के जत्थे विभिन्न रास्तों से होकर हिन्दुस्तान पहुँचने लगे।

## 15.4.1 आंदोलन का आखिरी दौर

हिन्दुस्तान में प्रवेशाधिकार घुसपैठ के विरुद्ध एक नये अध्यादेश से युक्त होकर हिन्दुस्तानी सरकार ताक लगाये बैठी थी। लौटने वाले प्रवासियों की पूरी तरह जाँच-पड़ताल की गई और लौटने वाले लगभग 8000 में से 5000 को "सुरक्षित" मान कर बिना रोक-टोक के आने दिया गया। शेष में से कुछ को गाँवों में नज़रबंद कर दिया गया और काफी लोगों को हिरासत में ले लिया गया। फिर भी कुछ कट्टर कार्यकर्ता पंजाब पहुँचने में सफल हो गये।

पंजाब में सुरक्षित पहुँचने वालों में करतार सिह सरापा नाम का एक नौजवान तथा बुद्धिमान विद्यार्थी भी था जिसने गदर पार्टी की सदस्यता अमरीका में प्राप्त की थी और जो गदर अख़बार के निकालने में प्रमुख योगदान देता था। उसने तुरंत लौटने वाले प्रवासियों से सम्पर्क स्थापित करने, उन्हें संगठित करने का काम शुरू कर दिया। वह सभाएँ करने लगा तथा योजना बनाने के काम में जुट गया। गदर कार्यकर्ता गाँवों के दौरे करके, पार्टी के पर्चे बाँट कर, मेलों में लोगों को संबोधित करके और अन्य कई प्रयत्नों द्वारा लोगों को विद्रोह के लिये प्रेरित करने लगे। लेकिन 1914 का पंजाब उनकी आशाओं से भिन्न था और लोग गदर द्वारा काल्पनिक विद्रोह के लिए तैयार नहीं थे। कार्यकर्ताओं को सरकार के वफ़ादार तत्वों के विरोध का भी सामना करना पड़ा जिसमें खालसा दीवान का प्रमुख भी शामिल था जिसने उन्हें तनखैया या पतित सिखों और अपराधी का दर्जा देकर सरकार द्वारा उन्हें दबाने के प्रयत्नों में पूरा सहयोग दिया।

आम जनता में लोकप्रियता के अभाव से निराश होकर गदर क्रांतिकारियों ने दूसरा प्रयास सिपाहियों में अपना संदेश फैला कर उन्हें विद्रोह के लिये तैयार करने का किया। नवम्बर 1914 के विद्रोह का प्रयत्न संगठन तथा केंद्रीय नेतृत्व के अभाव के कारण असफल हो गया। फरवरी 1915 में रास बिहारी बोस से सम्पर्क और उन्हें नेतृत्व तथा संगठन सौंप देने के बाद एक अधिक संगठित प्रयत्न किया गया लेकिन यह भी असफल रहा क्योंकि सरकार संगठन में घुस-पैठ करके इससे पहले ही कार्रवाई कर ली थी। बोस बच निकलने में सफल हो गये लेकिन अन्य नेताओं को गिरफ्तार कर लिया गया और गदर आंदोलन को प्रभावशाली ढंग से दबा दिया गया।

## 15.4.2 दमन

इसके बाद दमन का जो दौर चला वह बहुत ही भयानक था : 42 लोगों को फाँसी की सज़ा सुनाई गई और अन्य को लंबी अवधि का कारावास दिया गया। इसके फलस्वरूप पंजाब में राष्ट्रवादी नेतृत्व की एक पूरी पीढ़ी की राजनैतिक हत्या कर दी गई। बर्लिन में रह रहे हिन्दुस्तानी क्रांतिकारियों द्वारा जर्मन सहायता प्राप्त करने और विदेशों में भेजे गये हिन्दुस्तानी सिपाहियों में विद्रोह कराने के प्रयत्न भी असफल हुए। राजा महेन्द्र प्रताप और बर्कातुल्लाह द्वारा अफगानिस्तान के अमीर की मदद प्राप्त करने के प्रयत्नों में भी असफलता हाथ आई। इस प्रकार हिंसक विद्रोह द्वारा अंग्रेजी शासन को उखाड़ फेंकने में सफलता शायद इन क्रांतिकारियों के भाग्य में लिखी ही नहीं थी।

## 15.4.3 उपलब्धियाँ एवं असफलताएँ

क्या इस कारण हम गदर आंदोलन को असफल मान सकते हैं? क्या हम कह सकते हैं कि हथियारबंद क्रांति संगठित करने और अंग्रेज़ों को बाहर निकाल फेंकने के अपने उद्देश्य में तुरंत सफल न होने के कारण उनके प्रयत्न पूरी तरह विफल हुए? इस मापदण्ड से तो

1920-22, 1930-34 तथा 1942 के सभी बड़े आंदोलन असफल माने जायेंगे क्योंकि इनमें से कोई भी तुरंत स्वतंत्रता प्राप्त करने में सफल नहीं हुआ। लेकिन अगर सफलता का मापदण्ड राष्ट्रीय भावनाओं को आगे बढ़ाना, मुकाबला करने की नई परंपरायें बनाना, आंदोलन के नये तरीके ढूँढना तथा धर्म-निरपेक्षता, जनतंत्र तथा सत्रता की विचारधारा का प्रसार करना था तो भारत के स्वतंत्रता संग्राम में गदर आंदोलन की भूमिका अत्यन्त महत्वपूर्ण मानी जायेगी।

**उपलब्धियाँ :** गदर पार्टी के लोग राष्ट्रीय विचारधारा को लोकप्रिय बनाने में सफल हुए विशेषकर उपनिवेशवाद के मूल्यांकन करने तथा इस समझ का प्रसार करने में कि हिन्दुस्तान की गरीबी और पिछड़ेपन का मुख्य कारण अंग्रेज़ी शासन था। यह प्रसार उन्होंने देश तथा विदेश में रहने वाले भारतीयों में किया। उन्होंने अत्यधिक उत्साही राष्ट्रवादियों का एक दल तैयार किया जो बाद में कई दशकों तक राष्ट्रीय आंदोलन तथा बाद में पंजाब और देश के अन्य भागों में वामपन्थी तथा किसान आंदोलन तैयार करने में प्रमुख भूमिका अदा की। यद्यपि दमन के फलस्वरूप उनमें से कई लोग स्थायी तौर पर और अन्य लोग कई वर्षों तक आंदोलन से अलग रहे।

गदर विचारधारा मूलतः अत्यंत समतावादी तथा जनतंत्रवादी थी। उनका उद्देश्य था हिन्दुस्तान में एक स्वतंत्र गणतंत्र की स्थापना करना। हरदयाल ने जो प्रारंभिक अवस्था में अराजकतावादी तथा श्रमिकसंघवादी आंदोलनों से प्रभावित हुए थे, इस आंदोलन को एक समतावादी स्वरूप प्रदान किया। वे अक्सर आयरिश, मैक्सिकन तथा रूसी क्रांतिकारियों का ज़िक्र किया करते थे जिसके कारण इस आंदोलन को अंधे राष्ट्रवाद से भी बचा सकें और उसे एक अन्तर्राष्ट्रीय रूप भी दे सकें।

लेकिन गदर आंदोलन की सबसे महत्वपूर्ण उपलब्धि यह थी कि उसके अधिकतर अनुयायी पंजाबी सिक्ख प्रवासियों में से होने के बावजूद उन्होंने कभी भी फिरकापरस्ती का इज़हार नहीं किया बल्कि वे अपने दृष्टिकोण में पूरी तरह धर्म-निरपेक्ष बने रहे। धर्म को महत्व देने को तुच्छ और संकीर्णता समझा जाता था जिसे क्रांतिकारी निन्दनीय समझते थे। वे खुले दिल से सिक्खों और पंजाबियों के सिवा दूसरों को भी नेता स्वीकार करते थे : हरदयाल हिन्दू थे, बर्कातुल्लाह मुसलमान थे, रास बिहारी बोस बंगाली हिन्दू थे। वे समस्त भारत के नेताओं का सम्मान करते थे—तिलक, सावरकर, खुदीराम बोस, तथा अरविन्द घोष उनके हीरो थे। वे यह भी समझते थे कि सिक्खों को "लड़ाकू कौम" घोषित करने में उपनिवेशवादी शासन का हाथ था ताकि वे वफादार सिपाही बने रहें। गदर दल ने इस मिथ्या छवि को भंग करने का भरसक प्रयत्न किया। उन्होंने बन्दे मातरम् को आंदोलन के नारे के रूप में लोकप्रिय बनाया और सत श्री अकाल जैसे धार्मिक नारे को नहीं अपनाया। सोहन सिंह माखना, जो बाद में गदरी बाबा के नाम से प्रसिद्ध हुए और सुप्रसिद्ध राष्ट्रीय एवं वामपंथी नेता बने, के अनुसार "हम सिक्ख या पंजाबी नहीं थे देशप्रेम ही हमारा धर्म था।"

**कमज़ोरियाँ :** गदर आंदोलन की अपनी कमजोरियाँ भी थीं जिनमें मुख्य थी आंदोलन के लिए तैयारी के स्तर को अधिक महत्व देना। कहा जा सकता है कि उन्होंने अपनी सेना की परिस्थितियों को पूरी तरह समझे बिना ही लड़ाई का बिगुल बजा दिया। प्रतिदिन नस्लवादी अपमान, अपरिचित परिस्थितियों में रहने के कारण आई विमुखता की भावना आदि के शिकार भारतीय प्रवासियों में राष्ट्रीय चेतना जगाने के उनके अभियान का जबर्दस्त प्रभाव पड़ा क्योंकि उनकी संख्या कम होने के कारण उन्हें संगठित करना बहुत आसान था और इसी से वे भ्रमित हो गये कि सारे भारत की जनता भी इस प्रकार तैयार थी। उन्होने ब्रिटिश शासकों की ताकत, उनकी विचारधारा के प्रभाव का भी गलत अन्दाज़ लगाया और समझा कि हिन्दुस्तान की जनता को सिर्फ विद्रोह का नारा देने की जरूरत थी। इस महत्वपूर्ण कमजोरी की जो कीमत गदर आंदोलन और समूचे राष्ट्रीय आंदोलन को चुकानी पड़ी वह काफी अधिक थी क्योंकि अगर गदर आंदोलन के नेतृत्व के एक बडे भाग को शासन द्वारा कार्यक्षेत्र से अलग न किया जाता तो राष्ट्रीय आंदोलन का स्वरूप, विशेषकर पंजाब में, कुछ और ही होता क्योंकि अपनी राष्ट्रवादी एवं धर्मनिरपेक्ष विचारधारा के कारण गदर दल ने उन फिरकापरस्त भावनाओं को रोकने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई होती जिन्होंने आने वाले वर्षों में अपना सिर उठाया।

**बोध प्रश्न-3**

1 1914 की कौन सी तीन महत्वपूर्ण घटनाओं ने गदर आंदोलन को प्रभावित किया।

..................................................................................................

..................................................................................................

..................................................................................................

..................................................................................................

..................................................................................................

2 गदर नेताओं ने हिन्दुस्तान में क्या कार्ययोजना बनाई थी?

..................................................................................................

..................................................................................................

..................................................................................................

..................................................................................................

..................................................................................................

3 गदर आंदोलन की मुख्य उपलब्धियाँ क्या थीं?

..................................................................................................

..................................................................................................

..................................................................................................

..................................................................................................

..................................................................................................

4 गदर आंदोलन की मुख्य कमज़ोरियाँ क्या था?

..................................................................................................

..................................................................................................

..................................................................................................

..................................................................................................

..................................................................................................

## 15.5 होम रूल लीग

प्रथम विश्व महायुद्ध से उत्पन्न परिस्थितियों की एक अन्य कम नाटकीय लेकिन अधिक प्रभावशाली प्रतिक्रिया हुई--लोकमान्य तिलक एवं ऐनी बिसेंट की होम रूल लीग।

### 15.5.1 लीगों के बनने में सहायक घटनायें

मांडाले, बर्मा में छह वर्ष की लंबी कैद काटने के बाद जब तिलक वापस हिन्दुस्तान लौटे तो सबसे पहले उन्होंने अपना ध्यान स्वयं तथा अन्य उग्रवादियों के कांग्रेस में वापस जाने की ओर दिया जिसमें से उन्हें 1907 में सूरत में निकाल दिया गया था। 1907 में भी वे विभाजन से खुश नहीं थे। अब तो वह एकता के और भी हामी बन गये। इसके अतिरिक्त, किसी भी प्रकार की राजनैतिक गतिविधियों के लिए कांग्रेस की मुहर आवश्यक थी क्योंकि लोगों के दिमाग में कांग्रेस राष्ट्रीय आंदोलन का विशिष्ट चिह्न बन गई थी। साथ ही, विभाजन ने अंग्रेज़ों को ही लाभ पहुँचाया था जिन्होंने पहले तो गरम दल को दमन करके अलग कर दिया और फिर नरम दल की भी उपेक्षा ऐसे संशोधन लाकर कर दी जो अपेक्षाओं से बहुत ही कम थे। 1908 के बाद से राजनैतिक गतिविधियों के पूर्ण अभाव से नरम दलीय पर मिसेज़ ऐनी बिसेंट का भी काफी दबाव था क्योंकि वे हिन्दुस्तान में भी आयरिश होम रूल लीग की तरह का आंदोलन चलाना चाहती थीं और वह उग्रवादियों के वापस लिए जाने पर ज़ोर दे रही थीं। एनी बिसेंट जिनकी उम्र 1914 में 66 वर्ष की थी, 1893 में इंग्लैंड से थियोसौफिकल सोसाइटी

का काम करने हिन्दुस्तान आई थीं। वह पहले मुक्त विचारधारा, क्रांतिकारी विचारधारा तथा फेबियनवाद की समर्थक रह चुकी थीं। उन्होंने मद्रास के निकट अदयार में अपना मुख्य कार्यालय बनाया था और उन शिक्षित भारतीयों में से बहुत को थियोसौफिकल सोसायटी का सदस्य बना लिया था जिनके समुदायों में किसी प्रकार का सांस्कृतिक पुनर्उत्थान नहीं हुआ था। इसी को आधार बना कर वह राजनैतिक आंदोलन आरंभ करना चाहती थीं।

## 15.5.2 दो लीग

दिसम्बर 1914 के कांग्रेस के अधिवेशन में उग्रवादियों को पुन: प्रवेश नहीं मिल पाया लेकिन 1915 में लगातार प्रयत्नों के कारण, जिन्हें एनी बिसेंट और तिलक ने सम्माचार पत्रों तथा स्थानीय एसोसियेशनों के द्वारा शुरू किया था, दिसंबर 1915 में उन्हें पुन: प्रवेश मिल गया। फिरोज़शाह की मृत्यु के बाद उनके विरोध में काफी कमी आई थी क्योंकि वे उनके विरोधियों में सबसे प्रमुख थे। कांग्रेस जिसमें अभी भी नरम दलीय सत्ता में थे, स्थानीय स्तर की कांग्रेस समितियों को दुबारा शुरू करने व सितम्बर 1916 तक लोगों को शिक्षित करने के कार्यक्रम को शुरू नहीं कर पाई। इसीलिए तिलक और एनी बिसेंट ने 1916 में अपने-अपने संगठन—होम रूल लीग—शुरू कर दिये। दोनों लीगों ने अपने-अपने प्रभाव क्षेत्रों को साफ-साफ सीमित कर लिया। तिलक की लीग को महाराष्ट्र, कर्नाटक, मध्यप्रदेश, और बरार में काम करना था और एनी बिसेंट वाली लीग को शेष भारत में।

चित्र 20 : तिलक

## 15.5.3 तिलक का होम रूल लीग

तिलक की होम रूल लीग को जिसे अप्रैल 1916 में बेलगाम में हुई बंबई की क्षेत्रीय कांफ्रेंस में शुरू किया गया था। इसे छह ब्रांचों में संगठित किया गया था जिनमें से एक-एक मध्य महाराष्ट्र, बंबई शहर, कर्नाटक तथा मध्य प्रदेश में थी और दो बरार में थीं। इसने मराठी में 6 और अंग्रेज़ी में 2 पैम्फलैट जारी किये जिनकी 47,000 प्रतियाँ बिकीं। पैम्फलैट कन्नड़ और गुजराती में भी निकाले गये। इसके अतिरिक्त सबसे प्रमुख भूमिका अदा की तिलक द्वारा महाराष्ट्र के दौरे ने जिसमें उन्होंने भाषण दिये और होम रूल की माँग के बारे में बताया। "हिन्दुस्तान उस बेटे की तरह था जो अब व्यस्क हो गया था", उन्होंने कहा, "अब उसे उसके ट्रस्टी या पिता से वह सब मिलना चाहिए जो उसका हक था।" उनके उस समय के भाषणों में धार्मिकता की अपील बिल्कुल नहीं थी। उन्होंने साफ़-साफ़ कहा :

चित्र 21 : तिलक की होम रूल लीग का प्रतिनिधि मंडल

"परायापन का संबंध धर्म, व्यापार तथा व्यवसाय से जुड़ा नहीं है; यह तो रुचि का प्रश्न है। जो भी ऐसा कोई काम करता है जो इस देश के हित में है, चाहे वह मुस्लिम हो या अंग्रेज़, वह विदेशी नहीं है।"

और न ही उनके विचारों से कोई संकुचित क्षेत्रीय भाषाई प्रभुत्व या जाति-पाँति का पक्षपात झलकता है। वे सभी भाषाओं व संस्कृतियों की प्रगति के पक्ष में थे और चाहते थे कि शिक्षा भारतीय भाषाओं में दी जाये। वे छुआछूत के पूरी तरह विरुद्ध थे: उन्होंने कहा "अगर भगवान भी छुआछूत को मानता है तो उसे भगवान ही नहीं मानूँगा"। उन्होंने ब्राह्मणों से कहा कि वे गैर-ब्राह्मणों की मांगों का विरोध न करें और साथ ही गैर-ब्राह्मणों से अनुरोध किया कि वे नौकरियों की कमी जैसी समस्याओं को ब्राह्मण-गैर-ब्राह्मण के दृष्टिकोण से न देखें क्योंकि इसका असली कारण ब्राह्मणों में शिक्षा का अधिक प्रसार था। जैसे ही तिलक का आंदोलन जनता में फैलने लगा, सरकार ने यह कह कर उन पर चोट की कि वह 60,000 रुपये "सुरक्षा-राशि" के रूप में जमा करायें अन्यथा उन पर एक साल के लिए "सद्व्यवहार" की रोक लगा दी जायेगी। तिलक निचली अदालत में तो केस हार गये लेकिन नवम्बर 1916 में उच्च न्यायालय में उन्हें बरी कर दिया। सरकार द्वारा उनका मुँह बन्द करने के असफल प्रयत्न से आंदोलन को बल मिला जिसके फलस्वरूप तिलक ने घोषणा कर दी कि होम रूल को अब वैधानिक मान्यता मिल गई थी। अप्रैल 1917 तक लीग के सदस्यों की संख्या 14,000 हो गई थी।

### 15.5.4 एनी बिसेंट की होम रूल लीग

इस बीच एनी बिसेंट की लीग भी काफी सक्रिय थी। सितम्बर 1916 में लीग के औपचारिक उद्घाटन से पहले ही प्रचार फंड ने 26 अंग्रेज़ी पैम्फ़लैट्स की 300,000 प्रतियाँ बेच डाली थीं जिनमें हिन्दुस्तान में चल रहे शासन के स्वरूप तथा सैल्फ-गवर्नमेंट (स्वशासन) की माँग की व्याख्या की गई थी। भारतीय भाषाओं में पैम्फलेट निकाले गये, स्थानीय शाखाओं ने भाषणों तथा चर्चा-सभाओं का आयोजन किया तथा पुस्तकालयों की स्थापना की गई। अडयार के मुख्यालय में एनी बिसेंट तथा उनके सहयोगियों ने जिनमें अरूंडेल, सी.पी. रामस्वामी अय्यर तथा बी.पी. वाडिया शामिल थे, न्यू इंडिया और कॉमनवील नामक पत्र निकाले। न्यू इंडिया में अरूंडेल का "होम रूल" कॉलम खबरों तथा निर्देश का माध्यम था। थियोसौफ़िकल सोसायटी के वर्तमान सदस्यों के अलावा, इलाहाबाद से जवाहरलाल नेहरू, कलकत्ता से बी. चक्रवर्ती तथा जे. बनर्जी समेत बहुत से नये सदस्यों ने लीग में शामिल होने का फैसला किया।

होम रूल लीग बहुत से उदारवादी कांग्रेसियों की सहायता प्राप्त करने में भी सफल हो सकी क्योंकि वे कांग्रेस की गतिविधियों से असंतुष्ट थे। गोखले के सर्वेन्ट्स ऑफ इंडिया सोसायटी के सदस्यों ने दौरे करके भाषण दिये, पैम्फ़लेट छापे तथा होम रूल की माँग का समर्थन किया; उत्तर प्रदेश में उदारवादी कांग्रेसियों ने छोटे शहरों तथा गाँवों के दौरों में होम लीग वालों का साथ दिया। इसमें कोई आश्चर्य की बात नहीं थी क्योंकि होम लीग के समर्थक उदारवादियों ही के कार्यक्रम को जोर-शोर से आगे बढ़ा रहे थे।

दिसम्बर 1916 में लखनऊ में हुए कांग्रेस के वार्षिक अधिवेशन में भी होम रूल के समर्थकों को अपनी शक्ति दिखाने का अवसर मिला और वे इसमें बड़ी संख्या में शामिल हुए। तिलक व एनी बिसेंट ने कांग्रेस व मुस्लिम लीग में संधि कराने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई जिस पर इसी अधिवेशन में हस्ताक्षर किये गये। तिलक ने इस आलोचना का कि हिन्दू मुसलमानों के प्रति बहुत अधिक सहृदयता दिखा रहे थे, उत्तर इस प्रकार दिया :

"मुझे विश्वास है कि मैं समूचे भारत का सामूहिक रूप से प्रतिनिधित्व कर रहा हूँ जब मैं यह कहता हूँ कि अगर स्वशासन (Self Government) सिर्फ मुसलमान समुदाय को दिया जाता है तो हम बिल्कुल भी आपत्ति नहीं करेंगे..... यदि यह अधिकार हिन्दुस्तान के किसी एक समुदाय को दिया जाता है तो भी हम कोई आपत्ति नहीं करेंगे।"

"जब आपको एक तीसरे दल के विरुद्ध लड़ना होता है तो यह अत्यन्त महत्वपूर्ण है कि हम इस मंच पर इकट्ठे खड़े हों, जाति, धर्म तथा राजनैतिक विचारों की विविधता होते हुये भी

हम एक हों।" हालाँकि इसमें कोई संदेह नहीं कि कांग्रेस-लीग संधि में मुसलमानों के लिए अलग चुनाव-क्षेत्र का स्वीकार किया जाना बहुत ही विवादास्पद था लेकिन उसकी आलोचना बहुसंख्यक वर्ग द्वारा सहृदयता न दिखाने के लिए कतई नहीं कि जा सकती थी।

अधिवेशन की समाप्ति पर होम रूल लीगों की संयुक्त सभा हुई जिसमें 1000 से अधिक प्रतिनिधियों ने भाग लिया। इस सभा को तिलक और बिसेंट दोनों ने संबोधित किया। वापसी पर दोनों नेताओं ने उत्तर, मध्य तथा पूर्वी भारत का दौरा किया।

सरकार द्वारा एक बार फिर दमन की नीति अपनाने से आंदोलन को और बल मिला। जून 1917 में बिसेंट, वी.पी. वाडिया तथा अरूंडेल को हिरासत में ले लिया गया। परिणामस्वरूप जो लोग पहले अलग थे, वे भी आंदोलन में शामिल हो गये और विरोध प्रकट करने लगे। जिन्ना, सुरेन्द्रनाथ बनर्जी तथा मदन मोहन मालवीय इनमें प्रमुख थे। ए.आई.सी.सी. की जुलाई 1917 की मीटिंग में तिलक ने निष्क्रिय विरोध का सुझाव दिया तथा गांधी के उस सुझाव को स्वीकार किया गया जिसमें कहा गया था कि एक हज़ार ऐसे व्यक्तियों के हस्ताक्षर इकट्ठे किये जाएँ जो हिरासत के सरकारी निर्देश का विरोध करके बिसेंट के हिरासत स्थल पर जाएँ। गाँवों के दौरे व सभाएँ आयोजित की गईं तथा आंदोलन में एक नई शक्ति दिखाई दी।

## 15.5.5 अंग्रेज़ी रवैये में परिवर्तन

इस आंदोलन की बढ़ती हुई शक्ति को देख कर ब्रिटेन में सरकार ने दबाव कम करने का फैसला किया। इस बदलती हुई नीति का संकेत भारत के लिए सैक्रेट्री ऑफ स्टेट, मौंटेग्यू द्वारा हाउस ऑफ कॉमन्स में इस घोषणा से मिला "सम्राट की सरकार की पॉलिसी ... है कि ब्रिटिश साम्राज्य के अखंड भाग के रूप में हिन्दुस्तान में ज़िम्मेदार सरकार की स्थापना की प्रगति के प्रयास के लिये प्रशासन की हर शाखा के साथ हिन्दुस्तानियों को सम्बद्ध किया जाना चाहिए ताकि धीरे-धीरे स्वशासन संस्थाओं का विकास हो सके।" यह घोषणा 1909 में करते समय मोर्ले (वायसराय) ने कहा था कि स्वशासन को बढ़ावा गवर्नमेंट या होम-रूल की माँग को देशद्रोह नहीं माना जा सकता था और यह एक महत्वपूर्ण उपलब्धि थी। लेकिन इसका अर्थ यह भी नहीं था कि ब्रिटेन भारत को स्वशासन प्रदान करने वाला था। इस वक्तव्य में कहा गया था कि इन संशोधनों के स्वरूप तथा समय का फैसला अकेले ब्रिटिश सरकार ही करेगी। इससे अंग्रेज़ों को भारतीयों के हाथ शासन सौंपने की प्रक्रिया को लगातार स्थगित करते रहने का काफी अवसर मिल गया।

इस नई नीति का तुरंत लाभ यह हुआ कि सितंबर 1917 में एनी बिसेंट को छोड़ दिया गया। तिलक के सुझाव पर कांग्रेस के 1917 के वार्षिक अधिवेशन में बिसेंट को अध्यक्ष चुन लिया गया। इस समय उनकी प्रतिष्ठा चरम-सीमा पर थी तथा आंदोलन भी प्रगति के लिए एकदम तैयार था।

## 15.5.6 होम रूल लीगों का पतन

लेकिन 1918 में होम रूल लीग आंदोलन धीरे-धीरे ढीला पड़ गया। इसका एक कारण उदारवादियों द्वारा अपना समर्थन वापस ले लेना था जिन्हें एक बार फिर संशोधन की आशा दिखाई पड़ने लगी थी और जो होम रूल लीग के सदस्यों द्वारा नागरिक अवज्ञा की बढ़ती हुई बातचीत से संशंकित थे। जुलाई 1918 में सुधार योजना के प्रकाशन से राष्ट्रवादियों में और भी विभाजन हो गया : कुछ उसे ठुकरा देना चाहते थे जबकि अन्य उन्हें कार्यान्वित किये जाने का अवसर दिये जाने के हक में थे। संशोधन तथा निष्क्रिय विरोध के दोनों ही प्रश्नों पर स्वयं एनी बिसेंट के विचारों में विरोधाभास था। कुल मिलाकर तिलक के विचारों में एकरूपता थी कि ये संशोधन ब्रिटेन द्वारा दिये जाने और हिन्दुस्तान द्वारा स्वीकार किये जाने के लायक नहीं थे, लेकिन एनी बिसेंट के ढुलमुल विचारों के कारण वह कुछ अधिक कर सकने की स्थिति में नहीं थे। 1918 के अंत में उन्होंने **इंडियन अनरेस्ट** (Indian Unrest) के लेखक वेलैंटाइन चिरौल (Valentine Chirol) के विरुद्ध एक मान-हानि का मुकदमा दायर किया और उसके लिये इंग्लैंड जाने का फैसला किया जिसके कारण कई महत्वपूर्ण महीनों तक वे कार्यक्षेत्र से अनुपस्थित रहे। आंदोलन लगभग नेतृत्वहीन हो गया।

होम रूल आंदोलन की सबसे बड़ी उपलब्धि राजनैतिक समझ से युक्त राष्ट्रवादी कार्यकर्ताओं का एक ऐसा दल तैयार करना था जिन्होंने आने वाले जन-आंदोलनों में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई। उन्होंने गाँवों तथा शहरों में जो सम्पर्क स्थापित किये थे वे आने वाले वर्षों में अमूल्य साबित हुए। होम रूल के विचार के प्रसार से राष्ट्रीय भावनाओं को बल मिला।

यह सच है कि होम रूल आंदोलन के नेता स्वयं आगे का रास्ता दिखाने में असमर्थ रहे और इस चेतना को जन-आंदोलन में बदलने में असफल रहे। लेकिन उन्होंने अगले आंदोलन के लिए एक मंच तैयार करने की भूमिका तैयार की—एक ऐसा मंच जिसे महात्मा गांधी के व्यक्तित्व ने एक विशिष्ट स्वरूप प्रदान किया।

**बोध प्रश्न-4**

1 तिलक व एनी बिसेंट ने उग्रवादियों के भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस में दुबारा प्रवेश के लिए प्रयत्न क्यों किया?

..........................................................................................................

..........................................................................................................

..........................................................................................................

..........................................................................................................

..........................................................................................................

2 दोनों होम रूल लीगों के उद्देश्यों की विवेचना कीजिए।

..........................................................................................................

..........................................................................................................

..........................................................................................................

..........................................................................................................

..........................................................................................................

3 लीगों का राजनैतिक प्रभाव क्या हुआ?

..........................................................................................................

..........................................................................................................

..........................................................................................................

..........................................................................................................

..........................................................................................................

## 15.6 सारांश

इस इकाई में हमने देखा कि किस प्रकार राष्ट्रीय आंदोलन में क्रांतिकारी प्रवृत्तियाँ उभरीं। अनुशीलन व युगान्तर जैसी क्रांतिकारी समितियाँ आंदोलन की महत्वपूर्ण प्रवृत्तियाँ थीं। क्रांतिकारी गतिविधियाँ देश के किसी एक भाग तक सीमित नहीं थीं, बल्कि वे देश के बाहर भी प्रकट हुईं। गदर पार्टी इसका सर्वप्रमुख उदाहरण है। सरकार ने दमनचक्र से इन आंदोलनों को दबा दिया। लेकिन फिर भी ये आंदोलन ब्रिटिश विरोधी चेतना जगाने तथा उसे बढ़ावा देने में सफल हुए। लेकिन उनकी सबसे बड़ी कमज़ोरी जनता से अलगाव था।

होम रूल लीग स्वशासन के संदेश को जनता तक ले गई। सच तो यह है कि उन्होंने उस राजनैतिक वातावरण की पृष्ठभूमि तैयार की जिसमें गांधी जी ने अपनी नई विचारधारा—अहिंसा तथा सत्याग्रह—के साथ प्रवेश किया।

## 15.7 शब्दावली

**अराजकतावादी आंदोलन :** एक ऐसा आंदोलन जिसमें राजनैतिक शासन बदलने के उद्देश्य से वैयक्तिक हिंसा पर बल दिया गया था। यह संगठित राजनीति में विश्वास नहीं रखता है।

**अंध राष्ट्रवाद :** एक प्रबल विश्वास जो मानता है कि अपना राष्ट्र अन्य सभी राष्ट्रों तथा अन्तर्राष्ट्रीय आंदोलनों से सर्वोपरि है।

**फ़ेबियानिज़्म :** एक मान्यता कि समाजवाद सिर्फ शान्तिपूर्ण ढंग से ही प्राप्त किया जा सकता है।

## 15.8 बोध प्रश्नों के उत्तर

**बोध प्रश्न-1**

1 देखिए उपभाग 15.2.1
2 देखिए उपभाग 15.2.2
3 देखिए उपभाग 15.2.2

**बोध प्रश्न-2**

1 देखिए उपभाग 15.3.1
2 देखिए उपभाग 15.3.4
3 देखिए उपभाग 15.3.3

**बोध प्रश्न-3**

1 देखिए भाग 15.4
2 देखिए उपभाग 15.4.1
3 देखिए उपभाग 15.4.3
4 देखिए उपभाग 15.4.3

**बोध प्रश्न-4**

1 देखिए उपभाग 15.5.1
2 देखिए उपभाग 15.5.3 तथा 15.5.4
3 देखिए उपभाग 15.5.5 तथा 15.5.6

# इकाई 16 भारत की राजनीति में महात्मा गांधी जी का आगमन और उनकी विचारधारा

## इकाई की रूपरेखा


16.0 उद्देश्य
16.1 प्रस्तावना
16.2 दक्षिण अफ्रीका में गांधी जी का संघर्ष
 16.2.1 भारतीयों की स्थिति
 16.2.2 अभियान-1
 16.2.3 अभियान-2
16.3 भारत में गांधी जी का आगमन
16.4 भारतीय राजनीति में प्रादुर्भाव
 16.4.1 चंपारन
 16.4.2 खेड़ा
 16.4.3 अहमदाबाद
16.5 रौलट सत्याग्रह
 16.5.1 रौलट एक्ट
 16.5.2 आंदोलन
 16.5.3 महत्ता
16.6 गांधी जी की विचारधारा
 16.6.1 सत्याग्रह
 16.6.2 अहिंसा
 16.6.3 धर्म
 16.6.4 हिन्द स्वराज
 16.6.5 स्वदेशी
16.7 साराश
16.8 शब्दावली
16.9 बोध प्रश्नों के उत्तर


## 16.0 उद्देश्य

इस इकाई को पढ़ने के बाद आप यह जान सकेंगे कि :

- दक्षिण अफ्रीका में प्रवासी भारतीयों को किस प्रकार की समस्याओं का सामना करना पड़ रहा था,
- प्रवासी भारतीयों की स्थिति में सुधार करने के लिए महात्मा गांधी ने दक्षिण अफ्रीका में क्या प्रयास किये,
- चंपारन और खेड़ा में किसान आंदोलन क्यों हुआ और गांधी जी ने किसानों के लिए क्या कार्य किये,
- अहमदाबाद के श्रमिकों की हड़ताल के दौरान गांधी जी की क्या भूमिका रही,
- रौलट सत्याग्रह में गांधी जी का क्या योगदान था, और उनकी विचारधारा क्या थी।

## 16.1 प्रस्तावना

भारतीय राष्ट्रीय आंदोलन के दौरान उसकी विचारधारा, दिशा और स्वरूप को परिवर्तित करने में महात्मा गांधी ने अत्यंत महत्वपूर्ण भूमिका निभाई। भारतीय राजनीति में उनके आगमन के उपरांत संघर्ष का एक नया दौर प्रारंभ हुआ। अंग्रेजों के विरुद्ध जनता को लामबंद करना अब इस संघर्ष का आधार बना। इस समय से लेकर स्वतंत्रता प्राप्ति तक गांधी जी राष्ट्रीय आंदोलन पर छाये रहे। इस इकाई के अंतर्गत हम आपको दक्षिण अफ्रीका में गांधी जी द्वारा छेड़े गये संघर्ष से अवगत कराएंगे और इसके साथ-साथ 1920 तक भारत में गांधी जी की राजनीतिक गतिविधियों का भी ज़िक्र करेंगे। यह एक ऐसा काल है जिसे गांधी जी की

धारणाओं की प्रारंभिक अवस्था का काल कहा जा सकता है– एक ऐसी अवस्था जिसमें गांधी जी भारत के आर्थिक, सामाजिक और राजनीतिक यथार्थ को समझने का प्रयास कर रहे थे। इस युग में ही गांधी जी ने संघर्ष के नये तरीकों का प्रयोग किया। इस इकाई में हम उनकी विचारधारा पर भी चर्चा करेंगे और यह देखेंगे कि अपनी विचारधारा को उन्होंने राजनीति में किस प्रकार से एक व्यावहारिक रूप दिया।

## 16.2 दक्षिण अफ्रीका में गांधी जी का संघर्ष

मोहनदास करमचंद गांधी, जो कि महात्मा गांधी के नाम से लोकप्रिय हुए, का जन्म 2 अक्टूबर, 1869 के दिन पोरबंदर (काठियावाड़, गुजरात) में एक परंपरागत हिन्दू परिवार में हुआ था। 1881 में शिक्षा ग्रहण करने के लिए गांधी जी इंग्लैंड गये, उन्होंने लंदन में मैट्रीक्यूलेशन पास किया और वकील बनने की योग्यता प्राप्त की। 1891 में यह युवा वकील भारत लौटा और बंबई के उच्च न्यायालय में वकालत प्रारंभ की। एक वकील के रूप में जब उसे सफलता नहीं मिली तो उसने राजकोट जाकर अर्ज़ी लिखने का कार्य प्रारंभ किया जिससे कि उसे लगभग 300 रुपये महीने की आमदनी होती थी। 1893 में गाँधी जी डरबन गये। यह यात्रा उन्होंने भारतीय फ़र्म दादा अबदुल्ला एण्ड कंपनी के मुकदमें के संदर्भ में की थी। यह कंपनी दक्षिण अफ्रीका में व्यापाररत थी। यद्यपि गांधी जी केवल एक वर्ष के लिए वहाँ पर गये किन्तु वे 1914 तक (इस बीच वे दो बार भारत भी आये) वहाँ रहे। दक्षिण अफ्रीका में गाँधी जी ने रंग भेद के खिलाफ संघर्ष किया। वास्तव में वहाँ की सरकार की रंग भेद नीति के कारण भारतीय समुदाय को कोई भी ऐसा मानवीय अधिकार प्राप्त नहीं था जो कि एक सभ्य जीवन जीने के लिए आवश्यक था।

### 16.2.1 भारतीयों की स्थिति

उन दिनों लगभग दो लाख भारतीय, दक्षिण अफ्रीका में रहते थे। इनमें से अधिकांश अनुबंधित मज़दूर और स्वतंत्र मज़दूर थे। कुछ व्यापारी थे और कुछ उनके क्लर्क और सहायक। खेत बागान मालिक अनुबंधित मजदूरों के साथ अर्ध दासों जैसा व्यवहार करते थे। अन्य भारतीयों को रंग भेद की नीति से उत्पन्न अनेक प्रकार की कठिनाइयों का सामना करना पड़ता था, जो कि नागरिक अधिकार, व्यापारिक और सम्पत्ति के अधिकार से संबंधित थीं। अपने दैनिक जीवन में उन्हें अनेक प्रकार के अपमानों का सामना करना पड़ता था :

- प्रत्येक भारतीय को बिना किसी फ़र्क के कुली कहकर पुकारा जाता था,
- भारतीयों को फुटपाथ पर चलने की अनुमति नहीं थी और रात में वे बिना परमिट के नहीं निकल सकते थे,
- भारतीय रेलगाड़ी में प्रथम और द्वितीय श्रेणी में यात्रा भी नहीं कर सकते थे और अक्सर उन्हें रेल के डिब्बे के पायदान पर ही खड़े होकर यात्रा करने पर बाध्य किया जाता था,
- जो होटल पूर्णतः यूरोपियों के लिए आरक्षित थे उनमें भारतीयों को जाने की अनुमति नहीं थी,
- ट्रांसवाल में भारतीयों को रहने के लिए और व्यापार के लिए एक निश्चित क्षेत्र दिया गया था। यह क्षेत्र स्वास्थ्य की दृष्टि से हानिकर थे, न तो वहाँ पानी और बिजली की ही उचित व्यवस्था थी और न ही नालियों की,
- इसके अतिरिक्त जो पहले अनुबंधित मजदूर रह चुके थे उन्हें तीन पाऊंड मतगणना का कर देना पड़ता था।

### 16.2.2 अभियान-1

रंग भेद की इस नीति का अनुभव गांधी जी को दक्षिण अफ्रीका पहुँचते ही हो गया था। डरबन के एक न्यायालय में यूरोपीय न्यायाधीश ने गांधी जी को अपनी पगडी उतारने का हुक्म दिया था, परंतु गांधी जी ने ऐसा करने से इनकार कर दिया और विरोध में कमरे से बाहर चले गये। इसी प्रकार परेडोरिन जाते हुए गांधी जी को प्रथम श्रेणी में यात्रा करने की अनुमति नहीं दी गयी और उनसे वैन वाले डिब्बे में जाने को कहा गया। जब गांधी जी ने ऐसा करने से इनकार किया तो उन्हें बलपूर्वक डिब्बे से बाहर फेंक दिया गया। परंतु नैटल की सरकार ने

जब एक ऐसा विधेयक प्रस्तावित किया जो कि प्रवासी भारतीयों से मताधिकार वापस ले लिए जाने का सुझाव रखता था तो गांधी जी दक्षिण अफ्रीका में संघर्ष छेड़ने के लिए तत्पर हो गये।

जब विदाई के समय गांधी जी के सम्मान में एक भोज दिया गया तो उस समय गांधी जी ने उपर्युक्त प्रस्तावित बिल को पारित किये जाने के संदर्भ में खबर पढ़ी। गांधी जी इससे उत्तेजित हो उठे और उन्होंने यह कहा कि ''हमारे कफ़न में यह पहली कील है।'' भारतीय व्यापारियों ने इस बिल के विरुद्ध गांधी जी से सहयोग माँगा। गांधी जी ने भारत लौटने के अपने इरादे को स्थगित कर दिया। वास्तव में यह विदाई समारोह, बिल के विरुद्ध संघर्ष की एक सभा के रूप में बदल गया।

संघर्ष को मज़बूत करने के लिए गांधी जी का पहला प्रयास यह था कि नैटल में रहने वाले भारतीय समुदाय के विभिन्न घटकों को एकता के सूत्र में बाँध सकें। इस उद्देश्य से प्रेरित हो 1893 में उन्होंने इंडियन नैटल ओरगेनाइज़ेशन नामक सभा की स्थापना की। इसके साथ-साथ गांधी जी का यह भी प्रयास था कि भारतीयों के कष्टों का अधिक से अधिक प्रचार किया जा सके जिससे कि उन्हें भारत और इंग्लैंड की स्त्रियों और जनता से मदद मिल सके। भारत में भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस ने इस विधेयक के विरोध में एक प्रस्ताव पारित किया और इसी प्रकार इंग्लैंड में भी कुछ अखबारों और गणमान्य व्यक्तियों ने दक्षिण अफ्रीका में भारतीयों के हितों की रक्षा के लिए किये जा रहे संघर्ष के प्रति सहानुभूति प्रकट की।

नैटल में रह रहे लगभग 400 भारतीयों ने उक्त विधेयक के विरुद्ध सरकार को अर्ज़ी दी, परंतु नैटल की विधान सभा ने बिल पारित कर दिया और यहाँ तक कि वहाँ के राज्यपाल ने भी उस पर सहमति दे दी। गांधी जी ने लगभग 10 हज़ार भारतीयों से हस्ताक्षर करवा कर एक लंबी अर्ज़ी इंग्लैंड के औपनिवेशिक सचिव को भेजी जिसमें यह अपील की गयी थी कि महारानी विक्टोरिया इस विधेयक को सहमति न दें। इस प्रकार सशक्त विरोध के कारण लंदन के औपनिवेशिक कार्यालय ने इस बिल को इस आधार पर अस्वीकार कर दिया कि यह अंग्रेजी साम्राज्य के एक हिस्से के बाशिंदों के विरुद्ध साम्राज्य के दूसरे हिस्से में भेद करता है। लेकिन इसका नैटल में रहने वाले यूरोपियों पर कोई प्रभाव नहीं पड़ा। उन्होंने कुछ परिवर्तन कर बिल को पारित कर दिया। अब इस परिवर्तित बिल के अनुसार किसी भी गैर यूरोपीय देशों के व्यक्ति को जिन देशों में कि अभी तक ऐसा संगठन नहीं है, जो कि संसदीय मताधिकार प्रणाली पर स्थापित हो, मतदान का अधिकार नहीं दिया जाएगा, जब तक की उसे गवर्नर जरनल से जाकर न मिल जाये। इस परिवर्तित विधेयक को मान्यता दे दी गयी

गांधी जी ने रंग भेद के विरुद्ध अपना संघर्ष लेख आदि लिखकर जारी रखा क्योंकि वे जनता की सहायता प्राप्त करना चाहते थे। इससे दक्षिण अफ्रीका में रहने वाले कई यूरोपीय उत्तेजित हो उठे। 1886 में जब गांधी जी अपने परिवार के साथ नटाल पहुँचे तो उनका विरोध करने के लिये लगभग 4,000 यूरोपियों का समूह वहाँ था। कुछ लोगों ने उनपर हमला भी किया परंतु एक उच्च सैनिक अधिकारी की पत्नी द्वारा गांधी जी बचा लिये गये। यह घटना भी गांधी जी को अपना संघर्ष जारी रखने से निरुत्साहित नहीं कर पायी। अपनी अगली भारत यात्रा में गांधी जी ने क्वेटा में कांग्रेस के अधिवेशन में हिस्सा लिया और इस अधिवेशन में उन्होंने दक्षिण अफ्रीका में भारतीयों की स्थिति पर एक प्रस्ताव पास कराने में सफलता प्राप्त की। 1902 में गांधी पुनः दक्षिण अफ्रीका लौटे और 12 वर्ष तक वहाँ पर रह कर उन्होंने रंग भेद के विरुद्ध संघर्ष किया। 1903 में उन्होंने 'इंडियन ओपीनियन' नामक एक साप्ताहिक पत्रिका का प्रकाशन प्रारंभ किया जिसके द्वारा उनके संघर्ष का प्रचार किया जाता था। 1904 में गांधी जी अपने कुछ अनुयायियों के साथ डरबन के निकट फौनिक्स नामक स्थान पर रहने लगे। यहाँ के लोग अत्यंत ही साधारण तरीके से अपना जीवन व्यतीत करते थे। फौनिक्स की महत्ता यह है कि आगे चलकर इसके सभी निवासियों ने गांधी जी के सत्याग्रह में हिस्सा लिया।

गांधी जी ने दक्षिण अफ्रीका में ब्रिटिश हाई कमिश्नर को एक बार यह बताया था कि :

> ''हम भारतीय राजनैतिक स्वतंत्रता नहीं चाहते हैं, परंतु हम यह चाहते हैं कि हम अन्य ब्रिटिश बाशिंदों के साथ शांति और भ्रातृत्व के साथ सम्मानपूर्वक रह सकें।''

परंतु भारतीयों को अपमानित करने के लिये 1906 में ट्रांस्वल की सरकार ने एक और कानून पारित किया। इस कानून के द्वारा प्रत्येक भारतीय के लिये, जो कि 8 वर्ष की आयु से ऊपर था, यह आवश्यक था कि वह अपना पंजीकरण कराये और पंजीकरण फार्म पर अपने अंगूठे और उँगलियों की छाप दे। पंजीकरण कराने के लिए एक निश्चित तारीख दी गयी थी और उस तारीख तक यदि कोई अपना पंजीकरण नहीं कराता है तो उसे एक अपराध मानते हुए सजा दी जा सकती थी या देश से निकाला भी जा सकता था। भारतीयों से किसी भी समय पंजीकरण सर्टीफिकेट दिखाने को कहा जा सकता था और पुलिस अधिकारियों को यह अधिकार दिया गया था कि वह किसी भी भारतीय के घर में घुस कर उसके कागजात देख सकते थे। इस बिल का विरोध करने के लिए गांधी जी ने जोहन्सबर्ग के अंपायर थियेटर में एक सभा आयोजित की। अपने सम्मान और प्रतिष्ठा को बनाये रखने के लिए भारतीय किसी भी प्रकार के संघर्ष के लिए तत्पर थे। इस सभा में गांधी जी ने कहा था कि :

> "मेरे जैसे लोगों के लिए केवल एक ही रास्ता सामने है, हम मर सकते हैं लेकिन ऐसे कानून के आगे झुकेंगे नहीं। शायद यह रास्ता न अपनाना पड़े, परंतु यदि और लोग पीछे हटते हैं और मैं अकेला भी रह जाता हूँ तो भी मैं अपनी प्रतिज्ञा को नहीं छोड़ूँगा।"

अंततः इस सभा में हिस्सा ले रहे प्रत्येक भारतीय ने भगवान को साक्षी मानते हुए यह शपथ ली कि यदि इस विधेयक को कानून बनाया गया तो वे इसके आगे नहीं झुकेंगे।

चित्र 22 : दक्षिण अफ्रीका में सत्याग्रही गांधी

भारतीयों के कड़े विरोध के बावजूद ट्रांसवाल की विधानसभा ने इस बिल को पारित कर दिया। इस समय गांधी जी एक प्रतिनिधि मंडल लेकर इस उद्देश्य से इंग्लैंड गये कि वे अंग्रेज़ी सरकार से इस बिल को अस्वीकार (वीटो) करवा देंगे, परन्तु यह प्रयास असफल रहा। यह घोषणा की गई कि अप्रैल, 1907 से यह नया कानून लागू होगा। इस विधेयक के विरुद्ध संघर्ष के लिए गांधी जी ने आंदोलन की एक नई तकनीक–सत्याग्रह–अपनाई। पैसिव रेसिसटेन्स ऐसोसिएशन नामक संगठन की स्थापना की गयी। इस संगठन ने भारतीय मूल के लोगों से यह अपील की कि वे पंजीकरण कार्यालयों का बहिष्कार करें। ट्रांसवाल सरकार के सभी प्रयासों के बावजूद 30 नवम्बर 1907 तक केवल 519 भारतीयों ने अपने को पंजीकृत कराया। पंजीकरण विधेयक का विरोध करने के कारण गांधी जी को 2 माह की साधारण कैद की सज़ा दी गयी।

इस समय गांधी जी ने जनरल स्मट्स से मुलाकात करना स्वीकार किया और उनके एक मित्र अलबर्ट कार्टराइट ने इस मुलाकात का आयोजन किया। इस मुलाकात के दौरान जनरल स्मट्स ने गांधी जी को यह आश्वासन दिया कि यदि भारतीय स्वैच्छिक रूप से पंजीकरण कर लें तो इस कानून को रद्द कर दिया जाएगा। गांधी जी ने इस प्रस्ताव को स्वीकार कर लिया और इस पर विचार करने के लिए भारतीयों की एक सभा बुलाई। कई भारतीयों ने गांधी जी द्वारा इस प्रस्ताव को स्वीकार किये जाने पर आपत्ति प्रकट की, क्योंकि उन्हें जनरल स्मट्स से किसी भी प्रकार के न्याय की आशा नहीं थी। कुछ भारतीयों ने तो गांधी जी पर यह आरोप भी लगाया कि उन्हें जनरल स्मट्स ने कोई लालच दे दिया था। अगले दिन जब गांधी जी स्वैच्छिक रूप से अपना पंजीकरण कराने के लिए पंजीकरण कार्यालय की ओर जा रहे थे तो एक पठान ने उन पर हमला भी किया।

शीघ्र ही स्मट्स अपने शब्दों से पीछे हट गया और उन्होंने कानून को रद्द करने से इंकार कर दिया। भारतीयों ने स्वैच्छिक पंजीकरण के लिए जब अपनी अर्जी सरकार से वापस मांगी तो सरकार ने उन्हें देने से इंकार कर दिया। गांधी जी ने पुनः सत्याग्रह आंदोलन प्रारंभ किया। उन्होंने यह घोषणा की कि भारतीय अपना पंजीकरण सर्टीफिकेट जलाएँगे और इसके जो भी परिणाम निकलें उन्हें शांति के साथ भोगेंगे। अनेक भारतीयों ने पंजीकरण सर्टीफिकेट को आग की लपटों के हवाले कर दिया। इसी समय ट्रांसवाल सरकार ने एक अप्रवासी कानून बनाया जिसका उद्देश्य भारत से आकर बसने वाले नये लोगों को रोकना था। गांधी जी ने यह घोषणा की कि सत्याग्रह आंदोलन इस कानून के विरुद्ध भी होगा।

नैटल में रह रहे अनेक भारतीयों ने सत्याग्रह आंदोलन में हिस्सा लिया और उन्हें सरकार द्वारा गिरफ्तार कर लिया गया। जेल में सत्याग्रहियों से कड़ा श्रम कराया गया। जेल में गांधी जी के साथ भी दुर्व्यवहार किया गया। परंतु ट्रांसवाल सरकार की दमनकारी नीति गांधी जी और उनके आंदोलन को कमज़ोर करने में असफल रही। सत्याग्रही छोटे-छोटे समूहों में

गिरफ्तारियाँ देते रहे। उनके परिवारों को सत्याग्रह फंड द्वारा आर्थिक सहायता दी गयी। वास्तव में सत्याग्रह सभा को भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस और भारत के कई अन्य धनिक, जैसे कि रतन, टाटा, हैदराबाद के निज़ाम आदि पैसा दे रहे थे। आगे चलकर सत्याग्रही टालस्टाय फार्म नामक स्थान पर रहने लगे, यहाँ पर वे साधारण जीवन व्यतीत करते थे और वह सब सीखते थे, जो कि एक सच्चे सत्याग्रही के लिए आवश्यक था।

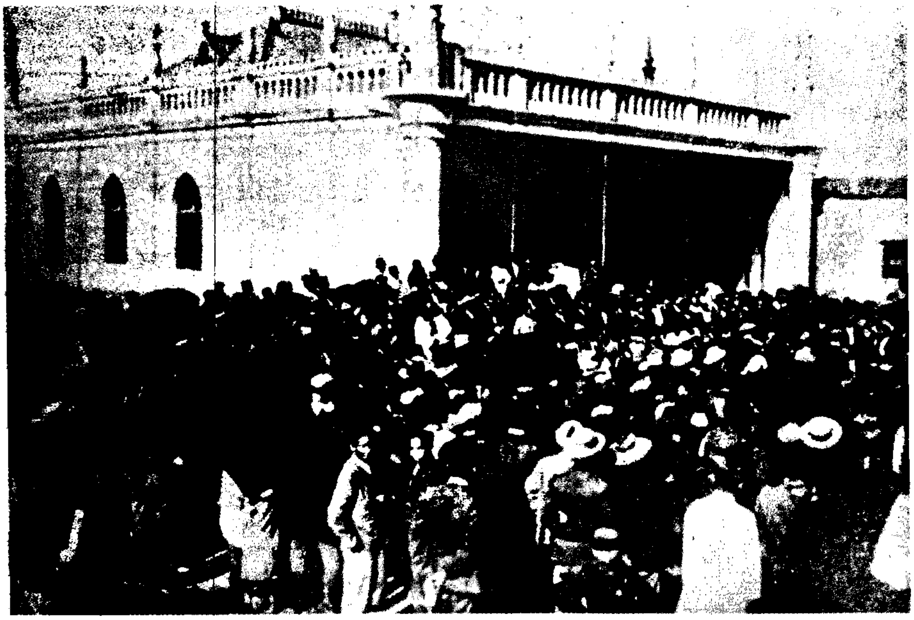

चित्र 23 : दक्षिण अफ्रीका में विरोध करते हुए भारतीय

**बोध प्रश्न-1**

1 लगभग 10 पंक्तियों में यह लिखिए कि भारतीयों को दक्षिण अफ्रीका में किन कठिनाइयों का सामना करना पड़ता था।

..........................................................................................................

..........................................................................................................

..........................................................................................................

..........................................................................................................

..........................................................................................................

..........................................................................................................

..........................................................................................................

..........................................................................................................

..........................................................................................................

..........................................................................................................

2 निम्नलिखित में से कौन से वक्तव्य सही या गलत हैं? सही (√) या गलत (×) का निशान लगाएँ।

i) दक्षिण अफ्रीका में गांधी जी ने व्यक्तिगत तौर पर रंग भेद का अनुभव नहीं किया।
ii) इंडियन नैटल ओरगेनाइज़ेशन की स्थापना इस उद्देश्य से की गयी थी कि भारतीयों में भाई-चारे की भावना जागृत की जा सके।
iii) लगभग 5 हज़ार यूरोपियों ने नैटल में गांधी जी का समर्थन किया।
iv) पंजीकरण विधेयक गांधी जी के कहने पर लागू किया गया था।

## 16.2.3 अभियान-2

1913 में एक और प्रकोप भारतीयों पर हुआ। दक्षिण अफ्रीका के सुप्रीम कोर्ट ने अपने एक निर्णय के द्वारा उन सभी शादियों को रद्द घोषित कर दिया जो कि ईसाई धर्म विधि से नहीं हुई

थीं और जिनका विवाह कार्यालय में पंजीकरण नहीं हुआ था। दूसरे शब्दों में इस निर्णय के द्वारा समस्त हिन्दू-मुस्लिम और पारसी शादियाँ अवैध हो गयीं और इस प्रकार इन शादियों से उत्पन्न संतान भी अवैध हो जानी थी। गांधी जी ने इस निर्णय के दुष्परिणामों के विरुद्ध अपील की और कानून में परिवर्तन लाने को कहा, परंतु तत्काल इसका कोई सकारात्मक नतीजा नहीं निकला। अतः गांधी जी ने अपने संघर्ष को तीव्र कर दिया। अनेक भारतीय महिलाओं ने, जिनका सम्मान दाव पर लगा हुआ था, विरोध कार्यक्रम में हिस्सा लिया। 6 नवम्बर, 1913 के दिन गांधी जी ने ट्रांसवाल की सीमा को पार करने के लिए एक यात्रा प्रारंभ की। उनके साथ जो सत्याग्रही थे उनमें 127 स्त्रियाँ, 57 बच्चे और 237 पुरुष थे। गांधी जी को गिरफ्तार कर लिया गया। सरकार की दमनकारी नीति के बावजूद आंदोलन में किसी प्रकार की कमजोरी नहीं आई। भारत में इस समय गोपाल कृष्ण गोखले ने इस उद्देश्य से सारे देश का दौरा किया कि गांधी जी के आंदोलन के लिए सहयोग जुटाया जा सके। भारत के वायसराय लार्ड हार्डिंग ने भी इस समय यह माँग की कि दक्षिण अफ्रीका की सरकार के विरुद्ध अत्याचार करने का जो आरोप है, उसकी निष्पक्ष जाँच की जाए। इस प्रकार लार्ड हार्डिंग की लंदन और प्रेटोरिया में आलोचना की गयी।

अंततः स्मट्स ने समझौता करना चाहा। वार्तालाप प्रारंभ हुआ और एक ऐसे प्रस्ताव पर हस्ताक्षर किये गये जो कि भारतीयों की मुख्य समस्याओं का निदान करता था। स्वतंत्र श्रमिकों पर से 3 पाउंड का कर हटा लिया गया। भारतीय तौर तरीकों से किये गये विवाहों को मान्यता प्राप्त हुई और केवल दक्षिण अफ्रीका में आने के लिए ही आदिवासी सर्टीफिकेट पर अंगूठे का निशान लगाया जाना था। इस प्रकार लगभग 8 वर्ष तक चलने वाले सत्याग्रह को वापस ले लिया गया।

गांधी जी को ब्रिटिश साम्राज्य से सहानुभूति थी और 1906 तक उनकी अंग्रेजी न्याय में अत्यधिक आस्था थी। 1899 में बोअर युद्ध के दौरान उन्होंने इंडियन एम्बुलैंस कार्प्स

**चित्र 24 : दक्षिण अफ्रीका में गांधी जी**

संगठित कर अंग्रेजी सरकार की सहायता भी की थी परंतु शीघ्र ही अंग्रेज़ों के प्रति उनका यह मोह दूर होने लगा क्योंकि उन्होंने यह महसूस किया कि उनकी याचना के प्रति अंग्रेज़ों का रवैया बाहरी व्यक्ति का था। अपने साथियों और सहयोगियों के कष्टों को दूर करने के लिए

सत्याग्रह उनके लिए एक अंतिम विकल्प था। परंतु अंग्रेजी साम्राज्य के प्रति उनकी सहानुभूति समाप्त नहीं हुई। उनकी सहानुभूति इस आशा पर आधारित थी कि एक न एक दिन अंग्रेज उन नियमों को व्यावहारिक रूप अवश्य देंगे जिनको कि सैद्धांतिक आधार पर मानते थे।

दक्षिण अफ्रीका में हुए संघर्ष ने गांधी जी के जीवन और हमारे राष्ट्रीय आंदोलन को कई प्रकार से प्रभावित किया। उदाहरण के लिए अहिंसात्मक सत्याग्रह की तकनीक गांधी जी का मुख्य अस्त्र बन गयी जिस पर आगे चलकर गांधी जी और कांग्रेस ने भारत में अंग्रेजी शासन के विरुद्ध संघर्ष किया। अंग्रेज इतिहासकार ज्युडिथ ब्राउन ने यह धारणा व्यक्त की कि सत्याग्रह गांधी द्वारा दक्षिण अफ्रीका में अपनाया गया मात्र एक चतुराई से परिपूर्ण हथियार था। लेकिन यदि हम गांधी जी के संघर्ष पर संपूर्ण दृष्टि डालें तो यह स्पष्ट हो जाता है कि गांधी जी को सत्याग्रह में पूर्ण आस्था थी और यह किसी विशिष्ट परिस्थिति में अपनायी गयी रणनीति मात्र नहीं थी। गांधी जी के अनुभवों का एक अन्य महत्वपूर्ण प्रभाव यह महसूस करना था कि हिंदू और मुस्लिम एकता अति आवश्यक है और इसे प्राप्त करना सम्भव भी है। इसी कारण उन्होंने भारत में अंग्रेजों के विरुद्ध संघर्ष में हिंदू-मुस्लिम एकता को अत्यधिक महत्व दिया। इसके अतिरिक्त दक्षिण अफ्रीका के संघर्ष ने यह भी स्पष्ट कर दिया कि गांधी जी किसी एक क्षेत्र के या किसी धार्मिक सम्प्रदाय के प्रतिनिधि नहीं थे वरन् वे संपूर्ण भारतीय जनता के नेता थे। वास्तव में यह इस प्रकार की उनके प्रति धारणा का बन जाना ही था जो कि भारतीय राजनीति में उनके आगमन में सहायक सिद्ध हुआ।

**बोध प्रश्न-2**

1 निम्नलिखित में से कौन से वक्तव्य सही या गलत हैं। (✓) या (×) का निशान लगाएँ।
   i) 1913 के सुप्रीम कोर्ट के निर्णय ने शादियों को वैध करार दिया।
   ii) दक्षिण अफ्रीका में चलाये जा रहे आंदोलन के लिए गोपाल कृष्ण गोखले ने भारत में समर्थन हासिल करने का प्रयास किया।
   iii) अंग्रेजी न्याय में गांधी जी की कोई आस्था नहीं थी।

2 दक्षिण अफ्रीका में किये गये संघर्ष ने हमारे राष्ट्रीय आंदोलन को किस प्रकार प्रभावित किया। लगभग 5 पंक्तियों में उत्तर दें।

..........................................................................................................

..........................................................................................................

..........................................................................................................

..........................................................................................................

..........................................................................................................

## 16.3 भारत में गांधी जी का आगमन

भारत आने से पहले गांधी जी इंग्लैंड गये और इसी बीच प्रथम विश्व युद्ध प्रारंभ हो गया। ऐसी स्थिति में गांधी जी ने अंग्रेजी सरकार की सहायता करना अपना कर्तव्य समझा। उन्होंने भारतीयों का एक एम्बूलैंस दल संगठित करने का निर्णय लिया परंतु कुछ समय उपरांत अंग्रेज अधिकारियों से मतभेद उत्पन्न होने के कारण वे इससे अलग हो गये। 1915 में उन्हें अंग्रेजी सरकार द्वारा केसर-ए-हिंद का खिताब भी दिया गया। 9 जनवरी 1915 के दिन जब गांधी जी भारत लौटे तो उनका भव्य स्वागत किया गया। गोपाल कृष्ण गोखले भारत में उनके राजनीतिक गुरू थे। गोखले चाहते थे कि गांधी 'सर्वेन्ट्स ऑफ इंडियन सोसाइटी' में शामिल हों पर इस सोसाइटी के कुछ सदस्यों के कड़े विरोध के कारण गांधी जी इसके सदस्य नहीं बन पाए। गोखले ने गांधी से इस समय यह वादा लिया कि भारत में राजनीतिक विषयों पर वे एक वर्ष तक अपना मत जाहिर नहीं करेंगे। वायदे का पालन करते हुए 1915 और 1916 में गांधी जी ने अपना अधिकांश समय भारत के विभिन्न स्थानों का दौरा करने में बिताया। वे सिन्ध, रंगून, बनारस और मद्रास आदि स्थानों पर गये। उन्होंने रवीन्द्रनाथ ठाकुर के शांतिनिकेतन की भी यात्रा की और वे हरिद्वार तथा कौमुदी मेले में भी गये। इन सब यात्राओं से यह लाभ

हुआ कि गांधी जी को भारतीयों और उनकी स्थिति के संदर्भ में अत्यधिक जानकारी हासिल हुई। 1915 में ही गांधी जी ने अहमदाबाद में साबरमती नदी के किनारे अपने आश्रम की स्थापना की थी। यहाँ पर वे अपने निकट सहयोगियों के साथ रहते थे जिनको एक सच्चे सत्याग्रही का प्रशिक्षण दिया जाता था।

इस समय गांधी जी राजनीतिक मुद्दों में अधिक दिलचस्पी नहीं ले रहे थे। अधिकांश सभाओं में वे केवल अपने दक्षिण अफ्रीका के अनुभवों और जो विचारधारा उनकी वहाँ पर बनी थी, के बारे में ही बोलते थे। जिस समय एनीबेसेंट ने गांधी जी से "होम रूल लीग" की स्थापना में सहयोग देने के लिए कहा तो उन्होंने यह कह कर इनकार कर दिया कि वे युद्ध के दौरान अंग्रेजी सरकार को परेशान नहीं करना चाहते। गांधी जी ने 1915 के कांग्रेस अधिवेशन में भी हिस्सा लिया, लेकिन इस समय स्वायत्त शासन जैसे महत्वपूर्ण विषय पर बोलने को उन्होंने टाल दिया। कांग्रेस में गरम दल को वापस शामिल करने के जो एकता के प्रयास हो रहे थे उनका गांधी जी ने स्वागत किया, लेकिन इसके साथ-साथ उन्होंने यह भी स्पष्ट कर दिया कि वे किसी गुट में नहीं हैं। उन्होंने संगठित कांग्रेस के अधिवेशन में हिस्सा लिया, परंतु ऐसे मुद्दों पर बोलने से इनकार कर दिया जिनसे यह अभिप्राय लगाया जा सकता था कि वे किसी विशिष्ट गुट से संबद्ध हैं। यहाँ पर उन्होंने केवल अनुबंधित मजदूरों की भर्ती के संबंध में भाषण दिया और इस प्रथा की समाप्ति की माँग के लिए एक प्रस्ताव पारित किया गया।

## 16.4 भारतीय राजनीति में प्रादुर्भाव

भारतीय राजनीति में गांधी जी का सक्रिय प्रादुर्भाव 1917-18 के काल में हुआ जो कि तीन स्थानीय समस्याओं से संबंधित था। ये समस्याएँ थीं; चंपारन और खेड़ा में किसानों का संघर्ष और अहमदाबाद में मज़दूरों का संघर्ष। यहाँ पर गांधी ने सत्याग्रह की तकनीक का इस्तेमाल किया और अंततः इन्हीं स्थानीय संघर्षों के माध्यम से वे संपूर्ण भारत के नेता के रूप में उभर कर आये।

### 16.4.1 चंपारन

उत्तरी बिहार के तिरहुत मंडल में चंपारन एक ऐसा स्थान था जहाँ पर कि एक लंबे समय से कृषकों में असंतोष फैला हुआ था। यूरोपीय बागान मालिकों ने इस क्षेत्र में 19वीं शताब्दी के प्रारंभ से नील के बागान और फैक्टरियाँ स्थापित की थीं। 1916-17 में चंपारन का अधिकांश क्षेत्र केवल तीन भू-स्वामियों के आधीन था। ये भू-स्वामी–बेतिया, राम नगर और मधुबन जागीरों के मालिक थे। इनमें बेतिया की जागीर सबसे बड़ी थी और उसमें लगभग 1500 गाँव आते थे। भू-स्वामी स्वयं जागीर की देखभाल न कर उसे ठेके पर दे देते थे और ठेकेदारों में सबसे प्रभुत्वशाली वर्ग यूरोपीय बागान मालिकों का था। यहाँ पर असंतोष का मुख्य कारण यह था कि किसानों को भूमि पर स्थाई अधिकार प्राप्त नहीं था। उन्हें बागान मालिकों से जमीन के पट्टे लेने होते थे और ऐसे पट्टे उन्हें इस शर्त पर दिये जाते थे कि वे एक निश्चित भू-भाग पर केवल नील की ही खेती करेंगे। इसके बदले में बागान मालिक किसानों को कुछ अग्रिम धन राशि भी देते थे।

जिस व्यवस्था के अन्दर नील की खेती की जाती थी वह "तिन-कथिया" कहलाती थी। इसमें किसान को अपनी भूमि के 3/20 हिस्से पर केवल नील की ही खेती करनी होती थी और अधिकांशतः उसकी भूमि के सबसे अधिक उपजाऊ हिस्से पर उसे नील की खेती करने के लिए बाध्य किया जाता था। तिन-कथिया व्यवस्था में यद्यपि 1908 में कुछ सुधार लाने की कोशिश की गयी थी, परंतु इससे किसानों की गिरती हुई हालत में कोई परिवर्तन नहीं हुआ था। बागान मालिक किसानों को अपनी उपज एक निश्चित धनराशि पर केवल उन्हें ही उपजाने के लिए बाध्य करते थे और यह धनराशि बहुत कम होती थी। इस समय जर्मनी के वैज्ञानिकों ने कृत्रिम नीले रंग का उत्पादन कर लिया था, जिसके परिणामस्वरूप विश्व के बाजारों में भारतीय नील की माँग गिर गयी थी। चंपारन के अधिकांश बागान मालिकों ने यह महसूस किया था कि नील के व्यापार से अब उन्हें अधिक मुनाफा नहीं होगा। परंतु मुनाफे को बनाये रखने के लिए उन्होंने अपने घाटे को किसानों पर लादना शुरू कर दिया। इसके

लिए जो रास्ते उन्होंने अपनाए उसमें किसानों से यह कहा गया कि यदि वे उन्हें एक बड़ा मुआवजा दे दें तो किसानों को नील की खेती से मुक्ति मिल सकती थी। इसके अतिरिक्त उन्होंने लगान में अत्यधिक वृद्धि कर दी और कई प्रकार के अवैध कर किसानों पर लगाये।

जब 1916 में लखनऊ में हो रहे कांग्रेस अधिवेशन में चंपारन के किसानों की समस्याओं का जिक्र किया गया तो गांधी जी ने इस पर कोई ध्यान नहीं दिया। परंतु अंततः चंपारन के एक किसान राजकुमार शुक्ल ने गांधी जी को चंपारन आने के लिए बाध्य किया। जब गांधी जी मोतीहारी (चंपारन का जिला-कार्यालय) पहुँचे तो उनकी उपस्थिति को जन शांति के लिए एक खतरा समझा गया। उन्हें चंपारन छोड़ने का आदेश दिया गया, परंतु गांधी जी ने वहाँ की जनता के प्रति अपने दायित्व को समझते हुए इस आदेश को मानने से इनकार कर दिया। तत्काल ही उन्हें गिरफ्तार कर उन पर जिला न्यायालय में मुकदमा चलाया गया। परंतु बिहार सरकार ने कमिश्नर और जिला न्यायालय को यह आदेश दिया कि इस मुकदमे को वापस ले लिया जाए और गांधी जी को जानकारी हासिल कराने में सहायता दी जाए। इसके साथ-साथ गांधी जी को भी यह चेतावनी दी गयी कि वे कोई बखेड़ा खड़ा न करें। परंतु उन्हें किसानों के कष्टों के बारे में जानकारी हासिल करने की पूर्ण स्वीकृति दे दी गयी।

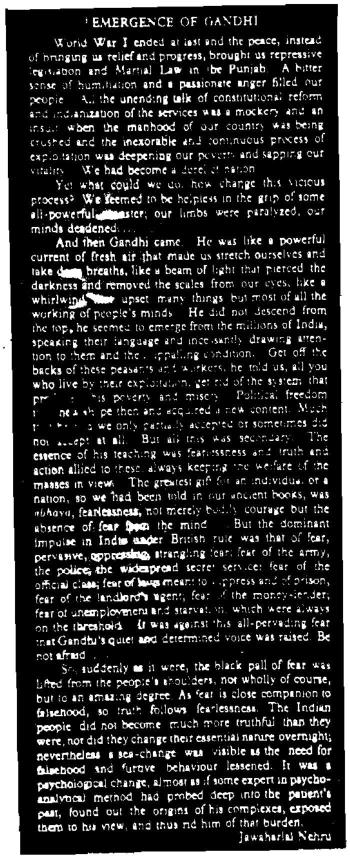

EMERGENCE OF GANDHI

World War I ended at last and the peace, instead of bringing us relief and progress, brought us repressive legislation and Martial Law in the Punjab. A bitter sense of humiliation and a passionate anger filled our people. All the unending talk of constitutional reform and Indianization of the services was a mockery and an insult when the manhood of our country was being crushed and the inexorable and continuous process of exploitation was deepening our poverty and sapping our vitality. We had become a derelict nation.

Yet what could we do, how change this vicious process? We seemed to be helpless in the grip of some all-powerful [illegible]ster; our limbs were paralyzed, our minds deadened....

And then Gandhi came. He was like a powerful current of fresh air that made us stretch ourselves and take d[illegible] breaths, like a beam of light that pierced the darkness and removed the scales from our eyes, like a whirlwind [illegible] upset many things but most of all the working of people's minds. He did not descend from the top, he seemed to emerge from the millions of India, speaking their language and incessantly drawing attention to them and their appalling condition. Get off the backs of these peasants and workers, he told us, all you who live by their exploitation; get rid of the system that pr[illegible] this poverty and misery. Political freedom [illegible] new shape then and acquired a new content. Much [illegible] we only partially accepted or sometimes did not accept at all. But all this was secondary. The essence of his teaching was fearlessness and truth and action allied to these, always keeping the welfare of the masses in view. The greatest gift for an individual or a nation, so we had been told in our ancient books, was *abhaya*, fearlessness, not merely bodily courage but the absence of fear from the mind.... But the dominant impulse in India under British rule was that of fear, pervasive, oppressing, strangling fear; fear of the army, the police, the widespread secret service; fear of the official class; fear of laws meant to suppress and of prison, fear of the landlord's agent; fear of the money-lender; fear of unemployment and starvation, which were always on the threshold. It was against this all-pervading fear that Gandhi's quiet and determined voice was raised: Be not afraid....

So, suddenly as it were, the black pall of fear was lifted from the people's shoulders, not wholly of course, but to an amazing degree. As fear is close companion to falsehood, so truth follows fearlessness. The Indian people did not become much more truthful than they were, nor did they change their essential nature overnight; nevertheless a sea-change was visible as the need for falsehood and furtive behaviour lessened. It was a psychological change, almost as if some expert in psycho-analytical method had probed deep into the patient's past, found out the origins of his complexes, exposed them to his view, and thus rid him of that burden.

Jawaharlal Nehru

चित्र 25 : गांधी जी के आगमन पर जवाहरलाल नेहरू के विचार

सरकार ने "चंपारन एगरेरियन कमेटी" का गठन किया। गांधी जी भी इस कमेटी के एक सदस्य थे। इस कमेटी ने यह सिफारिश की कि तिन-कथिया व्यवस्था समाप्त कर दी जाये और इसके साथ ही कई अन्य प्रकार के कर भी समाप्त कर दिये जाएँ जो कि किसानों को देने पड़ते थे। बढ़ाये गये लगान की दरों में कमी की गयी और जो वसूली अवैध रूप से किसानों से की गयी थी उसका 25 प्रतिशत किसानों को लौटाया जाना था। कमेटी की इन सिफारिशों को 1919 के 'चंपारन एगरेरियन एक्ट' के रूप में पारित किया गया।

यद्यपि यह आंदोलन किसानों की समस्याओं से संबंधित था परंतु गांधी जी के अधिकांश सहयोगी शिक्षित मध्यम वर्ग से थे, जैसे कि राजेन्द्र प्रसाद, गोरख प्रसाद, आचार्य कृपलानी आदि। स्थानीय महाजनों और गाँवों के मुख्तियारों ने भी गांधी जी को सहयोग दिया था लेकिन सर्वाधिक सहयोग किसानों और उनके स्थानीय नेताओं ने दिया था। गांधी जी ने स्वयं वहाँ पर बहुत ही साधारण जीवन व्यतीत किया। वे पैदल या बैलगाड़ी पर यात्रा करते थे और किसानों से उन्हीं की भाषा में बातचीत करते थे।

### 16.4.2 खेड़ा

किसानों के पक्ष में गांधी जी ने दूसरी बार हस्तक्षेप गुजरात के खेड़ा जिले में किया। यहाँ पर उनकी सत्याग्रह की तकनीक को वास्तव में एक इम्तहान से गुजरना पड़ा। खेड़ा अधिक उपजाऊ क्षेत्र था और यहाँ पर उगने वाली खाद्य फसलों, तंबाकू, और रूई को अहमदाबाद में एक सुलभ बाजार प्राप्त था। यहाँ पर कई धनी किसान थे जो कि पट्टीदार कहलाते थे। इसके अतिरिक्त कई छोटे किसान और भूमिहीन कृषक भी यहाँ पर रहते थे।

1917 में अधिक बारिश के कारण खरीफ़ की फ़सल को नुकसान हुआ। इसी समय मिट्टी का तेल, लोहा, कपड़ों और नमक की कीमतों में भी वृद्धि हुई जिसने कि किसानों के जीवन स्तर को प्रभावित किया। किसानों ने इस समय यह माँग की कि पूरी फसल न होने के कारण लगान माफ किया जाए। लगान कानून के अंतर्गत ऐसा प्रावधान मौजूद था कि यदि कुल उपज सामान्य उपज के मुकाबले केवल 25 प्रतिशत हो तो पूरा लगान माफ़ किया जा सकता था। बंबई के दो वकीलों, श्री वी.जे. पटेल और जी.के. पारख ने इस संबंध में छान-बीन की और वे इस नतीजे पर पहुँचे कि उपज का एक बड़ा हिस्सा नष्ट हो चुका था, परंतु सरकार इससे सहमत नहीं थी। खेड़ा के कलक्टर ने यह निर्णय लिया कि लगान माफ़ करने की माँग का कोई औचित्य नहीं है। सरकारी धारणा यह थी कि किसानों ने यह माँग नहीं कि थी वरन् इसके लिए उन्हें बाहर के लोगों ने भड़काया था जो कि होम रूल लीग और गुजरात सभा से संबंध रखते थे। गांधी जी स्वय इस समय गुजरात सभा के अध्यक्ष थे। सच्चाई यह थी कि यहाँ आंदोलन प्रारंभ करने की पहल न तो गांधी जी ने ही की थी और न ही अहमदाबाद के राजनीतिज्ञों ने। यह माँग तो वास्तव में मोहन लाल पाण्डे जैसे स्थानीय गाँव के नेताओं ने उठायी थी।

छान-बीन करने के बाद गांधी जी ने यह धारणा व्यक्त की कि सरकारी अफ़सरों ने उपज का बढ़ा-चढ़ा कर मूल्य लगाया था और किसानों का यह वैध अधिकार था कि वे लगान न दें।

इसमें उन्हें कोई सुविधा नहीं प्रदान की जा रही थी लेकिन सरकार ने इस ओर कोई ध्यान नहीं दिया। कुछ हिचकिचाहट के बाद गांधी जी ने यह निर्णय लिया कि 22 मार्च, 1918 से सत्याग्रह का प्रारंभ नदियाद में एक सभा करके किया गया। इस सभा में गांधी जी ने किसानों को यह राय दी कि वे अपना लगान न दें। किसानों के उत्साह को बढ़ाने के लिए और उनके हृदय से सरकार का भय निकालने के लिए गांधी जी ने अनेक गाँवों का दौरा किया।

इस सत्याग्रह में इन्दुलाल याज्ञिक, बिट्ठल भाई पटेल और अनसुइया साराभाई ने भी गांधी जी की मदद की। 21 अप्रैल के दिन सत्याग्रह अपनी चरम सीमा पर पहुँचा। 2,337 किसानों ने यह शपथ ली कि वे लगान नहीं देंगे। अधिकांश पट्टाधारियों ने सत्याग्रह में हिस्सा लिया परंतु सरकार ने अपनी दमनकारी नीति के द्वारा कुछ गरीब किसानों को लगान देने के लिए बाध्य किया। इस समय रबी की फसल अच्छी हुई जिससे कि लगान न देने का मुद्दा कुछ कमजोर पड़ा। गांधी जी यह समझने लगे थे कि किसान सत्याग्रह से थकने लगे हैं। जब सरकार ने यह आदेश जारी किया कि लगान की वसूली केवल उन्हीं किसानों से की जानी चाहिए जो कि उसको दे सकते हैं और गरीब किसानों पर इसके लिए दबाव नहीं डाला जाना चाहिए, तो गांधी जी ने सत्याग्रह को समाप्त करने की घोषणा की। वास्तव में इस सत्याग्रह का सब गाँवों पर समान असर नहीं पड़ा था। खेड़ा के 559 गाँवों में से केवल 70 गाँवों में ही यह सफल रहा था और यही कारण था कि गांधी जी ने केवल थोड़ी सी रियायत मिलने पर ही सत्याग्रह वापस ले लिया था लेकिन इसमें कोई संदेह नहीं कि इस सत्याग्रह के द्वारा गुजरात के ग्रामीण क्षेत्र में गांधी जी के सामाजिक आधार का विकास हुआ था।

### 16.4.3 अहमदाबाद

गांधी जी ने अपना तीसरा अभियान अहमदाबाद में छेड़ा, जब उन्होंने मिल मालिकों और श्रमिकों के मध्य संघर्ष में हस्तक्षेप किया। अहमदाबाद, गुजरात के एक महत्वपूर्ण औद्योगिक नगर के रूप में विकसित हो रहा था परंतु मिल मालिकों को अक्सर श्रमिकों की कमी का सामना करना पड़ा था और उन्हें आकर्षित करने के लिए वे मजदूरी की ऊँची दर देते थे। 1917 में अहमदाबाद में प्लेग की महामारी फैली। अधिकांश श्रमिक शहर छोड़कर गाँव जाने लगे। श्रमिकों को शहर छोड़कर जाने से रोकने के लिए मिल मालिकों ने उन्हें "प्लेग बोनस" देने का निर्णय किया जो कि कभी-कभी साधारण मजूरी का लगभग 75% होता था। जब यह महामारी समाप्त हो गयी तो मिल मालिकों ने इस भत्ते को समाप्त करने का निर्णय लिया। श्रमिकों ने इसका विरोध किया। श्रमिकों कि धारणा थी कि युद्ध के दौरान जो महँगाई हुई थी, यह भत्ता उसकी भी पूर्ति करता था। मिल मालिक 20% की वृद्धि देने को तैयार थे, परंतु मूल्य वृद्धि को देखते हुए श्रमिक 50% की वृद्धि माँग रहे थे।

गुजरात सभा के एक सचिव गांधी जी को अहमदाबाद की मिलों में कार्य करने की दशाओं के बारे में सूचित करते रहते थे। एक मिल मालिक अम्बालाल साराभाई से उनका व्यक्तिगत परिचय था, क्योंकि उसने गांधी के आश्रम के लिए धनराशि दी थी। इसके अतिरिक्त अम्बालाल की बहन अनसुइया साराभाई गांधी जी के प्रति आदर भाव रखती थी। गांधी जी ने अम्बालाल साराभाई से विचार-विमर्श करने के उपरांत इस समस्या में हस्तक्षेप करने का निर्णय लिया। श्रमिक और मिल मालिक इस बात पर सहमत हो गए कि पूरी समस्या को एक मध्यस्थता कराने वाले बोर्ड के ऊपर छोड़ दिया जाए जिसमें कि तीन प्रतिनिधि मज़दूरों के हों और तीन मिल मालिकों के। अंग्रेज़ कलेक्टर इस बोर्ड के अध्यक्ष होने थे। गांधी जी इस बोर्ड में श्रमिकों के प्रतिनिधि के रूप में मौजूद थे, परंतु अचानक मिल मालिक बोर्ड से पीछे हट गये। इसका कारण उन्होंने यह बताया कि गांधी जी को श्रमिकों की तरफ से कोई अधिकार नहीं दिया गया था और इस बात की कोई गारंटी नहीं थी कि श्रमिक इस बोर्ड के निर्णय को स्वीकार करेंगे। 22 फरवरी से मिल मालिकों ने ताला बंदी की घोषणा की।

ऐसी परिस्थिति में गांधी जी ने पूरी स्थिति का विस्तृत रूप से अध्ययन करने का निर्णय लिया। उन्होंने मिलों की आर्थिक स्थिति के बारे में जानकारी हासिल की और उनके द्वारा दी जा रही मजूरी की दरों की तुलना बंबई में दी जा रही मजूरी की दरों से की। इस अध्ययन के उपरांत गांधी जी ने यह निष्कर्ष निकाला कि मजदूरों को 50% के स्थान पर 35% बढ़ोत्तरी की माँग करनी चाहिए। गांधी जी ने मिल मालिकों के विरुद्ध सत्याग्रह प्रारंभ किया। श्रमिकों से यह शपथ लेने को कहा गया कि जब तक मजूरी में 35% वृद्धि नहीं होती। वे काम पर नहीं जाएंगे और शांतिपूर्वक सत्याग्रह करते रहेंगे। अनेक स्थानों पर सभाएँ हुईं और गांधी जी ने इनमें भाषण दिये। इस स्थिति के ऊपर उन्होंने कुछ लेख भी लिखे।

12 मार्च के दिन मिल मालिकों ने यह घोषणा की कि वे ताला बंदी हटा रहे हैं और उन श्रमिकों को कार्य पर वापस लेंगे जो कि 20% वृद्धि स्वीकार करते हैं। इसके विपरीत 15 मार्च को गांधी जी ने यह घोषणा की कि जब तक कोई समझौता नहीं होता वे भूख हड़ताल पर रहेंगे। इस समय गांधी जी का उद्देश्य यह था कि जो मजदूर अपनी शपथ के बावजूद काम पर वापस जाने की सोच रहे थे उन्हें उससे रोका जा सके। अंततः 18 मार्च के दिन एक समझौता हुआ, इसके अनुसार, श्रमिकों को उनकी शपथ को देखते हुए पहले दिन की मजूरी 35% वृद्धि के साथ हासिल होनी थी और दूसरे दिन उन्हें 20% की वृद्धि, जो कि मिल मालिकों द्वारा प्रस्तावित की जा रही थी, मिलनी थी। तीसरे दिन ही तब तक, जब तक कि एक मध्यस्थता के द्वारा निर्णय नहीं लिया जाता उन्हें 27½% की वृद्धि मिलनी थी। अंततः मध्यस्थ ने गांधी जी के प्रस्ताव को मानते हुए मजदूरों के पक्ष में 35% की वृद्धि का निर्णय दिया।

**बोध प्रश्न-3**

1 लगभग 10 पंक्तियों में चंपारन के किसान आंदोलन के प्रति गांधी जी के दृष्टिकोण के बारे में लिखें।

......................................................................................................................................

......................................................................................................................................

......................................................................................................................................

......................................................................................................................................

......................................................................................................................................

2 अहमदाबाद के श्रमिकों की क्या समस्याएँ थीं? लगभग 5 पंक्तियों में उत्तर दें।

......................................................................................................................................

......................................................................................................................................

......................................................................................................................................

......................................................................................................................................

......................................................................................................................................

3 निम्नलिखित में कौन-से वक्तव्य सही या गलत हैं। (✓) या (×) का निशान लगाएँ।

i) गांधी जी होम रूल लीग में शामिल हो गये थे।

ii) गांधी जी कांग्रेस में किसी भी गुट में शामिल नहीं हुये।

iii) गांधी जी को चंपारन राजकुमार शुक्ल लाये थे।

iv) खेड़ा के किसानों को सरकार से कोई शिकायत नहीं थी।

## 16.5 रौलट सत्याग्रह

1917-18 में गांधी जी ने राष्ट्रव्यापी मुद्दों पर कुछ विशेष ध्यान नहीं दिया था। उन्होंने ऐनीबीसेंट की नज़र बंदी का विरोध किया था और अली बंधुओं (मुहम्मद अली और शौकत अली), की जेल से रिहाई की भी माँग की थी। अली बंधु 'खिलाफत' को लेकर गिरफ्तार किये गये थे। उस समय के अन्य राजनीतिक नेताओं की भाँति गांधी जी ने सुधार प्रस्तावों में कोई विशेष रुचि नहीं ली थी लेकिन जिस समय अंग्रेजी सरकार ने रौलट ऐक्ट को पारित करने का निर्णय लिया तो गांधी जी ने राष्ट्रीय राजनीति में सक्रिय रूप से हिस्सा लेने का निर्णय लिया।

### 16.5.1 रौलट ऐक्ट

1917 में भारतीय सरकार ने जस्टिस सिडनी रौलट की अध्यक्षता में एक कमेटी का गठन किया था जिसका उद्देश्य क्रांतिकारियों के कार्यों की जांच-पड़ताल करते हुए उनके दमन के लिये कानून प्रस्तावित करना था। स्थिति का जायजा लेने के उपरांत रौलट कमेटी ने कानून

में कई प्रकार के परिवर्तन किये जाने का सुझाव रखा। इन सुझावों को ध्यान में रखते हुए भारतीय सरकार ने राष्ट्रीय काउंसिल के सम्मुख दो विधेयक 6 फरवरी, 1919 के दिन प्रस्तुत किये। सरकार का यह दावा था कि षड्यंत्रकारी अपराधों को रोकने के लिए यह विधेयक केवल अस्थायी आधार पर अपनाये जा रहे हैं।

ये विधेयक वास्तव में जो प्रतिबंध युद्ध के दौरान लगाये गये थे उन्हें स्थाई रूप देने के उद्देश्य से प्रेरित थे। इनके अंतर्गत अपराधियों पर एक विशेष न्यायालय के द्वारा मुकदमा चलाया जा सकता था जिसमें कि तीन हाई कोर्ट के जज सदस्य होने थे। इस न्यायालय के निर्णय के विरुद्ध अपील का कोई प्रावधान नहीं था और न्यायालयों की कार्यवाही भी खुले तौर पर नहीं होनी थी। किसी भी व्यक्ति को बिना वारंट के गिरफ्तार किया जा सकता था या उसकी तलाशी ली जा सकती थी। बिना मुकदमा चलाये ही किसी भी व्यक्ति को दो वर्ष तक जेल में रखा जा सकता था। भारतीय राष्ट्रवादियों की यह धारणा थी कि यह बिल उस गैर सरकारी और सरकारी जनमत को संतुष्ट करने के लिए लाये गये थे जिसने कि मोन्टेग्यू सुधार प्रस्तावों का विरोध किया था।

## 16.5.2 आंदोलन

सारे देश में इन बिलों की आलोचना की गयी। गांधी जी ने भी इनके विरुद्ध अभियान छेड़ दिया। उनके अनुसार जो शक्तियाँ सरकार को दी जा रही थीं वे खतरे से खाली नहीं थीं और वाइसराय को बहुत पहले से ही आपातकालीन शक्तियाँ प्राप्त थीं। उन्होंने यह भी कहा कि ये ऐसे दमनकारी बिल हैं जो कि सुधारों के सभी प्रस्तावों को रद्द कर देते हैं। गांधी जी केवल बिलों के प्रावधान के ही विरोधी नहीं थे बल्कि उस प्रक्रिया के भी विरोधी थे जिसमें कि जनमत की अवहेलना करते हुए इन्हें लागू किया जाना था। 24 फ़रवरी 1919 के दिन बंबई में इन बिलों का विरोध करने के लिए गांधी जी ने एक सत्याग्रह सभा का संगठन किया। इस

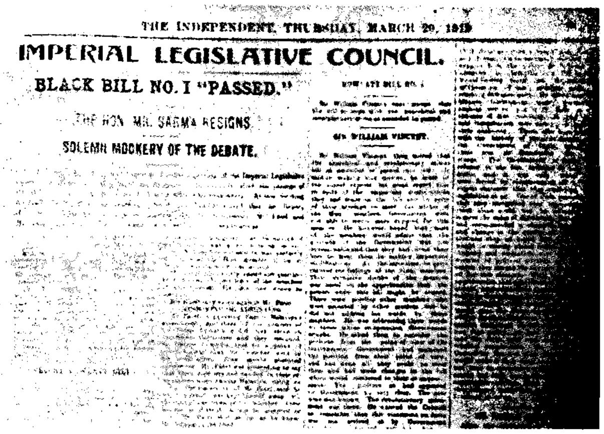
THE INDEPENDENT, THURSDAY, MARCH 20, 1919

IMPERIAL LEGISLATIVE COUNCIL.

BLACK BILL NO. I "PASSED."

THE HON. MR. SARMA RESIGNS.

SOLEMN MOCKERY OF THE DEBATE.

चित्र 26 : रौलट ऐक्ट पर एक अंग्रेजी अखबार में टिप्पणी

सभा के सदस्यों ने यह शपथ ली कि वे अत्यन्त ही सभ्य तरीके से, जिनका कि निर्णय एक कमेटी द्वारा लिया जाएगा, इन बिलों का विरोध करेंगे और इस संघर्ष में वे सच्चाई का रास्ता अपनाते हुए किसी भी प्रकार की हिंसा से दूर रहेंगे। सत्याग्रह आंदोलन का प्रारंभ करते हुये गांधी जी ने यह कहा था : "मेरा यह पक्का विश्वास है कि हमें कष्ट सहकर ही अपनी मुक्ति प्राप्त होगी, न कि अंग्रेजों द्वारा टपकाये गये सुधारों से। वह क्रूर शक्ति इस्तेमाल करते हैं जबकि हम आत्मा की शक्ति।"

सारे देश में विरोध के बावजूद सरकार अपने निर्णय पर अड़ी रही। समस्त गैर सरकारी सदस्यों द्वारा इनके खिलाफ़ मत दिये जाने के बावजूद काउंसिल ने एक बिल पारित कर दिया। 21 मार्च, 1919 के दिन वाइसराय ने बिल को अपनी सहमति प्रदान कर दी। इस समय उदारवादी नेताओं के गुट ने जिसमें कि सर डी.ई वादी, सुरेन्द्रनाथ बनर्जी, तेज बहादुर सप्रू और श्रीनिवास शास्त्री शामिल थे, गांधी जी द्वारा सत्याग्रह प्रारंभ किये जाने का विरोध किया। उनका तर्क था कि सत्याग्रह सुधारों की प्रक्रिया में बाधा डालेगा। वे यह भी समझते थे कि आम नागरिक सभ्य तरीके से रौलट ऐक्ट का विरोध नहीं कर पायेगा। ऐनीबीसेंट ने भी सत्याग्रह का विरोध किया क्योंकि वह यह समझती थी कि ऐसा करना खतरनाक होगा।

चित्र 27 : जलियाँवाला बाग की दीवारों पर गोलियों के निशान

परंतु होम रूल लीग में जो युवा सदस्य थे उन्होंने गांधी को अपना समर्थन दिया। वास्तव में देश के विभिन्न क्षेत्रों में युवा वर्ग ही सबसे आगे आया। लखनऊ के अब्दुल बारी और कुछ मुस्लिम लीग के सदस्यों ने भी गांधी जी को अपना समर्थन दिया। मुहम्मद अली जिन्ना ने भी रौलट बिल का तीव्र विरोध किया और सरकार को चेतावनी दी कि यदि वह भारत की जनता पर यह "कानून विहीन कानून" थोपती है तो इसका भयंकर परिणाम होगा।

सत्याग्रह का प्रारंभ करने के लिए गांधी जी ने देशवासियों को हड़ताल करने को कहा। इस दिन कोई कार्य नहीं होना था। जनता को उपवास रखना था। प्रार्थना करनी थी और इस प्रकार बिलों का विरोध करना था। आरंभ में हड़ताल की तिथि 30 मार्च रखी गयी थी परंतु बाद में इसे बदलकर 6 अप्रैल कर दिया। विभिन्न क्षेत्रों में और विभिन्न नगरों में हड़ताल को सफलता मिली। दिल्ली में 30 मार्च के दिन ही हड़ताल की गयी और इस दिन पुलिस की गोली से 10 व्यक्ति मारे गये। अन्य बड़े नगरों में हड़ताल 6 अप्रैल को हुई और जनता ने व्यापक सहयोग दिया। गांधी जी ने हड़ताल को एक महान सफलता बतायी। 7 अप्रैल को गांधी जी ने सत्याग्रहियों को यह सुझाव दिया कि वे प्रतिबंधित साहित्य संबंधी कानून को और समाचार पत्रों के पंजीकरण संबंधी कानूनों को न मानें। इन कानूनों का विरोध करना, विशेष तौर से इसलिए चुना गया था क्योंकि अन्य कानूनों को व्यक्तियों द्वारा तोड़ने पर हिंसा हो सकती थी। इसके लिए 4 किताबों को, जिनमें गांधी जी कि "हिन्द स्वराज" भी शामिल थी, जिसे बंबई सरकार ने 1910 में प्रतिबंधित कर दिया था, बिक्री के लिये चुना गया।

8 तारीख को गांधी जी बंबई से दिल्ली और पंजाब के लिये रवाना हुये। सरकार ने यह माना कि उनका पंजाब आगमन खतरनाक हो सकता है। अतः दिल्ली के निकट गांधी को गाड़ी से उतारकर वापस बंबई भेज दिया गया। शीघ्र ही गांधी जी की गिरफ्तारी की खबर फैल गयी। इससे बंबई में स्थिति तनावपूर्ण हो गयी और अहमदाबाद व वीरांदम में हिंसा भी हुई। अहमदाबाद में सरकार को मार्शल लॉ लगाना पड़ा।

सर्वाधिक हिंसा पंजाब में, विशेष तौर से अमृतसर में फैली। अमृतसर में जिस समय गांधी जी की गिरफ्तारी की खबर पहुँची तो उसी समय वहाँ के दो स्थानीय नेताओं, डॉ किचलू और डॉ सत्यपाल को भी गिरफ्तार किया गया था (10 अप्रैल)। जनता हिंसा पर उतारू हो गयी और कुछ सरकारी कार्यालयों में आग लगा दी गयी। 5 अंग्रेजों की हत्या कर दी गयी और एक अंग्रेज़ महिला से अभद्र व्यवहार भी किया गया। शहर पर से नागरिक प्रशासन का नियंत्रण लगभग समाप्त हो गया। 13 अप्रैल के दिन जनरल डायर ने जलियाँवाला बाग में निहत्थे लोगों की शांतिपूर्ण सभा पर गोलियाँ चलवाई। अधिकांश लोगों को इस बात की कोई खबर ही नहीं थी कि सरकार द्वारा सभा करने पर प्रतिबंध लगा दिया गया है और जनरल डायर ने बिना किसी चेतावनी के गोलियाँ चलवाई थीं। डायर ने आगे चलकर यह स्वीकार किया कि उसका उद्देश्य मात्र सभा को तितर-बितर करना नहीं था, वह तो जनता को मानसिक तौर से भयभीत करना चाहता था। सरकारी आंकड़ों के अनुसार इस गोली कांड में 379 व्यक्ति मारे गये थे परंतु गैर सरकारी आँकड़े इससे तीन गुना अधिक थे। 13 अप्रैल की रात को ही पंजाब में मार्शल लॉ लगा दिया गया।

## 16.5.3 महत्ता

यह स्पष्ट है कि रौलट ऐक्ट के विरुद्ध चलाया गया आंदोलन किसी योजनाबद्ध तरीके पर आधारित नहीं था। सत्याग्रह सभा केवल ऐक्ट के विरुद्ध प्रचार हेतु साहित्य प्रकाशित कर रही थी या उसके विरुद्ध दस्तख इकट्ठे कर रही थी। एक संगठन के रूप में कांग्रेस कहीं पर भी नजर नहीं आ रही थी। अधिकांश क्षेत्रों में जनता ने अंग्रेजी शासन के विरुद्ध अपनी सामाजिक और आर्थिक शिकायतों के कारण स्वयं हिस्सा लिया था।

लेकिन एक बात स्पष्ट है कि गाँधी जी द्वारा किये गये सत्याग्रहों ने विभिन्न वर्गों और समुदायों के लोगों को एक स्थान पर लाकर खड़ा कर दिया था। यह इस बात से भी स्पष्ट होता है कि यद्यपि गांधी जी ने पंजाब की यात्रा नहीं की थी तथापि इस आंदोलन में पंजाब की जनता ने व्यापक रूप से हिस्सा लिया था। लेकिन यह आंदोलन अभी भी शहरों में ही तीव्र रूप ले पाया था, भारत के ग्रामीण क्षेत्र तक इसका फैलाव नहीं हो पाया था।

आंदोलन के दौरान जो हिंसा की घटना हुई थीं, विशेष तौर से अहमदाबाद में, उन्हें देखते हुए गांधी जी ने सत्याग्रह वापस ले लिया। गांधी जी ने यह स्वीकार किया कि उन्होंने यह आंदोलन शुरू करके एक महान भूल की थी क्योंकि जनता अभी सत्याग्रह के लिए आवश्यक अनुशासन को नहीं समझ पाई थी। परंतु इस आंदोलन का सबसे महत्वपूर्ण प्रभाव यह निकला कि गांधी जी एक राष्ट्रीय नेता के रूप में उभर कर सामने आये। राष्ट्रीय आंदोलन के नेतृत्व में उनकी स्थिति सबसे ऊपर हो गयी और वे कांग्रेस के कार्यों को भी निर्णयात्मक रूप

से प्रभावित करने लगे। 1917 के कांग्रेस के अमृतसर अधिवेशन में गांधी जी ने प्रस्ताव किया कि यद्यपि सुधारों में कुछ कमियाँ मौजूद हैं तथापि भारतीयों को उनके लागू करने में सहयोग देना चाहिए। लेकिन सितम्बर 1920 में गांधी जी ने सरकार से सहयोग की अपनी नीति बदल दी और असहयोग आंदोलन प्रारंभ करने का निर्णय लिया।

चित्र 28 : अमृतसर कांग्रेस

**बोध प्रश्न-4**

1 लगभग 5 पंक्तियों में रौलट ऐक्ट के प्रावधानों की व्याख्या करें।

.....................................................................................................

.....................................................................................................

.....................................................................................................

.....................................................................................................

.....................................................................................................

2 भारतीयों की रौलट ऐक्ट के प्रति क्या प्रतिक्रिया थी? लगभग 10 पंक्तियों में लिखें।

.....................................................................................................

.....................................................................................................

.....................................................................................................

.....................................................................................................

.....................................................................................................

.....................................................................................................

.....................................................................................................

.....................................................................................................

.....................................................................................................

.....................................................................................................

.....................................................................................................

3 जलियाँवाला बाग की घटना पर पाँच पंक्तियाँ लिखें।

..........................................................................................................

..........................................................................................................

..........................................................................................................

..........................................................................................................

..........................................................................................................

## 16.6 गांधी जी की विचारधारा

अब हम गांधी जी की विचारधारा के मुख्य पहलुओं पर विचार करेंगे परंतु उन पर व्याख्या करने से पहले यह जानना आवश्यक है कि ऐसे कई प्रभाव थे जिन्होंने गांधी जी की विचारधारा को उभारने और उसे एक निश्चित दिशा देने में योगदान दिया। अपनी आत्मकथा में गांधी जी ने यह स्वीकार किया है कि उनके अभिभावकों के दृष्टिकोण और उनके रहने के स्थान पर मौजूद सामाजिक और धार्मिक वातावरण ने उनको व्यापक रूप से प्रभावित किया था। उनकी प्रारंभिक विचारधारा को "वैष्णव मत" और जैन धर्म की परंपराओं ने विशेष तौर से प्रभावित किया था। गांधी जी "भगवद् गीता" से भी प्रभावित थे। इसके अतिरिक्त ईसा के "पहाड़ पर उपदेश" (Sermon on the Mount), टालस्टाय, थोरो और रस्किन के लेखों ने भी उनके चिंतन को प्रभावित किया था। लेकिन इसके साथ-साथ उनकी विचारधारा के विकास और दिशा निर्धारण में सर्वाधिक योगदान, जीवन में उनके अपने व्यक्तिगत अनुभवों का था।

### 16.6.1 सत्याग्रह

गांधी जी की विचारधारा का सबसे मुख्य पहलू सत्याग्रह का था। जैसा कि पहले ही जिक्र किया जा चुका है कि यह तरीका गांधी जी ने दक्षिण अफ्रीका में विकसित किया था। परंतु 1919 के उपरान्त भारत के स्वाधीनता संग्राम में यह एक महत्वपूर्ण पहलू बना। गांधी जी के अनुसार हिंसा के स्थान पर सत्याग्रह का प्रयोग स्वयं कष्ट सहकर इस प्रकार किया जाना चाहिए था कि शत्रु को अपनी बात मनवाने के लिए बदला जा सके। सत्याग्रह के विचार की व्याख्या करते हुए पट्टाभि सीतारमैया ने लिखा है:

> "इसमें स्वयं चुना हुआ कष्ट और विरोधियों के लिए अपमान शामिल है। यदि इसका प्रभाव पड़ता है तो इसलिए पड़ता है कि जिन ख्यालों से इसे इस्तेमाल किया जा रहा है उसमें उनकी नैतिकता पर प्रभाव डाला जाता है। जिस कार्य के लिए इसे प्रयोग किया जाता है, उसके औचित्य के प्रति उनके अंदर विश्वास जगाया जाता है। उनकी शक्ति को उन्हें यह दर्शा कर कमज़ोर किया जाता है कि उनके कार्यों द्वारा जो कष्ट दूसरों को हो रहे हैं, इससे उनमें हीनता की भावना उत्पन्न हो।"

गांधी जी ने सत्याग्रह और निष्क्रिय प्रतिरोध के बीच अंतर किया। उन्होंने यह लिखा है कि :

> "निष्क्रिय प्रतिरोध एक कमजोर व्यक्ति का वह अस्त्र है जिसमें कि हिंसा और शारीरिक शक्ति का प्रयोग अपने उद्देश्य की पूर्ति के हेतु किया जाता है; जबकि सत्याग्रह शक्तिशाली व्यक्ति का अस्त्र है और इसमें किसी भी प्रकार की हिंसा का प्रयोग नहीं है।"

वास्तव में गांधी जी के लिए सत्याग्रह मात्र एक राजनीतिक अस्त्र नहीं था वरन् वह जीवन दर्शन और सिद्धांतों के व्यवहार का एक हिस्सा था। गांधी जी का यह विश्वास था कि मानव जीवन का अंतिम उद्देश्य सत्य की खोज है और क्योंकि कोई भी वास्तविक सत्य को नहीं समझ सकता इसलिए उसे दूसरे व्यक्ति के सच की खोज में बाधा नहीं डालनी चाहिए।

### 16.6.2 अहिंसा

अहिंसा सत्याग्रह का आधार था। गांधी जी ने लिखा:

"जब कोई व्यक्ति अहिंसात्मक होने का दावा करता है तो उससे यह अपेक्षा की जाती है कि जिसने उसको हानि पहुँचाई है उससे वह गुस्सा भी नहीं होगा। वह उसके बुरे की कामना भी नहीं करेगा; वह उसकी अच्छाई चाहेगा और वह उसको किसी प्रकार का शारीरिक कष्ट भी नहीं देगा। बुरा करने वाला चाहे किसी भी प्रकार की हानि उसे पहुँचाये वह उसे सह लेगा। अतः अहिंसा से अभिप्राय पूर्ण भोलेपन से, अहिंसा से अभिप्राय किसी के प्रति बुरी भावना रखने का पूर्ण अभाव है।"

गांधी जी ने इस बात पर महत्व दिया कि साधारण व्यक्ति को अपने राजनीतिक उद्देश्य की प्राप्ति के लिए अहिंसात्मक सत्याग्रह का प्रयोग करना चाहिए। परंतु कभी-कभी गांधी जी जो निर्णय लेते थे उसमें पूर्ण अहिंसा की कमी नज़र आती थी। जैसा कि उन्होंने बार-बार यह कहा कि अन्याय के सामने कायर दिखने की अपेक्षा हिंसा बेहतर है। यहाँ पर 1918 में गांधी जी द्वारा सेना में भर्ती किये जाने के प्रयास में उनके सहयोग को उदाहरण के तौर पर रखा जा सकता है। युद्ध के लिए भर्ती में सहयोग देना अहिंसा के सिद्धांत के विपरीत था परंतु गांधी जी ने यह सहयोग इस आशा से दिया था कि युद्ध के बाद अंग्रेजी सरकार से भारतीयों को कुछ सुविधाएँ प्राप्त होंगी।

व्यक्तिगत रूप में सत्याग्रह कई प्रकार के रूप ले सकता था जैसे कि उपवास, अहिंसात्मक धरना, विभिन्न प्रकार का असहयोग और सविनय अवज्ञा, यह जानते हुए भी कि उसके लिए कानूनी संरक्षण भी मिलेगा। गांधी जी का यह पूर्ण विश्वास था कि सत्याग्रह के यह रूप सच्चे उद्देश्य की प्राप्ति के लिए अपनाये गये सच्चे तरीके हैं। गांधी जी के आलोचकों ने यह धारणा व्यक्त की है कि सत्याग्रह की तकनीक को इस्तेमाल करके गांधी जी जन आंदोलनों को नियंत्रित करना चाहते थे। उनकी यह धारणा है कि पूँजीपति और जमींदार, गांधी जी के अहिंसात्मक तकनीक से प्रसन्न थे क्योंकि इसके द्वारा हिंसात्मक सामाजिक क्रांति को रोका जा सकता था। लेकिन इसमें कोई संदेह नहीं कि गांधी और कांग्रेस के द्वारा राष्ट्रीय आंदोलन में सत्याग्रह के अस्त्र के प्रयोग द्वारा समाज के विभिन्न वर्गों को अंग्रेजी शासन के विरुद्ध संघर्ष में एक जुट किया गया।

## 16.6.3 धर्म

गांधी जी की विचारधारा के संदर्भ में चर्चा करते हुए धर्म के प्रति उनके दृष्टिकोण को जानना आवश्यक है। गांधी जी के लिए धर्म किसी एक विशेष धार्मिक समुदाय की सैद्धांतिक व्याख्या न होकर, समस्त धर्मों में निहित मूलभूत सत्य था। गांधी जी ने धर्म की व्याख्या सच्चाई के लिए संघर्ष के रूप में की। वे यह मानते थे कि धर्म को किसी व्यक्ति की निजी राय बताकर पीछे नहीं ढ़केला जा सकता क्योंकि धर्म व्यक्तियों की समस्त गतिविधियों को प्रभावित करता है। उनकी यह धारणा थी कि भारत राजनीतिक कार्रवाई के लिए धर्म एक आधार प्रस्तुत करता है। यही कारण है कि गांधी जी ने खिलाफ़त के प्रश्न को संघर्ष का मुद्दा बनाया जिससे कि मुसलमानों को अंग्रेजी सरकार के विरुद्ध आंदोलन में लाया जा सके। परन्तु गांधी जी द्वारा "राम राज्य" जैसे धार्मिक विचारों का प्रयोग राष्ट्रीय आंदोलन में साम्प्रदायिकता की समस्या को हल नहीं कर पाया।

## 16.6.4 हिन्द स्वराज

गांधी दर्शन का एक महत्वपूर्ण पहलू हमें उनकी पुस्तक "हिन्द स्वराज" (1909) में मिलता है। इस पुस्तक में गांधी जी ने इस बात की ओर संकेत किया है कि वास्तविक शत्रु, अंग्रेजों का राजनीतिक प्रभुत्व न होकर आधुनिक पश्चिम सभ्यता है जो कि धीरे-धीरे भारत को जकड़ती जा रही थी। उनकी धारणा थी कि जो भारतीय पाश्चात्य पद्धति से शिक्षित हुए हैं, जैसे कि वकील, डाक्टर, अध्यापक और पूँजीपति, वे आधुनिक तौर तरीकों को फैला करके भारत की प्राचीन धरोहर को नष्ट कर रहे थे। इस पुस्तक में गांधी जी ने रेलगाड़ी की इस बात के लिए आलोचना की कि रेल खाद्य पदार्थों के निर्यात में सहायक है और अकाल फैलाने में सहायता देती है। स्वराज और स्वशासन को उन्होंने जीवन की एक ऐसी स्थिति माना जो कि तभी स्थाई रह सकती थी जबकि भारतीय अपनी परंपरागत सभ्यता का अनुकरण करें और आधुनिक सभ्यता से भ्रष्ट न हों। गांधी जी ने लिखा था कि "भारतीयों की मुक्ति इसी में है कि उन्होंने जो कुछ पिछले 50 वर्षों में सीखा है उसे भुला दें। रेलगाड़ियों, तार, अस्पताल वकील, डाक्टर और इसी प्रकार की सब आधुनिक वस्तुओं को भूल जाना होगा। और तथाकथित उच्च वर्ग को साधारण किसान जैसा जीवन व्यतीत करना सीखना होगा।"

20वीं शताब्दी के परिप्रेक्ष्य में इस प्रकार के विचार स्वप्नदर्शी और प्रगति विरोधी प्रतीत होते हैं। परंतु वास्तव में उनके विचार गरीब किसानों और कामगारों पर हो रहे बड़े आधुनिकीकरण के दुष्प्रभावों की व्याख्या करते थे। आगे चलकर गांधी जी ने अपने सामाजिक और आर्थिक विचारों को एक निश्चित दिशा देने का प्रयास किया और इसके लिए उन्होंने खादी, ग्रामीण पुनर्गठन और हरिजन कल्याण का कार्यक्रम रखा। इसमें कोई संदेह नहीं कि इस कार्यक्रम से गाँव के लोगों की समस्याओं का पूर्णतः हल नहीं हो पाया लेकिन इस बात से इनकार नहीं किया जा सकता कि इस कार्यक्रम के द्वारा एक निश्चित सीमा तक गांधी जी उनकी स्थिति को सुधारने में सफल रहे। वास्तव में इस कार्यक्रम के माध्यम से गांधी जी ने देश में सामाजिक और आर्थिक सुधारों के लिए एक महत्वपूर्ण चेतना जागृत की।

### 16.6.5 स्वदेशी

गांधी जी ने स्वदेशी का प्रचार किया। स्वदेशी से अभिप्राय अपने देश में बनी हुई वस्तुओं के प्रयोग से था। उदाहरण के लिए इंग्लैंड में मशीन से बने कपड़ों के स्थान पर खादी का इस्तेमाल करना। उनकी राय में स्वदेशी के द्वारा किसान अपनी गरीबी को हटा सकते थे क्योंकि वे कताई करके अपनी आय में वृद्धि कर सकते थे। विदेशी कपड़े के इस्तेमाल में कमी करके भारत से इंग्लैंड को हो रही धन की निकासी को भी रोका जा सकता था। यहाँ पर ध्यान देने योग्य बात यह है कि यद्यपि गांधी जी पाश्चात्य औद्योगिक सभ्यता के कड़े विरोधी थे तथापि वे भारत में उभर रहे राष्ट्रीय उद्योगों के विरोधी नहीं थे। जैसा कि पहले ही जिक्र किया जा चुका है, अम्बालाल जैसे उद्योगपति के साथ गांधी जी के घनिष्ठ संबंध थे। 1922 से एक अन्य उद्योगपति जी.डी. बिरला भी गांधी जी के निकट सहयोगी रहे हैं। गांधी जी श्रम और पूँजी की परस्पर निर्भरता में विश्वास रखते थे। उनके अनुसार पूँजीपति को श्रमिकों के न्यासकर्ता (Trustee) के रूप में कार्य करना चाहिए। गांधी जी ने कभी भी वर्ग आधार पर श्रमिकों में राजनीतिक जागृति उत्पन्न करने का प्रयास नहीं किया। वे वर्ग संघर्ष के विरोधी थे। वर्गीय भेदभाव के स्थान पर वे जनता की एकता में विश्वास करते थे।

**बोध प्रश्न-5**

1 गांधी जी द्वारा प्रतिपादित सत्याग्रह से आप क्या समझते हैं। लगभग 8 पंक्तियों में उत्तर दें।

....................................................................................................

....................................................................................................

....................................................................................................

....................................................................................................

....................................................................................................

....................................................................................................

....................................................................................................

....................................................................................................

2 अपनी पुस्तक "हिन्द स्वराज" के माध्यम से गांधी जी ने क्या संदेश दिया। लगभग 5 पंक्तियों में उत्तर दें।

....................................................................................................

....................................................................................................

....................................................................................................

....................................................................................................

....................................................................................................

## 16.7 सारांश

इस इकाई में हमने यह देखा कि किस प्रकार गांधी जी ने दक्षिणी अफ्रीका में रंग भेद की नीति के विरुद्ध संघर्ष छेड़ा और किस प्रकार भारतीय राजनीति में उनके आगमन से जन आंदोलन

का युग प्रारंभ हुआ। प्रारंभ में गांधी जी ने स्थानीय समस्याओं को उठाया और इनके माध्यम से वे एक राष्ट्रीय नेता के रूप में उभर कर सामने आये। यहाँ पर इस बात का जिक्र करना आवश्यक है कि गांधी जी की विचारधारा की सार्थकता को लेकर विद्वानों में मतभेद रहे हैं परंतु तथ्य यह है कि उनकी विचारधारा ने राष्ट्रीय आंदोलन को व्यापक रूप से प्रभावित किया और उसे एक निश्चित दिशा प्रदान की।

## 16.8 शब्दावली

**अभियान :** सैनिक कार्य के लिए होने वाली यात्रा. आक्रमण चढ़ाई
**प्रादुर्भाव :** आर्विभाव, सामने आना, प्रकट होना
**सत्याग्रह :** सत्य के लिए आग्रह, सत्य एवं अहिंसा पर आधारित गांधी जी द्वारा चलाया गया आंदोलन
**पायदान :** इक्के, टमटम आदि में लगी हुई लोहे की वस्तु जिस पर पांव रख कर यात्री चढ़ा उतरा करते हैं
**पारित :** (प्रस्ताव, विधेयक आदि) जो नियमानुसार ठीक मान लिया गया हो और जिसके अनुसार काम होने का हो
**बाशिंदा :** किसी देश में रहने वाले लोग
**पंजीकृत :** हिसाब या विवरण लिखने की वह पुस्तिका जिस पर नाम आदि लिखा या चढ़ाया गया हो
**दमनकारी :** दबाने या रोकने के लिए किया गया कार्य
**जाहिर :** प्रकट
**पट्टेदारी :** हिस्सेदारी. बराबर का अधिकारी
**रियायत :** छूट
**मध्यस्थता :** बीच में पड़कर किसी प्रकार का विवाद या विरोध दूर करना
**अवहेलना :** तिरस्कार, ध्यान न देना, बेपरवाही
**निष्क्रिय :** जिसमें कोई क्रिया, चेष्टा या व्यापार हो

## 16.9 बोध प्रश्नों के उत्तर

**बोध प्रश्न-1**

1 देखें उपभाग 16.2.1
2 1 (×) 2 (√) 3 (×) 4 (×)

**बोध प्रश्न-2**

1 1 (×) 2 (√) 3 (×) 4 (×)
2 देखें उपभाग 16.2.3

**बोध प्रश्न-3**

1 देखें उपभाग 16.4.1
2 देखें उपभाग 16.4.3
3 1 (×) 2 (√) 3 (√) 4 (×)

**बोध प्रश्न-4**

1 देखें उपभाग 16.5.1
2 देखें उपभाग 16.5.2
3 देखें उपभाग 16.5.2

**बोध प्रश्न-5**

1 देखें उपभाग 16.6.1
2 देखें उपभाग 16.6.4

## इस खंड के लिए कुछ उपयोगी पुस्तकें

महात्मा गांधी, *आत्मकथा*
झारखण्डे राय, *भारतीय क्रांतिकारी आन्दोलन एक विश्लेषण*
सोहन सिंह जोश, *कोमागाटामारू की दुखद गाथा*
अयोध्या सिंह, *भारत का मुक्ति-संग्राम*
तारा चन्द, *भारतीय स्वतंत्रता-संग्राम का इतिहास, खंड-3*
राहुल सांकृत्यायन, *लेनिन, एक जीवनी*
एमिल बर्न्स, *मार्क्सवाद क्या है?*
आर.एल. शुक्ला (सं), *आधुनिक भारत*

# इकाई 17 संवैधानिक सुधार 1892-1920

## इकाई की रूपरेखा


17.0 उद्देश्य
17.1 प्रस्तावना
17.2 पृष्ठभूमि
17.3 सन् 1892 का इण्डियन काउंसिल्स अधिनियम
17.3.1 संवैधानिक परिवर्तनों की आवश्यकता
17.3.2 अधिनियम की मुख्य धाराएँ
17.4 मोर्ले-मिन्टो "सुधार"
17.4.1 संवैधानिक परिवर्तनों की आवश्यकता
17.4.2 वैधानिक संस्थाओं के संगठन में परिवर्तन
17.4.3 कार्यों में परिवर्तन
17.5 मोन्टेग्यू-चेम्सफोर्ड "सुधार"
17.5.1 मॉन्टेग्यू-चेम्सफोर्ड सुधार की ओर ले जाने वाली परिस्थितियाँ
17.5.2 केंद्रीय सरकार में परिवर्तन
17.5.3 प्रांतीय सरकार में परिवर्तन
17.5.4 मोन्टेफॉर्ड सुधारों का अवलोकन
17.6 सारांश
17.7 शब्दावली
17.8 बोध प्रश्नों के उत्तर


## 17.0 उद्देश्य

इस इकाई का उद्देश्य, आपको भारत में सन् 1892 और 1919 के मध्य वैधानिक संस्थाओं के विकास के मुख्य चरणों से अवगत कराना है। इस इकाई को पढ़ने के बाद आप:

- वैधानिक संस्थाओं के आकार और कार्य में, इस काल में हुई वृद्धि के विषय में जान सकेंगे,
- उन कारणों को जान सकेंगे जिन्होंने अंग्रेज़ों को इन सुधारों को लागू करने के लिए प्रेरित किया, तथा
- स्वतन्त्रता संग्राम और इन संस्थाओं के विकास के मध्य सम्बन्ध को समझ सकेंगे।

## 17.1 प्रस्तावना

अंग्रेज़ों ने कुछ संवैधानिक सुधार किए थे। इस इकाई में उन कारणों पर विचार किया जा रहा है जिनकी वजह से सन् 1892 का इण्डियन काउंसिल्स अधिनियम पारित हुआ। यहाँ इस अधिनियम की मुख्य धाराएँ, इसकी उपलब्धियां तथा इनकी कमियों पर विचार किया गया है। साथ ही साथ इसमें मोर्ले-मिन्टो तथा मॉन्टेग्यू-चेम्सफोर्ड सुधारों की पृष्ठभूमि का अवलोकन किया गया है और इन सुधारों द्वारा सरकार के विभिन्न अंगों में किये जाने वाले

परिवर्तनों पर भी प्रकाश डाला गया है। अन्त में सुधारों की उपलब्धियों तथा कमियों को दर्शाया गया है। ताकि आप इनका वस्तुनिष्ठ विश्लेषण कर सकें।

## 17.2 पृष्ठभूमि

सन् 1833 के चार्टर अधिनियम में गवर्नर जनरल की कार्यकारिणी परिषद् में चौथे सदस्य को विधि सचिव के रूप में शामिल किया गया। वह केवल वैधानिक मामलों में गवर्नर जनरल की कार्यकारिणी परिषद् में वोट दे सकने का तथा बैठ सकने का अधिकारी था। इस प्रकार पहली बार केंद्रीय सरकार के वैधानिक तथा प्रशासनिक कार्यों में अन्तर किया गया। इस अधिनियम के द्वारा एक और परिवर्तन यह था कि प्रेसीडेन्सी (कलकत्ता, बंबई तथा मद्रास प्रेसीडेंसी) सरकारों, को स्वतन्त्र वैधानिक शक्तियों से वंचित कर दिया गया।

बीस वर्ष बाद सन् 1853 में एक और चार्टर अधिनियम पारित किया गया जिसके अंतर्गत गवर्नर जनरल की काउंसिल में विधि सचिव को पूर्ण सदस्य के अधिकार प्रदान कर दिए गए। इसके साथ ही, गवर्नर जनरल की काउंसिल की कार्यकारी तथा वैधानिक शक्तियों के बीच का अन्तर बढ़ा दिया गया, क्योंकि वैधानिक कार्यों के लिए इस काउंसिल में छह अतिरिक्त सदस्यों की नियुक्ति की गई। ये सभी वेतनभोगी सरकारी अधिकारी थे जिनमें से चार, तीन प्रेसीडेंसियों तथा नॉर्थ वेस्टर्न प्रॉविन्सेज़ (मौटे तौर पर आज के उत्तर भारत का पश्चिमी अर्धांश) का प्रतिनिधित्व करते थे और दो जज थे अधिनियम में ऐसे सदस्यों को लेजिसलेटिव काउंसलर (विधान पार्षद्) कहा गया। गैर सरकारी, यूरोपीय या भारतीय सदस्यों को शामिल किए जाने का प्रस्ताव स्वीकार नहीं किया गया।

सन् 1854 में विधान परिषद् ने कार्य संचालन के लिए एक विस्तृत प्रणाली प्रस्तुत की। कानून बनाने के साथ-साथ तमाम शिकायतों की जाँच पड़ताल करने का काम भी इसे सौंप दिया गया। इसके अलावा, प्रांतीय सरकारों ने विधि निर्माण प्रक्रिया के केन्द्रीकरण का विरोध किया।

हालांकि सन् 1857 के विद्रोह ने, अंग्रेज़ी सरकार को इस व्यवस्था में और भी परिवर्तन करने के लिए एक तात्कालिक कारण प्रदान कर दिया। यह अनुभव किया गया कि विद्रोह का एक मुख्य कारण शासक वर्ग और भारतीयों के मध्य सम्पर्क और तालमेल की कमी थी। सन् 1861 में इंडियन काउंसिल्स ऐक्ट के रूप में एक ऐक्ट पारित किया गया जिसमें इस विचारधारा का प्रतिबिंब था। विधि निर्माण के उद्देश्य से गवर्नर जनरल की काउंसिल में अतिरिक्त सदस्यों की वृद्धि की गई जिनकी संख्या कम-से-कम छह और अधिक से अधिक बारह होनी थी और जिन्हें गवर्नर जनरल द्वारा दो वर्ष के कार्यकाल के लिए मनोनीत किया जाना था। एक महत्वपूर्ण नया प्रयोग यह किया गया कि अतिरिक्त सदस्यों में से कम-से-कम आधे गैर सरकारी होने थे (अर्थात् ऐसे लोग जो कि ब्रिटिश शासन की नागरिक सेवा या सैनिक सेवा में कार्यरत नहीं थे)। इस व्यवस्था के अन्तर्गत आमतौर पर तीन भारतीयों को मनोनीत किया जाता था। साथ ही साथ वैधानिक क्षेत्र में काउंसिल का काम केवल विधि निर्माण तक सीमित था। इस ऐक्ट ने बंबई और मद्रास की सरकारों की विधि निर्माण की शक्तियों को पुनर्स्थापित किया तथा अन्य प्रान्तों में भी विधान परिषदों की स्थापना की व्यवस्था की। बंगाल में सन् 1862, पंजाब में सन् 1886 तथा नॉर्थ वेस्टर्न प्राविंसेज़ में सन् 1887 में विधान परिषदों की स्थापना की गई।

पहले बीस सालों में गैर सरकारी सदस्यों के मनोनयन की शक्ति को सरकारी अनुग्रह के एक साधन के रूप में प्रयुक्त किया गया। मनोनीत किए जाने वाले गैर सरकारी सदस्य राजाओं, उनके दीवानों और बड़े ज़मींदारों में से ही होते थे और उनमें भी सिर्फ़ वे लोग मनोनीत किए गए जिन्होंने सन् 1857-58 के विद्रोह में अंग्रेज़ों की मदद की थी। फिर भी गैर सरकारी सदस्यों को मनोनीत किए जाने का निर्णय अत्यन्त महत्वपूर्ण था। यह भारतीय जनमत की महत्ता की मौन स्वीकृति थी और इस बात की भी कि अंग्रेज़ अधिकारी भारतीयों की आकांक्षाओं के सबसे अच्छे व्याख्याकार नहीं हो सकते थे। यह भी मालूम हो गया था कि एक तानाशाह औपनिवेशिक सरकार भी नितांत एकाकी होकर कार्य नहीं कर सकती थी।

## 17.3 सन् 1892 का इंडियन काउंसिल्स ऐक्ट

अब हम उन कारणों पर विचार करेंगे जिन्होंने ब्रिटिश सरकार को 1892 के इंडियन काउंसिल ऐक्ट पारित करने के लिए प्रेरित किया। इसके अतिरिक्त इस ऐक्ट की मुख्य विशेषताओं, कमियों तथा उपलब्धियों की भी विवेचना की जाएगी।

### 17.3.1 संवैधानिक परिवर्तनों की आवश्यकता

सरकार के दृष्टिकोण से सन् 1861 के ऐक्ट ने संतोषजनक ढंग से कार्य किया था। परन्तु परवर्तीकाल में भारत में राष्ट्रीय चेतना का अद्भुत विकास हुआ। शीघ्र ही इस भावना का विकास हुआ कि देशवासियों के बहुत से हित, आकांक्षाएँ और तकदीर एक समान हैं। खण्ड एक की इकाई 3 में आप इस भावना के उत्थान और विकास के कारणों का अध्ययन कर चुके हैं। आप यह भी जानते हैं कि अपने पहले ही अधिवेशन में कांग्रेस ने केंद्रीय तथा प्रांतीय विधान परिषदों में चुने हुए सदस्यों के सम्मिलन और उनके कार्यक्षेत्र में वृद्धि की माँग की थी। आगामी वर्षों में इन माँगों को दोहराया जाता रहा।

जब भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस की स्थापना हुई तब लॉर्ड डफ़रिन भारत के गवर्नर जनरल थे। उनके कार्यकाल में (1884-1888) भारत सरकार ने गृह सरकार से केंद्रीय तथा प्रांतीय विधान परिषदों के आकार तथा उसके कार्यक्षेत्र में वृद्धि किए जाने की ज़ोरदार सिफ़ारिश की। स्वाभाविक रूप से यह सवाल उठता है कि, क्यों एक तानाशाह या एक निरंकुश सरकार विधान परिषदों में ज्यादा भारतीयों के सम्मिलन तथा उनके कार्यक्षेत्र में वृद्धि के विषय में विचार कर रही है? यह सवाल तब और भी महत्वपूर्ण हो जाता है जब यह मालूम होता है कि इस बात के लिए न तो जनता की ओर से कोई दबाव पड़ रहा था और न ही ब्रिटिश राज का तख्ता पलटने के लिए कोई क्रांतिकारी आंदोलन ही चल रहा था। सरकार साफ़ तौर पर यह मानती थी कि शिक्षित भारतीय समुदाय भारतीय जनमत का प्रतिनिधित्व नहीं करता है और वह उनकी माँगों को भी शक की नज़र से देखती थी।

जैसा कि आप पढ़ चुके हैं कि यद्यपि प्रारंभ में सरकार ने भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस को अंशतः मान्यता दी थी पर जल्दी ही इसने अपनी संरक्षण की नीति वापस ले ली थी। शायद सरकार ने अनुभव किया था कि राष्ट्रीयता की भावना का विकास ब्रिटिश राज्य के हित में नहीं होगा। इन राष्ट्रवादी नेताओं की माँगें मुख्य रूप से इस बात पर आधारित थीं कि, भारत का शासन भारतीयों के कल्याण को दृष्टि में रखकर ही किया जाना चाहिए। दूसरी तरफ़ सरकार का प्राथमिक उद्देश्य ब्रिटिश साम्राज्यवादी हितों का संरक्षण तथा उनका विकास करना था। ऐसी परिस्थिति में अंग्रेज़ों के लिए यह जरूरी था कि वे भारत में अपने समर्थन का आधार विस्तृत करें और ऐसा वे उन भारतीयों की आकांक्षाओं को पूरा करके कर सकते थे जो कि अपनी माँगों को एक संकुचित संवैधानिक ढाँचे के भीतर ही रखने को तैयार थे। संवैधानिक संरचना में परिवर्तन करके सरकार की सर्वग्राह्य तानाशाही को प्रतिकूल रूप से प्रभावित किए बिना ही, शिक्षित भारतीयों के असंतोष को दूर किया जा सकता था। इसी उद्देश्य से सन् 1892 में एक नया इंडियन काउंसिल्स ऐक्ट पारित किया गया।

### 17.3.2 अधिनियम की मुख्य धाराएँ

सन् 1892 का इंडियन काउंसिल्स ऐक्ट एक संशोधनात्मक ऐक्ट था। परिणामस्वरूप आधारभूत संवैधानिक धाराएँ वही रहीं जो सन् 1861 के ऐक्ट में थीं। मुख्यतः दो प्रकार के परिवर्तन किए गए:

i) वैधानिक संस्थाओं के संगठन में परिवर्तन
ii) कार्यक्षेत्र में वृद्धि

केंद्रीय कार्यकारिणी परिषद् के अतिरिक्त सदस्यों की संख्या बढ़ाकर न्यूनतम दस और अधिकतम सोलह कर दी गई और 1861 के ऐक्ट की ही भाँति इसमें कम-से-कम आधे सदस्य गैर सरकारी होने थे। इस बात की भी आशा थी कि चुनाव की प्रक्रिया भी प्रारंभ की

जाएगी। लेकिन अन्ततः गवनर जनरल को इस बात के लिए अधिकृत कर दिया गया था कि वह विभिन्न भारतीय संस्थाओं को अपने-अपने प्रतिनिधि चुनने या भेजने का निमंत्रण दे और उनके मनोनयन के लिए नियम बनाए।

अन्तिम रूप से पारित नियमों के अधीन केंद्रीय विधान परिषद् में नौ अवकाश प्राप्त सरकारी कर्मचारी सदस्यों (गवर्नर जनरल, एक्ज़ीक्यूटिव काउंसिल के छह सदस्य, सेनाध्यक्ष तथा उस प्रांत का प्रमुख जहाँ परिषद् की बैठक हो जैसे बंगाल या बिहार का लेफ्टिनेंट गवर्नर) के साथ-साथ छह अतिरिक्त सरकारी सदस्य और दस अतिरिक्त गैरसरकारी सदस्य थे। इन अतिरिक्त गैर सरकारी सदस्यों को बंगाल, बंबई, मद्रास तथा नॉर्थ वेस्टर्न प्राविन्सेज़ की विधान परिषदों के सदस्यों में से नामजद किया जाता था।

जब पंजाब और बर्मा में विधान परिषदों का गठन हो गया तब एक-एक सदस्य को वहाँ से भी केंद्रीय विधान परिषद् में शामिल किया गया। एक सदस्य की नियुक्ति कलकत्ता चैम्बर ऑफ कॉमर्स की सिफ़ारिश पर की गई। व्यवहार में ये संस्थाएँ अपने प्रतिनिधियों को चुनकर उनका नाम अग्रसारित कर देती थीं और ये नाम सदैव ही सरकार द्वारा स्वीकार कर लिए जाते थे। इस प्रकार वास्तव में ये प्रतिनिधि इन संस्थाओं द्वारा ही चुने जाते थे। यद्यपि इस चयन सिद्धान्त को बहुत सावधानी के साथ लागू किया गया था। इस प्रकार की प्रक्रिया अपनाने के पीछे जो उद्देश्य था वह यह था कि विधान परिषदों में सदस्यों का सम्मिलन, विशिष्ट संस्थाओं के प्रतिनिधियों के रूप में नहीं बल्कि गवर्नर जनरल द्वारा नामजद व्यक्तियों के रूप में देखा जाये। शेष नामजद गैर सरकारी सदस्य थे। सरकारी नामजद अधिकारी तथा अवकाश प्राप्त सरकारी कर्मचारी सदस्यों की संख्या मिलकर विधान परिषद् में सरकारी सदस्यों का बहुमत बनाती थी।

इसी प्रकार के परिवर्तन प्रांतीय विधान परिषदों के संगठन में भी किए गए। कुल मिलाकर सभी प्रांतों की विधान परिषदों में सरकारी सदस्यों का बहुमत बनाए रखा गया। जहाँ तक कार्यों का सम्बन्ध है, वैधानिक प्रस्तावों के अतिरिक्त, वार्षिक बजट पर भी सदस्यगण बहस कर सकते थे। हालांकि सरकार द्वारा प्रस्तुत बजट एक अपरिवर्तनीय दस्तावेज़ के रूप में ही प्रस्तुत किया जाता था। सदस्यगण केवल अपनी टिप्पणी दे सकते थे जिसका प्रभाव आने वाले वर्षों के बजट पर पड़ सकता था परन्तु तत्कालीन बजट पर उसका कोई प्रभाव नहीं पड़ सकता था। प्रान्तों में बहस, राजस्व और व्यय के उन्हीं अनुभागों तक सीमित रखी गई, जो कि प्रांतीय सरकारों के नियंत्रण में थे आंतरिक विषयों पर भी प्रश्न करने का अधिकार सदस्यों को था परन्तु पूरक प्रश्न करने की अनुमति उन्हें नहीं दी गई। इन नियंत्रणों के बावजूद यह एक महत्वपूर्ण प्रयोग था क्योंकि उस समय तक ब्रिटिश हाउस ऑफ कामंस में भी "प्रश्नकाल" का प्रावधान साकार रूप नहीं ले सका था।

सन् 1892 और सन् 1893 के भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस के अधिवेशनों में इस ऐक्ट की आलोचना की गई क्योंकि इसमें प्रत्यक्ष चुनाव की प्रणाली लागू नहीं की गई थी। लेकिन ये अधिनियम इतने उदार अवश्य थे कि गोपालकृष्ण गोखले, लालमोहन घोष, डब्ल्यू. सी. बनर्ज़ी, सरेन्द्र नाथ बनर्जी और फीरोज़शाह मेहता जैसे अनेक राष्ट्रवादी नेतागण विधान परिषदों में प्रविष्ट हो सकें। गैर सरकारी सदस्यगणों ने बहस करने की कला और विधायक के रूप में योग्यता का भलीभांति प्रदर्शन किया और उन्होंने भारतीय दृष्टिकोण प्रस्तुत कर सकने के हर मौके का लाभ उठाया। कुल मिलाकर ऐक्ट की व्यवस्थाओं ने राष्ट्रवादी नेताओं की आकांक्षाओं को संतुष्ट किया क्योंकि सन् 1894 से 1900 तक के कांग्रेस कार्यक्रम में विधान परिषदों में सुधार किए जाने की माँग को अधिक महत्व दिया गया। हालांकि संतोष की यह भावना अधिक दिन नहीं रही क्योंकि इसी अवधि में विरोध की राजनीति उभर कर आई और सन् 1904 तक एक बार फिर से समवेत स्वरों में कांग्रेस और अधिक वैधानिक सुधारों की माँग करने लगीं थी।

**बोध प्रश्न 1**

1 निम्न कथनों में कौन-सा तथ्य सही ($\surd$) या गलत ($\times$) है।

i) सरकार ने इन संवैधानिक सुधारों को इसलिए लागू किया क्योंकि वह भारतीयों को प्रशासनिक कला में प्रशिक्षण देना चाहती थी।

ii) सरकार भारतीयों में सामाजिक समर्थन के आधार को विस्तृत करके अपनी स्थिति को सुदृढ़ बनाना चाहती थी।

iii) गैर सरकारी सदस्यों की भर्ती सीधे चुनाव के द्वारा होनी थी।

2 सन् 1892 के इंडियन काउंसिल्स ऐक्ट पारित किए जाने की पृष्ठभूमि बताइए। अपना उत्तर लगभग पाँच पंक्तियों में दीजिए।

..................................................................................................

..................................................................................................

..................................................................................................

..................................................................................................

..................................................................................................

3 सन् 1892 के ऐक्ट की मुख्य धाराएँ क्या थी? लगभग 100 शब्दों में अपना उत्तर दीजिए।

..................................................................................................

..................................................................................................

..................................................................................................

..................................................................................................

..................................................................................................

..................................................................................................

..................................................................................................

..................................................................................................

..................................................................................................

## 17.4 मोर्ले-मिन्टो सुधार

1909 के मोर्ले-मिन्टो सुधार का पारित होना 1892 के इंडियन काउंसिल्स ऐक्ट (Indian Councils Act) के उपरांत की राजनैतिक हलचल तथा तीव्र गतिविधियों के दौर की पृष्ठभूमि में देखी जानी चाहिये।

### 17.4.1 संवैधानिक परिवर्तनों की आवश्यकता

कांग्रेस के बाहर (सन् 1892 के बाद के पंद्रह सालों में) कांग्रेस के लक्ष्यों और प्रणाली के प्रति असंतोष की भावना पनप रही थी। सन् 1885 में हाईस्कूल (मैट्रिक) में उत्तीर्ण होने वाले विद्यार्थियों की संख्या 1286 थी जो सन् 1906 में बढ़कर 8211 हो गई। यद्यपि आज के मापदण्ड से यह संख्या हास्यास्पद सीमा तक कम मालूम पड़ती है परंतु मात्रा की दृष्टि में इसमें सात गुनी वृद्धि हुई थी। यही प्रवृति समाचार पत्रों और पत्रिकाओं के प्रकाशन और बिक्री के संबंध में देखी गयी । इससे यह संकेत मिलता है कि उन भारतीयों की संख्या में, जो कि नागरिक के रूप में अपने अधिकारों के प्रति सजग हो सकते थे और सरकार के कर्तव्यों के प्रति भी जागरूक हो सकते थे, साथ ही साथ लोगों की संख्या में, जो कि विदेशी शासन की हानियों को समझने लगे थे, बहुत अधिक वृद्धि हुई थी। इन्हीं वर्षों में उग्रवाद तथा क्रांतिकारी विचारधारा का भारतीय राष्ट्रीय आंदोलन के अंतर्गत उदय हुआ था, जिनके लिए अन्य बातों के अलावा कर्ज़न की नीतियाँ काफी हद तक जिम्मेदार थीं।

सन् 1898 से सन् 1905 तक के काल में गवर्नर जनरल के रूप में कार्य करने वाले लॉर्ड कर्ज़न में स्वाभिमान कूट-कूट कर भरा हुआ था, जो कि ग्रेट ब्रिटेन की सुदृढ़ अंतर्राष्ट्रीय स्थिति को दर्शाता था। उसकी केंद्रीयकरण की नीति, शिक्षित भारतीयों की आकांक्षाओं तथा

भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस के प्रति उसकी प्रत्यक्ष अवमानना और सबसे ज्यादा उसका बंगाल विभाजन का निर्णय ऐसी बातें थीं जिनसे जनता का विरोध उभर कर सामने आ गया था। दिसंबर 1903 से, अर्थात् जब से विभाजन की योजना घोषित की गई थी, तब से बंगाल के निवासियों ने अपने असंतोष को खुले आम और स्पष्ट रूप से व्यक्त करना प्रारम्भ कर दिया था। बहुत सी वैकल्पिक योजनाएँ भी प्रस्तुत की गईं। फिर भी विभाजन की योजना कार्यान्वित की गई। यह अलोकप्रिय निर्णय शासक वर्ग के द्वारा शासित वर्ग की भावनाओं की पूर्ण अवहेलना का प्रतीक बन गया। कांग्रेस के नेता अपने संगठन के लक्ष्य पर पुनर्विचार करने लगे, और खासकर ब्रिटिश सरकार पर इस निर्णय को बदलने के लिए दबाव डालने के लिए कोई उपाय सोचने लगे। विभाजन के निर्णय के फलस्वरूप, ब्रिटिश शासन के खिलाफ उभरा कटु विरोध कलकत्ता तथा अन्य स्थानों में हुए विरोध प्रदर्शनों में व्यक्त हुआ और साथ ही साथ स्वदेशी, बहिष्कार तथा राष्ट्रीय शिक्षा के नारे भी बुलंद किए गए।

कुछ नरम दलीय नेताओं ने भी, खासकर बंगाल में, उग्रवादियों के बहिष्कार और स्वदेशी कार्यक्रम का खुले आम समर्थन किया। लेकिन शीघ्र ही वे अपने पुराने ढर्रे, "प्रार्थना और याचिका" पर वापस आ गये। वे चाहते थे कि सरकार कुछ सुधार करके अपनी उदारता का परिचय दे। सन् 1905 के बनारस में हुए कांग्रेस अधिवेशन में अपने अध्यक्षीय भाषण में गोपाल कृष्ण गोखले ने कहा था, "कांग्रेस का लक्ष्य है कि भारत का शासन खुद भारतीयों के हित में किया जाये।" उनकी तात्कालिक माँगें थीं कि विधान परिषदों में सुधार किए जाएँ और कम-से-कम तीन भारतीयों को भारत सचिव की काउंसिल में नियुक्त किया जाये। नरम दल के नेता तब अधिक आशावान हो गए जब 1905 के अन्तिम दिनों में ब्रिटेन में सत्ता, लिबरल पार्टी के हाथ में आ गई और अपने उदार विचारों के लिए विख्यात मोर्ले भारत सचिव बनाए गए। कुछ समय पूर्व ही कंजरवेटिव लॉर्ड मिन्टो ने लॉर्ड कर्ज़न के उत्तराधिकारी के रूप में गवर्नर जनरल का कार्यभार संभाला था। मोर्ले और मिन्टो के नाम इंडियन काउंसिल्स ऐक्ट, 1909 में किए गए परिवर्तनों के साथ जोड़ दिए गए, और यह ऐक्ट "मोर्ले-मिन्टो सुधार" के रूप में विख्यात हुआ।

मोर्ले तथा मिन्टो दोनों की पृष्ठभूमि, प्रतिष्ठा और अनुभव में बड़ा अन्तर था। परन्तु जहाँ तक भारत के प्रति नीति का सवाल है दोनों का दृष्टिकोण एक समान था। दोनों यह मानते थे कि बंगाल विभाजन एक भारी भूल थी और उसका परिणाम सरकार के प्रति विरोध की भावना का उग्र होना था। उन्हें यह भी भय था कि विरोध की भावना मुसलमानों में भी व्याप्त हो रही है। उनकी ये भावनाएं स्पष्ट रूप से सरकारी और गैर सरकारी पत्राचार में व्यक्त हुईं। उदाहरण के लिए एक सार्वजनिक संदेश में भारत सरकार ने लिखा:

> "ऐसा लगता है कि अंग्रेज़ी बोलने वाले भारतीय समुदाय पर हमारी पकड़ धीरे-धीरे कमज़ोर होती जा रही है और इस बात के संकेत हैं कि इस समुदाय के एक बड़े हिस्से में दबी उनकी शत्रुता धीरे-धीरे समाज के निम्न वर्ग तक भी पहुँच रही है, जो कि इसकी वजह तो नहीं जानता है पर यह ज़रूर देखता है कि अंग्रेज़ अधिकारी का जो दबदबा पहले था वह अब नहीं है। अतः सरकारी नीति में परिवर्तन किए जाने की निहायत ज़रूरत है।"

नये बदलाव से उनका मतलब वैधानिक संस्थाओं के संगठन और कार्य में परिवर्तन से था। इससे वे नरम दल को ब्रिटिश साम्राज्य का पक्षधर बना सकते थे क्योंकि उनकी ख़ास माँग ही संवैधानिक सुधारों की थी। हालाँकि अंग्रेज़ शासक यह जानते थे कि नरम दल की बुनियादी माँग, कि भारत का शासन भारतीयों के हित के लिए ही किया जाना चाहिए, साम्राज्यवादी ढाँचे में सही तौर पर बैठ नहीं सकती थी। राष्ट्रीय चेतना के लिए कार्य करना और साथ ही साथ ब्रिटिश शासन की वफ़ादारी का इज़हार, दोनों का एक साथ निभ पाना असंभव था। अतः इस वर्ग के लोगों को अपनी ओर मिलाने के प्रयास के अतिरिक्त अंग्रेज़ों ने भारत में अपने शासन के समर्थन के लिए नए सहारों की तलाश की। भारत पहुँचने के कुछ समय बाद ही लॉर्ड मिन्टो ने लिखा: "इधर कुछ दिनों से मैं कांग्रेस के लक्ष्यों के संभावित प्रति संतुलन के विषय में, काफी सोच रहा हूँ।" पहले सरकार का विचार गण्यमानों की एक अलग परिषद् बनाने का था जिसमें अंग्रेज़ों के प्रति निष्ठावान भारतीय रियासतों के शासक, ज़मींदार आदि शामिल किए जा सकते थे लेकिन बाद में उन्होंने ज़मींदारों को साम्राज्यिक विधान परिषद् में ही प्रतिनिधित्व देने का [illegible] कर लिया।

इसी बीच (जैसा कि आप खंड सात की इकाई-36 में देखेंगे) अक्टूबर 1906 में मुसलमानों के नेताओं का एक शिष्टमंडल वाइसरॉय से शिमला में मिला। उन्होंने इस बात की माँग की कि किसी भी प्रकार का प्रतिनिधित्व दिए जाते समय मुसलमानों को उनकी संख्या के आधार पर नहीं बल्कि उनके राजनैतिक महत्व के आधार पर प्रतिनिधित्व दिया जाना चाहिए। अंग्रेजों ने इन माँगों में काँग्रेस का आशाजनक विकल्प देख लिया था। अब वे काँग्रेसी नेताओं की बढ़ती हुई माँगों के विरुद्ध मुसलमानों के इस वर्ग को अपना संरक्षण देकर प्रति संतुलन उत्पन्न कर सकते थे। जैसा कि हम देखेंगे कि मुसलमानों को महत्व भी दिया गया और उन्हें अलग से प्रतिनिध्रित्व भी मिला। राष्ट्रवादी नेताओं ने यह तर्क प्रस्तुत किया कि यह शिष्टमण्डल अंग्रेज़ों के इशारे पर ही काम कर रहा था। मोहम्मद अली ने इसे अंग्रेज़ों के निर्देशन में की गई प्रस्तुति कहा। मुस्लिम लीग के प्रशंसकों ने इस आरोप को निराधार बताया और स्पष्ट किया कि उन्नीसवीं शताब्दी के नवें दशक में ही सर सैयद अहमद और उनके अनुयायी मुस्लिम हितों का प्रतिनिधित्व करने के लिए मुसलमानों के मनोनयन की माँग करते आ रहे हैं, और अब जबकि चुनाव प्रणाली के लागू किए जाने की संभावनाएँ हैं, तब यह स्वाभाविक ही है कि मुसलमानों द्वारा अधिक संख्या में सीटों व पृथक निर्वाचक मण्डल की माँग की जाए। हालांकि इस बात से इंकार नहीं किया जा सकता कि अपना शासन बनाए रखने के लिए अंग्रेज़ों ने साम्प्रदायिक पृथकत्व को बढ़ावा दिया था। यही कारण है कि, अपेक्षाकृत दुर्बल संगठन होने और दो दशको से कांग्रेस द्वारा अपनाई जा रही प्रार्थना और याचिका की पद्धति को अपनाने के बावजूद लीग को अपनी स्थापना के तुरंत बाद बड़ी सफलता मिली।

संवैधानिक सुधार किए जाने का पहला प्रस्ताव सन् 1906 की गर्मियों में किया गया और एक लंबी तथा कष्टसाध्य बहस के बाद मई, सन् 1909 में इंडियन काउंसिल्स ऐक्ट पारित हुआ।

वैधानिक सुधारों के रूप में प्रतिबिंबित मेलमिलाप की इस नीति के साथ ही साथ सरकार ने उन सभी लोगों के निर्मम दमन की नीति अपनाई जो अब भी सरकार का विरोध कर रहे थे या उनकी भर्त्सना कर रहे थे। सन् 1907-1908 के दौरान प्रीवेन्शन ऑफ सेडिशस मीटिंग ऐक्ट के तहत निर्धारित क्षेत्रों में सभाओं के आयोजन पर प्रतिबन्ध लगा दिया गया तथा न्यूज़पेपर्स ऐक्ट के तहत छापाखानों की कुर्की और इंडियन क्रिमिनल लॉ अमेन्डमेंट ऐक्ट के तहत बंगाल में समितियों पर प्रतिबंध लगाए जाने के कानून पारित किए गए।

ऐक्ट पारित होने से पहले ही, भारतीय नेताओं की एक महत्वपूर्ण माँग, बिना कोई विधिक परिवर्तन किए हुए ही मान ली गई। यह थी, भारत सचिव, गवर्नर जनरल तथा प्रांतीय गवर्नरों की परिषदों में दो-दो भारतीयों की नियुक्ति। यह कदम प्रशासनिक सक्षमता बढ़ाने के लिए नहीं था, बल्कि साफ़ तौर पर विद्यमान व्यवस्था के अन्तर्गत शिक्षित भारतीयों के लिए उन्नति का अवसर प्रदान करने के लिए उठाया गया था। इस प्रावधान के अन्तर्गत अपेक्षाकृत कम महत्वपूर्ण विभाग जैसे कानून या शिक्षा आदि भारतीयों को सौंप दिए गये थे। फिर भी यह कदम महत्वपूर्ण था क्योंकि इससे दो तथ्यों की अप्रत्यक्ष स्वीकृति का संकेत मिलता था। पहला यह कि भारतीय उच्चतम पदों पर नियुक्त किए जाने के योग्य हैं और दूसरा यह कि ब्रिटिश अधिकारियों की तुलना में भारतीय ही अपने देशवासियों की आकांक्षाओं की बेहतर व्याख्या कर सकते हैं।

सन् 1892 के इंडियन काउंसिल्स ऐक्ट की ही भांति सन् 1909 का ऐक्ट भी एक संशोधनात्मक ऐक्ट था। इंडियन काउंसिल ऐक्ट की ही भाँति इसमें भी कानून व अधिनियम बनाने के लिए गवर्नर जनरल तथा गवर्नरों की परिषदों के आकार व कार्यों में परिवर्तन किए गए।

## 17.4.2 वैधानिक संस्थाओं के संगठन में परिवर्तन

इस ऐक्ट ने केन्द्रीय तथा प्रांतीय विधान परिषदों का विस्तार किया। केन्द्रीय विधान पारषद् में अतिरिक्त सदस्यों की संख्या 60 कर दी गई जबकि प्रांतीय विधान परिषदों में इनकी संख्या 30 से 50 के बीच रखी गई। इसमें अवकाश प्राप्त सरकारी सदस्यों की संख्या शामिल नहीं है। अतिरिक्त सदस्य दो प्रकार के होते थे—सरकारी और गैर सरकारी। केंद्र में सरकारी सदस्यों (अवकाश प्राप्त सरकारी सदस्य मिलाकर) का बहुमत होता था। प्रान्तीय विधान

सभाओं में गैर सरकारी बहुमत की माँग को मान लिया गया। ऐसा यह मानकर किया गया कि गैर सरकारी सदस्य एक दूसरे के इतने विपरीत हितों और वर्गों का प्रतिनिधित्व करेंगे कि उनका एकजुट हो पाना कठिन होता। इसके अलावा यदि उनके द्वारा किसी अवांछित बिल को पारित किया भी जाता तो इस प्रकार के बिलों को आसानी से निषेधाधिकार का प्रयोग करके निरस्त किया जा सकता था।

केंद्रीय या इम्पीरियल विधान परिषद् में 37 सरकारी (9 अवकाश प्राप्त सरकारी सदस्य + 2 अतिरिक्त सरकारी सदस्य) और 32 गैर सरकारी सदस्य थे। सन् 1909 का ऐक्ट गैर सरकारी स्थानों के वितरण और पूर्ति के तरीके के कारण महत्वपूर्ण बन गया। इन 32 स्थानों में से 5 सरकार द्वारा नामजद व्यक्तियों द्वारा भरे जाने थे। शेष 27 स्थानों का वितरण निम्न प्रकार से किया गया:

| | | |
|---|---|---|
| 1 | प्रांतीय विधान परिषदों के गैर सरकारी सदस्यों में से | 13 |
| 2 | प्रांतों के ज़मींदारों में से | 6 |
| 3 | प्रान्तों के मुसलमानों में से | 5 |
| 4 | संयुक्त प्रांत के मुस्लिम भूमिपति और बंगाल के मुसमानों का बारी-बारी से प्रतिनिधित्व | 1 |
| 5 | बबई और कलकत्ता के चैम्बर्स ऑफ कामर्स से | 2 |

इसी प्रकार के प्रावधान प्रांतीय विधान परिषदों के गठन के लिए किए गए लेकिन उनमें उनकी विशिष्ट परिस्थितियों के अनुरूप कुछ परिवर्तन भी किए गए। मुसलमान ज़मीदारों को जो महत्व प्रदान किया गया वह किसी ठोस एवं सत्यापित लाभदायक प्रथा के अनुसार नहीं था बल्कि उससे भविष्य में होने वाले लाभ की आशा में ही ऐसा किया गया था।

इन स्थानों की पूर्ति चुनाव द्वारा की जानी थी। तेरह सामान्य स्थानों के लिए दोहरी अप्रत्यक्ष चुनाव प्रणाली अपनायी गयी। किसी शहर या गाँव के करदाता नागरिक नगर पालिकाओं या स्थानीय स्वायत्त संस्थाओं के लिए प्रतिनिधि चुनते थे और ये प्रतिनिधि फिर प्रांतीय विधान परिषदों के लिए प्रतिनिधि चुनते थे। प्रांतीय विधान परिषदों के ये गैर सरकारी सदस्य फिर सर्वोच्च विधान परिषद् के लिए प्रतिनिधियों का चुनाव करते थे। इस प्रकार प्रान्तीय विधान परिषदों के लगभग 200 गैर सरकारी सदस्यों में से केंद्रीय विधान परिषद् के तेरह सामान्य स्थान भरे गए थे। यह आकार हास्यास्पद सीमा तक छोटा था और यहाँ तक कि मोंटेग्यू-चेम्सफोर्ड रिपोर्ट में भी इसकी आलोचना की गई थी। जमींदारों और मुसलमानों के प्रतिनिधि केंद्रीय विधान परिषद् मे भी सीधे चुने जाते थे। इसने मुसलमानों और गैर मुसलमानों में किए गए भेदभाव को और भी अधिक विद्वेषपूर्ण और अन्यायपूर्ण बना दिया। जबकि मस्लिम जमींदारों, समृद्ध व्यापारियों, स्नातकों और पेशेवर लोगों को प्रान्तीय और यहाँ तक कि केन्द्रीय विधान परिषद् में मताधिकार प्रदान कर दिया गया था लेकिन गैर मस्लिम चाहे वे कितने ही समृद्ध और योग्यता प्राप्त क्यों न हों, उनको चुनाव में मताधिकार तब तक नहीं मिल सकता था जब तक कि वे नगरपालिका या जिला परिषद् के सदस्य न हों। इस भेदभाव की नीति से गैर मुस्लिमों की भावनाओं को चोट पहुँचती थी। इसके अलावा, मस्लिम सदस्यों का चुनाव पृथक निर्वाचक मण्डल द्वारा किया जाता था, अर्थात् उन्हें चुनने वाले सिर्फ मुसलमान ही थे। केवल मस्लिम मतदाताओं के नामों के पृथक रजिस्टर तैयार किए गए। मसलमानों को विशेष महत्व दिया गया अर्थात् उन्हें उनकी जनसंख्या की तुलना में अधिक स्थान प्रदान किए गये। उन्हें सामान्य स्थानों के लिए भी अन्य समुदायों के समान ही चनाव मे खडे होने का अधिकार प्रदान किया गया। सन् 1909 में केन्द्रीय विधान परिषद् के चुनाव मे मुसलमान चार असुरक्षित सामान्य स्थानों पर विजयी हुए थे और इस तरह कुल 30 गैर सरकारी स्थानों (दो स्थान जो कि चेम्बर्स ऑफ कॉमर्स के लिए निश्चित थे और जिन्हें गैर भारतीयों द्वारा भरा जाना था, उन्हें इसमें शामिल नहीं किया गया है) में से 11 स्थानों पर मुसलमानो का अधिकार था। हालांकि यह उल्लेखनीय है कि यद्यपि अधिकारीगण और मस्लिम नेतागण हमेशा पूरे मुस्लिम समदाय के परिप्रेक्ष्य में ही बात करते थे परन्त व्यवहार में केवल कछ विशिष्ट गण्यमान वर्ग जैसे ज़मींदार सरकारी, अधिकारीगण आदि को ही वरीयता दी गई। सरकार द्वारा मुसलमानों को तरजीह देने का उद्देश्य भारतीय समाज में सतलन बनाए रखना नहीं था बल्कि कुछ मुसलमान नेताओं को एहसान रूपी रेशमी धागे से बाँधे रखना था।

कुल मिलाकर चुनाव अधिनियम इतने उदार अवश्य थे कि उस समय संवैधानिक आन्दोलन की प्रणाली में विश्वास रखने वाले देश के प्रमुख नेतागण विधान परिषदों में प्रविष्ट हो सके। केंद्रीय विधान परिषद् के सदस्यों में नवाब सैयद मोहम्मद बहादुर, श्री निवास शास्त्री, गोपालकृष्ण गोखले, दिनशा वाचा, भूपेन्द्रनाथ बसु, सुरेन्द्रनाथ बनर्जी, मदन मोहन मालवीय, तेज बहादुर सप्रू, मोहम्मद अली जिन्ना, महमूदाबाद के राजा और मज़हर-उल-मुल्क सम्मिलित थे।

## 17.4.3 कार्यों में परिवर्तन

इस ऐक्ट ने काउंसिलों की वैधानिक शक्तियों में कोई परिवर्तन नहीं किया। इसने केवल उनके कार्यक्षेत्र का विस्तार किया। विधान परिषदों के सदस्यों को निश्चित सीमाओं के अंतर्गत सार्वजनिक हित के विषयों पर प्रस्ताव पारित करने का अधिकार प्रदान कर दिया गया। ये प्रस्ताव संस्तुतियों के रूप में प्रस्तुत होने थे और यह सरकार की इच्छा पर था कि वह उन्हें अपनाए, या नहीं अपनाए। वित्त सचिव द्वारा बजट पर बहस करने के लिए विस्तृत नियमावली बनाई गई। बजट को अंतिम रूप में प्रस्तुत करने से पूर्व इस बात का अवसर प्रदान किया गया कि उस पर बहस हो और संस्तुतियाँ प्रस्तुत की जायें। प्रश्न करने के अधिकार को विस्तृत किया गया और जिस सदस्य ने मूल प्रश्न पूछा हो उसे पूरक प्रश्न करने का अधिकार भी दे दिया गया।

उपरोक्त विचार विमर्श से यह स्पष्ट है कि सरकार ने दो उद्देश्यों को लेकर तथाकथित संवैधानिक सुधार किए थे:

i) नरमदल को साम्राज्य का समर्थक बनाकर राज को सुदृढ़ करना।
ii) राजनैतिक रूप से सक्रिय हिंदू और मुसलमानों में मतभेदों को प्रोत्साहित करना दूसरे शब्दों में यह प्रयास किया गया कि फूट डालकर शासन करने की नीति के मार्ग में यह मील का पत्थर सिद्ध हो सके।

यह शीघ्र ही स्पष्ट हो गया कि भारत सरकार इन दोनों उद्देश्यों तक पहुँचने में सफल नही हो सकी। प्रारंभ में नरमदल के नेता संतुष्ट थे और उन्होंने खुद को उत्साहपूर्वक काम में लगाया। इससे पूर्व वे सन् 1907 में, सूरत में, कांग्रेस पर कब्ज़ा, कर चुके थे, फिर भी वास्तविकता यह थी कि कांग्रेस के भीतर उनकी भूमिका निश्चयात्मक रूप से कम महत्वपूर्ण होती जा रही थी। कांग्रेस की कार्यवाहियाँ फीकी पड़ती जा रही थीं। नरमदल और गरमदल के बीच सन् 1916 में हुए समझौते के बाद नरमदल, स्वतन्त्रता आंदोलन से दूर हटता चला गया और उसकी इसमें मुख्य भूमिका क्षीण होती चली गई।

सरकार राजनैतिक रूप से सक्रिय हिन्दू और मुसलमानों में दूरी बढ़ाने में भी सफल नहीं हुई हालाँकि इस विषय में विभिन्न इतिहासकारों के विचार भिन्न-भिन्न हैं। मुसलमानों को महत्ता प्रदान किए जाने और पृथक निर्वाचक मंडल दिए जाने के सिद्धान्त को लागू किए जाने का जो अविलम्ब परिणाम था उसने सरकार की आशाओ पर पानी फेर दिया। एक ऐसी संस्था में जहाँ विभिन्न वर्गों को ज़रूरत से ज्यादा सावधानी से छाँट कर एक दूसरे के प्रति संतुलन के रूप में कार्य करने के उद्देश्य से रखा गया हो, यह स्वाभाविक था कि कुछ सदस्य सरकार का समर्थन करते। परन्तु सदस्यों द्वारा सदन में किए गए व्यवहार से यह प्रदर्शित हुआ कि शायद ही किसी मामले में उन्होंने ऐक्ट के निर्माताओं के उद्देश्यों के अनुरूप कार्य किया हो। उन्होंने साथ-साथ मिलकर वोट देने की प्रवृत्ति दिखाई, खासकर ऐसे विषयों में वे एकमत रहे जिनपर कुछ समय से देश में व्यापक रूप से बहस चल रही थी। यह बात भारत के लिए आर्थिक स्वायत्तता, रेलवे पर राज्य का नियंत्रण, कपास पर आबकारी कर की समाप्ति, बंधुआ मज़दूरी के रूप में उत्प्रवास का उन्मूलन तथा शिक्षा पर अधिक व्यय के मामलों में दिखाई दी। वास्तव में इन मामलों पर बहस ने जनता और एक विदेशी सरकार के आपसी हितों के टकराव को उजागर किया। यह बात सही है कि सरकार ने इन प्रस्तावों को केंद्र में सरकारी सदस्यों के बहुमत के बल पर और प्रांतों में सरकारी सदस्यो और नामजद गैर सरकारी सदस्यों के समर्थन के सहारे, नामंज़ूर कर दिया। लेकिन विधान सभाओं में हुई इन बहसों ने महत्वपूर्ण कार्य किया। बिलों और प्रस्तावों पर की गई बहस में सदस्यों ने अकाट्य तर्क प्रस्तुत किए जिन्होंने अक्सर सरकारी सदस्यों को परेशानी में डाल दिया। प्रेस

के द्वारा इन तर्कों को देश के कोने-कोने में पहुँचाया गया। इस प्रकार इन बहसों ने अंग्रेज़ी राज की नैतिक आधारशिला को कमज़ोर किया।

हालांकि मुसलमानों को महत्त्व और पृथक निर्वाचक मंडल प्रदान किए जाने का निर्णय, आगे चलकर साम्राज्यवादी रणनीति की एक बेहतर चाल साबित हुई। एक बार जब धर्म को राजनीति में शामिल कर लिया गया तो धार्मिक हितों के आधार पर राजनैतिक कार्यक्रमों को स्वतः मान्यता मिल गई और लोगों की धार्मिक भावनाओं को उभार कर चुनाव जीतना और अपनी राजनैतिक महत्ता बनाए रखना एक आम बात हो गई।

**बोध प्रश्न 2**

1 1909 के तथाकथित संवैधानिक सुधारों को लागू करने के सरकार के दो उद्देश्य क्या थे?

.....................................................................

.....................................................................

.....................................................................

.....................................................................

.....................................................................

.....................................................................

2 मोर्ले-मिन्टो सुधार की ओर ले जाने वाली परिस्थितियों की विवेचना करें। लगभग पाँच पंक्तियों में अपना उत्तर लिखिए।

.....................................................................

.....................................................................

.....................................................................

.....................................................................

.....................................................................

3 मोर्ले-मिन्टो सुधार की मुख्य विशेषताएँ क्या थीं? लगभग 10 पंक्तियों में अपना उत्तर दीजिए।

.....................................................................

.....................................................................

.....................................................................

.....................................................................

.....................................................................

.....................................................................

.....................................................................

.....................................................................

.....................................................................

.....................................................................

## 17.5 मोंटेग्यू-चेम्सफ़ोर्ड सुधार

1916 तक भारत और ब्रिटेन के लगभग सारे महत्वपूर्ण राजनैतिक दल यह सोचने लगे थे कि सरकार की संरचना में कुछ परिवर्तन आवश्यक है। इस समय तक भारतीयों की

आकांक्षाएं भी बढ़ चुकी थीं। विश्व युद्ध के दौरान भारत में राजनैतिक दबाव के कारण तथा भारतीय सहयोग को जीतने की इच्छा के परिणामस्वरूप, ब्रिटिश सरकार ने भारत में मोंटेग्यू-चेम्सफोर्ड सुधार की शुरुआत की।

### 17.5.1 मोंटेग्यू-चेम्सफ़ोर्ड सुधार की ओर ले जाने वाली परिस्थितियाँ

मोर्ले और मिन्टो शायद ही यह कल्पना कर सकते थे कि जिन संवैधानिक सुधारों को, उन्होंने विभिन्न स्तरों पर साढ़े तीन साल के श्रमसाध्य विचार विमर्श के उपरान्त साकार रूप दिया था, वे सात वर्ष के उपरान्त ही किसी को भी संतुष्ट करने में असफल सिद्ध होंगे। सन् 1916 तक भारत के सभी राजनैतिक दलों ने, यहाँ तक कि ब्रिटेन के भी सभी राजनैतिक दलों ने यह महसूस कर लिया कि भारत सरकार की संरचना में कुछ परिवर्तन आवश्यक है। यह मुख्यत:, अगस्त 1914 में विश्व युद्ध छिड़ने से उत्पन्न परिस्थितियों का परिणाम था। युद्ध से भारत की सुरक्षा पर तत्काल कोई संकट नहीं आया था। चूँकि भारत ब्रिटिश साम्राज्य का एक अंग था इसलिए स्वत: भारत को भी इसमें शामिल कर लिया गया था। इसके पश्चात् भारत ने युद्ध में अंग्रेजों की ओर से जन, धन तथा रसद के रूप में हर संभव योगदान दिया। चूँकि भारत ने ऐसे संकट के समय में ब्रिटिश साम्राज्य की सहायता की थी, इसलिए भारतीयों की अपेक्षाएँ बढ़ चली थीं। ऐसा नहीं था कि वे अपने शासक को सेवाएँ प्रदान करने का इनाम चाहते थे। वास्तव में यूरोपीय सैनिकों के साथ कन्धे से कन्धा मिलाकर लड़ने से भारतीयों में एक नया आत्मविश्वास उपजा था। वे चाहते थे कि अपना शासन उन्हें खुद चलाने का अवसर देकर उनकी योग्यता को मान्यता प्रदान की जाये। इन आकांक्षाओं को विश्व युद्ध के दौरान विकसित आदर्शों ने नया बल प्रदान किया। अमरीका के राष्ट्रपति वुडरो विल्सन ने कहा था कि यह युद्ध विश्व में लोकतंत्र की रक्षा के लिए लड़ा जा रहा था। एक आशा बंधी कि, इस कथन का यह आशय अवश्य होगा कि, भारत स्वशासन के मार्ग की ओर अग्रसर होगा।

बढ़ती हुई आकांक्षाओं की इस पृष्ठभूमि में संवैधानिक सुधारों की अनेक योजनाएँ सुझाई गई। स्वयं भारतीयों ने अनेक योजनाएँ पेश कीं। इनमें सबसे महत्वपूर्ण योजना वह थी जो लखनऊ में सन् 1916 के कांग्रेस-मुस्लिम लीग के संयुक्त अधिवेशन में प्रस्तुत की गई थी। इसके महत्व को जानने के लिए यह जरूरी है कि हम कुछ पीछे जायें। जैसा कि पहले कहा जा चुका है, कि मोर्ले-मिन्टो सुधारों के बाद मुसलमान सरकार के समर्थक नहीं बने, बल्कि वास्तविकता यह थी कि शासक वर्ग और प्रजा के बीच की खाई और भी गहरी हो गई थी। इसके लिए कई बातें ज़िम्मेदार थीं। सन् 1911 में बंगाल विभाजन रद्द कर दिया गया था। इससे मुसलमानों का सम्भ्रांत राजनैतिक दल नाराज़ हो गया था। सन् 1912 में लार्ड हार्डिंग की सरकार ने अलीगढ़ में विश्वविद्यालय की स्थापना के प्रस्ताव को नामंज़ूर कर दिया था। सन् 1913 में कानपुर में उस समय दंगा हो गया जब मस्जिद से लगे हुए एक चबूतरे को तोड़ा गया। भारत से बाहर, ब्रिटेन ने इटली और बालकन युद्धों में तुर्की की सहायता करने से इंकार कर दिया था। धीरे-धीरे मुहम्मद अली, शौकत अली, हसरत मोहानी और फ़ज़लुलहक़ जैसे प्रगतिशील और उदार व्यक्तियों के नेतृत्व में, मुस्लिम लीग ने, भारतीय परिस्थितियों के अनुरूप, अपना लक्ष्य–"भारत के लिए स्वशासन" मान लिया। मुसलमान विश्व युद्ध की परिस्थितियों के कारण उत्पन्न आकांक्षाओं से अछूते नहीं रह सकते थे। मुस्लिम लीग ने भारत की भावी सरकार की योजना बनाने के लिए कांग्रेस से गठबंधन किया। इसी समय श्रीमती एनी बेसेंट ने, जो कि अब तक सिर्फ़ धार्मिक क्षेत्र तक अपना कार्यक्रम सीमित किए हुए थीं, होमरूल लीग या होमरूल आंदोलन प्रारंभ किया। तिलक सन् 1914 में जेल से छूटे थे। उन्होंने पूना में एक अन्य होमरूल लीग की स्थापना की। युद्ध के बाद इन दोनों लीगों ने बड़े उत्साह से भारत के लिए होमरूल या स्वशासन प्रदान किए जाने की माँग का गोष्ठियों, देश में भ्रमण करके दिए गए भाषणों, तथा बड़े पैमाने पर ज्ञापनों की बिक्री कर प्रचार किया। इन दोनों लीगों की गतिविधियों ने सरकारी खेमे में हलचल मचा दी। यहाँ यह बात उल्लेखनीय है कि गवर्नर जनरल चेम्सफ़ोर्ड ने भारत सचिव से सरकारी नीति के विषय में एक आम वक्तव्य प्रसारित करने की माँग की। उसने होमरूल आंदोलन का उल्लेख किया और साथ ही साथ रूस में ज़ार के शासन का तख्ता पलट दिए जाने का भारतीय राजनीति पर पड़ने वाले असर का भी ज़िक्र किया। इसी बीच, लखनऊ में नरमदल, गरमदल, होमरूल आंदोलनकारी और मुस्लिम लीग एक जुट हुए और उन्होंने

सर्वसम्मति से एक समझौता किया जिसे लखनऊ समझौते (दिसम्बर 1916) के रूप में जाना जाता है। उन्होंने एक साथ मिलकर संवैधानिक सुधारों की एक योजना भी तैयार की। अंग्रेज़ों में एक प्रभावशाली दल ने जो कि अपने को "राउण्ड टेबिल" कहता था (इस वर्ग का यह दृष्टिकोण था कि सभी विवादों को मिल बैठकर हल किया जाना चाहिए), सरकार की संरचना के मुद्दे को उठाया। इसके सदस्यों (लियोनेल कर्टिस, विलियम ड्यूक आदि) ने यह अनुभव किया कि बिना कोई प्रशासनिक उत्तरदायित्व प्रदान किए हुए, विधान परिषदों में चुने हुए प्रतिनिधियों का बहुमत स्थापित करने से निरंतर विरोध की स्थिति उत्पन्न होगी। इसलिए उन्होंने प्रांतों में द्वैध शासन (Dyarchy) स्थापित किए जाने का प्रस्ताव रखा। "डाइआर्की" शब्द ग्रीक मूल का है और इसका शाब्दिक अर्थ है—एक ऐसी सरकार जिसमें सर्वोच्च शक्ति संयुक्त रूप से, दो व्यक्तियों, या दो राज्यों या दो संस्थाओं को प्रदान की गई हो।

इस पृष्ठभूमि में जब कि भारत सरकार से युद्ध कोश में दस लाख पौंड का योगदान माँगा गया, तो यह अनुभव किया गया कि जनमत को संतुष्ट करने के लिए कुछ कदम उठाने पड़ेंगे। सरकार को अपने खर्चे के लिए भी अतिरिक्त राजस्व की नितांत आवश्यकता थी। अंततः इसे आयात पर तटकर लगाने की अनुमति मिल गई। सूती कपड़े पर साढ़े सात प्रतिशत आयात कर लगा दिया गया जबकि आबकारी कर को साढ़े तीन प्रतिशत पर बरकरार रखा गया। इस कर को मुख्य रूप से आर्थिक कारणों से लगाया गया था। लेकिन इसने भारतीय कपड़ा उद्योग को कुछ संरक्षण प्रदान किया और इस तरह एक सीमा तक, भारतीय नेताओं की दीर्घकाल से की जाती रही माँग को स्वीकार कर लिया गया। यह भी निर्णय लिया गया कि ब्रिटिश सरकार को भारत में अपने संभावित लक्ष्य के विषय में भी एक वक्तव्य जारी करना चाहिए।

यह अनुभव किया गया कि थोड़ा-थोड़ा देने की या अनुमानित विकास संबंधी योजनाएँ अब भारतीयों को स्वीकार्य नहीं हैं। केवल अपने लक्ष्य की घोषणा करने में पहल करके ही अंग्रेज़ स्थिति पर नियंत्रण पा सकते हैं।

भारतीयों को अधिक राजनैतिक शक्ति और उत्तरदायित्व प्रदान किए जाने की नीति मुख्य रूप से भारत में राजनैतिक दबाव के कारण अपनाई गई थी। यह भारतीयों का समर्थन प्राप्त करने की एक युक्ति थी। इन्हीं परिस्थितियों में 20 अगस्त, 1917 को लॉर्ड मोन्टेग्यू ने जो कि भारत के सचिव थे, ब्रिटिश संसद में निम्न वक्तव्य दिया:

> "महामहिम की सरकार की यह नीति है कि····प्रशासन की हर शाखा में भारतीयों का संयोजन बढ़ता जाये और स्वायत शासित संस्थाओं का इस बात को ध्यान में रखकर विकास किया जाये कि ब्रिटिश साम्राज्य के अविभाज्य अंग के रूप में भारत में उत्तरदायी शासन की स्थापना करना सरकार का लक्ष्य है।"

इस घोषणा में यह भी स्पष्ट कर दिया गया कि इस लक्ष्य की प्राप्ति के लिए जो प्रगति होगी वह क्रमिक चरणों में होगी और इस दिशा में प्रभावशाली कदम तुरंत उठाए जाएँगे। इस विषय में कब और कितनी प्रगति होगी, इसका निर्णय ब्रिटिश संसद द्वारा लिया जाएगा। इस प्रकार के मामलों में संसद का निर्णय भारतीयों द्वारा कार्यकुशलता के प्रदर्शन के आधार पर संचालित होना था। मोंटेग्यू ने स्वयं भारत आने और संवैधानिक परिवर्तन की एक योजना तैयार करने का निश्चय किया। नवंबर 1917 में, लॉर्ड मोन्टेग्यू भारत आए और उन्होंने वाइसरॉय लॉर्ड चेम्सफ़ोर्ड, केंद्रीय तथा प्रांतीय सरकारों के अधिकारियों तथा भारतीय नेताओं के साथ विचार विमर्श किया। इन विचार विमर्शों के आधार पर भारतीय संवैधानिक सुधारों पर एक रिपोर्ट प्रकाशित की गई जिसे मोंटेग्यू-चेम्सफ़ोर्ड रिपोर्ट या सिर्फ़ मोन्टफ़ोर्ड रिपोर्ट (जुलाई 1918) कहा गया। कुल मिलाकर अगस्त 1917 की घोषणा का भारत में स्वागत ही हुआ। लेकिन जो योजना इस रिपोर्ट में पेश की गई उसे नरमदल के कुछ नेताओं को छोड़कर, शेष भारतीय नेताओं ने अपनी आशाओं से बहुत कम पाया। श्रीमती एनी बेसेंट ने इस प्रावधान को कि सत्ता हस्तांतरण धीरे-धीरे किया जाये, अंग्रेज़ों द्वारा दिए जाने के, और भारतीयों द्वारा स्वीकार किए जाने के, सर्वथा अयोग्य मानकर अस्वीकृत कर दिया।

बबंई में अगस्त 1918 में इस रिपोर्ट पर विचार करने के लिए कांग्रेस का विशेष अधिवेशन बुलाया गया। इस अधिवेशन में इस योजना को अपर्याप्त, असंतोषजनक, और निराशापूर्ण बताते हुए इसकी भर्त्सना का एक प्रस्ताव पारित किया गया।

दूसरी ओर नरमदल के नेता यह मान चुके थे कि यह प्रस्ताव विद्यमान परिस्थितियों की तुलना में काफी हद तक प्रगतिशील है और इसमें निहित सदविचारों का सम्मान करना चाहिए। मोंटेग्यू जो कि इस काल में अपनी योजना के लिए समर्थकों की तलाश में थे, ने अपनी डायरी में लिखा:

"सरकार की हर संभव मदद से, हमारे प्रस्तावों के प्रचार हेतु, भारतीयों का एक नया संगठन बनाया जाएगा और हमारी मदद करने के लिए शिष्ट मंडल इंग्लैंड भेजा जाएगा।" नरमदल ने बंबई के कांग्रेस अधिवेशन में भाग नहीं लिया और नवंबर, 1918 में बंबई में ही वे ऑल इंडिया कान्फ्रेंस में सम्मिलित हुए। अपने अध्यक्षीय भाषण में सुरेन्द्रनाथ बनर्जी ने अपने दल की इस प्रकार व्याख्या की – "सुधारों का मित्र और क्रांति का शत्रु।" मई, 1919 में सुरेन्द्रनाथ बनर्जी ने संयुक्त संसदीय समिति (ज्वाइंट पार्लियामेंटरी कमेटी) के समक्ष गवाही देने के लिए इंग्लैंड भेजे गए भारतीय शिष्ट मंडल का नेतृत्व किया। मोन्टफोर्ड रिपोर्ट के आधार पर ही गवर्नमेंट ऑफ इंडिया बिल तैयार किया गया और फिर उसे ब्रिटिश संसद में पेश किया गया। यह दिसम्बर, 1919 में ऐक्ट बन गया। इस ऐक्ट की प्रस्तावना अगस्त, 1917 की घोषणा पर आधारित थी।

## 17.5.2 केंद्रीय सरकार में परिवर्तन

मुख्य प्रशासनिक सत्ता गवर्नर जनरल के ही पास रही जो कि भारत सचिव के माध्यम से (न कि भारतीय विधान परिषद् के माध्यम से) ब्रिटिश संसद के प्रति उत्तरदायी था। गवर्नर जनरल की कार्यकारिणी का गठन किंचित परिवर्तन के साथ किया गया जबकि भारतीय विधान सभा के संगठन में काफी परिवर्तन किए गए। लेकिन यह स्पष्ट कर दिया गया कि इसका लक्ष्य, सदन की शक्ति में वृद्धि करना नहीं है बल्कि इसे और अधिक प्रतिनिधित्वपूर्ण बनाना और सरकार पर प्रभाव डालने के और अवसर प्रदान करना है।

प्रशासन की हर शाखा में भारतीयों के बढ़ते हुए संयोजन की नीति को कार्यान्वित करने के लिए, यह व्यवस्था की गई कि गवर्नर जनरल की कार्यकारिणी परिषद् के कुल छह सदस्यों में से तीन भारतीय होंगे। हालाँकि यह उल्लेखनीय है कि इन सदस्यों को अपेक्षाकृत कम महत्वपूर्ण विभाग यथा कानून, शिक्षा, श्रम, स्वास्थ्य या उद्योग दिए गए। वे गवर्नर जनरल के प्रति जवाबदेह थे और उसके माध्यम से भारत सचिव को, न कि भारतीय विधान सभा (या परिषद्) को।

ऐक्ट ने केंद्र में द्विसदनीय विधान सभा की व्यवस्था की। ये दो सदन थे काउंसिल ऑफ स्टेट तथा लेजिसलेटिव एसेम्बली। काउंसिल ऑफ स्टेट में कुल 60 सदस्य थे जिनमें से कम-से-कम 33 निर्वाचित सदस्य होने थे। मनोनीत सदस्यों में से अधिक से अधिक 20 सरकारी हो सकते थे। लेजिसलेटिव एसेम्बली के कुल 145 सदस्यों में से 104 निर्वाचित सदस्य होने थे, 30 का चुनाव मुसलमानों में से, 2 का चुनाव सिक्खों में से, 7 का चुनाव ज़मींदारों में से, 9 का यूरोपियों में से तथा 4 का इंडियन कॉमर्शियल कम्युनिटी, अर्थात् भारतीय व्यापारिक संघ में से होना था। सांप्रदायिक निर्वाचक मंडल में सिक्खों को भी शामिल कर लिया गया था। यह उल्लेखनीय है कि प्रान्तों में इन स्थानों का वितरण उनकी जनसंख्या के आधार पर नहीं बल्कि उनके तथाकथित महत्व पर आधारित था। सदन का कार्यकाल तीन वर्ष का था परन्तु इसे गवर्नर जनरल द्वारा बढ़ाया जा सकता था।

विधान सभा की शक्तियाँ और कार्य करीब-करीब पहले की तरह ही रहे। केवल एक महत्वपूर्ण परिवर्तन यह हुआ कि प्रांतीय तालिका में उल्लिखित विषयों पर किसी विधेयक को प्रस्तुत करने के लिए गवर्नर जनरल की पूर्व स्वीकृति आवश्यक कर दी गई। गवर्नर ज़नरल की शक्ति का विस्तार किया गया। किसी भी विधेयक पर निषेधाधिकार का प्रयोग करने के अतिरिक्त गवर्नर जनरल को प्रमाणित करने की शक्ति (पॉवर ऑफ सर्टीफिकेशन) भी थी, अर्थात् वह किसी भी ऐसे विधेयक को कानून बना सकता था जो उसकी दृष्टि में आवश्यक था, भले ही उसे सदन ने नामंजूर कर दिया हो। वह ऐसा यह प्रमाणित करके कर सकता था कि यह विधेयक ब्रिटिश भारत की या उसके किसी भाग की सुरक्षा, शांति या हितों के लिए अत्यावश्यक है। सवाल पूछने के कार्यक्षेत्र को बढ़ाया गया और सभी सदस्यों को पूरक प्रश्न करने का अधिकार प्रदान कर दिया गया।

मोंटफोर्ड योजना के अंतर्गत प्रांतों में आंशिक रूप से उत्तरदायी सरकार बनाई गई। इसके कारण केंद्रीय और प्रांतीय सरकारों के कार्यक्षेत्रों का सीमा निर्धारण आवश्यक हो गया। इसलिए दो तालिकाएँ तैयार की गईं। यह विभाजन इस आधार पर किया गया कि जो विषय पूरे भारत से सम्बद्ध हैं या एक से अधिक प्रान्त से सम्बद्ध हैं उन्हें केंद्रीय तालिका में रखा जाना चाहिए जबकि उन विषयों को जोकि केवल प्रान्तों से सम्बद्ध हैं उन्हें प्रांतीय तालिका में रखा जाना चाहिए।

केंद्रीय विषयों में विदेश तथा राजनैतिक सम्बन्ध, सार्वजनिक ऋण, तटकर, सीमाशुल्क, राजकीय एकाधिकार पत्र, मुद्रा, संचार आदि सम्मिलित थे। प्रांतीय तालिका में स्थानीय स्वायत्त संस्थाएँ, स्वास्थ्य, सफ़ाई, शिक्षा, सार्वजनिक कार्य, कृषि, वन, कानून, शांति व्यवस्था आदि विषय थे। शेष शक्तियाँ गवर्नर जनरल-इन काउंसिल में सन्निहित थीं।

यह अनुभव किया गया कि भारतीयों को आंशिक उत्तरदायित्व दिया जाना भी तभी सार्थक हो सकता है जबकि प्रांतीय विकास के लिए प्रांत भारत सरकार पर आश्रित न हों। इसलिए इस ऐक्ट में केंद्रीय और प्रांतीय सरकारों के लिए पृथक-पृथक राजस्व स्रोतों की व्यवस्था की गई।

## 17.5.3 प्रांतीय सरकारों में परिवर्तन

गवर्नमेंट ऑफ इंडिया ऐक्ट 1919 के अंतर्गत प्रांतों में सरकार के कुछ कार्य भारतीयों को हस्तांतरित किए गए जबकि शेष ब्रिटिश नियंत्रण में सुरक्षित रखे गए। इस विभाजन के अधीन विषयों को दो समान भागों – "सुरक्षित" तथा "हस्तांतरित" में विभाजित किया गया। इसी के अनुरूप प्रांतीय सरकार भी दो समान भागों को मिलाकर गठित की गई थी। गवर्नर तथा उसकी कार्यकारिणी परिषद् के सदस्यों को सुरक्षित विषयों का प्रशासन करना था। हस्तांतरित विषयों को गवर्नर को मंत्रियों के साथ मिलकर प्रशासित करना था। प्रान्तों में प्रशासनिक शक्तियों का यह अभिनव वितरण द्वैध शासन के रूप में जाना गया। सरकार के दो पक्षों में एक दूसरे से संगठन के विषय में गवर्नर तथा विधान परिषद् के साथ उनके संवैधानिक सम्बन्धों के विषय में स्पष्ट रूप से अन्तर कर दिया गया।

मोटे तौर पर कहा जाये तो चार विषय, अर्थात् स्थानीय स्वायत्त शासन, स्वास्थ्य, शिक्षा तथा कृषि से संबन्धित कुछ विषय हस्तांतरित विषयों में शामिल किए गए। शेष सभी विषय सुरक्षित विषय थे। इनमें पुलिस, न्याय, छापेखानों पर नियंत्रण, सिंचाई, भू-राजस्व, कारखाने आदि विषय सम्मिलित थे।

गवर्नर और कार्यकारिणी के सदस्य ब्रिटिश सरकार द्वारा नियुक्त किए जाते थे, और वे गवर्नर जनरल तथा भारत सचिव के प्रति संयुक्त रूप से उत्तरदायी होते थे। कार्यकारिणी पार्षदों की संख्या 4 से अधिक नहीं होती थी। मंत्रीगण जिनको कि हस्तांतरित विषय सौंपे गये थे, गवर्नर द्वारा नियुक्त किए गए। गवर्नर आमतौर पर मंत्रियों को विधान सभा के प्रमुख निर्वाचित सदस्यों में से ही चुनते थे। व्यवहार में, प्रत्येक प्रान्त में दो या तीन मंत्री होते थे। नियमानुसार मंत्रीगणों का कार्यकाल गवर्नर की इच्छा पर निर्भर था लेकिन व्यवहार में वे अपने पद पर तब तक बने रहते थे जब तक उन्हें विधान सभा का विश्वास प्राप्त रहता था। प्रांतीय गवर्नरों तथा मंत्रियों के मध्य सम्बन्ध का आधार निर्देशन लेखपत्र था जो कि गवर्नरों को जारी किया गया था और जिसमें कहा गया था: "किसी मंत्री की राय पर विचार करते समय और उसकी राय से असहमत होने के औचित्य और अनौचित्य पर विचार करते समय आपको उस मंत्री और विधान सभा से उसके सम्बन्धों तथा जनमत का (जो कि विधान सभा में लोगों द्वारा चुने गए प्रतिनिधियों द्वारा व्यक्त है) ध्यान रखना पड़ेगा।"

इस निर्देशन लेखपत्र में गवर्नर के विशिष्ट उत्तरदायित्व की व्याख्या भी की गई थी जिसमें उसे मंत्रियों द्वारा लिए गए निर्णयों को अस्वीकार करने की विस्तृत शक्ति दी गई थी। यह विचार कि मंत्रीगण अपने कार्यों के लिए संयुक्त रूप से उत्तरदायी हों, उस समय बहस का विषय तो बना परन्तु अंततः इस सिद्धान्त का पालन करना अनिवार्य नहीं बनाया गया।

गवर्नमेंट ऑफ इंडिया ऐक्ट मूलतः आठ प्रान्तों, मद्रास, बंबई, बंगाल, संयुक्त प्रांत, पंजाब बिहार और उड़ीसा, मध्यप्रान्त और आसाम में लागू किया गया। सन् 1923 में इसकी

व्यवस्थाओं का विस्तार बर्मा और कुछ समय बाद उत्तर पश्चिम सीमा प्रांत तक भी कर दिया गया।

इन सभी प्रान्तों में एक सदनी विधान सभा का, जिसे लेजिसलेटिव काउंसिल कहा जाता था, निर्माण किया गया। इसमें गवर्नर की कार्यकारिणी, निर्वाचित सदस्य और मनोनीत सदस्य होते थे। यह भी व्यवस्था की गई कि काउंसिल के कम-से-कम 70 प्रतिशत सदस्य निर्वाचित हों और सरकारी सदस्य अधिक-से-अधिक 20 प्रतिशत। इन विधान सभाओं का आकार काफ़ी बढ़ा दिया गया और यह एक प्रांत से दूसरे प्रान्त में भिन्न-भिन्न था। अधिकतम सदस्य, बंगाल में कुल 140 थे तथा न्यूनतम, आसाम में कुल 53 थे।

निर्वाचित सदस्यों को सीधे चुनाव द्वारा चुना जाता था, अर्थात् प्राथमिक मतदाता ही सदस्यों को चुनते थे। मताधिकार मुख्य रूप से सम्पत्ति विषयक योग्यता पर आधारित था। सन् 1920 में कुल 24 करोड़ 17 लाख जनसंख्या में से केवल 53 लाख लोगों को अर्थात् 5 प्रतिशत (वयस्कों) से भी कम लोगों को मताधिकार मिला। महिलाओं को मताधिकार या चुनाव में खड़े होने का अधिकार प्रदान नहीं किया गया। मै यहाँ आपका ध्यान इस तथ्य की ओर आकृष्ट करना चाहता हूँ कि ब्रिटेन में भी 1918 में महिलाओं को मताधिकार दिया गया था।

पृथक निर्वाचक मंडल के सवाल की जाँच करके मोंटेग्यू-चेम्सफ़ोर्ड रिपोर्ट के समीक्षकों ने यह निष्कर्ष निकाला कि वे आत्मशासन या स्वशासन सिद्धान्त के विकास में गम्भीर बाधा हैं। उन्होंने इन निर्वाचक मंडलों को इतिहास से मिलने वाली शिक्षा के विरुद्ध बताया और यह भी कहा कि इनसे वर्ग विभाजन चिरस्थायी हो जाता है तथा विद्यमान सम्बन्धों में जड़ता आ जाती है। फिर भी उन्होंने इस पृथक निर्वाचक मंडल के उन्मूलन की संस्तुति नहीं की और उन्होंने इसे पंजाब में सिक्खों के लिए भी लागू कर दिया। बाद में जस्टिस पार्टी की गैर ब्राह्मणों के लिए स्थानों के आरक्षण की माँग को भी स्वीकार कर लिया गया। भारतीय ईसाइयों, एंग्लों इंडियनों और यूरोपीयों को भी पृथक निर्वाचक मंडल प्रदान कर दिया गया।

### 17.5.4 मोंटेग्यू-चेम्सफ़ोर्ड सुधार पर विचार

द्वैध शासन की संपूर्ण धारणा एक गलत सिद्धांत पर आधारित थी। किसी राज्य या सरकार के कार्यों को दो सर्वथा पृथक (एक दूसरे से पूर्ण स्वतंत्र) खंडों में विभाजित कर पाना बहुत कठिन है। इस तर्कहीन विभाजन से समस्या और भी जटिल हो गई। जबकि कृषि हस्तांतरित विषय था, भू-राजस्व और सिंचाई सुरक्षित विषय थे। सी.वी. चिंतामणि ने जो संयुक्त प्रांत में एक मंत्री थे, एक दिलचस्प मामले का हवाला दिया है। सन् 1921 में कृषि विभाग में कृषि भूमि के विखण्डन के प्रश्न पर जाँच पड़ताल शुरू हुई। जब सन् 1922 में रिपोर्ट पेश की गई तो यह अनुभव किया गया कि इस प्रश्न को राजस्व विभाग को देखना चाहिए था अतः गवर्नर ने इस मामले को इस सुरक्षित विभाग को सौंप दिया। सन् 1924 में फिर यह पाया गया कि इस कार्य का एक अंश सहकारिता विभाग द्वारा किया जाना चाहिए। इसी प्रकार यूरोपीयों और एंग्लों इंडियनों की शिक्षा, शिक्षा मंत्री के अधिकार क्षेत्र से बाहर थी।

इस प्रकार की पद्धति तभी कारगर हो सकती थी जब दोनों ही भागों में परस्पर विश्वास होता। जबकि मंत्रीगण अपने देशवासियों के हितार्थ थे, तो कार्यकारिणी के सदस्य और सामान्यतः सिविल सेवाओं के सदस्य ब्रिटिश साम्राज्यवादी हितों के रक्षार्थ थे। हस्तांतरित विभागों में भी मंत्रियों का सिविल सेवाओं के अधिकारियों पर कोई नियंत्रण नहीं था। विभागों के सचिवों की गवर्नर तक सीधी पहुँच थी जिसकी वजह से मंत्रियों की स्थिति प्रतिकूल हो गई थी। इसके अतिरिक्त मंत्रियों को दो मालिकों को खुश करना पड़ता था। उसकी नियुक्ति गवर्नर के द्वारा की जाती थी जो उन्हें बर्खास्त भी कर सकता था लेकिन वे विधान सभा के प्रति भी जवाबदेह थे। इनमें सबसे प्रमुख बात यह थी कि तथाकथित राष्ट्र निर्माण के विभाग जो कि मंत्रियों को सौंपे गए थे, वे तभी कुछ कारगुजारी दिखा सकते थे जबकि उन्हें धन उपलब्ध हो। मंत्रियों ने यह शिकायत की कि हस्तांतरित विषयों की ज़रूरतों पर विचार-विमर्श किए बिना ही सुरक्षित विभागों को इच्छानुसार धन प्राप्त हो जाता था।

भारत में परिस्थितियाँ, सुधार योजना का स्वागत करने के अनुकूल नहीं थी। सन् 1918-19 में अनावृष्टि और व्यापार में मंदी के फलस्वरूप जनता में असंतोष व्याप्त हुआ। रॉलट विधेयकों में से एक विधेयक मार्च, 1919 में भारतीयों के समवेत विरोध के बावजूद ऐक्ट बन गया। 6 अप्रैल 1919 को गांधी जी ने हड़ताल का आह्वान किया जो बहुत सफल रहा। 3 अप्रैल, 1919 को जलियाँवाला बाग हत्याकांड हुआ जिससे अन्य घटनाओं के साथ मिलकर सरकार और जनता के बीच का सम्बन्ध तनावपूर्ण हो गया। धीरे-धीरे सुधार योजना के प्रति विरोध ने कठोर होकर अस्वीकरण का रूप ले लिया। मुसलमान अंग्रेज़ों के, तुर्की के शासक ख़लीफ़ा के प्रति अंग्रेज़ों के कठोर रवैये से क्षुब्ध थे। उन्होंने महात्मा गांधी के नेतृत्व में खिलाफ़त आन्दोलन प्रारंभ किया। 1 अगस्त 1920 को कांग्रेस ने प्रगतिशील, अहिंसक असहयोग की नीति अपनाने का निश्चय किया। इसी के साथ चुनावों का बहिष्कार भी शुरू हुआ। ये चुनाव नवंबर 1920 में होने थे। काँग्रेस के बहिष्कार से नए संविधान को गहरी क्षति पहुँची।

सन् 1919 में लागू की गई संवैधानिक सुधार की योजना इतनी अलोकप्रिय हुई कि इसकी निंदा करना एक आम बात हो गई। फिर भी भारत में संसदीय लोकतंत्र के विकास में इसका खास महत्व है। यह उल्लेखनीय है कि सन् 1919 में जो परिवर्तन किए गए वे सन् 1916 में सुझाई गई योजनाओं से भी बहुत पिछड़े हुए थे। इसके अलावा सरकार ने संवैधानिक परिवर्तनों के लक्ष्यों की घोषणा कर दी थी इसलिए वादे से फिर जाना नीति विरुद्ध बात थी। दूसरे शब्दों में इस घोषणा ने और अधिक रियायतों को अवश्यंभावी बना दिया था। इस ऐक्ट ने केन्द्र और प्रान्तों में निर्वाचित वैधानिक संस्थाओं का निर्माण किया। इन संस्थाओं द्वारा भारतीयों की राय निरन्तर और स्पष्ट रूप से व्यक्त हुई। इन बहसों ने राज की पक्षधर आदर्शात्मक दलीलों को और कमज़ोर बना दिया तथा तेज़ी से बढ़ती साम्राज्यवाद विरोधी भावना को और तेज कर दिया। इसी समय चुनावों और संगोष्ठियों के आयोजन से भारतीय संसदीय शब्दावली और संस्थाओं से परिचित हुए और इस प्रकार इनके आयोजन ने भारत में संसदीय लोकतंत्र के सफल कार्यान्वियन में योगदान दिया।

आगामी वर्षों में राष्ट्रीय आन्दोलन का विस्तार हुआ और किसानों, व्यापारियों और औद्योगिक श्रमिकों का एक बड़ा वर्ग इसमें सम्मिलित हुआ। यह आंशिक रूप से यद्धोपरांत आर्थिक संकट का परिणाम था और आंशिक रूप से यह विश्वव्यापी पूँजीवादी व्यवस्था के विरुद्ध छेड़े जाने वाले आंदोलन का परिणाम था जिसका विकसित राष्ट्रों में पूँजीपति विरोधी तथा उपनिवेशों में साम्राज्यवाद विरोधी स्वरूप था। इसने शिकायतों और आकांक्षाओं का ऐसा समन्वय उत्पन्न किया कि यदि उसे सही दिशा दी जा सकती तो राष्ट्रीय आन्दोलन को एक नया बल मिलता और वह विकास के उच्च शिखर पर पहुँच जाता। खिलाफ़त के प्रश्न और पंजाब में हुए ब्रिटिश दमन चक्र को लेकर जो भावना और क्रोध का ग़ुबार उठा था वह इस अपूर्व समन्वय को और भी प्रखर और गतिशील बना गया। कुछ इतिहासकारों ने सन् 1919 के सुधारों को दोहरी साम्राज्यवादी ज़रूरतों-आर्थिक अवमूल्यन तथा भारतीयों की व्यापक सहभागिता की आवश्यकता, से जोड़ा है। हालांकि, अधिक विवादास्पद वह कारण-कार्य सम्बन्ध है जिसे कुछ इतिहासकारों ने सुधारों और जन-राजनीति के उदय के बीच खोजना चाहा है। यह तर्क दिया जाता है कि सन् 1919 के ऐक्ट ने चूँकि निर्वाचक मंडल को विस्तृत किया था, अतः राजनीतिज्ञ अपेक्षाकृत अधिक लोकतांत्रिक तरीके विकसित करने के लिए बाध्य हुए। हालांकि, सुमित सरकार इस दृष्टिकोण से सहमत नहीं है। उनके अनुसार इस दृष्टिकोण से विशिष्ट प्रकार की राजनीति और राजनीतिज्ञों के कार्यों की व्याख्या तो की जा सकती है परन्तु यह युद्धोपरान्त जन जागरण की, जिसकी अभिव्यक्ति चुनावों के बहिष्कार तथा 1919 से 1922 तक हुए साम्राज्यवाद विरोधी जन आंदोलनों में हुई, व्याख्या करने में और उसके आधारभूत तत्वों को बताने में शायद ही सफल होगा।

**बोध प्रश्न 3**

1 किन बातों ने सरकार को अगस्त, 1917 की घोषणा करने के लिए प्रेरित किया? लगभग पाँच पंक्तियों में लिखिए।

.................................................................................

.................................................................................

.................................................................................

..........................................................................................

..........................................................................................

2 मोंटेग्यू-चेम्सफ़ोर्ड योजना की आधारभूत विशेषताएँ क्या थीं? लगभग 10 पंक्तियों में अपना उत्तर दीजिए।

..........................................................................................

..........................................................................................

..........................................................................................

..........................................................................................

..........................................................................................

..........................................................................................

..........................................................................................

..........................................................................................

..........................................................................................

..........................................................................................

3 द्वैध शासन की कार्य प्रणाली में कौन-कौन सी कठिनाइयाँ आईं। लगभग पाँच पंक्तियों में अपना उत्तर लिखिए।

..........................................................................................

..........................................................................................

..........................................................................................

..........................................................................................

..........................................................................................

## 17.6 सारांश

इस इकाई में हमने अंग्रेज़ों द्वारा भारत में सन् 1892 से लेकर सन् 1920 तक के काल में किए गए संवैधानिक परिवर्तनों पर विचार किया है। अंग्रेज़ों ने यह महसूस कर लिया था कि भारत में ब्रिटिश शासन की रक्षा के लिए उन्हें उन भारतीयों की, जो कि अपनी माँगों को संविधान के संकुचित दायरे में ही रखने को तैयार थे, आकांक्षाओं को संतुष्ट करना ज़रूरी हो गया था। इस दृष्टिकोण को ध्यान में रखते हुए सन् 1892 का इंडियन काउंसिल ऐक्ट पारित किया गया जिससे परिषदों का विस्तार हुआ परन्तु उनमें सरकारी बहुमत बनाए रखा गया। चुनाव सिद्धान्त (यद्यपि अप्रत्यक्ष) को लागू किया गया और परिषदों को बजट पर विचार-विमर्श करने का अधिकार प्रदान कर दिया गया।

सन् 1895 से 1906 के दौरान अनेक कारणों से ब्रिटिश सरकार के प्रति असंतोष की भावना में वृद्धि हुई। इस पृष्ठभूमि में मोर्ले-मिन्टो सुधार प्रस्तुत किए गए जिसमें अप्रत्यक्ष रूप से निर्वाचित सदस्यों की संख्या में वृद्धि हुई और पृथक निर्वाचक मंडल की प्रणाली, जिसमें हिन्दुओं और मुसलमानों को अलग-अलग प्रतिनिधित्व दिया गया, प्रचलित की गई। इसने आगे चलकर अलगाववादी प्रवृत्तियों को बढ़ावा दिया। प्रथम विश्व युद्ध से उत्पन्न परिस्थितियों ने गवर्नमेंट ऑफ इंडिया ऐक्ट, 1919 की पृष्ठभूमि तैयार की, यह ऐक्ट मोन्टेग्यू-चेम्सफ़ोर्ड सुधार के रूप में जाना जाता है। इस ऐक्ट में किया जाने वाला सबसे महत्वपूर्ण परिवर्तन द्वैध शासन था जिसके अन्तर्गत प्रान्तीय सरकारों को अपेक्षाकृत अधिक शक्तियाँ प्रदान की गई थीं लेकिन गवर्नर का वित्तीय संसाधनों पर पूर्ण नियंत्रण बना रहा जबकि मंत्रियों को सार्वजनिक स्वास्थ्य और शिक्षा आदि विभाग सौंपे गए। मंत्रीगण विधान सभा के प्रति उत्तरदायी थे पर वे गवर्नर के प्रति भी जवाबदेह थे तथा गवर्नर को उनकी

नियुक्ति तथा उन्हें अपदस्थ करने का अधिकार था। केंद्रीय सरकार का प्रांतीय सरकारों पर पूर्ण अधिकार था और विधान सभा के सदस्यों को चुनने का अधिकार बहुत कम लोगों को दिया गया था अर्थात् मताधिकार बहुत सीमित था। समय-समय पर होने वाली सुधार नीतियाँ, साम्राज्यवाद विरोधी आंदोलन जो कि भारतीय राजनीति का व्यापक अंग बन चुका था, से निपटने तथा उसके दमन की अभिव्यक्ति मात्र थी।

## 17.7 शब्दावली

**कार्यकारिणी समिति:** सरकार का वह अंग जो निर्णयों तथा आदेशों के कार्यान्वयन से सम्बन्धित हो।

**विधान सभा:** सरकार का वह अवयव जो कानून बनाता हो तथा उन्हें पारित करता हो।

**संसदीय लोकतंत्र:** एक ऐसी राजनैतिक प्रणाली जिसमें संसद में विद्यमान निर्वाचित प्रतिनिधि विधि निर्माण की सर्वोच्च सत्ता का प्रतिनिधित्व करते हों। ये प्रतिनिधि वृहत् वयस्क मताधिकार द्वारा चुने जाते हैं।

**पृथक निर्वाचन क्षेत्र:** एक ऐसी प्रणाली जिसमें मतदाता प्रतिनिधित्व के उद्देश्य से संप्रदाय या धर्म के आधार पर विभाजित किए जाएँ।

## 17.8 बोध प्रश्नों के उत्तर

**बोध प्रश्न 1**

1 i) ×
   ii) √
   iii) ×

2 आपके उत्तर में निम्न बातें सम्मिलित होनी चाहिए:
प्रशासनिक (संवैधानिक) सुधारों की राष्ट्रवादियों में बढ़ती हुई माँग, संवैधानिक सुधारों आदि द्वारा राष्ट्रवादियों को संतुष्ट करने की सरकार की नीति। देखिए उपभाग 17.3.1.

3 आपके उत्तर में निम्न बातें सम्मिलित होनी चाहिए:
परिषदों का विस्तार किया गया, चुनाव का सिद्धान्त लागू किया गया और परिषदों को बजट पर बहस करने का अधिकार प्रदान कर दिया गया।

**बोध प्रश्न 2**

1 i) राज को सुदृढ़ करने के लिए नरमदल को साम्राज्य का समर्थक बनाना
   ii) हिंदुओं और मुसलमानों में फट डालना

2 आपके उत्तर में निम्न बातें शामिल होनी चाहिए:
अंग्रेज़ नरमदल को साम्राज्य का समर्थक बनाना चाहते थे इसलिए वे नरमदल की संवैधानिक सुधारों की माँग को स्वीकार कर लेना चाहते थे। अंग्रेज़ सन् 1909 के सुधार के माध्यम से मुसलमानों को, पृथक निर्वाचक मंडल प्रदान करके अपनी ओर मिलाना चाहते थे। देखिए उपभाग 17.4.1.

3 आपके उत्तर में निम्न बातें आनी चाहिए:
परिषदों में अप्रत्यक्ष रूप से निर्वाचित सदस्यों की संख्या में वृद्धि हुई और मुसलमानों के लिए पृथक निर्वाचक मंडल की प्रणाली प्रचलित की गई। देखिए उपभाग 17.4.2 तथा 17.4.3.

**बोध प्रश्न 3**

1 आपके उत्तर में निम्न बातें सम्मिलित होनी चाहिए:
बंगाल विभाजन को रद्द करके अंग्रेज़ों ने मुसलमानों को रुष्ट कर दिया था। लखनऊ

समझौते के बाद हिन्दुओं और मुसलमानों के मध्य सहयोग एवं सद्भाव। इन तथ्यों ने अंग्रेज़ों को चिंतित कर दिया था। अंग्रेज़ युद्ध के प्रयासों में भारतीय सहयोग प्राप्त करने के लिए उसकी कीमत चुकाने को तैयार थे। देखिए उपभाग 17.5.1

2 आपके उत्तर में निम्न बातें सम्मिलित होनी चाहिए:
द्वैध शासन का प्रचलन जिसके अंतर्गत प्रांतीय सरकारों को और अधिक अधिकार प्रदान किए गए परन्तु यह सुचारू रूप से कार्य नहीं कर सका। केन्द्रीय सरकार का प्रान्तीय सरकारों पर असीमित नियंत्रण था। देखिए उपभाग 17.5.2 तथा 17.5.3.

3 आपके उत्तर में निम्न बातें सम्मिलित होनी चाहिए:
द्वैध शासन के अंतर्गत राज्य के कार्यों का एक दूसरे से पूर्ण रूपेण पृथक तथा स्वतंत्र विभागों में विभाजन पूर्णतः अप्रभावकारी सिद्ध हुआ क्योंकि मंत्रियों और कार्यकारिणी परिषद् के सदस्यों में पारस्परिक आस्था नहीं थी और उनके हित प्रायः आपस में टकराते थे। देखिए उपभाग 17.5.4.

# इकाई 18 असहयोग और ख़िलाफ़त आंदोलन, 1919-1922

## इकाई की रूपरेखा

18.0 उद्देश्य
18.1 प्रस्तावना
18.2 पृष्ठभूमि
18.3 ख़िलाफ़त की समस्या
18.4 असहयोग की ओर: कलकत्ता से नागपुर
18.5 असहयोग आन्दोलन के प्रमुख पक्ष
18.6 आंदोलन पर जनता की प्रतिक्रिया
18.7 आंदोलन का फैलाव, क्षेत्रीय विभिन्नताएँ
18.8 अंतिम चरण
18.9 आंदोलन वापिस लेने के कारण
18.10 प्रभाव
18.11 सारांश
18.12 शब्दावली
18.13 बोध प्रश्नों के उत्तर

## 18.0 उद्देश्य

यह इकाई पढ़ने के बाद आप:

- असहयोग तथा ख़िलाफ़त आंदोलनों को चलाने के कारणों को समझ पायेंगे,
- इन आंदोलनों में अपनाई गई कार्य-योजनाओं से सुपरिचित हो सकेंगे,
- इन आंदोलनों के प्रति भारतीय जनता की प्रतिक्रिया के बारे में जान पायेंगे,
- इन आंदोलनों के प्रभावों को समझ सकेंगे।

## 18.1 प्रस्तावना

सन् 1920-21 के दौरान भारतीय राष्ट्रीय आंदोलन ने एक नए दौर यानी, जन-राजनीति और जनता को लामबंद करने के दौर में प्रवेश किया। ब्रिटिश शासन का विरोध दो जन-आन्दोलनों ख़िलाफ़त तथा असहयोग, के द्वारा हुआ। अलग-अलग समस्याओं से उभरने के बावजूद दोनों आंदोलनों ने एक समान कार्य-योजना को अपनाया। अहिंसात्मक संघर्ष की तकनीक राष्ट्रीय स्तर तक अपनाई गई। इस इकाई में हम इन आन्दोलनों को चलाने के कारणों, आंदोलनों के पक्षों, जनता तथा नेतृत्व की भूमिका की चर्चा करेंगे। यह इकाई क्षेत्रीय विभिन्नताओं तथा आंदोलनों के प्रभाव का भी विश्लेषण करेगी।

## 18.2 पृष्ठभूमि

प्रथम विश्व युद्ध, रॉलट ऐक्ट, जलियाँवाला बाग हत्याकांड तथा मोंटेग्यू-चेम्सफ़ोर्ड सुधारों के प्रभाव ने इन आंदोलनों की पृष्ठभूमि तैयार की।

1 प्रथम विश्व युद्ध के बाद के समय में दैनिक जीवन की जरूरतों की चीजों के दाम तेजी से बढ़ गए थे जिससे आम जनता सबसे अधिक पीड़ित थी। आयात की मात्रा जो कि प्रथम विश्व युद्ध के दौरान घट गई थी युद्ध के अन्त तक फिर बढ़ गई। उत्पादन कम हो गया, बहुत-सी फैक्ट्रियाँ बंद हो गई तथा इन सबका स्वाभाविक शिकार मजदूर बने। किसान भी लगान तथा करों के भारी बोझ से दबे हुए थे। अतः युद्ध के बाद के सालों में देश की आर्थिक स्थिति गंभीर हो गई। राजनीति के क्षेत्र में, जब अंग्रेज़ों ने लोकतंत्र के नए युग तथा जनता के आत्म निर्णय को लाने के वायदे को पूरा नहीं किया तो राष्ट्रवादियों का मोह भंग हुआ। इसने भारतीयों की ब्रिटिश शासन विरोधी प्रवृत्ति को मजबूत बनाया।

2 इस काल की दूसरी महत्वपूर्ण एवं ऐतिहासिक घटना मार्च 1919 में रॉलट ऐक्ट का पारित होना था। इस अधिनियम ने सरकार को किसी भी व्यक्ति को बिना मुकदमा चलाये कैद रखने का अधिकार दिया। इसका आधारभूत लक्ष्य राष्ट्रवादियों को अपने बचाव का मौका दिए बिना ही कैद करना था। गांधी जी ने सत्याग्रह के द्वारा इसका विरोध करने का निर्णय लिया। मार्च व अप्रैल 1919 के महीने भारत में एक असाधारण राजनैतिक जागरूकता का समय था। रॉलट ऐक्ट के विरुद्ध हड़ताल व प्रदर्शन हुए।

3 इसी समय अमृतसर के जलियाँवाला बाग में ब्रिटिश साम्राज्यवाद की नग्न बर्बरता का भी अनुभव हुआ। 13 अप्रैल 1919 को अपने जनप्रिय नेताओं डॉ. सैफुदीन किचलू तथा डॉ. सत्यपाल की गिरफ्तारी के खिलाफ़ विरोध प्रकट करने के लिए निहत्थी मगर भारी भीड़ जलियाँवाला बाग में एकत्रित हुई थी। जलियाँवाला बाग एक बड़ा खुला हुआ स्थान था जो तीन ओर से इमारतों द्वारा घिरा हुआ था तथा उसमें एक ही निकास था। अमृतसर के कमाण्डर जनरल डायर ने अपनी सेना को उस निहत्थी भीड़ पर बिना चेतावनी दिए गोली चलाने का आदेश दे दिया। हजारों लोग मारे गए और घायल हुए। इस घटना ने पूरे विश्व को धक्का पहुँचाया। महान् कवि रवीन्द्र नाथ ठाकुर ने अंग्रेज़ों द्वारा दी गई सर की उपाधि उतार फेंकी।

4 1919 में भारत सरकार के अधिनियम के पारित होने से राष्ट्रवादियों का और भी अधिक मोह भंग हुआ। सुधार-सुझाव (इसकी चर्चा हम इकाई 17 में कर चुके हैं।) भारतीयों की अपनी सरकार की बढ़ती माँग को संतुष्ट करने में असफल रहे। ज्यादातर नेताओं ने यह कहते हुए इसकी निंदा की कि यह "निराशाजनक तथा असंतोषजनक" है।

1 खिलाफ़त और असहयोग आंदोलन की शुरुआत – एक रेखाचित्र

इन सभी विकासों ने ब्रिटिश शासन के खिलाफ लोकप्रिय जनांदोलन की पृष्ठभूमि तैयार की। ख़िलाफ़त के उद्भव ने मुसलमानों के समर्थन को इस आन्दोलन के साथ जोड़ने में मदद पहुँचाई। गाँधी जी के नेतृत्व में इसको अंतिम रूप दिया गया। अब हम ख़िलाफ़त समस्या की चर्चा करेंगे जिसने शीघ्र ही आंदोलन को पृष्ठभूमि प्रदान की।

## 18.3 ख़िलाफ़त की समस्या

प्रथम विश्व युद्ध के दौरान तुर्की ब्रिटेन के ख़िलाफ़ जर्मनी व आस्ट्रिया के साथ मिल गया था। भारतीय मुसलमान तुर्की के सुल्तान को अपने धार्मिक नेता ''ख़लीफ़ा'' के रूप में मानते थे। अतः स्वाभाविक रूप से उनकी सहानुभूति तुर्की के साथ ही थी। युद्ध के बाद ब्रिटेन ने तुर्की में ख़लीफ़ा को सत्ता से हटा दिया। इस तरह ख़लीफ़ा को पुनर्स्थापित करने के लिए भारत में मुसलमानों ने ख़िलाफ़त आंदोलन शुरू किया। उनकी मुख्य माँगें निम्न थीं:

- मुसलमानी धार्मिक स्थानों पर ख़लीफ़ा के नियंत्रण को वापिस लाया जाए।
- युद्ध के बाद के क्षेत्रीय-समझौते में ख़लीफ़ा को पर्याप्त क्षेत्र मिलने चाहिए।

1919 के शुरू में, बंबई में एक ख़िलाफ़त कमेटी बनाई गई थी। पहल मुसलमान व्यापारियों द्वारा की गई और उनकी गतिविधियाँ सभाओं, ख़लीफ़ा के पक्ष में अर्जी देने व प्रतिनिधि मंडल ले जाने, तक सीमित थीं। फिर भी जल्दी ही आंदोलन के भीतर एक जुझारू प्रवृत्ति उभरी। इस जुझारू प्रवृत्ति के नेता संयमी विचारधारा से सन्तुष्ट नहीं थे। उसके विपरीत उन्होंने देश-व्यापक आन्दोलन चलाने का प्रचार किया। दिल्ली में 22-23 नवम्बर 1919 में हुई अखिल भारतीय ख़िलाफ़त कान्फ्रेंस में उन्होंने पहली बार भारत में ब्रिटिश सरकार से असहयोग का समर्थन किया। यह वही कांफ्रेंस थी जहाँ हसरत मोहनी ने ब्रिटिश वस्तुओं का बहिष्कार करने का आह्वान किया। ख़िलाफ़त के नेतृत्वकारियों ने यह स्पष्ट रूप से बता दिया कि यदि युद्ध के बाद की शांति-शर्तें मुसलमानों के अनुकूल न हुईं तो वे सरकार से सभी प्रकार के सहयोग को बंद कर देंगे। अप्रैल 1920 में, शौकत अली ने अंग्रेज़ों को चेतावनी दी कि यदि सरकार भारतीय मुसलमानों को संतुष्ट करने में असफल रही तो, ''हम हिन्दू मुसलमानों का संयुक्त असहयोग आंदोलन शुरू करेंगे।'' इसके अतिरिक्त शौकत अली ने इस बात पर भी जोर दिया कि आंदोलन ''महात्मा गांधी जैसे व्यक्ति जिन्हें हिन्दू तथा मुसलमानों दोनों का ही आदर प्राप्त है'' के नेतृत्व में शुरू होगा।

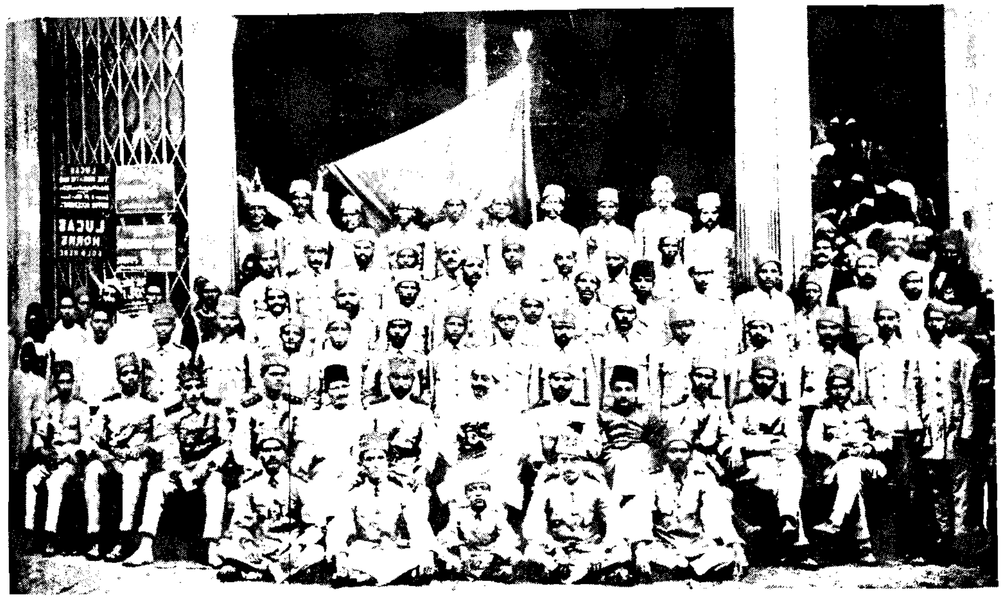

2 ख़िलाफ़त स्वयंसेवी

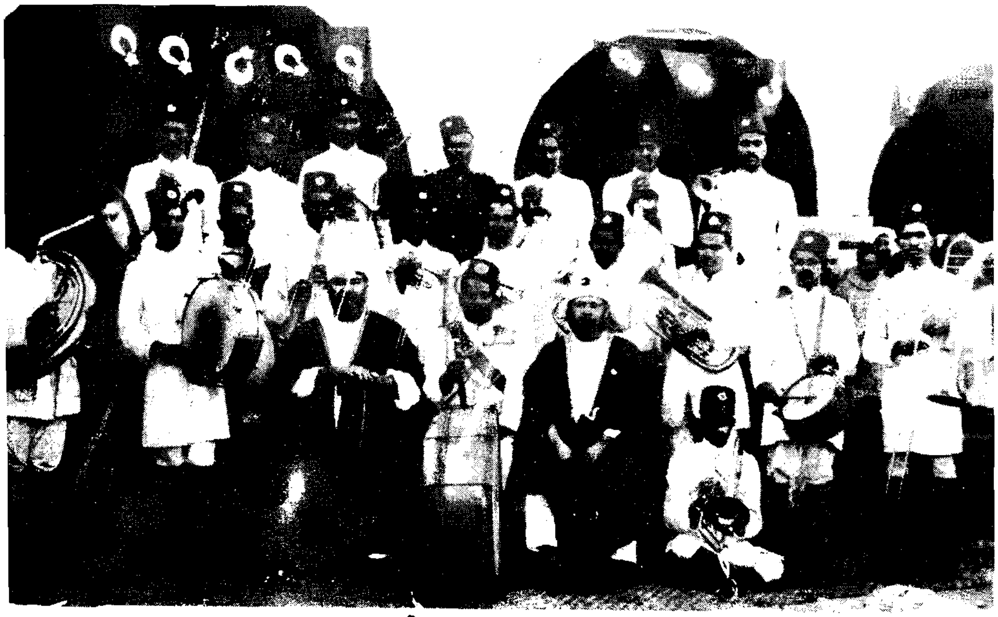

3 ख़िलाफ़त बैंड

4 मोहम्मद अली और एम.ए. अंसारी

ख़िलाफ़त की समस्या भारत की राजनीति से प्रत्यक्ष रूप से सम्बन्धित नहीं थी किन्तु ख़िलाफ़त आन्दोलन के नेता हिन्दुओं के समर्थन को प्राप्त करने के लिए उत्सुक थे। गाँधी जी ने इसमें अंग्रेज़ों के ख़िलाफ़ हिन्दू मुसलमान एकता स्थापित करने का एक मौका देखा।

किन्तु ख़िलाफ़त समस्या को अपना समर्थन देने वाले अखिल भारतीय ख़िलाफ़त समिति के अध्यक्ष होने के बावजूद, मई 1920 तक गांधी जी एक संयमी रवैया अपनाये रहे। तुर्की समझौते की शर्तों, जोकि तुर्की के प्रति बेहद कठोर थीं, के प्रकाशन तथा मई 1920 में "पंजाब अशांति" पर हंटर कमेटी की रिपोर्ट के प्रकाशन ने भारतीयों को क्रोधोन्मत कर दिया और तब गांधी जी ने एक खुला दृष्टिकोण अपनाया।

इलाहाबाद में पहली से तीसरी जून 1920 को केंद्रीय ख़िलाफ़त कमेटी की बैठक हुई। इस सभा में अनेक कांग्रेस तथा ख़िलाफ़त नेता उपस्थित हुए। इस सभा में सरकार के प्रति असहयोग के कार्यक्रम को घोषित किया गया। जिसमें निम्न बातें शामिल थीं:

- सरकार द्वारा दी गई उपाधियों का बहिष्कार,
- लोक सेवाओं, सेना तथा पुलिस यानि सभी सरकारी नौकरियों का बहिष्कार, तथा
- सरकार को करों की अदायगी न करना।

पहली अगस्त 1920 को आंदोलन शुरू करने का निश्चय किया गया। गांधी जी ने जोर दिया कि जब तक पंजाब तथा ख़िलाफ़त की गलतियों को सुधारा न जाएगा, सरकार के साथ असहयोग जारी रहेगा। चूँकि इस आंदोलन की सफलता के लिए कांग्रेस का समर्थन जरूरी था। इसीलिए अब गांधी जी का यह प्रयास था कि कांग्रेस असहयोग कार्यक्रम को अपना ले।

**बोध प्रश्न 1**

1 निम्नलिखित में से कौन-से कथन सही हैं कौन-से गलत (सही √ या गलत × का निशान लगाएँ)।

   1 प्रथम विश्व युद्ध का भारतीय अर्थव्यवस्था पर कोई प्रतिकूल प्रभाव नहीं पड़ा।

   2 रॉलट ऐक्ट प्रमुखतः भारतीय राष्ट्रवादियों को दबाने के लिए पारित किया गया था।

   3 जलियाँवाला बाग हत्याकांड ने ब्रिटिश साम्राज्यवाद के, सही चरित्र का पर्दाफाश किया।

   4 मांटेग्यू-चेम्सफोर्ड सुधारों ने भारतीय राष्ट्रवादियों की उम्मीदों को पूरा किया।

   5 गांधी जी अखिल भारतीय ख़िलाफ़त कमेटी के अध्यक्ष बने।

2 ख़िलाफ़त समस्या क्या थी?

.......................................................................................

.......................................................................................

.......................................................................................

.......................................................................................

.......................................................................................

## 18.4 असहयोग की ओर: कलकत्ता से नागपुर

गांधी जी के लिए पूरी कांग्रेस से राजनैतिक गतिविधियों के अपने कार्यक्रमों को सहमति दिलवाना कोई सरल कार्य नहीं था। प्रो० रविन्द्र कुमार के अनुसार "गांधी जी द्वारा तिलक को सत्याग्रह के सद्गुणों तथा ख़िलाफ़त के मुद्दे पर मुसलमान समुदाय के साथ मिलने के औचित्य को मनवाने के लिए काफी चेष्टा करनी पड़ी" फिर भी, तिलक को "सत्याग्रह के राजनैतिक हथियार के रूप पर संदेह था।" वह "मुसलमान नेताओं के साथ धार्मिक समस्या" पर सन्धि के पक्ष में भी नहीं थे। तिलक ने तर्क दिया कि हिंदुओं तथा मुसलमानों के बीच सहयोग का आधार लखनऊ पैक्ट (1916) की तरह धर्म निरपेक्ष होना चाहिए। तिलक इस मुद्दे पर क्या रुख अपनाते यह बहुत कुछ तिलक के दृष्टिकोण पर निर्भर था – चाहे वह विरोध में हो या पक्ष में – किन्तु ऐसा निर्णय लेने से पहले ही दुर्भाग्यवश पहली अगस्त 1920 को उनका देहांत हो गया। लाला लाजपतराय तथा सी.आर. दास ने गांधी जी के द्वारा परिषद्

चुनावों के बहिष्कार के विचार का जोरदार विरोध किया। जवाहरलाल नेहरू ने अपनी आत्मकथा में लिखा कि कांग्रेस के लगभग सभी पुराने समर्थकों ने गांधी जी के असहयोग प्रस्ताव का विरोध किया।''

फिर असहयोग तथा बहिष्कार का कार्यक्रम प्रांतीय कांग्रेस समितियों (प्रां.कां.स.) के सामने उनके विचारों को जानने के लिए रखा गया। संयुक्त प्रान्तों की प्रां.कां.स. ने एक लम्बी बहस के बाद असहयोग के सिद्धांत तथा सरकारी स्कूलों और कालेजों, सरकारी दफ्तरों व ब्रिटिश वस्तुओं के धीरे-धीरे बहिष्कार की सहमति दे दी।

बंबई प्रां.कां.स. ने असहयोग को संघर्ष के वैधानिक तरीके के रूप में स्वीकृति दे दी किन्तु इसने परिषद् के बहिष्कार पर आपत्ति की तथा पहले कदम के रूप में सिर्फ ब्रिटिश वस्तुओं के बहिष्कार की सिफारिश की। बंगाल प्रां.कां.स. ने असहयोग के सिद्धांत को स्वीकार किया किन्तु यह परिषद् के बहिष्कार से असहमत था। मद्रास प्रां.कां.स. ने असहयोग की नीति का समर्थन किया, किन्तु गांधी जी के कार्यक्रम को अस्वीकृत कर दिया।

जब गांधी जी के कार्यक्रम के प्रति भारतीय राजनीति के ''पारंपरिक'' आधार क्षेत्र में यह प्रवृत्ति थी, उस समय भारतीय राजनीति के तुलनात्मक रूप से गैर-पारंपरिक क्षेत्रों जैसे गुजरात तथा बिहार ने गांधी जी के कार्यक्रम का पूरी तरह समर्थन किया। आंध्र और पंजाब प्रां.कां.स. असहयोग से सहमत थे किन्तु गाँधी जी के कार्यक्रम पर निर्णय को कांग्रेस की विशिष्ट बैठक तक टाल गए। कुछ प्रांतीय नेताओं का गांधी जी के कार्यक्रमों को समर्थन देने में दुविधा का कारण भविष्य में गांधी जी के आंदोलन की अनिश्चितता थी। इसी कारण परिषद् चुनावों के बहिष्कार के लिए तैयार नहीं थे।

यही वह परिस्थितियां थीं जिनके कारण सितंबर 1920 को कलकत्ता में अखिल भारतीय कांग्रेस समिति की विशिष्ट बैठक हुई। लाला लाजपतराय इसके अध्यक्ष थे। इस बैठक में गाँधी जी के कार्यक्रम के प्रति एक जोरदार विरोध की उम्मीद थी। किन्तु अधिकांश प्रतिष्ठा प्राप्त राजनीतिक नेताओं के इरादों के विपरीत बैठक शुरू होने से पहले ही गांधी जी कांग्रेस की खुली बैठक में अपने प्रस्ताव को 1000 वोटों की बढ़त से मंजूर करवाने में कामयाब हो गए।

गांधी जी के समर्थकों में मोती लाल नेहरू, सैफुद्दीन किचलु, जितेन्द्र लाल बनर्जी, शौकत अली, याकूब हसन तथा डॉ० अंसारी थे, जबकि उनके विरोधियों में पंडित मदन मोहन मालवीय, ऐनी बीसेंट इत्यादि शामिल थे। गाँधी जी को यह सफलता मुख्यतः व्यापारी समूहों तथा मुसलमानों के समर्थन के कारण मिल पाई।

कलकत्ता कांग्रेस ने निम्न कार्यक्रम को स्वीकृति दी:
- उपाधियों की वापसी
- विद्यालयों, अदालतों, विदेशी सामान तथा परिषदों का बहिष्कार, तथा
- राष्ट्रीय विद्यालयों, पंच-अदालतों तथा खादी को बढ़ावा।

कांग्रेस ने गांधी जी की इस योजना का समर्थन किया कि सरकार के साथ तब तक असहयोग किया जाएगा जब तक पंजाब तथा ख़िलाफ़त की गलतियों को सुधारा नहीं जाता और स्वराज की स्थापना नहीं हो जाती। अंतिम निर्णय कांग्रेस की दिसम्बर 1920 को नागपुर में होने वाली बैठक पर छोड़ दिया गया। हालांकि गांधी जी ने बताया कि यह ''भारतीय जनता की इच्छाओं के अनुसार संसदीय स्वराज था।'' नेहरू ने यह स्वीकार किया कि यह ''बिना किसी स्पष्ट दृष्टिकोण के एक अस्पष्ट स्वराज था।'' फिर भी स्वराज (जिसे गांधी जी लक्ष्य बना रहे थे) की सही प्रकृति उनके समकालिकों को स्पष्ट नहीं थी।

संशोधित मताधिकारों के अनुसार नवंबर 1920 में परिषद् चुनाव हुए। सभी कांग्रेस उम्मीदवारों ने चुनावों का बहिष्कार किया। गांधी जी के चुनावों का बहिष्कार करने के आह्वान पर विभिन्न प्रान्तों में बहुत अनुकूल प्रतिक्रिया हुई। ब्रिटिश सरकार के लिए यह चेतावनी का संकेत था। शहरी क्षेत्रों में केवल 27.3 प्रतिशत हिन्दू मतदाताओं और 12.1 प्रतिशत मुसलमान निर्वाचकों ने मतदान में हिस्सा लिया। ग्रामीण क्षेत्रों में 41.8 प्रतिशत हिन्दू तथा 28.3 प्रतिशत मुसलमानों ने मतदान किया।

गांधी जी के कार्यक्रम पर अनेकों अंतर्विरोध तथा विवादों के बीच 26 दिसम्बर 1920 को नागपुर में कांग्रेस की बैठक शुरू हुई।

नागपुर बैठक में बंगाल के सी.आर. दास में एक नाटकीय परिवर्तन दिखाई पड़ा। गांधी जी के कार्यक्रमों की आलोचना करने वाले सी.आर. दास ने नागपुर में असहयोग प्रस्ताव को रखा। इसमें सिफारिश की गई कि असहयोग प्रस्ताव, जिसमें पूरी योजना घोषित की गई है कि, एक तरफ तो सरकार के साथ सभी स्वैच्छिक सहयोग का त्याग हो तथा दूसरी ओर, करों की अदायगी न की जाए। इस योजना को कांग्रेस द्वारा तय किए जाने वाले समय पर कार्यान्वित किया जाए। परिषदों से इस्तीफा, वकालत का त्याग, शिक्षा का राष्ट्रीयकरण, आर्थिक बहिष्कार, राष्ट्रीय सेवा के लिए मजदूरों को संगठित करना, राष्ट्रीय फंड को स्थापित करना तथा हिन्दू मुसलमान एकता को कार्यक्रम के कदमों के रूप में सुझाया गया। नागपुर बैठक में कांग्रेस संगठन में क्रान्तिकारी परिवर्तन भी हुए। ये परिवर्तन निम्न थे:

- 15 सदस्यों की एक कार्यकारी समिति का गठन,
- 350 सदस्यों की एक अखिल भारतीय समिति का गठन,
- शहर से ग्रामीण स्तर तक कांग्रेस समितियों का गठन,
- प्रांतीय कांग्रेस समितियों का भाषीय आधार पर पुनर्गठन, तथा सभी स्त्री-पुरुष जिनकी उम्र 18 वर्ष से अधिक है को चार आना वार्षिक शुल्क देने पर कांग्रेस की सदस्यता प्राप्त हुई।

कांग्रेस की ओर से इसे वास्तविक जन-आधारित राजनैतिक पार्टी बनाने के लिए यह पहला सकारात्मक कदम था। इस दौर में पार्टी के सामाजिक संयोजन के साथ-साथ इसके दृष्टिकोण तथा नीतियों में भी एक मूलभूत परिवर्तन दिखाई पड़ा। गांधी जी सत्याग्रह के अपने अपूर्व हथियार के साथ कांग्रेस पार्टी में एक जन नेता के रूप में उभर कर सामने आए।

ऊपर की गई चर्चा से यह स्पष्ट हो जाता है कि असहयोग आंदोलन के कार्यक्रम के दो मुख्य पहलू थे:

1) रचनात्मक
2) विध्वंसक

पहली श्रेणी में निम्नलिखित बातें आती हैं:

- शिक्षा का राष्ट्रीयकरण,
- स्वदेशी सामान को बढ़ावा,
- चरखे व खादी को लोकप्रिय बनाना, तथा
- स्वयंसेवी सेना की भरती।

दूसरी श्रेणी में निम्नलिखित का बहिष्कार घोषित हुआ:

- कानूनी अदालतें,
- शैक्षिक संस्थाएँ,
- विधायकों के चुनाव,
- दफ्तरी काम काज,
- ब्रिटिश सामान के साथ-साथ ब्रिटिश सरकार द्वारा दिए गए सम्मान तथा उपाधियाँ।

## 18.5 असहयोग आंदोलन के मुख्य चरण

1921 के शुरू में ही असहयोग तथा बहिष्कार के लिए जोर-शोर से प्रचार शुरू हो गया था। हालांकि आन्दोलन के एक चरण से दूसरे चरण में केंद्रीय मुद्दे बदलते रहे। जनवरी से मार्च 1921 के प्रथम चरण में मुख्य बल विद्यालयों, कॉलेजों, कानूनी अदालतों के बहिष्कार तथा चरखे के प्रयोग पर था। छात्रों में व्यापक अशांति थी तथा वकीलों जैसे सी.आर. दास तथा मोतीलाल नेहरू ने वकालत को त्याग दिया। इस चरण के बाद अप्रैल 1921 में दूसरा चरण

प्रारम्भ हुआ। दूसरे चरण का मूलभूत लक्ष्य, तिलक स्वराज कोष के लिए अगस्त 1920 तक एक करोड़ रुपये तथा 30 जून तक 20 लाख चरखे लगाना था। जुलाई से शुरू होने वाले तीसरे चरण में निम्न बातों पर जोर दिया गया : विदेशी कपड़ों का बहिष्कार, नवंबर 1921 में ब्रिटिश राजसिंहासन के उत्तराधिकारी प्रिंस ऑफ वेल्स की यात्रा का बहिष्कार, चरखे तथा **खादी** को लोकप्रिय बनाना, तथा कांग्रेस स्वयं सेवकों द्वारा **जेल भरो** आंदोलन।

अंतिम चरण में, नवंबर 1921 में उग्रता की ओर झुकाव दिखाई पड़ रहा था। कांग्रेस स्वयं सेवकों ने जनता को लामबंद किया और देश क्रांति की कगार पर था। गांधी जी ने बरदोली में लगान नहीं देने का प्रचार तथा, बोलने, प्रेस और संस्थाओं की स्वतंत्रता के लिए एक बड़ा नागरिक अवज्ञा आंदोलन भी शुरू करने का निश्चय किया। किन्तु 5 फरवरी 1922 को यू.पी. के गोरखपुर जिले के चौरी-चौरा में कुछ किसानों द्वारा स्थानीय पुलिस थाने पर हुए हमले ने पूरी स्थिति को ही बदल दिया। गांधी जी ने इस घटना से स्तब्ध होकर असहयोग आंदोलन को वापिस ले लिया।

## 18.6 आंदोलन पर जनता की प्रतिक्रिया

इस आंदोलन के शुरू के दौर में नेतृत्व मध्यम वर्ग से आया। किन्तु मध्यम वर्ग को गांधी जी के कार्यक्रम के बारे में बहुत सी शंकाएं थीं। कलकत्ता, बंबई, मद्रास जैसी जगहों में, जो कि कुलीन राजनीतिज्ञों के केंद्र थे, गांधी जी के आंदोलन पर बहुत सीमित प्रतिक्रिया हुई। सरकारी नौकरियों से इस्तीफा देने, उपाधियों का त्याग करने इत्यादि के आह्वान पर हुई प्रतिक्रिया भी अधिक उत्साहवर्धक नहीं थी। यद्यपि आर्थिक बहिष्कार को भारतीय व्यापारिक समूह का समर्थन मिला क्योंकि राष्ट्रवादियों के स्वदेशी वस्त्र के प्रयोग पर जोर देने से कपड़ा उद्योग को फायदा हुआ। फिर भी बड़े व्यापारियों का एक भाग असहयोग आंदोलन का आलोचक ही रहा। उन्हें असहयोग आन्दोलन के फलस्वरूप खासकर फैक्ट्रियों में मजदूरों के असंतोष का डर था।

कुलीन राजनीतिज्ञों के अतिरिक्त भारतीय राजनीति में तुलनात्मक रूप से नए आए हुए लोगों को गांधी जी के आंदोलन में अपने हितों तथा महत्त्वाकांक्षाओं की अभिव्यक्ति मिली। बिहार में राजेन्द्र प्रसाद, गुजरात में सरदार बल्लभ भाई पटेल जैसे नेताओं ने गांधी जी के आंदोलन को व्यापक समर्थन दिया। वास्तव में, उन्हें औपनिवेशिक सरकार से लड़ने के लिए आतंकवाद के बदले असहयोग के रूप में एक प्रत्यक्ष राजनैतिक हल मिला।

विद्यार्थियों तथा महिलाओं की प्रतिक्रिया बहुत प्रभावशाली थी। हजारों विद्यार्थियों ने सरकारी स्कूलों व कालेजों को छोड़कर राष्ट्रीय स्कूलों व कालेजों में दाखिला लिया। नव स्थापित काशी विद्यापीठ, गुजरात विद्यापीठ तथा जामिया मिलिया इस्लामिया जैसे अन्य राष्ट्रीय शिक्षण संस्थाओं ने बहुत से विद्यार्थियों को स्थान दिया जबकि अनेकों विद्यार्थियों को स्थान न मिलने के कारण निराश होना पड़ा। विद्यार्थी आंदोलन के गतिशील स्वयं सेवक बन गए। औरतें भी सामने आईं। उन्होंने पर्दा छोड़ दिया तथा अपने गहने तिलक फंड के लिए दे दिए। वे बड़ी संख्या में आंदोलन में शामिल हुईं और उन्होंने विदेशी कपड़ा व शराब बेचने वाली दुकानों के आगे होने वाले धरनों में सक्रिय रूप से भाग लिया।

इस आंदोलन के विकास का अत्यधिक महत्वपूर्ण बिन्दु इसमें किसानों तथा मजदूरों का शामिल होना था। इस आंदोलन के द्वारा मेहनती जनता को अंग्रेज़ों के साथ-साथ भारतीय मालिकों के विरुद्ध पुरानी शिकायतों तथा अपनी वास्तविक भावनाओं को अभिव्यक्त करने का मौका मिला। हालांकि कांग्रेस का नेतृत्व वर्ग-संघर्ष के ख़िलाफ़ था फिर भी जनता ने इस सीमा को तोड़ दिया। ग्रामीण इलाकों तथा कुछ अन्य स्थानों में, किसान जमींदारों व व्यापारियों के ख़िलाफ़ हो गए। इसने 1921-22 के आंदोलन को एक नया आयाम दिया।

## 18.7 आंदोलन का फैलाव, क्षेत्रीय विभिन्नताएँ

असहयोग तथा बहिष्कार के आह्वान को भारत के विभिन्न भागों से भारी समर्थन मिला। 1921 और 1922 का साल भारत में ब्रिटिश राज के खिलाफ़ लोकप्रिय विरोधों से अंकित है। फिर भी, आंदोलन अधिकतर स्थानों पर स्थानीय परिस्थितियों के अनुसार ही ढला था। यह जनता की स्थानीय शिकायतें थी जिन्हें इस आंदोलन के द्वारा अभिव्यक्ति मिली, तथा कांग्रेस नेतृत्व के आदेशों का सदा पालन नहीं हुआ। आइये असहयोग आंदोलन के संदर्भ में विभिन्न क्षेत्रों पर एक सरसरी दृष्टि डालते हैं।

**बंगाल :** विरोध के गांधीवादी तरीकों की भारी हिस्सेदारी को बंगाल में कम प्रोत्साहन मिला। रवीन्द्र नाथ ठाकुर ने जनता में एक नई चेतना लाने के लिए गांधी जी की सराहना की। किन्तु उन्होंने गांधी जी की "संकीर्णता, रूढ़िवादिता" तथा चरखे पर आपत्ति की। कलकत्ता के कुलीनों ने कुछ गांधीवादी तरीकों की आलोचना की। किन्तु फिर भी असहयोग आंदोलन ग्रामीण तथा शहरी जनता में एक अलग तरह की एकता व जागरूकता लाया। हड़तालों, बन्द तथा जन-गिरफ़्तारियों ने ब्रिटिश सरकार पर भारत के प्रति रवैये को बदलने के लिए भारी दबाव डाला।

5 रवीन्द्रनाथ टैगोर

6 कलकत्ता में असहयोगियों का जुलूस

गाँवों में जोरदार प्रचार किया गया और जैसा कि एक सरकारी रिपोर्ट ने कहा कि "गाँधी जी के नाम पर जो कुछ कहा जा रहा है और किया जा रहा है यदि गांधी जी उसका एक अंश भी सुन लें, तो वह भद्रपुरुष काँप उठेगा।" मिदनापुर जिले के गाँवों में नई बनाई गई एकता समितियों तथा उनके द्वारा थोपे गए करों का विरोध किया गया। उत्तरी बंगाल के बाहरी जिलों की जनता ने सरकार या निजी ज़मींदारों को कर या कृषि लगान का भुगतान करने से इंकार कर दिया।

**बिहार :** बिहार में सार्वजनिक खाली पड़ी हुई सरकारी भूमि पर पशु चराने के अधिकार की माँग तथा निचली जातियों द्वारा जनेऊ धारण करने पर "निचली व ऊँची जातियों के बीच की लड़ाई" जैसी स्थानीय समस्याएँ असहयोग आंदोलन से जुड़ गईं। गोरक्षा तथा किसानों के अधिकारों के मामलों पर भी ध्यान दिया गया। इस मेल-जोल के कारण, उत्तरी भारत, खासकर चम्पारन, सारन, मुजफ्फरपुर, व पूर्णियाँ जिले नवंबर 1921 तक आंदोलन के केन्द्र बने रहे। हाट (गाँव का बाजार) लूटना तथा पुलिस के साथ लड़ाई प्रतिदिन की घटना हो गई।

**यू.पी. : संयुक्त प्रांत** गांधीवादी असहयोग आंदोलन का मजबूत आधार बन गया। संगठित रूप से असहयोग शहरों तथा छोटे कस्बों का काम था। गाँवों में इसने एक अलग रूप लिया। गाँवों में यह आंदोलन किसान आंदोलन के साथ मिल गया। कांग्रेस नेतृत्व की अहिंसा की निरंतर अपीलों के बावजूद, किसान न केवल ताल्लुकदारों बल्कि व्यापारियों का भी विरोध

करने के लिए उठ खड़े हुए। जनवरी व मार्च 1921 के बीच राय बरेली, प्रतापगढ़, फैजाबाद तथा सुल्तानपुर में बाबा राम चन्द्र के नेतृत्व में व्यापक किसान आंदोलन हुए। मुख्य माँगें निम्न थीं :

- कोई नजराना (लगान पर अतिरिक्त शुल्क) का भुगतान नहीं,
- जमीन से बेदखली नहीं, तथा
- बेगार (जबरदस्ती लिया हुआ काम) तथा रसद (जबरदस्ती लिया हुआ सामान), इत्यादि नहीं।

PROCEEDINGS OF THE

HOME DEPARTMENT, FEBRUARY 1921.

Pro. no. 170]. Disturbances in the Rae Bareli and Fyzabad Districts.

Early in the morning of the 7th January a crowd of about 650 men assembled by the bridge near Munshiganj and were proceeding towards the jail in order to release prisoners. These men were rounded up and put in the jail. They were subsequently released. Later in the day a crowd of about 3,000 assembled on the same road between Munshiganj and Rae Bareli town. They were addressed by the Deputy Commissioner and others and persuaded with difficulty to go back along the road. When they had reached the other side of the Munshiganj bridge their numbers were largely augmented by fresh crowds coming up from the south and the crowd numbering then from 7,000 to 10,000 became unmanageable. In spite of all arguments and persuasions they refused to retire further and the police and officials who were endeavouring to force them back were subjected to volleys of stones and kankas. Attacks were also made with lathis. It then became necessary for the police to use their firearms. Several of the mounted police had already received slight injuries and two had been unhorsed. Had firing not been resorted to

experience of the Rae Bareli district, having served there as Deputy Commissioner, and who arrived at Rae Bareli on the afternoon of the 7th, states that the situation at that time was extremely serious. The ignorant peasantry had been persuaded by perambulating agitators that not only the Taluqdars but the British Raj would shortly cease to exist and that under the beneficent rule of Mr. Gandhi they would enter on a golden age of prosperity in which they would be able to buy good cloth at 0-4-0 a yard and other necessaries of life at similar cheap rates. This story about cloth accounts for the cases of looting cloth merchants mentioned above. The Commissioner, who has made full enquiry into these agrarian disturbances, reports that he is satisfied that but for the timely use of firearms as described above first at Fursatganj and subsequently at Munshiganj the whole of the south of the Rae Bareli district would rapidly have reached a state of anarchy. It is probable also that had the large crowd at Munshiganj not been dispersed on the 7th they would have entered the city with disastrous results. The Commissioner of

small parties to their villages.—Ends.

2. The agitation which has been carried on amongst villagers has been largely, if not wholly, the work of the non-co-operators, though there is no information to show how far the movement has been directly inspired or controlled by Gandhi himself. The Tenancy Act admittedly stands in need of amendment and genuine discontent of tenantry with working of existing law is main reasons of success attained by their propaganda. While we realize the possibility of similar disturbances breaking out in other parts of Oudh, we have every confidence in capacity of Governor to deal with situation. Opposition of Taluqdars in the past has made amendment of Tenancy Law difficult but need for concession has now probably been brought home to them and it is anticipated that Governor should now be in a position to carry through legislature changes that will go far to remove grievances of tenantry. There is no reason for us to suppose that non-co-operation movement in itself, apart from economic grievances, is understood by, or has any effective appeal to, tenantry.—

7 किसान आंदोलन पर सरकारी रिपोर्ट

1921 के अंत में मदारी उग्र नेता पासी के नेतृत्व में एक अन्य मजबूत किसान आंदोलन हुआ जिसे "एका" के नाम से जाना जाता है। उत्पादित लगान को रुपये में बदलना इनकी मुख्य माँग थी। एक अन्य महत्वपूर्ण घटना थी जुलाई 1921 में, पहाड़ी-जनजातियों द्वारा कुमायुँ क्षेत्र के हजारों एकड़ सुरक्षित वन को नष्ट कर देना। इसका कारण जनजातियों का वन-नियम का विरोध था।

**पंजाब :** पंजाब के शहरों में इस आंदोलन के लिए अधिक अच्छा समर्थन नहीं था। किन्तु यहाँ के शक्तिशाली अकाली आंदोलन की गुरुद्वारों के सुधार तथा नियंत्रण की माँगें असहयोग आंदोलन से निकट रूप से जुड़ गईं। हालाँकि गांधी जी ने इसे सिर्फ नियंत्रित सहमति दी थी फिर भी अकालियों ने उनकी असहयोग की नीतियों का लगातार प्रयोग किया। इसने सिक्खों, मुसलमानों तथा हिन्दुओं के बीच एक विशेष सांप्रदायिक एकता प्रदर्शन की।

**महाराष्ट्र :** महाराष्ट्र में असहयोग तुलनात्मक रूप से कमजोर रहा क्योंकि तिलकवादी गांधी जी के प्रति प्रोत्साहित नहीं थे और गैर-ब्राह्मणों ने महसूस किया कि कांग्रेस चितपावन के नेतृत्व वाला मामला है। ऊँची जातियों ने उत्पीड़ित वर्ग के उत्थान के लिए गाँधी जी द्वारा किए गए प्रयत्न तथा असहयोग आंदोलन में उनकी हिस्सेदारी पर जोर देने को नापसंद किया। फिर भी कुछ छुट-पुट स्थानीय घटनाएँ हुईं। नासिक जिले के मालागाँव में कुछ स्थानीय नेताओं की गिरफ़्तारी की प्रतिक्रिया में कुछ पुलिस के आदमियों को जिन्दा जला दिया गया। पुणे क्षेत्र में कुछ किसानों ने सत्याग्रह के द्वारा अपने जमीन के अधिकारों की रक्षा करने का प्रयास किया।

**असम :** असम के दूर के प्रांतों में असहयोग को भारी समर्थन मिला। असम के बागानों में मजदूर "गांधी महाराज की जय" के नारे के साथ ऊँचे वेतन तथा बेहतर कार्य परिस्थितियों के लिए संघर्ष में जुट गए। किसानों के बीच लगान अदा न करने के आंदोलन के संकेत भी थे।

**राजस्थान :** बिहार तथा यू.पी. की तरह राजस्थान के राजसी राज्यों में किसान आंदोलनों ने असहयोग आंदोलन को मजबूत बनाया। किसानों ने उपकर तथा बेगार के ख़िलाफ़ आवाज उठायी। मेवाड़ के बिजोलिया आंदोलन तथा मोतीलाल तेजावत के नेतृत्व में हुए भील आंदोलन ने असहयोग आंदोलन से ही प्रेरणा ली।

**आन्ध्र :** आन्ध्र में वन कानूनों के ख़िलाफ़ जनजातियों तथा अन्य किसानों की शिकायतें असहयोग आंदोलन से जुड़ गईं। इनमें से एक बड़ी संख्या में लोग अपने करों को कम कराने तथा वन संबंधी पाबंदियों को हटवाने के लिए सितंबर 1921 को कुडप्पा में गांधी जी से मिले। वन अधिकारियों का बहिष्कार हुआ। अपने अधिकारों को पक्का बनाने के लिए उन्होंने बिना चराई कर अदा किये अपने पशुओं को जबरदस्ती जंगल में भेजा। वनों की सीमा पर स्थित पालांद इलाके में **स्वराज** की घोषणा की गई तथा पुलिस के दस्तों पर हमले हुए। प्रदर्शनकारियों का विश्वास था कि **गांधी-राज** आने ही वाला है। दिसंबर 1921 तथा फरवरी 1922 के बीच भूमि-लगान की अदायगी न करने का मजबूत आंदोलन भी आन्ध्र में बढ़ा। आन्ध्र डेल्टा क्षेत्र में असहयोग आंदोलन को महान् सफलता मिली।

8 अलूरी सीताराम राजू

**कर्नाटक :** तुलनात्मक रूप से कर्नाटक के क्षेत्र आंदोलन से अप्रभावित रहे और मद्रास महाप्रांत के बहुत से इलाकों के उच्च व मध्यम वर्ग के पेशेवर समूह की आरंभिक प्रतिक्रिया सीमित थी। 682 उपाधि प्राप्त लोगों में से केवल 6 ने अपना सम्मान वापिस लौटाया तथा 36 वकीलों ने अपनी वकालत छोड़ी। पूरे महाप्रांत में 5,000 छात्रों के साथ 92 राष्ट्रीय विद्यालय शुरू किए गए। जुलाई से अक्टूबर 1921 के बीच बकिंघम तथा कर्नाटक कपड़ा मिलों में मजदूरों ने हड़ताल किया। उन्हें स्थानीय असहयोग आंदोलन के नेताओं से नैतिक समर्थन मिला।

इस तरह की प्रतिक्रिया अन्य क्षेत्रों में भी हुई। उदाहरण के लिए उड़ीसा के कनिका राज्य के पट्टेधारी ने कर देने से इंकार कर दिया। किन्तु गुजरात में आंदोलन शुद्ध गांधीवादी विचारधारा पर चला।

**बोध प्रश्न 2**

1 असहयोग आंदोलन का कार्यक्रम क्या था?

........................................................................
........................................................................
........................................................................
........................................................................
........................................................................
........................................................................

2 असहयोग आंदोलन पर किसानों की प्रतिक्रिया की संक्षेप में चर्चा कीजिए।

........................................................................
........................................................................
........................................................................
........................................................................
........................................................................
........................................................................

3 निम्नलिखित कथनों में कौन-सा कथन सही है और कौन-सा गलत है।
(सही √ या गलत × का निशान लगाइये)

1) अ. भा. का. स. की नागपुर बैठक कांग्रेस संगठन में क्रान्तिकारी परिवर्तन लाई।

2) गांधी जी के कार्यक्रमों पर शहर की तुलना में ग्रामीण क्षेत्रों में कम प्रतिक्रिया हुई।

3) अधिकांश जगहों पर असहयोग आंदोलन स्थानीय परिस्थितियों के अनुसार ढला।

## 18.8 अंतिम चरण

सरकार आंदोलन के विकास को बहुत ध्यानपूर्वक देख रही थी और प्रांतों से आंदोलन की प्रगति के बारे में खुफिया रिर्पोट जमा कर रही थी। जब अंत में आंदोलन शुरू हुआ तो सरकार ने इसे दबाने का रास्ता अपनाया। कांग्रेस तथा खिलाफ़त स्वयं सेवक संगठनों को गैर कानूनी घोषित कर दिया गया। जन-सभाओं व प्रदर्शनों पर प्रतिबंध लग गया। अनेक स्थानों में पुलिस ने सत्याग्रहियों पर गोलियाँ चलाईं। गिरफ़्तारियाँ व लाठी चार्ज एक आम

9 चौरी-चौरा हिंसा पर गांधी जी की प्रतिक्रिया एक कार्टून

बात हो गई। 1921 के अंत तक गांधी जी को छोड़कर सभी महत्वपूर्ण नेता जेल में डाल दिए गए। हिन्दू-मुसलमान एकता से चौकस होकर सरकार ने कांग्रेस तथा ख़िलाफ़त समर्थकों में फूट डालने की भी कोशिश की। इस तरह सरकारी-तंत्र आंदोलन को तोड़ने में पूरी तरह जुटा हुआ था।

अंग्रेज़ों के अत्याचार ने भारतीयों को अधिक तेजी से आंदोलन जारी रखने के संकल्प को और मजबूत बनाया। इस बीच वायसराय ने मदन मोहन मालवीय के द्वारा कांग्रेस नेताओं से समझौता करने की कोशिश की और राष्ट्रीय स्वयं सेवकों को मान्यता देने तथा राजनैतिक कैदियों को रिहा करने का प्रस्ताव रखा। मध्य जनवरी 1922 को गांधी जी ने सभी पार्टियों की सभा में असहयोग आंदोलन की स्थिति को स्पष्ट किया और उनके मूल्यांकन को आम स्वीकृति मिली। पहली जनवरी को उन्होंने वायसराय के पास अंतिम चुनौती भेजी कि यदि राजनैतिक कैदियों को रिहा नहीं किया गया व अत्याचार के तरीकों को नहीं छोड़ा गया तो वे बड़े रूप में नागरिक अवज्ञा आंदोलन शुरू करवा सकते हैं। चूंकि पूरा देश नागरिक अवज्ञा के लिए तैयार नहीं था, इसलिए उन्होंने इसे 5 फरवरी से शुरू करने का निश्चय किया। यू.पी. के गोरखपुर जिले के चौरी-चौरा में पुलिस ने कांग्रेस स्वयं सेवकों पर गोली चलाई जिससे उत्तेजित भीड़ ने 21 पुलिस कर्मियों को जान से मार दिया। इस हिंसात्मक घटना से गांधी जी को आघात पहुँचा और उन्होंने असहयोग आंदोलन को रोक दिया। उन्होंने बारदोली में प्रस्तावित नागरिक अवज्ञा-उल्लंघन को भी स्थगित कर दिया। अनेकों कांग्रेसी गांधी जी के निर्णय से चकित व हत्प्रभ रह गये। उन्होंने इसका जोरदार विरोध किया। सुभाष चन्द्र बोस ने इसे "राष्ट्रीय संकट" कहा। जवाहरलाल नेहरू ने इस निर्णय पर अपना "विस्मय व आश्चर्य" प्रकट किया। अपनी स्थिति को स्पष्ट करते हुए गांधी जी ने नेहरू को जवाब दिया:

> "अनजाने में आंदोलन अपने सही मार्ग से भटक गया था। हम अपने लंगर (डेरे) पर वापिस आ गए हैं और फिर से सीधे आगे जा सकते हैं।"

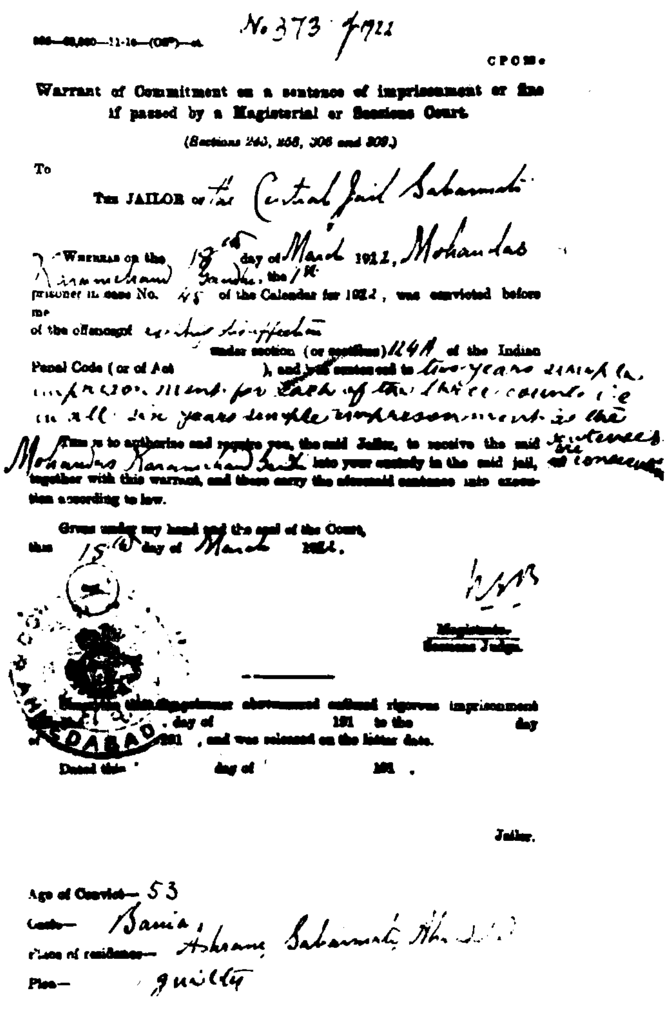
No. 373 of 1922

Warrant of Commitment on a sentence of imprisonment or fine if passed by a Magisterial or Sessions Court.
(Sections 245, 258, 306 and 309.)

To
The JAILOR of the Central Jail Sabarmati

Whereas on the 18th day of March 1922, Mohandas Karamchand Gandhi, the 1st prisoner in case No. 45 of the Calendar for 1922, was convicted before me of the offence of exciting disaffection under section (or sections) 124A of the Indian Penal Code (or of Act ), and was sentenced to two years simple imprisonment for each of the three counts i.e. in all six years simple imprisonment i.e. the

This is to authorise and require you, the said Jailor, to receive the said Mohandas Karamchand Gandhi into your custody in the said jail, together with this warrant, and there carry the aforesaid sentences into execution according to law.

Given under my hand and the seal of the Court, this 18th day of March 1922.

Magistrate.
Sessions Judge.

Executed this ... prisoner abovenamed suffered rigorous imprisonment ... day of 191 to the day of 191, and was released on the latter date.
Dated this day of 191.

Jailor.

Age of Convict— 53
Caste— Bania
Place of residence— Ashram Sabarmati Ahmedabad
Plea— guilty

10 गाँधीजी की गिरफ्तारी का आदेश

12 फरवरी 1922 को बारदोली में कांग्रेस की कार्यकारी समिति की बैठक ने चौरी-चौरा में भीड़ के अमानवीय बर्ताव की निन्दा की। इसने नागरिक अवज्ञा आंदोलन को स्थगित करने का समर्थन किया। गांधी जी ने उसी दिन से इस घटना के विरोध में उपवास शुरू किया। इस तरह पहला असहयोग आंदोलन समाप्त हो गया। 10 मार्च 1922 को गांधी जी गिरफ़्तार हुए और उन्हें छह साल की कैद की सजा दी गयी।

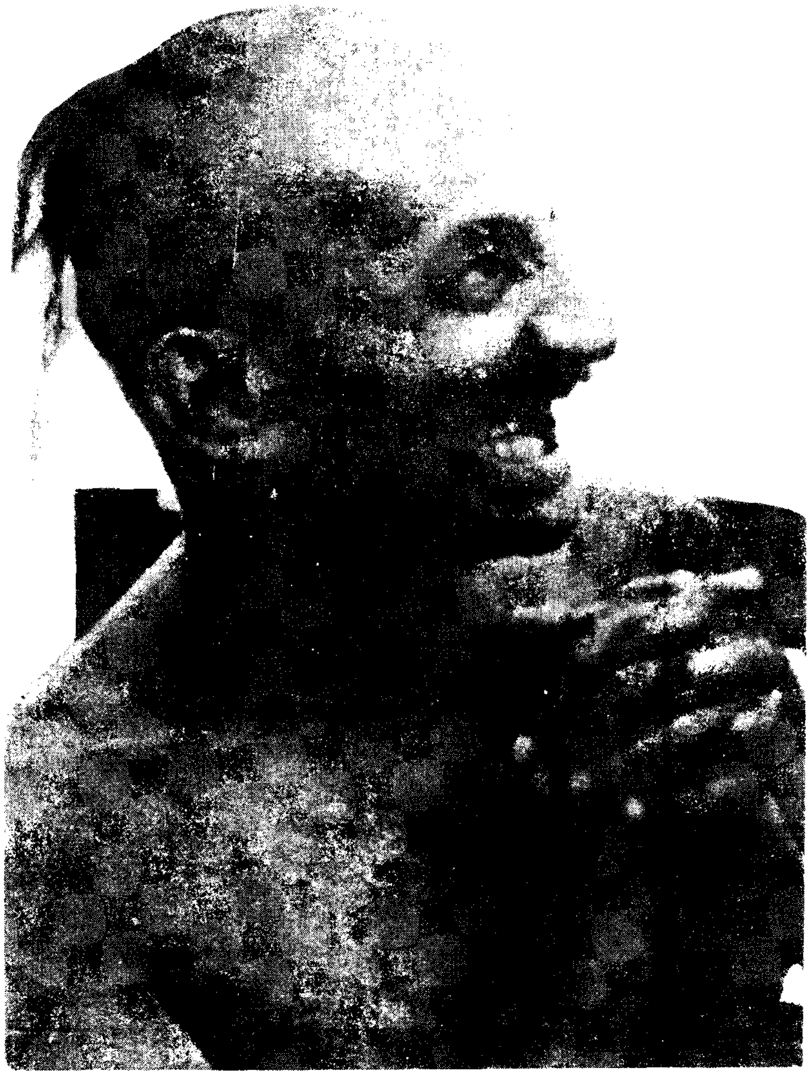

**11 महात्मा गांधी (1922)**

तुर्की में कमाल पाशा के सत्ता में आने से खिलाफ़त समस्या की संदर्भता भी समाप्त हो गई। तुर्की के सुल्तान से सभी राजनैतिक शक्ति छीन ली गई। कमाल पाशा तुर्की का आधुनिकीकरण करना चाहता था और इसे एक धर्मनिरपेक्ष राज्य बनाना चाहता था। ख़लीफ़ा के पद को समाप्त कर दिया गया जिससे ख़िलाफ़त आंदोलन का अंत हो गया।

## 18.9 आंदोलन वापिस लेने के कारण

असहयोग आंदोलन को वापिस लेने के कारणों को समझाते हुए गांधी जी ने कहा था कि चौरी-चौरा की घटना ने उन्हें आंदोलन वापिस लेने के लिए मजबूर किया। घटना ने यह सिद्ध किया कि देश ने अभी तक अहिंसा का पाठ नहीं सीखा है। गांधी जी के शब्दों में, "मैं आंदोलन को हिंसात्मक होने से बचाने के लिए हरेक अपमान, हरेक यातना, बहिष्कार यहाँ तक कि मृत्यु तक को झेल लूँगा।"

जहाँ तक किसानों का संबंध है, असहयोग आंदोलन धीरे-धीरे ज़मींदारों के ख़िलाफ़ लगान अदा न करने के आंदोलन के रूप में बदल रहा था। किन्तु कांग्रेस नेतृत्व किसी भी तरह

ज़मींदारों के कानूनी अधिकारों पर हमला करने में रुचि नहीं रखता था। गांधी जी का लक्ष्य विभिन्न भारतीय वर्गों को शामिल कर एक "नियंत्रित जन आंदोलन" चलाना था, न कि वर्ग क्रांति। इसीलिए वे उस आंदोलन के जारी रहने के विरुद्ध थे जो कि शायद वर्ग क्रांति में परिवर्तित हो सकता था। उन्होंने यह बिल्कुल स्पष्ट कर दिया कि वे इस अवस्था में किसी भी किस्म की हिंसा या आंदोलन के खिलाफ़ हैं। भारत में क्रांतिकारी परिस्थितियों के रहते हुए भी कोई वैकल्पिक क्रांतिकारी नेतृत्व नहीं था। यदि आंदोलन को स्थगित न किया जाता तो शायद वह अव्यवस्थित हो जाता क्योंकि नेतृत्व का स्थानीय आंदोलनों पर कोई नियंत्रण नहीं था।

## 18.10 प्रभाव

असहयोग आंदोलन के असफल हो जाने के बावजूद यह भारतीय इतिहास में न केवल राजनैतिक पहलू से बल्कि सामाजिक पहलू से भी विशेष महत्व रखता है। गांधी जी ने जाति-बंधनों, सांप्रदायिकता, छुआ-छूत, इत्यादि जैसी कुप्रथाओं को हटाने की आवश्यकता पर जोर दिया था। प्रदर्शनों, बैठकों तथा जेलों में सभी जातियों व समुदायों के लोगों ने मिल-जुलकर काम किया तथा एक-साथ मिलकर खाना भी खाया जिससे जातीय पृथकता कमजोर पड़ गई तथा सामाजिक गतिशीलता व सुधार की गति में तेजी आयी। निम्न वर्ग बिना किसी डर के अपना सिर ऊँचा रख सकता था। इस आंदोलन ने हिंदू तथा मुसलमानों के बीच एक विशेष सद्भाव स्थापित किया। बहुत से स्थानों पर तो असहयोग, खिलाफ़त तथा किसान सभा की सभाओं में फर्क करना कठिन था।

बंगाल के विभाजन के बाद उत्पन्न हुए 1905-8 के आंदोलन की अपेक्षा 1920-22 का आर्थिक बहिष्कार ज़्यादा प्रभावशाली था। 1905-8 में आयात किए गए 129 करोड़ 20 लाख गज ब्रिटिश सूती कपड़ों की अपेक्षा 1921-22 में सिर्फ 95 करोड़ 50 लाख गज कपड़ा ही आयात हुआ जिससे ब्रिटिश पूँजीपतियों में घबराहट पैदा हो गई। भारतीय कपड़ा उद्योग को विदेशी वस्तुओं के बहिष्कार से अत्यधिक फायदा हुआ। भारतीय मिल मालिकों का प्रभाव काफी बढ़ा। दूसरी ओर, 1921 की मज़दूर हड़ताल ने इन मिल-मालिकों में घबराहट फैला दी। चर्खे तथा करघे को लोकप्रिय बनाने, स्वयं सेवा पंचायतों द्वारा ग्रामीण पुनर्निर्माण कार्यक्रम से आर्थिक क्षेत्र में पुनर्जीवन का संचार हुआ तथा हथकरघे पर बने कपड़ों का उत्पादन बढ़ गया।

राजनैतिक क्षेत्र में, असहयोग तथा खिलाफ़त आंदोलनों में सभी समुदायों तथा वर्गों के शामिल होने के राष्ट्रीय आंदोलन में एक नया आयाम जोड़ दिया। राष्ट्रीय आंदोलन एक से अधिक तरीकों से मजबूत बना। एक नई राष्ट्रवादी जागरूकता उत्पन्न की गई तथा राष्ट्रीय आंदोलन देश के कोने-कोने में पहुँचा। पहली बार आम जनता राष्ट्रीय आंदोलन की मुख्य धारा का अभिन्न अंग बनी। भारतीय जनता में स्वाभिमान तथा आत्मविश्वास बहुत अधिक बढ़ा। इससे कुंठा तथा असहायता की जगह स्वतंत्रता की एक सच्ची भावना ने ले ली। इसने लोगों के उत्साह को बढ़ावा दिया तथा राष्ट्रीय गौरव को ऊँचा उठाया।

**बोध प्रश्न 3**

1 भारतीय इतिहास में असहयोग आंदोलन के प्रभाव की चर्चा कीजिए। लगभग 100 शब्दों में उत्तर लिखिए।

..........................................................................

..........................................................................

..........................................................................

..........................................................................

..........................................................................

..........................................................................

..........................................................................

..........................................................................

..........................................................................

..........................................................................

2 आंदोलन क्यों स्थगित किया गया? पाँच पंक्ति में उत्तर दीजिए।

..........................................................................

..........................................................................

..........................................................................

..........................................................................

..........................................................................

3 निम्न कथनों में कौन-से सही हैं और कौन-से गलत। सही ( √) या गलत (×) का चिन्ह लगाइये।

1 असहयोग आंदोलन पर नियंत्रण रखने के लिए ब्रिटिश सरकार ने कांग्रेस तथा ख़िलाफ़तवादियों के बीच फूट डालने की कोशिश की।
2 चौरी-चौरा घटना का गांधी जी पर कोई प्रभाव नहीं पड़ा।
3 ख़िलाफ़त आंदोलन कांग्रेस के आह्वान पर वापिस लिया गया।
4 असहयोग आंदोलन पहली बार जनता को भारतीय राजनीति की मुख्य धारा में लाया।

## 18.11 सारांश

स्वतंत्रता के लिए भारतीय संघर्ष की इतिहास यात्रा में असहयोग आंदोलन निस्संदेह एक मील का पत्थर था। रॉलट ऐक्ट के लागू होने, मोंटेग्यू-चेम्सफ़ोर्ड सुधारों, जलियाँवाला बाग हत्याकांड तथा ख़िलाफ़त समस्या ने असहयोग आंदोलन के लिए पृष्ठभूमि तैयार की।

गांधी जी ख़िलाफ़त समस्या का उपयोग ब्रिटिश सरकार के ख़िलाफ़ एक संयुक्त हिन्दू मुसलमान आंदोलन के लिए करना चाहते थे। ख़िलाफ़त समस्या का राष्ट्रीय आंदोलन में विलय हो जाने से कुछ कांग्रेस नेताओं के आरंभिक आपत्ति के बावजूद अंत में गांधी ने उन्हें ब्रिटिश राज के ख़िलाफ़ असहयोग आंदोलन शुरू करने के लिए राजी कर लिया।

आंदोलन के कार्यक्रम में सरकारी तथा शैक्षिक संस्थाओं, कानूनी अदालतों, विधायिकाओं का बहिष्कार तथा **चरखे** व **खादी** का प्रयोग इत्यादि शामिल थे। आंदोलन को भारत के विभिन्न भागों से भारी समर्थन मिला। सबसे अधिक ध्यान देने वाली बात आम जनता का राष्ट्रीय आंदोलन में पहली बार एक बड़ी संख्या में हिस्सा लेना था।

फिर भी 1921 के अंत तक आंदोलन धीरे-धीरे कांग्रेस नेतृत्व के नियंत्रण से बाहर हो गया, खासकर ग्रामीण इलाकों में। अंत में चौरी-चौरा घटना ने गांधी जी को सदमा पहुँचाया और उन्होंने आंदोलन वापिस ले लिया।

यह सत्य है कि आंदोलन अपने मुख्य लक्ष्यों ख़िलाफ़त की स्थापना तथा स्वराज की प्राप्ति को पाने में असफल रहा। किन्तु गांधी जी के अनुसार "आत्मिक शक्ति" तथा "भौतिक शक्ति" के बीच के संघर्ष से जनता में उनके राजनैतिक अधिकारों के प्रति एक नई जागरूकता आई। गांधी जी ने यह सही कहा था कि इस आंदोलन ने वह कुछ एक साल में पा लिया है जो पुराने तरीकों से तीस सालों में भी नहीं हो पाता। हमें असहयोग आंदोलन के बारे में सीमित राय के बावजूद यह मानना पड़ेगा कि ये दो साल भारतीय राष्ट्रवाद के तूफानी साल थे जब पूरा भारत पहली बार शक्तिशाली ब्रिटिश राज के ख़िलाफ़ उठ खड़ा हुआ।

## 18.12 शब्दावली

**अ. भा. का. स.** : अखिल भारतीय कांग्रेस समिति।

**असहयोग**: शैक्षिक संस्थाओं, अदालतों, परिषदों इत्यादि के बहिष्कार द्वारा प्रदर्शित अंग्रेज़ों के साथ असहयोग की नीति।

**प्रां. कां. स.**: प्रांतीय कांग्रेस समिति।

**सत्याग्रह**: सच्चाई तथा हिंसा के दर्शन पर आधारित आंदोलन का गांधीवादी तरीक़ा।

**स्वदेशी**: अपने देश में बना हुआ।

**स्वराज**: अपना शासन।

## 18.13 बोध प्रश्नों के उत्तर

**बोध प्रश्न 1**

1 1) × 2)√ 3)√ 4) × 5)√

2 आपके उत्तर में आना चाहिए कि ख़लीफ़ा को किस प्रकार अपमानित किया गया। आंदोलन की प्रमुख माँगें ख़लीफ़ा के नियंत्रण की पुनर्स्थापना, ख़लीफ़ा के इलाकों की वापसी आदि थीं।
भाग 18.3 देखिए।

**बोध प्रश्न 2**

1 विद्यालयों, कालेजों, परिषदों इत्यादि का बहिष्कार तथा **चरखा**, **खादी**, इत्यादि का प्रयोग।

भाग 18.4 देखिए।

2 दो या तीन इलाकों जैसे यू.पी., बिहार इत्यादि का उदाहरण देते हुए आपको किसानों के आंदोलन में हिस्सा लेने के कारण बताते हुए उनकी सहज प्रतिक्रिया के बारे में लिखना है।

भाग 18.6 तथा 18.7 देखिए।

3 1) √ 2) × 3) √

**बोध प्रश्न 3**

1 आपका उत्तर इस आंदोलन के सामाजिक, आर्थिक तथा राजनैतिक प्रभाव के बारे में होना चाहिए।
भाग 18.11 देखिए।

2 आपको गांधी जी तथा अन्य नेताओं द्वारा दिए गए स्पष्टीकरण के बारे में लिखना है।
भाग 18.10 देखिए।

3 1) √ 2) × 3) × 4) √

# इकाई 19 अकाली आंदोलन

## इकाई की रूपरेखा


19.0 उद्देश्य
19.1 प्रस्तावना
19.2 सिख समाज में कुरीतियाँ और प्रारंभिक सुधार
19.2.1 निरंकारी आंदोलन
19.2.2 नामधारी आंदोलन
19.2.3 सिंह सभा आंदोलन
19.3 अकाली आंदोलन
19.3.1 गुरुद्वारों के धन का दुरुपयोग
19.3.2 स्वर्ण मंदिर और अकाल तख्त पर नियंत्रण के लिए संघर्ष
19.3.3 ननकाना दुर्घटना
19.3.4 तोशाखाना कुंजी समस्या
19.3.5 गुरु-का-बाग मोर्चा
19.3.6 नाभा में अकाली आंदोलन
19.4 गुरुद्वारा बिल का पारित होना और अकाली आंदोलन की समाप्ति
19.5 सारांश
19.6 शब्दावली
19.7 बोध प्रश्नों के उत्तर


## 19.0 उद्देश्य

इस इकाई में सिख समुदाय में हुए सामाजिक सुधारों और विशेषत: अकाली आदोलन के बारे में बताया जाएगा। इस आंदोलन से सिख समुदाय में सामाजिक और बौद्धिक परिवर्तन आया और राष्ट्रीय भावना की स्थापना हुई। इस इकाई को पढ़ने के बाद आप :

- अकाली आंदोलन से पूर्व हुए विभिन्न सुधार आंदोलनों के बारे में जानकारी हासिल कर सकेंगे,
- अकाली आंदोलन के कारणों को स्पष्ट कर सकेंगे,
- अकाली आंदोलन के मुख्य तथ्यों के बारें में बता सकेंगे, और
- अकाली आंदोलन में गुरुद्वारा बिल के महत्व को बता सकेंगे।

## 19.1 प्रस्तावना

आपने इकाई 8 में पढ़ा है कि 18वीं और 19वीं शताब्दी का समय भारत में सामाजिक और धार्मिक जागृति तथा सुधारों का समय था। सामाजिक जीवन में इन सुधारों ने अंधविश्वास और जाति व्यवस्था पर आक्रमण किया। इन आंदोलनों ने सती प्रथा, स्त्री-शिशु हत्या और बाल विवाह उन्मूलन के कार्य किए। इन्होंने विधवा विवाह, स्त्रियों के लिए समान वेतन और आधुनिक शिक्षा का आह्वान किया। इन सुधार आंदोलनों ने मुख्य रूप से हिन्दू समुदाय में व्याप्त कुरीतियों पर ही ध्यान दिया। इसी समय, दूसरे समुदायों में जैसे मुसलमान और सिक्खों में भी सामाजिक और धार्मिक सुधार चल रहे थे। सिख जाति को भी, जो सिख गुरुओं के मार्ग से भटक गई थी, सामाजिक और धार्मिक सुधार की आवश्यकता थी।

उन्नीसवीं शताब्दी के सामाजिक और धार्मिक आंदोलनों की चर्चा हो चुकी है इस इकाई में हम सिख समदाय में हो रहे सामाजिक और धार्मिक सुधारों की चर्चा करेंगें—विशेष तौर से इसमें अकाली आंदोलन का योगदान। अकाली आंदोलन ने सिख समदाय के सामाजिक दृष्टिकोण में परिवर्तन लाने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई और इसके साथ-साथ उसे राष्ट्रीय आंदोलन की मुख्यधारा से भी जोड़ा। अकाली आंदोलन की पूर्ण रूप से चर्चा करने से पूर्व संक्षिप्त रूप से उन आंदोलनों की चर्चा करना भी संगत होगा जिनके द्वारा सामाजिक जागृति उत्पन्न हुई और गुरुद्वारा सुधार के लिए अकाली आंदोलन प्रारंभ हो सका।

## 19.2 सिख समाज में कुरीतियाँ और प्रारंभिक सुधार

जैसा कि आप पढ़ चुके हैं कि सिख धर्म जातिगत भेदभाव और धर्म के मूल तत्वों से हटकर कर्मकाण्डों की प्रतिष्ठा और धर्म पर पुरोहितों के स्वामित्व जैसी कुरीतियों के विरोध में प्रारंभ हुआ। इसके संस्थापक गुरु नानक देव, एक-ईश्वर और विश्व-बंधुत्व में विश्वास रखते थे। उन्होंने बेकार के धर्म कृत्यों और कर्मकाण्डों की निन्दा की और एक-ईश्वर में विश्वास का प्रचार किया। मध्यकालीन दूसरे संतों की तरह उन्होंने भी अच्छे कार्यों और सच्चे जीवन पर बल दिया। नानक जी ने कहा, "सत्य उच्च है, परन्तु सत्य जीवन उच्चतम है"। अपनी शिक्षाओं को मूर्त रूप देने के लिए गुरु नानक ने **संगत** (सभा) और **पंगत**, एक पंक्ति में बैठकर **लंगर** (निःशुल्क भोजन) करने जैसी संस्थाओं की स्थापना की। गुरु नानक ने नारी-समानता की वकालत भी की। नानक जी ने यह भी कहा, "नारियों का अपमान क्यों करें, ये तो राजाओं और महापुरुषों को जन्म देने वाली हैं"। उन्होंने समाज में व्याप्त कई प्रकार की कुरीतियों का विरोध किया और न्यायसंगत सामाजिक व्यवस्था का आह्वान किया। किन्तु गुरु नानक और उत्तरवर्ती सिख गुरुओं की ये साधारण-सी व्यावहारिक शिक्षाएँ लोगों ने ठीक से नहीं अपनाईं। कालान्तर में सिख धर्म ने अपने पाँव जमा लिये और अपने धर्मकृत्यों की स्थापना कर ली। रणजीत सिंह द्वारा सिख राज्य की स्थापना से धार्मिक स्थानों में आडंबर प्रारम्भ हुए। इन्हीं कुरीतियों की सिख गुरु और दूसरे सामाजिक सुधारकों ने निंदा की थी। उसी समय सिख समुदाय में कई सामाजिक और धार्मिक आंदोलन चल पड़े। हम यहाँ कुछ महत्वपूर्ण आंदोलनों का अध्ययन करेंगे।

### 19.2.1 निरंकारी आंदोलन

बाबा दयाल दास, जो एक सन्तवृत्ति के थे और महाराजा रणजीत सिंह के समकालीन थे, सिख धर्म सुधारकों में सर्वप्रथम आगे आए। उन्होंने सिख समाज में धीरे-धीरे आ रही सामाजिक कुरीतियों की निंदा की। बाबा दयाल ने मकबरों और कब्रों की पूजा का विरोध किया। उन्होंने **आनन्द कारज**, (विवाह) का सरलीकरण किया, जिसने 1909 में आनन्द विवाह अधिनियम के रूप में पारित होकर कानूनी मान्यता प्राप्त की। इस विवाह पद्धति में विवाह **गुरु** ग्रन्थ साहिब की उपस्थिति में ग्रंथी द्वारा, ग्रन्थ साहिब से चार उचित पदों के गायन द्वारा सम्पन्न होता है और कोई धार्मिक कृत्य नहीं होता। दहेज, बारात, शराब, नाचना-गाना वर्जित होता है।

बाबा दयाल का देहावसान 30 जनवरी, 1855 में हुआ और उनके पुत्र बाबा दरबारा सिंह ने अपने पिता की शिक्षाओं का प्रचार जारी रखा। दरबारा सिंह का काफी विरोध हुआ। स्वर्ण मंदिर के मुख्य ग्रन्थी ने उन्हें मंदिर में प्रवेश कर आनन्द कारज पद्धति के अनुसार विवाह नहीं करने दिया। बाबा दरबारा सिंह के देहावसान पर उनके भाई रत्न चन्द ने जिन्हें प्रेम से बाबा रता जी कहते थे, उनके कार्य को आगे बढ़ाया। यह जानकर आश्चर्य होता है कि सिख **धर्म में प्रथम सामाजिक सुधारकों में आमतौर पर अमृत छके सिख नहीं थे, परन्तु वे लोग थे** जो सिख परंपरा और सामाजिक जीवन की सादगी से प्रेम और उन मूल्यों का आदर करते थे। यह आंदोलन "निरंकार" (आकार रहित ईश्वर) के नाम से प्रसिद्ध है। बाबा दयाल ने मानव-गुरुओं की पूजा का विरोध किया और अपने अनुयायियों से आशा की कि वे आकार रहित ईश्वर की पूजा करें। "**जपो प्यारियो धन्न निरंकार, जो देह धारी सब खुवार**" —आकार रहित ईश्वर की उपासना करो, देहधारी से भ्रमित न हों।

### 19.2.2 नामधारी आंदोलन

नामधारी आंदोलन कूका आंदोलन के रूप में प्रसिद्ध है, इसके अनुयायी जब हर्षोन्माद में होते थे तो **कूका** (चीखते) करते थे। भगत, जवाहरमल और बाबा बालक सिंह ने इस आंदोलन का शुभारंभ किया और इस आंदोलन ने बाबा राम सिंह के नेतृत्व में सिखों में सामाजिक और धार्मिक जागृति पैदा की। राम सिंह ने अपने अनुयायियों को एक ईश्वर की उपासना, प्रार्थना और ध्यान द्वारा करने का उपदेश दिया। उन्होंने अपने अनुयायियों को सुझाव दिया कि वे सदा ईश्वर की आराधना में लगे रहें। उन्होंने जातिप्रथा, स्त्री शिशु हत्या, बाल विवाह और विवाह में कन्याओं की अदला-बदली जैसी सामाजिक कुरीतियों के विरोध में प्रचार किया। उन्होंने आसान और सस्ती आनन्द विवाह पद्धति को प्रोत्साहन दिया। राम सिंह के उपदेशों का सिख जनता पर बहुत प्रभाव पड़ा। समकालीन यूरोपीय अधिकारियों ने बाबा राम सिंह की प्रसिद्धि और प्रचार कार्य को गंभीरता से लिया, जोकि सरकार के निम्न संसदीय पेपर से विदित होता है :

> ''······· उस (राम सिंह) ने सिखों में जाति भेदभाव का उन्मूलन किया, सब जातियों में भेदभाव रहित विवाह की वकालत की, विधवा विवाह का उपदेश दिया, जो उसने स्वयं कराए, उसने कभी भिक्षा नहीं ली और अपने अनुयायियों को भी भिक्षा न लेने का और शराब के सेवन तथा नशे का निषेद्ध किया······ उसने अपने शिष्यों को स्वच्छता, सत्य बोलने और प्रत्येक को लाठी रखने का आह्वान किया और उन्होंने उसका पालन किया। ग्रंथ ही को उन्होंने अपना प्रेरणा स्रोत माना है। उनकी पगड़ी की गांठ **शीदपग** —जोकि श्वेत ऊनी गांठों की कंठहार सी होती है, से उनका भ्रातृत्व झलकता है, वे सभी माला रखते हैं और माला फेरते भी हैं।''

यद्यपि बाबा राम सिंह का प्रचार कार्य सही जीवन-यापन, सहिष्णुता और क्षमा पर आधारित था, किन्तु उनके कुछ अनुयायी अनुशासनहीन थे और धार्मिक उन्माद में कुछ ऐसे कार्य कर गए, जिनसे उनकी सरकार से टक्कर हो गई। उनके कई कट्टर अनुयायी गो-हत्या पर भड़क उठे और उन्होंने अमृतसर, राजकोट और मलेरकोटला में कई कसाइयों का वध कर दिया। दण्ड-स्वरूप उनको तोपों के मुँह से बाँध कर उड़ा दिया गया। यह आंदोलन सामाजिक था अथवा राजनीतिक, इस विषय पर विद्वानों में मतभेद है, किन्तु कूकाओं के ऊपर सरकारी जुल्म ने जनता में ब्रिटिश सरकार के प्रति घृणा फैला दी। इसने बीसवीं शताब्दी के प्रारम्भ में होने वाले अकालियों के संघर्ष की पृष्ठभूमि बनाई।

### 19.2.3 सिंह सभा आंदोलन

आने वाले वर्षों में कूकाओं के उत्पीड़न और उनके आंदोलन के दमन के फलस्वरूप 1873 में सिंह सभा आंदोलन का जन्म हुआ। सिंह आंदोलन सभा के कार्यकलापों का सिख जनता पर बहुत प्रभाव पड़ा। सिंह सभा के संस्थापक, जिनमें बहुत से शिक्षक मध्यम वर्ग के थे, पंजाब के अन्य सामाजिक और धार्मिक आंदोलनों से भी संबंधित थे। उन्हें देश के अन्य भागों में ऐसे ही अन्य आंदोलनों का ज्ञान था। उनका विश्वास था कि सिख समुदाय में ये कुरीतियाँ अशिक्षा के कारण हैं। उन्होंने समझा कि सामाजिक और धार्मिक सुधार तभी सम्भव है जबकि जनता को अपनी प्राचीन परंपरा की जानकारी हो।

सिंह सभा ने सामाजिक और धार्मिक सुधार के लिए शिक्षा का प्रसार किया और जानबूझकर राजनीतिक प्रश्नों से बचने का प्रयास किया, ताकि ब्रिटिश शासकों के कोप-भाजन से बचा जा सके।

सिंह सभा के नेताओं ने, जोकि बड़े ज़मींदार थे अथवा ''सिख जनता के हितों'' को समझते थे, ब्रिटिश शासकों को अप्रसन्न नहीं किया। इस आंदोलन के प्रचारक ब्रिटिश सरकार को सभी सामाजिक और धार्मिक बुराइयों के लिए सीधे उत्तरदायक नहीं मानते। फिर भी वे प्रचारक ब्रिटिश सरकार को उस समय गिरती हुई स्थिति के लिए दोषी ठहराने से पूर्णरूपेण न बचा सके। पंजाब में रणजीत सिंह राज्य की खुशहाली की चर्चा करते हुए उन्होंने वर्तमान में सिखों के अध:पतन को मुगल काल के समतुल्य बताया। उनका मानना था कि मुगल और ब्रिटिश की समतुल्यता ''कारणों की समतुल्यता'' के कारण है।

फिर भी सिंह सभा की महत्वपूर्ण देन खालसा कॉलेज, विद्यालय और दूसरे शिक्षण केंद्रों की शृंखलाबद्ध स्थापना है। सिंह सभा के नेता अनुभव करते थे कि सिखों में शिक्षा प्रसार हेतु

ब्रिटिश शासकों का सहयोग अनिवार्य है। अतः उन्होंने वायसराय और अन्य ब्रिटिश अधिकारियों की संरक्षता प्राप्त की। लाहौर में खालसा दीवान की स्थापना के तुरन्त बाद एक आंदोलन प्रारंभ हुआ कि सिखों के लिए केंद्रीय कॉलेज स्थापित किया जाए, जिसके साथ बाहरी जिलों के विद्यालय संबंधित किए जाएँ। सिंह सभा के शैक्षणिक कार्यों को भारत सरकार, ब्रिटिश अधिकारियों और शासकों तथा सिख राजाओं का प्रोत्साहन और संरक्षण मिला। सिंह सभा ने अमृतसर में 1892 में खालसा कॉलेज की स्थापना की।

यद्यपि खालसा कॉलेज को संस्थापकों और ब्रिटिश संरक्षकों ने शुद्ध शैक्षणिक विकास के लिए स्थापित किया था, किन्तु इसके कुछ विद्यार्थी और शिक्षक उस समय प्रान्त में चल रही राजनीतिक अस्थिरता और बढ़ती राष्ट्रीयता से अपने को अलग न रख सके। 1907 में गुप्तचर विभाग ने अधिकारियों को सूचित किया कि खालसा कॉलेज "छात्रों में राष्ट्रीय भावना के विकास का एक महत्वपूर्ण केन्द्र बन गया है।" राजनीतिक रूप से सचेत शिक्षकों और गोपालकृष्ण गोखले एवं महात्मा गांधी सरीखे राष्ट्रीय नेताओं से प्रेरणा लेकर छात्रों ने दो बार यूरोपीय अधिकारियों के समक्ष, जब वे कॉलेज में राष्ट्रीयता को दबाने के उपाय सुझाने आए, प्रदर्शन किया। सिख-शिक्षा कान्फ्रेंस के माध्यम से सिंह सभा ने खालसा विद्यालयों की शृंखला स्थापित की, जिन्होंने अपरोक्ष रूप से सामाजिक चेतना और सुधार के केन्द्रों का कार्य किया। सिख समुदाय में हुए सामाजिक और धार्मिक आंदोलनों ने सिखों के जीवन में धीरे-धीरे जड़ पकड़ती बुराइयों की ओर संकेत किया और उन्हें सुधार के लिए प्रेरित किया। बीसवीं शताब्दी के आरंभ में, पंजाब में राजनीतिक अस्थिरता, राष्ट्रीय समाचारपत्रों के प्रभाव और देश में राष्ट्रीय जागृति से सिखों में असंतोष फैला और आने वाले अकाली आंदोलन की पृष्ठभूमि बना, जोकि एक ओर तो सिख गुरुद्वारों में **महन्तों** और दूसरे स्वार्थी लोगों के विरुद्ध था, दूसरी ओर पंजाब में ब्रिटिश साम्राज्यवाद के विरुद्ध था। इसके बारे में हम अगले भाग में पढ़ेंगे।

**बोध प्रश्न 1**

1 उन मुख्य बुराइयों को लिखें, जिनके विरुद्ध सिख समाज सुधारक लड़े।

.................................................................

.................................................................

.................................................................

.................................................................

.................................................................

2 आनन्द कारज विवाह क्या है ? किसने इस पद्धति का समर्थन किया।

.................................................................

.................................................................

.................................................................

.................................................................

.................................................................

3 कूका आन्दोलन का क्या महत्व है ?

.................................................................

.................................................................

.................................................................

.................................................................

.................................................................

4 शिक्षा के क्षेत्र में सिंह सभा आंदोलन का क्या योगदान है ?

.................................................................

........................................................................

........................................................................

........................................................................

## 19.3 अकाली आंदोलन

सिख सुधारकों ने अकाली आंदोलन को अपने धार्मिक स्थानों में धीरे-धीरे फैल रही सामाजिक कुरीतियों को हटा कर उन्हें पवित्र रखने के लिए प्रारंभ किया। सिख मंदिर, जिन्हें **गुरुद्वारा** अथवा **धर्मशाला** कहते हैं, सिख गुरुओं ने सामाजिक, धार्मिक और नैतिक शिक्षा के केन्द्र के रूप में और निर्धन तथा दुखी लोगों को भोजन व आवास देने के लिए स्थापित किए। वहाँ सिख धर्म की मानव समानता की शिक्षाओं पर अमल किया जाता था। सभी व्यक्ति बिना किसी जाति, रंग और लिंग भेद के प्रत्येक गुरुद्वारे से संबंधित **लंगर** (सामाजिक भोजन) में प्रवेश कर निःशुल्क भोजन प्राप्त कर सकते थे। समकालीन लेखकों का मत है कि सिख सामाजिक और धार्मिक कृत्यों में ब्राह्मणों के प्रभुत्व को नहीं मानते थे। चारों **वर्णों** के लोग सिख गुरुद्वारों में बिना रोकटोक प्रवेश पाकर पवित्र **प्रसाद** और **लंगर** में निःशुल्क भोजन कर सकते थे।

सिखों की पवित्र परंपरा के अनुसार गुरुद्वारा प्रबंधक गुरुद्वारों के मुख्य दान को अपने निजी काम में नहीं लाते थे, बल्कि उसे लंगर और दूसरे सामाजिक हित के कार्य में लगाते थे। दसवें गुरु गोविंद सिंह के देहावसान के बाद, सिखों के उत्पीड़न के समय सिख गुरुद्वारों का प्रबन्ध **उदासियों** ने संभाला। ये सिख धर्म को तो मानते थे, किन्तु उनके बाहरी चिह्नों को अक्षरशः नहीं मानते थे। अतः वे उत्पीड़न से बच गए। उस समय कई गुरुद्वारों के उदासी प्रमुखों ने गुरुद्वारों को चलाने में सिख धर्म की महत्वपूर्ण सेवा की। उनका उच्च नैतिक चरित्र और ईमानदारी के लिए काफी आदर था। बहुत से **उदासी** किसी भी गुरुद्वारे और उसकी सम्पत्ति से संबंधित नहीं थे, परन्तु स्थान-स्थान पर घूमते रहते थे। कुछ ऐसे भी थे, जिन्होंने स्थायी संस्थाएँ और अपने अनुयायी भी बना लिये, उन्हें **महन्त** कहते हैं। प्रारम्भ में इन **महन्तों** का अपने क्षेत्र की संगत में विश्वास और आदर था। उन्होंने गुरु नानक के इस उपदेश का पालन किया कि दान की लालसा नहीं होनी चाहिए। अधिकांश महंतों ने शुद्धता और सादगी की इस परंपरा को छोड़ दिया क्योंकि उनमें से अधिकांश महंतों की आमदनी काफी बढ़ गई थी। इस आय का मुख्य स्रोत महाराजा रणजीत सिंह और अन्य सिख सरदारों से प्राप्त कर मुक्त जागीर थीं।

### 19.3.1 गुरुद्वारों के धन का दुरुपयोग

अठारहवीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध में शक्तिशाली सिख सरदारों के उदय और 1799 में रणजीत सिंह द्वारा राज्य स्थापना से सिख धर्म में महत्वपूर्ण परिवर्तन हुआ। धार्मिक स्थानों के साथ जुड़ी सम्पत्ति और विशेषाधिकारों के कारण कई जटिल धर्मकृत्य और कर्मकाण्डों का आरम्भ हुआ तथा धनिक और शक्तिशाली **महन्तों** का उदय हुआ। लगभग सभी प्रसिद्ध गुरुद्वारों को महाराजा रणजीत सिंह और दूसरे सिख सरदारों ने करमुक्त जागीरें प्रदान की थीं। सहसा पैसे आने से कई महत्वपूर्ण गुरुद्वारों के **महन्तों** के जीवन-स्तर में परिवर्तन आ गया। वे अपने गुरुद्वारे की न्यास सम्पत्ति को अपनी निजी सम्पत्ति में बदलने लगे। यह सिख गुरुओं और सिख धर्मशास्त्रों के उपदेशों के बिल्कुल प्रतिकूल था। धीरे-धीरे **महन्त** और उनके अनुयायी विलासपूर्ण जीवन-यापन करने लगे और कई सामाजिक कृत्यों में भी पड़ गए। सिख धर्म के अनुयायियों ने **महन्तों** की इन कुरीतियों को हटाने के लिए सामाजिक विरोध किया और सिख गुरुद्वारों को वंशानुगत **महन्तों** से मुक्त कराने के लिए एक सामाजिक आंदोलन चलाया। इस आंदोलन को अकाली आंदोलन कहते हैं, क्योंकि इस सुधार का नेतृत्व अकाली **जत्थों** (स्वयंसेवकों का समूह) ने किया।

## 19.3.2 स्वर्ण मंदिर और अकाल तख्त पर नियंत्रण के लिए संघर्ष

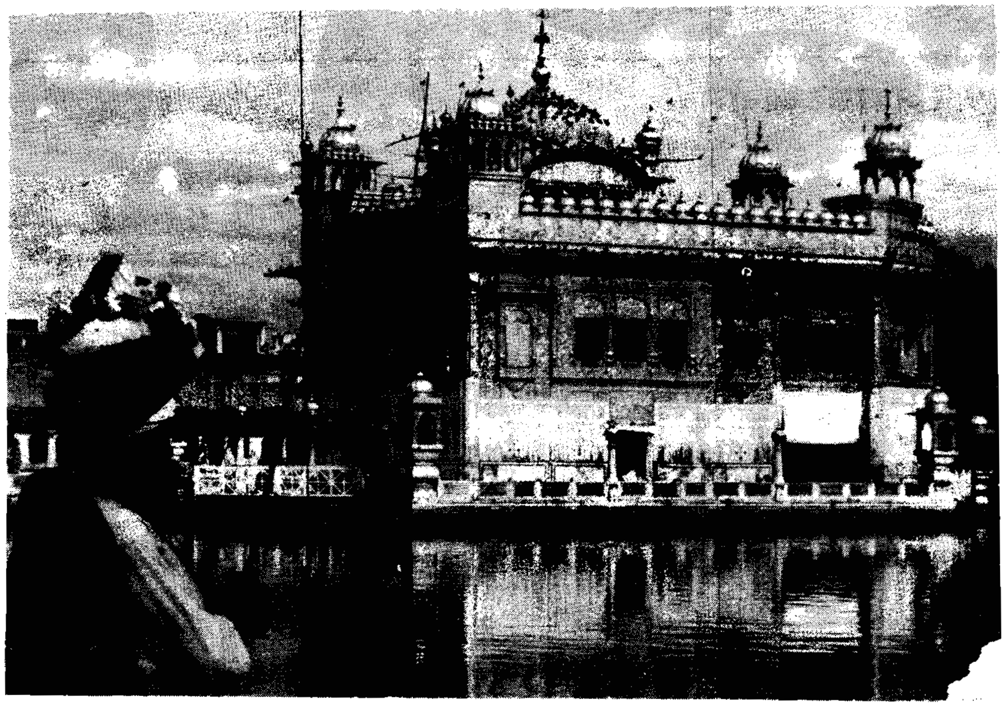

12 स्वर्ण मंदिर, अमृतसर

अमृतसर को, जिसे पहले रामदासपुर और गुरु का चक कहते थे, चौथे गुरु रामदास जी ने 1577 में बसाया। पाँचवें गुरु अर्जनदेव जी ने 1589 में मंदिर की स्थापना की, जोकि स्वर्ण मंदिर के नाम से प्रसिद्ध है। छठे गुरु हरगोविन्द ने अकाल तख्त का निर्माण किया और उसे ऐहिक सिख पीठ घोषित किया। प्रारंभ में स्वर्ण मंदिर और अकाल तख्त की देख-रेख भाई मनी सिंह जैसे सक्षम और पवित्र ग्रन्थी करते थे। किन्तु पंजाब के मुगल गवर्नरों के हाथों सिखों के उत्पीड़न और बाद में अब्दाली आक्रमक – अहमदशाह अब्दाली के समय में इन दो महत्वपूर्ण सिख केन्द्रों का प्रबन्ध उदासी महन्तों पर आ पड़ा। महाराजा रणजीत सिंह के शासनकाल में मंदिर को संगमरमर और स्वर्ण जड़ित फलकों से खूब सजाया गया। अतः यह स्वर्ण मंदिर के नाम से प्रसिद्ध हुआ। इन मंदिरों के साथ करमुक्त जागीर भी लगा दी गई। 1849 में पंजाब के ब्रिटिश भारत में विलय के बाद ब्रिटिश सरकार ने इन दोनों स्थानों का प्रबन्ध सम्भाल लिया और उनके कार्यों की प्रतिदिन देख-रेख के लिए एक दस सदस्य कमेटी का एक "**सर्बराह**" की अध्यक्षता में गठन किया। (देखें जान मेनार्ड "पंजाब में सिख समस्या" कन्टेम्प्रेरी रिव्यू, सितम्बर 1923, पृष्ठ 295)।

**कुप्रबन्ध और भ्रष्टाचार**

सरकार द्वारा सर्बराह की नियुक्ति ने कई समस्याएँ उत्पन्न कर दीं। सर्बराह लोगों का ध्यान नहीं रखता था, परन्तु अपने नियोजक–अमृतसर के डिप्टी कमिश्नर को प्रसन्न करने में लगा रहता था। ग्रन्थी कई प्रकार की कुरीतियों, जैसे दान और दूसरी वस्तुओं के दुरुपयोग में लग गए। इन स्थानों की पवित्रता का हनन हुआ। वहाँ वेश्यालय चलने लगे, अश्लील साहित्य बिकने लगा और मंदिर में आने वाली निर्दोष महिलाओं के साथ बलात्कार होने लगा (देखें –जीवन भाई, मोहन सिंह वैद, पृष्ठ 121)।

अमृतसर के स्वर्ण मंदिर और अकाल तख्त में भ्रष्टाचार और इनके प्रबंधों पर सरकारी नियंत्रण को लेकर सिख समुदाय में सुधार आंदोलन से पूर्व ही काफी असंतोष था। सुधारक इन केन्द्र स्थानों को शीघ्रातिशीघ्र इन बुराइयों और सरकारी नियंत्रण से मुक्त करना चाहते थे। पंजाब के ब्रिटिश अधिकारियों ने किसी प्रकार के सुधार और चल रहे प्रबन्ध में परिवर्तन का विरोध किया। उनका मानना था कि इससे वे धार्मिक स्थानों का प्रयोग अपनी

शक्ति बनाये रखने और अपने राजनीतिक विरोधियों को कमजोर करने से वंचित हो जाएंगे। सामान्यतः स्वर्ण मंदिर पर सरकार द्वारा नियुक्त सर्बराहों को ब्रिटिश शासन और उसके कार्यकलापों के गुणगान के लिए उपयोग किया जाता था।

प्रबन्ध में सिख नियंत्रण के कमजोर होने और सरकारी नियंत्रण बढ़ने से मंदिर के दैनिक कार्यों में प्रबन्धक और ग्रन्थी डिप्टी कमिश्नर से आदेश लेने लगे और सिख परम्परा तथा भावनाओं की अनदेखी करने लगे। सरकार द्वारा नियुक्त सर्बराह, अपने नियोजक को प्रसन्न करने के पश्चात् अपना समय मंदिर की सम्पत्ति के दुरुपयोग में व्यतीत करने लगा और अपने धार्मिक कार्यों की अवहेलना करने लगा। मंदिर की बहुमूल्य भेंटें धीरे-धीरे सर्बराहों और ग्रन्थियों के घर जाने लगीं। मंदिर क्षेत्र पुरोहितों और ज्योतिषियों द्वारा प्रयोग होने लगा तथा गुरुद्वारों के अन्दर खुले आम मूर्ति पूजा होने लगी। समकालीन लेखों के अनुसार, **वसंत** और **होली** त्योहारों पर सभी स्थान स्थानीय बदमाशों, चोरों और दूसरे दुश्चरित्र लोगों के अड्डे बन जाते। अश्लील साहित्य खुले आम बिकता और पड़ोस के घरों में वेश्यालय खुलते, जहाँ पर पवित्र मंदिर में आने वाली महिलाएँ कामुक साधु, महन्त और उनके मित्रों की शिकार बनतीं।

## जाति के आधार पर भेदभाव

सिख धर्म में जाति के आधार पर भेदभाव नहीं है, फिर भी स्वर्ण मंदिर के मुख्य ग्रन्थी ने नीची जाति वाले मजहबी सिखों को सीधे स्वर्ण मंदिर में प्रसाद नहीं चढ़ाने दिया। उनको मंदिर में **प्रसाद** चढ़ाने के लिए एक उच्च जाति का सेवादार किराये पर लेना पड़ा। सिख जाति में कई सुधार आंदोलनों और सामाजिक धार्मिक जागृति के परिणामस्वरूप अमृतसर की सिख बिरादरी ने नीची जाति के लोगों के साथ मेल-मिलाप, अंतर्विवाह और सामाजिक भोजन की वकालत की। जब स्वर्ण मंदिर के ग्रन्थियों ने नीची जाति के लोगों को अन्दर आकर स्वयं **प्रसाद** नहीं चढ़ाने दिया तो खालसा बिरादरी ने इस विषय पर जन-जागरण कर ग्रन्थियों के अधिकार को चुनौती देने का निश्चय किया। उन्होंने 12 अक्तूबर, 1920 में, अमृतसर के जलियांवाला बाग में एक **दीवान** का आयोजन किया, जिसमें प्रो० तेजा सिंह, बाबा हरकिशन सिंह और जत्थेदार करतार सिंह झाब्बार तथा अन्य सुधार आंदोलन के प्रमुख नेताओं ने भाग लिया। **दीवान** में उन अछूतों को, जिन्होंने सिख धर्म पर आस्था जताई, अमृत छकाया गया। तत्पश्चात् प्रमुख सिख नेताओं ने उनके साथ भोजन किया और धार्मिक जुलूस के रूप में स्वर्ण मंदिर की ओर चल पड़े जब वह मंदिर में पहुँचे तो ड्यूटी वाले ग्रन्थी भाई गुरवचन सिंह ने नीची जाति वालों से प्रसाद लेने से और उनके लिए प्रार्थना करने से इनकार कर दिया। काफी विवाद के बाद निर्णय गुरु ग्रन्थ साहिब के पाठ से सुझाया गया। निर्णय सुधारवादियों के हक में गया। ग्रन्थियों ने स्थिति परिवर्तन को नहीं माना और विरोध में मंदिर से चले गये। पवित्र पुस्तक गुरु ग्रन्थ को ग्रन्थी बिना किसी को सौंपे छोड़ गए थे, सुधारको ने स्थिति पर नियंत्रण कर स्वर्ण मंदिर और अकाल तख्त के प्रबन्ध के लिए एक समिति बनाई।

अतः आपने देखा कि सुधारक :

- मंदिर प्रबन्धकों द्वारा चन्दे का दुरुपयोग
- मंदिर परिसर का असामाजिक और भ्रष्ट लोगों द्वारा प्रयोग, और
- नीची जाति वालों के पवित्र मंदिर में प्रवेश की मनाही के बारे में बहुत अधिक चिंतित थे।

**बोध प्रश्न 2**

1 सर्बराहों के अधीन सिख मंदिरों में हो रही मुख्य कुरीतियों को लिखिए।

..................................................................................

..................................................................................

..................................................................................

..................................................................................

2 धार्मिक मामलों में नीची जाति वाले लोगों से किस प्रकार भेदभाव किया गया?

......................................................................................................

......................................................................................................

......................................................................................................

......................................................................................................

......................................................................................................

3 मंदिरों के प्रबन्ध में सर्बराह सिख समाज के विचारों पर ध्यान क्यों नहीं देते थे?

......................................................................................................

......................................................................................................

......................................................................................................

......................................................................................................

......................................................................................................

### 19.3.3 ननकाना दुर्घटना

अमृतसर के स्वर्ण मंदिर और अकाल तख्त का प्रबन्ध संभालने के पश्चात् सुधारकों ने दूसरे सिख गुरुद्वारों की ओर ध्यान दिया। ननकाना में गुरु नानक देव के जन्म स्थान पर गुरुद्वारा जन्म स्थान और दूसरे मंदिरों पर वंशानुगत महन्तों का प्रभुत्व था। ननकाना के गुरुद्वारा जन्म स्थान का प्रमुख नारायण दास कई सामाजिक और धार्मिक बुराइयों, जैसे वेश्या रखना, गुरुद्वारे में नाचने वाली लड़कियों को बुलाना तथा पवित्र स्थान पर गन्दे गाने गाना आदि करने लगा। कई सिख नेताओं के विरोध के बाद भी महन्त ने उन बुराइयों को नही छोड़ा। परिणामस्वरूप 130 सुधारकों ने, जिसमें महिलाएँ भी थीं, गुरुद्वारा जन्म स्थान की ओर भाई लछमन सिंह के नेतृत्व में प्रस्थान किया। 20 फरवरी, 1921 को प्रातः जब जत्था गुरुद्वारे पर पहुँचा तो निहत्थे और शान्तिप्रिय सुधारकों पर महन्त के भाड़े के सैनिकों ने आक्रमण किया। कई सुधारक मारे गए और घायलों को वृक्षों के साथ बाँध कर जला दिया गया। साक्ष्य को नष्ट करने के लिए महन्त के आदमियों ने सभी शवों को एकत्र कर भस्म कर दिया। महन्त द्वारा जत्थे के सभी 130 व्यक्तियों की मार्मिक हत्या से देश में शोक और क्रोध की लहर दौड़ गई। महन्त के इस जघन्य कार्य की महात्मा गांधी जैसे राष्ट्रीय नेताओं ने निन्दा की। महात्मा गांधी 3 मार्च को ननकाना में अकाली सुधारकों के साथ सहानुभूति प्रकट करने आये। अपने भाषण में महात्मा गांधी ने महन्त के कार्य की निंदा की और अकाली सुधारकों को सरकारी जाँच आयोग से असहयोग का सुझाव दिया। महात्मा गांधी और अन्य राष्ट्रीय नेताओं के सुझाव पर अकाली सुधारकों ने अपने आंदोलन को और व्यापक बनाया उन्होंने दोनों ओर आक्रमण किया। एक ओर उन्होंने महन्त के भ्रष्टाचार का और दूसरी ओर पंजाब सरकार का विरोध किया। इस परिवर्तन के कारण अकाली आन्दोलनकारियों ने **तोशखाने** की कुंजी और बाद में शान्तिपूर्ण गुरु-का-बाग संघर्ष में भाग लिया।

### 19.3.4 तोशखाना कुंजियों की समस्या

जैसे पहले कहा गया है कि जब ग्रन्थी अमृतसर के स्वर्ण मंदिर और अकाल तख्त को छोड़ गए तो अकाली सुधारकों ने इनका प्रबन्ध सम्भाल कर इनके लिए एक समिति का गठन किया। समिति ने सरकार द्वारा नियुक्त प्रबन्धक को तोशखाना (कोष) की कुंजियाँ देने को कहा। इससे पहले कि प्रबन्धक कुंजियाँ दे पाता तभी ब्रिटिश डिप्टी कमिश्नर उससे कुंजियाँ लेकर चला गया। सरकार के इस कार्य ने सिख जाति में गहरा असंतोष उत्पन्न किया। कुंजियों को वापस लेने के लिए अकाली सुधारकों ने एक शक्तिशाली आंदोलन प्रारम्भ किया जो "कुंजियों की समस्या" के नाम से प्रसिद्ध है। इस आंदोलन में सिख सुधारकों का साथ

पंजाब में कांग्रेस के स्वयंसेवकों ने भी दिया। महात्मा गांधी का असहयोग आंदोलन चल रहा था, तभी पंजाब सरकार ने कांग्रेस कार्य से अकाली सुधारकों को अलग करने के लिए "कुंजी समस्या" के सम्बन्ध में गिरफ्तार सभी अकाली स्वयंसेवकों को छोड़ दिया और स्वर्ण मंदिर के कोष की कुंजियाँ सभा के प्रधान को सौंप दीं। राष्ट्र ने अकाली सुधारकों की इस विजय को राष्ट्रीय शक्तियों की विजय माना। इस अवसर पर महात्मा गांधी ने बाबा खड़क सिंह, अध्यक्ष शिरोमणि गुरुद्वारा प्रबन्धक कमेटी को निम्न तार दिया:

"भारत की स्वतंत्रता के प्रथम युद्ध में विजय हुई। मुबारक हो।"

फरवरी, 1922 में चौरी-चौरा हिंसा तथा महात्मा गांधी और अन्य राष्ट्रीय नेताओं की गिरफ्तारी के परिणामस्वरूप असहयोग आंदोलन स्थगित हुआ। इसके बाद पंजाब सरकार ने अकाली सुधारकों को "पाठ" पढ़ाने की सोची। इसने एक और आंदोलन को जन्म दिया, जोकि **गुरु-का-बाग** मोर्चा के नाम से प्रसिद्ध है।

**बोध प्रश्न 3**

1 ननकाना दुर्घटना क्यों हुई ?

..........................................................................

..........................................................................

..........................................................................

..........................................................................

..........................................................................

2 अकाली आंदोलन राष्ट्रीय आंदोलन के सम्पर्क में कैसे आया ?

..........................................................................

..........................................................................

..........................................................................

..........................................................................

..........................................................................

3 कुंजियों की समस्या क्या थी ? ब्रिटिश सरकार ने इस विषय में क्यों घुटने टेक दिए ?

..........................................................................

..........................................................................

..........................................................................

..........................................................................

..........................................................................

## 19.3.5 गुरु-का-बाग मोर्चा

जैसे पूर्व कहा गया है कि कुंजियों की समस्या के सम्बन्ध में पकड़े गए अकाली कैदियों की बिना शर्त रिहाई और सभा को कुंजियों की वापसी से पंजाब सरकार की प्रतिष्ठा को धक्का लगा। पंजाब सरकार के अधिकारियों ने अपनी खोई हुई प्रतिष्ठा को पुनः प्राप्त करने के लिए गुरु-का-बाग गुरुद्वारे के सूखे कीकर वृक्षों की लकड़ी काट रहे अकाली स्वयंसेवकों को गिरफ्तार कर लिया। पुलिस का तर्क था कि सूखी लकड़ी गुरुद्वारे के महन्त की निजी सम्पत्ति है और अकाली सुधारक इनको लंगर के लिए ले जाकर "चोरी" कर रहे हैं। सूखी लकड़ियों को लंगर के लिए काटने के अधिकार के समर्थन में अकाली जत्थे गुरु-का-बाग की ओर चल पड़े, जहाँ पुलिस ने इन सुधारकों को गिरफ्तार कर लिया।

**13 गुरु-का-बाग की तरफ बढ़ते हुए स्वयंसेवक**

5,000 सुधारकों को गिरफ्तार करने के पश्चात् पंजाब सरकार की जेलों में इन सुधारकों के लिए स्थान न रहा। वे उनकी निष्ठुरता से पिटाई, जब तक वे बेहोश न हों, करने लगे। पिटाई के बाद उन्हें रिहा कर दिया जाता। गुरु-का-बाग के इस दमन से अकाली सुधारकों ने राष्ट्रीय नेताओं और समाचारपत्रों की सहानुभूति और समर्थन प्राप्त किया। आदरणीय सी.एफ. एड्रयूज – एक ब्रिटिश मिशनरी, जोकि भारतीय राजनीतिक चेतना के प्रति सहानुभूति रखते थे, गुरु-का-बाग में अकालियों की पिटाई देखकर और निर्दोष अकाली स्वयंसेवकों के कष्टों को देखकर इतना द्रवित हुए कि उन्होंने "पुलिस के कार्य को अमानवीय, पाशविक, बुरा और कायराना, एक अंग्रेज़ के लिए अविश्वसनीय और इंग्लैंड की नैतिक हार कहा।"

इस सरकारी कार्य की राष्ट्रीय नेताओं द्वारा आलोचना और उसे समाचारपत्रों के खूब उछालने पर पंजाब के गवर्नर ने गुरु-का-बाग अकाली जत्थों की पिटाई रोकने का पुलिस को आदेश दिया। गुरु-का-बाग आंदोलन में सभी गिरफ्तार व्यक्तियों को बिना शर्त छोड़ दिया गया तथा स्वयंसेवकों को बाग से लकड़ी काटकर गुरु-का-बाग गुरुद्वारे के लंगर में ले जाने की अनुमति दे दी गई।

**14 गुरु-का-बाग में हुई गिरफ्तारियाँ**

### 19.3.6 नाभा में अकाली आंदोलन

''कुंजियों की समस्या'' और गुरु-का-बाग के दोनों आंदोलनों में अकाली सुधारकों की जीत से अकाली नेताओं की शक्ति, प्रतिष्ठा और मनोबल को बहुत बल मिला। अपनी इस जीत की घड़ी में उन्होंने एक और आंदोलन का सूत्रपात किया। उन्होंने नाभा के महाराजा रिपुदमन सिंह, जिसे ब्रिटिश सरकार ने बलपूर्वक सिंहासन से हटा दिया था, पुनः स्थापना की माँग की। इस विषय का अकाली आंदोलनों से सीधा सम्बन्ध नहीं था, क्योंकि अभी तक इन आंदोलनों के मुख्य विषय सामाजिक और धार्मिक सुधार ही थे। अकाली सुधारकों का प्रान्त में एक शक्तिशाली राष्ट्रीय विरोध के रूप में उदय होने के कारण कांग्रेस नेतृत्व ने उनके नाभा आंदोलन का समर्थन किया। नई दिल्ली में सितम्बर, 1923 में कांग्रेस कार्यसमिति के विशेष अधिवेशन ने जवाहरलाल नेहरू, ए. टी. गिडवानी और के. सन्थानम को नाभा में पर्यवेक्षक के रूप में भेज कर स्थिति की सूचना कार्यसमिति को देने का निर्णय लिया। नेहरू और उसके सहयोगियों को नाभा के क्षेत्र में प्रवेश करते ही गिरफ्तार कर लिया गया और उनको मनगढ़त अपराधों के अधीन जेल भेज दिया गया। अपने नाभा जेल के प्रवास में कांग्रेस पर्यवेक्षकों को अकाली संघर्ष का आंतरिक ज्ञान ही नहीं हुआ, बल्कि ब्रिटिश प्रशासन के अधीन नाभा के सिख राज्य में न्याय व्यवस्था की मनमानी का भी पता चला। जवाहरलाल नेहरू ने 23 नवम्बर, 1923 में नाभा जेल में अपने लेख में नाभा की न्याय व्यवस्था की मनमानी और कुटिलता के कारण आलोचना की है और अकालियों के साहस और बलिदान की प्रशंसा की। (देखें एस. गोपाल द्वारा संपादित ''**सलेक्टिड वर्क्स ऑफ जवाहरलाल नेहरू**'', प्रथम खंड पृष्ठ 369-375)। मूल हस्तलिखित लेख का अन्तिम भाग इस प्रकार है:

> ''मुझे प्रसन्नता है कि मुझ पर उन कार्यों के लिये मुकदमा चलाया जा रहा है, जिसे सिखों ने अपना लिया है। मैं जेल में था, जब सिख जनता गुरु-का-बाग आंदोलन में जी जान से जूझकर जीती। मैं अकालियों के साहस और बलिदान से प्रभावित था और चाहता था कि मुझे उनके किसी सेवा कार्य का सुअवसर मिले, ताकि मैं उनके प्रति गहरी प्रशंसा व्यक्त कर सकूँ। वह अवसर अब मिल गया है और मैं पूर्ण आशा करता हूँ कि मैं उनकी उच्च परम्परा और अदम्य साहस के अनुरूप बन सकूँगा। **सत् श्री अकाल।**''
>
> सेण्ट्रल जेल — जवाहरलाल नेहरू
> नाभा — सितम्बर 25, 1923

## 19.4 गुरुद्वारा बिल का पारित होना और अकाली आंदोलन की समाप्ति

नाभा में अकाली आंदोलन का नाभा के ब्रिटिश प्रशासक और पटियाला के सिख महाराजा भूपिन्दर सिंह ने कड़ा विरोध किया। फरवरी, 1924 में जैतो में शहीदी जत्थे पर गोली चलने से आंदोलन ने फिर गंभीर मोड़ ले लिया। अकाली आंदोलन से ब्रिटिश सेना में सिख सैनिक प्रभावित हो सकते थे। साथ ही अकाली आंदोलनों द्वारा कांग्रेस के आदर्श और कार्यक्रमों का पंजाब के सिख कृषकों पर प्रभाव पड़ रहा था। इन घटनाओं के कारण पंजाब सरकार ने मजबूर होकर अकाली समस्या सुलझाने के लिए जुलाई, 1925 में एक बिल पारित किया, जिससे सिख समाज को अपने गुरुद्वारों के प्रबन्ध के लिए कार्यकर्त्ताओं के चुनाव का कानूनी अधिकार मिला। इस अधिनियम ने महन्तों के वंशानुगत अधिकार को समाप्त कर गुरुद्वारा प्रबन्ध के लिए लोकतान्त्रिक व्यवस्था की स्थापना की। इसके साथ ही पंजाब में पाँच वर्षों से चल रहे अकाली आंदोलन की समाप्ति हुई इसमें 30,000 से अधिक अकाली स्वयंसेवक जेल गये और उनके समर्थकों ने नौकरियाँ, पेंशन गवाईं और बड़े हर्जाने भरे।

ੴ ਸਤਿਗੁਰਪ੍ਰਸਾਦਿ ॥

Press Communiqué No. 558.

Instead of redressing the legitimate grievance of the Sikh Community concerning the Nabha State affair, Government has embarked upon the cruel policy of gagging the mouths of the Sikhs. Since Monday, the 16th July, the delivery of the post of the "Akali-Te-Pardesi" has been stopped. For two days, 16th and 17th the private letters of the persons connected with the paper were also stopped. Today, the 18th, the private letters were delivered, but the mail of the newspaper continues to be detained. On enquiry from the Post office, it was found that the above action had been taken according to an order of the Government of India, an official copy of which has not yet been supplied to the paper. Presumably this drastic measure has been taken against the paper because it raised the alarm in the matter of the virtual deposition of Maharaja Sahib of Nabha.

Last year the Government stopped the mail of the Shromani Committee, during the Guru-Ka-Bagh days, with what success the public knows. It is hoped that the sympathy of the Sikhs will once more defeat the purpose of this repressive measure by all possible means and keep the "Akali-Te-Pardesi" in complete touch with the happenings in the Panth.

Mansingh
for General Secretary
Shromani Gurdwara Committee

Amritsar,
18th July 1923.



15 एस.जी.पी.सी. द्वारा ब्रिटिश नीति की आलोचना

इस आंदोलन से अकाली सुधारकों ने वंशानुगत महन्तों के प्रबन्ध से अपने ऐतिहासिक सिख मंदिरों को स्वतंत्र कराने में सफलता प्राप्त की। इससे निम्न सामाजिक बुराइयों का अंत हुआ:

- स्वर्ण मंदिर में नीची जाति वाले सिखों द्वारा भेंट देने तथा पूजा की मनाही
- गुरुद्वारों से प्राप्त आय का महन्तों द्वारा निजी उपयोग
- नाचने गाने वाली लड़कियों का गुरुद्वारा परिसर में आमंत्रण और अन्य सामाजिक बुराइयाँ।

आंदोलन ने लोगों में धार्मिक और राजनीतिक जागृति भी उत्पन्न की। उनको अनुभव कराया गया कि सिख परम्परा में जाति के आधार पर कोई धार्मिक बंधन नहीं। गुरुद्वारा अधिनियम के अनुसार, किसी भी जाति का सिख किसी भी पद के लिए, जिसमें शिरोमणि गुरुद्वारा प्रबन्धक कमेटी का प्रधान पद भी सम्मिलित है, चुनाव लड़ सकता है। सिख महिलाओं को भी पुरुषों के समान मत देने का अधिकार मिला वे सिख मंदिरों में सभी धार्मिक और सामाजिक कर्त्तव्य कर सकती थीं। अकाली आंदोलन ने पटियाला, नाभा, जींद और फरीदकोट जैसे सिख राज्यों के लोगों, जो धार्मिक और सामाजिक शोषण से पीड़ित थे, को सामाजिक जागृति प्रदान की। सिख राज्यों के गाँवों में अकाली जत्थों ने लोगों को नैतिक समर्थन दिया, जिससे कि वे अपनी सामाजिक बुराइयों से लड़ सकें। यह विचारणीय है कि अकाली आंदोलन समाप्त होने के पश्चात् भी सिख राज्य के लोगों ने सरदार सेवा सिंह ठीकरीवाला के नेतृत्व में लड़ाई जारी रखी। प्रजा मंडल और राज्य लोक कान्फ्रेंस ने अपना संघर्ष तब तक जारी रखा, जब तक कि भारत स्वतंत्र नहीं हुआ और सभी राज्य भारत संघ राज्य में नहीं मिल गए।

**बोध प्रश्न 4**

1 नाभा में भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस का अकाली आंदोलन के प्रति क्या दृष्टिकोण था?

............................................................

............................................................

............................................................

............................................................

............................................................

2 गुरुद्वारा अधिनियम, 1925 के पारित होने से सिख मंदिरों का प्रबन्ध कैसे लोकतान्त्रिक हुआ?

............................................................

............................................................

............................................................

............................................................

............................................................

............................................................

............................................................

............................................................

............................................................

3 अकाली आंदोलन की तीन उपलब्धियाँ लिखिए।

i) ............................................................

............................................................

............................................................

ii) ..................................................................

..................................................................

..................................................................

iii) ..................................................................

..................................................................

..................................................................

## 19.5 सारांश

इस इकाई में आपने पढ़ा कि कैसे सिख धर्म, जो कर्मकाण्ड और जातिवाद के विरोध में प्रारम्भ हुआ, शीघ्र स्वयं जातिवाद, धार्मिक कर्मकाण्ड और दहेज प्रथा जैसी कुरीतियों में आ फँसा। उनके धार्मिक स्थानों में कुप्रबन्ध और भ्रष्टाचार फैल गए। कई आंदोलनों ने इन कुरीतियों को समाप्त करने का प्रयत्न किया। फिर भी, इन सबमें अकाली आंदोलन ही शक्तिशाली और अधिक विस्तृत था। ब्रिटिश सरकार अकाली माँगों के प्रति बड़ी असहानुभूति रखती थी और उसे कुचलना चाहती थी। अतः अकाली आंदोलन ने राष्ट्रीय आंदोलन से सम्पर्क स्थापित किया। इसे राष्ट्रीय नेताओं से भरपूर सहायता मिली। लम्बे संघर्ष के बाद अकालियों ने अपने मंदिरों के प्रबन्ध को भ्रष्टाचार से मुक्त कराया। गुरुद्वारों को भ्रष्टाचार से मुक्त कर सभी जाति के लोगों के लिए उसके द्वार खोले। सरकार को मजबूर होकर गुरुद्वारा अधिनियम, 1925 पारित करना पड़ा, जिससे सिख मंदिरों के प्रबन्ध में लोकतंत्रता आई।

## 19.6 शब्दावली

**आनन्द विवाह** : साधारण विवाह पद्धति, जो दहेज, वैवाहिक कर्मकाण्ड और बारात आदि के बिना सम्पन्न होती है।

**महन्त** : अकाली आंदोलन से पहले गुरुद्वारों के प्रबन्धक। इन्होंने अपनी संस्थाएँ और चेले बना लिए।

**मज़हबी** : नीची जाति के सिख, जिनके लिए सिख मंदिरों में प्रवेश निषिद्ध था।

**परिसर** : बड़े भवन के आसपास का क्षेत्र। गुरुद्वारों की सीमा की दीवारों के अंदर का क्षेत्र।

**ईश्वर विमुख** : भगवान और पवित्र वस्तुओं का अनादर करना।

**कर-मुक्त ज़ागीर** : राज्य द्वारा व्यक्तियों और संस्थाओं को दी गई भूमि, जिस पर राज्य कर नहीं लेता।

**सर्बराह** : सरकार द्वारा नियुक्त गुरुद्वारों की देख-रेख करने वाला

**शिरोमणि गुरुद्वारा प्रबन्धक कमेटी** : स्वर्ण मंदिर और अकाल तख्त के प्रबन्ध के लिए अकालियों ने, इसे स्थापित किया। बाद में इसने पंजाब के सभी गुरुद्वारों का प्रबंध सम्भाल लिया।

**ऐहिक प्राधिकार** : धार्मिक प्राधिकार के विपरीत, सांसारिक प्राधिकार।

**उदासी** : एक सिख मत, जो सिखों के मज़हब के बाह्य चिह्नों को जैसे लम्बे बाल और दाढ़ी बढ़ाना, कड़ा और कृपाण रखना, नहीं मानता।

## 19.7 बोध प्रश्नों के उत्तर

**बोध प्रश्न 1**

1 मुख्य कुरीतियाँ, जिनके विरुद्ध सुधारक लड़े, जाति भेद, मकबरे और कब्रों की पूजा, कई ईश्वरों की पूजा, अशिक्षा, दहेज, विवाह में कन्याओं की अदला-बदली और स्त्री शिशु हत्या थीं।

2 आनन्द कारज विवाह साधारण विवाह पद्धति है (देखिए उपभाग 19.2.1) बाबा दयाल दास, उसका पुत्र दरबारा सिंह और बाबा राम सिंह।

3 कूका आंदोलन ने जनता का ध्यान सामाजिक बुराइयों की ओर दिलाया। देखिए उपभाग 19.2.2।

4 सिंह सभा आंदोलन ने निरक्षरता के विरुद्ध कार्य किया और शिक्षा तथा राष्ट्रीय भावनाओं के लिए खालसा कॉलेजों की शृंखलाओं की स्थापना की। देखिए उपभाग 19.2.3।

**बोध प्रश्न 2**

1 सिख मंदिरों में सर्बराहों द्वारा चन्दे की हेराफेरी, मंदिरों का असामाजिक तत्वों द्वारा दुरुपयोग, नीची जाति का प्रवेश निषेद्ध आदि कुरीतियाँ विद्यमान थीं। देखिए उपभाग 19.3.1 और 19.3.2।

2 नीची जाति के लोगों को मंदिर में प्रवेश कर भेंट चढ़ाने का निषेद्ध। देखिए उपभाग 19.3.2।

3 सर्बराहों को ब्रिटिश सरकार नियुक्त करती थी। अत: वे अपने मालिकों को प्रसन्न रखते थे और सिख समाज के विचारों की अवहेलना करते थे। देखिए उपभाग 19.3.2।

**बोध प्रश्न 3**

1 ननकाना में गुरुद्वारा जन्म स्थान का प्रबन्ध भ्रष्ट महन्त से लेने के लिए अकाली सुधारकों के शान्तिपूर्ण मार्च से यह दुर्घटना घटी। सुधारक इस गुरुद्वारे को क्यों लेना चाहते थे? उपभाग 19.3.3 पुन: देखिए।

2 ननकाना दुर्घटना के बाद महात्मा गांधी और कई अन्य राष्ट्रीय नेताओं ने पंजाब का दौरा किया और अकाली उद्देश्य को पूर्ण समर्थन दिया। देखिए उपभाग 19.3.3 और 19.3.4।

3 स्वर्ण मंदिर को लेने के बाद अकालियों ने कोष की कुंजियाँ माँगी। ब्रिटिश सरकार ने समर्पण इस लिए किया कि वे अकालियों को काँग्रेस के असहयोग से अलग करना चाहते थे। देखिए उपभाग 19.3.4।

**बोध प्रश्न 4**

1 भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस ने अकालियों की नाभा मांग का समर्थन किया और विशेष पर्यवेक्षक भेजे। देखिए उपभाग 19.3.6।

2 गुरुद्वारा अधिनियम, 1925 के पारित होने के पश्चात् प्रत्येक सिख बिना जाति भेद के शिरोमणि गुरुद्वारा प्रबन्धक कमेटी का चुनाव जीत कर मंदिरों के प्रबन्ध में भाग ले सकता था। महिलाओं को भी मत देने का अधिकार मिला। देखिए भाग 19.4।

3 आपके उत्तर में जाति प्रतिबंध, जनता के धन का दुरुपयोग बन्द करना, गुरुद्वारों से असामाजिक तत्वों तथा वंशानुगत महन्ती व्यवस्था का अन्त और सामाजिक राजनीतिक जागृति का प्रारम्भ जैसी उपलब्धियों का उल्लेख होना चाहिए।

# इकाई 20 पश्चिम और दक्षिण भारत में गैर ब्राह्मण आंदोलन

**इकाई की रूपरेखा**


20.0 उद्देश्य
20.1 प्रस्तावना
20.2 महाराष्ट्र में सांस्कृतिक संघर्ष
  20.2.1 जोतिराव गोविंदराव फुले (1827-1890)
  20.2.2 प्रारम्भिक बीसवीं सदी में गैर-ब्राहमण आंदोलन
  20.2.3 आन्दोलन का स्वरूप
20.3 दक्षिण भारत में गैर-ब्राहमण आंदोलन
  20.3.1 तमिलनाडु में आत्म-सम्मान आंदोलन
  20.3.2 जस्टिस पार्टी और गैर-ब्राह्मण आंदोलन
  20.3.3 ई.वी. रामास्वामी नायकर (1879-1973) और आत्म-सम्मान आंदोलन
  20.3.4 आंध्र में आत्म-सम्मान आंदोलन
  20.3.5 कर्नाटक में गैर-ब्राह्मण आंदोलन
20.4 आंदोलनों का तुलनात्मक विश्लेषण
20.5 सारांश
20.6 शब्दावली
20.7 बोध प्रश्नों के उत्तर


## 20.0 उद्देश्य

इस इकाई को पढ़ने के बाद आप निम्नलिखित बातों के बारे में जानकारी पा सकेंगे:

- पश्चिम और दक्षिण भारत में ब्रिटिश विचारधाराओं के साथ-साथ पारंपरिक सामाजिक व्यवस्था के विरूद्ध सामाजिक और सांस्कृतिक संघर्ष ।
- ब्रिटिश शासन और पारंपरिक समाज व्यवस्था के विरूद्ध पैदा हुई चुनौती का स्वरूप ।
- अलग-अलग क्षेत्रों में इन आंदोलनों का स्वरूप तथा इनकी प्रकृति में विभिन्नता ।
- इन आंदोलनों की मूल सीमाएँ ।

## 20.1 प्रस्तावना

उन्नीसवीं सदी में सामाजिक और सांस्कृतिक संघर्ष ने न केवल ब्रिटिश उपनिवेशी शासन के सैद्धान्तिक प्राधान्य के विरुद्ध बल्कि रूढ़ सामाजिक और सांस्कृतिक व्यवस्था के विरुद्ध भी रूकावट पैदा की । क्षेत्रीय और राष्ट्रीय स्तर पर "बुद्धिजीवियों के एक समुदाय" के बनने के कारण पारंपरिक व्यवस्था की कमजोरियों के प्रति एक चेतना जागी । आधुनिक पश्चिम विचारधारा से ही इन कमजोरियों का सामना किया जा सकता था । फिर भी उपनिवेशवाद की भौतिक, सामाजिक और राजनैतिक परिस्थितियों का असर आधुनिक विचारधारा की उत्पत्ति पर पड़ा, और देश के विभिन्न भागों में ये विचारधाराएँ अलग-अलग आन्दोलनों के द्वारा सामने आईं । उन्नीसवीं सदी में ऐसे कई सामाजिक-सांस्कृतिक आंदोलन हुए जिनका उद्देश्य भारतीय सांस्कृतिक और पारंपरिक संस्थाओं में सुधार करना तथा उनको नवजीवन प्रदान करना था । स्वतंत्रता के प्रति नए विचारों, तर्क, सहनशीलता और मानव प्रतिष्ठा के समर्थन के साथ-साथ जाति प्रथा की आलोचना की जाती थी क्योंकि इससे असमानताएँ और समाज में विभाजन तथा सती प्रथा, शिशु हत्या और बहुदेववाद जैसे अमानवीय आचार उत्पन्न होते थे । जातिगत असमानता और उनके साथ जुड़े श्रेणीबद्ध समाज के विरुद्ध सामाजिक और सांस्कृतिक लड़ाईयाँ लड़ने के लिए अंग्रेजी शिक्षा प्राप्त मध्यवर्ग एक जुट हो चुका था । इस वर्ग ने विधवा विवाह, स्त्री शिक्षा और बराबर के सम्पत्ति अधिकारों जैसी

समस्याओं को लेकर नारी-समाज के सामान्य उद्धार के लिए भी काम किया । बुद्धिवाद (rationalism)और धार्मिक सार्वभौमवाद (religious universalism) निश्चय ही ऐसी दो महत्वपूर्ण विचारधाराएँ थीं जिनका उन्नीसवीं सदी के बुद्धिजीवियों ने सहारा लिया और जिसने महाराष्ट्र में जोतिराव फुले जैसे अतिसुधारवादी सामाजिक समीक्षक को जन्म दिया । बुद्धिजीवियों का यह संघर्ष मोटे तौर पर निम्नलिखित विचारधारा या विश्व दृष्टिकोण पर आधारित था: ''सामंती समाज के प्रमुख मूल्यों का विरोध करने पर भी वे बुर्जुआ व्यवस्था के विशिष्ट मूल्यों को लागू और स्वीकार करने का समर्थन करते थे ।'' जैसा कि हाल के कुछ अतिसुधारवादी सामाजिक और सांस्कृतिक आंदोलनों की विशेषताओं से स्पष्ट है कि पश्चिमी उदारतावाद से प्रभावित इस विश्व दृष्टि का नतीजा यह हुआ कि कई पुरानी विचारधाराओं को छोड़ देना पड़ा । इसके बारे में आगे विस्तार से बताया जाएगा ।

## 20.2 महाराष्ट्र में सांस्कृतिक संघर्ष

महाराष्ट्र में पारंपरिक सामाजिक स्तरीकरण वर्णाश्रम धर्म से नियंत्रित था, जिसके अंतर्गत ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र नामक वर्गों की असमान जातिक्रम व्यवस्था के आधार पर समाज का विभाजन किया गया था । इस स्तरीकरण से नियंत्रित विभिन्न जातियों के बीच आपसी सामाजिक सम्बन्धों को अपवित्रता और पवित्रता के सख्त नियमों के आधार पर बनाए रखा गया । इस जाति व्यवस्था में ब्राहमण जाति सबसे ऊपर थी जिसे बहुत से अधिकार और सुविधाएँ मिली हुई थीं । धार्मिक विचारधाराओं के विकास के जरिए वे समाज पर सामाजिक नियंत्रण बनाए रखते थे । इस विचारधारा ने बहुत से अंधविश्वासों और अमानवीय आचारों को वैधता दी हुई थी । इस जाति व्यवस्था में सबसे नीचे स्तर पर अतिशूद्र या अछूत रखे गये थे जो शिक्षा और दूसरे अधिकारों से वंचित रहे ।

महाराष्ट्र में हिन्दू कुल जनसंख्या के 74.8 प्रतिशत थे । 1881 की जनगणना के अनुसार कुन्बी अथवा मराठा मुख्य समुदाय था जो कुल जनसंख्या का लगभग 55.25 प्रतिशत था । ग्रामीण समाज में कुन्बी आर्थिक रूप से भी समर्थ थे । धनी किसान वर्ग होने के नाते कृषि उत्पादन पर उनका ही नियंत्रण था । फिर भी, पारंपरिक विचारधारा और जाति प्रथा के असर ने उन्हें ब्राहमणों का ताबेदार बनाए रखा । दूसरी तरफ ब्राहमणों ने अपनी कर्मकाण्डी शक्ति, शिक्षा तथा ज्ञान पर एकाधिकार के बलबूते पर दूसरी जातियों पर काफी असर बनाए रखा । ब्रिटिश काल के दौरान, ब्राहमणों ने नई अंग्रेजी शिक्षा को सफलतापूर्वक अपनाया और उपनिवेशी शासन में छाए रहे । इसलिए अधिकतर नया बुद्धिजीवी वर्ग पहले से ही प्रगतिशील ब्राहमण जाति में से उभरा और प्रशासन के महत्वपूर्ण पदों, जैसे शासकीय, आचार्य, नीचे दर्जे के दफ्तर शाह, लेखक, संपादक या वकील आदि, पर वे ही बने रहे । इस प्रकार के माहौल ने गैर-ब्राहमण जातियों में डर पैदा कर दिया ।

इस प्रकार की रूढ़ सामाजिक व्यवस्था की ईसाई मिशनरी और राष्ट्रवादी बुद्धिजीवियों दोनों ने ही खुलकर आलोचना की और इन्होंने पश्चिमी उदार विचारधारा को अपना लिया था । सुधार आंदोलनों को हम दो भिन्न शाखाओं में बाँट सकते हैं । जोतिराव गोविंद राव फुले जैसे शुरू के आमूल सुधारकों ने समानता और तर्कबुद्धिता के सिद्धांतों के आधार पर पारंपरिक संस्कृति और समाज में क्रान्तिकारी पुनर्गठन की कोशिश की । फिर भी, महादेव गोविन्द राणाडे (1842-1901) जैसे बाद के मध्यमार्गी सुधारकों ने पुरानी परम्पराओं और संस्कृति में कुछ परिवर्तन करने के बाद उन्हें अपनाने की बात कही । फुले की अतिसुधारवादी परम्परा ने ही महाराष्ट्र में गैर-ब्राहमण आंदोलन को जन्म दिया ।

### 20.2.1 जोतिराव गोविन्दराव फुले (1827-1890)

**व्यक्तित्व**

जोतिबा फुले का जन्म सन् 1827 में पुणे में माली परिवार में हुआ था । उनके पिता माली या फूलों के सौदागर थे । चूँकि फुले का जन्म दलित शूद्र परिवार में हुआ था, इसलिए वे अतिशूद्र अर्थात् ''महार'' और ''मांग'' जैसी अछूत जातियों की समस्याओं को आसानी से

16 ज्योतिबा फुले

समझ सकते थे । उन्होंने अपने आप को भी उनमें से एक समझा । उनकी शुरू की शिक्षा एक मिशन स्कूल में हुई, लेकिन 1833 में उन्हें इसे बीच में स्थगित करना पड़ा ।

1848 की एक घटना ने फुले को सामाजिक क्रांतिकारी बना दिया । जब वे अपने एक ब्राह्मण मित्र के विवाह में शामिल होने गए तब कुछ कट्टर ब्राह्मणों ने उन्हें शूद्र कहकर उनका अपमान किया और उन्हें वहाँ से चले जाने को कहा । इस अपमान ने जोतिबा को जाति भेदभाव और छूआछूत जैसी अमानवीय व्यवहार की जड़ों का पता लगाने के लिए मजबूर किया ।

**समाज और अर्थव्यवस्था के प्रति विचारधारा**

समाज और अर्थव्यवस्था की असलियत जानने के लिए फुले ने वेदों, मनु संहिता, पुराण, बुद्ध के विचार, बसेश्वर और तीर्थाकर की विचारधारा और मध्ययुगीन भक्ति सन्तों के हिन्दू धर्मग्रंथों को पढ़ा । उसके साथ-साथ उन्होंने पश्चिमी विचारधारा और ईसाई तथा इस्लाम धर्म ग्रन्थों को भी पढ़ा । सम्पूर्ण संस्कृति और परम्परा को फुले ने तर्कबुद्धिता और समानता की भावना की दृष्टि से परखा । जबकि समानता के सिद्धान्त ने जाति प्रथा, सत्तावादी परिवार संरचना और स्त्रियों की आश्रितता को पूरी तरह नकारा है और तर्कबुद्धिता के सिद्धान्त ने अन्धविश्वासों, कर्मकाण्डवाद और सांस्कृतिक व्यवहार की पारंपरिक धारणा को समाप्त करने की माँग की है । इसने अनुचित संस्थाओं का समर्थन करने वाले सभी पवित्र हिन्दू धर्मग्रन्थों को पूरी तरह से न मानने की माँग की थी । डॉ. अम्बेडकर की तरह फुले ने भी धर्मग्रन्थों को आम पुस्तकों की तरह पढ़ा और दोनों व्यक्तियों का मकसद सच्चाई का पता लगाना था । सामाजिक, धार्मिक, राजनैतिक और आर्थिक मामलों के बारे में उनका दृष्टिकोण अतिसुधारवादी था ।

जोतिबा फुले जाति व्यवस्था को मानव समानता के खिलाफ़ मानते थे । विद्यमान जाति व्यवस्था, शूद्रों विशेषकर अछूतों के लिए कभी न खत्म होने वाली दासता को सुरक्षित करती थी । अछूतों को दिन में सड़कों पर घूमने की मनाही थी क्योंकि ऐसा करने से उनकी लम्बी परछाइयाँ ब्राह्मणों के घरों को अपवित्र कर सकती है । अतिशूद्रों के प्रति ब्राह्मणों के इस अमानवीय व्यवहार और उनको सामान्य मानव अधिकार से वंचित करने की व्यवस्था ने फुले को जाति व्यवस्था का विद्रोही बना दिया ।

फुले ने इतिहास की व्याख्या करने के बाद कहा था कि विदेशी आर्य लोगों ने मूल निवासियों यथा द्रविड़ लोगों को हराकर असमान जाति व्यवस्था लागू की । फिर शूद्र कहे जाने वाले मूल निवासियों का हमेशा शोषण करने के लिए उन्होंने जाति विभाजन का तथाकथित दैवी उद्भव ढूंढ निकाला । संगठित शूद्रों के समानतावादी अतीत के बारे में बताकर फुले ने गैर-ब्राह्मणों का मनोबल बढ़ाया और उन्हें सदियों पुरानी असमानता और सामाजिक अप्रतिष्ठा का विद्रोह करने के लिए संगठित किया ।

जब से हिन्दू धर्म ने जाति व्यवस्था को उचित ठहराया और उसे स्वीकृति दी, फुले ने इसे पूरी तरह से नकारा । वे मूर्ति पूजा में विश्वास नहीं रखते थे । अपने व्यंग्यात्मक लेखों द्वारा फुले ने हिंदू धर्म की असंगतियों को उजागर किया । उन्होंने मूर्तिपूजा, कर्मकाण्ड और पुरोहिताई, कर्म-सिद्धांत, पुनर्जन्म और स्वर्ग की आलोचना की । फुले के लिए ईश्वर एक है और अवैयक्तिक है । उनका धर्म पुरुषों और स्त्रियों की स्वतंत्रता और समानता तथा श्रम गरिमा जैसी वास्तविकता के तैतीस सिद्धांतो पर आधारित है । फुले ने लिखा, "ब्राह्मण शूद्रों से वेदों को छिपाते हैं क्योंकि उनमें यह जानने के संकेत मिलते हैं कि आर्य लोगों ने किस प्रकार उनका दमन किया और उन्हें दास बनाया ।" निस्संदेह उन्होंने जनता की शिक्षा को मुक्तिदायक और क्रांतिकारी घटक के रूप में देखा । फुले के शब्दों में, "बिना किसी ताकत के समृद्धि नहीं, बिना नैतिकता के ताकत नहीं, बिना ज्ञान के नैतिकता नहीं और बिना शिक्षा के ज्ञान नहीं । जब तक शिक्षा द्वारा जनता के अज्ञान और निरक्षरता को खत्म नहीं किया जाएगा, तब तक वे अपनी मानसिक और शारीरिक दासता का विद्रोह नहीं कर सकेंगे । उन्होंने ब्रिटिश सरकार से आग्रह किया कि जनता को किसान-वर्ग से चुने गए शिक्षकों से प्राथमिक शिक्षा दिलवाई जाय ।

हिन्दू समाज में स्त्रियाँ और अछूत सबसे ज्यादा पीड़ित थे । फुले ने कहा था कि स्त्रियों की मुक्ति समाज के दूसरे वर्गों की मुक्ति के साथ जुड़ी हुई थी । उन्होंने स्त्रियों को अनपढ़ रखने

और पुरुषों की दासता में रहने के लिए ब्राह्मणों को जिम्मेदार ठहराया । वे प्राधिकारवादी परिवार संरचना (authoritarian family structure) की जकड़ को तोड़ने की ओर बढ़े । फुले ने सब वर्गों की समानता के साथ-साथ पुरुष और स्त्रियों के बीच समानता की भी वकालत की । विवाहों के दौरान वे वर से यह वचन लेते थे कि वह वधु को शिक्षा प्राप्त करने का अधिकार देगा ।

1885 में प्रकाशित पैम्फलेट "इशारा" (warning) में किसान वर्ग की आर्थिक समस्याओं के बारे में फुले के विचार छपे थे । खेतिहर मजदूरों और छोटे किसान की समस्याओं के बारे में जानकारी रखने वाले फुले ने उनके संघर्ष में उनका साथ दिया । मिसाल के तौर पर कोंकण के बटाईदार काश्तकारों का समर्थन किया और उनका शोषण करने वाले "खोटों" की आलोचना की । सिंचाई सुविधाएँ, ऋणभार, महाजनों को भूमि हस्तांतरण, लगान का बोझ जैसे तात्कालिक मामलों से चिंतित फुले किसी सुसंगत आर्थिक विचारधारा को प्रतिपादित करने में असफल रहे ।

फुले ने ब्रिटिश शासन को शूद्रों की दासता खत्म करने का एक हथियार सा समझा और उनके शासन में समाज में और ज्यादा क्रांतिकारी तबदीली की आशा थी । राजनीति में किसान को एक वर्ग की तरह प्रवेश कराने वाले वे पहले व्यक्ति थे । उन्होंने भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस का विरोध किया क्योंकि वह किसान वर्ग की समस्याओं को हल करने में असफल रही थी । राष्ट्र की उनकी संकल्पना स्वतंत्रता और समानता पर आधारित थी

**सक्रिय कार्यकर्ता**

अपने विचारों के प्रसार के लिए फुले ने पत्र-पत्रिकाओं, पैम्फलेटों और पुस्तकों के प्रकाशन तथा भाषण और लेखन में मराठी भाषा का प्रयोग किया । अपने विचारो के प्रचार और आर्य वैदिक परंपरा के दमनकारी पक्ष को उजागर करने के लिए फुले ने मराठी में दीनबंधु नामक पत्रिका संपादित एवं प्रकाशित की । 1873 में गुलामी (slavery) नाम से निकाली गई अपनी पुस्तक में फुले ने ब्राहमण शासन के अधीन शूद्रों की दासता के ऐतिहासिक कारणों की अपनी संकल्पना को स्पष्ट किया और इसकी तुलना अमरीकी नीग्रो दासता से की । उन्होंने शेतकार्यांचा आसुदा (the whip cord of the peasantry) में किसानों की दुर्दशा के बारे में विस्तार से लिखा था ।

1870 आते-आते उदारतावादियों द्वारा चर्चित सामाजिक सुधार फुले द्वारा प्रवर्तित विचारधारा के बिल्कुल विपरीत दिखाई दिये । उदारतावादियों के विपरीत, तर्कबुद्धिता, समानता और मानवतावाद के सिद्धांतों के आधार पर सामाजिक-सांस्कृतिक संरचना का संपूर्ण पुनर्निर्माण करना फुले का लक्ष्य था । लोगों के दिमाग में असमानता के प्रति जागरूकता पैदा करना ही उनके संघर्ष का मूल उद्‌देश्य था । ब्राहमण साहित्य के आलोचनात्मक विश्लेषण और अभिव्यक्ति द्वारा फुले ने इस कार्य को पूरा किया ।

फुले ने अपनी विचारधारा को वास्तविक संघर्षों का रूप देने की भी कोशिश की थी । 1851 में उन्होंने एक स्कूल लड़कियों के लिए और एक शूद्रों के लिए खोला था । विधवाओं को संरक्षण और आश्रय दिया गया । उन्होंने अपने घर का पानी का हौदा शूद्रों के लिए खुलवा दिया, यहाँ से शूद्रों को पानी मिलता था । ब्राहमणवाद और उसकी विचारधाराओं से लड़ने के लिए 1875 में फुले ने सत्यशोधक समाज की स्थापना की । जमींदारों-महाजनों द्वारा अधिक किराए की वसूली का विरोध करने के लिए जुन्नार में फुले ने गरीब काश्तकारों को संगठित किया । इस संगठित समूह ने सरकार को किराए की उच्चतम सीमा निर्धारित करने के लिए मजबूर किया ।

इस प्रकार, फुले ने अपने पूरे जीवन काल मे दलित वर्ग का ही साथ दिया । उन्होंने असमान जाति व्यवस्था को हटाने और लोकतांत्रिक न्याय स्थापित करने के लिए काम किया । जातिगत असमानताओं और शूद्र जातियों की सामाजिक अधीनता तथा आर्थिक पिछड़ेपन के बीच संबंध के प्रति जोतिब फुले जागरूक थे । फिर भी, वे उपनिवेशी शासन की वास्तविक विशेषताओं को पहचानने में असफल रहे और अन्य उदारतावादियों की तरह वे भी इसकी ऐतिहासिक रूप से बढ़ती हुई भूमिका में विश्वास रखने लगे थे । कृषक संबंधों में आमूल परिवर्तन लाए बिना और उपनिवेशवाद को खत्म किए बिना फुले द्वारा कल्पित सामाजिक विद्रोह नहीं किया जा सकता था ।

### 20.2.2 प्रारंभिक बीसवीं सदी में गैर-ब्राह्मण आंदोलन

1890 में जोतिबा फुले का स्वर्गवास होते ही उनके द्वारा चलाए गए सत्यशोधक आंदोलन का जोर कम होता गया । जुलाई 1913 में कोल्हापुर में वहाँ के छत्रपति साहू महाराज (1874-1922) ने सत्यशोधक समाज की स्थापना करके इस आंदोलन को फिर से शुरू किया । लेकिन तब भी इसका जोर अधिक नहीं रहा । साहू महाराज ने दलित वर्ग के छात्रों के लिए शैक्षिक संस्थान तथा छात्रावास शुरू करवाकर और छात्रवृत्तियाँ देकर निश्चय रूप से गैर ब्राह्मण आंदोलन को आगे बढ़ाया । 1913 और 1922 के बीच गैर-ब्राह्मण और क्षत्रिय जाति के सम्मेलनों से वे सक्रिय रूप से जुड़े रहे ।

साहू महाराज का यह गैर-ब्राह्मण आंदोलन उन उच्च जाति के गैर-ब्राह्मण व्यापारियों और जमींदारों (सामंतो) के हाथो में चला गया जिन्होंने इसका प्रयोग अपने राजनैतिक लाभों के लिए किया । अपने तथा अपने समुदाय को वर्णाश्रम धर्म में क्षत्रिय दर्जा दिलाने के लिए साहू महाराज ने लड़ाई लड़ी । यह फुले की विचारधारा के साथ विश्वासघात के सिवाय और कुछ नहीं था । और इस लड़ाई ने निम्न शूद्र जाति को उनकी सामाजिक अवनति और गरीबी के हवाले छोड़ दिया ।

1918 के बाद मद्रास में जस्टिस पार्टी के साथ मॉन्टेगू चेम्सफोर्ड सुधारों का सहारा लेकर साहू महाराज ने आंदोलन का प्रयोग पिछड़ी जातियों को परिषदों में विशेष राजनैतिक प्रतिनिधित्व दिलवाने के लिए किया । इस प्रकार सत्यशोधक आंदोलन अपने मुख्य उद्देश्य से हटकर उच्च जाति के गैर-ब्राह्मण जमींदारों के लाभ के आंदोलन में बदल गया ।

### 20.2.3 आंदोलन का स्वरूप

अनिल सील जैसे इतिहासकारों का तर्क है कि परंपरागत शिक्षित जाति ब्राह्मणों ने अपने आपको औपनिवेशिक प्रणाली में जल्दी ढाल लिया था। उन्होंने व्यवसायों और नौकरशाही के अवसरों पर एकाधिकार जमाना शुरू कर दिया था। इसके परिणामस्वरूप गैर-ब्राह्मणों ने ब्राह्मणों के इस एकाधिकार के विरुद्ध आवाज उठाई। जोतिबा फुले के सामाजिक सुधारों का गहराई से विश्लेषण करने पर जाति व्यवस्था में असमानताओं के बारे में काफी जानकारी मिलती है। सामाजिक आश्रितता और शूद्रों के आर्थिक पिछड़ेपन के इस जाति व्यवस्था से संबंध के बारे में भी पता लगता है। फुले ने शूद्रों को अपनी जाति की आश्रितता के प्रति अपने व्यवहार में मौलिक परिवर्तन लाने पर जोर दिया। उन्होंने सामाजिक और धार्मिक मूल्यों में क्रांति लाने के लिए एक सैद्धांतिक आधार स्थापित किया।

फिर भी, इस आंदोलन में निहित कमजोरियों के कारण कोल्हापुर के साहू ने धीरे-धीरे मूल उद्देश्य की दिशा बदल दी। फुले ने लोगों के भौतिक हालात और उनकी संस्कृति के बीच की आवश्यक कड़ी को नहीं देखा। ब्रिटिश शासन के प्रति फुले के समर्थन ने किसानों के औपनिवेशिक शोषण पर पर्दा डाल दिया। जाति असमानता को पैदा करने वाली पुरानी सामंती सामाजिक और आर्थिक व्यवस्था को बनाए रखने की शासकों की रुचि का भी फुले ने समर्थन किया।

**बोध प्रश्न 1**

1 वर्णाश्रम धर्म क्या है? उसमें अति शूद्रों की क्या स्थिति थी ?

..................................................................

..................................................................

..................................................................

..................................................................

..................................................................

2 जोतिबा फुले सामाजिक क्रांतिकारी क्यों बने?

..................................................................

..................................................................

....................................................................................................
....................................................................................................
....................................................................................................
....................................................................................................

3 जोतिबा फुले के मुख्य विचार क्या हैं?

....................................................................................................
....................................................................................................
....................................................................................................
....................................................................................................
....................................................................................................

4 सत्यशोधक समाज क्या है?

....................................................................................................
....................................................................................................
....................................................................................................
....................................................................................................
....................................................................................................

5 जोतिबा फुले की मूल विचारधारा से साहू महाराज की विचारधारा किस प्रकार भिन्न थी?

....................................................................................................
....................................................................................................
....................................................................................................
....................................................................................................
....................................................................................................

## 20.3 दक्षिण भारत में गैर-ब्राह्मण आंदोलन

मद्रास प्रदेश में 3.3 प्रतिशत हिन्दू ब्राह्मण थे। परंतु अनुष्ठानों के प्रधानता वाले पारंपरिक अधिक्रम में उन्हें दूसरी जातियों से ऊँचा समझा जाता था। परंपरा से पढ़ी लिखी जाति होने के कारण ब्राह्मण अंग्रेजी शिक्षा जल्दी अपना लेते थे। ये व्यवसायों और औपनिवेशिक नौकरशाही के अवसरों पर एकाधिकार जमाने में समर्थ थे। इससे गैर-ब्राह्मण समुदाय में बैर और जलन पैदा होने लगी जिसके कारण गैर-ब्राह्मण आंदोलन शुरू हुआ। नौकरी के अवसरों ने ब्राह्मण और गैर ब्राह्मण के बीच के झगड़े को बढ़ाया, परंतु इस झगड़े का असली कारण उनके सामाजिक आर्थिक और सांस्कृतिक हालात थे।

### 20.3.1 तमिलनाडु में आत्म-सम्मान आंदोलन

हाल की ऐतिहासिक रचनाओं से पता लगता है कि तमिल के पुनर्जागरण की वजह से द्रविड़ चेतना विकसित हुई और उसका राजनैतिक प्रदर्शन गैर-ब्राह्मण आंदोलन के रूप में हुआ। 1887 और 1904 के बीच जो ग्रंथ प्रकाशित हुए वे तमिल क्लासिक कृत्तियों जैसे पत्तुप्पाट्टु, मणिमेखलाई, सिलप्पातिकारम् पर आधारित थे। तमिल विद्वानों ने इनके आधार पर एक ऐसी क्लासिकी द्रविड़ सभ्यता का चित्र प्रस्तुत किया जो आर्य और उनकी संस्कृति से बिल्कुल भिन्न था। यह बड़ी दिलचस्प बात है कि सबसे पहले यूरोपीय विद्वान काल्डवैल ने तमिल संस्कृति के स्वतंत्र अस्तित्व की धारणा को विकसित किया था और बाद में तमिल विद्वानों ने इसका विस्तार किया। तमिल विद्वानों ने यह बताने की भी कोशिश की थी कि आर्यों ने शैव सिद्धांत दर्शन जैसी उच्च द्रविड़ धार्मिक पद्धति को तोड़-मरोड़ दिया था। आर्यों ने ही वेदों

की शिक्षा और जाति पद्धति को दक्षिण भारत के लोगों पर थोपा था। यही वह फिर से खोजा हुआ विशिष्ट सांस्कृतिक अस्तित्व था जो 1916 के बाद के गैर-ब्राह्मण आंदोलन में दिखाई पड़ता था।

### 20.3.2 जस्टिस पार्टी और गैर-ब्राह्मण आंदोलन

1916 में मद्रास में गैर-ब्राह्मणों के रोष ने राजनैतिक रूप ले लिया और परिणामस्वरूप दक्षिण भारतीय उदारतावादी संघ का गठन हुआ। इसे जस्टिस पार्टी के नाम से जाना जाता था। इस पार्टी का दावा था कि इसमें मद्रास प्रेसीडेन्सी के मुसलमानों, इसाइयों और अछूतों सहित सभी गैर-ब्राह्मणों के हितों का प्रतिनिधित्व था। टी. एन. नायर, पी. त्यागराया चेट्टी और सी. नटेश मुदालियार इस संगठन के संस्थापक थे। शिक्षा, लोक नियुक्तियों और स्थानीय बोर्डों में नामजदगी में छूट देने की माँगों को प्रांतीय विधान परिषद् में आरक्षित सीटों की मूल माँग के साथ शामिल करके जस्टिस पार्टी के नेताओं ने उन्हें धीरे-धीरे व्यापकता दी।

1930 के अंत में, व्यावसायिक मध्यवर्गीय गैर-ब्राह्मण वर्ग का विकास और अपने दृष्टिकोण को व्यक्त करने के लिए जस्टिस पार्टी की रचना जैसी राजनैतिक गतिविधियों का बोलबाला था। फिर भी, जस्टिस पार्टी का सामाजिक आधार वे गैर-ब्राह्मण थे जो प्रमुख जमींदार और शहरी व्यापारी थे, इसलिए इस पार्टी ने उन सामंती और व्यापारिक वर्गों के राजनैतिक स्वार्थों के लिए काम किया।

1920 में जस्टिस पार्टी में भीतर ही विरोध पैदा हो गया जो कि स्वाभाविक था। कुछ लोगों ने महसूस किया कि पार्टी को गैर ब्राह्मण समाज और संस्कृति के सुधार और उसके पुर्नजीवन के लिए काम करना चाहिए और अपने आपको नौकरियों और पदों की खोज तक सीमित नहीं रखना चाहिए। सांस्कृतिक सुधार के माध्यम से सामाजिक उत्थान की ललक सामंती और व्यापारिक नेतृत्व के संकीर्ण सामाजिक और राजनैतिक परिप्रेक्ष्य द्वारा पूरी नहीं हो सकी। दूसरी ओर, 1920-22 के बाद राष्ट्रीय आंदोलन के बढ़ते हुए स्वरूप ने अधिकांश गैर ब्राह्मण कृषक समूहों को अपनी ओर खींचना शुरू कर दिया। विशेषकर 1927-28 के बाद व्यापक राष्ट्रीय आंदोलन जस्टिस पार्टी के ऊपर छा गया। ऐसे समय में पार्टी का मोह भंग हो जाने की वजह से ई.वी.आर. नायकर जैसे गैर ब्राह्मण बुद्धिजीवी ने भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस को छोड़ दिया और उन्होंने आत्म-सम्मान नाम से एक लोकप्रिय आंदोलन चलाया। इस आंदोलन ने मद्रास में गैर ब्राह्मण आंदोलन को एक नया मोड़ और जीवन दिया।

### 20.3.3 ई. वी. रामास्वामी नायकर (1879-1973) और आत्म-सम्मान आंदोलन

**व्यक्तित्व**

आमतौर से पेरियार नाम से विख्यात ई. वी. रामास्वामी नायकर का जन्म 1879 में इरोड में हुआ था। उन्होंने कम उम्र में ही जाति पवित्रता के नियमों का विरोध किया और वे अंतर्जातीय भोजों में भाग लेते थे। गांधीवादी होने के नाते केरल में वेकोम में हुए सत्याग्रह के वे नायक बने। उन्होंने हरिजनों का जोरों से साथ दिया। 1922 तक जिस समय वे कांग्रेस के सदस्य थे, पेरियार ने हिंदू पुराण विद्या त्याग दी थी। उन्हें यह विश्वास था कि यह पुराण विद्या एक भ्रष्ट प्रभाव का प्रतिनिधित्व करता था। उन्होंने यहाँ तक कह दिया कि मनु धर्मशास्त्र और रामायण को जला दिया जाए। 1925 में कुडी अरासु नामक अखबार चलाकर वे एक अतिसुधारवादी समाज सुधारक बन गए। वास्तव में पेरियार के मद्रास प्रांतीय कांग्रेस समिति के सचिव पद से इस्तीफा दे देने का कारण कांग्रेस द्वारा चलाए गए एक गुरुकुल (स्कूल) में ब्राह्मणों और गैर-ब्राह्मणों के खाने की व्यवस्था अलग-अलग होना था। 1925 में जब उन्होंने कांग्रेस छोड़ी तब उन्होंने घोषित किया "अब से मेरा काम कांग्रेस को भंग करना है।" 1927 में वर्णाश्रम धर्म के मुद्दे पर उन्होंने गांधी जी से भी नाता तोड़ लिया था। सोवियत संघ से लौटने के बाद पेरियार ने अपनी द्रविड़ विचारधारा में मार्क्सवाद का कुछ अंश भी जोड़ दिया था। मई 1933 में कुडी अरसु नामक अपने आलेख में उन्होंने लिखा कि "आत्म-सम्मान आंदोलन का सही मार्ग है। पूँजीपतियों और धर्म की क्रूरताओं को खत्म करना ही अपनी समस्याओं को सुलझाने का एक मात्र रास्ता है।"

17 रामास्वामी नायकर

## समाज संबंधी विचार

पेरियार ने धर्म और ब्राह्मणों की सर्वश्रेष्ठता पर प्रहार किया। महाराष्ट्र में फुले की तरह उन्होंने जाति व्यवस्था की आलोचना की। उन्होंने मानव जाति की मौलिक समानता और गरिमा की संकल्पना का प्रचार किया । वही एक ऐसे सुधारक थे जिन्होंने गरिमा और समानता की अपनी संकल्पना को समाज के सबसे अधिक असहाय वर्ग यथा स्त्रियों तक पहुँचाया। पेरियार के आत्म-सम्मान आंदोलन ने परिवार और समाज में स्त्रियों की अश्रितता की स्थिति को बदलने की कोशिश की। उन्होंने अपने कुडी अरासु अखबार के जरिए अपनी इस विचारधारा को लोकप्रिय बनाने की कोशिश की तथा स्त्रियों को वह सम्मान दिया, जो उन्हें जीवन के हर क्षेत्र में स्वतंत्रता और स्वायत्तता को मान्यता देने से मिल सकता था। अब हम पेरियार की क्रांतिकारी विचारधारा का बारीकी से अध्ययन करेंगे।

पेरियार का कहना था कि धर्म और शास्त्र बुद्धिवाद के विरोधी थे। उन्होंने धर्म को गैर-ब्राह्मणों और स्त्रियों के निम्न सामाजिक स्थिति का जिम्मेदार ठहराया। जन्म, मरण और विवाह समारोहों में पंडितों की सेवाएँ न लेने के लिए गैर ब्राह्मणों को उत्साहित किया गया। बिना ब्राह्मण पुरोहित के जो आत्म-सम्मान विवाह संपन्न हुए थे वे बहुत लोकप्रिय हुए। इस प्रकार के विवाहों में वर-वधु एक सीधा सादा वचन लेते थे कि वे जीवन भर एक दूसरे को बराबर का साथी मानेंगे, और फिर एक दूसरे को हार पहनाते थे। वहाँ पर उपस्थित बुजुर्ग उनको आशीर्वाद देते थे। यहाँ यह जानना रुचिकर होगा कि ऐसे कई विवाह अंतर्जातीय होते थे।

जोतिबा फुले की तरह पेरियार भी जाति और धर्म के बीच कोई भेद नहीं मानते थे। उनके विचार में धन पर आधारित असमानता की अपेक्षा जाति पद्धति से उत्पन्न सामाजिक असमानता हानिकारक अधिक थी ।

### सक्रिय कार्यकर्त्ता

आत्म-सम्मान आंदोलन ने स्त्रियों की आश्रितता को प्रबल जाति पद्धति के संदर्भ में देखा था। सामाजिक संगठन के लिए मार्गदर्शक सिद्धांत के रूप में धर्म और धार्मिक ग्रंथों को अस्वीकार करते हुए पेरियार ने समानता और न्याय के आधार पर समाज की रचना करने की बात कही थी। उन्होंने स्त्रियों की आर्थिक स्वतंत्रता के लिए उनके व्यावसायिक प्रशिक्षण और शिक्षा पर बल दिया था।

विधवा विवाह और जन्म नियंत्रण जैसे मामलों में पेरियार के रुख से उनके सामाजिक अतिसुधारवाद के बारे में पता लगता था। वे मानव और शास्त्रों के इस अधिकार को चुनौती देते थे जो यह निर्णय करता था कि विधवा को विवाह करना चाहिए अथवा नहीं। पेरियार ने तलाक के अधिकार को स्त्री का विशेषाधिकार माना। पेरियार ने कहा, "हमारे सभी विवाह कानून स्त्रियों को दासी बनाने के लिए बनाये गये हैं। अनुष्ठान इस वास्तविकता को छिपाने के लिए किये जाते हैं"। पेरियार ने तलाक के अधिकार का बलपूर्वक समर्थन किया क्योंकि यह स्त्रियों को सुख, गरिमा और स्वतंत्रता दिलाने में सहायक था। पेरियार की नज़र में स्त्रियों की स्वतंत्रता जन्म नियंत्रण पर केंद्रित थी। सरकार का अनुमोदन न होते हुए भी उन्होंने लोगों से जन्म नियंत्रण के उचित तरीके अपनाने के लिए कहा जन्म नियंत्रण के पक्ष में जनमत बनाने के लिए आत्म-सम्मान आंदोलन के कार्यकर्त्ताओं ने इस विषय पर साहित्य बाँटा। स्त्रियों के सतीत्व या कर्पु की पैतृक धारणा पर भी पेरियार ने प्रहार किया।

### सीमाएँ

पेरियार के आंदोलन का भौगोलिक विस्तार छोटे शहरों और ग्रामीण क्षेत्रों में होते हुए भी उसका सामाजिक आधार उच्च गैर-ब्राह्मण जातियों तक ही सीमित था। यही पेरियार के सामाजिक अतिसुधारवाद तथा धर्म, जाति पद्धति और स्त्रियों के उत्थान के प्रति उसकी लड़ाई में मूल रुकावट थी।

इस प्रकार, संस्कृति और समाज में संरचनात्मक परिवर्तन तथा द्रविड़ों की मानसिक दासता की स्वतंत्रता के लिए किए गए आत्म-सम्मान आंदोलन का व्यापक प्रभाव नहीं पड़ा। अपने उद्देश्य की प्राप्ति के लिए पेरियार ने निश्चय किया कि इस सामाजिक संघर्ष को बढ़ाकर राजनैतिक क्षेत्र में ले जाया जाए। 1944 में द्रविड़ कषगम दल बनाने के उद्देश्य से उन्होंने

आत्म-सम्मान लीग को जस्टिस पार्टी के साथ मिला दिया। ऐसा करने से पेरियार के पहले के सामाजिक सुधार आंदोलन का स्वरूप बदल गया। इसके बाद से द्रविड़ या गैर-ब्राह्मण आंदोलन संकीर्ण निर्वाचन राजनीति से ही ज्यादा से ज्यादा जुट गया। इससे ब्राह्मण संस्कृति और जाति पद्धति के विरुद्ध चलाया गया पेरियार का सैद्धांतिक संघर्ष कमजोर पड़ गया।

## 20.3.4 आंध्र में आत्म-सम्मान आंदोलन

आंध्र में गैर ब्राह्मणों ने 'ब्राह्मणेतर उदयम' शुरू किया जिसका मतलब आंदोलन था। यह आंदोलन मूल रूप से कम्मा, रेड्डी, बलीजा और वेलमा जैसे गैर-ब्राह्मण समूहों के सांस्कृतिक और सामाजिक उत्थान के लिए किया था। पर्याप्त जमींदारी और आर्थिक प्रभुत्व वाले इन कृषक समूहों में आधुनिक अंग्रेजी शिक्षा या पारंपरिक आनुष्ठानिक हैसियत की कमी थी, जिसकी वजह से वे समाज में ऊँची सामाजिक हैसियत का दावा नहीं कर सकते थे। निस्संदेह उन्होंने आनुष्ठानिक हैसियत और सरकारी नौकरियों पर ब्राह्मणों के एकाधिकार पर प्रहार किया।

उनके आंदोलन मूल कारण इस बात में निहित था कि वे सामाजिक और सांस्कृतिक लाभों से वंचित थे गैर-ब्राह्मण जमींदारों और धनी उच्च वर्ग ने कष्ट झेला क्योंकि ब्राह्मणों ने उन्हें शूद्र वर्ग के साथ मिला दिया था।

कुछ विशिष्ट घटनाओं ने आंदोलन के लिए प्रेरणा का काम किया। यह कहा जाता था कि ब्राह्मण शिक्षकों ने कम्मा जाति के विद्यार्थियों को वेदों का अध्ययन करने के अधिकार से वंचित कर दिया था। कृष्णा जिले के कोत्तवरम गाँव में ब्राह्मणों ने कम्मा जाति द्वारा अपने नाम के बाद "दास" के स्थान पर "चौधरी" का प्रयोग करने का विरोध किया। कृष्णा जिले के ब्राह्मणों ने एक पंजीकृत नोटिस दायर किया कि कम्मा जाति को संस्कृत पढ़ने की अनुमति नहीं दी जानी चाहिए। अमृतालूर में ब्राह्मणों ने कम्मा जाति के विद्यार्थियों को भगा दिया था क्योंकि वे शूद्रों की उपस्थिति से भड़क उठे थे और वे सोचते थे कि शूद्रों को वेदों को सुनने का कोई अधिकार नहीं है। एक विख्यात गैर-ब्राह्मण नेता त्रिपुरानेबी रामास्वामी चौधरी (1887-1943) ने ऐसी कई घटनाओं का उल्लेख किया है। एक घटना यह है कि उनकी साहित्य में रुचि होने के कारण एक ब्राह्मण शिक्षक ने उन्हें झिड़क दिया था। उस शिक्षक ने कहा "तुम शूद्र हो। श्लोक लिखना तुम्हारे लिए पाप है संस्कृत ईश्वर की भाषा है। इसको पढ़ना शूद्रों के लिए महापाप है।" यही वह सामाजिक और सांस्कृतिक वातावरण था जिसने आत्म-सम्मान आंदोलन को मजबूत बनाया, विशेषकर उस घटना ने जो 1916 में कोल्लूर में घटी थी।

1916 में गुन्टूर जिले के कोल्लूर गाँव में 'शूद्र' शब्द का अर्थ निश्चित करने के लिए अंग्रेजी पढ़े हुए उच्च जाति के हिन्दू गैर ब्राह्मणों ने एक अधिवेशन बुलाया। वे इस हद तक आगे बढ़ गये कि राम, कृष्ण और दूसरे धर्मग्रंथों के नायकों के प्रतीकों पर संदेह करने लगे। "शूद्र" वर्ग की परिभाषा करने की प्रक्रिया में उन्हे सामाजिक दृष्टि से ब्राह्मणों से ऊँचे वर्ग का माना और महाकाव्यों की फिर से व्याख्या की। इस व्याख्या में इस बात पर प्रकाश डाला गया कि आर्यों की तुलना में द्रविड़ों ने सामाजिक और आनुष्ठानिक अन्याय को अधिक सहन किया था। त्रिपुरानेनी जैसे नेताओं द्वारा विकसित विचारधारा लगभग फुले और पेरियार द्वारा प्रस्तुत की गई मौलिक विचारधारा के समान थी। त्रिपुरानेनी ने पवित्र ग्रंथों की प्रामाणिकता को चुनौती दी। उन्होंने तर्क दिया कि विदेशियों की तरह आर्यों ने इस देश की द्रविड जाति पर अपनी सामाजिक सांस्कृतिक और धार्मिक व्यवस्था थोप दी। जाति पद्धति आर्यों की देन थी जिसे धर्म ने बनाए रखा था। गैर ब्राह्मण नेताओं ने इस तथ्य को भी उजागर किया कि अल्पसंख्यक होते हुए भी ब्राह्मणों ने पश्चिमी शिक्षा, नौकरियों और व्यवसायों पर एकाधिकार कर रखा था। उन्होंने "सेवाओं के गैर ब्राह्मणीकरण" की माँग की।

विख्यात विद्वान त्रिपुरानेनी ने अपना सारा जीवन तटीय आंध्रा में आत्म-सम्मान आंदोलन के प्रचार में लगाया था। उनका प्रहार "ब्राह्मणवाद" पर था न कि ब्राह्मणों पर था। उन्होंने पवित्र ग्रंथों और धर्मग्रंथों की व्याख्या यह दिखाने के लिए की थी कि प्रसिद्ध धर्मशास्त्रों के माध्यम से किस प्रकार शूद्रों को ब्राह्मणों के अधीन रखा गया। "कुरूक्षेत्र संग्रामम" में

त्रिपुरानेनी ने यह कहा है कि वास्तव में पांडवों की तुलना में कौरव अधिक ईमानदार थे और पांडवों को शासन करने का कोई अधिकार नहीं था। उनकी कृति **शंबुक**-वध में शूद्रों के विरुद्ध आर्यों की बल प्रयोग की-राजनीति को उजागर किया गया है। वशिष्ठ के प्रेरित करने पर राजा श्री राम ने वर्णाश्रम धर्म की रक्षा करने के नाम पर शंबूक नामक शूद्र का वध किया था क्योंकि वह उस पवित्र ज्ञान का प्रचार कर रहा था जिससे ब्राह्मणों ने शूद्रों को वंचित कर रखा था।

त्रिपुरानेनी ने अपने साहित्य के माध्यम से लोगों की जागरूकता को बदलने का प्रयास किया।वे स्त्रियों और शूद्रों को "शास्त्रों की दासता" से मुक्ति दिलाकर उनके उद्धार के पक्षपाती थे। वे उस समय के पुरोहित प्रधान हिंदू पंथ को एक उदारवादी, मुक्त समाज में बदलना चाहते थे। उनके द्वारा स्थापित पारंपरिक विवाह पद्धति ही उनका सबसे अधिक सफल सुधार था। कम्मा जाति ने स्वसनोहा पौरोहित्यम करना शुरू कर दिया था अथात् विवाह सम्बन्धी अनुष्ठान उनके समुदाय के पुरोहित ही करवाने लगे थे। त्रिपुरानेनी ने अपनी पुस्तक विवाह विधि में विवाह संस्कारों को तेलुगु भाषा में व्याख्या की है क्योंकि अधिकांश संस्कृत मंत्र शूद्रों की समझ के बाहर थे।

1920 और 30 के दशकों में किए गए आत्म-सम्मान आंदोलन ने अंतर्जातीय भोज (गैर-ब्राह्मणों में), अंतर्जातीय विधवा विवाह और आधुनिक शिक्षा का विकास करने में एक महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाई।

ब्राहमणों के सामाजिक और आनुष्ठानिक प्रभुत्व को तोड़ने के इस प्रयास से जातीय राजनीति और गैर-ब्राह्मण राजनैतिक जागरूकता पैदा हुई। सामान्य स्तर पर गैर-ब्राह्मण बुद्धिजीवियों तथा कृषक वर्ग के बड़े भाग ने राष्ट्रीय आंदोलन का समर्थन किया। उदाहरण के लिए, त्रिपुरानेनी एक प्रतिष्ठित राष्ट्रवादी थे।

संक्षेप में, ब्राह्मणों के सामाजिक और आध्यात्मिक प्रभुत्व के विरुद्ध गैर-ब्राह्मण बुद्धिजीवियों की सांस्कृतिक प्रतिक्रिया स्वरूप ही आंध्र में आत्म-सम्मान आन्दोलन हुआ था। बुद्धिजीवी नेताओं ने पवित्र ग्रंथों की पुनर्व्याख्या करने पर बल दिया। फिर भी उसमें एक दोष यह था कि यह आंदोलन केवल उच्च जाति के गैर-ब्राह्मणों की समस्याओं से संबंधित था और नीचे के तबके के हरिजनों को नज़रअंदाज़ कर दिया गया था। इसका उद्देश्य महाराष्ट्र की जाति व्यवस्था को पूरी तरह मिटाना नहीं था बल्कि उच्च जाति के गैर-ब्राह्मणों को ऊपर रख कर जाति व्यवस्था का फिर से निर्माण करना था।

## 20.3.5 कर्नाटक में गैर-ब्राह्मण आंदोलन

1901 की जनगणना में एकीकृत जाति के रूप में गिने जाने से पहले ही कर्नाटक की प्रधान जाति वोक्कालिग का उपविभाजन हो गया था। एक इतिहासकार का कहना है, "इस वर्गीकरण से गैर-ब्राह्मण आंदोलनकर्त्ताओं को सामूहिक रूप से संगठित होने का महत्त्तपूर्ण आधार मिला।" विभिन्न जाति संघों द्वारा अंदर ही अंदर एकता के गंभीर प्रयास किए गए। 1905 में लिंगायत जाति ने मैसूर लिंगायत शिक्षा निधि संघ की स्थापना की, जबकि 1906 में वोक्कालिग जाति ने कोक्कालिगार संघ बनाया। फिर भी, यही एक गैर-ब्राह्मण आंदोलन था जिससे इन जाति संघों को एक सामान्य मंच दिया और इन्हें एक जुट रखा।

कर्नाटक में गैर-ब्राह्मण आंदोलन का जन्म लगभग 1918 में हुआ। वोक्कालिग और लिंगायत जाति के लोगों ने इसे आगे बढ़ाया। 1918 में गैर-ब्राह्मण नेताओं का एक शिष्टमंडल मैसूर के महाराजा से मिला और वहाँ उन्होंने गैर-ब्राह्मणों के प्रति किए जाने वाले भेदभाव भरे व्यवहार का विरोध किया। इसके फलस्वरूप लेसली मिलर की अध्यक्षता में एक समिति का गठन हुआ और 1919 में उसने अपनी रिपोर्ट प्रस्तुत की। मिलर की सिफारिश पर सरकार ने लोक सेवाओं में उचित साम्प्रदायिक प्रतिनिधित्व के लिए एक आदेश निकाला।

मैसूर राज्य में कांग्रेस आंदोलन के शुरू हो जाने के साथ गैर-ब्राह्मण आंदोलन धीरे-धीरे राष्ट्रीय मुक्ति संघर्ष की ओर बढ़ने लगा और 1938 के अंत में कांग्रेस के साथ मिल गया। धर्मनिरपेक्ष राजनीति ने भी जाति पर आधारित माँगों को मान्यता दी चाहे वे कितनी भी अनुचित रही हों। इसके बावजूद भी परिणाम यह होता कि धर्मनिरपेक्ष माँगों के लिए भी

जाति संघो का ही बोलबाला रहता। कर्नाटक में यही गैर-ब्राह्मण आंदोलन के साथ हुआ। 1930 और 40 के दशकों के दौरान गैर-ब्राह्मण आंदोलन अपनी शक्ति खोने लगा और प्रत्येक जाति वर्ग ने अपने लिए प्रतिनिधि सभा और सरकारी सेवाओं में अलग से प्रतिनिधित्व की माँग करना शुरू कर दिया। इस तरह, 1940 के दशक से गैर-ब्राह्मण आंदोलन एक पिछडी जातियों के आंदोलन में बदल गया विशेषकर 1950 के बाद दो प्रमुख समूह, बोक्कालिग और लिंगायत नई प्रतिनिधि राजनैतिक प्रणाली में शक्ति को बाँटने के लिए आपस में लड़ने लगे।

## 20.4 आंदोलनों का तुलनात्मक विश्लेषण

महाराष्ट्र, तमिलनाडु, आंध्रप्रदेश और कर्नाटक के गैर-ब्राह्मणवादी आंदोलन की तुलना करने से विभिन्न दृष्टिकोण हमारे सामने उभर कर आते हैं। यह बात हम जाति-व्यवस्था से उत्पन्न असमानताओं तथा शूद्र जाति की सामाजिक-सांस्कृतिक अधीनता और उनके भौतिक पिछड़ेपन से समझ सकते हैं। वास्तव में कुछ ऐसे निर्णायक सामाजिक और धार्मिक तत्त्व थे जो इन सभी क्षेत्रों के गैर-ब्राह्मण समूहों के दमन में एकरूप में पाये गये अब हम इनकी एकरूपता और विभिन्नता के बारे में विचार करेंगे। यह अनुभव किया गया है कि उच्च जाति के ब्राह्मणों का धार्मिक रूढ़िवाद और जाति संरचना ही गैर-ब्राह्मण कृषक समूहों के सामाजिक सांस्कृतिक पिछड़ेपन का मुख्य कारण थी और ये ही उनके आमूल सामाजिक सुधार के कार्यक्रम में मुख्य बाधक थे। दूसरे राज्यों से भिन्न, महाराष्ट्र में जोतिवा फुले ने सामाजिक असमानताओं का गहन विश्लेषण प्रस्तुत किया और उन्होंने शूद्रों की तरह माने जाने वाले गैर-ब्राह्मणों के व्यवहार में मौलिक परिवर्तन के लिए प्रभावशाली ढंग से कहा। उन्होंने विद्यमान धार्मिक विचारधारा और जाति पद्धति को पूरी तरह से अस्वीकार कर दिया था। 19वीं सदी के सामाजिक सुधारकों से भिन्न, फुले ने उनको आंतरिक रूप से सुधारने की कोई गुंजाइश नहीं देखी। सामाजिक और धार्मिक मूल्यों में क्रांति लाने के लिए एक सैद्धांतिक आधार की स्थापना कर फुले ने अपनी महत्त्म योग्यता को प्रदर्शित किया। उन्होंने महाराष्ट्र की सभी निम्न जातियों के लिए एक सामूहिक पहचान को स्वरूप दिया। शूद्रो की पहचान का पता लगाने की कोशिश में, फुले ने महाराष्ट्र के योद्धाओं और कृषि परंपरा के प्रतीकों को लिया और उन्हें एक प्रभावशाली अर्थ दिया। फिर भी फुले में एक कमी थी कि वे ब्रिटिश शासन का समर्थन करते थे। उपनिवेशी शासन के वास्तविक स्वरूप को समझने में वे असफल रहे। कोल्हापुर के महाराजा के अधीन चलाये गए फुले के सामाजिक सुधार का स्वरूप भी बदल गया, क्योंकि महाराजा ने अपनी जाति के लिए क्षत्रीय हैसियत और चुनाव राजनीति पर जोर दिया था। मद्रास मे जस्टिस पार्टी और कर्नाटक में गैर-ब्राह्मण आन्दोलनों में अंग्रेजी शिक्षा, प्रांतीय विधान सभाओं और स्थानीय बोर्डों में ज्यादा प्रतिनिधित्व तथा सरकारी सेवाओं में आरक्षण पर बल दिया गया था। फिर भी आंध्र और तमिलनाडु में हुए आत्म-सम्मान आंदोलन में शिक्षा का विकास प्रमुख था।

तमिलनाडु में पेरियार ने ही स्त्रियों और गैर-ब्राह्मण समूहों के उत्थान के लिए अतिसुधारवादी विचारधारा को स्पष्ट किया था। दूसरे क्षेत्रों से भिन्न, पेरियार के नेतृत्व में हुए आत्म सम्मान आंदोलन ने विवाह पद्धति को सुधार कर जाति पद्धति को अस्वीकार कर शूद्रों और स्त्रियों के उद्धार को संघठित करने का प्रयास किया था। महाराष्ट्र के आंदोलन से तुलना करने पर हम देखते हैं कि पेरियार के आंदोलन का सामाजिक आधार ग्रामीण जमींदार वर्गों तथा नगर के व्यवसायिक समूहों तक ही सीमित था। इसलिए वे अछूतों को संघटित करने में असफल रहे।

इसी तरह तटीय आंध्र में आत्म-सम्मान आंदोलन में उच्च जाति के गैर ब्राह्मणों-कम्मा, रेड्डी और वेलमा की प्रधानता थी। गैर ब्राह्मण वर्ग माला और मडिगा जैसे उन अछूतों को शामिल करने में असफल रहे जो खेतिहर मजदूरों के सबसे अधिक उत्पीड़ित हिस्से थे। आंदोलन का लक्ष्य केवल उच्च जाति के गैर ब्राह्मणों को सामाजिक रूप से ऊपर उठाना था। इसने जाति पद्धति के तर्काधार पर कभी कोई आपत्ति नहीं की। अधिश्रेणिक सिद्धांत को स्वयं अस्वीकार करने के बजाए वे अपनी स्थिति को पुनः अभिव्यक्त करने के लिए उस पर

और आश्रित होते गये। यह 19वीं सदी के महाराष्ट्र के आंदोलन के विपरीत था क्योंकि वहाँ फुले ने वर्णाश्रम धर्म को नकार दिया था। इसके फलस्वरूप गैर-ब्राह्मणों के बीच दरार पैदा हो गई और वे विभिन्न जाति समूहों में बँट गए और उन्होंने अच्छी शिक्षा, सरकारी नौकरियाँ और राजनीति में प्रतिनिधित्व जैसी अपनी तात्कालिक माँगों के बारे में आवाज उठानी शुरू कर दी। जैसा कि कर्नाटक में हुए आंदोलन में देखा गया कि धर्म निरपेक्ष माँगों को पेश करने के लिए भी जाति वर्ग का अधिक प्रयोग किया जाता था जो कि एक नकारात्मक प्रवृत्ति थी। 1947 में भारत को स्वतंत्रता मिलने के बाद यह नकारात्मक प्रवृत्ति और अधिक स्पष्ट हो गई।

**बोध प्रश्न 2**

1 पेरियार की विचारधारा किस प्रकार से आमूल सुधारवादी थी?

..........................................................
..........................................................
..........................................................
..........................................................
..........................................................

2 आंध्र में आत्म-सम्मान आंदोलन की मुख्य रूपरेखा क्या थी?

..........................................................
..........................................................
..........................................................
..........................................................
..........................................................

3 कर्नाटक में गैर-ब्राह्मण आंदोलन पर एक संक्षिप्त नोट लिखिए।

..........................................................
..........................................................
..........................................................
..........................................................
..........................................................

4 निम्नलिखित का तुलनात्मक विश्लेषण कीजिए।

क) महाराष्ट्र और तमिलनाडु में गैर-ब्राह्मण आंदोलन।

......................................................
......................................................
......................................................
......................................................
......................................................

ख) तमिलनाडु और आंध्र में गैर-ब्राह्मण आंदोलन।

......................................................
......................................................
......................................................
......................................................
......................................................

ग) तमिलनाडु की जस्टिस पार्टी और कर्नाटक का गैर-ब्राह्मण आंदोलन।

......................................................
......................................................

.................................................................

.................................................................

.................................................................

## 20.5 सारांश

इस इकाई में आपने देखा कि :

- पारंपरिक सामाजिक व्यवस्था (जैसे जाति, स्त्रियों का दमन आदि) में दमन और पिछड़ेपन की पृष्ठभूमि के कारण ब्राह्मणवादी आंदोलन उभरा।
- महाराष्ट्र में साहू की राजनीति या दक्षिण में द्रविड़ कषगम की राजनीति ने कैसे उसके परिवर्तन के विशिष्ट आमूल सुधारवादी वातावरण को कम कर दिया (जिससे जस्टिस पार्टी और आत्म-सम्मान आंदोलन का जन्म हुआ)।
- भूस्वामी गैर-ब्राह्मण जातियों के बढ़ते प्रभाव और जिस ढंग से उन्होंने इस आंदोलन को सामाजिक और आर्थिक प्रतिष्ठा प्राप्त करने के लिए प्रयुक्त किया, इन दोनों की वजह से इस आंदोलन के प्रभाव में कमी आयी।
- फलस्वरूप, ब्रिटिश शासन को पारंपरिक व्यवस्था के दमनकर्त्ता के रूप में देखने वाले इस दृष्टिकोण कभी कोई तबदीली नहीं आई।
- गैर-ब्राह्मण आन्दोलन कभी स्वतंत्र राष्ट्रवादी रणनीति के रूप में विकसित नहीं हुआ।
- इन आंदोलनो की शक्ति विभिन्न क्षेत्रों में भिन्न-भिन्न थी। उदाहरण के तौर पर मद्रास में यह अछूतों तक पहुँचा ही नहीं, जबकि महाराष्ट्र में फुले निम्न जातियों की एक नई सामूहिक पहचान बनाने में सफल हुए।

## 20.6 शब्दावली

**वैचारिक प्रभुत्ता** : कोई विशेष विश्व दृष्टिकोण और उसकी विचारधारा की प्रधानता।

**विवेकवाद** : जीवन के सभी पहलुओं में तर्क लागू करने में विश्वास। मुख्यतः पुनर्जागरण के बाद के काल में यह विचार काफी बढ़ा।

**स्त्रियों की आश्रितता** : स्त्रियों की ऐतिहासिक स्थिति, जिसमें वे स्त्री जाति होने के कारण अपने सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक जीवन में पुरूषों पर आश्रित होती हैं। इस तरह के व्यवहार की झलक हमारे रोजमर्रा की जिंदगी में मिलती है, जिसके कारण स्त्री एक वस्तु बन कर रह गई है।

**सर्वाधिकारवादी परिवारिक ढाँचा** : यहाँ इसका संदर्भ परिवार की उस व्यवस्था से है जिसमें स्त्रियों को "उनके स्थान पर" तथा आश्रित रखा गया। परिवार संरचना को विभिन्न आर्थिक सामाजिक और रिश्तेदारी के बंधनों से बनाए रखा जाता है। जब इन बंधनों को पुरूष सदस्यों का प्रभुत्व स्थापित करने के लिए प्रयोग किया जाता है तब यह संरचना सर्वाधिकारवादी या तानाशाह बन जाती है। स्त्रियों को सम्पत्ति अधिकारों से वंचित करके या तलाक के कठोर नियमों को लागू करके इसे पूरा किया जाता है। इसके अलावा व्यवहारों और विश्वासों को इस प्रकार से बनाया गया है कि जिससे पुरुष का प्रभुत्व बना रहे और स्त्रियाँ मात्र खिलौना बन कर रह जाएँ।

## 20.7 बोध प्रश्नों के उत्तर

**बोध प्रश्न 1**

1 20.2 भाग के पहले पैरा को पढ़े। आपका उत्तर समाज के चार वर्गों के विभाजन जैसे ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र पर केंद्रित होना चाहिए इस पद्धति के कारण पवित्रता·

और अपवित्रता के किस प्रकार के पारस्परिक सम्बन्ध विकसित हुए, इसका वर्णन कीजिए।

2 20.2.1 उपभाग का पहला पैरा पढ़िए। फुले के वैयक्तिक अनुभवों का वर्णन कीजिए।

3 20.2.1 उपभाग में समाज और अर्थव्यवसथा सम्बन्धी विचारों को पढ़िए। निम्नलिखित पर फुले की विचारधारा पर टिप्पणी लिखें:
i) जाति, ii) स्त्रियाँ, iii) धर्म, iv) मूर्तिपूजा, v) अर्थव्यवस्था तथा कृषकों की समस्याएँ, vi) ब्रिटिश शासन

4 20.2.1 उपभाग पढ़िए। 'शब्द की परिभाषा लिखें।

5 20.2.2 उपभाग पढ़िए। i) साहू महाराज की भूमिका ii) व्यावसायिक और भूस्वामी जातियों की भूमिका पर टिप्पणी लिखें।

**बोध प्रश्न 2**

1 उपभाग 20.3.3 पढ़िए। निम्नलिखित पर टिप्पणी लिखें :
i) पेरियार पर मार्क्सवाद का प्रभाव, ii) स्त्रियों की अवस्था के प्रति उनका दृष्टिकोण, iii) धर्म की तुलना में तर्क बुद्धिवाद पर उनका बल, iv) जाति और धर्म के सम्बन्ध में पेरियार के विचार।

2 उपभाग 20.3.4 पढ़िए, विशेषकर पैरा 4 से 7 पवित्र ग्रन्थों को चुनौती, स्त्रियों के उद्धार और आनुष्ठानिक प्राभुत्व को तोड़ने के प्रयासों पर प्रकाश डालिए ।

3 उपभाग 20.3.5 पढ़िए। जाति संघों के बीच सम्बन्ध तथा कांग्रेस से उनके सम्बन्धों पर प्रकाश डालिए।

4 निम्नलिखित तीन प्रश्नों के लिए इकाई का 20.4 भाग पढ़िए। निम्नलिखित पर प्रकाश डालिए :

क) फुले द्वारा सामाजिक और धार्मिक मूल्यों में क्रांति लाने के लिए सैद्धांतिक आधार। स्त्रियों और शूद्रों के उद्धार पर पेरियार का विशेष दृष्टिकोण। केवल भूस्वामी वर्ग तक सीमित पेरियार का सामाजिक आधार। निम्न जातियों पर फुले का प्रभाव

ख) तमिलनाडु में पेरियार के आंदोलन की तुलना में आंध्र में अतिसुधारवाद के जोर की कमी।

ग) कर्नाटक में धर्मनिरपेक्ष माँगों को प्रस्तुत करने के लिए जाति वर्ग का उपयोग। जस्टिस पार्टी उच्च जाति तक ही सीमित रही परंतु जाति पद्धति की पुनर्संरचना करने और उसके लिए लड़ने का प्रयास किया गया।

# इकाई 21 स्वराजवादी और रचनात्मक कार्य

## इकाई की रूपरेखा


21.0 उद्देश्य
21.1 प्रस्तावना
21.2 पृष्ठभूमि
21.3 स्वराज पार्टी : गठन
- 21.3.1 स्वराजवादी और गांधी
- 21.3.2 उद्देश्य एवं लक्ष्य
- 21.3.3 कार्यक्रम
- 21.3.4 कार्य पद्धतियाँ

21.4 स्वराजवादी एवं चुनाव
21.5 विधान मण्डलों एवं परिषदों में कार्य
21.6 रचनात्मक कार्य
- 21.6.1 खादी
- 21.6.2 अस्पृश्यता
- 21.6.3 अन्य सामाजिक समस्याएँ

21.7 हतोत्साहन और पतन
- 21.7.1 सहयोग की ओर
- 21.7.2 विलय
- 21.7.3 विघटन

21.8 पतन के कारण
- 21.8.1 सांप्रदायिकता का उत्थान
- 21.8.2 पदों की लालसा
- 21.8.3 वर्ग चरित्र

21.9 सारांश
21.10 शब्दावली
21.11 बोध प्रश्नों के उत्तर


## 21.0 उद्देश्य

इस इकाई के अंतर्गत हम आपको राष्ट्रवादी राजनीति में एक नए रूझान के रूप में स्वराजवादियों के उदय की जानकारी देंगे। इस नए रूझान का प्रतिफलन मोतीलाल नेहरू और चितरंजन दास के नेतृत्व में स्वराज पार्टी के गठन के रूप में हुआ।

इस इकाई को पढ़ने के बाद आप :
- स्वराज पार्टी के उदय के प्रेरणा स्रोतों तथा पार्टी की विचारधारा से अवगत हो सकेंगे;
- इसके कार्यक्रमों तथा बिखराव के कारणों से अवगत हो सकेंगे;
- भारतवर्ष की राजनीति में इसके योगदान का मूल्यांकन कर सकेंगे;
- असहयोग आंदोलन वापस लिए जाने के उपरांत के घटना चक्र का संक्षिप्त विवरण प्राप्त कर सकेंगे।

## 21.1 प्रस्तावना

सन् 1922-29 का काल कई दृष्टियों से महत्वपूर्ण है। इस काल का आरम्भ असहयोग आंदोलन की समाप्ति तथा एक और आंदोलन के आरंभ के साथ हुआ। इस काल के अंतर्गत राजनैतिक गतिविधियों में नए झुकाव की शुरुआत से भारत के स्वाधीनता संघर्ष को भी बल मिला। इस काल में देश के समक्ष परिषदों में प्रवेश तथा रचनात्मक कार्यों के रूप में दुहरे कार्यक्रम प्रकट हुए। इन्हीं वर्षों में विभिन्न विचारों के प्रवर्तक नए नेताओं का उदय हुआ। इसके अतिरिक्त इस काल के दौरान भारतीय स्वाधीनता संग्राम में नयी समस्याएँ, नये तनाव, नयी दुविधाएँ एवं रुकावटें भी प्रकट हुई। इस इकाई के अंतर्गत आपको 1922-29 के वर्षों के इन तमाम पक्षों का परिचय दिया जायेगा।

## 21.2 पृष्ठभूमि

महात्मा गांधी के नेतृत्व में साम्राज्यवाद के विरुद्ध आवाज उठाने वाले सभी प्रकार की विचारधाराओं से संबन्धित लोगों के लिए एक शक्तिशाली मंच के रूप में कांग्रेस का उदय हुआ। गाँधी जी के प्रथम आंदोलन (1920-22) के दौरान इस मंच की जड़ें सभी वर्गों के लोगों तक फैल गयीं। कांग्रेस द्वारा स्वराज्य को औपचारिक रूप में अपना लक्ष्य स्वीकार करने के साथ ही असहयोग आंदोलन जन आंदोलन में परिवर्तित हो गया। गांधी जी द्वारा दिए गए आकर्षक नारे "एक वर्ष में स्वराज्य" ने जनसमूहों को रणक्षेत्र में उतार दिया। फरवरी 1922 में असहयोग आंदोलन के स्थगन ने निराशा का वातावरण पैदा कर दिया और परिणामस्वरूप कांग्रेस के नेतृत्व में स्पष्ट मतभेद उभर आये। सरकार ने स्थिति का लाभ उठाते हुए तुरन्त ही दमन की नीति अपनायी। 1816 का बंगाल अधिनियम-III पुनः लागू किया गया और तुरंत गिरफ्तारी और विशेष आयुक्त के समक्ष मुकदमा चलाए जाने का अध्यादेश जारी किया गया। इंग्लैंड के प्रधानमंत्री लॉयड जार्ज ने आई.सी.एस. काडरों की कार्यकुशलताओं की प्रशंसा करते हुए अपना "फौलादी शिकंजे" वाला भाषण दिया। ऐसा अंग्रेजी नीति में परिवर्तन को ध्यान में रखते हुए किया गया था। इसने स्वराज्य के सिद्धान्तों का खण्डन करते हुए बर्तानवी साम्राज्य को मजबूत बनाने में योगदान दिया।

ऐसी परिस्थिति में संघर्ष के दौरान गांधीवादी तरीकों की उपयुक्तता के प्रश्न पर लोगों के अंदर मोहभंग की भावना घर करने लगी। क्या लाखों-करोड़ों लोगों को अहिंसा के दर्शन का पाठ पढ़ाना सम्भव था? यदि ऐसा सम्भव भी था तो इसमें समय कितना लगता? इस दौरान गांधी जी जेल में थे और देश के समक्ष कोई निश्चित राजनैतिक कार्यक्रम नहीं था। तथाकथित हिन्दू-मुस्लिम एकता तेजी से अदृश्य होती जा रही थी और दोनों सम्प्रदायों के बीच तनाव और साम्प्रदायिक झगड़ों के शुरू होने के कारण देश की सारी शक्ति, सारे प्रयास इस समस्या के समाधान में लग रहे थे। कांग्रेस के रचनात्मक कार्य जो बुनियादी तौर पर सामाजिक-आर्थिक कार्यक्रमों में सुधार लाने से सम्बन्धित थे, उच्च मध्यवर्गीय बुद्धिजीवियों को आकृष्ट करने में असफल रहे उन्होंने राजनीति में गांधी जी की भावनात्मक और अमूर्त पहुँच का कभी अनुमोदन नहीं किया। उनकी दृष्टि में राजनीति एक मूर्त यथार्थ थी और वे कांग्रेस तथा उसकी राजनीति को असहयोग आंदोलन के वापस लिए जाने के बाद उसमें पनपी हतोत्साहन की भावना से मुक्त करना चाहते थे।

## 21.3 स्वराज पार्टी : गठन

ऐसी परिस्थिति में चित्तरंजन दास और मोतीलाल नेहरू ने राजनीति में नई जान फूंकी। जब सविनय अवज्ञा पर गठित कमेटी ने अपनी रिपोर्ट पेश की जिसमें यह कहा गया था, देश अभी भी सविनय अवज्ञा कार्यक्रम आरम्भ करने के लिए तैयार नहीं है तथा रचनात्मक

18 सी.आर. दास

कार्यक्रमों में बहुत सीमित संख्या में लोगों ने हिस्सा लिया है, तो इन नेताओं ने विधान मण्डलों का बहिष्कार करने के बजाय असहयोग आंदोलन को विधान मण्डलों में ले जाने का सुझाव रखा। इन्होंने परिषद् में प्रवेश द्वारा सुधारों को अन्दर से तोड़ने के विचार को आगे बढ़ाया। इस सुझाव का कांग्रेसियों ने स्वागत किया लेकिन राजगोपालाचारी, राजेन्द्र प्रसाद और सरदार वल्लभ भाई पटेल जैसे परंपरागत गांधीवादियों ने इसका जमकर विरोध किया। परिवर्तन के विरोधियों और परम्परागत गाँधीवादियों ने परिषदों में प्रवेश के कार्यक्रम का विरोध करते हुए गांधी जी के रचनात्मक कार्यक्रमों को आगे बढ़ाने पर बल दिया। परिवर्तन के समर्थकों अथवा स्वराज्यवादियों ने रचनात्मक कार्यक्रम के विचार का विरोध तो नहीं किया लेकिन इस कार्यक्रम के साथ-साथ परिषदों में प्रवेश के राजनैतिक कार्यक्रम को भी साथ लेकर चलने का प्रस्ताव रखा। दिसंबर 1922 में कांग्रेस के गया अधिवेशन में यह मामला उभर कर सामने आया जहाँ राजगोपालाचारी ने परिषदों में प्रवेश के प्रस्ताव का विरोध करते हुए चितरंजन दास को कांग्रेस की अध्यक्षता से त्याग पत्र देने के लिए मजबूर किया। इसके बाद चितरंजन दास ने 31 दिसंबर 1922 को स्वराज पार्टी के गठन की घोषणा की जिसके वे स्वयं अध्यक्ष हुए और मोतीलाल नेहरू उसके सचिव नियुक्त किये गये।

लेकिन गया कांग्रेस में परिवर्तन विरोधियों की विजय अधिक दिनों तक स्थिर न रह सकी। 1923 में हिन्दू-मुस्लिम झगड़ों ने राजनैतिक माहौल को अंधकारमय कर दिया। यह भी स्पष्ट हो गया कि सविनय अवज्ञा को एक राष्ट्रीय कार्यक्रम के रूप में पुनः आरम्भ नहीं किया जा सकता। सितंबर 1923 को दिल्ली में हुए कांग्रेस के विशेष अधिवेशन में, जिसकी अध्यक्षता मौलाना आज़ाद ने की थी, कांग्रेसियों को आने वाले चुनावों में भाग लेने की अनुमति दे दी गई। कोकानाडा के वार्षिक अधिवेशन में इस बात को समर्थन देते हुए कि असहयोग आंदोलन का कार्यक्रम परिषदों के अंदर रहकर भी चलाया जा सकता है, परिषदों में प्रवेश को मान्यता दे दी गई। तमाम कांग्रेस समर्थकों और सदस्यों से गांधी जी के रचनात्मक कार्यक्रम को आगे बढ़ाने के लिए अपने प्रयास को दुगना कर देने का आह्वान किया गया। इस प्रकार कांग्रेस को टूटने से बचाया गया।

### 21.3.1 स्वराजवादी और गांधी

चुनाव हुए और उसमें कुछ प्रान्तों में स्वराजवादियों को भारी विजय मिली। कांग्रेस के अंदर उनके प्रभाव और शक्ति में काफी बढ़ोतरी हुई। फरवरी 1924 में गांधी जी जेल से रिहा किये गये। उनके जेल से बाहर आते ही पुराने झगड़ों को फिर से बल मिला और ऐसा प्रतीत हुआ कि कांग्रेस को टूटने से नहीं बचाया जा सकता। जून में गांधी जी ने "बहिष्कार" के मूल कार्यक्रम के पक्ष में घोषणा की, उन्होंने यहाँ तक कह दिया कि वे लोग जो इस नीति का समर्थन नहीं करते हैं उन्हें अलग संगठन के रूप में कार्य करने की पूरी आजादी है। जून 1924 में अहमदाबाद में हुई अखिल भारतीय कांग्रेस कमेटी की सभा में उनके प्रस्ताव बुनियादी तौर पर स्वराजवादियों को कांग्रेस से बाहर निकालने के लक्ष्य को लेकर रखे गये थे। एक प्रस्ताव में प्रत्येक कांग्रेसी से दो हजार गज सूत कातने का आह्वान किया गया था और प्रादेशिक कांग्रेस कमेटियों को यह अधिकार दिया गया था कि ऐसा न करने वालों के विरुद्ध वे उचित कार्यवाही करे। परिषदों का बहिष्कार करने के विरोधियों को अखिल भारतीय कांग्रेस कमेटी से त्याग पत्र दे देने को कहा गया था—मतदाताओं को कांग्रेस की नीति का विरोध करने वालों से सचेत रहने का आग्रह किया गया। ऐसी स्थिति में स्वराजवादियों का परेशान होना स्वाभाविक ही था क्योंकि चुनाव में उनकी जीत का बहुत बड़ा कारण कांग्रेस का प्रभाव और उसके संसाधन थे। उन्होंने इन प्रस्तावों का जमकर विरोध किया। चितरंजन दास और मोतीलाल नेहरू द्वारा विरोध के बाद गांधी जी ने प्रस्तावों में संशोधन किये और एक समझौते के द्वारा पदच्युत कर दिये जाने जैसे जुर्माने को प्रस्ताव से बाहर कर दिया। यह गांधी जी की प्रतिष्ठा के लिए बहुत बड़ा धक्का था। गांधी जी ने स्वयं खुलेआम यह माना कि यह उनकी हार थी और उन्हें नीचा देखना पड़ा। अब गांधी जी ने स्वराजवादियों को अपना सहयोग देना शुरू किया और उन्हें सरकार के साथ बातचीत करने में कांग्रेस के प्रतिनिधि के रूप में इस्तेमाल किया।

19 मोतीलाल नेहरू

बेलगाम कांग्रेस ने, जिसकी अध्यक्षता स्वयं गांधी जी ने की थी, स्वराजवादियों और परिवर्तन विरोधियों अथवा परम्परावादियों के बीच आपसी विश्वास की बुनियाद रखी। गांधी जी ने असहयोग आंदोलन के स्थगन (केवल विदेशों में बने कपड़ों को पहनने से इंकार करने को छोड़कर) को शामिल करते हुए एक समझौता पेश किया जिसमें यह कहा गया था कि कांग्रेस के विभिन्न प्रकार के कार्य विभिन्न प्रकार के सदस्यों द्वारा किए जाने चाहिए। रचनात्मक कार्य, जिनमें चरखा चलाने और हिन्दू-मुस्लिम एकता का समर्थन और अस्पृश्यता तथा शराबखोरी समाप्त किये जाने पर बल था, कांग्रेसियों के लिए स्वराज्य प्राप्त करने का मुख्य साधन उद्घोषित किया गया।

## 21.3.2 उद्देश्य एवं लक्ष्य

फरवरी 1923 में प्रकाशित हुए अपने कार्यक्रम में स्वराज पार्टी ने अपने उद्देश्यों और लक्ष्यों की ओर इशारा किया था। इसका तात्कालिक उद्देश्य ''शीघ्रातिशीघ्र पूर्ण प्रभुसत्ता का स्तर प्राप्त करना'' था, जिसमें भारतीय परिस्थितियों और मानसिकता की पृष्ठभूमि को ध्यान में रखते हुए संविधान तैयार करने का अधिकार शामिल था। 14 अक्टूबर, 1923 के इसके घोषणा पत्र और परिषदों में इसकी माँगों के स्वरूप से यह स्पष्ट हो गया कि स्वराज पार्टी पूर्ण प्रादेशिक स्वायत्तता चाहती है जिसमें संविधान तैयार करने के अधिकार की दृष्टि से नौकरशाही तंत्र पर नियंत्रण आधारभूत आवश्यकता है। इसका अन्य उद्देश्य इस सिद्धांत को मान्यता दिलाना था कि नौकरशाही अपनी शक्ति जनसमूहों से ही प्राप्त करती है। घोषणा पत्र ने यह स्पष्ट कर दिया कि विधान मंडलों में प्रवेश करने पर इसके सदस्य सरकार से ''सरकारी तंत्र और प्रणाली पर भारतीय जनता के अधिकार'' की माँग स्वीकार करने के लिए दबाव डालेंगे। साथ ही यह भी स्पष्ट था कि यदि सरकार ने इन माँगों पर ध्यान नहीं दिया तो ''एकरूपी, निरंतर और स्थायी व्यवधान'' की नीति अपनाई जायेगी।

1923 में स्वराज पार्टी के तैयार किए गये संविधान में तब तक कई परिवर्तन सामने आते रहे जब तक कि दिसंबर 1924 में बेलगाम सम्मेलन में कांग्रेस के साथ स्वराज पार्टी के सम्बन्ध अन्ततः निश्चित नहीं हो गये। 1924 में पार्टी के संविधान में उसका उद्देश्य तमाम न्यायगत और शान्तिपूर्ण तरीकों से भारतीय जनता द्वारा स्वराज की प्राप्ति उल्लेखित किया गया। संविधान के अंतर्गत स्वराज के निश्चित स्वरूप की व्याख्या नहीं की गई।

## 21.3.3 कार्यक्रम

स्वराज पार्टी का निर्माण उन महत्वपूर्ण कांग्रेस नेताओं ने किया था, जिन्होंने गांधी जी के असहयोग आंदोलन की पद्धति को कभी भी समर्थन नहीं दिया। इन नेताओं ने गांधी जी के जन आंदोलन के कार्यक्रमों के प्रति किसी प्रकार की सहानुभूति का रवैया नहीं रखा लेकिन 1920 की परिस्थितियों के कारण वे इसका विरोध भी नहीं कर सके। कांग्रेस का एक अभिन्न हिस्सा होने और इसके एक विभाग के रूप में कार्य करने के कारण स्वराजवादियों के कार्यक्रम कांग्रेस के कार्यक्रमों से भिन्न नहीं रह सकते थे। कांग्रेस की छत्र-छाया में रहते हुए उसकी अनुमति से 1919 के संविधान को ध्वस्त करने की दृष्टि से स्वराज पार्टी ने अहिंसात्मक असहयोग के कार्यक्रम को परिषदों में ले जाने की घोषणा की। पार्टी ने निम्नलिखित कार्यक्रम अपनाने की घोषणा की :

**परिषदों के अंदर**

पार्टी ने निश्चय किया कि जब कभी भी संभव होगा पार्टी,

- अपने अधिकारों को मान्यता दिलाने के लिए आपूर्ति और बजट को स्वीकार करने से इन्कार करेगी।
- अपनी स्थिति मजबूत करने के लिए नौकरशाही द्वारा प्रस्तावित सभी कानूनी प्रस्तावों को मानने से इन्कार करेगी।
- स्वस्थ राष्ट्रीय जीवन के लिए आवश्यक प्रस्ताव पेश करेगी और साथ ही इससे संबंधित प्रावधानों और बिलों का प्रस्ताव और अनुमोदन भी करेगी।

- कांग्रेस के रचनात्मक कार्यक्रम में सहायता करेगी।
- शोषण की ओर ले जाने वाली तमाम गतिविधियों पर कड़ी नजर रखते हुए एक निश्चित आर्थिक नीति अपनाएगी जिससे भारत से सार्वजनिक सम्पत्ति का इंग्लैण्ड की ओर बहाव रोका जा सके और राष्ट्रीय, आर्थिक, औद्योगिक और व्यापारिक हितों को बढ़ावा मिले।
- कृषि और औद्योगिक मजदूरों के अधिकारों पर ध्यान आकर्षित करने की दिशा में कार्य करेगी और भूस्वामियों और काश्तकारों, पूँजीपतियों और मजदूरों के संबंधों में तालमेल बिठाने की दिशा में कार्य करेगी।

**परिषदों के बाहर**

परिषदों के बाहर निम्न गतिविधियाँ निश्चित की गयी,

- हिन्दुओं, मुसलमानों, सिक्खों, तथा ब्राहमणों एवं गैर ब्राहमणों के बीच एक दूसरे के प्रति पूर्ण सामंजस्य की भावना लाने के लिए सांप्रदायिक एकता लाने की दिशा में कार्य करना।
- अस्पृश्यता समाप्त करने और शोषित वर्गों के उत्थान के लिए कार्य करना।
- ग्रामीण संगठन तैयार करना।
- देश में औद्योगिक एवं कृषि मजदूरों, जिसमें रैयत एवं किसान भी शामिल थे, के संगठन तैयार करना जिससे इन वर्गों के हितों को सुरक्षित एवं प्रोत्साहित किया जा सके और स्वराज के लिए संघर्ष में इनकी उपयुक्त भूमिका सुनिश्चित की जा सके।
- व्यापारिक और औद्योगिक विकास सहित देश का आर्थिक नियंत्रण प्राप्त करना।
- स्थानीय एवं नगरपालिका संबंधी मामलों में नियंत्रण स्थापित करना।
- कांग्रेस के रचनात्मक कार्यक्रमों में स्वदेशी, खद्दर, राष्ट्रीय शिक्षा और पंचायती बोर्डों के संबंध में आवश्यक पद्धति अपनाते हुए कार्यक्रमों को क्रियान्वित करना।
- कमेटी की राय से भारत से बाहर बने कुछ ब्रिटिश उत्पादनों का बहिष्कार करना जिससे कि इसे स्वराज्य प्राप्ति में राजनैतिक अस्त्र के रूप में इस्तेमाल किया जा सके।
- एशियायी सद्भावना तथा व्यापार के क्षेत्र में आपसी सहयोग प्राप्त करने के लिए एशियायी देशों की फेडरेशन का गठन करना। भारत से बाहर राष्ट्रीय कार्य के प्रचार के लिए प्रचार समितियों का गठन करना और स्वराज के लिए संघर्ष में विदेशों का सहयोग और समर्थन प्राप्त करने के लिए कार्य करना।

स्वराजवादियों के कार्यक्रमों पर सरसरी दृष्टि डालने से स्पष्ट हो जाता है कि इनके कार्यक्रमों में किसी प्रकार की नवीनता और मौलिकता नहीं थी बल्कि उनका उद्देश्य सभी वर्गों के लोगों को खुश करना था जिससे कि चुनावों में सफलता पायी जा सके। स्वराजवादी वर्ग संघर्ष की जगह वर्गों की सहिष्णुता में विश्वास रखते थे। उनके विचार में चूँकि हमारी सामाजिक व्यवस्था शताब्दियों पुरानी थी इसलिए यथास्थिति बनी रहनी चाहिए। यद्यपि वे किसानों के प्रति न्याय के समर्थक थे लेकिन साथ ही उनका यह भी विश्वास था कि भूस्वामियों के प्रति कोई अन्याय, न्याय की दरिद्रता का द्योतक है। स्वराजवादी समाज के धनी वर्गों को प्रसन्न रखना चाहते थे क्योंकि इनसे चुनावों में इन्हें काफी आर्थिक सहायता मिलती थी। रचनात्मक कार्यों के प्रति अपने समर्थन के दृष्टिकोण से स्वराजवादियों ने उनके क्रियान्वयन के साधन के रूप में विधान परिषदों की उपयोगिता स्वीकार की। तथापि विधान परिषदों से बाहर के उनके कार्यक्रम काफी स्थूल थे। एशियायी देशों की फेडरेशन और विदेशों में प्रचार की ऐजेंसियों के गठन के कार्यक्रमों की व्यापकता को देखते हुए उनके क्रियान्वयन की संभावना भी केवल वैचारिक स्तर तक रह सकती थी।

## 21.3.4 कार्य पद्धतियाँ

स्वराजवादियों की नीतियों की विशेषता सुधारों को अंदर से तोड़ने की कटिबद्धता में निहित थी। एक समय पंजाब के उपराज्यपाल के रूप में कार्यरत माइकल ओ डायर (Michael O'dyer) ने लिखा था कि खुले विद्रोह की तुलना में अप्रकट ध्वंसकारी शक्तियों से निपटना कहीं अधिक कठिन है। सरकार के सभी कानूनों में अवरोध डालने की नीति के पीछे परिषदों की प्रतिष्ठा को आघात पहुँचाना था जिन्होंने राष्ट्रीय स्वाभिमान का गला घोंट दिया था। 1926 में पार्टी द्वारा किए गए सदन त्याग के समय मोतीलाल नेहरू ने कहा, "हमारी समझ

में अब हमारे लिए इन पाखण्डी संस्थानों का कोई फायदा नहीं रहा और देश की गरिमा और स्वाभिमान को बनाये रखने में हम कम से कम इतना तो कर ही सकते हैं कि इन संस्थाओं का बहिष्कार करें''। हम उन्हीं साधनों का अनुमोदन करेंगे जो किसी सरकार को किसी राष्ट्र द्वारा उठायी गयी माँगों को मानने पर मजबूर करें। स्वराजवादी असहयोग आंदोलन को नौकरशाही तंत्र की जड़ों तक ले गये। उन्होंने परिषदों में अवरोध प्रस्तुत किया, प्रदेशों में द्वैध शासन को व्यवधान पद्धति द्वारा निष्क्रिय कर दिया। स्वराजवादियों की दृष्टि में इस अवरोध का अर्थ विदेशी सरकार द्वारा स्वराज के रास्ते में उत्पन्न किए गए अवरोध का प्रतिकार था। 1925 में बंगाल विधान मंडल में अपने भाषण में चितरंजन दास ने कहा:

> ''हम उस व्यवस्था को ध्वस्त करना तथा उससे छुटकारा पाना चाहते हैं जिसने न तो कोई अच्छा कार्य किया है न ही कर सकती है। हम इसे इसलिए ध्वस्त करना चाहते हैं क्योंकि हम ऐसी व्यवस्था की स्थापना करना चाहते हैं जिसे सफलतापूर्वक लागू किया जा सके और जो जनमानस की भलाई करने में हमारी सहायक हो।''

स्वराजवादियों की पद्धति का ध्वंसात्मक पक्ष बजट के मतदायी पक्षों एवं नौकरशाही द्वारा लाए जाने वाले प्रस्तावों को अस्वीकार करने पर बल देता था। वहीं दूसरी ओर रचनात्मक कार्य पक्ष के तहत स्वराजवादी स्वस्थ राष्ट्रीय जीवन को प्रोत्साहन देने तथा नौकरशाही के विस्थापन को तेज करने के प्रस्तावों को आगे बढ़ाते थे।

स्वराज पार्टी की आम परिषद् ने विधान मंडलों में अपने सदस्यों की गतिविधियों से संबंधित विशिष्ट नियम तैयार किए थे। सदस्य सरकारी नामजदगी द्वारा किसी कमेटी के सदस्य नहीं हो सकते थे परिषदों के अंदर कार्य पद्धति की व्याख्या चितरंजन दास ने इस प्रकार की थी :

> ''मैं चाहता हूँ कि आप परिषदों में पहुँचे, बहुमत प्राप्त करें और राष्ट्रीय माँगों को आगे बढ़ाएँ। यदि ऐसा स्वीकार नही किया तो मैं सरकार के हर कदम का विरोध करूँगा–भले ही वे अच्छे हों अथवा बुरे या उदासीन और परिषदों के कार्य को असंभव बना दूँगा।''

उन्होंने आगे कहा :

> ''यदि सरकार ने अपना कार्य प्रमाणीकरण के द्वारा किया तो स्वराजवादी इसे राजनैतिक मुद्दा बनाते हुए इस्तीफा दे देंगे। पुनर्निर्वाचन के बाद सभी सरकारी कार्यों में अवरोध डालने का कार्य फिर शुरू करेंगे और यदि इसके बावजूद भी सरकार नहीं मानी तो मतदाताओं को यह सुझाव दिया जाएगा कि वे करों का भुगतान करना बंद कर दें और ''सविनय अवज्ञा'' आरंभ कर दें।''

इस प्रकार नौकरशाही की क्रूरता के विरुद्ध सविनय अवज्ञा अंतिम संभव कदम था।

**बोध प्रश्न 1**

नीचे दिए गए प्रश्नों से संबंधित प्रत्येक प्रश्न के साथ कुछ उत्तर दिए गए हैं सही उत्तर पर निशान लगाएँ।

1 स्वराज पार्टी की स्थापना किसने की?

क) महात्मा गांधी

ख) व्ही. जे. पटेल

ग) एस. बी. ताम्बे

घ) चितरंजन दास

2 पार्टी का मुख्य कार्यक्रम क्या था?

क) परिषदों में प्रवेश

ख) संवैधानिक विरोध

ग) रचनात्मक कार्य

घ) इनमें से कोई नहीं

3 पार्टी का कार्यक्रम सबसे पहले कब प्रकाशित हुआ?

क) दिसंबर 1922

ख) फरवरी 1923

ग) अक्तूबर 1923

घ) फरवरी 1922

4 स्वराज पार्टी द्वारा अपनाए गए पाँच कार्यक्रमों की सूची बनाएँ :
परिषदों के अंदर

i) ..........................................

ii) ..........................................

iii) ..........................................

iv) ..........................................

v) ..........................................

5 परिषदों के बाहर

i) ..........................................

ii) ..........................................

iii) ..........................................

iv) ..........................................

v) ..........................................

## 21.4 स्वराजवादी एवं चुनाव

1919 के अधिनियम के प्रावधानों के अंतर्गत क्रमशः 1920, 1923 और 1926 में कुल तीन चुनाव हुए। असहयोग आंदोलन के कारण कांग्रेस ने 1920 के चुनावों का बहिष्कार किया था और उदारवादियों तथा अन्य के समक्ष कांग्रेस की अनुपस्थिति में चुनाव क्षेत्र अपेक्षाकृत आसान था। 1923 में हुए चुनावों के समय तक असहयोग आंदोलन की शक्ति क्षीण हो चुकी थी और परिषदों में प्रवेश के प्रश्न पर कांग्रेस में फूट स्पष्ट हो चुकी थी। चितरंजन दास और मोतीलाल नेहरू ने स्वराज पार्टी के झंडे तले परिषदों में प्रवेश के प्रोग्राम के साथ चुनावों में हिस्सा लिया।

चुनावों में उदारवादी अकेले ही स्वराजवादियों के समक्ष सशक्त विपक्ष के रूप में सामने आए। स्वतंत्र उम्मीदवार भी चुनाव मैदान में थे जिनका स्थानीय महत्व तो था लेकिन उनके पास कोई राजनैतिक दिशा अथवा प्रतिष्ठा नहीं थी। उदारवादियों का पक्ष इसलिए कमजोर पड़ रहा था क्योंकि वे पार्षदीय सत्र में पहले से मौजूद थे। इन्हें नगण्य तथा महत्वहीन मुद्दों पर भी सरकार द्वारा महत्व नहीं दिया गया। विदेशी सरकार के साथ काम करने का कलंक उन पर लग चुका था। वहीं दूसरी ओर असहयोग आंदोलन के दौरान जेल जाने के कारण स्वराजवादियों को शहीद माना जा रहा था। उदारवादियों के पास मतदाताओं के समक्ष जाने के लिए ठोस उपलब्धियाँ भी नहीं थी जबकि स्वराजवादी "गांधी के साथी" और स्वराज्य के लिए कटिबद्ध समझे जा रहे थे। अब वे स्वराज की लड़ाई लड़ने के लिए परिषदों में जा रहे थे क्योंकि यह लड़ाई परिषदों के बाहर असफल परिणामों के साथ खत्म हुई थी। सरकार के साथ खुले टकराव की उनकी नीति मतदाताओं पर व्यापक प्रभाव डाल रही थी।

1923 के चुनावों में स्वराजवादियों की सफलता प्रभावशाली तो थी लेकिन उसे किसी भी रूप में उत्कृष्ट नहीं कहा जा सकता था। केवल मध्य प्रान्त (सेंट्रल प्रोविंसेज) की इसका अपवाद था।

No. 43/23

From,
M.L. Ajmera Jain,
Secy, All-India Jain Association,
(Rajputana Province)

Tripolia bazar,
Jaipur City.
7th June 1923.

My Dear Panditji,

I have full sympathy with the Swarajya Party and want to become its member, but before joining the party I want to know what is the programme and policy of your party regarding the Native States. Please let me know this per return of post fully.

If you can, kindly send me a copy of the Rules, Regulations and other particulars etc., of the party.

Thanking you in anticipation and soliciting the favour of an early reply.

Yours Sincerely,
M. L. Ajmera Jain

To
Pandit Motilal Nehru,
Anand Bhawan,
Allahabad.

ALLAHABAD DELY 17 MAY 23 2.30 P.M.

कोचीन जिलाकांग्रेस कार्यालय, त्रिशवपेरूर.

"वन्देमातरम्,"

Trichur 21-5-1923.

Dear Sir,

I am in receipt of your circular letter issued on 1st May. I shall send my reply there to as soon as I find time. In the mean time may I request you to be good enough to send me a copy of the programme of the Swarajya party. I am glad to tell you Sjt. [illegible] is expected here shortly.

Thanking you in anticipation.

Yours sincerely,
Kurur Nilakantan Nambudiripad

Jo. Kapal Dwar,
Jaipur City
10. 6. 23.

Dear Sir,

I wish to be a member of Indian Swarajya Party. Please let me know the rules of the members & send me the form (if any) at your earliest convenience & oblige.

Yours faithfully,
Banka Bihari Das
H. M. B.

Sjt.
Pandit Moti Lal Ji Nehru,
General Secretary,
Swarajya Party,
Anund Bhowan
Allahabad

20 मोतीलाल नेहरू से स्वराज पार्टी के बारे में जानकारी माँगते हुए पत्र

तालिका (1) में विभिन्न विधान परिषदों में उनके द्वारा प्राप्त किए गए स्थान दर्शाए गए हैं।

**तालिका 1**

| | कुल स्थान | स्वराजवादियों द्वारा प्राप्त किए गए स्थान |
|---|---|---|
| विधान मण्डल | 105 | 42 |
| विधान परिषद् | | |
| मद्रास परिषद् | 98 | |
| बम्बई परिषद् | 86 | 32 |
| बंगाल परिषद् | 111 | 36 |
| उत्तर प्रदेश परिषद् | 101 | 31 |
| पंजाब परिषद् | 71 | 9 |
| बिहार एवं उड़ीसा परिषद् | 73 | 13 |
| केंद्रीय प्रांत परिषद् | 54 | 40 |
| आसाम परिषद् | 39 | 13 |
| कुल | 633 | 174 |

केंद्रीय प्रांत, बंबई एवं बंगाल परिषदों में स्वराज पार्टी अकेली सबसे बड़ी पार्टी के रूप में उभर कर सामने आयी। जबकि उत्तर प्रदेश विधान परिषद् में भी उसकी संख्या महत्वहीन नहीं थी। स्वराजवादी उदारवादियों के विरुद्ध तो सफल रहे लेकिन स्वतंत्र उम्मीदवारों के विरुद्ध उन्हें बहुत अधिक सफलता नहीं मिली जो कि अपने स्थानीय प्रभावों के कारण काफी सफल रहे। चुनावों में स्वराजवादियों की सफलता के कारण कांग्रेस में उनकी स्थिति परिवर्तन विरोधियों की तुलना में काफी मजबूत हो गयी। परिणामस्वरूप स्वराजवादी कांग्रेस के संसदीय दल के रूप में जाने लगे।

अधिकतर निर्वाचित सदस्य वकील एवं व्यापारी थे। तालिका (2) में निर्वाचित सदस्यों को व्यवसाय के आधार पर श्रेणीबद्ध किया गया है। इस तालिका से निर्वाचित सदस्यों के वर्ग का पता चल सकेगा।

**तालिका 2**
**विधान मण्डल**

| | 1924 | 1927 |
|---|---|---|
| वकील | 42 | 38 |
| जमींदार | 26 | 30 |
| व्यापारी | 17 | 16 |
| पत्रकार | 8 | 9 |
| डाक्टर | 2 | 2 |
| अन्य | 9 | 9 |
| कुल | 104 | 104 |

## CANDIDATES' PLEDGE

I being a member of the Indian National Congress do hereby offer myself as a candidate on behalf of the Congress for election to the Legislative Assembly (Provincial Legislative Council) for the constituency of Kistna (Rural) and declare that if my candidature is approved I shall fully conform to all the rules and directions regulating the conduct of election by members of the party which have been or may be issued by the All India Congress Committee or its Working Committee or the executive of the Provincial Congress Committee in accordance with the instructions and resolutions of the All India Congress Committee or its Working Committee. If my candidature is not approved I undertake not to contest the elections. I further agree that in case I am elected I shall faithfully carry out the policy and programme of work laid down in the resolution of the Indian National Congress adopted at Cawnpore and the resolution of the All India Congress Committee (now adopted) and in the election manifesto issued by the Working Committee. I shall also faithfully observe all rules and carry out all instructions which may be issued from time to time by the All India Congress Committee and its Working Committee or by the Provincial Congress Committee and party in the Assembly (Council) that may not be inconsistent with the foresaid instructions for the guidance of the Legislative Assembly or Council. I pledge myself to vacate my seat in the Legislature in case I wilfully fail to carry out the policy and instructions of the Congress, of the All India Congress Committee or its Working Committee or of the Provincial Congress Committee and party in the Legislative Assembly or the Council.

(Sd) Kollipara Suryaprakasa Chowdari

# The Tamil Nadu Congress Committee

## Congress Party Candidate's Pledge

### LEGISLATIVE COUNCIL / ASSEMBLY

"I, being a member of the Indian National Congress do hereby offer myself as a candidate on behalf of the Congress for election to the Legislative Assembly / ~~Provincial Legislative Council~~ from the constituency of Tanjore and Trichinopoly and declare that if my candidature is approved I shall fully conform to all rules and directions regulating the conduct of elections by members of the Party which have been or may be issued by the A. I. C. C. or its Working Committee or the Executive of the Provincial Congress Committee in accordance with the instructions and resolutions of the A. I. C. C. or its Working Committee. If my candidature is not approved I undertake not to contest the election.

I further agree that in case I am elected I shall faithfully carry out the policy and programme of work laid down in the resolutions of the Indian National Congress adopted at Cawnpore and the resolutions of the A. I. C. C. dated 6th and 7th March 1926 and in any election manifesto to be issued by the Working Committee.

I shall also faithfully observe all rules and carry out all instructions which may be issued from time to time by the A. I. C. C. or its Working Committee or by the Party in the Assembly / Council for the guidance of the elected members of the Legislative Assembly / Provincial Legislative Council.

I pledge myself to vacate my seat in the legislature in case I wilfully fail to carry out the policy and instructions of the Congress or the A. I. C. C. or its working Committee or the Party in the Legislative Assembly / Provincial Legislative Council."

Address
Editor, "Swadesamitran"
Mount Road,
Madras.

~~(Signature)~~ (Sd) A. Rangaswamy Iyengar

Tamil Nadu Congress
E. L. III 200 / 19.3.26.

Hindi Prachar Press, Triplicane, Madras.

*(Application Form to be duly filled in and signed by the Congress Candidate who intends to stand for election to the several Legislatures in the coming Election.)*

To

The Hon. Secretary,

The Karnataka Provincial Congress Committee,

GADAG.

Sir,

I beg to offer myself as a Congress candidate for the Bombay Legislative Council ~~Legislative Assembly~~ in the coming General Elections. I am a member of Belgaum Congress Committee and I do hereby declare that, if selected, I shall faithfully carry out the Congress Pledge ( printed on the back ) which was duly signed by me.

I have the honour to be
Sir,
Your most obedient servant.
Vaman Shankar Bhaterpekar

Place,
Date,

1 Name in full .... Vaman Shankar Bhaterpekar
2 Race & religion... Maratha ...Hindu
3 Name of the place and the district in which the candidate resides.... Belgaum
4 The constituency for which the candidate intends to stand .... Belgaum

21. ~~Congress Candidates~~ Pledges.

21 कांग्रेस प्रत्याशियों के शपथ-पत्र

1926 के चुनाव में स्वराजवादियों को बहुत बड़ा धक्का लगा। केवल मद्रास को छोड़कर जहाँ उन्हें कुछ सफलता मिली, विधान परिषदों में स्वराजवादियों की संख्या में काफी कमी आयी। हर जगह उन्हें काफी बड़ा नुकसान पहुँचा। उत्तर प्रदेश, केंद्रीय प्रांत और पंजाब परिषदों में उन्हें केवल एक सीट प्राप्त हुई। उत्तर प्रदेश में उनकी संख्या 31 से घटकर 19 तक रह गयी। केंद्रीय विधान मंडल में भी ऐसा ही अनुभव रहा और उनकी संख्या 42 से 35 हो गयी।

दरअसल 1926 के आम चुनाव तक स्वराजवादियों का प्रभाव काफी कम हो गया था। 1925 में चितरंजन दास की आकस्मिक मृत्यु के कारण स्वराजवादियों की शक्ति क्षीण होने लगी थी और साथ ही उनमें संगठनात्मक फूट भी पनपने लगी थी। आपसी झगड़ों एवं अविश्वास की भावना उनकी प्रतिष्ठा को भी आघात पहुँचा रही थी। कुछ ऐसे स्वराजवादी जिन्हें चुनाव में पार्टी ने टिकट नहीं दिया, स्वतंत्र उम्मीदवार के रूप में चुनाव मैदान में उतर गए। लोगों में उनके प्रति यह आम राय बन गई थी कि वे अवसरवादी एवं स्वार्थी राजनीतिज्ञ हैं। स्वाराजवादियों की अवरोध नीति भी उन्हें एक सूत्र में बाँधे नहीं रख सकी और एक हिस्से द्वारा अनुक्रियाशील रुख अपनाने के कारण पार्टी की शक्ति में और कमी आयी और उक्त हिस्सा ''अनुक्रियाशील स्वराजवादी'' के रूप में उभरा। हिन्दू-मुस्लिम तनाव तथा दोनों ही समुदायों के प्रतिक्रियावादी तत्वों की पार्टी में मौजूदगी, जो कि स्वयं को प्रत्यक्ष रूप में धर्मनिरपेक्ष सिद्ध करना चाहते थे, पार्टी के समक्ष कठिन चुनौती पेश कर रही थी। हिन्दुओं का मानना था कि कांग्रेस के हाथ में उनके हितों का भविष्य अंधकारमय है। हिन्दू महासभा के कार्यकर्त्ताओं ने भी स्वराजवादियों की प्रतिष्ठा को धक्का पहुँचाया। कांग्रेस के साथ मुसलमानों के बिलगाव की जड़ें इतनी गहरी हो गयी कि मुसलमानों ने स्वाराजवादियों के रूप में चुनाव लड़ने के बजाए मुस्लिम उम्मीदवारों के रूप में चुनाव लड़े।

## 21.5 विधान मंडल एवं परिषदों में कार्य

विधान मंडल में मोतीलाल नेहरू स्वराजवादियों के शक्तिशाली दल का नेतृत्व कर रहे थे, चूँकि स्वराजवादी बहुमत में नहीं थे इसलिए यह आवश्यक हो गया था कि अवरोध की नीति के प्रभावपूर्ण क्रियान्वयन के लिए अन्य दलों का समर्थन प्राप्त किया जाय। 1924 में फरवरी के शुरू में सत्तर सदस्यों के साथ एक गठबंधन तैयार किया गया जिसने एकमत से यह स्वीकारा कि यदि सरकार तुरंत संवैधानिक प्रगति से संबंधित प्रस्तावों पर समुचित प्रतिक्रया नहीं दिखाती है तो अवरोध की नीति का सहारा लिया जाएगा। यह गठबंधन राष्ट्रवादी पार्टी के रूप में जाना गया किंतु इस गठबंधन के सभी सदस्य स्वराजवादियों के आमूल परिवर्तन से सहमत नहीं थे। यह गठबंधन 1924 में विधान मण्डल की प्रक्रिया का नियंत्रण अपने हाथ में लिए रहा। इसने बजट की प्रथम चार मांगों को अस्वीकार कर दिया और विधान मण्डल में वित्त विधेयक लाए जाने की अनुमति नहीं दी। रांगाचटियार ने कौंसिल में गर्वनर जनरल से भारत की प्रादेशिक स्वायत्तता एवं संप्रभुता की प्राप्ति हेतु 1919 के अधिनियम संशोधन की माँग करते हुए एक प्रस्ताव पेश किया। पूर्ण उत्तरदायी सरकार की योजना की सिफारिश हेतु मोतीलाल नेहरू ने गोलमेज कान्फ्रेंस के समर्थन में एक संशोधन पेश किया। यह संशोधन विधान मण्डल में बहुमत से पास हुआ। संशोधन का प्रारूप निम्न था।

> ''यह परिषद् गर्वनर जनरल के समक्ष यह सिफारिश करती है कि वे पूर्ण उत्तरदायी भारतीय सरकार की स्थापना एवं निम्नलिखित उद्देश्यों को ध्यान में रखते हुए भारत सरकार अधिनियम में संशोधन करें।''

क) महत्वपूर्ण अल्पसंख्यकों के अधिकारों एवं हितों की रक्षा तथा, भारत के लिए संविधान की सिफारिश को ध्यान में रखते हुए शीघ्रातिशीघ्र प्रतिनिधियों को गोलमेज कान्फ्रेंस के लिए आमंत्रित किया जाए, तथा

ख) केंद्रीय विधानमंडल भंग करके उक्त योजना को नवनिर्वाचित भारतीय विधान मण्डल के समक्ष रखा जाए तदोपरांत उसे बर्तानवी संसद के कानून में शामिल करने के लिए पेश किया जाए।

सर अलेक्जेंडर मडीमैन (Sir Alexandar Muddiman) गृह सदस्य की अध्यक्षता में भारत सरकार एक आयोग बिठाने पर मजबूर हो गयी। इस आयोग को 1919 के ऐक्ट की कमजोरियों एवं उनके निदान की जाँच पड़ताल करने को कहा गया। आयोग ने, जिसमें तेज बहादुर सप्रु, एम. ए. जिन्ना, आर. पी. परांजपे, सर शिवस्वामी अय्यर, मोतीलाल नेहरू जैसे लोग शामिल थे, स्वराजवादियों के चले आ रहे सिद्धान्तों के मुताबिक आयोग की मदद करने के सरकारी निवेदन को ठुकरा दिया। स्वराजवादियों ने वाइसराय के साथ भेंट के सारे निमंत्रणों को भारतीय समस्याओं के समाधान न होने के विरोध में अस्वीकार कर दिया। जब विस्काउंट की अध्यक्षता में गठित किये गये ली आयोग की जन सेवाओं की स्थिति और उनके गठन की जाँच पड़ताल से संबंधित रिपोर्ट विधान मंडल में स्वीकृति के लिए रखी गयी तो नेहरू ने उसमें एक संशोधन जोड़ा जो बहुमत से पास हुआ। इस अवसर पर मोतीलाल नेहरू ने सेवाओं के निवर्तमान संविधान की भर्त्सना करते हुए कहा कि सरकार भ्रष्ट प्रशासन की बुनियाद पर संविधान में सुधार लाने का असंभव प्रयास कर रही है। 1924-25 में विधान मंडल में स्वराजवादियों को कई सफलताएँ प्राप्त हुईं उन्होंने विधानमंडल में पेश किये गये बजट को खारिज करने में सफलता प्राप्त की, जिसके कारण सरकार को अपने प्रमाणन के अधिकार पर निर्भर होना पड़ा। विधानमंडल के अधिनियम द्वारा बंगाल अध्यादेश को भंग करने की माँग करने के लिए रखे गए सी. डी. अयांगर का प्रस्ताव 45 के मुकाबले 58 मतों से पारित हुआ। बी. जी. पटेल ने 1850 के राष्ट्रीय कैदी अधिनियम (स्टेट प्रिजनर ऐक्ट), 1867 के सीमांत अत्याचार अधिनियम तथा 1921 के राष्ट्रद्रोही गोष्ठी निरोधक अधिनियम (प्रिवेंशन ऑफ सेडिशस मीटिंग्स) भंग करने के लिए एक बिल प्रस्तुत किया। सीमांत अत्याचार अधिनियम बिल को छोड़कर सारे बिल पास हो गये। भारत में मिलिटरी कॉलेज की स्थापना की माँग से संबंधित प्रस्ताव पर भी सरकार को हार का सामना करना पड़ा। सुधार जाँच कमेटी पर बहुमत की रिपोर्ट मंजूर कराने के सरकारी प्रस्ताव का मोतीलाल नेहरू ने विरोध करते हुए उस पर संशोधन पेश किया जो कि 45 के मुकाबले 72 मतों से मान लिया गया। इस संशोधन में स्वराजवादियों ने अपना पुराना संवैधानिक मत ही सामने रखा था। संवैधानिक प्रगति के अंतर्गत भारतीय प्रतिनिधियों की गोलमेज कांफ्रेंस द्वारा तैयार की गयी योजना के तहत पूर्ण उत्तरदायी सरकार की स्थापना का प्रस्ताव था।

सुधारों को अन्दर से तोड़ने की अपनी कटिबद्धता एवं प्रयासों में स्वराजवादी प्रायः सरकारी विधेयकों तथा अन्य योजनाओं में रुकावट डालने में सफल होते रहे। इन्होंने स्थगन प्रस्ताव लाने आरंभ कर दिए तथा विदेशी सरकार के कुकर्मों का पर्दाफाश करने की दृष्टि से उसके समक्ष अटपटे प्रश्न रखने आरंभ कर दिए। किंतु सुधारों को तोड़ने की पद्धति सरकारी क्रियाकलापों को कभी भी रोक नहीं सकी। स्वतंत्र विधायकों ने अपनी इस समझ के तहत स्वराजवादियों के साथ शामिल होने से इंकार कर दिया कि स्वराजवादी केवल अपने स्वार्थों के लिए अवरोध की नीति अपनाए हुए थे। राष्ट्रीय पार्टी सरकार के साथ अनुक्रियाशील सहयोगी की भूमिका निभा रही थी एवं स्वतंत्र उम्मीदवार स्वराजवादियों को पसन्द नहीं करते थे। अपने संसदीय दिनों में स्वराजवादी सरकारी नीतियों के प्रति विरोध प्रकट करने के लिए समय-समय पर बहिष्कार करने लगे। यह सिलसिला इतना नियमपूर्वक चलने लगा कि स्वराजवादी "भ्रमणशील देशभक्त और संचलनशील देशभक्त आदि नामों से जाने, जाने लगे"।

केंद्रीय सरकार एवं बंगाल में स्वराजवादियों की सफलता प्रभावशाली थी। बंगाल की यह सबसे बड़ी पार्टी थी और 19 स्वतंत्र विधायकों के समर्थन के साथ स्वराजवादी "पूर्ण अवरोध" की स्थिति पैदा करने में सफल हो सके। बंगाल के गर्वनर लार्ड लिटन ने चितरंजन दास को "स्थानांतरण विभागों की जिम्मेदारी" स्वीकार करने के लिए आमंत्रित किया जिसे चितरंजन दास ने ठुकरा दिया और सरकार का विरोध करने के लिए एक प्रभावपूर्ण गठबंधन संगठित किया। 1924 और 1925 में दो बार मंत्रियों के वेतन अस्वीकार कर दिए गए तथा वेतन प्रत्यावर्तन के निरंतर प्रयास कोई सफलता अर्जित न कर सके। गर्वनर को मजबूर होकर स्थानांतरण विभाग स्वयं अपने और कार्यकारिणी परिषद् के बीच बाँटने पड़े। जे. एम. सेनगुप्त. द्वारा रखा गया राजनैतिक कैदियों की रिहाई से संबंधित प्रस्ताव 41 के मुकाबले 72 मतों से पारित हुआ। इसके उपरांत व्योमकेश चक्रवर्ती द्वारा बंगाल नियमन ऐक्ट 1818, भारतीय अपराध कानून संशोधन अधिनियम और राष्ट्रद्रोही गोष्ठी निरोधक अधिनियम आदि कानून को समाप्त करने से संबंधित प्रस्ताव रखा गया। इस

प्रस्ताव के पक्ष में 63 तथा विपक्ष में 43 मत पड़े। 1925 में चितरंजन दास के मृत्यु के साथ ही स्वराजवादियों ने अपना योग्यतम नेता खो दिया और उनकी स्थिति काफी कमजोर हो गयी। फिर भी सरकार मंत्रिमंडल का गठन न कर सकी। 1926 में स्वराजवादी यह घोषणा करते हुए कि द्वैध शासन अस्तित्व में नहीं रहा, कौंसिल से बाहर आ गए।

केंद्रीय प्रांत मे स्वराजवादी दल को पूर्ण बहुमत मिल गया जिसके कारण वे सरकार को अक्रियाशील स्थिति में पहुँचाने में सफल हो सके। उन्होंने मंत्रिमंडल में जाना स्वीकार नहीं किया। सरकार ने गैर स्वराजवादियों को मंत्रिमंडल में शामिल कर लिया। स्वराजवादियों ने मंत्रियों से इस्तीफा दे देने का निवेदन करते हुए एक प्रस्ताव रखा जो कि कौंसिल में 24 के मुकाबले 44 मतों से पारित हुआ। गवर्नर के विशेषाधिकारों के बल पर केंद्रीय प्रांतों में, सरकार चल सकी। भारतीय सांविधिक आयोग ने, यद्यपि शिकायत पूर्ण लहजे में स्वराजवादियों की सफलता को निम्नलिखित रूप में स्वीकार किया।

> "केवल एक ही ऐसी पार्टी है जो कि उपयुक्त रूप से संगठित है, अनुशासित है और उसके पास एक निश्चित कार्यक्रम (जो कि वास्तविक रूप में नकारात्मक है) हैं। यह पार्टी स्वराजवादियों की पार्टी है। केवल बंगाल और केंद्रीय प्रांतों में थोड़े समय के लिए वे द्विपक्षीय शासन व्यवस्था को अक्रियाशील बनाने के अपने प्रारंभिक उद्देश्य में सफल हुए। अन्य सभी प्रांतों में थोड़े बहुत फर्क के साथ स्वराजवादी एक संवैधानिक स्वरूप में विपक्ष के रूप में कार्य करते रहे और एक सजग आलोचक के रूप में कोई लाभदायक भूमिका नहीं निभाई।"

स्वराजवादियों की गतिविधियों ने देश में उत्तेजना पैदा कर दी और संविधान के अंतर्गत अपनी कार्य नीति के जरिए जो कुछ भी अर्जित कर सकने की संभावना थी, उन्होंने अर्जित किया। बंगाल एवं केंद्रीय प्रांतो में द्विपक्षीय सरकार के अपदस्थ होते ही जनसाधारण में उत्साह की लहर दौड़ गयी। स्वराजवादियों की गतिविधियों ने नीरस राजनैतिक माहौल में नई जान फूँक दी। अवरोध की उनकी रणनीति ने सरकार की स्थिति काफी असमंजस पूर्ण बना दी। इस समय के संसदीय द्वंद्व संसदीय राजनीति के इतिहास में काफी महत्वपूर्ण स्थान रखते हैं।

## 21.6 रचनात्मक कार्य

यद्यपि सुधारों को अंदर से तोडने के लिए कौंसिलों में प्रवेश स्वराजवादियों का मुख्य उद्देश्य था किन्तु यह एकमात्र उद्देश्य न था। उनके पास सामाजिक-आर्थिक सुधारों अथवा उन्नतकारी गतिविधियों की समझ थी, जिसे गांधी जी ने रचनात्मक कार्यक्रमों की संज्ञा दी थी। गांधी जी का मानना था कि स्वतंत्रता संग्राम के रथ के दो पहिये हैं : रचनात्मक कार्यक्रम और राजनैतिक प्रचार। उनके अनुसार रचनात्मक कार्यक्रम अठारह बिंदुओं पर आधारित था जिसमें हिन्दू-मुस्लिम एकता, अस्पृश्यता उन्मूलन, मद्य निषेध, स्वदेशी एवं बहिष्कार मुख्य थे।

स्वराजवादी इन कार्यक्रमों की उपेक्षा नहीं कर सकते थे क्योंकि वे जानते थे कि उन्हें कौंसिल छोड़कर कभी भी उन लोगो के साथ सविनय अवज्ञा में शामिल होना पड़ सकता है जो कौंसिलों में शामिल नही हुए। उनकी राजनैतिक शक्ति का श्रेय गांधी एवं कांग्रेस के साथ उनके निरंतर सहयोग को जाता था। रचनात्मक कार्य कांग्रेस के दोनों गुटों, परिवर्तन विरोधी एवं स्वराजवादियों के लिए एक सामान्य मंच के रूप में उभरा। फिर भी रचनात्मक कार्यों को क्रियान्वयन करने में परिवर्तन विरोधी दल के मुकाबले में स्वराजवादी जो कौंसिलों में प्रवेश एवं संसदीय राजनीति में अधिक व्यस्त थे, अधिक सफलता प्राप्त न कर सके।

स्वराजवादी स्वराज की प्राप्ति के लिए हिन्दू-मुस्लिम एकता तथा राजनैतिक शिक्षा को अनिवार्य शर्त मानते थे। 1926 में कांग्रेस ने सांप्रदायिक एकता तथा स्वस्थ राष्ट्रीय जीवन के प्रति जनसाधारण को शिक्षित करने के लिए एक "स्थायी प्रचार ब्यूरो" की स्थापना की। मोतीलाल नेहरू, मौलाना आजाद तथा सरोजनी नायडू को इस दिशा में आवश्यक कार्यनीति तैयार करने के लिए अधिकृत किया गया। कांग्रेस के गोहाटी अधिवेशन में मोतीलाल नेहरू

ने लोगों को उनके राजनैतिक अधिकार के प्रति शिक्षा देने तथा रचनात्मक कार्यों द्वारा इन अधिकारों की प्राप्ति के लिए आवश्यक कार्य शक्ति प्राप्त करने की दिशा में प्रयत्न करने के लिए कार्यक्रम आरंभ किए जाने पर अपनी सारी प्रभाव शक्ति लगा दी। भारतीय राजनीति में स्वराजवादियों का उदय उसी समय हुआ जब भारतीय समाज में हिन्दू-मुस्लिम तनाव की जड़ें फैल रही थी। आज़ादी, अखण्डता तथा सांप्रदायिकता विरोधी मूल्यों के समर्थकों के लिए सांप्रदायिक दंगे एक बड़ी चुनौती के रूप में उभरे। अन्य दलों की भाँति ही स्वराजवादी भी इस बदतर होती परिस्थिति को सुधारने के संबंध में केवल हिन्दू-मुस्लिम एकता के प्रति भाषण देने के अलावा कुछ रचनात्मक कार्य न कर सके। गांधीवादी रचनात्मक कार्यक्रमों में स्वदेशी की संकल्पना एक महत्वपूर्ण स्थान बना चुकी थी। गांधी जी के विचार से स्वदेशी का अर्थ केवल चरखा और खादी नहीं था बल्कि स्वदेशी उद्योग से संबंधित सभी पक्ष इसमें शामिल थे। उनके अनुसार खादी का अर्थ था पूर्ण स्वदेशी मानसिकता तथा जीवन की सभी आवश्यकताओं को भारत के अंदर ही प्राप्त करने की कटिबद्धता जो केवल ग्रामीण जनता के श्रम एवं बुद्धि के द्वारा ही उत्पन्न हो सकती थी। स्वयं स्वराजवादी भी स्वदेशी, चरखा एवं खादी के कार्यक्रमों का पालन करने को वचनबद्ध थे लेकिन गांधी जी तथा उनके परंपरागत समर्थकों की भाँति इन कार्यक्रमों के प्रति उनकी इतनी गहरी रुचि न थी। गांधी जी ने स्वराजवादियों पर इस बात के लिए आरोप लगाया कि वे खद्दर के प्रयोग के मामले में गंभीर न थे और केवल छिटपुट रूप से ही वे इसका प्रयोग करते थे एवं उनके घरों में विदेशी वस्त्रों का प्रयोग होता था।

## 21.6.1 खादी

स्वराजवादी गांधी जी के खद्दर तथा हाथ से कताई करने के विचार से पूर्ण रूप से सहमत नहीं थे। चितरंजन दास ने चरखा एवं खादी को भारतवासियों के आर्थिक जीवन में सुधार लाने के लिए उपयोगी माना किन्तु खादी की व्यापारिक उपयोगिता पर उनकी सहमति नहीं थी। उनके विचार में खादी का विश्व बाजार में कोई महत्व नहीं था। स्वराजवादी इस बात को मानने के लिए तैयार न थे कि केवल खादी चरखा एवं स्वदेशी उद्योग भारत को स्वतंत्रता दे सकेंगे। चितरंजन दास ने कहा, "ऐसा विचार व्यक्त किया गया है कि केवल खद्दर हमारे लिए स्वराज्य लाएगा। मैं अपने देशवासियों से पूछता हूँ कि केवल खद्दर से स्वराज्य की प्राप्ति किस प्रकार संभव है? स्वराजवादी खद्दर के इस्तेमाल पर अतिरिक्त बल नहीं देते थे। किंतु साथ ही उसके प्रचारित करने का कोई अवसर भी नहीं छोड़ रहे थे। स्वराजवादियों ने अपने तमाम सदस्यों को खादी पहन कर ही केंद्रीय विधान सभा तथा प्रादेशिक परिषदों में जाने का आदेश दिया।

स्वराजवादियों ने परंपरावादी गांधीवादियों और परिवर्तन विरोधियों के खद्दर तथा हाथ से कताई करने से संबंधित उत्साह का केवल सतही तौर पर ही विरोध नहीं किया बल्कि कांग्रेस के अंदर गांधीवादियों द्वारा रखे गए इस प्रस्ताव का जमकर विरोध किया कि चरखा कातना अथवा खादी कांग्रेस की सदस्यता का आधार बने। स्वराजवादियों ने गांधी जी के इस प्रस्ताव का भी विरोध किया कि कांग्रेस के सभी निर्वाचित संगठनों के सदस्यों के लिए कताई अनिवार्य बना दी जाए। इस कठोर विरोध को देखते हुए गांधी जी ने हाथ से कताई करने से संबंधित प्रस्ताव में जुर्माने के प्रावधान को समाप्त करने की व्यवस्था रखी।

हाथ से कताई से संबंधित प्रस्ताव पर स्वराजवादियों के रवैये को स्पष्ट करते हुए चितरंजन दास ने कहा:

> "स्वराजवादियों को कताई करने में कोई आपत्ति नहीं और वे रचनात्मक कार्यों में अपने विश्वास को लगातार स्पष्ट करते रहे हैं। किंतु स्वराजवादी किसी भी चीज को उन पर लादे जाने के कट्टर विरोधी रहे हैं और यह (कताई) असंवैधानिक रूप में उन्हें कांग्रेस की कार्यकारिणी से बाहर किए जाने का प्रयास है।"

संक्षेप मे यह कहा जा सकता है कि स्वराजवादी खद्दर के इस्तेमाल को आगे बढ़ाने के लिए सदैव तैयार रहते थे लेकिन वे उस पर अतिरिक्त बल नहीं देते थे।

## 21.6.2 अस्पृश्यता

अस्पृश्यता भारतीय समाज पर कलंक थी। असहयोग आंदोलन प्रस्ताव में हाथ से कताई एवं

बुनाई करने की प्रक्रिया को पुनः व्यवहार में लाने के लिए देश में आह्वान किया गया क्योंकि इससे भारतीय समाज के लाखों बुनकर परिवारों को लाभ होता। गांधी जी के अनुसार, असहयोग आंदोलन अंग्रेजों के लिए ही नहीं बल्कि भारतीयों के लिये भी हृदय परिवर्तन का एक जरिया था। कांग्रेस के नागपुर सत्र में उन्होंने हिन्दू धर्म से अस्पृश्यता को समाप्त करने के लिए विशेष प्रयास किए जाने की आवश्यकता पर बल दिया। दलित वर्गों के उत्थान के लिए कांग्रेस प्रतिबद्ध रही। स्वराजवादी भी इस प्रश्न पर लगभग वही समझ रखते थे जो कि गांधी जी की थी। वे 1924 में बेलगाम कांग्रेस में अस्पृश्यता से संबंधित पारित हुए प्रस्ताव से पूरी तरह सहमत थे। उनका दृढ़ मत था कि इस अभिशाप से भार समाज को पूरी तरह छुटकारा दिलाना अत्यावश्यक है।

भारत के कुछ हिस्सों में अस्पृश्यता की अभिव्यक्ति भयावह रूप में हुई। इस दौरान अस्पृश्यता के अभिशाप से निपटने के लिए कई प्रकार के प्रयास किए गए। उदाहरण के लिए दक्षिण भारत में वाइकोम नामक स्थान में सुधारकों ने मंदिर की ओर जाने वाले आम मार्ग को "अछूतों" द्वारा इस्तेमाल किए जाने के उनके अधिकार के लिए सत्याग्रह आरंभ किया। इस पहल को गांधी जी तथा स्वराजवादी दोनों का ही पूर्ण समर्थन मिला।

स्वराजवादियों ने वाइकोम के सत्याग्रह के समर्थन में एक प्रस्ताव पारित किया। बेलगाम कांग्रेस ने सत्याग्रहियों की माँगों को मान्यता देते हुए सरकार से तुरंत सकारात्मक प्रतिक्रिया की माँग की। सरकार को यह मानने पर मजबूर किया गया कि हिंदू रूढ़िवादिता को सरकारी सहयोग देना अनुचित है। सत्याग्रहियों के दबाव के कारण सरकार ने मंदिर की ओर जाने वाले रास्तों से तमाम अवरोध हटा लिए हालाँकि इस प्रश्न पर जनमत में एकरूपता नहीं थी। तारकेश्वर की घटना में महंत निरंकुशता के विरुद्ध स्वराजवादियों ने काफी रुचि ली। दो धार्मिक सुधारकों, स्वामी सच्चिदानंद एवं स्वामी विश्वनाथ ने एक स्वयंसेवी दल संगठित करते हुए मंदिर को जनसंपत्ति घोषित कर दिया तथा महंत की क्रूरता के विरुद्ध सीधी कार्यवाही आरंभ की। महंत के समर्थकों एवं स्वयं सेवियों के बीच झगड़ा भी हुआ। चितरंजन दास ने इस मुद्दे पर सरकार की भूमिका की भर्त्सना करते हुए महंत की गिरफ्तारी की माँग की। चितरंजन दास द्वारा गठित कमेटी को मंदिर सौंप देने के लिए महंत पर दबाव डाला गया। तारकेश्वर के मुद्दे पर काफी उत्तेजना बनी हुई थी। काफी गिरफ्तारियाँ भी हुई और एक अवसर पर पुलिस को गोली भी चलानी पड़ी। स्वराजवादियों को अंततः अपनी शर्तों पर महंत के साथ एक समझौता करने में सफलता प्राप्त हुई। इस पूरी घटना से मंदिरों में पूजा से सम्बन्धित भेदभाव के विरुद्ध स्वराजवादियों की कटिबद्धता उभर कर सामने आयी। उन्होंने निचले वर्गों के लिए मंदिरों में प्रवेश पर अपना समर्थन जारी रखा। अंतर्जातीय भेदभाव समाप्त करने की दृष्टि से उन्होंने एक अंतर्जातीय भोज का भी आयोजन किया। स्वराजवादी विधानसभा तथा प्रांतीय परिषदों में निचले वर्गों के अधिकारों के समर्थन में आवाज़ उठाने का कोई भी अवसर नहीं गँवाते थे। उनके द्वारा की गई अस्पृश्यता विरोधी गतिविधियों ने सामाजिक जागरूकता तो पैदा की किन्तु शताब्दियों से चली आ रही इस कुरीति को दूर करने के लिए और अधिक प्रयास आवश्यक थे।

## 21.6.3 सामाजिक समस्याएँ

शराब एवं अन्य नशीले पदार्थों के सेवन की बुराइयों की ओर भी कांग्रेस का ध्यान गया। कांग्रेस ने इस बुराई को दूर करने की आवश्यकता पर बल दिया तथा नशाबन्दी में अपना विश्वास दर्शाया। नशीले पदार्थों का सेवन अंग्रेजी राज्य के पहले से चला आ रहा था। अंग्रेजों ने नशीले पदार्थों को अपनी आय का साधन बना लिया था तथा सरकार के लिए आय की कमी के डर से नशाबंदी लागू करने के लिए वे तैयार न थे। राष्ट्रवादियों के समक्ष स्थिति स्पष्ट थी कि विदेशी सरकार की रुचि पैसा बनाने में है न कि सामाजिक कल्याण में। देशभक्त नागरिक के रूप में यह उनका दायित्व बनता था कि वे सामाजिक उत्थान के लिए कार्य करें। अतः स्वराजवादियों ने अपने कार्यक्रम में नशाबंदी लागू करना भी शामिल कर लिया। राष्ट्रवादी यह भलीभाँति समझ रहे थे कि सरकार की वे नीतियाँ जो कि लोगों में शराब पीने तथा अन्य नशीले पदार्थों के सेवन की आदत को आय का साधन बना रही है, वे जनता की भलाई तथा राष्ट्रीय स्वास्थ्य के प्रति हानिकारक है। अतः वे इसे समाप्त करने के पक्षधर बने रहे।

1922 से लेकर 1929 तक कांग्रेस ने, जिसका स्वराजवादी अभिन्न अंग थे, रचनात्मक कार्यक्रमों को काफी महत्व दिया। महात्मा गांधी ने इसे जीवन के उद्देश्य का रूप दे दिया। उनके अनुसार वास्तविक आज़ादी रचनात्मक कार्यों से ही मिल सकती थी। स्वराजवादी रचनात्मक कार्यों को समर्थन देते रहे किन्तु रचनात्मक कार्यों में गांधी की पूर्ण आस्था और आदर्शवादिता से सहमत नहीं थे। किन्तु रचनात्मक कार्यों से कांग्रेस को अपेक्षित सफलता न मिल सकी। फिर भी कांग्रेस के अनुयायी सीमित रूप में ही सही, इस दिशा में कुछ सफलता जरूर अर्जित कर सके।

**बोध प्रश्न 2**

1 स्वराज्य पार्टी ने चुनाव में हिस्सा लिया

क) 1923, 1926 में

ख) 1919, 1923 में

ग) 1920, 1926 में

घ) 1919, 1920 में

2 चुनाव किस अधिनियम के तहत हुए?

क) 1920

ख) 1923

ग) 1926

घ) 1919

3 1924 के विधान मंडल में, अधिकतर सीटें किसको मिली ?

क) जमींदारों को

ख) पत्रकारों को

ग) वकीलों को

घ) व्यापारियों को

4 निम्नलिखित में कौन सा स्वराजवादी नेता विधानसभा का अध्यक्ष बना ?

क) मोतीलाल नेहरू

ख) वी.जे. पटेल

ग) चितरंजन दास

घ) जे.एम. सेनगुप्ता

5 1923 में स्वराज पार्टी ने निम्न में से किसमें पूर्ण बहुमत प्राप्त किया ?

क) विधान मंडल

ख) उत्तर प्रदेश विधान परिषद्

ग) बंगाल विधान परिषद्

घ) केंद्रीय प्रांत विधान परिषद्

6 विधान मंडल एवं विधान परिषदों में स्वराजवादियों की गतिविधियों पर दस पक्तियाँ लिखें।

..........................................................................

..........................................................................

..........................................................................

..........................................................................

. . . . . . . . . . . . . . . . . . . . . . . . . . . . . . . . . . . . . . . . . . . . . . . . . . . . . . . . .

. . . . . . . . . . . . . . . . . . . . . . . . . . . . . . . . . . . . . . . . . . . . . . . . . . . . . . . . .

. . . . . . . . . . . . . . . . . . . . . . . . . . . . . . . . . . . . . . . . . . . . . . . . . . . . . . . . .

. . . . . . . . . . . . . . . . . . . . . . . . . . . . . . . . . . . . . . . . . . . . . . . . . . . . . . . . .

. . . . . . . . . . . . . . . . . . . . . . . . . . . . . . . . . . . . . . . . . . . . . . . . . . . . . . . . .

. . . . . . . . . . . . . . . . . . . . . . . . . . . . . . . . . . . . . . . . . . . . . . . . . . . . . . . . .

. . . . . . . . . . . . . . . . . . . . . . . . . . . . . . . . . . . . . . . . . . . . . . . . . . . . . . . . .

## 21.7 हतोत्साहन और पतन

स्वराजवादियों में 1924 का उत्साह समाप्त हो चला था और 1925-27 के वर्षों में हतोत्साहन और अन्ततः पतन की प्रक्रिया शुरू हो चली थी। विधानमंडल और विधान परिषदों में स्वराजवादी सतत, निरंतर और एकरूपी अवरोध की नीति को आगे बढ़ाने में विफल रहे। स्वराजवादियों की नीति 1919 के संविधान के खोखलेपन का पर्दाफाश करने के उद्देश्य में सफल रही किन्तु वे उसे सुधारने अथवा समाप्त करने में विफल रहे। स्वराजवादियों के एक बड़े हिस्से ने यह महसूस करना शुरू कर दिया था कि सरकार की सभी नीतियों का ध्वंसात्मक विरोध सामाजिक रूप से लाभदायक सभी नीतियों को समाप्त कर देगा। अनुक्रियाशील सहयोग की भावना निरंतर मजबूत होती जा रही थी। यहाँ तक कि चितरंजन दास भी सहयोग में रुचि दिखाने लगे थे। 2 मई, 1925 को फरीदपुर में बंगाल की प्रांतीय सभा की अध्यक्षता करते हुए उन्होंने बर्तानवी सरकार से एक उपयुक्त समझौता करने की अपील की। उन्होंने कहा कि सरकार के साथ सहयोग की संभावना इस रूप में बन सकती है कि कुछ वास्तविक जिम्मेदारियाँ जनता को हस्तांतरित कर दी जाएं। उन्होंने सभी राजनैतिक कैदियों के लिए आम माफी दिए जाने का आह्वान किया और हृदय परिवर्तन को व्यवहार में प्रदर्शित किए जाने पर बल दिया। उन्होंने सरकार को विश्वास दिलाया कि स्वराजवादी क्रांतिकारी प्रचार को निरुत्साहित करने के सभी प्रयास करेंगे।

### 21.7.1 सहयोग की ओर

फरीदपुर घोषणा ने सरकार के साथ सहयोग की ओर जाने वाली बहाव प्रक्रिया को और तेज कर दिया। लार्ड बर्केनहेड ने 7 जुलाई 1925 के अपने भाषण में स्वराज पार्टी को ''भारत की सबसे संगठित राजनैतिक पार्टी'' के रूप में व्याख्यायित किया। यह वाक्य संभवतः स्वराजवादियों को काफी प्रभावित कर गया और वे मात्र अवरोधक राजनीति से परे हटाने की दिशा में बढ़ने की सोच सके। वास्तव में काफी संख्या में स्वराजवादी असहयोग की नीति से सहमत नहीं थे। परिषदों में प्रवेश कर लेने के बाद वे इसके लाभों से हाथ नहीं धोना चाहते थे। स्वराजवादी नेताओं ने पदों पर आसीन होना स्वीकार किया और विभिन्न समितियों में भी रहे। मोतीलाल नेहरू जिन्होंने कुछ समय पूर्व मडीमैन समिति में पदासीन होना अस्वीकार कर दिया था, अब स्कीन समिति में जाने पर सहमत हो गये। विट्ठलभाई पटेल विधानमंडल के अध्यक्ष बने। रामास्वामी अयंगर ने पब्लिक एकाउंट्स कमेटी का नेतृत्व संभाला तथा सर बसिल ब्लैकेट ने विधानमंडल में मोतीलाल नेहरू के सहयोग की प्रशंसा की। उन्होंने पूछा, ''इस्पात सुरक्षा बिल पारित करने, पिछले वर्ष का बजट पास करने एवं रेलवे वित्त को अलग करने के पीछे पंडित जी के सहयोग के अतिरिक्त और क्या उद्देश्य है, इस सदन की अध्यक्षता करते हुए पटेल और क्या कर रहे हैं। उन्होंने पब्लिक एकांउट्स कमेटी में अयंगर की सेवाओं की भी प्रशंसा की। सरकार स्वराजवादियों के साथ इस प्रकार की नीति अपनाकर उनसे सहयोग लेने में सफल रही।

केंद्रीय प्रांतों में सरकार दो स्वराजवादी नेताओं, ताम्बे एवं राघवेंद्र राव को अपने पक्ष में लाने में सफल रही, इससे न केवल प्रांत में पार्टी का दो भागों में विभाजन हो गया, जिसमें एक भाग अनुक्रियाशील तथा दूसरा भाग असहयोगियों का रहा, बल्कि समग्र पार्टी में भी विभाजन हो गया। एक अन्य स्वराजवादी ने ताम्बे द्वारा गवर्नर की कार्यकारिणी परिषद् की सदस्यता स्वीकार करने को उचित ठहराया। उनका प्रश्न था, ''ताम्बे का यह कदम वी.जे.

पटेल की गतिविधि से किस प्रकार भिन्न है? अनुक्रियाशील पक्ष ने पार्टी के कार्यक्रम पर पुनर्विचार की माँग को खुलेआम उठाया। मोतीलाल नेहरू के कठोर अनुशासन की नीति और इस कथन ने कि "स्वराज पार्टी के बीमार हाथ को काट दिया जाना चाहिए" अनुक्रियाशील दल को इस हद तक धक्का पहुँचाया कि वे केंद्रीय नेतृत्व के विरुद्ध खुलेआम विद्रोह करने लगे।

1926-27 के वर्षों में कौंसिल से सम्बन्धित कार्यों में और हतोत्साहन हुआ। हिन्दुओं और मुसलमानों में दरार आ जाने के कारण स्वराज पार्टी के बिखराव की स्थिति आ गयी मदनमोहन मालवीय और लाजपत राय ने स्वतंत्र कांग्रेसियों की एक नयी पार्टी संगठित की और अपने झंडे के नीचे हिन्दुओं को एकत्रित किया। उनका मानना था कि सरकार के विरोध ने हिन्दुओं के हितों को नुकसान पहुँचाया है। बम्बई के स्वराजवादियों ने खुले तौर पर अनुक्रियाशील पक्ष का समर्थन किया। अब स्वराज पार्टी के अंदर मतभेद और फूट का माहौल गर्म हो चुका था। 31 दिसंबर, 1925 को एक सामान्य कार्य नीति निर्धारण करने के लिए कलकत्ता में हुई नेताओं की एक सभा में अनेक स्वराजवादियों ने हिस्सा लिया। यह स्पष्ट हो गया कि अनुक्रियाशील, स्वतंत्रतावादियों और उदारवादियों के बीच कोई बुनियादी मतभेद नहीं है। अप्रैल 1926 में तेज बहादुर सप्रू की अध्यक्षता में हुए बम्बई सम्मेलन में स्वराजवादियों ने हिस्सा लिया। स्वराज पार्टी के अंदर संकट और गहरा हो गया तथा मोती लाल नेहरू ने दोनों पक्षों के बीच समझौता कराने का प्रयास किया जिसके अंतर्गत उन्होंने साबरमती में एक सभा बुलाई। इस सभा में अनुक्रियाशीलता के सिद्धान्त लगभग तय कर लिये गये तथा पद ग्रहण करने की कुछ शर्तें भी तय कर ली गयीं। असहयोगियों ने समझौते पर कठोर प्रहार किया। अनुक्रियाशील पक्ष ने कांग्रेस के साथ अपने सम्बन्धों को कटु बना लिया जिसके कारण परिषदों के अंदर असहयोग की नीति तय हो गयी। साबरमती समझौता स्वराज पार्टी को एकजुट न रख सका। द्विपक्षी शासन जो कि बंगाल और केंद्रीय प्रान्त में ध्वस्त हो चुका था, 1927 में फिर बहाल हो गया। 1927 में मंत्रियों के वेतन की माँग बंगाल में 88 के मुकाबले 94 मतों से तथा केंद्रीय प्रांत में 16 के मुकाबले 55 मतों से पारित हो गयी। 1927 में यह लगभग स्पष्ट हो गया कि संसदीय राजनीति से बुरी तरह जुड़ने के कारण स्वराज पार्टी 1919 के संविधान को ध्वस्त करने के बजाय स्वयं को ही ध्वस्त कर गयी।

## 21.7.2 विलय

1927 के अन्तिम महीनों में साइमन कमीशन की घोषणा तथा लार्ड बर्केनहेड की इस चुनौती ने कि भारतीय स्वयं ऐसा संविधान तैयार करे जो भारत के सभी वर्गों के लिए स्वीकार्य हो, देश भर में नयी राजनैतिक संभावनाएँ पैदा कर दी। साइमन कमीशन की प्रतिक्रिया ने आम बहिष्कार को जन्म दिया जबकि मोतीलाल नेहरू ने बर्केनहेड की चुनौती को स्वीकार करते हुए एक संविधान तैयार किया जो कि नेहरू रिपोर्ट के नाम से जाना जाता है। स्वराजवादी और परिवर्तन विरोधी एक दूसरे के निकट आने लगे। 1928 की कलकत्ता कांग्रेस ने यह तय किया कि यदि 31 दिसंबर, 1929 तक बर्तानवी सरकार ने नेहरू रिपोर्ट स्वीकार नहीं की तो कांग्रेस पूर्ण स्वतंत्रता को अपना उद्देश्य घोषित कर देगी। बदली हुई राजनैतिक परिस्थितियों में कौंसिल में प्रवेश का महत्व समाप्त हो गया। पूर्ण स्वतंत्रता की प्राप्ति के लिए सीधे जन प्रयास के नये दौर की तैयारी के साथ ही स्वराज पार्टी का कांग्रेस के साथ विलय हो गया।

## 21.7.3 विघटन

1924 में अपनी सफलता के बाद स्वराज पार्टी का हतोत्साहन और पतन मुख्यत: विस्तृत वैचारिक आधार की अनुपस्थिति के कारण हुआ। राष्ट्रवादी पार्टी की एकता अधिक दिन न चल सकी। सहयोग के पूर्व शर्त के रूप में तात्कालिक संवैधानिक प्रगति का स्वीकार किया जाना विपरीत मत और स्वतंत्र विचारों के लोगों को एक साथ रखने की दृष्टि से एक बहुत सीमित उद्देश्य था। राष्ट्रवादी पार्टी के गैर स्वराजवादी घटकों ने यह महसूस किया कि स्वराजवादियों ने उनकी कीमत पर अपने हितों को बढ़ावा दिया है। इस मत के कारण राष्ट्रवादी पार्टी में फूट पैदा हुई और अन्तत: पार्टी टूट गयी। जिन्ना ने राष्ट्रीय गठजोड़ से अलग होकर स्वतंत्र पार्टी के नाम से एक नई पार्टी का गठन किया। 1926 के चुनावों से पूर्व राष्ट्रवादी पार्टी तीन स्पष्ट दलों में बँट गयी।

- स्वराजवादी अथवा कांग्रेस पार्टी।
- अनुक्रियाशील सहयोगी जिसमें कि हिन्दू महासभा और स्वतंत्र कांग्रेसी भी शामिल थे। इन लोगों ने लाजपत राय और मदनमोहन मालवीय के नेतृत्व में राष्ट्रवादी पार्टी का गठन किया।
- जिन्ना के नेतृत्व वाली स्वतंत्र पार्टी।

इसके बावजूद उनके राजनैतिक तथा मतदान के व्यवहार में विशेष अंतर नहीं आया।

## 21.8 पतन के कारण

यद्यपि स्वराजवादी कौंसिलों में जाने के अपने कार्यक्रम की पृष्ठभूमि में 1923 में काफी संभावनापूर्ण लगे और ऐसा लगा कि वे भारतीय राजनीति की दिशा बदल देंगे लेकिन वे बहुत जल्द ही पतन की ओर बढ़ते नजर आए और निश्चित रूप से 1929 तक उनका सारा प्रभाव समाप्त हो चुका था। इस पतन के कारण क्या थे? क्या पतन राजनैतिक परिस्थिति में निहित था अथवा ऐसा इनकी अपनी गलतियों के कारण हुआ? अथवा ऐसा परिषदों में प्रवेश के कार्यक्रम की सीमाओं के कारण हुआ? इसके पूर्व आपने स्वराजवादियों के बिखराव के विषय में पढ़ा है, आइए अब इसके कुछ कारणों पर चर्चा करें।

### 21.8.1 सांप्रदायिकता का उत्थान

देश में बढ़ती हुई सांप्रदायिकता घटनाचक्र का केंद्र बिंदु बन गयी। राजनीति के सांप्रदायिक रूप लेने के कारण स्वराजवादियों एवं हिन्दूसभा के बीच का वैचारिक मतभेद कम हो गया। चूँकि स्वराजवादियों ने कांग्रेस पर आधिपत्य जमा रखा था इसलिए कांग्रेस की एक धर्मनिरपेक्ष संगठन के रूप में बनी छवि धूमिल हो चली थी। कांग्रेस से मुसलमानों के अलगाव ने निश्चित रूप से कांग्रेस को कमज़ोर बनाया। भूतपूर्व मुसलमान स्वराजवादी मुसलमान उम्मीदवार के रूप में चुनाव भी लड़े। धर्म से भावनात्मक जुड़ाव धर्मनिरपेक्षता की कीमत पर मजबूत हुआ। दरअसल अधिकतर स्वराजवादी धर्मनिरपेक्ष राष्ट्रवादिता के प्रति उतने चिंतित न थे जितने कि छोटे-छोटे लाभों के प्रति इसके परिणामस्वरूप उन्होंने जनसेवाओं एवं विधान परिषदीय चुनावों में मुसलमानों के साथ सीटों के लिए गठजोड़ बनाए। जन आंदोलन का समाजवादी आधार ही भारत में धर्मनिरपेक्ष राष्ट्रवाद का पुनर्निर्माण कर सकता था।

### 21.8.2 पदों की लालसा

स्वराजवादियों के पतन का अन्य कारण पदों की लालसा था। नौकरशाही के कठोर विरोध के घोषित उद्देश्य के आधार पर परिषदों में प्रवेश के साथ उनकी गतिविधियों की जोरदार शुरुआत हुई। शीघ्र ही विरोध की जगह सहयोग ने ले ली। वी.जे. पटेल विधानमण्डल के अध्यक्ष बन गए और मोतीलाल नेहरू ने स्कीन कमीशन की सदस्यता स्वीकार कर ली। निराधार अवरोध की नीति का प्रभाव धूमिल हो गया और पार्टी बिखराव की ओर बढ़ने लगी। पार्टी के अंदर मतभेद पैदा होने लगे तथा खुले विद्रोहों ने इसे और भी बुरी स्थिति में लाकर खड़ा कर दिया।

### 21.8.3 वर्ग-चरित्र

स्वराजवादी कांग्रेस के अंदर उच्च मध्यवर्गीय तत्वों का प्रतिनिधित्व कर रहे थे जो सीधे जन आंदोलन का हमेशा ही विरोध करते रहे। उन्होंने राष्ट्रवादी संघर्ष में, संघर्ष को क्रांतिकारी जन आंदोलन न बनने देने के उद्देश्य से हिस्सा लिया था। वे असहयोग आंदोलन की धारा में स्वेच्छा के बजाए मजबूरी के कारण आए थे। आंदोलन की असफलता के साथ ही वे संसदीय राजनीति में आए और संवैधानिक विरोध निभाते हुए ही काफी संतुष्ट नजर आए। स्वराजी कम्युनिस्टों को छोड़कर देश के अंदर निवर्तमान सभी राजनैतिक पार्टियों एवं समूहों की तुलना में कहीं अधिक प्रगतिशील थे।

**बोध प्रश्न 3**

1 स्वराजवादियों के पतन के कारणों पर दस पंक्तियाँ लिखें।

..........................................................
..........................................................
..........................................................
..........................................................
..........................................................
..........................................................
..........................................................
..........................................................
..........................................................
..........................................................

2 निम्नलिखित नामों एवं उनसे संबन्धित वाक्य को उनके उपयुक्त संदर्भ में रखें।

| | |
|---|---|
| 1 चितरंजन दास | अ) बेलगाम कांग्रेस अध्यक्ष |
| 2 मोतीलाल नेहरू | ब) स्वराज्य पार्टी के भूतपूर्व अध्यक्ष |
| 3 वी.जे. पटेल | स) स्वराज्य पार्टी के प्रथम सचिव |
| 4 महात्मा गांधी | द) विधान मंडल के प्रथम भारतीय अध्यक्ष |
| 5 मदन मोहन मालवीय | क) स्वतंत्र नेता |
| 6 मुहम्मद अली जिन्ना | ख) हिन्दू महासभा के नेता |
| 7 तेज बहादुर सप्रू | ग) भारतीय उदारवादी संघ के नेता |

## 21.9 सारांश

स्वराज पार्टी का गठन कांग्रेस के उन उच्च मध्यवर्गीय बुद्धिजीवियों द्वारा किया गया था जो महात्मा गांधी की सीधी जन कार्यवाही में विश्वास नहीं रखते थे। असहयोग आंदोलन के पतन के साथ ही स्वराजवादी परिवर्तन विरोधियों जो बहिष्कार तथा रचनात्मक कार्यों के समर्थक थे के जबरदस्त विरोध के बावजूद, परिषदों में प्रवेश का नारा देने लगे। 1923 के चुनावों में स्वराजवादियों की सफलता ने उन्हें राजनैतिक रूप में काफी मजबूत बना दिया और इसे देखते हुए स्वयं गांधी जी को अपनी इच्छाओं के विरुद्ध उन्हें कांग्रेस के संसदीय दल के रूप में मान्यता देनी पड़ी। इसके बदले में स्वराजवादियों ने रचनात्मक कार्यों (खादी का प्रचार, अस्पृश्यता समाप्त करने, मद्यपान निषेध तथा हिन्दू-मुस्लिम एकता) में विश्वास दर्शाने तथा उन्हें क्रियान्वित करने के प्रयास करने की इच्छा व्यक्त की किंतु रचनात्मक कार्यों में उनकी न तो वैसी श्रद्धा थी और न वैसा आदर्श जो परिवर्तन विरोधियों में था।

बंगाल एवं केंद्रीय प्रांत कौंसिल तथा विधान मंडल में स्वराजवादी थोड़े समय के लिए रुकावट डालने में सफल रहे जिसके कारण सरकार को अपने विशेषाधिकार पर निर्भर होना पड़ा। बंगाल और केंद्रीय प्रांत में उन्होंने द्विपक्षीय शासन को मरणासन्न स्थिति में ला दिया। परिषदों में उन्होंने इस उद्देश्य से प्रवेश किया था कि या तो स्वराज्य के हित में उन्हें परिवर्तित करेंगे अथवा उन्हें सर्वथा समाप्त कर देंगे। न तो वे ऐसा कर सके और न हीं औपनिवेशिक शासन के अंतर्गत इसकी संभावना थी। वे बर्तानवी उपनिवेशवादियों को उनकी साम्राज्यवादी नीति के क्रियान्वयन से भी न रोक सके। यद्यपि उनके भाषण तथा कार्यनीति के कारण साम्राज्यवादी नीतियों का खोखलापन एवं जनतंत्र की खोखली बर्तानवी नीति का कुछ हद तक पर्दाफाश हो सका।

शीघ्र ही स्वराज पार्टी में अधिकारियों के साथ समझौते के अपने झुकाव की प्रवृत्तियों के कारण दरार पड़ने लगी। चितरंजन दास के फरीदपुर के भाषण के साथ ही सहयोग की ओर

झुकाव आरम्भ हो गया। शीघ्र ही पार्टी अनुक्रियाशील स्वराजवादियों तथा असहयोगियों के दो गुटों में बँट गयी जिसमें से अनुक्रियाशील सहयोगियों ने पद भी स्वीकार किए। पार्टी के अंदर हतोत्साहन एवं पतन का दौर शुरू हो गया। 1926 के विधान परिषद्‌ीय चुनावों में पार्टी ने कई सीटें खो दी और उसकी स्थिति काफी कमज़ोर पड़ गयी।

इसके पतन के कई कारण थे। पार्टी का कार्यक्रम विरोधाभासों से ग्रस्त था तथा इसके पीछे कोई स्वस्थ वैचारिक आधार न था। स्वराजवादी जमींदार, किसान, पूँजीपति और मजदूर एकता की दुहाई दे रहे थे जिनके हित आपस में टकरा रहे थे। हिन्दू-मुस्लिम तनाव ने दोनों ही समुदायों को पार्टी से दूर ला खड़ा किया। पदों की लालसा ने पतन की प्रक्रिया को और तेज कर दिया। पार्टी राजनीति, परिषदों में कार्य तथा रचनात्मक कार्यों के प्रति अनमने सहयोग के इसके पूर्वाग्रहों के कारण स्वराज पार्टी तथा जनमानस के बीच एक लम्बी खाई खड़ी हो गयी।

साइमन कमीशन की घोषणा, और उसके बाद हुए राजनैतिक उतार चढ़ाव के परिणामस्वरूप पार्टी का कांग्रेस में विलय हो गया। कांग्रेस असहयोग तथा सविनय अवज्ञा की नीति के पालन के प्रति कटिबद्ध थी और स्वराज पार्टी के साथ जुड़े सारे कार्यक्रम रद्द कर दिए गए। तथापि स्वराज पार्टी ने 1922-29 के दौरान शुष्क राजनीतिक माहौल में गर्मी पैदा कर दी और इस दौर की राजनैतिक गतिविधियों में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई।

## 21.10 शब्दावली

**स्वतंत्र उम्मीदवार** : बिना किसी पार्टी से जुड़े उम्मीदवार

**विधान मंडल** : केंद्र की विधानीय संस्था

**विधान परिषद्** : प्रांतों की विधानीय संस्था

**उदारवादी** : भारतीय राजनैतिक मत का वह वर्ग जो कि सरकार की कुछ नीतियों के प्रति तो असंतुष्ट था लेकिन उसके लिए संघर्ष से जुड़ी हुई पद्धतियों में उसका विश्वास न था। पूर्णतया संवैधानिक कार्यनीति में विश्वास रखने वाले इन उदारवादियों को कांग्रेसियों तथा सरकार समर्थक तत्वों के बीच रखा जा सकता है।

**अनुक्रियाशीलता** : स्वराजवादियों के अंतर्गत वह प्रवृत्ति जो सरकार के साथ सहयोग की वकालत करती थी।

**साइमन कमीशन** : 1927 में बर्तानवी सरकार द्वारा यह मालूम करने के लिए क्या भारतीय स्वतः शासन करने में समर्थ है, नियुक्त किया आयोग। इसके अध्यक्ष जॉन साइमन थे तथा सदस्य बर्तानवी सांसद थे। इसमें चूँकि भारतीय प्रतिनिधित्व नहीं था अतः भारत के पक्ष का कोई मत भी नहीं था।

## 21.11 बोध प्रश्नों के उत्तर

**बोध प्रश्न 1**

1 घ

2 क

3 ख

4 उपभाग 21.3.3 देखें।

**बोध प्रश्न 2**

1 क

2 घ

3 ग

4 ख

5 घ

6 भाग 21.5 देखें।

**बोध प्रश्न 3**

1 भाग 21.7 देखें

2 1—ब, 2—स, 3—द, 4—अ, 5—ख, 6—क, 7—ग

# इकाई 22 सांप्रदायिकता का विकास : दूसरे विश्व युद्ध तक

## इकाई की रूपरेखा


22.0 उद्देश्य
22.1 प्रस्तावना
22.2 सांप्रदायिकता : अर्थ एवं अंगभूत
 22.2.1 सांप्रदायिकता का अर्थ
 22.2.2 अंगभूत
 22.2.3 सांप्रदायिकता के प्रति मिथकें
22.3 उत्पत्ति एवं विकास
 22.3.1 सामाजिक एवं आर्थिक कारण
 22.3.2 अंग्रेजी नीति की भूमिका
 22.3.3 उन्नीसवीं शताब्दी में पुनरुत्थानवाद
 22.3.4 उन्नीसवीं शताब्दी के उत्तरार्ध के राजनैतिक रवैये
 22.3.5 सांप्रदायिक संगठनों की भूमिका
 22.3.6 राष्ट्रीय आंदोलन की कमजोरियाँ
22.4 बीसवीं शताब्दी में सांप्रदायिकता
 22.4.1 बंगाल का विभाजन और मुस्लिम लीग का गठन
 22.4.2 पृथक निर्वाचन मंडल
 22.4.3 लखनऊ समझौता
 22.4.4 खिलाफ़त
 22.4.5 भिन्न रास्ते
 22.4.6 जन आधार की ओर
22.5 सारांश
22.6 शब्दावली
22.7 बोध प्रश्नों के उत्तर


## 22.0 उद्देश्य

आप सभी ''सांप्रदायिक'' शब्द से परिचित हैं। लेकिन क्या आपने कभी सोचा कि वास्तव में सांप्रदायिकता का क्या अर्थ है और हमारे समाज में इसकी इतनी गहरी जड़ें क्यों हैं? इस इकाई में भारत में सांप्रदायिकता से सम्बन्धित कुछ प्रश्नों के उत्तर देने का प्रयास किया गया है। इस इकाई के अध्ययन के बाद आप :

- सांप्रदायिकता की व्याख्या कर सकते हैं और सांप्रदायिकता के विभिन्न प्रकारों के बीच फर्क कर सकते हैं;
- समझ सकते हैं कि भारतीय समाज एवं राजनैतिक सोच में सांप्रदायिकता का उदय कैसे हुआ;
- उन विभिन्न शक्तियों का मूल्यांकन कर सकते हैं जो इसे बढ़ावा देती हैं; और
- 20 वीं शताब्दी में इसके विकास को इंगित कर सकते हैं।

## 22.1 प्रस्तावना

किसी भी विकासशील देश की प्रमुख प्राथमिकताओं में देश के अंदर जनता में एकता बनाए रखना महत्वपूर्ण है। आधुनिक भारत के इतिहास में इस प्रकार की एकता के लिए भारतीय

जनता, समाज तथा राजनीति के सांप्रदायिकीकरण के कारण बहुत बड़ी चुनौती उठ खड़ी हुई। जहाँ एक ओर भारतीय राष्ट्रीय आंदोलन का उद्देश्य सभी भारतीयों की एकता थी, वहीं धार्मिक संप्रदाय, धार्मिक हितों और अंततः धार्मिक राष्ट्र की कृत्रिम सीमाएँ तैयार करके लोगों में धार्मिक आधार पर फूट डालने के लिए सांप्रदायिकता प्रयत्नशील रही। इस इकाई में भारत में सांप्रदायिकता के उत्थान तथा विभिन्न शक्तियों के गठजोड़ तथा उनके विकास जिनके कारण सांप्रदायिकता को स्थायित्व मिला, के विषय में जानकारी दी जाएगी। उदाहरण के लिए 19वीं शताब्दी में भारत में सामाजिक-आर्थिक विकास की अपनी विशिष्टता, औपनिवेशिक शासन एवं कुछ औपनिवेशिक नीतियों का प्रभाव, सांप्रदायिकता विरोधी राष्ट्रीय शक्तियों की कमजोरी और अंततः मुस्लिम लीग एवं हिन्दू महासभा जैसी सांप्रदायिक शक्तियों की सक्रिय भूमिका इत्यादि इस इकाई में रेखांकित किए जायेंगे।

## 22.2 सांप्रदायिकता : अर्थ एवं अंगभूत

विभिन्न संस्था, संगठन, व्यक्ति एवं दल सांप्रदायिकता को भिन्न-भिन्न रूप में देखते हैं। साथ ही सांप्रदायिकता एक मान्यता, आस्था, सोचने का अपना एक ढंग, विचारधारा तथा मूल्य के रूप में देखी जा सकती है। सांप्रदायिकता एक अस्त्र के रूप में भी देखी जा सकती है। इसका इस्तेमाल विभिन्न रूपों में हो सकता है और विभिन्न वैचारिक स्तरों के आधार बिंदओं से इसका अध्ययन हो सकता है। अतः सांप्रदायिकता को मूल रूप में जानना अति आवश्यक है।

### 22.2.1 सांप्रदायिकता का अर्थ

ऐसा माना जाता है कि सामान्यतया सांप्रदायिकता एक ऐसी धारणा है जिसके अनुसार समान धर्म वाले लोगों के बीच समान सामाजिक, राजनैतिक, सांस्कृतिक एवं आर्थिक हित और अस्मिताएँ हों — दूसरे शब्दों में सांप्रदायिकता ऐसी मान्यता है जिसके अनुसार धर्म समाज का आधार तथा समाज के विभाजन की आधारभूत इकाई तैयार करता है। इसके अनुसा धर्म ही सभी अन्य मानवीय हितों का प्रतिपादन करता है। सांप्रदायिकता को बेहतर रूप म समझने के लिए आइए इसे एक अन्य दृष्टिकोण से देखा जाए। मनुष्य एक बहुरूपी सामाजिक प्राणी है जो एक साथ कई पहचान रखता है। उसकी पहचान उसके देश, क्षेत्र, लिंग, व्यवसाय, परिवार के अंतर्गत उसके अपने स्तर, धर्म, जाति आदि के आधारों पर हो सकती है। संप्रदायवादी इन तमाम आधारों में से केवल धार्मिक पहचान को ही चुनता है और इसे आवश्यकता से कहीं अधिक महत्व देने का प्रयास करता है, परिणामतः सामाजिक संबंध, राजनैतिक समझ तथा आर्थिक संघर्ष धार्मिक पहचान के आधार पर व्याख्यायित किए जाते हैं। संक्षेप में तमाम महत्वपूर्ण पहलुओं को नजरअंदाज करके धर्म को अनावश्यक रूप से अत्यधिक महत्व देना संप्रदायवाद का आरंभ है। यहाँ दो अन्य मुद्दों पर स्पष्टता आवश्यक प्रतीत होती है।

प्रथमतः, स्वतंत्रतापूर्व भारतीय परिवेश में सांप्रदायिकता की अभिव्यक्ति मुख्य रूप से हिन्दू और मुस्लिम संप्रदायों के कुछ वर्गों के बीच टकराव के रूप में हुई। इसी कारण से उस समय की राजनैतिक समझ एवं उसकी अभिव्यक्ति में सांप्रदायिकता को हिन्दू-मुस्लिम समस्या अथवा हिन्दू-मुस्लिम प्रश्न के रूप में देखा गया। फिर भी इससे यह नहीं समझना चाहिए कि उक्त समस्या केवल हिन्दू-मुस्लिम समस्या थी अथवा यह किसी भी रूप में धार्मिक समस्या थी।

इसके अलावा सांप्रदायिक विचारधारा तथा उसका प्रचार हमेशा समान स्तरीय नहीं रहा। दरअसल स्वतंत्रता संग्राम के तेज होने और समाज के राजनैतिकरण में तीव्रता आने के साथ ही सांप्रदायिकता ने भी अपनी गति तेज की और इसके प्रचार का स्तर और भी तेज हो गया। संक्षिप्त रूप में सांप्रदायिक प्रचार एवं तर्क निम्नलिखित तीन स्तरों पर थे :

1) किसी धार्मिक संप्रदाय के सभी सदस्यों के हित समान होते हैं। उदाहरण के लिए यह तर्क कि मुसलमान जमींदार एवं किसान के हित एक हैं क्योंकि दोनों एक ही संप्रदाय के सदस्य हैं (यही तर्क सिख अथवा हिन्दू संप्रदाय पर भी लागू होता है)।

2) किसी धार्मिक संप्रदाय के सदस्यों के हित दूसरे संप्रदाय के सदस्यों से भिन्न होते हैं। दूसरे शब्दों में इसका अर्थ यह हुआ कि सभी हिन्दुओं के हित मुस्लिमों के हितों तथा इसी प्रकार मुस्लिमों के हित हिन्दुओं के हितों से भिन्न थे।

3) न केवल इन हितों में भिन्नता थी बल्कि ये हित आपस में टकरावपूर्ण एवं विपरीत भी थे। इसका अर्थ यह हुआ कि अन्तर्विरोधी हितों के कारण हिन्दुओं एवं मुसलमानों का सह अस्तित्व संभव नहीं था।

कहने की आवश्यकता नहीं है कि यह तर्क गलत थे, सामाजिक राजनैतिक हितों की गलत समझ पर आधारित थे और वास्तविकता से कहीं दूर थे पूरे मध्यकालीन भारतीय परिवेश में हिन्दुओं और मुसलमानों का एक काफी बड़ा भाग सांप्रदायिक सद्भाव के माहौल से सह अस्तित्वमान था। यद्यपि धार्मिक भिन्नता मौजूद थी फिर भी हिन्दू मुसलमान दोनों संप्रदायों के आम लोग निरंतर शांति के माहौल में रह रहे थे। और पारस्परिक सद्भाव बनाए रखते थे।

## 22.2.2 अंगभूत

सांप्रदायिक विचारधारा, सांप्रदायिक तनाव, सांप्रदायिक हिंसा, सांप्रदायिक राजनीति, सांप्रदायिक भावना जैसे शब्द अक्सर एक दूसरे के पूरक के रूप में इस्तेमाल किए जाते हैं। यह आवश्यक है कि इन शब्दों में फर्क किया जाय और सांप्रदायिकता के विभिन्न अंगभूतों को स्पष्ट किया जाय। सर्वप्रथम 1939 में के. बी. कृष्णा ने सांप्रदायिक तनाव एवं सांप्रदायिक राजनीति में भेद किया। सांप्रदायिक तनाव एक अस्थायी समस्या है जो अचानक घटित होती है और इसकी अभिव्यक्ति हिंसा में होती है तथा जन साधारण के निम्न वर्ग इसमें मुख्य रूप से शामिल होते हैं जबकि सांप्रदायिक राजनीति एक स्थायी समस्या है, जिसमें मुख्य रूप से मध्यम वर्ग जमींदार तथा नौकरशाही तत्व शामिल होते हैं । इनमें एक चीज सामान्य होती है और वह यह कि यह दोनों ही अपना आधार सांप्रदायिक विचारधारा से प्राप्त करते हैं।

सांप्रदायिकता को एक "हथियार" एवं एक "मूल्य" के रूप में भी देखा जा सकता है। यह उन लोगों के लिए हथियार है जो इससे लाभ उठाना चाहते हैं, जिनका इसके बने रहने में हित है अथवा जो इसका इस्तेमाल अपने राजनैतिक लाभों के लिए करते हैं।

सांप्रदायिकता उन लोगों के लिए "मूल्य" का स्तर रखती है जो इसे स्वीकारते हैं, इसमें आस्था रखते हैं, सांप्रदायिक विचारों को आत्मसात् कर चुके हैं और उन्हें अपनी जीवन शैली में शामिल कर चुके हैं। ऐसे लोग जो कि अत्यंत धार्मिक प्रकृति के होते हैं, सामान्यतः सांप्रदायिक विचारधारा तथा प्रचार का शिकार होते हैं न कि उससे लाभान्वित। वे सदैव सांप्रदायवादियों द्वारा जो इस विचारधारा में अपना स्वार्थ रखते हैं, शोषित किए जाते हैं।

इस प्रकार हमने देखा कि सांप्रदायिकता के अनेक अंगभूत अथवा तत्व हैं। सांप्रदायिकता को उसके पूरे तत्वों (सांप्रदायिक तनाव, सांप्रदायिक राजनीति, हथियार, मूल्य आदि) के साथ एक संरचना के रूप में देखा जाना चाहिए। ये तत्व इस संरचना में शामिल हैं और सांप्रदायिक विचारधारा के सूत्रों से एक दूसरे से जुड़े हुए हैं जिससे कि इस संरचना को बल मिलता है।

## 22.2.3 सांप्रदायिकता के प्रति मिथकें

सांप्रदायिकता को अधिकतर गलत रूप में समझा जाता रहा है और परिणामस्वरूप इसके प्रति अनेक मिथकें बन चुकी हैं। इस दृष्टि से यह अति आवश्यक हो जाता है कि यह जाना जाय कि सांप्रदायिकता क्या नहीं है। सांप्रदायिकता को समझने की प्रक्रिया में इससे जुड़ी मिथकों को ध्यान में रखना ज़रूरी है।

1) प्रचलित दृष्टिकोण के विपरीत, सांप्रदायिकता केवल धर्म का राजनीति में प्रवेश मात्र अथवा केवल राजनीति की धार्मिक रूप में व्याख्या मात्र नहीं है। दूसरे शब्दों में धर्म के राजनीति में प्रवेश से आवश्यक रूप में सांप्रदायिकता का उदय नहीं हुआ। उदाहरण के लिए बीसवीं शताब्दी के दो महानतम धर्मनिरपेक्ष नेता महात्मा गांधी और मौलाना अब्दुल कलाम आज़ाद काफी धार्मिक थे और अपनी राजनीति को धार्मिक रूप में व्याख्यायित करते थे।

2) सांप्रदायिकता धार्मिक मतभेदों का परिणाम नहीं हैं। दूसरे शब्दों में धार्मिक मतभेद अपने आप में सांप्रदायिकता का सूत्रपात नहीं करते। उदाहरण के लिए हिन्दुओं और मुसलमानों के बीच धार्मिक मतभेद शताब्दियों से चले आ रहे थे किन्तु केवल आधुनिक काल में पहुँच कर ही इन मतभेदों ने सांप्रदायिकता का रूप लिया। दरअसल सांप्रदायिकता धार्मिक समस्या है ही नहीं।

3) सांप्रदायिकता भारतीय समाज में अंतर्निहित नहीं थी, जैसा कि माना जाता रहा है। यह भारत के भूतकाल की निरंतरता नहीं बल्कि कुछ विशेष परिस्थितियों एवं विभिन्न शक्तियों के गठजोड़ का परिणाम थी। सांप्रदायिकता आधुनिक भारत में ही उपजी यह उतनी ही आधुनिक है जितना कि औपनिवेशिक शासन। सांप्रदायिकता की व्याख्या आधुनिक भारत में हुए राजनैतिक एवं आर्थिक विकासों के संदर्भ में की जानी चाहिए।

**बोध प्रश्न 1**

1 आप सांप्रदायिकता से क्या समझते हैं? दस पंक्तियों में लिखें

..............................................................
..............................................................
..............................................................
..............................................................
..............................................................
..............................................................
..............................................................
..............................................................
..............................................................
..............................................................

2 निर्म्नलिखित पर दो-दो पंक्तियाँ लिखें।

सांप्रदायिक तनाव

..............................................................
..............................................................

सांप्रदायिक राजनीति

..............................................................
..............................................................

सांप्रदायिकता मूल्य के रूप में

..............................................................
..............................................................

3 निम्न में से कौन से वक्तव्य सही ( $\surd$ ) अथवा गलत ( $\times$ ) हैं।

i) सांप्रदायिकता केवल धार्मिक मतभेदों का ही परिणाम नहीं हैं।

ii) सांप्रदायिकता भारतीय समाज में अंतर्निहित थी।

iii) सांप्रदायिकता एक आधुनिक समस्या है।

iv) सांप्रदायिक तर्क गलत समझ पर आधारित थे तथा भारतीय वास्तविकता से परे थे।

## 22.3 उत्पत्ति एवं विकास

सांप्रदायिकता की जड़ें तलाश करने के उद्देश्य से हमें इतिहास में कितना पीछे जाना चाहिए? यह एक विवादपूर्ण प्रश्न रहा है। कुछ विद्वानों ने इस समस्या की जड़ें मध्यकालीन भारत में ढूंढने का प्रयास किया है। उनके अनुसार सांप्रदायिकता की जड़े हिन्दुओं और मुसलमानों द्वारा अपने मतभेद समाप्त न कर पाने तथा एक समाज की स्थापना न करने में ढूँढी जा सकती है। उनका मानना है कि भारत में धार्मिक मतभेद हमेशा से रहे हैं और हिन्दू समाज और मुस्लिम समाज के रूप में दो समाज सदैव अस्तित्वमान रहे हैं, भारतीय समाज जैसी कोई चीज नहीं रही। इस विचार का प्रभावपूर्ण खंडन उन विद्वानों द्वारा किया गया है जिनका मानना है कि भारतीय समाज में विघटनकारी शक्तियों की भूमिका को अतिशयोक्ति के रूप में नहीं पेश किया जाना चाहिए। भारतीय समाज में ऐसी शक्तियाँ मौजूद रही हैं जिन्होंने विभिन्न जातियों, संप्रदायों, उपसंप्रदायों आदि के लोगों को एकीकृत किया है।

फिर इस समस्या का आरंभ कहाँ से हुआ? सांप्रदायिकता की उत्पत्ति अंग्रेजी साम्राज्य के भारत में प्रवेश करने के साथ देखी जानी चाहिए जिसका प्रभाव भारतीय समाज और अर्थ-व्यवस्था पर अद्भुत रूप से पड़ा।

### 22.3.1 सामाजिक एवं आर्थिक कारण

भारत में अंग्रेजी साम्राज्य के उदय ने शक्ति संरचना में भारी परिवर्तन किए जिसका प्रभाव भारतीय समाज के सभी वर्गों पर पड़ा । साम्राज्यवाद के उदय के साथ ही उच्चवर्गीय मुसलमानों का पतन शुरू हुआ। बंगाल में, जहाँ कि उच्चवर्गीय मुसलमानों का सेना के उच्च पदों, प्रशासन एवं न्यायालयों में रोजगार पर अर्ध आधिपत्य था, इसका सबसे अधिक प्रभाव देखने में आया, धीरे-धीरे भूमि पर भी उनका आधिपत्य कम होने लगा। विशेष रूप से 1793 के स्थाई बन्दोबस्त तथा 1833 में अंग्रेजी के राज-भाषा बनने के साथ उच्च वर्गीय मुसलमानों की सम्पति, शक्ति तथा प्रभाव में कमी आ गयी। ऐसा होने के साथ ही भारतीय समाज की अपनी अलग विशेषता के कारण मुस्लिमों का नुकसान सामान्यतः हिन्दुओं के पक्ष में गया जिन्होंने शिक्षा एवं अन्य आधुनिकीकृत शक्तियों पर मुसलमानों की अपेक्षा अधिक सकारात्मक प्रतिक्रिया दिखायी। मुसलमान इस दौड़ में काफी पिछड़ गए दूसरे शब्दों में "अंग्रेजी साम्राज्यवादी शासन कें अंतर्गत हुए आर्थिक विकासों ने जिन लोगों को लाभ पहुँचाया उनमें मुसलमानों की अपेक्षा हिन्दुओं की संख्या कहीं अधिक थी" (डब्लू. सी. स्मिथ माडर्न इस्लाम इन इंडिया-1946) हिन्दुओं की अपेक्षा मुसलमानों ने शिक्षा, संस्कृति, नए व्यवसाय तथा प्रशासन में पद जैसी सरकारी सुविधाओं को बाद में अपनाया। परिणामतः हिन्दुओं की अपेक्षा मुसलमानों में पुरानी परंपराओं, रवैयों और मूल्यों के पुनर्मूल्यांकन के लिए बौद्धिक जागरण भी बाद में हुआ। इस बिन्दू पर राम मोहन राय तथा सैयद अहमद खान के बीच अंतराल का उदाहरण कथन में स्पष्टता ला सकता है। इस अंतराल के कारण मुसलमानों के बीच कमजोरी तथा असुरक्षा की भावना ने परंपरागत विचार प्रक्रिया तथा धर्म पर उन्हें आश्रित बना दिया।

समकालीन इतिहासकार इस तर्क से पूरी तरह सहमत नही हैं कि मुसलमान हिन्दुओं से पिछड़ गए क्योंकि 19वीं शताब्दी के आधुनिकीकरण और सामाजिक आर्थिक विकास का अनुसरण उन्होंने देर से किया। अतः इसे इसी परिप्रेक्ष्य एवं संदर्भ में देखा जाना चाहिए। इसका एक मुख्य कारण भिन्न क्षेत्रों में इसकी भिन्न व्यावहारिकता है। यदि एक समूह के रूप में मुसलमानों ने बंगाल में अंग्रेजी शासन के कारण नुकसान उठाया तो उत्तर प्रदेश जैसे क्षेत्रों में लाभ भी उठाया। फिर भी अंतराल की संकल्पना का काफी महत्व है क्योंकि इससे हमें बीसवीं शताब्दी में मुसलमानों के राष्ट्रीय मुख्य धारा से कट जाने की पृष्ठभूमि का पता चल पाता है। 1939 में जवाहरलाल नेहरू द्वारा अपने एक मित्र को लिखे गए पत्र में अंतराल की संकल्पना तथा सांप्रदायिकता के आपसी संबंध का उत्कृष्ठ विवरण मिलता है : "1857 के भारतीय गदर के बाद दमन के कुचक्र का दौर चला जिससे हिन्दू और मुसलमान दोनों प्रभावित हुए किंतु शायद मुसलमान अधिक प्रभावित हुए। धीरे-धीरे लोगों ने स्वयं को इस दमन से उभारा। हिन्दुओं ने अंग्रेजी शिक्षा प्राप्त करनी शुरू की, जिससे कि उन्हें सरकारी

सेवाओं में आने का मुसलमानों की अपेक्षा अधिक मौका मिल सका। हिन्दुओं ने व्यवसायों और उद्योगों में भी भारी संख्या में प्रवेश करना शुरू किया। मुसलमानों को प्रतिक्रियावादी तत्वों ने आधुनिक शिक्षा और उद्योग में उन्हें प्रवेश नहीं करने दिया। इस दौर में हिन्दुओं के बीच एक नए मध्य वर्ग का उदय आरंभ हुआ जबकि मुसलमान अधिकतर सामंती जाल में फँसे रहे। हिन्दू मध्य वर्ग ने राष्ट्रीय आंदोलन की नींव रखी। लगभग एक पीढ़ी के बाद मुसलमानों ने भी वही रुख अपनाया और अंग्रेजी शिक्षा तथा सरकारी सेवाओं एवं व्यवसायों की ओर बढ़े और एक नए वर्ग का उदय हुआ। विभिन्न मध्यवर्गीय तत्वों के बीच सरकारी सेवाओं को लेकर टकराव पनपने लगा और यही दौर में सांप्रदायिकता की शुरुआत थी।''

इस प्रकार भारत में सांप्रदायकिता शैक्षिक, राजनैतिक एवं आर्थिक रूप में असमान विभिन्न संप्रदायों के बीच रोजगार के लिए संघर्ष थी। इतिहासकार के. बी. कृष्णा (प्राब्लम्स ऑफ माइनौरिटीज-1939) उन पहले विद्वानों में से एक है जिन्होंने सांप्रदायिकता की समस्या पर कलम उठायी। उनका मानना है कि यह संघर्ष सामंतवादी माहौल में अंग्रेजी साम्राज्यवाद द्वारा उनकी प्रति संतुलन की नीति द्वारा भारतीय पूँजीवाद के विकास के दौर में पैदा हुए। अतः यह साम्राज्यवादी-पूँजीवादी-सामंतवादी ढाँचे की उत्पत्ति थी।

के. बी. कृष्णा के अनुसार ''सांप्रदायिकता का इतिहास भारत में ब्रिटिश नीति का इतिहास है साथ ही यह भारत में मध्यवर्गीय चेतना के विकास तथा अनेकता और राजनैतिक शक्ति के लिए मध्यवर्ग की बढ़ती हुई माँग का इतिहास है किंतु अंग्रेजी साम्राज्यवाद इसका केवल एक पक्ष है और देश की सामाजिक अर्थव्यवस्था इसका दूसरा पक्ष है।''

इस बिन्दु पर पहुँच कर सांप्रदायिकता के विकास में अंग्रेजी साम्राज्यवाद एवं राजनीति की भूमिका पर दृष्टि डालना उपयुक्त होगा।

## 22.3.2 अंग्रेजी नीति की भूमिका

सांप्रदायिकता के विकास के लिए अंग्रेजी नीति मुख्य रूप से जिम्मेदार है। यदि सांप्रदायिकता भारत में पनपी और इसने भयावह रूप धारण कर लिया जैसा कि 1947 के उदाहरण से स्पष्ट है, तो इसके लिए बहुत कुछ अंग्रेजी सरकार जिम्मेदार है जिसने कि सांप्रदायिकता को काफी बढ़ावा दिया। लेकिन इससे पूर्व कि हम अंग्रेजी नीति पर चर्चा करें, कुछ स्पष्टीकरण आवश्यक प्रतीत होते हैं। अंग्रेजों ने सांप्रदायिकता को जन्म नहीं दिया। जैसा कि हमने देखा, कुछ सामाजिक-आर्थिक एवं सांस्कृतिक मतभेद पहले से ही मौजूद थे। अंग्रेजों ने इनका निर्माण नहीं किया बल्कि सिर्फ इन परिस्थितियों का लाभ उठाया था जिससे उनका राजनैतिक उद्देश्य पूरा हो सके। डब्लू. बी. स्मिथ (माडर्न इस्लाम इन इन्डिया-1946) ने इस बिन्दू को बड़े प्रभावपूर्ण ढंग से उजागर किया है। ''सरकार की राजनैतिक नीति को उतनी सफलता नहीं मिलती, यदि इस नीति को बढ़ावा देने के लिए प्रभावशाली आर्थिक कारण पहले से मौजूद न होते। न तो सांप्रदायिकता इतनी प्रभावपूर्ण विघटनकारी शक्ति बन पाती और न ही उच्च वर्गीय मुसलमान इतने प्रभावपूर्ण ढंग से दमित किए जा सकते, यदि संबंधित वर्ग के हिन्दू और मुस्लिम लोग समान आर्थिक स्तर के होते। लेकिन ऐसा नहीं था। इसलिए यह स्पष्ट है कि ''फूट डालो और राज करो'' की अंग्रेजी नीति जिस पर हम चर्चा करने जा रहे हैं केवल इसलिए सफल हो सकी क्योंकि समाज की आंतरिक आर्थिक सामाजिक सांस्कृतिक परिस्थितियाँ उस सफलता में भूमिका निभा रही थीं। यह समझना महत्वपूर्ण है कि सांप्रदायिकता के विकास एवं उसके इस्तेमाल तथा ''फूट डालो और राज करो'' की नीति के लिए परिस्थितियाँ अत्यंत अनुकूल थी। सांप्रदायिकता के उदय एवं विस्तार के पीछे मात्र यह ही कारण नहीं था कि यह ब्रिटिश शासन की राजनैतिक जरूरतें पूरा कर सकने में सक्षम थी बल्कि एक महत्वपूर्ण कारण यह भी था कि भारतीय समाज के कुछ हिस्सों की सामाजिक जरूरतें भी इससे पूरी हो रही थी। सांप्रदायिकता का जन्म केवल अंग्रेजी सरकार ने नहीं किया। यह विभिन्न कारणों का संयुक्त परिणाम थी।

सांप्रदायिकता से संबंधित ब्रिटिश नीति का इतिहास आसानी से 1857 के विद्रोह के तुरन्त बाद के दौर से रेखांकित किया जा सकता है। 1857 के बाद शासकों के लिए यह आवश्यक हो गया कि ब्रिटिश साम्राज्य को भारत में बनाए रखने के लिए नई नीतियों का प्रतिपादन किया जाए। इस प्रकार 1857 के बाद सरकारी नीति में महत्वपूर्ण परिवर्तन आए और

अंग्रेजी नीतियों का दोहरा चरित्र सामने आया। इसमें अब उदारवादी एवं साम्राज्यवादी नीतियों का समावेश हुआ। वे केवल इस हद तक उदारवादी थी कि जो वर्ग पनप रहे थे उनकी माँगों और इच्छाओं को मान्यता मिली तथा उनकी पूर्ति की गई ये साम्राज्यवादी इसलिए थी क्योंकि केवल उन माँगों की पूर्ति की गयी जिनमें साम्राज्यवादी हित प्रमुख थे। इन्हें इसलिए भी साम्राज्यवादी कहा जा सकता है क्योंकि इन विभिन्न वर्गों एवं हितों के टकराव का लाभ भी अंग्रोजों द्वारा उठाया गया। यह निति दोहरे उद्देश्य से तैयार की गयी थी। यह दोहरे उद्देश्य थे एक ओर नए उभरते हुए वर्गों को समर्थन देकर उन्हें मित्र बनाना और उसके बाद उन्हें एक दूसरे के विरुद्ध ला खड़ा करना। एक वर्ग के वर्गीय हितों को दूसरे वर्ग के वर्गीय हितों से टकराना, एक वर्ग को दूसरे वर्ग के विरुद्ध ला खड़ा करना। संपेक्ष में यही ब्रिटिश नीति की भूमिका रही जो कि रियायत, प्रति संतुलन एवं बलप्रयोग की नीति थी।

एक बार इस नीति के व्यवहार में आ जाने के बाद इसका परिणाम सांप्रदायिकता के रूप में सामने आया। लेकिन इस नीति के पालन करते हुए भी सांप्रदायिक विचारधारा सरकार के राजनैतिक उद्देश्यों को पूरा करने में लाभप्रद सहयोगी रही। इस बिंदु पर पहुँच कर सरकार के समक्ष मुख्य रूप से दो उद्देश्य थे।

1 समाज में समर्थक बनाना, नियंत्रण एवं प्रभाव बढ़ाने के उद्देश्य से कुछ वर्गों को सरंक्षण देना और इस प्रकार समाज में अपने आधार को मजबूत करना।

2 भारतीयों में एकता न होने देना। यदि समाज के सभी वर्ग एक विचार धारा के अंतर्गत हो जाते तो अंग्रेजी साम्राज्य के लिए खतरा पैदा कर सकते थे। इसलिए सांप्रदायिक विचार धारा का इस्तेमाल करके उसे बढ़ावा देते हुए भारतीयों में एकता नहीं होने दी गयी। बीसवीं शताब्दी में यह कार्य और प्रभावपूर्ण ढंग से किया गया और राष्ट्रीय विचारधारा, सगठन और माँगों के न्यायगत होने तथा उनकी प्रमाणिकता को नकारने के उद्देश्य से सांप्रदायिक माँगों और संगठनों को प्रोत्साहित किया गया। इस प्रकार एक ओर मुसलमानों को कांग्रेस से दूर करने का भरसक प्रयास किया गया और दूसरी ओर कांग्रेस के दावों को यह कह कर ठुकराया जाता रहा कि कांग्रेस मुसलमानों का प्रतिनिधित्व नहीं कर रही है। सांप्रदायिकता ने सरकार को एक और लाभ पहुँचाया। सांप्रदायिक तनाव बने रहने तथा इसके और बदतर होने को अंग्रेजी शासन ने अपनी सरकार बनाए रखने के एक बहाने के रूप में इस्तेमाल किया। उनके तर्क कुछ इस प्रकार थे—मुख्य राजनैतिक दल जैसे कांग्रेस, मुस्लिम लीग और हिन्दू महासभा आपस में कोई समझौता नहीं कर सके। भारतीय जनता आपस में विभाजित है अतः यदि ब्रिटिश शासन समाप्त भी हो जाए तो भी वे सरकार बनाने की स्थिति में नहीं है। इस प्रकार अंग्रेजी शासन के भारतीय विकल्प की असंभावना पर निरंतर जोर दिया गया। पहले सांप्रदायिकता को प्रोत्साहन देना और बाद में इसी को अपने राजनैतिक लाभों के लिए इस्तेमाल करना अंग्रेजी नीति का हिस्सा था। आगे जब बीसवीं शताब्दी में उत्पन्न होने वाली परिस्थितियों पर चर्चा होगी तो इस पर और विस्तार से प्रकाश डाला जाएगा।

## 22.3.3 उन्नीसवीं शताब्दी में पुनरुत्थानवाद

उन्नीसवीं शताब्दी में पुनरुत्थान के रवैये ने सांप्रदायिकता के विकास में काफी योगदान दिया। विश्व भर में साम्राज्यवाद के अंतर्गत पुनरुत्थानवाद के रवैये सामान्य रूप से देखे जा सकते हैं। पुनरुत्थान उस स्वाभिमान की पुनर्प्राप्ति का प्रयास था जिसे राजनैतिक वशीकरण के कारण ठेस पहुँची थी। यह स्वाभिमान भारत के प्राचीन युग को गौरवान्वित करके प्राप्त करने का प्रयास किया गया। यह भारत के वर्तमान अपमान के संदर्भ में क्षतिपूर्ति के रूप में किया जा रहा था। यद्यपि पुनरुत्थान ने अतीत के गौरव को स्थापित किया लेकिन साथ ही कुछ अन्य समस्याएँ भी उत्पन्न कर दी। इसकी एक समस्या हिन्दुओं और मुसलमानों के भिन्न गौरवपूर्ण उद्गम का प्रस्तुतीकरण थी। इस प्रकार के प्रस्तुतीकरण ने पूर्व अस्तित्वमान धार्मिक, सांस्कृतिक और सामाजिक-आर्थिक मतभेदों को एक ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य दे दिया। हिन्दुओं के सुधारवादियों ने भारत के प्राचीन युग को गौरवान्वित करते हुए मध्ययुगीन भारत को बर्बरता का युग बताते हुए उसकी भर्त्सना की। इसी प्रकार मुसलमानों ने अपने गौरव और महानता की तलाश में अरब में इतिहास की शरण ली। इस प्रकार ऐसे समय में जबकि

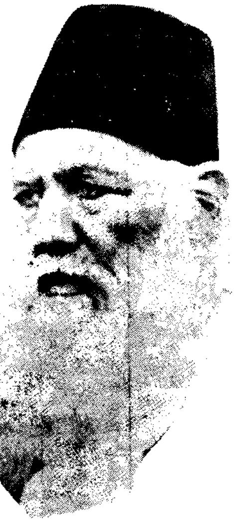

22. सैयद अहमद खान

हिन्दू और मुसलमान हर रूप में एकबद्ध होने चाहिए थे ऐतिहासिक रूप से भिन्न-भिन्न इकाई के रूप में उभर कर सामने लाये गये। यह क्षति बीसवीं शताब्दी में और भी स्पष्ट रूप में सामने आयी जब मुहम्मद अली जिन्ना ने अपने द्विराष्ट्रीय नजरिए (टू नेशन थियोरी) के आधार पर यह कहा कि "भारत एक राष्ट्र नहीं बल्कि हिन्दू और मुस्लिम राष्ट्र के रूप में दो राष्ट्र है" इसका एक कारण उन्होंने यह भी बताया कि दोनों का इतिहास अलग-अलग है और अक्सर एक राष्ट्रीयता का नायक दूसरे राष्ट्रीयता के लिए खलनायक सिद्ध होता रहा है।

## 22.3.4 उन्नीसवीं शताब्दी के उत्तरार्ध के राजनैतिक रवैये

पुनरुत्थान के प्रश्न से जुड़ा हुआ प्रश्न उन्नीसवीं शताब्दी में भारत में मुसलमानों के कुछ वर्गों में इस प्रकार के राजनैतिक रवैयों का विकास था। यद्यपि यह रवैये सांप्रदायिकता से परे थे लेकिन इन रवैयों ने बाद में विकसित हुई सांप्रदायिक राजनीति के लिए पृष्ठभूमि तथा कुछ औचित्य अवश्य प्रदान कर दिया। इस संदर्भ में सैयद अहमद खान का उदाहरण लिया जा सकता है।

सैयद अहमद खान की राजनैतिक समझ और गतिविधियाँ हमेशा एक दोहरेपन से प्रभावित रही। उन्होंने अपनी गतिविधियों का आरंभ बिना किसी सांप्रदायिक भेदभाव के किया। उनका मुख्य उद्देश्य मुसलमानों में सुधार लाने की प्रक्रिया आरंभ करना, उन्हें आधुनिक शिक्षा की आवश्यकता की ओर प्रेरित करना और उन्हें सरकारी संरक्षण दिलाना था। इसके लिए उन्होंने अलीगढ़ कालेज की स्थापना की जिसे बहुत से हिन्दुओं द्वारा आर्थिक सहायता मिली। उस कालेज में बहुत से हिन्दू छात्र और अध्यापक भी आये। स्वयं उन्होंने हिन्दू-मुस्लिम सद्भावना के समर्थन में आवाज उठायी।

लेकिन 1885 में कांग्रेस की स्थापना के बाद उनकी राजनैतिक समझ में काफी परिवर्तन आया। मुसलमानों के लिए प्रशासनिक पद हासिल करने तथा अंग्रेजी शासन के प्रति समर्थन दर्शाने की उनकी प्राथमिकता कांग्रेस की साम्राज्यवाद विरोधी नीति के एकदम प्रतिकूल थी। यद्यपि उनका कांग्रेस के साथ बुनियादी मतभेद अंग्रेजी शासन के प्रति उसके रुख से था लेकिन उन्होंने साथ ही कांग्रेस को हिन्दू दल के रूप में आरोपित करते हुए मुसलमान विरोधी दल बताकर उसका विरोध किया। इस प्रकार उन्होंने सांप्रदायिकता के कुछ मूलभूत तर्कों की नींव रख दी। इन तर्कों में से एक तर्क यह था कि हिन्दू बहुसंख्यक हैं और यदि अंग्रेजों ने अपना शासन समाप्त करके शासन की बागडोर भारतीयों के हाथ में दे दी तो मुसलमानों के हितों को बहुसंख्यकों से नुकसान पहुँचेगा। यही वह आधार था जिसके कारण सैयद अहमद खान ने प्रतिनिधि जनतांत्रिक संस्थाओं की स्थापना का विरोध किया। उनके अनुसार जनतंत्र का अर्थ होगा बहुसंख्यकों के हाथ में शक्ति एकत्रित होना क्योंकि "यह पासे के उस खेल जैसा होगा जिसमें एक आदमी के पास चार पासे हों और दूसरे के पास एक"। उनका यह भी विचार था कि चुनाव प्रणाली सारी शक्ति हिन्दुओं के पास पहुँचा देगी। इस प्रकार सैयद अहमद खान एवं उनके सहयोगियों की विचारधारा के परिणामस्वरूप सांप्रदायिकता के तीन निम्नलिखित तत्व स्पष्ट रूप से सामने आते हैं।

- राष्ट्रवादी शक्तियों का विरोध
- जनतांत्रिक प्रक्रियाओं और संस्थाओं का विरोध
- अंग्रेजी शासन की स्वामिभक्ति

कहने की आवश्यकता नहीं है कि यह तर्क पूर्ण रूप से गलत थे। यद्यपि कांग्रेस के अंदर काफी हिन्दू थे लेकिन उसे किसी भी रूप में हिन्दू संगठन नहीं कहा जा सकता था। इसकी माँगों और कार्यक्रमों में हिन्दुत्व जैसा कुछ भी नहीं था। कांग्रेस के 1887 के अधिवेशन की अध्यक्षता एक मुसलमान बदरूद्दीन तैय्यबजी ने की और बाद के वर्षों में मुसलमान प्रतिनिधियों की संख्या बढ़ती गयी। इसके अलावा एक आधुनिक प्रतिनिधि संस्थान के रूप में जनतंत्र ने मुसलमानों के लिए किसी प्रकार का खतरा नहीं पैदा किया। दरअसल इसने केवल मुसलमान (और साथ ही हिन्दू) राजाओं, सामंतों एवं जागीरदारों के लिए खतरा पैदा किया जिनके सैयद अहमद खान एक प्रतिनिधि थे।

## 22.3.5 सांप्रदायिक संगठनों की भूमिका

सांप्रदायिकता के एक बार उभरने के बाद उसे सरकार का प्रोत्साहन मिल गया और फिर यह स्वयं ही पनपने लगी। ऐसा प्रतीत होता है कि यह एक ऐसी व्यवस्था थी जो बिना किसी सहारे के स्वयं मजबूत बन सकती थी। इस प्रक्रिया में सांप्रदायिक संगठनों ने एक महत्वपूर्ण भूमिका निभाई। मुख्य सांप्रदायिक संगठन मुस्लिम लीग 1906 में गठित और हिन्दू महासभा (1915 में गठित) एक दूसरे के विरोधी थे, लेकिन वे हमेशा एक दूसरे को औचित्य प्रदान करते हुए एक दूसरे को और भी सांप्रदायिक बनाते रहे। अपने प्रचार एवं राजनैतिक गतिविधियों द्वारा उन्होंने हिन्दुओं और मुसलमानों को एक दूसरे के नजदीक नही आने दिया। एक दूसरे के प्रति अविश्वास की भावना फैलायी और इस प्रकार जनसाधारण में सांप्रदायिकता का प्रसार किया।

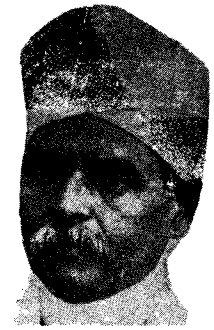

23. हिन्दू महासभा के संस्थापक मदन मोहन मालवीय

## 22.3.6 राष्ट्रीय आंदोलन की कमजोरियाँ

बीसवीं शताब्दी में सांप्रदायिकता के विकास को राष्ट्रवादी आंदोलन द्वारा ही रोका जा सकता था। सांप्रदायिक विचारधारा राष्ट्रवादी विचारधारा एवं शक्तियों के द्वारा ही परास्त की जा सकती थी। लेकिन एक राष्ट्रवादी विचारधारा एवं शक्ति के प्रतिनिधि के रूप में भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस जनसाधारण में सांप्रदायिकता फैलने से न रोक सकी। कांग्रेस राष्ट्रवाद एवं धर्मनिरपेक्षता के प्रति कटिबद्ध थी और भारतीयों में एकता लाने की इच्छुक थी। उसने भारतीय राष्ट्रीय आंदोलन में सांप्रदायिक शक्तियों के विरुद्ध संघर्ष भी किया लेकिन वह असफल रही। इसके कई कारण थे।

- कांग्रेस सांप्रदायिकता के स्वरूप को पूरी तरह नहीं समझ सकी जिसके कारण इससे लड़ने के लिए एक समग्र नीति तैयार करने में वह असफल रही। इसका परिणाम यह हुआ कि कांग्रेस विभिन्न अस्थायी कार्यनीतियाँ अपनाती रही। साथ ही सांप्रदायिकता के तेजी से बदलते हुए स्वरूप के साथ कांग्रेस गति कायम नहीं रख सकी।
- राष्ट्रीय आंदोलन में कुछ हिन्दू पुनरुत्थानवादी प्रवृत्तियाँ प्रवेश कर गयीं जिन्होंने कांग्रेस द्वारा मुसलमानों का विश्वास प्राप्त करने और उन्हें अपने साथ ले चलने के प्रयत्न में बाधा उत्पन्न की साथ ही कछ हिन्दू प्रतीकों (जैसे रामराज्य) के इस्तेमाल ने भी इसमें बाधा उत्पन्न की।
- सांप्रदायिक शक्तियों से निपटने में कांग्रेस ने क्रियान्वयन के स्तरों पर कभी-कभी गलत चुनाव किए। कांग्रेस ने सांप्रदायिक शक्तियों को रियायत देने का प्रयास किया और उनके साथ समझौता किया जिसके कारण सांप्रदायिक समूह को राजनैतिक प्रतिष्ठा मिलने लगी। कुछ अन्य अवसरों पर समझौते के मौके गँवा दिए गए और गत्यारोध की स्थिति पैदा हो गयी।

फिर भी इन सीमाओं को समस्या की जटिलता के संदर्भ में देखा जाना चाहिए विशेषकर सरकार के सांप्रदायिकता के प्रति रवैये को देखते हुए इस समस्या को सुलझाना अत्यंत कठिन कार्य हो गया था। अंग्रेजी सरकार ने विभिन्न राजनैतिक दलों के बीच समझौता न होने देने के हर संभव प्रयास किए। कांग्रेस मुसलमानों को जो भी सुविधायें देने की कोशिश करती अंग्रेजी सरकार उससे अधिक रियायतें दे देती थी और कांग्रेस एक बार फिर मुसलमानों का समर्थन पाने में असफल रह जाती थी। अगले खंड में कांग्रेस के एकीकरण एवं समझौतों के प्रयासों और सरकार के विभाजन के प्रयासों पर विस्तार से प्रकाश डाला जाएगा।

**बोध प्रश्न 2**

1 सांप्रदायिकता के प्रति अंग्रेजी नीति पर दस पंक्तियाँ लिखें।

..........................................................................
..........................................................................
..........................................................................
..........................................................................
..........................................................................
..........................................................................

..........................................................

..........................................................

..........................................................

..........................................................

2 निम्नलिखित पर पाँच-पाँच पंक्तियाँ लिखें।

i) अन्तराल संकल्पना

..........................................................

..........................................................

..........................................................

..........................................................

..........................................................

ii) पुनरुत्थानवाद

..........................................................

..........................................................

..........................................................

..........................................................

..........................................................

3 निम्नलिखित वक्तव्यों को पढ़े तथा सही ( $\surd$) और गलत ($\times$) का निशान लगाएँ

i) अंग्रेजी सरकार ने सांप्रदायिकता की नींव डाली।

ii) पुनरुत्थानवाद के प्रसार ने द्विराष्ट्रीय नज़रिए को बढ़ावा दिया।

iii) कांग्रेस सांप्रदायिकता के तेजी से बदलते हुए स्वरूप के साथ गति न बनाए रख सकी।

iv) सांप्रदायिकता संगठनों ने जनसाधारण में सांप्रदायिकता का प्रसार किया।

## 22.4 बीसवीं शताब्दी में सांप्रदायिकता

इस खण्ड में हम सांप्रदायिकता की समस्या से जुड़े हुए बीसवीं शताब्दी में हुए कुछ मुख्य गतिविधियों पर दृष्टिपात करेंगे। हम उन पर संक्षिप्त चर्चा करके यह जानने का प्रयास करेंगे कि उन्होंने सांप्रदायिकता की समस्या को कैसे प्रभावित किया। पिछले भाग में अंग्रेजी नीति एवं कांग्रेस से संबंधित बिंदुओं पर चर्चा की गयी है आगे के भाग में इन बिंदुओं पर और प्रकाश डाला जाएगा।

### 22.4.1 बंगाल का विभाजन और मुस्लिम लीग का गठन

संभवतया बंगाल का विभाजन (1905) प्रशासनिक कदम के रूप में किया गया, लेकिन इसने जल्दी ही अंग्रेजी सरकार को एक अन्य राजनैतिक लाभ प्रदान किया, क्योंकि इसने बंगाल को हिन्दू बाहुल्य और मुस्लिम बाहुल्य क्षेत्रों में बाँट दिया। इस प्रकार यह बंगाल के राष्ट्रवाद को कमजोर बनाने और उसके विरुद्ध मुसलमानों को मजबूत करने की अंग्रेजों की इच्छा का परिणाम था। वाइसराय कर्जन के अनुसार "विभाजन पूर्वी बंगाल के मुसलमानों को वह एकता प्रदान करेगा जो कि पुराने मुसलमान शासकों और राजाओं के शासन के काल के बाद उन्हें फिर से नहीं प्राप्त हो सकी थी।" विभाजन की योजना और स्वदेशी आंदोलन के साथ ही सरकारी संरक्षण मे 1906 के अन्त में अखिल भारतीय मुस्लिम लीग का गठन हुआ। इस दल में आगा खाँ, ढाका के नवाब और नवाब मुहसिन्नुल मुल्क जैसे बड़े जमींदार, भूतपूर्व नौकरशाह और उच्च वर्गीय मुसलमान शामिल थे। इसका उद्देश्य नौजवान मुसलमानों को कांग्रेस की ओर न जाने देने और फलतः राष्ट्रवादी मुख्यधारा में शामिल नहीं होने देना था।

मुस्लिम लीग का गठन पूर्ण रूप से सरकार के प्रति निष्ठा की भावना से प्रेरित था और इसका एक मात्र कारण समर्थन और संरक्षण के लिए सरकार का दामन पकड़ना था। इस उद्देश्य में उन्हें निराशा नहीं हुई।

इस काल का एक महत्वपूर्ण तथ्य मुस्लिम अलगाववाद का विकास था जिसके कारण थे—
- स्वदेशी आंदोलन के दौरान पुनरुत्थानवादी प्रवृतियों का फैलना।
- सरकार का यह प्रचार कि बंगाल के विभाजन से मुसलमानों को फायदा होगा।
- सांप्रदायिक दंगे भड़कना। स्वदेशी आंदोलन के दौर में पूर्वी बंगाल में कई सांप्रदायिक दंगे हुए, जिन्होंने अलगाववाद में योगदान किया।

## 22.4.2 पृथक निर्वाचन मंडल

1909 में विधान परिषदों के लिए निर्वाचन मोरले मिंटो सुधारों का एक महत्वपूर्ण अंग था। सांप्रदायिकता के इतिहास में यह महत्वपूर्ण कदम था। पृथक निर्वाचन मंडल का अर्थ चुनाव क्षेत्रों, मतदाताओं और निर्वाचित उम्मीदवारों को धर्म के आधार पर समूहों में बाँटना था। व्यावहारिक रूप से इसका अर्थ भिन्न मुस्लिम चुनाव क्षेत्र, मुस्लिम मतदाता और मुस्लिम उम्मीदवार की प्रथा आरंभ करना था। इसका अर्थ यह भी था कि गैर-मुस्लिम मतदाता मुस्लिम उम्मीदवारों के लिए मतदान नहीं कर सकते थे। इस प्रकार चुनाव प्रचार और राजनैतिकरण को धार्मिक दीवार के बीच सीमाबद्ध कर दिया। इन सभी घटनाओं के खतरनाक परिणाम अवश्यंभावी थे।

पृथक निर्वाचक मंडल की प्रक्रिया आरंभ करने के पीछे सोच यह थी कि भारतीय समाज भिन्न हितों और समूहों का जमघट है और यह बुनियादी रूप में हिन्दुओं और मुसलमानों के बीच बँटा हुआ है। भारतीय मुसलमान एक भिन्न और मजबूत समुदाय के रूप में देखे गए। इसका उद्देश्य अपने संभावित सहयोगियों के हाथ मजबूत करना और हिन्दू-मुस्लिम एकता न होने देना था। संयुक्त निर्वाचक समूह के विरुद्ध तर्क देते हुए मिंटो ने मोरले को निम्न तर्क दिए।

''संयुक्त योजना के अंतर्गत न केवल हिन्दू अपने आदमी चुनने में सफल हो सकेंगे बल्कि ऐसे मुस्लिम उम्मीदवार भी चुन सकेंगे जो असली मुस्लिम हितों का प्रतिनिधित्व न करते हों।''

इस योजना के तहत मुसलमानों को आश्वासन दिया गया कि उन्हें कौंसिलों का प्रतिनिधित्व केवल उनकी संख्या के आधार पर ही नहीं बल्कि उनके ''राजनैतिक महत्व'' के आधार पर भी दिया जाएगा। इस प्रकार मिंटो ने एक मुस्लिम शिष्ट मण्डल को आश्वासन दिया कि :

> ''जैसा कि मैं समझता हूँ कि आपकी माँग यह है कि प्रतिनिधित्व की किसी भी प्रणाली के अंतर्गत.........मुस्लिमों का एक समुदाय के रूप में प्रतिनिधित्व हो। आपकी यह माँग उचित है कि आपके समुदाय के राजनैतिक महत्व और साम्राज्य के लिए समुदाय द्वारा अर्पित की गयी सेवाओं को देखते हुए इस प्रकार विचार किया जाए। मैं पूरी तरह आपके समर्थन में हूँ। मैं आपसे केवल इतना कहूँगा कि मुस्लिम समुदाय को समुदाय के रूप में अपने अधिकारों और हितों की सुरक्षा के लिए मेरे प्रशासनिक क्षेत्र के किसी भी हिस्से में बिल्कुल निश्चिंत रहना चाहिए।

पृथक निर्वाचन मण्डल के प्रभाव निम्न रूप से श्रेणीबद्ध किए जा सकते हैं :
- इसने ऐसी संस्थागत संरचनाओं को जन्म दिया जिनसे अलगाववाद को बढ़ावा मिला।
- इससे कांग्रेस पर गंभीर दबाव आने वाला था तथा राष्ट्रवादी गतिविधियों के लिए इसके कारण क्षेत्र सीमित होने वाला था।
- इसके द्वारा सांप्रदायिक समूहों एवं सगंठनों की प्रक्रिया तेज होने वाली थी, तथा
- इसने भारतीय राजनैतिक दलों के बीच किसी भी समझौते की संभावना समाप्त कर दी।

पृथक निर्वाचक समूहों का प्रभाव भारतीय राजनैतिक माहौल में बाद के दिनों में प्रतिलक्षित हुआ था। डेविड पेज (प्रिल्यूड टु पार्टिशन, 1982) ने अपनी पुस्तक में बड़े प्रभावपूर्ण ढंग से इसका वर्णन किया है।

> ''भिन्न निर्वाचक समूह की प्रक्रिया आरंभ करने के पीछे सभवतः राज का यह प्रयास था कि अपनी नियंत्रण प्रणाली के महत्वपूर्ण हिस्से को मजबूत किया जाए। अपने परंपरागत सहयोगियों के आधार को विस्तृत बनाने के उद्देश्य के तहत ऐसा प्रयास किया गया था।''

### 22.4.3 लखनऊ समझौता

लखनऊ समझौता (1916) कांग्रेस और मुस्लिम लीग द्वारा एक समझौते पर पहुँचने का प्रयास था। मुस्लिम लीग का समर्थन प्राप्त करने के लिए एक अस्थायी प्रबन्ध के रूप में कांग्रेस ने पृथक निर्वाचन मंडल की माँग मान ली। लखनऊ समझौते से संबंधित दो बातें याद रखनी आवश्यक है :

- यह नेताओं के बीच का समझौता था न कि जनता के बीच का। कांग्रेस-लीग के समझौते को गलत रूप में हिन्दू-मुस्लिम समझौते का नाम दिया गया। इसके पीछे समझ यह थी कि लीग मुसलमानों की असली प्रतिनिधि है।
- गवर्नमेंट आफ इण्डिया ऐक्ट, 1919, जिसने मुसलमानों को लखनऊ समझौते की अपेक्षा कही अधिक रियायतें दी, के कारण लखनऊ समझौता अर्थहीन हो गया।

### 22.4.4 ख़िलाफ़त

ख़िलाफ़त आंदोलन जिसके विषय में आपने पहले अध्ययन किया है एक ऐसे विशिष्ट राजनैतिक माहौल की उपज था जिसमें भारतीय राष्ट्रवाद और इस्लामी विश्व बंधुत्व साथ साथ कदम बढ़ा रहे थे। इसके साथ राष्ट्रवादी आंदोलन में मुसलमानों की सहभागिता में अभूतपूर्व बढ़ोतरी हुई। चौरी-चौरा कांड के तुरंत बाद असहयोग आंदोलन के वापस लेने के साथ सांप्रदायिकता भारतीय राजनीति में प्रवेश करने लगी। 1922-27 के दौरान सांप्रदायिकता के उत्थान के कई लक्षण सामने आते हैं।

- सांप्रदायिक हिंसा अभूतपूर्व रूप से भड़की । केवल संयुक्त प्रान्त (वर्तमान उत्तर प्रदेश) में 1923-27 के दौरान 91 सांप्रदायिक दंगे हुए। गो-हत्या और मस्जिदों के सामने संगीत के मुद्दे उभर कर सामने आए।
- हिन्दू-मुस्लिम एकता का प्रतिनिधित्व करने वाली ख़िलाफ़त समितियाँ धीरे-धीरे लुप्त होने लगी।
- 1922-23 के दौरान मुस्लिम लीग को पुनः जीवित किया गया और इसने खुलेआम अलगाववादी राजनीति के पक्ष में बोलना आरंभ कर दिया।
- 1915 में गठित हिन्दू महासभा जो कि अभी तक अक्रियाशील थी उसे ऐसा माहौल मि पाया कि वह भी अपने को पुनर्जीवित कर सके।
- तबलीग (प्रचार) और तन्ज़ीम (संगठन) जैसे आंदोलन मुसलमानों के बीच उठे जो कि हिन्दुओं के मध्य उठे शुद्धि और संगठन आन्दोलनों की प्रतिक्रिया स्वरूप थे। आंशिक रूप से ये (शुद्धि और संगठन) आंदोलन भी मापिला विद्रोह के दौरान हुए जबरन धर्म परिवर्तन की प्रतिक्रिया में हुए। इन तमाम घटनाओं ने राजनैतिक वातावरण को काफी प्रदूषित कर दिया।
- 1925 में राष्ट्रीय स्वयं सेवक संघ की स्थापना हुई।

इस बिगड़ती हुई सांप्रदायिक परिस्थिति के कई कारण थे।

- ख़िलाफ़त गठजोड़ ने धार्मिक नेताओं को राजनीति में खींच लिया लेकिन इन नेताओं ने राजनीति में प्रवेश अपनी शर्तों पर किया। आंदोलन वापिस लिए जाने के बाद भी राजनीति में इन धार्मिक नेताओं की सहभागिता समाप्त नहीं हुई। इसके कारण राजनीति की व्याख्या धार्मिक तौर पर आरंभ हो गई।
- राजनैतिक संरचना का स्वरूप अपने आप में पृथक निर्वाचन मंडल की प्रक्रिया आरंभ करने के साथ ही सांप्रदायिकता का बीज बन गया। इस संरचना का विस्तार 1919 में मान्टेग्यू-चेम्सफोर्ड सुधारों के आधार पर हुआ जिसमें सांप्रदायिक प्रचार और इसके आधार पर राजनैतिक गतिविधियों के पनपने का पथ प्रदर्शित किया गया।
- रोज़गार के अवसरों की भारी कमी के माहौल मे शिक्षा के विस्तार ने काफी बड़ी संख्या में शिक्षित बेरोज़गार पैदा कर दिये जो कि नौकरियों के लिए धर्म का इस्तेमाल करने के लिए तैयार थे।

1927 में राजनैतिक परिस्थिति काफी असंतोषजनक थी। राष्ट्रवादी शक्तियों में फूट पड़ गयी थी और वे बहुत सतही तौर पर कार्यरत थीं। सांप्रदायिकता इस दौरान काफी जोर पकड़ रही थी।

In Jail:—
Maulana Shaukat Ali, Seth Yakub Hasan, Dr. Saifuddin Kitchlew, — Hon. Secretaries

٧٨٦

الله اكبر

Telegraphic Address. "KHILAFAT"

الجمعية المركزية الهندية الخلافة الاسلامية ( بمبئی )

# The Central Khilafat Committee of India.

Dr. M. A. Ansari, President.
Dr. Saiyed Mahmud, Maulvi Moazzamali, Seth Osman Sobani, — Hon. Secretaries.

Sultan Mansion, Dongri, 30/7/4

*Bombay,* ______________ 192

Y. Pile

My Dear ~~Sir,~~ Panditjee

The Khilafat Working Committee held at Nagpur decided that two days before the special sessions of the Congress(middle of August) a committee of responsible persons be held to consider the future policy and line of action for the Khilafat organisation. As this a very important matter I earnestly request you to kindly attend the committee meeting at Bombay to help us in our delibration and to enable us to decide our future line of action.

I remain
Yours sincerely
Syed Mahmud
Hony. Secretary

24 खिलाफ़त बैठक की सूचना

## 22.4.5 भिन्न रास्ते

साइमन कमीशन (1927) के आने और लगभग सभी राजनैतिक विचारों द्वारा सर्वसम्मति से इसका बहिष्कार किये जाने के कारण एक बार फिर एकता का अवसर आया। मोहम्मद अली जिन्ना के नेतृत्व में मुस्लिम लीग का एक हिस्सा पृथक निर्वाचन मंडल के स्थान पर संयुक्त निर्वाचक मंडल के समर्थन में जाने को तैयार था लेकिन उसके लिए निम्न शर्तें थीं :

25 मोहम्मद अली जिन्ना

26 तेज बहादुर सप्रू

- केंद्रीय विधान मण्डल में मुसलमानों का एक तिहाई प्रतिनिधित्व हो
- सिंध को बंबई से अलग करके एक अलग प्रदेश बनाया जाए।
- उत्तर पश्चिम सीमांत प्रदेशों में सुधार लाए जायें, तथा
- पंजाब और बंगाल में उनकी जनसंख्या के प्रतिशत के अनुसार मुसलमानों को विधान परिषदों में प्रतिनिधित्व मिले।

कांग्रेस ने ये माँगे स्वीकार कर ली जिससे कि एकता की संभावना बढ़ी, लेकिन हिन्दू महासभा द्वारा आल पार्टीज कांफ्रेन्स में इसके बिना शर्त नामंजूर किये जाने के कारण समस्या ने गम्भीर रूप धारण कर लिया। लीग और महासभा की प्रतिद्वंद्विता ने एकता के सभी प्रयास असफल कर दिये। नेहरू रिपोर्ट (जो कि मोतीलाल नेहरू तथा तेज बहादुर सप्रू द्वारा तैयार की गई थी) मुस्लिम लीग द्वारा नामंजूर कर दी गई क्योंकि इसमें उनकी सभी माँगे शामिल नहीं की गई थीं। नेहरू रिपोर्ट की नामंजूरी का प्रभाव काफी महत्वपूर्ण रहा।

इसके कारण जिन्ना, जिन्होंने कि इसे अलग-अलग रास्तों पर जाना (Parting of the ways) बताया, का कांग्रेस के साथ संबंध टूट गया। जिन्ना ने फिर से पृथक निर्वाचन मंडल का रास्ता अपनाया और अपने प्रसिद्ध चौदह सूत्री कार्यक्रम (पृथक निर्वाचन मंडल, केन्द्र और प्रदेशों में सीटों का आरक्षण, रोज़गार में मुसलमानों के लिए आरक्षण, नयी मुस्लिम बहुसंख्यक प्रदेश की स्थापना आदि भी इसमें शामिल थे) की घोषणा की जो कि सांप्रदायिक माँगों का दस्तावेज बन गया।

इसके कारण विभिन्न राजनैतिक दलों के बीच की दूरी बढ़ गई और जिन्ना सांप्रदायिकता के और निकट पहुँच गये।

इसके कारण सविनय अवज्ञा आंदोलन के प्रति अधिकतर मसलमान नेताओं के बीच उदासीनता और कभी-कभी शत्रुता का भाव प्रतिलक्षित होने लगा।

## 22.4.6 जन आधार की ओर

1928-29 की घटनाओं ने सांप्रदायिक शक्तियों को चारों ओर फैला दिया। धीरे-धीरे सांप्रदायिकता ऐसी जन शक्ति के रूप में परिवर्तित होने लगी जिसका सामना कठिन प्रतीत होने लगी। 1940 में मुसलमानो के लिए एक अलग देश के रूप में पाकिस्तान के गठन की उठने वाली नयी माँग ने सभी अन्य सांप्रदायिक माँगों को अर्थहीन बना दिया। यह माँग अन्ततः 1947 में पूरी हुई। आइये इन घटनाओं को और विस्तार से देखा जाए। गवर्नमेंट ऑफ इण्डिया ऐक्ट, 1935 ने प्रादेशिक स्वायत्तता एवं पहले के मुकाबले अधिक मताधिकार उपलब्ध कराए। पृथक निर्वाचक मंडल के तहत 1937 के आरंभ में चुनाव हुए। परिणाम काफी स्पष्ट थे। आम चुनाव क्षेत्रों में कांग्रेस ने चुनावों में भारी विजय पाई और छह प्रदेशों में मत्रिमंडल गठित करने में सफल रही तथा अन्य दो प्रदेशों में अकेली सबसे बड़ी पार्टी सिद्ध हुई। लेकिन मुस्लिम चुनाव क्षेत्रों में कांग्रेस को निराशा हाथ लगी। 482 मुस्लिम चुनाव क्षेत्रों में से कांग्रेस ने 58 स्थानों पर चुनाव लड़ा और जिनमें से केवल 26 स्थानों पर उसे सफलता मिल पायी। इतना ही नहीं अपने को मुसलमानों की प्रतिनिधि कहलाने वाली पार्टी, मुस्लिम लीग की स्थिति भी काफी बुरी रही। उत्तर-पश्चिमी सीमांत प्रांतों में उसे एक भी सीट नहीं मिली। पंजाब में 84 सीटों में से केवल 2 तथा सिंध में 33 में से उसे केवल 3 सीटें ही प्राप्त हो सकी। मुस्लिम लीग कहीं भी मंत्रिमंडल गठित न कर सकी। बंगाल और पंजाब जैसे महत्वपूर्ण प्रांतों में क्षेत्रीय पार्टियों (पंजाब में सिकंदर हयात खान के नेतृत्व वाली यूनियनिस्ट पार्टी तथा बंगाल में फजलुलहक के नेतृत्व वाली प्रजा-कृषक पार्टी) ने मंत्रिमंडल गठित किए।

चनाव परिणाम कांग्रेस और मुस्लिम लीग के सामने अलग-अलग चुनौतियाँ लेकर आए। कांग्रेस के लिए चुनौती काफी स्पष्ट थी। हिन्दुओं के बीच कांग्रेस ने मजबूत आधार तैयार कर रखा था। लेकिन मुसलमानों का प्रतिनिधित्व करने में यह अभी भी कामयाब नहीं हो सकी थी। कांग्रेस के लिए इस संदर्भ में केवल एक ही आशा बची हुई थी कि मुसलमानों के बीच इसकी प्रतिद्वंद्वी पार्टी मुस्लिम लीग भी मुसलमानों का प्रतिनिधित्व करने का दावा नहीं कर सकती थी। इस प्रकार कांग्रेस के समक्ष निम्न चुनौतियाँ थीं।

- मुसलमानों के बीच जनसाधारण के लिए कार्य किया जाए और उन्हें कांग्रेस के नजदीक

लाया जाय। 1937 में यह कार्य बहुत कठिन प्रतीत नहीं हो रहा था क्योंकि मुसलमान जनता इस समय किसी भी प्रभावशाली सांप्रदायिक अथवा राष्ट्रवादी राजनीति के प्रभाव से मुक्त नजर आ रही थी।

- मुस्लिम लीग को पूरी तरह नजर अंदाज करना क्योंकि इसका आधार मजबूत नहीं था। चुनावों के नतीजे से इसका गैर प्रतिनिधि चरित्र खुल कर सामने आ चुका था और ऐसी परिस्थिति में इसके साथ कोई समझौता करने का औचित्य नहीं था। इसीलिए नेहरू ने बड़े स्पष्ट शब्दों में यह घोषणा की कि देश के अंदर केवल दो ही शक्तियाँ हैं: राष्ट्रवादी शक्तियाँ, जिसका प्रतिनिधित्व कांग्रेस कर रही है, और साम्राज्यवादी शक्तियाँ, जिसका प्रतिनिधित्व सरकार कर रही है।

इस दोहरी चुनौतियों का मुकाबला करने के उद्देश्य से कांग्रेस ने "मुस्लिम जनसंपर्क अभियान" (Muslim Mass Contact Programme) शुरू करने का निर्णय लिया। यह प्रयास सभी संगठनों को नज़र अंदाज करते हुए प्रत्यक्ष रूप में मुसलमानों से कांग्रेस में शामिल होने की अपील करने के उद्देश्य से किया गया। कांग्रेस के इस कदम से जिन्ना काफी चिन्तित हो उठे और कांग्रेस को मुसलमानों से दूर रहने की चेतावनी दी क्योंकि उनके अनुसार केवल मुस्लिम लीग ही मुसलमानों का प्रतिनिधित्व कर सकती थी।

मुस्लिम लीग के लिए भी चुनौतियाँ स्पष्ट थी :
- अभी तक मुस्लिम लीग रईसों का संगठन बना हुआ था जिसका नेतृत्व राजे और जमींदार कर रहे थे तथा उसके पास कोई जन आधार नहीं था। चुनावी राजनीति में सफलता प्राप्त करने की प्रक्रिया में अपना पक्ष मजबूत रखने के लिए कांग्रेस जैसा जन आधार हासिल करना और लोकप्रिय संगठन बनाना अत्यावश्यक हो चुका था।
- 1937 तक सरकार ने जिन्ना के सभी चौदह सूत्रीय कार्यक्रम स्वीकार कर लिए थे फिर भी जिन्ना लक्ष्य से बहुत दूर थे। वे स्वयं अथवा लीग, जिसके वे स्थायी अध्यक्ष बन चुके थे, को राजनैतिक सम्मान दिला पाने की स्थिति में नहीं ले जा पाए। इसलिए आवश्यक था कि लीग की सदस्यता में वृद्धि की जाय और चूँकि अन्य सभी माँगें पृथक निर्वाचन मंडल, सीटों में आरक्षण आदि मान ली गयी थी अतः कुछ और भी बड़ी माँगे प्रस्तुत की जायें।

इस दोहरी चुनौती के लिए जिन्ना ने निम्नलिखित कार्य किए।
- मुस्लिम लीग को लोकप्रिय बनाने के लिए एक बड़ा अभियान आरंभ किया गया। मुस्लिम लीग अपने रईसी शिकंजे से बाहर आकर जन आधार प्राप्त करने लगी (यद्यपि यह जन आधार केवल मुसलमानों के बीच था) सदस्यता शुल्क घटा दिया गया, प्रांतीय कमेटियाँ गठित की गयीं और कार्यक्रम को सामाजिक-आर्थिक आधार देने के लिए उसमें परिवर्तन किए गए।
- कांग्रेस मंत्रिमण्डलों की भर्त्सना करने के उद्देश्य से उतना ही बड़ा अभियान शुरू किया गया। उन्हें हिन्दू राज का प्रतिनिधि और मुस्लिम अल्पसंख्यक विरोधी बताया गया। हिन्दू और मुसलमानों में फूट डालने का यह सबसे अच्छा तरीका था। चूँकि जिन्ना इसे हिन्दुओं का संगठन बताते थे, इसलिए कांग्रेस को केवल हिन्दुओं की ओर ध्यान देने को कहा गया।
- 1940 के लाहौर सत्र में जिन्ना ने द्विराष्ट्रीय नजरिया प्रस्तुत किया। इसके अनुसार मुस्लिम अल्पसंख्यक नहीं बल्कि वे एक राष्ट्र (Nation) थे। चूँकि हिन्दू और मुसलमान आर्थिक, राजनैतिक, सामाजिक, सांस्कृतिक और ऐतिहासिक रूप में भिन्न थे इसलिए वे दो अलग-अलग राष्ट्र थे। अतः भारतीय मुसलमानों के लिए एक अलग स्वायत्त देश होना चाहिए। इस प्रकार मुस्लिम देश के रूप में पाकिस्तान के गठन का प्रस्ताव सामने आया।

ऊपर जिन परिणामों की चर्चा की गई है उसके फलस्वरूप सांप्रदायिकता जन शक्ति के रूप में उभरने लगी। हालाँकि 1940 तक सांप्रदायिकता पूरी शक्ति प्राप्त कर नहीं पाई थी लेकिन एक जन शक्ति के रूप में इसके परिवर्तित होने की प्रक्रिया आरम्भ हो चुकी थी। यही प्रक्रिया 1947 में पाकिस्तान को जन्म देने वाली थी।

## बोध प्रश्न 3

1 पृथक निर्वाचक मंडल से आप क्या समझते हैं। लगभग 100 शब्दों में लिखें

2 निम्नलिखित पर पाँच-पाँच पंक्तियाँ लिखें

i) लखनऊ समझौता

ii) द्विराष्ट्रीय नजरिया (टू नेशन थियरी)

3 निम्न प्रश्नों के उत्तर लिखें

i) हिन्दू महासभा का गठन कब हुआ ?

ii) तबलीग और तनज़ीम आंदोलन के हिन्दू प्रतिपक्ष क्या थे ?

iii) भिन्न रास्ते (Parting of the ways) का नारा किसने दिया ?

4 चुनाव परिणामों ने कांग्रेस के समक्ष क्या चुनौतियाँ खड़ी कीं ?

.......................................................................

.......................................................................

.......................................................................

## 22.5 सारांश

इस इकाई में हमने देखा कि विभिन्न कारणों के परिणाम के रूप में सांप्रदायिकता भारत में किस प्रकार उभरी और पनपी। उन्नीसवीं शताब्दी के विशिष्ट सामाजिक-आर्थिक विकास, औपनिवेशिक शासन की भूमिका, इसकी प्राथमिकताएँ और उन्हें पूरा करने के लिए इसके द्वारा उठाए गए कदम, सांप्रदायिकता विरोधी शक्तियों की कमजोरियाँ एवं सीमाएँ और बीसवीं शताब्दी में सांप्रदायिक शक्तियों का उत्थान इसके कारण हैं जिनकी चर्चा ऊपर की गयी है। यद्यपि हमारी कहानी 1940 तक पहुँच कर समाप्त हो जाती है लेकिन सांप्रदायिकता की कहानी अभी समाप्त नहीं होती। सांप्रदायिकता का प्रवाद बढ़ता रहा। 1940 में पाकिस्तान की घोषणा से लेकर 1947 में उसके बनने तक के घटनाचक्र पर आगे की एक इकाई में चर्चा की जायेगी। लेकिन कुछ बाते यहाँ उल्लेखित की जा सकती हैं। पाकिस्तान का गठन सांप्रदायिक माँगों की चरम सीमा और सांप्रदायिकता का तार्किक परिणाम था। यह निम्नलिखित दोहरी प्रक्रिया का परिणाम था।

- राजनीति की राष्ट्रीय मुख्य धारा से मुसलमानों का एक समूह के रूप में धीरे-धीरे कट जाना और,
- मुहम्मद अली जिन्ना के नेतृत्व में मुस्लिम लीग द्वारा पाकिस्तान के रूप में सामने आने वाली सांप्रदायिक माँग के लिए एक सांप्रदायिक मंच पर मुसलमानों का एकत्र होना।

यह दोहरी प्रक्रिया इस लिए संभव हो सकी क्योंकि 1940 के दशक में सांप्रदायिकता एक जन शक्ति और विचारधारा के रूप में जनसाधारण को आकृष्ट करने लगी थी। यह वह प्रक्रिया थी जो 1920 के दशक में आरंभ हुई, 1930 के दशक में इसमें तेजी आयी और इसके उपरांत 1940 के दशक में इस प्रक्रिया का और अधिक विकास हुआ। अगली इकाई में आप सांप्रदायिकता के सबसे महत्वपूर्ण दौर का बाकी भाग पढ़ सकेंगे।

## 22.6 शब्दावली

**स्थाई बन्दोबस्त** : बंगाल में 1793 में अंग्रेजी सरकार द्वारा आरंभ की गयी नई भू-व्यवस्था, इसके अनुसार धनी किसानों से जो कि अधिकतर मुसलमान थे, संपत्ति का अधिकार छिन गया और वे काश्तकार बन गए।

**नेहरू रिपोर्ट** : साइमन कमीशन पर भारतीय प्रतिक्रिया। यह 1928 में तैयार किया गया संविधान था जिसे इसके तैयार करने वालों में से एक (मोतीलाल नेहरू) के नाम से जोड़ा गया। यह संविधान कई रूपों में 1950 में भारत में लागू किए गए संविधान का पूर्वरूप था। नेहरू रिपोर्ट 1930 में कांग्रेस ने यह कहकर त्याग दी कि वह सभी राजनैतिक दलों को स्वीकार्य नहीं थी।

गवर्नमेंट ऑफ इण्डिया ऐक्ट, 1935 : मोरले मिंटो (1909) और मांतेग्यू चेम्सफोर्ड (1919) सुधारों के उपरांत अंग्रेजी सरकार द्वारा उठाया गया तीसरा संवैधानिक कदम। इसके अनुसार पृथक निर्वाचन मंडल के अंतर्गत चुनावों का प्रावधान और पहले से कहीं अधिक विस्तृत मताधिकार का प्रावधान लाया गया। इसी ऐक्ट के प्रावधान के अनुसार प्रांतीय स्वायत्तता लायी गयी जिसका अर्थ यह था कि विजयी पार्टी संबन्धित प्रान्त में सरकार बना सकती है। यद्यपि मुख्य अधिकार केंद्र में ही सुरक्षित थे।

## 22.7 बोध प्रश्नों के उत्तर

**बोध प्रश्न 1**

1 देखें उपभाग 22.2.1

2 देखें उपभाग 22.2.2

3 i) ( √ ) ii) ( × ) iii) ( √ ) iv) ( √ )

**बोध प्रश्न 2**

1 देखें उपभाग 22.3.2

2 देखें उपभाग 22.3.1 और 22.3.3

3 i) ( × ) ii) ( √ ) iii) ( √ ) iv) ( √ )

**बोध प्रश्न 3**

1 देखें उपभाग 22.4.2

2 देखें उपभाग 22.4.3 और 22.4.6

3 i) 1915
ii) शुद्धि एवं संगठन
iii) मुहम्मद अली जिन्ना

4 देखें उपभाग 22.4.6

## इस खंड के लिए कुछ उपयोगी पुस्तकें

अयोध्या सिंह : *भारत का मुक्ति संग्राम*
ताराचन्द : *भारतीय स्वतंत्रता संग्राम का इतिहास (भाग–2)*
प्रकाशन विभाग भारत सरकार, नई दिल्ली
रजनीपाम दत्त : *आज का भारत*
वी.एन. दत्त : *जलियाँ वाला बाग,*
हरियाणा हिंदी ग्रंथ अकादमी
शांतिमय राय : *स्वाधीनता आंदोलन में भारतीय मुसलमानों की भूमिका,*
पी.पी.एच., नई दिल्ली।
सोहन सिंह जोश : *अकाली मोर्चों का इतिहास*
पी.पी.एच. दिल्ली

# इकाई 23 स्वतंत्रता आंदोलन और राष्ट्रवादी साहित्य

**इकाई की रूपरेखा**


23.0 उद्देश्य

23.1 प्रस्तावना

23.2 उन्नीसवीं शताब्दी का साहित्य

23.2.1 बंगाली

23.2.2 गुजराती

23.2.3 हिन्दी

23.3 बीसवीं शताब्दी का साहित्य

23.4 सारांश

23.5 शब्दावली

23.6 बोध प्रश्नों के उत्तर


## 23.0 उद्देश्य

पिछले खण्डों में आपने सम्पूर्ण भारत में राजनीतिक गतिविधियों एवं आंदोलनों की एक लम्बी प्रक्रिया द्वारा राष्ट्रवादी विचारों के प्रसार के संबंध में जानकारी प्राप्त की । इसी प्रक्रिया में यह इकाई साहित्य के योगदान की आपको जानकारी देती है । इस इकाई के अध्ययन के बाद आप :

- विभिन्न भारतीय भाषाओं के प्रमुख साहित्यकारों के साहित्यिक योगदान से अवगत हो सकेंगे,
- इन साहित्यिक कृतियों में निहित राजनीतिक तत्वों को समझ सकेंगे, तथा
- इस राजनीतिकता के विशिष्ट लक्षणों की जानकारी प्राप्त कर सकेंगे ।

## 23.1 प्रस्तावना

भारतीय स्वतंत्रता संग्राम में साहित्य ने काफी महत्वपूर्ण भूमिका निभायी है । उन्नीसवीं शताब्दी के शुरू होते ही जब राष्ट्रवादी विचार उभरने लगे और विभिन्न भारतीय भाषाओं का साहित्य अपने आधुनिक युग में प्रवेश करने लगा, तब अधिक से अधिक साहित्यकार साहित्य को देशभक्ति पूर्ण उद्देश्यों के लिए प्रयोग में लाने लगे । दरअसल इनमें से अधिकांश साहित्यकारों का यह विश्वास था कि चूँकि वे एक गुलाम देश के नागरिक हैं, अतः यह उनका कर्तव्य है कि वे इस प्रकार के साहित्य का सृजन करें जो कि उनके समाज के सर्वतोन्मुखी पुनरुत्थान में अपना योगदान देते हुए राष्ट्रीय विमुक्ति का मार्ग प्रशस्त करेगा । किसी भी मुख्य राजनीतिक दल अथवा आंदोलने द्वारा अंग्रेज़ी राज्य से विमुक्ति को अपने कार्यक्रम में शामिल करने से भी पूर्व, जबकि भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस भी केवल संवैधानिक आंदोलन का ही रास्ता अपनाए हुए थी, साहित्य में पराधीनता के बोध तथा स्वतंत्रता की ज़रूरत को स्पष्ट अभिव्यक्ति मिलने लगी थी । समय बीतने के साथ जैसे ही स्वतंत्रता आंदोलन ने भारी संख्या में जनता को अपनी ओर आकृष्ट करना शुरू किया और स्वतंत्रता की मांग तीव्र होती गयी, साहित्य ने जनता के आदर्शों को बल प्रदान किया । इतना ही नहीं, देश की विमुक्ति के लिए जनसाधारण को हर प्रकार से बलिदान करने के लिए उत्प्रेरित किया । इसके अतिरिक्त, साहित्य ने राष्ट्रवादी आंदोलन तथा इसके नेताओं की कमज़ोरियों पर भी प्रकाश डाला । अगले भागों में इन दोनों पक्षों पर चर्चा की जाएगी ।

## 23.2 उन्नीसवीं शताब्दी का साहित्य

सभी भारतीय भाषाओं के साहित्य पर विचार करना हमारे लिए संभव नहीं होगा । सुविधा की दृष्टि से हमारी चर्चा मुख्य रूप से तीन भाषाओं : हिन्दी, गुजराती और बंगाली साहित्य तक सीमित होगी ।

हम देखेंगे कि सभी तीन भारतीय भाषाओं के साहित्य में समान भावनाओं और विचारों की अभिव्यक्ति हुई है । सभी भारतीय भाषाओं के साहित्य में यह एक असाधारण समानता है । यह समानता पूरे देश में स्वतंत्रता आंदोलन के प्रति भावनाओं एवं विचारों की व्यापक एकात्मता दर्शाती है ।

देश के विभिन्न हिस्सों में आधुनिक स्वरूप की राष्ट्रीय चेतना और राजनीतिक सम्बद्धता का उदय मुख्य रूप से उन्नीसवीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध में हुआ । 1885 में भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस की स्थापना एक प्रकार से इन्हीं पूर्वकालीन घटना–चक्रों का परिणाम थी । इस दौर का और इसके बाद का साहित्य भी न केवल राष्ट्रीय चेतना से प्रभावित रहा, अपितु इसने राष्ट्रीय चेतना की दिशा और स्वरूप को भी प्रभावित किया ।

## 23.2.1 बंगाली

आरंभिक आधुनिक साहित्य के इतिहास में दो महान साहित्यकार सर्वोच्च स्थान रखते हैं । ये हैं— बंकिम चंद्र चट्टोपाध्याय (1838–94) और गोवर्धनराम माधवराम त्रिपाठी (1855–1907) । उपन्यासकार होने के अतिरिक्त ये दोनों ही असाधारण क्षमता वाले बुद्धिजीवी भी थे, जिन्होंने अपने समाज और देश की समस्याओं को समझना अपना लक्ष्य बना लिया था । उनके उपन्यास अपने देशवासियों में देशभक्तिपूर्ण भावनाएं जागृत करने में लगे हुए थे । उन्होंने, विशेषकर बंकिम चन्द्र ने, ऐसे निबंध भी लिखे जिन्होंने अपने पाठकों को अपने देश की मौजूदा दयनीय स्थिति के कारणों पर विचार करने के लिए बाध्य किया । बंकिम चंद्र ने बंगदर्शन नामक एक पत्रिका भी निकाली जिसका उद्देश्य, अधिक से अधिक संख्या में अपने देशवासियों को शिक्षित और उत्प्रेरित करना था । अक्सर इन निबंधों की शैली हास्यात्मक एवं व्यंग्यात्मक होती थी जो कि पाठक का मनोरंजन करते हुए उसे सोचने पर बाध्य करती थी । मनोरंजन एवं शिक्षा का यह समन्वय उपन्यासों में और भी प्रभावशाली रूप में प्रकट हुआ ।

1. बंकिम चन्द्र

यद्यपि बंकिम चंद्र ने सामाजिक उपन्यास भी लिखे, लेकिन देशभक्ति का संदेश उन्होंने मुख्यतः ऐतिहासिक प्रेमाख्यानों के माध्यम से ही प्रेषित किया । उन्होंने इतिहास एवं कल्पना का समायोजन करके ऐसे चरित्र निर्मित किए जो किसी भी प्रकार का बलिदान करने, यहां तक कि अन्याय, उत्पीड़न और पराधीनता के विरुद्ध संघर्ष में अपने प्राण तक त्याग देने के लिए हर समय तैयार रहते थे । यह समायोजन विशेष रूप से आनंदमठ (1882) में अत्यन्त प्रभावशाली रूप से सामने आया । अपने विख्यात गीत "बन्दे मातरम" के साथ "आनंदमठ" देशभक्तों की कई पीढ़ियों के लिए प्रेरणा स्रोत बन गया और ये देशभक्त और क्रांतिकारी इस उपन्यास को धर्म ग्रन्थ जैसा सम्मान देते रहे ।

बंकिम चन्द्र के राष्ट्रवाद की अवधारणा में एक प्रकार से हिन्दूवाद की ओर झुकाव था । उदाहरण के लिए आनंदमठ में जब मुस्लिम उत्पीड़कों के विरुद्ध संघर्ष दिखाया गया तब इसने मुस्लिम विरोधी भावना का रूप ग्रहण कर लिया । बंकिम चन्द्र के राष्ट्रवाद का यह पक्ष विद्वानों में घोर वाद-विवाद का विषय रहा है । यहां इस पर विस्तार से चर्चा करने की गुंजाइश नहीं है । इस संदर्भ में हमारे लिए जो महसूस करना महत्वपूर्ण है, वह यह है कि जिस प्रकार का पूर्वाग्रह हमें बंकिम के साहित्य में

मिलता है, वह केवल उन्हीं तक सीमित नहीं है । इतना ही नहीं इस प्रकार का पक्षपात उन देशभक्तों अथवा राष्ट्रवादी समूहों तक भी सीमित नहीं था जिन्हें हमारी पाठ्य पुस्तकों में पुनरुत्थानवादी अथवा धर्मपरायण राष्ट्रवादी के रूप में प्रस्तुत किया गया है । इस प्रकार का पक्षपात राष्ट्रवादियों के लगभग सभी वर्गों तक फैला हुआ था । यह भी जानना आवश्यक है कि यह पक्षपात उन्नीसवीं शताब्दी के उत्तरार्ध में उभरे भारतीय राष्ट्रवाद की प्रमुख विचारधारा का अंग नहीं था । दूसरे शब्दों में, मुस्लिम विरोधी प्रवृत्ति बार–बार उभरी लेकिन फिर भी इस प्रवृत्ति को राष्ट्रवादी विचारधारा के अंग के रूप में जानबूझकर प्रस्तुत नहीं किया गया ।

इसका सबसे ज्वलंत उदाहरण आर. सी. दत्त (1848–1909) का है । अंग्रेज़ी शासन द्वारा देश के शोषण का शक्तिशाली रूप में पर्दाफ़ाश करने के लिए "आर्थिक राष्ट्रवाद" के एक प्रवर्तक के रूप में विख्यात आर. सी. दत्त अपनी पोशाक, आदतों और विचारों के स्तर पर पाश्चात्य रंग में रंगे हुए थे । इण्डियन सिविल सर्विस, जिस पर अंग्रेज़ों का एकाधिकार था, उसके एक सदस्य होने के नाते ऐसा स्वाभाविक ही था । लेकिन पाश्चात्य रंग में रंगे होने के बावजूद, दत्त धार्मिक रूप से ऐसे हिन्दू बने रहे जिन्हें अपनी परंपरा और संस्कृति से लगाव था । *"The Economic History of India"* के लेखक आर. सी. दत्त के व्यक्तित्व के इसी पक्ष ने उन्हें *"History of Civilization in Ancient India"* लिखने तथा **ऋग्वेद**, **रामायण** और **महाभारत** का अनुवाद करने के लिए प्रेरित किया । जैसाकि उन्होंने स्वयं कहा कि इस तरह के कृतित्व की प्रेरणा उन्हें उनकी "साहित्यिक देशभक्ति" से मिली थी । अपने प्रथम चार उपन्यासों, जो कि सभी ऐतिहासिक प्रेमाख्यान हैं, के चुनाव के पीछे दत्त की अपनी इसी "साहित्यिक देशभक्ति" का प्रभाव था ।

भले ही आज के परिप्रेक्ष्य में भारतीय राष्ट्रवाद के विकास में दत्त की साहित्यिक कृतियों की भूमिका भुला दी गयी हो लेकिन उनके जीवनकाल तथा उसके कुछ दिनों बाद तक भी इन कृतियों ने बंगाल तथा देश के अन्य भागों के लोगों को उतना ही प्रभावित किया जितना कि उनकी अर्थशास्त्र संबंधी कुछ कृतियों ने । इस तरह दत्त के आर्थिक राष्ट्रवाद का यह एक सांस्कृतिक पक्ष है । दरअसल, सांस्कृतिक राष्ट्रवाद और आर्थिक राष्ट्रवाद का अंतर ही एक कृत्रिम तथा स्वरचित अंतर है । विश्व के अन्य हिस्सों में राष्ट्रवाद की भांति ही, भारतीय राष्ट्रवाद एक व्यापक शक्ति थी जो कि लोगों को कई स्तरों पर आकृष्ट कर रही थी । इसने लोगों के आदर्शवाद तथा भौतिक हितों, दोनों को ही प्रभावित किया । इसी प्रक्रिया में, राष्ट्रवाद ने लोगों के जीवन के विभिन्न पक्षों को प्रभावित किया जैसे, सामाजिक प्राणी के रूप में उनका अस्तित्व, व्यावसायिक वर्ग अथवा आर्थिक वर्ग के सदस्यों के रूप में उनकी पहचान, धर्म, जाति अथवा उप–जाति के सदस्य के रूप में उनकी पहचान, भाषाई वर्ग या क्षेत्र के रूप में, अथवा स्त्री या पुरुष के रूप में उनकी पहचान को प्रभावित किया ।

दत्त के ऐतिहासिक उपन्यासों या प्रेमाख्यानों में मुस्लिम विरोधी प्रवृत्ति की अभिव्यक्ति स्पष्ट दिखायी देती है । ऐसा प्रतीत होता है कि समय की गति के साथ दत्त ने राष्ट्रवाद की अवधारणा के उस राजनीतिक ख़तरे को भांप लिया था जिसमें भारत के अतीत के उस भाग को उजागर किया जाता रहा जिसमें हिन्दुओं और मुसलमानों के बीच टकराव शामिल था । शायद इसीलिए दत्त बाद में इस तरह के ऐतिहासिक उपन्यासों के स्थान पर सामाजिक उपन्यासों पर ज़ोर देने लगे । लेकिन इस परिवर्तित समझ के बावजूद भी जब उन्होंने अपने सामाजिक उपन्यास **"समाज"** (1893) में प्राचीन भारतीय अतीत को आदर्श रूप में प्रस्तुत किया तो बिना किसी संकोच के उन्होंने ऐसे भारतीय राष्ट्रवाद का चित्रण किया जो हिन्दुओं पर केंद्रित था । इसका तात्पर्य यह नहीं है कि दत्त साम्प्रदायवादी थे । यहां उन्हें उदाहरणस्वरूप प्रस्तुत करने का उद्देश्य इस तथ्य को प्रकाश में लाना है कि उन्नीसवीं शताब्दी के उत्तरार्ध के औपनिवेशिक भारत की परिस्थिति में भारतीय राष्ट्रवाद में ऐसी संभावनाएं निहित थीं जो अन्य राजनीतिक–आर्थिक कारणों के परिणामस्वरूप सांप्रदायिक प्रवृत्तियों को जन्म दे सकती थीं । इसका अर्थ यह हुआ कि महानतम् लेखकों को भी मात्र एक व्यक्ति के रूप में नहीं बल्कि उनके समय की प्रवृत्तियों एवं शक्तियों को अभिव्यक्ति देने वाले प्रतिनिधि व्यक्तियों के रूप में देखा एवं समझा जाना चाहिए । इसीलिए बंकिम और दत्त के व्यक्तित्वों में विषमता होते हुए भी, दोनों के कृतित्व में समानता दिखायी देती है ।

भारतीय राष्ट्रवाद के इस पक्ष पर विस्तारपूर्वक चर्चा इसलिए की गयी है क्योंकि यह हमें तभी दृष्टिगोचर हो सकता है, जब हम इसे समकालीन साहित्य के संदर्भ में समझें । यह वह पक्ष है जो सामान्य पाठ्य पुस्तकों में प्रस्तुत किए जाने वाले भारतीय राष्ट्रवाद के चित्र से मेल नहीं खाता । इन पाठ्य पुस्तकों में भारतीय राष्ट्रवाद स्पष्ट रूप से धर्मनिरपेक्ष एवं सांप्रदायिक (अथवा धार्मिक), आर्थिक और सांस्कृतिक तथा नरम दल एवं गरम दल के बीच विभाजित दिखायी देता है । भारतीय राष्ट्रवाद की इस रूढ़िबद्ध छवि को बदलने और इसे समग्र रूप में देखे जाने की आवश्यकता है, यद्यपि यह समग्रता जटिल अवश्य है ।

## 23.2.2 गुजराती

आइए, अब हम आधुनिक गुजराती साहित्य के निर्माता गोवर्धनराम त्रिपाठी के विषय में चर्चा करें, जिन्होंने अपने विख्यात उपन्यास **'सरस्वतीचंद्र'** के चार भाग लगभग चौदह वर्ष के समय (1887–1901) में लिखे । गुजरात के पढ़ने–लिखने वाले वर्ग को देश की नियति के प्रति प्रेरित करने के उद्देश्य से गद्य रूप में रचित यह महाकाव्य **'सरस्वतीचंद्र'** देश की गुलामी की बहुमुखी समस्याओं और उनसे जूझने के लिए संभावित कार्यनीति से संबंधित है । उपन्यास में भारत द्वारा आज़ादी खो देने पर गहरा दुख प्रकट किया गया है । किन्तु साथ ही इस तथ्य पर संतोष भी प्रदर्शित किया गया है कि इस देश पर राज करने वाले कोई अन्य नहीं, अंग्रेज़ ही हैं । अंग्रेज़ अपने स्वाभाविक न्याय बोध तथा लोकतंत्र के लिए अपने प्रेम के कारण भारत को स्वशासन योग्य बना देंगे । यद्यपि गोवर्धनराम ने अंग्रेज़ी न्याय में अपना विश्वास व्यक्त किया किन्तु साथ ही उन्होंने इस बात पर भी बल दिया कि यदि भारतीयों ने स्वयं अपने हितों की ओर ध्यान नहीं दिया तो अंग्रेज़ भी भारतीयों के कल्याण की पूरी तरह उपेक्षा करने लगेंगे ।

आज हमें यह आश्चर्यपूर्ण लग सकता है कि भारतीयों ने अंग्रेज़ी राज्य में इस प्रकार विश्वास प्रकट किया तथापि यह विश्वास औपनिवेशिक संबंध की ओर भारतीयों के रवैये का एक आवश्यक अंग था । दरअसल इस रवैये के तहत यहां तक कहा गया कि यह ईश्वर की इच्छा थी जिसने भारत को अंग्रेज़ी संरक्षण प्रदान किया । एक प्रकार से हम सभी इस रवैये में कहीं न कहीं से भागीदार हैं, उदाहरणस्वरूप आधुनिक भारत को बनाने में अंग्रेज़ों के, विशेष रूप से अंग्रेज़ी-शिक्षा के प्रभाव का हम अनुमोदन करते हैं । यह विडंबना ही है कि भारतीय राष्ट्रवाद का उत्थान भी काफ़ी हद तक पाश्चात्य प्रभाव की देन के रूप में देखा जाता रहा है । ऐसी परिस्थिति में हमारे लिए यह समझना कठिन नहीं होना चाहिए कि अंग्रेज़ी राज्य के शोषण के प्रति सजग होते हुए भी हमारे आरंभिक राष्ट्रवादियों ने उसका स्वागत किया ।

चर्चा के इस बिन्दु पर पहुंचकर उपयुक्त यह होगा कि हम अंग्रेज़ी राज्य के प्रति इस दोहरे रवैये का प्रतिबिंबन उन्नीसवीं शताब्दी के उत्तरार्ध के भारतीय साहित्य में देखें । चर्चा का आरंभ हम विष्णु-कृष्ण चिपलूणकर (1850–82) के एक महत्वपूर्ण वक्तव्य के साथ कर सकते हैं । अंग्रेज़ी राज्य पर टिप्पणी करते हुए उन्होंने अपनी निबंधमाला में लिखा कि अंग्रेज़ी शिक्षा प्राप्त भारतीय किस प्रकार उससे प्रभावित हुए थे । उन्होंने लिखा, "अंग्रेज़ी कविता द्वारा रौंदी गयी हमारी स्वतंत्रता तबाह हो चुकी है" । इस टिप्पणी में "अंग्रेज़ी कविता" का अर्थ था अंग्रेज़ी शिक्षा तथा वे सभी बौद्धिक प्रभाव जिनके द्वारा भारतीयों में यह भावना पैदा की जा रही थी कि अंग्रेज़ी शासन उनके कल्याण के लिए तथा ईश्वरीय विधान का परिणाम था । चिपलूणकर के पास, भारत पर अंग्रेज़ी शासन के इस सूक्ष्म तथा अदृश्य पक्ष को समझने की अंतर्दृष्टि थी । "ईश्वरीय विधान" में यह विश्वास इतना मजबूत था कि अपनी गहरी अंतर्दृष्टि के बावज़ूद स्वयं चिपलूणकर भी इसमें विश्वास दिखाते रहे और भारत में अंग्रेज़ी औपनिवेशिक संबंध के परिणामस्वरूप भारत के लाभान्वित होने का गुणगान करते रहे और ये विचार कहीं और नहीं बल्कि उसी निबन्ध में देखने को मिल जाते हैं जिसमें उन्होंने अंग्रेज़ी कविता (अंग्रेज़ी शिक्षा) द्वारा भारतीय स्वतंत्रता के नष्ट होने की बात की थी ।

इस तथ्य को ध्यान में रखते हुए कि जो अंतर्दृष्टि चिपलूणकर ने सौ वर्ष पूर्व दी थी, आज भी जबकि हम आज़ादी के चालीस वर्ष पूरे कर चुके हैं, आसानी से हमारे गले नहीं उतरती । यहां यह बताना अभीष्ट है कि अंग्रेज़ी शासन के प्रति भारतीयों का दोहरा विरोधाभासपूर्ण रवैया था ।

## 23.2.3 हिन्दी

आइए, अब हम हिन्दी साहित्य की चर्चा करें और भारतेन्दु हरिश्चन्द्र (1850–85) के बारे में जानकारी प्राप्त करें जो हिन्दी साहित्य में आधुनिक युग के प्रमुख प्रवर्तक रहे हैं । अपनी असामयिक मृत्यु के बावज़ूद भारतेन्दु ने काफ़ी मात्रा में साहित्य का सृजन किया और विभिन्न साहित्यिक विधाओं जैसे कविता, नाटक और निबंध आदि विधाओं में लिखा । अपने देश और समाज की स्थिति से लोगों को अवगत कराने के लिए उन्होंने कई पत्रिकाएं निकालीं । भारतेन्दु द्वारा रचित साहित्य का एक बड़ा भाग पराधीनता के प्रश्न से संबंधित है । उदाहरण के लिए 1877 में हिन्दी के प्रसार से संबंधित अपने एक भाषण में उन्होंने जन साधारण से निम्न मार्मिक प्रश्न किए :
"यह कैसे सम्भव हो सका कि इन्सान होते हुए भी हम तो दास बन गए और वे (अंग्रेज़) राजा ?"

2. भारतेन्दु हरिश्चन्द्र

यह एक ऐसा प्रश्न था जिसने भारत की राजनीतिक स्थिति के मर्म को छू लिया और यह प्रश्न इतने सरल और मार्मिक ढंग से उठाया गया था कि सामान्य स्त्री-पुरुष भी इसे पूरी तरह समझ सकें । किन्तु साथ ही यह ऐसा प्रश्न था जिसने जनता में अपने सर्वशक्तिमान राजाओं के समक्ष नपुंसकता का भाव जगाया । इस भावना को दूर करने के लिए भारतेन्दु ने दूसरा प्रश्न पूछकर उन्हें प्रेरणा दी । उन्होंने पूछा, "दास की भांति कब तक तुम इन दुखों को झेलते रहोगे" (कब लौं दुख सहि हौ सबै रहि हौ बने गुलाम) अपने इसी भाषण में उन्होंने लोगों को देश की मुक्ति के लिए विदेशियों पर निर्भर रहने की अशक्तकारी प्रवृत्ति के विरुद्ध चेतावनी दी । उन्होंने लोगों को प्रेरणा दी कि आपसी मतभेद और भय दूर करके अपनी भाषा, धर्म, संस्कृति और देश की गरिमा की रक्षा करें । यहां यह बताना आवश्यक है कि यह भाषण ऐसी सीधी सरल कविता के रूप में दिया गया था जो अपने श्रोताओं और पाठकों के हृदय को छू सके ।

इस प्रकार भारतेन्दु ने देशभक्ति का संदेश लोगों तक पहुंचाने के लिए कविता का सहारा लिया । उन्होंने इसके लिए प्रचलित पद्य तथा लोक की साहित्यिक विधाओं का भी उपयोग किया । उदाहरण के लिए उन्होंने ऐसे भजन भी लिखे जिनका उद्देश्य देश की स्थिति का चित्रण करना था । इस तरीके से वे अपने संदेश को ज्यादा बड़े क्षेत्र में फैला सके । उन्होंने अपने समकालीन साहित्यकारों को लोक साहित्य की विधाओं के इस्तेमाल की भी सलाह दी । विकास की यह ऐसी प्रक्रिया थी जिसकी चरम परिणति उस समय हुई जब स्वतंत्रता आंदोलन ज़ोरों पर था । उसी दौरान ऐसे लोकप्रिय गीत लिखे जाते थे और प्रभात फेरियों एवं जन-सभाओं में गाये जाते थे । भारत में अंग्रेज़ी सरकार इनमें से कई गीतों पर प्रतिबंध लगाने के लिए बाध्य हुई लेकिन उन्हें इसमें अधिक सफलता नहीं मिली ।

इस प्रकार की रचनाओं का एक लाभ यह भी हुआ कि विदेशी शासन की असलियत को ऐसी भाषा में पेश किया गया जिसे लाखों अशिक्षित भारतीय भी तुरंत समझ सकें और उससे प्रेरणा प्राप्त कर सकें । भारत में अंग्रेज़ों की मौजूदगी का अर्थ जानने के लिए अर्थ-व्यवस्था की बारीकियों और साम्राज्यवाद के सिद्धांतों को समझना आवश्यक नहीं था । इसे कुछ उदाहरणों से स्पष्ट किया जा सकता है । हम जानते हैं कि अंग्रेज़ी शासन की राष्ट्रवादियों द्वारा की गयी आलोचना की एक महत्वपूर्ण मद थी—भारतीय "धन की लूट" । यह ऐसा मुद्दा था जिस पर भयंकर विवाद हुआ । और यह विवाद अक्सर ऐसी भाषा में किया जाता था और इस प्रकार के तथ्य और आंकड़े दिये जाते थे जिनका समझना आसान नहीं था । फिर भी थोड़े ही समय में "लूट" ऐसा तथ्य बन गया जिसे समझने में लोगों को अधिक कठिनाई नहीं होती थी । "लूट" शब्द को जनता तक पहुँचाने में साहित्य ने एक महत्वपूर्ण भूमिका निभायी । हिन्दी के प्रसार पर अपने भाषण में भारतेन्दु ने "लूट" को विदेशी शासन की मूल बुराई और विदेशी शासन के अस्तित्व का मूल कारण बताया । रोज़मर्रा की भाषा में उन्होंने इस बात को इस प्रकार व्यक्त किया :

कल के कल बल छलन सों छले इते के लोग,
नित नित धन सों घटत है बढ़त है दुःख सोग ।।
मारकीन मलमल बिना चलत कछू नहिं काम
परदेसी जुलहान के मानहु भये गुलाम ।।

भारतेन्दु ने, मान्चेस्टर में शक्तिशाली औद्योगिक हितों को व्यक्त करने के लिए एक सामान्य शब्द "परदेसी जुलाहे" का इस्तेमाल किया । और यह बताया कि पराधीन भारत के सामान्य स्त्री-पुरुष के जीवन पर साम्राज्यवाद की शक्तियों का कितना गहरा प्रभाव पड़ रहा है । ब्रिटेन और भारत के बीच शोषक और शोषित के संबंध को उन्होंने दो जाने-पहचाने प्रतीकों "मान्चेस्टर" और "लूट" के द्वारा स्पष्ट किया । इस प्रकार वे इस संबंध की कठोर यथार्थता को "मुकरी" में व्यक्त कर सके । मुकरी एक परंपरागत काव्य विधा है जिसमें चार पंक्तियां होती हैं । भारतेन्दु ने जिसे बड़े मार्मिक ढंग से "आधुनिक युग के लिए मुकरी" के रूप में वर्णित किया है, उसमें उन्होंने "लूट" की निम्नलिखित व्याख्या दी है :

भीतर भीतर सब रस चूसै ।
हंसि हंसि के तन-मन-धन मूसै ।
जाहिर बातन में अति तेज ।
क्यों सखि साजन नहिं अँगरेज ।

लोक विधाओं का चयन केवल कविता तक ही सीमित नहीं था । भारतेन्दु ने अपने कुछ नाटकों में भी अपने समय की प्रचलित विधाओं एवं कथाओं का उपयोग किया । उदाहरणस्वरूप "अंधेर नगरी चौपट राजा" में उन्होंने अंग्रेज़ी शासन के निरंकुश और उत्पीड़नकारी चरित्र का चित्रण करने के लिए एक ऐसी लोक कथा का उपयोग किया जो देश के विभिन्न भागों में सामान्य रूप से प्रचलित थी । इस कथा में राजनीतिक संदेश तो स्पष्ट रूप में मिलता ही है, पाठक का मनोरंजन भी होता है । राजनीतिक उद्देश्यों के लिए हास्य-व्यंग्य का कारगर प्रयोग भारतेन्दु की रचनाओं में मिलता है । अपनी गंभीर कृतियों में भी भारतेन्दु ने पाठकों का भरपूर मनोरंजन किया है । 'भारत दुर्दशा' (1880) में जो कि उनका एक सीधा सच्चा राजनीतिक नाटक है, भारतेन्दु ने कई हास्यप्रद दृश्यों और संवादों को शामिल किया है ।

हिन्दी के प्रसार पर दिये गये अपने भाषण में देश की पराधीनता के विषय में भारतेन्दु ने जो कुछ भी कहा वह उनकी कृतियों में बार-बार उभर कर सामने आता है । किन्तु इसके साथ-साथ ही अक्सर वे अंग्रेज़ी शासन की मुक्तकंठ से प्रशंसा भी करते जाते हैं । इस प्रकार सशक्त देशभक्ति-पूर्ण स्वर के बावजूद 'भारत दुर्दशा' में भारतेन्दु यह भी कहते हैं कि अंग्रेज़ी शासन की स्थापना से देश को नवजीवन मिला है । इसी प्रकार अपने एक अन्य नाटक "भारत जननी" (1877) में भारतेन्दु स्वीकार करते हैं कि यदि अंग्रेज़ भारत पर शासन करने न आते तो देश का निरन्तर विनाश होता रहता ।

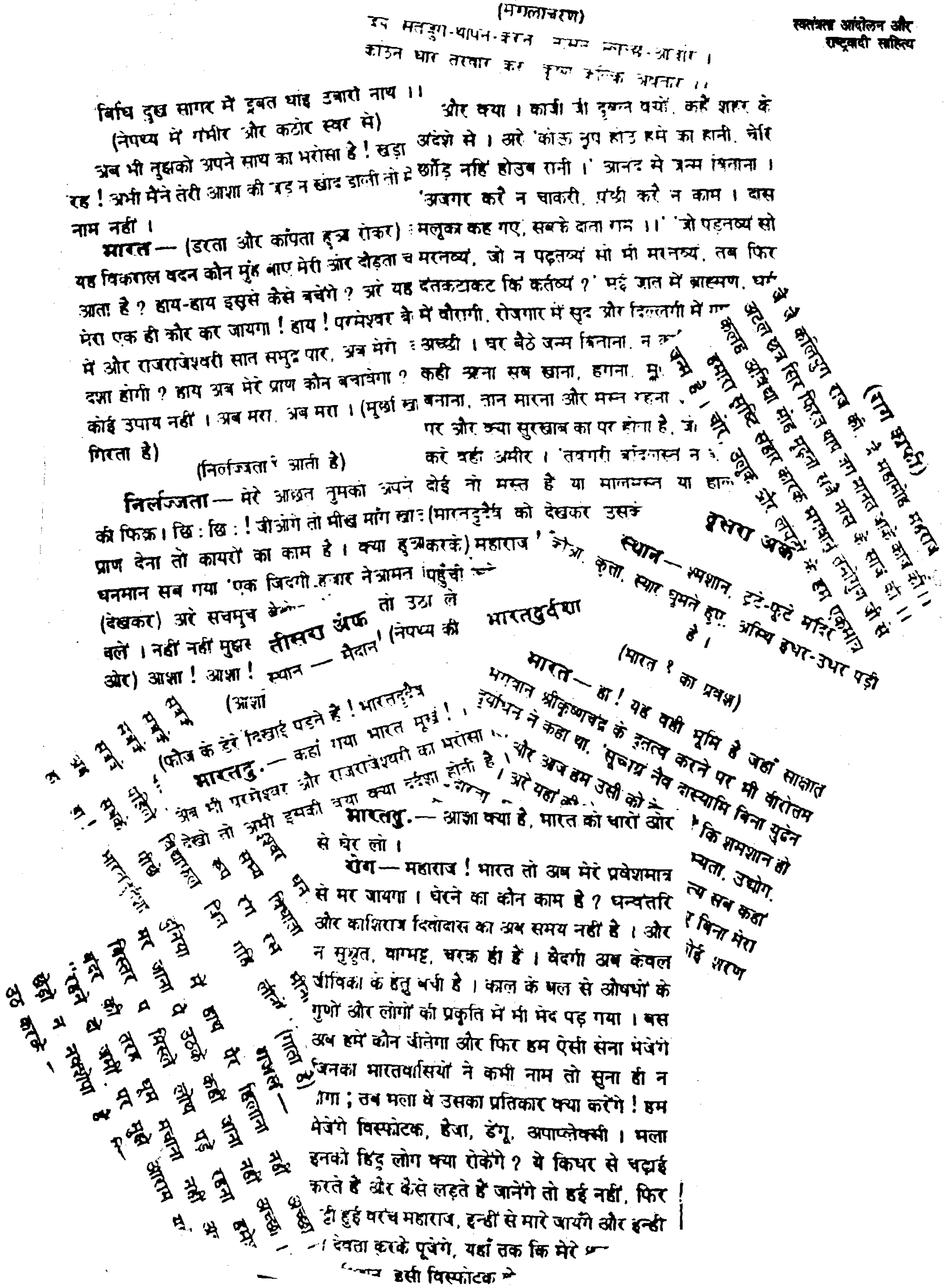


3. 'भारत दुर्दशा' के कुछ अंश

यहां यह ध्यान देने योग्य बात है कि अंग्रेज़ों के प्रति यह दोहरा रवैया केवल चिपूलणकर अथवा भारतेन्दु का ही नहीं था । ये केवल ऐसे उदाहरण मात्र हैं जो बताते हैं कि आमतौर पर पश्चिम और विशेषकर अंग्रेज़ी शासन के प्रति आम शिक्षित भारतीय की प्रतिक्रिया क्या थी । समय गुज़रने के साथ-साथ पराधीनता और इसके विनाशकारी परिणाम उनके समक्ष स्पष्ट हो चुके थे और भारत में अंग्रेजों की उपस्थिति को वरदान मानने की प्रवृत्ति तेज़ी से घटने लगी थी । तथापि यह प्रवृत्ति भारतीयों में पूरी तरह समाप्त न हो सकी । जैसाकि हमने पिछले पृष्ठों में देखा, यह रवैया आज, हमारे दौर में भी मौजूद है ।

**बोध प्रश्न 1**

1) निम्नलिखित में से कौन से कथन सही (√) हैं और कौन से ग़लत (×)?
   i) आज़ादी की ज़रूरत की अभिव्यक्ति राजनीतिक संगठनों से भी पहले साहित्य में होने लगी थी । ☐
   ii) बंकिम चन्द्र के ऐतिहासिक उपन्यासों में हिन्दू समर्थक प्रवृत्ति देखने को मिलती है । ☐
   iii) भारतेन्दु हरिश्चन्द्र ने अपनी कृतियों में अंग्रेज़ी राज्य की प्रशंसा की । ☐
   iv) उन्नीसवीं शताब्दी के साहित्य ने अंग्रेज़ी शासन के प्रति दोहरा रवैया अपनाया है । ☐

2) निम्न प्रश्नों के उत्तर लिखें :
   i) बंगदर्शन पत्रिका किसने निकाली ?

   ..............................................................................................

   ii) किस वर्ष बंकिम ने 'आनंदमठ' उपन्यास लिखा ?

   ..............................................................................................

   iii) "आर्थिक राष्ट्रवाद" के प्रवर्तक के रूप मे कौन जाना जाता है ?

   ..............................................................................................

   iv) 'अंधेर नगरी चौपट राजा' नाटक किसने लिखा है ?

   ..............................................................................................

3) निम्नलिखित के पाठ के अनुसार जोड़े बनाइए :

| | | |
|---|---|---|
| i) | अ) आनन्दमठ | अ) साहित्यिक देशभक्ति |
| ii) | ब) भारत दुर्दशा | ब) मुकरी |
| iii) | स) आर.सी. दत्त | स) राजनीतिक नाटक |
| iv) | द) भारतेन्दु हरिश्चंद्र | द) ऐतिहासिक प्रेमाख्यान |

## 23.3 वीसवीं शताब्दी का साहित्य

प्रथम विश्व युद्ध (1914-18) और रूसी क्रांति (1917) के आसपास आज़ादी एवं पराधीनता के प्रति वैचारिक रवैया आम तौर पर वही था जो कि उन्नीसवीं शताब्दी के आख़िरी दशकों के दौरान उभरा था । आज़ादी को एक ऐसी प्राकृतिक स्थिति के रूप में देखा गया जिसकी आकांक्षा देश के हर व्यक्ति को होनी चाहिए । भारत भी इस नियम का अपवाद नहीं था । विशिष्ट शिकायतों और विशिष्ट रियायतों के स्थान पर समय गुज़रने के साथ-साथ समग्र अंग्रेज़ शासन की आलोचना की जा रही थी और उसका एकमात्र समाधान था आज़ादी । लेकिन इस आज़ादी का क्या अर्थ है, यह प्रश्न वास्तव मे इस लम्बे अर्से में होने वाली चर्चा का प्रमुख विषय नहीं बन सका था । ऐसा नहीं है कि 1914-18 के युद्ध से पूर्व भारतीय साहित्य में केवल अंग्रेज़ों द्वारा किये गये शोषण का ही उल्लेख मिलता है बल्कि भारतीय समाज में विद्यमान निर्धनता और शोषण संबंधी समस्याएं भी परिलक्षित होती थीं । अक्सर साहित्यकारों ने इन मुद्दों को उठाया । किसानों की ग़रीबी के मार्मिक विवरण प्रायः इस दौर के साहित्य में मिलते हैं । इन उदाहरणों में सम्भवतः सबसे मार्मिक उदाहरण आधुनिक उड़िया साहित्य के पितामह फकीरमोहन सेनापति का उपन्यास 'छ माण आठगुन्ठ' (1897) (छः बीघा ज़मीन) है । कभी-कभी इस मार्मिक वर्णन में भारतीय समाज के मौज़ूदा ढाचे के संबंध में परिवर्तनवादी वक्तव्य देखने को मिलते हैं, उदाहरण के लिए प्रमुख हिन्दी साहित्यकार राधाचरण गोस्वामी (1859-1925) गांवों की गरीबी से इतने विचलित हुए कि 1883 के आरंभ में ही उन्होंने सलाह दी कि ज़मीन सरकार अथवा ज़मींदार की नहीं बल्कि उन किसानों की होनी चाहिए जो इसे जोतते हैं । इस

प्रकार का परिवर्तनवाद केवल भावनात्मक स्तर तक ही सीमित रहा । इसे सामाजिक पुनर्गठन की सोची-समझी योजना के एक अंश के रूप में प्रस्तुत नहीं किया गया और न ही राष्ट्रीय स्वाधीनता के प्रश्न से इसे जोड़ा गया । भारतीय समाज की आर्थिक असमानता और शोषण के अतिरिक्त सामाजिक असमानता एवं गति के आधार पर उत्पीड़न की चर्चा भी कभी-कभी की जाती रही । इसमें भी भावुकता का ही तत्व था ।

प्रथम विश्व युद्ध के बाद परिस्थितियां तेज़ी से बदलीं । अब मुद्दा केवल भारत की स्वतंत्रता का नहीं रहा । वह तो किसी भी क़ीमत पर लेनी ही थी । अब स्वाधीनता का मूल अर्थ और मुख्य तथ्य चर्चा का मुख्य आधार बन गये और "आज़ादी किसके लिए" जैसे प्रश्न उठने लगे । निश्चय ही स्वाधीनता का अर्थ अब केवल यही नहीं था कि अंग्रेज़ों का स्थान भारतीय ले लें । जैसे कि प्रेमचंद की एक कहानी "आहुति" में रूपमति कहती है, "कम से कम मेरे लिए तो स्वराज का यह अर्थ नहीं है कि जॉन की जगह गोविन्द बैठ जाए" । वह प्रश्न उठाती है कि "जिन बुराइयों को दूर करने के लिए आज हम प्राणों को हथेली पर लिये हुए हैं, उन्हीं बुराइयों को क्या प्रजा इसलिये सिर चढ़ायेगी कि वे विदेशी नहीं, स्वदेशी हैं" ? उसकी मांग स्पष्ट है, वह कहती है, "अगर स्वराज आने पर भी संपत्ति का यही प्रभुत्व रहे और पढ़ा लिखा समाज यों ही स्वार्थान्ध बना रहे तो मैं कहूंगी, ऐसे स्वराज का न आना ही अच्छा" ।

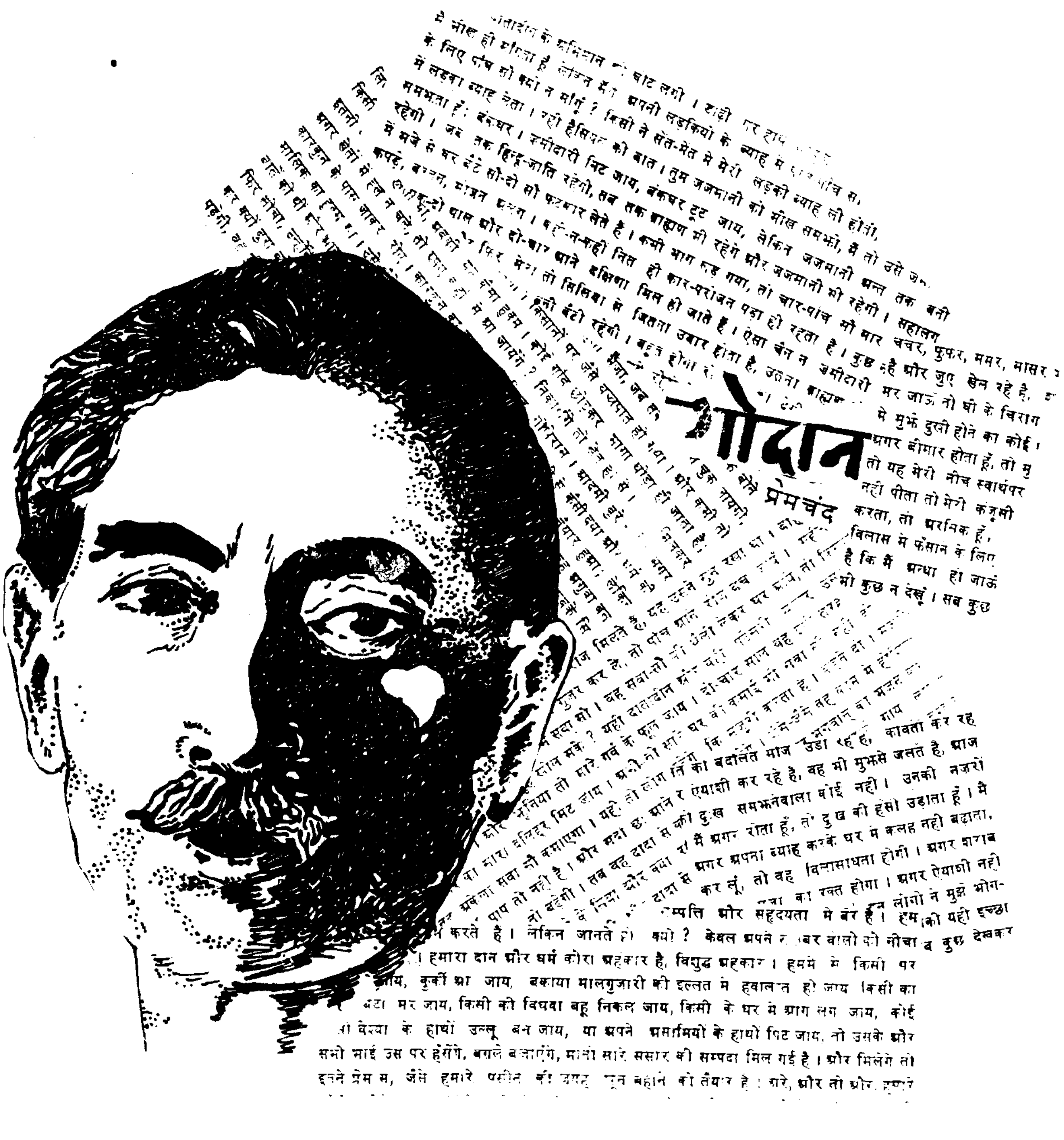


4. प्रेमचन्द

स्वतंत्रता संग्राम के अंतिम तीस वर्षों के दौरान भारतीय साहित्य ने निरंतर यह महत्वपूर्ण प्रश्न उठाया कि आज़ादी का बुनियादी उद्देश्य क्या होगा । इस तरह साहित्य अधिक से अधिक स्वतंत्रता संग्राम के वैचारिक पक्ष की ओर लगातार बढ़ता गया । परिणामस्वरूप, साहित्य में न केवल स्वाधीन भारत के स्वरूप को चर्चा का विषय बनाया गया बल्कि स्वतंत्रता आंदोलन जिस प्रकार का रुख़ अपना रहा था उसका भी ध्यान रखा गया । यदि देश की स्वतंत्रता प्राप्ति के उपरान्त एक विशेष प्रकार के समाज का गठन करना अभीष्ठ था तो आंदोलन के आदर्श और उसकी वास्तविकता को अनदेखा नहीं किया जा सकता था जो कई भागों में बंटा हुआ था और जिसके विभिन्न नेता थे । यदि आंदोलन के कार्यक्रम आदर्श न होते तथा नेता सही प्रकार के नहीं होते तो वांछित स्वतंत्र भारत प्राप्त करना असंभव होता । प्रेमचन्द के उपन्यास 'ग़बन' (1931) मे इस कथन से चिंता का महत्व उजागर किया गया है । देवीदीन जो एक साधारण व्यक्ति होते हुए भी पक्का राष्ट्रवादी है, नेताओं से कहता है, "अभी जब तुम्हारा राज नहीं है, तब तो तुम भोग–विलास पर इतना मरते हो । जब तुम्हारा राज हो जायेगा तब तो तुम ग़रीबों को पीस कर पी जाओगे ।"

हिन्दी उर्दू के महान उपन्यासकार एवं पक्के राष्ट्रवादी, प्रेमचंद (1880-1936) ने अपनी रचनाओं में संघर्ष के उस दुखद पक्ष पर भारी चिंता व्यक्त की है जो उनके दो मुख्य उपन्यासों, रंगभूमि (1925) और कर्मभूमि (1932) में शिक्षित राष्ट्रवादी नेताओं की प्रच्छन्न स्वार्थपरता का स्पष्ट रूप से पर्दाफ़ाश किया गया है । लेकिन यह ऐसी स्वार्थपरता है जो मानवतावाद और राजनीतिक अतिवाद के पीछे छिपी हुई है । यह पर्दा इतना मोटा है कि स्वयं नेतागण इस भ्रम का शिकार हैं कि वे जो कुछ भी कर रहे हैं, वह देश और जनता के हित में है । यहां तक कि शासकों के साथ उनके समझौते और गुप्त व्यवहार भी राष्ट्रीय आंदोलन के हित में हैं । लेकिन राष्ट्रवादी राजनीति का सबसे अधिक निराशाजनक मत 'गोदान' (1936) में परिलक्षित होता है जो प्रेमचंद की उत्कृष्ट कृति तथा भारत के महानतम् उपन्यासों में से एक है । 'रंगभूमि' तथा 'कर्मभूमि' में राष्ट्रवादी पात्र अपनी तमीम दुर्बलताओं के बावजूद अंततः शहीदों के रूप में दिखाये गये हैं । वे अपनी कमज़ोरियों को महसूस करते हैं और उन्हें दूर करने की कोशिश करते हैं । 'रंगभूमि' का नायक सूरदास, जो अंधा है और महात्मा गांधी का प्रतिरूप है, राष्ट्रवादी राजनीति और नेताओं का प्रतीक है, जिसके लिए प्रेमचंद सम्मान एवं प्रशंसा के भाव रखते हैं । 'गोदान' में इस प्रकार की आशावादिता के लक्षण देखने को नहीं मिलते । कम से कम तीन पात्रों, राय साहब, खन्ना और पंडित ओंकारनाथ के माध्यम से राष्ट्र-वादी राजनीति में धन और क्षुद्र भौतिक लाभ की भूमिका को दर्शाया गया है । राय साहब जो कि एक धनी ज़मींदार हैं, सत्याग्रह में शामिल होते हैं और विधान परिषद् की राजनीति की ओर लौट जाते हैं तथा बेइमानी से उद्देश्य पूर्ति के लिए धन का उपयोग करते हैं । इसी प्रकार खन्ना जो कि एक साथ महाजन, व्यापारी और छोटे उद्योगपति हैं, सविनय अवज्ञा आंदोलन में कुछ समय के लिए भाग लेकर फिर ऐसे तरीक़ों से धन बनाने में लग जाते हैं जिन्हें जायज़ नहीं कहा जा सकता । ओंकारनाथ पत्रकार हैं जो अपने संपादकीय लेखों में आग उगल सकते हैं । लेकिन यही आग उगलने वाला राष्ट्रवादी, बुनियादी रूप में स्वार्थी है जिसके लिए राष्ट्रवाद अपने स्वार्थ पूरे करने का साधन है ।

'गोदान' में जिसका मूल विषय शोषण है, ऐसे संसार का चित्रण किया गया है जिसमें सिवाय दुःख और उदासी के और कुछ नहीं है । इस उपन्यास में प्रेमचन्द भावनाओं में नहीं बहे । उपन्यास में उन्होंने कोई सरल समाधान भी प्रस्तुत नहीं किए हैं । 'गोदान' में "खलनायकों" का अचानक हृदय परिवर्तन नहीं होता । दरअसल, इस उपन्यास में कोई खलनायक है ही नहीं । यहां व्यक्तियों की दुष्टता उन्हीं के ग़रीब इन्सान भाइयों के उत्पीड़न और शोषण का कारण नहीं है, बल्कि शोषण समाज के भीतर की कुछ सामाजिक-आर्थिक एवं राजनीतिक व्यवस्था का परिणाम है । प्रभावशाली वर्गों में अगर कुछ लोग व्यक्तिगत रूप से अच्छे और दयावान हों भी तो उनके द्वारा उत्पीड़ित वर्गों के साथ कुछ बेहतर सुलूक नहीं होगा । राय साहब जो स्वयं एक दयालु ज़मींदार हैं, इस तथ्य को समझ चुके हैं, वे कहते हैं, "मैं खुद सद्भावना करते हुए भी स्वार्थ नहीं छोड़ सकता और चाहता हूँ कि हमारे वर्ग को शासन और नीति के बल से अपना स्वार्थ छोड़ने के लिए मजबूर कर दिया जाए ।" स्वाभाविक रूप से राय साहब जो बात नहीं देख सके, वह यह कि समस्या का वास्तविक समाधान उनके वर्ग (ज़मींदार वर्ग) पर दबाव डालना नहीं, बल्कि वर्ग को मूलतः समाप्त कर देना और हर 'किसान' को ज़मीदार बना देना है । 'गोदान' के सारे तर्क इसी समाधान की ओर इशारा करते हैं । यद्यपि यह एक सशक्त उपन्यास है किन्तु इसमें समाधान नहीं दिये गये हैं ।

'गोदान' में आगे यह बताने का प्रयास किया गया है कि एक शोषक वर्ग के रूप में ज़मीदार अकेले ही नहीं हैं । वास्तविकता यह है कि वे एक जटिल, विस्तृत शोषण जाल का हिस्सा हैं, जिसमें व्यापारियों, उद्योगपतियों और ज़मीदारों का स्वार्थ छिपा हुआ है । यह भी सच है कि इस जाल को मौजूदा राजनीतिक व्यवस्था का समर्थन प्राप्त है । ऐसा नहीं है कि इनके आर्थिक हित आपस में

टकराते नहीं हैं । लेकिन इस टकराव के बावजूद वे इतनी समझ रखते हैं कि अपने प्रभुत्व के लिए ख़तरा पैदा करने वाली शक्तियों के विरुद्ध संयुक्त मोर्चा तैयार करें । इस प्रकार किसानों और मज़दूरों का निरंतर उत्पीड़न एवं शोषण होता रहा ।

इस तरह 'गोदान' अपनी तमाम जटिलताओं के साथ वर्ग एवं राष्ट्र के दोहरे चरित्र को उजागर करता है। राष्ट्र के लिए स्वाधीनता अति आवश्यक है । लेकिन यह स्वाधीनता प्रमुख वर्ग द्वारा समाज के दीन-हीन लोगों के शोषण की आज़ादी नहीं होनी चाहिए । राष्ट्रवाद का यह अर्थ नहीं होना चाहिए कि देशभक्ति जैसे आदर्शवाद के नाम पर गिने-चुने लोग, बहुसंख्यक लोगों के हितों को क्षति पहुंचाकर अपने हित सिद्ध करें ।

वर्ग एवं राष्ट्र के दोहरे चरित्र को समझने में रूसी क्रांति के बाद समाजवादी विचारों के बढ़ते हुए प्रभाव ने महत्वपूर्ण भूमिका निभायी । इस तरह अपने उपन्यास 'प्रेमाश्रम' में जो उन्होंने रूसी क्रांति के एक वर्ष बाद लिखना आरंभ किया, प्रेमचंद ने रूसी क्रांति से प्रेरित बलराज को एक क्रोधी युवा ग्रामीण के रूप में दिखाया है । बलराज अपने ग्रामीण साथियों को रूस का उदाहरण देते हुए अन्याय और उत्पीड़न के विरुद्ध संघर्ष करने के लिए कहता है और उन्हें बताता है कि "रूस में काश्तकारों का राज है, वे जो चाहते हैं, करते हैं" ।

यद्यपि राष्ट्र एवं वर्ग के बीच की द्वैत भावना को प्रकाश में लाया गया है लेकिन यह समझना कठिन था कि इस द्वैत से कैसे निबटा जाए । यह देखते हुए कि भारत एक ऐसी साम्राज्यवादी शक्ति के विरुद्ध संघर्ष कर रहा था जिसकी जड़ें बहुत गहरी थीं, इसलिए भारतीय समाज के सभी वर्गों का संयुक्त मोर्चा होना आवश्यक था । अतः यह ज़रूरी हो गया कि निहित स्वार्थों के साथ किसी न किसी प्रकार का समझौता कर लिया जाए । साथ ही यह प्रश्न भी था कि कौन-सी विचारधारा अपनायी जाए । यदि समाजवादी विचार वर्ग हितों की प्राप्ति के लिए संघर्ष का रास्ता सुझाते थे तो दूसरी ओर गांधीवाद ट्रस्टीशिप और हृदय परिवर्तन का रास्ता दिखाते थे । यदि प्रेमचंद की कृतियां उनके युग का दर्पण हैं जो कि वास्तव में वे थीं, इनसे यह परिलक्षित होता है कि स्वतंत्रता संग्राम के दौरान कोई स्पष्ट विचारधारा नहीं अपनायी गयी थी । उदाहरण के लिए प्रेमचंद जब गोदान की रचना कर रहे थे, जो एक ऐसा उपन्यास है, जिसमें व्यक्तिविशेष की सज्जनता और हृदय परिवर्तन जैसे मतों की निरर्थकता प्रदर्शित की गयी है, उन्हीं दिनों उन्होंने एक ऐसा पत्र लिखा जो कि इस महान उपन्यास की मूल भावना के प्रतिकूल है । उन्होंने लिखा, "क्रांति संयत साधनों की पराजय है……निर्णायक तत्व जनता का चरित्र होता है । कोई समाज व्यवस्था तब तक फल-फूल नहीं सकती जब तक कि प्रत्येक व्यक्ति का उद्धार नहीं होता । क्रांति के बाद हमारा क्या हश्र होगा यह संदेहास्पद है । हो सकता है कि यह हमें निकृष्टतम अधिकनायकतंत्र की ओर ले जाए जो हमारी सारी वैयक्तिक स्वतंत्रता से हमें वंचित कर दे । मैं सुधार चाहता हूँ, विनाश नहीं" । अपने अधिकांश शिक्षित समकालीन व्यक्तियों की भांति प्रेमचंद भी दो प्रतिकूल विचारधाराओं के बीच बंटे रहे और किसी एक का चुनाव करने में असमर्थ रहे ।

इस संदर्भ में, अनेक विद्वानों का मत है कि प्रेमचंद आरंभ में गांधी जी के प्रभाव में रहने के बाद अन्त में उन्होंने परिवर्तनवादी विचारधारा को स्वीकार कर लिया लेकिन इसके विपरीत अन्य विद्वानों का मत है कि प्रेमचंद अंत तक गांधीवादी ही रहे । ये दोनों ही प्रयास अत्यंत जटिल ऐतिहासिक परिस्थिति का सरलीकरण हैं । इसकी पुष्टि में हम बंगाल के "कलोल" समूह द्वारा रचित साहित्य का उदाहरण ले सकते हैं । "कलोल" एक ऐसा साहित्यिक समूह था जिसके सदस्यों में काज़ी नज़रुल इस्लाम जैसे विख्यात उग्र राष्ट्रवादी कवि शामिल थे । प्रगतिशील और यथार्थवादी विचारों वाले इन साहित्यकारों ने सोच-समझकर खुद को समाज के सुविधा संपन्न वर्गों के जीवन की उपेक्षा करके उत्पीड़ित और सुविधाओं से वंचित वर्ग को अपनी कृतियों का विषय बनाया । उनका विद्रोह का स्वर प्रेमचंद की अपेक्षा अधिक मुखर था लेकिन फिर भी वे अपनी सामाजिक पृष्ठभूमि से स्वयं को पूर्णतः अलग न कर सके और किसी स्पष्ट विचारधारा को प्रस्तुत करने में असफल रहे ।

इस संदर्भ में, विख्यात बंगाली उपन्यासकार शरत्चन्द्र चट्टोपाध्याय (1876-1938) का उदाहरण भी काफ़ी महत्व रखता है । शरत्चंद्र ने महिलाओं की दारुण दशा को भावपूर्ण एवं यथार्थवादी ढंग से चित्रित किया तथा समाज के मध्यमवर्ग में मान्य कुछ मूल्यों पर प्रश्न चिन्ह लगाया । प्रेमचंद की भांति ही शरत्चंद्र की भी सहानुभूति कांग्रेस के साथ थी । वे गांधीजी के प्रशंसक थे तथा देशबंधु चितरंजन दास के साथ उनके निजी संबंध थे। प्रेमचंद के विपरीत शरत्चन्द्र कांग्रेस के सदस्य भी थे। फिर भी उन्होंने 'पाथेर दासी' (1926) जैसा उपन्यास लिखा जिसमें उन क्रांतिकारियों को आदर्श रूप में प्रस्तुत किया गया जो देश की मुक्ति के लिए क्रांतिकारी हिंसा का रास्ता अपना रहे थे । उल्लेखनीय है कि इस उपन्यास पर सरकार ने प्रतिबंध लगा दिया था । गांधी जी के प्रशंसक और

कांग्रेस के एक सदस्य होकर भी हिंसा के रास्ते की सराहना करना, अपने आपमें विरोधी कित महत्वपूर्ण है । शरत्चन्द्र के राजनीतिक दृष्टिकोण मे और भी विरोधाभास नज़र आते है । 1929–1931 के बीच उन्होंने "विप्रदास" की रचना की जो धारावाहिक रूप में प्रकाशित हुआ । यह वह दौर था जिस समय कांग्रेस ने पूर्ण स्वराज का अपना लक्ष्य तय किया और सविनय अवज्ञा आन्दोलन आरंभ किया । इन घटनापूर्ण वर्षों में लिखा गया उपन्यास 'विप्रदास' एक ऐसे ज़मीदार की तस्वीर प्रस्तुत करता है जो अपनी रैयत द्वारा इस हद तक पूजा जाता है कि रैयत, राष्ट्रवादी आह्वानों के प्रति कोई प्रतिक्रिया नहीं दिखाती ।

5. शरत्चन्द्र

इस विरोधाभास के परिप्रेक्ष्य में हमें साहित्य से अपने हाल ही के इतिहास के निर्माण पर नये सिरे से दृष्टिपात करना चाहिए । हमें यह स्वीकार करना चाहिए कि राजनीतिक पार्टियों और अन्य संगठनों के सुनियोजित कार्यक्रमों एवं घोषणाओं से हमें जो जानकारी मिलती है, उससे और अधिक गहराई में जाकर इस इतिहास निर्माण को देखना होगा, क्योंकि इन कार्यक्रमों एवं घोषणाओं की तह में जो खींचातानी और पूर्वाग्रह विद्यमान थे, उन पर जनसाधारण की नज़र हमेशा नहीं जाती थी । जैसा कि हमने देखा 'गोदान' का लेखक स्वयं ही अपने उपन्यास की क्रांतिकारी भावना के प्रति पूर्णतः सचेत न था अन्यथा वह उदाहरण रूप में प्रस्तुत किए गये पत्र में क्रांति की संकल्पना के विरुद्ध जोरदार तर्क नहीं करता । इसी प्रकार साहित्य के ज़रिए प्रगतिशील विचारों को बढ़ावा देने के उद्देश्य से प्रगतिशील लेखक संघ की स्थापना की गयी तो उसके प्रथम सत्र (1936) में प्रेमचंद से अध्यक्षता करने का आग्रह किया गया जबकि, जैसा हमने देखा, प्रेमचंद वर्ग संघर्ष की संकल्पना के समर्थक नहीं थे । ऐसा समझना इतिहास के साथ अन्याय होगा कि चूँकि प्रेमचंद ने प्रगतिशील लेखक संघ के प्रथम सत्र की अध्यक्षता की, अतः वे प्रगतिशील ही रहे होंगे । यह रवैया केवल व्यक्तियों तक ही सीमित नहीं था जैसा कि हमने प्रेमचंद के उदाहरण से देखा, बल्कि आन्दोलनों पर लागू होता था । कोई भी आंदोलन अपने सदस्यों के प्रभाव से मुक्त नहीं होता । आन्दोलन स्पष्ट सिद्धान्त एवं उद्देश्य रख सकता है तथा समाज के अन्य आन्दोलनों एवं संगठनों से स्वयं को अलग कर सकता है । लेकिन यह

निश्चित कर पाना अत्यन्त दुष्कर होता है कि इसके सभी अनुयायी इसके उद्देश्यों एवं सिद्धान्तों का पूरी तरह पालन करें । किसी भी आन्दोलन में शरीक व्यक्ति अन्य बाह्यगत प्रभावों को भी ग्रहण करते हैं ।

स्वतंत्रता आन्दोलन के अंतिम तीस वर्षों के साहित्य से हमें ज्ञात होता है कि इन महत्वपूर्ण वर्षों के दौरान जनसाधारण सामाजिक-आर्थिक मुद्दों के प्रति निरंतर सचेत हो रहे थे और स्वतंत्रता की ललक उनमें बड़ी तेज़ी से बढ़ती जा रही थी । वे विभिन्न, यहां तक कि विपरीत दृष्टिकोण वाली विचारधाराओं के प्रभाव में आ रहे थे । दरअसल वे इन विचारधाराओं के विरोधी स्वरूप को हमेशा पहचान नहीं पाते थे । हमने प्रेमचंद पर इतने विस्तार से चर्चा इसीलिए की क्योंकि उनके जीवन एवं कृतियों, दोनों से ही इस तथ्य का संकेत मिलता है कि विरोधी विचारधाराएं अपना प्रभाव समाज पर छोड़ रही थीं और इस दौर के सबसे संवेदनशील एवं बुद्धिमान स्त्री-पुरुष भी इन विचारधाराओं में से किसी एक का चुनाव कर पाने की स्थिति में नहीं थे । यदि अपने समकालीन अन्य व्यक्तियों की भांति ही प्रेमचंद पर भी गांधीवादी एवं समाजवादी दोनों ही प्रभाव देखने को मिलते हैं, अथवा एक ओर वे राष्ट्रीय आन्दोलन का निराशाजनक चित्रण प्रस्तुत करते हैं और दूसरी ओर उसी आन्दोलन का मार्मिक चित्रण करते हैं तो ऐसी स्थिति में इतिहासकार से यह अपेक्षित नहीं होता कि वह यह मानकर चले कि इन दो विरोधी परिस्थितियों में से एक परिस्थिति सही हो सकती है । वरन् इतिहासकारों को इन परस्पर विरोधी रुखों को एक समग्र जटिल स्थिति के अंगों के रूप में देखना चाहिए । इतना ही नहीं इतिहासकारों को इन वैचारिक मतभेदों के पीछे उन सामाजिक, आर्थिक शक्तियों का हाथ भी देखना चाहिए जो नहीं चाहते कि यह विरोध समाप्त हो । जैसाकि 'कर्मभूमि', 'रंगभूमि' और 'गोदान' के उदाहरणों से स्पष्ट है, समकालीन साहित्य, इतिहासकार को विचारधारा एवं भौतिक हितों के द्वंद्वात्मक परिचालन को देखने की अंतर्दृष्टि प्रदान करता है ।

स्वतंत्रता आन्दोलन को गति देने वाली शक्तियों के एक-दूसरे को प्रभावित करने वाली जटिल प्रक्रिया को समझने के लिए महान बंगाली उपन्यासकार ताराशंकर बंद्योपाध्याय (1898—1971) की 1947 से पूर्व की रचनाओं पर दृष्टि डालना काफी उपयोगी होगा । विशेषकर उनके तीन उपन्यास, "धर्त्रीदेवता" "गणदेवता" और "पंचग्राम" काफी महत्वपूर्ण हैं । 'धत्रीदेवता' एक अर्धआत्म कथात्मक उपन्यास है जिसे 'गणदेवता' और 'पंचग्राम' की आधारिक पूर्व तैयारी के रूप में देखा जा सकता है जोकि दरअसल एक ही उपन्यास के दो भाग हैं । महाकाव्य के आयामों को लिए हुए 'गणदेवता' और 'पंचग्राम' उपन्यास में शोषण एवं औद्योगीकरण के कारण ग्रामीण समाज का विघटन दिखाना मुख्य उद्देश्य है । ताराशंकर व्यक्ति विशेष पर अधिक ध्यान नहीं देते । उनका विषय समाज और समुदाय है । स्वाभाविक है कि स्वतंत्रता आन्दोलन भी सामाजिक जीवन को प्रभावित करता है । कांग्रेस, मुस्लिम लीग और क्रांतिकारी, समाज में प्रकट होते हैं । जिनमें कांग्रेस एवं मुस्लिम लीग क्रांतिकारियों की अपेक्षा अधिक प्रभावपूर्ण ढंग से प्रकट होते हैं हमें बृहत् ऐतिहासिक शक्तियों के आधारिक स्तर से उठने का संकेत मिलता है । आदर्श, शक्ति एवं आर्थिक हित विभिन्न अनुपात में मिलकर पांच गांवों के लोगों की नियति को प्रभावित करते हैं जो 'गणदेवता' और 'पंचग्राम' का घटनास्थल है । जिस प्रकार 'गोदान' में दो गांवों तथा 'रंगभूमि' में केवल एक गांव के द्वारा पूरे ग्रामीण समाज की दुखद नियति का चित्रण किया गया है, इसी प्रकार ताराशंकर ने इन पांच गांवों के द्वारा बड़े ही संवेदनशील तरीके से स्वतंत्रता संग्राम के समय के भारत का वर्णन गांवों के अधिकार रहित एवं वंचित वर्ग को केन्द्र में रखते हुए विस्तारपूर्वक किया है ।

अपनी तमाम संवेदनशीलता एवं वस्तुनिष्ठता के बावजूद ताराशंकर अपने इन तीन उपन्यासों में किसी प्रकार के वैचारिक ज्वार में उलझे नज़र आते हैं जिसके विषय में हमने पिछले पृष्ठों में चर्चा की है । उन्होंने ग्रामीण समाज के निर्धन वर्ग के बढ़ते हुए उत्पीड़न के विषय में बड़े भावपूर्ण ढंग से लेखनी उठायी । उन्होंने इस उत्पीड़न के विरुद्ध निर्धन ग्रामीणों के संघर्ष का भी वर्णन किया है । यह संघर्ष जिसे अंततः असफल ही होना है, केवल इसलिये नहीं कि प्रभावी वर्ग शक्तिशाली है बल्कि इसलिये भी कि औद्योगीकरण की व्यापक वास्तविकता के समक्ष ग्रामीण सामाजिक जीवन और अर्थव्यवस्था टिकी नहीं रह सकती । किन्तु उत्पीड़ित और निर्धन वर्ग के प्रति इस सहानुभूति के साथ-साथ ताराशंकर की सहानुभूति उस संस्कृति के साथ भी स्पष्ट दिखायी देती है जो कि व्यवस्था के साथ जुड़ी हुई थी और अपने विघटन के दौर में थी । दूसरे शब्दों में, ताराशंकर ने इन उपन्यासों में अव्यक्त वैचारिक परिवर्तनवाद के साथ-साथ अव्यक्त सामाजिक रूढ़िवाद का सहअस्तित्व दिखाया है । ऐसा नहीं है कि समकालीन साहित्य में स्पष्ट वैचारिक विकल्प नज़र नहीं आता । महान साहित्यकार एवं कवि रवीन्द्रनाथ टैगोर (1861-1941) ने अपने उपन्यास 'चार अध्याय' (1934) में क्रांतिकारी हिंसा की बड़े ही स्पष्ट शब्दो में भर्त्सना की है लेकिन ध्यान रहे कि इस उपन्यास में टैगोर अपने सृजन के शिखर पर नहीं पहुंचे थे । अधिक से अधिक इस कृति को एक प्रकार का राजनीतिक घोषणा-पत्र कहा जा सकता है जोकि कथात्मक शैली में लिखा गया था । इसी प्रकार इस समय के संभवतः सबसे

अधिक लोकप्रिय गुजराती उपन्यासकार रमनलाल वसन्तलाल देसाई (1892-1954) ने अपने उपन्यास "दिव्य चक्षु" (1932) में क्रांतिकारी नायक अर्जुन का सम्पूर्ण परिवर्तन दिखाया है । वह हिंसा का रास्ता छोड़कर गांधीवाद की ओर आकृष्ट होता है लेकिन "चार अध्याय" की तरह "दिव्य चक्षु" प्रतिनिधि उपन्यास नहीं कहा जा सकता । इसके अतिरिक्त टैगोर के विपरीत, रमनलाल देसाई ऐसे उपन्यासकार नहीं थे जो समाज और जीवन की गूढ़ताओं को सुलझा सकें ।

6. रवीन्द्रनाथ टैगोर

समकालीन गुजराती साहित्य में कन्हैयालाल माणिकलाल मुंशी एक अन्य प्रतिनिधि साहित्यकार हैं जो रमनलाल देसाई से पांच वर्ष पूर्व पैदा हुए और स्वतंत्र भारत में कई वर्षो तक जीवित रहे । मुंशी एक प्रमुख वकील, साहित्यकार और साथ ही कांग्रेस के सदस्य भी थे । एक प्रमुख कांग्रेसी नेता के रूप में मुंशी धर्म-निरपेक्ष विचारधारा के समर्थक थे । लेकिन वस्तुतः उनके सभी उपन्यास न केवल गौरवशाली हिन्दी अतीत का चित्रण करते हैं बल्कि भारतीय राष्ट्रवाद के हिन्दूवादी पक्ष को प्रोत्साहित करते है ।

**बोध प्रश्न 2**

1) निम्नलिखित वक्तव्य पढ़ें और उनके सामने सही (√) अथवा ग़लत (×) का निशान लगायें ।
   i) भारत में साहित्य ने स्वतंत्रता के तमाम पहलुओं को स्पष्ट रूप में उजागर किया । ☐
   ii) "गोदान" केवल स्वाधीनता के प्रश्न से संबंधित उपन्यास है । ☐
   iii) "प्रेमाश्रय" का सृजन रूसी क्रांति के उदाहरण से प्रेरित होकर किया गया था । ☐
   iv) यद्यपि शरत्चंद्र चट्टोपाध्याय गांधीजी के प्रशंसक थे, तथापि उन्होंने कभी-कभी उन लोगों को आदर्श के रूप में चित्रित किया जो क्रांतिकारी हिंसा में विश्वास रखते थे । ☐

2) प्रेमचंद की साहित्यिक रचनाओं के राजनीतिक योगदान पर दस पंक्तियाँ लिखिए ।

..............................................................................................................

..............................................................................................................

..............................................................................................................

..............................................................................................................

..............................................................................................................

..............................................................................................................

..........................................................................................................

..........................................................................................................

..........................................................................................................

..........................................................................................................

3) निम्नलिखित के जोड़े बनाइये ।

| | |
|---|---|
| i) अ) छे माण आठगुन्ठ | अ) शरत्चन्द्र चट्टोपाध्याय |
| ii) ब) कर्मभूमि | ब) ताराशंकर बन्दोपाध्याय |
| iii) स) विप्रदास | स) फकीर मोहन सेनापति |
| iv) द) गणदेवता | द) प्रेमचन्द |

## 23.4 सारांश

स्वतंत्रता संग्राम के दौरान भारतीय साहित्य के संक्षिप्त खाके में हमने जानबूझकर स्वतंत्रता आन्दोलन के उन पहलुओं की चर्चा की जिनको समझने के लिए साहित्यिक वर्गीकरण से हट जाना आवश्यक है । विरोधी शक्तियों की अन्योन्य क्रिया से संबंधित जो चर्चा हमने स्वतंत्रता आन्दोलन के विषय में की वह पूरे आधुनिक भारतीय समाज के संदर्भ में खरी उतरती है । दूसरे शब्दों में, ऐसा नहीं है कि एक व्यक्ति अथवा एक समूह धर्म-निरपेक्ष, प्रगतिशील और राष्ट्रवादी है, जबकि दूसरा व्यक्ति अथवा समूह प्रतिक्रियावादी और साम्प्रदायिक । हमारे समाज और इसमें रहने वाले लोगों को ऐसे निश्चित वर्गीकरण करने की गुंजाइश नहीं है । यह एक ऐसा सबक है जो साहित्य ही सबसे अच्छे ढंग से हमें पढ़ा सकता है । इतिहासकारों और अन्य सामाजिक वैज्ञानिकों को इस सबक से काफी लाभ हो सकता है ।

## 23.5 शब्दावली

**ऐतिहासिक प्रेमाख्यान** : ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य में रखी गयी कथात्मक कृति ।

**धार्मिक राष्ट्रवादी** : वे लोग जिन्होंने देशभक्ति की प्रेरणा अपने धर्म से ली ।

**साहित्यिक देशभक्ति** : देशभक्तिपूर्ण विचारों की अभिव्यक्ति के लिए साहित्य को माध्यम बनाना ।

**आर्थिक राष्ट्रवाद** : उन्नीसवीं शताब्दी के नेताओं और बुद्धिजीवियों द्वारा अंग्रेजी शासन की आर्थिक आलोचना के माध्यम से भारतीय राष्ट्रवाद की आर्थिक बुनियाद तैयार करने का प्रयास ।

## 23.6 बोध प्रश्नों के उत्तर

**बोध प्रश्न 1**

1 i) √ ii) √ iii) × iv) √

2 i) बंकिम चन्द्र चट्टोपाध्याय ii) 1882 iii) आर. सी. दत्त iv) भारतेन्दु हरिश्चन्द्र

3 i) अ - द ii) ब - स iii) स - अ iv) द - ब

**बोध प्रश्न 2**

1) i) × ii) × iii) √ iv) √

2) आप अपने उत्तर में निम्नलिखित का उल्लेख करें ।

अ) प्रेमचन्द ने अपनी साहित्यिक कृतियों में स्वतंत्रता संघर्ष पर बल दिया ।

ब) उनके उपन्यासों के पात्रों द्वारा राजनीतिक विचारधारा के चुनावों एवं दिए गए वक्तव्य, तथा

स) उनका अपना राजनीतिक वैचारिक ज्ञान ।

3) i) अ - स ii) ब - द iii) स - अ iv) द - ब ।

# इकाई 24 क्रांतिकारी आतंकवादी आंदोलन : भगतसिंह और चिटगाँव शस्त्रागार पर छापा

## इकाई की रूपरेखा


24.0 उद्देश्य

24.1 प्रस्तावना

24.2 पृष्ठभूमि

24.3 उत्तर भारत में क्रांतिकारी

24.4 हिन्दुस्तान सोशलिस्ट रिपब्लिकन एसोसिएशन (एच. एस. आर. ए.)

24.5 उत्तर भारत में क्रांतिकारियों का वैचारिक विकास

24.5.1 हिन्दुस्तान रिपब्लिकन एसोसिएशन (एच. आर. ए.)

24.5.2 भगत सिंह और एच. एस. आर. ए.

24.6 बंगाल में क्रांतिकारी आतंकवादी

24.7 चिटगाँव शस्त्रागार पर छापा

24.8 क्रांतिकारी आतंकवादी आंदोलन का पतन

24.9 सारांश

24.10 शब्दावली

24.11 बोध प्रश्नों के उत्तर


## 24.0 उद्देश्य

इस इकाई के अंतर्गत हम भारत में 1922 के बाद विकसित हुए क्रांतिकारी आतंकवाद की प्रकृति के विषय में चर्चा करेंगे । इस इकाई को पढ़ने के बाद आप :

- भारत में क्रांतिकारी संगठनों की उत्पत्ति और प्रकृति के बारे में जान पायेंगे,
- इन क्रांतिकारी संगठनों के उद्देश्यों और विचारधारा को समझ सकेंगे,
- क्रांतिकारी संगठनों में वैचारिक रूपान्तर की व्याख्या कर पायेंग,
- क्रांतिकारी आतंकवाद के पतन के कारणों का वर्णन कर पायेंगे ।

## 24.1 प्रस्तावना

खंड 3 की इकाई 15 में आप पढ़ चुके हैं कि 20वीं शताब्दी के आरंभ में किस प्रकार क्रांतिकारी विचारधारा का उदय हुआ । इस इकाई में सन् 1922 के बाद भारत में विकसित क्रांतिकारी आतंकवाद की दो प्रमुख धाराओं की व्याख्या की गयी है । क्रांतिकारी मुख्यतः दो क्षेत्रों में सक्रिय थे—पंजाब, उत्तर प्रदेश, बिहार, मध्य प्रदेश (पुराने केंद्रीय प्रांतों) और बंगाल ।

असहयोग आंदोलन के स्थगित हो जाने के बाद गांधी जी के नेतृत्व और उनके अहिंसात्मक संघर्ष की नीति के प्रति असंतोष के कारण क्रांतिकारी आतंकवादी आंदोलन को प्रोत्साहन मिला । ऊपर बतलाये गये दोनों क्षेत्रों में क्रांतिकारी आंदोलन, परिवर्तनों के दौर से गुज़रा, जैसे कि यह व्यक्तिगत पराक्रम के कार्य से जन-आंदोलन की ओर तथा पहले के क्रांतिकारियों के धार्मिक राष्ट्रवाद से निरपेक्ष देशभक्ति की ओर मुड़ गया । यहां हम चर्चा करेंगे कि किस प्रकार इन परिवर्तनों ने आंदोलन को प्रभावित किया । इन क्षेत्रों में क्रांतिकारियों की गतिविधियों का अध्ययन करेंगे, अंत में उन तत्वों की चर्चा करेंगे जो आंदोलन के पतन के लिए उत्तरदायी थे । स्वतंत्रता के आदर्श ने क्रांतिकारी आतंकवादियों को उत्तेजना और शोषण से मुक्त नये समाज के निर्माण की भावना के लिए प्रोत्साहित किया ।

## 24.2 पृष्ठभूमि

20वीं शताब्दी के आरंभिक वर्षों के दौरान राजनीतिक संघर्ष की असफलता से उत्पन्न निराशा और सरकारी दमन के कारण अंततः क्रांतिकारी आतंकवाद का जन्म हुआ । क्रांतिकारी आतंकवादियों का विश्वास था कि निष्क्रिय प्रतिरोध राष्ट्रवादी उद्देश्यों को प्राप्त नहीं कर सकता और इसलिए उन्हें बम का सहारा लेना पड़ा । सरकार ने प्रथम विश्वयुद्ध के दौरान क्रांतिकारी आतंकवादियों के विरुद्ध घोर दमनकारी उपायों को अपनाया । अतः 1918 के बाद उनके आंदोलन का पतन हो गया । उनमें से अधिकांश 1919 के अंत और 1920 के आरंभ में जेल से रिहा कर दिये गये क्योंकि सरकार मांटेग्यू चेम्सफोर्ड सुधारों के लिए उचित वातावरण तैयार करना चाहती थी । 1920 में असहयोग आंदोलन शुरू हुआ । महात्मा गांधी और सी. आर. दास, अनेक क्रांतिकारी आतंकवादी नेताओं से मिले और उनसे अहिंसात्मक जन-आंदोलन में शामिल होने या कम से कम इस अवधि में अपने आंदोलन को स्थगित करने का आग्रह किया । क्रांतिकारियों ने यह स्वीकार किया कि देश में नयी राजनीतिक स्थिति उभर चुकी है । इनके बहुत से नेताओं ने राष्ट्रीय कांग्रेस के नागपुर अधिवेशन में भाग लिया और कांग्रेस में शामिल हो गये ।

चौरी-चौरा कांड के बाद 1922 के आरंभ में असहयोग आंदोलन के अचानक स्थगित हो जाने से आंदोलन के युवा कार्यकर्ताओं के बीच निराशा और असंतोष की लहर फैल गयी । उनमें से बहुत से गांधी जी के नेतृत्व के प्रभाव से विमुख होने लगे और अहिंसात्मक आंदोलन की मौलिक नीति के विषय में प्रश्न करने लगे । ब्रिटिश शासन को उखाड़ फेंकने के लिए एक बार फिर उन्होंने हिंसा का रास्ता अपनाया । इस संदर्भ में उन्होंने रूस, आयरलैंड, तुर्की, मिस्र और चीन के क्रांतिकारी आंदोलनों से प्रेरणा ली । जब पुराने क्रांतिकारी नेता अपने संगठनों को पुनर्जीवित कर रहे थे उस समय उत्साही-असहयोगियों की श्रेणी से बहुत से नये क्रांतिकारी आतंकवादी उभरने लगे जैसे योगेशचन्द्र चटर्जी, सुखदेव, भगवती चरण वोहरा. इन सभी ने असहयोग आंदोलन में भाग लिया था ।

सन् 1922 के बाद क्रांतिकारी आतंकवाद का विकास दो विस्तृत धाराओं में हुआ : एक तो पंजाब, उत्तर प्रदेश, बिहार और मध्य प्रदेश (पुराने केंद्रीय प्रांतों) और दूसरा बंगाल में । दोनों धाराएं नये सामाजिक और वैचारिक शक्तियों के प्रभाव में आ गयीं ।

- इनमें से एक प्रमुख प्रभाव पूरे भारत में समाजवादी विचारों और संगठनों के विकास का था,
- दूसरा, जुझारू ट्रेड यूनियन आंदोलन का शुरू होना था, और
- तीसरा, 1917 की रूसी क्रांति और सोवियत रिपब्लिक की स्थापना था ।

लगभग सभी क्रांतिकारी दल नये समाजवादी राज्य के नेतृत्व से संपर्क विकसित करना और विचारों और संगठन तथा साधनों की सहायता लेना चाहते थे ।

## 24.3 उत्तर भारत में क्रांतिकारी

उत्तर भारत के क्रांतिकारियों ने सचिन्द्रनाथ सान्याल, जोगेश चटर्जी और राम प्रसाद बिस्मिल्ल के नेतृत्व में अपना पुनर्गठन आरंभ किया । अक्तूबर 1924 में कानपुर में उनकी बैठक हुई और हिन्दुंस्तान रिपब्लिकन एसोसिएशन (या सेना) (एच. आर. ए.) की स्थापना की गयी । वे सशस्त्र क्रांति द्वारा औपनिवेशिक शासन को समाप्त करके इसकी जगह वयस्क मताधिकार के आधार पर भारत के संयुक्त राज्यों का संघीय गणतंत्र स्थापित करना चाहते थे ।

एच. आर. ए. के लीडरों ने अपने संगठन के प्रचार तथा धन और शस्त्र आदि इकट्ठा करने के उद्देश्य से सरकार के विरुद्ध डकैतियाँ डालने का निश्चय किया । इनमें से सबसे महत्वपूर्ण काकोरी डकैती कांड था । 9 अगस्त, 1925 में दस क्रांतिकारियों ने लखनऊ के पास छोटे से गांव के स्टेशन काकोरी में सहारनपुर से लखनऊ जाने वाली 8 डाउन ट्रेन को रोक लिया और रेलवे का सरकारी धन लूट लिया । सरकार डकैती में शामिल एच. आर. ए. के सदस्यों और नेताओं को बड़ी संख्या में गिरफ्तार करने में सफल हुई । काकोरी षडयंत्र केस में उन पर मुकद्दमा चलाया गया । कैदियों को जेल में भयंकर यातना दी गयी । इसके विरोध में उन्होंने अनेक बार भूख हड़ताल की । राम प्रसाद बिस्मिल्ल, रोशन सिंह और अशफ़ाक़-उल्लाह ख़ान तथा राजेन्द्र लाहरी को फांसी की सज़ा दी गयी । अन्य चार व्यक्तियों को आजीवन कारावास के लिए अंडमान (काला पानी) भेज दिया गया और 17 व्यक्तियों को लंबी अवधि के लिए कारावास की सज़ा दी गयी ।

चारों क्रांतिकारी अनुकरणाय साहस के साथ शहीद हुए । राम प्रसाद बिस्मिल्ल और अशफ़ाक्-उल्लाह, गीता और कुरान की पंक्तियों का उच्चारण करते हुए शहीद हो गए । राम प्रसाद ने घोषणा की कि "हम पुनः जन्म लेंगे, पुनः मिलेंगे और मातृभूमि की रक्षा के लिए कंधे से कंधा मिलाकर एक वार फिर मिलकर संघर्ष करेंगे" । अपने शहीद होने से एक दिन पहले अशफ़ाक्-उल्लाह ने अपने भतीजे से कहा कि "तुम्हें यह याद रखना चाहिए कि हिन्दू समाज ने खुदीराम और कन्हाई लाल जैसी महान आत्माओं का बलिदान दिया । जबकि मैं मुस्लिम समाज से संबंधित हूं फिर भी मेरा यह सौभाग्य है कि मुझे इन महान शहीदों का अनुसरण करने का अवसर मिला" । एच. आर. ए. के नेताओं में अकेले चन्द्रशेखर आज़ाद ही पुलिस के जाल से बच निकलने में सफल हुए । उसके बाद उन्हें एक घोषित अपराधी की तरह जीवन व्यतीत करना पड़ा ।

## 24.4 हिन्दुस्तान सोशलिस्ट रिपब्लिकन एसोसिएशन (एच. एस. आर. ए.)

काकोरी कांड से क्रांतिकारियों को धक्का पहुंचा लेकिन शीघ्र ही युवाओं का एक नया दल इस कमी को पूरा करने के लिए सामने आया । उत्तर प्रदेश में विजयकुमार सिन्हा, शिववर्मा और जयदेव कपूर, पंजाब में भगत सिंह, भगवती चरण वोहरा और सुखदेव ने चन्द्रशेखर आज़ाद के नेतृत्व में एच. आर. ए. का पुनर्गठन आरंभ किया । वे समाजवादी विचारों से भी प्रभावित हुए । अंत में 9 और 10 सितंबर सन् 1928 को दिल्ली के फ़िरोज़शाह कोटला मैदान में उत्तर भारत के प्रतिनिधि क्रांतिकारी आतंकवादियों की एक बैठक हुई । उन्होंने समाजवाद को अपने लक्ष्य के रूप में स्वीकार किया और पार्टी का नाम बदलकर हिन्दुस्तान सोशलिस्ट रिपब्लिकन एसोसिएशन (आर्मी) (एच. एस. आर. ए.) कर दिया ।

एच. एस. आर. ए. का नेतृत्व व्यक्तिगत वीरता के कार्यकलापों से हटकर तेज़ी से जन-आधारित सशस्त्र संघर्ष के विचारों की ओर बढ़ने लगा । लेकिन जब 30 अक्तूबर, 1928 के दिन लाहौर में साइमन कमीशन के विरुद्ध प्रदर्शन का नेतृत्व करते हुए महान राष्ट्रवादी नेता लाला लाजपत राय की लाठियों के क्रूर प्रहार से हत्या हो गयी, तब क्रुद्ध और भावुक युवाओं ने महसूस किया कि इस गंभीर अपमान का बदला लेना आवश्यक है । इसके लिए उन्होंने व्यक्तिगत हत्या की प्रारम्भिक प्रथा का आश्रय लिया । और इस तरह 17 दिसंबर, 1928 को भगत सिंह, चन्द्रशेखर आज़ाद और राजगुरु ने लाहौर में पुलिस अफसर सॉंडर्स की हत्या कर दी । यह अफसर, लाठी प्रहार कांड के लिए उत्तरदायी था । हत्या के बाद एच. एस. आर. ए. द्वारा लगाये गये पोस्टर में हत्या के समर्थन में निम्नलिखित पंक्तियाँ लिखी गयीं "करोड़ों व्यक्तियों के सम्मानित नेता की एक साधारण पुलिस अफसर के नीच हाथों से हत्या होना..........देश के लिए अपमान की बात है । भारत के युवाओं का कर्त्तव्य है कि वे इसे मिटा दें..........हमें अफसोस है कि हमें एक व्यक्ति की हत्या करनी पड़ी परन्तु वह इस अमानवीय और अन्यायपूर्ण व्यवस्था का अभिन्न अंग था, जिसे नष्ट करना आवश्यक था" ।

व्यक्तिगत शौर्य की स्थिति से आगे बढ़ने के लिए एच. एस. आर. ए. के नेताओं ने जनता के बीच अपनी राजनीतिक विचारधारा का प्रचार करने का निश्चय किया, जिससे जन-क्रांतिकारी आंदोलन का संगठन किया जा सके । 8 अप्रैल, 1929 को श्रम विवाद कानून (Trade Disputes Bill) और जन सुरक्षा कानून (Public Safety Bill) और श्रम आन्दोलन के नेताओं की गिरफ्तारी के विरोध में भगत सिंह और बी. के. दत्त को केन्द्रीय विधान सभा में बम फेंकने के लिए नियुक्त किया गया । जन सुरक्षा कानून (Public Safety Bill) से नागरिक स्वतंत्रता में कमी और विशेषकर श्रमिकों के संगठन बनाने और संघर्ष करने के अधिकार पर रोक लगने वाली थी । बम फेंकने का उद्देश्य हत्या करना नहीं था, क्योंकि बम अपेक्षाकृत अहानिकारक था । जैसा कि बम के साथ फेंके गये पर्चे में कहा गया था, इसका उद्देश्य केवल "बहरों को सुनने लायक बनाना था" ।

भगत सिंह और दत्त ने बच निकलने का कोई प्रयास नहीं किया । वे स्वय को गिरफ्तार करवाना चाहते थे और अदालत के मुकद्दमें का प्रचार मंच की तरह प्रयोग करना चाहते थे, जिससे जनता के बीच एच. एस. आर. ए. के कार्यक्रम और विचारधारा का व्यापक प्रचार हो सके ।
असेम्बली बम कांड में भगत सिंह और बी. के. दत्त पर मुकद्दमा चला । पुलिस ने सॉन्डर्स हत्या कांड से संबंधित सभी विवरणों को उजागर कर दिया । लाहौर षडयंत्र केस में भगत सिंह, सुखदेव, राजगुरु तथा कई अन्य व्यक्तियों पर मुकदमा चला । भगत सिंह और उनके सहयोगियों ने अदालत को प्रचार मंच में बदल दिया । उनके बयान समाचार पत्रों में प्रकाशित हुए और जनता के बीच चर्चा का विषय बने । अदालत में वे अपने निडर और साहसी व्यवहार से जनता की श्रद्धा के पात्र बने । यहाँ तक कि अहिंसा के समर्थकों ने भी उनके देश प्रेम के कारण उनका सम्मान किया । प्रतिदिन वे

"इंक़लाब ज़िन्दाबाद", "साम्राज्यवाद का नाश हो" और "सर्वहारा वर्ग (श्रमजीवी) अमर रहे" के नारे लगाते और देशभक्ति के गीत गाते हुए अदालत में प्रवेश करते थे । भगत सिंह का नाम घर-घर में लिया जाने लगा । जेल में भयावह स्थितियों के विरुद्ध वहां क्रांतिकारियों ने भूख हड़ताल की । लम्बे समय तक चली इस भूख हड़ताल से सारा देश आंदोलित हो उठा । उन्होंने मांग की कि उनके साथ साधारण अपराधी की तरह नहीं बल्कि राजनीतिक क़ैदी की तरह व्यवहार किया जाए । 13 सितम्बर, 1929 में दृढ़ इच्छा शक्ति वाले दुबले-पतले युवा जतिनदास की भूख हड़ताल की वजह से मृत्यु हो गयी । पूरा देश आंदोलित हो उठा । उनके शव को लाहौर से कलकत्ता ले जाने वाली ट्रेन पर ले जाया गया । प्रत्येक स्टेशन पर हज़ारों व्यक्ति उन्हें श्रद्धांजलि देने आये । कलकत्ता में 6 लाख लोगों के दो मील लंबे जलूस के साथ उनका शव श्मशान तक ले जाया गया । लाहौर के ट्रिब्यून ने जतिनदास की मृत्यु पर लिखा है कि—"यदि कभी किसी व्यक्ति ने शूरवीर की मौत पायी है और किसी उच्च आदर्श के कारण शहीद हुआ है, तो वह है जतिननाथ दास । शहीदों के ख़ून ने सभी युगों में और देशों में उच्चतर और श्रेष्ठतर जीवन आदर्शों तथा सामाजिक और राजनीतिक व्यवस्था का बीज बोया है" । लाहौर षडयंत्र कांड और इस प्रकार के अन्य कांडों में बहुत से क्रांतिकारियों को अपराधी घोषित करके लंबी अवधि के कारावास की सज़ा दी गयी । उनमें से बहुतों को अंडमान की सेलुलर जेल में भेज दिया गया । भगत सिंह, सुखदेव और राजगुरु को 23 मार्च, 1931 को फांसी की सज़ा दी गयी । उनकी फांसी का समाचार फैलते ही पूरे देश में मौत का सन्नाटा छा गया । करोड़ों व्यक्तियों की आँखें भर आयीं, उन्होंने उपवास रखा, छात्रों ने स्कूलों का बहिष्कार किया तथा दैनिक कार्यों से अलग रहे । भगत सिंह शीघ्र ही संपूर्ण देश के लिए बहादुरी और देशभक्ति की मिसाल बन गये । उनके चित्र घरों और दुकानों की शोभा बढ़ाने लगे । उनकी शहादत को लेकर हज़ारों गीत लिखे और गाये गये । उनकी लोकप्रियता गांधीजी से स्पर्धा करने लगी ।

**बोध प्रश्न 1**

1) उन सामाजिक एवं वैचारिक शक्तियों को निर्दिष्ट कीजिए, जिन्होंने 1922 के बाद भारत में विकसित क्रांतिकारी आतंकवाद की दो प्रमुख धाराओं को प्रभावित किया । पांच पंक्तियों में लिखिए ।

.......................................................................................................

.......................................................................................................

.......................................................................................................

.......................................................................................................

.......................................................................................................

.......................................................................................................

2) हिन्दुस्तान रिपब्लिकन एसोसिएशन के क्या उद्देश्य थे ? पाँच पंक्तियों में लिखिए ।

.......................................................................................................

.......................................................................................................

.......................................................................................................

.......................................................................................................

.......................................................................................................

.......................................................................................................

3) एच. एस. आर. ए. की विचारधारा और कार्यनीति का वर्णन पांच पंक्तियों में कीजिए ।

.......................................................................................................

.......................................................................................................

.......................................................................................................

.......................................................................................................

.......................................................................................................

.......................................................................................................

## 24.5 उत्तर भारत के क्रांतिकारियों का वैचारिक विकास

एच. एस. आर. ए. ने अपने कार्यकलापों के मार्गदर्शन और क्रांतिकारी संघर्ष के लिए एक अग्रगामी सामाजिक विचारधारा विकसित की । इसके अलावा क्रांतिकारी गतिविधियों के लक्ष्य को तथा क्रांतिकारी संघर्ष के रूपों को बेहतर ढंग से परिभाषित किया गया ।

### 24.5.1 हिन्दुस्तान रिपब्लिकन एसोसिएशन (एच. आर. ए.)

वास्तव में पुनर्विचार एच. आर. ए. की आरंभिक अवस्था में ही आरंभ हो गया था । प्रारम्भ से ही एच. आर. ए. ने पूर्ण धर्मनिरपेक्ष, प्रजातांत्रिक और समाजवादी ढांचे के अंदर अपना कार्यक्रम बनाना शुरू कर दिया था । 1925 में इसके घोषणा-पत्र में इसका प्रमुख उद्देश्य "संगठित और सशस्त्र क्रांति द्वारा भारत में संयुक्त राज्यों के संघीय गणतंत्र" की स्थापना करना घोषित किया गया था । गणतंत्र का मूल सिद्धांत "सार्वजनिक मताधिकार की स्थापना और मनुष्य द्वारा मनुष्य का शोषण करने वाले सभी रीति-रिवाजों का अंत करना था" । अक्तूबर 1924 में एच. आर. ए. की परिषद् की पहली बैठक में "सामाजिक क्रांतिकारी और साम्यवादी सिद्धांतों की शिक्षा देने" का निश्चय किया गया । मज़दूर-किसान संगठन आरंभ करने का भी निश्चय किया गया । रेलवे और बड़े उद्योगों जैसे इस्पात, जहाज़ निर्माण और खानों के राष्ट्रीयकरण की भी वकालत की गयी ।

### 24.5.2 भगत सिंह और एच. एस. आर. ए.

बिजॉय सिन्हा, शिव वर्मा, सुखदेव, भगवती चरण वोहरा और भगत सिंह जैसे युवा नेताओं के समाजवाद और मार्क्सवाद की ओर झुकाव से क्रांतिकारी आतंकवादी विचारधारा के विकास में एक महत्वपूर्ण मोड़ आया । यह परिवर्तन भगत सिंह के जीवन और विचारों में विशेष रूप से दिखाई पड़ता है । इसका प्रमाण उनके बहुत से पत्रों, कथनों और लेखों में अब उपलब्ध है ।

भगत सिंह का जन्म 1907 में प्रसिद्ध देशभक्त परिवार में हुआ था । उनके पिता एक कांग्रेसी थे और चाचा अजीत सिंह प्रसिद्ध क्रांतिकारी थे । भगत सिंह बदर के प्रमुख वीर करतार सिंह सराभा से अत्याधिक प्रभावित थे । भगत सिंह की अध्ययन में विशेष रुचि थीं । उन्होंने समाजवाद, सोवियत संघ और विश्व के क्रांतिकारी आंदोलनों से संबंधित साहित्य का विस्तृत अध्ययन किया था । लाहौर में उन्होंने और सुखदेव ने युवा विद्यार्थियों के लिए अध्ययन मंडलों का संगठन किया । एच. एस. आर. ए. के नेता आपस में गहन राजनीतिक विचार-विमर्श किया करते थे । उन्होंने जेल में भी गहन अध्ययन किया । अन्य नेताओं जैसे—बिजॉय सिन्हा, यशपाल, शिव वर्मा और भगवती चरण वोहरा की भी अध्ययन के प्रति विशेष रुचि थी । चन्द्रशेखर आज़ाद अंग्रेज़ी कम जानते थे, लेकिन राजनीतिक वादविवादों में पूरी तरह भाग लेते थे और विचारों के क्षेत्र में हुए प्रत्येक परिवर्तन की पूरी जानकारी रखते थे । अजय कुमार घोष ने, जिन पर लाहौर षडयंत्र-कांड में भगत सिंह और अन्य लोगों सहित मुक़द्दमा चला था, चन्द्रशेखर आज़ाद के विषय में लिखा है—"अपने सक्रिय जीवन के बीच वे स्वयं को अध्ययन में व्यस्त रखते थे । दिन-प्रति-दिन उनके विचार परिपक्व होते जा रहे थे । वे अनेक बातों की व्याख्या और स्पष्टीकरण के लिए अपने अंग्रेज़ी जानने वाले साथियों की सहायता लेने में कभी संकोच नहीं करते थे ।..................उनका विचार था कि ज़्यादा से ज़्यादा साथियों को किसानों और मज़दूरों के बीच समाजवादी विचार फैलाने के लिए कार्य करना चाहिए" ।

1929 में अपनी गिरफ्तारी से पहले भगत सिंह ने आतंकवाद और व्यक्तिगत पराक्रम के कार्य के प्रति अपना अविश्वास व्यक्त किया । वे विश्वास करने लगे थे कि पूर्णतः जनता पर आधारित लोकप्रिय आंदोलन से ही भारत और मानव जाति को दासता से मुक्त किया, जा सकता है । उन्होंने लिखा कि क्रांति केवल "जनता द्वारा और जनता के लिए" ही प्राप्त की जा सकती है । इसलिए उन्होंने युवाओं, किसानों और मज़दूरों के बीच राजनीतिक कार्य को आगे बढ़ाने के लिए 1926 में नौजवान भारत सभा की स्थापना में विशेष रुचि ली । वे इसके संस्थापक सचिव थे । इसकी शाखाएं गांवों में खोलने का भी विचार था । भगत सिंह और सुखदेव ने विद्यार्थियों के बीच खुलम-खुल्ला राजनीतिक कार्यों को करने के लिए लाहौर विद्यार्थी परिषद् का गठन किया । वास्तव में भगत सिंह ने क्रांति और बम के प्रयोग की विचारधारा को कभी भी एक न समझा । जैसाकि हमने पहले उल्लेख किया है कि भगत सिंह और बी. के. दत्त ने 1929 में केन्द्रीय विधानसभा में जान-माल को कम से कम नुकसान पहुंचाने वाला बम इसीलिए फेंका क्योंकि उनकी नीति गिरफ़्तार होना और अदालत को अपने विचारों के प्रचार का कार्यक्षेत्र बनाना था और यह काम उन्होंने बहुत खूबी से किया ।

1929 से 1931 तक भगत सिंह और उनके साथी ने अपने कथनों और घोषणा पत्र में यह दृढ़तापूर्वक बार-बार दोहराया कि क्रांति का अर्थ जनसाधारण को जागृत करना और जन-आंदोलन का गठन करना है । अपनी फांसी से पूर्व भगत सिंह ने घोषणा की कि—"वास्तविक क्रांतिकारी सेना गावों और फैक्टरियों में है" । 2 फरवरी, 1931 में युवा राजनीतिक कार्यकर्ताओं के लिए अपनी सलाह मे उन्होंने घोषणा की कि—"देखने में मैंने एक आतंकवादी की तरह काम किया है लेकिन मै आतंकवादी नहीं हूं ।···मै अपनी पूरी शक्ति के साथ घोषणा करता हूँ कि मैं आतंकवादी नहीं हूं और न ही कभी था, शायद अपने आरम्भिक क्रांतिकारी जीवन को छोड़कर मुझे दृढ़ विश्वास हो गया है कि इन तरीकों से हम कुछ भी प्राप्त नहीं कर सकते हैं" ।

अब प्रश्न यह उठता है कि भगत सिंह ने खुले रूप से आतंकवाद का विरोध क्यों नहीं किया । इसे भी उन्होंने अपने संदेश में स्पष्ट किया है ।

अपने आरम्भिक क्रांतिकारी जीवन में परिलक्षित तथा दूसरे महान् क्रांतिकारी आतंकवादी नेताओ के शौर्यपूर्ण बलिदान को ठेस पहुचाए बिना वे युवकों को आतंकवाद छोड़ने के लिए प्रेरित कर रहे थे । जीवन देर-सबेर स्वयं सही राजनीति की शिक्षा दे देता है । एक बार जब बलिदान की भावना समाप्त हो जाती है, उसे वापस हासिल करना मुश्किल काम है ।

भगत सिंह और उनके साथियों ने क्रांति के अर्थ और कार्यक्षेत्र को भी पुनः परिभाषित किया । क्रांति केवल जुझारूपन या हिंसा का ही नाम नहीं था इसका पहला उद्देश्य राष्ट्र की मुक्ति था और उसके बाद एक नये समाजवादी समाज का निर्माण था ।

दिल्ली अदालत में असेम्बली बम कांड के संबंध में दिए गए अपने बयान में उन्होंने स्पष्ट रूप से घोषणा की कि उनके लिए क्रांति का अर्थ है "आमूलचूल परिवर्तन" इसलिए यह ज़रूरी भी है । इसलिए क्रांति उन लोगों का कर्त्तव्य भी है जो समाज को समाजवादी आधार पर पुनर्गठित करना चाहते हैं ।

1929 में एच. एस. आर. ए. के घोषणा पत्र में घोषणा की गयी कि—"सर्वहारा की आशाएँ अब इसलिए समाजवाद पर केन्द्रित हैं, क्योंकि एकमात्र वही पूर्ण स्वतंत्रता की ओर ले जा सकता है और सभी सामाजिक मतभेदों और विशेषाधिकारों को समाप्त कर सकता है । भगवती चरण वोहरा, चन्द्रशेखर आज़ाद और यशपाल ने अपनी पुस्तक "फ़िलासफ़ी आफ़ दी बम" में क्रांति का अर्थ - "सामाजिक, राजनीतिक और आर्थिक स्वतंत्रता" बतलाया और इसका उद्देश्य "एक ऐसे नये समाज का निर्माण करना है, जिसमें राजनीतिक और आर्थिक शोषण होना असंभव होगा" । भगत सिंह और बी. के. दत्त ने असेम्बली बम कांड के दौरान अदालत को बतलाया कि "यह आवश्यक नहीं कि क्रांति में खूनखराबा हो, न ही इसमें व्यक्तिगत शत्रुता के लिए कोई स्थान है । बम और पिस्तौल साध्य नहीं है । क्रांति से हमारा तात्पर्य है कि प्रत्यक्ष अन्याय पर आधारित वर्तमान व्यवस्था को बदलना चाहिए" ।

भगत सिंह ने समाजवाद को वैज्ञानिक ढंग से परिभाषित किया । इसका अर्थ पंजीवाद और वर्ग प्रभुत्व को समाप्त करना है । उन्होंने पूरी तरह मार्क्सवाद और समाज के वर्गीय दृष्टिकोण को स्वीकार किया । वास्तव में उन्होंने स्वय को भारत में समाजवादी और साम्यवादी विचारों के प्रचारक और समाजवादी आंदोलन को आरंभ करने वाले के रूप में देखा था । अक्तूबर 1930 में जेल से दिये गये अपने संदेश में उन्होने अपने राजनीतिक विचारों के विषय मे संक्षेप में कहा था कि "क्रांति से हमारा तात्पर्य वर्तमान सामाजिक व्यवस्था को उखाड़ फेंकना है । इसके लिए राज्य सत्ता को अपने हाथ में लेना आवश्यक है । राज्य सत्ता अब विशेषाधिकार प्राप्त वर्ग के पास है । जनता के हितों की रक्षा करने, अपने विचारों को वास्तविकता में बदलने और कार्लमार्क्स के सिद्धान्तों के अनुसार समाज की नींव रखने के लिए राजसत्ता पर कब्ज़ा करना ज़रूरी है" ।

भगत सिंह उस समय के उन कुछ प्रमुख नेताओं में से थे, जो भारतीय समाज और भारतीय राष्ट्रीय आंदोलन के सामने मौजूद सांप्रदायिकता के खतरे के प्रति पूरी तरह जागरूक थे । वे प्रायः अपने श्रोताओं से कहा करते थे कि सांप्रदायिकता भी उपनिवेशवाद की तरह बहुत बड़ा खतरा है । 192[illegible] के बाद भगत सिंह ने लाला लाजपतराय के सांप्रदायिक राजनीति की ओर उन्मुख होने पर उनकी कड़ी निन्दा की । भगत सिंह द्वारा बनाये गये, नौजवान भारत सभा के छः नियमों में से दो नियम इस प्रकार थे, "सांप्रदायिक विचारों को फैलाने वाले सांप्रदायिक संगठनों या दलों के साथ कोई संबंध नहीं रखना चाहिए" तथा "जनता के बीच सहिष्णुता की भावना जागृत करनी चाहिए और उन्हे यह बतलाना चाहिए कि धर्म व्यक्तिगत विश्वास की चीज़ है और उसी भावना के अनुसार काम [illegible] चाहिए" ।

भगत सिंह का यह भी विश्वास था कि व्यक्ति को चाहिए कि वह स्वयं को मानसिक दासता और अंधविश्वास से मुक्त कर ले । अपने शहीद होने से कुछ ही समय पहले उन्होंने "मैं नास्तिक क्यों हूँ" नामक लेख लिखा । इसमें उन्होंने धर्म की आलोचना की है । उन्होंने लिखा है कि क्रांतिकारी को न केवल साहसी होना चाहिए बल्कि उसमें आलोचना की सामर्थ्य और स्वतंत्र विचार शक्ति भी होनी चाहिए । उन्होंने लिखा कि—"कोई भी व्यक्ति जो प्रगति का समर्थक है, उसे पुरानी आस्था के प्रत्येक अंग की आलोचना करने और अविश्वास व्यक्त करने, चुनौती देने का अधिकार है । प्रचलित विश्वासों के प्रत्येक पहलू की हर दृष्टि से भलीभांति जांच परख करनी चाहिए" । उन्होंने नास्तिकता और भौतिकवाद में अपना विश्वास प्रकट करते हुए स्वीकार किया कि वे—"मनुष्य की भांति अपना सिर अंत तक, यहां तक कि फांसी के तख्ते पर भी ऊँचा रखेंगे" ।

**बोध प्रश्न 2**

1) एच. आर. ए. की विचारधारा और नीति के विषय में पाँच पंक्तियाँ लिखिए ।

..........................................................................................................

..........................................................................................................

..........................................................................................................

..........................................................................................................

..........................................................................................................

2) भगत सिंह की राजनीतिक विचारधारा के विषय में पांच पंक्तियाँ लिखिए ।

..........................................................................................................

..........................................................................................................

..........................................................................................................

..........................................................................................................

..........................................................................................................

3) एच. एस. आर. ए. के कुछ नेताओं के नाम बताइये ।

..........................................................................................................

..........................................................................................................

..........................................................................................................

..........................................................................................................

..........................................................................................................

## 24.6 बंगाल में क्रांतिकारी आतंकवादी

1922 के बाद बंगाल में भी क्रांतिकारी आतंकवादियों के पुनर्गठन का कार्य आरंभ हो गया । उन्होंने प्रेस के माध्यम से बड़े पैमाने पर आतंकवादी प्रचार और भूमिगत गतिविधियाँ विकसित की । इसके साथ ही उन्होंने गांवों से प्रांतीय स्तर तक कांग्रेस संगठन में काम करना जारी रखा । इसकी वजह यह थी कि उन्होंने समझ लिया था कि गांधी जी के नेतृत्व में कांग्रेस का जनआधार विकसित हुआ है । अतः उनका विचार था कि कांग्रेस के अंदर काम करने से क्रांतिकारी, जनता विशेषकर युवकों से अपना संपर्क स्थापित कर सकते हैं । इसके साथ ही कांग्रेस में काम करने से वे छोटे शहरों और ग्रामीण क्षेत्रों से सक्रिय कार्यकर्त्ता प्राप्त करने में भी सफल हो सकेंगे । सी. आर. दास ने क्रांतिकारियों और कांग्रेस के बीच अनेक प्रकार से भावनात्मक कड़ी की भूमिका निभायी । उनकी मृत्यु के बाद कांग्रेस का नेतृत्व धीरे-धीरे दो पक्षों में विभाजित हो गया, एक का नेतृत्व सुभाष चन्द्र बोस ने और दूसरे का जे. एम. सेनगुप्ता ने किया । क्रांतिकारी भी विभाजित हो गये । युगान्तर दल ने बोस के गुट को समर्थन दिया जबकि अनुशीलन समिति के लोग सेनगुप्ता के दल के साथ थे ।

सन् 1924 तक प्रमुख क्रांतिकारी आतंकवादी, व्यक्तिगत साहसिक गतिविधियों की अपर्याप्तता को समझ चुके थे । उन्होंने सिद्धांततः और योजनाबद्ध रूप में जन जागृति द्वारा सशस्त्र विद्रोह से सत्ता प्राप्त

करके राष्ट्रीय स्वतंत्रता नीति स्वीकार की । परंतु व्यावहारिक रूप में वे अब भी छोटे पैमाने की कार्यवाइयों, विशेषकर डकैती और अधिकारियों की हत्या में विश्वास करते थे । जनवरी 1924 में ऐसी ही एक कार्रवाई, गोपीनाथ साहा द्वारा कलकत्ता के कुत्सित पुलिस अधिकारी चार्ल्स टेगर्ट की हत्या का प्रयास था । यद्यपि यह प्रयास विफल हो गया परंतु गोपीनाथ साहा को जनता के विरोध के बावजूद गिरफ्तार किया गया तथा उन पर मुकदमा चलाया गया । 1924 में उन्हें फांसी दे दी गयी । अब सरकार सतर्क हो गयी और उसने व्यापक पैमाने पर दमन कार्य शुरू किया । नये घोषित अध्यादेश के अंतर्गत बड़ी संख्या में क्रांतिकारी नेताओं और कार्यकर्त्ताओं को गिरफ्तार किया गया । इसके अतिरिक्त सुभाष चन्द्र बोस सहित बड़ी संख्या में क्रांतिकारियों के प्रति सहानुभूति रखने वाले कांग्रेसियों को भी गिरफ्तार किया गया । लगभग सभी प्रमुख नेता जेल में थे, इससे क्रांतिकारी गतिविधियों को बहुत धक्का पहुंचा ।

पुराने क्रांतिकारी नेताओं के आपसी झगड़ों के कारण भी क्रांतिकारी गतिविधियों को धक्का पहुंचा । युगान्तर और अनुशीलन के समर्थकों के बीच भी झगड़े थे । 1926 के बाद जेल से छूटने पर पुराने नेताओं के आलोचक बहुत से नये युवा क्रांतिकारियों ने स्वयं को नये विशाल समूहों में पुनर्गठित करना आरंभ किया । ये नये समूह विद्रोह समूह (Revolt Group) के नाम से विख्यात हुए । इन समूहों ने रूसी और आयरिश क्रांतिकारियों के अनुभवों के आधार पर स्वयं को संगठित करने का प्रयास किया । पुराने अनुभवों से शिक्षा लेकर नये विद्रोही समूहों ने अनुशीलन और युगान्तर समितियों के सक्रिय वर्गों के साथ मैत्री संबंध विकसित किये । नये समूहों में चिटगाँव समूह का नेतृत्त्व सूर्यसेन ने किया । इस समूह ने बहुत प्रसिद्धि और प्रतिष्ठा प्राप्त की ।

## 24.7 चिटगाँव शस्त्रागार पर छापा

सूर्यसेन ने असहयोग आंदोलन में सक्रिय भाग लिया और चिटगाँव के एक गाँव के नेशनल स्कूल में अध्यापक बन गये । इस कारण वे मास्टर दादा के नाम से विख्यात थे । उन्हें 1926 में गिरफ्तार किया गया और 1928 में रिहा कर दिया गया । 1929 में सूर्यसेन चिटगांव ज़िला कांग्रेस कमेटी के सेक्रेटरी थे । सूर्यसेन दुर्बल शरीर के निष्ठावान व्यक्ति थे । वे होनहार संगठक थे जिन्होंने नवयुवकों और नवयुवतियों को प्रेरित किया ।

शीघ्र ही सूर्यसेन ने अनन्त सिंह, गणेश घोष, अम्बिका चक्रवर्ती और लोकनाथ बाबुल जैसे क्रांतिकारी नवयुवकों का विशाल गुट बना लिया । 1929 के प्रारंभ में उन्होंने सशस्त्र विद्रोहियों को संगठित करने की योजना बनायी । यद्यपि यह संगठन छोटे पैमाने का था परन्तु इसका उद्देश्य यह प्रदर्शित करना था कि ब्रिटिश शासन को शस्त्रों से चुनौती दी जा सकती है । इस कारण हथियार प्राप्त करने के लिए उन्होंने अनेक ज़िलों के शस्त्रागारों पर छापा मारने की योजना बनायी । उन्होंने उत्साहपूर्वक प्रचार कार्य आरंभ किया ।

पहली कार्यवाई चिटगाँव में होनी निश्चित हुई । उसकी कार्य योजना को सावधानी से तैयार किया गया । चिटगांव के दो प्रमुख शस्त्रागारों पर कार्यवाई करना निश्चित हुआ । इसका उद्देश्य क्रांतिकारियों के लिए हथियार प्राप्त करना था । चिटगांव और बंगाल के अन्य भागों के बीच टेलीफ़ोन, टेलीग्राम और रेलवे संचार व्यवस्थाएं भंग कर दी गयीं । जिन युवा क्रांतिकारियों को शस्त्रागारों के छापे में भाग लेना था, उन्हें चुना गया और सावधानी से उन्हें प्रशिक्षित किया गया । 18 अप्रैल, 1930 को रात के दस बजे कार्यवाई शुरू करने की योजना बनाई गयी । गणेश घोष के नेतृत्व में छः युवकों ने पुलिस शस्त्रागार पर कब्ज़ा किया और "इन्क़लाब ज़िन्दाबाद," "साम्राज्यवाद का नाश हो", "गांधी राज्य की स्थापना हो गयी है" के नारे लगाये । क्रांतिकारियों के दूसरे समूह ने सहायक सेना शस्त्रागार पर कब्ज़ा कर लिया । छापा, इंडियन रिपब्लिकन आर्मी चिटगाँव शाखा के नाम पर डाला गया । सभी क्रांतिकारी समूह पुलिस शस्त्रागार के बाहर इकट्ठे हो गये । सूर्यसेन को औपचारिक रूप से प्रांतीय क्रांतिकारी सरकार का अध्यक्ष चुना गया । अंग्रेज़ी झंडे को नीचे उतार दिया गया और "इन्क़लाब ज़िन्दाबाद" के नारों तथा वंदेमातरम् के घोष के साथ राष्ट्रीय ध्वज फहराया गया ।

चूंकि ब्रिटिश फ़ौज के साथ, जो तुरंत ही आने वाली थी, लड़ना संभव नहीं था, क्रांतिकारियों ने जलालाबाद पहाड़ी पर मोर्चा जमाया, जहाँ 22 अप्रैल को वे शत्रुसेना के हज़ारों सिपाहियों से घिर गये । भीषण और वीरोचित लड़ाई के बाद 12 क्रांतिकारी मारे गये । सूर्यसेन ने आमने-सामने के युद्ध को छोड़कर आस-पास के गांवों में रहकर छापामार युद्ध शुरू करने का निश्चय किया । कठोर दमन के बावजूद क्रांतिकारियों को गांव वालों, जिसमें अधिकांश मुस्लिम थे, के आश्रय और सहायता के कारण लगभग तीन वर्षों तक सुरक्षा मिली । अंत में 16 फ़रवरी, 1933 को सूर्यसेन को गिरफ़्तार कर लिया गया और 12 जनवरी, 1934 को उन्हें फांसी दे दी गयी ।

बंगाल के लोगों पर चिटगांव शस्त्रागार के छापे का बहुत प्रभाव पड़ा । जैसा कि एक सरकारी रिपोर्ट में कहा गया है कि—"युवा वर्ग पर अब और अधिक प्रतिबंध नहीं लगाया जा सकता था । विभिन्न आतंकवादी समूहों में बड़ी संख्या में लगातार भर्ती होने लगी" । यहाँ तक कि अधिकारी वर्ग, पुलिस और सेना पर भी इसका प्रभाव पड़ा । इस संबंध में कल्पना जोशी ( उस समय दत्ता ) ने एक दिलचस्प घटना का उल्लेख किया है । मई 1933 में भयंकर लड़ाई के बाद जब कल्पना दत्ता सहित पूरे समूह ने आत्मसमर्पण किया, उस समय जाट रेंजीमेंट के एक सूबेदार ने कल्पना दत्ता को थप्पड़ मार दिया । तुरन्त ही अन्य सैनिकों ने उसे घेर लिया और सूबेदार को चेतावनी दी कि "उसे छूना नहीं है । अगर तुमने एक बार फिर उस पर हाथ उठाया तो हम तुम्हारा आदेश नहीं मानेंगे" ।

शस्त्रागार छापे की घटना के परिणामस्वरूप क्रांतिकारी गतिविधियों में पुनः नयी चेतना आयी । केवल मिदनापुर में ही तीन दण्डाधिकारियों की हत्या कर दी गयी । पुलिस के दो इंसपेक्टर जनरल को मार डाला गया और दो गवर्नरों की हत्या का प्रयास किया गया ।

सरकार ने दमनकारी रुख़ अपनाया, लगभग 20 दमनकारी ऐक्ट पारित किये गये । चिटगाँव के अनेक गावों को जलाया गया तथा अन्य बहुतों पर जुर्माना लगाया गया । राष्ट्रवादियों की अंधाधुध गिरफ़्तारी हुई । 1933 में उन्होंने राजद्रोह के अपराध में जवाहरलाल नेहरू को गिरफ़्तार करके दो वर्ष के लिए जेल भेज दिया, क्योंकि उन्होंने क्रांतिकारी आतंकवाद की राजनीति की आलोचना करते हुए भी क्रांतिकारियों की वीरता की प्रशंसा और पुलिस दमन की निंदा की ।

बंगाल में क्रांतिकारी आतंकवाद ने एक नयी अवस्था में प्रवेश किया, जिसके तीन प्रमुख पहलू थे । पहला पक्ष बड़ी संख्या में युवतियों द्वारा भाग लेना था । सूर्यसेन के दल में इनका काम केवल आश्रय देना या संदेशवाहक और हथियार संवाहक का ही नहीं था बल्कि साथ-साथ लड़ना भी था । चिटगांव के पहाड़ताली में रेलवे इन्सटीट्यूट पर छापा मारते हुए प्रीतिलता वाडेकर की मृत्यु हो गयी थी जबकि कल्पना दत्ता को गिरफ़्तार किया गया और सूर्यसेन के साथ ही उन पर मुक़द्दमा चलाया गया तथा उन्हें आजीवन कारावास की सज़ा दी गई । दिसम्बर 1931 में शांतिघोष और सुनीति चौधरी नामक कोमिला की दो स्कूली छात्राओं ने ज़िलादंडाधिकारी की गोली मार कर हत्या कर दी । फ़रवरी 1932 में बीना दास ने दीक्षान्त समारोह में अपनी डिग्री लेते हुए गवर्नर को गोली मार कर हत्या कर दी ।

चिटगाँव शस्त्रागार के छापे से यह स्पष्ट हो गया कि बंगाल के पुराने क्रांतिकारियों तथा उत्तर भारत के क्रांतिकारियों के विपरीत बंगाल में नये विद्रोही दल, सशस्त्र विद्रोह की ओर बढ़ रहे थे । यद्यपि वे सशस्त्र विद्रोह को ठीक प्रकार से संगठित करने में असफल रहे परन्तु उनकी गतिविधियों की दिशा स्पष्ट थी ।

बंगाल के क्रांतिकारी आतंकवादी सांप्रदायिक नहीं थे । परंतु शुरू में उनकी विचारधारा हिंदू धर्म से प्रभावित थी । 1920 और 1930 के क्रांतिकारियों ने धीरे-धीरे अपनी विचारधारा से धार्मिकता को त्याग दिया । अब बहुत से दलों में मुसलमानों को सम्मिलित किया गया । चिटगांव दल में सत्तार, मीर अहमद, फ़कीर अहमद मियां और तुनुमियां जैसे बहुत से मुसलमानों को सम्मिलित किया गया । सूर्यसेन और उनके सहयोगियों को मुसलमान गांव वालों ने सक्रिय सहयोग दिया । इस कारण वे लगभग तीन वर्ष तक गिरफ़्तार नहीं किये जा सके । कलकत्ता के अब्दुल रज़ाक ख़ान एक विद्रोही दल के संस्थापक थे । उन्होने युगान्तर, अनुशीलन तथा अन्य क्रांतिकारी दलों के साथ सहयोग किया । सेराज-उल-हक़ और हमीद-उल-हक़ को उनकी क्रांतिकारी गतिविधियों के कारण अंडमान भेज दिया गया । रज़िया ख़ातून तथा बहुत से अन्य मुसलमान युगान्तर और अनुशीलन समितियों से संबंधित थे । बोगरा के डा० फ़ज़ल-उल-क़ादिर चौधरी ने हिजली डकैती कांड में भाग लिया और उन्हें अंडमान भेज दिया गया ।

बंगाल के क्रांतिकारी भगत सिंह और उनके सहयोगियों के विपरीत सामाजिक प्रगतिशील आर्थिक कार्यक्रम को विकसित करने में असफल रहे । स्वराज पार्टी में काम करने वाले बहुत से क्रांतिकारी, ज़मींदारों के विरुद्ध किसानों का समर्थन करने में असमर्थ रहे ।

## 24.8 क्रांतिकारी आतंकवादी आंदोलन का पतन

1930 में क्रान्तिकारी आतंकवादी आंदोलन का धीरे-धीरे पतन होने लगा । ऐसा अनेक कारणों से हुआ । गांधी जी द्वारा निर्देशित राष्ट्रीय आंदोलन की मुख्यधारा हिंसा और आतंकवाद के विरुद्ध थी परन्तु फिर भी राष्ट्रीय आंदोलन के बहुत से नेताओं ने युवा क्रांतिकारियों के पराक्रम की प्रशंसा की और

अदालत में उनकी पैरवी की तथा उनके विरुद्ध किये गये पुलिस दमन के आदेशों की निंदा की। सरकार की कठोर कार्रवाई से धीरे-धीरे क्रांतिकारी दल कमज़ोर हो गये। 27 फरवरी, 1931 में इलाहाबाद के सार्वजनिक पार्क में चन्द्रशेखर आज़ाद की पुलिस मुठभेड़ में मृत्यु हो गयी। वास्तव में इसके साथ ही उत्तर भारत में क्रांतिकारी आतंकवाद का पतन हो गया। सूर्यसेन की शहादत के पश्चात् बंगाल में क्रांतिकारी आतंकवाद लगभग समाप्त हो गया। जेल या अंडमान में रह रहे क्रांतिकारियों ने अपनी राजनीति के विषय में पुनर्विचार आरंभ किया। बड़ी संख्या में इन्होंने मार्क्सवाद को अपनाया जैसा कि भगत सिंह और उनके साथियों ने 1920 के दशक में किया था। बहुत से व्यक्ति कम्यूनिस्ट पार्टी, कांग्रेस सोशलिस्ट पार्टी, क्रांतिकारी सोशलिस्ट पार्टी तथा अन्य वामपंथी गुटों में शामिल हो गये। अन्य व्यक्तियों ने कांग्रेस के गांधीवादी दल को अपना लिया।

7. शहीद चन्द्रशेखर आज़ाद

1920 और 1930 में क्रांतिकारी आतंकवादी, जन आधारित सशस्त्र संघर्ष के उद्देश्य को पूरा करने में असफल रहे। वे जनता के साथ विशेष संबंध स्थापित करने में भी असफल रहे। फिर भी उन्होंने उपनिवेशवाद के विरुद्ध चल रहे राष्ट्रीय संघर्ष में महत्वपूर्ण योगदान दिया। उनके साहस, बलिदान और गहन देशप्रेम ने भारतीय जनता को जागृत किया। विशेष रूप से युवाओं में स्वाभिमान और आत्मविश्वास जगाया। उत्तर भारत में भगत सिंह और उनके सहयोगियों ने समाजवादी विचारों और आंदोलन के बीज बोये।

**बोध प्रश्न 3**

1) बंगाल में क्रांतिकारी आतंकवाद की मुख्य गतिविधियों का वर्णन पांच पंक्तियों में कीजिए।

..........................................................................................................

..........................................................................................................

..........................................................................................................

..............................................................................................................

..............................................................................................................

2) बंगाल के लोगों पर चिटगांव शस्त्रागार छापे का क्या प्रभाव पड़ा ? पांच पंक्तियों में लिखिए ।

..............................................................................................................

..............................................................................................................

..............................................................................................................

..............................................................................................................

..............................................................................................................

3) भारत में क्रांतिकारी आतंकवादी आंदोलन के पतन के क्या कारण थे ? पांच पंक्तियों में लिखिए ।

..............................................................................................................

..............................................................................................................

..............................................................................................................

..............................................................................................................

..............................................................................................................

## 24.9 सारांश

इस इकाई के अंतर्गत आपने 1922 के बाद पंजाब, उत्तर प्रदेश, बिहार, मध्य प्रदेश और बंगाल में विकसित हुए क्रांतिकारी आतंकवाद की दो प्रमुख धाराओं (पहलुओं) का अध्ययन किया ।

आपने यह भी पढ़ा कि क्रांतिकारियों ने स्वयं को किस प्रकार संगठित किया, उनकी नीति क्या थी और किस प्रकार उनकी गतिविधियाँ एक विचारधारा से प्रेरित थीं । ऊपर बतलाये गये दोनों क्षेत्रों में क्रांतिकारी, व्यक्तिगत पराक्रम के कार्यों से हटकर जन-आधारित सशस्त्र संघर्ष की ओर बढ़े । यद्यपि यह आंदोलन जन-आधारित सशस्त्र संघर्ष के अपने उद्देश्य को पूरा करने में असफल रहा, परन्तु उस समय के उपनिवेशवाद के विरुद्ध राष्ट्रीय संघर्ष में इसने महत्वपूर्ण योगदान दिया । क्रांतिकारी आतंकवादियों के साहस, बलिदान और देशभक्ति से भारतीय नवयुवकों को प्रेरणा मिली और उनमें स्वाभिमान तथा आत्मविश्वास जागृत हुआ ।

## 24.10 शब्दावली

**वयस्क मताधिकार** : 21 वर्ष और इससे अधिक आयु के सभी नागरिकों को वोट देने का अधिकार ।

**कम्यूनिज्म (साम्यवाद)** : मार्क्स के अनुसार इतिहास की वह अंतिम अवस्था जिसमें वर्गविहीन समाज की कल्पना की गयी ।

**शहादत** : एक ऐसी स्थिति जिससे आत्म बलिदान करना पड़े ।

**मार्क्सवाद** : मार्क्स की विचारधारा, समाज के विकास में उन्होंने समग्र शासन व्यवस्था तथा संस्कृति के संबंध में उत्पादक शक्तियों की भूमिका पर बल दिया ।

**क्रांतिकारी आतंकवादी आंदोलन** : एक ऐसा आंदोलन, जिसका उद्देश्य हिंसात्मक गतिविधियों द्वारा आतंक फैलाकर समाज में परिवर्तन लाना था ।

**समाजवाद** : मार्क्स के अनुसार साम्यवाद में संक्रमण एक ऐसी अवस्था है, जिसे सर्वहारा वर्ग का अधिनायकत्व कहा जाता है, जिसके नियंत्रण में संसाधनों और संपत्ति का समान वितरण होता है ।

## 24.11 बोध प्रश्नों के उत्तर

**बोध प्रश्न 1**

1) आपके उत्तर में निम्नलिखित बातें होनी चाहिए । समाजवादी विचारों और दलों का विकास, जुझारू ट्रेड यूनियन आंदोलन और सोवियत रिपब्लिक की स्थापना । देखिए भाग 24.2

2) आपके उत्तर में निम्नलिखित बातें होनी चाहिए :

औपनिवेशिक शासन के विरुद्ध सशस्त्र क्रांति की योजना, वयस्क मताधिकार के आधार पर संघीय गणतंत्र की स्थापना आदि । भाग 24.3 देखिए ।

3) आपके उत्तर में निम्नलिखित बातें होनी चाहिए । यह समाजवादी विचारों से प्रभावित था, इसका झुकाव जन-आधारित सशस्त्र संघर्ष की ओर था आदि । देखिए भाग 24.4 ।

**बोध प्रश्न 2**

1) आपके उत्तर में निम्नलिखित बातें होनी चाहिए :

इसने विस्तृत समाजवादी प्रजातांत्रिक और धर्म निरपेक्ष ढांचे में कार्यक्रम को विकसित किया, सशस्त्र क्रांति द्वारा सामाजिक क्रांतिकारी सिद्धांतों आदि की शिक्षा देने के लिए संघीय गणतंत्र स्थापित करना । देखिए उपभाग 24.5.1 ।

2) आपके उत्तर में निम्नलिखित बातें होनी चाहिए :

मार्क्सवाद और समाजवाद की ओर झुकाव, आतंकवाद और व्यक्तिगत पराक्रम के कार्य का परित्याग, यह विश्वास कि भारत को व्यापक लोकप्रिय जन-आधारित आंदोलन द्वारा ही स्वतंत्र किया जा सकता है आदि । देखिए उपभाग 24.5.2 ।

3) बिजॉय सिन्हा, शिव वर्मा आदि । देखिए उपभाग 24.5.2 ।

**बोध प्रश्न 3**

1) आपके उत्तर में निम्नलिखित बातें होनी चाहिए :

बड़े पैमाने पर प्रेस में प्रचार आरंभ हुए और गुप्त गतिविधियाँ शुरू की गयीं । चूंकि कांग्रेस का जन-आधार था, अतः गांवों तथा प्रांतीय स्तर के कांग्रेसी संगठनों में क्रांतिकारी कार्य करते रहे । जनता के सशस्त्र विद्रोह द्वारा राष्ट्र को स्वतंत्र कराने की नीति को स्वीकार किया गया आदि । देखिए भाग 24.6 ।

2) आपके उत्तर में निम्नलिखित बातें होनी चाहिएं :

अधिकारी वर्ग, पुलिस और सेना चिटगांव शस्त्रागार छापे के प्रभाव में आ गये थे, महिलाओं सहित अधिक से अधिक व्यक्तियों ने क्रांतिकारी आंदोलन में भाग लिया आदि । देखिए भाग 24.7 ।

3) आपके उत्तर में निम्नलिखित बातें होनी चाहिएं :

राष्ट्रीय आंदोलन की मुख्यधारा ने आतंकवाद का विरोध किया । बहुत से क्रांतिकारी नेताओं की मृत्यु, सरकारी दमन आदि । देखिए भाग 24.8 ।

# इकाई 25 सविनय अवज्ञा आंदोलन : 1930-1934

## इकाई की रूपरेखा


25.0 उद्देश्य

25.1 प्रस्तावना

25.2 पृष्ठभूमि

25.3 सविनय अवज्ञा—मार्च, 1930-1931

- 25.3.1 गांधी जी के प्रयास
- 25.3.2 आंदोलन की शुरुआत
- 25.3.3 आंदोलन का प्रसार
- 25.3.4 विभिन्न समुदायों की प्रतिक्रिया
- 25.3.5 क्षेत्रीय विभिन्नताएं

25.4 समझौते के माह, मार्च-दिसम्बर 1931

25.5 1932-34 : सविनय अवज्ञा आंदोलन की दुबारा शुरुआत

25.6 आंदोलन के बाद की स्थिति

25.7 सारांश

25.8 शब्दावली

25.9 बोध प्रश्नों के उत्तर


## 25.0 उद्देश्य

यह इकाई 1930-34 के दौरान कांग्रेस द्वारा गांधी जी के नेतृत्व में चलाये गये सविनय अवज्ञा आंदोलन की चर्चा करने का प्रयास करती है । इस इकाई को पढ़ने के बाद आप :

- यह समझ सकेंगे कि किन परिस्थितियों में सविनय अवज्ञा आंदोलन की शुरुआत हुई,
- यह बता पायेंगे कि आंदोलन किस तरह शुरू हुआ और इसका कार्यक्रम क्या था,
- यह समझा सकेंगे कि आंदोलन को कुछ समय के लिए क्यों स्थगित कर दिया गया,
- यह भी बता पायेंगे कि क्यों यह अपना लक्ष्य प्राप्त करने में असफल रहा,
- यह समझ सकेंगे कि भारतीय इतिहास में इस आंदोलन का क्या महत्व है ।

## 25.1 प्रस्तावना

खंड पांच की इकाई 18 में आपने कांग्रेस द्वारा शुरू किये गये असहयोग आंदोलन के बारे में पढ़ा । हालांकि यह आंदोलन अपनी लक्ष्य-प्राप्ति में असफल रहा, लेकिन फिर भी यह लाखों लोगों को अंग्रेज़ी राज के ख़िलाफ़ हुए आंदोलन से जोड़ने में सफल रहा । आठ साल के अंतराल के बाद 1930 में कांग्रेस ने एक बार फिर एक जन-आंदोलन का आह्वान किया, जिसे सविनय अवज्ञा आंदोलन के नाम से जाना जाता है । असहयोग आंदोलन को वापस लेने के बाद से भारतीय परिस्थितियों में बदलाव आए और भारतीय समस्याओं के प्रति अंग्रेज़ सरकार के न बदलने वाले रवैये ने सविनय अवज्ञा आंदोलन के लिए पृष्ठभूमि तैयार की । इस इकाई में हम सविनय अवज्ञा आंदोलन की पृष्ठभूमि, अवस्थानुसार विकास, तथा अंततः इसकी असफलता और परिणामों की चर्चा करेंगे ।

## 25.2 पृष्ठभूमि

फ़रवरी 1922 में चौरी-चौरा घटना के बाद गांधी जी द्वारा अचानक असहयोग आंदोलन वापस ले लेने के निर्णय का अनेकों कांग्रेसी नेताओं पर प्रभाव पड़ा, उनका उत्साह भंग हुआ जिससे राष्ट्रीय आंदोलन तेज़ी से कमज़ोर होता चला गया । मार्च, 1923 में अखिल भारतीय कांग्रेस की सदस्यता घट कर 106,000 तक पहुँच गई और मई, 1929 में सिर्फ़ 56,000 रह गयी । दोहरे शासन

अंदर से तोड़ने का स्वराजियों का कार्यक्रम, (इसके बारे में आप इकाई 21 में पढ़ चुके हैं) परिषद् और नगर पालिकाओं की राजनीति तक ही सीमित होकर रह गया । "परिवर्तन विरोधी गुट", जिसने गावों में गांधी के रचनात्मक कार्यों पर ज़ोर दिया था, छिन्न-भिन्न हो गया और अपने आपको उन्होंने राजनीतिक घटनाओं से अलग रखा । असहयोग-ख़िलाफ़त आंदोलन के दिनों की असाधारण हिंदू-मुसलमान एकता 1920 के मध्य में हुए व्यापक साम्प्रदायिक दंगों में विलीन हो गयी । उदाहरण के लिए सितम्बर, 1924 में उत्तर पश्चिमी सीमांत (फ्रंटियर) प्रांत के क्षेत्र कोहाट में हिंदू-विरोधी हिंसा भड़की । अप्रैल और जुलाई, 1926 के बीच कलकत्ता में दंगों की तीन घटनाओं में लगभग 138 लोग मारे गये । उसी साल ढाका, पटना, रावलपिंडी, दिल्ली और यू.पी. में सांप्रदायिक उपद्रव हुए । बहुत से सांप्रदायिक संगठन बन गए । कुछ जगहों पर यह देखा गया कि कुछ लोग जो स्वराजियों के साथ थे वे हिन्दू महासभा के भी सदस्य थे । वैकल्पिक संविधान के लिए नेहरू रिपोर्ट प्लान पर 1927-28 में जिन्ना से समझौते की बातचीत प्रमुखतः हिंदू महासभा के विरोध और इसको लेकर जिन्ना की हठधर्मिता के कारण टूट गयी ।

1919-22 जैसी हिंदू-मुसलमान एकता फिर कभी देखने में नहीं आयी, किंतु 1928 के बाद से ऐसे अनेक संकेत मिलते हैं जिनसे पता चलता है कि साम्राज्यवाद विरोधी आंदोलन बढ़ रहा था । ये संकेत निम्न बातों में देखे जा सकते हैं :

- साइमन कमीशन के बहिष्कार के लिए अनेक शहरों में हुए प्रदर्शन और हड़तालें,
- बम्बई और कलकत्ता में जुझारू कम्युनिस्टों के द्वारा चलाया गया मज़दूर आंदोलन, जिसने भारतीय व्यापारियों, अंग्रेज़ अफ़सरों तथा पूँजीपतियों सभी को भयभीत कर दिया,
- बंगाल और उत्तर भारत में क्रांतिकारी गुटों का फिर से उभर आना (इसमें नये धर्मनिरपेक्ष और समाजवादी स्वर लिए हुए भगत सिंह की हिंदुस्तान सोशलिस्ट रिपब्लिकन एसोसिएशन शामिल थी),
- विभिन्न क्षेत्रों के किसान आंदोलन, ख़ासकर 1928 में गुजरात में, वल्लभ भाई पटेल के नेतृत्व में लगान बढ़ाने के सरकारी प्रयासों के ख़िलाफ़ हुआ बारदोली का सफल सत्याग्रह ।

जवाहरलाल नेहरू और सुभाष चंद्र बोस के नेतृत्व में कांग्रेस का वामपंथी दल इसी काल में उभर रहा था, जिसका नारा था डोमिनियन स्थिति ही नहीं हमें पूर्ण स्वराज चाहिए । बहुत पशोपेश के बाद गांधी जी ने कांग्रेस मत में इस परिवर्तन को दिसम्बर, 1929 में लाहौर के अधिवेशन में स्वीकार कर लिया जिसने 1930-34 में देशव्यापी संघर्ष के अगले प्रमुख दौर के लिए पृष्ठभूमि तैयार की । नयी लहर के आने के ठीक पहले के वर्षों में जो पतन और विखंडन हो चुका था उसे देखते हुए, आप जानना चाहेंगे कि यह कैसे संभव हुआ, "कैम्ब्रिज स्कूल" के इतिहासकारों ने ब्रिटिश नीतियों और राष्ट्रीय आंदोलन के उत्थान और पतन के बीच एक सीधे सहज संबंध का संकेत करते हुए इसे स्पष्ट करने की कोशिश की है । साइमन कमीशन का यह प्रभाव पड़ा कि "मृतप्राय राष्ट्रवाद" पुनर्जीवित हो उठा । इरविन ने गांधीजी के साथ समानता के स्तर पर बात करके कांग्रेस को महत्ता दी, किंतु गहराई से देखने पर यह समानता संदेह उत्पन्न करती है क्योंकि ब्रिटिश नीति प्रायः राष्ट्रवादी दबाव के परिणामस्वरूप बदलती थी, न कि इसके विपरीत । उदाहरण के लिए, साइमन कमीशन ने, जिसमें सभी अंग्रेज़ थे, भारतीयों की मांगों के संदर्भ में मांटेग्यू-चेम्सफोर्ड सुधारों को भी वापस लेने की योजना बनायी थी किंतु 1930 की जन-लहर ने अंग्रेज़ों को केंद्र में किसी तरह की भी ज़िम्मेदार सरकार बनाने का वायदा करने के लिए मजबूर कर दिया । इसके अतिरिक्त राष्ट्रीय आंदोलन और जनता के महान आत्म बलिदान ने एक बार फिर फ़रवरी-मार्च, 1931 में इरविन को गांधी जी के साथ बातचीत करने के लिए मजबूर कर दिया ।

1928 और 1929 के इस पूरे काल में हम ब्रिटिश प्रभुसत्ता और विभिन्न भारतीय हितों के बीच राजनीतिक और आर्थिक तनावों को बढ़ता हुआ पाते हैं :

- 1929 के अंत में आयी विश्वव्यापी मंदी के प्रभाव के फलस्वरूप ये अंतर्विरोध और अधिक तीव्र हो गये थे । व्यापारिक वर्ग ब्रिटिश शुल्क नीति से खुश नहीं था । लंकाशायर के कपड़ों का आयात फिर से बढ़ गया था और कलकत्ता में बिड़ला और अंग्रेज़ों के जूट संबंधी हितों तथा बम्बई में जहाज़रानी को लेकर विरोध बढ़ रहा था ।

- जिन मज़दूरों की बड़े पैमाने पर छटनी हुई थी उन्होंने अभूतपूर्व जुझारू और संगठन शक्ति का प्रदर्शन करते हुए आंदोलन शुरू कर दिया ।

- कृषि उत्पादन में आये गतिरोध और 1920 के अंतिम चरण से अंग्रेज़ों द्वारा रैयतवाड़ी क्षेत्र में लगान बढ़ाने के प्रयत्नों के फलस्वरूप गांवों में तनाव बढ़ गया और बारदोली विजय के बाद कहीं जाकर इस प्रकार की कोशिशें हमेशा के लिए समाप्त हो पायीं ।

जनता में सामाजिक आर्थिक असंतोष ने अनिवार्यतः या अपने आप ही ब्रिटिश विरोधी रुख नहीं अपना लिया, क्योंकि जिन लोगों द्वारा उसका प्रत्यक्ष दमन किया जाता था, उनमें प्रायः भारतीय ज़मींदार, साहूकार या मिल-मालिक ही थे । ये वे समूह थे जिनका राष्ट्रवादियों से संबंध हो सकता था या जिन्हें राष्ट्रवादी सामान्यतः अपनी तरफ रखने का प्रयास करते थे । फिर भी, 1930 में एक भारी देश-व्यापी लहर उठी । आइए देखें ऐसा क्यों और कैसे हुआ ।

**बोध प्रश्न 1**

1) भारतीय राजनीति में 1928 और उसके बाद की वे कौन सी घटनाएं थीं जिन्होंने सविनय अवज्ञा आंदोलन की पृष्ठभूमि तैयार की । लगभग सौ शब्दों में उत्तर दीजिए ।

......................................................................................................................

......................................................................................................................

......................................................................................................................

......................................................................................................................

......................................................................................................................

......................................................................................................................

......................................................................................................................

......................................................................................................................

......................................................................................................................

......................................................................................................................

2) निम्नलिखित कथनों में कौन सा सही (√) या गलत (×) है ।

अ) असहयोग आंदोलन के बाद के काल में सुभाष चंद्र बोस और जवाहरलाल नेहरू की पहल से कांग्रेस में एक "वामपंथ" उभर रहा था ।

ब) पूर्ण स्वराज का प्रस्ताव 1929 में अखिल भारतीय कांग्रेस कमेटी के लाहौर अधिवेशन में पारित किया गया ।

स) विश्वव्यापी मंदी से सामाजिक-आर्थिक असंतोष बढ़ गया ।

द) सामाजिक-आर्थिक असंतोष ही ब्रिटिश-विरोधी आंदोलन का कारण बना ।

## 25.3 सविनय अवज्ञा—मार्च, 1930-1931

लाहौर में हुए कांग्रेस अधिवेशन (1929) ने गांधी जी को पूर्ण स्वराज के लिए अहिंसात्मक संघर्ष का विकल्प चुनने का तरीका प्रदान किया । यह तय किया गया कि 26 जनवरी, 1930 को पूरे भारत में स्वतंत्रता की घोषणा की जाएगी या ज़्यादा से ज़्यादा लोगों द्वारा स्वतंत्रता की शपथ ली जायेगी । इसी तारीख को सविनय अवज्ञा आंदोलन भी शुरू होना था । इसे स्वतंत्रता दिवस घोषित किया गया ।

### 25.3.1 गांधी जी के प्रयास

गांधी जी अब भी अपने कार्यक्रम की योजना के बारे में निश्चित नहीं थे । आंदोलन शुरू करने से पहले एक बार फिर उन्होंने सरकार से समझौता करने की कोशिश की । उन्होंने प्रशासनिक सुधार के लिए "ग्यारह सूत्र" पेश किए और कहा कि यदि लॉर्ड इरविन उन्हें स्वीकार कर लेंगे तो संघर्ष की आवश्यकता नहीं होगी । इनमें महत्वपूर्ण मांगे थीं :

1) रुपये की विनिमय दर घटा कर 1 शिलिंग 4 पेंस की जाए,
2) भूमि लगान में 50 फीसदी कमी कर दी जाए और इसे विधायी नियंत्रण (लेजिस्लेटिव कंट्रोल) का विषय बनाया जाए,
3) नमक-कर और सरकार का नमक पर एकाधिकार समाप्त किया जाए,
4) सर्वोच्च श्रेणी की सेवाओं का वेतन घटा कर आधा कर दिया जाए,
5) सेना खर्च में 50% कमी की जाए,
6) भारतीय कपड़ा-उद्योग और जंहाज़रानी उद्योग को संरक्षण दिया जाए,
7) सभी राजनीतिक कैदियों को रिहा किया जाए ।

अनेकों लेखकों को यह मांग-पत्र, पूर्ण स्वराज से पीछे हटना जान पड़ा । जवाहरलाल नेहरू ने अपनी

आत्मकथा में लिखा :

"हमारी राजनीतिक और सामाजिक सुधारों की सूची बनाने का क्या अर्थ था जबकि हम स्वतंत्रता के संबंध में बात कर रहे थे । गांधी जी ने जब इस शब्द का प्रयोग किया तो क्या उन्होंने इसका वही अर्थ लगाया जो हम लगा रहे थे या फिर हम लोग कोई भिन्न भाषा बोल रहे थे ।"

गांधी जी के प्रस्ताव पर सरकार की प्रतिक्रिया नकारात्मक थी । गांधी जी अभी भी अनिश्चित थे । उन्होंने वाइसरॉय को लिखा :

"किंतु यदि आपके पास इन बुराइयों से निपटने का कोई उपाय नहीं है और मेरे पत्र का आप पर कोई प्रभाव नहीं पड़ता है तो आश्रम के सहयोगियों के साथ नमक-कानून के प्रावधानों का उल्लंघन करने के लिए मुझे कार्रवाई करनी होगी । मैं इस कर (टैक्स) को ग़रीब आदमी के दृष्टिकोण से सभी को प्रभावित करने वाला मानता हूँ ।"

वाइसरॉय ने गांधी जी को एक संक्षिप्त उत्तर दिया, जिसमें उन्होंने खेद प्रकट किया कि "गांधी ऐसा मार्ग अपना रहे हैं जिससे स्पष्टतः क़ानून का उल्लंघन होगा और जो सार्वजनिक शांति के लिए ख़तरा है ।"

गांधी जी ने अपने प्रतिउत्तर में कहा, "मैंने घुटने टेक कर रोटी मांगी और बदले में मुझे पत्थर मिला । अंग्रेज़ी राष्ट्र सिर्फ बल प्रयोग का जवाब देता है और मैं वाइसरॉय के जवाब से चकित नहीं हूँ ।"

## 25.3.2 आंदोलन की शुरुआत

गांधी जी ने निर्णय लिया । 12 मार्च, 1930 को अपने 78 चुने हुए अनुयायियों के साथ गांधी जी ने साबरमती आश्रम से दांडी समुद्र तट तक की ऐतिहासिक यात्रा शुरू की । वहाँ गांधी जी और उनके अनुयायियों ने समुद्र से नमक बना कर नमक कानून तोड़ा । आंदोलन का कार्यक्रम इस प्रकार था :

क) हर जगह नमक कानून का उल्लंघन किया जाना ।

ख) विद्यार्थियों को कालेज छोड़ना चाहिए और सरकारी कर्मचारियों को नौकरी से इस्तीफ़ा देना चाहिए ।

ग) विदेशी कपड़ों को जलाया जाना चाहिए ।

घ) सरकार को कोई कर अदा नहीं किया जाना चाहिए ।

ङ) औरतों को शराब की दूकानों के आगे धरना देना चाहिए, इत्यादि ।

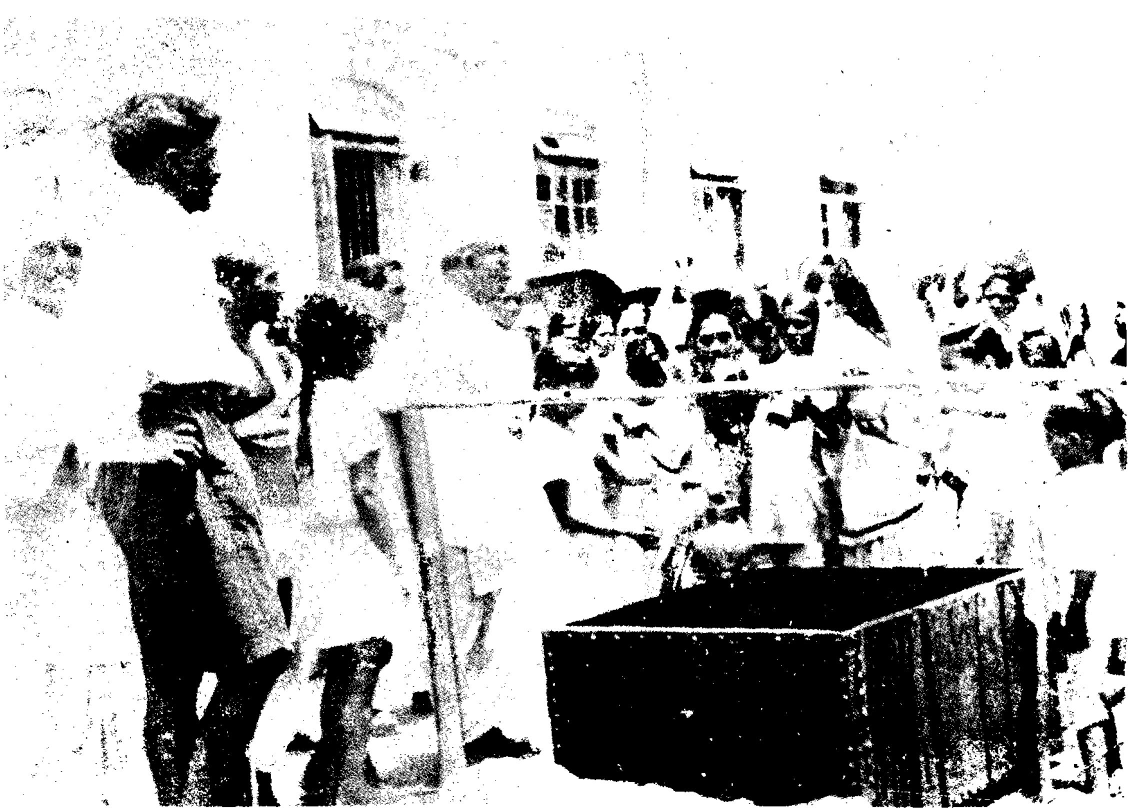

8. जन समूह नमक कानून का उल्लंघन करते हुये

शुरू में, केंद्रीय मुद्दे के रूप में नमक का चयन उलझन पैदा करने वाला जान पड़ा । शीघ्र ही घटनाओं ने इस चयन के व्यापक प्रभाव को उजागर कर दिया । बाद में इरविन ने गांधी जी से सहमति प्रकट की कि "आपने नमक के मसले पर एक अच्छी नीति तैयार की ।" नमक ग़रीव ग्रामीणों की एक ठोस और सर्वव्याप्त शिकायत थी, जो अपने आप में इस मायने में लाजवाब थी कि उसमें सामाजिक फूट का कोई आशय न था । खान-पान की आदतों के संबंध में, नमक से लोगों का रोज़मर्रा का वास्ता था । इसके साथ विश्वास, मेहमान-नवाज़ी, पारस्परिक कर्तव्य के आशय भी जुड़े हुए थे । इस अर्थ में वह दूरगामी भावात्मक तत्व रखता था । इसके अतिरिक्त नमक कानून तोड़ने का अर्थ सरकार के उस दावे को ठुकराना था जो मानता था कि जनता की निष्ठा उसके साथ है । तटीय इलाकों में जहाँ, पिछली शताब्दी से ब्रिटिश-आयात ने स्वदेशी नमक उत्पादन को नष्ट कर दिया था, अवैध नमक के निर्माण से लोगों को मामूली आमदनी मिल सकती थी, जो महत्वहीन नहीं थी । नमक निर्माण भी खादी उत्पादन की तरह, रचनात्मक कार्यो के गांधीवादी तरीकों का एक हिस्सा बन गया । गांधी के प्रभाव वाले ग्रामीण क्षेत्रों ने हर जगह नमक सत्याग्रह के लिए पहले स्वयंसेवक उपलब्ध कराये । सबसे महत्वपूर्ण यह है कि दांडी मार्च और उसके बाद नमक-क़ानून के देशव्यापी उल्लंघन ने अहिंसात्मक जन-संघर्ष की शक्ति का अत्यधिक प्रभावशाली प्रदर्शन किया ।

सरकार के सम्पूर्ण नैतिक अधिकार और उसकी अपने-आपको ग़रीबों का "माँ-बाप" कहने वाली पैतृक छवि नष्ट हो रही थी । नवम्बर, 1930 में मिदनापुर (बंगाल) के एक अतिरिक्त ज़िला अधिकारी ने लिखा कि अब वृद्ध और बुज़ुर्ग गाँव वाले भी "ढिठाई" से बात कर रहे थे । "एक साधारण किसान एकदम पालथी मारकर बैठ गया और व्यंग्य से हँसते हुए बोला, हम जानते हैं कि सरकार कितनी शक्तिशाली है ।"

### 25.3.3 आंदोलन का प्रसार

पुलिस और निम्न स्तर के प्रशासनिक अधिकारियों के सामाजिक बहिष्कार से अनेकों इस्तीफ़े दिये गये । अंग्रेज़ों द्वारा क्रूरता से चलाया गया दमन चक्र इस बात का प्रतीक था कि अंग्रेज़ ख़तरे की गंभीरता को अच्छी तरह समझ गये थे । जैसा कि अमरीकी पत्रकार वेब मिलर (Webb Miller) ने लिखा है "सत्याग्रहियों को निर्दयता से मारा-पीटा गया जबकि उन्होंने किसी प्रकार का प्रतिरोध भी नहीं किया ।" किंतु निहत्थे, मुक़ाबला न करने वाले सत्याग्रहियों द्वारा घृणित यंत्रणा को झेलने के दृश्य ने जिस तरह से स्थानीय सहानुभूति और आदर को जागृत किया उस तरह अन्य कोई नहीं कर पाता । नृशंस दमन ने पुलिस और स्थानीय अफ़सरों द्वारा किए गये छोटे-मोटे अत्याचारों के अनेकों मामलों की याद को जगा दिया, जिससे पूरे देश का संघर्ष गांव वालों के दिन प्रतिदिन के जीवन्त अनुभवों से जुड़ गया । यह सहानुभूति शीघ्र ही सहभागिता में बदल गयी, जिसने आंदोलन को अब तक के कांग्रेस संगठन और प्रचार के सीधे प्रभाव की संकीर्ण सीमा से कहीं ज़्यादा फैला दिया । लेकिन ऐसी सहभागिता अक्सर हिंसात्मक रूप ले लेती थी, जैसे कई बार गांव वालों द्वारा पुलिस पर आक्रमण से पता चलता है । वैसे भी अधिकांश कांग्रेस के नेताओं के शुरू में ही गिरफ्तार हो जाने से गांधी जी द्वारा आन्दोलन के लिए बनाये गये नियम कमज़ोर पड़ते चले गये ।

जब नमक सत्याग्रह अपनी चरम सीमा पर था, गांधी जी के सविनय अवज्ञा आंदोलन के बाहर या इसकी सीमाओं का अतिक्रमण करने वाली तीन प्रमुख विस्फोटक घटनाओं के कारण अंग्रेज चौकन्ने हो गये थे ।

1) 18 अप्रैल, 1930 को बंगाल के क्रांतिकारियों ने, चिटगाँव शस्त्रागार पर कब्ज़ा करके और 22 अप्रैल को जलालाबाद की पहाड़ियों पर जम कर लड़ाई करके, आतंकवादी आंदोलन के इतिहास में अत्यधिक शक्तिशाली और वीरोचित युग का शुभारंभ किया । बंगाल में क्रांतिकारी आतंकवाद 1930 में 56 घटनाओं के साथ (1919-29) के दशक की 47 घटनाओं की तुलना में समूचे सविनय अवज्ञा आंदोलन के साथ चला । चिटगाँव घटना के नेता सूर्यसेन 1933 तक गांवों में भूमिगत रहने में सफल हुए और वहां किसानों की सहानुभूति का एक नया रूप देखने को मिला । शिक्षित मध्यम वर्ग के सिर्फ़ युवा हिंदुओं के कहे जाने वाले आंदोलन में पहली बार मुसलमान भी शामिल हुए थे ।

2) पेशावर में 23 अप्रैल, 1930 को, ख़ान अब्दुल गफ़्फ़ार ख़ान की गिरफ्तारी ने एक व्यापक लहर फैलायी और गढ़वाल राइफल्स की टोली ने (मुसलमान भीड़ का सामना करते हुए हिंदू सिपाहियों ने) गोली चलाने से मना कर दिया । यह देशभक्तिपूर्ण आत्म-बलिदान, अहिंसा और साम्प्रदायिक एकता की एक ऐसी मिसाल है जो अच्छी तरह याद रखने के काबिल है ।

3) महाराष्ट्र के औद्योगिक शहर शोलापुर में, मई, 1930 के शुरू में, कपड़ा मज़दूरों की हड़ताल हुई,

शराब की दुकानों, पुलिस चौकियों और सरकारी भवनों पर हमले हुए : यहाँ तक कि कुछ दिनों के लिए समानांतर-सरकार जैसी स्थिति भी रही ।



मानसून के आने से ग़ैरक़ानूनी नमक बनना मुश्किल हो गया और कांग्रेस ने जनसंघर्ष के अन्य तरीक़ों को अपनाया । इन सब तरीकों की यही विशेषता रही कि सामाजिक रूप से एक को दूसरे से जोड़ने वाले मुद्दों को सावधानी से चुना गया और अनेक प्रकार की लोकप्रिय (Populist) गतिविधियों के द्वारा उन्हें व्यापक बनाया तथा उन्हें नया रूप प्रदान किया गया ।

मई, 1930 में कार्यकारिणी समिति ने रैयतवाड़ी इलाकों में भूमि करबंदी, ज़मींदारी क्षेत्रों में चौकीदारी (ग्रामीण-पुलिस) करबंदी (जो लगानबंदी जितना महत्वपूर्ण नहीं था) का समर्थन किया । समिति ने ग़रीब किसानों के, मुफ़्त चारे, लकड़ी और अन्य जंगल उत्पादों के बरसों पुराने अधिकार पर रोक लगाने वाले वन-कानून के शांतिपूर्ण उल्लंघन के लिये "वन सत्याग्रह" की स्वीकृति दी । सरकार ने बड़े पैमाने पर सम्पत्ति ज़ब्त करके इन करबंदी आंदोलनों को दबाया, फिर भी हज़ारों किसान बहादुरी से अपनी बात पर अड़े रहे और कई बार भारी संख्या में आसपास की रियासतों में चले जाते थे । ग्रामीण आंदोलनों ने उन सीमाओं का बार-बार अतिक्रमण किया जो गांधी जी ने निर्धारित की थीं । यह अतिक्रमण अनेक स्थानों पर पुलिस के साथ हुई हिंसात्मक मुठभेड़ों तथा मध्यप्रांत, महाराष्ट्र और कर्नाटक के जंगलों पर कबीलों द्वारा किये गये भारी हमलों के रूप में हुआ । यह अफ़वाह फैल गयी कि अंग्रेज़ी-राज का अंत निकट आ गया है ।

9. सविनय अवज्ञा आन्दोलन में जन भागीदारी

### 25.3.4 विभिन्न समुदायों की प्रतिक्रिया

असहयोग आंदोलन की तुलना में 1930 में शहरी बुद्धिजीवियों का समर्थन गांधीवादी राष्ट्रवाद को कम था, इसी तरह वकीलों के वकालत छोड़ने या विद्यार्थियों के सरकारी संस्थानों को छोड़ राष्ट्रीय विद्यालयों में दाखिला लेने की घटनाएं गिनी-चुनी थीं । बंगाल में, जुझारू शहरी शिक्षित युवावर्ग क्रांतिकारी-आतंकवाद से अधिक आकर्षित होने की ओर प्रवृत था । उत्तरी भारत के शहरों में थोड़े समय के लिए भगत सिंह की लोकप्रियता स्वयं गांधी जी के बराबर थी । 1919-22 की तुलना में राष्ट्रवाद का सबसे अधिक प्रत्यक्ष कमज़ोर पक्ष था, मुसलमानों की हिस्सेदारी जो बादशाह खान के नेतृत्व वाली उत्तर-पश्चिमी प्रांतों के "खुदाई खिद़मतगारों" के संगठन और दिल्ली जैसी जगहों को छोड़कर समग्र रूप में कम रही । उदाहरण के लिए इलाहाबाद में 1930 और 1933 के बीच सविनय अवज्ञा आंदोलन के 679 क़ैदियों में से सिर्फ़ 9 ही मुसलमान थे । मई और जुलाई, 1930 में ढाका शहर और किशोरगंज गांवों में सामाजिक असंतोष साम्प्रदायिकता में बदल गया तथा मार्च, 1931 में गांधी-इरविन समझौते के ठीक बाद कानपुर में बड़े पैमाने पर दंगे हुए । असहयोग आंदोलन के विपरीत सविनय अवज्ञा आंदोलन के साथ कोई प्रमुख मज़दूर-आंदोलन नहीं उभरा । शहरों में निरन्तर हड़तालें हो रहीं थीं किंतु कांग्रेस ने अपने कार्यक्रम में उद्योगों या संचार साधनों को प्रभावित करने वाली हड़तालों को शामिल नहीं किया था, ब्रिटिश अधिकारियों के लिए यह काफी राहत पहुंचाने वाली बात थी ।

इस तरह की कमज़ोरियों को (कम से कम सविनय अवज्ञा आंदोलन के शुरू के महीनों में) किसानों की भारी लामबंदी और व्यापारिक वर्गों से यथोचित समर्थन प्राप्त करके दूर किया गया । असहयोग आंदोलन के विपरीत इस आंदोलन में शुरू से ही कानून का उल्लंघन, गिरफ़्तारियों और मार-पीट का समावेश था । जेल जाने वालों की संख्या 92,214 थी जो 1921-22 की संख्या से तिगुनी थी । राष्ट्रीय आंदोलन के इस दौर में अहमदाबाद मिल-मालिकों, बम्बई के व्यापारियों और छोटे दुकानदारों (शहर के उद्योगपति कम उत्साही थे) और जी. डी. बिड़ला के नेतृत्व में कलकत्ता के मारवाड़ियों का समर्थन प्राप्त था । इसे पूंजीपतियों का आन्दोलन को समर्थन देने के उदाहरण के रूप में लिया जा सकता है। उदाहरण के लिए, अनेक शहरों के व्यापारियों ने कुछ महीनों के लिए विदेशी माल का आयात बंद करने की सामूहिक शपथ ली । पिकेटिंग और मंदी के समग्र प्रभाव से ब्रिटिश कपड़ों के आयात में आश्चर्यजनक गिरावट आई । 1929-30 में 124 करोड़ 80 लाख गज़ से यह 1930-31 में सिर्फ़ 52 करोड़ तीस लाख गज़ रह गया ।

10. महिलाएं और बच्चे आन्दोलन में भाग लेते हुए

सविनय अवज्ञा आंदोलन की एक अपूर्व और विलक्षण विशिष्टता औरतों की व्यापक हिस्सेदारी थी । जहाँ 1930 में कुछ स्नातकोत्तर महिला छात्राएं अपनी कक्षाओं में अध्यापकों के संरक्षण में जा रही थीं, वहीं सामाजिक रूप से कहीं अधिक संकीर्ण पेशों, व्यापार या किसान परिवारों की औरतें, दुकानों का घेराव और लाठियों का सामना कर रही थीं तथा जेल जा रहीं थीं । उत्तर प्रदेश के एक पुलिस अधिकारी ने महसूस किया कि "भारतीय औरतें एक ही समय में घरेलू और राष्ट्रीय स्वतंत्रता के लिए संघर्ष कर रही हैं..." हालांकि राजनीति में औरतों की अचानक सक्रिय हिस्सेदारी से परिवार के भीतर या बाहर उनकी परिस्थिति में कोई महत्वपूर्ण परिवर्तन नहीं आया । आख़िरकार, गांधी जी की अंहिसा औरतों की पारम्परिक छवि को पूर्णतः भंग करने की मांग नहीं कर रही थी बल्कि, पुरुष गतिविधियों को ही आत्मबलिदान, और पीड़ा सहने की स्वीकृति पर ज़ोर देकर कुछ हद तक "नारी-सुलभ गुणों" से सम्पन्न कर दिया गया था । गहरे धार्मिक परिवेश की गांधी जी की संतछवि शायद कहीं अधिक निर्णायक थी । कांग्रेस आंदोलन में शामिल होना एक नया धार्मिक मिशन था और इस संदर्भ में कुछ अतिक्रमणों की अनुमति थी या उन्हें गौरवान्वित भी किया जाता था; ठीक वैसे ही जैसे सदियों पहले मीरा एक संत के रूप में सम्मानित हुई थीं । औरतों की हिस्सेदारी के जिस रूप की तीव्र निन्दा हुई, वह था प्रत्यक्ष आतंकवादी कार्यों के साथ हत्या में हिस्सा लेना, जैसा कि बंगाल में अनेकों बार हुआ भी था । यहाँ तक कि रवीन्द्रनाथ टैगोर ने, जोकि औरतों की भूमिका के प्रश्न पर सामान्यतः औरों से अधिक प्रगतिशील थे, तब ऐसे नारी स्वभाव के प्रतिकूल (स्त्रियोचित) आचरण की निन्दा करते हुए **चार अध्याय** (1934) नामक एक उपन्यास लिखा ।

## 25.3.5 क्षेत्रीय विभिन्नताएँ

सविनय अवज्ञा आंदोलन पर हाल ही में हुए अनेकों क्षेत्रीय अध्ययनों के फलस्वरूप रोचक विभिन्नताएँ और अन्दरूनी बेचैनी प्रकाश में आयी हैं। गुजरात—ख़ासकर खेड़ा ज़िला, सूरत का बारदोली ताल्लुका, अहमदाबाद और बंबई शहर का गुजराती व्यापारिक और व्यावसायिक समुदाय—ये ऐसे क्षेत्र थे जो

11. कालाकांकर ( यू.पी.) का जत्था नमक बनाते हुए

गांधीवादी सत्याग्रह के माध्यम से संयत और संगठित किये गये थे । गांधी जी की नीतियाँ खेड़ा और बारदोली के पट्टीदार जैसे किसानों के हितों के साथ मेल खाती थीं जिनके पास काफ़ी ज़मीनें थीं । ये ऐसे क्षेत्र थे जहाँ बड़ी ज़मींदारी के न होने से लगान कोई बड़ा मुद्दा नहीं था । उन क्षेत्रों में जहाँ कांग्रेस संगठन कमज़ोर था, या जहां ज़मींदार-किसान का अंदरूनी विभाजन काफ़ी तीव्र था, ग्रामीण आंदोलन वहाँ अधिक अबाध गति से बढ़ गये थे । अतः मध्यप्रांतों, महाराष्ट्र या कर्नाटक में, जहां असहयोग आंदोलन का प्रभाव नगण्य था वहां गांधीवादी विचारों में नवीनता नज़र आती थी जबकि गुजरात, तटीय आंध्र या बिहार जैसे मज़बूत केन्द्रों में नहीं थी । संयुक्त प्रांत में ज़िला स्तर पर जो तुलनात्मक अध्ययन किये गये, उसने संगठन और जुझारूपन के बीच विपरीत संबंधों को उजागर किया है । आगरा ज़िले के कुछ भागों ने जिसमें कांग्रेस संगठन मज़बूत था और वहां बड़े ज़मींदारों की संख्या कम थी, बारदोली आंदोलन का ही अनुसरण किया । रायबरेली, जो कि ताल्लुकेदार प्रधान क्षेत्र था, उसमें ताल्लुकदारों पर किसानों का भारी दबाव था । यहां खादी या चरखे का नामोनिशान नहीं था । स्थानीय कार्यकर्त्ता यह प्रचार कर रहे थे कि ज़मीन भगवान की देन है और इसके मालिक केवल ज़मींदार ही नहीं हैं । बंगाल में, जहां कि कांग्रेस अपेक्षाकृत कमज़ोर और गुटबंदी का शिकार थी, पूर्वी ज़िलों में सम्प्रदायों और वर्गों में लगभग समानता तथा वामपंथ की ओर पहले से ही झुकाव होने से स्थिति और जटिल थी । पश्चिमी बंगाल के भागों जैसे मिदनापुर, आरामबाग तहसील और बांकुरा में शक्तिशाली गांधीवादी ग्रामीण आंदोलन हुए । किसानों में जिनमें खासी संख्या मुसलमानों की थी जो सविनय अवज्ञा से या तो अलग थे या उसके विरोधी थे, प्रजा आंदोलन उभर रहा था । एक जिले, तिपेरा में जहां मुसलमानों का बहुमत था, कांग्रेस कार्यकर्त्ता कृषि सुधारवाद को राष्ट्रवाद से इस तरीके से जोड़ रहे थे कि इसे सरकारी अधिकारियों और स्थानीय हिंदू ज़मींदारों द्वारा "घोर बोल्शेविक" आंदोलन घोषित किया गया ।

**बोध प्रश्न 2**

1) आंदोलन शुरू करने से पहले गांधी ने लॉर्ड इरविन के समक्ष क्या प्रस्ताव रखा था ? इससे क्या निष्कर्ष निकला ? लगभग 100 शब्दों में उत्तर दीजिए ।

..........................................................................................................

..........................................................................................................

..........................................................................................................

..........................................................................................................

..........................................................................................................

..........................................................................................................

..........................................................................................................

..........................................................................................................

..........................................................................................................

..........................................................................................................

2) सविनय अवज्ञा आंदोलन के कार्यक्रम क्या थे ? पांच पंक्तियों में उत्तर दीजिए ।

..........................................................................................................

..........................................................................................................

..........................................................................................................

..........................................................................................................

..........................................................................................................

3) नमक को केंद्रीय मुद्दे के रूप में क्यों चुना गया ? क़रीब पचास शब्दों में उत्तर दीजिए ।

..........................................................................................................

..........................................................................................................

..........................................................................................................

..........................................................................................................

..........................................................................................................

4) एक वाक्य में उत्तर लिखिए :

i) जंगल-सत्याग्रह से आप क्या समझते हैं ?

ii) कर बंदी आंदोलन पर सरकार की क्या प्रतिक्रिया थी ?

iii) असहयोग और सविनय अवज्ञा आंदोलन में मूल अंतर क्या था ?

## 25.4 समझौते के माह, मार्च-दिसम्बर, 1931

1930 के सितम्बर-अक्तूबर के आस-पास, सविनय अवज्ञा आंदोलन ने दूसरी अवस्था में प्रवेश किया जो पहले से अधिक प्रतिकूल था क्योंकि इस समय मंदी अपना प्रमुख प्रभाव दिखाने लगी, कर-बंदी के लिए दबाव बढ़ता गया और अक्तूबर में यू.पी. कांग्रेस को अनिच्छा से लगान अदा न करने की अनुमति देनी पड़ी । अनेक इलाकों में ग़रीब किसानों और जनजातियों की जुझारूता और उग्रता की घटनाएं कई गुना बढ़ गयीं । साथ ही सरकारी रिपोर्टों में कहा जाने लगा कि शहरी व्यापारियों में उत्साह और समर्थन की भारी कमी आ गयी है, जिनमें अनेक व्यापारियों ने, जिन्होंने आयातित माल न बेचने की पहले शपथ ली थी, उसे तोड़ना शुरू कर दिया । ठाकुरदास ने मोतीलाल नेहरू को चेतावनी दी कि "व्यापारिक समुदाय की सहनशक्ति की क्षमता" अपनी सीमा तक पहुँच चुकी है, और होमी मोदी जैसे उद्योगपतियों ने "बार-बार होने वाली हड़तालों की जिनसे व्यापार और उद्योग अव्यवस्थित हो जाता है" भर्त्सना की । संभवतः अंग्रजों द्वारा सम्पत्ति के निर्दयता के साथ अपहरण के विरोध में अधिकांश किसानों का उत्साह भी क्षीण होने लगा था । लगभग सभी बड़े कांग्रेस नेता जेलों में बंद कर दिये गये थे । संभवतः यह गांधी जी के अचानक पीछे हट जाने के कारण हुआ हो । उन्होंने 14 फरवरी, 1931 को इरविन के साथ बातचीत शुरू की जिसका परिणाम 5 मार्च को दिल्ली समझौते के रूप में सामने आया । यह समझौता गांधी-इरविन समझौता के नाम से जाना जाता है । इस समझौते की प्रमुख विशेषताएँ ये थीं :

i) पहली गोल मेज़ कान्फ्रेंस में हुए करार पर दूसरी गोल मेज़ कान्फ्रेंस में आगे विचार-विमर्श किया जायेगा ।

ii) भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस कारगर ढंग से सविनय अवज्ञा आंदोलन वापस ले लेगी ।

iii) विदेशी माल का बहिष्कार भी तुरंत वापस ले लिया जायेगा ।

iv) सरकार सविनय अवज्ञा आंदोलन के संबंध में लागू अध्यादेशों को वापस लेने के लिए राज़ी हो गयी । ये भी तय हुआ कि जिन राजनीतिक-क़ैदियों के विरुद्ध हिंसा का कोई आरोप नहीं था उन्हें रिहा किया जायेगा और जो जुर्माने वसूल नहीं किये गये हैं, उन्हें माफ़ कर दिया जायेगा । आंदोलन के कारण जिन्हें नुक़सान पहुँचा था, उनकी क्षतिपूर्ति की जायेगी ।

v) सरकार नमक कानून से संबंधित मौजूदा कानून के उल्लंघन को न तो माफ़ करेगी और न ही कानून में संशोधन करेगी । तथापि, सरकार ने समुद्र तट के निर्दिष्ट क्षेत्रों के भीतर रहने वाले लोगों को नमक इकट्ठा करने और बनाने की अनुमति दी ।

5 मार्च, 1931 को जब बातचीत के परिणामों की चर्चा करने के लिए कांग्रेस कार्यकारिणी समिति की बैठक हुई तो इसमें मतभेद हो गया । अनेक लोगों ने इसे अपनी जीत माना क्योंकि वाइसरॉय समझौता करने के लिए बाध्य हुए, पर कुछ लोग खुश नहीं थे । गांधी जी ने अंग्रेज़ों की शर्तों पर ही गोलमेज़ कान्फ्रेंस में शामिल होना स्वीकार कर लिया, जबकि ऐसा करना जनवरी, 1931 के अंत तक उनके द्वारा अपनाये गये रुख के सर्वथा प्रतिकूल था । यहाँ तक कि गांधी जी की उस प्रार्थना को भी वाइसरॉय ने ठुकरा दिया जो उन्होंने भगत सिंह, सुखदेव और राजगुरु के मृत्युदंड को माफ़ करने के लिए की थी । इस तरह, 23 मार्च को उन्हें फाँसी पर चढ़ा दिया गया । सविनय अवज्ञा आंदोलन अचानक ठप्प हो गया और जैसा कि कुछ साल बाद नेहरू जी ने अपनी आत्मकथा में लिखा कि यह अंत "ज़ोरदार नहीं बल्कि फुसफुसा था ।"

गांधी-इरविन समझौते के परिणाम अस्पष्ट थे । नेहरू जी के अलावा अनेक लोगों को पूर्ण स्वराज के निर्धारित लक्ष्य तक पहुँचने के बहुत पहले ही, इस अप्रत्याशित विराम से निराशा हुई । ख़ासकर, किसानों को विशेष रूप से यह महसूस हुआ कि उनके साथ धोखा किया गया है क्योंकि उन्होंने कांग्रेस के आदेश पर अपनी ज़मीनें, और माल-असबाब का बलिदान किया था । भगत सिंह को फाँसी पर चढ़ाये जाने के कुछ दिनों बाद जब कराची में कांग्रेस का अधिवेशन शुरू हुआ, तब गांधी जी के ख़िलाफ़ काले झंडे का प्रदर्शन भी हुआ था । यद्यपि नेहरू जी इससे बिल्कुल संतुष्ट नहीं थे, किंतु उन्होंने ही दिल्ली समझौते को स्वीकार करने का मुख्य प्रस्ताव रखा जिसमें नयी नीति का अनुमोदन किया गया । अधिक बुनियादी बात ये है कि उस समझौते के कारण, कुछ ऐसे कीमती महीने हाथ से निकल गये जिनके दौरान कांग्रेस ने ठीक उस समय 'कर बंदी' और 'लगान बंदी' आंदोलनों पर रोक लगा दी जबकि ग्रामीण क्षेत्रों में असंतोष अपनी चरम सीमा पर था, मंदी की अभी

शुरुआत ही हुई थी और आर्थिक कठिनाइयाँ इतनी नहीं बढ़ पायी थीं कि बड़े पैमाने पर संघर्ष की संभावनाएँ समाप्त हो जातीं ।

जनवरी, 1932 में कांग्रेस ने फिर से कर बंदी के लिए जनता का आह्वान किया था किंतु तब तक लोगों का जोश ठंडा पड़ चुका था ।

गांधी जी का दूसरी गोल मेज़ कान्फ्रेंस में शामिल होना व्यर्थ ही हुआ । पहली कान्फ्रेंस जनवरी, 1931 में उस समय हुई जबकि सविनय अवज्ञा आंदोलन अभी जारी था और काग्रेस, कान्फ्रेंस का बहिष्कार कर रही थी । इस कान्फ्रेंस में रैमसे मैकडोनाल्ड ने केंद्र में उत्तरदायी शासन स्थापित करने का अनूठा प्रस्ताव पेश किया । इस प्रस्ताव की दो विशेषताएं थीं : एक, संघीय-सभा (Federal Assembly) जिसमें शामिल होने वाले राजा अपने सदस्य नामित करेंगे और दूसरी, सुरक्षा विदेशी कार्य, वित्त और अर्थव्यवस्था पर ब्रिटिश नियंत्रण बनाये रखने के लिए "अनेक नियंत्रण और रक्षा उपाय ।" इसे चर्चा के आधार के रूप में स्वीकार करने के उपरांत काग्रेस के एकमात्र प्रतिनिधि की हैसियत से गांधी जी की दूसरी गोल मेज़ कान्फ्रेंस में मुसलमान नेताओं, अनुसूचित जाति के प्रतिनिधि अम्बेडकर, जिन्होंने अछूतों के लिए अलग निर्वाचन-क्षेत्र की मांग करनी शुरू कर दी थी और राजाओं से अंत तक तकरार होती रही । अंग्रेज़ उल्लासपूर्वक यह दृश्य देख रहे थे । काग्रेस को स्पष्ट रूप से मात दे दी गयी थी ।

फिर भी, समझौते और विराम की अवधि का प्रभाव पूर्णतः नकारात्मक नहीं था । आख़िरकार, अंग्रेज़ों को पहली बार गांधी जी के साथ समानता और शिष्टाचार के स्तर पर बातचीत करनी पड़ी थी और यह वह बात थी जिसका अनेकों हठधर्मी अफ़सरों ने बुरा माना । रिहा हुए कांग्रेसी इस तरह अपने-अपने गाँवों और शहरों को लौट गये, जैसे उनका विश्वास कम न हुआ हो और वे विजयी हुए हों । ग्रामीण क्षेत्रों में काग्रेस का तेज़ी से विस्तार हुआ । सामान्य मनःस्थिति 1922 के बाद वाले विखण्डन और पतन की भावना से काफ़ी भिन्न थी । वास्तव में काग्रेस अपने आप को एक वैकल्पिक सत्ता केंद्र के रूप में, जो अधिक विधि सम्मत हो, स्थापित करना चाहती थी ताकि वह स्थानीय झगड़ों के निपटारे के लिए मध्यस्थता न्यायालय बना सके और ज़मींदार तथा रैयत के बीच होने वाले झगड़ों में मध्यस्थता कर सके । उसी दौरान, अनेक क्षेत्रों में जनता का ज़ोर भी बढ़ रहा था, विशेष रूप से संयुक्त प्रांतों का लगान बंदी संघर्ष जिसे दिसम्बर, 1931 में प्रांतीय काग्रेस ने अनुमति दे दी थी । हालांकि, काग्रेस नेता भारतीय रजवाड़ों में अब भी हस्तक्षेप करने से इन्कार कर रहे थे, फिर भी, शेख़ अब्दुल्ला के नेतृत्व में कश्मीर का शक्तिशाली महाराजा विरोधी आंदोलन इस बात का सूचक था कि राजनितिक अशांति रजवाड़ों में भी फैल रही थी । (दो वर्ष बाद अलवर में विद्रोह हो गया) ।

इसी पृष्ठभूमि में काग्रेस के और अधिक मज़बूत हो जाने से पहले ही उस पर प्रहार करने का निर्णय नयी दक्षिणपंथी राष्ट्रीय सरकार और वाइसरॉय विलिंगडन ने 1931 के अन्त में लिया ।

नयी नीति को एक प्रकार के सिविल मार्शल लॉ की संज्ञा दी गयी (डी. ए. लो) । 4 जनवरी, 1931 को सिरे से सभी कांग्रेस संगठनों पर प्रतिबंध लगाने के अध्यादेश जारी हुए, (मात्र बंगाल में ही 272 संगठनों को अवैध क़रार दिया गया) । देश पर सैनिक शासन की औपचारिक घोषणा किये बिना ही नागरिक स्वतंत्रता रद्द कर दी गयी ताकि कांग्रेस को सरकार के विरुद्ध लड़ने का मौक़ा न देकर उसे सुरक्षात्मक लड़ाई के लिए मज़बूर किया जा सके । 4 जनवरी, 1932 को कुछ और कांग्रेसी नेताओं का जत्था गिरफ़्तार कर लिया गया जिनमें गांधी जी और सरदार पटेल भी शामिल थे । अब राजनीतिक क़ैदियों के साथ साधारण अपराधियों जैसा व्यवहार, पहले से कहीं अधिक आम बात हो गयी ।

## 25.5 1932-34 : सविनय अवज्ञा आंदोलन की दुबारा शुरुआत

यद्यपि, राष्ट्रीय आंदोलन को मात दी जा चुकी थी, और उसे अभूतपूर्व पैमाने पर दमनकारी कार्रवाइयो का सामना करना पड़ा था, फिर भी वह लगभग डेढ़ वर्ष तक बहादुरी के साथ चलता रहा । शुरू के तीन महीनों में एक लाख बीस हज़ार लोगों को जेल हो गयी । यह संख्या इस बात की इतनी प्रतीक नहीं है कि आंदोलन 1930 की तुलना में अधिक व्यापक हो गया था बल्कि यह उस तीव्र और सुव्यवस्थित दमन चक्र का प्रतीक है, लेकिन बहुत जल्द ही जेल जाने वाले लोगों की संख्या में कमी आने लगी । अप्रैल 1932 में लॉर्ड विलिंग्डन ने बंबई शहर और बंगाल को "दो काले धब्बे" बताया । गुजरात के छोटे व्यापारियों की अब भी काग्रेस में अपूर्व निष्ठा थी । बंगाल अभी तक एक भयानक सपना बना हुआ था जिसका कारण किसानों की छुटपुट अशांति का प्रदर्शन नहीं था, बल्कि

आतंकवाद ही इसका मुख्य कारण था (1932 में 104 घटनाएँ, जो किसी एक वर्ष में सबसे अधिक थीं और 1933 में 33 घटनाएँ) । हालांकि, खेड़ा के रास जैसे गाँव में 2000 एकड़ भूमि के ज़ब्त होने, सार्वजनिक रूप से कोड़े लगाये जाने और बिजली के झटके देने के वावजूद 1933 तक लगान नहीं दिया गया था, फिर भी ग्रामीण क्षेत्रों में जो प्रतिक्रिया हुई, वह 1930 की तुलना में कुल मिलाकर कम जान पड़ी । क्रूर दमन के फलस्वरूप जन-आंदोलन धीरे-धीरे फीका पड़ रहा था, राजनीति के यथार्थवाद और भारत के कुछ बड़े व्यापारी घरानों के आर्थिक जोड़ तोड़ ने मिलकर इन बड़े व्यापारियों को अंग्रेज़ों के साथ सहयोग देने की ओर प्रवृत्त किया । बंबई के मिल मालिकों ने जापानियों के साथ होने वाली स्पर्धा के डर से, लंकाशायर के साथ मिलकर अक्तूबर, 1933 में लीस-मोदी समझौता किया । अहमदाबाद के व्यापारियों और जी. डी. बिड़ला ने इस विश्वासघात की कटु आलोचना की, किंतु 1932 के बाद से बिड़ला और ठाकुरदास स्वयं कांग्रेस पर समझौता करने के लिए दबाव डाल रहे थे ।

यह अस्वाभाविक नहीं था कि जेल में गांधी जी ने सम्मानपूर्वक पीछे हटने की दृष्टि से सोचना शुरू किया । उन्होंने मई, 1933 में सविनय अवज्ञा आंदोलन को थोड़े समय के लिए स्थगित कर दिया और अप्रैल, 1934 में उसे औपचारिक रूप से वापस ले लिया । महात्मा जी ने हरिजन कल्याण कार्य को अपने नये ग्रामीण रचनात्मक कार्यक्रम का मुख्य मुद्दा बनाया । यह अंग्रेज़ों की "फूट डालो और राज करो" की नीति का जवाब था । (अंग्रेज़ों की यह नीति 1932 के आरंभ में रैमसे मैकडोनाल्ड द्वारा घोषित औपचारिक साम्प्रदायिक पंचाट (Communal Award) में परिलक्षित हुई) । इस पंचाट में नये संघीय विधानमंडलों के लिए हिंदू, "अछूत" और मुसलमान निर्वाचन क्षेत्रों की अलग से व्यवस्था थी । गांधी जी ने इस पंचाट का विरोध किया क्योंकि उसमें हिंदू और हरिजनों को दो अलग राजनीतिक सत्ता माना गया । उन्होंने हिंदू निर्वाचन क्षेत्र से ही हरजिनों के लिए अधिक सीटों के आरक्षण की मांग की । हरिजन नेता, अम्बेडकर ने गांधी जी के दृष्टिकोण का समर्थन किया । कांग्रेसियों के एक वर्ग ने "परिषद् की राजनीति" को ही पसंद किया और इस प्रकार ऐसा लगा मानों 1920 के मध्य का दृश्य फिर से उपस्थित हो गया हो । 1935 को गवर्नमेंट ऑफ इंडिया ऐक्ट पहले के कानूनों से कहीं अधिक प्रतिगामी था, क्योंकि यह तब बनाया गया था जब अंग्रेज़ों को अपनी विजय निकट दिखाई दे रही थी ।

## 25.6 आंदोलन के बाद की स्थिति

यह बहुत जल्द ही स्पष्ट हो गया कि सरकार की विजय की भावना बहुत भ्रामक थी । क्योंकि 1937 में कांग्रेस ने अधिकांश प्रांतों में चुनाव जीत लिया । (खंड 6 की इकाई 33 देखिए) परन्तु आन्दोलन में कांग्रेस की हार का कारण शासन की भारी शक्ति थी, किंतु इसकी जन-प्रतिष्ठा पहले जैसे ही ऊँची रही । सविनय अवज्ञा आंदोलन ने आशाएं जगा दी थीं जिन्हें गांधी जी की नीति पूरा नहीं कर सकी थी । नेताओं में नेहरू जी (और कभी-कभी बोस) ने इस नयी मनःस्थिति को व्यक्त किया और राष्ट्रवाद के साथ परिवर्तनकारी सामाजिक-आर्थिक कार्यक्रमों को मिलाने की आवश्यकता पर बल दिया । 1934 में कुछ कांग्रेस कार्यकर्त्ताओं ने पार्टी के भीतर ही समाजवादी ग्रुप (Socialist Inner Group) की स्थापना की । बिहार और आंध्र जैसे प्रांतों में ज़मींदार-विरोधी कार्यक्रमों वाली किसान सभाएं तेज़ी से बढ़ने लगीं । कम्युनिस्ट भी, मेरठ केस में हुई गिरफ़्तारियों और सविनय अवज्ञा से दूर रहने की अपनी ग़लती से उबर रहे थे । आतंकवादियों और गांधीवादी कार्यकर्ताओं का भ्रम टूट चुका था और उनका एक बड़ा हिस्सा वामपंथ की ओर जाने लगा ।

इस बदली हुई परिस्थिति में कांग्रेस के भीतर के प्रभुत्वशाली गुटों ने वामपंथ की ओर झुकाब दिखाते हुए कुछ संशोधन स्वीकार किये ताकि वे कांग्रेस पर अपना नियंत्रण रख सकें । यह सब प्रायः व्यवहार में न होकर कार्यक्रम संबंधी बयानों के स्तर तक ही रहा । 1930 के मध्य तक ज़मींदारी प्रथा को रोकने और अंततः उसका उन्मूलन करने से संबंधित भूमि-सुधार कांग्रेस के औपचारिक कार्यक्रमों में शामिल हो गये थे जो उसके पहले के सभी बयानों के विपरीत था । इस तरह के परिवर्तन का पूर्व संकेत, मूलभूत अधिकारों और आर्थिक नीति पर आधारित कराची घोषणा पत्र में मिलता है । गांधी-इरविन समझौते के ठीक बाद इस तरह की घोषणा एक महत्वपूर्ण बात थी । यह घोषणा-पत्र, विषय-वस्तु की दृष्टि से काफ़ी संतुलित था । पहली बार, न केवल लगान में बल्कि भूमि किराये में भी कमी का वादा किया गया था तथा निर्वाह योग्य मज़दूरी और ट्रेड यूनियन बनाने के अधिकार भी कांग्रेस कार्यक्रम में शामिल हो गये । 1920 के दशक के उत्तरार्ध के श्रमिक असंतोष की तरह किसान आंदोलनों ने सविनय अवज्ञा को वास्तविक शक्ति दी थी जो पूरी तरह से निष्फल नहीं हुई । हालांकि राष्ट्रीय आंदोलन के भीतर निर्णायक राजनीतिक नियंत्रण कुछ और तत्वों ही के हाथों में रहा, फिर भी भारतीय समाज के इन वर्गों के बढ़ते हुए दुराग्रह के कारण कांग्रेस की अधिकांश भाषा और नारे तथा कुछ प्रत्यक्ष नीतियों को वामपंथी दिशा लेनी पड़ी ।

**बोध प्रश्न 3**

1) गांधी-इरविन समझौता क्या था ? इसका क्या प्रभाव था ? अपना उत्तर लगभग सौ शब्दों में लिखिए ।

......................................................................................................................................

......................................................................................................................................

......................................................................................................................................

......................................................................................................................................

......................................................................................................................................

......................................................................................................................................

......................................................................................................................................

......................................................................................................................................

......................................................................................................................................

......................................................................................................................................

......................................................................................................................................

2) लंदन में दूसरी गोल-मेज़ कांफ्रेंस की असफलता के बाद सरकार की सविनय अवज्ञा आंदोलन पर क्या प्रतिक्रिया थी ? लगभग पचास शब्दों में जवाब दीजिए ।

......................................................................................................................................

......................................................................................................................................

......................................................................................................................................

......................................................................................................................................

......................................................................................................................................

......................................................................................................................................

3) निम्नलिखित कथनों में कौन सही (√) या ग़लत (×) है :

अ) कांग्रेस ने पहली गोल मेज़ कान्फ्रेंस का बहिष्कार किया । [ ]

ब) गांधी-इरविन समझौते ने कांग्रेस के लिए दूसरी गोल मेज़ कान्फ्रेंस में हिस्सा लेने के लिए मार्ग बनाया । [ ]

स) इस दौरान रजवाड़ों (भारतीय रियासतों) में भी राजनीतिक अशांति फैल रही थी । [ ]

द) सविनय अवज्ञा आदोलन के दौरान गांधी जी का जन-लहर पर पूरा नियंत्रण था । [ ]

## 25.7 सारांश

इस इकाई में हमने 1930 से 1934 तक के सविनय अवज्ञा आंदोलन के इतिहास की चर्चा की है । आपने पढ़ा है कि किस तरह असहयोग आंदोलन के बाद की अवधि में भारत में घटी घटनाओं ने सविनय अवज्ञा आंदोलन के लिए पृष्ठभूमि तैयार की । गांधी जी के निष्ठा के साथ किये गये प्रयासों के बावजूद अंग्रेज़ों ने जो रुख अपनाया था उसमें चूँकि समझौते की कोई गुंजाइश न थी इसलिए गांधी जी को 1930 में आंदोलन शुरू करने पर बाध्य होना पड़ा ।

आंदोलन का देश के विभिन्न क्षेत्रों में तत्काल स्वागत हुआ और किसान अपने वर्ग की मांगों को लेकर इसमें शामिल हुए । फिर भी, जब आंदोलन में गति आयी तब 1931 में गांधी-इरविन समझौते के कारण इसे कुछ समय के लिए स्थगित किया गया । गांधी जी दूसरी गोल-मेज़ कान्फ्रेंस में हिस्सा लेने के लिए लंदन गये किंतु मिशन असफल रहा ।

1931 में आंदोलन को फिर से शुरू किया गया किंतु यह, अपना पहले वाला उत्साह खो चुका था । ब्रिटिश सरकार ने आंदोलन को कुचलने के लिए अपने दमनकारी तंत्र को और अधिक मज़बूत किया । इस परिस्थिति को ध्यान में रखते हुए आंदोलन को अंततः 1934 में पूरी तरह वापस ले लिया गया । इस तरह जनता का एक और साहसिक संघर्ष बिना अपने तात्कालिक लक्ष्य को प्राप्त

किये समाप्त हो गया । किंतु लोगों का बलिदान व्यर्थ नहीं गया । कांग्रेस के कार्यक्रम में किसानों की आर्थिक मांगों के समर्थन में कुछ परिवर्तन किया गया और अंत में, प्रांतों में कांग्रेस मंत्रिमंडलों की स्थापना जन आंदोलन की विजय सिद्ध हुई ।

## 25.8 शब्दावली

**कैम्ब्रिज स्कूल** : इतिहासकारों का एक खास समूह जो मुख्यतः कैम्ब्रिज में है । इन्होंने क्षेत्रीय हितों, गुटबन्दी इत्यादि के आधार पर भारतीय राष्ट्रवाद का खंडन किया । ये औपनिवेशिक शासक की उदारता में विश्वास रखते थे और तर्क देते थे कि अंग्रेज़ और भारतीयों के बीच के संबंध एक संरक्षक आश्रित की तरह के संबंध हैं ।

**सविनय अवज्ञा** : सरकारी कानूनों को शांतिपूर्वक तरीके से भंग करना ।

**द्विशासन** : दोहरी सरकार जहां सत्ता शक्ति दो भागों में विभाजित है : आरक्षित और हस्तांतरित ।

**लाहौर कांग्रेस (अधिवेशन)** : 1929 में भारतीय राष्टीय कांग्रेस के लाहौर अधिवेशन में पूर्ण स्वराज्य की शपथ ली गयी थी । यह संकल्प भी किया गया था कि अब से 26 जनवरी भारत के "स्वतंत्रता दिवस" के रूप में मनाया जायेगा । इस अधिवेशन के अध्यक्ष जवाहरलाल नेहरू थे ।

**पूर्ण स्वराज्य** : पूर्ण स्वतंत्रता ।

## 25.9 बोध प्रश्नों के उत्तर

**बोध प्रश्न 1**

1) निम्नलिखित बिंदुओं पर ध्यान दीजिए : साइमन कमीश्न का अनुसरण करते हुए हड़तालें और बहिष्कार, कम्यूनिस्ट नेतृत्त्व में किसान और मज़दूर वर्ग आंदोलन, क्रांतिकारी आतंकवाद का पुनरुत्थान, कांग्रेस के भीतर उभरते हुए समाजवादी विचार, इत्यादि (देखिये भाग 25.2)

2) (अ) √ (ब) √ (स) √ (द) ×

**बोध प्रश्न 2**

1) आंदोलन शुरू करने से पहले गांधी जी ने लॉर्ड इरविन के सामने विचारार्थ एक प्रस्ताव रखा, जिसमें नमक कर को समाप्त करना, राजनीतिक कैदियों की रिहाई इत्यादि शामिल थे । सरकार की प्रतिक्रिया नकारात्मक थी । गांधी जी ने आंदोलन का आह्वान किया । (देखिये उपभाग 25.3.1) ।

2) नमक-कानून का उल्लंघन, कालेजों और सरकारी दफ़्तरों का बहिष्कार, विदेशी कपड़ों को जलाना, इत्यादि । (देखिये उपभाग 25.3.2) ।

3) नमक का चयन इसलिये किया गया क्योंकि यह एक आवश्यक आहार है, गरीब ग्रामीणों और जनता के सभी वर्गों को प्रभावित करता है । इसमें सामाजिक व सांप्रदायिक फूट का कोई भय नहीं था । यह रचनात्मक कार्यों के अन्य गांधीवादी तरीकों से जुड़ा हुआ था इत्यादि । (उपभाग 25.3.2 देखिये) ।

4) i) वन-कानूनों को शांतिपूर्वक भंग करना ।
   ii) जेल जाना, सम्पत्ति ज़ब्त होना इत्यादि ।
   iii) सरकारी कानून को सीधे या प्रत्यक्ष रूप से भंग करना ।

**बोध प्रश्न 3**

1) भारत के वाइसरॉय लॉर्ड इरविन और गांधी जी के बीच समझौता । आपके उत्तर में समझौते की शर्तों पर विभिन्न राष्ट्रवादियों का असंतोष पूर्ण स्वराज्य का लक्ष्य और किसान-मांगों का पूरा न हो पाना शामिल होना चाहिए (भाग 25.4 देखिये )

2) दमनकारी तरीकों की मदद से सरकार यह चाहती थी कि कांग्रेस सुरक्षात्मक स्थिति में आने के लिए मजबूर हो जाए । उदाहरण के लिए इसने सभी कांग्रेस संगठनों पर प्रतिबन्ध लगा दिया, कांग्रेस सदस्यों की सम्पत्ति ज़ब्त कर ली गयी । (भाग 25.4 पढ़िये )

3) अ) √ ब) √ स) √ द) ×

# इकाई 26 भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस — समाजवादी विचारधारा नेहरू एवं बोस की भूमिका

## इकाई की रूपरेखा


26.0 उद्देश्य

26.1 प्रस्तावना

26.2 समाजवादी विचार और कांग्रेस के प्रारंभिक दौर के नेता

26.3 नया वातावरण : असहयोग आंदोलन

26.4 जवाहरलाल नेहरू और समाजवाद

26.4.1 नेहरू का समाजवाद से सम्पर्क

26.4.2 नेहरू के दृष्टिकोण में परिवर्तन

26.4.3 आन्तरिक राजनीति पर प्रभाव

26.5 सुभाष चंद्र बोस और समाजवाद

26.6 सिद्धांत और व्यवहार में समाजवाद को प्रोत्साहन

26.7 कांग्रेस नीति पर प्रभाव

26.8 सारांश

26.9 शब्दावली

26.10 बोध प्रश्नों के उत्तर


## 26.0 उद्देश्य

इस इकाई में हम भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस में समाजवादी विचारों के बढ़ते प्रभाव की चर्चा करेंगे । इस इकाई को पढ़ने के बाद आप :

- प्रारंभिक दौर के कांग्रेसी नेताओं के समाजवाद के प्रति रवैये की व्याख्या कर सकेंगे,
- समाजवादी विचारों के कांग्रेस पर प्रभाव की विवेचना कर सकेंगे,
- समाजवादी विचारों की ओर जवाहरलाल नेहरू और सुभाष चन्द्र बोस के झुकाव को समझ सकेंगे, और
- कांग्रेस के भीतर ही इन विचारों पर सहमति जुटाने के उनके प्रयासों के वारे में बता सकेंगे ।

## 26.1 प्रस्तावना

मोटे तौर पर समाजवाद का लक्ष्य असहाय मानव-जाति के एक बड़े हिस्से पर हो रहे शक्तिशाली अल्पसंख्यक शोषक वर्ग के शोषण को समाप्त करना है । यह समाज में उनके प्रति अन्याय और असमानता की भावना को दूर करने का प्रयास करता है । इन लक्ष्यों को पाने के लिए या समाजवादी समाज की स्थापना के लिए उन्नीसवीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध से बहुत से सिद्धान्त सामने आने लगे । (इसके बारे में आपने इकाई-12 में पढ़ा है) । बीसवीं शताब्दी के आरंभ तक विशेष रूप से पश्चिम में वे एक समर्थक वर्ग तैयार करने में सफल हुए । भारत अंग्रेज़ी शासन के दबाव तले कराह रहा था । इसके प्राकृतिक और आर्थिक संसाधनों का इस्तेमाल अंग्रेज़ों की समृद्धि के लिए हो रहा था, जबकि भारत की अपनी जनता पीड़ित और ज़रूरी वस्तुओं से वंचित थी । भारतीय जनता निम्नलिखित कारणों से ग़रीब, अपमानित और विभाजित थी :

- अंग्रेज़ों ने अपने मित्र भारतीय समाज के सम्पन्न और प्रभावशाली वर्ग से चुने,
- अंग्रेज़ों ने भारत में राजाओं, ज़मींदारों और साहूकारों को किसानों का शोषण करने की छूट दे रखी थी,
- अंग्रेज़ों द्वारा व्यापारिक घरानों और उद्योगपतियों को मज़दूरों का शोषण करने की छूट मिली हुई,

थी, और

अत्यन्त निपुणता से उन्होंने एक सम्प्रदाय को दूसरे सम्प्रदाय के खिलाफ़ खड़ा किया ।

इन परिस्थितियों में यह स्वभाविक ही था कि कुछ देशप्रेमी बुद्धिजीवी, और जुझारू भारतीयों का ध्यान समाजवादी विचारधारा की ओर आकर्षित होता, विशेष रूप से वे भारतीय जो पश्चिमी देशों में रह चुके थे, या वहाँ से किसी रूप में संबंधित थे । मैडम कॉमा, श्यामजी कृष्ण वर्मा, शापुरजी सकलातवाला, के. एस. भट्ट, वीरेन्द्र नाथ चट्टोपाध्याय, त्रिमुल आचार्य, भूपेन्द्र नाथ दत्त, पी. एस. कंकौजा, जी. ए. के. लुहानी तथा अनेकों और लोग इसी श्रेणी में आते हैं । प्रथम विश्व युद्ध के शुरू होने से पहले उन्होंने विदेश से ही समाजवादी आंदोलन का संचालन किया । इनमें से किसी भी प्रमुख व्यक्ति या युद्ध के दौरान सक्रिय राजनीतिज्ञ जैसे एम. एन. राय और लाला हरदयाल ने भारत के मुख्य राष्ट्रवादी संगठन इंडियन नेशनल कांग्रेस के ढांचे के भीतर काम नहीं किया था । इसी कारण वे इसकी गतिविधियों, नीतियों और कार्यक्रमों पर कोई प्रभाव नहीं डाल पाये । वास्तव में प्रथम विश्व युद्ध के बाद के सालों में हुए देशव्यापी असहयोग आंदोलन (1920-22) की समाप्ति तक समाजवाद ने कांग्रेस के राजनीतिक व्यवहार पर कोई असर नहीं डाला । परन्तु, इसके बाद समाजवादी विचार कांग्रेस की नीतियों को प्रभावित करने लगे और उन्होंने एक महत्वपूर्ण भूमिका निभायी । इस इकाई में इस पर चर्चा करेंगे कि समाजवादी विचारों ने किस तरह कांग्रेस को प्रभावित किया । इस प्रक्रिया में हम, नेहरू तथा बोस ने क्या भूमिका निभाई, इसकी चर्चा भी करेंगे ।

## 26.2 समाजवादी विचार और कांग्रेस के प्रारंभिक दौर के नेता

इंडियन नेशनल कांग्रेस के वे नेता जो जनता में लोकप्रिय थे, और ब्रिटिश सरकार और इसकी नीतियों के आलोचक थे, शुरू से ही समाजवाद या समाजवादी परंपरा से अवगत थे । ये नेता समाजवादी गतिविधियों के सम्पर्क में भी आये । उदाहरण के लिए, दादा भाई नौरौजी का एस. एम. हिंडमैन जैसे ब्रिटिश समाजवादियों से निकट सम्पर्क था और वास्तव में, उन्होंने एमस्टर्डम (अगस्त 1904) में हुई अंतर्राष्ट्रीय समाजवादी कान्फ्रेंस में हिस्सा लिया जहां उनका भव्य स्वागत हुआ था । बाल गंगाधर तिलक और लाला लाजपत राय जैसे नेताओं ने भी समय-समय पर कुछ समाजवादी संबंध कायम रखे थे । ये अक्सर निजी सम्पत्ति की बुराइयों पर विचार करते थे और सभी के लिए समान अवसर उपलब्ध कराने की आवश्यकता महसूस करते थे । कांग्रेस के भीतर ऐसे अनेकों व्यक्ति थे जो उन्हीं की तरह जानकार थे और समाजवाद की ओर पूर्ण स्वीकृति से झुके हुए थे ।

हालांकि वास्तविकता यह है कि प्रारंभिक दौर के राष्ट्रीय नेता अपने आपको समाजवादी विचारधारा के साथ गंभीर रूप से नहीं जोड़ पाये । संभवतः इनमें से अधिकांश लोगों ने यह सोचा कि शायद इन विचारों को अपनाने से राष्ट्रीय जागरूकता पर प्रभाव पड़े और कांग्रेस जिस राष्ट्रीय एकता को बनाने का प्रयास कर रही है वह कमज़ोर हो जाए । कांग्रेस के प्रारंभिक दौर से ही राष्ट्रीय आंदोलन अंग्रेज़-कुशासन के खिलाफ़ संयुक्त आंदोलन या स्वराज प्राप्ति के उद्देश्य के लिए एक मुहिम के रूप में उभरा था । इस "एकीकरण" या "संगठन" में सभी समुदायों, श्रेणियों और वर्गों के लोग, अमीर और ग़रीब, ज़मींदार और भूमिहीन, मिल-मालिक और मज़दूर सभी शामिल थे । ऐसा प्रतीत होता है कि कांग्रेसी नेता अपने शुरू के दौर में इस बात से भयभीत थे कि शोषितों को शोषकों के खिलाफ़ संघर्ष करने के लिए प्रोत्साहित करने वाला, मज़दूरों को उद्योगपतियों के खिलाफ़ करने वाला समाजवाद अमीर और सम्पन्न लोगों को राष्ट्रीय आंदोलन का विरोधी बना देगा । उस हालत में उनका समर्थन और उनकी धन-शक्ति राष्ट्रवादी हित के लिए उपलब्ध नहीं होगी । इस तरह की आशंका अंग्रेज़ अधिकारियों और उनके भारतीय सहयोगियों के बीच के संबंधों की प्रकृति को ठीक से न समझने के कारण थी । साथ ही गरीबी के मारे हुए करोड़ों उत्पीड़ित लोगों को साम्राज्य-विरोधी संघर्ष में एकजुट करने की समाजवाद की क्षमता को भी ठीक से न समझने के परिणामस्वरूप थी ।

प्रारंभिक दौर के राष्ट्रवादियों ने समाजवाद के प्रति जिस प्रकार शंका व्यक्त की वह स्वाभाविक ही थी । इनमें से अधिकांश लोग पश्चिमी शिक्षा प्राप्त और भारतीय समाज के उच्च-वर्ग से संबंधित थे जिनमें किराया जीवी, व्यावसायी और उद्यमी शामिल थे । इस प्रकार के तत्व आम आदमी के दुर्भाग्य पर दूर से सहानुभूति दर्शा सकते थे और वह भी उसी सीमा तक कि उनके खुद के हितों को ख़तरा न पहुँचे । इसके अतिरिक्त, प्रथम विश्व युद्ध तक, कांग्रेस के राष्ट्रवादी अंग्रेज़ शासन से प्रस्तावों, प्रतिनिधित्व और बहसों द्वारा सिर्फ़ रियायतें पाने की कोशिश कर रहे थे । वे प्रमुखतः अंग्रेज़ अधिकारियों द्वारा निश्चित की गयी सीमाओं के भीतर संवैधानिक राजनीति और आंदोलनों में व्यस्त थे । उन्होने स्वदेशी आंदोलन (1905-8) के एकमात्र अपवाद को छोड़कर किन्हीं जन-आंदोलनों को चलाने

या जनप्रिय कार्यवाहियों के लिए सामान्य रूप से सोचा भी नहीं था ।

भारतीय जनता प्रारंभिक दौर के राष्ट्रवादियों के राजनीतिक कार्यक्रम का अभिन्न अंग नहीं थी । इसलिए उन्होंने जनता के निकट जाने की आवश्यकता महसूस नहीं की । फिर भी यह कहना ठीक नहीं होगा कि कांग्रेस के प्रारंभिक दौर के नेताओं ने उत्पीड़ितों, प्रताड़ितों और पददलितों को बिल्कुल अपने ध्यान में नहीं रखा या उन्हें अपनी भावी योजनाओं में किसी तरह भी शामिल नहीं किया । उन्हें इस बात पर विश्वास था कि स्वराज प्राप्ति के राजनीतिक लक्ष्य को पूरा करने मात्र से भारत अपने-आप एक सुखी और समृद्ध देश में बदल जायेगा । उनका विश्वास था कि एक बार समृद्धि वापस लौटने से आर्थिक विषमता की बुराइयाँ देश से ग़ायब हो जायेंगी और एक न्यायसंगत तथा उचित व्यवस्था उभरेगी । सही हो या ग़लत इस तरह के विचार लंबे समय तक, यहाँ तक कि 1930 के मध्य तक कांग्रेस की कार्यवाही पर प्रभुत्व बनाये रहे । किंतु बदलते हुए राजनीतिक वातवारण में इस प्रभावशाली विचारधारा के समानान्तर कांग्रेस में उभरते हुए नये विचारों को रोका नहीं जा सका ।

## 26.3 नया वातावरण : असहयोग आंदोलन

नया राजनीतिक वातावरण प्रथम विश्व युद्ध के बाद की आर्थिक मंदी के दौरान आया । यह वह दौर था जब वस्तुओं के बढ़ते दामों और सरकार के बढ़ते हुए दमन ने भारतीय जनजीवन में तबाही मचा दी । गांधी जी के नये और प्रेरणादायी नेतृत्व में गहरे सोच-विचार के बाद कांग्रेस ने अंग्रेज़ अधिकारियों के साथ शांतिपूर्ण असहयोग का रास्ता अपनाने का फ़ैसला लिया । यह एक ऐसा रास्ता था जिसकी सफलता पूरी तरह से जनता की व्यापक हिस्सेदारी पर निर्भर थी । असहयोग आंदोलन ने समाज के लगभग सभी वर्गों में अभूतपूर्व उत्साह जगाया तथा भारतीय जनता ने जिस महान शक्ति का प्रदर्शन किया, उससे देश में राजनीतिक गतिविधियों के बारे में कांग्रेस की धारणा में समग्र परिवर्तन आया । इसके बाद से जनता को एकत्रित करना भारतीय राष्ट्रीय आंदोलन का आदर्श नारा बन गया और इसका प्रत्येक कदम जनता को जगाने या बहुत बड़ी संख्या में लोगों को साम्राज्यवाद-विरोधी संघर्ष में आगे लाने की इच्छा से प्रेरित था ।

ज़ाहिर है कि भारतीयों में एकता की ज़रूरत और विभिन्न वर्ग के लोगों को एकताबद्ध करने की आवश्यकता का महत्व यथावत बना रहा । संख्या बढ़ाने के लिए, उपेक्षित श्रेणियों जैसे जनजातियों, किसानों, मज़दूरों और महिलाओं को भी आंदोलन में शामिल करने की अत्यावश्यकता महसूस की गयी । असहयोग आंदोलन से केवल प्रेरणा ही नहीं मिली वरन् यह अपने पीछे इसके अचानक वापस ले लेने के तरीके के कारण उत्पन्न निराशा की गहरी छाप भी छोड़ गया । बहुत से लोग उस नैतिक आधार की सराहना नहीं कर पाये जिसे गांधी जी ने आंदोलन को वापस लेने के लिये चुना था । उन्हें ऐसे समय में आंदोलन की वापसी की घोषणा से निराशा हुई, जब वे यह समझ रहे थे कि उन्होंने अंग्रेज़ी राज की घेराबंदी कर ली है, "एक साल के भीतर ही स्वराज" प्राप्ति होगी, लेकिन इसमें असफलता से निराशा हुई । यह एक गांधीवादी वादा था जिस पर जनता ने अपनी उम्मीदें लगा रखी थीं । कुछ क्षेत्रों में, विशेषकर ग्रामीण इलाकों में ज़मींदारों और काश्तकारों के बीच जनता की बेचैनी की वजह से वातावरण विक्षुब्ध हो गया । गांधी जी के उपर्युक्त दुर्भाग्यपूर्ण निर्णय से उनके कुछ अनुयायियों ने संवैधानिक तरीकों का अनुसरण करने में ही अपनी कुशल समझी । सबसे बुरा तो यह हुआ कि गांधीवाद की सबसे अधिक प्रभावशाली उपलब्धि हिंदू-मुस्लिम मैत्री में एक दरार पैदा हो गयी । दोनों सम्प्रदायों का अंतर और अधिक बढ़ गया । जिससे देश के अनेक भागों में साम्प्रदायिक हिंसा भड़क उठी । (विशेष रूप से पंजाब, राजस्थान, यू.पी., बंगाल, आन्ध्र और मालाबार में) । कुल मिलाकर, असहयोग आंदोलन के बेचैन कर देने वाले परिणामों ने कुछ उदारमना कांग्रेसियों पर ज़ोर डाला, खासकर, उन कांग्रेसियों पर जो न तो "परिवर्तन विरोधी" (जिन्होंने कुछ समय के लिए अपने-आपको स्वदेशी प्रचार, हरिजन उद्धार इत्यादि कार्यों में लगा लिया था) थे और न ही "परिवर्तन समर्थक" (जिन्होंने कुछ समय के लिए अपने-आपको संविधानवाद में संलग्न रखा) गुट में शामिल हुए । उन्होंने बहुत विचार करके कुछ अप्रीतिकर सवालों का जवाब ढूँढने का घोर प्रयास किया । वे सवाल निम्नलिखित जान पड़ते हैं :

- वे कौन से आधार थे जिस पर विभिन्न वर्ग और सम्प्रदाय राजनीतिक रूप से एकजुट रह सकते हैं ?
- स्वतंत्रता के संघर्ष में जनता की अधिक से अधिक हिस्सेदारी को बनाये रखने के लिए क्या किया जाना चाहिए ?
- मेहनतकश लोगों को साम्राज्यवाद विरोधी दल में लाने के कौन से तरीके थे ?
- वे कौन–कौन से उद्देश्य थे जिन्हें साम्राज्यवाद–विरोधी संघर्ष के द्वारा प्राप्त किया जाना था, और

• अनुमानतः भारतीय स्वतंत्रता का परिणाम क्या हो सकता है ?

दूसरे शब्दों में, राष्ट्रीय आंदोलन के भीतर एक ऐसी उपयुक्त विचारधारा की खोज शुरू हो गई जो स्वतंत्रता संघर्ष के लिए मार्गदर्शक का काम कर सके । कांग्रेस के भीतर समाजवाद का जन्म इसी गहन बौद्धिक तथा राजनीतिक प्रयास का ही परिणाम था ।

**बोध प्रश्न 1**

1) प्रारंभिक दौर के ऐसे तीन महत्वपूर्ण राष्ट्रवादी नेताओं के नाम बताइये जो समाजवादी विचारों के सम्पर्क में आये ।

   i)

   ii)

   iii)

2) प्रारंभिक दौर के कांग्रेसी नेता भारत में समाजवादी विचारों को अपनाने से क्यों हिचकते थे ?

   ........................................................................................................................

   ........................................................................................................................

   ........................................................................................................................

   ........................................................................................................................

   ........................................................................................................................

   ........................................................................................................................

   ........................................................................................................................

   ........................................................................................................................

3) असहयोग आंदोलन को वापस लेने के बाद कांग्रेस को किन समस्याओं का सामना करना पड़ा ?

   ........................................................................................................................

   ........................................................................................................................

   ........................................................................................................................

   ........................................................................................................................

   ........................................................................................................................

   ........................................................................................................................

   ........................................................................................................................

   ........................................................................................................................

## 26.4 जवाहरलाल नेहरू और समाजवाद

भारत के भविष्य पर विचार करने वालों में युवा जवाहरलाल नेहरू भी थे, जिन्होंने असहयोग आंदोलन के दौरान अपना प्रभाव छोड़ा था । अधिक महत्वपूर्ण यह है कि जवाहरलाल नेहरू ने इसी बीच (1920-21) यू. पी. में प्रतापगढ़ और राय बरेली के किसानों के बीच काम करके कृषि समस्याओं पर कुछ ज्ञान हासिल कर लिया था । यद्यपि जवाहरलाल गांधी जी के नेतृत्व में विश्वास रखते थे फिर भी वे उनके असहयोग आंदोलन को वापस लेने के निर्णय के आलोचक थे । वे न तो परिवर्तन विरोधियों के विचारों से सहमत थे, न ही परिवर्तन समर्थकों के । हिन्दू, मुसलमानों और कुछ हद तक सिक्खों के बीच बढ़ती हुई साम्प्रदायिक कटुता से वे चिन्तित थे । घबराहट और उलझन की इस स्थिति में जवाहरलाल को 1926 में यूरोप जाने का अवसर मिला जिसका मुख्य उद्देश्य स्विटजरलैंड में अपनी बीमार पत्नी कमला का इलाज कराना था ।

12. जवाहरलाल नेहरू

## 26.4.1 नेहरू का समाजवाद से सम्पर्क

इस यात्रा के दौरान उन्हें भारत में स्वतंत्रता संग्राम को बेहतर ढंग से समझने के लिए विश्व के नये विचारों को खोजने का मौका मिला । नेहरू पहले भी ब्रिटेन में अपने छात्र जीवन में फैबियन समाजवाद के विचारों से परिचित थे किन्तु मार्क्सवाद सहित, समाजवाद के अन्य विभिन्न रूपों के बारे में ज्यादा नहीं जानते थे । औपनिवेशिक शक्ति के खिलाफ जन संघर्ष में समाजवादी दृष्टिकोण की प्रासंगिकता के बारे में उनकी समझ अभी अपर्याप्त थी । इसीलिए राजनीतिक शिक्षा की दृष्टि से जवाहरलाल का यूरोप में डेढ़ साल का प्रवास उनके खुद के विकास और कांग्रेस पार्टी की नयी दिशा, दोनों के लिए काफी महत्वपूर्ण साबित हुआ । यूरोप में वे राजनीतिक विचारकों और आंदोलनों के संपर्क में आये । उन्हें औपनिवेशिक उत्पीड़न और साम्राज्यवाद के खिलाफ, फरवरी, 1927 को ब्रूसेल्स में हुई अंतर्राष्ट्रीय कांग्रेस में इंडियन नेशनल कांग्रेस के प्रतिनिधि के रूप में शामिल होने के लिए आमंत्रित किया गया । वहां वे चीन, मैक्सिको और अन्य लातीनी अमरीकी, अफ्रीकी तथा एशियाई देशों के अनेकों प्रतिनिधियों के साथ-साथ यूरोपीयन परिवर्तनवादी परम्परा के श्रेष्ठ प्रवक्ताओं से भी मिले । विचारों और अनुभवों के आदान-प्रदान से जवाहरलाल पर काफी गहरा असर पड़ा । उन्हें साम्राज्यवाद विरोधी और राष्ट्रीय स्वाधीनता लीग (लीग अगेन्स्ट इम्पीरियलिज़्म एन्ड फॉर नेशनल इन्डिपैन्डैन्स) की, जो कि ब्रूसेल्स कांफ्रेंस द्वारा स्थापित एक संगठन था, कार्यकारिणी समिति का सदस्य नियुक्त किया गया । तभी से जवाहरलाल नेहरू ने यह महसूस किया कि किस तरह यूरोपीय पूंजीवाद जिसे औद्योगिक उत्पादन के कच्चे माल और तैयार वस्तुओं के लिए विस्तृत बाज़ारों की आवश्यकता थी, साम्राज्यवाद के रूप में विकसित हुआ । साथ ही यह भी देखा कि किस तरह यूरोपीय पूंजीवाद एशिया, अफ्रीका और लातीनी अमरीकी देशों के शोषण के बलबूते पर समृद्ध हो गया ।

### 26.4.2 नेहरू के दृष्टिकोण में परिवर्तन

विश्व के सभी उपनिवेशों की तरह भारत में भी विदेशी शोषकों के सहयोगी देश के अपने कुछ लोग भी थे । यही कारण था कि विदेशी शासन से स्वतंत्रता प्राप्ति के संघर्ष को ग़रीबों के तात्कालिक अंदरूनी अत्याचारियों से छुटकारा पाने के लिए संघर्ष से सुव्यवस्थित ढंग से जोड़ना ही था । इसीलिए नेहरू की नजरों में साम्राज्यवादी ताकतों के उपनिवेशों में राष्ट्रीय मुक्ति के संघर्ष का अर्थ राजनीतिक स्वतंत्रता की प्राप्ति से कहीं अधिक था । वे देख सकते थे कि भारत का स्वतंत्रता आंदोलन वास्तव में विश्वव्यापी साम्राज्यवादी व्यवस्था के खिलाफ हो रही अंतर्राष्ट्रीय मुहिम का एक अनिवार्य अंग था ।

साम्राज्यवाद के विरुद्ध लीग (लीग अगेन्स्ट इम्पीरियलिज्म) में अन्य लोगों के साथ जवाहरलाल ने महसूस किया कि इस अभियान (मुहिम) को रूसी क्रांति (1917) की सफलता से भारी प्रोत्साहन और सोवियत यूनियन की बढ़ती ताकत से महत्वपूर्ण समर्थन मिला है । नवम्बर, 1927 में उन्होंने सरकारी निमंत्रण पर सोवियत यूनियन का दौरा किया । वे सरकार में किए जा रहे नूतन प्रयोगों और सामाजिक पुनर्निर्माण से बहुत अधिक प्रभावित हुए । हालांकि वे रूस और भारत में राष्ट्रनिर्माण के कार्यों के अंतर के प्रति सजग थे किंतु राष्ट्रवादी राजनीति या ब्रिटिश साम्राज्यवाद के खिलाफ अहिंसात्मक जन आंदोलनों की क्षमता में गांधी जी के नेतृत्व पर उनका विश्वास अब भी अडिग बना रहा । फिर भी उन्होंने रूसी अनुभवों से सीखा और भारतीय संदर्भ में उसका पूरा उपयोग करने की इच्छा रखी । दिसम्बर, 1927 में जब जवाहरलाल भारत लौटे तो वे हर दृष्टि से समाजवादी बन चुके थे । 1927-28 में ही यह कल्पना की जा सकती थी कि यदि जवाहरलाल नेहरू जैसे राष्ट्रीय स्तर के नेता द्वारा समाजवादी विचारों को स्वीकार किया गया है तो कांग्रेस की नीतियों और गतिविधियों पर, इनका भारी प्रभाव अवश्य ही पड़ेगा ।

### 26.4.3 आंतरिक राजनीति पर प्रभाव

1927 में कांग्रेस के भीतर और इसके साथ-साथ ही इसके बाहर विभिन्न प्रकार के राजनीतिक विचार रखने वालों में ज़ोरदार बहस छिड़ गयी । इससे जवाहरलाल नेहरू को अपने हाल ही में प्राप्त किए गए उग्र परिवर्तनवादी विचार (Radicalism) को बल मिला । विवाद का मसला स्वराज (या स्वशासन जिसके लिए वे और अन्य लोग लड़ रहे थे) का विस्तार और उसके स्वरूप से संबंधित था । स्वराज का मुद्दा सहसा अन्य मुद्दों से प्रमुख हो गया । 1927 में अंग्रेज़ शासकों ने इस बात पर विचार करने के लिए कि भारत कुछ और संवैधानिक सरकार प्राप्त करने का पात्र है या नहीं, गवर्नमेंट आफ इंडिया ऐक्ट 1919 की शर्तों के अनुसार एक कमीशन नियुक्त करने का निर्णय लिया जिसमें केवल ब्रिटेन की संसद के सदस्य ही रखे गये । जातीय अहंकार के भोंडे प्रदर्शन के अलावा इस कमीशन के (साइमन कमीशन) गठन में केवल गोरों का ही रहना इस बात का संकेत था कि अंग्रेज़ इस कमीशन में किसी भारतीय को सदस्य बनाने के योग्य नहीं समझते थे, जो भारत के राजनीतिक भविष्य के बारे में उन्हें कुछ सुझाव दे सकता । इस कमीशन की नियुक्ति में अंग्रेज़ सरकार ने न केवल उस विषय पर भारतीय विचारों को सुनने से इन्कार कर दिया जिसका संबंध सबसे अधिक उन्हीं से था, बल्कि इसमें भारतीयों की योग्यता को कम करके देखने का भी प्रयास था । अंग्रेज़ सरकार यह सिद्ध करना चाहती थी कि भारतीय अपने लिए संविधान बनाने के अयोग्य हैं । पूरे भारत में अंग्रेज़ों की इस कार्यवाही की सभी तरह से निन्दा हुई । कांग्रेस ने अपने मद्रास अधिवेशन (दिसम्बर, 1927) में साइमन कमीशन के बहिष्कार का आह्वान किया । जैसाकि 1928 के बाद की घटनाओं से जाहिर होता है कि सरकार के क्रूर दमन के बावजूद बहिष्कार उग्र था । इसकी सफलता में जवाहरलाल और उनके कांग्रेस के सहयोगियों ने विशेष योगदान दिया ।

साइमन कमीशन का आगमन इस मसले को सामने लाया कि भारत को अपने लिए किस प्रकार का संविधान या किस किस्म की स्वाधीनता को स्वीकार करना चाहिए । अभी तक स्वराज से कांग्रेस नेताओं का तात्पर्य भारत के लिए ब्रिटिश शासन के घेरे में ही एक डोमीनियन स्टेटस (अधिराज्य) से था । (आस्ट्रेलिया, न्यूजीलैंड और दक्षिण अफ्रीका के स्वराज की स्थिति वाली सरकार के जैसे ही) । जवाहरलाल और उनके जैसे व्यक्तियों के लिए डोमिनियन स्टेटस को भारत की स्वतंत्रता के समतुल्य मानना न केवल भारत में अंग्रेज़ों की अनिवार्य उपस्थिति को मान्यता देना प्रतीत हुआ बल्कि उन्हें यह पिछले दरवाजे से भारत का ब्रिटिश साम्राज्यवादी शोषण का स्थायीकरण भी लगा । दिसम्बर, 1927 के मद्रास अधिवेशन में जवाहरलाल ने डोमीनियन स्टेटस की मरीचिका के बजाय वास्तविक स्वतंत्रता की मांग का प्रस्ताव रखा ।

फिर भी विवाद वास्तव में तब बढ़ा जब कांग्रेस की पहल से फरवरी, 1928 में सर्वदलीय सम्मेलन बुलाया गया । इसने बर्किनहेड (Birkenhead) की चुनौती (भारतीय ऐसा संविधान बनाने में असमर्थ हैं जो सभी दलों को स्वीकार्य हो) के जवाब में भारत के लिए संविधान बनाने के लिए मोतीलाल नेहरू के नेतृत्व में एक समिति गठित करने का निर्णय लिया । जब नेहरू समिति ने वास्तव में डोमीनियन स्टेटस की प्राप्ति को ही भारतीय स्वतंत्रता का समकक्ष मानकर संविधान निर्माण का काम शुरू किया तो जवाहरलाल के पास उसके विरोध में लोगों को संगठित करने के अलावा कोई चारा नहीं था । डोमीनियन स्टेटस के खिलाफ विरोध को संगठित करने और पूर्ण स्वतंत्रता या ब्रिटेन के साथ सभी असमान राजनीतिक और आर्थिक संबंधों का विच्छेद करने के लिए समर्थन जुटाने में उन्हें अन्य लोगों के साथ विशेषतः युवा सुभाष चन्द्र बोस की सहायता मिली । वे भी जवाहरलाल की तरह ही 1928 में कांग्रेस के महासचिवों में से एक थे ।

**बोध प्रश्न 2**

1) नेहरू अपने यूरोप प्रवास के दौरान समाजवादी विचारों से किस तरह प्रभावित हुए ?

..........................................................................................................................

..........................................................................................................................

..........................................................................................................................

..........................................................................................................................

..........................................................................................................................

2) भारत का स्वतंत्रता संघर्ष पूरे विश्व के साम्राज्यवाद विरोधी संघर्ष से किस तरह संबंधित था ?

..........................................................................................................................

..........................................................................................................................

..........................................................................................................................

..........................................................................................................................

..........................................................................................................................

## 26.5 सुभाष चन्द्र बोस और समाजवाद

यद्यपि स्वभाव से भिन्न होते हुए भी सुभाष चन्द्र बोस और जवाहरलाल में कुछ प्रत्यक्ष समानताएं थीं। दोनों ही उच्च-मध्यम वर्गीय पृष्ठभूमि से आये थे और दोनों ने शिक्षा भी विदेश में प्राप्त की । दोनो ही बुद्धिजीवी थे और दोनों ही अपने-आपको भारतीय राष्ट्रवाद के उद्देश्य के प्रति समर्पित मानते थे। सुभाष चन्द्र बोस आरम्भ में स्वामी विवेकानन्द के विचारों से प्रेरित थे जोकि उत्पीड़ितों और प्रताड़ितों के प्रति अपनी सहानुभूति के लिए जाने जाते थे । बोस अपने विद्यार्थी जीवन से ही राजनीतिक कार्यकर्ता थे । जब अप्रैल, 1921 में उन्होंने इंडियन सिविल सर्विस के एक आकर्षक पद को पाने के बाद उसे अस्वीकार कर दिया तो जनता में उनका सम्मान बहुत बढ़ गया । उनके राजनीतिक जीवन के निर्माता गांधी जी नहीं बल्कि देशबंधु चितरंजन दास थे, जिन्होंने 1922 में यह महसूस किया कि भारत को "वर्गों का नहीं बल्कि जनता का स्वराज" प्राप्त करना चाहिए । जवाहरलाल की तरह ही सुभाष असहयोग आंदोलन वापस लेने के आलोचक थे और "परिवर्तन विरोधियों" का साथ दे पाने में असमर्थ थे । यद्यपि कुछ समय के लिए वे "परिवर्तन समर्थकों" के साथ हो गये थे और वह भी बंगाल में उसके प्रमुख समर्थक सी. आर. दास के प्रति अपनी वफादारी के कारण लेकिन सुभाष का हृदय उनके साथ नहीं था । असहयोग आन्दोलन के बाद सुभाष कुछ समय के लिए कलकत्ता के नागरिक मामलों में (जुलाई और अक्तूबर 1924 के बीच) प्रमुख प्रशासनिक अधिकारी की हैसियत से व्यस्त थे वैसे ही जैसे जवाहरलाल इलाहाबाद में (अप्रैल 1923 से अप्रैल 1925 के बीच अध्यक्ष की हैसियत से) । राजनीतिक जीवन की इस घड़ी में लगता था कि सुभाष भी उसी तरह उन्हीं उलझनों तथा चिंताओं के शिकार थे जितने जवाहरलाल और अन्य नेता । किन्तु इस समय सुभाष को वह मौका नहीं मिला जो जवाहर को विदेश की खुली हवा में सांस लेने से (नये विचारों से प्रभावित) समाजवादियों के सम्पर्क में आने और मार्क्सवादी प्रयोगों की जानकारी से मिला था । साथ ही उन्हें मेहनतकश लोगों के साथ काम करने का लाभ भी नहीं मिला जो जवाहरलाल

13. सुभाष चन्द्र बोस

को (कुछ हद तक) मिला था । वे दूर से ही निम्न वर्गों की महत्वाकांक्षाओं से अवगत रहे । परिणामतः वामपंथ की ओर अपने पूरे झुकाव और सुधारवादी रुख के बावजूद सुभाष को समाजवादी विचारों का उतना स्पष्ट और निश्चित ज्ञान नहीं था, जितना जवाहरलाल को था । दोनों में एक अंतर यह भी था कि जवाहरलाल की तरह सुभाष कांग्रेस के नेता के रूप में गांधी जी के नेतृत्व के प्रति उतनी दृढ़ता से प्रतिबद्ध नहीं थे और न ही उन्हें साम्राज्यवाद विरोधी संघर्षों की पद्धति के रूप में अहिंसा की उपयोगिता पर विश्वास था । लेकिन उन्हें जवाहर के जनता को एकत्रित करने और जन-आंदोलन की तुरंत आवश्यकता के मुद्दे पर कोई मतभेद नहीं था । साथ ही जवाहरलाल के साम्राज्यवाद विरोधी दृष्टिकोण को मानने में भी कोई कठिनाई नहीं थी ।

## 26.6 सिद्धांत और व्यवहार में समाजवाद को प्रोत्साहन

अगस्त, 1928 में जवाहरलाल ने कांग्रेस के भीतर एक प्रभावक गुट के रूप में "इंडिपेंडेंस फार इंडिया लीग" की शुरुआत की । इस कार्यवाही के लक्ष्य थे :

- डोमीनियन स्टेटस की धारणा का विरोध करना ।
- अंग्रेज़ों से पूर्ण स्वतंत्रता की मांग करना ।
- समाजवादी आधार पर भारतीय गणतंत्र की स्थापना के लिए कार्य करना ।

सुभाष इस काम में जवाहरलाल के साथ मिल गये और उन्होंने एक साथ मिलकर कांग्रेस के कलकत्ता अधिवेशन (दिसम्बर 1928) में कांग्रेस के "डोमीनियन स्टेटस" के लक्ष्य को "पूर्ण स्वराज" में बदलने का प्रस्ताव पेश किया । इस उद्देश्य में वे केवल सीमित सफलता ही प्राप्त कर सके किंतु इस मांग से जागरूकता अवश्य उत्पन्न कर सके । वास्तविक सफलता अगले साल मिली, जब जवाहरलाल कांग्रेस और इसके लाहौर अधिवेशन (दिसम्बर 1929) के अध्यक्ष बन गये और उन्होंने "पूर्ण स्वतंत्रता" को लक्ष्य के रूप में अपनाया । 31 दिसम्बर, 1929 की मध्य रात्रि को लाहौर में कांग्रेस अध्यक्ष द्वारा स्वतंत्रता का तिरंगा झंडा फहराया गया । और 26 जनवरी, 1930 का दिन पूरे देश में स्वतंत्रता दिवस के रूप में मनाया गया । इन दोनों बातों ने यह सिद्ध कर दिया कि राष्ट्रवादी आंदोलन साम्राज्यवाद विरोधी था । किन्तु पूर्ण-स्वतंत्रता का मूल क्या है और स्वतंत्र भारत में आम व्यक्ति की स्वतंत्रता किस प्रकार की होगी अब भी पर्याप्त रूप से स्पष्ट नहीं हुआ था ।

फिर भी जवाहरलाल और सुभाष जैसे नेताओं और उनके असंख्य अनुयायियों (जो पहले से ही अधिक सावधानी बरतने वाली और कम जुझारू "दक्षिण पंथी कांग्रेस" (नरम दल) की तुलना में अपने आपको "वामपंथी कांग्रेस" (गरम दल) का कहने लगे थे) की इस सोच को समझना कठिन नहीं था । जवाहरलाल और सुभाष जिस प्रकार सामान्य रूप में आम जनता से और विशेषतः नौजवानों यूथ लीग, हिंदुस्तानी सेवा दल, नौजवान भारत सभा और स्वयं सेवकों के आंदोलन द्वारा छात्रों (छात्र संगठनों और कांफ्रेंसों द्वारा) और मज़दूरों (प्रमुखतः ऑल इंडिया ट्रेड यूनियन कांग्रेस के द्वारा जिसकी अध्यक्षता 1929 में जवाहरलाल और 1931 में सुभाष ने की थी) से संपर्क साध रहे थे, उससे यह बात स्पष्ट हो गयी थी । जिस प्रकार से उन्होंने साम्राज्यवाद की प्रकृति का पर्दाफाश किया, मेहनतकश जनता के प्रति अपनी चिंता व्यक्त की और उन्हें सामाजिक-आर्थिक न्याय दिलाने के लिए इच्छा व्यक्त की उससे जनता बहुत प्रभावित हुई । जब सविनय अवज्ञा आंदोलन व्यापक स्तर पर शुरू किया गया था तब नेहरू और बोस दोनों ही जेल में थे (जनवरी से सितम्बर, 1930 तक सुभाष और अप्रैल से अक्तूबर, 1930 तक जवाहरलाल) । फिर भी, आंदोलन के बढ़ते हुए सामाजिक आधार में उन्होंने अपने ढंग से योगदान दिया और विभिन्न क्षेत्रों के लोगों को इसमें भाग लेने के लिए प्रेरित किया । इसके साथ-साथ ही जवाहरलाल और सुभाष चाहे जेल के अंदर हों या इसके बाहर उनके अपने विचार एक निश्चित आकार ले रहे थे ।

यह विशेष रूप से जवाहरलाल के लिए अधिक सच था, जोकि इस बात का संकेत देने में समर्थ थे कि कांग्रेस को किस प्रकार की स्वतंत्रता के लिए लड़ना चाहिये । अपने मौलिक अधिकारों के मसौदे में (ड्राफ्ट, जिसे कांग्रेस के कराची अधिवेशन, मार्च, 1931 में स्वीकार कर लिया गया था) जवाहरलाल ने साफ-साफ लिखा :

"जनता के शोषण को समाप्त करने के लिए, राजनीतिक आजादी में करोड़ों भूखे लोगों की वास्तविक आर्थिक आजादी भी अवश्य शामिल होनी चाहिये" । उन्होंने आगे ये मांगे उठायीं :

- मजदूरों के लिए निर्वाह-वेतन,
- सम्पत्ति पर विशेष कर, और
- मुख्य उद्योगों, खनिज संसाधनों, रेलों, जलमार्गों, पोत परिवहन और यातायात के अन्य साधनों पर राज्य का नियंत्रण ।

व्यक्तिगत रूप से जवाहरलाल निजी सम्पत्ति की प्रथा से भी छुटकारा पाने के इच्छुक थे, उनके अनुसार "यह समाज में किसी एक व्यक्ति विशेष को ख़तरनाक हद तक शक्ति देती है" ।

फिर भी इस विषय पर उनके लिए उन अनेकों कांग्रेसियों का समर्थन प्राप्त करना संभव नहीं था जो ज़मींदारी उन्मूलन और भूमिहीनों को भूमि आबंटन की मांगों के विभिन्न वर्गीय हितों का प्रतिनिधित्व करते थे । जो भी हो 1931 के मौलिक अधिकारों और आर्थिक कार्यक्रमों को कांग्रेस के समाजवाद की ओर बढ़ने में एक महत्वपूर्ण कदम के रूप में लिया जाना चाहिए ।

उत्साही साम्राज्यवाद-विरोधियों के रूप में जवाहरलाल और सुभाष दोनों ही गांधी-इरविन समझौते (मार्च, 1931) के लागू होने से नाखुश थे । उन्हें संविधानवाद पर चर्चा करने के लिए लंदन में हुई दूसरी गोल मेज़ कांफ्रेंस (सितम्बर से दिसम्बर, 1931) में कांग्रेस की निरर्थक हिस्सेदारी से कुछ परिणाम निकलने की उम्मीद नहीं थी । उन्हें सविनय अवज्ञा आंदोलन (मई, 1933) के औपचारिक रूप से वापस लेने में भी कोई लाभ नहीं दिखाई पड़ा । सुभाष की कुंठा ने उन्हें यथासमय कांग्रेस और देश को नेतृत्व देने में गांधी जी की क्षमता पर भी प्रश्न चिह्न लगाने और किसी ऐसे नेता की तलाश करने के लिए मजबूर कर दिया जो समझौता न करता हो । जवाहरलाल के असंतोष ने उन्हें कांग्रेस की गतिविधियों के निर्णायक प्रभावों और दबावों के प्रति और सजग बना दिया । साथ ही उन्होंने एक अत्यधिक जनप्रिय नेता के नेतृत्व में कांग्रेस की एकता को मज़बूत बनाने की आवश्यकता को महसूस कराया ।

## 26.7 कांग्रेस नीति पर प्रभाव

सविनय अवज्ञा आंदोलन की समाप्ति के चरण में जबकि जवाहरलाल ने यू. पी. किसान आंदोलन (इलाहाबाद, रायबरेली, इटावा, उन्नाव और कानपुर) में पुनः रुचि लेना शुरू किया तब सुभाष मज़दूर आंदोलन में रुचि ले रहे थे । फिर भी दोनों ने नौजवानों, छात्रों और ग़रीबों के बीच अपने प्रभाव को बनाए रखा और उन्हें एक परिवर्तनगामी और जुझारू संघर्ष की ओर प्रेरित किया । अन्तोगत्वा

इससे कांग्रेस संगठन के भीतर ही कांग्रेस समाजवादी पार्टी (मई, 1934) के गठन में आसानी हुई । वास्तव में इस नई पार्टी के पीछे की प्रेरक शक्ति के रूप में जवाहरलाल नेहरू ही थे । फिर भी न तो उन्होंने और न ही सुभाष ने इसमें हिस्सा लिया, जबकि दोनों ने ही मुख्य मुद्दों पर अपना समर्थन जताया । जेल के अंदर और बाहर तथा बीच-बीच में यूरोपीय यात्राओं (1933 से 1936 तक और फिर 1937-38 में सुभाष तथा 1936 और 1938 में जवाहरलाल की यात्राएं) से सुभाष और जवाहरलाल ने अपने-अपने दृष्टिकोणों को और अधिक सुचारू रूप से प्रतिपादित किया । सुभाष ने अपने-आपको उत्तरोत्तर स्वतंत्रता के लिए भारत के संघर्ष को तेज करने के नये ढंग और नयी नीतियों की तलाश तक सीमित कर लिया था । शासकों का खुलकर सामना करने के लिए वे उतावले थे । जवाहरलाल भी भारत में साम्राज्यवाद विरोधी संघर्ष को तीव्र करने के विषय में उतने ही चिंतित थे । इसके साथ ही उन्होंने इसे देश के भीतर ही उठ रहे सामाजिक आर्थिक संघर्ष से जोड़ने की आवश्यकता को तीव्रता से महसूस किया । उन्होंने बदलती हुई अंतर्राष्ट्रीय राजनीतिक स्थिति के अनुसार ही उचित परिवर्तन करने का समर्थन किया ।

ब्रिटिश साम्राज्यवाद के ख़िलाफ़ सफलता प्राप्त करने के विचार से जवाहरलाल इस बात की वकालत करते रहे कि कांग्रेस जैसे राष्ट्रीय संगठन के लिए यह आवश्यक है कि वह सभी वर्गों के लोगों और उससे अधिक निम्न स्तरीय लोगों के हितों को लामबद करे । परन्तु जब तक उनके अधिकारी को शोषकों (जोकि साम्राज्यवाद के साथ हैं) से प्राप्त नहीं किया जायेगा, तब तक न तो भारी संख्या में जनता को एकत्रित करना ही संभव हो पायेगा और न ही वर्ग और समुदाय जैसी श्रेणियों में भेद ही समाप्त हो पायेगा ।

इस साम्राज्यवाद विरोधी जन संघर्ष को सफल बनाने की इस आवश्यक शर्त को पूरा करने के लिए यह भी जरूरी था कि कांग्रेस के पास एक स्वतंत्र, मुक्त और धर्म निरपेक्ष भारत के भविष्य का खाका भी हो । इसीलिए कांग्रेस को इन बातों के लिए प्रतिबद्ध होना चाहिए :

- वयस्क मताधिकार पर आधारित चुनाव,
- सभी भारतीयों के अधिकारों और सुविधाओं हेतु एक संविधान सभा (Constituent Assembly)
- लम्बे अर्से से चले आ रहे सामाजिक और आर्थिक अन्यायों का अंत,
- आधुनिक उद्योगों की सहायता से आर्थिक स्वतंत्रता की प्राप्ति ।

जवाहरलाल ने महसूस किया कि यह उस समय नहीं होना चाहिए जब अंदरूनी झगड़े चल रहे हों बल्कि भारत की परिस्थितियों को सामने रखकर राष्ट्रीय सहमति से ऐसा करना चाहिए । दूसरे शब्दों में, जवाहरलाल ने भारत में जनतांत्रिक समाजवाद के सिद्धांतों को अपनाने के लिए लगातार वकालत की थी और वे अंत में कांग्रेस को समाजवाद के पक्ष में मोड़ने में सफल हुए ।

लखनऊ (दिसम्बर, 1935) और फैज़पुर (दिसम्बर, 1936) अधिवेशनों का अध्यक्ष चुने जाने के बाद नेहरू ने अपने विभिन्न भाषणों और वक्तव्यों तथा विभिन्न कथनों के द्वारा अपने समाजवादी विचारों का और अधिक खुलासा किया । कांग्रेस अध्यक्ष की हैसियत से उन्हें अक्सर कार्यकारिणी समिति में जहां असमाजवादी (और कभी समाजवाद-विरोधी) बहुमत के विचारों को झेलना पड़ा था । 1935 के ऐक्ट के तहत कांग्रेस द्वारा चुनावों के बाद 1937 में सत्ता स्वीकार करने के मुद्दे पर हार माननी पड़ी थी और असफलता का मुंह देखना पड़ा था । मुसलमानों के साथ "जन सम्पर्क" की उनकी योजना ध्वस्त कर दी गयी थी । फिर भी जवाहरलाल को निम्नलिखित मुद्दों पर कुछ महत्वपूर्ण सफलताएं भी मिली :

- भूमि संबंधी प्रश्न पर (फ़ैज़पुर कांग्रेस में उदार कृषि कार्यक्रम को तैयार करने में योगदान देकर) ।
- संविधान के प्रश्न पर (एक चुनी हुई संविधान सभा) (Constituent Assembly) की मांग को सामने ला कर ।
- नागरिक स्वतंत्रता के प्रश्न पर (कांग्रेस के प्रांतीय मंत्रिमंडलों को सभी राजनीतिक क़ैदियों को रिहा करने का आदेश देकर) ।
- एक ज़िम्मेदार सरकार के प्रश्न पर (भारतीय रजवाड़ों में उनके शासकों के आतंक के ख़िलाफ़ प्रजा मंडल आंदोलन का समर्थन करके) । और
- साम्राज्यवाद के सबसे घिनौने रूप फ़ासिज़्म के ख़िलाफ़ विश्वव्यापी प्रचार में (स्पैनिश गृह युद्ध में "प्रगतिशील शक्तियों" का पक्ष लेकर, इथोपिया पर इटली के आक्रमण के ख़िलाफ़ आवाज़ उठा कर और जापान द्वारा चीन पर आक्रमण के बाद चीन के लिए राहत कार्यों की व्यवस्था करके) ।

कांग्रेस अध्यक्ष के रूप में सुभाष का कार्यकाल (हरिपुर अधिवेशन फरवरी, 1938 में उनके चुनाव के बाद) वैचारिक दृष्टिकोण से अपेक्षाकृत इतना आकर्षक नहीं था और अगले साल उनके कांग्रेस की अध्यक्षता के लिए पुनः चुने जाने के प्रयासों से कांग्रेस "वामपंथी" और "दक्षिणपंथी" दलों में विभाजित हो गई थी । फिर भी भारत के औद्योगिकीकरण और सोवियत नमूने पर आधारित योजनाबद्ध आर्थिक विकास पर जोर देकर सुभाष ने कांग्रेस पर अपनी समाजवादी छाप छोड़ दी थी । वास्तव में जवाहरलाल की अध्यक्षता में कांग्रेस की राष्ट्रीय योजना समिति (नेशनल प्लानिंग कमेटी) बनाने में सुभाष की भूमिका प्रमुख थी ।

ऐसा प्रतीत होता है कि 1930 के आखिर तक, कांग्रेसियों में उदारमना और आगे विकास की ओर देखने वाले अपने उन अधिकांश प्रश्नों का जवाब पा गये थे जो कि उन्हें असहयोग आंदोलन के परिणाम से या 1920 के उत्तरार्द्ध में चिंतित कर रहे थे । 1940 के आरंभ में उनमें से अनेकों यह जान गये थे कि साम्राज्यवाद-विरोधी संघर्ष में उन्हें किससे लड़ना है । ऐसा प्रतीत होता था कि वे उस ढंग से परिचित हो गये थे जिसमें उन्हें साम्राज्यवाद विरोधी संघर्ष में लोगों के वास्तविक दुखों को महत्व देकर सभी वर्ग और जाति के क्षेत्रीय विचारों से ऊपर उठना होगा । वे जान गये थे कि किस तरह साम्राज्यवादी शासन के सभी शोषितों और खासकर मेहनतकश जनता को संगठित करके संघर्ष को तीव्र और मज़बूत बनाना है । किन्तु अधिक महत्वपूर्ण यह है कि साम्राज्यवाद विरोधी संघर्ष उन्हें किस लक्ष्य तक ले जाएगा इसकी झलक भी उन्हें मिल गयी जान पड़ती थी। इन सभी निर्णायक तत्त्वों को धीरे-धीरे समझने और राष्ट्रीय आंदोलन के परिवर्तनवाद (Radicalisation) की तर्कसंगत प्रक्रिया का श्रेय जवाहरलाल नेहरू और सुभाष चन्द्र बोस की दृष्टि और प्रयासों को जाता है ।

**बोध प्रश्न 3**

1) भारतीय स्वतंत्रता लीग (Independence for India League) को क्यों शुरू किया गया ?

2) 1927 के बाद भारतीय समाज के किन वर्गों ने बोस और नेहरू का ध्यान विशेष रूप से आकर्षित किया ?

3) नेहरू और बोस के समाजवादी विचारों ने कांग्रेस की नीतियों को किस तरह प्रभावित किया ?

## 26.8 सारांश

इस इकाई में आपने भारतीय राजनीति की मुख्य धारा में समाजवादी विचारों के विकास और प्रसार के बारे में पढ़ा । आपने यह देखा कि कांग्रेस की स्थापना के कई वर्षों बाद तक इन विचारों को प्रधानता नहीं मिली । फिर भी जवाहरलाल नेहरू और सुभाष चन्द्र बोस जैसे नौजवान नेताओं के

हस्तक्षेप से, समाजवादी विचारों को प्रोत्साहन मिला और उन्होंने कांग्रेस के कार्यक्रमों तथा राजनीतिक गतिविधियों को प्रभावित किया । आपने यह भी देखा कि किस तरह नेहरू के समाजवादी विचारों को आगे बढ़ाने के प्रयासों को कुछ प्रमुख कांग्रेसियों द्वारा समर्थन प्राप्त नहीं हुआ जिन्होंने इन विचारों का विरोध किया और कांग्रेस को समाजवादी दिशा की ओर जाने से रोका । संक्षेप में, इन विचारों की महत्ता और नेहरू तथा बोस जैसे लोगों के प्रयासों को सिर्फ उनकी चरम सफलता या असफलता द्वारा ही नहीं बल्कि इसे उनके प्रभाव, उनकी निष्ठा और प्रतिबद्धता द्वारा आंका जाना चाहिए जिसके साथ उन्होंने अनुसरण किया और प्रचार प्रसार किया ।

## 26.9 शब्दावली

**डोमीनियन स्टेटस** : औपनिवेशिक सरकार की देख-रेख में स्वायत्त शासन ।

**फेबियन सोशलिज्म** : इस विचार के अनुसार समाजवाद मौजूदा सामाजिक और आर्थिक व्यवस्था का विकल्प नहीं था बल्कि इस समाजवाद का उद्देश्य समाज को शांतिपूर्ण उपायों द्वारा अधिक उदार बनाना था ।

**परिवर्तन विरोधी** : कांग्रेस नेतृत्व का वह दल जो काउंसिल (परिषद) के बहिष्कार का समर्थक और स्वराज का विरोधी था ।

**परिवर्तन समर्थक** : कांग्रेस नेतृत्व का वह दल जो स्वराजियों के कार्यक्रमों का समर्थक था ।

**प्रजा मंडल आंदोलन** : भारतीय रियासतों में प्रजातांत्रिक व्यवस्था स्थापित करने के लिए जनता द्वारा चलाया गया आन्दोलन ।

## 26.10 बोध प्रश्नों के उत्तर

**बोध प्रश्न 1**

1) आपको उन नेताओं के बारे में बताना चाहिए जिनके बारे में भाग 26.2 में चर्चा की गयी है ।
2) प्रारंभिक दौर के नेता आशंकित थे क्योंकि वे सोचते थे कि समाजवाद को अपनाने से भारत में वर्ग संघर्ष उत्पन्न होगा और शायद यह राष्ट्रीय आंदोलन को भी कमज़ोर कर देगा । भाग 26.2 भी देखिये ।
3) असहयोग आंदोलन को अचानक वापस ले लेने से एक आम निराशा व्याप्त थी तथा साम्प्रदायिक भेद बढ़ गया था । भाग 26.3 भी पढ़िये ।

**बोध प्रश्न 2**

1) अपने विदेश प्रवास के दौरान नेहरू ने अनेकों सभाओं में हिस्सा लिया और वे समाजवादी विचारकों से मिले । विस्तार के लिए उपभाग 26.4.1 पढ़िये ।
2) विश्व के सभी भागों में साम्राज्यवाद के खिलाफ संघर्ष औपनिवेशिक शोषण के खिलाफ निर्दिष्ट था । इस अर्थ में भारत का स्वाधीनता संग्राम भी इसी का एक हिस्सा था । उपभाग 26.4.2 और 26.4.3 भी पढ़िये ।

**बोध प्रश्न 3**

1) इंडिपेंडेंस फार इंडिया लीग की स्थापना डोमीनियन स्टेटस की धारणा का विरोध करने और पूर्ण स्वराज तथा भारतीय गणतंत्र की मांग के लिए की गयी थी । (भाग 26.6 देखिये)
2) 1927 के बाद नेहरू तथा बोस ने छात्रों, युवाओं और मज़दूरों की ओर ध्यान दिया । (भाग 26.6 देखिये)
3) नेहरू और बोस ने कांग्रेस को कृषि संबंधित प्रश्नों, नागरिक स्वतंत्रता के समर्थन और फासिज्म के विरुद्ध निर्णय लेने में प्रभावित किया । भाग 26.7 भी पढ़िये ।

# इकाई 27 वामपंथी दलों का उदय—भारतीय कम्युनिस्ट पार्टी तथा कांग्रेस सोशलिस्ट पार्टी

## इकाई की रूपरेखा


27.0 उद्देश्य

27.1 प्रस्तावना

27.2 भारत में वामपंथी आंदोलन कैसे बढ़ा ?

27.3 भारतीय कम्युनिस्ट पार्टी की स्थापना

27.3.1 एम. एन. राय

27.3.2 एम. एन. राय – लेनिन विवाद

27.3.3 एम. एन. राय ताशकंद में

27.3.4 आरंभिक कम्युनिस्ट ग्रुप

27.3.5 भारतीय कम्युनिस्ट पार्टी की स्थापना

27.4 मज़दूर और किसान पार्टियों की स्थापना

27.5 ट्रेड यूनियनों पर कम्युनिस्ट प्रभाव

27.6 मेरठ षड्यंत्र केस और 1934 का प्रतिबंध

27.7 कांग्रेस सोशलिस्ट पार्टी की स्थापना

27.7.1 आरंभिक समाजवादी नेता

27.7.2 आरंभिक समाजवादियों का संक्षिप्त परिचय

27.7.3 अखिल भारतीय कांग्रेस समाजवादी पार्टी की ओर

27.8 कांग्रेस सोशलिस्ट पार्टी का कार्यक्रम

27.9 राष्ट्रीय राजनीति पर कांग्रेस समाजवादियों के कार्यक्रम का प्रभाव

27.10 सारांश

27.11 शब्दावली

27.12 बोध प्रश्नों के उत्तर


## 27.0 उद्देश्य

इस इकाई को पढ़ने के बाद आप :

- भारत में वामपथ के उभरने की ऐतिहासिक पृष्ठभूमि के बारे में जान सकेंगे,
- स्वतंत्रता संग्राम के दौरान भारत में वामपंथी पार्टियों और समूहों की विचारधारा को समझ सकेंगे, और
- स्वतंत्रता-पूर्व वामपंथी विचारधारा भारत के सामाजिक-राजनीतिक जीवन को किस हद तक प्रभावित कर सकी, ये जान सकेंगे ।

## 27.1 प्रस्तावना

भारत में वामपंथी आंदोलन के इतिहास में जाने से पहले "वामपंथ" शब्द के ऐतिहासिक एवं सैद्धांतिक महत्व की चर्चा कर लें । फ्रांस की क्रांति के दौरान, फ्रांस की नेशनल असेम्बली में तीन ग्रुप थे कंज़रवेटिव दल, जिसने राजा तथा कुलीन वर्ग को समर्थन दिया । यह दल राजा और कुलीन वर्ग की शक्तियों को घटाना नहीं चाहता था, लिबरल दल, जो सरकार में सीमित सुधार चाहता था, और रैडिकल दल जोकि सरकारी व्यवस्था में आमूल परिवर्तन चाहता था, जैसे संविधान ग्रहण करना और राजा की शक्तियों की सीमाबंदी आदि । असेम्बली के भीतर कजरवेटिव दल वाले अध्यक्ष के दायीं ओर और

रेडिकल दल वाले अध्यक्ष के बायीं ओर बैठते थे तथा लिबरल बीच में बैठते थे । तब से, राजनीति की शब्दावली में "वाम" शब्द का प्रयोग ऐसे दलों और आंदोलनों के अर्थ में होता आया है जो सरकार और समाज के वंचित तथा पीड़ित वर्गों के हितों को ध्यान में रखते हुए सामाजिक तथा आर्थिक व्यवस्था में मूलभूत सुधारों के लिए लड़ते हैं । दूसरी ओर, "दक्षिणपंथी" (Rightist) शब्द का प्रयोग ऐसे दलों के अर्थ में होता है जो अपने स्वयं के हितों के कारण मौजूदा सरकारी व्यवस्था तथा सामाजिक और आर्थिक व्यवस्था में परिवर्तन के विरुद्ध हैं । सामाजिक-आर्थिक एवं राजनीतिक व्यवस्था में सीमित परिवर्तन चाहने वाले, सेन्ट्रिस्ट या मध्यम मार्गी के रूप में जाने जाते हैं । सामान्यतः वामपंथ को समाजवाद का पर्याय माना जाता है, क्योंकि समाजवाद एक ऐसी विचारधारा है जो मेहनतकश जनता को ऊपर उठाने तथा उन्हें उनके मालिकों यानी पूँजीपतियों के शोषण से सुरक्षित रखने का लक्ष्य रखती है ।

आप इकाई 12 के द्वारा पहले ही जान चुके हैं कि किस तरह औद्योगिक क्रांति के फलस्वरूप समाजवाद उत्पन्न हुआ और यूरोप में बढ़ा । कार्ल मार्क्स के समाजवाद के सिद्धांत, उनकी इतिहास की अर्थशास्त्री व्याख्या, उनके वर्ग संघर्ष के सिद्धांत और वर्ग-विहीन समाज के विचारों के बारे में भी आपको बताया जा चुका है । आपने (इकाई-14 में) यह भी जाना है कि किस तरह लेनिन ने रूस में मार्क्स के सिद्धांत को लागू किया और उस देश में सर्वहारा का अधिनायकत्व स्थापित किया । यह भी उल्लेख किया जा चुका है (इकाई-26 में) कि कांग्रेस के नेता, जैसे जवाहरलाल नेहरू और सुभाष चन्द्र बोस समाजवादी विचारधारा को मानते थे । इस इकाई में हम भारतीय कम्युनिस्ट पार्टी और कांग्रेस सोशलिस्ट पार्टी की स्थापना तथा कार्यक्रम के बारे में चर्चा करेंगे ।

## 27.2 भारत में वामपंथी आंदोलन कैसे बढ़ा ?

भारत में वामपंथी आंदोलन आधुनिक उद्योगों के विकास और दूसरे देशों जैसे ग्रेट ब्रिटेन तथा रूस में समाजवादी आंदोलनों के प्रभाव के परिणामस्वरूप शुरू हुआ और बढ़ा । औद्योगिक विकास के फलस्वरूप कुछ जगहों जैसे बम्बई, कलकत्ता और मद्रास में मज़दूरों की संख्या बहुत अधिक बढ़ी । धीरे-धीरे मज़दूर बेहतर कार्य-परिस्थितियों तथा ऊंचे वेतन के लिए अपने आपको संगठित करने लगे । इससे ट्रेड यूनियनों की स्थापना हुई । भारत में ट्रेड यूनियन आंदोलन की वृद्धि की चर्चा इकाई-28 में ज्यादा विस्तार के साथ करेंगे, किन्तु यहाँ हम यह बताना चाहेंगे कि ट्रेड यूनियनवाद की वृद्धि ने वामपंथी पार्टियों की स्थापना के लिए पृष्ठभूमि तैयार की ।

इकाई-14 में आप रूस में सफल समाजवादी क्रांति के बारे में पहले ही पढ़ चुके हैं । 1919 में सोवियत यूनियन की कम्युनिस्ट सरकार के सौजन्य से विभिन्न देशों की कम्युनिस्ट पार्टियों के एक अंतर्राष्ट्रीय संगठन की स्थापना हुई थी । यह संगठन थर्ड कम्युनिस्ट इंटरनेशनल के नाम से जाना जाता है क्योंकि इसी तरह के दो संगठन पहले बन चुके थे । इसका उद्देश्य कम्युनिस्ट क्रांति लाना और पूरे विश्व में मज़दूर वर्ग की सरकारें स्थापित करना था ।

प्रथम विश्व-युद्ध की समाप्ति तक भारतीय उद्योगों में मज़दूरों की हड़ताल एक विरल घटना थी और मज़दूर राजनीतिक रूप से जागरूक नहीं थे । प्रथम विश्व-युद्ध की समाप्ति के बाद से उद्योगों में लगातार हड़तालें हुई और बड़ी संख्या में ट्रेड यूनियनें बनीं । प्रथम विश्व-युद्ध के बाद गंभीर मज़दूर अशांति, प्रमुखतः युद्ध के कारण मूल्यों में वृद्धि तथा मालिकों द्वारा वेतन न बढ़ाने के कारण थी । आर्थिक हितों की माँग करते हुए मज़दूर अपनी राजनीतिक भूमिका के प्रति भी जागरूक हो गए । बम्बई जैसे शहरों में मज़दूरों ने दमनकारी रौलट ऐक्ट के ख़िलाफ़ हड़तालें आयोजित कीं । राष्ट्रवादी नेता भी मज़दूर वर्ग के आंदोलन में उत्साह के साथ रुचि लेने लगे । अखिल भारतीय ट्रेड यूनियन कांग्रेस का पहला अधिवेशन बम्बई में अक्तूबर, 1920 में राष्ट्रवादी नेता लाला लाजपत राय की अध्यक्षता में हुआ ।

चलिए इस पृष्ठभूमि के साथ भारत में वामपंथी पार्टियों के इतिहास की चर्चा करते हैं ।

## 27.3 भारतीय कम्युनिस्ट पार्टी की स्थापना

रूस में बोल्शेविक क्रांति की सफलता तथा कम्युनिस्ट इंटरनेशनल की स्थापना को देखते हुए, भारत में या विदेशों में काम कर रहे कुछ भारतीय क्रांतिकारियों और बुद्धिजीवियों ने भारत में भी कम्युनिस्ट पार्टी की स्थापना का विचार किया । एम. एन. राय (मानवेन्द्र नाथ राय) ऐसे प्रथम व्यक्ति थे, जिन्होंने भारत के बाहर ताशकंद में 1920 में कम्युनिस्ट इंटरनेशनल के तत्वावधान में भारतीय कम्युनिस्ट पार्टी बनाई

## 27.3.1 एम. एन. राय

मानवेन्द्र नाथ राय का वास्तविक नाम नरेन्द्रनाथ भट्टाचार्य था । उनका जन्म 6 फरवरी 1889 को बंगाल के 24 परगना ज़िले के उरबलिया गाँव में एक गरीब ब्राह्मण परिवार में हुआ । आरम्भिक जीवन में वे एक क्रांतिकारी आंतकवादी थे । उन्होंने अपनी शिक्षा अरविन्द घोष द्वारा स्थापित राष्ट्रीय विश्वविद्यालय में ग्रहण की । प्रथम विश्व-युद्ध के दौरान वे जर्मन हथियारों की मदद से भारत में हथियारबंद क्रांति लाने में व्यस्त थे । अपने क्रांतिकारी दौर में वे अनेकों देशों में घूमे जैसे मलाया, इंडोनेशिया, इंडो-चीन, फिलीपीन्स, जापान, कोरिया, चीन तथा अमरीका । वे 1916 की गर्मियों में अमरीकी शहर सेनफ्रांसिस्को पहुँचे । अमरीका प्रवास के दौरान उन्होंने अपना नाम बदल कर मानवेन्द्र नाथ राय रख लिया । यहाँ उन्होंने मार्क्सवादी साहित्य पढ़ा । धीरे-धीरे वे राष्ट्रवाद से अंतर्राष्ट्रीय कम्युनिज़्म की ओर उन्मुख हुए । अमरीका के संयुक्त शक्तियों यानी ब्रिटेन तथा फ्रांस के साथ प्रथम विश्व-युद्ध में शामिल हो जाने के बाद, राय को वहाँ ज़्यादा देर तक ठहरना असुरक्षित लगा । वे मैक्सिको चले गए । यहाँ उनका सम्पर्क रूस के कम्युनिस्ट राजनीतिक माइकल बोरोदिन से हुआ । राय की बोरोदिन से दोस्ती हो गई और उन्होंने बोरोदिन से कम्युनिज़्म की दीक्षा ली तथा मैक्सिको की कम्युनिस्ट पार्टी को संगठित करने में उनकी मदद की । मैक्सिको से वे रूसी कम्युनिस्ट नेता लेनिन के आह्वान पर मॉस्को चले गए ।

14. एम. एन. राय

## 27.3.2 एम. एन. राय – लेनिन विवाद

मॉस्को में उन्होंने जुलाई-अगस्त, 1920 को हुई कम्युनिस्ट इंटरनेशनल की दूसरी कांग्रेस में हिस्सा लिया । यह कांग्रेस औपनिवेशिक देशों यानी यूरोपीय शक्तियों द्वारा शासित एशियाई देशों के संबंध में कम्युनिस्ट इंटरनेशनल की नीतियों का निर्धारण करने जा रही थी । लेनिन के अनुसार, कम्युनिस्टों को ऐसे देशों में विदेशी साम्राज्यवाद के ख़िलाफ़ बुर्जुआ (मध्यम वर्ग यानी धनी वर्ग और बुद्धिजीवी) राष्ट्रवादियों द्वारा चलाये जा रहे क्रांतिकारी आंदोलनों को पूरा सक्रिय सहयोग देना चाहिए । उनका विचार था कि महात्मा गांधी जैसे राष्ट्रवादी, जोकि ब्रिटिश साम्राज्यवाद के ख़िलाफ़ आंदोलन चला रहे हैं, प्रगतिशील हैं । किन्तु राय की धारणा थी कि बुर्जुआ राष्ट्रवादी, प्रतिक्रियावादी (प्रगति के ख़िलाफ़) हैं, साथ ही यह भी कि कम्युनिस्टों को साम्राज्यवाद के ख़िलाफ़ अपने संघर्ष को मज़दूरों तथा किसानों की पार्टियाँ बनाकर स्वतंत्र रूप से चलाना चाहिए । राय के ज़ोर देने के

परिणामस्वरूप कम्युनिस्ट इंटरनेशनल की दूसरी कांग्रेस ने लेनिन के विचारों को निम्न तरीके से संशोधित किया : कम्युनिस्टों को जहाँ एक ओर साम्राज्यवाद के ख़िलाफ़ संघर्ष में "क्रांतिकारी राष्ट्रीय बुर्जुआजी को समर्थन देना चाहिए, वहीं उन्हें मज़दूरों तथा किसानों के बीच सहयोग के द्वारा अपने संघर्ष को स्वतंत्र रूप से आगे बढ़ाना चाहिए ।"

### 27.3.3 एम. एन. राय ताशकंद में

अक्तूबर, 1920 में एम. एन. राय सोवियत रूस स्थित ताशकंद में आये, जोकि अफ़गानिस्तान से अधिक दूर नहीं है । वहाँ उन्होंने भारतीय फ्रंटियर जनजाति के लोगों को अंग्रेज़ सरकार के ख़िलाफ़ सशस्त्र क्रांति के उद्देश्य से सैनिक प्रशिक्षण देने के लिए सैनिक स्कूल की स्थापना की । साथ ही भारतीय कम्युनिस्ट पार्टी की स्थापना भी की । भारतीय कम्युनिस्ट पार्टी को 1921 में कम्युनिस्ट इंटरनेशनल के साथ संबंधित किया गया । इसी बीच तुर्की के सुल्तान (जोकि ख़लीफ़ा या मुसलमानों के धार्मिक प्रमुख थे) के प्रति अंग्रेज़ सरकार के विद्वेष से तंग आकर हज़ारों मुसलमान हिजरत करके ताशकंद में राय के साथ शामिल हो गए । वहाँ उन्होंने नए स्थापित मिल्ट्री स्कूल में सैनिक प्रशिक्षण लिया । जब मई, 1921 में यह स्कूल बंद हो गया तो मुहाजिर मॉस्को के पूर्व में स्थित मेहनतकशों की कम्युनिस्ट यूनीवर्सिटी में पढ़ने चले गए । वहाँ उन्होंने मार्क्स और लेनिन के विचारों का शिक्षण प्राप्त किया ।

मास्को में प्रशिक्षण प्राप्त करने के बाद मुहाजिर भारत लौट आए । उनकी वापसी पर वे पुलिस द्वारा पकड़ लिए गए और जाँच-पड़ताल के लिए पेशावर लाए गए । यह जाँच पेशावर षड्यंत्र केस (1922-23) के रूप में जानी जाती है । इस जाँच के परिणामस्वरूप दो प्रमुख मुहाजिरा – मिया मोहम्मद अकबर शाह और गौहर रहमान ख़ान को दो साल कठोर क़ैद तथा अन्य लोगों को एक साल कठिन परिश्रम की सज़ा दी गई ।

### 27.3.4 आरंभिक कम्युनिस्ट ग्रूप

इसी बीच, वीरेन्द्र नाथ चट्टोपाध्याय, भूपेन्द्र नाथ दत्त तथा बरकतउल्लाह जैसे क्रांतिकारी, जो भारत के बाहर काम कर रहे थे, मार्क्सवादी हो गए । इस दौरान भारत के अंदर भी कुछ कम्युनिस्ट ग्रूप उभरे । महात्मा गांधी द्वारा असहयोग आंदोलन स्थगित करने के बाद इसके कुछ समर्थक मार्क्सवाद की ओर मुड़ गए ।

बम्बई में श्रीपद अमृत डांगे द्वारा एक कम्युनिस्ट ग्रूप संगठित किया गया । डांगे का जन्म अक्तूबर, 1899 को नासिक में एक मराठी ब्राह्मण परिवार में हुआ था । उनके पिता एक सॉलिसिटर के पास क्लर्क थे । उन्होंने विल्सन कॉलेज में शिक्षा प्राप्त की थी । जब गांधीजी ने असहयोग आंदोलन शुरू किया तब डांगे अपनी पढ़ाई छोड़कर उसमें शामिल हो गए । असहयोग आंदोलन के स्थगित होने के तुरंत बाद वे कम्युनिस्ट हो गए । 1921 में उन्होने **"गांधी वर्सेज़ लेनिन"** नामक एक किताब प्रकाशित की, जिसमें उन्होंने समाजवाद के प्रति अपने झुकाव को प्रदर्शित किया । 1922 में उन्होंने एक कम्युनिस्ट पत्रिका "दी सोशलिस्ट" का सम्पादन शुरू किया । इस पत्रिका के 16 सितम्बर 1924 के एक अंक में डांगे ने इंडियन नेशनल कांग्रेस की इंडियन सोशलिस्ट लेबर पार्टी के बनने की घोषणा की । शायद डांगे चाहते थे कि कम्युनिस्ट एक ग्रूप के रूप में कांग्रेस के अंदर ही काम करें ।

मई 1923 में मद्रास के सिंगारावेलु चेट्टियर नामक एक वृद्ध वकील ने, जो अपने आपको कम्युनिस्ट मानते थे, "लेबर किसान पार्टी" बनाने की घोषणा की । दिसम्बर 1922 को हुए इंडियन नेशनल कांग्रेस के 'गया अधिवेशन' में उन्होंने राष्ट्रीय स्वतंत्रता पर एक प्रस्ताव रखा और असहयोग आंदोलन को स्थगित करने पर गांधीजी की आलोचना की । साथ ही सुझाव दिया कि असहयोग आंदोलन को मज़दूरों की राष्ट्रीय हड़ताल के साथ मिलाना चाहिए ।

1925-26 में बंगाल में मुज़फ़्फ़र अहमद ने क़ाज़ी नज़रूल इस्लाम की सहायता से लेबर स्वराज पार्टी (जिसे शीघ्र ही किसानों तथा मज़दूरों की पार्टी के रूप में नया नाम दिया गया था) बनाई । क़ाज़ी नज़रूल इस्लाम, जो उस समय 49वीं बंगाल रेजिमेंट में हवलदार थे, बाद में राष्ट्रीय कवि के रूप में प्रसिद्ध हुए । लाहौर और कानपुर जैसे शहरों में भी कम्युनिस्ट पार्टियाँ बनीं ।

इसी दौरान एम. एन. राय, गुप्त दूतों द्वारा भारत के कम्युनिस्टों के साथ सम्पर्क बनाए हुए थे । 2 नवम्बर 1922 को एम. एन. राय ने, भारतीय कम्युनिस्ट पार्टी के लिए एक दोहरे संगठन की योजना की रूपरेखा बताते हुए, डांगे को पत्र लिखा । इस योजना के अनुसार एक सार्वजनिक संगठन तथा एक गुप्त दल बनाने का सुझाव दिया ।

पूर्ववर्ती भारतीय कम्युनिस्टों को, अपने प्रति अंग्रेज़ सरकार के विद्वेष के कारण, एक अखिल भारतीय संगठन बना पाना मुश्किल लग रहा था । 1924 में अंग्रेज़ सरकार ने चार प्रमुख कम्युनिस्टों के ख़िलाफ़ षडयंत्र का केस शुरू किया । वे चार कम्युनिस्ट थे – मुज़फ़्फ़र अहमद, एस. ए. डांगे, शौकत उस्मानी तथा नलिनी गुप्ता । सरकार ने आरोप लगाया कि इन कम्युनिस्टों ने "कम्युनिस्ट इंटरनेशनल" के नाम से पहचाने जाने वाले क्रांतिकारी संगठन की एक शाखा स्थापित की है और इस संगठन का उद्देश्य ब्रिटिश सम्राट की भारत पर प्रभुसत्ता समाप्त करना है । चूंकि अभियुक्तों पर मुकदमा कानपुर में चला । यह केस कानपुर षडयंत्र केस के नाम से जाना जाता है । मुकदमे के दौरान डांगे ने भारत में समाजवाद का प्रचार करने के अधिकार का दावा किया क्योंकि अंग्रेज़ साम्राज्य के अन्य हिस्सों में तथा ब्रिटेन में ऐसा करने की स्वतंत्रता है । इस मुकदमे के परिणामस्वरूप मई 1924 को डांगे, अहमद, उस्मानी और गुप्ता को चार-चार साल के कठोर कारावास की सज़ा हु

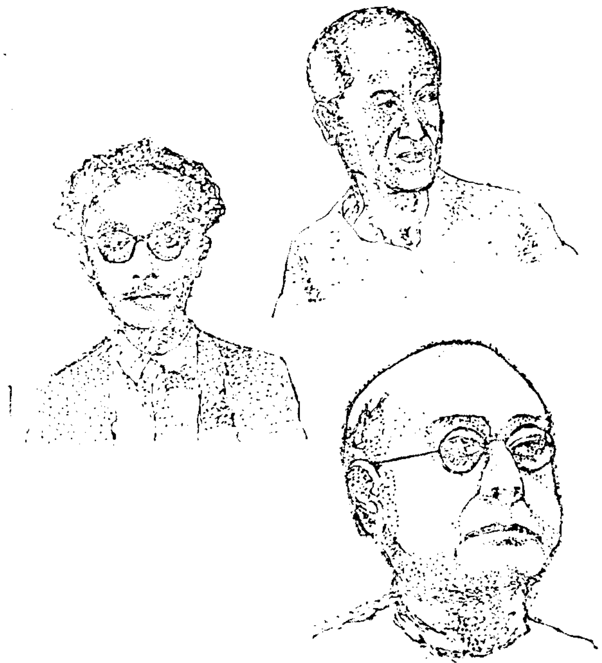

15. आरंभिक कम्युनिस्ट नेता (a) एस. ए. डांगे (b) मुज़फ्फर अहमद (c) भूपेन्द्रनाथ दत्ता

## 27.3.5 भारतीय कम्युनिस्ट पार्टी की स्थापना

सितम्बर, 1924 को, कानपुर में, सत्यभक्त ने भारतीय कम्युनिस्ट पार्टी के निर्माण की घोषणा की । उन्होंने पार्टी के एक अंतरिम संविधान की भी घोषणा की । इसका उद्देश्य "भारत के समस्त समुदायों के हितों में" उत्पादन के साधनों तथा धन-सम्पत्ति के बंटवारे में समान **मालिकाना हक** एवं नियंत्रण के आधार पर भारत की पूर्ण स्वाधीनता तथा समाज का पुनर्गठन करना था । दिसम्बर, 1925 में सत्यभक्त ने कानपुर में कम्युनिस्टों की एक अखिल भारतीय कान्फ्रेंस का आयोजन किया, जिसमें नलिनी गुप्ता और मुज़फ्फर अहमद, जिन्हें जेल से रिहा कर दिया गया था, सहित अनेकों कम्युनिस्टों ने हिस्सा लिया । यह कान्फ्रेंस सिंगारावेलू चेटिटयर की अध्यक्षता में हुई । कानपुर कान्फ्रेंस को भारत की कम्युनिस्ट पार्टी की औपचारिक शुरुआत के रूप में माना जाता है । इस मीटिंग में पार्टी की केन्द्रीय समिति की स्थापना हुई तथा एस. वी. घाटे और जे. पी. बर्गरहट्टा को संयुक्त सचिव बनाया गया ।

1926 के अंत में भारत की कम्युनिस्ट पार्टी की केन्द्रीय समिति ने पार्टी के कार्यक्रम की रूपरेखा तैयार करने के लिए अनेकों गुप्त बैठकें कीं । 1925 से भारतीय कम्युनिस्ट आंदोलन को संगठित करने के लिए ब्रिटिश कम्युनिस्टों ने भारत आना शुरू किया । 1928 में भारत की कम्युनिस्ट पार्टी के दो सदस्यों को कम्युनिस्ट इंटरनेशनल के छठे अधिवेशन की कार्यकारिणी समिति के वैकल्पिक सदस्यों के रूप में चुना गया । 1930 में पार्टी औपचारिक रूप से कम्युनिस्ट इंटरनेशनल से सम्बद्ध हो गई ।

उस समय भारत के नवजात कम्युनिस्ट आंदोलन के सामने कुछ समस्याएँ थीं :

- धन के अभाव से ग्रसित था अपने क्रांतिकारी चरित्र और कम्युनिस्ट इंटरनेशनल से सम्बद्धता के कारण भारत की कम्युनिस्ट पार्टी के प्रति सरकार का रवैया काफ़ी विद्वेषपूर्ण रहा ।
- कार्यकर्त्ताओं का अभाव था, और
- भारतीय समाज का सुविधा प्राप्त वर्ग कम्युनिज़्म के विरुद्ध था ।

बोध प्रश्न 1

1) भारत में 1920 से 1925 के बीच कम्युनिस्ट आंदोलन का ब्यौरा दीजिए । आरंभिक अवस्था में इस आंदोलन की क्या कमियाँ थीं ?

..............................................................................................................

..............................................................................................................

..............................................................................................................

..............................................................................................................

..............................................................................................................

..............................................................................................................

..............................................................................................................

..............................................................................................................

2) निम्न व्यक्तित्वों पर संक्षिप्त टिप्पणी लिखिए :

क) एम. एन. राय

ख) एस. ए. डांगे

ग) मुज़फ़्फ़र अहमद

घ) सिंगारावेलु चेट्टियर

ङ) सत्यभक्त

3) i) **गांधी वर्सेज लेनिन** पुस्तक किसने लिखी ?

ii) **दी सोशलिस्ट** पत्रिका का सम्पादक कौन था ?

## 27.4 मज़दूर और किसान पार्टियों की स्थापना

रुकावटों के बावज़ूद कम्युनिस्ट आंदोलन ने गति पकड़ी । 1927 में बम्बई तथा पंजाब में मज़दूर और किसान पार्टियाँ बनीं । इन पार्टियों ने अखबारों की सहायता से अपने विचारों तथा कार्यक्रमों को प्रचारित-प्रसारित करने की कोशिश की :

बम्बई की मज़दूर और किसान पार्टी ने **क्रांति** नामक एक मराठी साप्ताहिक निकाला ।

पंजाब की मज़दूर और किसान पार्टी ने **मेहनतकश** नामक एक उर्दू साप्ताहिक निकाला ।

अक्तूबर, 1928 में मेरठ में हुई कान्फ्रेंस में भी एक किसान और मज़दूर पार्टी बनी । इस कान्फ्रेंस में ब्रिटिश कम्युनिस्ट फिलिप स्प्राट ने हिस्सा लिया । कान्फ्रेंस ने निम्न मांगें करते हुए प्रस्ताव पारित किए :

- राष्ट्रीय स्वाधीनता, राजशाही व्यवस्था की समाप्ति,
- मज़दूरों के ट्रेड यूनियन बनाने के अधिकार को मान्यता,
- ज़मींदारी-प्रथा का उन्मूलन,
- भूमिहीन किसानों के लिए भूमि,
- कृषि-बैंकों की स्थापना,
- दिन में अधिकतम काम के आठ घंटे, और
- औद्योगिक मज़दूरों के लिए न्यूनतम वेतन ।

दिसम्बर, 1928 में सोहन सिंह जोश की अध्यक्षता में मज़दूर और किसान पार्टियों की एक अखिल भारतीय कान्फ्रेंस कलकत्ता में हुई । यहाँ तीन मुख्य निर्णय लिए गए :

1) इस कान्फ्रेंस ने एक नेशनल **एक्जीक्यूटिव कमेटी** का गठन किया, जिसमें प्रमुख कम्युनिस्ट शामिल थे ।

2) इस कान्फ्रेंस ने कम्युनिस्ट आंदोलन के अंतर्राष्ट्रीय चरित्र के साथ-साथ भारतीय कम्युनिस्ट पार्टी के साम्राज्यवाद-विरोधी लीग तथा कम्युनिस्ट इंटरनेशनल जैसे अंतर्राष्ट्रीय संगठनों के साथ संबंध कायम करने पर ज़ोर दिया ।

3) इस कान्फ्रेंस ने कम्युनिस्टों को "तथाकथित कांग्रेसी बुर्जुआ नेतृत्व के साथ" अपनी पहचान बनाने के बजाय उन्हें अपना आंदोलन स्वतंत्र रूप से आगे बढ़ाने का निर्देश दिया ।

## 27.5 ट्रेड यूनियनों पर कम्युनिस्ट प्रभाव

इसी बीच कम्युनिस्टों ने मज़दूरों की हड़ताल का नेतृत्व करके ट्रेड यूनियन संगठनों पर अपना प्रभाव बढ़ा लिया । खड़गपुर में फ़रवरी और सितम्बर, 1927 की रेलवे वर्कशॉप मज़दूरों की हड़ताल मे कम्युनिस्टों ने एक प्रमुख भूमिका अदा की । उनका प्रभाव बम्बई के टैक्सटाइल-मिल मज़दूरो पर भी बढ़ गया । अप्रैल से अक्तूबर, 1928 तक बम्बई के टैक्सटाइल मज़दूरों ने वेतन में कटौती के ख़िलाफ़ भारी हड़तालें कीं । इन हड़तालों में कम्युनिस्ट गिरनी कामगार यूनियन ने सबसे अधिक महत्वपूर्ण भूमिका अदा की । 1928 में इस ट्रेड यूनियन की शक्ति में भारी बढ़ोत्तरी हुई । दिसम्बर, 1928 तक इसकी शक्ति 54,000 सदस्यों तक बढ़ गई, जबकि अनुभवी उदार ट्रेड यूनियन नेता एन.एम. जोशी के नेतृत्व वाली बाम्बे टैक्सटाइल लेबर यूनियन के केवल 6,749 सदस्य ही थे ।

1928 में उद्योगों में हड़तालों ने गंभीर रूप ले लिया । उस वर्ष हड़तालों के परिणामस्वरूप 3 करोड़ 15 लाख कार्य दिनों की हानि हुई । सरकार ने उद्योगों में अशांति का ज़िम्मेदार कम्युनिस्टों को ठहराया । इसलिए सरकार ने उनकी गतिविधियों को रोकने के उपायों की योजना बनाई । जनवरी, 1929 को वाइसरॉय लार्ड इरविन ने **सेन्ट्रल लेजिस्लेटिव असेम्बली** में दिए गए अपने भाषण में कहा कि, "कम्युनिस्ट विचारधारा के बढ़ते प्रभाव ने चिन्ताजनक स्थिति पैदा कर दी है ।" 13 अप्रैल, 1929 को वाइसरॉय ने क्रांतिकारी विद्रोही तत्त्वों से निपटने के लक्ष्य मे पब्लिक सेफ्टी आर्डीनेंस (जन सुरक्षा अध्यादेश) जारी करने की घोषणा की । उसके साथ ही ट्रेड डिसप्यूट ऐक्ट (श्रम विवाद कानून) भी स्वीकार किया गया । इस कानून से मज़दूरों की समस्याओं को सुलझाने के लिए **ट्राइब्यूनलों** की स्थापना हुई । किन्तु व्यवहार में इसके द्वारा ऐसी हड़तालों पर प्रतिबंध लगा दिया गया, जो सरकार को "बाध्य" करती हैं या लोगों की कठिनाई का कारण होती है ।

## 27.6 मेरठ षडयंत्र केस और 1934 का प्रतिबंध

14 मार्च, 1929 को 31 कम्युनिस्टों की गिरफ्तारी सरकार द्वारा कम्युनिस्ट-विरोधी सबसे दमनकारी क़दम था । इसी सिलसिले मे एक और गिरफ्तारी भी हुई । इन कम्युनिस्टों पर ब्रिटिश सम्राट के ख़िलाफ़ षडयंत्र करने के आरोप में मेरठ मे मुकदमा चलाया गया । उनके ख़िलाफ़ आरोप आर.ए. होरटन (डायरेक्टर, इन्टेलीजेंस ब्यूरो, होम डिपार्टमेंट, गवर्नमेंट ऑफ़ इंडिया के तहत एक विशेष अधिकारी) द्वारा लगाए गए । उन्होंने यह आरोप लगाया कि कम्युनिस्ट इंटरनेशनल के निर्देश के तहत ये कम्युनिस्ट आम हड़तालों तथा सशस्त्र क्रांति द्वारा ब्रिटिश सम्राट को भारत पर उसके प्रभुत्व से वंचित करना चाहते थे । यहाँ संकेत किया गया था कि इस उद्देश्य की प्राप्ति के लिए कम्युनिस्टों ने मेरठ जैसी जगहों पर मज़दूर और किसान पार्टियों का गठन किया है । इस केस में जिन 32 व्यक्तियों पर आरोप लगाए गए थे उनमे दो इंग्लिश कम्युनिस्ट-फिलिप स्प्राट (Philip Spratt) तथा बी.एफ. ब्राडले (B. F. Bradley) और लेस्टर हचिनसन (Lecter Huchinsan) नामक एक इंग्लिश पत्रकार भी शामिल थे । कम्युनिस्टों पर मुकदमा चार साल तक चला । अंत में स्पेशल सेशन कोर्ट की अपील पर इलाहाबाद उच्च न्यायालय ने कुछ **अभियोगियों** को बरी कर दिया और अन्य लोगों की सज़ा बहुत कम कर दी । यह इस विचार के आधार पर हुआ था कि "अभियुक्तों पर कथित षड़यंत्र को पूरा करने मे प्रकट रूप से गैर क़ानूनी गतिविधियो में कार्यरत होने का आरोप नहीं है ।"

कम्युनिस्टों के ख़िलाफ़ मेरठ षड़यंत्र केस की भारत मे व्यापक रूप मे आलोचना हुई थी । महात्मा गांधी ने इसकी व्याख्या क़ानून के भेष में अराजकता के राज के रूप मे की और कहा कि इसका उद्देश्य कम्युनिज़्म को समाप्त करना नहीं बल्कि आतंक फैलाना था । इस केस से कम्युनिस्ट आंदोलन को धक्का पहुँचने के बजाय इसने कम्युनिस्टों में अधिक बलिदान और शहादत की भावना जगाई । अदालत के समक्ष अपने बचाव में अभियुक्त कम्युनिस्टों ने जो बयान दिए उन्होंने देश में

ब्रिटिश-विरोधी भावनायें जगाईं तथा कंम्युनिस्ट आंदोलन की प्रतिष्ठा को बढ़ाया । उदाहरण के लिए राधारमण मित्रा ने अदालत में अपने बयान में कहा :

> "यह वह केस है, जिसकी राजनीतिक एवं ऐतिहासिक महत्ता होगी । यह मात्र 31 अपराधियों के ख़िलाफ़ पुलिस द्वारा साधारण ढंग से अपने कर्त्तव्यों का पालन करने के लिए चलाया गया केस नहीं है । यह वर्ग-संघर्ष का एक उदाहरण है । यह एक निश्चित राजनीतिक नीति के तहत शुरू किया और चलाया गया था । यह भारत की ब्रिटिश साम्राज्यवादी सरकार द्वारा उन शक्तियों पर किया गया प्रहार है जिन्हें वह अपने वास्तविक शत्रु के रूप में मानती है तथा अंत में जो इसका तख़्ता पलटेगी । इन शक्तियों ने पहले से ही इन साम्राज्यवादियों के विरुद्ध समझौतावादी रवैया अपना रखा था तथा अपनी शक्ति का भी ये आरम्भ से प्रदर्शन कर रहे थे" ।

1934 में कंम्युनिस्टों ने अपनी जुझारू ट्रेड यूनियन गतिविधियों को पुनर्गठित किया । शोलापुर, नागपुर तथा बम्बई में हड़तालें हुईं । सरकार घबरा गई और अपने आपको कम्युनिस्टों से निपटने में असमर्थ पाते हुए उसने 23 जुलाई, 1934 को कम्युनिस्ट पार्टी ऑफ़ इंडिया पर प्रतिबंध लगा दिया । उसके बाद से अनेकों कम्युनिस्टों ने इंडियन नेशनल कांग्रेस तथा नई गठित समाजवादी कांग्रेस पार्टी के अंदर से अपनी गतिविधियाँ जारी रखीं । कम्युनिस्ट पार्टी के भूमिगत कार्य चलते रहे ।

**बोध प्रश्न 2**

1) ब्रिटिश सरकार ने क्यों और कैसे कम्युनिस्ट पार्टी ऑफ़ इंडिया को दबाने की कोशिश की?

..............................................................................................................

..............................................................................................................

..............................................................................................................

..............................................................................................................

..............................................................................................................

2) मेरठ षड्यंत्र केस ने कम्युनिस्टों के उद्देश्यों में मदद की । टिप्पणी कीजिए ।

..............................................................................................................

..............................................................................................................

..............................................................................................................

..............................................................................................................

..............................................................................................................

..............................................................................................................

..............................................................................................................

..............................................................................................................

## 27.7 कांग्रेस सोशलिस्ट पार्टी की स्थापना

कम्युनिस्ट अपनी गतिविधियाँ इंडियन नेशनल कांग्रेस से कमोबेश स्वतंत्र रूप से चलाते रहे थे, किन्तु कांग्रेस के भीतर भी एक अच्छी-खासी तादाद समाजवादी या कम्युनिस्ट विचारधारा के प्रति आकृष्ट थी और उसने कांग्रेस के अन्दर ही एक समाजवादी कार्यक्रम बनाने का प्रयास किया था । ऐसे समाजवादियों में जवाहरलाल नेहरू, सुभाषचन्द्र बोस, जयप्रकाश नारायण, आचार्य नरेन्द्र देव, अच्युत पटवर्धन तथा राम मनोहर लोहिया जैसे नेता थे ।

### 27.7.1 आरंभिक समाजवादी नेता

1934 में सविनय अवज्ञा आंदोलन के स्थगित होने के बाद, कांग्रेसियों के एक हिस्से ने विधायिकाओं में घुसने का निर्णय लिया, ताकि वे सरकार के भीतर रहते हुए कांग्रेस के हितों के लिए कार्य कर

सके । महात्मा गांधी ने इन कांग्रेसियों के कार्यक्रम का समर्थन किया । जिन्हें संविधानवादियों के रूप में जाना जाता था ।

**इस अवसर पर कुछ समाजवादी** कांग्रेस संगठन के भीतर ही समाजवादी पार्टी बनाना चाहते थे ताकि **विधायिका में घुसने से कांग्रेस के** क्रांतिकारी चरित्र को नष्ट होने से बचाया जा सके । कांग्रेस के **भीतर के समाजवादी, कम्युनिस्टों** की तरह मार्क्सवादी विचारधारा में विश्वास रखते थे । किन्तु समाजवादी **कांग्रेसियों तथा कम्युनिस्टों** में दो मूलभूत भिन्नताएँ थीं :

1) **प्रथम,** समाजवादी कांग्रेसी अपने को इंडियन नेशनल कांग्रेस के साथ जोड़ते थे, जबकि कम्युनिस्ट अपने को कम्युनिस्ट इंटरनेशनल के साथ जुड़ा पाते थे । दूसरे, समाजवादी कांग्रेसी राष्ट्रवादी थे, किंतु कम्युनिस्ट एक अंतर्राष्ट्रीय साम्यवादी समाज के लक्ष्य में भी विश्वास रखते थे ।

राष्ट्रीय स्वाधीनता के संघर्ष को मज़दूरों, किसानों तथा पेटी बुर्जुआ (निम्न मध्यम वर्ग) की मदद से आगे बढ़ाने के लिए समाजवादी कांग्रेसी, कांग्रेस की भीतर की ही बुर्जुआ जनतांत्रिक शक्तियों के साथ शामिल हो गए ।

समाजवादी कांग्रेसी, कांग्रेस में मज़दूरों तथा किसानों को लाकर कांग्रेस संगठन के लिए एक विस्तृत आधार तैयार करना चाहते थे । उनका विचार था कि मज़दूरों और किसानों को राष्ट्रीय स्वाधीनता के संघर्ष में हिस्सा लेना चाहिए । विदेशी राज से स्वतंत्रता प्राप्त करने के लिए मज़दूरों की हड़तालों तथा किसानों के संघर्ष जैसे तरीकों की प्रभावशीलता में उनका विश्वास था । समाजवादी कांग्रेसियों का विश्वास वर्ग संघर्ष में था और वे पूंजीवाद, ज़मींदारी एवं रजवाड़ों (भारतीय रियासतों) की समाप्ति के लिए लड़े । वे कामगार जनता को ऊपर उठाने के लिए कांग्रेस पार्टी के कार्यक्रम में मूलभूत परिवर्तनकारी सामाजिक और आर्थिक उपायों को शामिल करना चाहते थे ।

तीसरे दशक के प्रारंभ में वामपंथी कांग्रेसियों द्वारा बिहार, यू.पी., बम्बई तथा पंजाब जैसे प्रांतों में समाजवादी दल बना लिये गये थे ।

1933 में नासिक जेल में जयप्रकाश नारायण, अच्युत पटवर्धन, एम. आर. मसानी, एन.जी. गोरे, अशोक मेहता, एस.एम. जोशी तथा एम.एल. दंतवाला जैसे कुछ नौजवान समाजवादियों ने कांग्रेस संगठन के भीतर ही समाजवादी पार्टी बनाने का विचार उठाया । 1934 में बनारस में संपूर्णानंद ने एक पैम्फलेट (पर्चा) प्रकाशित किया जिसमें उन्होंने कांग्रेस के अंग के रूप में एक अखिल भारतीय समाजवादी पार्टी बनाने की आवश्यकता पर ज़ोर दिया । उनका विचार था कि ऐसा संगठन पूंजीपतियों तथा उच्च बुर्जुआजी के प्रभाव का विरोध करेगा ।

ये समाजवादी कांग्रेसी पाश्चात्य-प्रभावी मध्यम वर्ग से आये थे । वे मार्क्स, **गांधी** तथा पश्चिम के सामाजिक जनतंत्र के विचारों से प्रभावित थे । उन्होंने मार्क्सवादी, समाजवादी, कांग्रेसी राष्ट्रवादी तथा पश्चिम के लिबरल जनतंत्र का एक साथ प्रयोग किया ।

## 27.7.2 आरंभिक समाजवादियों का संक्षिप्त परिचय

समाजवादी कांग्रेस के अग्रणी नेता जयप्रकाश नारायण का जन्म 1902 ई० में बिहार में हुआ था । 1921 में असहयोग आंदोलन में हिस्सा लेने के लिए उन्होंने पटना कालेज में अपनी पढ़ाई छोड़ दी । उसके बाद वे अमरीका में यूनिवर्सिटी की पढ़ाई करने के लिए गये । वहां उन्होंने मेहनत मज़दूरी करके अपनी पढ़ाई जारी रखी । अमरीका में वे कम्युनिस्टों के संपर्क में आये और मार्क्सवादी बन गये । अमरीका से वापस आने पर उन्हें लगा कि भारतीय कम्युनिस्ट, मास्को की कम्युनिस्ट इंटरनेशनल से आदेश ले रहे हैं । हालांकि वे रूस की बोल्शेविक क्रांति और उस देश में कम्युनिज़्म की सफलता के प्रशंसक थे, फिर भी भारतीय कम्युनिस्टों का मास्को के आदेशों के तहत काम करना उन्हें पसंद नहीं आया । भारत वापस आने पर 1929 में वे कांग्रेस पार्टी में शामिल हो गये । 1930 में वे कांग्रेस के श्रम अनुसंधान विभाग के अध्यक्ष बना दिये गये । उनकी पत्नी प्रभावती, गांधी की पक्की समर्थक थीं । जयप्रकाश ने 'व्हाय सोशलिज़्म' (Why Socialism) नामक एक पुस्तक प्रकाशित की जिसमें उन्होंने भारत में समाजवाद की प्रासंगिकता पर ज़ोर दिया ।

यूसुफ़ मेहरअली का जन्म 1903 ई० में बम्बई के एक धनाढ्य व्यापारी परिवार में हुआ । वे मेज़िनी (Mazzini) तथा गैरीबालदी (Gairibaldi) और आयरलैंड के सिन फेन आंदोलन (Sinn Fein Movement) तथा **चीनी आंदोलनों** और रूसी क्रांति से प्रभावित थे । 1928 ई० में उन्होंने बम्बई की प्रांतीय यूथ लीग को संगठित किया जिसने साइमन कमीशन के ख़िलाफ़ तथा सविनय अवज्ञा आंदोलन के लिए प्रदर्शनों का आयोजन करने में सक्रिय हिस्सा लिया ।

अचुत्य पटवर्धन का जन्म 1905 ई० में हुआ । उनके पिता एक धनी व्यक्ति थे और थियोसाफ़ी विचारधारा में विश्वास रखने वाले थे । उनकी शिक्षा बनारस हिंदू विश्वविद्यालय में हुई । शिक्षा पूरी करने के बाद उन्होंने कुछ समय के लिए विश्वविद्यालय प्राध्यापक के रूप में काम किया तथा यूरोप गये । उन्होंने सविनय अवज्ञा आंदोलन में हिस्सा लिया और गिरफ़्तार हुए तथा सज़ा काटी । पटवर्धन पर गांधीवाद तथा थियोसाफिकल विचारधारा का गहरा प्रभाव था ।

अशोक मेहता का जन्म 1911 में शोलापुर में हुआ । उनके पिता गुजराती के प्रमुख साहित्यकार थे । उनकी शिक्षा बम्बई विश्वविद्यालय में हुई । उन्होंने सविनय अवज्ञा आंदोलन में हिस्सा लिया और जेल में सज़ा काटी । अनेक वर्षों तक उन्होंने समाजवादी कांग्रेस पार्टी की 'कांग्रेस सोशलिस्ट', नामक पत्रिका का सम्पादन किया ।

एम.आर. मसानी का जन्म बम्बई के एक धनी और शिक्षित परिवार में हुआ । उन्होंने लंदन स्कूल ऑफ़ इकार्नॉमिक्स में शिक्षा प्राप्त की । वे फेबियन समाजवाद, ब्रिटिश मज़दूर आंदोलन तथा रूस की बोल्शेविक क्रांति से प्रभावित थे ।

आचार्य नरेन्द्र देव का जन्म 1889 ई० में उत्तर प्रदेश में हुआ । उनके पिता वकील थे । अपने जीवन के प्रारंभिक दौर में वे बाल गंगाधर तिलक, लाला हरदयाल तथा अरविन्द जैसे अति राष्ट्रवादियों से प्रभावित थे । बोल्शेविक क्रांति के बाद वे मार्क्सवाद की ओर पलटे । उन्होंने राष्ट्रवादी और समाजवादी आंदोलन में किसानों की भूमिका को बहुत महत्व दिया । इसीलिए वे उत्तर प्रदेश में किसानों को संगठित करने के कार्य में जुट गये । समाजवादी आंदोलन में उन्होंने मध्यम वर्गीय बुद्धिजीवियों की भूमिका को भी महत्वपूर्ण माना । वे स्वयं को मार्क्सवादी मानते थे और साथ ही उन्होंने गांधीजी के रचनात्मक कार्यों का समर्थन भी किया ।

राम मनोहर लोहिया का जन्म 1910 ई० में उत्तर प्रदेश के एक राष्ट्रवादी मारवाड़ी परिवार में हुआ । उन्होंने बनारस, कलकत्ता तथा बर्लिन विश्वविद्यालयों से शिक्षा प्राप्त की । उन्होंने अपनी डाक्टरेट की उपाधि पालिटिकल इकॉनमी विषय में बर्लिन विश्वविद्यालय से प्राप्त की । भारत में उनकी वापसी पर जवाहरलाल नेहरू ने उन्हें अखिल भारतीय कांग्रेस कमेटी के विदेश नीति विभाग का कार्यभार सौंप दिया । लोहिया यूरोप के समाजवादी जनतंत्र तथा गांधीवादी विचारों से प्रभावित थे । मार्क्सवाद या कम्युनिज़्म में उनका विश्वास नहीं था । उन्होंने 'कांग्रेस सोशलिस्ट' नामक पत्रिका प्रारंभ की जो बाद में समाजवादी कांग्रेस पार्टी का औपचारिक हिस्सा बन गयी ।

### 27.7.3 अखिल भारतीय कांग्रेस समाजवादी पार्टी की ओर

पहली अखिल भारतीय समाजवादी कांग्रेस कान्फ्रेंस का आयोजन बिहार समाजवादी पार्टी की ओर से मई 1934 को पटना में जयप्रकाश नारायण द्वारा हुआ । कान्फ्रेंस की अध्यक्षता आचार्य नरेन्द्र देव ने की । अपने अध्यक्षीय भाषण में नरेन्द्र देव ने कांग्रेसियों के नये स्वराजवादी हिस्से की आलोचना की जो विधायिकाओं में घुसना चाहते थे और कांग्रेस के क्रांतिकारी चरित्र के विरुद्ध चलना चाहते थे । उन्होंने समाजवादियों से कहा कि वे अपने कार्यक्रम को कांग्रेस द्वारा अपनाये जाने के संघर्ष को जारी रखें । कान्फ्रेंस ने एक प्रस्ताव पारित किया जिसमें कांग्रेस को एक ऐसा कार्यक्रम अपनाने के लिए कहा गया जो कि कार्य और लक्ष्य की दृष्टि से समाजवादी हो ।

इस कान्फ्रेंस के बाद समाजवादी कांग्रेसियों ने अखिल भारतीय समाजवादी कांग्रेस पार्टी को संगठित करने में कड़ी मेहनत की । आयोजन-सचिव की हैसियत से जयप्रकाश नारायण ने देश के विभिन्न भागों में पार्टी की प्रांतीय शाखायें संगठित करने के लिए प्रचार किया ।

अखिल भारतीय समाजवादी कांग्रेस पार्टी का प्रथम वार्षिक अधिवेशन अक्तूबर 1934 में सम्पूर्णानंद की अध्यक्षता में बम्बई में हुआ । इसमें 13 प्रांतों के प्रतिनिधियों ने हिस्सा लिया । इस मीटिंग में समाजवादी कांग्रेस की राष्ट्रीय एक्ज़ीक्यूटिव (कार्यकारिणी) का गठन हुआ जिसके जनरल सेक्रेटरी जयप्रकाश नारायण थे ।

**बोध प्रश्न 3**

1) 1934 में समाजवादी कांग्रेस पार्टी के गठन को प्रभावित करने वाली परिस्थितियों का विवरण दीजिये ।

..........................................................................................................

..........................................................................................................

..........................................................................................................

........................................................................................................................

........................................................................................................................

........................................................................................................................

........................................................................................................................

2) भारतीय कम्युनिस्ट पार्टी तथा समाजवादी कांग्रेस पार्टी के बीच मूलभूत अंतर क्या थे ?

........................................................................................................................

........................................................................................................................

........................................................................................................................

........................................................................................................................

## 27.8 कांग्रेस सोशलिस्ट पार्टी का कार्यक्रम

समाजवादी कांग्रेस पार्टी ने एक संविधान अपनाया जिसमें निम्न कार्यक्रम प्रस्तुत किया गया ।

1) समाजवादी कांग्रेस पार्टी के कार्यक्रम को इंडियन नेशनल कांग्रेस द्वारा स्वीकार कराने का कार्य करना ।
2) मज़दूरों और किसानों को उनकी स्वयं की आर्थिक उन्नति के साथ-साथ स्वाधीनता तथा समाजवाद की प्राप्ति के आंदोलन को आगे बढ़ाने हेतु संगठित करना ।
3) यूथ लीगों, महिला संगठनों तथा स्वयंसेवी संगठनों को संगठित करना तथा समाजवादी कांग्रेस पार्टी के कार्यक्रम के लिए उनका समर्थन प्राप्त करना ।
4) अंग्रेज़ सरकार के भारत को साम्राज्यवादी युद्धों में शामिल करने के किसी भी प्रयास का विरोध करना तथा ऐसे किसी भी संकट का प्रयोग स्वतंत्रता संघर्ष को तेज़ करने के लिए करना ।
5) संवैधानिक मामलों में अंग्रेज़ सरकार के साथ किसी भी प्रकार के समझौते का विरोध करना ।

बम्बई की मीटिंग ने एक व्यापक कार्यक्रम को अपनाया जिसमें भारत में समाजवादी समाज का ख़ाका तैयार किया गया । इसमें निम्न मुद्दे शामिल थे :

1 सभी शक्तियों या सत्ता का जनता को हस्तांतरण,
2 देश के आर्थिक विकास की योजना बनाना तथा राज्य द्वारा उसका नियंत्रण,
3 वितरण तथा विनिमय के साधनों के प्रगतिशील समाजीकरण को दृष्टि में रखना और उसके अनुसार प्रमुख उद्योगों, (जैसे—इस्पात, कपड़ा, जूट, रेलवे, जहाज़रानी, बागवानी और खदानों), बीमा और सार्वजनिक उपयोगिताओं का समाजीकरण ।
4 विदेशी व्यापार पर राज्य का एकाधिकार,
5 आर्थिक जीवन के असंगठित क्षेत्रों में उत्पादन, वितरण तथा ऋण के लिए सहकारी संस्थाओं का गठन,
6 राजाओं, ज़मींदारों तथा अन्य शोषणकारी वर्गों की क्षतिपूर्ति करके उनके विशेष अधिकारों की समाप्ति,
7 किसानों के बीच भूमि का पुनर्वितरण,
8 राज्य द्वारा सहकारिता तथा सामूहिक खेती को प्रोत्साहन दिया जाना और नियंत्रण रखना ।
9 किसानों तथा मज़दूरों पर जो ऋण हैं उन्हें समाप्त करना,
10 रोज़गार का अधिकार या राज्य द्वारा भरण-पोषण,
11 आर्थिक वस्तुओं के वितरण का अंतिम आधार प्रत्येक को उसकी आवश्यकता के अनुसार होना चाहिए,
12 वयस्क मताधिकार व्यावहारिक आधार पर होना चाहिए,
13 राज्य किसी भी धर्म का न तो समर्थन करे और न ही धर्मों के बीच भेद । जाति या समुदाय के आधार पर किसी भेदभाव को मान्यता नहीं देनी चाहिए ।
14 राज्य, स्त्री और पुरुषों के बीच कोई भेदभाव न करे, और

15 भारत के तथाकथित सार्वजनिक ऋण की समाप्ति

बम्बई अधिवेशन ने मज़दूरों और किसानों की उन्नति के लिए एक अलग कार्यक्रम अपनाया । मज़दूरों के लिये निम्न मांगे थीं, ट्रेड यूनियन बनाने की स्वतंत्रता तथा हड़ताल पर जाने का अधिकार, जीवनयापन योग्य वेतन, सप्ताह में अधिकाधिक 40 घन्टे का काम और बेरोज़गारी, बीमारी, दुर्घटना तथा बुढ़ापे के लिए बीमे की व्यवस्था ।

किसानों के लिए निम्न मागें थीं : ज़मींदारी प्रथा की समाप्ति, सहकारी कृषि को बढ़ावा, लाभ न देने वाली भूमि पर लगान तथा टैक्स की माफ़ी, भूमि लगान कम करना और सामंती करों की समाप्ति ।

समाजवादी कांग्रेस पार्टी के, स्वतंत्रता (ब्रिटिश राज से मुक्ति) तथा समाजवाद, दो मुख्य लक्ष्य थे । प्रथम लक्ष्य की प्राप्ति के लिए समाजवादी कांग्रेस दल ने कांग्रेस के भीतर के साम्राज्यवाद-विरोधी तथा ग़ैर समाजवादी ताकतों से मिलकर काम करने का निर्णय लिया । जयप्रकाश नारायण ने कहा : "कांग्रेस के भीतर का हमारा काम, एक सच्चे साम्राज्यवाद विरोधी संगठन के रूप में विकसित करने की नीति से नियंत्रित है ।" उन्होंने 1935 में अपने साथियों को पूर्व चेतावनी भी दी थी कि : "ऐसा कोई कार्य नहीं किया जाना चाहिये जिससे सच्चे राष्ट्रवादी तत्व आंदोलन के ख़िलाफ़ हो जायें और उन्हें समझौता-वादी दक्षिणपंथियों के साथ शामिल करने पर मजबूर करें ।"

चूंकि समाजवादी कांग्रेसियों का अंतिम उद्देश्य भारत में एक समाजवादी समाज की स्थापना करना था इसलिए समाजवादी कांग्रेसी इण्डियन नेशनल कांग्रेस द्वारा अपने कार्यक्रम स्वीकार कराने के लिए भी जुटे रहे । आचार्य नरेन्द्र देव ने अखिल भारतीय समाजवादी कांग्रेस की पहली कान्फ्रेंस के अध्यक्षीय भाषण में कहा था कि : "राष्ट्रवादी आंदोलन को समाजवाद की दिशा में ले जाने के लिए अपने काम को जारी रखना चाहिए ।"

समाजवादी कांग्रेसियों ने स्वतंत्रता तथा समाजवाद प्राप्ति के अपने दोहरे उद्देश्य को पाने के लिए तीन तरह से कार्य किया ।

1) काग्रेसी होने के नाते कांग्रेस के भीतर उन्होंने साम्राज्यवाद-विरोधी तथा राष्ट्रवादी कार्यक्रमों को तैयार किया ।

2) समाजवाद के लक्ष्य की प्राप्ति के लिए उन्होंने कांग्रेस के बाहर मज़दूरों, किसानों, विद्यार्थियों, बुद्धिजीवियों, नौजवानों तथा औरतों को संगठित किया,

3) उन्होंने उपरोक्त दोनों गतिविधियों को आपस में जोड़ने की भी कोशिश की ।

समाजवादी कांग्रेसियों ने किसानों तथा मज़दूरों को उनकी स्वयं की आर्थिक उन्नति के साथ-साथ विदेशी राज से देश को स्वतंत्र कराने के लिए लामबंद करने का प्रयास किया ।

## 27.9 राष्ट्रीय राजनीति पर कांग्रेसी समाजवादियों के कार्यक्रम का प्रभाव

समाजवादी कांग्रेस पार्टी के गठन पर कांग्रेसियों के बीच एक मिश्रित प्रतिक्रिया थी । अनुदारवादी (conservative) अथवा दक्षिण पंथी कांग्रेसियों ने समाजवादी कांग्रेस की सम्पत्ति ज़ब्त करने तथा वर्ग संघर्ष की बड़ी-बड़ी बातों की आलोचना की । महात्मा गांधी ने भी उनके वर्ग संघर्ष के विचार को नामंज़ूर कर दिया । गांधी जी रजवाड़ों, (भारतीय रियासतों) ज़मींदारी तथा पूंजीवाद को समाप्त करने की आवश्यकता में विश्वास नहीं रखते थे । वे राजाओं, ज़मींदारों तथा पूंजीपतियों का हृदय परिवर्तन करना चाहते थे ताकि वे अपने को राज्यों, ज़मींदारियों तथा फैक्टरियों का मालिक समझने के बजाय अपने आपको अपनी प्रजा, पट्टेदारों तथा मज़दूरों के ट्रस्टी के रूप में मानें ।

किन्तु जवाहरलाल नेहरू तथा सुभाष चन्द्र बोस जैसे वामपंथी कांग्रेसियों ने समाजवादी कांग्रेस पार्टी के गठन का स्वागत तो किया परन्तु दोनों ही इस पार्टी में शामिल नहीं हुए । अप्रैल 1936 को लखनऊ में हुए कांग्रेस के वार्षिक अधिवेशन के अपने अध्यक्षीय भाषण में नेहरू ने समाजवाद के उद्देश्य का समर्थन किया । उन्होंने कहा :

"मुझे ग़रीबी, व्यापक बेरोज़गारी, भारतीय जनता की बदहाली और भेदभाव को समाप्त करने के लिए समाजवाद के अतिरिक्त कोई अन्य रास्ता नज़र नहीं आता । यह हमारे राजनैतिक और सामाजिक

ढाँचे में व्यापक क्रांतिकारी परिवर्तन की मांग करता है। इसके लिए भूमि और उद्योग से जुड़े निहित स्वार्थों के साथ-साथ, निरकुश सामंतशाही का खात्मा भी ज़रूरी है। जिसका सीमित अर्थों में मतलब है, निजी सम्पत्ति को समाप्त करना तथा उच्च आदर्शों के द्वारा वर्तमान मुनाफ़ाखोर व्यवस्था को बदलना।

1936 में नेहरू ने वामपंथी सुभाष चन्द्र बोस के अलावा तीन समाजवादी कांग्रेसियों नरेन्द्र देव, जयप्रकाश नारायण तथा अच्युत पटवर्धन को कांग्रेस की कार्यकारिणी समिति में शामिल किया। 1936 के आख़िर में जवाहरलाल नेहरू की अध्यक्षता में हुए इंडियन नेशनल कांग्रेस के फ़ैज़पुर अधिवेशन में एक कृषि संबंधी कार्यक्रम बनाया गया जिसमें लगान में कमी, सामंती करों तथा वसूलियों की समाप्ति, सहकारी कृषि का आरम्भ, कृषि मज़दूरों के लिए जीवनयापन योग्य मज़दूरी तथा किसान यूनियनों का गठन जैसे मुद्दे शामिल थे। इस बीच कांग्रेस श्रम समिति ने 1937 में प्रांतों में बने कांग्रेस मंत्री मंडलों से मज़दूरों के हितों की रक्षा तथा उनको बढ़ावा देने के उपायों को अपनाने के लिए कहा।

समाजवादी कांग्रेसियों ने किसान आंदोलन में एक महत्वपूर्ण भूमिका अदा की। प्रो. एन.जी. रंगा, इंदुलाल याज्ञिक तथा स्वामी सहजानंद सरस्वती के प्रयासों से अखिल भारतीय किसान सभा संगठित हुई। अखिल भारतीय किसान कांग्रेस की पहली मीटिंग 1936 में लखनऊ में हुई। किसान सभाओं ने ज़मींदारी प्रथा की समाप्ति, भूमि-करों में कमी तथा कांग्रेस के साथ किसान सभा को पूरे तौर से जोड़े जाने की मांग की। समाजवादी कांग्रेसियों ने भारतीय रियासतों के विषय में भी कांग्रेस की नीति को प्रभावित किया। कांग्रेस पहले रियासतों से बिलगाव की नीति अपना रही थी अब समाजवादियों के प्रभाव के कारण कांग्रेस भारतीय रियासतों के मामलों में भी गहरी रुचि लेने लगी। समाजवादी कांग्रेस के कार्यकर्ताओं ने भारतीय रियासतों की जनता के निरंकुश शासकों के ख़िलाफ़ जनतांत्रिक आंदोलनों में भी हिस्सा लिया। उन्होंने जन अधिकारों तथा उत्तरदायी सरकार के लिए आंदोलन किया।

**बोध प्रश्न 4**

1) समाजवादी कांग्रेस पार्टी के दो मुख्य उद्देश्य क्या थे?

..........................................................................................................

..........................................................................................................

..........................................................................................................

..........................................................................................................

..........................................................................................................

2) समाजवादी कांग्रेस के कार्यक्रम का राष्ट्रवादी नीतियों पर किस तरह का प्रभाव पड़ा?

..........................................................................................................

..........................................................................................................

..........................................................................................................

..........................................................................................................

..........................................................................................................

## 27.10 सारांश

वामपंथी आंदोलन यूरोप की औद्योगिक क्रांति का परिणाम था। भारत में इस आंदोलन के आरंभ और विकास का श्रेय आधुनिक उद्योगों के विकास, मज़दूर-वर्ग के आंदोलन, राष्ट्रवादी चेतना तथा अन्य देशों में समाजवादी आंदोलनों के प्रभाव (विशेष रूप से रूस की बोल्शेविक क्रांति) को जाता है।

1920 में भारत की कम्युनिस्ट पार्टी ताशकंद में एक भारतीय मार्क्सवादी एम.एन. राय द्वारा बनायी गयी। हालांकि 1920 तक भारत में अनेकों मार्क्सवादी दल थे फिर भी, भारतीय कम्युनिस्ट पार्टी की औपचारिक शुरुआत 1925 में कानपुर में आयोजित एक सभा से हुई। भारतीय कम्युनिस्ट पा. का उद्देश्य ब्रिटिश साम्राज्यवाद को उखाड़ फेंकने तथा रूस की भांति मज़दूरों और किसानों

सरकार की स्थापना करना था । कम्युनिस्टों ने अपना आंदोलन नेशनल कांग्रेस से स्वतंत्र यानी अलग चलाया क्योंकि वे कांग्रेस को भारतीय बुर्जुआजी तथा उन्हीं के निहित हितों से जुड़ा हुआ समझते थे। जल्द ही कम्युनिस्टों ने मज़दूरों की ट्रेड यूनियनों पर अपना प्रभाव बढ़ा लिया । 1928 तक कम्युनिस्टों के नेतृत्व वाली गिरनी कामगर यूनियन बहुत शक्तिशाली बन गयी । अंग्रेज़ सरकार ने कम्युनिस्ट नेताओं के ख़िलाफ़ अनेक षड्यंत्रों के आरोप लगाकर मुकदमें चलाये और कम्युनिस्ट आंदोलन को दवाने का प्रयास किया । 1929 में 31 कम्युनिस्टों के ख़िलाफ़ मेरठ षड्यंत्र केस चलाया गया जो बहुत प्रसिद्ध हुआ । 1934 में भारतीय कम्युनिस्ट पार्टी पर अंग्रेज़ सरकार द्वारा प्रतिबंध लगा दिया गया ।

हालांकि इंडियन नेशनल कांग्रेस का नेतृत्व भारतीय मध्यम वर्गों द्वारा हुआ और उसका मुख्य लक्ष्य विदेशी शासन से देश को स्वतंत्र कराना था, फिर भी, कांग्रेसियों का एक महत्वपूर्ण वर्ग भारत में समाजवादी राज्य की स्थापना चाहता था । 1934 में जयप्रकाश नारायण और आचार्य नरेन्द्र देव जैसे कुछ कांग्रेसियों ने कांग्रेस के अंग के रूप में समाजवादी कांग्रेस पार्टी बनायी । समाजवादी कांग्रेसियों ने विदेशी शासन से स्वतंत्रता तथा एक समाजवादी राज्य की स्थापना का आंदोलन भी साथ-साथ चलाया । उन्होंने मज़दूरों तथा किसानों के आंदोलन संगठित किये । उन्होंने भारतीय रियासतों, ज़मींदारी-प्रथा तथा पूंजीवाद की समाप्ति के लिए आंदोलन किये । उनके आंदोलनों के परिणामस्वरूप इंडियन नेशनल कांग्रेस ने मज़दूरों तथा किसानों की उन्नति के कार्यक्रमों को अपनाया ।

## 27.11 शब्दावली

**बुर्जुआजी** : मध्यम वर्गों, सम्पन्न वर्गों, पूंजीपतियों, उद्योगपतियों, व्यापारियो तथा बुद्धिजीवियों से संबंधित हैं । पेटि बुर्जुआजी का अर्थ निम्न मध्यम वर्ग से है ।

**पूंजीवाद** : उत्पादन के साधनों तथा उद्योग धंधों पर निजी स्वामित्व पर आधारित एक आर्थिक प्रणाली ।

**वर्ग संघर्ष** : कार्ल मार्क्स ने यह विचार प्रस्तुत किया कि मानव का इतिहास विशेषाधिकार प्राप्त तथा अधिकारहीन वर्गों के बीच के वर्ग-संघर्ष का इतिहास है । उनका विचार था कि पूंजीपतियों तथा मज़दूरों के बीच वर्ग-संघर्ष के कारण एक दिन मज़दूर विजयी होंगे और सर्वहारा के अधिनायकवाद की स्थापना करेंगे ।

**फ़ासिज़्म (फ़ासीवाद)** : एक ऐसी राजनीतिक अवधारणा जोकि बहुमत पर आधारित प्रजातांत्रिक सरकार का तथा कम्युनिज़्म की वर्ग-संघर्ष की धारणा का विरोधी है । इसका एक तानाशाही मज़बूत शासन में विश्वास है ।

**फ़ेबियन समाजवाद** : इसका संबंध इंग्लैंड के समाजवाद की एक धारा से है जो धीमे एवं क्रमबद्ध तरीकों से समाजवाद की स्थापना में विश्वास रखती है ।

**लिबरल** : वह जो जनतंत्र में विश्वास रखता है ।

**सर्वहारा** : जिनके पास कुछ भी नहीं है, भूमिहीन मज़दूर, समाज का निम्नतम वर्ग ।

**सामाजिक जनतंत्र** : इसका संबंध यूरोप की एक विचारधारा से है जो जनतांत्रिक तरीकों द्वारा समाजवाद की स्थापना में विश्वास रखती है ।

**समाजवाद** : उत्पादन के साधनों पर राज्य या सम्पूर्ण समाज के स्वामित्व पर आधारित एक आर्थिक प्रणाली ।

**ट्रेड यूनियन** : मज़दूरों के हितों की रक्षा हेतु स्थापित मज़दूरों का संगठन ।

## 27.12 बोध प्रश्नों के उत्तर

**बोध प्रश्न 1**

1) उपभाग 27.3.4, 27.3.5 देखिये । आपके उत्तर में निम्न बातें शामिल होनी चाहियें : i) आरम्भिक कम्युनिस्ट गुटों का गठन ii) कम्युनिस्ट पार्टियों का गठन iii) एस. ए. डांगे तथा एम. एन. राय की भूमिका । उत्तर के दूसरे भाग में आप निम्न बातें शामिल कर सकते हैं : i) धन की समस्या ii) अंग्रेज़ सरकार का रवैया iii) कार्यकर्त्ताओं की कमी ।
2) क) एम. एन. राय—उपभाग 27.3.1, 27.3.2, 27.3.3 देखिये । आपके उत्तर में निम्न बातें शामिल होनी चाहियें : i) राय का सोवियत संघ से सम्बन्ध ii) भारतीय समस्याओं पर लेनिन से उनका विवाद iii) ताशकंद में उनकी भूमिका

ख) एस. ए. डांगे—उपभाग 27.3.4 देखिये । आपके उत्तर में निम्न बातें शामिल होनी चाहियें : i) उनका निजी जीवन ii) उनके लेख iii) कांग्रेस के एक ग्रुप के रूप में काम करते हुए कम्युनिस्टों को देखने की उनकी इच्छा ।

ग) मुज़फ़्फ़र अहमद—उपभाग 27.3.4 दखिये । आपके उत्तर में मज़दूर स्वराज पार्टी के गठन में उनकी भूमिका का उल्लेख होना चाहिए ।

घ) सिंगारावेलु चेट्टियर आपके उत्तर में निम्न बातें शामिल होनी चाहियें : i) 1923 में लेबर किसान पार्टी की स्थापना में उनकी भूमिका ii) इंडियन नेशनल कांग्रेस के गया अधिवेशन में उनका आलोचनात्मक प्रस्ताव ।

ङ) सत्यभक्त—उपभाग 27.3.4 देखिये । आपके उत्तर में निम्न बातें शामिल हों : i) भारतीय कम्युनिस्ट पार्टी के गठन में उनकी भूमिका ii) कानपुर कांफ्रेंस ।

3) अ) एस. ए. डांगे

ब) एस. ए. डांगे

**बोध प्रश्न 2**

1) भाग 27.5 तथा 27.6 देखिये । आपके उत्तर में निम्न बातें शामिल हों : i) अंग्रेज़ सरकार का यह भय कि हड़तालों और विद्रोहों द्वारा कम्युनिस्ट उन्हें उखाड़ फेंकेंगे । ii) पब्लिक सेफ्टी आर्डिनेंस तथा ट्रेड डिसप्यूट ऐक्ट iii) मेरठ षड़यंत्र केस iv) 1934 में कम्युनिस्ट पार्टी पर प्रतिबंध ।

2) भाग 27.6 देखिये । आपके उत्तर में दो प्रमुख बातें शामिल हों : i) केस की जो आम आलोचना हुई और ii) यह तथ्य भी कि मुक़दमें ने कम्युनिस्टों को उनके विचार तथा प्रतिबद्धता को अभिव्यक्त करने के लिए एक सार्वजनिक मंच प्रदान किया ।

**बोध प्रश्न 3**

1) भाग 27.7 देखिये । आपके उत्तर में निम्न बातें शामिल हों :

i) कांग्रेस के भीतर समाजवादी विचारधारा का प्रभाव

ii) कांग्रेस के भीतर समाजवादी दल का गठन iii) आरंभिक समाजवादियों को दिशा दिखाने में जयप्रकाश नारायण तथा नरेन्द्र देव जैसे व्यक्तियों की भूमिका iv) प्रथम अखिल भारतीय समाजवादी कांग्रेस का सम्मेलन v) अखिल भारतीय समाजवादी कांग्रेस पार्टी का प्रथम वार्षिक अधिवेशन ।

2) उपभाग 27.7.1 देखिये । दो मुख्य अंतर शामिल कीजिये ।

अ) समाजवादी कांग्रेसियों का लक्ष्य भारत में ही समाजवाद स्थापित करने तक सीमित था जबकि कम्युनिस्टों का विश्वास एक अंतर्राष्ट्रीय कम्युनिस्ट समाज पर था ।

ब) समाजवादी कांग्रेसी सिर्फ कांग्रेस के भीतर ही काम करना चाहते थे । कम्युनिस्ट कांग्रेस के बाहर स्वतंत्र रूप से काम करने को तैयार थे ।

**बोध प्रश्न 4**

1) भाग 27.8 देखिये। आपके उत्तर में i) स्वाधीनता और ii) समाजवाद शामिल होना चाहिए ।

2) भाग 27.9 देखिये । आपके उत्तर में निम्न बातें होनी चाहियें : i) अनुदारवादियों की प्रतिक्रिया ii) नेहरू जैसे वामपंथी कांग्रेसियो पर प्रभाव iii) किसान आंदोलन में भूमिका iv) ज़मींदारी प्रथा की समाप्ति आदि कार्यक्रमों का कांग्रेस नीतियों में शामिल होना ।

# इकाई 28 ट्रेड यूनियन और किसान आंदोलन : 1920 और 30 के दशक

## इकाई की रूपरेखा


28.0 उद्देश्य
28.1 प्रस्तावना
28.2 श्रमिकों की दशा
28.3 ट्रेड यूनियनवाद का उदय
 28.3.1 ट्रेड यूनियनवाद का अर्थ
 28.3.2 आरंभिक इतिहास
 28.3.3 ऑल इंडिया ट्रेड यूनियन कांग्रेस की स्थापना
28.4 ट्रेड यूनियनों का विकास
28.5 ऑल इंडिया ट्रेड यूनियन कांग्रेस में विभाजन
28.6 नया चरण
28.7 किसानों की कठिनाइयाँ
28.8 1920 के दशक के दौरान किसान आन्दोलन
28.9 1930 के दशक में किसान आन्दोलन
28.10 ऑल इंडिया किसान सभा की स्थापना
28.11 कांग्रेस और किसान वर्ग
28.12 सारांश
28.13 शब्दावली
28.14 बोध प्रश्नों के उत्तर


## 28.0 उद्देश्य

**इस इकाई का उद्देश्य आपके सामने 1920 और 1930 के दशकों के दौरान भारत में "ट्रेड यूनियन और किसान आन्दोलन" के विकास का संक्षिप्त इतिहास प्रस्तुत करना है । इस इकाई को पढ़ने के बाद आप :**

- **श्रमिकों की दशा के बारे में जान सकेंगे,**
- **ट्रेड यूनियनवाद का अर्थ, इसका आरंभिक इतिहास और आल इंडिया ट्रेड यूनियन कांग्रेस की स्थापना के विषय में बता सकेंगे,**
- **ट्रेड यूनियन आन्दोलन के विकास की प्रक्रिया और बाद में उनके बीच हुए विभाजन के विषय में जान सकेंगे,**
- **किसानों की कठिनाइयों के बारे में जानकारी प्राप्त कर सकेंगे, और**
- **यह व्याख्या कर सकेंगे कि किसान आन्दोलन किस प्रकार देश के विभिन्न भागों में उभरे और किस प्रकार वे किसान सभा में संगठित हुए ।**

## 28.1 प्रस्तावना

आपने खण्ड दो की इकाई-7 में 19वीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध में हुए किसान और श्रमिक वर्ग के आन्दोलनों के विषय में पढ़ा था । इस इकाई के अन्तर्गत हम आपको 1920 और 1930 के दशकों के दौरान हुए ट्रेड यूनियन और किसान आन्दोलनों के विकास के विषय में बताएंगे । पहले हम ट्रेड

यूनियन आन्दोलन पर और उसके बाद किसान आन्दोलन पर विचार करेंगे । आप पढ़ चुके हैं कि किस प्रकार 19वीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध में औपनिवेशिक सरकार, ज़मींदार और मिल मालिकों के शोषण और उत्पीड़न के कारण किसानों और मज़दूरों ने आन्दोलन किये । आप अब समझ सकेंगे कि 20वीं शताब्दी के पूर्वार्द्ध में किस प्रकार इन आन्दोलनों ने धीरे-धीरे संगठित रूप धारण किया और औपनिवेशिक साम्राज्य पर अपनी नीतियां बदलने के लिए दबाव डाला । इस काल के श्रमिक वर्ग की प्रकृति और किसान आन्दोलनों में हुए इन परिवर्तनों को समझने के लिए आपको कुछ महत्वपूर्ण पहलुओं पर ध्यान देना चाहिए :

- राष्ट्रीय आन्दोलन में नयी प्रवृत्तियों का उभरना—विशेषकर जन-राजनीति और जन-संगठनों की तरफ झुकाव ।
- प्रथम विश्वयुद्ध के आर्थिक, सामाजिक परिणाम, जिन्होंने भारतीयों के विभिन्न वर्गों पर विपरीत प्रभाव डाला । और
- बोल्शेविक रूस का प्रभाव और भारत में समाजवादी विचारों का विकास ।

इन सभी कारणों से भारत में श्रमिक वर्ग और किसान आन्दोलनों का विकास हुआ । इन आन्दोलनों की प्रकृति उन पुराने आन्दोलनों से, जिनकी हम चर्चा कर चुके हैं, भिन्न थी ।

## 28.2 श्रमिकों की दशा

अब हम संक्षेप में श्रमिकों की दशा का वर्णन करेंगे । इससे हमें यह समझने में मदद मिलेगी कि भारत में ट्रेड यूनियनों की स्थापना क्यों हुई । भारत में सूती वस्त्र उद्योग का मुख्य केन्द्र बम्बई तथा जूट और चाय का मुख्य केन्द्र बंगाल था । यहां श्रमिकों की जनसंख्या भारत में सबसे अधिक थी । श्रमिकों के रहने और कार्य करने की परिस्थितियां बहुत शोचनीय थीं । वे एक दिन में 15-16 घंटे से लेकर 18 घंटे तक काम करते थे । अवकाश की कोई व्यवस्था नहीं थी । श्रमिकों को ठेकेदारों (सरदार) को रिश्वत देनी पड़ती थी, जिन पर उनकी आजीविका निर्भर करती थी । वे अंधेरी और अस्वास्थ्यकर बस्तियों में रहते थे । जहां पानी और सफ़ाई की कोई व्यवस्था नहीं थी ।

कोयला खानों के मज़दूरों की दशा और भी अधिक शोचनीय थी । झरिया और गिरिडिह की कोयला खानों के श्रमिकों के काम के घंटे प्रातः 6 बजे से सांय 6 बजे तक थे । स्त्रियां और बच्चे भूमिगत खानों में काम करते थे । वहां प्रायः दुर्घटनाएं हुआ करती थीं । 1923 के बाद ही सरकार ने दुर्घटना बीमा योजना शुरू की थी । इसके बाद भी श्रमिकों को दुर्घटनाओं के मुआवज़े की रकम लेने के लिए भी परेशानी उठानी पड़ती थी । श्रमिकों को मज़दूरी कम दी जाती थी, जिससे मालिकों को अधिक से अधिक लाभ हो सके । रॉयल कमीशन आन लेबर ने स्पष्ट किया कि मद्रास और कानपुर में मज़दूरी सबसे कम और बम्बई में सबसे ज़्यादा है । श्रमिकों द्वारा नुकसान करने, देर से आने और कम उत्पादन के लिए कई सालों तक जुर्माना वसूल किया जाता था । श्रमिक ऋणग्रस्त रहते थे । उन्हें प्रायः काबुली महाजनों का सहारा लेना पड़ता था । ये महाजन ब्याज की ऊँची दरें वसूल करते थे । भविष्य निधि और पेंशन की कोई व्यवस्था नहीं थी । वृद्ध होने पर श्रमिकों को काम से हाथ धोना पड़ता था । अतः उन्हें अपने भरण-पोषण (जीवन-निर्वाह) के लिए अपने बच्चों या रिश्तेदारों पर निर्भर रहना पड़ता था ।

**बोध प्रश्न 1**

अपने उत्तर नीचे दिए गए स्थान में लिखिए ।

1) श्रमिकों की शोचनीय दशा के विषय में पांच पंक्तियों में लिखिए ।

........................................................................................................

........................................................................................................

........................................................................................................

........................................................................................................

........................................................................................................

2) नीचे दिए गए प्रत्येक वाक्य का उत्तर हाँ या नहीं में दीजिए ।

क) बम्बई भारत के जूट उद्योग का मुख्य केन्द्र था । ( )

ख) कलकत्ता और बम्बई में श्रमिकों की जनसंख्या सबसे अधिक थी । ( )

ग) श्रमिकों को प्रत्येक दिन 15 से 16 घंटे काम करना पड़ता था । ( )

घ) रॉयल कमीशन आन लेबर की नियुक्ति श्रमिकों की दशा की जांच-पड़ताल करने के लिए हुई थी । ( )

ङ) श्रमिकों को हड़ताल करने का अधिकार था । ( )

च) श्रमिकों के लिए वृद्धावस्था-पेंशन की व्यवस्था थी । ( )

## 28.3 ट्रेड यूनियनवाद का उदय

आइये देखें कि शोषण के विरुद्ध संघर्ष के लिए श्रमिक किस प्रकार संगठित हुए । वास्तव में ट्रेड यूनियन्वाद का उदय श्रमिक वर्ग के आन्दोलन में एक नये युग का प्रतीक था ।

### 28.3.1 ट्रेड यूनियनवाद का अर्थ

ट्रेड यूनियनें जोकि आज बहुत प्रचलित हैं, श्रमिकों की ऐसी संस्थाएं हैं जिनका उद्देश्य फैक्टरियों में काम करने वाले श्रमिकों की दशा सुधारना है। 19वीं शताब्दी में भारत में फैक्टरियों और मिलों की स्थापना होने पर सैकड़ों की संख्या में श्रमिक प्रतिदिन इकट्ठे काम करने लगे और रोज़ मिलने लगे। इससे उन्हें अपनी समस्याओं की चर्चा करने और अपने विचार मालिकों के सामने रखने का अवसर मिला । अधिकांश श्रमिक अशिक्षित थे । आरम्भ में उनका ट्रेड यूनियन बनाने और स्वयं को संगठित करने का विचार नहीं था । अधिकतर बुद्धिजीवियों ने उन्हें शिक्षित किया और ट्रेड यूनियनों में संगठित किया । ये लोग प्रायः यूनियनों के नेता होते थे ।

### 28.3.2 आरंभिक इतिहास

जैसाकि हम पहले बता चुके हैं, कुछ व्यक्ति श्रमिकों की शोचनीय दशा देखकर उनकी काम करने की परिस्थितियों में सुधार लाने के लिए आगे आए । उदाहरणस्वरूप ब्रह्म समाज के एक आमूल परिवर्तनवादी (Radical Brahmo) शशिपाड़ा बनर्जी ने कार्यरत व्यक्तियों का क्लब बनाया । उन्होंने 1874 में "भारत श्रमजीवी" (भारतीय श्रमिक) नामक अख़बार प्रकाशित किया और जूट मिल के श्रमिकों में शिक्षा का प्रसार करने के लिए रात्रिकालीन स्कूलों की व्यवस्था की । लेकिन उन्होंने ट्रेड यूनियन की स्थापना नहीं की । इसी प्रकार बम्बई में एन. एम. लोंखडे ने 1880 में 'दीनबन्धु' नामक साप्ताहिक पत्रिका आरंभ की तथा 1890 में 'बम्बई मिल हेंड्स एसोसिएशन' की भी स्थापना की । यद्यपि यह संस्था ट्रेड यूनियन नहीं थी, फिर भी इसने निम्नलिखित मागे पेश कीं ।

- काम के घंटों में कमी ।
- साप्ताहिक अवकाश और
- फैक्टरियों में काम के दौरान घायल हुए श्रमिकों को मुआवज़ा ।

अप्रैल 1918 में ऐनीबेसेन्ट के निकट सहयोगी बी. वी. वाडिया ने 'मद्रास लेबर यूनियन' की स्थापना की । यह भारत की पहली ट्रेड यूनियन थी । 1918 में मोहन दास करमचन्द गांधी ने अहमदाबाद के सूती कपड़ा उद्योग में श्रमिकों की हड़ताल का नेतृत्व किया । गांधी जी ने अपनी आत्मकथा "दी स्टोरी ऑफ़ माइ एक्सपेरीमेंट्स विद ट्रुथ" (The Story of My Experiments With Truth) में श्रमिकों की दशा का उल्लेख करते हुए लिखा है कि "उनकी मज़दूरी कम थी और इसमें वृद्धि के लिए श्रमिक बहुत समय से संघर्ष कर रहे थे ।"

गांधीजी ने मिल मालिकों से अनुरोध किया कि वे मामले मध्यस्थता के लिए भेज दें । परन्तु मिल मालिकों ने इन्कार कर दिया । तब गांधी जी ने श्रमिकों को हड़ताल करने की सलाह दी । हड़ताल 21 दिन तक जारी रही। गांधी जी ने उपवास शुरू किया लेकिन तीन दिन बाद ही समझौता हो गया। 1920 में गाधी जी ने 'मजूर महाजन संघ' की स्थापना की, जिसका उद्देश्य श्रमिकों और उनके मालिकों के बीच शांतिपूर्ण संबंध बनाए रखना और मध्यस्थता तथा समाज सेवा करना था ।

### 23.3.3 ऑल इंडिया ट्रेड यूनियन कांग्रेस की स्थापना

ऊपर बताए गए प्रयत्नों से ट्रेड यूनियनवाद धीरे-धीरे लोकप्रिय होने लगा । 1919-1920 में कानपुर, कलकत्ता, बम्बई, मद्रास, जमशेदपुर और अहमदाबाद जैसे औद्योगिक केन्द्रों में अनेकों हड़तालें हुई । हज़ारों श्रमिकों ने इन हड़तालों में भाग लिया । इस पृष्ठभूमि में 1920 में बम्बई में ऑल इंडिया ट्रेड यूनियन कांग्रेस की स्थापना हुई । लाला लाजपतराय ने इस के उद्घाटन सत्र की अध्यक्षता की । इसमें मोतीलाल नेहरू, ऐनीबेसेन्ट, सी. एफ. एंड्रयूज़, बी. वी. वाडिया और एन. एम. जोशी जैसे प्रमुख राष्ट्रवादी नेताओं और ट्रेड यूनियनवादियों ने भाग लिया । दी ऑल इंडिया ट्रेड यूनियन कांग्रेस, भारतीय श्रमिकों का प्रधान संगठन था ।

यद्यपि 1920 के दशक में कई बार हड़तालें होती रहती थीं परन्तु श्रमिकों के बीच ट्रेड यूनियनवाद के विकास की गति धीमी थी । रॉयल कमीशन आन लेबर ने इसके दो कारण बताए :

i) भाषा और साम्प्रदायिक भिन्नता ऐसे कारक थे, जो श्रमिकों की एकता में बाधक थे । उदाहरण के लिए बंगाल जूट मिल में अधिकतर श्रमिक बिहार और यू. पी. (संयुक्त प्रान्त) से आए थे । बंगाली श्रमिकों की संख्या कम थी ।

ii) ठेकेदारों तथा मालिकों ने ट्रेड यूनियनों के विकास का विरोध किया ।

iii) 1929 में केवल 51 यूनियनें थीं । 190,436 सदस्य ऑल इंडिया ट्रेड यूनियन कांग्रेस से संबद्ध थे । लेकिन अभी भी बहुत से श्रमिक ट्रेड यूनियनों में संगठित नहीं थे क्योंकि उन्हें नौकरी से निकाले जाने का डर था ।

**बोध प्रश्न 2**

अपने उत्तर नीचे दिए गए स्थान में लिखिए ।

1) ट्रेड यूनियन क्या है ? उत्तर लगभग 25 शब्दों में दीजिए ।

........................................................................................................................

........................................................................................................................

........................................................................................................................

2) क्या ट्रेड यूनियन श्रमिकों के लिए लाभदायक है ? 25 शब्दों में उत्तर दीजिए ।

........................................................................................................................

........................................................................................................................

........................................................................................................................

3) श्रमिकों की दशा सुधारने के लिए किए गए आरंभिक प्रयासों के विषय में पांच पंक्तियां लिखिए ।

........................................................................................................................

........................................................................................................................

........................................................................................................................

........................................................................................................................

........................................................................................................................

........................................................................................................................

4) ऑल इंडिया ट्रेड यूनियन कांग्रेस की स्थापना कैसे हुई ? 50 शब्दों में उत्तर दीजिए ।

........................................................................................................................

........................................................................................................................

........................................................................................................................

........................................................................................................................

........................................................................................................................

........................................................................................................................

## 28.4 ट्रेड यूनियनों का विकास

इन सभी रुकावटों के बावजूद ट्रेड यूनियन आन्दोलन श्रमिकों के बीच लोकप्रियता प्राप्त कर रहा था । इसका मुख्य कारण श्रमिकों की अनेक तकलीफें थीं, जैसे काम के अत्यधिक घंटे, अस्वास्थ्यकर आवास व्यवस्था, अपर्याप्त मज़दूरी, नौकरी से निकाला जाना आदि । उन्होंने सहायता के लिए "बाहरी व्यक्तियों" का सहारा लिया । ये बाहरी व्यक्ति राष्ट्रवादी कम्युनिस्ट और समाजवादी तथा कुछ निर्दलीय भी होते थे । ये बाहरी व्यक्ति श्रमिकों की सभाएं आयोजित करते थे, मालिकों को सम्बोधित कर याचिकाएं लिखते थे और मांग पत्र तैयार करते थे । वे श्रमिकों को ट्रेड यूनियनों में संगठित करते थे तथा ये ट्रेड यूनियनें ऑल इंडिया ट्रेड यूनियन कांग्रेस से सम्बद्ध थीं । जब मालिक उनकी मांगे अस्वीकार कर देते थे, तब श्रमिक हड़ताल करते थे । प्रायः हड़ताल के दौरान ट्रेड यूनियनें श्रमिकों की आर्थिक सहायता करती थीं क्योंकि हड़ताल के दौरान श्रमिकों को मज़दूरी नहीं मिलती थी । हड़तालों के कारण श्रमिकों को बहुत अधिक परेशानियाँ उठानी पड़ती थीं । विशेषकर जब ये हड़तालें महीनों तक चलती थीं । इन परेशानियों के बावजूद भी फैक्टरियों में अनेक हड़तालें हुई । सरकारी कार्यालयों और व्यापारिक फर्मों के कर्मचारियों ने भी ट्रेड यूनियनें बनायीं और हड़तालें आयोजित कीं ।

अब हम इस काल में भारत में हुई कुछ हड़तालों के विषय में चर्चा करेंगे । भारत में बम्बई सूती कपड़ा मिलों का सबसे बड़ा केन्द्र था । इनमें से अधिकांश मिलें भारतीय पूंजीपतियों द्वारा स्थापित की गयी थीं । 1924 में बम्बई में 150,000 श्रमिकों की एक बड़ी हड़ताल हुई । हड़ताल का मुख्य कारण मज़दूरों को पिछले चार वर्षों से मिलने वाला बोनस इस वर्ष नहीं दिया जाना था । 1926 में एन. एम. जोशी की अध्यक्षता में 'टैक्सटाइल लेबर यूनियन' की स्थापना की गयी । अप्रैल 1928 में बम्बई में एक आम हड़ताल हुई । अधिकांश मिलों के श्रमिकों ने इस हड़ताल में भाग लिया । जब सरकार ने श्रमिकों की मांगों पर विचार करने के लिए एक समिति नियुक्त की तब 9 अक्टूबर को हड़ताल समाप्त हो गयी । इस प्रकार हड़ताल ने सरकार को श्रमिकों और मालिकों के बीच हुए झगड़े में हस्तक्षेप करने के लिए बाध्य किया ।

बंगाल की जूट मिलों पर अंग्रेज़ पूंजीपतियों का अधिकार था । यह बंगाल का सबसे बड़ा उद्योग था । बंगाल में 1921-29 के दौरान 592 औद्योगिक विवाद हुए । इनमें से 236, जूट मिलों में हुए । 1928 में हावड़ा जिले के बाउरिया में फोर्ट ग्लोस्टर मिल के श्रमिकों ने हड़ताल कर दी । यह हड़ताल बहुत महत्वपूर्ण थी, क्योंकि यह 17 जुलाई से 31 दिसम्बर तक यानी लगभग 6 महीने चली । जवाहरलाल नेहरू ने इस हड़ताल के विषय में लिखा है कि—"बाउरिया का गांव हावड़ा शहर से 16 मील पर है ··· इस गांव और इसके आसपास के इलाके में फैक्टरी के गरीब श्रमिकों और बंगाल के बड़े जूट मालिकों के बीच भीषण संघर्ष हुआ । ··· उनमें से पंद्रह हज़ार व्यक्तियों ने इस संघर्ष को 6 महीने से भी अधिक समय तक ज़ारी रखा ।"

जुलाई 1929 में जूट मिलों में एक आम हड़ताल हुई । बंगाल कांग्रेस ने हड़ताल के प्रति सहानुभूति दिखायी । सरकार ने हस्तक्षेप किया और 16 अगस्त को हड़ताल समाप्त हो गयी ।

जमशेद जी टाटा ने भारत में जमशेदपुर में पहली आधुनिक स्टील फैक्टरी स्थापित की । लगभग 20 हज़ार श्रमिक इस फैक्टरी में काम करते थे । 1920 में श्रमिकों ने "लेबर एसोसिएशन" की स्थापना की । बड़ी संख्या में श्रमिकों के निकाले जाने के विरोध में टाटा स्टील फैक्टरी के श्रमिकों ने 1928 में एक आम हड़ताल की । यह हड़ताल 6 महीने से ज़्यादा चली । यद्यपि हड़ताल पूरी तरह सफल नहीं थी परन्तु मालिकों ने "लेबर ऐसोसिएशन" को मान्यता दे दी ।

इस काल के दौरान अहमदाबाद में मिल मालिकों द्वारा मज़दूरी में 20% कटौती किए जाने के विरोध में 64 कपड़ा मिलों में से 56 में आम हड़ताल हुई । मद्रास शहर भी ट्रेड यूनियन आन्दोलन का एक महत्वपूर्ण केन्द्र था । मद्रास में 1923 में सिंगारावेलू ने पहला "मई दिवस" मनाया ।

## 28.5 ऑल इंडिया ट्रेड यूनियन कांग्रेस में विभाजन

अमेरिका में भीषण आर्थिक मंदी आरम्भ हुई और 1929 तक पूरे विश्व में फैल गयी । भारत में मंदी 1936 तक जारी रही । सैकड़ों फैक्टरियाँ बंद हो गयीं और हज़ारों श्रमिक रोज़गार से हाथ धो बैठे । यूनियनों की संख्या में भी कमी हुई ।

दुर्भाग्यवश इस काल के दौरान ऑल इंडिया ट्रेड यूनियन कांग्रेस दो भागों में विभाजित हो गयी । पहला विभाजन 1929 में हुआ । उस समय जवाहरलाल नेहरू ऑल इंडिया ट्रेड यूनियन कांग्रेस के अध्यक्ष थे । इसका मुख्य मुद्दा था कि ऑल इंडिया ट्रेड यूनियन कांग्रेस अंग्रेज़ सरकार द्वारा नियुक्त रायल कमीशन आन लेबर का बहिष्कार करेगी या नहीं । उदारवादी इसमें शामिल होना चाहते थे, जबकि उग्रवादी इसका बहिष्कार करना चाहते थे । अंत में उदारवादियों ने ऑल इंडिया ट्रेड यूनियन कांग्रेस छोड़ दी और वी. वी. गिरि की अध्यक्षता में इंडियन ट्रेड यूनियन फेडरेशन की स्थापना की । 1931 में दूसरा विभाजन हुआ । कम्युनिस्टों ने ऑल इंडिया ट्रेड यूनियन कांग्रेस को छोड़ दिया और रेड ट्रेड यूनियन कांग्रेस की स्थापना की । यह विभाजन उस समय हुआ जब मालिकों ने हज़ारों श्रमिकों को नौकरी से निकाल दिया था । विभाजनों के कारण ट्रेड यूनियन आन्दोलन कमज़ोर पड़ गया ।

## 28.6 नया चरण

1935 के पश्चात् ट्रेड यूनियन आंदोलन का एक नया चरण आरंभ हुआ । ऑल इंडिया ट्रेड यूनियन कांग्रेस में पुनः एकता स्थापित हुई । 1936 के बाद भारतीय अर्थव्यवस्था में सुधार आया । 1937 में कांग्रेस ने प्रान्तों में मंत्रिमंडलों की स्थापना की । कांग्रेस मंत्रिमंडलों की स्थापना से श्रमिकों की आकांक्षाएं बढ़ीं । 1936 और 1939 के बीच ट्रेड यूनियनों की संख्या दुगुनी हो गयी और इसके सदस्यों की संख्या भी काफ़ी बढ़ गयी । हड़तालों की संख्या 1936 में 157 से 1939 में 406 हो गयी । इनमें से प्रमुख हड़तालें 1935 में कलकत्ता में केसोराम कॉटन मिल्स और अहमदाबाद में टेक्सटाइल्स मिलों में, दिसम्बर 1936 से फ़रवरी 1937 तक बंगाल नागपुर रेलवे में हुईं । इसके अलावा 1936 के दौरान कलकत्ता जूट मिल्स और कानपुर टैक्सटाइल्स मिल्स में श्रमिकों तथा मालिकों के बीच अनेक झगड़े हुए जो आगामी वर्ष में पराकाष्ठा पर पहुंच गये तथा दोनों में व्यापक आम हड़तालें हुईं । इस समय की महत्वपूर्ण घटना दक्षिण पंथी और समाजवादियों द्वारा ट्रेड यूनियनों और किसान संगठनों को सामूहिक आन्दोलन के लिए एकताबद्ध करना था । दरअसल इस चरण में ही ट्रेड यूनियन आंदोलन का विकास हुआ ।

**बोध प्रश्न 3**

1) ट्रेड यूनियन आन्दोलन श्रमिकों में लोकप्रिय क्यों हुआ ? बाहरी व्यक्तियों ने श्रमिकों की किस प्रकार सहायता की ? लगभग दस पंक्तियों में उत्तर दीजिये ।

..........................................................................................................
..........................................................................................................
..........................................................................................................
..........................................................................................................
..........................................................................................................
..........................................................................................................
..........................................................................................................
..........................................................................................................
..........................................................................................................
..........................................................................................................

2) श्रमिकों पर आर्थिक मंदी का क्या प्रभाव पड़ा ? लगभग तीन पंक्तियों में उत्तर दीजिये ।

..........................................................................................................
..........................................................................................................
..........................................................................................................
..........................................................................................................

3) 1937 के बाद ट्रेड यूनियन आन्दोलन के विकास का संक्षिप्त विवरण लगभग 100 शब्दों में दीजिये ।

........................................................................................................

........................................................................................................

........................................................................................................

........................................................................................................

........................................................................................................

........................................................................................................

........................................................................................................

........................................................................................................

........................................................................................................

## 28.7 किसानों की कठिनाइयाँ

1920 और 1930 के दशकों के दौरान भारत के विभिन्न भागों में अनेक किसान संघर्ष हुए । खंड 2 की इकाई-7 में आप पढ़ चुके हैं कि औपनिवेशिक शासन की स्थापना से किस प्रकार भारतीय कृषक वर्ग बुरी तरह से प्रभावित हुआ और उन्होंने इस शोषण के विरुद्ध अपनी आवाज़ उठाई । इस भाग में हम पढ़ेंगे कि किस प्रकार बदले हुए हालात भी किसानों का शोषण समाप्त नहीं कर पाये । वरन् यह वैसा ही बना रहा । लेकिन किसानों ने अपने अनुभव से यह सीखा कि उन्हें सरकार और ज़मींदारों की शक्ति के विरुद्ध असंगठित नहीं रहना चाहिए । एक ओर 20वीं शताब्दी में किसानों ने न केवल ताल्लुक़ेदारी और ज़मींदारी व्यवस्था की ज़्यादती के विरुद्ध विद्रोह किया, बल्कि किसान सभाओं जैसे किसान संगठनों की भी स्थापना की ।

भारत के विभिन्न भागों में शोषण के तरीक़ों में कुछ विभिन्नताएं हो सकती हैं । परन्तु सामान्यतः भारत में किसानों को अनेक कठिनाइयाँ झेलनी पड़ीं । वे सदा दूसरों की दया पर निर्भर रहते थे । यहां हम किसानों की कुछ प्रमुख कठिनाइयों का वर्णन करेंगे । इससे आप उस समय के किसानों की वास्तविक दशा को समझ सकेंगे ।

बहुत से क्षेत्रों में किसान का अपनी जोती हुई ज़मीन पर कोई दख़ल अधिकार (Occupancy Right) नहीं था । ज़मींदार को उन्हें बेदख़ल करने का अधिकार था, जिसका प्रयोग वे काश्तकारों को सताने के लिए करते थे ।

- ज़मींदार को नियमित कर देने के अतिरिक्त ज़मींदार काश्तकारों को "नज़राना", "अब्वाब" और विशेष अवसरों पर अन्य उपहार देने के लिए बाध्य करते थे ।
- भू-राजस्व/भूमि किराये के भारी दबाव के कारण किसान गांव के व्यापारियों और ज़मींदारों के ऋणी हो जाते थे । ये किसानों से भारी ब्याज की दर वसूल करते थे । किसान के लिए इस ऋण जाल से बाहर निकलना कठिन था । यह ऋण पीढ़ी-दर-पीढ़ी चलता रहता था ।
- प्रथम विश्वयुद्ध ने किसानों की तक़लीफ़ों को और भी बढ़ा दिया । क्योंकि अनेक क्षेत्रों में किसानों को युद्ध कोष तथा सैनिक कार्यवाहियों के लिए पैसा देना पड़ता था ।
- इस काल में अनाज की क़ीमतों में भारी वृद्धि हुई । इस महंगाई से ग़रीबों को लाभ नहीं हुआ परन्तु मध्यम वर्ग और व्यापारियों को इससे लाभ हुआ ।

इस परिस्थिति में सरकार का कर्त्तव्य किसानों की सहायता करना था । परन्तु सरकार स्वयं ज़मींदारों के पक्ष में थी । इसका कारण यह था कि देहात में सरकारी शासन की स्थिरता ज़मींदारों पर निर्भर थी । अतः अनेक कष्टों के कारण किसानों ने विद्रोहों द्वारा अपनी मुक्ति का मार्ग चुना ।

**बोध प्रश्न 4**

1) किसानों की मुख्य परेशानियाँ क्या थीं ? लगभग 100 शब्दों में उत्तर दीजिए ।

........................................................................................................

........................................................................................................

........................................................................................................

..........................................................................

..........................................................................

..........................................................................

..........................................................................

2) निम्नलिखित में से कौन-सा कथन सही या ग़लत है ? सही पर (√) और ग़लत पर (×) का चिन्ह लगाइये ।

   i) इस काल में पहली बार किसानों ने किसान सभाओं में अपने आपको संगठित किया । ☐

   ii) ज़मींदारों को, काश्तकारों द्वारा जोती जा रही ज़मीन से उन्हें बेदख़ल करने का अधिकार नहीं था । ☐

   iii) किसान अपनी इच्छा से "अववाब" देते थे । वे इसे देने के लिए बाध्य नहीं थे । ☐

   iv) अनाज की क़ीमतों में वृद्धि से ग़रीब किसानों को लाभ हुआ । ☐

   v) किसानों की तकलीफ़ों के प्रति सरकार का रुख़ अत्यधिक सहानुभूतिपूर्ण था । ☐

## 28.8 1920 के दशक के दौरान किसान आन्दोलन

इस पृष्ठभूमि में अब हम 1920 के दशक के दौरान हुए कुछ महत्वपूर्ण किसान आन्दोलनों की चर्चा करेंगे । इस काल में किसान आन्दोलन का मज़बूत केन्द्र यू. पी. था । उत्पीड़क ताल्लुक़ेदारी और ज़मींदारी व्यवस्था ने किसानों का जीना दूभर कर दिया था । राष्ट्रवादियों ने किसानों की समस्याओं पर विशेष ध्यान दिया । लेकिन बाबा रामचन्द्र ने ज़मींदारों के विरुद्ध अवध के किसानों को संगठित करने के लिए पहल की । बाबा रामचन्द्र महाराष्ट्रियन ब्राह्मण थे । वे 1905 में क़रारबद्ध श्रमिक के रूप में फिजी गये थे । वहां से वे 1917-18 में अवध लौट आए । सन्यासी की वेशभूषा में वे किसानों के बीच रहे । उन्होंने गांव में सभायें आयोजित कीं और गांव में किसानों को जागृत और संगठित करने के लिए रामचरितमानस का उपयोग किया । उन्होंने किसानों को बतलाया कि किस प्रकार सरकार और ताल्लुक़ेदारों ने उन्हें बंधुआ मज़दूर बना दिया है । दासता को तभी समाप्त किया जा सकता है जब वे एकताबद्ध होकर अपना संगठित दल बना लें । अगस्त, 1920 में अंग्रेज़ सरकार ने उन्हें गिरफ्तार कर लिया तब असंख्य किसानों ने कचहरी-प्रांगण में एकत्रित होकर उनकी रिहाई की मांग की ।

1920 में किसान आन्दोलन कांग्रेस के असहयोग आन्दोलन से जुड़ गया । 1921 में किसान आन्दोलन तीव्र हो उठा और यू. पी. के रायबरेली फ़ैज़ाबाद और सुल्तानपुर में फैल गया । किसानों ने प्रदर्शन किये । उनकी मांग थी कि ज़मीन से बेदख़ली रोकी जानी चाहिए । उन्होंने ज़मींदारों और महाजनों के घरों पर धावे बोले । 6 जनवरी, 1921 में किसान फ़ुरसतगंज बाज़ार में इकट्ठे हुए । उन्होंने अनाज और कपड़े की क़ीमत में वृद्धि, बनियों के भारी मुनाफ़े और ताल्लुक़ेदारों की मनमानी (निरंकुशता) के विरुद्ध विद्रोह किया । पुलिस किसानों को तितर-बितर करने में असफ़ल रही और उन पर गोली चलायी । इस कार्रवाई में 6 व्यक्ति मारे गये । 7 जनवरी को जब हज़ारों किसान रायबरेली में मुंशीगंज पुल पर इकट्ठे हुए उस समय पुलिस ने निहत्थे किसानों पर फिर गोली चलायी । नेहरूजी ने अपनी आत्मकथा में इस घटना का वर्णन इस प्रकार किया है—

"जैसे ही मैं नदी के पास पहुँचा, दूसरी ओर से गोली चलने की आवाज़ सुनी जा सकती थी । मुझे पुल पर रोक लिया गया..................इस गोलीकांड में कई लोग मारे गये थे" ।

1921 में स्थिति में परिवर्तन हुआ । सरकार की दमनकारी नीति, कांग्रेसियों के आन्दोलन को रोकने के प्रयास और 1921 में अवध लगान ऐक्ट (Ovadh Rent Act) में सुधार के कारण आंदोलन फीका पड़ गया । परन्तु इससे किसानों को शांत नहीं किया जा सका । 1921 के अंत और 1922 के आरंभ में हरदोई, बाराबंकी, सीतापुर आदि ज़िलों में आन्दोलन फिर से उभरा । इन ज़िलों में किसानों ने "एका" आन्दोलन आरम्भ किया । इसे शुरू करने में जुझारू (Radical) किसान नेता

मदारीपासी का हाथ था । उनके नेतृत्व में शुरू किए गये आन्दोलन ने ज़मींदारों और प्रशासन को गंभीर चुनौती दी । तथापि अंग्रेज़ सरकार की दमनकारी नीति के कारण यह आन्दोलन असफल हो गया । परन्तु मदारीपासी को गिरफ़्तार नहीं किया जा सका ।

उत्तर बिहार में किसान आन्दोलन स्वामी विद्यानन्द के नेतृत्व में विकसित हुआ । इस क्षेत्र में दरभंगा के राजा के पास विस्तृत संपदा थी । उसने यहां के स्थानीय किसानों का विभिन्न प्रकार से दमन किया । स्वामी विद्यानन्द ने दरभंगा के राजा के विरुद्ध किसानों को संगठित किया । लेकिन यहां का आन्दोलन यू.पी. की भांति जुझारू नहीं था ।

बंगाल के किसानों ने भी "कर न देने" संबंधी आंदोलन में भाग लिया । मिदनापुर ज़िले में यह अधिक तीव्र था । किसानों ने यूनियन बोर्ड को 'कर देने' से इन्कार कर दिया । यह आंदोलन इतना प्रभावशाली था कि यूनियन बोर्ड के सदस्यों को त्यागपत्र देना पड़ा । सरकार ने यूनियन बोर्ड को समाप्त करने का निश्चय किया । इस प्रकार यह आन्दोलन सफल हुआ ।

कांग्रेस ने गुजरात में किसानों को संगठित करने का प्रयत्न किया । 1927 में कपास के मूल्य में गिरावट आने के बावजूद सरकार ने बारदोली में राजस्व बढ़ा दिया । बल्लभ भाई पटेल और कनवर जी मेहता ने किसानों को संगठित करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभायी । इस प्रकार 1928 में बारदोली सत्याग्रह आरंभ हुआ । किसानों ने सरकार को राजस्व देने से इन्कार कर दिया । इसके परिणामस्वरूप सरकार ने दमनकारी रुख़ अपनाया और किसानों की ज़मीनें ज़ब्त कर लीं । अंत में सरकार को समझौता करना पड़ा और राजस्व की दर घटा दी गयी ।

उपरोक्त आन्दोलनों के अतिरिक्त देश के अन्य भागों में भी छुटपुट विद्रोह हुए । राजस्थान, मालाबार, उड़ीसा, आसाम तथा अन्य प्रान्तों में भी किसानों ने अपने प्रति हुए अन्यायों का ज़ोरदार विरोध किया ।

## 28.9 1930 के दशक में किसान आन्दोलन

1930 के दशक में भी किसानों ने विभिन्न प्रांतों में विद्रोह किए । यू.पी. में किसान विद्रोह सबसे अधिक प्रभावशाली था । कांग्रेस ने 'कर न देने' संबंधी आंदोलन का आह्वान किया और ज़मींदारों से सरकार को राजस्व न देने के लिए कहा । परंतु कुछ नेता 'लगान बंदी' (No Rent) आंदोलन आरंभ करना चाहते थे । 'लगान बंदी' आंदोलन क्या है ? यह उन काश्तकारों का आंदोलन है, जो ज़मींदारों को लगान देते थे, कर नहीं आंदोलन सरकार के विरुद्ध था जबकि लगान बंदी आंदोलन का प्रभाव ज़मींदारों पर पड़ा । 1931 में लगान बंदी आंदोलन आरंभ किया गया जिसका काश्तकारों ने ज़ोरदार समर्थन किया । उन्होंने ज़मींदारों को लगान देना बंद कर दिया । आंदोलन रायबरेली, इटावा, कानपुर, उन्नाव और इलाहाबाद में फैल गया । रायबरेली के कालका प्रसाद जैसे नेताओं ने किसानों से सभी प्रकार की अदायगी रोक देने का अनुरोध किया । सरकार ने आंदोलन को दबाने का प्रयत्न किया । किसान यूनियन को अवैध घोषित कर दिया गया । आंदोलन कुचल दिया गया ।

बंगाल और बिहार में किसानों ने कर नहीं आंदोलन में भाग लिया । बंगाल में कृषक महिलाएं भी इस आंदोलन में शामिल हुईं और उन्होंने मिदनापुर ज़िले में गैर क़ानूनी नमक भी बनाया और बेचा। पुलिस द्वारा उनकी पिटाई की गयी । मानभूम, सिंहभूम और दिनाजपुर ज़िलों में आदिवासी किसानों ने नमक सत्याग्रह में भाग लिया और जेल गये परंतु ज़मींदारों को लगान का भुगतान न करने का कोई आंदोलन नहीं हुआ था ।

मद्रास में भी किसान आन्दोलन का विकास हो रहा था । 1928 में आन्ध्र रैयत एसोसिएशन बनायी गयी थी । इसके नेता प्रोफेसर एन.जी. रंगा थे । रैयत एसोसिएशन ने किसानों की तात्कालिक मांगों की तरफ़ ध्यान आकर्षित किया । इनकी महत्वपूर्ण मांगों में से एक मांग लगान में कमी थी । जिससे ज़मींदार प्रभावित हुए । जब सविनय अवज्ञा आन्दोलन आरम्भ हुआ, उस समय किसानों ने गांवों में सभाएं आयोजित की और भू-राजस्व के विरुद्ध प्रचार किया । तंजौर, मदुरा और सेलम में विद्रोह तेज़ हुआ । 1931 के अंत तक कुछ ज़िलों में अनाज के लिए दंगे आरम्भ हो गये । कृष्णा ज़िले में एक महाजन के घर पर धावा बोला गया और उसका अन्न भंडार लूट लिया गया । गुन्टूर ज़िले

ने पुलिस और किसानों के बीच संघर्ष हुआ । सरकार और कांग्रेस द्वारा, किसान आन्दोलन को रोकने के प्रयासों के बावजूद भी यह और अधिक उत्साह के साथ बढ़ता रहा ।

## 28.10 ऑल इंडिया किसान सभा की स्थापना

1920 तक विभिन्न क्षेत्रों में प्रान्तीय किसान सभाओं की स्थापना हो चुकी थी । परन्तु समाजवादियों और कम्युनिस्टों ने यह महसूस किया कि किसानों का एक केन्द्रीय संगठन होना आवश्यक है । उनके प्रयत्नों से 1936 में ऑल इंडिया किसान सभा की स्थापना हुई । 1937 तक ऑल इंडिया किसान सभा की शाखाएं विभिन्न प्रान्तों में बन गईं । एन. जी. रंगा, स्वामी सहजानंद, नरेन्द्र देव, इन्दुलाल याज्ञिक और बंकिम मुकर्जी ऑल इंडिया किसान सभा के कुछ प्रमुख नेता थे । किसान सभा के निम्नलिखित उद्देश्य थे :

- आर्थिक शोषण से किसानों की रक्षा ।
- ज़मींदारी और ताल्लुकेदारी के रूप में भूस्वामित्व की समाप्ति ।
- राजस्व और लगान में कमी,
- ऋण स्थगन,
- महाजनों को लाइसेंस देना (महाजनों के लिये क़ानून बनाना),
- खेतिहर मज़दूरों के लिए न्यूनतम मज़दूरी,
- व्यापारिक फसलों के लिए उचित मूल्य, और
- सिंचाई सुविधाएं आदि ।

CONGRESS SOCIALIST: KISAN SUPPLEMENT.

The All India Kisan Conference

A conference of representatives of Kisan organisations of different provinces was held at Meerut on January 16th, 1936 under the presidentship of Shrimati Kamla Devi. The conference appointed a committee to organise the All-India Conference at Lucknow with a view to foster, co-ordinate, guide and help the various provincial and other local organisations and to generally strengthen the Kisan movement in the country.

The All-India Kisan Conference, was accordingly held at Lucknow on 11th and 13th April under the presidentship of Swami Sahajanand the leader of the Kisan movement in Behar. More than one thousand delegates and visitors attended the conference. The representatives the All Bengal Peasants' Federation, the As... Ryots' Association, the Punjab Peasants' Relief Committee, the U. P. Kisan Sa... South Indian Federation of Pea... ers, the Peasants ... Malabar, the ... and the K... Gujerat, C... delibe...

agrarian problem which was the most complicated in India.

RESOLUTIONS

III. The object of the Kisan movement is to secure complete freedom from economic exploitation and the achievement of full economic and political power for the peasants and workers and all other exploited classes.

The main task of the Kisan Movement shall be the organisation of peasants to fight for their immediate political and economic demands in order to prepare them for their emancipation from every form of exploitation.

The Kisan Movement stands for the achievement of ultimate economic and political power for the producing masses through its active participation in the national struggle for winning complete ...ependence.

ZEMINDARI SYSTEM MUST GO!

And whereas the Zamindars etc., rack-rent and oppress their crores of tenants while ... fleecing the irrigation sources.

All such systems of landlordism shall be abolished, and all the rights over such lands be vested in the cultivators.

The Zemindari system was the root of all the trouble and he was determined to press for its complete abolition. He concluded ...

This conference protests against the arrest and detention of Syt. Subhash Chandra Bose our distinguished patriot and hopes that he very soon be set at liberty to carry on our national struggle for freedom.

"With a view to presenting in proper form the demands and grievances of the impoverished peasants of Bengal before the Bengal Land Revenue Commission, the Conference calls upon all progressive organisations in the province to co-operate with the District, Sub-divisional and Primary Congress Committees in launching a country-wide campaign.

Issued by the All India Kisan Sabha

Bombay, Feb.

16. अखिल भारतीय किसान सभा के सम्मेलन की अखबारों में रिपोर्ट ।

सभाओं और प्रदर्शनों में किसान सभा इन मांगों से किसान को अवगत कराती थी और इन मांगों की स्वीकृति के लिए सरकार पर दबाव डालती थी । ऑल इंडिया किसान सभा ने फ़ैज़पुर में अपनी दूसरी वार्षिक सभा में प्रस्ताव रखा, "देश की सारी साम्राज्यवाद विरोधी शक्तियाँ ख़ासकर किसान और मज़दूर शोषकों के ख़िलाफ़ अपने संघर्ष को तेज़ करें । यह संघर्ष शोषण के प्रतिनिधि अंग्रेज़ सरकार, ज़मींदारों, भूमिपतियों, उद्योगपतियों और महाजनों के ख़िलाफ़ होगा ।" ऑल इंडिया किसान सभा ने कांग्रेस से अलग होकर संघर्ष करने का निर्णय लिया । उन्होंने दावा किया कि किसानों की मुक्ति उनके अपने संगठन के द्वारा ही हो सकती है ।

किसान सभा ने एक नये तरीक़े का आंदोलन चलाया । यह मुख्यतः ज़मींदारों के विरुद्ध था । 1937-38 में बिहार में एक जन आंदोलन आरंभ हुआ । यह आंदोलन **बकाश्त** के नाम से विख्यात हुआ । **बकाश्त** का अर्थ है—स्वयं का जोता हुआ । प्रायः ज़मींदार **बकाश्त** भूमि से काश्तकार को बेदख़ल कर देते थे । 1937 में कांग्रेस मंत्रिमंडल के गठन के पश्चात् किसान सभा ने **बकाश्त** के मुद्दे को उठाया । **बकाश्त** आंदोलन के दौरान किसानों ने बेदख़ली के विरुद्ध संघर्ष किया । ज़मींदार और किसानों के बीच भी संघर्ष हुआ ।

बंगाल में भी किसान सभा सक्रिय थी । वर्दवान ज़िले में दामोदर नहर के निर्माण के पश्चात् किसानों पर 'नहर कर' लगाया गया । किसान सभा ने 'नहर कर' में कमी के लिए सत्याग्रह किया । सरकार ने किसान सभा की कुछ मांगें स्वीकार कर लीं, अतः आंदोलन समाप्त कर दिया गया । उत्तर बंगाल के ज़िलों में **'हाट' 'टोला'** आंदोलन आरंभ किया गया । मेलों और हाटों में (साप्ताहिक बाज़ार) चावल, धान, सब्ज़ी, पशु बेचने वाले किसानों से ज़मींदार वसूली (Levy) करते थे । किसानों ने इस वसूली का भुगतान करने से इंकार कर दिया । कभी-कभी ज़मींदार किसानों के साथ समझौता कर लेते थे और ग़रीब किसानों को लेवी के भुगतान से छूट दे देते थे ।

1939 में बटाईदारों (Share Croppers) का आंदोलन हुआ । ये ज़मींदार की भूमि जोतने वाले ग़रीब किसान हुआ करते थे जो उत्पादन का कुछ भाग ज़मींदार को देते थे, फिर भी पट्टेदारी की कोई सुरक्षा नहीं थी और ज़मींदार इन्हें बेदख़ल कर सकता था । 1939 में काश्तकार खेत से फसल अपने खलिहानों में ले गये । इससे पहले उन्हें फसल को ज़मींदार के अन्न-भंडार में ले जाना पड़ता था, जहां उसकी गहाई की जाती थी और तब बटाईदारों और ज़मींदारों के बीच बांटा जाता था । उत्तर बंगाल के दीनाजपुर ज़िले में आंदोलन तेज़ था । सरकार ने किसानों से समझौता किया । यह निश्चित किया गया कि भविष्य में धान एक ऐसे स्थान पर इकट्ठा किया जायेगा जिसका निर्णय ज़मींदार और बटाईदार करेंगे । इस प्रकार आंदोलन सफल हुआ और किसान, संगठन क्षमता से अवगत हुए । इस काल में उड़ीसा और आन्ध्र प्रदेश में भी इसी प्रकार के संघर्ष हुए । आन्ध्र प्रदेश में किसानों को संगठित करने में एन. जी. रंगा ने महत्वपूर्ण भूमिका निभायी ।

## 28.11 कांग्रेस और किसान वर्ग

अब हमारे ज़हन में दो प्रश्न उठते हैं, वे इस प्रकार हैं—किसान आंदोलन के विषय में कांग्रेस की क्या प्रतिक्रिया थी ? और कांग्रेस द्वारा निर्देशित राष्ट्रीय आंदोलन के बारे में किसानों की क्या प्रतिक्रिया थी ? कांग्रेस नेता किसानों की शक्ति से भलीभांति परिचित थे और अंग्रेज़ी राज्य के विरुद्ध संघर्ष में उनके महत्व को समझते थे । वे किसान की समस्याओं और तकलीफ़ों से चिंतित थे। यह नेहरू की टिप्पणी से स्पष्ट हो जाता है, जो उन्होंने 1937 में की थी—"भारत में सबसे महत्वपूर्ण समस्या किसानों की समस्या है । शेष सब गौण है" परन्तु कांग्रेस के वे दक्षिणपंथी जो भारतीय समाज के प्रमुख सामाजिक समूहों का प्रतिनिधित्व करते थे, भारतीय किसान की बढ़ती हुई वर्ग चेतना और ज़मींदारी उन्मूलन के लिए किसान सभा की मांग से डरे हुए थे। वे चाहते थे कि किसान साम्राज्यवाद विरोधी आंदोलन को शक्तिशाली बनाने में सहयोग दें, परन्तु ज़मींदारों के विरुद्ध किसानों की मांग के वे विरोधी थे । जब कभी किसानों ने ज़मींदारों के विरुद्ध संघर्ष किया, कांग्रेस नेता उन्हें रोकने का प्रयास करते थे । दक्षिणपंथियों ने किसान सभा की स्थापना को कांग्रेस संगठन के लिए एक चुनौती समझा । महादेव देसाई ने इसका तर्क देते हुए लिखा है :

"यदि किसान सभा किसानों और ज़मींदारों के बीच अन्दरूनी झगड़े पैदा करती है तो उससे कांग्रेस के उद्देश्य को हानि पहुँचेगी । कांग्रेस भलि प्रकार जानती है कि राष्ट्र को बनाने वाले विभिन्न तत्वों से किस प्रकार निपटा जा सकता है । नीतियाँ निर्धारित करना कांग्रेस का कार्य है कोई व्यक्ति या समूह धमकी या बल प्रदर्शन से कांग्रेस पर अपनी नीतियाँ नहीं थोप सकता"

# KISAN BULLETIN

## KISANS MARCH AHEAD

The Kisans of the United Provinces have been hit hard by recent hailstorms and showers which have ruined the crops. Zemindari terrorism continues unabated. Still Kisans are organising themselves everywhere and are preparing to march ahead.

Rai Bareli Kisan Conference

On January 31 a district [illegible] was held at Unchahar under the presidentship of Dr. Z. Ahmed and was attended by more than 10 000 Kisans. Messrs Harsha Dev Malaviya, Devanandan Pande and other leaders addressed the gathering. In his presidential address, Dr. Ahmed explained the objects of the Kisan Sabha and its relation with the National Congress.

Munshi Kalka Prasad denounced the terrors of the local zemindars and urged Kisans to be ready to march to [illegible]

[illegible] ed by rains, congratulating Mr. Subhas Bose on his re-election as president and supporting the move to give an ultimatum to the British Government.

### Kisan Week at Cawnpore

Kisan Week was observed in Cawnpore district from February 1 to 8. Mr. Arjun Arora inaugurated the week and addressed a [illegible] meetings were held throughout the district and about 2,000 members were enrolled in the Kisan Sabha.

### Bengal Kisans On March

*Jute Ordinance Protest Day on October 12*—Pursuant to the instructions of the secretariat of the B. P. K. C. most of the District Kisan Committees observed the All Bengal Jute Ordinance Protest Day on 15th October. Jute growers in the districts demanded Rs. 10/- as the minimum price of raw jute and protested against the Government's new attack on the peasants and the jute workers who have protested against the 30% wage-cut due to the ordinance. A workers' delegation is going to the jute-growing districts to initiate the joint struggle of workers and peasants.

*Hunger-march to Santipur*—On the 2nd October last about a thousands peasants from the surrounding villages of Santipur marched in a huge procession shouting revolutionary slogans and waving the Red and the National Flags. Unprecedented scenes of enthusiasm were witnessed in the town and in the neighbouring villages when even hungry half-naked women and children came out in the street to join the Hunger-March. These peasants lost their all during the heavy floods. [illegible] Comrades Abdul Momin and Ananta Mukerji [illegible] addressed the meeting and spoke on the demands for granting urgent relief to the hungry and homeless peasantry. Rice was distributed among the hunger-marchers by the local Kisan Sabha.

### Malabar Kisans Forge Ahead

The years 1933-34 witnessed the birth of a militant kisan movement in Malabar. The leftists and socialists formulated the peasants demands which were adopted by the Provincial Congress Committee. A series of meetings and conferences were held in 1935-36 and the Congress election propaganda of 1936-37 gave a great impetus to the new kisan movement. The work of agitation was followed by organisation of taluka kisan committees in 1937. And in May last the representatives of these committees met to form the All Malabar Kisan Sabha.

# The Peasants World

## GUJERAT GOES FORWARD

A meeting of the Gujerat Provincial Kisan Sabha was held at Borsad (Dt. Kaira) on Feb. 12 under the presidentship of Mr. Ramalashankar Pandya. Among those present were Messrs. D. M. Parulkar, Indulal Yagnik and [illegible]. At the outset it was announced that about 7000 members had been enrolled in the Kisan Sabha as compared to the 2500 enrolled last year.

III. Minimum demands. The peasants will immediately take all possible steps to achieve the following minimum demands:—

1. Cancellation of all arrears of rent and revenue.
2. Abolition of all Land Revenue Assessment and rent from uneconomic holdings.
3. The reduction by 50 per cent of rent and revenue and also of water-rates.
4. Abolition and penalisation of all feudal and customary dues and forced labour including Begar and illegal exactions.
5. The declaration of a 5 years' moratorium for all agrarian indebtedness.
6. An immediate enquiry to be made into the extent of repayment of the principal borrowed, interest thereon and the assessment of the assets and liabilities of the peasants.
7. Freedom from arrest and imprisonment for inability to pay debts, rents and revenue.
8. Immunity from attachment for all mi-

### Kisan Rally At Jalpaiguri

More than 10,000 peasants, many of whom came on foot from long distances, marched through Jalpaiguri town with Red and National flags and banners inscribed with Kisans' demands on the occasion of the Peasants' Rally Provincial Conference. The Peasants' Rally was held in the Conference Pandal when Mr. Subhas Bose and Com. Bankim Mukerjee of B. P. K. S. addressed the gathering. Order was maintained by a well disciplined Kisan Volunteers' Corps at the meeting. Great enthusiasm and eagerness prevailed among the peasants who attended the Rally and the Conference.

### 5000 Kisans' Hunger March

About 5000 Kisans arrived at Madaripur on Feb. 13 and marched in a procession through the streets of the town in pursuance of their decision to hunger-strike in order to press the demands from Government. When the procession terminated in a meeting near the court premises, a telegram from the Premier was read in which he promised to send relief if the unconstitutional agitation was dropped. The peasants' march and success have created a great ferment among the Kisans of the Bhil area in East Madaripur.

### Land Satyagraha In Bihar

The struggle between zamindars and Kisans for the possession of Bakasht lands has again broken out in the Barahia Tal (Monghyr District) since 10th October.

It will be remembered that when there was a struggle at the harvesting time last year and mounted police were posted there, Babu Rajendra Prasad and the Premier intervened in the matter and a compromise was arrived at according to which the zamindars promise to settle lands with the tenants or at least allow lands to them without hesitation for cultivation. But since then the zamindars (particularly of Barahia) have gone back on their word. The lands actually belong to the Kisans and they have been cultivating them since time immemorial. As the zamindars are forcibly trying to cultivate these lands for themselves the kisans are offering Satyagrah and are successfully obstructing the zamindars. More over, the lands already cultivated by the kisans are sought to be recultivated nominally by the zamindars to prove their possession. This the kisans do not allow to be done.

About two dozen mounted police along with the same number of armed force are patrolling the area. None has been arrested so far. But there has been merciless beating of the kisan pickets by the zamindars and their men and about 60 persons have received various injuries. One of them got his teeth broken by a blow. An aged woman of about 60 got serious injuries and is lying in a hospital. Even minor children have offered satyagraha successfully. Young and old, men, women and children, all are taking part in it.



17. किसान आन्दोलन की प्रगति के विषय में अखबारों में रिपोर्ट

इसके विपरीत यदि हम किसान सभा और किसान आंदोलनों पर दृष्टि डालते हैं तब हमें ज्ञात होता है कि किसी भी स्तर पर किसान नेताओं ने कांग्रेस के विरुद्ध काम नहीं किया । कांग्रेस और देश की स्वतंत्रता के लिए उसकी भूमिका पर उन्हें पूरा विश्वास था । किन्तु कांग्रेस के दक्षिण पंथियों से भिन्न, किसान नेता केवल अंग्रेज़ शासन से ही नहीं बल्कि ज़मींदारों और पूंजीपतियों के आधिपत्य से भी मुक्ति की मांग करते थे । कांग्रेसी नेतृत्व और किसान नेतृत्व के बीच मतभेद का यही मुख्य कारण था । कांग्रेस के प्रति किसानों का दृष्टिकोण 4 अक्तूबर, 1939 में दिये गये सहजानंद के भाषण से स्पष्ट हो जाता है—

"हम सब कांग्रेस से उसके जादू या रहस्य के कारण नहीं बल्कि इसलिए जुड़े हैं कि वह राष्ट्र का प्रतिनिधित्व करती है । इसने संकटपूर्ण परिस्थितियों में ग़लत क़दम नहीं उठाये............... मुक्ति के लिए राष्ट्रीय संघर्ष की इस संकटपूर्ण परिस्थिति में संगत निर्णय लेने में हमारे सारे प्रयत्न इसके हाथ मज़बूत करने के लिए हैं" ।

**बोध प्रश्न 5**

1) यू.पी. (संयुक्त प्रांत) में किसान आंदोलन किस प्रकार आरंभ हुआ ।

..........................................................................................................

..........................................................................................................

..........................................................................................................

..........................................................................................................

..........................................................................................................

2) ऑल इंडिया किसान सभा की प्रमुख मांगें क्या थीं ? लगभग पांच पंक्तियों में उत्तर दीजिये ।

..........................................................................................................

..........................................................................................................

..........................................................................................................

..........................................................................................................

..........................................................................................................

3) अपना उत्तर एक वाक्य में दीजिये ।

i) लगान बंदी आंदोलन क्या है ?

ii) 1928 के बारदोली सत्याग्रह का नेता कौन था ?

iii) बकाश्त भूमि क्या है ?

iv) बटाईदार (Share Croppers) कौन थे ?

## 28.12 सारांश

भारत में श्रमिकों की दुःखद स्थिति ने ट्रेड यूनियन आंदोलन के विकास के लिए अनुकूल पृष्ठभूमि तैयार की । परन्तु श्रमिकों की अशिक्षा, भाषा, जाति और सम्प्रदाय की भिन्नता और सबसे अधिक, मालिकों के ट्रेड यूनियन विरोधी दृष्टिकोण के कारण भारत में ट्रेड यूनियनों की स्थापना में विलम्ब हुआ ।

इसके बावजूद 1920 के उपरांत ट्रेड यूनियन आंदोलन धीरे-धीरे मज़बूत होने लगा । "बाहरी व्यक्तियों" ने ट्रेड यूनियनों के विकास में सहायता की । 1920 में ऑल इंडिया ट्रेड यूनियन कांग्रेस की स्थापना एक प्रमुख घटना थी । यह ध्यान देने योग्य है कि कांग्रेसियों, कम्युनिस्टों, समाजवादियों और निर्दलीय श्रमिकों ने ऑल इंडिया ट्रेड यूनियन कांग्रेस में मिलकर काम किया ।

1937 के पश्चात् ट्रेड यूनियनवाद का विस्तार हुआ । कांग्रेस ने प्रान्तों में मंत्रिमंडल स्थापित किये । जिससे जनता में आशाएं जागीं । और श्रमिक, ट्रेड यूनियनों में शामिल हुए तथा हड़तालों में भाग लिया । कम्युनिस्टों और समाजवादियों ने इन हड़तालों में सक्रिय भूमिका निभायी ।

टैक्स का अधिक भार, बेदख़ली का भय, भूमि पर दख़ल अधिकार (Occupancy Right) न होने, आवश्यक वस्तुओं की क़ीमतों में वृद्धि और इस अन्याय के प्रति सरकार के निष्क्रिय व्यवहार ने किसानों को विद्रोह के लिये बाध्य किया । 1920 और 1930 के दौरान भारत के विभिन्न राज्यों में अनेक किसान विद्रोह हुए । किसानों ने किसान सभाओं में अपने आपको संगठित किया और एक नये प्रकार का आंदोलन आरंभ किया । आंदोलन मुख्यतः ज़मींदारों के विरुद्ध थे । किसानों के केन्द्रीय संगठन के रूप में ऑल इंडिया किसान सभा की स्थापना की गयी । इस काल के किसान आंदोलनों का यह एक स्थायी प्रभाव था ।

## 28.13 शब्दावली

**हाट-टोला** : बाज़ार में व्यापारियों पर लगायी गयी लेवी ।

**महाजन** : वह व्यक्ति जो उधार देता है ।

**मई दिवस** : 1 मई का दिन विश्व भर में श्रमिक दिवस के रूप में उन श्रमिकों की यादगार में मनाया जाता है, जिनकी 1 मई 1861 को अमेरिका में पुलिस की गोलियों से मृत्यु हो गयी थी ।

**दख़ल अधिकार** : बिना अधिकार के ज़मीन हथिया लेना ।

**दक्षिणपंथी** : कांग्रेस में ऐसे नेताओं का समूह जो समाजवाद का विरोध करते थे ।

**हड़ताल** : कुछ मांगों को हासिल करने के लिए श्रमिकों द्वारा काम करने से इंकार करना ।

**Royal Commission on Labour** : अंग्रेज़ सरकार द्वारा भारतीय श्रमिकों की दशा का अध्ययन करने के लिए बनाया गया कमीशन ।

**ट्रेड यूनियनवाद** : मज़दूरों के संगठन बनाने और अपने हितों के लिये संघर्ष करने के अधिकार का समर्थन करने वाली विचारधारा ।

## 28.14 बोध प्रश्नों के उत्तर

**बोध प्रश्न 1**

1) श्रमिक दयनीय स्थिति में रहते थे । उनके लिए अवकाश, रोज़गार की सुरक्षा और वृद्धावस्था पेंशन की व्यवस्था नहीं थी । देखिये भाग 28.2

2) (क) नहीं (ख) हां (ग) हां (घ) हां (ङ) नहीं (च) नहीं

**बोध प्रश्न 2**

1) ट्रेड यूनियन श्रमिकों का संगठन है ।
देखिये उपभाग 28.3.1

2) ट्रेड यूनियन ने श्रमिकों को शोषण के विरुद्ध एक साथ मिलकर काम करने का अवसर दिया ।
देखिये उपभाग 28.3.1

3) कुछ व्यक्तियों ने श्रमिकों की दुःखद स्थिति को देखते हुए उनकी दशा सुधारने के लिए उन्हें संगठित किया और शिक्षित किया ।
देखिये उपभाग 28.3.2

4) आरंभिक प्रयासों के फलस्वरूप धीरे-धीरे श्रमिकों के बीच ट्रेड यूनियन का विचार लोकप्रिय होने लगा और अन्त में श्रमिकों के केन्द्रीय संगठन के रूप में ऑल इंडिया ट्रेड यूनियन कांग्रेस की स्थापना की गयी ।
देखिये उपभाग 28.3.3

**बोध प्रश्न 3**

1) श्रमिकों की तकलीफों के कारण ट्रेड यूनियन आंदोलन श्रमिकों के बीच लोकप्रिय हुआ । बाहरी व्यक्तियों ने सभाएं आयोजित करके, याचिकायें लिखकर और अपने अधिकारों के प्रति शिक्षित करके श्रमिकों की सहायता की ।
देखिये भाग 28.4

2) मूल्यों में वृद्धि, फैक्टरियों का बंद होना, श्रमिकों का निलम्बन आदि ।
देखिये भाग 28.5

3) देश की अर्थव्यवस्था में सुधार, ऑल इंडिया ट्रेड यूनियन कांग्रेस में पुनः एकता स्थापित होना, प्रांतों में कांग्रेस मंत्रालयों की स्थापना आदि ।
देखिये भाग 28.6

**बोध प्रश्न 4**

1) किसानों को दख़ल अधिकार नहीं था । ज़मीन से बेदख़ली का भय, टैक्स का अधिक भार आदि ।
देखिये भाग 28.7

2) (i) √ (ii) × (iii) × (iv) × (v) ×

**बोध प्रश्न 5**

1) आपके उत्तर में ताल्लुक़ेदारों का उत्पीड़न, किसानों को संगठित करने के लिए बाबा रामचन्द्र के प्रयास और आंदोलन की प्रगति आदि सम्मिलित होने चाहिए ।
देखिये भाग 28.8

2) आपके उत्तर में आर्थिक शोषण से किसानों की रक्षा, ज़मींदारी व्यवस्था का अंत, राजस्व और लगान में छूट आदि सम्मिलित होने चाहिए ।
देखिये भाग 28.10

3) i) सरकार को लगान का भुगतान न करना ।
ii) वल्लभ भाई पटेल ।
iii) स्वयं जोती गयी भूमि ।
iv) ग़रीब किसान, जो बंटाई के आधार पर ज़मीन जोतते थे ।

# इस खण्ड के लिए कुछ उपयोगी पुस्तकें


जवाहरलाल नेहरू, *आत्म कथा,* नेहरू मेमोरियल फंड, नई दिल्ली ।

अयोध्या सिंह, *भारत का मुक्ति संग्राम,* मैकमिलन, नई दिल्ली ।

रजनीपाम दत्त, *आज का भारत,* पी. पी. एच., नई दिल्ली ।

आर. एल. शुक्ला (सं), *आधुनिक भारत,* हिन्दी माध्यम कार्यान्वयन निदेशालय, नई दिल्ली ।

सहजानन्द सरस्वती, *मेरा जीवन संघर्ष,* पी. पी. एच., नई दिल्ली—1986 ।

मन्मथनाथ गुप्त, *भगत सिंह और उनका युग,* लिपि प्रकाशन, नई दिल्ली ।

सोहन सिंह जोश, *मेरठ षड्यंत्र केस : फिरंगी सरकार कटघरे में,* पी. पी. एच., नई दिल्ली ।

झारखण्डे राय, *भारतीय क्रांतिकारी आंदोलन एक विश्लेषण,* पी. पी. एच., नई दिल्ली ।

# इकाई 29 संवैधानिक सुधार :1921-1935

## इकाई की रूपरेखा


29.0 उद्देश्य
29.1 प्रस्तावना
29.2 1919 के संवैधानिक सुधारों का प्रभाव
29.2.1 द्वैध शासन की असफलता
29.2.2 1920-1927 के बीच प्रस्तुत सुधार-प्रस्ताव
29.3 साइमन कमीशन
29.3.1 नियुक्ति
29.3.2 बहिष्कार
29.4 सर्व-दलीय कान्फ्रेंस और नेहरू रिपोर्ट
29.5 पहली गोलमेज़ कान्फ्रेंस
29.6 गांधी और दूसरी गोलमेज़ कान्फ्रेंस
29.7 साम्प्रदायिक पंचाट और पूना समझौता
29.8 गवर्नमेंट आफ़ इंडिया ऐक्ट, 1935
29.9 सारांश
29.10 शब्दावली
29.11 बोध प्रश्नों के उत्तर


## 29.0 उद्देश्य

इस इकाई का लक्ष्य 1920 से 1935 की अवधि में किए गये संवैधानिक सुधारों का संक्षिप्त सर्वेक्षण करना है। इस इकाई को पढ़ने के बाद आप:

- जान सकेंगे कि किस प्रकार से स्वतंत्र भारत के संविधान के मूलभूत चरित्र (लोकतांत्रिक गणतंत्र तथा संसदीय प्रणाली पर आधारित) का धीरे-धीरे विकास हुआ,
- व्याख्या कर सकेंगे कि किस प्रकार से स्वतंत्रता संग्राम तथा संवैधानिक सुधारों का विकास साथ-साथ हुआ और कैसे दोनों एक दूसरे के पूरक थे, और
- सांप्रदायिक तथा अल्पसंख्यक समस्या के समाधान में भारतीय जनता और उनके नेताओं के प्रयासों को समझ सकेंगे।

## 29.1 प्रस्तावना

इकाई 17, खण्ड-4 में आपने 1892-1920 के बीच हुए संवैधानिक सुधारों के बारे में पढ़ा है। इस इकाई में आपको 1920-1935 की अवधि के संवैधानिक विकास से परिचित कराने का प्रयास किया गया है। यहां हम 1919 के सुधार ऐक्ट के प्रभावों और साइमन कमीशन के गठन के कारणों का विश्लेषण करेंगे। साइमन कमीशन की नियुक्ति पर राष्ट्रवादियों की प्रतिक्रिया और नेहरू रिपोर्ट की संस्तुतियों पर भी यहाँ चर्चा की गयी है। हमने गोलमेज़ कान्फ्रेंस के ज़रिये अंग्रेज़ सरकार द्वारा राष्ट्रवादियों से समझौता करने की कोशिशों को भी ध्यान में रखा है। हमने ब्रिटेन द्वारा समर्थित साम्प्रदायिक और अल्पसंख्यक प्रतिनिधित्व की उस चुनौती की भी चर्चा की है, जिससे निपटने के लिए राष्ट्रवादियों ने पूना समझौता स्वीकार किया। अन्त में भारत सरकार ऐक्ट, 1935 के मुख्य मुद्दों और उसकी सीमाओं पर प्रकाश डाला गया है।

## 29.2 1919 के संवैधानिक सुधारों का प्रभाव

1919 के संवैधानिक सुधारों के प्रभाव पर बहस करने से पहले हम भारत सरकार ऐक्ट, 1919 के मुख्य मुद्दों का संक्षिप्त आकलन करेंगे।

भारत सरकार ऐक्ट, 1919 के अन्तर्गत द्वैध शासन प्रणाली के द्वारा प्रादेशिक सरकारों को अधिक शक्तियां प्रदान की गयी थीं। वित्त, विधि और व्यवस्था जैसे कुछ विषयों को आरक्षित विषय माना गया और उन्हें राज्यपाल के प्रत्यक्ष नियंत्रण में बने रहने दिया गया। शिक्षा, सार्वजनिक स्वास्थ्य और स्थानीय स्व-शासन जैसे शेष विषयों को हस्तांतरित विषय का नाम दिया गया, और उन्हें विधायिका के लिए ज़िम्मेदार मंत्रियों के नियंत्रण में रखा गया। हालांकि व्यय करने वाले कुछ विभागों को हस्तांतरित किया गया था, फिर भी वित्त पर राज्यपाल का पूर्ण नियंत्रण क़ायम रहा। राज्यपाल मंत्रियों के निर्णयों को किसी भी आधार पर निरस्त कर सकता था, जो उसकी दृष्टि में विशेष थे। केन्द्रीय विधानमंडल का गवर्नर जनरल और उसकी कार्यकारिणी-परिषद पर कोई नियंत्रण नहीं था। दूसरी ओर केन्द्र सरकार का प्रादेशिक सरकारों पर निर्बाध नियंत्रण था।

### 29.2.1 द्वैध शासन की असफलता

द्वैध शासन व्यवहार में कभी लागू नहीं हो सका। द्वैध शासन की समग्र संकल्पना ही एक त्रुटिपूर्ण सिद्धांत पर टिकी हुई थी। शासकीय कार्यों को एकदम दो असम्बद्ध ख़ानों में बांटना अतार्किक था। आरक्षित और हस्तांतरित विषयों में स्पष्ट अन्तर नहीं था। उदाहरण के लिए वित्त को आरक्षित विषय घोषित किया गया था लेकिन हस्तांतरित विभागों के लिए उसका बहुत महत्व था। मंत्रीगण अपने देशवासियों की भलाई का काम करना चाहते थे जबकि राज्यपाल, कार्यकारिणी परिषद के सदस्यगण और प्रशासकगण ब्रिटिश साम्राज्यवादी स्वार्थों को साधना चाहते थे। इसलिए मंत्रियों, कार्यकारिणी परिषद के सदस्यों, राज्यपाल और प्रशासकों के हित कभी मिल नहीं पाते थे। मंत्रियों का अपने हस्तांतरित विभागों में काम करने वाले सरकारी नौकरों पर कोई नियंत्रण नहीं था। मंत्रीगण विधायिका के सामने जवाबदेह थे और राज्यपाल के अधीनस्थ थे, जो उन्हें नियुक्त और पदच्युत करता था। संगठित राजनीतिक दलों और स्थायी बहुमत के अभाव के कारण मंत्रियों में संयुक्त उत्तरदायित्व की भावना नहीं थी। आरक्षित और हस्तांतरित विभागों के वित्तीय आबंटन में भेदभाव किया जाता था। इस मामले में आरक्षित विभागों के साथ पक्षपात होता था।

द्वैध शासन जनता को संसदीय शासन-प्रणाली का व्यावहारिक प्रशिक्षण देने में असफल रहा। संगठित राजनीतिक दलों के अभाव के कारण मतदाताओं और उनके प्रतिनिधियों के बीच सम्पर्क संभव नहीं था। विधानमंडल के सदस्य साम्प्रदायिक और स्थानीय मुद्दों पर बंटे हुए थे। वे न तो सरकार के समर्थक ही सिद्ध हो सके और न ही उसके रचनात्मक आलोचक बन सके। हस्तांतरित विभागों के कार्य से ऐसी कोई स्वस्थ परंपराएं नहीं बन सकीं जिसके ज़रिये संवैधानिक प्रगति संभव हो सकती। मंत्रियों विधायकों और मतदाताओं को वैसा कोई प्रशिक्षण भी नहीं मिल सका, जिससे वे बड़ी राजनीतिक ज़िम्मेदारियों को संभाल सकने में समर्थ हो सकते।

### 29.2.2 1920-1927 के बीच प्रस्तुत सुधार प्रस्ताव

भारत सरकार ऐक्ट, 1919 के सुधारों ने भारतीय राष्ट्रवादियों को बहुत निराश किया और इस तरह 1920-1921 के राष्ट्रवादी आंदोलन के विकास में मदद मिली। असहयोग आंदोलन की समाप्ति के बाद इस अवधि में एक राजनैतिक निर्वात पैदा हो गया जिसे स्वराजियों ने भरने का प्रयास किया। दूसरी ओर गांधीवादी परिवर्तन विरोधियों ने अपना पूरा ज़ोर गांवों के रचनात्मक कार्यों में लगाया।

1920 और साइमन कमीशन के गठन के बीच की अवधि में भारतीयों की ओर से संवैधानिक सुधार के कई प्रस्ताव रखे गये। केन्द्रीय विधानसभा में 1921 में एक ग़ैर-सरकारी प्रस्ताव

रखा गया। इस प्रस्ताव में प्रादेशिक स्तर पर पूर्णतः उत्तरदायी सरकार स्थापित करने की मांग की गयी थी। इसी तरह के दो और ग़ैर-सरकारी प्रस्ताव 1923 में रखे गये लेकिन उनका भी कोई परिणाम नहीं निकला।

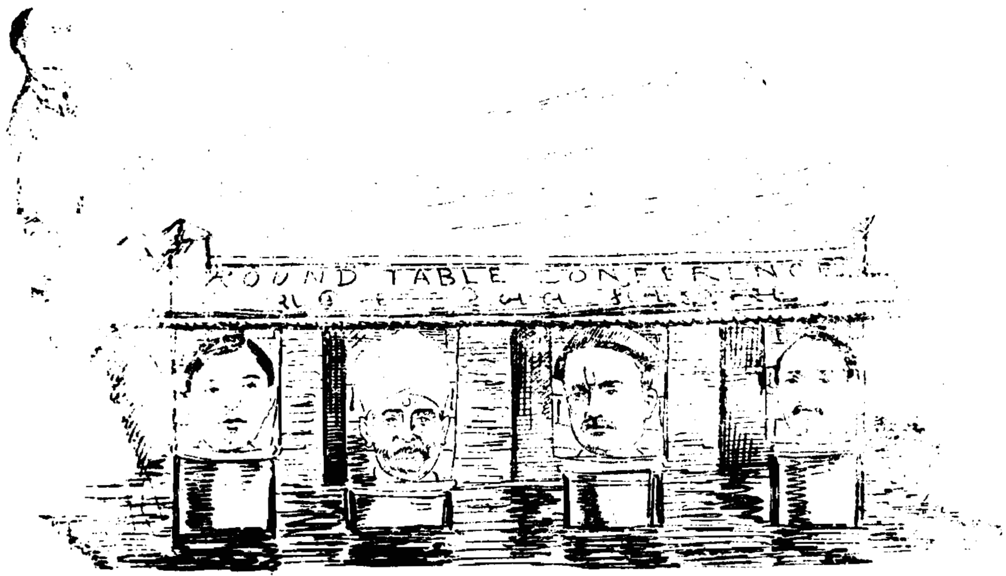


**THE GOLDEN BRIDGE.**

Will they walk forward and meet each other half way?

[ The Representative Conference which met in Bombay on the 14th and 15th January, [illegible] Round Table Conference between Government and the popular representatives to relieve the present tension in the country. ]

સોનેરી પુલ.

**चित्र 1. पंच में सुधारों पर छपा एक कार्टून (1922)**

विधानपरिषद में प्रवेश करने के बाद स्वराजियों ने एक ग़ैर-सरकारी प्रस्ताव रखा। इसमें भारत सरकार ऐक्ट, 1919 में परिवर्तन करके भारत को ब्रिटिश साम्राज्य के भीतर स्व-नियंत्रित (अधिराज्य) डोमीनियन स्टेटस बनाने और प्रदेशों में प्रादेशिक स्वायत्तता लागू करने की गवर्नर जनरल से मांग की। सरकार ने प्रस्ताव को अस्वीकार कर दिया। गृह-सदस्य सर मेल्कॉम हेली ने बताया कि 1919 के ऐक्ट की प्रस्तावना में उस उत्तरदायी सरकार की स्थापना का प्रस्ताव है, जिसमें कार्यपालिका सीमित शक्तियों वाली विधायिका के सामने जवाबदेह है लेकिन पूर्ण डामीनियन स्वशासन इस प्रक्रिया का अगला और अंतिम चरण ही हो सकता है।

मोतीलाल नेहरू के नेतृत्व में स्वराजियों ने 1924 में एक संशोधन प्रस्तुत किया। उन्होंने मांग की कि भारतीय संविधान-सभा के द्वारा भारतीय संविधान बनाया जाय। इसके उत्तर में सरकार में कार्यकारिणी परिषद के गृह-सचिव सर अलेक्ज़ेण्डर मुडीमैन की अध्यक्षता में एक सुधार जांच समिति का गठन किया। समिति ने बहुमत और अल्पमत रिपोर्ट प्रकाशित की। बहुमत रिपोर्ट में बताया गया था कि द्वैध शासन लागू नहीं हुआ है। अल्पमत रिपोर्ट के अनुसार 1919 का ऐक्ट असफल हो गया था। इस मसले पर शासकीय दृष्टिकोण था कि बहुमत रिपोर्ट के सुझावों को लागू करके 1919 के ऐक्ट को बेहतर बनाया जा सकता है। लेकिन मोतीलाल नेहरू अपने आरंभिक प्रस्ताव पर क़ायम रहे। उन्होंने मांग की कि अल्पसंख्यकों सहित सभी भारतीयों और एंग्लोइंडियन का प्रतिनिधित्व करने वालों की एक गोलमेज़ कान्फ्रेंस बुलायी जाय।

इसी समय एम. ए. जिन्ना की अध्यक्षता में मुस्लिम लीग का लाहौर में एक अधिवेशन हुआ। उसमें पूर्ण उत्तरदायी सरकार, पूर्ण प्रान्तीय स्वायत्तता वाले संघीय संविधान और पृथक निर्वाचन क्षेत्रों के ज़रिये अल्पसंख्यकों के लिए पर्याप्त प्रतिनिधित्व की मांग की गयी। जब राज्य-परिषद में पृथक निर्वाचन क्षेत्रों को समाप्त करने वाला एक प्रस्ताव रखा गया, तो मुस्लिम सदस्यों को महसूस हुआ कि पृथक निर्वाचन क्षेत्रों को समाप्त करने का अभी समय नहीं आया है। बाद में कुछ मुस्लिम सदस्य निम्नलिखित चार मांगों के पूरे होने की शर्त पर संयुक्त निर्वाचन क्षेत्रों को स्वीकार करने के लिए तैयार हुए :

**Equal in Rank but Inferior in Status.**

*Dominions to Mother India* :—Really, Happy, Venerable Mother India, to see that His Most Gracious Majesty has given You a glorious Equality in this Historic Empire Exhibition with us, the sheep rearing Australians, Wheatful Canadians and Ostrich-feathered S. Africans.

*Baba Doodle* :—Proud indeed the day when in pompous shows and proud Exhibitions Your Sacred Self is accorded Equality.

But, Your Britannic Majesty, it will be the proudest day when Mother India will have not only *Equality* with the *Dominions* in shows but also *Equality* in *Status*. Of what avail is Equality in shows or Leagues? Why not make Your Royal Name and Reign an imperishable one in the Indian minds by granting what your Premier has been bold enough to promise? That would raise a memorial more enduring than Your likeness in bronze or alabaster.

By the Courtesy of the "Doodle."

**चित्र 2 इंडियन रिव्यू में सुधारों पर कार्टून (1924)**

- सिन्ध को बम्बई प्रेसीडेंसी से अलग करने के बाद उसे एक अलग (मुस्लिम बहुमत) प्रदेश का दर्जा दिया जाय।
- उत्तर-पश्चिमी सीमा प्रांत (एन० एफ० डब्लू० पी०) और बलूचिस्तान में दूसरे प्रदेशों की तरह सुधार किये जाने चाहियें।
- बंगाल और पंजाब में प्रतिनिधित्व का निर्धारण जनसंख्या के आधार पर किया जाय। (ताकि विधायिकाओं में मुस्लिम बहुमत बनाये रखा जा सके)।
- केन्द्रीय विधान मंडल में मुस्लिम प्रतिनिधित्व या तो कुल का एक-तिहाई या उससे अधिक हों।

जिन्ना ने इस मांग-पत्र को तैयार करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभायी थी। कांग्रेस ने एक प्रस्ताव पारित करके मुस्लिमों की अधिकांश मांगों को मान लिया। इसी समय मुस्लिम लीग में विभाजन हो गया। मुस्लिम लीग का एक अलग वार्षिक अधिवेशन लाहौर में सर मियां मुहम्मद शफी की अध्यक्षता में संपन्न हुआ। इस विभाजन से कांग्रेस और मुस्लिम लीग में मेलजोल न चाहने वाली ब्रिटिश नीति को फायदा पहुंचा। इस पृष्ठभूमि में अंग्रेज़ सरकार ने भारतीय स्थिति का अवलोकन करने का फैसला किया, ताकि भारतीय जनता में बढ़ रहे असंतोष पर लगाम लगायी जा सके। इसी के परिणामस्वरूप साइमन कमीशन का गठन किया गया।

## 29.3 साइमन कमीशन

1919 के ऐक्ट के अनुसार ऐक्ट के पारित होने के दस वर्ष बाद रायल कमीशन के गठन का प्रावधान था तथा जिसे सरकार के काम की जांच का दायित्व सौंपा जाना था। इस ऐक्ट के पीछे यह सिद्धान्त काम कर रहा था कि संवैधानिक विकास धीरे-धीरे होना चाहिए। लेकिन इस दृष्टिकोण में कई ख़ामियां थीं। एक अस्थायी संविधान होने के नाते इसको सफल बनाने में लोगों की अधिक दिलचस्पी नहीं हो सकती थी और जो लोग इससे असंतुष्ट थे, उन्होंने इसे अव्यावहारिक साबित करने की पूरी कोशिश की। सबसे अहम बात यह है कि किसी संविधान की जीवन्तता और व्यावहारिकता को परखने के लिए दस साल की अवधि बहुत कम होती है।

## 29.3.1 नियुक्ति

नवंबर, 1927 में भारत के राज्य सचिव लार्ड बिर्केनहेड ने सर जान साइमन की अध्यक्षता में एक वैधानिक कमीशन के गठन की घोषणा की।

कमीशन का उद्देश्य प्रान्तीय सरकारों के कार्यों की जांच करना, प्रतिनिधि संस्थाओं की कार्यप्रणाली की समीक्षा करना और भविष्य में उत्तरदायी सरकार की स्थापना में जो प्रगति हुई है, उसकी रूपरेखा तैयार करना था। भारत सरकार ऐक्ट, 1919 दो वर्ष बाद 1921 में लागू हुआ था। इस तरह कमीशन का गठन 1931 में होना चाहिए था। यह सवाल उठता है कि फिर इसे समय से पहले ही क्यों गठित कर दिया गया? अंग्रेज़ सरकार ने घोषणा की कि इस नियुक्ति के द्वारा वह भारत की समस्याओं पर उदारतापूर्वक विचार करना चाहती है, लेकिन वस्तुतः इसके कारण कुछ और थे। राष्ट्रवादियों ने नियतकालिक जांच पद्धति का विरोध किया और उन्होंने संवैधानिक व्यवस्था में पूर्ण संशोधन की मांग की।

ब्रिटेन की राजनीतिक स्थिति ने टोरी सरकार (अनुदार दल की सरकार) को विवश किया कि वह नवम्बर, 1927 में कमीशन की नियुक्ति करे। 1919 के ब्रिटेन के आगामी आम चुनाव में लेबर पार्टी के जीतने की संभावना थी। टोरी सरकार नहीं चाहती थी कि लेबर सरकार को भारत के संदर्भ में वैधानिक कमीशन नियुक्त करने का अवसर मिले।

- इसके अतिरिक्त टोरी सरकार ऐसे समय प्रतिनिधि मंडल भेजना चाहती थी जब भारत में सांप्रदायिक तनाव बहुत ज़्यादा हो, ताकि कमीशन को भारतवासियों की स्वशासन की क्षमता पर संदेह हो जाय।
- दूसरा कारण जैसा कि प्रोफेसर कीथ ने सुझाया है, कमीशन की नियुक्ति के पीछे एक ओर स्वराजवादियों और दूसरी ओर नेहरू और सुभाष के नेतृत्व में युवा गतिविधियों का दबाव भी काम कर रहा था।

कमीशन के सभी सातों सदस्य अंग्रेज़ थे और ब्रिटिश संसद के सदस्य भी थे। अंग्रेज़ सरकार ने कमीशन में किसी भारतीय को शामिल न किये जाने के फैसले के पक्ष में दो तर्क दिये।

i) उसने बताया, चूंकि कमीशन को अपना प्रतिवेदन ब्रिटिश संसद के सम्मुख प्रस्तुत करना था इसलिए कमीशन में केवल अंग्रेज़ सदस्यों को ही नियुक्त करना उचित था। इस तर्क में बहुत ज़्यादा वज़न नहीं था, क्योंकि उस समय लार्ड सिन्हा और श्री सकलातवाला—दो भारतीय सदस्य भी ब्रिटिश संसद में थे।

ii) दूसरे अंग्रेज़ सरकार ने घोषित किया कि चूंकि संवैधानिक सुधार के मामले में भारतवासियों में मतैक्य नहीं है, इसलिए किसी भारतीय को इसका सदस्य बनाना संभव नहीं है। वस्तुतः बिर्केनहेड को भय था कि ऐसे मिश्र कमीशन में भारतीय और ब्रिटिश श्रमिक प्रतिनिधियों के बीच गठबंधन हो सकता है।

इर्विन ने घोषणा की कि भारतीयों को कमीशन की सदस्यता से इसलिये वंचित किया गया है क्योंकि वे संसद के सम्मुख शासन करने की अपनी क्षमता का सही चित्र नहीं प्रस्तुत कर सके और उनका मूल्यांकन निष्पक्ष नहीं रह सकेगा। फिर भी मई, 1927 में प्रधानमंत्री बाल्डविन ने घोषणा की कि "आगे आने वाले समय में हम चाहेंगे कि वह (भारत) अधिराज्यों के साथ समानता के स्तर पर संबद्ध हो"। बाल्डविन की घोषणा को ध्यान में रखते हुए इर्विन ने संवैधानिक विकास की समस्या पर भारतीय जनमत की अभिव्यक्ति की व्यवस्था की। इसके अंतर्गत भारत में केंद्र और प्रांतों के ग़ैर-सरकारी सदस्यों की एक संयुक्त समिति को कमीशन के सम्मुख अपना मत प्रस्तुत करना था। भारतीय विधान मंडल कमीशन के प्रतिवेदन पर ब्रिटिश संसद की संयुक्त समिति से विचार विमर्श करने के लिए अपना प्रतिनिधि मंडल भेज सकता है।

## 29.3.2 बहिष्कार

कमीशन में केवल अंग्रेज़ सदस्यों की नियुक्ति की घोषणा से लगभग सभी भारतवासियों को सदमा पहुंचा। सभी दलों जैसे कांग्रेस, मुस्लिम लीग के एक वर्ग, हिंदू महासभा, लिबरल्स फेडरेशन इत्यादि ने इस घोषणा का प्रबल प्रतिवाद किया, और यह सिद्ध किया कि भारतीय प्रतिनिधित्व के मामले में भारतीय जनमत के लगभग सभी वर्गों में मतैक्य है। उन्होंने स्पष्ट

किया कि वे भारतवासियों और अंग्रेज़ों के शासन के बीच एक गोलमेज़ कान्फ्रेंस की मांग कर रहे थे, न कि केवल एक पूर्णत: अंग्रेज़ कमीशन की। कांग्रेस ने इस बहिष्कार के सहारे असहयोग की भावना को पुनर्जीवित करने का प्रयास किया। भगत सिंह और दूसरे क्रान्तिकारियों ने साइमन कमीशन का इस आधार पर विरोध किया कि भारत के संविधान के निर्माण में केवल भारतीयों को ही बोलने का अधिकार है।

मियां मोहम्मद शफ़ी के नेतृत्व वाली मुस्लिम लीग, मद्रास की जस्टिस पार्टी, सेंट्रल सिख संघ और आल इंडिया अछूत फेडरेशन ने आयोग का विरोध नहीं किया।

साइमन कमीशन 3 फ़रवरी, 1928 को बम्बई पहुंचा, जहां "गो बैक, साइमन" के नारे से उसका स्वागत किया गया। उसके विरोध में हड़ताल का आह्वान किया गया और हज़ारों लोगों ने सड़कों पर एकत्र होकर साइमन कमीशन के विरोध में नारे लगाये। बहिष्कार एक तरह का प्रतिरोध आंदोलन बन गया, जिसे देखकर असहयोग के दिनों की याद ताज़ा हो जाती थी। भीड़ को गोलियों और लाठियों से भी नियंत्रित नहीं किया जा सका।

लाहौर में लाला लाजपत राय के नेतृत्व में आयोजित एक प्रदर्शन पर लाठियां बरसाई गयीं। इस चोट से लालाजी का देहान्त हो गया। लखनऊ में जवाहरलाल नेहरू और गोविंद बल्लभ पंत पर लाठियां बरसाई गयीं। लाला लाजपत राय की मृत्यु का बदला लेने के लिए भगत सिंह के क्रान्तिकारी संगठन ने सहायक पुलिस अधीक्षक सांडर्स की हत्या कर दी।

कमीशन के विरुद्ध जन असंतोष से इस भावना को अभिव्यक्ति मिली कि भारत का भावी संविधान स्वयं जनता द्वारा ही बनाया जाना चाहिए। फ़रवरी, 1928 में कांग्रेस ने एक सर्वदलीय कान्फ्रेंस का आयोजन किया और 19 मई को मोतीलाल नेहरू की अध्यक्षता में संविधान बनाने के लिए एक समिति नियुक्त की गयी।

कमीशन ने दो बार (फ़रवरी-मार्च 1928, अक्तूबर 1928, अप्रैल 1929) में भारत का दौरा किया। हर बार उसे बहिष्कार का सामना करना पड़ा। काफ़ी व्यापक दौरे के बाद एक रिपोर्ट तैयार की, जो मई, 1930 में प्रकाशित हुई।

## 29.4 सर्वदलीय कान्फ्रेंस और नेहरू रिपोर्ट

1927 के मद्रास कांग्रेस अधिवेशन में साइमन कमीशन के बहिष्कार का प्रस्ताव पारित हुआ। कार्यकारिणी समिति को अधिकार दिया गया कि वह दूसरे संगठनों से परामर्श करके भारत के लिए एक संविधान तैयार करे। फ़रवरी, 1928 में एक सम्मेलन में कांग्रेस, मुस्लिम लीग और हिंदू महासभा, आदि के प्रतिनिधि मिले। यह सर्वदलीय कान्फ्रेंस के नाम से जाना जाता है। डा० एम० ए० अंसारी ने इस कान्फ्रेंस की अध्यक्षता की। यह तय हुआ कि भारत के भावी संविधान के निर्माण में उत्तरदायी स्वशासन वाले पूर्ण अधिराज्य के सिद्धांत को ध्यान में रखा जाना चाहिए। हालांकि 1927 के मद्रास कांग्रेस अधिवेशन में पूर्ण राष्ट्रीय स्वतंत्रता का लक्ष्य अपनाया गया था, लेकिन सर्व-दलीय कान्फ्रेंस में स्व-शासित पूर्ण अधिराज्य को इच्छित लक्ष्य घोषित किया गया। ऐसा इसलिए किया गया ताकि अधिराज्य का लक्ष्य रखने वाले संगठनों को भी एक योजना के अंतर्गत लाया जा सके।

मई, 1928 में मोतीलाल नेहरू की अध्यक्षता में राष्ट्रवादियों ने नेहरू समिति का गठन इसलिए किया था, ताकि वे साइमन कमीशन के गठन और लार्ड बिर्केनहेड की उस चुनौती का जवाब दे सकें, जिसमें उन्होंने भारतवासियों से एक ऐसा संविधान बनाने के लिए कहा था, जिस पर भारत में मतैक्य हो। अगस्त में समिति की रिपोर्ट को अपनाया गया। कलकत्ता कांग्रेस अधिवेशन में कहा गया कि इस रिपोर्ट ने भारत की राजनीतिक और सांप्रदायिक समस्याओं को सुलझाने में बहुत बड़ा योगदान दिया है।

समिति की रिपोर्ट ने जिस संविधान की रूपरेखा बनायी थी, वह स्व-शासित अधिराज्यों के संविधान के प्रारूप और पूर्णत: उत्तरदायी शासन के सिद्धान्त पर आधारित थी। पूर्ण

उत्तरदायी सरकार की स्थापना को किसी दूरगामी लक्ष्य के रूप में नहीं, बल्कि तात्कालिक लक्ष्य के तौर पर स्वीकृत किया गया था। स्पष्टतया यह 1919 के ऐक्ट में स्वीकृत क्रमिक प्रगति के सिद्धांत से भिन्न था। इस मसौदे को सामान्यतया नेहरू समिति रिपोर्ट के नाम से जाना जाता है। इसने निम्नलिखित सिफ़ारिशें कीं:

i) भारत को ब्रिटिश साम्राज्य के भीतर दूसरे अधिराज्यों के समकक्ष संवैधानिक दर्जा दिया जाय और संसद को क़ानून बनाने का अधिकार भी हो तथा भारत राष्ट्र मंडल के नाम से जाना जाय।
ii) संविधान नागरिकता को परिभाषित करे और मौलिक अधिकारों की घोषणा करे।
iii) विधायी शक्ति राजा और दो सदनों वाली संसद में निहित हो और कार्यपालिका की शक्ति राजा में निहित हो, जिसका प्रयोग गवर्नर जनरल द्वारा किया जाय। प्रदेशों में उत्तरदायी सरकार की स्थापना के लिए राज्यपालों और कार्यकारिणी परिषदों के संबंध में भी यही प्रावधान लागू किये जायं।
iv) पद-सोपानात्मक (Hierarchy) न्यायपालिका की व्यवस्था की जाय, जिसके शीर्ष पर सर्वोच्च न्यायालय हो।

नेहरू समिति को रियासतों का दर्जा तय करने में काफ़ी कठिनाइयों का सामना करना पड़ा 1927 में रियासतों के लोगों ने स्व-शासित संस्थाएं स्थापित करने के विचार से स्टेट पीपुल्स कांफ्रेंस का गठन किया। इस कार्रवाई से रजवाड़ों के हितों को चुनौती मिली। इसलिए इन्होंने इस मसले पर ब्रिटिश सरकार से सहायता मांगी। इसके परिणामस्वरूप सर हरकोर्ट बटलर की अध्यक्षता में एक समिति का गठन हुआ जिसने ब्रिटिश सर्वोच्चता के अधीन रियासतों के संरक्षण पर ज़ोर दिया। नेहरू समिति ने बटलर समिति की नियुक्ति की निंदा की। उसने कहा कि सर्वोच्च सत्ता के अधिकारों और दायित्वों को भारतीय राष्ट्र मंडल की सरकार को हस्तांतरित किया जाना चाहिए। और भारतीय राष्ट्रमंडल तथा रियासतों के बीच के झगड़ों को सर्वोच्च न्यायालय के सुपुर्द किया जाना चाहिए।

नेहरू रिपोर्ट ने संघीय प्रवृतियों को वस्तुत: शामिल नहीं किया था। हालांकि सीनेट की संरचना में संघीय सिद्धान्तों को शामिल किया गया था लेकिन उसमें प्रांतीय प्रतिनिधित्व असमान था और इस प्रकार संघीय सिद्धान्त वास्तव में व्यवहार में नहीं लाये गये। विकेंद्रीकरण उसी सीमा में लागू किया गया जो 1919 के ऐक्ट में रखी गयी थी। अवशिष्ट शक्तियां भी केंद्र में निहित थी। केंद्र के साथ रियासतों के संबंधों की स्थिति स्पष्ट नहीं की गयी थी। समिति ने संघीय संविधान की स्थापना का विचार तो किया था, लेकिन इसके लिए उसने ठोस क़दम नहीं उठाये।

रिपोर्ट का महत्व इस तथ्य में था कि इसके ज़रिये सांप्रदायिक समस्या पर भारतीय नेतृत्व के बहुमत के व्यवस्थित विचार को पहली बार अभिव्यक्ति का अवसर मिला। कूपलैंड के अनुसार "इसके ज़रिये भारतीयों ने सांप्रदायिक समस्या का सामना करने के लिये दृढ़ता से खुलकर प्रयास किया"। रिपोर्ट ने बताया कि अल्पसंख्यकों को केवल सुरक्षा उपायों के ज़रिये ही सुरक्षा का अहसास करवाया जा सकता है। इस संदर्भ में समिति ने तीन स्पष्ट प्रस्ताव रखे:

i) प्रस्तावित संविधान में अन्तरात्मा और धर्म की स्वतंत्रता का प्रावधान हो।
ii) आत्म-निर्णय के सिद्धान्त के अनुसार मुस्लिम बहुमत वाले प्रदेशों की स्पष्ट रूप से राजनीतिक और सांस्कृतिक आधार पर पहचान की जाय। अभिप्राय यह है कि सिंध को बंबई प्रेसीडेंसी से अलग किया जाय और उत्तर-पश्चिमी सीमा-प्रांत को पूर्ण राज्य का दर्जा दिया जाय।
iii) पृथक निर्वाचन क्षेत्रों के सिद्धांत को अस्वीकार किया जाय। चुनाव संयुक्त निर्वाचन क्षेत्रों के आधार पर किये जायँ। इसके अंतर्गत केंद्र और राज्यों में, जहां मुस्लिम अल्पसंख्या में हों उनकी सीटें आरक्षित की जांय। उत्तर-पश्चिमी सीमा-प्रांत के ग़ैर-मुस्लिमों को भी यही सुविधा प्राप्त हो।

बाद में समिति ने सांप्रदायिक समस्या के संबंध में दो और सिफ़ारिशें कीं। सांप्रदायिक प्रतिनिधित्व पर दस वर्ष बाद पुनर्विचार किया जाय और बलूचिस्तान को पूर्ण राज्य का दर्जा दिया जाय।

दिसम्बर, 1928 के कलकत्ता के सर्व-दलीय सम्मेलन में जिन्ना ने केंद्रीय विधान मंडल में मुस्लिमों के लिए एक-तिहाई प्रतिनिधित्व की मांग की। सम्मेलन में इस मांग के न माने जाने पर वे आग़ा ख़ान और सर मियां मोहम्मद शफ़ी के गुट में शामिल हो गये। एक जनवरी 1929 को दिल्ली में अखिल भारतीय मुस्लिम कान्फ्रेंस आयोजित की गयी। इसमें दो सिद्धांतों को महत्त्व देते हुए प्रस्ताव पारित किया गया। पहला सिद्धांत यह था कि भारत के एक विशाल देश होने और उसमें अनेक विभिन्नताएं होने के कारण यहां संघीय व्यवस्था वाली सरकार ही उपयुक्त होगी। इसके अंतर्गत राज्यों को पूर्ण-स्वायत्तता और अवशिष्ट शक्तियां हासिल होनी चाहिए। दूसरे सिद्धान्त के अनुसार, जब तक संविधान में मुस्लिमों के अधिकारों और हितों को सुरक्षा प्रदान नहीं की जाती है, तब तक पृथक निर्वाचन क्षेत्रों को बनाये रखा जाय।

मार्च, 1929 में जिन्ना ने अपनी चौदह मांगे मुस्लिम लीग के सामने प्रस्तुत की। इनमें नेहरू रिपोर्ट को पूरी तरह से अस्वीकार करने का सुझाव दिया गया था। इसके पीछे दो कारण थे।

i) जिन्ना को एकात्मक संविधान इसलिए स्वीकार्य नहीं था कि इससे भारत के किसी भाग में मुसलमानों का बाहुल्य सुनिश्चित हो सकेगा। दूसरी तरफ़ संघीय संविधान में, जिसमें केंद्र के पास सीमित शक्तियां और स्वायत्त प्रदेशों के पास अवशिष्ट शक्तियां हों तो उत्तर पश्चिमी सीमाप्रांत बलूचिस्तान, सिंध, बंगाल और पंजाब, इन पांच प्रांतों में मुसलमानों का प्रभुत्व हो सकता था।
ii) सांप्रदायिक समस्या के समाधान के लिए नेहरू रिपोर्ट द्वारा दिये गये सुझाव मुसलमानों को स्वीकार नहीं थे। जिन्ना पृथक निर्वाचन क्षेत्रों को समाप्त करने के पक्ष में नहीं थे।

जवाहरलाल नेहरू और सुभाषचन्द्र बोस के नेतृत्त्व में युवा-वर्ग ने नेहरू रिपोर्ट की इसलिए आलोचना की, क्योंकि उसमें अधिराज्य की स्थिति को स्वीकार किया गया था। जैसा कि पहले बताया जा चुका है, कांग्रेस ने पूर्ण स्वतंत्रता को अपना लक्ष्य बनाया था, जिसका अर्थ ब्रिटिश साम्राज्य से संबंध विच्छेद करना था। इसके बावजूद नेहरू रिपोर्ट ने एक समझौतावादी दृष्टिकोण अपनाकर अधिराज्य की स्थिति को अपना लक्ष्य स्वीकार किया। इसके ज़रिये एक सामान्य योजना के अंतर्गत सभी दलों को एकजुट किया जा सके। हालांकि किसी एक भाग के विरोध के कारण कलकत्ता कांग्रेस प्रस्ताव (1928) में यह जोड़ा गया कि यदि अंग्रेज़ सरकार नेहरू रिपोर्ट को 31 दिसम्बर, 1929 तक या उससे पहले स्वीकृत नहीं करती है या ठुकरा देती है, तो कांग्रेस फिर एक जुझारू आंदोलन शुरू करेगी। परन्तु लार्ड इर्विन ने स्व-शासित पूर्ण अधिराज्य स्थापित करने की दिशा में कोई रुचि नहीं दिखायी। इसलिए कांग्रेस ने 31 अक्तूबर, 1929 को घोषणा की कि नेहरू रिपोर्ट की प्रमाणिकता को समाप्त कर दिया गया है मंई, 1930 में साइमन कमीशन रिपोर्ट प्रकाशित की गयी। इसने केंद्र में उत्तरदायी सरकार या द्वैध शासन की स्थापना के बारे में कोई सुझाव नहीं दिया। पृथक निर्वाचन क्षेत्रों को सुरक्षित रखा गया और दलित वर्गों के लिए भी सीटों के आरक्षण का प्रस्ताव रखा गया। इसने प्रांतों में द्वैध शासन को समाप्त करके उत्तरदायी एकात्मक सरकार स्थापित करने का सुझाव दिया। इसने केन्द्र के बारे में कहा कि भारत की भिन्नताओं को देखते हुए यहां संघीय व्यवस्था को ही लागू किया जाना चाहिए। इसमें केंद्र में उत्तरदायी सरकार की स्थापना के प्रश्न को अनिश्चित काल के लिए स्थगित किया गया अधिराज्य के दर्जे (डामीनियन स्टेटस) के बारे में साइमन कमीशन का दृष्टिकोण बहुत स्पष्ट नहीं था। उसने सिफारिश की कि भविष्य में ब्रिटिश भारत और रियासतें जो एक संघीय संस्था के रूप में हैं, स्थापित होना चाहिये, लेकिन ब्रिटिश प्रभुता का प्रावधान (जिसमें वाइसरॉय सर्वोच्च सत्ता का प्रतिनिधि है) बने रहना चाहिए। इस रिपोर्ट को लगभग सभी भारतीय दलों ने अस्वीकार कर दिया। भारतीय जनता सविनय अवज्ञा आंदोलन में उत्साहपूर्वक हिस्सा लेने लगी।

**बोध प्रश्न 1**

1 **1927 में साइमन कमीशन की नियुक्ति की पृष्ठभूमि पर विचार कीजिये। लगभग दस पंक्तियों में उत्तर दीजिये।**

..........................................................................

..................................................................
..................................................................
..................................................................
..................................................................
..................................................................
..................................................................
..................................................................
..................................................................
..................................................................

2 निम्नलिखित वक्तव्यों में सही वक्तव्य को चिन्हित (√) कीजिए।
साइमन कमीशन के गठन के समय:
क) बाल्डविन ब्रिटिश राज्य-सचिव थे ☐
ख) बिर्केनहेड ब्रिटिश प्रधानमंत्री थे ☐
ग) इर्विन भारत के वाइसरॉय थे ☐
घ) श्रमिक दल ब्रिटेन में सत्तारूढ़ था ☐

3 नेहरू रिपोर्ट की मुख्य सिफारिशों को गिनाइये, लगभग पांच पंक्तियों में उत्तर दीजिए।
..................................................................
..................................................................
..................................................................
..................................................................
..................................................................

## 29.5 पहली गोलमेज़ कान्फ्रेंस

साइमन कमीशन के रिपोर्ट प्रस्तुत करने के पहले ही इग्लैंड में लेबर पार्टी की सरकार बन गयी। लार्ड इर्विन ने अक्टूबर, 1929 की घोषणा में कहा था कि लंदन में एक गोलमेज़ कान्फ्रेंस के ज़रिये भारतीय राजनीतिक मत के विभिन्न दृष्टिकोणों को जानने के पश्चात् लेबर सरकार एक नया संविधान बनायेगी।

चित्र 3. एम० आर० जयकर

आगे चलकर लंदन में गोलमेज़ कान्फ्रेंस के तीन सत्र आयोजित किये गये। भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस ने पहले और तीसरे सत्र में भाग नहीं लिया। जिस समय पहली गोलमेज़ कान्फ्रेंस की तैयारियां हो रही थीं, भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस ने सविनय अवज्ञा आंदोलन छेड़ रखा था। दूसरी तरफ़ सर तेज बहादुर सप्रू और एम० आर० जयकर कान्फ्रेंस में भाग लेने के इच्छुक थे। यह सभी को स्पष्ट था कि कांग्रेस की भागेदारी के बिना कोई भी संधि वार्ता और समझौते सफल नहीं हो सकते। सरकार चाहती थी कि कांग्रेस उसमें हिस्सा ले। सरकार के प्रयासों और उदारवादियों के अनुरोधों के जवाब में कांग्रेस ने कान्फ्रेंस में शामिल होने की कुछ शर्तें रखीं जैसे कि भारतीय अधिकार को मान्यता दी जाय कि वह इच्छा होने पर साम्राज्य से अलग हो सके और केंद्र तथा प्रदेश में पूर्णतः उत्तरदायी सरकार स्थापित की जाय। लेकिन ये शर्तें अंग्रेज़ सरकार को स्वीकार नहीं थीं। इस तरह पहली कान्फ्रेंस कांग्रेसी प्रतिनिधियों की अनुपस्थिति में 12 नवंबर, 1930 को आरम्भ हुई।

कान्फ्रेंस में कुल मिलाकर 89 व्यक्तियों को आमंत्रित किया गया था। इनमें से 16 व्यक्ति ब्रिटिश राजनीतिक पार्टियों का प्रतिनिधित्व कर रहे थे। ब्रिटिश भारतीय प्रतिनिधि मण्डल

में 58 सदस्य थे, जो कांग्रेस के अलावा भारत की तमाम पार्टियों और हितों का प्रतिनिधित्व कर रहे थे।

उनमें से कुछ प्रमुख भारतीय जिन्होंने भाग लिया, वे थे–

- हिन्दू महासभा के एम० आर० जयकर और बी० एस० मुंजे, उदारवादियों की ओर से सी० वाई० चिन्तामणि और टी० बी० सप्रू।
- आग़ा ख़ान, मोहम्मद शफ़ी, मोहम्मद अली, फ़ज़ूल-उल हक़। मोहम्मद अली जिन्ना (मुस्लिम राजनीतिक विचारों का प्रतिनिधित्व कर रहे थे)।
- सिखों के प्रवक्ता सरदार सम्पूरन सिंह थे।
- दलित वर्गों की ओर से बी० आर० अम्बेडकर।
- भारतीय ईसाइयों की ओर से के० टी० पॉल।

इसके अतिरिक्त एंग्लोइंडियन व्यापारिक हितों को भी प्रतिनिधित्व मिला था। देशी रियासतों और उनके नामांकित प्रतिनिधियों की संख्या 16 थी। इनमें अलवर, बड़ौदा, भोपाल, बीकानेर, कश्मीर, पटियाला, हैदराबाद, मैसूर और ग्वालियर की रियासतों के प्रतिनिधि प्रमुख थे।

परन्तु कान्फ्रेंस में प्रख्यात नेता, महत्वपूर्ण व्यक्ति और देशी रजवाड़े शामिल थे, इसमें ऐसा कोई व्यक्ति नहीं था जिसे कि भारतीय जनता का प्रतिनिधि माना जा सके, जबकि यह कान्फ्रेंस भारतीय जनता के भाग्य का फैसला करने के लिए आयोजित हुई थी। संवैधानिक सुधारों की दृष्टि से इस बाधा के बावजूद, कान्फ्रेंस ने दो सकारात्मक पहलुओं पर अच्छा काम किया उसने ब्रिटिश भारतीय प्रदेशों और भारतीय रियासतों का एक अखिल भारतीय संघ बनाये जाने का सुझाव दिया। उसने केन्द्र में उत्तरदायी सरकार की स्थापना की सिफ़ारिश की जिसमें संक्रमणकाल में कतिपय सुरक्षा उपायों का प्रावधान भी था। राष्ट्रवादियों को इस बात से निराशा अवश्य हुई कि संक्रमण काल की अवधि निर्धारित नहीं की गयी थी।

गोलमेज़ कान्फ्रेंस को देखकर उसमें साम्प्रदायिक और प्रतिक्रियावादी तत्त्वों के जमावड़े का स्पष्ट आभास होता था। कांग्रेस की कान्फ्रेंस में हिस्सेदारी के लिए प्रधानमंत्री रैम्ज़े मैक्डोनाल्ड और भारत के वाइसरॉय ने भारतीय नेताओं को बिना शर्त रिहा कर दिया ताकि वे लोग अस्वस्थ नेता मोतीलाल नेहरू के घर पर मिल सकें और आगामी गोलमेज़ कान्फ्रेंस में कांग्रेस के भाग लेने की शर्तें तय कर सकें।

## 29.6 गांधी और दूसरी गोल मेज़ कान्फ्रेंस

इस तथ्य के बावजूद कि शासन के रवैये में कोई ख़ास बदलाव नहीं आया था, गांधी जी ने 5 मार्च, 1931 को गांधी-इर्विन समझौते के नाम से विख्यात, एक समझौता करके, दूसरी गोल मेज़ कान्फ्रेंस में भाग लेने का फैसला किया। इस अवधि में क्रान्तिकारी आतंकवाद अपने चरमोत्कर्ष पर था और कम्युनिस्ट मज़दूरों को संगठित होने तथा हड़ताल के लिए प्रेरित कर रहे थे। अराजकता की आशंका से गांधीजी को इर्विन के साथ यह समझौता करना पड़ा।

कांग्रेस ने सविनय अवज्ञा आदोलन स्थगित कर दिया और यह तय किया कि गांधीजी दूसरी गोलमेज़ कान्फ्रेंस में कांग्रेस के एकमात्र प्रतिनिधि और प्रवक्ता रहेंगे। कांग्रेस ने फिर से घोषणा की कि पूर्ण स्वराज उसका अन्तिम राजनीतिक लक्ष्य है।

इस बीच परिस्थितियों में काफ़ी बदलाव आ गया था। 26 अगस्त, 1931 को मैक्डोनाल्ड के लेबर मंत्रिमंडल ने त्याग-पत्र दे दिया और उसके स्थान पर अनुदारवादियों के प्रभुत्व वाली एक साझा सरकार बनी। अप्रैल, 1931 में लार्ड इर्विन के स्थान पर दिल्ली में वेलिंग्डन वाइसरॉय बनाये गये। एक प्रमुख अनुदारवादी सर सैमुअल मोरे को भारत का राज्य सचिव बनाया गया। इन परिवर्तनों के कारण सरकारी दृष्टिकोण कठोर हो गया। पहले सत्र के

अधिकांश प्रमुख प्रतिनिधियों ने दूसरे सत्र में भी भाग लिया। सत्र में कुछ नये प्रतिनिधि भी थे। उसमें गांधीजी के अलावा मोहम्मद इक़बाल जैसे महान् शायर, मदन मोहन मालवीय, श्रीमती सरोजिनी नायडू और अली इमाम जैसे महान राजनीतिक नेता और राष्ट्रवादी, जी० डी० बिड़ला जैसे पूंजीपति और एस० के० दत्ता जैसे प्रख्यात भारतीय ईसाई भी थे। ये लोग कान्फ्रेंस में पहली बार शामिल हो रहे थे। दूसरा सत्र 1 दिसंबर, 1931 को समाप्त हुआ और उसने निम्नलिखित सिफ़ारिशें कीं।

- भारतीय संघ की संरचना,
- संघीय न्यायपालिका का ढांचा,
- राज्यों द्वारा संघ में सम्मिलित होने की पद्धति, और वित्तीय संसाधनों का वितरण।

गांधीजी द्वारा प्रस्तुत योजना नेहरू-समिति द्वारा अपनी रिपोर्ट में दिये गये सुझावों का ही दूसरा रूप था। कान्फ्रेंस की कार्रवाई में साम्प्रदायिक मुद्दों से काफी अड़चन आयी। गांधीजी इस तथ्य से परिचित थे कि साम्प्रदायिक समस्या इतनी जटिल है कि उसका कोई तात्कालिक समाधान संभव ही नहीं है। उन्होंने सुझाव दिया कि पहले संवैधानिक समस्या का समाधान करने के बाद ही साम्प्रदायिक मामलों पर विचार किया जाय। इस सुझाव ने अल्पसंख्यकों के प्रतिनिधियों को न केवल असंतुष्ट किया बल्कि उनके रवैये को भी कठोर कर दिया। मुस्लिम प्रतिनिधियों ने पृथक निर्वाचन क्षेत्र बनाये रखने पर ज़ोर दिया। दूसरा सत्र कटुता और क्षोभ के माहौल में समाप्त हुआ।

## 29.7 साम्प्रदायिक पंचाट और पूना समझौता

राष्ट्रीय आंदोलन की ताज़ा लहर की आशंका से व्यग्र होकर सरकार ने गांधीजी को 4 जनवरी, 1932 अर्थात् उनके भारत पहुंचने के एक हफ्ते बाद ही गिरफ़्तार कर लिया और आतंक फैल गया। साम्प्रदायिक समस्या ने देश का ध्यान अपनी ओर खींचा। इस मसले पर भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस ने एक निश्चित योजना प्रस्तुत की, जिसका वैचारिक रुझान सरकार विरोधी था। कांग्रेस ने दोहराया कि प्रस्तावित संविधान के मौलिक अधिकारों में अल्पसंख्यकों की संस्कृति, भाषा और धर्म के संरक्षण की गारंटी होगी। उसने पृथक साम्प्रदायिक निर्वाचन क्षेत्रों को अस्वीकृत किया और सार्वजनिक मताधिकार के सिद्धांत का समर्थन किया। लेकिन इसी बीच 16 अगस्त, 1932 को मैक्डोनाल्ड ने 'साम्प्रदायिक पंचाट' नाम से प्रसिद्ध अल्पसंख्यक प्रतिनिधित्व का एक प्रस्ताव प्रस्तुत कर दिया। इसमें निम्नलिखित सिफ़ारिशें की गयीं:

i) प्रान्तीय विधानमंडलों की मौजूदा सीटों को दुगुना किया जाय।
ii) अल्पसंख्यकों के लिए पृथक निर्वाचन क्षेत्रों की व्यवस्था को बनाये रखा जाए।
iii) मुस्लिमों को उन प्रदेशों में, जहां वे अल्पमत में हैं, अतिरिक्त सीटें मिलें।
iv) उत्तर-पश्चिमी सीमा प्रांत को छोड़कर, शेष सभी प्रान्तीय विधानमंडलों में महिलाओं के लिए 3% का आरक्षण हो।
v) दलित वर्गों को अल्पसंख्यक समुदाय के तौर पर मान्यता मिले और उन्हें पृथक निर्वाचन क्षेत्र का अधिकार प्राप्त हो, और
vi) श्रमिकों, ज़मीदारों, व्यवसायियों और उद्योगपतियों को सीटें, आबंटित की जायं।

गांधीजी ने दलित वर्गों को पृथक निर्वाचन क्षेत्र का अधिकार देने के प्रस्ताव पर बहुत तीखी प्रतिक्रिया व्यक्त की। वे दलित वर्गों को हिन्दू समाज का अविच्छिन्न अंग मानते थे। उन्हें यह आशा थी कि हिन्दू समाज दलितों के कल्याण के लिए काम करेगा तथा शताब्दियों तक शोषित समाज के इस तबके के साथ सामाजिक न्याय करेगा जिससे कि वह हिन्दू समाज में पूरी तरह समाहित हो सके। अम्बेडकर पृथक निर्वाचन क्षेत्र के पक्ष में थे। गांधीजी ने उनको अपने पक्ष में लाने के लिए सरवदा जेल में आमरण अनशन प्रारम्भ कर दिया। अम्बेडकर ने उनके प्राण बचाने की इच्छा से 25 सितम्बर, 1932 को एक समझौता किया। इस पूना-समझौते में निम्न मुख्य बातें थी :

i) प्रान्तीय विधानमंडलों में दलित वर्गों के लिए 198 सीटें आंबटित की गयीं जबकि साम्प्रदायिक पंचाट में उन्हें 71 सीटें प्रदान करने का वचन दिया गया था।
ii) यह वादा किया गया कि ग़ैर-मुस्लिम निर्वाचन क्षेत्रों को आंबटित सीटों का एक निश्चित प्रतिशत दलित वर्गों के लिए आरक्षित कर दिया जायेगा।
iii) कांग्रेस ने स्वीकार किया कि दलित वर्गों को प्रशासनिक सेवाओं में पर्याप्त प्रतिनिधित्व प्रदान किया जायेगा।
iv) अम्बेडकर के प्रतिनिधित्व में दलित वर्गों ने संयुक्त निर्वाचन क्षेत्र के सिद्धांत को स्वीकार कर लिया।

चित्र 4. डा० बी० आर० अम्बेडकर

## 29.8 गवर्नमेंट आफ़ इंडिया ऐक्ट 1935

तीसरी गोल मेज़ कान्फ्रेंस के बाद भारत के नये संविधान पर एक श्वेत पत्र तैयार किया गया। अंग्रेज़ सरकार के द्वारा तैयार किये गये इस श्वेत पत्र में तीन प्रमुख प्रस्ताव थे, जो संघशासन, प्रान्तीय स्वायत्तता और केन्द्रीय तथा प्रान्तीय कार्यपालिका को विशेष अधिकार देने वाले उपायों से सम्बंधित थे। चूंकि यह प्रस्ताव पूर्ण स्वंतंत्रता से बहुत पीछे था इसलिए भारत के सभी राजनैतिक दलों ने इस श्वेत पत्र की आलोचना की और उसे अस्वीकार कर दिया। इसे मार्च 1933 में प्रकाशित किया गया और दोनों सदनों की संयुक्त संसदीय समिति के विचारार्थ प्रस्तुत किया गया। संयुक्त समिति ने 22 नवम्बर, 1934 को अपनी रिपोर्ट प्रस्तुत की। इस रिपोर्ट के आधार पर 2 अगस्त 1935 को एक विधेयक पारित किया गया। राजकीय स्वीकृति पाने के बाद इसने गवर्नमेंट आफ इंडिया ऐक्ट 1935 का रूप लिया।

इसमें प्रांतों से संबंधित निम्नलिखित महत्वपूर्ण बातें थीं :

- प्रान्तीय स्वायत्तता की शुरुआत। पहली बार ऐक्ट ने प्रांतों को एक पृथक वैधानिक इकाई के तौर पर मान्यता दी। इसकी व्यवस्था इस तरह से की गयी थी कि कुछ विशिष्ट क्षेत्रों को छोड़कर सामान्यतया प्रांतों को केन्द्र सरकार के नियंत्रण से मुक्ति मिल सके।
- 1919 के ऐक्ट द्वारा प्रान्तों में द्वैध शासन की व्यवस्था को समाप्त कर दिया गया।
- बर्मा को भारत से अलग कर दिया गया। ऐक्ट ने सिंध और उड़ीसा में दो नये प्रान्त बनाने की सलाह दी। 3 मार्च, 1936 को इस संबंध में आदेश जारी किये गये।
- ऐक्ट ने सिंध और उड़ीसा समेत सभी ग्यारह प्रान्तों में उत्तरदायी सरकार की स्थापना का प्रावधान किया। इनमें से बम्बई, बंगाल, मद्रास, संयुक्त प्रान्त, बिहार और असम में द्विसदन विधानमंडलों की व्यवस्था की गयी थी।
- मताधिकार सम्पति की योग्यता पर आधारित था। 1935 में मतदाताओं की संख्या 1919 के 50 लाख से बढ़कर 3 करोड़ हो गयी।
- सीटों के आबंटन के सिद्धान्त में कोई परिवर्तन नहीं किया गया। पृथक निर्वाचन क्षेत्र तथा कुछ को अधिक महत्व दिये जाने की व्यवस्था को बनाये रखा गया।
- प्रान्तों के गवर्नर को विशेष कार्यकारी अधिकार प्रदान किये गये। उन्हें न्याय-व्यवस्था, अल्पसंख्यकों और पिछड़े वर्गों के हितों और ब्रिटिश व्यवसायिक हितों के संरक्षण के लिए अपना विवेक प्रयुक्त करने का अधिकार था।

ऐक्ट ने भारत सरकार के लिए संघीय ढांचे की व्यवस्था की थी। इसमें प्रांतों और रियासतों के साथ संघीय केन्द्रीय तथा प्रान्तीय विधानमंडलों की व्यवस्था थी। केन्द्र में द्वैध शासन की स्थापना की गयी। विदेशी मामलों और प्रतिरक्षा को गवर्नर जनरल के लिए आरक्षित कर दिया गया था। निर्वाचित मंत्रियों को हस्तान्तरित किये गये विषयों में रक्षा उपाय उनके सुपुर्द किये गये थे।

केन्द्रीय विधानमंडल में दो सदनों की व्यवस्था थी। राज्य सभा, अर्थात् उच्च सदन में ब्रिटिश भारत से 156 सदस्य और भारतीय रियासतों से 104 सदस्य शामिल किये गये। 1935 के ऐक्ट के द्वारा अधिराज्य की स्थापना नहीं हुई थी। इसलिए ऐक्ट में उत्तरदायी सरकार से

पूर्ण स्वाधीनता में संक्रमण के अंतरिम काल के लिए व्यवस्था की गयी थी और सुरक्षा उपायों तथा विशिष्ट दायित्वों की व्यवस्था भी इसी संक्रमण काल के लिए की गयी थी।

1935 का ऐक्ट संघशासन और संसदीय व्यवस्था के दो आधारभूत सिद्धान्तों पर आधारित था। यद्यपि इस संघ सिद्धांन्त में एकात्मकता पहले से ही मौजूद थी तो भी प्रान्तों की स्थिति अधीनस्थ सत्ता की न होकर सहकारी सत्ता की थी। इसमें कोई सन्देह नहीं है कि सुरक्षा उपायों और विशिष्ट दायित्व के प्रावधानों से केन्द्रीय और प्रान्तीय कार्यकारी अध्यक्षों को असाधारण शक्तियां मिल गयी थीं। इन प्रावधानों से संघीय चरित्र गम्भीर रूप से विकृत हो गया। एक महत्वपूर्ण बात यह भी थी कि केन्द्र में पूर्ण उत्तरदायी सरकारों की स्थापना नहीं की गयी थी। इसी तरह से ऐक्ट द्वारा प्रस्तावित प्रान्तीय स्वायत्तता पर भी गम्भीर सीमाएं लगा दी गयी थीं। भारत के लिए अधिराज्य अभी भी एक सुन्दर स्वप्न ही था। सुरक्षा उपायों को शामिल करने के पीछे चतुर संवैधानिक चाल ही थी ताकि एक उत्तरदायी सरकार की स्थापना को टाला जा सके। यद्यपि इन प्रावधानों को केवल संक्रमण काल तक के लिए रखा गया था, लेकिन इस संक्रमण की अवधि को स्पष्ट नहीं किया गया था।

भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस ने सुरक्षा उपायों के प्रावधान और संक्रमण के विचार को अस्वीकार कर दिया। उसे सन्देह था कि इसके पीछे खतरनाक इरादे छिपे हुए हैं और उनका राष्ट्रीय आन्दोलन पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ना लाज़मी है। कांग्रेस ने ऐक्ट की इस आधार पर आलोचना की और उसे ठुकरा दिया क्योंकि इसके निर्माण के दौरान भारतीय जनता से सलाह नहीं ली गयी और इसी कारण यह उनकी इच्छाओं का प्रतिनिधित्व नहीं करता है। कांग्रेस ने सरकार पर आरोप लगाया कि उसने ऐक्ट को इस तरह बनाया है, ताकि उत्तरदायी सरकार को टाला जा सके, अपने शासन को स्थायी बनाया जा सके और भारतीय जनता का शोषण किया जा सके। उत्तरदायी सरकार के प्रति भारतीयों की अभिलाषाओं को मान्यता देने के बावजूद 1935 का यह ऐक्ट उनकी इच्छाओं को पूरा नहीं करता। सरकार ने सभी वयस्कों को मताधिकार प्रदान नहीं किया। सम्पत्ति की योग्यता, पृथक निर्वाचन क्षेत्र की व्यवस्था और सुरक्षा उपायों के प्रावधानों से जनता के लोकतांत्रिक अधिकारों का उल्लंघन हुआ। इसलिए इस ऐक्ट को ग़ैर लोकतांत्रिक, जनता के प्रभुत्व को नकारने वाला और संस्थागत रूप से अव्यवहारिक बताकर निन्दित किया गया। उदारवादियों ने भी इस ऐक्ट की आलोचना की थी, लेकिन वे सुधारों को उत्तरदायी सरकार बनाने की दिशा में अग्रसर मानकर लागू करवाना चाहते थे। मुस्लिम लीग ने भी ऐक्ट की आलोचना की थी लेकिन फिर भी वे उसे एक अवसर देना चाहते थे। कुल मिलाकर कांग्रेस ने ऐक्ट की निन्दा की थी लेकिन उन्हें यह भी लग रहा था कि उसे प्रांतीय स्तर पर ऐक्ट को स्वीकार करना पड़ सकता था, यद्यपि ऐसा विरोध जताते हुए ही करना था।

इस तरह कांग्रेस ने 1937 के चुनावों में भाग लिया और आगे चलकर प्रांतीय मंत्रिमंडलों का गठन किया।

**बोध प्रश्न 2**

1 पूना समझौते के मुख्य प्रावधान क्या थे? लगभग चार पंक्तियों में उत्तर दीजिए।

..............................................................................

..............................................................................

..............................................................................

..............................................................................

2 निम्नलिखित वक्तव्यों में से सही वक्तव्य को चिन्हित ( √ ) कीजिए :

क) प्रथम गोल मेज़ कान्फ्रेंस के लिए कांग्रेस से महात्मा गांधी मनोनीत किये गये थे। ☐

ख) कांग्रेस ने तीसरी गोलमेज़ कान्फ्रेंस में भाग लिया था। ☐

ग) पूना समझौता गांधी और अम्बेडकर के बीच हुआ था। ☐

घ) साम्प्रदायिक पंचाट का उद्देश्य अल्पसंख्यक प्रतिनिधित्व को समाप्त करना था। ☐

3 भारत सरकार ऐक्ट, 1935 की मुख्य विशेषताओं का विवरण लगभग दस पंक्तियों में दीजिए।

..............................................................

..............................................................

..............................................................

..............................................................

..............................................................

..............................................................

..............................................................

..............................................................

..............................................................

..............................................................

## 29.9 सारांश

हमने इस इकाई में देखा कि किस तरह 1920-1935 के बीच संवैधानिक सुधारों के मामले में कुछ प्रगति हुई थी। अंग्रेज़ सरकार का सुधारों के बारे में अपना अलग मत था, जिसे भारतीय राष्ट्रवादियों ने चुनौती दी। फिर भी भारतीयों में उदारवादियों जैसे कुछ वर्ग थे, जो अंग्रेज़ों के द्वारा प्रस्तावित तरीके से ही सुधारों के साथ आगे बढ़ने के पक्ष में थे। राष्ट्रवादियों ने इन सुधारों को सशर्त समर्थन दिया। इसकी वजह से उन्हें अंग्रेज़ों के सामने स्वतंत्रता की अपनी मांग पर किसी किस्म का समझौता नहीं करना पड़ा। इसी दृष्टिकोण से हम भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस के भीतर संविधानवादियों के रवैये को समझ सकते हैं। राष्ट्रवादी शक्तियों को साम्प्रदायिक प्रतिनिधित्व और देशी रियासतों की स्थिति जैसी चुनौतियों का सामना करना पड़ा। फिर भी, सारी सीमाओं के बावजूद इन संवैधानिक सुधारों ने भारत को संसदीय लोकतंत्र की ओर अग्रसर करने में सहायता पहुंचायी।

## 29.10 शब्दावली

**अधिराज्य (डामीनियन स्टेटस)** : एक ऐसी शासन व्यवस्था जिसके अनुसार औपनिवेशिक शक्ति किसी देश को स्व-शासन प्रदान करती है, लेकिन वह देश औपनिवेशिक शक्ति के प्रति निष्ठावान बना रहता है।

**द्वैध शासन** : शासन का एक ढंग जिसमें राज्य को कार्यों के दो भागों में बांट दिया जाता है। इस प्रसंग में शिक्षा, स्वास्थ्य जैसे विषयों को निर्वाचित प्रतिनिधियों के पास हस्तान्तरित कर दिया जाता है जबकि वित्त, विधि और व्यवस्था जैसे विषयों को शासकीय गुट के लिए आरक्षित कर दिया जाता है।

**परिवर्तन विरोधी** : कांग्रेस के भीतर नेताओं का एक समूह, जो परिषदों में शामिल होने का विरोध करता था।

**पृथक निर्वाचन क्षेत्र** : निर्वाचन क्षेत्रों को धर्म, समुदाय आदि के आधार पर आंबटित करना।

## 29.11 बोध प्रश्नों के उत्तर

**बोध प्रश्न 1**

1 आपके उत्तर में इन बातों का समावेश होना चाहिए : 1919 के अपर्याप्त सुधारों से राष्ट्रवादियों का असंतोष, स्वराजवादियों की राजनैतिक गतिविधियों, क्रान्तिकारी आतंकवाद का विकास, ब्रिटेन की राजनैतिक स्थिति, इत्यादि।

2 (ग)

3 आपके उत्तर में इन बातों का समावेश होना चाहिए : भारत को ब्रिटिश साम्राज्य के भीतर अधिराज्य (डामीनियन स्टेटस) का दर्जा प्राप्त होना चाहिए, संविधान में नागरिकता की परिभाषा और मौलिक अधिकारों की घोषणा होनी चाहिए, इत्यादि।

**बोध प्रश्न 2**

1 आपके उत्तर में इन बातों का समावेश होना चाहिए : प्रान्तीय विधानमंडलों में दलित वर्गों के लिए सीटें आरक्षित होनी चाहिए, दलित वर्गों को प्रशासनिक सेवा में प्रतिनिधित्व प्रदान किया जाना चाहिए, इत्यादि।

2 (ग)

3 आपके उत्तर में इन बातों का समावेश होना चाहिए : ऐक्ट ने प्रान्तीय स्वायत्तता को लागू किया, प्रान्तों में इस ऐक्ट के द्वारा द्वैध शासन को समाप्त किया गया, इसने भारत सरकार के लिए संघीय ढांचे का प्रस्ताव रखा।

# इकाई 30 1937 के चुनाव तथा कांग्रेस मंत्रिमंडल

## इकाई की रूपरेखा

30.0 उद्देश्य
30.1 प्रस्तावना
30.2 संवैधानिकता की ओर
30.3 चुनाव
30.3.1 स्थानीय निकायों के चुनाव
30.3.2 कांग्रेस का लखनऊ अधिवेशन
30.3.3 चुनाव घोषणा पत्र
30.3.4 फ़ैज़पुर अधिवेशन
30.4 1937 के चुनाव
30.4.1 उम्मीदवारों का चयन
30.4.2 चुनाव अभियान
30.4.3 चुनाव परिणाम
30.5 पद स्वीकरण
30.6 कांग्रेस मंत्रिमंडलों का कामकाज
30.6.1 राजनीतिक क़ैदी और नागरिक स्वतंत्रताएं
30.6.2 किसानों का सवाल
30.6.3 मज़दूर वर्ग
30.6.4 रचनात्मक कार्यक्रम
30.6.5 कांग्रेस के समाने आई कुछ समस्याएं
30.7 सारांश
30.8 शब्दावली
30.9 बोध प्रश्नों के उत्तर

## 30.0 उद्देश्य

पिछली इकाई 29 में हम यह जान चुके हैं कि 1935 के ऐक्ट के द्वारा किस तरह संवैधानिक सुधार लागू किये गये। इन सुधारों के बारे में कांग्रेसियों में मत भिन्नता थी। इस इकाई को पढ़ने के बाद आप:

- संवैधानिक सुधारों के मसले पर कांग्रेसियों के बीच प्रचलित विभिन्न मतों के बारे में जानेंगे,
- 1937 के चुनाव और उनसे संबंधित विभिन्न पक्षों के बारे में जानेंगे,
- 1937-39 के दौरान बहुत से प्रांतों में पदारूढ़ कांग्रेसी मंत्रिमंडलों के कार्य-कलापों के बारे में जानेंगे,
- इस दौरान कांग्रेसी मंत्रिमंडलों के सामने आई समस्याओं को समझेंगे, और
- इन मंत्रिमंडलों के इस्तीफ़े के कारणों को समझ सकेंगे।

## 30.1 प्रस्तावना

यह इकाई वर्ष 1936-39 के दौर के राजनीतिक घटनाक्रम पर प्रकाश डालती है। यह वह दौर था जब कांग्रेस ने आंदोलन और जन संघर्षों का रास्ता छोड़ दिया था, और दूसरी बार संवैधानिक राजनीति के चरण में प्रवेश किया था। लेकिन, पहले के स्वराजवादी चरण के

विपरीत, इस बार कांग्रेस का इरादा संवैधानिक तरीकों का परीक्षण करना था। इसी के अनुरूप कांग्रेसियों ने अपनी सफलता के लिए काम किया। परंतु इसका मतलब यह नहीं है कि संवैधानिक तरीका अपनाने के सवाल पर कांग्रेसियों में मतभेद नहीं थे। दरअसल कांग्रेस द्वारा लिए गये किसी भी निर्णय पर अमल से पहले ज़ोरदार बहस होती थी। हालांकि ब्रिटिश साम्राज्यवाद के विरुद्ध लड़ाई के मूल सवाल पर सहमति थी, फिर भी इस लड़ाई के लिए अपनाये जाने वाले तरीकों को लेकर कांग्रेसियों में विवाद था। यह वही समय था जब वाम-पक्ष कांग्रेस के भीतर अपनी उपस्थिति दर्ज करा रहा था। वामपक्ष और दक्षिणपक्ष विभिन्न मसलों पर वाद-विवाद और बहस करते थे। एक उत्तेजक बहस के बाद कांग्रेस ने 1937 में चुनाव लड़ने का फ़ैसला किया और उसे सात प्रांतों में सरकार बनाने में सफलता मिली।

कांग्रेसी मंत्रिमंडलों ने दो वर्ष से कुछ ही अधिक समय तक काम किया। सत्ता में रहने की अल्पावधि में उन्हें कई समस्याओं से जूझना पड़ा। अलग-अलग सामाजिक वर्गों की कांग्रेस से अलग-अलग अपेक्षाएं थीं, इसलिए जब कांग्रेस सत्ता में आयी तो उनकी महत्वाकांक्षाएं भी बढ़ गयीं। कांग्रेस जिन सिद्धांतों के लिए प्रतिबद्ध थी, उनमें से कुछ निश्चित सिद्धातों को अमल में लाने में सफल हुई। लेकिन ऐसे भी मसले थे जिन पर कांग्रेस भीतर से विभाजित थी।

हालांकि कांग्रेस मंत्रिमंडलों ने सितम्बर, 1939 में इस्तीफ़ा दे दिया, इसका दो साल तक सत्ता में बना रहना, स्वतंत्रता संग्राम के लिए बहुत महत्वपूर्ण साबित हुआ।

## 30.2 संवैधानिकता की ओर

नागरिक अवज्ञा आंदोलन के दूसरे चरण ने (1932 से आगे) लोगों को उस तरह आंदोलित नहीं किया जैसा कि पिछले चरण ने किया था। यह साफ़ दिखाई देने लगा था कि इस बार का जन आंदोलन अधिक दूर तक नहीं खिंचेगा। जन आंदोलन की इस शिथिलता से कांग्रेस के भीतर से संवैधानिक तरीकों की ओर लौटने की आवाज़ें उठने लगीं। कुछ हिस्सों में स्वराजपार्टी को पुनर्जीवित करने की बात भी चलाई गयी। आसिफअली और एस. सत्यमूर्ति इस सवाल को आंदोलन के दौरान ही गांधीजी के सामने उठा चुके थे। एक और प्रमुख कांग्रेसी डा. एम. ए. अंसारी परिषद में प्रवेश के पक्षधर थे। 1933 में सत्यमूर्ति ने मद्रास स्वराज पार्टी का गठन किया। के. एम. मुंशी, बी. सी. राय, और रामास्वामी आयंगर ने भी स्वराज पार्टी की पुनर्स्थापना के लिए गांधीजी की सहमति प्राप्त करने की कोशिश की। लेकिन, इस बिंदु पर गांधीजी संवैधानिक तरीके पर लौटने के विचार के पक्ष में नहीं थे। मगर उन्होंने इन लोगों से कहा:

> ''अगर इस कदम (संवैधानिक तरीके की ओर वापसी) में आपका भरोसा है, तो आप इसका समर्थन करने के लिए स्वतंत्र हैं।''

चित्र 5. सत्यमूर्ति

कुछ कांग्रेसी परिषद प्रवेश के पक्ष में थे तो आचार्य नरेन्द्रदेव और पुरुषोत्तमदास टंडन जैसे अन्य लोग इसके विरोध में थे। इससे कांग्रेस के भीतरी मतभेदों का खुलासा होता है। प्रत्येक पक्ष कांग्रेस की नीति को प्रभावित करने और अपनी ओर झुकाने के लिए उत्सुक था। लेकिन दोनों ही पक्ष यह काम गांधीजी की सहमति से ही करना चाहते थे। जैसे ही नागरिक अवज्ञा-आंदोलन को वापस लिया गया, गांधीजी ने प्रत्येक पक्ष को यह कह के मन मुताबिक कदम उठाने के लिए स्वतंत्र कर दिया:

> ''मैं चाहता हूँ कि सभी वर्ग सभी दिशाओं में एक ही लक्ष्य की ओर बिना एक दूसरे की आलोचना किये अपने-अपने तरीकों से काम करें।''

जो वर्ग इस समय परिषद प्रवेश (council entry) का समर्थन कर रहा था वह ठीक उन तर्कों पर नहीं चल रहा था जो इससे 12 वर्ष पूर्व स्वराजवादियों ने प्रस्तुत किये थे। जैसा कि आपने इकाई 21 में पढ़ा है कि स्वराजवादियों ने परिषदों में प्रवेश, संविधान को अंदर से ध्वस्त करने के लिए किया था और उन्होंने पद स्वीकार नहीं किये थे। लेकिन इस बार

चित्र 6. पुरुषोत्तम दास टन्डन

राजगोपालाचारी जैसे नेता जिस परिषद प्रवेश की बात कर रहे थे वह स्वराजवादियों से दो रूपों में अलग था :

1 इसका उद्देश्य संविधान को ध्वस्त करना था। इसके सहज काम करने में रुकावटें खड़ी करना नहीं था। उनका उद्देश्य संविधान को कार्य योग्य बनाना था।
2 बहुमत हासिल कर लेने की स्थिति में शासन भार स्वीकार करना और मंत्रिमंडलों का गठन करना था।

दूसरी ओर समाजवादी झुकाव वाले कांग्रेसी थे जो परिषद प्रवेश के विरोधी थे और संविधान को काम करने योग्य बनाने के पक्ष में नहीं थे। आप पहले ही पढ़ चुके हैं (इकाई सं० 27) कि समाजवादियों ने कांग्रेस के अंदर ही कांग्रेस सोशलिस्ट पार्टी का गठन करके खुद को किस प्रकार संगठित किया था। यहां यह उल्लेख करना आवश्यक है कि ये मतभेद हालांकि सैद्धांतिक झुकावों से प्रेरित-नियंत्रित थे, फिर भी ये कांग्रेस के अंदर आंतरिक मसले समझे जाते थे। जहां तक ब्रिटिश साम्राज्यवाद के विरुद्ध कांग्रेस के रवैये का सवाल था, यह हमेशा एक स्वर में प्रकट किया जाता था। उदाहरण के लिए, 1935 ऐक्ट के आपत्तिजनक खंडों की भर्त्सना कांग्रेस ने सभी वर्गों के पूरे समर्थन से की (आपने इस ऐक्ट के विरोध के बारे में इकाई 29 में पढ़ा है)।

कांग्रेस के सामने प्रमुख मसला यह निर्णय लेना था कि आगामी चुनावों में भाग लिया जाय और पद भार स्वीकार किया जाय या नहीं। हम अगले भाग में देखेंगे कि इन मसलों के संदर्भ में कांग्रेस ने अपनी नीति को किस तरह गढ़ा।

**बोध प्रश्न 1**

1 परिषद-प्रवेश के समर्थकों के विचार किस तरह से स्वराजवादियों के विचारों से भिन्न थे?

.....................................................................
.....................................................................
.....................................................................
.....................................................................
.....................................................................

2 निम्न में से कौन सा कथन सही या ग़लत है। (√) या (×) चिन्ह लगाइए।
   i) नागरिक अवज्ञा आंदोलन के दूसरे चरण ने भी लोगों को उतना ही आंदोलित किया जितना कि पहले चरण ने। ☐
   ii) 1933 में गांधीजी ने संवैधानिक तरीकों की ओर वापसी के विचार का समर्थन किया। ☐
   iii) परिषद प्रवेश को लेकर कांग्रेस के अंदर मतभेद थे। ☐
   iv) जब कभी अंग्रेजी शासन के विरुद्ध कोई क़दम उठाना होता था तो कांग्रेस का स्वर एक होता था। ☐
   v) आचार्य नरेन्द्रदेव ने परिषद प्रवेश का समर्थन किया। ☐

## 30.3 चुनाव

इससे पहले हम 1937 के चुनाव और उनसे संबंधित घटनाओं के विश्लेषण को आगे बढ़ायें, हम उस समय की आम राजनीतिक स्थिति और कुछ पूर्व-चुनावों की संक्षेप में चर्चा करेंगे। काफी बहस और वाद-विवाद के बाद कांग्रेस ने अपने 1936 के लखनऊ अधिवेशन में प्रांतीय परिषदों के लिए होने वाले आगामी चुनावों में भाग लेने का फैसला किया। लेकिन

इससे पहले अक्ट . . 1934 में गांधीजी ने कांग्रेस की 4 आने की सदस्यता को त्याग कर ख़ुद को कांग्रेस से हटा लिया था। लेकिन इसका अर्थ यह नहीं था कि कांग्रेस में उनका प्रभाव कम हो गया था या उन्होंने कांग्रेस की नीति को निर्देशित करना बंद कर दिया था। चाहे गांधीजी कांग्रेस के चार आने वाले सदस्य रहे हों या न रहे हों, कांग्रेस में उनका वर्चस्व लगातार बना रहा।

## 30.3.1 स्थानीय निकायों के चुनाव

जैसा कि पहले कहा जा चुका है गांधीजी ने सभी वर्गों को अपने-अपने ढंग से काम करने की आज़ादी दे दी थी बशर्ते कि वे एक ही लक्ष्य को लेकर यानी ब्रिटिश शासन के विरोध में काम करें। इस प्रकार 1934 से कांग्रेस ने विधानसभा या स्थानीय निकायों के चुनावों में जब भी, जैसे भी हुआ भाग लेना शुरू किया। ये चुनाव निम्न दृष्टिकोणों से लाभदायक साबित हुए:

1 चुनाव परिणामों के माध्यम से कांग्रेस अपने जनाधार की परीक्षा कर सकती थी।
2 इन चुनावों ने कांग्रेस को चुनावों के संगठन, नियोजन और प्रबंध के मामले में बहुत बड़ा अनुभव दिया।
3 कांग्रेस, निर्वाचन राजनीति में आवश्यक कोष के लिए अपने सहयोगियों की परीक्षा ले सकती थी।

यहां हम मद्रास प्रेसीडेंसी में हुए चुनावों का उल्लेख कर सकते हैं। मई 1935 में स्थानीय चुनावों के लिए पार्टी उम्मीदवारों के चयन के उद्देश्य से एक कांग्रेस नागरिक बोर्ड (civic board) का गठन किया गया। उम्मीदवारों को परिषद द्वारा प्रस्तुत कार्यक्रम के प्रति निष्ठा की शपथ लेनी पड़ी (देखिये डेविड आरनाल्ड द कांग्रेस इन तमिलनाडु) इसमें निम्न काम करना शामिल था :

- स्वदेशी को प्रोत्साहन,
- भ्रष्टाचार दूर करना,
- चिकित्सा और शिक्षा संबंधी सुविधाओं में सुधार, इत्यादि।

इन स्थानीय चुनावों के परिणाम कांग्रेस के लिए उत्साहवर्धक थे। मदुरई में नगरपालिका (अक्तूबर 1935) में कांग्रेस ने 36 में से 21 सीटों पर विजय प्राप्त की और एक वर्ष बाद (अक्टूबर 1936) मद्रास में 40 में से 27 सीटें कांग्रेस ने जीतीं। इसी प्रकार केन्द्रीय विधानसभा के चुनावों में कांग्रेस ने मद्रास में मतदाताओं के सामने निम्न मुद्दे उठाये:

1 कांग्रेस को वोट देकर उन्हें कांग्रेस के प्रति अपना निरंतर समर्थन ज़ाहिर करना चाहिए,
2 सरकार को यह दिखाना चाहिए कि तमाम दमन के बावजूद कांग्रेस जीवंत बनी हुई है,
3 वे चुनाव राष्ट्रीय मुद्दों पर लड़ रहे हैं।

जब परिणामों की घोषणा हुई तो कांग्रेस ने इस प्रांत में जिन सात सीटों पर चुनाव लड़ा था, सभी को जीत कर जस्टिस पार्टी का सफ़ाया कर दिया। राष्ट्रीय स्तर पर कुल 76 सीटों में से कांग्रेस के उम्मीदवार 55 सीटों पर खड़े हुए और 44 पर जीते। कुल मतदान 650,000 था और कांग्रेस को 375,000 मत मिले।

कांग्रेस ने प्रांतीय परिषदों के चुनावों में भाग लेने के पक्ष में निर्णय लेने में लम्बा समय लगाया। कांग्रेस कार्य समिति ने अपनी अगस्त 1975 की बैठक में फैसला किया कि चुनावों में भाग लेने का मसला लखनऊ अधिवेशन में हल किया जायेगा।

## 30.3.2 कांग्रेस का लखनऊ अधिवेशन

लखनऊ में कांग्रेस अधिवेशन की अध्यक्षता जवाहरलाल नेहरू ने की। उनके अध्यक्षीय भाषण में समाजवाद की वकालत की गई थी जिसे वे "विश्व की समस्याओं और भारत की समस्याओं के लिए एकमात्र हल" मानते थे। उन्होंने कांग्रेस की सीधी कार्रवाई के संघर्षों में लोगों की भूमिका की सराहना की लेकिन आत्म आलोचना की टिप्पणी के रूप में उन्होंने कहा:

> "हमारी राजनीति और विचार बड़ी सीमा तक .... जनता के बहुत बड़े भाग की आवश्यकताओं के विचार से नहीं बल्कि मध्यवर्गीय दृष्टिकोण से नियंत्रित होते हैं"।

चित्र 7. लखनऊ अधिवेशन के दौरान कांग्रेस का जुलूस

उनके अनुसार लोगों तक पहुंचने का रास्ता यह था कि "जनता के दिन-प्रतिदिन के संघर्ष उनकी आर्थिक मांगों और अन्य परेशानियों के आधार पर चलाये जाने चाहिए"। नेहरू ने तीन समाजवादियों जयप्रकाश नारायण, आचार्य नरेन्द्रदेव और अच्युत पटवर्धन को कांग्रेस कार्य समिति में शामिल किया। इस अधिवेशन में बहुत से प्रस्ताव पारित किये गये। उनमें से प्रमुख ये थे:

i) "राज्यों (देशी रियासत-रजवाड़े) की जनता को भी आत्मनिर्णय का वही अधिकार होना चाहिए जो कि शेष भारत की जनता को है और यह कि कांग्रेस भारत के सभी भागों के लिए समान राजनीतिक, नागरिक, और लोकतांत्रिक स्वतंत्रताओं का समर्थन करती है"। लेकिन कांग्रेस ने कहा कि राज्यों के लोगों को "अपनी आज़ादी का संघर्ष, स्वयं चलाना चाहिए" (इसके बारे में अधिक जानकारी आप इकाई 32 में प्राप्त करेंगे)।

ii) कांग्रेस की प्रान्तीय इकाइयों से कहा गया कि वे किसानों की समस्या संबंधी जानकारी प्राप्त करें ताकि इसके आधार पर अखिल भारतीय कांग्रेस समिति (ए० आई० सी० सी०) को अखिल भारतीय कृषि कार्यक्रम तैयार करने में सहायता मिल सके।

सबसे महत्वपूर्ण निर्णय यह था कि कांग्रेस ने एक घोषणा पत्र के आधार पर चुनाव लड़ने का निर्णय लिया। तथापि, पद स्वीकार करने का निर्णय स्थगित रखा गया। यह ऐसा मसला था जिस पर कांग्रेस के भीतर काफ़ी तेज़-तीखी बहसें हुईं। उदाहरण के लिए, टी० प्रकाशम और सत्यमूर्ति ने पद स्वीकार करने की ज़ोरदार वकालत की। जबकि एम० आर० मसानी ने इसे अस्वीकार करते हुए कहा:

> "हमसे कहा जाता है कि कांग्रेसी मंत्रिमंडल सरकारी स्कूलों और अन्य संस्थाओं में राष्ट्रीय झंडा फहराने में कामयाब होगा। जिस दिन राष्ट्रीय झंडा यूनियन जैक के नीचे फहराया जायेगा, हमारा झंडा प्रदूषित हो जायेगा हमें नये राष्ट्रीय झंडे की खोज करनी पड़ेगी।"

वास्तव में चुनाव लड़ने और पद स्वीकारने को स्थगित करने का निर्णय, पद स्वीकार करने के पक्षधरों और चुनाव का बहिष्कार करने की मांग करने वालों के बीच एक प्रकार का समझौता था। फिर भी नेतृत्व का एक ऐसा वर्ग था जिसका विश्वास था कि पद स्वीकारने

पर कोई प्रतिबंध नहीं होना चाहिए। मद्रास में मुदलियार और सत्यमूर्ति और मध्यप्रांत (सेंट्रल प्राविन्स) में डॉ. खरे और बहुत से अन्य नेता सोचते थे कि पद स्वीकारने संबंधी घोषणा से चुनाव जीतने की सम्भावनायें बढ़ जायेंगी। कुछ हिस्सों में पद स्वीकारने और भावी मुख्य मंत्रियों संबंधी बातचीत भी शुरू हो गयी थी। लेकिन जैसा कि राजगोपालाचारी ने कहा:

> "कांग्रेस ने एक बार फिर एक संयुक्त मोर्चे के रूप में अपनी क्षमता प्रदर्शित कर दी है। वाद-विवाद में बने पक्षों को विभाजन नहीं समझा जाना चाहिए। वे सामूहिक चिंतन के सामान्य उपकरण हैं।"

२० मीरगंज
इलाहाबाद

प्रिय भाई,

संयुक्त प्रान्तीय कांग्रेस कमेटी ने अपनी ३ मई की बैठक में एक किसान समिति निम्नलिखित सज्जनों की मुक़र्रर की है:—

श्री० पुरुषोत्तम दास टण्डन, श्री० गोविन्द वल्लभ पन्त, श्री० सम्पूर्णानन्द, श्री० वेंकटेश नारायण तिवारी, लालबहादुर।

समिति को यह कार्य सौंपा गया है कि वह उन कारणों का पता लगावे जिनसे किसानों की दशा इस समय इतनी ख़राब हो गयी है, और साथ ही उन उपायों को बतावे जिनसे उनकी मौजूदा हालत में सुधार हो सकता है। प्रान्तीय कमेटी के प्रस्ताव के मुताबिक़ इस समिति को २० जून तक ऐसी संस्थाओं से जो किसानों के काम में दिलचस्पी रखती हैं, रिपोर्ट मँगा लेनी है।

इस समिति ने जाँच करने की सुविधा के लिए एक प्रश्नावली तैयार की है जिसकी एक प्रति आप के पास साथ भेजती हूँ। आप से निवेदन है कि उक्त समय तक इस प्रश्नावली में से जितने सवालों का जवाब दे सकें, खोजकर दें। अगर किसी सवाल का जवाब न दे सकें, तो लिखिए कि किस वजह से नहीं दे सकते। जवाब देने में हर शीर्षक और उसकी अन्तर्गत संख्या का हवाला दीजिएगा ताकि यह पता लग सके कि किस सवाल का कौन सा जवाब है।

आपका
लाल बहादुर
मंत्री
किसान-समिति

हिन्दी-साहित्य प्रेस, प्रयाग।

चित्र 8-यू. पी. किसान समिति द्वारा जारी किया गया एक पैम्फलेट

## 30.3.3 चुनाव घोषणा पत्र

यह संसदीय समिति का काम था कि वह कांग्रेस के चुनाव घोषणा पत्र का प्रारूप तैयार करे। इस घोषणा पत्र का लक्ष्य कांग्रेस की राजनीतिक और आर्थिक नीतियों और कार्यक्रमों को स्पष्ट करना था। अखिल भारतीय कांग्रेस कमेटी द्वारा अगस्त, 1936 में स्वीकार किये गये घोषणा पत्र की प्रमुख विशेषताओं को हम यहां बता रहे हैं।

i) घोषणा पत्र में यह स्पष्ट कहा गया था कि कांग्रेसियों को मंत्रिमंडल में भेजने का उद्देश्य सरकार से सहयोग करना नहीं, बल्कि 1935 के ऐक्ट के विरुद्ध लड़ना और

चित्र 9. राजगोपालाचारी

इसे समाप्त करना है। ब्रिटिश साम्राज्यवाद को "भारत में अपनी जड़ें मज़बूत करने के प्रयासों" से रोका जाना चाहिए।

ii) इसने भारतीय जनता, विशेषकर किसानों, मज़दूरों और कारीगरों की ग़रीबी को प्रमुखता से प्रस्तुत किया और कहा "अपने देश के करोड़ों लोगों के लिए राष्ट्रीय स्वतंत्रता प्राप्त करने का लक्ष्य हमें अपनी आर्थिक, सामाजिक समस्याएं हल करने और अपनी जनता की गरीबी दूर करने का अधिकार दे सकता है।"

iii) कांग्रेसी प्रतिनिधियों का काम भारतीय जनता का दमन करने वाले विभिन्न कानूनों, अध्यादेशों और अधिनियमों को समाप्त करने के लिए हर सम्भव क़दम उठाना था। उन्हें ये काम करने थे:

- नागरिक स्वतंत्रता की स्थापना।
- राजनीतिक कैदियों और नज़रबंदों की मुक्ति।
- किसानों के प्रति किये गये अन्याय का निराकरण करना इत्यादि

iv) औद्योगिक मज़दूरों के संबंध में कांग्रेस की नीति, उनके लिए निम्न स्थितियां प्राप्त करना था।

- बेहतर जीवन स्तर।
- काम के घंटे निश्चित करना।
- श्रम की दशाओं में सुधार लाना।

इनके साथ ही ये बातें भी शामिल थीं:

- संगठन (यूनियन) बनाने का अधिकार।
- मालिकों के साथ विवादों को निपटाने के लिए उचित तंत्र विकसित करना।
- वृद्धावस्था के कारण आर्थिक दुष्परिणामों के विरुद्ध संरक्षण प्रदान करना इत्यादि।

घोषणा पत्र में अन्य अनेक वादे किये गये थे, जैसे कि

- छुआछूत दूर करना
- महिलाओं के लिए समान अधिकार।
- खादी और ग्रामोद्योगों को प्रोत्साहन।
- साम्प्रदायिक समस्याओं का संतोषजनक समाधान इत्यादि।

पद स्वीकार करने के मसले को चुनाव के बाद तय किया जाना था। इस तरह कांग्रेस स्वयं को चुनावों के लिए तैयार कर रही थी और प्रत्याशियों के चयन की प्रक्रिया शुरू कर दी गयी।

लखनऊ अधिवेशन एक अन्य दृष्टिकोण से भी महत्वपूर्ण था। इसी अधिवेशन के दौरान अखिल भारतीय किसान सभा की पहली बैठक स्वामी सहजानंद सरस्वती की अध्यक्षता में हुई।

### 30.3.4 फ़ैज़पुर अधिवेशन

कांग्रेस का अगला अधिवेशन फ़ैज़पुर में दिसम्बर, 1936 में दुबारा जवाहरलाल नेहरू की अध्यक्षता में हुआ। इस अधिवेशन में बहुत से मसले उठाये गये। ये अंतर्राष्ट्रीय और राष्ट्रीय दोनों ही स्थितियों से संबंधित थे। नेहरू ने अपने भाषण में फासीवाद पर हमला किया और कांग्रेस ने एबीसीनिया पर इटली के हमले और चीन पर जापान के हमले की निंदा करते हुए प्रस्ताव पारित किए। कांग्रेस ने विश्वयुद्ध की स्थिति में भारत के संस्थानों को ब्रिटिश द्वारा उपयोग में लाने के विरुद्ध लोगों को चेतावनी दी। राष्ट्रीय मसलों पर नेहरू ने स्पष्ट किया कि:

> "कांग्रेस की नीति की तार्किक परिणति केवल यह है कि उसे पद और मंत्रिमंडल से कुछ लेना-देना नहीं। इस नीति से किसी भी तरह अलग हटने का मतलब होगा.... भारतीय जनता के शोषण में ब्रिटिश साम्राज्यवाद का सहभागी होना"।

इस अधिवेशन में कांग्रेस ने अपना स्वयं का संविधान तैयार करने के लिए संविधान सभा के निर्माण की मांग उठायी। पद स्वीकार करने के सवाल को फिर से टाल दिया गया। फ़ैज़पुर अधिवेशन में जो सबसे महत्वपूर्ण क़दम कांग्रेस ने उठाया वह था एक कृषि कार्यक्रम को स्वीकृति देना। इस कार्यक्रम की प्रमुख विशेषताओं में निम्न बातें शामिल थीं।

- लगान और माल गुज़ारी में 50 प्रतिशत की कमी,
- अनउपजाऊ ज़मीन को लगान और भूमि कर से मुक्त करना,
- कृषि आय पर कर लगाना,
- सामंती उगाही और ज़बरिया मज़दूरी का उन्मूलन,
- सहकारी खेती,
- बकाया लगान को समाप्त करना,
- बेदखली कानूनों को आधुनिक बनाना,
- किसान संगठनों (किसान सभा) आदि को मान्यता देना।

यह कार्यक्रम ज़मींदारी और तालुकेदारी प्रथाओं के उन्मूलन के मामले पर चुप्पी साध गया था। किसान सभा के नेताओं ने आमतौर पर इस कार्यक्रम का स्वागत किया। लेकिन ज़मींदारी उन्मूलन के सवाल पर इसकी आलोचना की क्योंकि वे ज़मींदारी और तालुकेदारी जैसी प्रथाओं को किसानों के शोषण का मूल कारण मानते थे। जयप्रकाश नारायण जैसे समाजवादी नेताओं ने उनका समर्थन किया। यहां यह बताना ज़रूरी है कि कांग्रेस का दक्षिण पक्ष ज़मींदारी उन्मूलन के पक्ष में नहीं था। लेकिन इसमें संदेह नहीं कि कृषि कार्यक्रम एक प्रगतिशील कदम था और जैसा कि हम बाद में जानेंगे, इसने किसानों को कांग्रेस के पीछे लाने में दूरगामी भूमिका निभायी।

इस समय तक कांग्रेस की सदस्यता में ज़बरदस्त बढ़ोतरी हुई थी। उदाहरण के लिए, मई 1936 में कांग्रेस के 4,50,000 सदस्य थे, जो दिसम्बर, 1936 तक बढ़कर 6,36,000 हो गये थे।

**बोध प्रश्न 2**

1 स्थानीय निकायों (संस्थाओं) के चुनाओं में भाग लेने के क्या लाभ कांग्रेस ने उठाये? उत्तर लगभग पांच पंक्तियों में दीजिए।

..........................................................................
..........................................................................
..........................................................................
..........................................................................
..........................................................................

2 पद स्वीकरण के पक्ष में दिये गये तर्कों की चर्चा लगभग पांच पंक्तियों में कीजिए।

..........................................................................
..........................................................................
..........................................................................
..........................................................................
..........................................................................

3 फ़ैजपुर कृषि कार्यक्रम की मुख्य विशेषताओं को लगभग दस पंक्तियों में बताइये।

..........................................................................
..........................................................................
..........................................................................
..........................................................................
..........................................................................
..........................................................................
..........................................................................
..........................................................................

. . . . . . . . . . . . . . . . . . . . . . . . . . . . . . . . . . . . . . . . . . . . . . . . . . . . . . . . . . . . .

. . . . . . . . . . . . . . . . . . . . . . . . . . . . . . . . . . . . . . . . . . . . . . . . . . . . . . . . . . . . .

## 30.4 1937 के चुनाव

कांग्रेस ने एक बार चुनाव लड़ने का फैसला किया तो प्रत्येक कांग्रेसी, कांग्रेसी प्रत्याशियों की सफलता के लिए तन-मन से जुट गया।

### 30.4.1 उम्मीदवारों का चयन

अब हम एक नज़र इस पर डालें कि कांग्रेस ने अपने उम्मीदवारों का चयन किस प्रकार किया। एक सामान्य प्रक्रिया यह थी कि प्रान्तीय कांग्रेस कमेटियां अपनी सिफ़ारिश के साथ उम्मीदवारों के नाम कांग्रेस संसदीय बोर्ड के पास भेजेंगी, और बोर्ड इस मामले में अंतिम निर्णय लेगा। ऐसा करने के लिए प्रदेश कांग्रेस कमेटियों ने एक मानदंड अपनाया जिनमें शामिल था कि एक प्रत्याशी को:

- क्रांग्रेस के अनुशासन का पालन करना चाहिए।
- कांग्रेस के कार्यक्रम का पालन करना चाहिए और उसके लिए काम करना चाहिए।

इन दो आधारभूत गुणों के अलावा प्रदेश कांग्रेस कमेटियों ने कुछ अन्य बातों पर भी ध्यान दिया जैसे कि प्रत्याशी की:

- कांग्रेस के लिए की गयी सेवाएं,
- लोगों के बीच उसकी लोकप्रियता, और
- चुनाव का खर्चा स्वयं उठा सकने की उसकी क्षमता।

उपरोक्त शर्तों के आधार पर सर्वश्रेष्ठ प्रत्याशियों के चयन के लिए किये गये उनके गम्भीर प्रयासों के बावजूद, कुछ मामलों में जाति ने अपनी भूमिका निभायी। जाति की इस भूमिका के बारे में राजेन्द्र प्रसाद ने इस प्रकार लिखा:

> "कांग्रेस जैसे संगठन के लिए ऐसा करना लज्जाजनक है, लेकिन चुनावों में सफल होना हमारा पहला लक्ष्य था, और दूसरे, इस बात को नज़रअंदाज़ नहीं किया जाना चाहिए कि कांग्रेस एक व्यापक संगठन है जिसमें सभी जातियों के लोग शामिल हैं।"

चित्र 10. राजेन्द्र प्रसाद

चित्र 11. वल्लभ भाई पटेल

*A L INDIA KISAN SUPPLEMENT*

# Kisan Movement Ensures Congress Victory

## ANDHRA RYOT ASSOCIATIONS' PLEDGE: SIRDAR'S WARNING: PLEDGE CONTROVERSY & WITHDRAWAL: KISAN MOVEMENT & ELECTIONS

On January 17th Prof. N. G. Ranga, President of the All India Kisan Sabha issued the following statement to the press:—

"In pursuance of the resolution of the Second All India Kisan Congress, which has called upon al Kisan comrades to place all their organisational resources at the disposal of those Congress candidates, who pledge themselves to do their best to implement the minimum demands of the peasants, the Andhra Provincial Peasants' Association has prepared a pledge form. It expects a Congress candidate to vow to do his best to contantly radicalise and liberalise the Congress attitude towards peasants and to try to achieve the peasants' demands (as formulated by the Kisan Congress) by suitably influencing the day to day decisions of the Congress Parliamentary Party."

SARDAR VALLABHBHAI PATEL'S WARNING.

On January 20th Sardar Vallabhbhai Patel, President of the All India Congress Parliamentary Committee wrote as follows to the Presidents of the various Parliamentary Boards in the Madras Presidency with reference to the Kisan pledge mentioned above:—

Prof. Ranga is a member of the A. I. C. C. from your province and is a member of the Legislative Assembly elected on Congress ticket; that a responsible man of his position should have thought fit to circulate a pledge, which has not been approved by the A.I.C.C. amongst the candidates, who are pledged to contest elections on the Congress Manifesto is very regrettable. In my opinion, it is an act of gross indiscipline, and he should be called upon to explain his conduct and disciplinary action be taken against him forthwith."

ANDHRA RYOTS' ASSOCIATION SECRETARY'S REPLY.

On January 22nd. the Joint Secretary of the \ndhra Provincial Ryots' Association issued a spirited reply to the threat of Sardar Patel for taking disciplinary action against Prof. Ranga. He stated:—

"Neither the Andhra Peasants' Association nor Mr. Ranga called upon the Congress candidates to disobey the Congress or put the interests of the Nation second to those of the peasants. Peasants are never disloyal to the Congress and they are always its loyal allies. Unlike the Trade Union Congress or the Congress Nationalist Party, the Kisan Sabha has not thought it fit to organise a separate election campaign merely because the present agrarian programme of the Congress falls far short of the Minimum Demands or because the Congress failed to state in unequivocal terms its attitude towards the abolition of the Zamindari system or absentee landlordism. In fact, the Andhra Provincial Ryots' Conference held at Nidubrole last May demanded of its President, Mr. Ranga, to organise an independent peasants' parliamentary programme. But for his lucky interyention, things would have taken an altogether different turn."

After referring to the existence of the Peasants' Group of nearly 30 members of the Indian Legislative Assembly with Dr Khan Sahib as its President, and to the agrarian programme adopted by th Indian National Congress at Faizpur, the Secretary concluded his reply as follows:—

"I may inform Sardar Patel that Mr. Ranga is not alone responsible for this pledge, but the whole Kisan Sabha, which passed their resolution, and it has within its fold many Congressmen. So the Sardar has to take wholesale disciplinary action. But before he launches upon that extreme step, he would do well to realise that this pledge, while blowing the winds off the sails of the Justice Party, which claims to have done so much for the peasants for the last ten years when they were in power, strengthens the Congress candidates, where the Congress has to encounter the Zamindari vested interest in this Presidency. If the Sardar insists on his unwise and unjust disciplinary action, the peasants will surely stick to their guns, which is not safe either for the Congress or the Kisans."

PROF. RANGA WITHDRAWS THE PLEDGE.

On January 23rd. Prof. Ranga issued the following statement:—

I have seen Sardar Vallabhbhai's statement regarding the peasants demand for a pledge from the Congress candidates to continuously liberalise the ( igress attitude towards the peasants

कुछ मामलों में चयन को लेकर विवाद भी हुए। उदाहरण के लिए, स्वामी सहजानंद सरस्वती बिहार में यह देखकर दु:खी थे कि जिन व्यक्तियों का चुनाव लड़ने के लिए चयन किया गया है उनमें से कुछ वास्तव में अवसरवादी थे। जिनका इससे पहले कांग्रेस से कुछ भी लेना-देना नहीं था। इसी प्रकार बम्बई में भी के० एफ० नरीमन और वल्लभ भाई पटेल के बीच मतभेद पैदा हो गये थे। आंध्र में, एन० जी० रंगा ने, आंध्र रैयत (Ryots) संघ की ओर से बोलते हुए, कांग्रेसी प्रत्याशियों से एक शपथ लेने का आग्रह किया था। यह शपथ प्रत्याशियों को विधानमंडल के अंदर और बाहर किसानों के हित के लिए काम करने से बांधती थी। बहुत से कांग्रेसी प्रत्याशियों ने इस शपथ पर हस्ताक्षर किये मगर वल्लभ भाई पटेल ने इस कदम की आलोचना की। रंगा ने यह स्पष्ट किया कि यह कदम किसी भी तरह कांग्रेस के अनुशासन के विरुद्ध नहीं है बल्कि इससे कांग्रेसी संगठन मज़बूत होगा। लेकिन पटेल अड़े हुए थे, इसलिए रंगा को यह शपथ वाला कदम वापस लेना पड़ा।

### 30.4.2 चुनाव अभियान

एक ज़बरदस्त चुनाव अभियान चलाकर कांग्रेस ने चुनाव में विजय प्राप्त करने की भरपूर कोशिश की। नेहरू ने कांग्रेस के कार्यकर्त्ताओं को सलाह दी कि फ़ैज़पुर कृषि कार्यक्रम को हमारे चुनाव अभियान में महत्वपूर्ण स्थान मिलना चाहिए। स्वयं नेहरू ने सारे देश का दौरा किया। इलाहाबाद के ग्रामीणों में प्रचार करते हुए उन्होंने कहा :

> "भारत में केवल दो दल हैं—एक जो लोगों के हित के लिए लड़ रहा है, और दूसरा इसके विरुद्ध।.... कांग्रेस, ख़ान बहादुरों, राजा बहादुरों और नवाबों को जो कि सरकार के साथ रहे हैं, बाहर करने के लिए परिषदों में प्रवेश कर रही है।"

लोगों में एक आम भावना घर कर रही थी कि बहुत जल्दी कांग्रेसी राज, ब्रिटिश राज की जगह पर आ जायेगा। यू० पी० के गवर्नर ने कांग्रेस के अभियान के बारे में वाइसरॉय को लिखा :

"कांग्रेसी कार्यकर्त्ता अपने साथ कापियां लेकर घूम रहे हैं और काश्तकारों से पूछते हैं कि वे इस समय कितना लगान दे रहे हैं? काश्तकार कहते हैं शायद दो रुपया प्रति बीघा।" कांग्रेस कार्यकर्त्ता कहते हैं ठीक है, अगर तुम लोग कांग्रेस को वोट देते हो तो यह लगान घटाकर चार आने कर दिया जायेगा।" "वह इसे अपनी कापी में दर्ज कर लेता है....।"

बिहार में चुनाव ने "किसान बनाम ज़मींदार" का मोड़ ले लिया। देहात में तब तक लोकप्रिय चुनाव गीत था "मगर कोठरी में बदल जायेंगे" (इसका अर्थ यह था कि वोट डालने वाले कमरे में अपना निर्णय बदल देंगे) और यह गीत उन लोगों के द्वारा गाया जाता था जिन्हें ग़ैर-कांग्रेसी प्रत्याशी अपने पक्ष में मतदान करने के लिए बाध्य कर रहे थे। मद्रास में, कांग्रेसी प्रत्याशियों के प्रचार के लिए सत्यमूर्ति ने 9,000 मील का दौरा किया। यहां प्रचार यह था कि "पीले बक्से में मत डालें क्योंकि व्यवहारिक तौर पर सभी कांग्रेसी प्रत्याशियों ने पीले रंग की मतपेटियों का चुनाव किया था। यह बहुत साफ़ था कि 'जस्टिस पार्टी' चुनाव हार जायेगी। देश भर में मतदाताओं में भारी उत्साह था। फिर भी, कुछ स्थानों पर कांग्रेस की हालत नाज़ुक थी। उदाहरण के लिए, बंगाल में, "प्रजा कृषक पार्टी" काफ़ी लोकप्रिय थी, और लगभग इसी स्थिति में "यूनियनिस्ट पार्टी" पंजाब में थी। यू० पी० में ज़मींदारों ने चुनाव लड़ने के लिए जल्दबाज़ी में "नेशनलिस्ट एग्रीकल्चरिस्ट पार्टी" का गठन किया लेकिन यह पार्टी मतदाताओं को प्रभावित नहीं कर सकी। इन क्षेत्रीय दलों के अलावा कांग्रेस को मुस्लिम लीग और हिन्दू महासभा जैसी साम्प्रदायिक आधार पर राजनीति चलाने वाली पार्टियों की चुनौतियों का भी सामना करना पड़ा।

### 30.4.3 चुनाव परिणाम

विभिन्न प्रांतों में विभिन्न तिथियों में चुनाव हुए थे। चुनाव परिणाम कांग्रेस के लिए बहुत ही उत्साहवर्धक रहे। बंगाल, पंजाब और सिंध को छोड़कर बाकी क्षेत्रों में कांग्रेस ने बहुत अच्छी स्थिति दर्शायी। पांच प्रांतों में इसे स्पष्ट बहुमत मिला। (देखिये तालिका1)

**तालिका 1**

| प्रांत | सीटों की कुल संख्या | कांग्रेस को प्राप्त सीटें |
|---|---|---|
| यू० पी० | 228 | 134 |
| बिहार | 152 | 95 |
| मद्रास | 215 | 159 |
| सी० पी० | 112 | 70 |
| उड़ीसा | 60 | 36 |
| बम्बई | 175 | 87 |
| बंगाल | 250 | 60 |
| सिंध | 60 | 8 |
| असम | 108 | 35 |
| एन० डब्लू० एफ० पी० | 50 | 19 |
| (उत्तर पश्चिम सीमा प्रांत) पंजाब | 175 | 18 |

बंगाल में उत्तर पश्चिम सीमा प्रांत, असम और बंबई में कांग्रेस अकेली सबसे बड़ी पार्टी के रूप में उभर कर आयी, जबकि पंजाब और सिंध में इसकी स्थिति कमज़ोर थी। पंजाब की पार्टीवार स्थिति तालिका-2 में और बम्बई की पार्टीवार स्थिति तालिका-3 में दर्शायी गयी है।

**तालिका 2 (पंजाब)**

| | |
|---|---|
| कांग्रेस | 18 |
| यूनियनिस्ट पार्टी | 98 |
| हिन्दू महासभा | 12 |
| अकाली | 11 |
| खालसा नेशनल पार्टी | 13 |
| मुस्लिम लीग | 2 |
| अन्य | 21 |
| | 175 |

**तालिका 3 (बंबई)**

| | |
|---|---|
| ग़ैर-ब्राह्मण पार्टी | 8 |
| कांग्रेस | 87 |
| मुस्लिम लीग | 10 |
| मुस्लिम निर्दलीय | 12 |
| निर्दलीय | 17 |
| यूरोपीय | 6 |
| पीजेंट (किसान) पार्टी | 2 |
| इंडिपेंडेंट लेबर पार्टी | 13 |
| अन्य | 20 |
| | 175 |

उच्च सदनों के लिए कांग्रेस का प्रदर्शन इतना अच्छा नहीं रहा क्योंकि यहां मताधिकार केवल सभ्रांत वर्ग तक ही सीमित था (देखिये तालिका 4)

**तालिका 4**
**विधान परिषद (उच्च सदन) परिणाम**

| प्रांत | कुल सीटें | कांग्रेस को प्राप्त सीटें |
|---|---|---|
| मद्रास | 46 | 26 |
| बम्बई | 26 | 13 |
| बिहार | 26 | 8 |
| यू० पी० | 52 | 8 |
| बंगाल | 57 | 9 |

जहां तक सुरक्षित सीटों का सवाल है हम कांग्रेस की स्थिति के कुछ उदाहरण यहां दे रहे हैं (सभी 11 प्रान्तों में)

- मज़दूरों के लिए सुरक्षित 38 सीटों में से कांग्रेस ने 20 पर चुनाव लड़ा और 18 पर विजय प्राप्त की।
- 482 सीटें, मुस्लिम सीटों के रूप में आरक्षित थीं। कांग्रेस ने 58 पर अपने उम्मीदवार खड़े किये और 26 पर वे जीते इनमें से 19 उत्तर पश्चिम सीमांत प्रांत की थीं। बम्बई, यू० पी०, सी० पी०, सिंध और बंगाल में कांग्रेस एक भी मुस्लिम सीट प्राप्त नहीं कर सकी। फिर भी, यहां यह उल्लेखनीय है कि मुस्लिम लीग का प्रदर्शन भी बेहतर नहीं था। यह उत्तर पश्चिम सीमांत प्रांत में एक भी सीट नहीं जीत सकी। पंजाब में 84 आरक्षित सीटों में से इसे केवल दो सीटें प्राप्त हुईं।
- वाणिज्य और उद्योग के लिए 56 सीटें आरक्षित थीं। कांग्रेस ने 8 पर चुनाव लड़ा और केवल 3 सीटें जीतीं।
- भूस्वामियों के लिए 37 सीटें आरक्षित थीं। कांग्रेस ने 8 पर चुनाव लड़ा और 4 पर विजय प्राप्त की।

इस तरह सुरिक्षत चुनाव क्षेत्रों में कांग्रेस का प्रदर्शन सिवाय मज़दूर सीटों के संतोषप्रद नहीं था, मगर सामान्य सीटों पर कांग्रेस का प्रदर्शन बहुत अच्छा था। अपनी चुनावी जीत पर कांग्रेस कार्य समिति ने लोगों को निम्न संदेश दिया:

'कांग्रेस कार्यसमिति हाल के चुनावो में कांग्रेस के आह्वान पर, कांग्रेस की नीतियों के प्रति जन समर्थन का प्रदर्शन करने वाले शानदार प्रत्युत्तर के लिए राष्ट्र को बधाई देती है।''

**बोध प्रश्न 3**

1 कांग्रेस प्रत्याशियों के चयन के लिए अपनाये गये मानदंडों को क़रीब पांच पंक्तियों में स्पष्ट कीजिए।

........................................................................
........................................................................
........................................................................
........................................................................
........................................................................

2 निम्न में से कौन सा सही (√) और कौन सा ग़लत (×) है।
   i) पटेल ने एन० जी० रंगा की शपथ का समर्थन किया। ☐
   ii) नेहरू कृषि कार्यक्रम को चुनाव अभियान में प्रमुख स्थान देना चाहते थे। ☐
   iii) लोगों का विश्वास था कि कांग्रेस राज ब्रिटिश राज का स्थान ले लेगा। ☐
   iv) मुस्लिम सुरक्षित सीटों पर कांग्रेस ने अच्छा प्रदर्शन किया। ☐
   v) कांग्रेस ने उच्च सदनों के चुनाव में अच्छा प्रदर्शन नहीं किया। ☐

## 30.5 पद स्वीकरण (Office Acceptance)

जैसा कि हम पहले देख चुके हैं, पद स्वीकार करने का निर्णय कांग्रेस के आंतरिक मतभेदों के कारण लम्बित छोड़ दिया गया था। इस मामले पर विचार करने के लिए मार्च, 1937 में अखिल भारतीय कांग्रेस कमेटी की बैठक हुई। राजेन्द्र प्रसाद ने पद के "सशर्त स्वीकरण" का एक प्रस्ताव रखा जिसे स्वीकार कर लिया गया। जोड़ी गयी शर्त यह थी कि मंत्रिमंडलों के कामकाज में हस्तक्षेप करने के लिए गवर्नर अपने विशेषाधिकारों का इस्तेमाल नहीं करेंगे यहां जयप्रकाश नारायण ने पद को पूरी तरह अस्वीकार करने का एक प्रस्ताव रखा लेकिन मतदान कराये जाने पर यह प्रस्ताव नामंजूर हो गया (पक्ष में 78 और विरोध में 135 मत) कांग्रेस के अंदर यह दक्षिण पक्ष की बड़ी विजय मानी गयी। स्वयं गांधीजी पद के सशर्त स्वीकरण के पक्ष में थे।

इस बार फिर पद स्वीकरण के पक्ष और विपक्ष में तर्क दोहराये गये। मंत्रिमंडल गठित करने के पक्ष में एक मुख्य तर्क यह था कि इसके माध्यम से कांग्रेस किसान और मज़दूरों को कुछ राहत दे सकेगी। लेकिन एन० जी० रंगा, सहजानंद सरस्वती, इंदुलाल याजनिक जैसे नेताओं ने पद स्वीकार करने को साम्राज्यवाद के साथ असहयोग की मूल कांग्रेसी नीति से पीछे हटना बताया। सहजानंद ने महसूस किया कि पद स्वीकारने के पक्षधर अपने आप को निरुत्तर महसूस कर रहे हैं और वे "किसानों का बहाना लेकर बचने की कोशिश कर रहे हैं" और जैसा कि वल्लभ भाई पटेल ने इसे स्पष्ट किया:

"संसदीय मानसिकता लोगों में घर करने लगी थी"

उन 6 प्रांतों में जहां कांग्रेस बहुमत में आयी थी, गवर्नरों द्वारा इसके नेताओं को मंत्रिमंडल गठित करने के लिए आमंत्रित किया गया। लेकिन कांग्रेस द्वारा रखी गयी शर्तों पर गवर्नरों द्वारा आश्वासन देने से इंकार किये जाने पर इस आमंत्रण को ठुकरा दिया गया। सरकार का अगला क़दम इन प्रांतों में अंतरिम सरकारों का गठन करना था। उदाहरण के लिए, नवाब छतारी ने यू० पी० में अपने मंत्रिमंडल का गठन किया और बम्बई में धनजीशाह कपूर ने मंत्रिमंडल बनाया।

यहां यह बात ध्यान देने योग्य है कि ये ऐसे मंत्रिमंडल थे जिनका विधान मंडलों में बहुमत नहीं था। इसलिए ये 6 महीने से ज़्यादा सत्ता में नहीं रह सके। बम्बई में बहुत से कांग्रेसी जो पदस्वीकरण के पक्ष में थे, सरकार के इस क़दम से समझौता नहीं कर सके। कुछ यह भी महसूस करते थे कि क़ायदे से जो उन्हें मिलना चाहिए था उसे दूसरों को दे दिया गया था। इसलिए उन्होंने कार्य समिति पर पद स्वीकार करने के पक्ष में दबाव डालने के लिए ज़ोरदार प्रयास किए। इसी प्रकार की स्थिति राजगोपालाचारी के नेतृत्व में मद्रास में भी पैदा हो गयी। राजगोपालाचारी इस समय तक सत्ता संभालने के प्रबल पक्षधर हो चुके थे। बिहार में, किसान जांच समिति का काम फिर से शुरू कर दिया गया, लेकिन सभाओं में जो बात कही जा रही थी, वह पद स्वीकार करने की थी। यू० पी० में किसानों को लगान न देने के लिए उत्साहित किया गया था, इस आश्वासन के आधार पर कि जब कांग्रेस मंत्रिमंडल का गठन करेगी तो सारा बक़ाया लगान माफ़ कर देगी।

कम मामलों में गवर्नरों ने (जैसे कि मद्रास के गवर्नर लार्ड एरिस्किन) वाइसरॉय के सामने विधानमंडलों को भंग करने का प्रस्ताव रखा लेकिन, लिनलिथगो महसूस करते थे कि कांग्रेस जल्दी ही घुटने टेक देगी और यह थोड़े ही समय का मसला है। साथ ही उसे यह भी मालूम था कि जो कांग्रेसी पद स्वीकरण के पक्ष में थे उन्होंने कांग्रेस हाईकमान के फैसले का पालन करने में असाधारण अनुशासन प्रदर्शित किया था। 20 जून को वाइसरॉय ने मंत्रियों की तुलना में गवर्नरों के विशेषाधिकारों के संबंध में सरकार की स्थिति का स्पष्टीकरण दिया। तब वर्धा में जुलाई के पहले सप्ताह में कांग्रेस कार्य समिति की बैठक हुई और इस बैठक में पद स्वीकार करने की अनुमति प्रदान कर दी गई।

यहां यह उल्लेख करना आवश्यक है कि भारत के अधिकांश पूँजीपति कांग्रेस द्वारा पद

चित्र 13. गोविन्दवल्लभ पंत

स्वीकार किए जाने के पक्ष में थे। जी० डी० बिड़ला इस दिशा में लगातार प्रयास करते रहे। और निरंतर कांग्रेसी नेताओं के सम्पर्क में थे। जब गांधीजी ने अंतिम रूप से पद के लिए अपनी सहमति प्रकट कर दी तो बिड़ला ने महादेव देसाई को लिखा था:
मेरा मन मुझे यह भरोसा करने के लिए गुदगुदा रहा है कि बापू के मन को प्रभावित करने में मेरे पत्रों का भी कुछ योगदान रहा होगा।

सरकार को कांग्रेस के निकट लाने के लिए बिड़ला इतने अधिक उत्सुक थे कि उन्होंने गांधीजी के वक्तव्य के बारे में स्टेट सेक्रेटरी लार्ड जैटलैंड को सूचित किया था कि "पदस्वीकरण एक ओर तो **खूनी क्रान्ति** को और दूसरी ओर व्यापक नागरिक अवज्ञा को रोकने का प्रयास था"।

अंतरिम मंत्रिमंडलों के पद त्याग के बाद कांग्रेसी मंत्रिमंडलों का गठन किया गया। यह स्वतंत्रता के संघर्ष में एक नये युग की शुरुआत थी।

| **प्रांत** | **कांग्रेसी प्रधानमंत्री** |
|---|---|
| बम्बई | बी० जी० खैर |
| यू० पी० | गोविंद वल्लभ पंत |
| मद्रास | सी० राजगोपालाचारी |
| उड़ीसा | हरेकृष्ण महताब |
| सी० पी० | डा० खरे |
| बिहार | श्री कृष्ण सिन्हा |
| उत्तर पश्चिम सीमांत प्रांत | डा० ख़ान साहब |

बंगाल में मिली-जुली सरकार बनाने में सहयोग करने के लिए कांग्रेस को आमंत्रित किया। कांग्रेस ने इंकार कर दिया तो हक ने मुस्लिम लीग के साथ हाथ मिला लिया। सिंध में कांग्रेस ने ग़ुलाम हुसैन हिदायत उल्ला के मंत्रिमंडल को, और असम में बरदोलाई के मंत्रिमंडल को समर्थन दिया। पंजाब में कांग्रेस कोई महत्वपूर्ण भूमिका निभाने की स्थिति में नहीं थी।

कांग्रेस ने पद स्वीकार करने के फैसले में 6 महीने का विलम्ब किया था। **रवि धवन शंकर दास** के अनुसार (द फर्स्ट कांग्रेस राज 1982) इस विलम्ब से कांग्रेस को निम्नलिखित लाभ हुए:

i) इस विलम्ब में चुनाव के समय के कांग्रेस विरोधी इस प्रोपेगैंडा को झुठला दिया कि कांग्रेसी पद के भूखे हैं, और मंत्रिमंडल बनाने का पहला मौका मिलते ही इसे लपक लेंगे।
ii) कांग्रेस की एकता बनी रही और यह लोगों के सामने आयी।
iii) गवर्नरों और मंत्रियों के सामने यह बात स्पष्ट हो गयी कि कांग्रेस हाईकमान का निर्णय ही सर्वोच्च था।
vi) मंत्रियों के कामकाज में दख़ल देने से पहले गवर्नरों को कई बार सोचना पड़ता था।

## 30.6 कांग्रेस मंत्रिमंडलों का कामकाज

कांग्रेस के सामने जो काम था वह बहुत विशाल था। ख़ासतौर से उन अपेक्षाओं के कारण जो लोग कांग्रेस से उम्मीद रखते थे। कांग्रेसी मंत्रिमंडलों के एक-एक दिन का लेखा-जोखा प्रस्तुत करने के बजाए हम यहां विषयगत रूप से यह बताना चाहेंगे कि अपने लगभग ढाई वर्ष के कार्यकाल में कांग्रेस ने क्या किया।

### 30.6.1 राजनीतिक क़ैदी और नागरिक स्वतंत्रताएं

क़ांग्रेस अपने चुनाव के घोषणा पत्र के माध्यम से, राजनीतिक क़ैदियों और नज़रबंदियों की रिहाई के लिए वचनबद्ध थी। इनमें से बहुत से बिना मुकद्दमा चलाये जेलों में रखे जा रहे थे। अडंमान के क़ैदियों ने गांधीजी को लिखा था कि उनका अब हिंसा के रास्ते में विश्वास नहीं रहा । सबसे अधिक राजनीतिक कैदी बंगाल में थे, जो एक ग़ैर कांग्रेसी शासन वाला प्रांत था। उनकी मुक्ति की बातचीत के लिए गांधीजी स्वयं कलकत्ता गये। 3 सप्ताह की लम्बी बातचीत के बाद उन्हें 1100 नज़रबंदियों की रिहाई कराने में सफलता मिली। यू०पी० में बहुत से क़ैदियों को मुक्त किया, जिनमें से प्रमुख थे, काकोरी कांड के बंदी। इन क़ैदियों के स्वागत में व्यापक जन प्रदर्शन हुए लेकिन अंग्रेज़ सरकार को यह सब पसंद नहीं आया। गांधीजी, गोविन्द वल्लभ पंत, और जवाहरलाल नेहरू ने क़ैदियों की रिहाई का स्वागत किया। मगर उनके स्वागत आयोजनों की आलोचना की। पंत का मानना था जनता का इस प्रकार का प्रत्युत्तर अन्य क़ैदियों की रिहाई में बाधा पैदा कर सकता था और हुआ भी यही। यू०पी० और बिहार के गवर्नरों ने क़ैदियों की मुक्ति पर रोक लगा दी। हरीपुरा अधिवेशन (मार्च, 1938) से ठीक पहले इन प्रांतों के प्रधानमंत्रियों ने इस मुद्दे पर त्यागपत्र दे दिए। हरीपुरा में कांग्रेस की स्थिति स्पष्टता से रखी गयी कि वह हिंसात्मक अपराध के मामले में कार्रवाई करने में झिझकेगी नहीं, लेकिन क्योंकि क़ैदी हिंसा को त्याग चुके थे इसलिए उन्हें मुक्त करने में कोई ख़तरा नहीं था। अंततः सरकार को झुकना पड़ा।

कांग्रेस ने रासबिहारी बोस, पृथ्वी सिंह, मौलवी अब्दुल्ला ख़ान, अबाली मुखर्जी इत्यादि राजनीतिक निर्वासितों के भारत आने पर लगे प्रतिबंध को हटाने के लिए भी कोशिशें की, परंतु कांग्रेस इस दिशा में ज्यादा कुछ नहीं कर सकी।

कांग्रेस अहिंसा के दायरे में नागरिक स्वतंत्रताओं से भी प्रतिबद्ध थी। सितम्बर, 1938 में अखिल भारतीय कांग्रेस कमेटी ने प्रस्ताव पारित किया:

> "....कांग्रेस जनता को चेतावनी देती है कि नागरिक स्वतंत्रता के अंतर्गत हिंसात्मक कृत्य, हिंसा के लिए उकसाने, या खुले झूठ के प्रचार आदि के काम नहीं आते" यह स्पष्ट कर दिया गया कि "कांग्रेस अपनी परम्पराओं के अनुकूल उन उपायों का समर्थन करेगी जो कांग्रेस सरकारों द्वारा जीवन और सम्पत्ति की सुरक्षा के लिए अपनाये जा सकते हैं"

कांग्रेस का वामपंथी धड़ा इस प्रकार के दृष्टिकोण का विरोधी था, और, इस प्रस्ताव को कांग्रेस में वामपंथियों की हार के रूप में लिया गया।

### 30.6.2 किसानों का सवाल

किसानों की समस्या एक ज्वलंत सवाल के रूप में मौजूद थी। जवाहरलाल नेहरू ने कहा था "भारत की एकमात्र सबसे बड़ी समस्या किसान समस्या है। बाक़ी सब दूसरे नम्बर पर आता है।" उनका विश्वास था कि कांग्रेस मंत्रिमंडलों का गठन होने से किसानों में नयी उम्मीदें जागी हैं, जबकि "बड़े ज़मींदार और ताल्लुकेदार किसानों को उनका न्यायपूर्ण हक़ मिलने से रोकने के लिए संगठित हो रहे हैं" उन्होंने ज़ोर देकर कहा कि अपने वादों के प्रति वफ़ादार रहना चाहिए और किसानों की उम्मीदों को पूरा और संतुष्ट करना चाहिए। किसान सभा ने 1935 में कांग्रेसी अध्यक्ष के इस प्रकार के वक्तव्य का स्वागत किया। कांग्रेस शासित सभी प्रांतों में काश्तकारी विधेयक लाया गया। दक्षिणपंथी गुट ज़मींदारों से बातचीत किये बिना इस मामले में आगे नहीं बढ़ना चाहता था। यह स्थिति हर प्रांत में भिन्न थी। उदाहरण के लिए, बिहार में काश्तकारी विधेयक के प्रावधानों को लेकर कांग्रेस ने ज़मींदारों के साथ एक समझौता किया। इस समझौते को सम्पन्न कराने में मौलाना आज़ाद और राजेन्द्र प्रसाद की प्रमुख भूमिका रही। बिहार किसान सभा की पूरी तरह उपेक्षा कर दी गयी। इस विधेयक की न केवल वामपंथी धड़े ने कटु आलोचना की बल्कि किसान हितों से सहानुभूति रखने वाले दूसरे कांग्रेसियों ने भी इसकी आलोचना की। प्रसाद ने दरभंगा के महाराज को लिखा था कि "उनकी न केवल किसान सभा द्वारा भारी आलोचना की जायेगी बल्कि आमतौर पर कांग्रेस और शायद हाईकमान द्वारा भी आलोचना की जायेगी।" यही वह

समय था जब कांग्रेसियों के किसान सभा की गतिविधियों में भाग लेने पर प्रतिबंध लगा दिया गया। बिहार में कांग्रेस की नीति एक हद तक ज़मींदारी समर्थक थी। ज़मींदारों को भरोसा था कि उनकी ख़ातिर ही कांग्रेस द्वारा किसान आंदोलन को दबाया जा रहा है। दूसरी ओर, किसान सभा में कांग्रेस को फ़ैज़पुर कृषि कार्यक्रम लागू करने की याद दिलाने के लिए क्षेत्रीय स्तर पर कई संघर्ष शुरू कर दिये।

यू० पी० में हालत बिहार से भिन्न थी। यू० पी० कांग्रेस में वामपक्ष का अधिक बोलबाला था। जो काश्तकारी विधेयक यहां पारित हुआ, उसे इसके पारित किये जाने के दो साल बाद तक भी गवर्नर का अनुमोदन नहीं मिला।

बम्बई में कांग्रेस उस भूमि को जो नागरिक अवज्ञा आंदोलन के "लगान नहीं" अभियान के परिणामस्वरूप नये स्वामियों को बेच दी गयी थी, उसे उनके मूल स्वामियों को वापस दिलाने में कामयाब हुई।

सभी प्रांतों में किसानों को साहूकारों से बचाने और सिंचाई सुविधाएं बढ़ाने के प्रयास किये गये। लेकिन अधिकांश क्षेत्रों में ज़मींदार मज़बूत स्थिति में रहे। उदाहरण के लिए, उड़ीसा में कालीकोट के ज़मींदार ने रिज़र्व पुलिस के लॉरी सवार जवानों की परेड, किसानों को यह चेतावनी देने के लिए करवायी गयी कि वह कांग्रेसी शासन में भी उतना ही ताक़तवर है जितना कि पहले था लेकिन कुल मिलाकर यह किसानों के बीच ज़बरदस्त जागृति का समय था, और ये किसान कांग्रेस के पीछे थे।

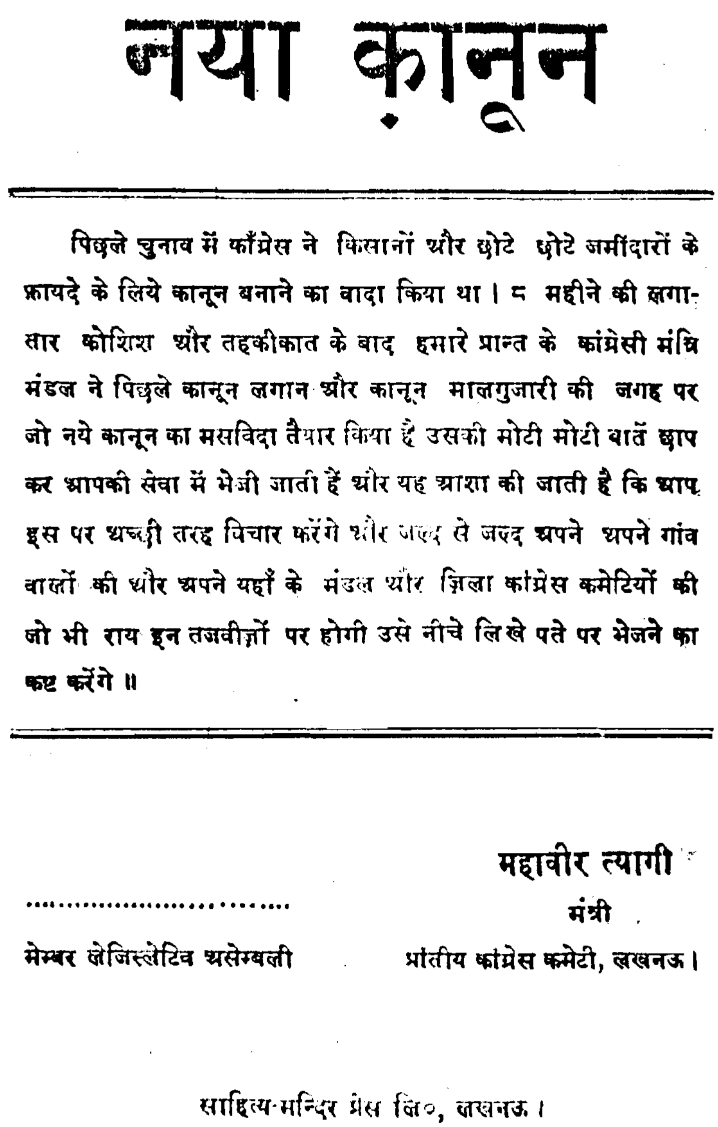
नया क़ानून

पिछले चुनाव में कांग्रेस ने किसानों और छोटे छोटे जमींदारों के फ़ायदे के लिये कानून बनाने का वादा किया था। ८ महीने की लगातार कोशिश और तहकीकात के बाद हमारे प्रान्त के कांग्रेसी मंत्रि मंडल ने पिछले कानून लगान और कानून मालगुजारी की जगह पर जो नये कानून का मसविदा तैयार किया है उसकी मोटी मोटी बातें छाप कर आपकी सेवा में भेजी जाती हैं और यह आशा की जाती है कि आप इस पर अच्छी तरह विचार करेंगे और जल्द से जल्द अपने अपने गांव वालों की और अपने यहाँ के मंडल और ज़िला कांग्रेस कमेटियों की जो भी राय इन तजवीज़ों पर होगी उसे नीचे लिखे पते पर भेजने का कष्ट करेंगे॥

महावीर त्यागी

.............................. मंत्री

मेम्बर लेजिस्लेटिव असेम्बली — प्रांतीय कांग्रेस कमेटी, लखनऊ।

साहित्य-मन्दिर प्रेस लि०, लखनऊ।

चित्र 14. यू० पी० काश्तकारी विधेयक के मसौदे पर कांग्रेस के नेताओं के बयान

## महकमे माल के मंत्री

### श्री रफ़ीअहमद किदवाई का वक्तव्य

किसानों का जीवन मुसीबतों से भरा हुआ है वे लगान के बोझ से दबे हुए हैं। जमीन पर उनका हक़ सुरक्षित नहीं है क्योंकि वे अनेक बहानों से बेदखल किये जा सकते हैं। कभी-कभी उनसे ऐसी नाजायज़ रक़में वसूल करली जाती हैं जो ग़ैर क़ानूनी हैं।

जो नई तजवीजें हम पेश कर रहे हैं उनसे ये सब ज्यादतियाँ रुक जायेंगी। तमाम किसानों को मौरूसी हक़ दिये जायेंगे। लगान की नादेहंदी के सिवा, वे किसी और कारण से बेदखल नहीं हो सकेंगे। लगान की दर बदल दी जायगी और लगान की कमी बेशी क़ानून के ज़रिये हुआ करेगी, किसानों को अपनी ज़मीन पर पेड़ लगाने और मकान बनाने के हक़ होंगे। जमींदार किसानों से जो भी रक़म वसूल करेगा उसकी रसीद लाज़िमी देनी पड़ेगी। क़ानूनी लगान के सिवा और तमाम मुतालवे नाजायज़ होंगे।

मैं जानता हूँ कि इनके अलावा किसानों के और भी कई गंभीर मसले हैं, जिनका ज़िक्र इस मसौदे में नहीं आया। उनके लिये भी अलग क़ानून बनेंगे।

इसके फ़ौरन ही बाद क़र्ज़े का सवाल हल किया जायगा। इसी तरह आबादी के संबंध में भी क़ानून बनाये जायेंगे। ये तो सिर्फ़ काश्तकारी हक़ का मसौदा है।

मुझे पूरी उम्मीद है कि इस मसविदे से किसानों की तकलीफ़ें बहुत हद तक दूर होंगी।

लखनऊ। आपका

१० अप्रैल १९३८ रफ़ीअहमद क़िदवाई

चित्र 14. यू० पी० काश्तकारी विधेयक के मसौदे पर कांग्रेस के नेताओं के बयान

### 30.6.3 मज़दूर

कांग्रेस ने श्रमिक वर्ग से बेहतर कार्य दशाओं का वादा किया था। मगर इसकी श्रमनीति वामपक्ष और दक्षिणपक्ष के बीच परस्पर संबंधों से प्रभावित थी। दक्षिणपक्ष का विश्वास था कि मज़दूरों और पूंजीपतियों का रिश्ता न्यासिता (ट्रस्टीशिप) के गांधीवादी सिद्धांत पर आधारित होना चाहिए, लेकिन वामपक्ष इस रिश्ते को वर्गीय समीकरण पर आधारित करता

था। अक्तूबर, 1937 में कांग्रेस द्वारा नियुक्त मज़दूर समिति (लेबर कमेटी) ने एक कार्यक्रम दिया जिसे ए.आई.सी.सी. (अखिल भारतीय कांग्रेस कमेटी) द्वारा स्वीकार कर लिया गया। इस कार्यक्रम में निम्नलिखित बातें शामिल थीं:

- वेतन सहित छुट्टियां
- रोज़गार बीमा
- बीमारी के दौरान सवेतन अवकाश
- न्यूनतम वेतन निर्धारण का रास्ता खोजना
- शांतिपूर्ण और वैधानिक तरीकों की नीति पर चलने वाले श्रमिक संगठनों (ट्रेड यूनियनों) को राज्य से मान्यता दिलवाना।

तथापि, बम्बई ही अकेला ऐसा प्रांत था, जहां श्रम संबंधी विधेयक लाया गया। मंत्रिमंडल ने जहां तक संभव हुआ हड़ताल और तालाबंदी रोकने के उद्देश्य से औद्योगिक विवाद विधेयक प्रस्तुत किया। मज़दूरों के अनुसार इसका मतलब केवल हड़तालों पर रोक लगाना था क्योंकि तालाबंदी मज़दूरों के शोषण के लिए पूंजीपतियों के तरकश का सबसे तीखा तीर था। जिसके विरुद्ध सरकार कुछ भी नहीं कर सकती थी। इसे लेकर मज़दूरों ने हड़ताल की जिसे कांग्रेस सरकार ने पुलिस की मदद से कुचल दिया। पुलिस कार्रवाई में करीब 20 मज़दूर मारे गये।

इसी समय कानपुर में मज़दूरों की व्यापक हड़ताल हुई। यहाँ अगस्त, 1934 में 24,000 मज़दूरों ने अधिक वेतन और बेहतर जीवन स्थितियों की मांग को लेकर काम ठप्प कर दिया। इस हड़ताल की भी कांग्रेस द्वारा आलोचना की गई। जब मज़दूरों ने धरना शुरू किया तो नेहरू ने कहा:

अगर हिंसा का सहारा लिया जाता है तो यह आशा नहीं की जानी चाहिए कि सरकार हस्तक्षेप नहीं करेगी और सेना या पुलिस को नहीं बुलाया जाएगा। मज़दूरों को याद रखना चाहिए सरकार बहुत शक्तिशाली है और हिंसा को दबा देगी और यह कि मज़दूरों का कुछ ही देर में दमन कर दिया जाएगा।

अंत में यह विवाद मंत्रिमंडल द्वारा निपटाया गया।

दूसरी तरफ़ बंगाल में कांग्रेस ने जूट मिलों की हड़ताल (मार्च-मई, 1937) का समर्थन किया। बंगाल पी० सी० सी० (प्रदेश कांग्रेस कमेटी) ने हक़ सरकार जो कि एक गैर कांग्रेसी सरकार थी, के द्वारा जूट मज़दूरों के दमन की निंदा की। जमशेदपुर में टिसको (टाटा इस्पात कंपनी) श्रमिकों की हड़ताल के दौरान नेहरू और राजेन्द्र प्रसाद ने टाटा और मज़दूरों के बीच पंच की भूमिका निभाई। इस दौर में वामपंथ ने मज़दूरों पर अपने प्रभाव में वृद्धि की।

### 30.6.4 रचनात्मक कार्यक्रम

सभी कांग्रेस शान्ति प्रांतों में मद्यनिषेध लागू करने, शिक्षा को प्रोत्साहित करने और ग्रामोद्योगों को बढ़ावा देने के लिए गहन प्रयास किए गए। इनमें कुछ प्रमुख काम थे:

- मद्यनिषेध यानी नशाबंदी के पक्ष में ज़ोरदार अभियान चलाना।
- मद्रास मंत्रिमंडल द्वारा खादी और हाथ की कताई के कपड़े के लिए दो लाख रुपये का अनुदान दिया जाना।
- अस्पतालों में मानद चिकित्सा अधिकारियों की नियुक्ति।
- सार्वजनिक इमारतों के निर्माण में निवेश को पर्याप्त रूप से कम करना।

शिक्षा के क्षेत्र में सार्थक कदम उठाया गया। वर्धा में (22 और 23 अक्तूबर, 1937 को, एक अखिल भारतीय राष्ट्रीय शिक्षा सम्मेलन आयोजित किया गया। इस सम्मेलन में एक योजना तैयार की जिसमें निम्न बातें शामिल थीं:

- देश भर में 7 वर्ष के लिए नि:शुल्क और अनिवार्य शिक्षा प्रदान की जाए।
- शिक्षा का माध्यम मातृभाषा को बनाया जाए।
- व्यावसायिक और दस्तकारी प्रशिक्षण पर ज़ोर दिया जाए।

इन दिशा निर्देशों के आधार पर कांग्रेसी मंत्रिमंडलों के क्रियान्वयन के लिए डॉ० ज़ाकिर हुसैन ने प्राथमिक शिक्षा की एक योजना प्रस्तुत की (2 दिसम्बर, 1937) इस योजना में मान्य

## PROGRESS OF WARDHA SCHEME

[ The following note has been prepared by Shrimati Ashalata Devi. M. K. G. ]

**Bihar**

A training centre with sixty students and eight teachers has been started in the Training School, Patna, for a six months' emergency training course, and a compact area has been selected for experiment in the Bettiah thana of the Champaran District, where 50 Basic Schools will be started from March 1939.

**Orissa**

A Basic Education Committee consisting of both official and non-official members has been appointed by the Government, with Sjt. Gopabandhu as chairman, to take the necessary steps for the introduction of Basic Education in the province. Eight workers have been selected by the Government and sent to Wardha to be trained as training school teachers and supervisors. One of the party is Smt. Annapurna Chowdhuri, the daughter of Sjt. Gopabandhu Chowdhuri.

A training school with one year's course will be opened in April 1939, and Basic Schools will be opened in April 1940 in a selected compact area.

**C. P.**

160 pupil teachers are receiving a further training of two months in the training school while the school-building and equipment is being got ready for starting Vidya Mandirs. It is hoped that one hundred schools will be ready by the end of December, and will start work with the new year.

A committee consisting of C. P. educational officers and local members of the Hindustani Talimi Sangh has been formed by the Government to guide the work of the training school.

**Madras**

The Government has deputed three trained teachers, including the headmaster of a training school, to undergo two months' training in Wardha. The secretary is meeting, the Education Minister on Nov. 5th and 6th, to discuss further details regarding the introduction of Basic Education in the province.

A private training school with forty students has been organised at Masulipatam attached to the Andhra Jatiya Kalasala and is doing very good work.

**Bombay**

The Education Minister has accepted the plan submitted by the secretary for the introduction of Basic Education in the three linguistic provinces of Maharashtra, Karnatak and Gujarat and is sending the Education Secretary Sjt. Gandhi to Wardha towards the end of November to discuss further details.

**Kashmir State**

A short reorganisation course organised for all teachers and inspectors to acquaint them with the principles of the Wardha Scheme has been successfully completed, and a training school has been opened to train teachers according to the Wardha Scheme of Education.

**Mysore State**

A Wardha Education Committee has been formed. The secretary has been invited to preside over the first conference and open the first experimental school on November 2nd. and 3rd

## TRAINING IN PALM-JAGGERY

Under the auspices of the A. I. V. I. A. the class for imparting training in palm-jaggery making has been started for the current season from 1st November 1938, at Segaon, near Wardha. The course is for a month. Tapping is not included in it. Only the process of gur making is taught. The students have to do practical work for about 7 hours a day. Theory is taught for an hour daily, for acquainting the students with the various aspects of the industry, including its botany, chemistry, commerce, history, economics etc. The students must be strong enough to stand the rigour of the practical work. A fee of Rs. 5 is charged per student. The boarding charges will be about Rs. 8 and Re. 1 for lodging. A deposit of Rs. 15 is required to cover the said expenses and of Rs. 10 for ensuring return journey expenses. The class will be closed on 31st March 1939. Intending candidates should apply for admission to the Secretary, Training School Committee, A. I. V. I. A., Maganvadi, Wardha ( C. P. ), and should not proceed before obtaining a permission in writing.

Segaon, 14-11-38

**Gajanan Naik**
Supervisor, Gur Department,
Segaon, Wardha


**SUBSCRIPTION RATES**

| | |
|---|---|
| **INLAND** | |
| One Year, post free | Rs. 4 |
| Six Months " | Rs. 2-8 |
| **FOREIGN** | |
| One Year, post free | Rs. 5-8 |
| | foreign Sh. 8 |


CONTENTS


| | | PAGE |
|---|---|---|
| CONGRESS AND KHADI ... | M. K. Gandhi | 333 |
| THE PEOPLE'S EDUCATION MOVEMENT ... | T. H. Tao | 334 |
| A CORRECTION ... | | 335 |
| KHUDAI KHIDMATGARS AND BADSHAHKHAN ... | M. K. Gandhi | 336 |
| OCCASIONAL NOTES ... | M. D. | 339 |
| IN THE FRONTIER PROVINCE—V | Pyarelal | 341 |
| PROHIBITION IN SALEM ... | | 344 |
| PROGRESS OF WARDHA SCHEME | | 345 |
| TRAINING IN PALM GUR ... | Gajanan Naik | 345 |


Printed and Published by Anant Vinayak Patwardhan at the Aryabhushan Press, House No. 915/1 Fergusson College Road, Poona 4

हरिजन में प्रकाशित वर्धायोजना की प्रगति (19.11.1938)

चित्र 15

To the Readers

Reg. No. B 3092

HARIJAN

Editor: MAHADEV DESAI

Under the Auspices of The Harijan Sevak Sangh

VOL. VI, No. 33 ] POONA — SATURDAY, SEPTEMBER 24, 1938 [ ONE ANNA

## CORRUPTION IN THE CONGRESS

*( By M. K. Gandhi )*

It is difficult to cope with the correspondence that I am having from several places about violence, untruth and corruption in the Congress. Whilst I must continue to publish typical correspondence about the weaknesses of Congressmen, I must issue a warning against hasty deduction being drawn that all is ill with the Congress. I know it is not. But it is true that violence, untruth and corruption have made inroads enough to warrant drastic measures in order to prevent decay overtaking the great organisation.

Here are extracts from two typical letters :

( 1 ) "Perhaps you are aware how the enrolment of bogus Congress members is going on unimpeded everywhere, and how rich and unscrupulous persons are controlling the affairs of the Congress organisation, keeping skilfully the genuine and devoted workers out of their way. Some are paying the membership subscription of annas 4 for others under their control out of their own pockets, and some are going a step forward and are not paying a single pie to the Congress Committees and instead making the Primary Committees under their clutches prepare false accounts of their apparent collections and thereby evading the supervising eye of the Sub-Divisional as well as District Committees.

Primary Committees having less than 25 members are not required, under the rules framed by it, to pay anything to higher Committees out of the membership fee. The result is that a good many paper Committees are being set up with less than 25 members to deprive the Sub-Divisional and District Committees of their quota of the membership subscription as also to secure a larger proportion of representation in these Committees."

( 2 ) "It is my duty to bring to your notice the open and scandalous corruption in enrolling Congress members. The Congress authorities here, especially the Executives, know this state of things well, but it is difficult to know why the necessary steps are not being taken. If steps are not taken, things will go from bad to worse and the whole Congress Institution will be disgraced and the hold on people will be lost.

( i ) Every party is trying to capture the Congress Office — whether Primary, Sub-divisional, District or Provincial. And for this purpose bogus members are being enrolled by practically every group.

( ii ) There are a good many names of persons on the Congress rolls, but on scrutiny it can be easily found out that there are no such persons in existence at all. During election time the same group of persons is mobilised at elections of Primary Congress Committees of different wards.

( iii ) The members are enrolled sometimes without their own signatures on application forms and in most cases without taking payment of the annual subscription of four annas.

( iv ) The question arises how the account of collection of subscription by the Primary, Sub-divisional and District Congress Committees is maintained. In almost all cases where a group is in possession of the office and necessarily the office account, collection of the annual subscription for all the bogus members is shown to the credit side, and at the same time nearly the whole amount is shown to the debit side on the different heads of expenses, such as travelling expense, meeting expense, allowance expense, etc. Really they do not collect the subscription and maintain a false account.

I do not know how all these corruptions can be stopped. There will be, I hope, changes of rules at the next A. I. C. C. meeting at Delhi. Some steps should be immediately taken to stop the corruption. Identification of Congress members, signatures of the members on the application forms, actual realisation of subscription from the members, and true accounts should be enforced.

These statements have been made by responsible parties. The letters are meant for publication. But I have purposely suppressed the names of my correspondents as also of the province in which the corruption is said to exist.

It is to be hoped that the Working Committee and the A. I. C. C. will deal with this as well as the other serious questions that will come up for discussion and decision. It would be a tragedy if the session of the A. I. C. C. were to be frittered away in orations or mutual wranglings.

चित्र 16. कांग्रेस की कार्यप्रणाली पर हरिजन में छपा गांधी जी का लेख

दस्तकारी, मातृभाषा का उचित ज्ञान, आधारभूत शिक्षा शामिल थी। कई प्रांतों में इस योजना को लागू करने का प्रयास किया गया। कांग्रेस की शिक्षानीति के परिणामस्वरूप विद्यार्थियों के साथ-साथ शिक्षण संस्थाओं की संख्या में भी वृद्धि हुई। उदाहरण के लिए, बम्बई प्रांत में 1936-37 में शिक्षण संस्थाओं की संख्या 14,609 थी और 1939-40 तक यह बढ़कर 18,729 हो गई थी। इसी प्रकार 1936-37 में विद्यार्थियों की संख्या 13,35,889 थी जो 1939-40 में बढ़कर 15,56,441 हो गई।

कांग्रेसी मंत्रिमंडलों की अन्य प्रमुख उपलब्धियां इस प्रकार थीं :

- मंत्रियों के वेतन में कटौती,
- मूल अधिकारों की घोषणा,
- जेलों की स्थितियों में सुधार,
- आदिवासियों के लिए कल्याणकारी योजनाएं,
- दमनकारी कोयला कानून की समाप्ति,
- वाणिज्य और आर्थिक सर्वेक्षण कराना।

इस युग की एक महत्वपूर्ण विशेषता सरकारी अधिकारियों के रुख में परिवर्तन था। अब उन्हें नेताओं के अधीन काम करना पड़ा जिन्हें वे पहले गिरफ्तार किया करते थे।

### 30.6.5 कांग्रेस के सामने आई कुछ समस्याएं

सांप्रदायिक पार्टियों द्वारा कांग्रेस के विरुद्ध दुष्प्रचार किया गया था। उन्होंने कांग्रेस पर अल्पसंख्यकों के प्रति भेदभाव बरतने का आरोप लगाया लेकिन दुष्प्रचार तथ्यों पर आधारित न होकर राजनीतिक और साम्प्रदायिक कारणों पर खड़ा किया गया था। साथ ही, इस समय पद का लाभ उठाने की ग़रज़ से बहुत से अवसरवादी कांग्रेस में शामिल हो गए। कांग्रेस ऐसे तत्वों को पहचानती थी और गांधीजी ने कांग्रेस के इस भ्रष्टाचार के बारे में अपने अख़बार (हरिजन) में स्पष्टता से लिखा था। कई क्षेत्रों में कांग्रेस को ऐसे तत्वों से मुक्त कराने का अभियान भी चलाया गया। इस समय कांग्रेस के दो अधिवेशन हुए। 51वां अधिवेशन हरिपुरा में फ़रवरी, 1938 में सुभाषचंद्र बोस की अध्यक्षता में हुआ। इस अधिवेशन ने राष्ट्रीय मामलों और अंतर्राष्ट्रीय मसलों से संबधित कई प्रस्ताव पारित किए। लेकिन कांग्रेस ने असली संकट का सामना त्रिपुरा अधिवेशन में किया। इस बार अध्यक्ष पक्ष के लिए चुनाव हुए और सुभाषचंद्र बोस ने पट्टाभिसीतारमैय्या को 1337 के मुकाबले 1580 मतों से पराजित किया। इसे वामपक्ष की विजय माना गया क्योंकि दक्षिण पक्ष ने सीतारमैय्या को एकजुट समर्थन दिया था। स्वयं गांधीजी ने भी इस हार को अपनी हार माना था। इससे

चित्र 17. हरिपुरा में नेहरू तथा बोस

कार्यसमिति के गठन करने में परेशानियाँ आई तब आख़िर में बोस ने अध्यक्ष पद से इस्तीफ़ा दे दिया।

कांग्रेस मंत्रिमंडलों ने नवम्बर, 1939 में सरकार से इस आधार पर त्याग पत्र दे दिया कि वाइसरॉय ने बिना कांग्रेस से पूछे अपनी मर्ज़ी से ही भारत को साम्राज्यवादी युद्ध में भागीदार बना दिया था।

**बोध प्रश्न 4**

1 पद स्वीकरण के मसले पर विलम्ब करने से कांग्रेस ने क्या हासिल किया? लगभग पांच पंक्तियों में उत्तर दीजिए।

............................................................................

............................................................................

............................................................................

............................................................................

............................................................................

2 निम्न में से कौन से कथन सही (√) या ग़लत (×) हैं।

i) पूंजीपति पद स्वीकरण के विरोध में थे। ☐

ii) गांधी सर्शत पद स्वीकरण के पक्ष में थे। ☐

iii) फज़लुलहक ने मंत्रिमंडल बनाने के लिए कांग्रेस का समर्थन प्राप्त करने का कोई प्रयास नहीं किया। ☐

iv) कांग्रेस ने राजनीतिक क़ैदियों की मुक्ति के लिए क़दम उठाए। ☐

v) बिहार में कांग्रेसियों पर किसान सभा में भाग लेने पर कोई प्रतिबंध नहीं लगाया गया। ☐

vi) बम्बई के मज़दूर वर्ग ने औद्योगिक विवाद विधेयक का विरोध किया। ☐

3 किसानों के प्रति कांग्रेस के रुख़ का लगभग दस पंक्तियों में वर्णन कीजिए।

............................................................................

............................................................................

............................................................................

............................................................................

............................................................................

............................................................................

............................................................................

............................................................................

............................................................................

............................................................................

## 30.7 सारांश

इस इकाई में हमने पढ़ा है कि किस तरह कांग्रेस ने एक लम्बी बहस के बाद चुनाव लड़ने का निर्णय किया, और किस तरह वह पांच प्रांतों में विजयी हुई। कांग्रेस की जीत का श्रेय इसकी जन-समर्थक नीतियों को दिया गया। कई मामलों में ज़मीदारों और साम्प्रदायिक ताक़तों ने कांग्रेस का विरोध किया। हालांकि कांग्रेसियों के बीच चुनावों में भाग लेने और बाद में पद स्वीकरण के सवाल पर मतभेद थे, परंतु जब एक बार निर्णय ले लिया जाता था तो सभी दृढ़ता से उसका पालन करते थे। कांग्रेसी मंत्रिमंडलों ने कुछ सीमाओं के बीच काम लिया, परन्तु उन्होंने लोगों को राहत दिलवाने के श्रेष्ठतम प्रयास किए। इस दौर में रचनात्मक कार्यक्रम को बढ़ावा मिला। कांग्रेसी मंत्रिमंडलों के गठन को लोगों ने अपने ख़ुद के "राज" के रूप में लिया। उनको पूरा भरोसा हो गया था कि अब ब्रिटिश राज के दिन गिने चुने हैं यद्यपि कांग्रेस के भीतर वामपक्ष काफ़ी मुखर था, फिर भी पार्टी में दबदबा दक्षिण पक्ष का ही था।

## 30.8 शब्दावली

**नागरिक स्वतंत्रताएं** (**Civil Liberties**) : सरकार द्वारा लोगों को दी गई जान, माल, आवागमन और अभिव्यक्ति की स्वतंत्रताए।

**अंतरिम मंत्रिमंडल** (**Interim Ministries**) : जब कांग्रेस ने मंत्रिमंडल गठित करने से इंकार कर दिया तो सरकार ने दूसरों को मंत्रिमंडल के गठन के लिए आमंत्रित किया। परिषदों में इन मंत्रिमंडलों को बहुमत का समर्थन नहीं था। इन्हें अस्थायी उपाय के रूप में बनाया गया था।

**घोषणा पत्र** (**Manifesto**) : एक राजनीतिक पार्टी के उद्देश्यों और नीतियों की प्रकाशित घोषणा।

**पद स्वीकरण** (**Office Acceptance**) : यहां यह शब्द मंत्रिमंडल के गठन के लिए सहमत होने के अर्थ में प्रयुक्त किया गया है।

**मद्यनिषेध** (**Prohibition**) : मद्यनिषेध या नशाबंदी का मतलब शराब की बिक्री या उसके पीने पर प्रतिबंध से है।

## 30.9 बोध प्रश्नों के उत्तर

**बोध प्रश्न 1**

1 स्वराजवादियों ने संविधान को अंदर से ध्वस्त करने के लिए परिषदों में प्रवेश किया था जबकि इस समय पद स्वीकरण की वकालत करने वाले सुधारों को सफल बनाना चाहते थे। भाग 30.2 देखें।

2 i) (×) ii) (×) iii) (√) iv) (√) v) (×)

**बोध प्रश्न 2**

1 कांग्रेस अपने जनाधार की परीक्षा कर सकी, उसने चुनावों का अनुभव प्राप्त किया और अपने सहयोगियों की परीक्षा की। उपभाग 30.3.1 देखें।

2 उपभाग 30.3.2 देखें।

3 उपभाग 30.3.4 देखें।

**बोध प्रश्न 3**

1 इस मापदंड के अनुसार प्रत्याशियों की लोकप्रियता, कांग्रेस के प्रति उनकी सेवाओं, कांग्रेस के अनुशासन का पालन, इत्यादि पर विचार किया गया। उपभाग 30.4.1 देखें

2 i) (×) ii) (√) iii) (√) iv) (×) v) (√)

**बोध प्रश्न 4**

1 भाग 30.5 देखें।

2 i) (×) ii) (√) iii) (×) iv) (√) v) (×) v) (√)

# इकाई 31 भारतीय पूँजीवाद का उदय, स्वतंत्रता-संग्राम में उसकी भूमिका

## इकाई की रूपरेखा


31.0 उद्देश्य
31.1 प्रस्तावना
31.2 भारतीय अर्थव्यवस्था और भारतीय पूँजीपति वर्ग का विकास
31.3 वर्ग संगठन का उदय
 31.3.1 आर्थिक क्षेत्र में भूमिका
 31.3.2 राजनीतिक क्षेत्र में भूमिका
31.4 साम्राज्यवाद-विरोध का स्वरूप : संवैधानिक मार्ग
31.5 कांग्रेस और पूँजीपति
31.6 कांग्रेस के प्रति पूँजीपतियों का दृष्टिकोण
 31.6.1 कांग्रेस से सम्पर्क
 31.6.2 वामपंथी प्रवृत्ति को रोकने के लिए पूँजीपतियों की नीति
31.7 सारांश
31.8 शब्दावली
31.9 बोध प्रश्नों के उत्तर


## 31.0 उद्देश्य

इस इकाई को पढ़ने के बाद आप :

- उपनिवेशवाद और औपनिवेशिक अर्थव्यवस्था के संदर्भ में भारतीय पूँजीपति वर्ग के विकास के बारे में जानकारी प्राप्त कर सकेंगे,
- एक वर्ग के रूप में उपनिवेशवाद के प्रति भारतीय पूँजीपतियों के दृष्टिकोण को जान सकेंगे,
- जन आंदोलन और वामपंथ के प्रति भारतीय पूँजीपतियों के दृष्टिकोण को समझ सकेंगे,
- पूँजीपति वर्ग और भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस के संबधों को स्पष्ट कर पायेंगे।

## 31.1 प्रस्तावना

भारतीय राष्ट्रीय आंदोलन अपने आरंभिक चरण अर्थात् उन्नीसवीं शताब्दी के उत्तरार्ध में मुख्यतः शिक्षित मध्य-वर्ग तक ही सीमित था। समय के साथ इसने अपना सामाजिक आधार विस्तृत करना शुरू किया और धीरे-धीरे दूसरे वर्ग इसमें शामिल होने लगे। इन भिन्न वर्गों तथा समाजिक समूहों की भूमिका की प्रकृति और राष्ट्रीय आंदोलन में उनके शामिल होने के समय में अंतर था। इस इकाई में हम स्वतंत्रता संग्राम में भारतीय पूँजीपति वर्ग की भूमिका पर विचार करेंगे।

उन्नीसवीं शताब्दी के उत्तरार्ध में भारत में आधुनिक पूँजीपति वर्ग का उदय हो चुका था। प्रथम विश्व-युद्ध के समय भारतीय पूँजीपतियों की संख्या कम थी लेकिन उनका पूँजी-निवेश उतना कम नहीं था। मुख्य बात यह थी कि वे उस समय तक औपनिवेशिक शासन के समर्थन पर बहुत निर्भर थे। विकास के इस स्तर पर भारतीय पूँजीपतियों के लिए यह संभव नहीं था कि वे औपनिवेशिक राज्य से खुला संघर्ष कर सकें। पूँजीपति 1905–1908 के

स्वदेशी आंदोलन से बाहर ही रहे। असहयोग आंदोलन (1920-22) के समय यद्यपि बहुत से व्यवसायी आंदोलन में शामिल हुए, लेकिन पुरुषोत्तमदास ठाकुरदास जैसे कई बड़े पूँजीपतियों ने इस आंदोलन का वास्तव में विरोध ही किया। इसके बाद के काल में पूँजीपतियों की स्थिति में परिवर्तन आया और पूँजीपतियों के बड़े वर्ग ने स्वतंत्रता संग्राम को अपना समर्थन दिया।

## 31.2 भारतीय अर्थव्यवस्था और भारतीय पूँजीपति वर्ग का विकास

भारतीय पूँजीपतियों की राजनीतिक स्थिति भारतीय अर्थव्यवस्था की प्रकृति और विकास के स्तर से जुड़ी हुई थी। औपनिवेशिक काल में, विशेषतः 20वीं शताब्दी में भारतीय अर्थव्यवस्था का विकास दूसरे औपनिवेशिक देशों से महत्वपूर्ण अर्थों में भिन्न था। इसी के आधार पर भारतीय पूँजीपतियों की साम्राज्यवाद संबंधी स्थिति की व्याख्या की जा सकती है। इस विकास की संक्षिप्त रूपरेखा इस प्रकार है:

i) बीसवीं शताब्दी के प्रारंभ होने के तुरन्त बाद ही भारतीय अर्थव्यवस्था में तेज़ी से आयात प्रतिस्थापन की प्रक्रिया शुरू हो गयी। दोनों विश्वयुद्धों और 1930 के दशक की विश्वव्यापी मंदी के दौरान भारतीय अर्थव्यवस्था पर साम्राज्यवाद की पकड़ ढीली पड़ गयी और भारतीय उद्योग के विकास की प्रक्रिया में भारी तेज़ी आयी। इसकी वजह से विदेशी आयातित वस्तुओं को देशी उत्पादनों द्वारा तेज़ी से प्रतिस्थापित किया जाने लगा। इससे भी महत्वपूर्ण बात यह थी कि इस अवधि में देशी उद्योग के विकास के लिए स्वतंत्र भारतीय पूँजी का प्रबंध किया गया था। दूसरे शब्दों में, भारतीय पूँजीपति विदेशी पूँजीपतियों के छोटे भागीदार के रूप में नहीं बल्कि स्वतंत्र पूँजी के आधार पर आगे बढ़े थे।

ii) प्रथम विश्वयुद्ध के पश्चात् देशी उद्योगों के विकास में हुई वृद्धि विदेशी व्यापार की औपनिवेशिक व्यवस्था को उलटने में प्रतिबिम्बित हो रही थी इस प्रचलित व्यवस्था के अंतर्गत उपनिवेश तैयार माल का आयात और कृषि संबंधी कच्चे माल का निर्यात करते थे, अब वह ढांचा उलट गया। 1914 से 1945 के बीच भारत के कुल आयात में तैयार माल का अनुपात बहुत कम हो गया जबकि कुल निर्यात में उसका अनुपात बढ़ गया था, इसके विपरीत भारत के कुल निर्यात में कच्चे माल का अनुपात कम हो गया था और कुल आयात में (उपभोक्ता वस्तुओं की तुलना में) पूँजीगत वस्तुओं का अनुपात बढ़ गया था। साथ ही भारतीय अर्थव्यवस्था की औपनिवेशिक ढंग से अंतर्राष्ट्रीय व्यापार पर निर्भरता कम होने लगी और आंतरिक व्यापार तेज़ी से बढ़ने लगा।

iii) घरेलू उद्योगों में विदेशी पूँजी का नियंत्रण, जो कि दूसरे औपनिवेशिक देशों की तुलना में कम और महत्वहीन था, इस अवधि में और भी कम होने लगा। 1920 के दशक के प्रारम्भ में विदेशी पूँजी के प्रवाह में वृद्धि के बाद कमी आती चली गयी। दूसरी ओर, विशेषतः 1930 के दशक से विदेशी कर्ज़ों और मौजूदा विदेशी निवेश का प्रत्यावर्तन (जो कि अंशतः भारतीय पूँजीपतियों द्वारा विदेशी कंपनियों के अधिग्रहण के द्वारा होता था) बढ़ने लगा। इसके परिणामस्वरूप 1935 के लगभग भारत से विदेशी पूँजी का निर्गमन फिर से प्रारम्भ हुआ। वस्तुतः दूसरे विश्वयुद्ध के दौरान भारत एक ऋणग्रस्त देश नहीं रह गया। बल्कि इसके विपरीत युद्ध की समाप्ति के समय ब्रिटेन का भारत की ओर स्टर्लिंग संतुलन लगभग 1500 करोड़ रुपये के बराबर पहुंच गया। इसका अर्थ यह था कि भारत अब लंदन के मुद्रा बाज़ार पर निर्भर नहीं रह गया था क्योंकि उसे विदेशी ऋण की आवश्यकता नहीं थी।

प्रथम विश्वयुद्ध के दौरान ऊपर बतायी गयी प्रक्रियाओं के कारण भारतीय पूँजीपति वर्ग का विकास बहुत तेज़ी से हुआ। ऐसा करना उसके लिए तभी संभव हो पाया जबकि उसने:

- लगातार आर्थिक और राजनीतिक संघर्ष किया, और
- ब्रिटिश साम्राज्यवाद द्वारा भोगे गये संकट का, विशेषतः दो विश्व युद्धों और व्यापक

मंदी के दौरान पूरा लाभ उठाया।

भारतीय पूँजीपतियों ने सूती वस्त्रों और इस्पात उद्योग के क्षेत्र में आयात प्रतिस्थापन प्रारम्भ किया और धीरे-धीरे बैंकिंग, जूट, विदेश व्यापार, कोयला और चाय जैसे क्षेत्रों को अधिग्रहीत करना शुरू किया जहां पारंपरिक रूप से अभी तक विदेशी पूँजी का प्रभुत्व बना हुआ था। इसी तरह से 1920 के दशक से उन्होंने शक्कर, सीमेंट, कागज़, रसायन, लोहा और इस्पात के क्षेत्र में नया निवेश प्रारम्भ किया। इसके परिणामस्वरूप स्वतंत्रता के आगमन पर भारतीय बाज़ार के 72 प्रतिशत हिस्से पर भारतीय उद्योगों का अधिकार हो चुका था। वित्तीय क्षेत्र में भी इसी तरह से भारतीय पूँजी ने व्यापक स्तर पर काम किया। उदाहरण के लिए:

- 1914 में भारतीय बैंकों का कुल जमा राशि में लगभग 30 प्रतिशत हिस्सा था। जो कि 1947 में बढ़कर 80 प्रतिशत हो गया।
- इसी तरह से भारतीय कंपनियां बीमा व्यवसाय में भी बहुत तेज़ी से आगे बढ़ीं। 1945 तक उन्होंने जीवन बीमा का 79 प्रतिशत और सामान्य बीमा का 75 प्रतिशत व्यवसाय अपने हाथों में ले लिया था। 1946 में भारत के तीन शीर्षस्थ व्यापारिक घरानों की कुल परिसंपत्ति तीन शीर्षस्थ ग़ैर भारतीय कंपनियों की कुल परिसंपत्ति से बहुत ज़्यादा थी।

भारतीय पूँजीपति वर्ग का यह आश्चर्यजनक और स्वतंत्र विकास औपनिवेशिक परिस्थितियों के संदर्भ में बहुत विचित्र अवश्य था लेकिन इस बहुप्रचलित तर्क में सच्चाई नहीं है। यह औपनिवेशिक राज्य द्वारा ''अनौपनिवेशिकीकरण'' की जानीबूझी नीति के परिणाम स्वरूप संभव हो सका था। वस्तुतः यह विकास **उपनिवेशवाद के बावजूद और उसके विरुद्ध** हुआ था। उसका विकास या तो उस समय हुआ जब साम्राज्यवाद संकट ग्रस्त था या उसने सामान्य स्थितियों में औपनिवेशिक स्वार्थों के विरुद्ध लगातार लड़ाई लड़कर उसे हासिल किया था। भारतीय पूँजीपतियों ने अपने हितों को उपनिवेशवाद के साथ बांधकर नहीं देखा। इसके अलावा समग्र रूप में भी पूँजीपति वर्ग देश के साम्राज्यवाद समर्थक सामंती हितों पर राजनीतिक या आर्थिक रूप से निर्भर अथवा उनके अधीनस्थ नहीं था।

दूसरी स्थिति जिसमें किसी उपनिवेश का पूँजीपति वर्ग साम्राज्यवाद से सहयोग करने की ओर प्रवृत होता है वह है जब इस वर्ग को उग्रवादी पूँजीवाद विरोधी या वामपंथी जन आंदोलन से अपने अस्तित्व को ख़तरा नज़र आने लगे। ऐसी स्थितियां कई औपनिवेशिक, अर्ध-औपनिवेशिक देशों में उत्पन्न हुई थीं जहां पूँजीपति वर्ग ने साम्राज्यवाद के साथ मिलकर उग्रवादी आंदोलन का दमन किया। इस संबंध में हम चीन की मिसाल दे सकते हैं।

भारत में भी पूँजीपति वर्ग वामपंथ के उदय से चिंतित था। इसके बावजूद भारतीय पूँजीपति वर्ग को जब भी वामपंथ के बढ़ने से ख़तरा महसूस हुआ तो उसने इसका मुकाबला करने के लिये साम्राज्यवाद से सहयोग नहीं मांगा बल्कि तमाम साधनों से राष्ट्रीय आंदोलन के दक्षिणपंथी वर्ग को सशक्त करने का प्रयास किया।

ऊपर के विश्लेषण से निम्नलिखित निष्कर्ष निकाले जा सकते हैं।

1 भारतीय पूँजीपति वर्ग का विकास साम्राज्यवाद से स्वतंत्र और उसके विरुद्ध हुआ था और इसलिए उसने अपने दीर्घकालिक वर्गीय हितों को साम्राज्यवाद के साथ जोड़कर नहीं देखा।

2 भारतीय पूँजीवाद के स्वतंत्र और द्रुतगामी विकास की वजह से पूँजीपतियों में साम्राज्यवाद विरोधी दृष्टिकोण अपनाने की दृढ़ता आयी।

3 लोकप्रिय वामपंथी आंदोलनों से भयभीत होकर पूँजीपति वर्ग ने साम्राज्यवाद से सहयोग या समझौता नहीं किया पूँजीपति वर्ग के सामने मुद्दा यह नहीं था कि साम्राज्यवाद का विरोध किया जाय या नहीं बल्कि यह था कि साम्राज्यवाद से संघर्ष का रास्ता ऐसा हो जिससे स्वयं पूँजीवाद को ही ख़तरा न हो जाय।

**बोध प्रश्न 1**

1 क्या भारतीय पूँजीवादी वर्ग का विकास उपनिवेशवाद का एक उपोत्पादन था?

..........................................................

..............................................................................................

..............................................................................................

..............................................................................................

..............................................................................................

2 भारतीय पूँजीपति वर्ग ने वामपंथ के ख़तरे से निपटने के लिए क्या किया?

..............................................................................................

..............................................................................................

..............................................................................................

..............................................................................................

..............................................................................................

..............................................................................................

..............................................................................................

## 31.3 वर्ग संगठन का उदय

साम्राज्यवाद और राष्ट्रीय आंदोलन के प्रति अपना रवैया निर्धारित करने की प्रक्रिया में ही भारत का पूँजीपति वर्ग एक राजनीतिक तत्त्व के रूप में उभरा। 1920 के दशक के आरंभ से ही जी. डी. बिड़ला और पुरुषोत्तमदास ठाकुरदास जैसे पूँजीपति भारतीय वाणिज्य, वित्तीय और औद्योगिक हितों का एक राष्ट्रीय स्तर का संगठन स्थापित करने का प्रयास कर रहे थे। प्रारंभ में वे एक ऐसा भारतीय व्यापार संगठन बनाना चाहते थे, जो औपनिवेशिक सरकार को अपने दृष्टिकोण से प्रभावित कर सके, ऐसा काम ग़ैर-भारतीय व्यापारिक हित संगठित रूप से बहुत पहले से कर रहे थे। इस उद्देश्य से 1927 में फेडरेशन ऑफ़ इंडियन चैम्बर्स ऑफ़ कॉमर्स एंड इंडस्ट्री (FICCI) की स्थापना हुई। फिक्की में शीघ्र ही बहुत सदस्य बन गये और वह पूरे भारत के व्यापारिक हितों की प्रतिनिधि संस्था बन गयी। अपने गठन के कुछ ही समय में अंग्रेज़ी सरकार और आम भारतीय जनता ने भारतीय पूँजीपति वर्ग के भीतर असरदार विचार को अभिव्यक्त करने वाली प्रतिनिधि संस्था मान लिया।

### 31.3.1 आर्थिक क्षेत्र में भूमिका

पूँजीपति नेताओं ने साफ़ तौर पर घोषित किया कि फिक्की (FICCI) का लक्ष्य "व्यापार, वाणिज्य और उद्योग का राष्ट्रीय अभिभावक" बनना था। उसने आर्थिक क्षेत्र में उन्हीं कार्यों को अपने लिए निर्धारित किया, जिसकी सामान्यतया एक राष्ट्रवादी संगठन से अपेक्षा की जाती है। इस लक्ष्य के लिए भारतीय पूँजीपतियों ने साम्राज्यवाद की, उसकी समग्रता में एक विस्तृत आर्थिक समीक्षा प्रस्तुत की। उदाहरण के लिए, उनकी समीक्षा ने साम्राज्यवाद के उस शोषण को उजागर किया जो कराधान, खिराज, के प्रेषण और होम-चार्ज जैसे अधिशेष के रूप में प्रत्यक्षत: हो रहा है और साथ ही व्यापार, विदेशी निवेश, और वित्तीय तथा मुद्रा के जोड़-तोड़ से भी किया जा रहा है। भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस के प्रख्यात नेताओं मसलन मोतीलाल नेहरू और गांधीजी ने साम्राज्यवाद के संदर्भ में भारतीय हितों से जुड़े जटिल आर्थिक मामलों के बारे में पुरुषोत्तमदास और जी.डी. बिड़ला जैसे उद्योगपतियों की सहायता लेने में कोई संकोच नहीं किया।

### 31.3.2 राजनीतिक क्षेत्र में भूमिका

फिक्की (FICCI) की भूमिका साम्राज्यवाद की आर्थिक समीक्षा करने और विशेषत: पूँजीपति वर्ग और सामान्यत: पूरे देश की आर्थिक मांगों के लिए लड़ने तक ही सीमित नहीं थी। पूँजीपति वर्ग के नेताओं ने राजनीति में प्रभावपूर्ण हस्तक्षेप की आवश्यकता को महसूस

किया। फिक्की के अध्यक्ष पुरुषोत्तमदास ठाकुरदास ने 1928 के वार्षिक अधिवेशन में घोषणा की कि "हम अब अपनी राजनीति को अपने अर्थशास्त्र से अलग नहीं कर सकते"। पूँजीपतियों के राजनीति में सक्रिय होने का अर्थ भारतीय राष्ट्रीय आंदोलन से जुड़ना था। जैसा कि पुरुषोत्तमदास ने 1928 के फिक्की अधिवेशन में कहा था, "भारतीय वाणिज्य और उद्योग वास्तविक अर्थों में न केवल राष्ट्रीय आंदोलन से जुड़े हुए हैं, बल्कि उसका अनिवार्य अंग भी हैं—उसके विकास में इसका विकास है और उसकी शक्ति में इसकी शक्ति है"। पुरुषोत्तमदास के व्यक्तित्व में यह बदलाव का सकेंत था, क्योंकि इससे पहले उन्होंने असहयोग आन्दोलन का विरोध किया था। यह स्पष्ट है कि पूँजीपतियों को अहसास हो गया था कि उनके आर्थिक उद्देश्य भी औपनिवेशिक आधिपत्य वाली इस वर्तमान राजनीतिक व्यवस्था में बदलाव के लिए लड़ने पर ही हासिल हो सकते हैं। जी. डी. बिड़ला ने 1930 में इसी दृष्टिकोण को अभिव्यक्त किया था:

> "वर्तमान'''' राजनीतिक परिस्थितियों में यह असंभव है कि हम शासन को अपने दृष्टिकोण से सहमत कर सकें। इसका एकमात्र समाधान यह है कि भारतीय व्यापारी मिलकर उन लोगों के हाथ मज़बूत करें जो हमारे देश की आज़ादी के लिए लड़ रहे हैं"

लेकिन इसी के साथ बिड़ला अंग्रेज़ सरकार को यह बताना भी नहीं भूले कि उन्होंने सविनय अवज्ञा आंदोलन के लिए आर्थिक सहायता नहीं दी है।

**बोध प्रश्न 2**

1 फिक्की की स्थापना का आरंभिक उद्देश्य क्या था?

..........................................................................
..........................................................................
..........................................................................
..........................................................................
..........................................................................
..........................................................................

2 आर्थिक क्षेत्र में फिक्की की क्या भूमिका थी?

..........................................................................
..........................................................................
..........................................................................
..........................................................................
..........................................................................
..........................................................................
..........................................................................

## 31.4 साम्राज्यवाद-विरोध का स्वरूप : संवैधानिक मार्ग

पूँजीपति वर्ग ने इस पर भी विचार किया कि उसे किस प्रकार के राष्ट्रीय संघर्ष का समर्थन करना है। पूँजीपतियों का यह दृष्टिकोण शुरू से ही था कि ब्रिटिश सरकार से बातचीत का रास्ता हमेशा खुला रखा जाए और संवैधानिक मार्ग को पूरी तरह से कभी न छोड़ा जाए। उन्होंने संघर्ष के संवैधानिक रास्ते का समर्थन किया और वे किसी आंदोलन तथा सविनय अवज्ञा के पक्ष में नहीं थे। पूँजीपतियों का इस तरह का रवैया अपनाने के पीछे [illegible] से कारण थे:

**i) जन आंदोलन का भय :**

पूँजीपतियों को भय था कि व्यापक सविनय अवज्ञा से ख़ास तौर पर यदि वह लम्बा खिंच जाता है, जनता में उग्र सुधारात्मक चेतना फैल जाएगी और यह आंदोलन केवल साम्राज्यवाद पर दबाव डालकर समाप्त नहीं हो जाएगा, बल्कि वह स्वयं पूँजीवाद के लिए ख़तरा बन जाएगा। जैसाकि इंडियन मर्चेन्ट्स चैम्बर, बम्बई के एक नेता लालजी नारनजी ने 1930 में स्पष्ट कहा था कि जन आंदोलन से स्वयं ''व्यक्तिगत संपत्ति'' को ख़तरा हो सकता है और इसके द्वारा उत्पन्न ''सत्ता के प्रति अवहेलना'' की भावना ''स्वराज की सरकार'' के लिए ''विध्वंसक परवर्ती प्रभाव'' पैदा कर सकती है। साम्राज्यवाद-विरोधी आंदोलन को पूँजीवाद-विरोधी आंदोलन में परिवर्तित न होने देने के इरादे से उन्होंने हमेशा राष्ट्रीय आंदोलन को सवैंधानिक विरोध के रास्ते पर लाने का प्रयास किया। पूँजीपति इसलिए भी औपनिवेशिक शासन का लंबे समय तक और सर्वव्यापी विरोध नहीं कर सकते थे, क्योंकि उन्हें अपने सामान्य दैनंदिन व्यापार में शासन के न्यूनतम सहयोग की आवश्यकता पड़ती थी। जैसाकि हम जानते हैं, इस समय देश में औपनिवेशिक सरकार थी। अपनी तात्कालिक आवश्यकताओं के लिए वर्तमान शासन पर निर्भरता और जन आंदोलन से सामान्य व्यापार में बाधा पड़ने की वजह से पूँजीपतियों ने किसी भी आंदोलन में भाग नहीं लिया। यहाँ तक कि भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस के तत्वाधान में प्रारंभ हुए जन आंदोलनों तक में सहयोग नहीं दिया।

**ii) संवैधानिक मंच :**

पूँजीपतियों का विचार था कि परिषदों और विधायिकाओं जैसे संवैधानिक मंचों और गोलमेज़ कान्फ्रेंसों जैसे समझौतों का पूरी तरह से या लम्बे समय तक बहिष्कार करना एक ''आत्मघातक नीति'' ही होगी। उन्हें लगता था कि यदि राष्ट्रवादी शक्तियों ने इन मंचों का पूर्ण बहिष्कार कर दिया तो सरकार अपने निष्ठावान सहयोगियों से मिलकर ऐसी नीतियाँ असानी से पारित करवा लेगी, जो भारत के आर्थिक विकास को गंभीर नुक़सान पहुँचाएंगी। निश्चित रूप से इसमें उनका अपना स्वार्थ था। इस तरह, इसे ध्यान में रखते हुए पूँजीपतियों ने औपनिवेशिक शासन द्वारा बनाये गये तमाम मंचों का न केवल समर्थन किया, बल्कि कई बार उसमें हिस्सेदारी भी की। उदाहरण के लिए, उनमें से कुछ वाइसरॉय की कार्यकारिणी परिषद के सदस्य भी बन गये। वस्तुतः वे चाहते थे कि व्यवस्था के भीतर के सुधारों से जितना भी संभव हो, लाभ उठाया जाये।

कुछ मामलों में पूँजीपतियों ने संवैधानिक संस्थाओं में बिना शर्त भागीदारी का समर्थन नहीं किया। जी० डी० बिड़ला और पुरुषोत्तमदास ने स्पष्ट कहा कि वे ''आधारभूत मामलों पर बिना कोई समझौता किये'' केवल ''अपनी शर्तों पर ही'' हिस्सा लेंगे। उदाहरण के लिए, 1934 में संयुक्त संसदीय समिति द्वारा प्रस्तुत संवैधानिक सुधारों के मसौदे को फिक्की ने ''प्रतिक्रियावादी'' कहकर अस्वीकृत कर दिया।

इसके अलावा पूँजीपतियों ने सामान्यतया राष्ट्रीय आंदोलन के प्रमुख संगठनों की सहभागिता के बिना, या कम से कम उनकी स्वीकृति के बिना, अंग्रेज़ सरकार से संवैधानिक या आर्थिक सवालों पर बातचीत करने से मना किया। उदाहरण के लिए, 1930 में फिक्की ने अपने सदस्यों को यह कहकर गोलमेज़ कांफ्रेंस के बहिष्कार का सुझाव दिया कि ''भारतीय संवैधानिक विकास की समस्या पर बहस करने के लिए आयोजित कोई भी कान्फ्रेंस उस समय तक सफल नहीं हो सकती.... जब तक, एक स्वतंत्र व्यक्ति की तरह महात्मा गांधी उसमें भाग नहीं लेते या कम से कम वे उनकी स्वीकृति नहीं देते''। इसलिए कई प्रमुख पूँजीपतियों ने प्रथम गोलमेज़ कांन्फ्रेंस का बहिष्कार किया, लेकिन गांधी जी के साथ दूसरी कान्फ्रेंस में भाग लिया। जब कांग्रेस ने तीसरी गोलमेज़ कान्फ्रेंस का बहिष्कार किया तब पुरुषोत्तमदास ने उसमें अपनी व्यक्तिगत सामर्थ्य के बल पर हिस्सा लिया था, लेकिन उन्होंने स्पष्ट कर दिया था कि गांधी जी की अनुपस्थिति में कान्फ्रेंस संवैधानिक समस्या का समाधान नहीं कर सकती। पूँजीपतियों को अच्छी तरह मालूम हो गया था कि उनके हितों की सुरक्षा का आश्वासन उस समय तक नहीं मिल सकता, जब तक उसके पीछे कांग्रेस का समर्थन नहीं है। 1929 में अहमदाबाद के एक प्रख्यात पूँजीपति अम्बालाल साराभाई ने इस स्थिति को संक्षेप में इस तरह स्पष्ट किया ''कांग्रेस के समर्थन के बिना शासन आपकी बातों को कोई महत्त्व नहीं देगा''।

इस तरह दो कारणों से पूँजीपति संवैधानिक पद्धति और प्रणाली के पक्ष में थे :
क) वे दक्षिणपंथ को मज़बूत करके वामपंथ को प्रभावहीन कर सकते थे,
ख) वे ब्रिटिश शासन को आश्वस्त कर सकते थे कि वे उनकी सत्ता के बने रहने में कोई बाधा नहीं डाल रहे हैं। उदाहरण के लिए, पुरुषोत्तमदास ने दिसम्बर, 1942 में घोषित किया कि "वाणिज्यिक समुदाय की तमाम मांगों का न तो उद्देश्य ही है और न ही उनके लिए यह संभव है कि वे ब्रिटिश शासन को समाप्त कर सकें"।

चित्र 18. जी० डी० बिड़ला

### iii) जन आंदोलनों के प्रति दृष्टिकोण :

कई बार उन्हें अपने वर्ग या देश के लिए कुछ महत्वपूर्ण सुविधाएं प्राप्त करने के लिए जन आंदोलनों की ज़रूरत का अहसास हुआ। यहां हम जी० डी० बिड़ला की उस टिप्पणी को उद्धृत कर सकते हैं, जो उन्होंने जनवरी, 1931 में चल रहे सविनय अवज्ञा आंदोलन के सिलसिले में की थी। उन्होंने कहा : "इसमें कोई संदेह नहीं है कि हमें आज जो भी दिया जा रहा है, वह पूरी तरह से गांधीजी की वजह से ही संभव हुआ है।.... यदि हम अपनी इच्छित चीज़ों को हासिल करना चाहते हैं, तो हमें इस आंदोलन को किसी भी तरह से कमज़ोर नहीं होने देना चाहिए"।

### iv) लंबे जन आंदोलन के ख़तरे :

इसके बावजूद वे नहीं चाहते थे कि जन आंदोलन लंबा खिंचे। वे समझौते की कोशिश करते थे, ताकि आंदोलन को वापस लिया जा सके। अक्सर वे समझौते की बातचीत के वक़्त शासन और कांग्रेस के बीच मध्यस्थता के लिए अपनी सेवाएं प्रस्तुत करते थे। इसका सबसे अच्छा उदाहरण मार्च, 1931 के गांधी-इर्विन समझौते के पहले की वार्तायें हैं। लेकिन वहां भी जन आंदोलन को जारी रखने या उसे शुरू करने की धमकी को सौदेबाज़ी के लिए इस्तेमाल किया गया। जैसा कि जी० डी० बिड़ला ने जनवरी, 1931 में कहा था कि पूँजीपति वर्ग "शांति के लिए अपनी आतुरता" की वजह से "अपनी माँगों को नहीं छोड़ेगा" या न ही समाप्त करेगा। उन्होंने कहा कि उन्हें दो बातें याद रखना चाहिएं "एक तो यह कि हमें समझौते के अनुकूलतम अवसर का इस्तेमाल करना चाहिए और दूसरी बात यह कि हमें ऐसा कुछ नहीं करना चाहिए, जिससे उनकी (भारतीय राष्ट्रीय आंदोलन की) शक्ति में कमी आये क्योंकि उन्हीं के प्रयासों से हम इस अवस्था तक पहुँचे हैं"। दूसरे शब्दों में, हालांकि पूँजीपतियों ने हमेशा शांति या समझौते का ही प्रयास किया, लेकिन उन्होंने इसके लिए बुनियादी राष्ट्रीय माँगों में कटौती नहीं की और कुल मिलाकर राष्ट्रीय आंदोलन को कमज़ोर नहीं होने दिया।

पूँजीपतियों ने उस समय भी, जबकि वे सविनय अवज्ञा आंदोलन को शुरू करने या उसके जारी रखने के औचित्य पर गंभीर रूप से आशंकित थे, औपनिवेशिक शासन को उसके दमन में सहयोग नहीं दिया। बल्कि इसके विपरीत उन्होंने सदैव सरकार पर दमन रोकने, कांग्रेस और प्रेस से प्रतिबंध हटाने, राजनीतिक बंदियों को रिहा करने और अध्यादेशों के ज़रिये मनमाने शासन को समाप्त करने के लिए दबाव डाला। उनके इस रवैये में उस समय भी परिवर्तन नहीं आया, जबकि राष्ट्रीय आंदोलन अपनी असंवैधानिकता के शिखर पर था। कुल मिलाकर जन आंदोलन के उग्रवादी हो जाने के भय से या दैनंदिन व्यापार में नुक़सान होने की नज़र से पूँजीपति वर्ग ने औपनिवेशिक शासन के दमन का समर्थन नहीं किया, बल्कि यहां तक कि इसने न तो आंदोलन की निंदा की और न ही उससे अपने को अलग कि ।

### बोध प्रश्न 3

1 पूँजीपतियों ने संवैधानिक मंचों का प्रयोग :
   i) व्यक्तिगत क्षमता में किया।
   ii) कांग्रेस को नकार कर किया।
   iii) कांग्रेस के समर्थन को सचेत रूप से हासिल करके किया।
   iv) उपरोक्त में से कोई नहीं।

2 पूँजीपतियों ने पक्ष लिया :
   i) लंबे जन आंदोलन का।

ii) कांग्रेस और शासन के बीच अपनी मध्यस्थ भूमिका का, ताकि आंदोलन का शीघ्र समाधान हो।
iii) जन आंदोलनों की पूर्ण अनुपस्थिति का।
iv) उपरोक्त में से कोई नहीं।

## 31.5 कांग्रेस और पूँजीपति

आपको भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस और पूँजीपतियों के बीच के संबंधों को जानने में दिलचस्पी होगी। सामान्यतया, इन संबंधों को दो दृष्टिकोणों से विश्लेषित किया जाता है :

1) कांग्रेस पूँजीपतियों से अत्यधिक प्रभावित थी, जो कि इसका इस्तेमाल अपने वर्गीय स्वार्थों के लिए करते थे। यह दृष्टिकोण इस विचार पर आधारित है कि पूँजीपतियों ने अपने कोष के प्रयोग से कांग्रेस को अपनी निम्नलिखित मांगों के समर्थन में लड़ने के लिए विवश किया :

- रुपये-स्टर्लिंग के अनुपात में कमी,
- भारतीय उद्योगों को शुल्क-संरक्षण, और
- तटवर्ती परिवहन का भारतीय जहाज़रानी के लिए आरक्षण इत्यादि।

इसके अलावा पूँजीपतियों ने कांग्रेस के तमाम राजनीतिक निर्णयों को प्रभावित किया। जैसे 1931 में सविनय अवज्ञा आंदोलन की वापसी, चुनावों में ख़ास तौर पर 1937 के चुनाव में कांग्रेस प्रत्याशियों का चयन, 1930 के दशक के अंत में श्रमिक वर्ग के आंदोलन का दमन, दक्षिणपंथ को आर्थिक सहायता प्रदान करना, इत्यादि। गांधीजी को वे इसलिए समर्थन देते थे, क्योंकि उन्हें पूरा विश्वास था कि "अकेले वे ही देश को" "वर्ग-युद्ध" से बचा सकते हैं। दूसरी ओर गांधी ने भी पूँजीपतियों का पक्ष लिया। इस तरह कांग्रेस अपनी प्रकृति में एक पूँजीवादी संगठन था।

2) दूसरे दृष्टिकोण का मानना है कि कांग्रेस पर पूँजीपतियों का कोई प्रभाव नहीं था। बल्कि कांग्रेस ने पूँजीपतियों को अपनी शर्त पर काम करने के लिए विवश किया। इस दृष्टिकोण के अनुसार :

साम्राज्यवाद के विरुद्ध वित्तीय और मौद्रिक स्वायत्तता, तथा संरक्षण इत्यादि की मांगों में केवल पूँजीपति वर्ग का ही लाभ नहीं था। वे स्वतंत्र आर्थिक विकास के लिए आवश्यक राष्ट्रीय मांगें थीं। किसी भी साम्राज्यवाद-विरोधी संघर्ष में, चाहे वह पूँजीवादी हो या नहीं, इन मांगों का शामिल होना आवश्यक था। वस्तुतः इन माँगों के लिए भारत के साम्यवादियों और समाजवादियों ने भी संघर्ष किया था। इसके अतिरिक्त, आर्थिक राष्ट्रवाद का सिद्धांत भारत में प्रारंभिक राष्ट्रवादियों ने बनाया था। इसके कई दशकों बाद ही कहीं जाकर पूँजीपतियों ने अपने को राजनीतिक रूप से संगठित किया और इन मांगों के लिए संघर्ष शुरू किया। वस्तुतः जब उन्नीसवीं शताब्दी में इन मांगों को पहली बार उठाया गया था,
i) उस समय पूँजीपति वर्ग का अस्तित्व लगभग था ही नहीं, और वह वर्ग उसके समर्थन में आया भी नहीं। यह स्पष्ट है कि इन मांगों पर लड़ने के लिए पूँजीपतियों द्वारा कांग्रेस को खरीदने, भ्रमित करने या इस पर दबाव डालने की आवश्यकता नहीं थी।
ii) दूसरे, जहां तक नीति-निर्धारण का मामला है, आर्थिक सहायता के लिए कांग्रेस पूँजीपतियों पर इस हद तक निर्भर नहीं थी कि उनका निर्णायक प्रभाव होता। वित्तीय सहायता के लिए भी कांग्रेस पूँजीपतियों पर इतनी निर्भर नहीं थी, कि उसका कांग्रेस की नीतियों पर प्रभाव पड़ सके। कांग्रेसियों की भारी संख्या आर्थिक मामलों में आत्मनिर्भर थी और कांग्रेस के संघर्षों का सामान्य खर्च आम आदमी के सहयोग और स्वैच्छिक योगदान, सहायता शुल्क और छोटे चन्दों से चलता था। यहां तक कि संवैधानिक चरण में भी, जब कांग्रेस चुनाव की तैयारी कर रही थी, कांग्रेस पूँजीपतियों पर आर्थिक रूप से निर्भर नहीं थी। [illegible] ने गुप्तचर ब्यूरो के निदेशक से पूछा था कि "क्या कांग्रेस गांधीवादी

शैलियों के बिना भी लम्बे समय तक जीवित रह सकती है? मार्च, 1939 को अपनी रिपोर्ट में निदेशक ने लिखा था:

> "कांग्रेस के पास ···· वैकल्पिक आर्थिक साधनों की बहुत नियमित व्यवस्था है। देश प्रेम की भावना" से नगद खर्च बहुत कम हो जाता है ···· कांग्रेस की सामान्य गतिविधियों और चुनाव दोनों मामलों के लिए (पूँजीपतियों की) थैलियों का उतना महत्व नहीं है, जितना महत्व गांधीवादी अंध-विश्वास और कांग्रेसी मंत्रियों के ज़बर्दस्त असर का है। इन प्रभावों के समर्थन से कांग्रेस के स्थानीय संगठन जनता से इतना समर्थन हासिल कर सकते हैं कि वे अधिक पैसा खर्च किए बिना चुनाव लड़ सकें"।

इसका यह अर्थ नहीं है कि कांग्रेस को धन की आवश्यकता नहीं थी, या कांग्रेस ने ख़ासतौर पर अपने संवैधानिक चरणों में पूँजीपतियों के सहयोग को स्वीकार नहीं किया। फिर भी, इस धन के सहारे पूँजीपति वर्ग कांग्रेस की नीति और विचारधारा को ऐसे किसी रास्ते पर नहीं ले जा सकता था, जिस पर स्वयं कांग्रेस स्वतंत्र रूप से चलने को तैयार न हो।

इस संदर्भ में कांग्रेस के नेताओं का यहां तक कि पूँजीपतियों के निकट माने जाने वाले नेताओं का दृष्टिकोण बहुत महत्वपूर्ण है। गांधी जी ने बहुत पहले फ़रवरी, 1922 में मिल मालिकों और व्यापारियों के सहयोग का स्वागत करते हुए और यहां तक कि उनसे सहयोग मांगते हुए भी बहुत साफ़ कहा था कि:

> "वे करें या न करें, स्वतंत्रता की ओर देश की यात्रा किसी निगम या व्यक्तियों के समूह पर निर्भर नहीं की जा सकती। यह जनता के जुड़ाव की अभिव्यक्ति है। जनता तेज़ी से मुक्ति की ओर बढ़ रही है और उसे यह कार्य संगठित पूँजी के सहयोग के साथ या उसके बिना भी करना है। इस तरह यह आंदोलन आवश्यक रूप से पूँजी से स्वतंत्र है, हालांकि उसका विरोधी नहीं है। यदि पूँजी जनता को सहयोग देती है, तो इससे पूँजीपतियों की प्रतिष्ठा में वृद्धि होगी और इससे शुभ दिन आने में देर नहीं होगी"।

इसी तरह से मोतीलाल नेहरू जी स्वराजवादी चरण में बम्बई और अहमदाबाद के पूँजीपतियों के निकट सम्पर्क में थे और जिन्होंने राजनीतिक काम के लिए उन लोगों से पर्याप्त धन प्राप्त किया था, उन्होंने भी 1928 में निःसंकोच उनको बहुत प्रताड़ित किया, क्योंकि उन्हें महसूस हुआ था कि अपने पुराने वायदों से मुकर रहे हैं। उन्होंने कहा:

> "कांग्रेस को मिल मालिकों के दृष्टिकोण में इस परिवर्तन का स्वागत करना चाहिए। इन पूँजीपतियों के साथ, जो देश के दुःख से मुनाफ़ाखोरी करने पर आमादा हैं, कांग्रेस का गठबंधन होना असंभव है। कांग्रेस के कार्य के लिए सबसे उपयुक्त मिल-मालिकों का क्षेत्र नहीं, बल्कि मज़दूरों का क्षेत्र है। लेकिन मैं अपने कुछ मिल-मालिक मित्रों की देशभक्तिपूर्ण बातचीत से दिग्भ्रमित हो गया था। महात्मा जी ने इन लोगों के साथ गठबंधन पर कभी विश्वास नहीं किया, और अब मैंने भी उनसे कहा है कि वे सही थे और मैं ग़लत"।

संदेश स्पष्ट था। यदि पूँजीपति चाहते थे कि कांग्रेस उनके साथ काम करे तो उन्हें अपना आचरण सुधारना था। वे यह कार्य करें या न करें, कांग्रेस दूसरे वर्गों के सहयोग पर भरोसा करते हुए अपने काम को करती रहेगी।

लेकिन इसका यह अर्थ नहीं था कि कांग्रेस को उनके वित्तीय सहयोग की आवश्यकता नहीं थी। बहुत से मौकों पर उसने चन्दा स्वीकार किया। उदाहरण के लिए, डालमिया ने 1937 के चुनाव-कोष में पर्याप्त योगदान किया और बिड़ला ने रचनात्मक कार्यक्रम में हमेशा वित्तीय सहयोग दिया।

## 31.6 कांग्रेस के प्रति पूँजीपतियों का दृष्टिकोण

भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस के बारे में पूँजीपतियों का क्या दृष्टिकोण था? वस्तुतः उन्होंने कांग्रेस को कभी भी अपना वर्गीय दल नहीं माना। इंडियन मर्चेंट्स चैम्बर के जे० के० मेहता के

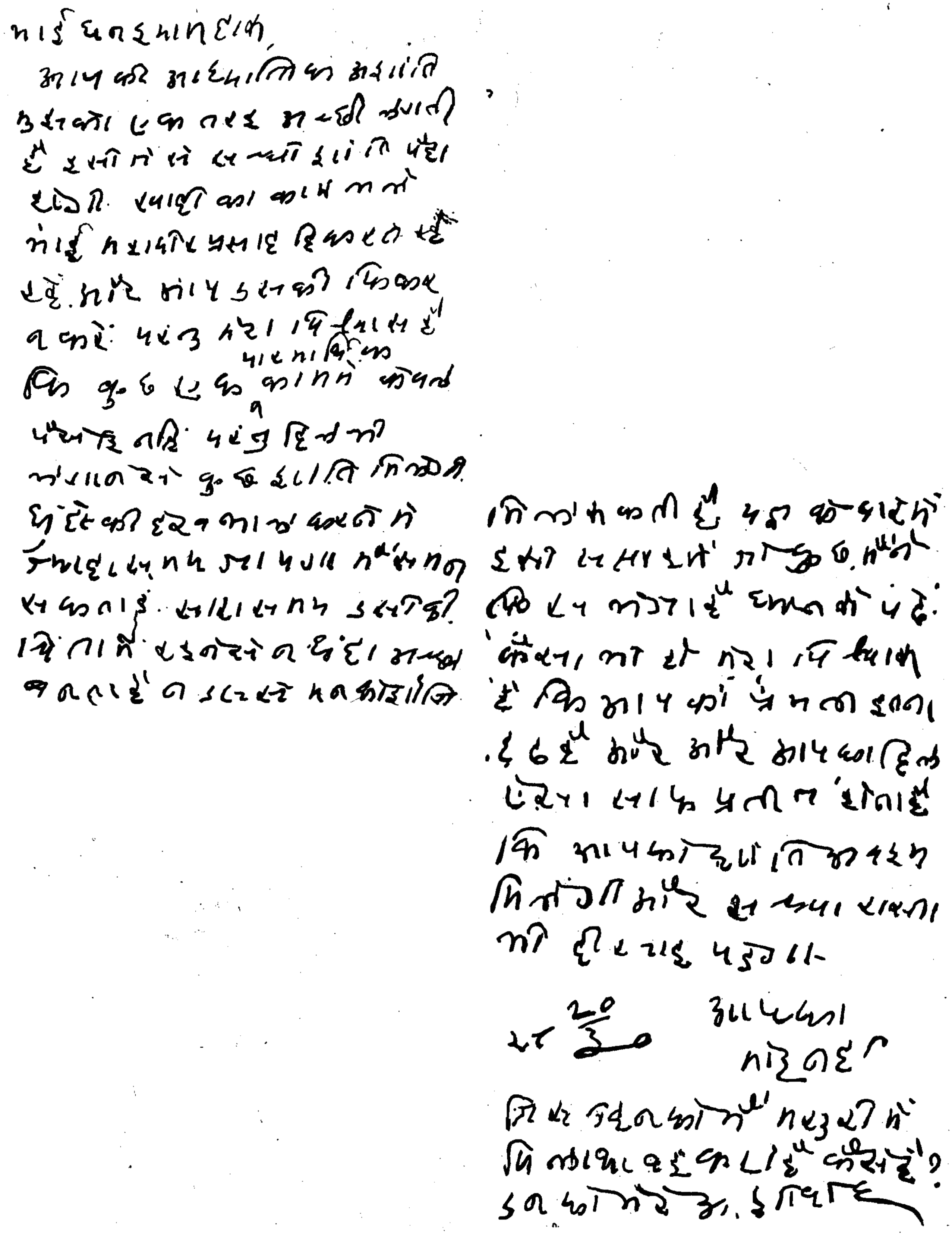

चित्र 19. गांधीजी का जी० डी० बिड़ला को पत्र

अनुसार इस दल में "सभी प्रकार की राजनीतिक विचारधाराओं और आर्थिक दृष्टिकोणों के लिए स्थान था"। लेकिन इसी के साथ पूँजीपतियों ने प्रयास किया कि राष्ट्रीय आंदोलन उग्रवादी न हो जाये, यानी कांग्रेस समाजवादियों और साम्यवादियों के प्रभाव में न आ जाये। इस दृष्टिकोण के साथ उन्होंने कांग्रेस के दक्षिणपंथ को मज़बूत बनाने का प्रयास किया। उदाहरण के लिए जी० डी० बिड़ला ने 3 अगस्त, 1934 को पुरुषोत्तमदास को लिखा:

> "वल्लभभाई, राजाजी और राजेन्द्र बाबू साम्यवाद और समाजवाद के ख़िलाफ़ लड़ रहे हैं। इसलिए यह आवश्यक है कि हम में से कुछ लोग, जो स्वस्थ पूँजीवाद का प्रतिनिधित्व करते हैं, गांधीजी की सहायता करें और जहां तक संभव हो, एक सामान्य उद्देश्य के लिए काम करें"।

वस्तुतः इसके पहले बिड़ला और ठाकुरदास ने दोराबजी टाटा के इस सुझाव को अस्वीकार कर दिया था कि पूँजीपति वर्ग अपनी एक राजनीतिक पार्टी बनाये। उन्होंने ऐसा इसलिए किया, क्योंकि उन्हें महसूस होता था कि यदि कांग्रेस में दक्षिणपंथ का प्रभुत्व बना रहा है, तो कांग्रेस उनके हितों की रक्षा कर सकती है। गांधीजी का न्यास सिद्धांत (ट्रस्टीशिप) (इकाई 13) उन्हें उपयुक्त लगा था, क्योंकि उसमें पूँजीवाद-विरोधी संघर्ष को हतोत्साहित किया गया था।

## 31.6.1 कांग्रेस से सम्पर्क

यह दिलचस्प तथ्य है कि पूँजीपतियों ने यह समझने में असाधारण परिपक्वता का प्रदर्शन किया कि कांग्रेस उनकी वर्गीय पार्टी नहीं है और यहाँ तक कि केवल उन्हीं से प्रभावित होने वाली पार्टी भी नहीं है। उन्होंने इस तथ्य को पूरी तरह से स्वीकार किया कि कांग्रेस एक बहुवर्गीय लोकप्रिय आन्दोलन है, इंडियन मर्चेंट्स चेम्बर के जे० के० मेहता के शब्दों में—"जिसमें सभी किस्म की राजनीतिक विचारधाराओं और आर्थिक दृष्टिकोणों के लिए स्थान है। कांग्रेस के भीतर किस वर्ग का विचार प्रभावशाली रहेगा, यह एक खुला सवाल था और एक सीमा तक प्रत्येक वर्ग की राजनीतिक परिपक्वता और दूर-दृष्टि पर निर्भर था।

## 31.6.2 वामपंथी प्रवृत्ति को रोकने के लिए पूँजीपतियों की नीति

इस समझदारी के साथ पूँजीपतियों ने अपनी राजनीति को दिशा दी और इस बात को पुष्ट करने का प्रयास किया कि राष्ट्रीय आंदोलन अधिक उग्रवादी नहीं था यानी समाजवादियों और साम्यवादियों के निर्णायक प्रभाव में नहीं आया था। लेकिन भारतीय पूँजीपतियों ने जैसाकि ऊपर बताया जा चुका है, वामपंथ के बढ़ते हुए ख़तरे का मुकाबला करने के लिए साम्राज्यवाद से हाथ नहीं मिलाया। उदाहरण के लिए, उन्होंने 1928 में लोक सुरक्षा विधेयक को पारित करने में औपनिवेशिक सरकार का समर्थन करने से इन्कार कर दिया, यद्यपि उसका उद्देश्य साम्यवादियों को समाप्त करना था। उनका तर्क था कि इस विधेयक से राष्ट्रीय आंदोलन पर आक्रमण किया जायेगा। इस तथ्य ने, कि पूँजीपतियों ने राष्ट्रवादी आंदोलन के भीतर वामपंथ की बढ़ती हुई प्रवृत्ति को देखकर भी राष्ट्रवाद के पक्ष का परित्याग नहीं किया, आंदोलन के भीतर पूँजीपतियों के प्रभाव को बनाये रखने में पर्याप्त सहयोग दिया।

राष्ट्रवादी पक्ष को छोड़ने के स्थान पर, पूँजीपतियों ने राष्ट्रवादी धारा में वामपंथ से लड़ने के लिए एक पर्याप्त जटिल रणनीति का सहारा लिया। इस नीति के अंतर्गत उन्होंने राष्ट्रीय आंदोलन के दक्षिणपंथ को मज़बूत बनाया और द्रुतगामी आर्थिक विकास, न्यायपूर्ण वितरण, आंशिक राष्ट्रीयकरण, भूमि सुधार और श्रमिक कल्याण की योजनाओं के बारे में विस्तृत राजनीतिक और वैचारिक प्रचार किया। फिक्की के अध्यक्ष जी० एल० मेहता के शब्दों में—"सामाजिक असंतोष के सबसे कारगर उपाय के तौर पर, सुधारों का एक तर्कसंगत कार्यक्रम" बनाकर उन्होंने राष्ट्रवादी आंदोलन के वामपंथी पक्ष से मुकाबला करने का प्रयास किया।

इसे एक बार फिर दुहराया जाना चाहिए कि पूँजीपतियों ने राष्ट्रीय आंदोलन को पूँजीवादी सीमा में रोके रखने के लिए साम्राज्यवाद से कोई समझौता नहीं किया। वे साम्राज्यवाद विरोधी ही बने रहे, हालांकि उनका उद्देश्य ऐसी नीति बनाना था जिसमें साम्राज्यवाद के समापन के साथ ही पूँजीवादी व्यवस्था के बने रहने का भी आश्वासन हो।

**बोध प्रश्न 4**

1 यह कहा जा सकता है कि :
   i) पूँजीपति वर्ग कांग्रेस को आर्थिक सहयोग नहीं दे रहा था।
   ii) पूँजीपति वर्ग कांग्रेस को पूर्णतः वित्तीय सहायता देता था।
   iii) पूँजीपति कांग्रेस को वित्तीय सहायता दे रहे थे लेकिन इस पर विवाद है कि इसका कांग्रेस की नीतियों पर कितना प्रभाव पड़ा।
   iv) उपरोक्त में कोई सत्य नहीं है।

2 राष्ट्रवादी आंदोलन के भीतर वामपंथियों से मुक़ाबला करने के लिए पूँजीपतियों की सबसे असरदार नीतियां थीं :
   i) कि अति-वामपंथी को मज़बूत किया जाय।
   ii) कि अपने को कांग्रेस मुख्य धारा से अलग कर लिया जाय।
   iii) कि कांग्रेस में ही रहा जाय और दक्षिणपंथ को मज़बूत बनाया जाय।
   iv) उपरोक्त में कोई सत्य नहीं है।

## 31.7 सारांश

इस इकाई में आपने अध्ययन किया कि :

- विदेशी पूँजी के अवनतशील नियंत्रण, युद्ध द्वारा आरोपित आयात-प्रतिस्थापन और विदेशी व्यापार में बदलाव की वजह से ख़ाली हुए स्थान पर भारतीय पूँजीवाद का उदय हुआ। यह इसलिए संभव हुआ, क्योंकि विश्व युद्ध और 1930 की मंदी से साम्राज्यवाद कमज़ोर हुआ।
- इसके बावजूद भारतीय पूँजीपतियों को अपना स्थान बनाने के लिए औपनिवेशिक नीतियों के विरुद्ध लड़ना पड़ा।
- भारतीय पूँजीपतियों के वर्ग-संगठन फेडरेशन ऑफ़ इंडियन चैम्बर ऑफ़ कॉमर्स एंड इंडस्ट्री (फिक्की) ने निश्चित ढंग से स्पष्ट किया कि साम्राज्यवाद आर्थिक और राजनीतिक तरीके से उसके विकास को प्रभावित कर रहा है।
- उपनिवेशवाद की इस सुस्पष्ट समीक्षा की वजह से ही भारतीय पूँजीपतियों ने राष्ट्रीय आंदोलन में भाग लेने की नीति बनायी।
- इस नीति में निम्नलिखित मुख्य बातें थी :
   i) अपने हितों के विरुद्ध पड़ने पर भी जन आंदोलनों की आवश्यकता का अहसास,
   ii) वामपंथ की बढ़ती संभावनाओं का मुकाबला करने की आवश्यकता, और
   iii) कांग्रेस के बहु-वर्गीय मंच को लगातार वर्गीय हितों की ओर मोड़ने की आवश्यकता।

## 31.8 शब्दावली

**आयात-प्रतिस्थापन** : एक ऐसी आर्थिक नीति, जिसमें ऐसी वस्तुओं को जो पहले विदेश से आयातित होती थीं देश में ही निर्मित करने के प्रयास को प्रोत्साहन दिया जाता है, इस नीति से सामान्यतया राष्ट्रीय देशी उद्योगों के विकास को बढ़ावा मिलता है।

**कम्प्रेडोर** : वे पूँजीपति, जिनका उद्योग विदेशी पूँजी के पूर्णतः अधीन है।

**सामंतवादी हित** : वे हित, जिनके निर्वाह का मुख्य साधन भूमि और जोतदारों के नियंत्रण पर निर्भर करता है।

**राष्ट्रीय आंदोलन की सापेक्ष्य स्वायत्तता** : इसका आशय है कि राष्ट्रीय आंदोलन किसी प्रभुत्वशाली वर्गीय-हितों से नहीं जुड़ा है, यद्यपि उस आंदोलन में ऐसे सभी वर्गीय स्वार्थ और सभी वर्गों की आशाएं सन्निहित थीं।

## 31.9 बोध प्रश्नों के उत्तर

**बोध प्रश्न 1**

1 उप-भाग 31.2.5 देखिये। आपके उत्तर में निम्न बातें होनी चाहिएं :
   i) भारतीय पूँजीपतियों की उपनिवेशवाद-विरोधी प्रवृत्ति।
   ii) ब्रिटिश साम्राज्यवाद की अवनति।

2 उप-भाग 31.2.7 देखिये। आपके उत्तर में निम्न बातें शामिल होनी चाहियें :
   i) पूँजीपतियों का वामपंथ के बारे में दृष्टिकोण।
   ii) वामपंथ की शक्ति।

**बोध प्रश्न 2**

1 भाग 31.3 का प्रथम पैरा देखिये। आपके उत्तर में भारतीय व्यापार के उन प्रयासों का वर्णन होना चाहिए, जिसके द्वारा उन्होंने अपने हितों के संरक्षण के लिए एक राष्ट्रीय संगठन का निर्माण किया।

2 उप-भाग 31.3.1 देखिये। आपके उत्तर में निम्नलिखित बातें होनी चाहिएं :
   i) व्यापार और उद्योग के एक राष्ट्रीय संगठन की भूमिका।
   ii) साम्राज्यवाद की समीक्षा के विकास में इसकी भूमिका।

**बोध प्रश्न 3**

1 iii)

2 ii)

**बोध प्रश्न 4**

1 iii)

2 iii)

# इकाई 32 देशी रियासतों में जन संघर्ष

## इकाई की रूपरेखा


32.0 उद्देश्य
32.1 • प्रस्तावना
32.2 राष्ट्रीय आंदोलन का प्रभाव
32.3 आरंभिक राजनीतिक संगठन
32.4 कांग्रेस की नीति
32.4.1 संघीय योजना
32.4.2 कांग्रेस मंत्रिमंडल
32.5 नया चरण
32.5.1 कांग्रेस की नीति में परिवर्तन
32.5.2 रियासतों में भारत छोड़ो आंदोलन
32.5.3 एकीकरण की प्रक्रिया
32.6 राजकोट में जन आंदोलन
32.6.1 लखाजीराज का शासन
32.6.2 निरंकुशता की वापसी
32.6.3 विरोध की शुरुआत
32.6.4 सत्याग्रह
32.6.5 गांधी जी द्वारा हस्तक्षेप
32.6.6 राजकोट सत्याग्रह के सबक
32.7 हैदराबाद में जन आंदोलन
23.7.1 निज़ाम का शासन
32.7.2 जागृति की शुरुआत
32.7.3 सत्याग्रह
32.7.4 द्वितीय विश्व युद्ध
32.7.5 किसान आंदोलन
32.7.6 अंतिम चरण
32.7.7 सशस्त्र प्रतिरोध तथा भारतीय सेना द्वारा हस्तक्षेप
32.8 सारांश
32.9 शब्दावली
32.10 बोध प्रश्नों के उत्तर


## 32.0 उद्देश्य

इस इकाई का उद्देश्य आपके समक्ष 1920-1947 के दौरान देशी रियासतों में उठे जन संघर्षों की एक विस्तृत जानकारी प्रस्तुत करना है। इस इकाई को पढ़ने के बाद आप :

- राष्ट्रीय आंदोलन तथा देशी रियासतों में उठे जन संघर्ष के बीच तुलना कर सकेंगे,
- इन राज्यों की जनता को इन संघर्षों के लिए तैयार करने में भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस की भूमिका पर विचार कर सकेंगे,
- इस विषय पर कांग्रेस की नीति में परिवर्तनों को बता सकेंगे, तथा
- इन संघर्षों की अगुआई करने में कम्युनिस्टों की भूमिका का मूल्यांकन कर सकेंगे।

## 32.1 प्रस्तावना

अंग्रेज़ों ने भारत में अपना आधिपत्य एक लम्बी और जटिल प्रक्रिया द्वारा स्थापित किया था।

औपनिवेशिक शासन से पहले की राजनीतिक ताक़तें जो भारत में पहले से विद्यमान थीं, उन पर अंग्रेज़ों ने प्रत्यक्ष विजय प्राप्त करके, डरा धमका कर अथवा उन्हें मिलाकर यह आधिपत्य प्राप्त किया था। परिणामतः इस उपमहाद्वीप के 3/5 भाग पर प्रत्यक्ष ब्रिटिश शासन तथा शेष 2/5 भाग पर "अप्रत्यक्ष सत्ता" अंग्रेज़ों की सर्वोपरि (Paramountcy) सत्ता क़ायम हुई। अप्रत्यक्ष ब्रिटिश शासन के अंतर्गत आने वाले क्षेत्र अभी भी देशी राजाओं द्वारा परिचालित थे। सामंती भारत अथवा भारतीय रियासतों के अंतर्गत सैकड़ों रियासतें शामिल थीं, जिनमें से हैदराबाद, मैसूर, अथवा कश्मीर जैसी रियासतों का क्षेत्रफल कई यूरोपीय देशों के बराबर था। कुछ दूसरी रियासतें बहुत छोटी थी और उनकी आबादी कुछ हज़ार की ही थी तथा कई हज़ार रियासतें इन छोटी-छोटी रियासतों के बीच की श्रेणी में आती थीं।

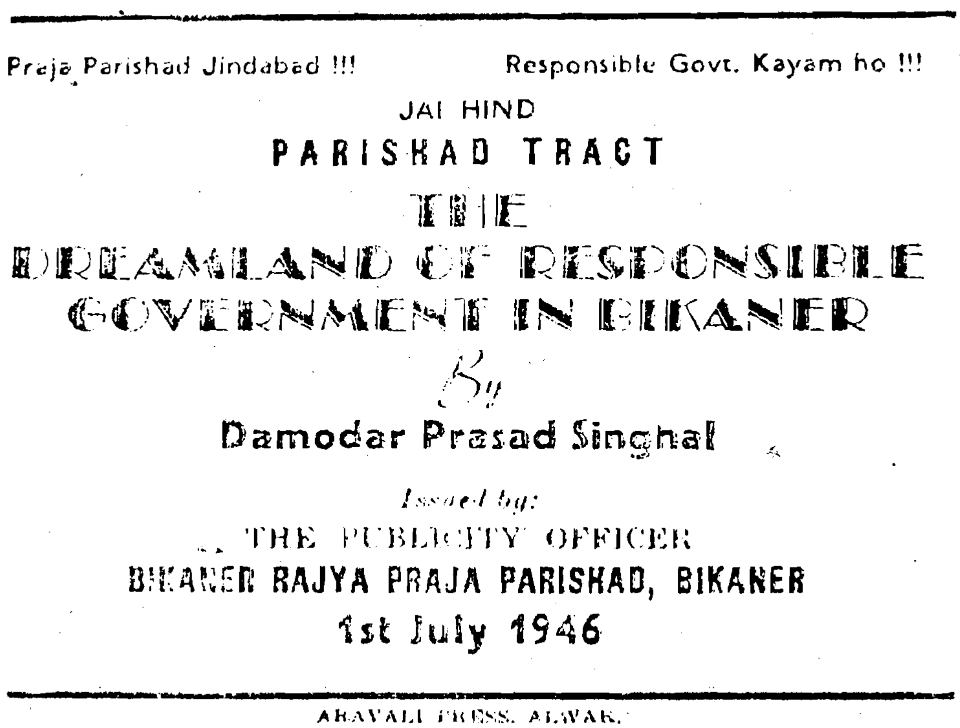

Praja Parishad Jindabad !!! Responsible Govt. Kayam ho !!!

JAI HIND

PARISHAD TRACT

THE DREAMLAND OF RESPONSIBLE GOVERNMENT IN BIKANER

By

Damodar Prasad Singhal

Issued by:

THE PUBLICITY OFFICER

BIKANER RAJYA PRAJA PARISHAD, BIKANER

1st July 1946

ARAVALI PRESS, ALWAR.

**चित्र 20. रियासतों की जनता की मांगों के विषय में छपी एक पुस्तिका का कवर पेज**

भारतीय रियासतों पर अप्रत्यक्ष ब्रिटिश शासन का सबसे महत्वपूर्ण पक्ष यह था कि सर्वोपरि सत्ता स्वीकार किए जाने के बदले में शासकों को अंग्रेज़ों ने बाह्य और आंतरिक दोनों प्रकार के ख़तरों के विरुद्ध सुरक्षा देने का वचन दिया हुआ था। फलतः शासकों ने अपनी प्रजा के कल्याण के लिए नाममात्र को भी कुछ करने की आवश्यकता नहीं समझी। अधिकांश रियासतें निरंकुश थीं। शासक मनमाने ढंग से राजस्व थोपते थे। ये शासक समय-समय पर यूरोपीय देशों की यात्रा करते थे और काफी लम्बा समय वहीं व्यतीत करते थे। भारत में अपने विदेशी मेहमानों के मनोरंजन के लिए उन्हें शिकार पर ले जाते थे। इनके हरम में औरतों की संख्या निरंतर बढ़ती रहती थी। इस तमाम फ़िज़ूल खर्ची का बोझ असहाय जनता को ही सहना पड़ता था।

कुछ अपेक्षाकृत बेहतर शासकों ने अक्सर अंग्रेज़ों के प्रतिरोध के बावजूद प्रशासनिक और राजनीतिक सुधार लाने तथा औद्योगिक विकास को बढ़ाने का भी प्रयास किया। उन्होंने आधुनिक शिक्षा के प्रसार के भी गंभीर प्रयास किये तथा सरकार में जनता को शामिल करने की भी स्वीकृति दे दी। लेकिन इस प्रकार की रियासतों की संख्या बहुत ही कम रही। अधिकतर रियासतें जीवन के विभिन्न क्षेत्रों में हर दृष्टि से पिछड़ी रहीं और रूढ़िवादी ढर्रे पर

चलती रही। ऐसी परिस्थिति के लिए बहुत कुछ अंग्रेज़ ही ज़िम्मेदार थे जो विशेषकर बीसवीं शताब्दी में राष्ट्रीय आंदोलन की बढ़ती हुई शक्ति के परिप्रेक्ष्य में भारतीय रियासतों की तमाम प्रतिक्रियावादी परंपराओं को यथावत बनाए रखने को तत्पर थे और उत्तरदायी सरकार बनाने की ओर कोई क़दम नहीं उठाना चाहते थे। दरअसल इन राजाओं की ओर से राष्ट्रीय आंदोलन को किसी प्रकार का समर्थन अंग्रेज़ी शासकों को असह्य था। इन रियासतों में अपने प्रतिनिधियों के द्वारा इन पर कड़ी निगरानी रखी जाती थी।

## 32.2 राष्ट्रीय आंदोलन का प्रभाव

फिर भी, जैसा कि अपरिहार्य था, ब्रिटिश भारत में अपनी जड़े मज़बूत करने के बाद राष्ट्रीय आंदोलन इन रियासतों के लोगों को भी प्रभावित करने लगा। राष्ट्रवादियों के प्रजातंत्र, उत्तरदायी सरकार तथा नागरिक स्वतंत्रता (Civil liberty) से संबंधित विचारों ने तुरंत ही वहाँ की जनता को आकृष्ट किया क्योंकि उन्हें अपने दैनिक जीवन में निरंकुश शासन के दमन का सामना करना पड़ता था। सबसे पहले विचार इन रियासतों में राष्ट्रवादियों के द्वारा पहुँचे जिनमें से कुछ ब्रिटिश भारत में आतंकवादी घोषित होने के उपरान्त इन रियासतों में शरण ढूंढ़ रहे थे। लेकिन एक बार जब इस राष्ट्रीय आंदोलन ने व्यापक स्वरूप धारण कर लिया तो रियासतों के लोगों पर इसका प्रभाव अधिक हो गया। दरअसल, इन रियासतों में सर्वप्रथम स्थानीय स्तर के जन संगठन 1920 से लेकर 1922 तक चलने वाले असहयोग तथा ख़िलाफ़त आंदोलन के प्रभाव में अस्तित्व में आये।

## 32.3 आरंभिक राजनीतिक संगठन

सर्वप्रथम हैदराबाद, मैसूर, बड़ौदा, काठियावाड़ की रियासतें, दकनी रियासतें, जामनगर, इन्दौर तथा नवानगर में प्रजा मंडलों की स्थापना हुई। इस प्रक्रिया से उभरने वाले मुख्य नेता बलवंत राय मेहता, माणिकलाल कोठारी तथा सी० आर० अभ्यंकर आदि थे। इन्हीं नेताओं की पहल पर 1927 में पहली बार अखिल भारतीय स्तर पर इन रियासतों की जनता एकत्रित हुई और आगे चलकर अखिल भारतीय रियासती प्रजा सम्मेलन की स्थापना हुई। इस सम्मेलन के पहले अधिवेशन में ही लगभग 700 राजनीतिक कार्यकर्त्ताओं ने हिस्सा लिया।

## 32.4 कांग्रेस की नीति

1920 में भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस ने अपने उस प्रस्ताव के ज़रिए जिसमें शासकों से पूर्ण उत्तरदायी सरकार की स्थापना के लिए आग्रह किया गया था, भारतीय रियासतों के प्रति अपनी नीति की घोषणा कर दी थी। भारतीय रियासतों में राजनीतिक आंदोलन अथवा संघर्ष चलाने के प्रश्न पर कांग्रेस की नीति काफ़ी जटिल थी। यद्यपि रियासतों में रह रहे व्यक्तियों को कांग्रेस का सदस्य होने की स्वतंत्रता थी और उसके द्वारा चलाये गये आंदोलनों में वे भाग ले सकते थे। लेकिन कांग्रेस के नाम पर रियासतों में वे राजनीतिक गतिविधियां आरंभ नहीं कर सकते थे। वे केवल अपनी व्यक्तिगत क्षमता अथवा स्थानीय राजनीतिक संगठनों जैसे प्रजा मंडलों आदि के सदस्य के रूप में ही ऐसा कर सकते थे। कांग्रेस के इस मत का स्पष्ट प्रत्यक्ष कारण यह था कि ये रियासतें वैधानिक दृष्टि से अपना अस्तित्व रखती थीं। रियासतों की राजनीतिक परिस्थितियों में बहुत अधिक भिन्नताएं थीं और इसी तरह ब्रिटिश भारत तथा इन रियासतों के बीच बहुत भिन्नताएं थीं। अतः कांग्रेस जैसी संस्था जो कि अपनी

राजनैतिक तथा संघर्ष पद्धति, ब्रिटिश भारत की परिस्थितियों के आधार पर निर्धारित करती थी, उस आरंभिक चरण में रियासतों के राजनीतिक आंदोलनों से सीधे सम्बद्ध होने की स्थिति में नहीं थी। इसके अतिरिक्त रियासती जनता के लिए यह उचित नहीं था कि अपनी मांगें स्वीकार करवाने के लिए ब्रिटिश भारत में अधिक विकसित आंदोलनों पर निर्भर करे। आवश्यकता इस बात की थी कि वे स्वयं अपनी शक्ति बढ़ाएं, अपनी राजनीतिक चेतना विकसित करें और अपनी विशिष्ट मांगों के लिए संघर्ष क्षमता का प्रदर्शन करें। इन सीमाओं के अंतर्गत ही कांग्रेस और कांग्रेस के कार्यकर्ता रियासतों के आंदोलनों को विभिन्न तरीकों से सहयोग देते रहे। 1929 में कांग्रेस के लाहौर अधिवेशन में जवाहरलाल नेहरू ने अपने अध्यक्षीय भाषण में रियासतों के संदर्भ में संगठन की स्थिति पर विस्तार से प्रकाश डाला। उन्होंने बड़े ज़ोरदार ढंग से कहा कि "भारतीय रियासतें शेष भारत से कटकर नहीं रह सकतीं इन रियासतों के भविष्य निर्धारित करने का अधिकार इन रियासतों के निवासियों को ही है।"

यद्यपि इन रियासतों में राजनीतिक जागरूकता और राजनीतिक प्रतिरोध 1920 तथा 1930 के दशक में ज़ोर पकड़ने लगे थे लेकिन वास्तविक आंदोलन का प्रारम्भ 1930 के उत्तरार्ध में ही हुआ। इसके दो परस्पर संबंधित कारण थे : पहला 1935 के भारत सरकार अधिनियम के तहत प्रस्तावित संघीय योजना तथा दूसरा था 1937 में ब्रिटिश भारत के अधिकांश प्रांतों में कांग्रेस मंत्रिमंडलों द्वारा सरकार बनाया जाना।

### 32.4.1 संघीय योजना

संघीय योजना के अनुसार, भारतीय रियासतों को ब्रिटिश भारत से सीधे संवैधानिक संबंध के अंतर्गत लाया जाना था जो कि मौजूदा स्थिति से पृथक था जिसमें कि वे ब्रिटिश साम्राज्यों से सीधे जुड़े थे। यह संघीय भारतीय विधायिका की स्थापना से प्राप्त किया जाना था जिसमें ब्रिटिश भारत और भारतीय रियासतों दोनों के ही प्रतिनिधि शामिल होते। इस विधानमंडल में ब्रिटिश भारत के प्रतिनिधि सामान्यतः जनता द्वारा चुने जायेंगे, जबकि रियासतों के प्रतिनिधि जो कि कुल सदस्यों की संख्या का एक तिहाई हिस्सा थे, इन रियासतों के शासकों द्वारा मनोनीत किये गये थे। इस पूरी योजना का उद्देश्य रियासतों के मनोनीत प्रतिनिधियों को ठोस कठपुतली के रूप में इस्तेमाल करके ब्रिटिश भारत के निर्वाचित प्रतिनिधियों को शक्तिहीन बनाना था। इसीलिए सभी राष्ट्रवादियों ने मिलकर संघीय योजना का विरोध किया और मांग की कि रियासतों के प्रतिनिधि भी मनोनीत किये जाने के बजाए जनता द्वारा निर्वाचित किये जाएं। स्वाभाविक रूप से इसके कारण भारतीय रियासतों में उत्तरदायी सरकार की मांग की महत्ता को महसूस किया गया था क्योंकि जब तक रियासतों में निर्वाचन के सिद्धांत लागू न हों तब तक उन्हें संघीय स्तर पर लागू नहीं किया जा सकता।

### 32.4.2 कांग्रेस मंत्रिमंडल

अनेक प्रांतों में कांग्रेस द्वारा मंत्रिमंडल के गठन ने रियासतों में आंदोलनों को प्रेरणा देने का कार्य किया। ब्रिटिश भारत के कई प्रांतों में कांग्रेस के सत्ता में आने से रियासतों की जनता के अन्दर विश्वास की भावनाएं और आकांक्षाएं जगा दीं। इस परिस्थिति ने शासकों पर दबाव डालना शुरू किया क्योंकि कांग्रेस संगठन अब केवल एक विरोधी आंदोलन नहीं रह गया था बल्कि एक ऐसा राजनीतिक दल भी था जो कि सत्ता में था। उनके लिए यह परिस्थिति उस भविष्य का संकेत बन गयी थी जिससे उनको अपने क्षेत्र में जूझना था।

## 32.5 नया चरण

इस प्रकार रियासतों में 1938-39 के वर्षों में आंदोलन अपने चरमोत्कर्ष पर पहुंच गया। कई रियासतों में प्रजा मंडल बन गये और राजकोट, ट्रैवनकोर, मैसूर, हैदराबाद, पटियाला, जयपुर, कश्मीर और उड़ीसा की रियासतों में संघर्ष भड़क उठे।

*HARIJAN*

Dec. 3 1938

## STATES AND THE PEOPLE

( *By M. K. Gandhi* )

The almost simultaneous awakening in the various states is a very significant event in the national struggle for independence. It will be wrong to think that such awakening can be due to the instigation of one person or a body of persons or any organization. It is just possible that the Haripura resolution of the Congress put the people of the states on their mettle and they realized as never before that their salvation depended upon their own labours. But above all it is the time spirit that has brought about the awakening. It is to be hoped that the Princes and their advisers will recognize it and meet the legitimate aspirations of the people. There is no half-way house between total extinction of the states and the Princes making their people responsible for the administration of their states and themselves becoming trustees for the people, taking an earned commission for their labours.

I hope, therefore, the rumour is not true that the British Government are likely, at the instance of some Princes or their Dewans, to announce a change in the policy recently enunciated by Earl Winterton, about the ability of the Princes to grant responsible government to their people. If any of them have asked the British Government to reverse the policy, they have undoubtedly done a disservice to themseleves. And if the British Government respond to the unworthy wish, they will precipitate a first class crisis whose magnitude it is difficult to foretell. I must refuse to believe that the British Government can commit such a blunder. Earl Winterton's announcement was but an endorsement of past practice. They are not known to have ever interfered with the states giving powers to their people, however wide they might be.

I go a step further. Even as the British Government, as the Paramount Power, are bound to protect the Princes against harm from outside or within, they are equally or *a fortiori* bound to ensure just rule on the part of the Princes. Hence it is their bounden duty, when they supply the police or the military to any state, to see that there is a proper emergency justifying the request and that the military or the police will be used with becoming restraint. From Dhenkanal have come to me stories of fiendish cruelty exercised by the state myrmidons under the shadow of the police supplied by the Paramount Power. I asked for evidence in support of some of the unnameable cruelties. And I have enough to inspire belief.

Indeed, it is a question whether responsible ministers in the provinces have not a moral responsibility in respect of the people of the states in their respective provinces. Under the constitution, the ministers have no power over them. The Governor is the agent of the Viceroy who is the representative of the Paramount Power. But the ministers in autonomous provinces have surely a moral responsibility regarding what happens in the states. So long as the states and the people are satisfied, ministers have no worry. But have they none if there is, say, virulent epidemic in the states which, if neglected, may easily overtake the province in which they are situated? Have they none when there is a moral epidemic which seems to be raging in Dhenkanal?

I understand that the persecuted people are taking refuge in British Orissa. Can the ministers refuse them shelter? How many can they take charge of? Whatever happens in these states affects for better or for worse the province as a whole. I do believe, therefore, that the ministers by reason of the heavy responsibility resting on their shoulders have the moral right, within strict limits, to assert themselves for the sake of internal peace and decency. They cannot look on with unconcern while the people of the states —an arbitrary creation of the Paramount Power— are being ground to dust as they in Dhenkanal are reported to be.

One reads in the papers that some concessions have been given to the people of Dhenkanal. I do not know whether the report is true and whether the relief answers the purpose for which the people of Dhenkanal are fighting and suffering. It is, however, irrelevant to the issue raised by me. I feel that the ministers in the Provinces are morally bound to take notice of gross misrule in the states within their borders and to tender advice to the Paramount Power as to what, in their opinion, should be done. The Paramount Power, if it is to enjoy friendly relations, with the provincial ministers, is bound to give sympathetic ear to their advice.

There is one other matter which demands the urgent attention of the states and their advisers. They fight shy of the very name Congress. They regard Congressmen as outsiders, foreigners and what not. They may be all that in law. But man-made law, if it is in conflict with the natural law, becomes a dead letter when the latter operates in full force. The people of the states look up to the Congress in all matters affecting their interest. Many of them are members of the Congress. Some like Shri Jamnalalji hold high offices in the Congress organization. In the eye of the Congress there is no distinction between members from the states and from India called British. It is surely detrimental to the interests of the states to ignore the Congress or Congressmen especially when it or they seek to render friendly assistance. They must recognize



चित्र 21. देशी रियासतों में जन आन्दोलन पर हरिजन में गाँधीजी का लेख

### 32.5.1 कांग्रेस की नीति में परिवर्तन

इस नयी परिस्थिति में रियासतों के अंतर्गत आंदोलनों के प्रति कांग्रेस की नीति में स्पष्ट परिवर्तन आये। उग्रपंथी और वामपंथी पहले से ही रियासतों के आंदोलनों के प्रति स्पष्ट पहचान की मांग कर रहे थे लेकिन कांग्रेस की सोच पर निर्णायक प्रभाव रियासतों के जनवादी आंदोलनों ने डाला। यह 25 जनवरी, 1939 को गांधी जी के टाइम्स ऑफ़ इण्डिया को दिए गये एक इण्टरव्यू के निम्नलिखित वक्तव्य से स्पष्ट हो जाता है:

> "मेरी दृष्टि में ऐसे समय में जबकि रियासतों की जनता जागरूक नहीं थी, हस्तक्षेप न करने की कांग्रेस की नीति कूटनीति का बेहतरीन उदाहरण थी। किंतु ऐसे समय में जबकि रियासत के लोगों में व्यापक जागरूकता आ चुकी है और लोग अपने अधिकारों को प्राप्त करने के लिए कष्टों के एक लम्बे दौर को झेलने के लिए तैयार हैं, वह नीति कायरता की प्रतीक होगी। जिस क्षण उसमें जागरूकता आई उस क्षण से क़ानूनी, संवैधानिक और बनावटी सीमाएं टूट गयीं।"

मार्च, 1939 में अपने त्रिपुरी अधिवेशन में कांग्रेस ने एक प्रस्ताव पारित किया जिसमें गांधी जी के उक्त विचारों को सम्मिलित किया गया:

> "रियासत की जनता के बीच उभर रही महान जागरूकता कांग्रेस में ढील ला देगी अथवा उन रुकावटों को पूरी तरह ख़त्म कर देगी जो कि कांग्रेस ने स्वयं पर लगा रखी हैं। परिणामतः रियासतों की जनता के साथ कांग्रेस की पहचान निरंतर बढ़ती ही जायेगी।"

1939 में अखिल भारतीय रियासती प्रजा सम्मेलन के लुधियाना अधिवेशन में जवाहरलाल नेहरू के अध्यक्ष चुने जाने से आंदोलन को और भी प्रोत्साहन मिला और यह ब्रिटिश भारत तथा भारतीय रियासतों के आंदोलनों की एकता का प्रतीक बन गया।

### 32.5.2 रियासतों में भारत छोड़ो आंदोलन

1939 में दूसरे विश्व युद्ध के आरंभ होते ही परिस्थिति में स्पष्ट परिवर्तन आये। कांग्रेस मंत्रिमंडलों ने इस्तीफ़ा दे दिया और भारत में अंग्रेज़ी सरकार तथा रियासतों ने और भी दमनकारी रूप ले लिया। आंदोलन का एक ठहराव की स्थिति आ गयी जो अंततः 1942 में भारत छोड़ो आंदोलन के आरंभ होने से ही टूटी। पहली बार कांग्रेस ने रियासती जनता का स्वतंत्रता के लिए अखिल भारतीय संघर्ष में पूरी तरह से शामिल होने का आह्वान किया। कांग्रेस ने उत्तरदायी सरकार की अपनी मांग में भारत की स्वतंत्रता और रियासतों को भारतीय राष्ट्र में उसके अभिन्न अंग के रूप में शामिल किये जाने की मांग जोड़ दी। रियासती जनता के संघर्षों को औपचारिक रूप से ब्रिटिश भारत की जनता के संघर्षों के साथ जोड़ लिया गया।

### 32.5.3 एकीकरण की प्रक्रिया

दूसरे विश्व युद्ध की समाप्ति पर सत्ता के ब्रिटिश नियंत्रण को भारतीय नियंत्रण में हस्तांतरित करने की बातचीत का दौर शुरू हुआ। ऐसी परिस्थिति में भारतीय रियासतों के भविष्य का प्रश्न अत्यंत महत्वपूर्ण हो गया। अंग्रेज़ सरकार का यह मानना था कि उनके भारत छोड़ने के बाद उनकी सर्वोपरि सत्ता ख़त्म हो जाएगी और भारतीय रियासतें वैधानिक दृष्टि से स्वतंत्र हो जाएगीं। इससे उप महाद्वीप के कई टुकड़ों में बंटने की स्थिति पैदा हो सकती थी। राष्ट्रीय नेतृत्व, विशेषकर सरदार पटेल ने इस परिस्थिति में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई तथा कूटनीतिक दबावों एवं जनवादी आंदोलनों के संयोजन द्वारा अधिकांश रियासतों को भारतीय संघ में शामिल होने पर राज़ी कर लिया। अधिकतर बुद्धिमान शासकों ने स्वयं ही इस तथ्य को समझ लिया कि भिन्न अस्तित्व के रूप मे उनके क्षेत्रों की स्वतंत्रता यथार्थवादी विकल्प नहीं था लेकिन ट्रैवनकोर, जूनागढ़, हैदराबाद और कश्मीर जैसी रियासतें अंतिम समय तक भारतीय संघ में शामिल होने से इंकार करती रहीं। अंततः केवल हैदराबाद ही ऐसी रियासत बची जो स्वतंत्र बने रहने के लिए अंत तक गंभीर प्रयास करती रही।

PAGE 2?7

THE FREE PRESS JOURNAL

STATES PEOPLES SUPPLEMENT

BOMBAY, SATURDAY, OCTOBER 18, 1947.

# IN A MAZE

Despairing of the hope that Lord Mountbatten's advice to the Indian Princes will be followed, the Government of India and the A.I.S.P.C. are drifting, unable either to see the overall picture in its true perspective or lay down a uniform plan as to how the difficulties arising out of the June 3 Plan are to be surmounted.

The Union Government seeks to judge each state on individual merit.

The A.I.S.P.C. through its spokesman and now ex-President can see merit only in those actions of the States that are favourable to the Indian Union.

Thus Sardar Vallabhbhai Patel cannot see the necessity of holding a plebiscite in Kashmir although he thinks that a plebiscite in Junagadh is essential.

Thus Dr. Pattabhi Sitaramayya cannot see why Kashmir should join Pakistan but he wants Hyderabad and Junagadh to join the Indian Union on the grounds that the majority population is non-Muslim.

The Ex-Acting President even goes so far as to suggest that Kashmir and Hyderabad should exchange Rulers after which all difficulties would, apparently vanish.

Both representatives are inclined to lay emphasis on the Rulers rather than on the People. ....

Neither is able to get over the lapse of Paramountcy although one signed away all control over the Princes on the morning of June 3 and the other acquiesced without a murmur.

**चित्र 22. रियासतों में जन आन्दोलन पर फ्री प्रेस जरनल का सम्पादकीय (18.10.1947)**

**बोध प्रश्न 1**

1 भारतीय रियासतों की जनता पर राष्ट्रीय आंदोलन का आरंभिक प्रभाव क्या रहा?

..........................................................................

..........................................................................

..........................................................................

..........................................................................

..........................................................................

2 भारतीय रियासतों के जनवादी आंदोलनों के प्रति भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस की नीति क्या थी?

..........................................................................

..........................................................................

..........................................................................

..........................................................................

..........................................................................

3 संघीय योजना पर पांच पंक्तियां लिखिये।

..........................................................................

..........................................................................

..........................................................................

..........................................................................

..........................................................................

4 निम्नलिखित वक्तव्यों को पढ़ें और उनके सामने सही (√) अथवा ग़लत (×) का निशान लगाएं।

i) भारतीय रियासतों द्वारा नियंत्रित क्षेत्रों पर अंग्रेज़ों का अप्रत्यक्ष नियंत्रण था। ☐

ii) संघीय योजना को राष्ट्रवादी नेताओं का समर्थन प्राप्त था। ☐

iii) 1930 के दशक में देशी रियायतों के आंदोलन में तीव्रता आयी। ☐

**दो रियासतों की केस स्टडी :**

अब हम दो भारतीय रियासतों में आंदोलन के स्वरूप पर गहराई से दृष्टि डालेंगे। हमने सभी रियासतों के आंदोलनों का संक्षिप्त में सारांश प्रस्तुत करने के बजाय प्रतिनिधि रियासतों के आंदोलनों को विस्तार में प्रस्तुत करने की पद्धति इसलिए अपनायी है क्योंकि इस प्रकार की पद्धति से भारतीय रियासतों में बुनियादी स्तर पर राजनीतिक गतिविधियों और राजनीतिक जागरूकता को उभारने वाली विभिन्न शक्तियों के जटिल स्वरूप को समझने में आसानी होगी। हमने जो रियासतें चुनी हैं वे न केवल आकार की दृष्टि से बल्कि कुछ अन्य कारणों से भी हैदराबाद (सबसे बड़ी रियासत थी) तथा राजकोट (सबसे छोटी रियासतों में से एक) प्रतिनिधि रियासतें हैं। हैदराबाद का शासन (निज़ाम) एक मुस्लिम के हाथ में था तथा राजकोट का शासन एक हिन्दू के हाथ में। राजकोट में गांधीवादी राजनीतिक कार्यकर्ता नेतृत्व कर रहे थे और हैदराबाद में कम्युनिस्ट, सामन्ती शासकों के विरुद्ध जनवादी आंदोलन में महत्वपूर्ण भूमिका निभा रहे थे।

## 32.6 राजकोट में जन आंदोलन

राजकोट की रियासत असंख्य छोटी-छोटी रियासतों में से एक थी जो गुजरात के काठियावाड़ प्रायद्वीप में स्थित थी। इसकी कुल आबादी केवल 75,000 थी। तथापि राजकोट काफ़ी महत्वपूर्ण रियासत थी क्योंकि राजकोट शहर पश्चिमी भारतीय रियासती एजेंसी (Western India States Agency) का मुख्यालय था, जहां ब्रिटिश राजनीतिक एजेंसी क्षेत्र की सभी छोटी रियासतों की निगरानी का कार्य करती थी।

### 32.6.1 लखाजीराज का शासन

भारतीय रियासतों में राजकोट ऐसी पहली रियासत थी जहां सरकार में जनता की हिस्सेदारी की शुरुआत हुई। यह जन सहभागिता राजकोट के ठाकुर साहब, लखाजीराज के प्रबुद्ध विचारों के कारण ही आरंभ हो सकी । लखाजीराज ने 1930 तक कुल बीस वर्षों के लिए रियासत पर शासन किया। 1923 में उन्होंने राजकोट प्रतिनिधि सभा की शुरुआत की। यह सभा 90 चुने हुए सदस्यों की प्रतिनिधि विधानसभा थी। जिनके सदस्यों का चुनाव वयस्क मताधिकार द्वारा होता था। ठाकुर साहब के पास "वीटो" का अधिकार सुरक्षित था लेकिन

लखाजीराज ने इस अधिकार का प्रयोग बिरले ही किया। इस प्रजा प्रतिनिधि सभा के पास काफ़ी अधिकार थे। लखाजीराज ने रियासत में औद्योगिक और शैक्षणिक उन्नति को काफ़ी प्रोत्साहन दिया।

इस प्रकार प्रबुद्ध शासक ने राष्ट्रवादी राजनीतिक गतिविधियों को विभिन्न तरीक़ों से प्रोत्साहित किया। 1921 में उन्होंने राजकोट के अन्दर प्रथम काठियावाड़ राजनीतिक कान्फ्रेंस के आयोजन की अनुमति ली जिसकी अध्यक्षता सरदार पटेल के भाई विठ्ठल भाई पटेल ने की जो कि बाद में केन्द्रीय विधान सभा के प्रथम भारतीय अध्यक्ष भी हुए। लखाजीराज गांधी जी के बड़े प्रशंसक थे और राजकोट के इस सपूत पर गर्व करते थे। वे अक्सर गांधी जी को अपने "दरबार" में बुलाते और उन्हें सिंहासन पर बिठा कर स्वयं "दरबार" में बैठते। जवाहरलाल नेहरू का रियासत के एक दौरे पर उन्होंने जन स्वागत किया। लखाजीराज काठियावाड़ राजनीतिक कान्फ्रेंस के अधिवेशनों में भी शामिल हुए। अंग्रेज़ों की अवज्ञा में खादी पहनी और राष्ट्रीय स्कूल के लिए भूमि दान की, यह स्कूल बाद में राजनीतिक गतिविधियों का केन्द्र बन गया।

## 32.6.2 निरंकुशता की वापसी

लखाजीराज के ये प्रगतिवादी कार्य अधिक दिनों तक न चल सके। 1930 में उनकी मृत्यु के पश्चात् उनके पुत्र धर्मेन्द्र सिंह जी ने शासन संभाला और एक शासक के रूप में अपने पिता के बिल्कुल विपरीत विचारों वाला सिद्ध हुआ। धर्मेन्द्र सिंह जी की रुचि केवल भोग विलास में ही थी और इस सब में उसे धूर्त दीवान वीरावाला से भी काफ़ी प्रोत्साहन मिला जिसने सत्ता की सारी शक्ति अपने हाथ में केन्द्रित करने के लिए इस मौक़े का फ़ायदा उठाया। रियासत का सारा धन फ़िजूल ख़र्ची में बहाया गया और एक समय के बाद वहां की वित्तीय स्थिति ऐसी हो गयी कि राजस्व प्राप्त करने के लिए चावल, माचिस, चीनी और दाल के विक्रय का अधिकार राजस्व बढ़ाने के लिए निजी व्यापारियों को दे दिया गया। कर बढ़ा दिये गये, कीमतें काफ़ी बढ़ गईं और जन प्रतिनिधि सभा समाप्त हो गयी। इन तमाम कारणों, तथा विशेषकर लखाजीराज के शासन और वर्तमान शासन के बीच इतने बड़े अन्तर के कारण लोगों के बीच असंतोष और अप्रसन्नता व्याप्त हो गयी।

## 32.6.3 विरोध की शुरुआत

काठियावाड़ क्षेत्र में कई वर्षों से सक्रिय विभिन्न राजनीतिक गुटों ने संघर्ष के लिए आधार भी तैयार कर रखा था। लेकिन इन वर्षों में जिस समूह ने नेतृत्वकारी स्थिति प्राप्त की उसके सदस्य गांधीवादी रचनात्मक कार्यकर्ता थे और उनके मुख्य नेता यू० एन० धेबार थे।

1936 में एक गांधीवादी कार्यकर्ता जेठालाल जोशी द्वारा संगठित मज़दूर यूनियन के तत्वाधान में रियासती सूती मिल में 800 मज़दूरों ने हड़ताल की, हड़ताल 21 दिन चली और मज़दूरों की काम करने की बेहतर परिस्थितियों की मांग को दरबार ने स्वीकार किया। इस सफलता से प्रोत्साहित होकर मार्च, 1937 में जेठालाल जोशी तथा यू० एन० धेबार ने काठियावाड़ राजकीय परिषद (राजनीतिक कांफ्रेंस) की मीटिंग आयोजित की जो कि आठ वर्षों के दौरान पहली बार हुई थी। इस कांफ्रेंस में भाग लेने वाले पंद्रह हज़ार लोगों ने उत्तरदायी सरकार की मांग की और करों को घटाने तथा रियासती खर्चों में कमी की भी मांग की।

रियासत के शासक ने न तो परिषद से बातचीत आरंभ की और न ही मांगें स्वीकार कीं। अतः परिषद ने अगस्त, 1938 में जुआ खेलने के विरोध में, जिसके अधिकार भी गोकुलाष्टमी मेले को बेच दिये गये थे, संघर्ष छेड़ दिया। प्रशासन की दमन की योजना थी, विरोधी प्रदर्शनकारियों पर पहले ऐजेंसी की पुलिस ने और फिर रियासत की पुलिस ने लाठियां बरसाईं। इसकी प्रतिक्रिया तुरन्त देखने में आयी। पूर्ण हड़ताल की घोषणा कर दी गयी और 5 सितम्बर को सरदार पटेल की अध्यक्षता में परिषद का अधिवेशन हुआ। पटेल दीवान वीरावाला से भी मिले और जनता की मांगें प्रस्तुत की, जिसमें उत्तरदायी सरकार के लिए प्रस्ताव तैयार करने की एक कमेटी, प्रतिनिधि सभा के लिए नये चुनाव, भू-राजस्व में 15 प्रतिशत की कमी, सभी प्रकार की इज़ारेदारी समाप्त करना तथा सरकारी खज़ाने पर शासक के अधिकार को सीमित करने की मांगें शामिल थीं। दरबार ने इन मांगों में रुचि दिखाने के बजाए ब्रिटिश रेज़ीडेंट से दीवान के रूप में एक अंग्रेज़ अफसर नियुक्त करने का अनुरोध

किया जिससे कि आंदोलन के प्रभावपूर्ण तरीक़े से निपटा जा सके ब्रिटिश रेजीडेंट ने कैडेल (Cadell) को दीवान बना कर भेज दिया। दीवान वीरावाला जिसने सारी योजना तैयार की थी, स्वयं सत्ता का निजी सलाहकार बन गया तथा अप्रत्यक्ष रूप में सक्रिय बना रहा।

## 32.6.4 सत्याग्रह

प्रशासन का सख्त रवैया देखते हुए प्रतिरोध को और तेज़ कर दिया गया और अंततः व्यापक पैमाने पर सत्याग्रह में परिवर्तित हो गया। सूती मिल में मज़दूरों ने हड़ताल कर दी। छात्रों ने भी हड़ताल आरंभ कर दी। सारा माल चाहे वह रियासत द्वारा उत्पादित हो या इजारेदारी के अंतर्गत बेचे जाने वाला माल दोनों का बहिष्कार किया गया। इसमें कपड़ा और बिजली भी शामिल थे। भू-राजस्व अदा नहीं किया गया तथा स्टेट बैंक में जमा राशि वापस ली जाने लगी। संक्षेप में, रियासत की आय के सारे स्रोत बन्द हो गये। बम्बई ब्रिटिश गुजरात तथा राजकोट के बाहर काठियावाड़ के अन्य क्षेत्रों से कार्यकर्ता राजकोट में इकट्ठे होने लगे। आंदोलन का संगठन बहुत विकसित था। प्रत्येक नेता की गिरफ़्तारी के बाद उसकी जगह कोई दूसरा ले लेता था और इसके लिए पूर्व निर्धारित गुप्त शृंखला का सहारा लिया गया था। जिसके अनुसार कार्यकर्ता अपने राजकोट पहुँचने की तारीख़ तथा प्रबन्ध की सूचना सांकेतिक संख्याओं द्वारा अख़बारों में प्रकाशित करा देते थे। यद्यपि सरदार पटेल राजकोट मे हर समय उपस्थित नहीं रहते थे लेकिन टेलीफ़ोन पर हर रोज़ शाम के समय सूचना प्राप्त कर लेते थे।

ब्रिटिश सरकार राजकोट में किसी भी ऐसी संभावना से भयभीत थी जिसे कांग्रेस की सफलता कहा जा सके। वे नहीं चाहते थे कि दरबार, प्रतिरोधी आंदोलन के साथ किसी प्रकार का समझौता करे। उन्हें डर था कि इससे आंदोलन और फैल जायेगा तथा कांग्रेस का प्रभाव भी बढ़ जायेगा। लेकिन अत्यधिक सफल सत्याग्रह के पूर्ण दबाव में आकर दरबार ने 26 दिसम्बर, 1938 को सरदार पटेल के साथ समझौता किया जिसके फलस्वरूप सत्याग्रह वापस ले लिया गया और सभी क़ैदी रिहा कर दिये गये। समझौते का सबसे महत्वपूर्ण भाग वह था जिसमें दरबार ने दस राज्याधिकारियों की समिति नियुक्ति करने का वचन दिया। दरबार को अधिकतम संभावित शक्तियां प्रदान करने के लिए सुधारों की एक योजना तैयार करना इस समिति का काम था। यह भी समझौता था कि समिति के दस सदस्यों में से सात सदस्य सरदार पटेल द्वारा मनोनीत किये जायेंगे।

अंग्रेज़ सरकार जो मूल रूप से ही समझौते के विरुद्ध थी, अब तुरंत क्रियाशील हो गयी। वाइसरॉय और रियासत के सेक्रेटरी से परामर्श करने के बाद सरदार पटेल द्वारा मनोनीत किए जाने वाले सात सदस्यों की सूची स्वीकार न करने के लिए ठाकुर साहब को बाध्य किया गया। इसके विपरीत ब्रिटिश रेज़ीडेंट की सहायता से एक अन्य सूची इसके स्थान पर तैयार की गयी। सरदार पटेल द्वारा प्रस्तावित सूची अस्वीकार करने के पीछे जो आम कारण बताया गया. काफी महत्वपूर्ण था। इसके अनुसार, सरदार पटेल द्वारा प्रस्तावित सूची इसीलिए स्वीकार नहीं की जा सकती थी क्योंकि यह स्पष्ट रूप में सांप्रदायिक और जातिगत विभाजन का प्रयास था, इस सूची में केवल ब्राह्मण और बनियों के नाम थे तथा राजपूत, मुस्लिम तथा दलित वर्गों का प्रतिनिधित्व नहीं था।

26 जनवरी, 1939 को सत्याग्रह फिर से आरंभ कर दिया गया। शासन ने आंदोलन का दमन करने में अपनी सारी शक्ति लगा दी परंतु इस दमन के विरोध में देश भर से प्रतिक्रियाएं आने लगीं। गांधीजी की पत्नी कस्तूरबा जो राजकोट में ही पली बढ़ी थी, इससे इतनी अधिक प्रभावित हुई कि अपनी बढ़ती हुई उम्र तथा ख़राब स्वास्थ्य की परवाह न करते हुए उन्होंने राजकोट जाने का निश्चय कर लिया। उनके वहाँ पहुँचने पर उन्हें तथा उनकी सहयोगी सरदार पटेल की बेटी मनीबेन को राजकोट शहर से बाहर एक गांव में रोक लिया गया। इसके बाद गांधी जी ने स्वयं ही राजकोट जाने का निश्चय किया। दरबार द्वारा औपचारिक समझौते का उल्लंघन किए जाने के मुद्दे को पहले उन्होंने काफ़ी गंभीरता से लिया। रियासत के साथ तथा ठाकुर साहब के परिवार के साथ अपने और अपने परिवार के नज़दीकी संबंधों को देखते हुए उन्होंने निजी रूप में हस्तक्षेप करना अपना दायित्व समझा।

दरबार को निःसंदेह अंग्रेज़ों द्वारा भड़काया गया और अपने फैसले पर अड़ा रहा अंततः

गांधीजी ने घोषणा की कि यदि तीन मार्च तक दरबार ने इस समझौते का सम्मान नहीं किया तो वे अनिश्चितकालीन अनशन पर चले जायेंगे। दरबार की ओर से कोई आश्वासन नहीं दिया गया और इस प्रकार अनशन की शुरुआत हो गयी।

### 32.6.5 गांधी जी द्वारा हस्तक्षेप

अपेक्षा के अनुरूप ही गांधीजी का अनशन तुरंत देशव्यापी विरोध का चिह्न बन गया। टेलिग्राम के द्वारा वाइसरॉय पर हस्तक्षेप करने के लिए दबाव डाला जाने लगा, कांग्रेस मंत्रिमंडलों ने इस्तीफ़ा देने की धमकियां दी। हड़तालें शुरू हो गयीं तथा विधानमंडल स्थगित कर दिये गये। गांधीजी ने स्वयं वाइसरॉय से अनुरोध किया कि वे हस्तक्षेप करके ठाकुर साहब को समझौते पर जमे रहने के लिए राज़ी करें। सात मार्च को वाइसरॉय ने भारत के मुख्य न्यायाधीश सर मॉरिस गॅायर को मध्यस्थ बनने और यह निर्णय करने के लिए आदेश दिया कि क्या सचमुच ठाकुर ने समझौते का उल्लंघन किया है। इसके बाद ही गांधी जी ने अपना अनशन तोड़ा।

मुख्य न्यायाधीश ने 3 अप्रैल, 1939 को दिये गये अपने निर्णय में सरदार पटेल के पक्ष का समर्थन किया लेकिन वीरावाला के उकसाने पर दरबार सांप्रदायिकता और जातिवाद को प्रोत्साहन देता रहा तथा मुस्लिम ..ार दलित वर्गों को भड़काते हुए इन्हें अपनी मांगें प्रस्तुत करने के लिए प्रोत्साहित करता रहा और उनका इस तरह इस्तेमाल करता रहा कि वे समझौते को मानने से इंकार कर दें। अचानक परिस्थिति बिगड़ने लगी, विशेषकर जिन्ना और अम्बेडकर द्वारा मुस्लिमों और दलित वर्गों के लिए भिन्न प्रतिनिधित्व की मांग के साथ स्थिति और भी बदतर हो गयी तथा गांधी जी की प्रार्थना सभाओं पर विरोधी प्रदर्शन होने लगे। चूँकि कांग्रेस की सफलता से अंग्रेज़ सरकार को फ़ायदा तो कुछ होना नहीं था, केवल उसे नुकसान ही हो सकता था, उसने किसी भी रूप में अपना प्रभाव इस्तेमाल करने से इंकार कर दिया।

यहां पर गांधी जी ने स्वयं को परिस्थिति से अलग कर लिया तथा यह घोषणा की कि वे ठाकुर साहब को समझौते से मुक्त कर रहे हैं। उन्होंने मुख्य न्यायाधीश तथा वाइसरॉय से उनका समय बर्बाद करने के लिए क्षमा मांगी। उन्होंने अपने विरोधियों से भी क्षमा मांगी और ब्रिटिश भारत में वापस आ गये। अपने विरोधियों का हृदय परिवर्तन करने के प्रयास में उन्हें जो असफलता मिली, उसके कारणों का विश्लेषण करते हुए उन्होंने महसूस किया कि दरबार पर दबाव डालने के लिए सर्वोपरि सत्ता के अधिकारों का इस्तेमाल करने का प्रयास करना उचित नहीं था, उन्हें ठाकुर साहब और वीरावाला के हृदय परिवर्तन के लिए कष्ट झेलने की स्वयं की शक्ति पर ही आश्रित होना चाहिए था। गांधी जी के अनुसार, उनके द्वारा अपनायी गयी पद्धति में निहित हिंसा का तत्त्व उनकी असफलता का कारण था।

### 32.6.6 राजकोट सत्याग्रह के सबक

अपने तमाम उतार चढ़ाव के साथ राजकोट सत्याग्रह ने देशी रियासतों की परिस्थितियों की जटिलता को स्पष्ट कर दिया। इन रियासतों में सर्वोपरि सत्ता अपने हित में रियासतों में हस्तक्षेप के लिए सदैव तैयार रहती थी लेकिन जब कभी भी विपक्ष हस्तक्षेप की मांग करता था तो रियासत की वैध स्वतंत्रता के नाम पर हस्तक्षेप से इंकार कर दिया जाता था। ब्रिटिश भारत में यह बहाना इस्तेमाल नहीं किया जा सकता था, इसलिए मुकाबला भिन्न तरह का होता था। परिस्थिति की इस भिन्नता के कारण एक ही संघर्ष पद्धति जब ब्रिटिश भारत तथा भारतीय रियासतों की भिन्न राजनीतिक परिस्थितियों में प्रयोग में लायी जाती थी तो परिणाम भी भिन्न निकलते थे, अत: इन दो क्षेत्रों में आंदोलनों को एक साथ मिलाने के लिए कांग्रेस की इतने अधिक वर्षों तक की झिझक संभवत: तर्क संगत थी।

यहां यह बताना आवश्यक है कि अपनी तमाम प्रत्यक्ष असफलताओं के बावजूद राजकोट सत्याग्रह ने रियासत की जनता पर राजनीति का रंग चढ़ाने में काफी महत्वपूर्ण भूमिका निभाई। यह केवल संयोग ही नहीं था कि 1947 में रियासतों के भारतीय संघ में शामिल होने में जिस व्यक्ति ने सबसे महत्वपूर्ण भूमिका निभाई वह कोई अन्य नहीं, बल्कि राजकोट संघर्ष तथा अन्य भारतीय रियासतों की प्रतिरोधात्मक गतिविधियों के संगठनकर्ता सरदार पटेल ही

*HARIJAN*

Feb.. 4 1939

## RAJKOT

*( By M. K. Gandhi )*

The struggle in Rajkot has a personal touch about it for me. It was the place where I received all my education up to the matriculation examination and where my father was Dewan for many years. My wife feels so much about the sufferings of the people that though she is as old as I am and much less able than myself to brave such hardships as may be attendant upon jail life, she feels she must go to Rajkot. And before this is in print she might have gone there.

But I want to take a detached view of the struggle. Sardar's statement, reproduced elsewhere, is a legal document in the sense that it has not a superfluous word in it and contains nothing that cannot be supported by unimpeachable evidence most of which is based on written records which are attached to it as appendices.

It furnishes evidence of a cold-blooded breach of a solemn covenant entered into between the Rajkot Ruler and his people. And the breach has been committed at the instance and bidding of the British Resident who is directly linked with the Viceroy.

To the covenant a British Dewan was party. His boast was that he represented British authority. He had expected to rule the Ruler. He was therefore no fool to fall into the Sardar's trap. Therefore the covenant was not an extortion from an imbecile ruler. The British Resident detested the Congress and the Sardar for the crime of saving the Thakore Saheb from bankruptcy and, probably, loss of his gadi. The Congress influence he could not brook. And so before the Thakore Saheb could possibly redeem his promise to his people, he made him break it. If the news that the Sardar is receiving from Rajkot is to be believed, the Resident is showing the red claws of the British lion and says in effect to the people: "Your ruler is my creature. I have put him on the gadi and I can depose him. He knew well enough that he had acted against my wishes. I have therefore undone his action in coming to terms with his people. For your dealings with the Congress and the Sardar I shall teach you a lesson that you will not forget for a generation."

Having made the Ruler a virtual prisoner, he has begun a reign of terrorism in Rajkot. Here is what the latest telegram received by the Sardar says: "Becharbhai Jasani and other volunteers arrested. Twentysix volunteers taken at night to a distant place in the Agency limits and brutally beaten. Volunteers in villages are similarly treated. Agency police controlling State agency and searching private houses in civil limits."

The British Resident is repeating the performances of the British officials in 'British India' during the Civil Disobedience days.

I know that if the people of Rajkot can stand all this madness without themselves becoming mad, and meekly but resolutely and bravely suffer the inhumanities heaped upon them, they will come out victorious and, what is more, they will set free the Thakore Saheb. They will prove that they are the real rulers of Rajkot under the paramountcy of the Congress. If, however, they go mad and think of impotent retaliation and resort to acts of violence, their state will be worse than before and the paramountcy of the Congress will be of no effect. The Congress paramountcy avails only those who accept the banner of non-violence, even as the paramountcy of Britain avails only those who subscribe to the doctrine of 'might is right'.

What then is the duty of the Congress when the people of Rajkot have to face not the Ruler and his tiny police but the disciplined hordes of the British Empire?

The first and natural step is for the Congress ministry to make themselves responsible for the safety and honour of the people of Rajkot. It is true that the Government of India Act gives the ministers no power over the States. But they are governors of a mighty province in which Rajkot is but a speck. As such they have rights and duties outside the Government of India Act. And these are much the most important. Supposing that Rajkot became the place of refuge for all the *gundas* that India could produce, supposing further that from there they carried on operations throughout India, the ministers would clearly have the right and it would be their duty to ask the Paramount Power through the British Representative in Bombay to set things right in Rajkot. And it will be the duty of the Paramount Power to do so or to lose the ministers. Every minister in his province is affected by everything that happens in territories within his geographical limit though outside his legal jurisdiction, especially if that thing hurts his sense of decency. Responsible government in those parts may not be the ministers' concern, but if there is plague in those parts or butchery going on, it is very much their concern; or else their rule is a sham and delusion. Thus the ministers in Orissa may sit comfortably in their chairs, if they do not succeed in sending 26,000 refugees of Talcher to their home with an absolute assurance of safety and freedom of speech and social and political intercourse. It is insufferable that the Congress, which is today in alliance with the British Government, should be treated as an enemy and an outsider in the States which are vassals of the British.

This wanton breach, instigated by the British Resident in Rajkot, of the charter of the liberty of its people is a wrong which must be set right at the earliest possible moment. It is like

चित्र 23. राजकोट पर हरिजन में गांधी जी का लेख

थे। राजकोट जैसे संघर्षों ने रियासतों के शासकों के समक्ष जन प्रतिरोध की शक्ति स्पष्ट कर दी थी। जब 1947 में कई शासकों ने विशेष प्रतिरोध के बिना ही भारतीय संघ में शामिल होना स्वीकार कर लिया, तो उसके पीछे यह भी एक बड़ा कारण था।

**बोध प्रश्न 2**

1 निम्नलिखित वक्तव्यों को पढ़ें और सामने सही (√) अथवा ग़लत (×) का निशान लगायें।
   i) अधिकांश रियासतों के विपरीत राजकोट रियासत ने शासन में जन सहभागिता का सिद्धांत लागू किया था। ☐
   ii) राजकोट में राजनीतिक गतिविधि के लिए आरंभिक पहल गांधीवादी कार्यकर्ताओं ने की। ☐
   iii) राजकोट सत्याग्रह ने रियासत की जनता पर राजनीति का रंग चढ़ाने में महत्वपूर्ण भूमिका निभायी। ☐

2 राजकोट सत्याग्रह में गांधी जी की संबद्धता पर पांच पंक्तियां लिखिये।

........................................................................

........................................................................

........................................................................

........................................................................

........................................................................

## 32.7 हैदराबाद में जन आंदोलन

इस परिस्थिति मे केवल एक ऐसी रियासत थी जिसने व्याप्त जन प्रतिरोध पर ध्यान देने की आवश्यकता नहीं समझी और वह थी सबसे बड़ी भारतीय रियासत, हैदराबाद की। हैदराबाद का शासन उस्मान अली ख़ान के हाथ में था जो कि 1911 से लेकर 1948 तक हैदराबाद के निज़ाम बने रहे और उन्होंने ही एकीकरण के प्रति सबसे कठोर प्रतिरोध का प्रदर्शन किया। उनका प्रतिरोध अप्रत्याशित नहीं था। वे एक निरंकुश शासक की तरह शासन करने के आदी थे तथा उनकी निजी सम्पदा पूरी रियासत का दस प्रतिशत थी। इस सम्पदा से प्राप्त राजस्व सीधे शासक घराने के खर्चों के लिए पहुँचता था। स्वाभाविक रूप से जनतांत्रिक भारत में एकीकृत होने पर उन्हें केवल नुकसान ही होना था।

### 32.7.1 निज़ाम का शासन

हैदराबाद की जनता, जिसमें तीन भिन्न भाषायी समूह, मराठी भाषी (28 प्रतिशत) कन्नड़ भाषी (22 प्रतिशत) तथा तेलगू भाषी (50 प्रतिशत) थे। उनके क्रुद्ध होने के कई कारण थे। वे सामंती काश्तकारी संरचना द्वारा उत्पीड़ित किये जा रहे थे जिसमें जागीरदार ग़ैर क़ानूनी तरीक़ों से उन पर लगान लगाते थे, मालगुज़ारी की ऊँची दरें वसूल करते थे और उनसे बेगार कराते थे। बहुसंख्यक हिन्दू आबादी पर सांस्कृतिक और धार्मिक रूप से भी दमन चक्र चलाया जाता था, उनकी भाषाओं की उपेक्षा करते हुए उर्दू को विभिन्न तरीक़ों से प्रोत्साहन दिया जा रहा था। मुसलमानों में सरकारी नौकरियों में, विशेषकर उच्च स्तर पर उनके अनुपात से अधिक प्राथमिकता दी जाती थी। आर्य समाज जो कि 1920 के बाद से रियासत में काफ़ी प्रभावशाली बन चुका था, बुरी तरह दबा दिया गया। इसके अनुयायी सरकारी अनुमति के बग़ैर धार्मिक गतिविधियां भी आयोजित नहीं कर सकते थे। राजनीतिक क्षेत्र में भी निज़ाम ने "इत्तेहाद-उल-मुस्लिमिन" नामक संस्था के गठन में सहयोग किया जो कि समान धार्मिक आस्था के आधार पर निज़ाम के प्रति निष्ठा पर केन्द्रित थी। इसी सांस्कृतिक, आर्थिक, राजनीतिक और धार्मिक दमन ने हैदराबाद में जन आंदोलन का आधार तैयार किया।

### 32.7.2 जागृति की शुरुआत

राजनीतिक जागरण की शुरुआत 1920-22 में असहयोग आंदोलन और ख़िलाफ़त आंदोलन के साथ हुई। राष्ट्रीय पाठशालाएं खुलीं, चरखे काफ़ी लोकप्रिय हुए। नशाबंदी का प्रचार हुआ तथा गांधी जी और अली बंधुओं के चित्र के बिल्ले बेचे गये। हिन्दू मुस्लिम एकता के जन प्रदर्शन की लोकप्रियता बढ़ रही थी और चूंकि निज़ाम ख़िलाफ़त आंदोलन का खुले आम विरोध करने में झिझकता था, इसलिए जनसभाओं के रूप में खुले आम राजनीतिक गतिविधियों के आयोजन के लिए ख़िलाफ़त आंदोलन का प्रभावशाली मंच के रूप में इस्तेमाल किया गया।

इसी के साथ रियासत से मिले हुए ब्रिटिश भारत के क्षेत्र में हैदराबाद संबंधी अनेक राजनीतिक सभाओं का आयोजन किया गया। इन सभाओं में उत्तरदायी सरकार, नागरिक स्वतंत्रता, कर में कमी, बेगारी उन्मूलन तथा धार्मिक और सांस्कृतिक गतिविधियां आयोजित करने की स्वतंत्रता ये मुख्य मांगें होती थीं। 1930-32 के सविनय अवज्ञा आंदोलन ने राजनीतिक जागरूकता को बल दिया और हैदराबाद के कई राष्ट्रवादी संघर्ष में भाग लेने के लिए ब्रिटिश भारत आ गये। ये लोग जेल भी गये और वहाँ अन्य क्षेत्रों के राष्ट्रवादियों के साथ घुले मिले। ये लोग एक नये जोश और स्फूर्ति के साथ हैदराबाद लौटे।

इसी दौरान सांस्कृतिक जागरण की प्रक्रिया भी शुरू हो चुकी थी। इस प्रक्रिया ने विभिन्न भाषायी सांस्कृतिक क्षेत्रों द्वारा अपने संगठन तैयार करने का रूप लिया। इनमें से सर्वप्रथम आंध्र जन संघम का गठन हुआ। जिसने बाद में आंध्र महासभा का रूप ले लिया। तेलंगाना क्षेत्र के तेलगू भाषी लोगों का यह संगठन स्कूल खोलने, समाचार पत्र और पत्रिकाएं प्रकाशित करने, पुस्तकालय खोलने और रिसर्च सोसाइटी आरंभ करने के माध्यम से तेलगू भाषा एवं साहित्य के विकास के लिए कार्य कर रहा था। यद्यपि 1940 के पूर्व महासभा ने कोई प्रत्यक्ष राजनीतिक गतिविधि आरंभ नहीं की किन्तु निज़ाम प्रशासन ने इसके द्वारा आरंभ किये गये समाचार पत्र, पुस्तकालय तथा स्कूल बन्द करने शुरू किये। 1937 में अन्य दो प्रभावी सांस्कृतिक क्षेत्रों ने भी महाराष्ट्र परिषद तथा कन्नड़ परिषद के नाम से अपने संगठन खड़े किये।

### 32.7.3 सत्याग्रह

1938 में इन तीनों क्षेत्रों के सक्रिय कार्यकर्ताओं ने एक जुट होकर हैदराबाद रियासत कांग्रेस के नाम से रियासत व्यापी संगठन आरंभ करने का निश्चय किया। इससे पूर्व कि इस संगठन की वास्तव में स्थापना की जाती, प्रशासन ने संगठन पर इस आधार पर प्रतिबंध लगा दिया कि इसमें मुसलमानों का पर्याप्त प्रतिनिधित्व नहीं है। बातचीत के सभी प्रयास असफल रहे और इस प्रकार सत्याग्रह आरंभ करने का निश्चय किया गया।

सत्याग्रह अक्तूबर, 1938 में आरंभ हुआ तथा इसका नेतृत्व एक मराठी भाषी राष्ट्रवादी स्वामी रामानंद तीर्थ ने किया। इनका रहन-सहन गांधीवादी तथा विचारधारा नेहरूवादी थी, इस सत्याग्रह के एक अंग के रूप में रियासत के सभी क्षेत्रों का प्रतिनिधित्व करने वाले पांच सदस्यों के एक समूह ने स्वयं को रियासती कांग्रेस का सदस्य घोषित करते हुए प्रतिबंधित आदेशों का उल्लंघन किया। सत्याग्रह देखने के लिए भारी संख्या में लोग आते और समर्थन व्यक्त करते। यह सिलसिला हफ्ते में तीन बार दो केन्द्रों, हैदराबाद और औरंगाबाद, में दो महीने तक जारी रहा। साथ ही साथ आर्य समाज और हिन्दू नागरिक स्वतंत्रता यूनियन ने भी आर्य समाज के धार्मिक उत्पीड़न के विरुद्ध सत्याग्रह शुरू कर दिया। इस सत्याग्रह के धार्मिक उद्देश्य थे और इसने साम्प्रदायिक रूप लेना शुरू कर दिया। ऐसी परिस्थिति में जनता के बीच दो सत्याग्रहों के प्रति भ्रामक विचार पैदा होने का ख़तरा था। रियासती प्रशासन भी जनता को भ्रमित करने की दिशा में कार्य कर रहा था।

रियासती कांग्रेस तथा गांधी जी ने स्थिति को भांप लिया। अतः राजनीतिक और धार्मिक मुद्दों का अन्तर बनाये रखने के लिए रियासती कांग्रेस का राजनीतिक सत्याग्रह स्थगित कर दिया गया।

ठीक इसी दौरान विख्यात वंदेमातरम् आन्दोलन भी शुरू हुआ। जिसने बड़े पैमाने पर छात्रों

के बीच जोश को प्रेरित किया। हैदराबाद में यह आंदोलन कालेजों के अन्दर अधिकारियों के विरुद्ध हड़ताल के रूप में शुरू हुआ क्योंकि छात्रों को छात्रावास प्रार्थनाकक्ष में वन्देमातरम् गाने की अनुमति नहीं थी। यह हड़ताल शीघ्र ही पूरी रियासत में फैल गयी। छात्र कालेजों से निष्कासित किये जाने लगे। इनमें से काफ़ी छात्र कांग्रेस द्वारा शासित केंद्रीय प्रांतों में नागपुर विश्वविद्यालय चले गये जहां उन्हें प्रवेश दिया गया। यह आंदोलन काफ़ी महत्वपूर्ण सिद्ध हुआ। क्योंकि इस दौर के कई सक्रिय राजनीतिक कार्यकर्ता इन्हीं छात्रों के बीच से उभर कर आये।

### 32.7.4 द्वितीय विश्व युद्ध

द्वितीय विश्व युद्ध 1939 में शुरू हुआ। रियासती सरकार को इस युद्ध के कारण यह अवसर मिल गया कि वह राजनीतिक सुधारों के किन्हीं प्रश्नों पर कोई भी चर्चा करने से इंकार कर दे। रियासती कांग्रेस अभी भी प्रतिबंधित थी। इसी समय सितंबर, 1940 में स्वयं गांधी जी द्वारा चुने गये छह प्रतिनिधियों और स्वामी जी द्वारा एक और सांकेतिक विरोध का प्रदर्शन किया गया। ये लोग गिरफ़्तार कर लिये गये और दिसम्बर, 1941 तक हिरासत में रहे। गांधी जी इस अवस्था में किसी जन आंदोलन के फिर से आरम्भ होने के पक्ष में नहीं थे क्योंकि अखिल भारतीय संघर्ष की शुरुआत होनी थी और सभी संघर्ष उसी सामान्य कार्यक्रम के एक अंग के रूप में शुरू किए जाने थे।

रियासती कांग्रेस पर प्रतिबंध के फलस्वरूप राजनीतिक गतिविधियों के मंच के रूप में क्षेत्रीय सांस्कृतिक संगठन उभरे। तेलगु भाषी लोगों की आंध्र महासभा के संबंध में यह बात विशेष रूप से उल्लेखनीय है। नयी राजनीति से प्रेरित कार्यकर्ता सभा में एकत्रित हुए और उसे नयी शक्ति और जुझारू स्वरूप प्रदान किया। इस समय एक महत्वपूर्ण घटना यह घटी कि रविनारायण रेड्डी, जो कि महासभा के अन्दर नौजवानों के आमूल परिवर्तनवादी समूह के नेता के रूप में उभर कर सामने आये थे और जिन्होंने 1939 के रियासती कांग्रेस सत्याग्रह में हिस्सा लिया था, भारतीय कम्युनिस्ट पार्टी की तरफ़ आकृष्ट हो गये। रविनारायण रेड्डी और बी० चेल्ला रेड्डी नौजवान कार्यकर्ताओं का भारी संख्या में समर्थन प्राप्त करने में भी सफल हुए। इसका परिणाम यह रहा कि महासभा की राजनीति में आमूल परिवर्तनवाद का पक्ष मज़बूती पकड़ने लगा और किसानों की समस्याएं महासभा का केंद्रीय मुद्दा बन गयीं।

इसी दौरान "भारत छोड़ो" का नारा लगाया गया। चूंकि यह आंदोलन इस समय रियासतों में भी प्रसारित किया जाना था अतः गांधी जी और जवाहरलाल नेहरू दोनों ने अखिल भारतीय रियासती प्रजा सम्मेलन की स्थायी समिति, जो कि अगस्त, 1942 में बम्बई में आयोजित की गयी थी, को संबोधित किया तथा संघर्ष का आह्वान किया। मुख्य नेताओं की गिरफ़्तारी के कारण कोई संगठित आंदोलन तो आरंभ नहीं हो पाया लेकिन रियासत के सभी भागों से लोगों ने संघर्ष में हिस्सा लिया और जेल गये। महिलाओं के एक दस्ते ने हैदराबाद शहर के अंदर सत्याग्रह किया और इसी संबंध में सरोजिनी नायडू गिरफ़्तार कर ली गयी। प्रतिरोध की एक नयी लहर पूरे वातावरण में फैल गयी।

"भारत छोड़ो" आंदोलन के प्रभाव का दूसरा पक्ष भी था कि कम्युनिस्ट और ग़ैर कम्युनिस्ट समूहों के बीच जो दरार पड़ गयी थी वह अब और मज़बूत हो गई। दिसम्बर, 1941 में कम्युनिस्ट पार्टी ने "पीपुल्स वार" का रास्ता अपनाया जिसने फासीवाद विरोधी युद्ध में ब्रिटेन के समर्थन का आह्वान किया। इस राजनीतिक सोच के कारण कम्युनिस्टों ने भारत छोड़ो आंदोलन को अधिकारिक रूप से समर्थन नहीं दिया और इस प्रकार अन्य राष्ट्रवादियों से स्वयं को अलग कर लिया। चूँकि इस समय भारत में ब्रिटिश सरकार का भारतीय कम्युनिस्ट पार्टी के प्रति रवैया बदला हुआ था, इसलिए निज़ाम ने भी कम्युनिस्ट पार्टी पर से प्रतिबंध हटा लिया, और ऐसे समय में जब कि अन्य राष्ट्रवादी जेल में बंद थे, कम्युनिस्ट पार्टी खुले रूप से काम कर सकी। इसी प्रक्रिया के फलस्वरूप 1944 में आंध्र महासभा में फूट पड़ी और ग़ैर कम्युनिस्ट महासभा से अलग होकर अपना नया संगठन बनाने लगे तथा महासभा पूरे तौर पर कम्युनिस्टों के हाथ में आ गयी।

### 32.7.5 किसान आंदोलन

जैसे ही युद्ध ख़त्म हुआ कम्युनिस्टों ने तुरंत ही अपनी स्थिति का लाभ उठाना शुरू किया।

1945-46 के वर्ष, विशेषतया 1946 का उत्तरार्ध नालगोड़ा ज़िले में और कुछ हद तक वारंगल और खम्मम ज़िले के विभिन्न हिस्सों में शक्तिशाली किसान आंदोलन के विकास का दौर था। किसानों को एकजुट करने के लिए जो मुद्दे उठाये गये वे थे : युद्धकाल में राज्य द्वारा किसानों से वसूली जाने वाली अनाज की लेवी, सरकारी नौकरशाही और जमींदारों द्वारा लिया जाने वाला बेगार और किसानों की ज़मीन पर अवैधानिक कब्ज़ा आदि। परिणामस्वरूप आंध्र महासभा के झंडे तले कम्युनिस्टों के नेतृत्व में किसानों और जमींदारों के गुण्डों के बीच सशस्त्र संघर्ष हुआ। बाद में किसानों और रियासत के सशस्त्र सैनिकों के बीच भी संघर्ष हुए। इस ज़ोरदार प्रतिरोध की गिरफ़्तारियों, पिटाई और हत्याओं के माध्यम से दमन का भरपूर प्रयास किया गया जिससे कि किसान पस्त हो जाएं लेकिन महासभा, जो कि संघम के नाम से जानी जाती थी, के नेतृत्व में किसानों ने अब तक काफ़ी आत्मविश्वास हासिल कर लिया था।

## 32.7.6 अंतिम चरण

3 जून, 1947 को वाइसरॉय माउंटबैटन ने घोषणा की कि अंग्रेज़ थोड़े ही समय बाद भारत छोड़ देंगे। इस घोषणा के साथ ही परिस्थिति ने एक नया नाटकीय मोड़ ले लिया। 12 जून, 1947 को निज़ाम ने घोषणा की कि अंग्रेज़ों के जाने के बाद वे शासक होंगे। स्पष्ट था कि भारतीय संघ में शामिल होने की उसकी कोई इच्छा नहीं थी।

रियासती कांग्रेस ने अब खुले तौर पर सामने आकर नेतृत्व संभालने का निश्चय किया। कुछ महीनों पूर्व जब एक नया अलोकतांत्रिक संविधान निज़ाम द्वारा लोगों पर थोपा गया तो उसके अंतर्गत रियासत में कराये गये चुनावों का सफलतापूर्वक बहिष्कार करके रियासती कांग्रेस ने लोकप्रियता हासिल कर ली थी। निज़ाम के भारतीय संघ में शामिल होने से इंकार करने पर कांग्रेस ने 16 से 18 जून तक अपना पहला खुला अधिवेशन आयोजित किया और भारतीय संघ में शामिल होने तथा उत्तरदायी सरकार की मांग की। दिल्ली में राष्ट्रीय नेतृत्व की सलाह से रियासती नेता भी निज़ाम के विरुद्ध संघर्ष की तैयारी करने लगे। संघर्ष सत्याग्रह तथा सशस्त्र प्रतिरोध दोनों ही स्तरों पर करने का निश्चय किया गया।

गिरफ़्तारियां टालने के लिए हैदराबाद से बाहर ऐक्शन कमेटी गठित की गयी और रियासत की सीमाओं पर शोलापुर, बेजवाड़ा और गडग में इसके दफ़्तर स्थापित किये गये तथा केन्द्रीय दफ़्तर बम्बई में रखा गया। चंदा भी इकट्ठा किया गया जिसमें जयप्रकाश नारायण ने महत्वपूर्ण भूमिका निभायी। आंदोलन शुरू करने के लिए 7 अगस्त, 1947 का दिन तय किया गया और इसे "भारतीय संघ दिवस" में शामिल होने के रूप में मनाने का निश्चय किया गया। आंदोलन की शुरुआत शानदार रही। पूरी रियासत में गांवों एवं शहरों में प्रतिबंध के विरोध में सभाएं हुईं और मज़दूर तथा छात्रों ने हड़तालें कीं। लोगों की पिटाई की गयी और गिरफ्तारियां की गयी तथा राष्ट्रीय झण्डा फहराने पर भी प्रतिबंध लगा। इसके बाद इस प्रतिबंध का हर तरह से प्रतिरोध संघर्ष का मुख्य मुद्दा बन गया। छात्रों और महिलाओं ने इस संघर्ष में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई। सरकार ने दमन का कुचक्र और तेज़ कर दिया और 15 अगस्त, 1947 को स्वतंत्रता दिवस पर स्वामी जी तथा उनके सहयोगी गिरफ़्तार कर लिये गये। नयी प्रगति यह थी कि शासन द्वारा खुले आम रज़ाकारों को प्रोत्साहित किया जा रहा था, ये रज़ाकार इत्तेहाद उल मुस्लेमिन के लडाकू स्वयंसेवी थे जो अतिरिक्त सैन्य दस्तों के रूप में कार्य करते थे। रज़ाकारों को शस्त्र दिये गये और उन्हें निहत्थी जनता पर आक्रमण करने के लिए छोड़ दिया गया। उन्होंने विद्रोही गांवों के पास अपने शिविर लगाये और गांवों पर निरंतर सशस्त्र आक्रमण करते रहे। नवम्बर 1947 में निज़ाम ने भारत सरकार के साथ समझौते पर हस्ताक्षर किये लेकिन इससे दमन के कुचक्र में कोई कमी नहीं आयी।

## 32.7.7 सशस्त्र प्रतिरोध तथा भारतीय सेना द्वारा हस्तक्षेप

आंदोलन ने अब सशस्त्र प्रतिरोध का भिन्न रूप ले लिया। रियासती कांग्रेस ने रियासत की सीमाओं पर शिविर लगाये तथा कस्टम चौकियों, पुलिस स्टेशनों तथा रज़ाकारों के शिविरों पर हमले करने शुरू कर दिये। लेकिन रियासत के अन्दर विशेषकर तेलंगाना के ज़िलों नालगोड़ा, वारंगल और खम्मम ज़िलों में सशस्त्र प्रतिरोध का नेतृत्व कम्युनिस्टों के हाथ में

रहा। उन्होंने किसानों को "दलम्" में संगठित किया और रज़ाकारों पर आक्रमण करने के लिए उन्हें हथियारों के इस्तेमाल का प्रशिक्षण दिया। अनेक क्षेत्रों में उन्होंने ज़मींदारों पर भी आक्रमण किया। कुछ लोगों को मार डाला तथा अनेक लोगों को शहरों की ओर खदेड़ कर उनकी अनाधिकृत भूमि को ज़मीन के मालिकों तथा उन लोगों के बीच बांट दिया जिनके पास थोड़ी अथवा बिल्कुल ज़मीन नहीं थी।

13 सितम्बर, 1948 को भारतीय सेना द्वारा हैदराबाद पर आक्रमण करके निज़ाम को आत्म-समर्पण कराने तथा रियासत को भारतीय संघ में शामिल करने के साथ नये चरण का आरंभ हुआ। जनता ने भारतीय सेना का स्वागत मुक्ति सेना के रूप में किया, इसमें किसान भी शामिल थे चारों ओर बड़ा उल्लास था तथा बड़े उत्साह और स्वतंत्रता की अनुभूति से राष्ट्रीय झंडा फहराया गया।

**बोध प्रश्न 3**

1 हैदराबाद की रियासत में प्रचलित उत्पीड़न के स्वरूप पर पांच पंक्तियाँ लिखिये।

..............................................................................

..............................................................................

..............................................................................

..............................................................................

..............................................................................

2 निम्नलिखित वक्तव्यों को पढ़े और उनके सामने सही (√) अथवा ग़लत (×) का निशान लगायें।

i) हैदराबाद की जनता पर असहयोग आंदोलन का कोई प्रभाव नहीं पड़ा।

ii) हैदराबाद रियासत के छात्रों के राजनीतिकरण में वंदेमातरम् आंदोलन ने प्रमुख भूमिका निभाई।

iii) भारत छोड़ो आंदोलन ने कम्युनिस्टों और ग़ैर कम्युनिस्टों को एकजुट कर दिया

iv) निज़ाम भारतीय संघ में शामिल नहीं होना चाहते थे।

## 32.8 सारांश

हैदराबाद और राजकोट की दो रियासतों के संघर्ष का इतिहास देशी रियासतों और ब्रिटिश भारत के बीच समानताओं को उजागर करता है। ज़मींदारी व्यवस्था के अभिशाप : भारी कर, निरक्षरता तथा सामाजिक पिछड़ेपन जैसी आर्थिक और सामाजिक समस्याएं लगभग समान थीं। लेकिन ये समस्याएं भी देशी रियासतों में शासकों के निरंकुश शासन के कारण अपेक्षाकृत अधिक गंभीर थीं। राजनीतिक क्षेत्र में भी रियासतें अधिक पिछड़ी हुई थीं और ब्रिटिश भारत की अपेक्षा वहां नागरिक स्वतंत्रता तथा उत्तरदायी सरकार की कमी थी।

परिणामस्वरूप, ब्रिटिश भारत की अपेक्षा रियासतों में राजनीतिक जागरूकता तथा राजनीतिक गतिविधियों का स्तर लगभग एक दशक या उससे भी अधिक पीछे था और जब राजनीतिक आंदोलन उभरे भी तो मतभेद और विरोध की खुली अभिव्यक्ति की संभावना बहुत कम थी। सामान्यत: इसके परिणामस्वरूप भूमिगत गतिविधियां आरंभ करने तथा इसके हिंसात्मक स्वरूप ले लेने की दिशा में संभावनाएं प्रबल रहती थीं। ऐसा केवल हैदराबाद में नहीं बल्कि पटियाला, ट्रैवनकोर, और उड़ीसा की रियासतों में भी हुआ। इससे अन्य राष्ट्रवादियों की अपेक्षा कम्युनिस्टों और अन्य वामपंथी समूहों को अधिक सफलता मिली क्योंकि वे उत्पीड़ित जनता के शक्तिशाली दमन के विरुद्ध संगठित करने में अन्य राष्ट्रवादियों की अपेक्षा हिंसा का सहारा लेने में कम झिझकते थे। अत: आश्चर्य नहीं कि हैदराबाद, पटियाला और ट्रैवनकोर जैसी रियासतों में, जहां हिंसात्मक कार्यनीति अपनायी

गयी कम्युनिस्टों ने अधिक महत्वपूर्ण भूमिका निभाई। भारतीय रियासतों में स्वतंत्रता संग्राम के इतिहास से यह भी स्पष्ट होता है कि पूरे देश की परिस्थिति को ध्यान में रखते हुए भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस रियासतों के प्रति अपनी नीति में निरंतर परिवर्तन करती रही थी। जैसे-जैसे आंदोलन तेज़ होता गया, कांग्रेस अधिक स्पष्ट और सहासिक कदम उठाने में समर्थ होती गयी और 1942 तक पहुँचते-पहुँचते देशी रियासतों और ब्रिटिश भारत के आंदोलनों में कोई विशेष फर्क नहीं माना गया। 1947-48 में रियासतों द्वारा भारतीय संघ से अलगाव और स्वतंत्रता की सभी बातों के विरुद्ध कांग्रेस की सुस्पष्ट स्थिति तथा इसके लिए बल प्रयोग तक की तैयारी, देश के अनेक टुकड़ों में विभाजन को रोकने में महत्वपूर्ण कारण थे। इस प्रकार कांग्रेस ने ब्रिटिश उपनिवेशवाद द्वारा सुरक्षित रखे गये सामंतशाही के विशालतम अवशेषों को पराजित करने में सफलता अर्जित की।

## 32.9 शब्दावली

**संघीय योजना** : गवर्नमेंट ऑफ़ इंडिया ऐक्ट, 1935 के द्वारा अपनायी गयी ब्रिटिश योजना। इस योजना के द्वारा रियासतों के प्रतिनिधियों को केन्द्रीय विधानमंडल में शामिल करके रियासतों को भारतीय संघ का हिस्सा बनाने का प्रयास किया गया था।
**परमसत्ता (सर्वोच्चता)** : रियासतों तथा ब्रिटिश सरकार के बीच यह समझौता कि रियासतें अंग्रेज़ों को सर्वोपरि सत्ता के रूप में मान्यता देगी इसके बदले में अंग्रेज़ रियासतों को स्वतंत्र सत्ता के रूप में स्वीकार करेंगे।
**प्रतिक्रिया** : प्रगति और परिवर्तन का विरोध करना।

## 32.10 बोध प्रश्नों के उत्तर

**बोध प्रश्न 1**

1 आपके उत्तर में रियासतों की जनता का समान्य राजनीतिकरण तथा उनमें प्रजातंत्र तथा नागरिक स्वतंत्रता से संबंधित विचारों के प्रसार का उल्लेख होना चाहिए। देखिए भाग 32.2
2 आप रियासतों के प्रति कांग्रेस की नीतियों में व्याप्त जटिलताओं का विशेष उल्लेख कर सकते हैं। देखिए भाग 32.4
3 देखिए उपभाग 32.4.1
4 i) √ ii) × iii) √

**बोध प्रश्न 2**

1 i) √ ii) √ iii) √
2 देखिए उपभाग 32.6.5

**बोध प्रश्न 3**

1 आप आर्थिक और साथ ही धार्मिक उत्पीड़न की प्रक्रिया का उल्लेख कर सकते हैं। देखिए उपभाग 32.7.3
2 i) × ii) √ iii) × iv) √

# इकाई 33 द्वितीय विश्व युद्ध : कारण, विस्तार तथा परिणाम

## इकाई की रूपरेखा

33.0 उद्देश्य
33.1 प्रस्तावना
33.2 कारण
    33.2.1 वर्साय संधि और सतत राजनीतिक अव्यवस्था
    33.2.2 आर्थिक मंदी का प्रभाव
    33.2.3 जर्मनी में नात्सीवाद का उदय
    33.2.4 मुसोलिनी और इटली का फासीवाद (फासिज़्म)
    33.2.5 जापान में सैन्यवाद का उदय
    33.2.6 ब्रिटेन और फ्रांस की तुष्टीकरण की नीति
33.3 युद्ध की शुरुआत के कारण
    33.3.1 जापान और पूर्वी एशिया में संकट की स्थिति
    33.3.2 इटली द्वारा अबीसीनिया/इथोपिया पर आक्रमण (1935-1936)
    33.3.3 स्पेन का गृह युद्ध, (1936-1939)
    33.3.4 विश्व युद्ध की ओर अग्रसर जर्मनी (1933-39)
33.4 द्वितीय विश्व युद्ध
    33.4.1 आरंभिक स्थिति : जर्मनी की विजय
    33.4.2 ठहराव की स्थिति : सोवियत रूस और अमेरीका का युद्ध में प्रवेश
    33.4.3 रक्षात्मक स्थिति : धुरी राष्ट्रों की पराजय
    33.4.4 धुरी राष्ट्रों का पीछे हटना और उनकी पराजय
33.5 द्वितीय विश्वयुद्ध के परिणाम
    33.5.1 भारतीय राजनीति पर प्रभाव
    33.5.2 संयुक्त राष्ट्र संघ की स्थापना
    33.5.3 यूरोप पर आर्थिक प्रभाव
    33.5.4 शीत युद्ध की शुरुआत : नया विचारधारात्मक संघर्ष
33.6 सारांश
33.7 शब्दावली
33.8 बोध प्रश्नों के उत्तर

## 33.0 उद्देश्य

इस इकाई को पढ़ने के बाद आप :

- द्वितीय विश्वयुद्ध के कारणों और उसकी शुरुआत के बारे में जानकारी प्राप्त कर सकेंगे,
- युद्ध के दौरान घटी घटनाओं के बारे में जान सकेंगे,
- भारतीय राष्ट्रीय आंदोलन पर इसके द्वारा पड़ने वाले प्रभावों की चर्चा कर सकेंगे, और
- अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर इसके प्रभाव को आंक सकेंगे।

## 33.1 प्रस्तावना

इस इकाई में हमारा मुख्य ध्येय आपको द्वितीय विश्वयुद्ध से परिचित कराना है। 1919 की वर्साय संधि, जिसके द्वारा प्रथम विश्व युद्ध का अंत हुआ था, बड़ी यूरोपीय शक्तियों के बीच

विद्यमान तनावों को दूर नहीं कर सकी थी। द्वितीय विश्वयुद्ध यूरोपीय शक्तियों के बीच विद्यमान प्रतिद्वंद्विता तथा दो युद्धों के बीच के वर्षों के दौरान यूरोप में चलने वाले घटना चक्र का परिणाम था।

ब्रिटेन का एक उपनिवेश होने के नाते भारत को अपनी जनता की इच्छाओं के विरुद्ध इस युद्ध में शामिल होना पड़ा। इसके कारण भारतीय जनता को असंख्य कष्ट झेलने पड़े और साथ ही इसने भारत में साम्राज्यवाद विरोधी आंदोलन को भी प्रभावित किया। इस युद्ध के दौरान जान और माल की अभूतपूर्व क्षति की यादें आज भी लोगों को झकझोर देती हैं। इसके परिणाम विशेषकर उपनिवेशवाद के पतन की प्रक्रिया की दृष्टि से दूरगामी थे। युद्ध के दौरान विभिन्न उपनिवेशों में मुक्ति आंदोलन में तीव्रता आई थी और साम्राज्यवादी नियंत्रण कमज़ोर पड़ गया था।

## 33.2 कारण

मार्क्सवादी इतिहासकारों ने तर्क देते हुए कहा कि यदि मित्र राष्ट्रों ने प्रथम विश्व युद्ध के दौरान लेनिन की आम शांति कांफ्रेंस (जनरल पीस कांफ्रेंस) तथा उनके शांति सूत्र को स्वीकार कर लिया होता तो जर्मनी के विस्तारवाद की स्थिति उभरती ही नहीं। लेनिन के शांति सूत्र में हरजाने और सीमाओं के पुनर्गठन को शर्त के रूप में नहीं रखा गया था। आम तौर पर यह स्वीकार्य तथ्य है कि वर्साय संधि के आधार पर सीमाओं का पुनर्गठन और जर्मनी पर क्षतिपूर्ति वहन का भारी बोझ, द्वितीय विश्वयुद्ध का मुख्य कारण बना। किन्तु इसका यह अर्थ नहीं कि अन्य राजनीतिक, वैचारिक और आर्थिक कारणों ने अपना प्रभाव नहीं छोड़ा। प्रथम विश्वयुद्ध के उपरांत की संधियों पर राजनीतिक प्रतिक्रिया को विश्वव्यापी आर्थिक मंदी के प्रभाव, फासीवाद का उदय तथा जर्मनी, इटली और जापान में सैन्यवाद के संदर्भ में देखा जाना चाहिए। पश्चिमी प्रजातंत्रों की तुष्टीकरण नीति उनके सोवियत विरोधी दृष्टिकोण पर आधारित थी।

### 33.2.1 वर्साय संधि और सतत राजनीतिक अव्यवस्था

जर्मनी के साथ हुई वर्साय संधि (28 जून, 1919) सौदों और समझौतों का परिणाम थी जो शांति के लिए अस्थायी पैबंद साबित हुई। अंततः जर्मनी को आंतरिक क्षेत्रीय क्षति अपेक्षाकृत कम हुई। उसे अल्सास-लौरेन (Alsace-Lorraine) फ्रांस को, राइनलैंड मित्र राष्ट्रों को, छोटे सीमांती क्षेत्र बेल्जियम और डेनमार्क को तथा ब्रिटेन और फ्रांस को औपनिवेशिक अधिकार देने पड़े। जैसा कि 1920-30 के मध्य में जर्मनी की उल्लेखनीय वसूली से स्पष्ट हो जाता है, इस समझौते ने उसे आर्थिक रूप में अधिक नुकसान नहीं पहुँचाया। तथापि मनोवैज्ञानिक दृष्टि से जर्मन जनता "युद्ध अपराध" (वार गिल्ट) की धारा 231 के तहत क्षतिपूर्ति के लिए भुगतान किये गये। जर्मनी 1320 लाख स्वर्ण मार्क से उतनी नाराज़ नहीं थी जितनी कि क्षेत्रीय समझौते के कारण थी। यहां तक कि जर्मनी, लीग ऑफ़ नेशन्स को भी अन्यायपूर्ण क्षेत्रीय समझौते को लागू करने वाले एक साधन के रूप में देखता था।

वर्साय संधि के बाद की अंतर्राष्ट्रीय प्रणाली का आधार आरंभिक दशकों की अपेक्षा अधिक कमज़ोर था। शांति समझौते में "नैतिक शक्ति" नहीं थी। जर्मनी का मानना था कि यह शांति समझौता विल्सन के चौदह सूत्रों में निरूपित बुनियादी विश्वासों का उल्लंघन था। फ्रांस ने इसे एक पराजय माना। मध्य एवं पूर्वी यूरोप में क्षेत्रीय समझौते भावी संघर्ष के मूल कारण बन गये थे। आस्ट्रिया और हंगरी के विघटन से एक शून्य उत्पन्न हो गया और राष्ट्रीय आत्म संकल्प की चाह ने संघर्ष के नये आयाम खोल दिये। रूस और अमरीका के हट जाने के बाद ब्रिटेन और फ्रांस विश्व शांति बनाये रखने के लिए अकेले बच गये। किन्तु उनके उपनिवेशों में जुझारू राष्ट्रीय मुक्ति संघर्षों के उठने के कारण ब्रिटेन और फ्रांस के पास न तो इतनी ताक़त थी और न ही इच्छाशक्ति कि वे शांति समझौते की रक्षा कर सकें। इसके अतिरिक्त साम्राज्यवादियों की पारस्परिक प्रतिद्वन्द्विता ने जर्मनी के प्रश्न को यथावत बनाए

रखा। 1914 से पहले के शक्ति संतुलन के पीछे जो नैतिक समर्थन था, वह कभी दुबारा हासिल नहीं किया जा सका, यहां तक कि लीग ऑफ़ नेशन्स को भी अंतर्राष्ट्रीय समर्थन प्राप्त नहीं हो सका। इसलिए अंतर्राष्ट्रीय संघर्षों का समाधान प्रस्तुत करने में असफल रही।

### 33.2.2 आर्थिक मंदी का प्रभाव

युद्ध के बाद यूरोप में जो आर्थिक सुधार हुआ वह अक्तूबर, 1929 में शेयरों के दामों में भारी गिरावट के कारण फिर से प्रभावित हुआ। 1932 तक यूरोप का औद्यागिक उत्पादन लगभग आधा रह गया और 1935 में व्यापार 58 बिलियन डालर (580 खरब डालर) से नीचे आ गया। विश्वव्यापी आर्थिक मंदी ने भयंकर बेरोज़गारी की समस्या पैदा कर दी। 1932 में बेरोज़गारों की संख्या जर्मनी में साठ लाख, ब्रिटेन में तीस लाख और अमरीका में तेरह लाख हो गयी थी।

संकटग्रस्त अंतर्राष्ट्रीय राजनीति आर्थिक मंदी से प्रभावित हुए बिना न रह सकी। राष्ट्रों के बीच अस्तित्व के लिए उठी तीव्र स्पर्धा ने राष्ट्रवादी भावनाओं को और मज़बूत किया। जर्मनी, इटली, जापान, स्पेन और रूमानिया की कमज़ोर राजनीतिक प्रणालियों के कारण वहां के उग्र दक्षिणपंथी "राष्ट्रवादी" फासीवादी नेतृत्व और विचारधाराओं को फासीवादी और सैन्यवादी शासन स्थापित करने का मौका मिला। जर्मनी के मामलों में फ्रांस की दखलअंदाज़ी की कोशिश ने भी जर्मनी में राष्ट्रवादी भावनाओं को उभारा। जर्मनी द्वारा क्षतिपूर्ति के "हूवर ऋणस्थगन" (Hoover Moratorium) ने भी फ्रांस और अमरीका के बीच कटुता को बढ़ाया। मुद्राओं के स्पर्धात्मक अवमूल्यन और प्रतिस्पर्धात्मक राष्ट्रीय मुद्रा के उभरने ने राजनीतिक आर्थिक संकट को गहरा दिया। आश्चर्य नहीं होना चाहिए कि हिटलर ने एक आत्म निर्भर राइख (संसद) की स्थापना के अपने कार्यक्रम के लिए जनता की सहमति आसानी से हासिल कर ली।

### 33.2.3 जर्मनी में नात्सीवाद का उदय

1920 और 1930 के दशक यूरोप के लाखों लोगों के लिए राजनीतिक अस्थिरिता, आर्थिक कठिनाइयाँ, बेरोज़गारी, विश्वास के टूटने और विक्टोरिया समाज के मूल्यों के विघटन के दशक थे। ऐसे लोग फासीवादी आंदोलन के विचारों और भ्रमों के प्रति आसानी से आकृष्ट हो गए। ऐसी ही परिस्थितियों में हिटलर लोगों को कष्टों से मुक्ति दिलाने वाले नेता के रूप में उभर कर सामने आए। 1932 तक, जैसा कि फ्रिट्ज स्टर्न का मत है, "वाइमर का पतन निश्चित हो चुका था। लेकिन हिटलर अब तक पूर्णतः सफल न हो सका था" फिर भी 1933 में घटी घटनाओं ने हिटलर को अंततः जर्मनी का चांसलर बना दिया।

1920 से 1928 के बीच गठबंधन की राजनीति के कारण जर्मनी में संसदीय प्रणाली जीवित रही। लेकिन 1929 की आर्थिक मंदी ने वाइमर सरकार, जो अब तक अनिश्चितता की स्थिति में लटकी हुई थी, उसके भाग्य का फैसला कर दिया। नात्सीवादी 1924 में जिनकी संख्या राइखस्टाग संसद में 32 थी, 1928 में घटकर 12 हो गयी थी, उन्होंने इस स्थिति का लाभ उठाया और 1933 में अभूतपूर्व चुनावी सफलता अर्जित की। नात्सी आंदोलन ने छोटे किसानो, मध्यम वर्गीय और पेटी बुर्जुआ वर्गों की शिकायतों को व्यापक चुनावी समर्थन के लिए सफलतापूर्वक इस्तेमाल किया।

चित्र 24. हिटलर

चूँकि राष्ट्रवादियों का राजनीतिक पतन हो चुका था, जर्मन राष्ट्रपति हिन्डेनबर्ग ने अति दक्षिणपंथियों का समर्थन लेना आरंभ कर दिया। मई 1932 में राष्ट्रपति हिन्डेनबर्ग हिटलर विरोधी थे। लेकिन जनवरी 1933 में हिटलर को जर्मनी का चांसलर चुनने में उन्होंने कोई हिचकिचाहट नहीं दिखायी। इसके उपरांत नात्सी आंदोलन ने पीछे मुड़कर नहीं देखा।

राष्ट्रीय समाजवादी अथवा नात्सी दल कई छोटे जर्मन नस्लवादी और राष्ट्रीय गुटों में से एक था। जुलाई, 1921 के बाद से हिटलर ने इसका नेतृत्व संभाल लिया था। यद्यपि नवंबर, 1923 में हिटलर म्युनिख विद्रोह के दौरान सत्ता प्राप्त करने में असफल रहा लेकिन 1925 और 1928 के बीच उसने नात्सी आंदोलन को जीवित रखा और 30 जनवरी, 1933 को जर्मनी का चांसलर बन गया। हिटलर की सफलता उसकी इस क्षमता में निहित थी कि वह लोगों की मनोवैज्ञानिक चिंताओं का राजनीतिक इस्तेमाल कर सकता था। मज़बूत सरकार

और बेरोज़गारी समाप्ति के वादों तथा अपने लड़ाकू दस्तों के प्रयोग द्वारा अपने विरोधियों के दमन के बल पर हिटलर शक्ति के उत्कर्ष पर पहुँचा।

विचारधारात्मक स्तर पर नात्सी आंदोलन 1918 की पराजय के मोहभंग के बाद जर्मनी में फैली रूढ़िवादिता पर टिका हुआ था। यह रूढ़िवादिता कम्युनिस्ट विरोधी, सामी विरोधी, जनतंत्र विरोधी तथा उन्नीसवीं शताब्दी के नस्लवाद और अतिवादी दक्षिणपंथ पर आधारित थी। हिटलर का नात्सीवाद पराजित किन्तु उग्र सैन्यवाद और साम्राज्यवाद से जुड़ा हुआ था। अधिकांश इतिहासकारों का मत है कि नात्सीवाद के उदय के पीछे हिटलर की अत्यंत महत्वपूर्ण भूमिका रही। किन्तु मार्क्सवादी इतिहासकारों के अनुसार नात्सी नेताओं का शक्तिवर्धन पूरे जर्मन समाज की सैन्यीकृत संरचना के कारण हुआ। यह मत काफ़ी तर्कसगत प्रतीत होता है। नात्सी विचारधारा जर्मन नस्ल की उत्कृष्टता और जर्मनों के लिए अधिक भूमि और अधिकाधिक क्षेत्र की मांग पर आधारित थी।

### 33.2.4 मुसोलिनी और इटली का फासीवाद

फासीवाद कोई आर्थिक प्रणाली नहीं थी। इसकी कोई स्पष्ट विचारधारा भी नहीं थी। समाजवादी भाषा ने इसकी सम-एकाधिकारी पूँजीवाद की नीति पर पर्दा डाले रखा। यह एक ऐसा प्रतिक्रियावाद था जिसे उचित ही दक्षिणपंथ के "उग्रवाद" की संज्ञा दी गयी थी।

इटली में फासीवाद प्रथम विश्वयुद्ध के बाद 1918-1922 के संकट की देन था जिनमें सामाजिक-आर्थिक अनिश्चितता, राष्ट्रवादी असंतोष तथा समाज को एकसूत्र में बांधने वाली उदारपंथी राजनीति की असफलता ने महत्वपूर्ण भूमिका निभायी। ऐसे सामाजिक आर्थिक माहौल और राजनीतिक शून्यता के दौर में फासीवाद को अपनी जड़ें जमाने का अवसर प्राप्त हुआ। इसके उदय के कारण आमतौर पर उदारवाद का पतन, दिशाविहीन जनता का उदय, "सर्वाधिकारवाद" अथवा "आधुनिकीकरण" और मज़दूरों को नियंत्रित करने के लिए स्थिर पूँजीवाद की आवश्यकता माने जाते रहे हैं। आर्थिक पतन, आक्रामक राष्ट्रवाद तथा मार्क्सवाद विरोध इसकी सफलता के स्रोत थे।

23 मार्च, 1919 को मुसोलिनी (1883-1945) ने जो एक पत्रकार, भूतपूर्व सैनिक और भूतपूर्व समाजवादी था, संघ के लिए संघर्ष नाम से एक नया आंदोलन शुरू किया। कम्युनिस्टों, समाजवादियों और अन्य विरोधियों का संहार करते हुए उन्होंने अपनी प्रभुता जमायी। मुसोलिनी 1922 में इटली का प्रधानमंत्री बना और 1925 में वह एक फासीवादी तानाशाह बन गया। 1926 में अपने आदेशों द्वारा वह सरकार का काम चलाता रहा तथा संविधान और चुनाव रद्द कर दिये गये। 1926 और 1939 के बीच इटली के फासीवाद ने "निगम राज्य" की स्थापना को अपना मुख्य लक्ष्य घोषित कर रखा था जिसे व्यवहार में कभी प्राप्त नहीं किया जा सका। यद्यपि इसके कारण श्रमिकों के शोषण और उत्पीड़न पर पर्दा पड़ा रहा। 1936 के बाद मुसोलिनी की आर्थिक आत्मनिर्भरता की नीति के भी कोई परिणाम सामने नहीं आये।

### 33.2.5 जापान में सैन्यवाद का उदय

इटली और जर्मनी की भांति ही जापान में भी युद्ध के बाद (1918-22) का संकट अपने साथ "चावल उपद्रव" तथा औद्योगिक अशांति लेकर आया। राजनीतिक रूप से बड़े उद्योगों और डाइट (संसद) के एकजुट होने से जापान में 1930 के दशक में सैन्य फासीवाद की नींव रख दी। 1912-1926 का तायशो (महान् न्यायप्रियता)" काल वास्तव में उदारवादी राज्य से तानाशाही राज्य की ओर संक्रमण का काल था।

1927 और 1930 के दौरान मामूली घरेलू मंदी तथा विश्व व्यापी आर्थिक संकट ने उद्योग एवं बैंकिंग दोनों को बुरी तरह प्रभावित किया। निर्यात में गिरावट ने, विशेष रूप से अमरीका को कच्चे सिल्क के निर्यात में गिरावट ने जापान के किसानों की आधी जनसंख्या को बुरी तरह प्रभावित किया। 1923 में धान की ख़राब फसल ने अकाल की स्थिति पैदा कर दी और ग्रामीण क्षेत्रों में अशांति फैल गयी। उदारवादी राजनीतिक नेतृत्व इस समस्या का

समाधान करने में असफल रहा। संकट की यह परिस्थिति छोटे सैनिक अफसरों के बीच अति दक्षिणपंथी विचारों को भरने के लिए काफ़ी उपयुक्त बन गयी। यह किटा इक्की द्वारा प्रस्तुत "शोवा पुनः स्थापन" की लोकप्रियता में व्यक्त हुआ जिसका अर्थ था सैनिक तानाशाही द्वारा राज्य समाजवाद की स्थापना।

1930 के दशक में उग्र राष्ट्रवादिता तथा प्रतिक्रियावादी रूढ़िवाद ने आर्थिक और राजनीतिक संकट के दौरान जापान में अपनी जड़े गहरी जमा लीं। उग्र राष्ट्रवादिता और सैन्यवाद, मंचूरिया में उनकी विजय तथा पूर्वी साम्राज्य की स्थापना की चाह ने जापान को दूसरे विश्व युद्ध की ओर ढकेल दिया।

### 33.2.6 ब्रिटेन और फ्रांस की तुष्टीकरण की नीति

1937 से जबकि हिटलर मध्य यूरोपीय क्षेत्रों पर कब्ज़ा करने में व्यस्त था, पश्चिमी जनतंत्र तुष्टीकरण की नीति के द्वारा शांति समझौते के लिए कार्यरत थे। तुष्टीकरण नीति के पीछे बुनियादी दर्शन यह था कि जिस व्यक्ति के पास कोई वस्तु या अधिकार हो और यदि उसे कुछ छोड़ने को कहा जाय तो अंततः अनिवार्य रूप में उसे कुछ न कुछ त्याग करना ही पड़ेगा। इस नीति के पीछे यह भी सोच थी कि जर्मनी की शिकायतें जायज़ हैं और उसके प्रति सहानुभूतिपूर्ण रवैया अपनाना चाहिए। ब्रिटेन के प्रधानमंत्री चैम्बरलेन ने ऐंग्लो-जर्मन गठबंधन तैयार करने के उद्देश्य से 1937 से इस नीति का पालन आरंभ किया।

चैम्बरलेन की इस नीति के पीछे मुख्य कारण थे : जर्मनी, इटली और जापान की सम्मिलित शक्ति का भय फ्रांस की राजनीतिक और सैनिक अविश्वसनियता, सोवियत संघ के प्रति शंका, जर्मनी के साथ लम्बे समय तक युद्ध तथा बड़े पैमाने पर शस्त्रीकरण पर वित्तीय व्यय एवं उसके राजनीतिक परिणाम, अंतर्राष्ट्रीय परिस्थिति का ग़लत मूल्यांकन तथा अंततः ब्रिटेन के रक्षा पक्ष को मज़बूत करने के लिए और अधिक समय हासिल करना। सामाजिक और राजनीतिक दबाव, वित्तीय और सैनिक सीमाएं बहुत हद तक फ्रांसीसी नीति के निर्धारण में निर्णायक बने। इसी का परिणाम था कि 1938 में जर्मन आक्रमण के विरुद्ध रणनीति तैयार करने के उद्देश्य से सोवियत संघ द्वारा चार शक्तियों की कान्फ्रेंस के आह्वान के अवसर को इन्होंने खो दिया। जापान के चीन पर आक्रमण, इटली के अबीसीनिया पर आक्रमण तथा जर्मनी द्वारा प्राग पर कब्ज़ा किये जाने के दौरान भी इन राष्ट्रों ने हस्तक्षेप नहीं किया। केवल 1940 में हिटलर द्वारा फ्रांस पर हमला किये जाने पर ही तुष्टीकरण नीति को गहरी चोट लगी।

## 33.3 युद्ध की शुरुआत के कारण

युद्ध के तात्कालिक कारण उस काल के अंतर्राष्ट्रीय घटना चक्र में देखे जा सकते हैं। फासीवादी शक्तियों द्वारा उत्पन्न युद्ध के ख़तरे को ब्रिटेन और फ्रांस के निर्णयात्मक और संयुक्त हस्तक्षेप द्वारा टाला जा सकता था। इस इकाई को पढ़ने के बाद आपको स्पष्ट हो जाएगा कि हिटलर के उदय, फासीवादी आंदोलन के विकास तथा यूरोप में आक्रमण सैनिक कार्रवाइयों में अवश्यंभाविता जैसी कोई बात नहीं थी। 1920 और 1930 के दशकों का आर्थिक और राजनीतिक संकट फासीवाद के उत्थान तथा आक्रामक युद्धों में परिवर्तित नहीं होता, यदि उदारवादी राजनीतिक शक्तियां इस संकट से निपटने की दिशा में अपनी शक्ति लगा देतीं।

### 33.3.1 जापान और पूर्वी एशिया में संकट की स्थिति

1928-37 के दौरान पूर्वी एशिया में बढ़ते हुए संघर्ष का प्रतिफलन जुलाई, 1937 में चीन-जापान युद्ध के रूप में हुआ। इसे विश्व युद्ध की दिशा में अग्रसर होने की शुरुआत माना जाता है। पश्चिमी शक्तियों ने लीग आफ़ नेशन्स के ज़रिए जापान पर रोक लगानी

ही लेकिन वे असफल रहे। आर्थिक मंदी के बाद अर्थव्यवस्था के पुनर्निर्माण के लिए जापान को पूंजी एवं कच्चे माल-कोयला, कपास, लोह अयस्क तथा तेल बाहर से प्राप्त करने की आवश्यकता थी। विशेषकर कच्चे माल की प्राप्ति के लिए मंचूरिया पर नियंत्रण उसके लिए काफी कठिन हो गया। उल्लेखनीय है कि 1929 तक जापान का विदेशों में कुल पूंजी निवेश का चौथाई पंचमांश (4/5 भाग) चीन में था। चीन भी अपने लिए एक एशियाई साम्राज्य स्थापित करने का साम्राज्यवादी सपना देख रहा था।

1930 के दशक में उभरे उग्र राष्ट्रवाद और सैन्यवाद की अभिव्यक्ति विदेशों में साम्राज्यवाद के रूप में होना निश्चित थी। इसकी झलक सितम्बर, 1931 में जापानी सेना द्वारा मंचूरिया पर कब्ज़ा करने में दिखायी देती है। वास्तव में फ़रवरी, 1932 में सेना ने मांचूकुओ नामक कठपुतली सरकार की स्थापना की जिसे लीग ऑफ़ नेशन्स ने मान्यता देने से इंकार कर दिया। इसके उपरांत 1933 में जापान "लीग" से हट गया और विस्तारवाद की ओर बढ़ता गया। जापानी सरकार न तो आरंभ में और न ही बाद में सैन्यवाद पर कोई रोक लगा सकी—असैनिक सरकार पर सैनिक प्रभुता बराबर बनी रही जिसके कारण जुलाई 1937 में चीन के विरुद्ध पूर्ण रूप से युद्ध घोषित कर दिया गया। युद्ध का ज्वार चीन और जापान के अतिरिक्त अन्य क्षेत्रों की ओर भी बढ़ने लगा।

## 33.3.2 इटली द्वारा अबीसीनिया/इथोपिया (1935-36) पर आक्रमण

इटली, अफ्रीका में औपनिवेशिक साम्राज्य का गठन न तो अफ्रीका के लिए उन्नीसवीं शताब्दी के उत्तरार्ध में हुए संघर्ष के दौर में कर पाया और न ही प्रथम विश्व युद्ध के बाद पेरिस शांति कान्फ्रेंस से ही उसे इस दिशा में कोई सफलता मिली। स्वाधीन इथोपिया जिसने 1896 में इटली को पराजित किया था 1935-36 में मुसोलिनी का लक्ष्य बन गया जो औपनिवेशिक साम्राज्य के गठन की दिशा में पहला क़दम था।

जनवरी, 1935 में, मुसोलिनी फ्रांस को, जो कि हिटलर के विरुद्ध इटली से समर्थन पाने का इच्छुक था, तटस्थ करने में कामयाब हुआ। लेकिन जन सहानुभूति के दबाव में आकर ब्रिटेन को इथोपिया का समर्थन करना पड़ा। तब भी इटली ने 3 अक्तूबर, 1935 को इथोपिया पर आक्रमण कर दिया। लीग ऑफ़ नेशन्स ने तत्काल ही इटली को आक्रामक घोषित करते हुए उस पर आर्थिक प्रतिबंध लगा दिये। लेकिन ब्रिटेन और फ्रांस की तुष्टीकरण की नीति के कारण प्रतिबंध प्रभावहीन रहे। इटली को संतुष्ट रखने के लिए ब्रिटेन और फ्रांस ने इथोपिया को विभाजित करने का भी प्रस्ताव रखा लेकिन जनविरोध को देखते हुए उन्हें प्रस्ताव वापस लेना पड़ा।

लेकिन 1936 में इटली की सेना ने हवाई हमलों में विषैली गैस का प्रयोग करके तथा हज़ारों निस्सहाय इथोपियाई जनजातियों का संहार करके इथोपिया के वीरतापूर्ण प्रतिरोध को ख़त्म कर दिया। 5 मई को इटली की सेना इथोपिया की राजधानी आदिस अबाबा में प्रवेश कर गयी।

इस युद्ध ने यथार्थ में लीग ऑफ़ नेशन्स को चोट पहुँचायी तथा मुसोलिनी को हिटलर के साथ ला खड़ा किया। परिणामस्वरूप रोम-बर्लिन गठबंधन अस्तित्व में आया जिसने अंतर्राष्ट्रीय शांति को भारी नुकसान पहुंचाया।

## 33.3.3 स्पेन का गृह युद्ध (1936-39)

1900 के बाद से स्पेन को प्रभावित करने वाले जन असंतोष की तीन मुख्य धाराएं थीं। मज़दूर वर्ग का क्रांतिकारी आंदोलन, क्षेत्रीय स्वायत्तता की मांग तथा पादरीवाद (याजकवाद) का विरोध। सितम्बर, 1923 से लेकर जनवरी, 1930 तक न तो प्राइमो द रिवेरा की सैनिक तानाशाही और न ही 1931 के बाद के निर्वाचित रिपब्लिकन जनता की इन शिकायतों को दूर कर पाए। यद्यपि 1936 के चुनावों के बाद वाम तथा वाम मध्यमार्गी दल सत्ता में आए लेकिन उग्र वामपंथी दल परिवर्तन से संतुष्ट नहीं हुए और सीधी कार्यवाही का रास्ता अपनाया जिसमें भूमि अभिग्रहण तथा जन क्रांतिकारी उमंग से ओत-प्रोत क्रांतिकारी हड़तालें शामिल थीं। क्रांति के विरुद्ध क्रांति विरोधी शक्तियों के प्रवेश के साथ ही 17 जुलाई, 1936 को गृह युद्ध आरंभ हो गया।

स्पेन का गृह युद्ध जो तीन वर्षों तक चला, क्रांतिकारियों एवं प्रतिक्रियावादियों के बीच अन्दरूनी संघर्ष तथा अंतर्राष्ट्रीय झगड़े जो फासीवादियों और जनतांत्रिक सरकारों के बीच थे, दोनों ही स्तर पर लड़ा जाता रहा। एक महत्वपूर्ण बिन्दू पर पहुंच कर यह साम्यवाद, फासीवाद और उदारवाद के बीच विचारधारात्मक संघर्ष बन गया। वास्तव में स्पेन का यह घटनाचक्र विश्व युद्ध की पृष्ठभूमि बन गया।

दिसम्बर, 1938 को हिटलर और मुसोलिनी की सहायता से जनरल फ्रैंकों ने फासिस्ट सरकार की स्थापना कर दी जिसे पश्चिमी जनतांत्रिक सरकारों ने मान्यता दे दी। इसके साथ ही पश्चिमी जनतांत्रिक सरकारों के साथ सुरक्षा के सोवियत प्रयासों का भी अंत हो गया क्योंकि यह फासीवादी शक्तियों को रोकने में काफी कमजोर और संशयपूर्ण साबित हुए।

## 33.3.4 विश्व युद्ध की ओर अग्रसर जर्मनी

1933-39 के दौरान हिटलर ने जर्मनी के तमाम जनतांत्रिक मूल्य नष्ट कर दिये और पूरे यूरोप के नात्सीकृत करने की प्रक्रिया आरंभ कर दी। 1939 में युद्ध की ओर ले जाने वाली घटनाएं काफी तेजी से घटीं। इस प्रक्रिया का निर्णयात्मक बिन्दु मुसोलिनी के इथोपिया पर आक्रमण में हिटलर का समर्थन था। स्पेन के गृह युद्ध ने इस मैत्री को सुदृढ़ किया। इस काल में हिटलर ने जर्मनी के पुनर्शस्त्रीकरण और राइन प्रदेश में सैन्यीकरण का कार्य पूरा कर लिया था। फ्रांस और ब्रिटेन की हस्तक्षेप न करने की नीति का लाभ उठाते हुए हिटलर ने 1938 में आस्ट्रिया के साथ एकता (ऐंश्लस) कायम की। इसके उपरांत चेकोस्लोवाकिया का विभाजन हुआ तथा मार्च, 1939 तक उस पर पूर्णतः कब्ज़ा कर लिया गया। हिटलर को इस लक्ष्य की प्राप्ति में ब्रिटेन का मौन समर्थन प्राप्त हुआ।

हांलाकि उल्लेखनीय बात यह थी कि जर्मनी का विस्तार स्लाव क्षेत्रों तक था। "पौलेंड का गलियारा" एक ऐसा मुद्दा था जिस पर हिटलर ने जर्मनी की उग्र राष्ट्रवादी भावनाओं को भड़काया। इसी समय सोवियत संघ परिदृश्य पर उभरा। फासीवादी आक्रमणों का विरोध करने के लिए अपने लोकप्रिय मोर्चे के प्रस्ताव पर पश्चिमी जनतंत्रों की अपर्याप्त प्रतिक्रिया से स्टालिन का मोहभंग हुआ और उसने जर्मनी के साथ 1939 में एक दूसरे पर आक्रमण न करने का समझौता कर लिया। इतना ही नहीं स्टालिन ने पौलैंड का विभाजन भी स्वीकार कर लिया। 1 सितम्बर, 1939 को पोलैंड का पर जर्मनी के आक्रमण के साथ ही विश्व युद्ध आरंभ हो चुका था। दो दिन बाद ब्रिटेन एवं फ्रांस ने पोलैंड के बचाव के लिए युद्ध में प्रवेश किया। जर्मनी का अति राष्ट्रवाद एक बार फिर विश्व युद्ध का प्रधान कारण बना।

**बोध प्रश्न 1**

1 वर्साय संधि का जर्मनी पर क्या प्रभाव पड़ा? दस पंक्तियों में उत्तर दीजिए।

..........................................................................

..........................................................................

..........................................................................

..........................................................................

..........................................................................

..........................................................................

..........................................................................

..........................................................................

..........................................................................

..........................................................................

2 इस काल के दौरान पूर्वी एशिया में मुख्य संकट क्या था? लगभग सौ शब्दों में लिखिए।

..........................................................................

..........................................................................

..........................................................................................

..........................................................................................

..........................................................................................

..........................................................................................

..........................................................................................

..........................................................................................

..........................................................................................

..........................................................................................

3 निम्नलिखित वक्तव्यों को पढ़िये और सही (√) अथवा गलत (×) का निशान लगाइये।

i) विश्वव्यापी आर्थिक मंदी के कारण राष्ट्रों के बीच अस्तित्व के लिए बड़े पैमाने पर संघर्ष छिड़ गया। ☐

ii) वैचारिक स्तर पर नात्सी आंदोलन साम्यवाद विरोधी और जनतंत्र विरोधी आधार पर खड़ा था। ☐

iii) मुसोलिनी के नेतृत्व के कारण इटली में फासीवाद सफल हुआ। ☐

iv) स्पेन का गृह युद्ध साम्यवाद, फासीवाद और उदारवाद के बीच विचारधाराओं का संघर्ष बन गया। ☐

## 33.4 द्वितीय विश्व युद्ध

विश्वयुद्ध की पूरी प्रक्रिया को मोटे तौर पर चार चरणों में बांटा जा सकता है। आरंभिक चरण फासीवादी शक्तियों के ताबड़तोड़ हमलों का था। इसके बाद युद्ध में तेजी आने तथा उसके विश्वव्यापी हो जाने का चरण आता है जिसमें जापान, अमरीका और सोवियत संघ का युद्ध में शामिल होना इसे विश्वव्यापी दीर्घकालिक युद्ध बना देता है। जब एक बार सोवियत संघ ने "देशभक्तिपूर्ण युद्ध" की घोषणा की तथा अधिग्रहित क्षेत्रों में जनप्रतिरोध आंदोलन लोकप्रिय हुए तो फासीवाद शक्तियों ने रक्षात्मक रवैया अपनाया। इसके साथ ही युद्ध का सारा नक्शा बदल गया और अंततः उसका परिणाम इटली, जर्मनी तथा जापान की विनाशकारी पराजय में निकला।

### 33.4.1 आरंभिक स्थिति : जर्मनी की विजय

1939-41 के दौरान जर्मनी ने तेजी से हमला (ब्लिट्ज़किएग) करने की रणनीति पर चलते हुए युद्ध में विजय हासिल की। इसके लिए उन्होंने टैंकों का इस्तेमाल किया। सितम्बर,1939 में पोलैंड पर कब्ज़ा कर लिया। पोलैंड के पूर्वी प्रांत, रूसी फ़ौज़ के अधिकार में थे और शेष पोलैंड पर जर्मनी का नियंत्रण था। हिटलर की तमाम आरंभिक युद्धों में तेजी से हमले की रणनीति काफी प्रभावशाली सिद्ध हुई।

फ्यूहरर (हिटलर) का अगला लक्ष्य नार्वे, जहां महत्वपूर्ण पनडुब्बी अड्डा बन सकता था और डेनमार्क थे। अप्रैल, 1940 में जर्मन सेना ने डेनमार्क से होते हुए नार्वे पर आकस्मिक आक्रमण कर दिया। मई में फ्रांस के लिए भी खतरा पैदा हो गया। केवल स्वीडन ही अकेला देश बचा था कि तटस्थ का। जर्मनी ने 10 मई को नेदरलैंड और कुछ ही दिनों बाद बेल्ज़ियम पर भी कब्जा कर लिया।

अप्रत्याशित रूप से ब्रिटेन और फ्रांस की प्रतिक्रिया प्रभावहीन और निरुत्साही सिद्ध हुई। उनके सेनानायक तेजी से हमले की रणनीति के महत्व को समझ नहीं पाये। फलतः उन्हें इसकी काफी बड़ी कीमत चुकानी पड़ी।

12 मई को जर्मन सेना सेदान (Sedan) से फ्रांस में प्रवेश कर गयी। एक सप्ताह के भीतर

नात्सी सेना फ्रांस के अंदर तक धंसती चली गयी। छद्म युद्ध (फोनी वार) फ्रांस में फैल गया। 25 मई को बेल्जियम ने आत्मसमर्पण कर दिया। मध्य जून तक मुसोलिनी ने भी फ्रांस के विरुद्ध युद्ध घोषित कर दिया और पेरिस बिल्कुल अरक्षित रह गया। 17 जून को फ्रांस ने युद्ध विराम की अपील की। अप्रैल-मई, 1914 के दौरान युगोस्लाविया और यूनान पर विजय प्राप्त करने के बाद हिटलर ने रूस का रुख किया।

All The News

Final Edition

THE BOMBAY SENTINEL

Edited By B. G. Horniman

BOMBAY: TUESDAY, AUGUST 27, 1940

PRICE: ONE ANNA

Hitler Launches Biggest Air Attack On Britain

TWILIGHT TWITTERS

EGYPTIAN PREMIER RESIGNS

Whole-Night Raid On 500 Mile Coast Line Front Extended Across Country From North To South

LONDON SURROUNDED BY WALL OF LIGHT DURING LONGEST AIR RAID CITY EVER EXPERIENCED

Rumania Prepared For Every Sacrifice

Axis Powers' "Programme" In U. S.

NAZIS EXPERIENCE STIFF RESISTANCE

JAWAHAR ON CONGRESS PLANS

DRIVER KILLED IN GOODS TRAIN ACCIDENT

GENERAL STAFF RESPONSIBLE FOR FRENCH DISASTERS

PATIENTS TAKEN TO TRENCHES

ANOTHER AIR RAID ALARM IN BERLIN

EGYPTIAN AND BRITISH INTERESTS IDENTICAL

British Ambassador's Vigorous Reply To Axis Allegations

R.A.F. Raids On Somaliland & Abyssinia

**चित्र 25. द्वितीय विश्व युद्ध के विषय में अखबार में छपी रिपोर्ट**

## 33.4.2 ठहराव की स्थिति : सोवियत रूस और अमरीका का युद्ध में प्रवेश

स्टालिन की हिटलर के प्रति तुष्टीकरण की नीति व्यर्थ रही। 22 जून, 1941 को हिटलर ने सोवियत संघ पर आक्रमण कर दिया इस प्रकार दो मोर्चों पर युद्ध का महत्वपूर्ण चरण आरंभ हुआ। लगभग दो हजार मील के क्षेत्र में 150 सशस्त्र विभाग, क्रियाशील हो गये। सितम्बर तक फासीवादी बिना किसी कठिनाई के आगे बढ़ते गये और लेनिनग्राद की घेराबंदी कर ली जो कि तीस महीने तक चली। अक्टूबर तक यूक्रेन पर पूरी तरह कब्ज़ा हो गया। ऐसा प्रतीत होता है कि सोवियत संघ ने "समय प्राप्त करने के लिए क्षेत्र में बढ़ते जाने की पद्धति अपनायी थी। अक्टूबर और नवम्बर में रूस की शीतऋतु ने हिटलर को आक्रमण गति धीमी करने पर मजबूर कर दिया। 2 दिसम्बर को रूस ने मास्को की रक्षा करने में सफलता अर्जित की। अब सोवियत संघ के आक्रमक रुख अपनाने की बारी थी। 1812 में नैपोलियन ने जो गलती की उसे हिटलर ने दुहराया जिससे उसके सारे सपने चूर-चूर हो गये।

पर्ल हारबर पर जापान के हमले ने 7 दिसम्बर, 1941 को अमरीका को युद्ध में खींच लिया था और इस प्रकार यह युद्ध विश्व युद्ध में पूर्णतः परिणित हो गया था। अप्रैल, 1942 तक जापान ने पूरे दक्षिण पूर्व एशिया गुआम और वेक द्वीप तथा सिंगापुर, फिलीपीन, बर्मा, और नीदरलैंड, ईस्ट इंडीज़ आदि को अपनी चपेट में ले लिया। हालांकि अमरीका ने जर्मनी को पराजित करना अपना मुख्य ध्येय बना रखा था। उसने मई, 1942 तक प्रशांत में जापानी

विस्तार को सफलतापूर्वक रोके रखा। 1942-43 में सोवियत संघ ने निर्णायक विजयें प्राप्त कीं लेकिन उसे भारी क्षति भी उठानी पड़ी। इसी बीच ब्रिटिश और अमरीकी सेनाएं केवल समुद्री तथा हवाई हमलों में लगी हुई थीं।

### 33.4.3 रक्षात्मक स्थिति : धुरी राष्ट्रों की पराजय

अधिकृत क्षेत्रों में नात्सी शासकों ने अपनी नस्लवादी नयी व्यवस्था बर्बरतापूर्ण दमन और नरसंहार के रूप में थोपी। जर्मनी के युद्ध अभियान को बरकरार रखने के लिए लोगों पर ज़ोर ज़बर्दस्ती की गयी। इसके फलस्वरूप स्वस्फूर्त भूमिगत प्रतिरोध संगठन हर जगह उभर आये। इन आंदोलनों को संगठित करने में मार्शल टीटो और चार्ल्स दे गॉल प्रमुख व्यक्ति थे। जर्मनी में भी लोकप्रिय हिटलर विरोधी आंदोलनों ने सिर उठाना शुरू कर दिया।

युद्ध के मोर्चे पर 1942 तक धुरी सेनाओं को रक्षात्मक रवैया अपनाने पर मजबूर होना पड़ा स्टालिनग्राद के लिए युद्ध में सोवियत लाल सेना (रेड आर्मी) ने 2,50,000 नात्सी टुकड़ियों को रोक लिया और 2 फ़रवरी, 1943 को जब इन टुकड़ियों ने आत्मसमर्पण किया तो केवल 80,000 सैनिक जीवित बचे थे।

अन्य क्षेत्रों में ब्रिटेन मिस्र की ओर बढ़ा और अमरीका, फ्रेंच उत्तरी अफ्रीका में जा पहुंचा और इस प्रकार मित्र राष्ट्रों ने धुरी राष्ट्रों की घेराबंदी आरंभ कर दी।

इसके बाद से भाग्य ने पलटा खाया। फासीवादी ताक़तों का आत्मसमर्पण अब कुछ ही देर की बात रह गयी थी। 24 जनवरी, 1943 मित्र राष्ट्रों की सेना ने त्रिपोली तथा 13 मई को तुनीसिया की घेराबंदी कर ली। सिसिली जुलाई में कब्ज़े में आया और इसी के बाद इटली में मुसोलिनी का पतन भी हो गया। परिणामस्वरूप मित्र राष्ट्रों का इटली के कुछ क्षेत्रों पर कब्ज़ा हो गया। पूर्वी मोर्चे पर 1943 में सोवियत संघ की लाल सेना ने यूक्रेन के मुख्य क्षेत्र मुक्त करा लिये। इसके बाद लाल सेना यूरोप में आगे बढ़ने लगी।

### 33.4.4 धुरी राष्ट्रों का पीछे हटना और उनकी पराजय

1942-45 के दौरान धुरी राष्ट्रों की पराजय में जन प्रतिरोध आंदोलनों ने महत्वपूर्ण भूमिका निभायी। आंतरिक तोड़फोड़ की गतिविधियां आम हो गयीं। सोवियत संघ और युगोस्लाविया में कई स्थानों पर पूर्णरूपेण गुरिल्ला युद्ध आरंभ हो गया। अधिकृत देशों में प्रतिरोधात्मक कार्यों ने दरअसल मित्र राष्ट्रों की सेना की योजनाओं को बल प्रदान किया।

इसी बीच 4-6 जून के दौरान मित्र राष्ट्रों की सेनाएं रोम को मुक्त करती हुई नार्मैंडे जा पहुंचीं। हालांकि पूरे इटली को मुक्त कराने में लगभग एक वर्ष का समय लगा। सितम्बर, 1944 तक पेरिस समेत फ्रांस के मुख्य क्षेत्र मुक्त हो गये तथा मार्च, 1945 तक पूरा फ्रांस स्वतंत्र हो गया। बेल्जियम भी शीघ्र ही मुक्त हो गया। सोवियत मोर्चे पर लाल सेना पोलैंड और बाल्टिक राज्यों में धंसती चली गयी और सितम्बर, 1944 को बुलगारिया पर कब्ज़ा कर लिया जबकि अगस्त, 1944 में रूमानिया और फिनलैंड ने शांति का प्रस्ताव रख दिया।

एशिया में 1945 तक मित्र राष्ट्र सेना ने सैपान, तिनिआन, गुआम, फिलीपीन और बर्मा पर कब्ज़ा कर लिया। जून, 1945 में ओकिनावा द्वीप को अधिकार में लेते हुए उन्होंने जापान को चुनौती दी।

यूरोप में 1945 के आरंभ से मित्र सेना ने पूर्व और पश्चिम की ओर से जर्मनी की घेराबंदी आरंभ कर दी। 22 अप्रैल तक सोवियत संघ ने बर्लिन को अपने अधीन कर लिया। 28 अप्रैल को मुसोलिनी मारा गया, उसके ठीक अगले दिन उसके सेना ने आत्मसमर्पण कर दिया। 30 अप्रैल को हिटलर ने आत्महत्या कर ली तथा 7 मई, 1945 को जर्मनी ने बिना शर्त के आत्मसमर्पण कर दिया।

(क) रूसी सैनिक अपनी सीमाओं को पुर्नस्थापित करते हुए 1944

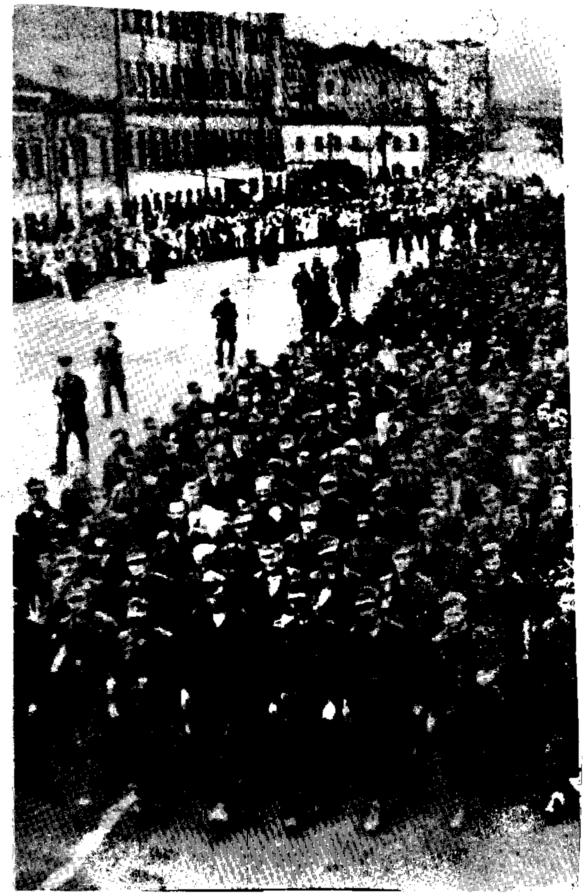

(ख) मास्को में नाज़ी युद्ध बन्दी–1944

(ग) मास्कोवासी वापस आये सैनिकों का स्वागत करते हुए

(घ) मास्को के रेड स्कवायर में विजय परेड (24 जून, 1945) नाज़ी झण्डों को फेंकते हुए

चित्र 26.

## 33.5 द्वितीय विश्व युद्ध के परिणाम

आरंभिक युद्धों से भिन्न दूसरे विश्व युद्ध ने मानव जीवन के प्रत्येक पक्ष को प्रभावित किया। युद्ध में वैज्ञानिक और तकनीकी प्रयोग तथा उनके विध्वंसकारी परिणाम भीषण थे। विशेष रूप से युद्ध में आणविक अस्त्रों के प्रयोग ने धरती पर मानव अस्तित्व के लिए एक नया ख़तरा उत्पन्न कर दिया।

अंतर्राष्ट्रीय संबंधों में शांति (देतांत) की पुरानी धारणा समाप्त हो गयी। उपनिवेशवाद का स्थान विश्व साम्राज्यवादी शोषण के नवउपनिवेशवाद ने ले लिया। उपनिवेशवाद के बिखरने के कारण कई स्वाधीन राष्ट्र अस्तित्व में आये, जिन्हें आज "तीसरी दुनिया" कहा जाता है। संयुक्त राष्ट्र संघ के जन्म से शांति की आशा जागी लेकिन "शीत युद्ध" ने नये तनाव उत्पन्न कर दिये।

### 33.5.1 भारतीय राजनीति पर प्रभाव

1938-39 के फासीवादी आक्रमण के प्रति भारत में राजनीतिक प्रतिक्रिया बहुत तीक्ष्ण थी। ब्रिटेन विरोधी कांग्रेसी राष्ट्रवाद और साम्राज्यवादी विरोधी तथा फासीवादी विरोधी वाम अंतर्राष्ट्रीयतावाद दोनों ही फासीवादी आक्रमण तथा चैम्बरलेन की तुष्टीकरण की नीति की भर्त्सना करने में अग्रणी रहे। 3 सितम्बर, 1939 को भारत की इच्छा के विरुद्ध ब्रिटेन ने उसे युद्ध में शामिल कर लिया। लेकिन राष्ट्रवादियों ने युद्ध में सहयोग के लिए यह शर्त रखी कि ब्रिटेन तुरंत उन्हें केन्द्र में पूर्ण उत्तरदायी सरकार बनाने दे और युद्ध के बाद स्वाधीन भारत के लिए संविधान सभा की माँग स्वीकार करे। ब्रिटेन ने नकारात्मक प्रतिक्रिया दर्शायी। बाद में गांधी जी के नेतृत्व में राष्ट्रवादियों ने निष्क्रिय सविनय अवज्ञा के साथ प्रतिक्रिया ज़ाहिर की लेकिन कांग्रेस के वाम पक्ष ने कम्युनिस्टों के साथ मिलकर एक जुझारू युद्ध विरोधी संघर्ष के लिए प्रचार किया।

रूस पर जर्मनी के आक्रमण तथा जापान द्वारा दक्षिण-पूर्व एशिया के अभिग्रहण से भारतीय परिस्थिति में नाटकीय परिवर्तन हुआ। भारतीय कम्युनिस्ट पार्टी गहन वाद-विवाद के बाद जनवरी, 1942 में फासिस्ट विरोधी जन युद्ध (Anti-Fascist People's War) तथा मित्र राष्ट्रों के युद्ध प्रयासों के समर्थन में खुले आम सामने आयी। अगस्त, 1942 में गांधी जी ने "करो या मरो" के रूप में जुझारू प्रतिक्रिया ज़ाहिर की। इस प्रकार "भारत छोड़ो" आंदोलन पूरे भारत में फैल गया। लेकिन 1942 के अंत तक ब्रिटिश नौकरशाही ने आंदोलन को कुचल दिया। देशव्यापी जन आक्रोश के विरुद्ध कम्युनिस्ट साहसपूर्ण तरीक़े से फासीवाद के विरुद्ध कार्य करते रहे। परिणामतः भारतीय राष्ट्रीय आंदोलन में एक स्पष्ट विचारधारात्मक दरार पड़ गयी।

भारत में युद्ध के भयावह आर्थिक परिणाम थे—मुद्रा स्फीति, बाज़ार में वस्तुओं की कमी, काला बाज़ारी और भ्रष्टाचार तथा 1943 का अकाल जिसमें बंगाल में लगभग 30 लाख लोग मारे गये। साम्प्रदायिकता के बढ़ने से पाकिस्तान के लिये मुस्लिम लीग की मांग तथा औपनिवेशिक शासकों के साथ समझौते के लिये कांग्रेस के प्रयास भारत में युद्ध के बाद के राजनीतिक माहौल की ओर इशारा करते हैं।

यद्यपि किसानों और मज़दूरों द्वारा साम्राज्यवाद विरोधी, ज़मींदार विरोधी, और पूंजीवाद विरोधी जुझारू संघर्ष तथा 1945-46 के नाविक विद्रोह ने (रॉयल इंडियन नेवी R.I.N.) पूर्ण स्वतंत्रता की प्रक्रिया तथा साथ-साथ सामाजिक क्रांति को प्रोत्साहित किया। लेकिन 1945-47 के दौरान जनता सांप्रदायिक विध्वंस तथा विभाजन के तनावपूर्ण माहौल में जीने के लिए मजबूर कर दी गयी।

### 33.5.2 संयुक्त राष्ट्र संघ की स्थापना

संयुक्त राष्ट्र संघ की स्थापना युद्ध के समय अस्तित्व में आये फासीवाद विरोधी गठबंधन के दौरान हुई। अगस्त, 1941 में रूज़वेल्ट और चर्चिल ने अटलान्टिक घोषणा पत्र तैयार किया

जिसमें युद्धोपरांत "अंतर्राष्ट्रीय पुनर्संगठन तथा आम सुरक्षा के लिये विस्तृत और स्थायी व्यवस्था" की स्थापना के सिद्धांतों का उल्लेख किया गया। इन सिद्धांतों के आधार पर जनवरी, 1942 को धुरी-राष्ट्र विरोधी शक्तियों ने संयुक्त राष्ट्र संघ की घोषणा पर हस्ताक्षर किये। सामाजिक सुरक्षा, आर्थिक प्रजातंत्र और राष्ट्रीय प्रभुसत्ता के लिए अंतर्राष्ट्रीय प्रयासों को अलग-अलग घोषणाओं में विस्तार दिया गया, जो कि बाद में संयुक्त राष्ट्रों के विभिन्न अंगों में समाहित हो गये। जून, 1945 में सैन फ्रांसिसको में अंतिम घोषणा पत्र पर हस्ताक्षर किये गये। युद्ध के दौरान का ब्रिटेन, अमरीका, सोवियत संघ, चीन तथा अन्य पचास राष्ट्रों का गठबंधन विश्व की आर्थिक और सामाजिक समस्याओं से निपटने के लिए कई अंतर्राष्ट्रीय एजेंसियों को अस्तित्व में लाया। 1943 में संयुक्त राष्ट्र राहत और पुनर्वास प्रशासन की स्थापना हुई। 1944 में अंतर्राष्ट्रीय मुद्रा कोष (International Monetary Fund) तथा पुनर्निमाण और विकास हेतु अंतर्राष्ट्रीय बैंक (International Bank for Reconstruction and Development) की स्थापना वित्तीय तथा मुद्रा समस्याओं से निपटने के लिए की गयी। संयुक्त राष्ट्र शैक्षणिक, वैज्ञानिक और सांस्कृतिक संगठन (यूनेस्को) सामाजिक और सांस्कृतिक सहयोग की देख-रेख के उद्देश्य से स्थापित किया गया था। संगठन की प्रस्तावना में उचित रूप में घोषणा की गयी थी कि अंतर्राष्ट्रीय शांति की स्थापना "मानव जाति के बौद्धिक और नैतिक एकजुटता के आधार पर" की जानी चाहिए। पौष्टिकता का स्तर बढ़ाने, खाद्य पदार्थों के उत्पादन और वितरण की पद्धति में सुधार लाने तथा विश्व अर्थव्यवस्था के विस्तार में योगदान करने के उद्देश्य से 1945 में खाद्य एवं कृषि संगठन (Food and Agricultural Organisation) की स्थापना की गयी। संयुक्त राष्ट्र संघ की सदस्यता जो कि 1945 में 51 थी, धीरे-धीरे बढ़कर 1963 में 123 हो गयी, लेकिन शीतयुद्ध ने इसकी प्रभावपूर्ण क्रियाशीलता पर गहरा प्रभाव डाला।

### 33.5.3 यूरोप पर आर्थिक प्रभाव

युद्ध के बाद अव्यवस्थित यूरोप में ग़रीबी के दर्शन होने लगे तथा लाखों शरणार्थियों और युद्ध बंदियों की आवासीय और खाने की समस्या सामने आयी। यूरोप की अर्थव्यवस्था का विघटन उद्योगों के नाश, क्षतिग्रस्त परिवहन व्यवस्था, मुद्रा स्फीति, अस्थिर मुद्रा स्तर तथा राजनीतिक अस्थिरता के कारण हुआ। 1947 के मध्य तक पहुंचते-पहुंचते अल्प उत्पादन और अल्प पूंजी निवेश की समस्या पूरे यूरोप में फैल गयी। ब्रिटेन के आर्थिक रूप से कमज़ोर हो जाने से पश्चिमी विश्व का नेतृत्व अमरीका के हाथ में पहुंच गया।

जून, 1947 से पश्चिमी यूरोप के पुनरुत्थान के लिए अमरीकी सहायता ही मुख्य आधार बनी। युद्ध पूर्व वाली यूरोपीय स्थिति बनाने के कार्यक्रम (मार्शल प्लान) के तहत 1948-49 के दौरान अमरीका ने पश्चिमी यूरोप को प्रतिवर्ष चालीस ख़रब (चार बिलियन) डालर की सहायता की। 1950 तक पहुंचते-पहुंचते माल के उत्पादन और सेवाओं में बढ़ोतरी होने के कारण पश्चिमी यूरोप की स्थिति में तेज़ी से सुधार आया। लेकिन शेष यूरोप में सुधार की गति धीमी बनी रही क्योंकि शीत युद्ध के कारण पूर्वी यूरोपीय देशों को अमरीकी सहायता से वंचित रखा गया।

### 33.5.4 शीत युद्ध की शुरुआत : नया विचारधारात्मक संघर्ष

1947 में पहली बार अमरीकी राजनेता बर्नार्ड एम० बुच द्वारा "शीत युद्ध" का प्रयोग किया गया लेकिन इसके चिन्ह 1942-43 की घटनाओं में ढूंढ़े जा सकते हैं। रूस पर जर्मनी के आक्रमण के आघात को हल्का करने के लिए यूरोप में दूसरा मोर्चा खोलने में जानबूझकर देरी की गयी जिसके कारण रूस और पश्चिम के बीच गठबंधन होने में अनिश्चितता बनी रही। सितम्बर, 1943 में इटली के साथ युद्ध विराम वार्तालाप में रूस को शामिल न करने के कारण रूस की शंका को और बल मिला। परिणामस्वरूप रूस ने 1945 में बुलगारिया, रूमानिया और हंगरी के प्रशासन में पश्चिम को शामिल नहीं किया। यही स्थिति पोलैंड में भी रही। शीतयुद्ध में जर्मनी का प्रश्न केन्द्रीय मुद्दा बन गया।

सोवियत विस्तार तथा कम्युनिस्ट विचारों और आंदोलनों के प्रभाव को अन्य क्षेत्रों में न फैलने देने के उद्देश्य से जो "ट्रूमैन सिद्धांत" बना था दरअसल उसने ही "शीत युद्ध" की नींव रखी। यहां तक कि जून, 1947 से यूरोपीय पुनर्निमाण के लिए अमरीकी आर्थिक सहायता

कम्युनिज़्म के विरुद्ध विचाराधारात्मक युद्ध का अमरीकी हथियार बन चुकी थी। इसके परिणामस्वरूप कम्युनिस्ट पक्ष और पश्चिमी/अमरीकी पक्ष के बीच विभाजन की लौह दीवार खड़ी हो गई। यह विचारधारात्मक विभाजन विरोधी सैन्य पक्षों में सैन्य गठजोड़, जैसे "नाटो" "सीटो" इत्यादि के रूप में विश्व विभाजन में बदल गया। तब से सम्पूर्ण विश्व तीसरे विश्व युद्ध के कगार पर खड़ा है और आणविक हथियारों का भंडार खड़ा करने में मानवता के अस्तित्व को ही चुनौती दी जा रही है।

**बोध प्रश्न 2**

1 निम्नलिखित वक्तव्यों को पढ़ें और सही (√) अथवा ग़लत (×) का निशान लगायें।

i) अभिग्रहित क्षेत्रों में जन प्रतिरोध आंदोलनों ने धुरी शक्तियों की पराजय में महत्वपूर्ण भूमिका निभायी। ☐

ii) हिटलर की युद्ध नीति के विरुद्ध जर्मनी में कोई जन आंदोलन नहीं हुआ। ☐

iii) द्वितीय विश्व युद्ध के बाद साम्राज्यवादी शोषण का अंत हो गया। ☐

iv) "शीत युद्ध" का आधार सोवियत विस्तार तथा कम्युनिस्ट विचारों के प्रभाव को अन्य क्षेत्रों में फैलने से रोकना था। ☐

2 भारत की राजनीति पर द्वितीय विश्व युद्ध के प्रभाव का संक्षिप्त विवरण दें।

.................................................................
.................................................................
.................................................................
.................................................................
.................................................................
.................................................................
.................................................................
.................................................................
.................................................................
.................................................................

3 संयुक्त राष्ट्र संघ की स्थापना क्यों की गयी इसके तीन महत्वपूर्ण अंगों के नाम बताएं।

.................................................................
.................................................................
.................................................................
.................................................................
.................................................................
.................................................................
.................................................................
.................................................................
.................................................................
.................................................................

## 33.6 सारांश

इस इकाई में आपने पढ़ा कि प्रथम विश्व युद्ध के बाद का शांति समझौता स्थिर राजनीतिक व्यवस्था प्रदान न कर सका। इस समझौते के बाद विश्व के एक बड़े हिस्से, विशेषकर छोटे

राष्ट्रों में असंतोष बना रहा। इसके अतिरिक्त 1929-33 के आर्थिक संकट ने राजनीतिक संकट को और गहरा बना दिया। जर्मनी में नात्सीवाद का उदय, इटली में फासीवाद तथा जापान में सैन्यवाद का उदय अंतर्राष्ट्रीय संबंधों के लिए निर्णायक सिद्ध हुए और द्वितीय विश्व युद्ध में उन्होंने प्रमुख भूमिका निभायी। मंचूरिया पर जापान के आक्रमण, अबीसीनिया पर इटली के आक्रमण तथा 1936-39 में स्पेन के गृह युद्ध ने व्यापक संघर्ष की स्थितियां तैयार कर दीं। ब्रिटेन और फ्रांस की तुष्टीकरण की नीति नात्सी और फासीवादी शक्तियों के हमले के लिए काफ़ी हद तक ज़िम्मेदार रही।

अमरीका और सोवियत संघ का युद्ध में प्रवेश तथा अभिग्रहित क्षेत्रों में जन प्रतिरोध आंदोलनों ने धुरी राष्ट्रों को रक्षात्मक स्थिति में ढकेल दिया। अंततः धुरी राष्ट्रों को युद्ध में भयावह पराजय का मुंह देखना पड़ा।

उपनिवेशवाद के स्थान पर नवउपनिवेशवाद का उदभव, विभिन्न स्वतंत्र राज्यों की स्थापना, संयुक्त राष्ट्र संघ की स्थापना तथा शीत युद्ध की शुरुआत जिसने नये तनावों को जन्म दिया, युद्ध के ये कुछ महत्वपूर्ण परिणाम हैं।

## 33.7 शब्दावली

**ऑटार्की :** किसी राज्य का स्वावलम्बी होना, विशेषकर अपनी अर्थव्यवस्था में।

**तीसरी दुनिया :** वे देश जो कि निर्धन हैं शक्तिशाली नहीं है और विकासशील समझे जाते हैं जैसे एशिया और अफ्रीका के देश तीसरी दुनिया के नाम से पुकारे जाते हैं।

**ट्रूमैन सिद्धांत :** अमरीकी राष्ट्रपति ट्रूमैन की घोषणा जिसने सभी राष्ट्रों को अपनी स्वतंत्रता को सुरक्षित रखने के लिए सैनिक और आर्थिक सहायता देने का वचन दिया। इसका उद्देश्य सोवियत विस्तार को रोकना तथा कम्युनिस्ट विचारों और आंदोलनों के प्रभावों को अन्य क्षेत्रों में न फैलने देना था।

**नाटो :** नार्थ अटलांटिक ट्रीटी आर्गेनाइज़ेशन (उत्तर प्रशांत संधि संगठन) एक ऐसी संस्था जिसमें अमरीका, कनाडा, ब्रिटेन और अन्य पश्चिम यूरोपीय देश शामिल हैं। इनके बीच समझौता है कि वे इनमें से किसी देश पर आक्रमण की परिस्थिति में एक दूसरे की सहायता करेंगे तथा इनका ध्येय कम्युनिज़्म के विकास को रोकना है।

**नव उपनिवेशवाद :** किसी स्वतंत्र देश पर किसी अन्य देश द्वारा आर्थिक नियंत्रण अथवा राजनीतिक प्रभाव जो उस देश के व्यापार अथवा वित्तीय संस्थानों पर नियंत्रण के द्वारा किया जाता है। इसे नव उपनिवेशवाद की संज्ञा दी गयी है।

**सीटो :** साउथ ईस्ट एशियन ट्रीटी आर्गेनाइज़ेशन (दक्षिण पूर्व एशियाई संधि संगठन) जो कि कुछ दक्षिण पूर्व एशियाई स्वतंत्र देशों के बीच सैन्य गठबंधन है। कम्युनिज्म के विरोध में यह संगठन अमरीका की पहल पर अस्तित्व में आया।

**वाइमर सरकार :** प्रथम विश्व युद्ध के बाद जर्मनी में स्थापित सरकार जो हिटलर के सत्ता में आने तक क़ायम रही।

## 33.8 बोध प्रश्नों के उत्तर

**बोध प्रश्न 1**

1 आपके उत्तर में जर्मनी के क्षेत्रीय नुकसान तथा जर्मनी में 1919 के समझौते के विरुद्ध जन असंतोष का उल्लेख किया जाना चाहिए। देखें उपभाग 33.2.1

2 जापान में अतिराष्ट्रवाद और सैन्यवाद का उदय, मंचूरिया पर जापानी हमला जिसके कारण चीन जापान युद्ध का सूत्रपात हुआ, आदि देखें उपभाग 33.3.1

3 i) √ ii) √ iii) × iv) √

**बोध प्रश्न 2**

1 i) √ ii) × iii) × iv) √

2 कांग्रेस द्वारा फासीवादी युद्ध की भर्तस्ना, अंग्रेज़ों द्वारा कांग्रेस की स्वराज की मांग को ठुकराया जाना, कांग्रेस द्वारा भारत छोड़ो आंदोलन की शुरुआत करना, आदि
देखें उपभाग 33.5.1.

3 आम सुरक्षा की स्थायी व्यवस्था तैयार करना, यूनेस्को, अंतर्राष्ट्रीय मुद्रा कोष आदि।
देखें उपभाग 33.5.2

## इस खंड के लिए कुछ उपयोगी पुस्तकें

एस० सी० बनर्जी : **कॉस्टीट्यूशनल हिस्ट्री ऑफ इंडिया**, भाग-दो (दिल्ली, 1972)
मार्विराइट रोज डेव : **फोर फी हेड फ्यूचर : द कान्फिलिक्ट ओवर कांग्रेस** (Margnirite Rose Dowe) मिनि स्ट्रीज (चाणक्य, दिल्ली, 1987)
कपिल कुमार : **कांग्रेस एंड कलाजेज** (मनोहर, नई दिल्ली, 1988)
जे० नेहरू : **एन आटोबायोग्राफी** (बम्बई, 1962)
डी० एन० पाणिग्रही (संपादित) : **इकॉनॉमी सोसायटी एंड पालिटिक्स इन माडर्न इंडिया** (विकास, नई दिल्ली, 1985)
सुमित सरकार : **माडर्न इंडिया**, (मैकमिलन, नई दिल्ली, 1983)
रानी धवन शंकरदास : **द फर्स्ट कांग्रेस राज**, (मैकमिलन, नई दिल्ली, 1982)
पट्टाभि सीतारमैया : **हिस्ट्री ऑफ इंडियन नेशनल कांग्रेस**, भाग दो,
(पदमा, बम्बई, 1947)
(उपर्युक्त पुस्तकें केवल अंग्रेजी भाषा में ही उपलब्ध हैं)।
आर० पी० दत्त – आज का भारत
अयोध्या सिंह – भारत का मुक्ति संग्राम
तारा चंद – भारतीय स्वतंत्रता संग्राम का इतिहास खंड 3 और 4
आर० एल० शुक्ला – आधुनिक भारत

# इकाई 34 द्वितीय विश्वयुद्ध के दौरान भारतीय राष्ट्रवाद : भारत छोड़ो आंदोलन तथा आज़ाद हिंद फ़ौज

**इकाई की रूपरेखा**

34.0 उद्देश्य
34.1 प्रस्तावना
34.2 1939 से 1941 तक
    34.2.1 युद्ध के प्रति दृष्टिकोण
    34.2.2 व्यक्तिगत सत्याग्रह
34.3 भारत छोड़ो आंदोलन की ओर
    34.3.1 क्रिप्स के प्रस्ताव
    34.3.2 भारत छोड़ो आंदोलन की पृष्ठभूमि
34.4 आंदोलन
    34.4.1 आंदोलन का प्रसार
    34.4.2 प्रतिक्रियाएं और प्रवृत्तियां
    34.4.3 दमन
34.5 आज़ाद हिंद फ़ौज (इंडियन नेशनल आर्मी)
    34.5.1 आज़ाद हिंद फ़ौज का निर्माण
    34.5.2 आज़ाद हिंद फ़ौज की कार्रवाइयां
    34.5.3 प्रभाव
34.6 सारांश
34.7 शब्दावली
34.8 बोध प्रश्नों के उत्तर

## 34.0 उद्देश्य

इस इकाई को पढ़ने के बाद आप :

- भारत छोड़ो आंदोलन की पृष्ठभूमि तैयार करने वाली परिस्थितियों के बारे में जान सकेंगे,
- इस आंदोलन के प्रति भारतीय जनता के विभिन्न वर्गों के दृष्टिकोणों को समझ सकेंगे,
- देश के विभिन्न क्षेत्रों में इस आंदोलन की प्रतिक्रिया के बारे में जान सकेंगे,
- इस आंदोलन को कुचलने के लिए अंग्रेज़ सरकार द्वारा अपनाये गये दमनकारी उपायों के बारे में जान सकेंगे,
- इस आंदोलन की विशेषताओं और उसके महत्व के बारे में जान सकेंगे, और
- आज़ाद हिंद फ़ौज़ (आई. एन. ए.) के गठन और भारतीय स्वतंत्रता संग्राम में उसकी भूमिका के बारे में जान सकेंगे।

## 34.1 प्रस्तावना

इस इकाई में आपको 1939-1945 के दौरान आज़ादी की लड़ाई की मुख्य राजनीतिक धाराओं से परिचित कराने का प्रयास किया गया है। इस इकाई में मुख्यतः भारत छोड़ो आंदोलन और स्वतंत्रता के संघर्ष में आज़ाद हिंद फौज की भूमिका की ही चर्चा की गयी है।

हम यहां उस घटनाक्रम की चर्चा करेंगे जिसने अन्ततः भारत छोड़ो आंदोलन शुरू करवाया। कांग्रेस इस आंदोलन को चलाने और संगठित करने की योजना तैयार भी नहीं

कर पायी थी कि सरकार ने इसे आगे न बढ़ने देने के लिए अपना दमन चक्र शुरू कर दिया। लेकिन सरकार की सारी गणना गलत साबित हुई। क्योंकि लोगों ने, कांग्रेसी नेताओं की गिरफ़्तारी के बाद, अपना काम खुद करने का निर्णय लिया और अंग्रेज़ सरकार को उन्होंने इस तरह से चुनौती देना शुरू किया जिसकी तुलना एक सीमा तक 1857 के संघर्ष से की जा सकती है। नये नेता स्थानीय स्तरों पर उभर कर आये। उनकी भूमिका गांधीवादी संघर्ष से भिन्न थी। अहिंसा का सिद्धांत इस दौर में निदेशक सिद्धांत नहीं रहा। सरकारी सम्पत्ति पर व्यापक हमले होने लगे। हालांकि सरकार इस आंदोलन को कुचलने में सक्षम थी, परंतु इसकी तीव्रता ने स्पष्ट कर दिया था कि अंग्रेज़ भारत पर अधिक दिनों तक शासन नहीं कर सकेंगे। यह सच्चाई सुभाषचंद्र बोस के नेतृत्व में गठित आज़ाद हिंद फौज और उसकी कार्रवाई से भी सामने आ रही थी। भारतीय अंग्रेज़ सरकार का सशस्त्र विरोध करने में केवल सक्षम ही नहीं थे, बल्कि उन्होंने ऐसा किया भी, और आज़ाद हिंद सरकार का गठन भी किया।

1. देश से गंदगी साफ करो (भारत छोड़ो आन्दोलन पर एक कार्टून)

## 34.2 1939 से 1941 के बीच

आपको 1939 से 1941 के बीच की अवधि में हुई घटनाओं के क्रमिक विकास और उन परिस्थितियों के बारे में जानने में रुचि होगी जो अन्ततः भारत छोड़ो आन्दोलन का कारण बनीं।

### 34.2.1 युद्ध के प्रति दृष्टिकोण

विश्वयुद्ध के प्रति भारतीयों का दृष्टिकोण आंमतौर पर निम्न श्रेणियों में दर्शाया जा सकता है :

i) चूंकि ब्रिटेन संकट में था भारत को स्वतंत्रता प्राप्ति के लिए इस अवसर का लाभ उठाना चाहिए। यह काम निम्न तरह से किया जा सकता था :
   - युद्ध के लिए भारतीय संसाधनों को जुटाने के ब्रिटिश प्रयासों का विरोध करके।
   - अंग्रेज़ों के विरुद्ध मज़बूत आंदोलन खड़ा करके। इस विचार के प्रतिपादकों की मुख्य चिंता भारत की आज़ादी प्राप्त करने से थी, उन्हें अंतर्राष्ट्रीय परिस्थिति से कुछ लेना-देना नहीं था।

ii) भारत को ब्रिटेन की समस्याओं से लाभ नहीं उठाना चाहिए। उसे ब्रिटिश युद्ध प्रयासों में बिना शर्त सहयोग करना चाहिए। जो इस विचार के समर्थक थे, वे सोचते थे कि युद्ध के समाप्त होने के बाद ब्रिटेन अपने प्रति भारत की सेवाओं को देखते हुए उसके प्रति नम्र रुख अपनायेगा और उसे समुचित रूप से पुरस्कृत करेगा।

iii) बहुत से भारतीय ऐसे थे जो फासीवाद (फासिज़्म) को मानवजाति के लिए बड़ा ख़तरा मानते थे और युद्ध में ब्रिटेन की मदद करना चाहते थे। लेकिन यह मदद सशर्त थी। ये शर्त थी, भविष्य में भारत की स्वतंत्रता और उस समय के लिए भारतीयों की एक अंतरिम सरकार।

iv) भारतीयों के कुछ वर्ग ऐसे भी थे जिनका दृष्टिकोण युद्ध की बदलती हुई परिस्थितियों के अनुसार बदलता रहा। और ऐसे वर्ग भी थे जिन्होंने तटस्थ रवैया अपनाया।

इस परिस्थिति में कांग्रेस ने क्या किया? व्यावहारिक रूप से पूर्व वर्णित सभी दृष्टिकोण कांग्रेस के भीतर ही मौजूद थे और इन सबके होते एक निश्चित कार्यनीति अपनाना जटिल काम था। इस हालत में कांग्रेस ने युद्ध में ब्रिटेन को पूरा सहयोग देने का प्रस्ताव रखा बशर्ते केन्द्र में एक उत्तरदायी किस्म की सरकार तुरंत गठित कर दी जाए। जहां तक भविष्य का सवाल था, कांग्रेस ने एक संविधान सभा के गठन की मांग की, जो स्वतंत्र भारत का संविधान तैयार कर सके। इस तरह यह स्पष्ट है कि जो वर्ग इस समय अंग्रेज़ सरकार के ख़िलाफ़ आंदोलन खड़ा करने के पक्ष में था, उसे गांधीवादी नेतृत्व ने महत्व नहीं दिया। गांधीजी ने अंग्रेज़ों से सवाल किया, "क्या ग्रेट ब्रिटेन अनिच्छुक भारत को युद्ध में घसीटना चाहेगा या सच्चे लोकतंत्र की रक्षा के लिए अपने इच्छुक साथी का सहयोग पसंद करेगा?" गांधीजी ने कहा कांग्रेस के समर्थन का मतलब होगा कि उससे इंग्लैंड और फ्रांस दोनों का मनोबल बढ़ जायेगा।

हालांकि गांधी जी ने कांग्रेस कार्यकारिणी समिति के सशर्त सहयोग के प्रस्ताव का समर्थन किया, मगर वे स्वयं इसके पक्ष में नहीं थे जैसा कि उन्होंने बाद में कहा, "मुझे अफ़सोस था कि अपने इस विचार में कि ब्रिटिश को जो भी सहयोग दिया जाए वह बिना शर्त दिया जाना चाहिए, मैं अकेला पड़ गया था। गांधीजी अपनी निजी हैसियत से, प्रथम विश्वयुद्ध के दौरान अंग्रेज़ों के प्रति अपने रुख़ को बार-बार सामने ला रहे थे, यानी वे सहयोग की बात दोहरा रहे थे परंतु अब परिस्थितियां बदल चुकी थीं और अब निजी विचारों से ऊपर उठने का समय था। गांधीजी ने महसूस किया कि उनकी चुप्पी का दूरगामी अर्थ भारत और इंग्लैंड दोनों के लिए ही हानिकर सिद्ध हो सकता था। अतः उन्होंने कहा :

> "अगर अंग्रेज़ सभी की स्वतंत्रता के लिए लड़ रहे हैं, तो उनके प्रतिनिधियों को स्पष्ट शब्दों में यह बात कहनी चाहिए कि युद्ध के लक्ष्य में भारत की स्वतंत्रता अनिवार्य रूप से शामिल है। इस स्वतंत्रता का मसौदा केवल भारतीयों द्वारा, और सिर्फ उन्हीं के द्वारा ही तय किया जा सकता है।"

सरकार ने क्या प्रतिक्रिया दिखाई? दरअसल अंग्रेज़ न तो तत्काल कोई छूट देने की स्थिति में थे और न भविष्य के लिए कोई वादा करने की स्थिति में वे, केवल डॉमिनियन स्टेटस देने की सरसरी बातचीत कर रहे थे। अंग्रेज़ सरकार के विरोध को रोकने और युद्ध की कार्रवाई में भारतीय संसाधनों के दोहन के लिए भारत रक्षा कानून (डिफेंस ऑफ़ इंडिया रूल्स) लागू कर दिए गए।

## 34.2.2 व्यक्तिगत सत्याग्रह

नागरिक अवज्ञा शुरू करने के मामले में कांग्रेस के दो मत थे। गांधीजी महसूस करते थे कि वातावरण नागरिक अवज्ञा के अनुकूल नहीं था क्योंकि कांग्रेस के अंदर मतभेद और अनुशासनहीनता की स्थिति बनी हुई थी। जो लोग नागरिक अवज्ञा की वकालत कर रहे थे वे गांधीजी को यह विश्वास दिलाना चाह रहे थे कि एक बार आंदोलन शुरू हो जाए तो मतभेद समाप्त हो जाएंगे और सभी इसकी सफलता के लिए काम करने लगेंगे। परंतु गांधीजी इस तर्क से सहमत नहीं थे। कांग्रेसी समाजवादी और अखिल भारतीय किसान सभा तुरंत आंदोलन शुरू करने के पक्ष में थे। एन.जी. रंगा ने तो यह सुझाव भी दिया कि किसान सभा को कांग्रेस से सबंध तोड़ लेने चाहिए और एक स्वतंत्र आंदोलन शुरू कर देना चाहिए। लेकिन किसी तरह पी. सुंदरैया ने उन्हें ऐसा करने से रोक दिया और इसी तरह के

वातावरण में मार्च 1940 में मौलाना आज़ाद के नेतृत्व में रामगढ़ का अधिवेशन हुआ। मौलाना ने कहा :

> "भारत नाज़ीवाद और फासीवाद की सम्भावनाओं को सहन नहीं कर सकता, परंतु वह इससे भी ज़्यादा ब्रिटिश साम्राज्यवाद से उकता गया है"

रामगढ़ कांग्रेस ने लोगों का आह्वान किया कि वे गांधीजी के नेतृत्व में शुरू होने वाले सत्याग्रह में भाग लेने के लिए स्वयं को तैयार करें। लेकिन समाजवादी, साम्यवादी, किसान सभा और फ़ारवर्ड ब्लाक से संबंधित लोग इस प्रस्ताव से सहमत नहीं थे। उन्होंने रामगढ़ में एक समझौता-विरोधी सम्मेलन बुलाया। और सुभाषचंद्र बोस ने लोगों से आग्रह किया कि वे साम्राज्यवाद से समझौते का विरोध करें और कार्रवाई के लिए तैयार रहें। अगस्त 1940 में वाइसरॉय ने एक प्रस्ताव रखा जिसमें निम्न बातें शामिल थीं :

- गवर्नर जनरल की परिषद् का विस्तार जिसमें भारतीयों का प्रतिनिधित्व हो।
- युद्ध सलाहकार परिषद की स्थापना।

इस प्रस्ताव में उसने मुस्लिम लीग और अन्य अल्पसंख्यकों से वादा किया कि अंग्रेज़ सरकार भारत में ऐसे संविधान या सरकार पर कभी भी सहमत नहीं होगी जिसे उनका समर्थन प्राप्त न हो। (यहां हमें याद रखना चाहिए कि 1940 के अपने लाहौर अधिवेशन में मुस्लिम लीग पाकिस्तान की मांग रख चुकी थी) कांग्रेस ने इस प्रस्ताव को अस्वीकार कर दिया क्योंकि :

1 इसमें राष्ट्रीय सरकार के लिए कोई सुझाव नहीं था,
2 इसमें मुस्लिम लीग जैसी कांग्रेस-विरोधी ताकतों को बढ़ावा दिया गया था।

सरकार योजना-बद्ध तरीकों से निवारक नज़रबंदी के तहत कांग्रेसी कार्यकर्ताओं को गिरफ़्तार कर रही थी—विशेष रूप से उन्हें जो समाजवादी या वामपंथी रुझान वाले थे। सभी स्थानीय नेताओं पर निगरानी रखी जा रही थी। जब कि बहुत से मज़दूर नेताओं और युवकों को गिरफ़्तार कर लिया गया था।

जब गांधीजी को पक्का भरोसा हो गया कि अंग्रेज़ भारत में अपनी नीति में कोई सुधार नहीं करेंगे (गांधीजी ने सितम्बर 1940 में शिमला में वाइसरॉय के साथ लम्बी-लम्बी बैठकें कीं) तो उन्होंने व्यक्तिगत सत्याग्रह शुरू करने का फैसला किया। आंदोलन को व्यक्तिगत भागीदारी तक सीमित रखने का कारण यह था कि गांधीजी और कांग्रेस दोनों में से कोई भी यह नहीं चाहता था कि युद्ध के प्रयासों में बाधा डाली जाए, जबकि जन आंदोलन में ऐसा होना सम्भव नहीं था। यहां तक कि व्यक्तिगत सत्याग्रह का लक्ष्य भी सीमित था, यानी इस ब्रिटिश दावे को झुठलाना कि भारत पूरे मन से युद्ध की कार्रवाई में साथ दे रहा है।

17 अक्टूबर 1940 को आचार्य विनोबा भावे ने वर्धा के निकट एक गांव पवनार में युद्ध विरोधी भाषण देकर इस सत्याग्रह का उद्घाटन किया। इस काम के लिए गांधीजी ने भावे को निजी तौर पर चुना था। उनके दो अन्य नामज़द लोग वल्लभभाई और नेहरू सत्याग्रह शुरू करने से पहले ही गिरफ़्तार कर लिए गए। नवम्बर 1940 और फरवरी 1941 के मध्य बहुत से प्रमुख कांग्रेसजन जेल गए, लेकिन भागीदारी की सीमित प्रकृति और गांधी जी द्वारा कांग्रेसियों पर लगाए गए प्रतिबंधों के कारण यह आंदोलन अधिक कुछ हासिल नहीं कर सका। कुछ मामलों में कांग्रेसी भी बहुत ज़्यादा उत्सुक नहीं थे। उदाहरण के लिए बिहार में, सत्याग्रह के लिए चुने गए बहुत से कांग्रेसी अपने उन पदों को छोड़ने के लिए तैयार नहीं थे जो वे नगरपालिकाओं में हासिल किए हुए थे। उन्होंने या तो गिरफ़्तारी देने से स्पष्ट इंकार कर दिया या फिर " गिरफ़्तारी देने के मामले में बहुत सख्ती दिखाई (देखिए स्टीपन हैनिनगम की पुस्तक ("**पीजेंटस मूवमेंट इन कॉलोनिअल इंडिया**) दिसम्बर 1941 में कांग्रेस कार्यसमिति ने आंदोलन को स्थगित करने का फैसला किया। इस समय तक युद्ध ने एक नया मोड़ ले लिया था। ब्रिटेन की हार पर हार हो रही थी और जापानी फौजें दक्षिण-पूर्व एशिया को रौंद चुकी थीं। सोवियत संघ पर नाज़ियों का हमला हो चुका था और ब्रिटेन पर सोवियत संघ, अमरीका तथा चीन यह दवाब डाल रहे थे कि वह अपनी भारतीय नीति पर पुनर्विचार करें। सरकार ने अनेक राजनीतिक बंदियों को रिहा कर दिया। जापान के हाथों रंगून के पतन के बाद अंग्रेज़ सरकार ने क्रिप्स कमीशन भारत भेजने का निर्णय किया।

**बोध प्रश्न 1**

1 युद्ध के प्रति भारतीयों के दृष्टिकोणों का लगभग दस पंक्तियों में वर्णन कीजिए।

..........................................................................................................

..........................................................................................................

..........................................................................................................

..........................................................................................................

..........................................................................................................

..........................................................................................................

..........................................................................................................

..........................................................................................................

..........................................................................................................

..........................................................................................................

2 निम्नलिखित में से कौन सा कथन सही ( ✓ ) या गलत ( × ) है।

i) गांधीजी को अफसोस था कि एक मात्र वे ही ऐसे हैं जो युद्ध के दौरान ब्रिटिश को बिना शर्त सहयोग देना चाहते थे। ☐

ii) गांधी जी युद्ध प्रयासों के लिए ब्रिटेन को सशर्त समर्थन देने के लिए राज़ी हो गए। ☐

iii) भारत रक्षा कानून कांग्रेस के हितों की रक्षा के लिए थे। ☐

iv) कांग्रेस फासीवाद और नाज़ीवाद की विरोधी थी। ☐

v) कांग्रेस ने अगस्त प्रस्ताव स्वीकार कर लिया। ☐

vi) व्यक्तिगत सत्याग्रह 1947 तक जारी रहा। ☐

3 खाली स्थान भरिये।

i) समाजवादी युद्ध के प्रयासों के (पक्ष/विरोध)..............में थे।

ii) गांधीजी ने कहा कि कांग्रेस के समर्थन का मतलब होगा (जर्मनी और जापान, इंग्लैंड और फ्रांस).............. का मनोबल (बढ़ जाएगा/घट जाएगा) ...........।

iii) गांधी जी (महसूस करते थे/चाहते थे) ............ कि वातावरण (सशस्त्र संघर्ष/नागरिक अवज्ञा) ................. के अनुकूल नहीं है।

iv) सुभाषचंद्र बोस (रामगढ़/रामपुर) ............... में कांग्रेस के प्रस्ताव पर (प्रसन्न/अप्रसन्न) ...................थे।

v) आचार्य विनोबा भावे ने व्यक्तिगत सत्याग्रह (समाप्त/शुरू) .................. किया।

## 34.3 भारत छोड़ो आंदोलन की ओर

युद्ध की प्रतिकूल परिस्थितियों और अंतर्राष्ट्रीय दवाबों ने अंग्रेज़ों को भारत के साथ एक सौहार्दपूर्ण समझौता करने और युद्ध में उसका संक्रिय सहयोग प्राप्त करने के लिए विवश कर दिया। सर स्ट्रैफोर्ड क्रिप्स कुछ प्रस्तावों के साथ भारत आये और उन्होंने विभिन्न राजनीतिक पार्टियों के नेताओं के साथ बातचीत की।

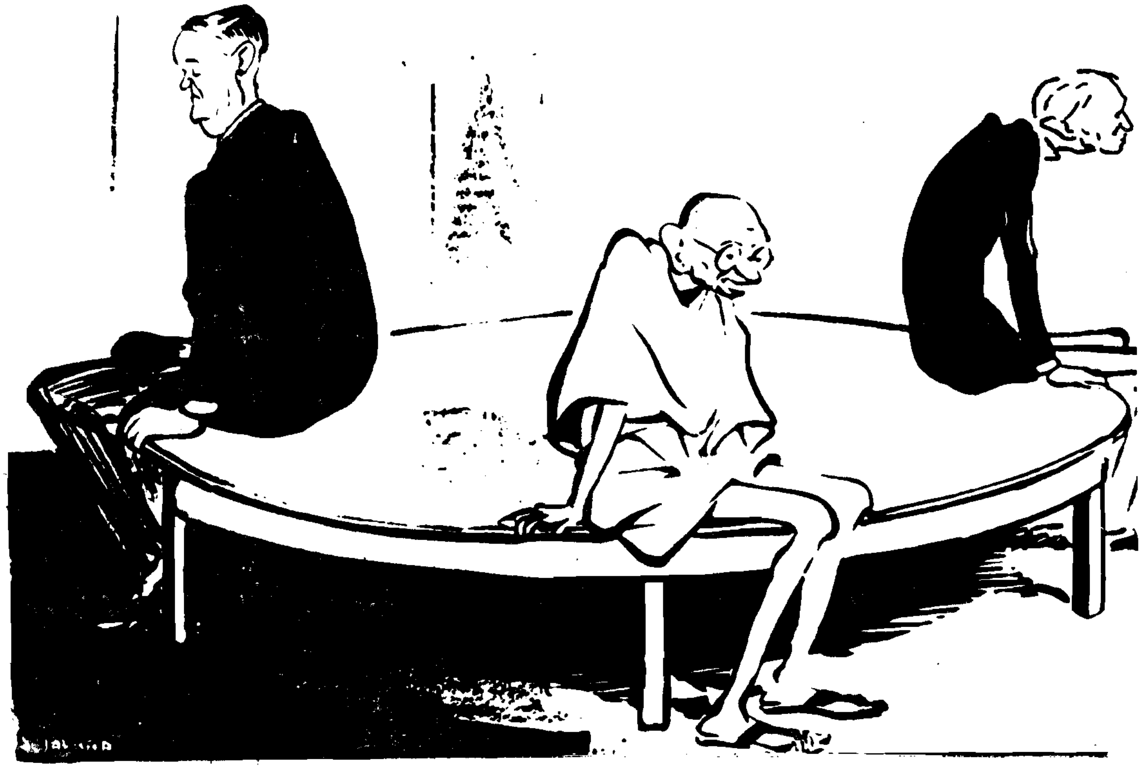

2. समझौते की बातचीत पर शंकर का एक कार्टून

## 34.3.1 क्रिप्स के प्रस्ताव

क्रिप्स के कुछ प्रस्ताव जो घोषणा पत्र के प्रारूप में शामिल थे, इस प्रकार थे :

- युद्ध समाप्त होने के तुरंत बाद भारत को, पृथक होने के अधिकार सहित, डॉमिनियन स्टेटस दे दिया जाएगा।
- युद्ध समाप्त होने के तुरंत बाद एक संविधान निर्मात्री संस्था का गठन किया जाएगा। इसमें ब्रिटिश भारत और देशी रियासतों के प्रतिनिधि होंगे।
- इस तरह युद्धोपरांत बनाया गया संविधान अंग्रेज़ सरकार द्वारा इस शर्त के साथ स्वीकार कर लिया जाएगा कि कोई भी भारतीय प्रांत, यदि वह चाहे तो, भारतीय संघ से बाहर रह सकेगा और इस मसले पर ब्रिटेन से सीधी बातचीत कर सकेगा।
- रक्षा और सैनिक कार्रवाइयों का वास्तविक नियंत्रण अंग्रेज़ सरकार के पास रहेगा।

इस घोषणा पत्र को तकरीबन सभी भारतीय पार्टियों ने अस्वीकार कर दिया। कांग्रेस भविष्य के वादों पर भरोसा नहीं करना चाहती थी। वह पूर्ण अधिकारों सहित उत्तरदायी सरकार और देश की रक्षा पर नियंत्रण भी चाहती थी। गांधीजी ने प्रस्तावों की उपमा एक दिवालिया बैंक के नाम काटे गए उत्तर दिनांकित चेक से दी। मुस्लिम लीग ने मुसलमानों के लिए एक अलग राज्य बनाये जाने के संबंध में अंग्रेज़ों द्वारा एक स्पष्ट घोषणा किये जाने की मांग की, और साथ ही अंतरिम सरकार में कांग्रेस के साथ मुस्लिम लीग के लिए 50 : 50 के आधार पर सीटों की मांग भी रखी। दलित वर्गों, सिक्खों, भारतीय, ईसाइयों और एंग्लो इंडियनों ने अपने-अपने समुदायों के लिए रक्षा उपायों की मांगें रखीं। इस तरह, क्रिप्स कमीशन भारतीयों को संतुष्ट करने में असफल रहा। ब्रिटेन ने यह सारा प्रयोग वास्तव में कोई ठोस काम करने के बजाय दुनिया को यह दिखाने के लिए ज़्यादा किया था कि वह भारत की भावनाओं की चिंता करता है।

## 34.3.2 भारत छोड़ो आंदोलन की पृष्ठभूमि

कांग्रेस को अपने भावी काम की दिशा जिन स्थितियों के चलते तय करनी पड़ी वे थे :

- क्रिप्स मिशन की असफलता,

- जापानी सेना का भारत की सीमाओं तक आ पहुंचना,
- बढ़ती हुई कीमतें और खाद्य आपूर्ति की कमी, और
- कांग्रेस के अंदर अलग-अलग मत।

कांग्रेस कार्यकारिणी समिति ने एक प्रस्ताव पारित किया जिसमें भारत पर हमला करने वाली किसी भी विदेशी ताकत के साथ पूर्ण अहिंसक असहयोग करने का आह्वान किया गया (मई 1942)। राजगोपालाचारी और मद्रास के कुछ अन्य कांग्रेसियों ने एक प्रस्ताव पारित करवाने का प्रयास किया जिसमें कहा गया था कि अगर मद्रास सरकार उन्हें आमंत्रित करती है तो कांग्रेस को वहां मंत्रिमंडल का गठन करना चाहिए। इस प्रस्ताव को अस्वीकृत कर दिया गया, परंतु इस प्रस्ताव ने यह ज़ाहिर कर दिया कि कुछ ऐसे कांग्रेसी थे जो सरकार के साथ सहयोग करना चाहते थे। राजगोपालाचारी एक स्वतंत्र रास्ता अपना रहे थे। वे पाकिस्तान की मांग का समर्थन कर चुके थे और कांग्रेस से आग्रह कर रहे थे कि वह युद्ध में सहयोग करें।

मई 1942 में गांधी जी ने बंबई में कांग्रेसियों की एक सभा को सम्बोधित करते हुए कहा कि उन्होंने तय कर लिया है कि वे आदेशात्मक स्वर में अंग्रेज़ों से भारत छोड़ने के लिए कहेंगे। अगर अंग्रेज़ नहीं मानेंगे तो वे नागरिक अवज्ञा आंदोलन शुरू कर देंगे। इस आंदोलन को शुरू करने के बारे में बहुत से कांग्रेसी नेताओं के मन में संकोच था। नेहरू, विशेष रूप से दुविधा में थे कि साम्राज्यवादी ब्रिटेन से संघष करें या फासीवाद के विरुद्ध सघर्ष में सोवियत संघ और चीन का साथ न दें। आखिरकार नेहरू ने आंदोलन शुरू करने के पक्ष में फैसला किया। कांग्रेस ने यह स्पष्ट कर दिया कि भारत छोड़ो मांग का मतलब यह नहीं कि ब्रिटिश और मित्र राष्ट्रों की फौजें तुरंत ही भारत से चली जाएं। बल्कि इसका तात्पर्य था कि अंग्रेज़ों द्वारा भारत की स्वतंत्रता को तत्काल स्वीकृति प्रदान की जाए। 14 जुलाई को कांग्रेस कार्यकारिणी समिति ने "भारत छोड़ो" प्रस्ताव स्वीकार किया जिसकी पुष्टि अगस्त में बम्बई में अखिल भारतीय कांग्रेस कमेटी की बैठक में की जानी थी।

8 अगस्त, 1942 को अखिल भारतीय कांग्रेस कमेटी ने "भारत छोड़ो प्रस्ताव" पारित कर दिया। राष्ट्रीय और अंतर्राष्ट्रीय स्थितियों पर विस्तार से चर्चा करने के बाद, कांग्रेस ने भारत के लोगों से अपील की :

3. भारत छोड़ो आंदो[illegible]

> उन्हें याद रखना चाहिए कि अहिंसा इस आंदोलन का आधार है। एक समय ऐसा आ सकता है कि जब लोगों के लिए निर्देश जारी करना, या निर्देश के लिए जनता तक पहुंचना सम्भव न हो, और जब कोई कांग्रेस कमेटी काम न कर सके। अगर ऐसा हो तो प्रत्येक स्त्री और पुरुष को जो इस आंदोलन में भाग ले रहा है, जारी किए गये सामान्य निर्देशों की चौहद्दी में रहकर स्वयं अपने अनुसार काम करना चाहिए।

गांधी जी ने अंग्रेज़ों से यहां से चले जाने और "भारत को भगवान भरोसे छोड़ने" के लिए कहा। उन्होंने सभी वर्गों को प्रोत्साहित किया कि वे आंदोलन में भाग लें, उन्होंने ज़ोर देकर कहा "प्रत्येक भारतीय को जो आज़ादी चाहता है और इसके लिए प्रयत्न करना चाहता है, अपना अगुआ स्वयं बनना चाहिए।" उनका संदेश था "करो या मरो" इस तरह "भारत छोड़ो आंदोलन" शुरू हो गया।

## 34.4 आंदोलन

कांग्रेस ने अंग्रेज़ों को निकाल बाहर करने का आह्वान तो किया लेकिन इसने पालन के लिए लोगों को कोई निश्चित कार्यक्रम नहीं दिया। सरकार इस आंदोलन को कुचलने की तैयारियां कर रही थी। 9 अगस्त की सुबह गांधी जी सहित कांग्रेस के सभी प्रमुख नेता गिरफ़्तार कर लिए गए। नेताओं की गिरफ़्तारी ने लोगों को धक्का पहुंचाया और वे विरोध के लिए सड़कों पर निकले आये। के.जी. मशरूवाला ने, जो "हरिजन" के सम्पादक हो गये थे, विरोध की सम्भावित रूपरेखा के बारे में अपनी निजी राय प्रकाशित की :

> मेरी राय में, कार्यालायों, बैंकों, अन्न-भंडारों की लूटपाट या आगजनी उचित नहीं है। यातायात संचार व्यवस्था अहिंसक तरीके से और जीवन को खतरे में डाले बिना भंग करना उचित है। हड़तालों का आयोजन करना सर्वश्रेष्ठ है...........तार काटना, पटरी उखाड़ना, छोटे पुलों को नष्ट करना आदि को इस प्रकार के संघर्ष में अनुचित नहीं ठहराया जा सकता, बशर्ते कि जीवन की सुरक्षा की अत्यधिक सावधानी बरती जाए।

मशरूवाला ने कहा, "गांधीजी और कांग्रेस ने, अंग्रेज़ और भारतीय राष्ट्रों के बीच फिर से सद्भाव पैदा होने की सभी उम्मीदें नहीं छोड़ दी हैं, यदि प्रयास राष्ट्रीय इच्छा को प्रकट करने के लिए काफ़ी शक्तिशाली है, तो आत्मसंयम कभी भी हमारे विरुद्ध नहीं जाएगा"

अब हम इस आंदोलन के प्रसार और विभिन्न वर्गों पर इसके प्रभाव की थोड़ी चर्चा करें।

### 34.4.1 आंदोलन का प्रसार

9 अगस्त को अपनी गिरफ़्तारी से पूर्व गांधी जी ने देश के नाम निम्न संदेश दिया था :

> प्रत्येक व्यक्ति इसके लिए स्वतंत्र है कि वह हड़ताल तथा अन्य अहिंसक साधनों से गतिरोध पूरा करने के लिए अहिंसा के अंतर्गत, अपनी आख़िरी हदों तक काम करे। सत्याग्रहियों को जीवन के लिए नहीं बल्कि मृत्यु के लिए बाहर निकलना है। उन्हें मृत्यु का सामना करना है, उसे गले लगाना है। जब प्रत्येक व्यक्ति करेंगे या मरेंगे की भावना के साथ बलिदान के लिए निकलेगा तभी देश जीवित रहेगा।

लेकिन यह संदेश देने के साथ गांधीजी ने एक बार फिर अहिंसा पर बल दिया:

> स्वतंत्रता के प्रत्येक अहिंसक सेनानी को "करेंगे या मरेंगे" का नारा एक कागज़ या कपड़े के टुकड़े पर लिखना चाहिए और उसे अपने कपड़ों पर चिपकाना चाहिए ताकि सत्याग्रह के दौरान अगर उसकी मृत्यु हो जाए तो उसे उन दूसरे तत्वों से अलग किया जा सके जो अहिंसा का समर्थन नहीं करते।

गांधीजी और उनके साथ अन्य कांग्रेसी नेताओं की गिरफ़्तारी पर देश के विभिन्न भागों में अभूतपूर्व जन-प्रतिक्रिया हुई। शहरों और कस्बों में हड़तालों, जुलूस और प्रदर्शनों का सिलसिला शुरू हो गया। हालांकि आह्वान कांग्रेसी नेतृत्व का था, परंतु वास्तव में आंदोलन जनता ने शुरू किया। चूंकि राष्ट्रीय, प्रांतीय और स्थानीय स्तर के सभी मान्य नेता

गिरफ़्तार कर लिए गए थे इसलिए इनकी जगह भरने के लिए उनके क्षेत्रों में स्थानीय स्तरों पर युवा और उग्र, विशेषरूप से समाजवादी रुझान वाले छात्र नेता उभर कर आए।

प्रारंभिक चरणों में आंदोलन अहिंसा की सीमाओं में रहा। पर सरकार की दमनकारी नीति ने लोगों को हिंसा के लिए उकसाया। अहिंसक संघर्ष का गांधीजी का संदेश पृष्टभूमि में चला गया और लोगों ने संघर्ष को अपने-अपने तरीके ईजाद क़र लिए। इनमें ये कदम शामिल थे :

- सरकारी इमारतों, पुलिस थानों और डाकघरों पर हमले,
- रेलवे स्टेशनों पर हमले, और रेल की पटरियों को उखाड़ना,
- टेलीग्राफ, टेलीफोन और बिजली के तारों को काटना,
- पुलों को नष्ट करके सड़क यातायात भंग करना, और
- मज़दूरों की हड़ताल आदि।

इनमें से अधिकांश कार्रवाइयां सेना और पुलिस की गतिविधि को राकेने के लिए थीं, जिनका इस्तेमाल सरकार आंदोलन को कुचलने के लिए कर रही थी। कई क्षेत्रों में सरकार का कोई नियंत्रण नहीं रह गया और यहां स्थानीय जनता ने "स्वराज" क़ायम कर दिया। कुछ उदाहरण दिये जा सकते हैं।

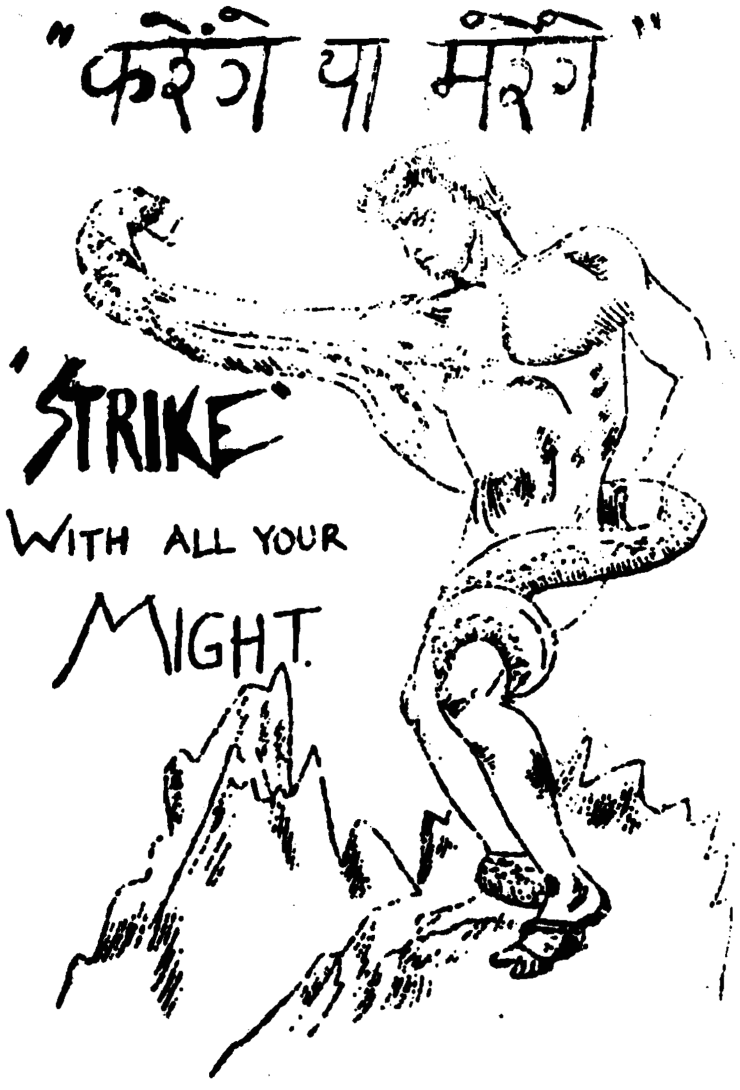


4. भारत छोड़ो आन्दोलन का एक पोस्टर

- महाराष्ट्र में, सतारा में एक समानान्तर सरकार स्थापित कर दी गयी जो लम्बे समय तक चलती रही।
- बंगाल में, तामलुक जातीय सरकार मिदनापुर ज़िले में काफ़ी समय तक काम करती रही। इस राष्ट्रीय सरकार के पास क़ानून और व्यवस्था, स्वास्थ्य, शिक्षा, कृषि आदि विभागों के साथ-साथ अपनी डाक व्यवस्था तथा विवाचन (Arbitration) अदालतें भी थीं।
- उड़ीसा में तलचर (Talacher) में लोगों ने स्वराज स्थापित किया।
- पूर्वी उत्तर प्रदेश और बिहार के कई भागों में (आज़मगढ़, बलिया, गाज़ीपुर, मुंगेर, मुज़फ्फरपुर इत्यादि) लोगों ने पुलिस थानों पर कब्ज़ा कर लिया और सरकारी सत्ता को उखाड़ फेंका।

प्रारम्भ में यह आंदोलन शहरी इलाकों में ही प्रभावी था, परंतु शीघ्र ही इसका प्रसार ग्रामीण क्षेत्रों में भी हो गया जहां विद्रोह का झंडा लम्बे समय तक ऊंचा उठा रहा। बम्बई, आंध्र, यू.पी., बिहार, गुजरात, उड़ीसा, असम, बंगाल, कर्नाटक आदि में आंदोलन को जनता का व्यापक समर्थन मिला। लेकिन पंजाब, सिंध, उत्तर पश्चिम सीमाप्रांत में आंदोलन का प्रभाव कम था।

### 34.4.2 प्रतिक्रियाएं और प्रवृत्तियां

"भारत छोड़ो" और "करो या मरो" उस समय के प्रमुख नारे थे, परंतु आंदोलन के प्रति जनता ने कई रूपों में अपनी सक्रियता दिखायी, श्रमिक वर्ग ने कई औद्योगिक केन्द्रों में हड़तालें कीं। इन में से कुछ प्रमुख केन्द्र थे—बम्बई, कानपुर, अहमदाबाद, जमशेदपुर और पूना। दिल्ली में 9 अगस्त की हड़ताल मज़दूरों के सड़क पर निकल आने का परिणाम थी। लेकिन अहमदाबाद को छोड़कर, जहां हड़ताल तीन महीने चली, अन्य जगहों पर हड़ताल ज़्यादा दिन नहीं चली।

बिहार में व्यापक जन कार्रवाइयों के परिणामस्वरूप पटना शेष इलाके से कट गया, और उत्तरी क्षेत्र में, बेगूसराय के उपमंडल (सब डिवीज़न) अधिकारी ने रिपोर्ट दी:

> ....... स्कूली विद्यार्थियों ने आंदोलन शुरू किया, कांग्रेस के सभी वर्गों के कार्यकर्त्ता उनके साथ शामिल हो गए। कांग्रेस के नरम वर्ग ने आंदोलन को नियंत्रण में रखने का प्रयास किया, लेकिन जब उन्होंने ग्रामीण जनता को आंदोलन में शामिल किया त. यह एक आर्थिक प्रश्न बन गया, विशाल सम्पत्तियों, ख़ासकर रेलवे स्टेशनों पर पड़े अनाज ने उन्हें आकर्षित किया......... गरीब मज़दूरों ने लूट में आगे बढ़कर हिस्सा लिया। दूरस्थ स्टेशनों पर व्यापारी वर्ग कांग्रेस की दया पर निर्भर था।........नरम वर्ग ने यह सब पसंद नहीं किया, परंतु उस समय उनका कोई नियंत्रण नहीं था।

इससे आंदोलन में ग्रामीण जनता की भागीदारी और गांधीवादी नेताओं (नरम वर्ग के रूप में वर्णित) की, आंदोलन को निर्देशित करने की मजबूरियों का पता चलता है। इसी तरह के हालात पूर्वी उत्तर प्रदेश में भी थे। आज़मगढ़ ज़िले के मधुबन थाने में जो कुछ हुआ, उसके आर.एच. निबलेट द्वारा रखे गए लेखे-जोखे से इस क्षेत्र में जनता के विद्रोह की भयानकता का आभास होता है। निबलेट ने उल्लेख किया है कि किस प्रकार योजनाबद्ध तरीके से पुलिस स्टेशन पर तीन ओर से हमला किया गया। एक ओर से चलने वाले लोग जल्दी पहुंच गए तो उन्होंने दूसरी ओर से आने वाले लोगों की एक निश्चित फ़ासले पर खड़े होकर प्रतीक्षा की। पुलिस ने हमले को रोकने के लिए 119 चक्र गोलियां चलायीं। हमला करीब दो घंटे तक चला।

उड़ीसा में तलचर (Talacher) कस्बे की ओर बढ़ते हुए किसान गुरिल्लों को रोकने के लिए हवाई जहाज़ों का प्रयोग किया गया। महाराष्ट्र में सतारा क्षेत्र में लम्बी मुठभेड़ें चलीं।

व्यापक जन कार्रवाई के अलावा आंदोलन में एक और प्रवृत्ति उभर कर आयी। प्रवृत्ति थी भूमिगत, क्रांतिकारी कार्रवाई की। 9 नवम्बर 1942 को जयप्रकाश नारायण और रामानंद मिश्रा हज़ारीबाग जेल से भाग निकले। उन्होंने नेपाल सीमा से लगे क्षेत्रों से भूमिगत आंदोलन का संचालन किया।

# क्रान्तिकारी

| वर्ष १ ले<br>अंक ६-७ | संस्थापक—अच्युत पटवर्धन<br>एस्. एम्. जोशी | ऑक्टो.-नोव्हें.<br>१९४३ |
|---|---|---|

## —'मला संपूर्ण स्वातंत्र्य पाहिजे'—

"मंत्रिमंडळ किंवा अशाच प्रकारच्या कोणत्याहि बाबतींत व्हाइसरॉयशी सौदा करण्यासाठी मी आता पुकारीत नाही हें आपण लक्षांत ठेवावें. संपूर्ण स्वातंत्र्या व्यतिरिक्त दुसऱ्या कोणत्याहि गोष्टीनें माझें समाधान होणार नाही. मिठावरील कराची माफी, दारुबंदी इत्यादि प्रकारच्या अनेक योजना कदाचित् व्हाइसरॉय पुढे करतील. पण, मी स्पष्ट सांगणार आहे, 'मला स्वातंत्र्य पाहिजे, संपूर्ण स्वातंत्र्य पाहिजे.'....मी आपणास एक लहानसा मंत्र देणार आहे. तो प्रत्येकानें आपल्या हृदयावर कोरून ठेवावा. हा मंत्र म्हणजे: 'करूं किंवा मरूं' आपण हिंदुस्थानला स्वतंत्र करूं किंवा त्या प्रयत्नांत स्वतःचें बलिदान देऊं. पारतंत्र्यांत जिवंत मरण्यापेक्षां स्वातंत्र्यासाठी आत्माहुति देण्याच्या ठाम निर्धारानें प्रत्येक स्त्री व पुरुषानें या लढ्यांत उडी घेतली पाहिजे."

—महात्मा गांधी

[ता. ८ ऑगस्ट १९४२ रोजी अ. भा. समितिपुढें केलेलें भाषण]

करेंगे या मरेंगे।

## करेंगे या मरेंगे

नं. ४
१-९-४२

### 'कार्यक्रम पाहिजे ना ? हा घ्या कार्यक्रम'

संपादकः— आपला जिवलग.

विद्यार्थ्यांनो, कार्यक्रम पाहिजे ना ? परकीय सत्तेला गांधीजींनी दिलेला 'Quit India' 'हिंदुस्थानांतून गाशा गुंडाळ' इशारा नीट मनन करा; म्हणजे आपल्याला कार्यक्रम सुचेल. उच्चार–आचारामध्यें मनःपूर्वक अहिंसा पाळा, म्हणजे जय हा तुमचाच ठरलेला आहे. ही दृष्टी आपलीशी करा. म्हणजे कार्यक्रम आपले आपल्यालाच सुचतील. मी कांहीं कार्यक्रम सहज दिग्दर्शनार्थ येथें सुचवितो.

१ कॉंग्रेस व महात्माजी, किंवा दरिद्रनारायण व महात्माजी यांच्या मधील दळणवळण या परकीय सरकारानें तोडून टाकलें आहे. तेव्हां परकीय सत्तेचें दळणवळण हें आपण पूर्णपणें तोडून टाकलें पाहिजे. मात्र त्यांत कोणाच्या जिवाला धक्का पोहोचतां कामा नये हें ध्यानांत ठेवा.

२ सरकारी नोकरांना त्यांच्या त्यांच्या घरीं जाऊन त्यांना राष्ट्राच्या व महात्माजींच्या हाकेला 'ओ' देण्याम विनवा. सरकारी नोकरांच्या मुलांनी त्यांचे वडील राजीनामा देईपर्यंत घरीं उपवास–सत्याग्रह करून आपापल्या वडलांना राष्ट्रीय महापापा पासून वाचवावें.

३ बुलेटिन लिहिणें, छापणें, वाटणें वगैरे कार्यक्रम कोणीही विद्यार्थी करूं शकेल. ही कामे उघड झालीं पाहिजेत

४ रोज कोणत्या तरी रस्त्यांत मीटिंग भरून, तेथें 'करेंगे या मरेंगे' हें नवीन सूत्र घरोघर पोहोंचवा; व आपल्या छातीवर ते नेहमीं धारण करा. स्वतंत्र होण्याचा किंवा होण्याच्या प्रयत्नांत मरण्याचा आपला निर्धार झालेला जाहीर करण्यासाठीं हे सूत्र अत्यंत उपयुक्त आहे.

५ बेकायदा मीठ येथें आणून बेळगांव मध्यें आणवून ते रोज विकण्याचा व विकत घेण्याचा कायदेभंग करा.

६ आपल्या देशांतील परसत्ता नष्ट करावयाची आहे. हे उद्दिष्ट आपल्या डोळ्यापुढें ठेवून आपल्याला इतर जे कार्यक्रम सुचतील ते सर्व अमलांत आणावेत.

एवढे कार्यक्रम अमलांत आणा. मग पुनः आणिक सांगेन. पण एवढें ध्यानांत ठेवा कीं, तुमच्या कोणत्याही कार्यक्रमांत 'गुप्तता' ठेवूं नका.

**स्वतंत्र भारत ईश्वरा शिवाय कोणासही भिणार नाहीं.**

## ऑल इंडिया कॉंग्रेस कमिटी

खाली दिलेली स्वातंत्र्यदिनाची प्रतिज्ञा ता. २६ जानेवारी १९४३ रोजीं सर्वत्र सार्वजनिक वा खाजगी रीत्या उच्चारण्यांत यावी.

# प्रतिज्ञा

"जगांतील कोणत्याहि जनतेप्रमाणें हिंदी जनतेसहि स्वातंत्र्याचा जन्मसिद्ध हक्क आहे, असा आमचा विश्वास आहे. त्याशिवाय आपल्या श्रमाचें फळ उपभोगण्याची, जीवनास आवश्यक अशा गोष्टी मिळण्याची अगर सर्वांगीण प्रगति होण्याची शक्यता किंमत नाही. आमची अशीहि पक्की समजूत आहे कीं, जर एखाद्या राजवटीनें जनतेचे हक्क नष्ट केले व जुलूम सुरू केला तर तिच्यांत क्रांति घडवून आणण्याचा वा ती जुलमी राजवट नष्ट करण्याचा त्या जनतेस हक्क आहे. ब्रिटिश सत्ता हिंदी जनतेचें फक्त स्वातंत्र्यच हिरावून थांबली नाहीं तर जनतेच्या पिळणुकीवरच तिनें आपलें अधिष्ठान ठेवलें आहे. हिंदुस्थानचा आर्थिक, राजकीय, सांस्कृतिक व आत्मिक अधःपात करणें हेंच तिचें धोरण आहे. आम्हांस असें मनापासून वाटतें कीं, ब्रिटिशांचे सर्व संबंध तोडून पूर्ण स्वराज्य मिळवल्याशिवाय तरणोपाय नाहीं.

आपलें स्वातंत्र्य मिळण्याचा हमखास उपाय हिंसात्मक नाहीं हें आम्हांस पक्कें ठाऊक आहे. आतांपर्यंत हिंदुस्थाननें मिळवलेलें सामर्थ्य

## स्वतंत्र महाराष्ट्र

महाराष्ट्र प्रांतिक कॉंग्रेस कमिटीची अधिकृत पत्रिका

क्रमांक २३ क] पुणें — शनिवार तारीख २० माहे फेब्रुवारी सन १९४३ इसवी [कि. ½ आणा

### चोरांच्या उलट्या बोंबा

[illegible]

### ब्रिटिशाच्या हिंसेची यादी पाहिजे का ?

[illegible]

### हे कसले कायदेशीर सरकार ! हे सरकार बेकायदा व राक्षसी आहे

[illegible]

### मागचे कशाला ? आज काल हिंदुस्थानात काय चालले आहे ?

[illegible]

5. भारत छोड़ो आन्दोलन पर महाराष्ट्र में जारी किये गये पैम्फलेट

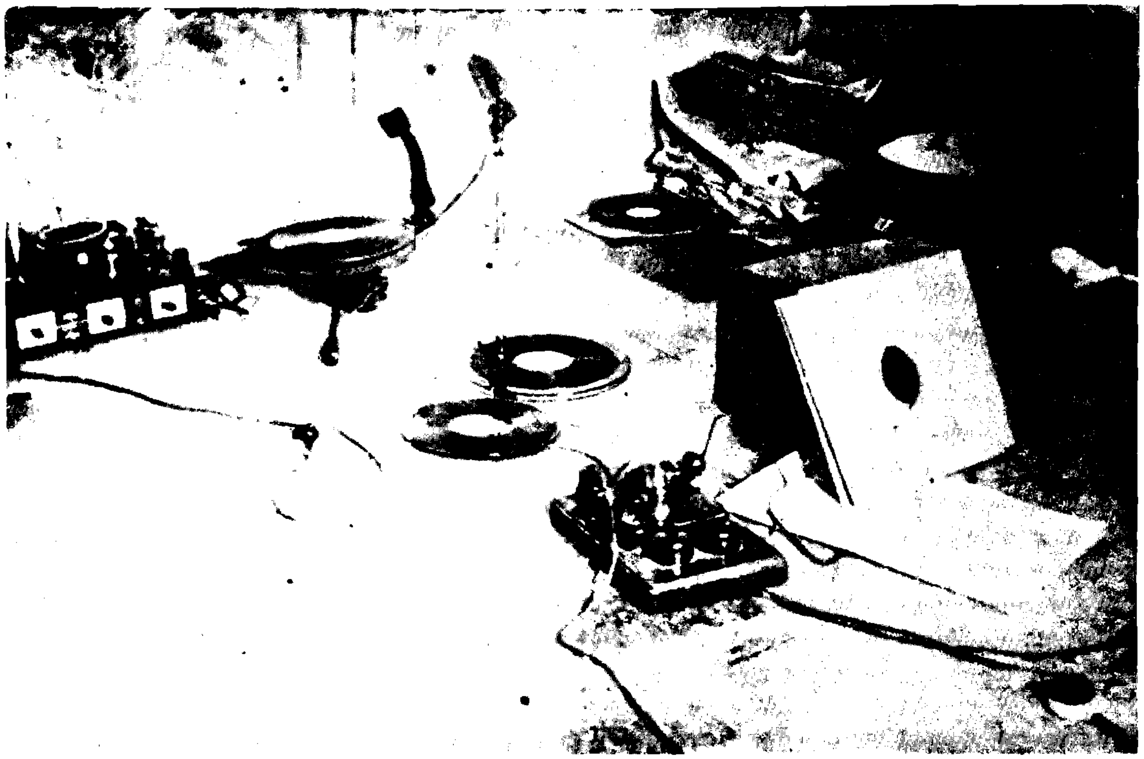

6. कांग्रेस रेडियो के यंत्र

इसी प्रकार बंबई में, अरुणा आसिफ़ अली जैसी नेता के नेतृत्व में समाजवादी नेताओं ने अपनी भूमिगत गतिविधियां जारी रखीं। भूमिगत आंदोलन की सबसे साहसपूर्ण कार्रवाई कांग्रेस रेडियो की स्थापना थी, जिसकी उद्घोषिका उषा मेहता थी। यह रेडियो लम्बे समय तक सक्रिय रहा। सुभाषचंद्र बोस ने बर्लिन रेडियो पर बोलते हुए (31 अगस्त, 1942) इस आंदोलन को "अहिंसक गुरिल्ला युद्ध" कहा। उन्होंने सुझाव दिया कि :

> इस अहिंसक गुरिल्ला अभियान का लक्ष्य दुहरा होना चाहिए। पहला, भारत में युद्ध उत्पादनों को नष्ट करना, और दूसरा, देश में अंग्रेज़ प्रशासन को ठप्प करना। इन लक्ष्यों को ध्यान में रखते हुए भारत के सभी वर्गों को इस संघर्ष में भाग लेना चाहिए।

आंदोलन में छात्रों ने व्यापक रूप से भाग लिया। वे देहात में फैल गए और वहाँ ग्रामीणों को दिशा निर्देश देने में महत्वपूर्ण भूमिका निभायी। आंदोलन को व्यापारी-वर्ग का ज़्यादा समर्थन नहीं मिला। वास्तव में अधिकांश पूंजीपतियों और व्यापारियों ने युद्ध के दौरान भारी मुनाफ़ा कमाया था। कुछ मामलों में, पूंजीपतियों ने सरकार से (फिक्की-फेडरेशन ऑफ़ इंडियन चैम्बर्स ऑफ़ कामर्स एंड इंडस्ट्री के माध्यम से) गांधीजी और अन्य नेताओं को रिहा करने का आग्रह किया। लेकिन उनका तर्क था कि अकेले गांधीजी ही सरकारी सम्पत्तियों पर हो रहे हमलों को रोक सकते हैं। वे चिंतित थे कि इस तरह के हमले अगर जारी रहे तो वे निजी संपत्ति पर हमले के रूप में बदल सकते हैं। मुस्लिम लीग ने स्वयं को इस आंदोलन से दूर रखा। इस दौरान साम्प्रदायिक दंगों की घटनाओं के समाचार भी नहीं मिले। हिंदू महासभा ने आंदोलन की आलोचना की। भारतीय कम्युनिस्ट पार्टी ने अपनी "जन युद्ध की नीति" के कारण आंदोलन का समर्थन नहीं किया। राजा और ज़मींदार युद्ध प्रयासों का समर्थन कर रहे थे। आंदोलन के साथ उनकी कोई सहानुभूति नहीं थी। राजगोपालाचारी जैसे भी कुछ कांग्रेसी नेता थे जिन्होंने आंदोलन में भाग नहीं लिया और जिन्होंने युद्ध प्रयासों का समर्थन किया।

इस सबके बावजूद आंदोलन की तीव्रता निम्न आंकड़ों से मापी जा सकती है :

- यू.पी. में एक सरकारी रिपोर्ट के अनुसार 104 रेलवे स्टेशनों पर हमला किया गया और क्षति पहुँचायी गयी। लगभग 100 घटनाएं रेलपटरियों की तोड़-फोड़ की हुईं। टेलीफोन और टेलीग्राफ तार काटने के 425 मामले हुए। डाकघरों को क्षति पहुंचाने की 119 घटनाएं हुईं।

*7. बर्लिन रेडियो पर बोलते हुए सुभाषचन्द्र बोस*

- मिदनापुर में 43 सरकारी इमारतों को आग लगायी गई।
- बिहार में 72 पुलिस थानों पर हमले हुए, 332 रेलवे स्टेशनों, 945 डाकघरों को क्षति पहुंचायी गयी।
- देश भर में 664 बम विस्फोट हुए।

इस व्यापक जन-लहर की सरकार पर क्या प्रतिक्रिया हुई? इस सवाल की चर्चा हम आगामी भाग में करेंगे।

### 34.4.3 दमन

व्यापक जन आंदोलन को कुचलने के लिए सरकार ने अपनी सारी ताकत लगा दी थी। गिरफ़्तारियों, नज़रबंदियां, पुलिस गोली चालन, कांग्रेस कार्यालयों को आग लगाना, आदि वे तरीके थे जो सरकार ने अपनाये।

- 1942 के अंत तक अकेले यू.पी. में 16,089 लोग गिरफ़्तार किये गए। सारे भारत में 1943 के अंत तक गिरफ़्तारियों का सरकारी आंकड़ा 91,836 था।
- सितम्बर 1942 तक पुलिस गोली चालन में मारे गए लोगों की संख्या 658 थी, और 1943 तक यह संख्या 1060 हो गई थी। लेकिन ये सरकारी आंकड़े थे। वस्तुतः इससे कहीं अधिक लोग मरे थे और बहुत से घायल हुए थे।
- अकेले मिदनापुर में सरकारी बलों ने 31 कांग्रेस शिविरों और 164 निजी घरों को आग लगायी थी। बलात्कार के 74 मामले हुए। इनमें से 46 पुलिस द्वारा एक ही दिन में एक ही गांव में 9 जनवरी 1943 को किये गये थे।

- सरकार ने 5 स्थानों पर लोगों पर गोली चलाने के लिए हवाई जहाज़ों के प्रयोग की बात स्वीकार की। ये स्थान थे पटना के निकट गिरिक (Giriak) भागलपुर ज़िला, नाडिया ज़िले में रामाघाट, मुंगेर जिला, तलचर (Talacher) शहर के निकट।
- लाठीचार्ज, कोड़े मारने, बंदी बनाने की अनगिनत घटनाएं हुईं।
- आंदोलन प्रभावित क्षेत्रों के निवासियों से सामूहिक जुर्माना वसूल किया गया। उदाहरण के लिए यू.पी. में इस तरह के जुर्माने की कुल धनराशि 28,32,000 रुपए थी, और फ़रवरी 1943 तक 25,00,000 रुपए वसूल कर लिये गए थे। इसी प्रकार उत्तरी बिहार में फ़रवरी 1943 तक रु. 34,15,529 का जुर्माना किया जा चुका था, जिसमें से रु० 28,35,025 वसूल कर लिये गये थे।

इस प्रकार के दमनकारी तरीकों से ही अंग्रेज़ ख़ुद को फिर से जमाने में सफल हो गये। युद्ध की स्थिति ने दो तरह से उनकी मदद की :

i) उनके हाथ में विशाल सैन्य शक्ति थी, जो भारत में जापानी हमले के मुक़ाबले के लिए रखी गई थी, परंतु इस शक्ति का उपयोग आंदोलन को कुचलने में किया गया।

ii) युद्धकालीन सेंसर स्थिति का लाभ उठाकर उन्होंने आंदोलन को निर्मम ढंग से दबा दिया। उन्हें अपने इन दमकारी तरीकों के लिए न तो किसी आंतरिक (घरेलू)आलोचना की चिंता करनी थी, और न विश्व जनमत की। मित्र राष्ट्र, धुरी राष्ट्रों के साथ युद्ध में उलझे थे, उनके पास यह चिंता करने का समय नहीं था कि अंग्रेज़ भारत में क्या कर रहे थे।

8. देश द्रोहियों का बहिष्कार करने की मांग करता हुआ एक पैम्फलेट

भारत छोड़ो आंदोलन असफल हो गया। परंतु इसने अंग्रेज़ राज से छुटकारा पाने के लिए जनता के दृढ़ इरादे को बख़ूबी ज़ाहिर कर दिया। कांग्रेसी नेतृत्व ने अहिंसा के सिद्धांत से हटने के लिए लोगों की आलोचना नहीं की लेकिन साथ ही लोगों के किसी भी हिंसक कृत्य के लिए ज़िम्मेदारी लेने से इंकार कर दिया।

**बोध प्रश्न 2**

1 निम्न में से कौन से कथन सही ( ✓ ) या गलत ( × ) हैं।

i) गांधीजी भारत छोड़ो आंदोलन में जनता के सीमित वर्गों की ही भागीदारी चाहते थे। ☐

ii) भारत छोड़ो आंदोलन का नेतृत्व उग्र युवकों और समाजवादियों के हाथों में चला गया। ☐

भारत छोड़ो आंदोलन के दौरान कोई समानान्तर सरकार स्थापित नहीं हुई। ☐

iv) कांग्रेस के नरम वर्ग ने आंदोलन को नियंत्रित करने का प्रयास किया, परंतु असफल रहा। ☐

v) आंदोलन के दौरान कोई भूमिगत कार्रवाई नहीं चली। ☐

vi) भारत छोड़ो आंदोलन में पूंजीपतियों और व्यापारियों ने बड़ी संख्या में भाग लिया। ☐

2. भारत छोड़ो आंदोलन के दौरान ब्रिटिश शासन को उखाड़ फेंकने के लिए लोगों द्वारा अपनाये गये तरीकों का करीब दस पंक्तियों में वर्णन कीजिए।

..........................................................................................................
..........................................................................................................
..........................................................................................................
..........................................................................................................
..........................................................................................................
..........................................................................................................
..........................................................................................................
..........................................................................................................
..........................................................................................................
..........................................................................................................

3 व्यापक जन आंदोलन को कुचलने के लिए अंग्रेज़ों द्वारा अपनाये गए तरीकों का करीब दस पंक्तियों में वर्णन कीजिए।

..........................................................................................................
..........................................................................................................
..........................................................................................................
..........................................................................................................
..........................................................................................................
..........................................................................................................

..........................................................................................................

..........................................................................................................

..........................................................................................................

..........................................................................................................

## 34.5 आज़ाद हिंद फ़ौज (इंडियन नेशनल आर्मी)

"भारत छोड़ो आंदोलन" अंग्रेज़ों के ख़िलाफ़ वह संघर्ष था जो भारत में किया गया परंतु समान रूप से महत्वपूर्ण उस आज़ाद हिंद फ़ौज की भूमिका भी है जिसने अंग्रेज़ों के ख़िलाफ़ अपनी लड़ाई विदेश की धरती से लड़ी।

9. आज़ाद हिन्द फ़ौज का निरीक्षण करते हुए रास बिहारी बोस तथा मोहन सिंह

### 34.5.1 आज़ाद हिंद फौज़ का निर्माण

बहुत से ऐसे क्रांतिकारी थे जो देश के लिए विदेशों में रहकर काम कर रहे थे। इनमें से एक रास बिहारी बोस भी थे जो अंग्रेज़ सरकार की गिरफ़्त से बचने के लिए 1915 से जापान में फ़रारी जीवन जी रहे थे। उन्होंने युद्ध द्वारा प्रदान किये गये अवसर का लाभ उठाकर अंग्रेज़ों के ख़िलाफ़ सशस्त्र संघर्ष चलाने के लिए भारतीयों को संगठित किया। बहुत से ऐसे भारतीय सैनिक थे जो अंग्रेज़ों की ओर से लड़ रहे थे। जापानियों ने दक्षिण-पूर्व एशिया में अंग्रेज़ों को हटाने के बाद, बहुत से भारतीय सैनिक को युद्धबंदी बना लिया। एक जापानी सैनिक अधिकारी मेजर फ़ूजीवारा (Fujiwara) ने एक युद्धबंदी कैप्टन मोहन सिंह को समझाया कि वह भारत की स्वतंत्रता के लिए जापानियों के साथ मिलकर काम करें। मार्च 1942 में टोक्यो में भारतीयों की एक कान्फ्रेंस बुलायी गयी और उन्होंने "इंडियन इंडिपेंडेंस लीग" की स्थापना की। इसके बाद बैंकाक में (जून 1942) एक कान्फ्रेंस हुई जिसमें रास बिहारी बोस को लीग का अध्यक्ष चुना गया, और यहीं इंडियन नेशनल आर्मी (आज़ाद हिंद फ़ौज) के गठन का निर्णय लिया गया। कैप्टन मोहन सिंह को आज़ाद हिंद फ़ौज का कमांडर नियुक्त किया गया। अब तक फ़ौज में 40,000 भारतीय सैनिक आ चुके थे। इस सम्मेलन ने नवगठित सैन्य आंदोलन के नेतृत्व के लिए सुभाषचंद्र बोस को आमंत्रित किया।

10. कलकत्ता का वह घर जहाँ से बोस फ़रार हुए थे।

सुभाषचंद्र बोस भारत से बच निकल कर 1941 में बर्लिन पहुंच गए थे। जून 1943 में वे टोक्यो आये और फिर जुलाई में सिंगापुर में वे आज़ाद हिंद फौज में शामिल हो गए। रास बिहारी बोस ने नेतृत्व सुभाषचंद्र बोस को सौंप दिया और एक आज़ाद हिन्द सरकार का गठन किया गया। नवम्बर 1943 में जापानियों ने अंडमान और निक्कोबार द्वीप समूह का प्रशासन आज़ाद हिन्द फौज को सौंपने के अपने निर्णय की घोषणा की। इस तरह भारत की स्वतंत्रता के लिए आज़ाद हिंद फौज के साहसिक संघर्ष की शुरुआत हुई।

11. युद्ध क्षेत्र में जाने को तैयार आज़ाद हिन्द फ़ौज के सिपाही

## 34.5.2 आज़ाद हिंद फ़ौज की कार्रवाइयां

आज़ाद हिंद फ़ौज ने कुछ ही महीनों में तीन लड़ाकू ब्रिगेडें खड़ी कर लीं, जिनके नाम

गांधी, आज़ाद, और नेहरू के नाम पर रखे गये। शीघ्र ही अन्य ब्रिगेडों का भी गठन किया गया जिनके नाम सुभाष बिग्रेड और रानी झांसी ब्रिगेड रखे गये। समुद्रपार रहने वाले भारतीयों ने धन और सामग्री के मामले में आज़ाद हिंद फ़ौज को खुलकर सहयोग दिया। आज़ाद हिंद फ़ौज के नारे थे "जयहिंद" और "दिल्ली चलो"। सबसे अधिक प्रसिद्ध सुभाष की वह घोषणा थी जिसमें उन्होंने कहा "तुम मुझे ख़ून दो, मैं तुम्हें आज़ादी दूंगा।" जापानी फ़ौज़ों के साथ-साथ लड़ते हुए आज़ाद हिंद फ़ौज ने 18 मार्च, 1944 को भारतीय सीमा पार कर ली। भारतीय भूमि पर तिरंगा फहरा दिया गया। फिर भी आज़ाद हिंद फ़ौज इम्फाल पर कब्ज़ा करने में असफल रही। इसके दो कारण थे :

i) आज़ाद हिंद फ़ौज को जापानियों से पर्याप्त रसद और हवाई सुरक्षा प्राप्त नहीं हुई।

ii) मानसून ने उसके आगे बढ़ने में रुकावट पैदा की।

12. सुभाष चन्द्र बोस आज़ाद हिंद फ़ौज की महिला टुकड़ी रानी झांसी ब्रिगेड का निरीक्षण करते हुए

इस बीच अंग्रेज़ अपनी सेनाओं को फिर से तैयार करने में सफल हो गये और उन्होंने जवाबी हमले किए। आज़ाद हिंद फ़ौज ने भारी जन-हानि की क़ीमत पर साहसिक लड़ाई लड़ी। लेकिन युद्ध का रुख़ बदल रहा था। जर्मनी के पतन और जापानी सेनाओं की भारी क्षति के बाद आज़ाद हिंद फ़ौज अपने बल पर टिकी नहीं रह सकी। सुभाषचंद्र बोस लापता हो गये। कुछ लोगों का विश्वास था कि हवाई दुर्घटना में उनका निधन हो गया, परंतु अन्य लोगों ने इस पर विश्वास करने से इंकार किया।

### 34.5.3 प्रभाव

आज़ाद हिंद फ़ौज अपनी लक्ष्य प्राप्त करने में सफ़ल नहीं हुई, परंतु इसने स्वतंत्रता संघर्ष को अत्यधिक प्रभावित किया :

i) अंग्रेज़ों के सामने यह साफ़ हो गया कि वे भारतीय सैनिकों की वफ़ादारी पर और ज़्यादा भरोसा नहीं कर सकते और उन्हें भाड़े का सिपाही मानकर भी नहीं चल सकते।

ii) आज़ाद हिंद फ़ौज के संघर्ष ने दिखा दिया कि जिन लोगों ने अंग्रेज़ों के खिलाफ़ सशस्त्र संघर्ष किया था वे किसी भी तरह साम्प्रदायिक विभाजन से प्रभावित नहीं थे। हिन्दू, मुसलमान, सिक्ख सभी आज़ाद हिंद फ़ौज में थे जो सिर्फ़ भारतीयों के रूप में लड़े थे।

iii) रानी झांसी ब्रिगेड ने जो सिर्फ़ महिलाओं की ब्रिगेड थी, अंग्रेज़ों के खिलाफ़ सशस्त्र संघर्ष चलाने में भारतीय महिलाओं की क्षमताओं को सामने ला दिया।

iv) आज़ाद हिंद फ़ौज ने समुद्रपार रहने वाले भारतीयों की अपनी मातृभूमि की आज़ादी के प्रति चिंता और उत्साह को भी सामने ला दिया।

इस दौर में सुभाषचंद्र बोस की भूमिका पर विचार करते समय हमें इस तथ्य को ध्यान में रखना पड़ेगा कि उन्होंने जो कुछ किया वह फासीवादी जर्मनी या विस्तारवादी जापान को प्राप्त उनके समर्थन के कारण नहीं था, बल्कि भारत की आज़ादी के लिए वे आज़ाद हिंद फ़ौज की स्वतंत्र सत्ता बनाये रखने के इरादे पर दृढ़ थे। जब वे बर्लिन में थे तो भारतीय फ़ौजियों के सोवियत संघ के विरुद्ध इस्तेमाल के सवाल पर जर्मनों के साथ उनका विवाद हो गया था।

अंग्रेज़ सरकार ने आज़ाद हिंद फ़ौज के अधिकारियों और सैनिकों पर फ़ौजी अदालत में मुकद्मा (कोर्ट मार्शल) चलाया। उनके ऊपर राजा के विरुद्ध षड्यंत्र रचने का आरोप लगाया गया।

(इसके बारे में आप इकाई सं. 37 में पढ़ेंगे)

**बोध प्रश्न 3**

1 आज़ाद हिंद फ़ौज के गठन को सिलसिलेवार लगभग पांच पंक्तियों में बताइये।

..........................................................................................................

..........................................................................................................

..........................................................................................................

..........................................................................................................

..........................................................................................................

..........................................................................................................

2 निम्न में से कौन से कथन सही ( ✓ ) या गलत ( x ) हैं।

i) आज़ाद हिंद फ़ौज का गठन सुभाष चंद्र बोस ने किया था। ☐

ii) सुभाषचंद्र बोस ने पूरी तरह जापानी नीति का अनुसरण किया। ☐

iii) अंग्रेज़ भारतीय सैनिकों की वफ़ादारी पर और अधिक भरोसा नहीं कर सकते थे। ☐

iv) आज़ाद हिंद फ़ौज भारत की ज़मीन तक पहुंच गयी। ☐

3 भारत के स्वतंत्रता संघर्ष पर आज़ाद हिंद फ़ौज का क्या प्रभाव पड़ा? लगभग दस पंक्तियों में उत्तर दीजिए।

..........................................................................................................

..........................................................................................................

..........................................................................................................

..........................................................................................................

..........................................................................................................

..........................................................................................................

..........................................................................................................

..........................................................................................................

..........................................................................................................

..........................................................................................................

## 34.6 सारांश

युद्ध के प्रति भारतीय जनता के विभिन्न वर्गों के विभिन्न दृष्टिकोण थे, और ये सब कांग्रेस में प्रतिबिम्बित होते थे। गांधीजी द्वारा शुरू किया गया व्यक्तिगत सत्याग्रह, सहभागिता की सीमित प्रवृत्ति के कारण, व्यापक रूप से प्रभावशाली सिद्ध नहीं हुआ। भारत को युद्ध में घसीट लिए जाने के बाद भारत छोड़ो आंदोलन शुरू हुआ, मगर इस आंदोलन के निर्णय तक पहुंचने में तीन साल का समय लगा। आंदोलन शुरू करने की घोषणा के साथ ही अंग्रेज़ों ने निष्ठुर दमन की नीति अपनायी। रातों रात कांग्रेस के सभी नेताओं को गिरफ़्तार कर लिया गया, और कांग्रेस को एक निश्चित कार्य-दिशा तय करने का समय तक नहीं मिल सका। फिर भी आंदोलन अपनी रफ़्तार से आगे बढ़ा। लोगों ने अपने-अपने स्तर पर कार्य-दिशायें तय कर लीं। आंदोलन को नेतृत्व देने में युवक और समाजवादी अग्रिम मोर्चे पर रहे। अपने प्रारम्भिक चरण में शहर के लोग ही आंदोलन में सक्रिय रहे, मगर शीघ्र ही आंदोलन देहात में भी फैल गया। कई क्षेत्रों में अंग्रेज़ सरकार उखाड़ दी गई और समानान्तर सरकारों की स्थापना कर दी गई। इस संघर्ष में लोगों द्वारा अपनाए गए तरीक़े, गांधीजी की अहिंसा की सीमाओं से बाहर निकल गए और कांग्रेस का उदार वर्ग उन पर नियंत्रण नहीं रख सका।

अंग्रेज़ आंदोलन को कुचलने में सफल हो गए, परंतु भूमिगत कार्रवाइयां लम्बे समय तक चलती रहीं। इस आंदोलन में अंग्रेज़ों के सामने स्पष्ट कर दिया कि लम्बे समय तक भारत पर कब्ज़ा किए रहना उनके लिए सम्भव नहीं होगा, और आज़ाद हिंद फ़ौज द्वारा चलाए गए साहसिक संघर्ष ने इसी बात को फिर से पुष्ट किया।

13. आज़ाद हिन्द फ़ौज के सिपाही

## 34.7 शब्दावली

**सामूहिक जुर्माना** : सरकार द्वारा उस क्षेत्र के निवासियों पर किया गया जुर्माना जिस क्षेत्र में दंगे आदि हुए हों।

**संविधान सभा** : संविधान निर्माण संबंधी कार्यों के निष्पादन के लिए गठित की गई संस्था।

**फारवर्ड ब्लाक** : सुभाषचंद्र बोस द्वारा 1940 में गठित की गई पार्टी।

**जन युद्ध (पीपुल्स वार)** : सोवियत संघ पर हिटलर के आक्रमण के बाद कम्युनिस्टों द्वारा द्वितीय विश्वयुद्ध के लिए प्रयुक्त शब्द।

## 34.8 बोध प्रश्नों के उत्तर

**बोध प्रश्न 1**

1 आपके उत्तर में उपभाग 34.2.1 में उल्लिखित चार विचारों का समावेश होना चाहिए।

2 i) ✓ ii) ✓ iii) × iv) ✓ v) × vi) ×

3 i) विरोध ii) इंग्लैंड और फ्रांस, बढ़ जाएगा iii) महसूस करते थे, नागरिक अवज्ञा iv) रामगढ़, अप्रसन्न v) शुरू

**बोध प्रश्न 2**

1 i) ✓ ii) × iii) ✓ iv) × v) ✓ vi) ×

2 अपने उत्तर को उपभाग 34.4.1 और 34.4.2 के पाठों पर आधारित कीजिए। इसमें पुलिस थानों पर हमले, समानान्तर सरकारों का गठन जैसी जनता की कार्रवाइयों को शामिल किया जाना चाहिए।

3 ये थे, जुर्माना करना, लोगों पर गोली चलाना, गिरफ़्तारियां इत्यादि। देखिए उपभाग 34.4.3

**बोध प्रश्न 3**

1 देखिए उपभाग 34.5.1 अपने उत्तर में आपको अच्छी तरह स्पष्ट करना चाहिए कि आज़ाद हिंद फ़ौज का गठन रास बिहारी बोस ने किया था सुभाषचंद्र बोस ने नहीं।

2 i) × ii) × iii) ✓ iv) ✓

3 देखिए भाग 34.5.3

# इकाई 35 स्वतंत्रता की ओर, 1945-1947

## इकाई की रूपरेखा


35.0 उद्देश्य

35.1 प्रस्तावना

35.2 पृष्ठभूमि : भारत एवं राज

- 35.2.1 द्वितीय विश्व युद्ध : भारतीयों पर इसका प्रभाव
- 35.2.2 द्वितीय विश्व युद्ध : अंग्रेज़ सरकार पर इसका प्रभाव
- 35.2.3 युद्ध का अंत : ब्रिटिश नीति
- 35.2.4 कांग्रेस एवं मुस्लिम लीग

35.3 समझौते के प्रयास

- 35.3.1 शिमला कांफ्रेंस
- 35.3.2 लेबर पार्टी द्वारा सत्ता ग्रहण
- 35.3.3 चुनाव और कैबिनेट मिशन
- 35.3.4 सांप्रदायिकता का ज्वार और अंतरिम सरकार

35.4 जन आंदोलन

- 35.4.1 प्रत्यक्ष टकराव
- 35.4.2 अप्रत्यक्ष टकराव

35.5 सारांश

35.6 शब्दावली

35.7 बोध प्रश्नों के उत्तर


## 35.0 उद्देश्य

यह इकाई भारतीय राष्ट्रवाद के एक अल्प किंतु अत्यंत महत्वपूर्ण काल को रेखांकित करती है। इस इकाई को पढ़ने के बाद आप :

- ब्रिटिश शासकों और भारतीय जनता पर द्वितीय विश्व युद्ध के प्रभाव की जानकारी प्राप्त कर सकेंगे,
- इस काल में हुई विभिन्न राजनीतिक गतिविधियों के अंतर्सबंधों को समझ सकेंगे,
- इस काल में उठे जन संघर्षों के बारे में जानकारी प्राप्त कर सकेंगे, और अंग्रेज़ी शासन को कमज़ोर बनाने और अन्ततः उससे मुक्ति पाने में इन जन संघर्षों की भूमिका का मूल्यांकन कर सकेंगे।

## 35.1 प्रस्तावना

पिछली इकाइयों में हमने आपको विभिन्न संवैधानिक प्रक्रियाओं, राजनीतिक गतिविधियों के विस्तार और भारतीय समाज के कुछ वर्गों में राजनीतिक प्रौढ़ता आने की प्रक्रिया तथा अन्ततः द्वितीय विश्व युद्ध तथा उसके परिणामों से अवगत कराया। इन तमाम घटनाओं के फलस्वरूप 1940 तक राजनीतिक माहौल एकदम बदल चुका था, नये तनाव और टकराव उभरने लगे थे। शासकों और शासितों के बीच संबध जो कि मूलतः टकरावपूर्ण थे, नये आयाम लेने लगे और आज़ादी की संभावना के मज़बूत होने के साथ-साथ राजनीतिक गतिविधियों का भी विस्तार होने लगा। एक ओर सत्ता के शांतिपूर्ण हस्तांतरण के लिए बातचीत द्वारा समझौते के प्रयास किए जा रहे थे जिसे हम बंद कमरों में बातचीत की राजनीति कह सकते हैं, तथा दूसरी ओर बातचीत की पद्धति से असंतुष्ट जन आंदोलन भिन्न पद्धतियों की तलाश कर रहा था और इन पद्धतियों को उसने अंग्रेज़ों के साथ टकराव से पाया। यह बंद कमरों में बातचीत की राजनीति के विरुद्ध जनता की राजनीति थी। इस

काल के दौरान अलगाववादी राजनीति ने भी सिर उठाना शुरू कर दिया और पाकिस्तान के लिए आंदोलन तीव्र होने लगा।

इस प्रकार स्थिति बहुत जटिल थी। राजनीति की सभी विचार धाराएँ जैसे राष्ट्रवादी एवं सम्प्रदायवादी राजनीति, सत्ता के शांतिपूर्ण हस्तातंरण के लिए प्रयत्नशील थी लेकिन जनसंघर्ष, प्रत्यक्ष अंग्रेज़ विरोधी टकराव, साथ ही साथ सामंती विरोधी संघर्ष अंग्रेज़ सत्ता को एक विभिन्न फ़लक पर चुनौती दे रहे थे। अगले पृष्ठों में 1945-1947 के दौरान भारतीय स्वतंत्रता संघर्ष की जटिलताओं तथा विभिन्न आयामों के संबंध में चर्चा की जाएगी।

## 35.2 पृष्ठभूमि : भारत एवं राज

1945-47 के वर्ष, पिछले कई दशकों की राजनीतिक घटनाओं के चरमोत्कर्ष के वर्ष थे। अतः इन निर्णायक वर्षों में घटने वाली घटनाओं की पृष्ठभूमि पर दृष्टि डालना महत्वपूर्ण है। विशेषकर द्वितीय विश्व युद्ध तथा अंग्रेज़ सरकार एवं भारतीय जनमानस पर युद्ध के प्रभाव ने इनमें से कुछ घटनाओं के लिए पृष्ठभूमि तैयार की। आइये देखें कि किस प्रकार युद्ध ने सरकार, उसकी नीतियों तथा भारतवासियों के विभिन्न वर्गों को प्रभावित किया।

### 35.2.1 द्वितीय विश्व युद्ध : भारतीयों पर इसका प्रभाव

1943 में "भारत छोड़ो आंदोलन के कमज़ोर पड़ने से लेकर 1945 में धुरी राष्ट्रों (जर्मनी, इटली और जापान) के पतन तक भारत का राजनीतिक माहौल प्रत्यक्षतः शांत था। लेकिन आंतरिक रूप में युद्ध जनित कष्टों के कारण आक्रोश बढ़ रहा था जिसे अंग्रेज़ी शासन अपने तमाम प्रयत्नों के बावजूद रोक नहीं पा रहा था। इस आक्रोश को शांत करने के लिए अंग्रेज़ी शासन पहले की अपेक्षा कहीं अधिक ज़ोरदार ढंग से लोगों का ध्यान इस बिंदु से हटाने के लिए प्रयासरत् था।

इस जन आक्रोश का मुख्य कारण भारतीय उत्पादनों (कृषि एवं औद्योगिक दोनों ही) का सैन्य आवश्यकताओं को पूरा करने के लिए भेजा जाना तथा भारतीयों के लिए ब्रिटेन से उपभोज्य वस्तुओं के आयात में गिरावट आने के कारण बढ़ने वाली महगाई थी। रक्षा व्यय में भारतीय योगदान का ब्रिटेन द्वारा भुगतान न किए जाने तथा ब्रिटेन पर भारत के बढ़ते हुए कर्ज़ के कारण स्थिति और भी गंभीर हो गयी। निम्न तालिका से रोज़मर्रा की आवश्यकता की चीज़ों पर बढ़ते हुए मूल्यों का अनुमान लगाया जा सकता है। उदाहरण के लिए अगर हम वर्ष 1939 में आधार मूल्य 100 मानें तो 1941 से 1944 के दौरान हुई वृद्धि निम्न आंकड़ों से प्रदर्शित होती है।

| वर्ष | चावल | गेहूँ. | कपास उत्पादन | मिट्टी का तेल |
|---|---|---|---|---|
| 1939 | 100 | 100 | 100 | 100 |
| 1941 | 172 | 212 | 196 | 140 |
| 1942 | 218 | 232 | 414 | 194 |
| 1944 | 333 | 381 | 285 | 175 |

सरकार ने जब "मूल्य नियंत्रण" का प्रयास किया, बाज़ार से वस्तुएँ गायब हो गयीं। बड़े पैमाने पर जमाखोरी होने लगी और ये वस्तुएँ काला बाज़ार में अत्यंत ऊँचे मूल्यों पर फिर से बिकने लगीं। इस प्रकार मित्र राष्ट्र की सेनाओं के लिए वस्तुओं की निरंतर आवश्यकता पूर्ति के कारण उत्पन्न वस्तुओं की सामान्य दुर्लभता के साथ-साथ कृत्रिम, असामान्य दुर्लभता भी उत्पन्न हो गयी। आवश्यक वस्तुएँ जनता को बाज़ार से आसानी से नहीं मिल पाती थीं और जब कभी ये वस्तुएँ बाज़ार में दिखती भी थी तो आम आदमी में इन्हें खरीदने की क्षमता नहीं होती थी। जबकि "युद्ध के ठेकेदार" सैनिकों की आवश्यक वस्तुओं की सप्लाई करने वाले, जमाखोर तथा "काला-बाज़ारी करने वाले" भरपूर कमाई कर रहे थे, दूसरी ओर आम उपभोक्ता और यहाँ तक कि उत्पादक और औद्योगिक मज़दूर अत्यंत

कष्टदायक जीवन व्यतीत करने पर मज़बूर थे। ऐसी भयावह आर्थिक स्थिति में यदि:

- मौसम की स्थिति प्रतिकूल हो और फसल खराब हो जाए,
- सरकार के लिए खाद्य सामग्री एकत्र करने वाले और सेनाओं को सप्लाई करने वाले अपने काम में घपला कर दें,
- सरकारी कर्मचारी खाद्य उत्पादनों को एक्र जगह से दूसरी जगह पहुँचाने में अनियमितता बरतें, और
- सैनिक किसी क्षेत्र में आक्रामक सेना के घुसने की आशंका से "घर फूँक" नीति अपना लें तो यह भयावह स्थिति अत्यंत गंभीर रूप धारण कर सकती थी।

इस अव्यवस्था के प्रभाव स्वरूप 1943 के उत्तरार्ध में बंगाल में अभूतपूर्व त्रासदी हुई। भयानक अकाल पड़ा। जिस पर "मानव निर्मित" होने अथवा लापरवाह अफसरशाही के परिणाम स्वरूप होने की शंका थी, इस अकाला ने तीस लाख से अधिक लोगों को भूख से मार दिया। यद्यपि शेष भारत अकाल की चपेट में नहीं था, फिर भी इसकी स्थिति बंगाल से बहुत बेहतर नहीं थी और गांवों एवं शहरों दोनों पर एक ही जैसी उदासी छाई हुई थी। स्पष्ट रूप से 1945 तक लोग कष्टों की चरम सीमा पर पहुँच गए थे और तथाकथित सर्वोपरि ब्रिटिश राज भी स्थिति को बदलने में असमर्थ था।

### 35.2.2 द्वितीय विश्व युद्ध : अंग्रेज़ सरकार पर इसका प्रभाव

विश्व युद्ध में शामिल ब्रिटेन भारतीय स्थिति से प्रभावपूर्ण ढंग से निपटने में समर्थ नहीं था। उसकी पूरी शक्ति युद्ध में लग रही थी और भारतीयों के कष्टों के प्रति ध्यान देने के लिए न उनके पास समय था और न ही रुचि। भारतीय प्रतिक्रिया पर ध्यान देने के लिए भी उनके पास समय अथवा रुचि नहीं थी। युद्ध समाप्त होने पर ब्रिटिश राज बिल्कुल थक चुका था और अपने भारतीय उपनिवेश को नए सिरे से सुव्यवस्थित करने में लगने के बजाय उसे विश्राम की आवश्यकता थी। परिस्थितियां बिल्कुल बदल चुकी थीं:

- इसके सशस्त्र बल के यूरोपीय सैनिक अनिश्चित काल तक भारत में रुके रहने के बजाय अपने घरों को जाने के लिए व्याकुल थे।
- अंग्रेज़ों की काफी बड़ी संख्या अपने सैनिक और व्यावसायिक भविष्य के लिए भारत को अब आदर्श स्थान नहीं मान रही थी और न ही उद्योग चलाने की दृष्टि से भारत को उचित स्थान माना जा रहा था।
- भारतीय प्रतिरोध की स्पष्ट परिस्थिति के सम्मुख भारत की अर्थव्यवस्था का ब्रिटेन के विश्व व्यापार के हितों में इस्तेमाल केवल एक ही तरीके से हो सकता था और वह यह कि सारे विरोधों को बलपूर्वक दबा दिया जाए।
- 1942 में अपने अस्तित्व के लिए ब्रिटेन ने जिस प्रकार शक्ति प्रयोग किया वह 1945 में युद्ध के अंत तक पुर्वानुमान के साथ बड़े पैमाने पर दुहराया जाना अत्यंत दुष्कर था। 1942 की भाँति क्षितिज पर उभर रहे एक और "भारत छोड़ो" आंदोलन को कुचलने के लिए ब्रिटिश राज न तो मानसिक रूप से तैयार था और न ही भौतिक रूप से। आर्थिक रूप से भारत अपने "शासन" के व्यय के लिए अब ब्रिटेन का ऋणी नहीं रह गया था। इसके विपरीत स्वयं ब्रिटेन पर भारत का 3,30,000 लाख पाउंड स्टर्लिंग का ऋण था।
- प्रशासनिक रूप से साम्राज्य का विख्यात "इस्पाती ढांचा", इंडियन सिविल सर्विस युद्ध के दौरान बिखर गया था।

मूल्य नियंत्रण, सप्लाई बनाये रखने, अकाल अथवा अकाल जैसी परिस्थितियों से निपटने, देश के अंदर दंगाइयों या अव्यवस्था फैलाने वालों से निपटने, हवाई हमलों की सूचना देने, ब्लैक आउट करवाने जैसे प्रशासनिक कार्यों का निर्वाह करते-करते दुखी और प्रशासनिक तथा न्यायिक कार्यों के प्रतिदिन बढ़ते बोझ से दबे सीमित संख्या में आई.सी.एस अफसरों की क्षमताएँ इतनी निचोड़ी जा रही थीं कि वे आगे गतिशील बने रहने के योग्य नहीं रह गये थे। यह समस्या और गंभीर हो गई जबकि अंग्रेज़ों के युद्ध में शामिल होने को सिविल सर्विस में भर्ती होने की अपेक्षा अधिक महत्व दिया जाने लगा और 1943 में जबकि युद्ध अपने चर्मोत्कर्ष पर था सिविल सर्विस में अंग्रेज़ों का प्रवेश लगभग बन्द हो गया। यद्यपि ब्रिटिश राज ने हिम्मत नहीं हारी थी लेकिन वे बहुत सुरक्षित महसूस नहीं कर रहे थे क्योंकि 1940 के मध्य तक सिविल सर्विस में यूरोपीय अल्पसंख्यक (587) तथा भारतीय

बहुसंख्यक (614) थे और इस दृष्टि से तेज़ी से बदलते हुए महौल को देखते हुए सरकार सुरक्षित महसूस कर भी नहीं सकती थी। युद्ध की समाप्ति के साथ ही परंपरागत साम्राज्यवाद का भी अंत नज़र आने लगा था। उस समय भारत में वाइसरॉय के रूप में कार्यरत लार्ड वैवेल ने भारत में अंग्रेज़ों की स्थिति को इन शब्दों में विश्लेषित किया "भारत में हमारा समय सीमित है और परिस्थितियों को नियंत्रण में रखने की हमारी शक्ति लगभग समाप्त हो चुकी है"।

## 35.2.3 युद्ध का अंत : ब्रिटिश नीति

युद्ध के बाद स्पष्टतः एक महानगरीय राष्ट्र के लिए किसी उपनिवेश पर प्रत्यक्ष शासन करते हुए सुव्यवस्थित तरीके से सभी प्रकार के आर्थिक लाभ प्राप्त करना संभव नहीं था तथापि द्वितीय विश्व युद्ध किसी भी रूप में साम्राज्यवाद को पतन की ओर नहीं ले गया बल्कि नए रूप में उसके पुनर्रुत्थान की संभावनाएँ पैदा कीं जिसे नव उपनिवेशवाद कहा जा सकता है।

**कोई देश और उसके लोग अब भी प्रभावपूर्ण ढंग से औपनिवेशी कृत किए जा सकते थे। उन्हें राजनैतिक आज़ादी प्रदान कर देने के बाद भी वहां प्रभावहीन कठपुतली सरकारें बैठा कर उक्त देश एवं वहाँ के लोगों की एकता और अखंडता को तोड़कर उसे आर्थिक रूप से ग़ुलाम बनाया जा सकता था, उसकी सैन्य शक्ति का उपयोग किया जा सकता था।**

ब्रिटेन अब नव उपनिवेशवादी पद्धति अपनाने के स्वप्न देख रहा था। और ऐसे तथ्य कि भारतीय राष्ट्रवादी, कठपुतली सरकारें बिठाने वालों के हाथों में खेलने को तैयार नहीं होंगे और स्वयं युद्ध से थके हुए तथा आंतरिक रूप से टूटे हुए ब्रिटेन के लिए पुनः विश्व बाज़ार पर प्रभुत्व बनाना संभव नहीं होगा, ब्रिटेन को ऐसे स्वप्न देखने से हतोत्साहित न कर सके। ब्रिटेन के पास अब इसके अतिरिक्त कोई विकल्प भी नहीं बचा था कि वह परिस्थितियों के बहाव के विरुद्ध भी आशा लगाकर बैठे और भारतीयों को किसी भी प्रकार से स्वतंत्रता के उनके लक्ष्य से पथभ्रष्ट कराकर और संभव हो तो उनमें फूट डालकर भारत में अपना भविष्य किसी न किसी रूप में सुरक्षित रखें। इस योजना का आधार पहले ही तैयार किया जा चुका था अब केवल इसका सफलतापूर्वक क्रियान्वयन ही बाकी था।

एक युक्ति के रूप में भारत छोड़ने में अंग्रेज़ भारतीय जनमानस की भिन्नता को फूट का आधार बनाने में उतना ही प्रभावपूर्ण मान रहे थे जितना कि यह पद्धति सर्वत्र ब्रिटिश राज के फैलने में प्रभावपूर्ण रही थी। साम्राज्य ने भारतीयों के बीच की जिन तमाम विभिन्नताओं जैसे ब्रिटिश आधीन भारतीय जनता तथा रियासतों के आधीन जनता, "लड़ाकू तथा गैर लड़ाकू" जातियाँ, शहरी और ग्रामीण, ब्राह्मण और गैर ब्राह्मण को उभारा और उनका इस्तेमाल किया, उनमें सबसे अधिक प्रभावशाली विभिन्नता दो सह अस्तित्व धर्मों हिन्दू और इस्लाम अथवा हिन्दू बहुसंख्यकों तथा मुस्लिम अल्पसंख्यकों की थी। अधिकतर महत्वपूर्ण जनसंबंधी मुद्दों पर ब्रिटिश राज ने बड़े चतुर ढंग से एक समुदाय को दूसरे समुदाय के विरुद्ध इस्तेमाल किया। राज ने इस प्रक्रिया में मुस्लिम लीग को मुसलमानों का एकमात्र प्रतिनिधि स्वीकार किया, भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस को "हिंदुओं की संस्था" के रूप में लांछित करके उसके राष्ट्रीय चरित्र के प्रति संदेह उत्पन्न किया। उन्होंने कांग्रेस को सशक्त राजनीतिक दल न बनने देने के प्रयास में मुस्लिम लीग का राजनीतिक शक्ति के रूप में इस्तेमाल किया। युद्ध के आरंभिक चरण में जिस प्रकार ब्रिटिश राज ने लीग की पाकिस्तान की माँग की आड़ में कांग्रेस के साथ किसी प्रकार की संवैधानिक बातचीत करने से इंकार किया अथवा जिस प्रकार मुस्लिम लीग को अनैतिक रूप से उस समय कुछ प्रांतों में मंत्रिमंडल का गठन करने दिया गया जब कांग्रेस "भारत छोड़ो" आंदोलन के कारण विधान परिषदों के बाहर थी, तथा सरकारी संरक्षण की सहायता से मुसलमानों के बीच मुस्लिम लीग के प्रभाव क्षेत्र के विस्तार पर अधिकारियों ने जिस प्रकार कपटपूर्ण प्रसन्नता व्यक्त की, ये सभी उदाहरण स्पष्ट रूप से साम्राज्यवाद विरोधी आंदोलन की प्रगति रोकने के लिए तैयार किए जा रहे षड्यंत्र की ओर इशारा करते हैं।

## 35.2.4 कांग्रेस और मुस्लिम लीग

राष्ट्रवादी नेतृत्व पाकिस्तान के आंदोलन को रोकने के लिए कोई गंभीर प्रयास न कर सके। साम्प्रदायिकता को समाप्त करने के लिये उन्होंने उसकी उपेक्षा और निन्दा करते हुए लीग के सामंती तथा प्रतिगामी नेतृत्व की आलोचना करना ही काफ़ी समझा। परंतु यह प्रयास लीग के बढ़ते हुए प्रभाव को न रोक पाये क्योंकि :

- उन्होंने (कांग्रेस ने) मुस्लिम जनता से संपर्क करके उन्हें लीग के प्रभाव से हटा कर अपनी ओर आकृष्ट करने का कोई गंभीर प्रयास नहीं किया।
- कांग्रेस द्वारा वन्दे मातृरम, रामराज्य आदि शब्दों और वाक्य खण्डों का प्रयोग किया जाता था। लीग इनका उदाहरण देकर मुसलमानों को कांग्रेस के विरुद्ध करने में लगी रहती थी।

राष्ट्रवादियों के दृष्टिकोण से सबसे हानिकारक यह नहीं था कि लीग को ब्रिटिश शासन से राजनीतिक संरक्षण मिल रहा था। यह संरक्षण अंग्रेज़ सरकार द्वारा लीग को विभिन्न प्रांतों में सरकार बनाने देने के रूप में था क्योंकि कांग्रेस में विधायिकाओं का बहिष्कार किया था (यह संरक्षण तो 1945 में उत्तर पश्चिमी प्रांतों और बंगाल में पूरी तरह और सिंध और आसाम में आंशिक रूप से समाप्त हो गया जब कांग्रेस ने विधायिकाओं में फिर से भाग लेने का निर्णय किया) कांग्रेस की वास्तविक चिंता तो यह थी कि लीग का यह प्रचार, कि पाकिस्तान बनने से मुसलमानों की सभी समस्याओं का अंत हो जायेगा, मुस्लिम जनता के बड़े वर्ग को आकृष्ट कर रहा था।

i) शिक्षित मुसलमान मध्यम वर्ग तथा मुसलमान व्यापारी भारतीय उपमहाद्वीप के एक हिस्से के अलगाव का स्वागत करने लगे क्योंकि उन्हें एक ऐसी जगह की आवश्यकता थी जहां उन्हें लम्बे समय से स्थापित हिन्दू व्यापारियों के साथ असमान प्रतिस्पर्धा न करनी पड़े।

ii) नौकरियों तथा व्यापार के क्षेत्र में मुस्लिम प्रभुत्व की इस संभावना के साथ पंजाब और बंगाल के मुस्लिम किसानों की यह आकांक्षा भी शामिल थी कि भावी पाकिस्तान में उन्हें "हिन्दू बनियों" और ज़मींदारों के शोषण से भी मुक्ति मिलेगी।

वास्तविक अथवा काल्पनिक, किसी न किसी रूप में मुस्लिमों के बीच लीग का समर्थन विस्तृत रूप ले रहा था जो कि कांग्रेस की पराजय थी। लीग के कर्ताधर्ता मुहम्मद अली जिन्ना ने अंग्रेज़ों के समर्थन के बल पर अवसर का लाभ उठाते हुए कांग्रेस के समक्ष निरंतर हठपूर्ण मांगों की प्रक्रिया आरंभ कर दी। जिन्ना की हठधर्मिता जुलाई 1944 में ही प्रत्यक्ष होकर सामने आ गयी थी जबकि उन्होंने कांग्रेस-लीग संबंध के गांधी जी के प्रयासों को विफल कर दिया और स्वतंत्रता की अखिल भारतीय मांग को कमज़ोर बनाने के ख़तरे की भी परवाह न करते हुए पाकिस्तान ने (जिसमें सिंध, पंजाब, बलूचिस्तान, उत्तर पश्चिमी सीमांत प्रांत, बंगाल और असम मुस्लिम बाहुल्य प्रांत के सम्पूर्ण क्षेत्र शामिल थे) ने अपनी मांग छोड़ने से इंकार कर दिया। स्थिति ब्रिटिशों के हितों के अनुकूल थी। इस परिस्थिति से उन्हें अधिकतम लाभ युद्धोपरांत भारत में साम्राज्य का शासन बनाए रखने में हो सकता था और भारतीय साम्राज्य के टुकड़े करके अपने दूरगामी लाभ प्राप्त करने के द्वारा हो सकता था। सांप्रदायिक तनाव और पाकिस्तान का मुद्दा जनसाधारण के लिए चाहे जितना कष्टदायक एवं उनकी आशाओं ओर आकांक्षाओं को आघात पहुँचाने वाला रहा हो, 1945-1947 के दौरान भारतीय माहौल में ये मुद्दे सबसे महत्वपूर्ण रहे।

इन महत्वपूर्ण वर्षों की पूरी प्रक्रिया दो प्रत्यक्ष स्तरों पर चली :

i) कांग्रेस, लीग, और राज के बीच भारत के राजनीतिक भविष्य के प्रति समझौता करने के प्रयास के लिए उच्च स्तरीय राजनीति के स्तर पर।

ii) ब्रिटिश और उनके देशी सहयोगियों के विरुद्ध जनसाधारण के बीच प्रतिरोध की भावना के विस्तृत प्रदर्शन के लिए जन कार्रवाई के स्तर पर।

यद्यपि इन दोनों स्तरों का आपसी समायोजन शायद ही कभी हुआ हो, दोनों ने एक दूसरे को आकर्षित किया और विभाजन तथा स्वतंत्रता में फलीभूत होने वाले अगले तीन घटनापूर्ण वर्षों का इतिहास मिलकर तैयार किया।

**बोध प्रश्न 1**

1 निम्नलिखित वक्तव्यों को पढ़ें और उनके सामने सही ( ✓ ) अथवा गलत ( × ) का निशान लगाएँ :

i) विश्व युद्ध के उपरात विभिन्न वस्तुओं के मूल्य तेज़ी से बढ़े। ☐

ii) विश्व युद्ध के कारण अंग्रेज़ भारतीय राजनीतिक स्थिति से प्रभावपूर्ण ढंग से नहीं निपट सके। ☐

iii) 1940 के बाद आई.सी.एस. (इंडियन सिविल सर्विस) में अंग्रेज़ अफसरों का अनुपात बढ़ गया। ☐

iv) अंग्रेज़ों ने हिंदुओं और मुसलमानों के बीच की दूरी कम करने का प्रयास किया। ☐

v) मुस्लिम व्यापारियों ने पाकिस्तान की मांग का समर्थन किया। ☐

vi) पंजाब और बंगाल में बनियों और ज़मीदारों ने मुस्लिम किसानों का शोषण किया। ☐

2 अंग्रेज़ों ने हिंदुओं और मुसलमानों के बीच राजनीतिक प्रतिद्वंद्विता को किस प्रकार बढ़ावा दिया? पांच पंक्तियों में उत्तर दीजिए।

.....................................................................................................

.....................................................................................................

.....................................................................................................

.....................................................................................................

.....................................................................................................

3 मुसलमानों के कुछ वर्गों ने पाकिस्तान की संभावना का स्वागत क्यों किया?

## 35.3 समझौते के प्रयास

1944 के अंत तक युद्ध में अंग्रेज़ों की स्थिति मज़बूत होने के साथ उन्हें यह आभास होने लगा था कि "भारत छोड़ो आंदोलन" के बाद भारतीय स्थिति जैसी थी उसे उसी रूप में नहीं रहने दिया जाना चाहिए। वे इस परिणाम पर पहुँच चुके थे कि भारत पर अपना आधिपत्य बलपूर्वक लंबे समय तक नहीं बनाए रखा जा सकता। अतः कैदी कांग्रेसी नेताओं से बातचीत का दौर आरंभ करना आवश्यक था जिससे कि यदि और कुछ नहीं तो भविष्य में युद्ध के बाद के आर्थिक संकटों तथा बेरोज़गारी से उत्पन्न होने वाली विस्फोटक परिस्थिति का फायदा उठाने से उन्हें (कांग्रेस को) रोका जा सके। लार्ड वैवेल का विचार था कि कांग्रेस तथा उसके सहयोगियों की सारी ऊर्जा आंदोलन के पथ से हटाकर "अपेक्षाकृत अधिक लाभप्रद दिशाओं जैसे भारत की प्रशासनिक समस्याओं से निपटने तथा संवैधानिक समस्याओं के समाधान के प्रयास में लगायी जाए।" चर्चिल और उनके सहयोगी इस विचार का तब तक विरोध करते रहे जब तक कि मई 1945 में जर्मनी के आत्मसमपर्ण के साथ युद्ध समाप्त होने की संपूर्ण संभावना नहीं बन गयी और ब्रिटेन में युद्ध काल की गठबंधन सरकार द्वारा नई चुनी हुई सरकार को सत्ता हस्तांतरित करने का समय नहीं आ गया।

### 35.3.1 शिमला कांफ्रेंस

अंततः ब्रिटेन स्थित उच्चाधिकारियों का अनुमोदन प्राप्त करके वाइसरॉय वैवेल ने बातचीत का दौर आरंभ किया। कांग्रेस कार्यकारिणी समिति के सभी सदस्य 14 जून 1945 को रिहा कर दिए गए तथा अन्य लोगों विशेषकर लीगी नेताओं के साथ उन्हें शिमला में एक

कांफ्रेंस (24 जून-14 जुलाई, 1945) में आमंत्रित किया गया। इस कांफ्रेंस का प्रमुख उद्देश्य केन्द्र में एक ऐसी कार्यकारिणी परिषद का गठन किया जाना था जिसमें सेना अध्यक्ष तथा इस परिषद के अध्यक्ष के रूप में वाइसरॉय के अतिरिक्त सभी पदों पर भारतीय हो सकते थे,। इस परिषद में तथाकथित (ब्रिटिश और लीग दोनों द्वारा ही) "सवर्ण हिन्दू" तथा मुसलमानों का समान प्रतिनिधित्व होगा तथा परिषद अस्तित्वमान संवैधानिक तंत्र के तहत कार्य करेगी तथा विधान मण्डल के प्रति ज़िम्मेदार नहीं होगी। युद्ध के वास्तविक रूप में समाप्त हो जाने के बाद नए संविधान की संरचना पर भी विचार-विमर्श करने के लिए ब्रिटिश शासन अनमने ढंग से तैयार था। यद्यपि कांग्रेस ने कांफ्रेंस में हिस्सा लिया लेकिन स्वाभाविक रूप से "सवर्ण हिन्दू" निकाय के रूप में देखे जाने से इंकार कर दिया तथा अपने धर्मनिरपेक्ष राष्ट्रवादी चरित्र को दृढ़तापूर्वक प्रस्तुत करते हुए मुसलमानों सहित किसी भी धर्म अथवा सम्प्रदाय के लोगों को कांग्रेस की ओर से नामज़द किए जाने के अधिकार की मांग की। अबुल कलाम आज़ाद और अब्दुल ग़फ़्फ़ार ख़ान शिमला कांफ्रेंस में कांग्रेस प्रतिनिधि मंडल के विशिष्ट सदस्य तथा कांग्रेस के नेता के रूप में शामिल हुए। लीग ने तर्क के बजाए हठ से काम लेते हुए समस्त भारतीय मुसलमानों की प्रतिनिधि संस्था होने का दावा किया तथा कांग्रेस की मांगों का विरोध करते हुए परिषद के तमाम मुस्लिम सदस्यों के चयन के सम्पूर्ण अधिकार की माँग की।

> इस माँग ने वाइसरॉय को भी शर्मिंदा कर दिया जिसके विचार में युनियनिस्ट मुस्लिमों अथवा लीग से समझौता किए बगैर पंजाब के सत्ताधारी मुस्लिमों का भी प्रतिनिधित्व आवश्यक था।

इससे असंतुष्ट होकर लीग ने इस मांग के द्वारा कि प्रस्तावित परिषद में मुस्लिम हितों से संबंधित यदि किसी निर्णय का विरोध मुस्लिम सदस्य (अथवा स्वयं लीग के नामज़द सदस्य) करते हैं तो उन्हें दो तिहाई बहुमत लेना होगा और इसके लिये सांप्रदायिक वीटो की माँग की। लीग के हठपूर्ण रवैये को प्रोत्साहित करने तथा परिषद में लीग के प्रवेश का अवसर बाद तक बनाए रखने के द्वारा, परिषद में प्रवेश के कांग्रेस के प्रस्ताव को नकार देने की अपनी उत्सुकता के कारण वाइसरॉय वैवेल ने ब्रिटिश प्रस्तावों को तत्काल वापस लेते हुए शिमला कांफ्रेंस भंग कर दी। इसके बाद की घटनाओं से यह प्रतीत होता है कि वैवेल की कार्रवाई का अर्थ न केवल लीग को सारे मुसलमानों के प्रतिनिधि के रूप में आधिकारिक तौर पर मान्यता देकर मुसलमानों की नज़र में उसे प्रतिष्ठित करना था बल्कि अप्रत्यक्षतः लीग का यह उत्साहवर्धन भी करना था कि जो चर्चा उसे अपने हित में न लगे उसे नकार देने का लीग को अधिकार है। इसके बाद किसी भी महत्वपूर्ण समझौते में लीग की संतुष्टि एक पूर्ण शर्त बन गयी।

14. शिमला में गांधी जी

### 35.3.2 लेबर पार्टी द्वारा सत्ता ग्रहण

जुलाई 1945 में आम चुनावों में अपनी भारी जीत के साथ ब्रिटिश लेबर पार्टी सत्ता में आई और भारतीय प्रश्न का जल्दी ही समाधान होने की आशाएं जगीं। भारतीय राष्ट्रवादी उद्देश्यों के प्रति सहानुभूति रखने वाले दल के रूप में विख्यात, लेबर पार्टी ने पहले ही यह घोषणा कर दी थी कि यदि वे सत्ता में आते हैं तो वे भारत को मुक्ति दिलायेंगे। दरअसल सत्ता में आने से काफ़ी समय पूर्व ही 24 जून, 1938 को लेबर पार्टी के नेता (जिसमें क्लेमेंट ऐटली, एनयूरिन बीवान, स्टेफोर्ड क्रिप्स तथा हैरल्ड लॉस्की शामिल थे) लंदन के निकट फिलकिन में जवाहरलाल नेहरू और वी.के. कृष्ण मेनन से मिले और यह वादा किया कि यदि लेबर पार्टी ब्रिटेन में सरकार बनाने में सफल हो जाती है तो भारत का भावी संविधान तैयार करने का अधिकार "व्यापक (सार्वभौम) मताधिकार" के आधार पर निर्वाचित भारतीय संविधान-सभा को होगा। उन्होंने यह भी माना था कि वे सत्ता भारतीयों को सौंपकर उन्हें आज़ादी देंगे। भारतीय स्वाधीनता के प्रश्न पर लेबर पार्टी की नीति इतनी असंदिग्ध प्रतीत हो रही थी और साथ ही उनकी विजय इतनी सुस्पष्ट थी कि भारत में वाइसरॉय भी इस संभावना से चिंतित हो उठे कि ब्रिटेन के नए शासक कहीं तुरंत ही भारत का शासन अपने "कांग्रेस मित्रों" के हाथ में न सौंप दें। जो तथ्य वैवेल को पहले पता न था और बाद में उसे संतोषप्रद तथ्य के रूप में ज्ञात हुआ वह यह था कि सत्ता से बाहर रह कर लेबर पार्टी के नेतृत्व द्वारा किया गया वादा सत्ता में आने के बाद यथावत नहीं रहा। अपने वैचारिक मतभेदों के बावजूद यदि ब्रिटेन के प्रजातंत्रवादी और राजभक्त और यहां तक कि उदारवादी भारतीय साम्राज्य बनाए रखने के प्रति अपने रवैये में बहुत अधिक मतभेद नहीं रखते थे, तो लेबर पार्टी के लोग अपने समाजवादी झुकाव के बावजूद कंज़रवेटिव पार्टी, नौकरशाही और निहित स्वार्थों के साथ भारतीय साम्राज्य को समाप्त करने के सबसे लाभप्रद तरीके पर सहमत क्यों न होते? नियंत्रण शक्ति से बाहर किसी उपनिवेश को मुक्त करना किसी भी रूप में साम्राज्यवादी कार्य तो कहा नहीं जा सकता था, चाहे इस प्रक्रिया में वहां की जनता में फूट डालकर उन्हें इतना कमज़ोर बना दिया जाए कि स्वतः ही नव उपनिवेशवादी शोषण के लिए रास्ता खुल जाए। लेबर पार्टी को इसमें कोई विशेष हिचकिचाहट भी नहीं थी क्योंकि कनज़रवेटिव तथा ब्रिटिश अधिकारियों की भांति वे भी:

- संप्रदायवादियों को बल प्रदान करने,
- बल प्रयोग द्वारा जन संघर्षों को दबा देने,
- विदेशों में ब्रिटेन के हितों के विशेष रक्षक, तथा
- फ्रांसीसी एवं डच साम्राज्यवादियों को समर्थन देने के लिए क्रमशः भारत, चीन एवं जावा में ब्रिटिश भारतीय सेना की टुकड़ियां तैनात करने के लिए तत्पर थे।

अपनी नीति के अनुरूप, ऐटली सरकार ने भारत में जो सबसे पहला कदम उठाया वह कहीं से नया नहीं था और न ही उसमें कुछ ऐसी बात थी जो गैर-लेबर सरकार नहीं कर सकती थी। 21 अगस्त, 1945 को ऐटली सरकार ने वाइसरॉय को 1945-46 की सर्दियों में भारतीय विधान मण्डलों के नए चुनाव कराने का आदेश दिया। केन्द्र और प्रान्तों के लिए चुनाव न केवल लम्बे समय से होना बाकी थे (केन्द्र के लिए पिछला चुनाव 1934 तथा प्रांतों के लिए 1937 में हुआ था) बल्कि बातचीत आरंभ करने के नाम पर लक्ष्यविहीन तकरार का संवैधानिक खेल आरंभ करना भी आवश्यक था। 19 सितम्बर 1945 को पुनः वाइसरॉय ने भारत के लिए "शीघ्र पूर्ण उत्तरदायी सरकार" (आज़ादी शब्द को जानबूझ कर इस्तेमाल नहीं किया गया) देने का वचन दुहराया। इसके साथ ही निर्वाचित विधायकों तथा भारतीय रजवाड़ों के प्रतिनिधियों के साथ नए संवैधानिक प्रबंधों के लिए संविधान सभा के गठन पर चर्चा (जो कि लेबर पार्टी के पूर्व आश्वासन कि विधान सभा "व्यापक मताधिकार के आधार पर निर्वाचित की जाएगी,के प्रतिकूल था) तथा वाइसरॉय की कार्यकारिणी परिषद, जिसमें मुख्य भारतीय राजनीतिक पार्टियों के प्रतिनिधि नामज़द होंगे उस के गठन के प्रयास का भी आश्वासन दिया गया। ऐटली सरकार की भारत के प्रति प्रतिक्रियावादी नीति को अधिक बेहतर ढंग से समझने और विश्लेषित करने वाला कोई अन्य नहीं, स्वयं पार्टी के विचारक हैरल्ड लॉस्की थे। 14 नवम्बर, 1945 को अपने एक भाषण में उन्होंने कहा : "ब्रिटेन की तमाम नीतियों में, चाहे वह गठबंधन सरकार (ऐटली के मातहत) की नीतियां ही हों, सही अर्थों में भारत को आज़ाद किए जाने के प्रति प्रतिबद्धता

नहीं दिखाई देती। भारत में सांप्रदायिक भेदभाव, जो कुछ तो वास्तविक है और कुछ काल्पनिक उस के आधार पर शोषण हो रहा है, जिसे कुछ तो हम बढ़ावा दे रहे हैं और कुछ स्थिति का फायदा उठाकर इसे आधार बनाकर हम शोषण कर रहे हैं। इसके अतिरिक्त भारत में रजवाड़ों के प्रति भक्तिभावना अत्यधिक बढ़े-चढ़े रूप में विद्यमान है और इस पावन उत्तरायित्व का वहम हमें करना है।"

## 35.3.3 चुनाव और कैबिनेट मिशन

1945-46 की सर्दियों में चुनाव हुए शिमला कांफ्रेंस की मनचाही असफलता तथा पाकिस्तान की मांग के आधार पर चुनाव होने तक लीग मुस्लिम मतदाताओं को आकृष्ट करने के लिए बेहतर स्थिति में थी। "इस्लाम के ख़तरे में होने" के धार्मिक नारे के साथ मुस्लिम व्यापारियों एवं मध्यम वर्ग के मुसलमानों की हुकूमत तथा अपने भविष्य के प्रति स्वयं निर्णय लेने के मुसलमानों के विशेषाधिकार के सपने को समाहित कर दिया गया। यद्यपि कांग्रेस, विशेषकर जनसाधारण के अंतर्गत आज़ादी प्राप्त होने के पूर्वानुमान के कारण, अपनी लोकप्रियता के चरमोत्कर्ष पर थी लेकिन धार्मिक कट्टरता के इस माहौल में वह अधिक संख्या में मुस्लिम वोट आकृष्ट करने की स्थिति में नहीं थी। चुनाव के परिणाम से विशेषतः कांग्रेस और लीग की स्थिति के संदर्भ में, यह सारी स्थिति स्पष्ट हो गयी। आम (गैर मुस्लिम) चुनाव क्षेत्रों में कांग्रेस को भारी सफलता प्राप्त हुई। 91.3 प्रतिशत मत लेकर केन्द्रीय विधान परिषद में उसने 102 स्थानों में से 57 स्थान प्राप्त किए तथा सिंध, पंजाब एवं बंगाल को छोड़कर अन्य सभी प्रांतों में उसे बहुमत मिला। कांग्रेस की यह अभूतपूर्व विजय भी उस प्रभाव के महत्व को कम नहीं कर सकी जो कि सरकार मुसलमानों को पहले ही दे चुकी थी। ब्रिटिश दृष्टिकोण तथा अंग्रेज़ों की अध्यक्षता में आगे चलने वाली चर्चाओं की दृष्टि से 1946 में कांग्रेस की भारी सफलता से भी अधिक महत्वपूर्ण, लीग द्वारा मुस्लिम मतदाताओं को किसी भी तरीके से, चाहे वह नैतिक हो अथवा अनैतिक, अपनी ओर आकृष्ट करना था। इस दृष्टि से मुस्लिम लीग ने काफ़ी महत्वपूर्ण सफलता अर्जित की थी। उसे 86.6 प्रतिशत मुस्लिम वोट प्राप्त हुए। केन्द्रीय विधान परिषद के सभी 30 स्थान उसे ही मिले तथा प्रांतों में कुल 509 मुस्लिम स्थानों में से 442 स्थान उसे प्राप्त हुए। इस सफलता के बावजूद भी लीग उन मुस्लिम बाहुल्य प्रांतों में सफल न हो सकी जिन्हें वह पाकिस्तान में शामिल करने की मांग लेकर चल रही थी। उत्तर-पश्चिम सीमांत प्रांतों और असम में कांग्रेस के हाथों इसे पराजित होना पड़ा और पंजाब में यूनियनिस्ट मुस्लिमों को यह अपदस्थ न कर सकी। सिंध और बंगाल में भी जहां लीग ने अपने मंत्रिमंडल का गठन किया वहां वे सरकारी तथा यूरोपीय सहयोग के बल पर ही टिके हुए थे। वास्तविकता यह थी कि अविभाजित भारत में मुस्लिमों के बीच लीग के प्रति समर्थन की वास्तविक परीक्षा कभी हुई ही नहीं थी। चुनाव केवल पृथक निर्वाचक समूहों के आधार पर ही हुए थे, जो कि मुसलमानों को राष्ट्रीय मुख्यधारा से अलग रखने का प्रयास था, बल्कि मताधिकार भी बहुत सीमित (कुल जनसंख्या का 10 प्रतिशत) रखा गया था। यदि चुनाव वयस्क मताधिकार के आधार पर होते तो इसी प्रकार के 1952 में भारत में हुए चुनाव में कांग्रेस की सफलता तथा पूर्वी पाकिस्तान में 1954 में हुए चुनावों में लीग की असफलता तथा इसके तुरंत बाद पश्चिमी पाकिस्तान में स्थिति नियंत्रण में रख पाने में असफल रहने के परिप्रेक्ष्य में यह कहना कठिन है कि इस चुनाव में क्या होता।

ब्रिटिश अनुमान के अनुरूप मुख्य राजनीतिक दलों द्वारा सीमित चुनावों में अपने-अपने रूप में सफलता प्राप्त करने के साथ ही ऐटली सरकार ने बगैर कोई समय नष्ट किए उनसे बातचीत का दौर आरंभ कर दिया। तीन ब्रिटिश कैबिनेट सदस्यों (भारत के लिए राज्य सचिव पेथिक लॉरेंस, व्यापार बोर्ड अध्यक्ष स्टैफोर्ड क्रिप्स तथा नौ सेना के प्रमुख ए.वी. अलेक्ज़ेंडर) का एक उच्च स्तरीय मिशन भारत में समझौते द्वारा शांतिमय ढंग से सत्ता हस्तांतरण के तरीके ढूंढने भारत भेजा गया। जैसा कि ब्रिटिश अनुमान लगा चुके थे कि समय तेज़ी से उनके हाथ से निकल रहा था और मार्च 1946 तक सम्पूर्ण भारत में जन आक्रोश जन आंदोलन का रूप लेने लगा था। ब्रिटिश जिस स्थिति के लिए अधिक चिंतित थे वह यह संभावना थी कि कहीं लोगों के अन्दर की यह व्याकुलता देशव्यापी "जन आंदोलन अथवा क्रांति" का रूप न ले ले। ऐसी स्थिति पैदा करना कांग्रेस की शक्ति से बाहर नहीं था और "जिसे नियंत्रित करना", जैसा कि स्वयं वाइसरॉय का मानना था, "ब्रिटिश के हाथ में नहीं रह गया था"। अतः जून 1946 में भारत के संवैधानिक भविष्य

को निर्धारित करने तथा अंतरिम सरकार पर निर्णय लेने के उद्देश्य से वाइसरॉय की सहायता से भारतीय नेताओं के साथ बातचीत के लिए कैबिनेट मिशन भारत आ पहुंचा।

सभी प्रकार के भारतीय नेताओं के साथ एक लम्बी बातचीत हुई। जिसमें समय-समय पर पाकिस्तान और मुसलमानों के अपने भाग्य का फैसला स्वयं करने के अधिकार के मुद्दे पर जिन्ना की हठधर्मी के कारण, व्यवधान पड़ता रहा। काफी वाद-विवाद के बाद मिशन ने इस परिस्थिति से निपटने के लिए एक जटिल किन्तु स्वीकार्य योजना प्रस्तुत की। यद्यपि वाइसरॉय तथा मिशन के एक अन्य सदस्य (अलेक्ज़ेंडर) जिन्ना के प्रति सहानुभूति रखते थे लेकिन मिशन, लीग की पूर्ण पाकिस्तान (जिसमें सभी मुस्लिम बाहुल्य क्षेत्रों के सम्पूर्ण प्रदेश शामिल किए जाने की मांग थी) की मांग स्वीकार करने की स्थिति में नहीं था क्योंकि यदि सांप्रदायिक आधार पर अपने भविष्य का फैसला करने का अधिकार मुसलमानों को दिया जाता है तो यह अधिकार उन गैर-मुस्लिमों को भी देना होगा जो पश्चिमी बंगाल, पूर्वी पंजाब तथा असम में बहुमत में हैं, इस आधार पर बंगाल, पंजाब तथा असम को विभाजित करना होगा जोकि सभी क्षेत्रीय तथा भाषायी संबंधों के विरुद्ध होगा, आर्थिक एवं प्रशासनिक समस्याओं को चिरस्थायी बना देगा और इस पर भी संभव है कि लीग को मान्य न हो (क्योंकि जिन्ना अब ''खंडित तथा सड़े गले पाकिस्तान'' के स्वीकार करने के एकदम विरोधी बन चुके थे)। बड़े और छोटे पाकिस्तान की दोनों ही प्रकार की संकल्पनाओं को अस्वीकार करते हुए मिशन ने एक केन्द्र के अंतर्गत सभी भारतीय प्रदेशों के ढीले-ढाले संघ की योजना प्रस्तुत की जिसमें केवल रक्षा विभाग, विदेशी मामलों के विभाग तथा संचार विभाग ही संघ के नियंत्रण में होने थे, अन्य सभी विभाग विद्यमान प्रादेशिक विधान सभाओं के पास ही रहने थे। इसके उपरांत प्रादेशिक विधान सभाओं को विधान परिषद का चुनाव करना था जिसमें प्रदेश की जनसंख्या के हिसाब से प्रत्येक प्रदेश के लिए स्थान निश्चित किए जाने थे, यह स्थान विभिन्न समुदायों को प्रदेश में उनकी जनसंख्या के अनुपात के अनुसार दिए जाने थे। इस रूप में निर्वाचित सदस्यों को तीन खंडों में बांटा जाना था''। खंड ए को गैर मुस्लिम बाहुल्य प्रांत (बम्बई, संयुक्त प्रांत बिहार, केन्द्रीय प्रांत, उड़ीसा तथा मद्रास) के लिए होना था, खंड बी को उत्तर-पश्चिमी मुस्लिम बाहुल्य प्रांतों (सिंध, उत्तर-पश्चिमी सीमांत प्रांतों तथा पंजाब) तथा खंड सी को उत्तर-पूर्व (बंगाल एवं असम) के मुस्लिम बाहुल्य प्रांतों के लिए होना था।

इन सभी खंडों को प्रादेशिक संविधान तैयार करने का अधिकार था। आवश्यकता पड़े तो वे सामूहिक संविधान तैयार कर सकते थे। यह खंड प्रादेशिक एवं खंडीय विधान सभाएं तथा कार्यकारिणी का भी गठन कर सकते थे। चूँकि इन दीर्घ आवधिक समाधानों में काफी समय लग सकता था इसलिए मिशन ने अल्प आवधिक समाधान भी प्रस्तावित किए जिसके तहत केन्द्र में तत्काल अंतरिम सरकार का गठन होना था जिसमें सभी मुख्य राजनैतिक दलों की सहभागिता होनी थी तथा सभी विभागों को भारतीयों के नियंत्रण में रहना था। मिशन का लक्ष्य पाकिस्तान योजना को अस्वीकार करके कांग्रेस को शान्त करना तथा कुछ निकटवर्ती मुस्लिम बाहुल्य क्षेत्रों को लेकर स्वतंत्र मुस्लिम क्षेत्रों के गठन के द्वारा एक समझौता प्रस्तुत करना था। शुरू-शुरू में कांग्रेस और लीग दोनों ही इस प्रस्ताव को स्वीकार करने के लिए तैयार थे। लेकिन शीघ्र ही प्रान्तों के समूहों अथवा खंडों के गठन के प्रावधानों को लेकर समस्या उठ खड़ी हुई। लीग का मानना था कि समूहबद्धता अनिवार्य होनी चाहिए क्योंकि लीग को यह सम्भावना नज़र आ रही थी कि इससे वह उत्तर-पश्चिमी सीमांत प्रांतों (खंड बी) के कांग्रेस प्रशासित मुस्लिम बाहुल्य प्रांतों तथा असम (खंड सी) को तोड़ कर (उत्तर-पश्चिमी सीमांत प्रांतों तथा असम में अपने-अपने खंडों में कांग्रेस बहुमत अल्पमत में परिवर्तित हो जाएगा) अपने अन्दर शामिल करते हुए पूर्ण पाकिस्तान बना सकेगी। उत्तर-पश्चिमी सीमान्त प्रान्तों तथा असम के खंड बी और सी में लाए जाने के उनके विरोध के कारण ही कांग्रेस समूहबद्धता को वैकल्पिक माने जाने पर बल दे रही थी। कांग्रेस प्रस्तावित विधान परिषद में रियासतों के निर्वाचित सदस्यों के लिए कोई प्रावधान न होने पर भी असंतुष्ट थी, यद्यपि कांग्रेस विधान परिषद के चुनाव के सीमित और अप्रत्यक्ष स्वरूप (जो कि ऐसे चुनावों में वयस्क मताधिकार की इसकी पूर्व की मांगों के विरुद्ध था)को स्वीकार करने के लिए तैयार थी। जुलाई 1946 के अन्त तक कांग्रेस और लीग ने कैबिनेट मिशन योजना पर निर्भर रहने के विरुद्ध निर्णय लिया। इसका मुख्य कारण समूह प्रणाली पर उनके मतभेद तथा कुछ हद तक मिशन का अपने आशयों को स्पष्ट न कर पाना था।

सांप्रदायिक आधार पर भिन्न स्वतंत्र इकाइयों के गठन, जोकि देश के "खंडित" होने (केवल भारतीयों में मतभेद के नाम पर) के आधार के रूप में आरंभ हुए थे, के साथ एक महत्वहीन केन्द्र के अंतर्गत अव्यवस्थित भारत स्थापित करने की अपनी व्याकुलता में मिशन सारी महत्वपूर्ण सूक्ष्मताओं पर ध्यान देने में सफल रहा। तथापि नवउपनिवेश-वादियों के लिए जगह बनाने की जल्दी में ब्रिटिश कैबिनेट मिशन योजना से अधिक कुछ कर भी नहीं सकते थे। जुलाई 1946 के बाद तो उन्होंने एक कमज़ोर भारतीय संघ बनाए रखने की आवश्यकता पर भी गम्भीरतापूर्वक चर्चा नहीं की।

### 35.3.4 सांप्रदायिकता का ज्वार और अंतरिम सरकार

कैबिनेट मिशन योजना से पहुंचने वाले धक्के ने लीग को इतना व्याकुल बना दिया कि वह तुरंत "सीधी कार्रवाही" (Direct action) अथवा अपने चुनावोपरांत नारे "लड़के लेंगे पाकिस्तान" की प्रत्यक्ष अभिव्यक्ति के ज़रिए स्थिति अपने पक्ष में करने के लिए तत्पर हो गयी। इसके परिणामस्वरूप सर्वप्रथम सीधी कार्रवाही दिवस (Direct action day) (16 अगस्त 1946) को सांप्रदायिक दंगे शुरू हुए और प्रतिक्रिया की एक पूरी शृंखला के रूप में पूरे देश, विशेषकर, बम्बई, पूर्वी बंगाल और बिहार तथा यू.पी., पंजाब एवं उत्तर पश्चिमी सीमांत प्रांतों के कुछ भागों में फैल गए। कलकत्ता में लीग ने बंगाल के लीग अध्यक्ष सुहरावर्दी के प्रोत्साहन से 16 अगस्त को गैर मुस्लिमों पर अचानक बड़े पैमाने पर हमले शुरू कर दिए। इस अप्रत्याशित हमले से अपने ऊपर काबू पाते ही हिन्दुओं और सिक्खों ने भी हमले शुरू किये। शहर के बीचों बीच मौजूद सेना ने प्रतिक्रिया दिखाने में कोई जल्दबाज़ी नहीं की और जब तक सेना ने हस्तक्षेप किया, तब तक तीन दिन के अन्दर 4000 लोग मारे जा चुके थे और 10,000 से अधिक घायल हो चुके थे। सितम्बर 1946 में बम्बई में सांप्रदायिक दंगे शुरू हुए लेकिन उतने बड़े पैमाने पर नहीं हुए जितने कलकत्ता में हुए थे फिर भी 300 से अधिक लोग इस दंगे में मारे गए। अक्तूबर 1946 में नोआखाली तथा तिपेरा में दंगे भड़के जिसमें 400 लोग मारे गए और बड़े पैमाने पर महिलाओं पर अत्याचार, लूट खसोट और आगज़नी हुई। नोआखाली का बिहार में तुरंत बदला लिया गया। अक्तूबर के अंत में लगभग 7000 लोगों को बर्बरतापूर्वक मौत के घाट उतार दिया गया यू.पी. भी इस नर संहार में पीछे नहीं रहा और केवल गढ़ मुक्तेश्वर में लगभग 10,000 लोगों का कत्ले आम हुआ। यू.पी. एवं बिहार के कत्लेआम की प्रतिक्रिया उत्तर पश्चिमी सीमांत प्रांतों (विशेषकर हज़ारा) में प्रत्याशित थी फलतः भयंकर सांप्रदायिक दंगे हुए और पंजाब विशेषकर लाहौर, अमृतसर, मुलतान अटक और रावलपिंडी के मुसलमान और हिन्दू इसकी भयंकर चपेट में आए तथा 1947 के मध्य तक लगभग 5000 लोग मारे गए। यह मात्र शुरुआत थी क्योंकि पूरे 1947 तथा 1948 के शुरू में सांप्रदायिक दंगे निरंतर चलते रहे जिसमें लाखों लोग मारे गए अथवा घायल हुए तथा महिलाओं के अपहरण एवं बलात्कार, निजी संपत्ति की भयंकर क्षति तथा धार्मिक स्थलों को अपवित्र करने की असंख्य घटनाएं हुईं। लाखों लोग इन दंगों के कारण शरणार्थी बन गए। इस प्रक्रिया में कुछ स्थानों पर (जैसे पंजाब) अत्यधिक बड़े पैमाने पर जनसंख्या विस्थापित हुई जबकि दूसरे स्थानों (जैसे बंगाल) पर विस्थापन की प्रक्रिया में काफ़ी लंबे समय तक लोग झुंड के रूप में अपने घरों को छोड़ कर जाते रहे। मानवीय कष्टों तथा अमानवीकरण की यह सीमा, देश के आर्थिक एवं सामाजिक ढांचे का इस प्रकार पूर्णतः अस्त-व्यस्त होना, 1946 एवं 1948 के मध्य उप महाद्वीप में अपने ही संगे संबंधियों की निर्मम हत्या तथा इस काल के उपरांत भी ऐसी स्थिति का रह रहकर उठना विश्व सभ्यता के इतिहास में शायद ही इससे पूर्व कभी घटा हो।

ये सांप्रदायिक दंगे ठीक उसी समय बढ़ने शुरू हुए जिस समय अल्पावधि समाधान के रूप में कैबिनेट मिशन द्वारा प्रस्तावित केन्द्र में अंतरिम सरकार सितम्बर 1946 को गठित की गयी। अंतरिम सरकार के गठन में वाइसरॉय को उन्हीं समस्याओं का सामना करना पड़ा जो शिमला कांफ्रेंस के समय उठी थीं। जिन्ना ने इस प्रकार की सरकार में एक सिख एवं एक अनुसूचित जाति सदस्य के अतिरिक्त कांग्रेस एवं लीग के क्रमशः 5 हिन्दू और 5 मुस्लिम नामज़द सदस्यों के रूप में बराबरी के प्रतिनिधित्व की मांग की, जैसा कि अपेक्षित था। कांग्रेस ने इस प्रकार के बराबरी के प्रस्ताव को अस्वीकार कर दिया तथा साथ ही यह मांग उठाई कि कांग्रेस को अधिकार होना चाहिए कि नामज़दगी की अपनी सूची में हिन्दू, मुस्लिम और अन्य किसी भी समुदाय के सदस्यों को किसी भी अनुपात में शामिल करे तथा

नई सरकार वाइसरॉय की सलाहकार समिति के बजाए एक कैबिनेट के रूप में कार्य करें। वैवेल ने जून 1945 में शिमला कांफ्रेंस की भांति ही इस आधार पर अपने प्रयास रोक दिये होते कि यदि मुख्य राजनैतिक दलों में मतभेद बने रहे तो किसी प्रकार की सफलता अर्जित नहीं की जा सकती, लेकिन भारत में कैबिनेट मिशन आने के तुरंत पहले और तुरंत बाद विस्तृत पैमाने पर हुई जन कार्रवाई के रूप में मिली सख्त चेतावनी ने उसे ऐसा न करने दिया (देखें भाग 10)। कुछ ही समय पूर्व हुए नौ सेना विद्रोह, और डाक और रेल कर्मचारियों की हड़ताल से उत्पन्न आशांति एवं अव्यवस्था से बाध्य होकर ही वैवेल ने, यद्यपि थोड़े समय के लिए ही, भारतीय जन समुदाय के बीच सबसे प्रभावशाली दल, कांग्रेस के साथ अंतरिम सरकार बनाई। वैवेल का मानना था कि यदि कांग्रेस सत्ता संभालती है तो वे स्वयं महसूस करेंगे कि अराजक तत्वों पर पूर्ण नियंत्रण आवश्यक है। संभव है कि वे कम्युनिस्टों को भी दबा दें और स्वयं अपने अन्दर के वाम पक्ष को भी सर्वथा समाप्त कर दें। वैवेल यह भी आशा कर रहा था कि "कांग्रेस के नेता प्रशासन में इतने व्यस्त हो जाएंगे कि राजनीति के लिए उनके पास बहुत कम समय बचेगा।" (वैवेल द्वारा भारत सचिव को लिखा गया पत्र, 31 जुलाई, 1946)। लीग के विरुद्ध प्राथमिकता दिये जाने के वाइसरॉय के कदम से प्रफुल्लित तथा अंतरिम सरकार के गठन को हितकर एवं सत्ता के शांति पूर्ण हस्तांतरण की दिशा में एक प्रगति के रूप में देखते हुए कांग्रेस ने 2 सितम्बर को जवाहरलाल नेहरू के नेतृत्व में कैबिनेट के गठन का निश्चय किया। लेकिन परिस्थितियां कुछ इस प्रकार सामने आयीं कि कांग्रेस की अंतरिम सरकार दुर्भाग्यपूर्ण स्थिति में पहुंच गयी, अपनी तमाम चिंताओं के बावजूद कांग्रेस को सांप्रदायिक दंगों के ज्वार के समक्ष असहाय होकर ब्रिटिश सेनाध्यक्ष के मातहत दंगा ग्रस्त क्षेत्रों में सेना भेजनी पड़ी। वाइसरॉय की अध्यक्षता में अंतरिम सरकार कभी-कभी वाइसरॉय के वीटों का भी प्रतिकार नहीं कर पाती थी। अंतरिम सरकार की स्थिति तब और खराब हो गयी जबकि वैवेल ने लीग को उनके सीधी कार्रवाई पर बने रहने के बावजूद तथा कांग्रेस द्वारा एक राष्ट्रवादी मुस्लिम सदस्य के मनोनीत किए जाने के बदले लीग द्वारा अनुसूचित जाति सदस्य मनोनीत किए जाने पर सहमत होकर 26 अक्तूबर 1946 को सरकार में शामिल होने पर राज़ी कर लिया। तदोपरांत अंतरिम सरकार लीग और कांग्रेस खेमों में बंट गयी तथा नौकरशाही के अंतर्गत दोनों खेमों के समर्थकों के आपसी टकराव एवं लीग के सदस्य की अंतरिम सरकार की गतिविधियों में व्यवधान डालने की नीति के कारण सरकार का अस्तित्व केवल नाम मात्र को ही रह गया। किसी देश की केन्द्रीय सरकार में ऐसा विभाजन तथा मुख्य समुदायों के बीच ऐसी कटुता को देखते हुए देश की एकता तथा उसकी स्वतंत्रता की आशा धूमिल हो रही थी। कांग्रेस के अग्रणी नेता 1947 तक वाद-विवाद, सांप्रदायिक दंगों और झगड़ों से तंग आकर किसी भी प्रकार की आशा छोड़ बैठे थे। वे अब इस भयावह परिस्थिति से किसी भी कीमत पर बाहर आना चाहते थे यहां तक कि वे अपने राष्ट्रवादी सपनों को भी दांव पर लगाते हुए देश के विभाजन की कीमत पर भी आजादी खरीदने को तैयार थे।

उनके समक्ष निम्न विकल्प रह गए थे ;

- नाम मात्र की अन्तरिम सरकार में काम करने से इंकार कर देना,
- जन साधारण के बीच भाई चारे की भावना के लिए लोगों से अपील करना,
- दंगाइयों को उकसाने वालों का पर्दाफाश करना
- मुस्लिम और हिन्दू दोनों ही सम्प्रदायवादियों के विरुद्ध लोगों को संगठित करने का प्रयास करना, तथा
- साथ ही साथ अंतिम साम्राज्यवाद विरोधी जन आंदोलन शुरू करना तथा जनता में एकता लाने का प्रयास करना।

यद्यपि विकल्प की प्राप्ति में काफ़ी समय लग सकता था तथा इसका रास्ता अत्यंत जोखिमपूर्ण एवं दुष्कर था तथापि उनके लिए जो जनता की शक्ति एवं निर्णायक भागीदारी में विश्वास रखते थे, यह असंभव कार्य नहीं था।

**बोध प्रश्न 2**

1 निम्न वक्तव्यों को पढ़ें और उनके सामने सही ( ✓ ) अथवा गलत ( X ) का निशान लगाएँ।

i) शिमला कांफ्रेंस इसलिए असफल रही क्योंकि कांग्रेस मुसलमानों का प्रतिनिधित्व नहीं करना चाहती थी। ☐

ii) कैबिनेट मिशन ने अंतरिम-सरकार के प्रस्ताव को नामंज़ूर कर दिया। ☐

iii) लीग की सीधी कार्रवाई (Direct action) के कारण काफ़ी बड़े पैमाने पर सांप्रदायिक दंगे हुए। ☐

iv) अंतरिम सरकार में मुस्लिम लीग के शामिल होने के बाद अंतरिम सरकार की गतिविधियों में सुधार हुआ। ☐

2 अंग्रेज़ों ने समझौते के प्रयास क्यों किए? दस पंक्तियों में लिखें।

..........................................................................................................

..........................................................................................................

..........................................................................................................

..........................................................................................................

..........................................................................................................

..........................................................................................................

..........................................................................................................

..........................................................................................................

..........................................................................................................

..........................................................................................................

3 इंग्लैंड में लेबर पार्टी की विजय का भारतीय राजनीतिक परिस्थिति पर क्या प्रभाव पड़ा। पांच पंक्तियों में लिखें।

..........................................................................................................

..........................................................................................................

..........................................................................................................

..........................................................................................................

..........................................................................................................

..........................................................................................................

## 35.4 जन आंदोलन

1945 और 1947 के बीच आम रुझान की लाक्षणिक अभिव्यक्ति मुख्यतः दो रूपों में हुई

1 औपनिवेशिक प्रशासन के साथ सीधे टकराव के रूप में

2 औपनिवेशिक प्रशासन के भारतीय समर्थकों, जिनमें कुछ पूंजीपति और रजवाड़े तथा अधिकतर ज़मींदार और महाजन मुख्य थे, का विरोध करते हुए अप्रत्यक्ष रूप में औपनिवेशिक प्रशासन के टकराव के रूप में।

इन दोनों ही रुझानों के अंतर्गत घटने वाली घटनाओं की संख्या इतनी अधिक है कि केवल मुख्य घटनाओं पर ही चर्चा कर पाना संभव है।

### 35.4.1 प्रत्यक्ष टकराव

हम यहां औपनिवेशिक प्रशासन के साथ हुए कुछ मुख्य प्रत्यक्ष टकरावों की चर्चा करेंगे।

## 1. आज़ाद हिन्द फ़ौज पर चलाया गया मुकद्मा (आई.एन.ए. ट्रायल्स)

टकराव की शुरुआत आज़ाद हिन्द फ़ौज के कैदी अफसरों पर मुकद्मा चलाए जाने से हुई (आज़ाद हिन्द फ़ौज की भूमिका के संबंध में आप इकाई 34 में पढ़ चुके हैं) नवम्बर 1945 में मुकद्में की शुरुआत होने तक नेताजी सुभाषचन्द्र बोस तथा उनकी आज़ाद हिन्द फ़ौज के कारनामे भारतीय जनता को पता चल चुके थे तथा उन पर इसका काफ़ी प्रभाव भी पड़ा था। आज़ाद हिन्द फ़ौज के तीन अफसरों (शहनवाज़ ख़ान, गुरबख्श सिंह ढिल्लों तथा प्रेम कुमार सहगल) जो कि मुस्लिम, सिख और हिन्दू सम्प्रदाय से संबंधित थे और जन एकता का प्रतीक थे, को दिल्ली के लाल किले में अदालती कटघरे में खड़ा करने पर देशव्यापी विरोध की अग्नि फैल गयी। जगह-जगह पर सभाएं और जुलूस आयोजित किए गए, रोषपूर्ण भाषण दिए गए तथा हर संभव तरीके से विरोध की अभिव्यक्ति की गयी और इन कैदियों को तुरंत छोड़े जाने की मांग की गयी।

The Hindustan Times

LARGEST CIRCULATION IN NORTHERN, NORTH-WESTERN & CENTRAL INDIA

DELHI EDITION

NEW DELHI TUESDAY, NOVEMBER 6, 1945

PRICE 1½ ANNAS

# I.N.A. TRIAL OPENS IN RED FORT

WOMEN WARRIORS | SHAH NAWAZ | DHILLON | SAHGAL | DEFENCE COUNSEL

NIGHT OF GUN BATTLES IN BATAVIA

WARN ANNAMITES OF REPRISALS

BRITISH DOCK STRIKE ENDS

## CHARGES OF MURDER AND WAGING WAR AGAINST KING

DEFENCE ASKS FOR THREE WEEKS' ADJOURNMENT

NEW DELHI, Monday.—A trial unprecedented in British Indian history, whose significance was heightened by the fact that Pandit Jawaharlal Nehru donned after about 25 years

Syria A Potential Trouble Spot In Mid-East

Curfew On Road Traffic Tightened In Palestine

**15. आज़ाद हिन्द के सिपाहियों पर मुक़दमें की अखबार में रिपोर्ट**

इस प्रक्रिया में कलकत्ता की घटनाएं शेष स्थानों से कहीं अधिक महत्वपूर्ण रहीं। पूरा शहर आन्दोलित हो उठा। 21 नवम्बर, 1945 को फारवर्ड ब्लाक के आह्वान पर छात्रों ने डलहौज़ी स्क्वायर पर प्रशासनिक आवासों की ओर मार्च किया, रास्ते में ही इस मार्च में स्टूडेंट फेडरेशन (कम्युनिस्ट पार्टी की छात्र इकाई) तथा लीग स्टूडेंट आर्गेनाइज़ेशन के सदस्य भी शामिल हो गए। इन छात्रों ने साम्राज्यवाद विरोधी जन एकता की आवश्यकता दर्शाने के लिए कांग्रेस मुस्लिम लीग तथा लाल झंडे को एक साथ फहराया। धरमतला स्ट्रीट पर सशस्त्र पुलिस ने इन छात्रों को रात भर रोके रखा और अगले दिन उन पर गोली चला दी जिसमें एक हिन्दू और एक मुसलमान छात्र मारा गया। इस गोली कांड से पूरे शहर में आक्रोश फैल गया। कलकत्ता की जनता ने शहर में हलचल मचा दी। यातायात ठप्प हो गया। कारों और लारियों में आग लगा दी गयी और सड़कों पर नाकेबंदी कर दी गयी। सिख टैक्सी ड्राइवरों, ट्राम कर्मचारियों और फैक्ट्री मज़दूरों ने काम रोक दिया। 22 और 23 नवम्बर को पूरे दो दिन तक उत्तेजित जन समूह पुलिस से टकराते रहे। उन पर गोलियां चलीं और जो शस्त्र उन्हें मिल सके उनसे इन जन समूहों ने भी पुलिस पर हमले बोले। 24 नवंबर, 1945 को अंग्रेज़ अव्यवस्था पर काबू पाने में सफल हो सके। लेकिन तब तक पुलिस 14 मौकों पर गोली चला चुकी थी, 33 जानें जा चुकी थीं तथा सैंकड़ों नागरिक, पुलिस वाले और सैनिक घायल हो चुके थे एवं लगभग 150 पुलिस और सैनिक वाहन नष्ट हो चुके थे।

आज़ाद हिन्द फ़ौज़ के प्रश्न पर पूरे देश विशेषकर कलकत्ता में हुआ संघर्ष व्यर्थ नहीं गया। अधिकारियों को इन संघर्षों के समक्ष झुकना पड़ा। दिसम्बर 1945 में उन्होंने घोषणा

की कि आज़ाद हिन्द फ़ौज के केवल उन्ही सदस्यों पर मुकदमा चलाया जाएगा जिनके विरुद्ध हत्या एवं बर्बरता का अभियोग है तथा इसके तुरंत बाद जनवरी 1946 में कैदियों के प्रथम समूह के विरुद्ध दिया गया फैसला वापस ले लिया गया। आरंभिक दौर में उपेक्षा का रवैया दिखाने के बाद सरकार ने फौरन आज़ाद हिन्द फ़ौज के संघर्ष के महत्व एवं भारतीय राष्ट्रवाद के साथ उसके संबंध को पहचानने में देर नहीं लगायी। अब सरकार ने यह समझ लिया था कि यह संघर्ष सांप्रदायिकता की भावना से परे हैं और इससे जुड़ी हुई नागरिक अशांति राज के लिए घातक सिद्ध हो सकती है। अप्रत्याशित रूप में भारतीय जन प्रतिनिधि चाहे वे राष्ट्रवादी हो अथवा सांप्रदायवादी जन संघर्ष के इस रूप की गम्भीरता समझाने में असफल रहे जबकि ब्रिटिश उसकी गम्भीरता समझा रहे थे। इन नेताओं ने जन आंदोलनों को केवल पुलिस के साथ व्यर्थ झड़पों में ऊर्जा नष्ट करने के रूप में लिया। जनता के सामूहिक उत्साह के ज्वार के विरुद्ध कांग्रेस की कार्यकारी समिति ने 7-11 दिसम्बर 1945 की अपनी एक बैठक में जनसाधारण को अहिंसा का रास्ता अपनाने की आवश्यकता का स्मरण दिलाया। कांग्रेस और लीग का जन संघर्ष के प्रति इस प्रकार का रवैया होने के पीछे दो ही कारण हो सकते थे ब्रिटिश राज के साथ समझौते के पक्ष में पूर्ण प्रतिबद्धता अथवा अंतिम चरण तक संघर्ष के बजाए राजनैतिक फायदा उठाने की नीयत से आज़ाद हिन्द फौज़ के प्रश्न अथवा इस तरह के किसी भी मुद्दे पर समर्थन देने के लिए तभी तैयार हो सकते थे जब उन्हें आगामी चुनावों में इससे लाभ होता नज़र आता, इससे अतिरिक्त उन्हें इसमें रुचि नहीं थी, उदाहरण के लिए पंजाब मे चुनाव के दौरान कांग्रेस ने आश्वासन दिया कि आजाद हिन्द फ़ौज के सभी फ़ौजी आज़ाद भारत की सेना में भर्ती कर लिए जायेंगे। मानसिक रूप से इस समय कांग्रेस ने 90 प्रतिशत भारतीयों की उत्कंठाओं की उपेक्षा करते हुए 10 प्रतिशत भारतीयों की चुनावी राजनीति को महत्व दिया।

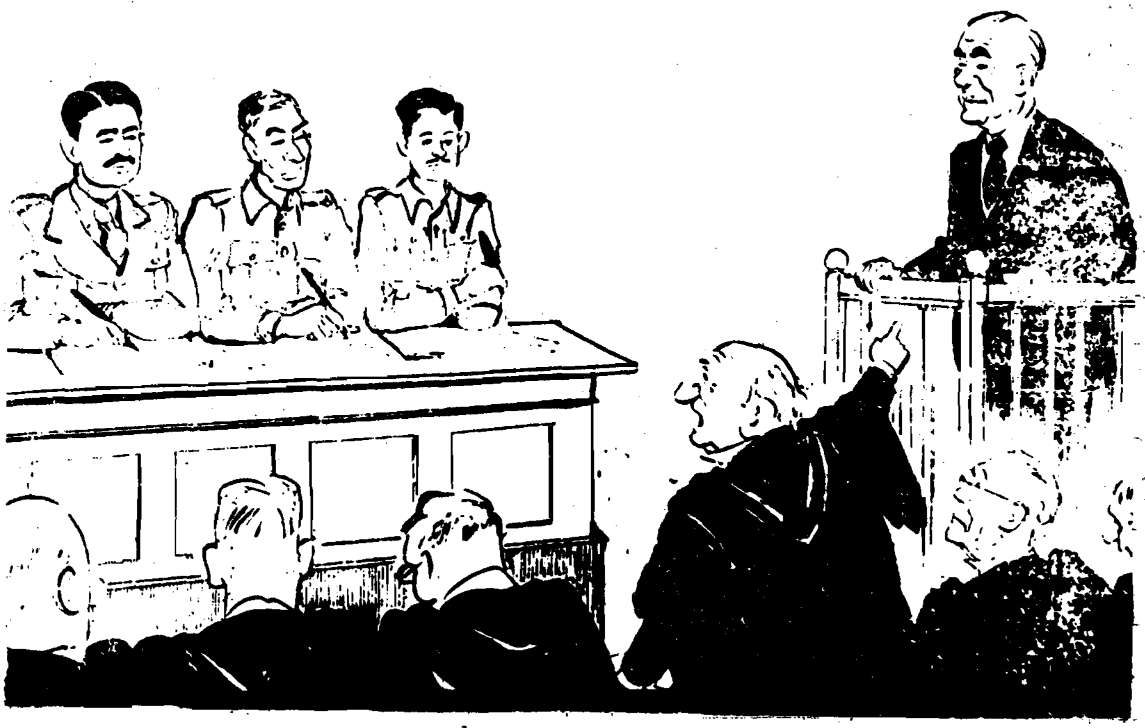

16. आज़ाद हिंद फ़ौज के मुकद्दमे का कार्टून

आज़ाद हिन्द फ़ौज़ का संघर्ष 1945 के अंत तक ही समाप्त नहीं हो गया। फरवरी 1946 में कलकत्ता के अन्दर ही यह संघर्ष फिर शुरू हुआ। आज़ाद हिन्द फ़ौज के राशिद अली को सात साल की कैद की सज़ा के विरुद्ध विरोध प्रकट करने के लिए लीगी छात्रों ने 11 फरवरी 1946 को हड़ताल का आह्वान किया। कम्युनिस्टों की स्टूडेंट फैडरेशन समेत अन्य छात्र संगठन भी उत्साह पूर्वक बिना किसी साम्प्रदायिक भेदभाव के एक जुटता के साथ इस हड़ताल में शामिल हो गए। इस विरोध प्रदर्शन ने उस समय भयंकर लड़ाई का रूप ले लिया जब युवा मज़दूर वर्ग भी इसमें शामिल हो गया। 12 फ़रवरी को एक विशाल रैली (जिसमें लीग, राष्ट्रवादी एवं कम्युनिस्ट वक्ताओं ने रैली को संबोधित किया) तथा आम हड़ताल हुई और कलकत्ता तथा इसके औद्योगिक उपनगर में जन-जीवन अस्त

व्यस्त हो गया। परिणामतः पुलिस और सेना के साथ झड़पें हुईं, जगह-जगह पर नाकेबंदी हुई तथा सड़कों पर कई स्थानों पर रह-रह कर भिड़त होती रही। दो दिनों तक यह मार काट का सिलसिला चला जिसमें 84 लोग मारे गए और 300 घायल हुए अंततः दो दिन बाद अधिकारी गण ''व्यवस्था'' पर काबू पाने में सफल हुए। तथापि इसका तनाव न केवल कलकत्ता एवं बंगाल में बल्कि देश के अन्य हिस्सों में भी बना रहा।

Amrita Bazar Patrika

78th YEAR OF PUBLICATION

Editor—TUSHAR KANTI GHOSH

RATINGS SEIZE 20 SHIPS & ARMOURY

KARACHI STRIKE SERIOUS

Heavy Gunfire And Shelling Resumed

H. M. I. S. HINDUSTAN SURRENDERS: PARATROOPS OCCUPYING VESSEL

BRISK EXCHANGE OF SHOTS WITH BRITISH MILITARY IN BOMBAY

Air And Naval Reinforcements Being Rushed To Areas Of Unrest

British Prime Minister Announces Royal Navy Vessels Proceeding To Bombay

Bombay & Karachi Happenings

C. ASSEMBLY'S CONCERN

BOMBAY OBSERVES HARTAL

Police Open Fire A Number Of Times On Crowds

CITY'S TRAFFIC PARALYSED: HEAVY CASUALTIES FEARED

R.I.N. STRIKE IN CALCUTTA

Situation Unchanged: Further Demands Put Forward

MADRAS RATINGS STAGE SYMPATHY DEMONSTRATION

Naval Ratings' Strike Spreads To Delhi

17. शाही भारतीय नौ सेना विद्रोह की अखबार में रिपोर्ट

**II शाही भारतीय नौसेना विद्रोह (RIN Revolt)** फ़रवरी 1946 में कलकत्ता में संघर्ष के दूसरे दौर के तुरंत बाद ही विश्व युद्ध के बाद का संभवतः सबसे सीधा और भयंकर साम्राज्य विरोधी टकराव प्रस्फुटित हुआ और वह था शाही भारतीय नौ सेना (रॉयल इण्डियन नेवी) का विद्रोह। ये नौ सैनिक जिन्होंने देश से बाहर कार्य करते हुए बाहर की दुनिया देखी थी और तौर तरीकों से परिचित थे, अपने अंग्रेज़ अधिकारियों के नस्लवादी बर्ताव से असंतुष्ट थे। इसके अतिरिक्त जनसाधारण से सामान्यतः अलग-थलग रखे जाने के बावजूद वे देश में व्याप्त अशांति और विशेषकर आज़ाद हिन्द फ़ौज के मुकद्में के प्रति पूर्णतः सजग थे। उनके अन्दर बढ़ रहा क्रोध अचानक उस भोजन को लेकर निकल पड़ा जो उन्हें दिया जाता था। 18 फ़रवरी, 1946 को बम्बई बंदरगाह में नौ सैनिक प्रशिक्षण पोत 'तलवार' पर नाविक ख़राब भोजन एवं नस्लवादी बर्ताव के विरोध में भूख हड़ताल पर बैठ गए अगले दिन उस क्षेत्र में लंगर डाले 22 अन्य जहाज़ इस हड़ताल में शामिल हो गए और तुरंत ही यह विरोध प्रदर्शन समुद्र तट पर कैसल एवं फोर्ट की बैरेकों तक फैल गया।

| हड़तालियों ने कांग्रेस, लीग और कम्युनिस्ट झंडे बुलंद किए। |
|---|

हड़तालियों ने एम. एस. ख़ान के नेतृत्व में नौ सेना केन्द्रीय समिति का गठन किया और अपनी मांगे तैयार की जिसमें राष्ट्रीय मांगे उतनी ही थी जितनी कि स्वयं उनकी विशिष्ट मांगे। ये मांगे थी:

- सभी आज़ाद हिन्द फ़ौज कैदियों की रिहाई
- अन्य सभी राजनीतिक कैदियों की रिहाई
- हिन्द चीन और जावा से भारतीय सैन्य टुकड़ियों की वापसी
- बेहतर भोजन

- सभ्य बर्ताव, और
- भारतीय और यूरोपीय नाविकों को बराबर वेतन।

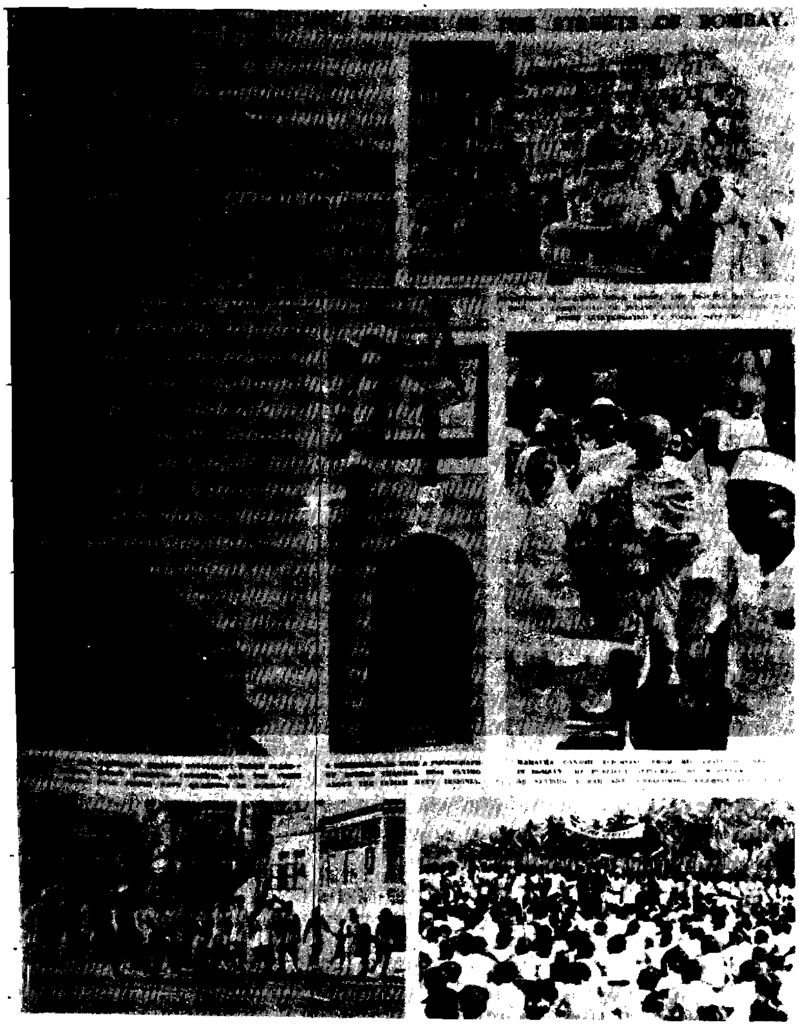

**18. बम्बई में भारतीय नौ सेना विद्रोह का एक दृश्य**

बीस फ़रवरी को बैरेक में हड़तालियों को सशस्त्र रक्षकों ने घेर लिया जबकि जहाज़ के अन्दर हड़तालियों के साथियों को ब्रिटिश बम वर्षक हवाई जहाज़ से उन्हें नष्ट कर दिये जाने की चेतावनी मिलती रही। लड़ाई अगले दिन तब शुरू हुई जब बैरक में छिपे भारतीय नाविकों ने बाहर निकलने की कोशिश की और कुछ जहाज़ों के भारतीय नाविकों ने (भारतीय नाविकों ने जहाज़ों को यूरोपीय अधिकारियों से अपने कब्ज़े में ले लिया था) आत्मसमर्पण के बजाए बन्दूक उठाने का निर्णय लिया। कराची में भी "हिन्दुस्तान" के विद्रोहियों के नेतृत्व में साहसिक लड़ाइयां लड़ी गयीं। 22 फरवरी तक 78 जहाज़ों, 20 बंदरगाहों तथा 20,000 भारतीय नौ सेनिकों समेत विद्रोह देश के तमाम अड्डों तक फैल गया।

1946 के क्रांतिकारी माहौल में विद्रोहियों को स्वाभाविक रूप से अभूतपूर्व जन समर्थन प्राप्त हुआ। कराची में हिन्दू और मुस्लिम छात्रों एवं मज़दूरों ने भारतीय नाविकों के समर्थन में प्रदर्शन किए और सेना तथा पुलिस से लड़ाइयां लड़ीं। बम्बई में भी नाविकों के प्रति आम सहानुभूति की भावना फैल गयी। लोग उनके लिए भोजन सामग्री पहुंचाते तथा दुकानदार उनसे निवेदन करते कि उन्हें जो भी पसंद आए वे ले जाएं। 22 फ़रवरी को कम्युनिस्टों ने कांग्रेस सोशलिस्टों के सहयोग से आम हड़ताल का आह्वान किया। इस दिन 300,000 मज़दूर कांग्रेस एवं लीग के निर्देशों की उपेक्षा करते हुए मिलें और फैक्ट्रियां छोड़कर सड़कों पर आ गए। इसके उपरांत बम्बई की वही हालत हो गयी जो कलकत्ता की थी। चारों और संघर्ष का माहौल था, नाकेबंदी, झड़पें हुई किंतु बम्बई में कलकत्ता से

अधिक दुखद स्थिति हुई और साथ ही यहां इस संघर्ष का केन्द्र बिन्दु मज़दूर वर्ग रहा। दो दिनों के भयंकर संघर्ष में कई सौ लोगों की जानें गयीं और हज़ारों लोग घायल हुए लेकिन बम्बई का यह संघर्ष आगे नहीं बढ़ पाया जिसके दो कारण थे।

i) ब्रिटिश राज ने इस संघर्ष को दबाने में अपनी सैन्य शक्ति का भरपूर प्रयोग किया।

ii) 23 फ़रवरी को वल्लभ भाई पटेल और जिन्ना ने संयुक्त रूप से भारतीय नाविकों से आत्मसमर्पण कराने का प्रयास किया। कांग्रेस और लीग ने यह वचन दिया कि वे भारतीय नाविकों के प्रति किसी प्रकार का भेद-भाव बरते जाने पर रोक लगायेंगे। लेकिन शीघ्र ही इस वचन को भुला दिया गया।

इस प्रकार शाही नौ सेना विद्रोह का अंत हुआ।

**III अन्य**

आजाद हिन्द फौज और शाही नौ सेना के संघर्षों के साथ-साथ इसी प्रकार के और भी प्रत्यक्ष साम्राज्यवाद विरोधी टकराव चलते रहे, यद्यपि वे इतने व्यापक एवं महत्वपूर्ण नहीं थे। इनमें से कुछ इस प्रकार थे।

- नागरिकों की राशन सप्लाई में कटौती के सरकारी फैसले के विरुद्ध जन आक्रोश जिसमें फ़रवरी 1946 के मध्य में इलाहाबाद के अन्दर 80,000 लोगों ने प्रदर्शन किया।
- अप्रैल 1946 में पुलिस की व्यापक हड़ताल जो वामपंथियों के नेतृत्व में मालावार, बिहार, पूर्वी बंगाल (विशेषकर ढाका), अडंमान और यहां तक कि दिल्ली में भी हुई।
- जुलाई 1946 में डाक कर्मचारियों ने अधिकारियों के निर्देशों का उल्लंघन करने का निर्णय लिया और एक बिन्दु पर सचमुच सारे काम ठप्प कर दिए। उनके प्रति सहानुभूति एवं कम्युनिस्टों के आह्वान पर 29 जुलाई 1946 को कलकत्ता में शांतिपूर्ण ढंग से हड़ताल की गयी।
- जुलाई 1946 में अखिल भारतीय रेलवे कर्मचारियों द्वारा हड़ताल की धमकी दिए जाने पर पूरे देश में उत्तेजना की लहर दौड़ गयी।

दरअसल 1946 में हड़ताल एवं औद्योगिक कार्रवाई रोज़मर्रा के कार्य बन चुके थे।

## 35.4.2 अप्रत्यक्ष टकराव

1946 में हड़तालों की लहर ने न केवल अधिकारियों के लिए बल्कि यूरोपीय एवं भारतीय दोनों स्थानों के पूंजीपतियों एवं जंग के ठेकेदारों के लिए भी समस्या खड़ी कर दी थी पिछले तमाम रिकार्डों को पीछे छोड़ते हुए 1946 की हड़तालों में 1, 629 बार काम ठप्प हुआ, 1,941, 948 मज़दूर प्रभावित हुए तथा 12,717,762 मानवीय श्रम के दिनों का नुकसान हुआ। बुनियादी तौर पर अपनी आर्थिक मांगों पर केन्द्रित इन हड़तालों ने चारों ओर प्रतिरोध एवं आत्मविश्वास की भावना जागृत कर दी तथा धर्म निरपेक्ष एवं सामूहिक कार्रवाई के लिए अधिकतर शहरों एवं उपनगरों में एक माहौल तैयार कर दिया। जहां एक ओर शहरी क्षेत्रों में उपनिवेशवाद के विरूद्ध व्यापक विमुक्ति आंदोलन की संभावना प्रबल प्रतीत हो रही थी वहीं दूसरी ओर ग्रामीण क्षेत्रों में ऐसी संभावना शहरों से भी अधिक प्रबल बन चुकी थी और यहां 1945 और 1947 के दौरान चौंका देने वाली घटनाएं घटित हो रही थीं। किसान, विशेषकर निर्धन किसान जिस प्रकार अपने भारतीय शोषकों के विरुद्ध उठ खड़े हुए और इस प्रक्रिया में उन्होंने अपने औपनिवेशिक मालिकों को कमज़ोर बनाना शुरू कर दिया, इसकी स्पष्ट व्याख्या के लिए ग्रामीण क्षेत्रों की घटनाओं को संक्षिप्त रूप में रेखांकित करने की आवश्यकता है।

**वर्ली संघर्ष**

युद्धोपरांत किसान आंदोलनों में सबसे व्यापक और पहले संघर्षों में से एक बम्बई के थाना जिले में वर्ली का संघर्ष था। वर्ली आदिवासी थाना जिले के उम्बेर गांव, दनानू, पालधार और जवाहर ताल्लुकों के गांवों के बहुसंख्यक किसान थे। निर्धनता के कारण उनकी अधिकतर ज़मीन ज़मींदारों और महाजनों के अधिकार में चली गई क्योंकि वे ऋण (जो कि

सामान्यतः अनाज के रूप में होता था।) का भुगतान नहीं कर सके थे जो कि उन्होंने अत्यंत उच्च ब्याज दर (पचास से दो सौ प्रतिशत) पर लिया था। उनमें से अधिकतर कच्चे काश्तकार के स्तर पर पहुंच गए थे और उन ज़मीनों पर जो पहले उनके अधिकार में थी, अनाज के आधे उत्पादन की ज़मींदारों और महाजनों की अदायगी करके काश्तकारी कर रहे थे। अन्य आदिवासियों को भूमिहीन खेतिहर मज़दूर बनकर ज़मींदारों को खेती योग्य ज़मीन पर काम करने पर मज़बूर होना पड़ा। कठिनाई के समय में वे महाजनों और ज़मींदारों से **खावती** अथवा अनाज के रूप में ऋण लेते रहे और भुगतान न कर पाने की स्थिति में ज़मींदार अथवा महाजन के लिए बिना किसी वेतन अथवा भुगतान के मजदूरी (वेथ-बेगार) करते थे। इस प्रक्रिया में बहुत से वर्ली, चाहे वे कच्चे काश्तकार हों अथवा भूमिहीन मज़दूर, व्यावहारिक रूप में जीवन भर के लिए बंधुआ बन गए। 1945 में पहली बार महाराष्ट्र किसान सभा ने वर्लियों को संगठित किया और गोदावरी पुरूलेकर जैसे बाहरी नेताओं के नेतृत्व में वर्लियों ने **वेथ-बेगार** करने से मना कर दिया। 1945 की शरद ऋतु में वर्ली मज़दूरों ने घास काटने की मज़दूरी में वृद्धि की मांग की और काम रोक दिया। ज़मींदारों ने गुण्डों और पुलिस की मदद से उन्हें आतंकित करने का प्रयास किया। दस अक्तूबर 1945 को लालवाड़ा में हड़तालियों की एक सभा पर पुलिस ने गोली भी चला दी जिसमें पांच लोग मारे गए और कई घायल हुए। लेकिन इस बर्बरता से वर्लियों का उत्साह कम होने के बजाय बढ़ गया और कुछ समय बाद ज़मींदारों को बढ़ी हुई दरों पर मज़दूरी देने की मांग माननी पड़ी। 1946 में वर्लियों का संघर्ष जंगल में कार्यरत मज़दूरों की मज़दूरी बढ़ाने को लेकर चलता रहा यह मज़दूर जंगल के ठेकेदारों के लिए पेड़ काटने और लकड़ी के लठ्ठों को एकत्र करने का काम करते थे। 1946 की शरद ऋतु में उन्होंने महीनों काम रोके रखा और स्थानीय सरकार (जिसका नेतृत्व कांग्रेस मंत्रिमंडल कर रहा था) के दमन की परवाह न करते हुए महाराष्ट्र टिम्बर मर्चेन्ट्स एसोसियेशन को मज़दूरी में वृद्धि करने पर मज़बूर करने में सफलता प्राप्त की। उनकी इस सफलता ने स्थानीय सरकार को इतना उत्तेजित कर दिया कि सरकार ने प्रतिशोध की भावना से भरकर वर्ली नेताओं के विरुद्ध अभियान चला दिया। भारी संख्या में उनके कार्यकर्त्ता गिरफ़्तार किए गए और उनके विरुद्ध अपराधिक अभियोग लगाए गए। 7 जनवरी 1947 को सबसे भयंकर घटना घटी जबकि पालधार ताल्लुक में पुलिस द्वारा गोली चलाने से पांच किसानों की मृत्यु हो गई। इसके बाद वर्ली आंदोलन धीरे-धीरे निष्क्रिय हो गया, यद्यपि कुछ आंदोलनकारी जिन्होंने जंगलों में शरण ली थी, स्वयं को संगठित करने का प्रयास करते रहे।

### बकाश्त किसान संघर्ष

वर्लियों के संघर्ष की तुलना में 1946-47 के दौरान बिहार में हुआ बकाश्त किसान संघर्ष अधिक व्यापक और निश्चित रूप से अधिक व्यग्र था। यह संघर्ष लगभग एक दशक के समय में धीरे-धीरे सीधे ज़मींदारों द्वारा प्रबंधित बकाश्त ज़मीन के मुद्दे पर खड़ा हुआ। काश्तकारों के साथ मिलकर खेती की जाने वाली **रैयती** ज़मीन तथा स्वयं अपने लिये रखी गयी **ज़िसती** ज़मीन जिस पर खेतिहर मज़दूर काम करते थे, के अतिरिक्त ज़मींदार बकाश्त ज़मीन को कच्चे काश्तकारों को किराए की विभिन्न दरों पर दे देते थे। चूंकि बकाश्त किसानों के पास कोई वैधानिक अधिकार न था इसलिए वे कभी भी ज़मीन से बेदखल कर दिए जाते थे, सामान्यतः ज़मींदार बेदखली इसलिये कराते थे क्योंकि हर नये असामी को न केवल उच्च दर के हिसाब से किराया देना होता था बल्कि उससे ज़मींदारों को नयी सलामी भी प्राप्त होती थी। इसके अतिरिक्त वे इस निरंतर बेदखली द्वारा किसानों को काश्तकारी कानून (1885 का काश्तकारी कानून जिसके तहत यदि बकाश्त काश्तकार निरंतर 12 वर्ष तक किसी ज़मीन पर बना रहा है और किराए का भुगतान करता है तो उसे दखलकार असामी के कुछ अधिकार प्राप्त हो जाते हैं) की परिधि से बाहर रख सकते थे, 1930 के दशक में जबकि सरकार ने असहाय बकाश्त किसानों को कुछ काश्तकारी अधिकार देने का विचार किया तो अचानक बेदखली की प्रक्रिया ने द्रुत गति पकड़ ली। यद्यपि सरकार (जो कि कांग्रेस की थी और ज़मीदारों के साथ अपनी मित्रता के लिए जानी जाती थी) के इस विचार में गंभीरता नहीं थी लेकिन ज़मीदार किसी प्रकार का जोखिम नहीं उठाना चाहते थे अतः वे बड़े पैमाने पर बेदखली करते रहे। किसान सभा के झंडे तले किसान 1937 से 1939 तक ज़मीदार के एजेंटों, सरकारी अधिकारियों एवं पुलिस के विरुद्ध जमकर संघर्ष करते रहे। यद्यपि द्वितीय विश्व युद्ध के आरंभ होते ही कुछ समय के लिए यह संघर्ष रुक गया और अस्थिर तथा अविश्वसनीय समझौते के द्वारा किसी प्रकार शांति

थोप दी गई लेकिन 1946 में यह मुद्दा उस समय फिर उठ खड़ा हुआ जब कांग्रेस ने बिहार में चुनाव लड़ा और ज़मींदारी व्यवस्था समाप्त करने का आश्वासन देना शुरू किया। अपनी ज़मींदारी समाप्त होने की संभावना को देखते हुए ज़मींदारों ने सोचा कि यदि वे सभी काश्तकारों से बकाशत ज़मीन ले लें और उन्हें ज़िरात में बदल सकें तो कम से कम वे अपनी निजी ज़मीन बचा ले जाएंगे। स्वाभाविक रूप से बकाशत किसानों ने बेदखली के प्रयास का जमकर विरोध किया और 1946 की गर्मियों तक मुंगेर, गया और शाहाबाद जिलों में एक साथ संघर्ष फिर से शुरू हो गया। फर्जी रिकार्डों पर आधारित कोर्ट के फ़ैसले के साथ अपने लठैतों को लेकर ज़मींदार काश्तकारों को बकाश्त ज़मीन से बेदखल करने निकल पड़े। किसान सभा के नेतृत्व में काश्तकारों ने इसका प्रतिरोध करते हुए सत्याग्रह किया और हिंसात्मक टकराव पर उतर आये। इस प्रक्रिया में लूट एवं आगजनी की घटनाएं हुईं, लोग मारे गए और घायल हुए, गिरफ्तारियां हुईं और शीघ्र ही आंदोलन दरभंगा, मधुबनी, मुज़फ़्फरपुर, और भागलपुर में भी फैल गया। यह टकराव कटाई के मौसम में और भी बढ़ गया जबकि उन्हें अपनी उस फसल को ज़मींदारों से बचाना पड़ा जो उन्होंने पहले ही उगा रखी थी। इस संघर्ष में महिलाएँ और बच्चे भी शामिल हो गए और ज़मींदारों के आदमियों के आक्रमण को रोकने के लिए किसान कार्यकर्त्ता दल तैयार किए गए। बिहार बकाश्त विवाद समझौता ऐक्ट 1947 के रूप में सरकार का इस टकराव को समाप्त करने का अनमना प्रयास इस संघर्ष पर कोई विशेष प्रभाव नहीं छोड़ पाया तथा संघर्ष तब तक चलता रहा जब तक कि कांग्रेस मंत्रिमंडल ने मज़बूर होकर बिहार ज़मींदारी उन्मूलन ऐक्ट, 1948 पारित नहीं किया।

### ट्रैवनकोर संघर्ष

महाराष्ट्र और बिहार की घटनाओं के विपरीत दक्षिण में ट्रैवनकोर रियासत में इस प्रकार का संघर्ष न तो पूर्णतः ग्रामीण था और न ही पूर्ण रूप से खेतिहर मुद्दों पर केन्द्रित था। तथापि खेतिहर मुद्दों (जेन्मी अथवा ज़मींदारों द्वारा आर्थिक शोषण और सामाजिक दमन) और खेतिहर वर्गों (जैसे शोषित और दमित गरीब किसान, ग्रामीण दस्तकार और खेतिहर मज़दूर) की ट्रैवनकोर में 1946 में हुई घटनाओं में काफी बड़ी भूमिका रही। घटनाओं का केन्द्र उत्तर पश्चिमी ट्रैवनकोर का शेरतलाई अलेपी क्षेत्र रहा जहां कम्युनिस्टों के नेतृत्व में एक मज़बूत ट्रेड यूनियन के रूप में खेतिहर आंदोलन शुरू हुआ। आंदोलन गांवों और छोटे नगरों में फैलता चला गया और इस क्षेत्रों के गरीब किसान, खेतिहर मज़दूर, मछुआरे, ताड़ी उतारने वाले, दमित खेतिहर किसान वर्ग से आए तथा जीविका कमाने के लिए शहरों में फैल गए। कोयर फैक्ट्री मज़दूर भी इस आंदोलन में शामिल हो गए। कोयर फैक्ट्री मज़दूरों ने अपनी ट्रेड यूनियन के माध्यम से न केवल कुछ आर्थिक लाभ प्राप्त कर लिए थे बल्कि कुछ अत्यंत महत्वपूर्ण रियायतें भी प्राप्त कर लीं जैसे फैक्ट्रियों में भर्ती में अपनी राय देने का अधिकार और अपनी निजी राशन की दूकान चलाने का अधिकार। राजनीतिक रूप से जागरूक इन मज़दूरों और इनके कम्युनिस्ट नेतृत्व ने उस अमरीकी पद्धति के संविधान के विरुद्ध व्यापक अभियान चलाया जो कि रियासत का दीवान सी.पी. रामास्वामी अय्यर रियासत के लोगों पर थोपना चाहता था। इस संविधान के जरिए रामास्वामी अय्यर और महाराजा एक ऐसी तैयारी कर रहे थे जिसके तहत वे उस समय स्वतंत्र ट्रैवनकोर रियासत की स्थापना कर सकें जबकि यह आभास होने लगे कि अंग्रेज़ हिन्दुस्तान छोड़कर चले जाएंगे। साथ ही ट्रैवनकोर में महाराजा द्वारा नियुक्त किए गए दीवान की निगरानी में व्यापक मताधिकार के आधार पर विधान सभा निर्वाचित करके (यद्यपि विधान सभा का कार्यकारिणी पर कोई प्रभावशाली नियंत्रण नहीं होना था) एक गैर उत्तरदायी सरकार का गठन करने का उद्देश्य भी इस संविधान में छिपा हुआ था। इस योज़ना के विरोध से कम्युनिस्टों की प्रतिक्रिया ने रियासती अधिकारियों को इतना क्रुद्ध कर दिया कि उन्होंने एलेपी क्षेत्र में अपने विरोधियों पर आंतक का चक्र चलाना शुरू कर दिया। पुलिस कैम्प लगा दिए गए और मनमानी गिरफ़्तारियों एवं यातना का दौर शुरू हो गया। इस दमन चक्र के कारण मज़दूरों को अपने ही कार्यकर्त्ता दलों द्वारा संरक्षित स्थानों में शरण लेनी पड़ी। रियासत के दमन के विरुद्ध उन्होंने 22 अक्तूबर को एलेपी शेरतलाई क्षेत्र में आम हड़ताल का आह्वान किया तथा एलेपी के निकट पुनापरा में पुलिस चौकी पर आक्रमण करके संघर्ष की नींव रख दी। अधिकारियों ने तुरंत ही 25 अक्तूबर को मार्शल लॉ की घोषणा कर दी और 27 अक्तूबर को सेना को शेरतलाई के निकट वयालर में मज़दूरों के सुरक्षित ठिकाने पर आक्रमण करने का आदेश दिया। इसके बाद जो अमानवीय नरसंहार हुआ उसमें 800 से

अधिक लोग मार गए। इन शहादतों ने न केवल रियासत के स्वतंत्र रहने की इच्छा के विरुद्ध जनमत तैयार करते हुए रियासत के राष्ट्रवादी भारत में शामिल होने का रास्ता तैयार कर दिया बल्कि सामंत विरोधी स्थानीय मानसिकता भी तैयार कर दी।

**तेभागा आंदोलन**

द्वितीय विश्व युद्ध के बाद का सबसे व्यापक खेतिहर आंदोलन तेभागा आंदोलन था जो बंगाल के 19 ज़िलों में फैला और साठ लाख किसान (जिसमें मुस्लिम किसान भारी संख्या में थे) इस आंदोलन के सहभागी बने। संघर्ष का सूत्रपात उस बटाईदारी व्यवस्था से हुआ जो बंगाल के अधिकतर हिस्सों में प्रचिलित था और शोषण का आधार बनी हुई थी। ग्रामीण बंगाल में, विशेषकर उन क्षेत्रों में जहां बड़े-बड़े पर्वती, दलदली एवं जंगली भूमि के टुकड़ों पर खेती शुरू की जा रही थी, ज़मींदारों एवं रैयत के बीच अपेक्षाकृत नया ग्रामीण शोषक वर्ग उभरा जिसे जोतेदार कहा जाता था। जोतेदारों ने अच्छी खासी मिलकियत खड़ी कर ली थी जिसके लिए वे नकद किराया अदा करते थे और भूमिहीन मज़दूर को अपनी ओर से अधियार (आधी फसल ले लेना) की व्यवस्था के आधार पर किराए पर उठा देते थे। लेकिन व्यवहार में काश्तकार को फसल के आधे से कहीं कम हिस्सा मिल पाता था क्योंकि उसे हल बैल और बीज आदि प्राप्त करने के लिए जोतेदार से धन लेना पड़ता था जो कि बटाई के समय उसे वापस करना पड़ता था। अधियार अथवा भागचाशी को फसल के अपने हिस्से में से ही जोतदार की अन्य गैर कानूनी मांगों, जैसे नज़राना (भेंट) और सलामी (जो एक प्रकार की लेवी थी) को पूरा करना पड़ता था तथा जोतदार की निजी ज़मीन पर बेगार करना पड़ता था। चूंकि बटाईदारी व्यवस्था में प्रति वर्ष किसी लिखा पढ़ी के बगैर शाब्दिक रूप से बटाईदारी का नवीनीकरण होता था इसलिए जोतदार नए सिरे से नज़राने और सलामी के लिए प्रति वर्ष पुराने बटाईदार को बेदखल कर सकते थे, जैसा कि वे प्रति वर्ष करते ही थे। बटाईदार व्यवस्था का उपयोग केवल जोतदार ही नहीं करते थे बल्कि वे ज़मींदार भी करते थे जो गांवों के बजाए शहरों में रहते थे और नौकरियां करते थे। 1930 के दशक में बटाईदारों की संख्या काफ़ी बढ़ गयी क्योंकि इस दौरान के आर्थिक संकट में गरीब किसानों की ज़मीनें उनके कब्ज़े से जाती रहीं और उन्हें बटाईदारी का सहारा लेना पड़ा। अगले पांच वर्षों के अन्दर ही 1940 के दशक की शुरुआत में युद्ध के समय की महंगाई की परिस्थिति से बटाईदार काफी प्रभावित हुए। साथ ही भयावह अकाल ने इस परिस्थिति को और भी नाजुक बना दिया। बटाईदार यह महसूस करने लगे कि फसल की परंपरागत् बटाईदारी उनकी जीविका के लिए एकदम काफ़ी नहीं है और वे निरंतर नुकसान उठा रहे हैं। अतः जब सितम्बर 1946 में बंगाल प्रादेशिक किसान सभा ने काश्तकारों के लिए आधे के बजाए तीन चौथाई हिस्से की मांग करते हुए किसानों का आह्वान किया तो उन्हें मांग के साथ जुड़ने में कोई हिचकिचाहट नहीं हुई। ''तेभागा चाई'' (तीन चौथाई हिस्सा चाहिए) के नारे से आकाश गूंज उठा और बटाईदार फसल को जोतदारों के पास ले जाने के बजाए (जैसे कि वे करते आए थे) अपने खलिहानों में ले जाने लगे। उन्होंने तीन चौथाई हिस्सा अपने पास रखते हुए एक चौथाई जोतदारों को देने की पेशकश की। ऐसी परिस्थिति में जहां जोतदार फसल अपने खलिहानों में उठा ले जाने में सफल हो सके थे, वहां बटाईदारों ने बलपूर्वक अपना तीन चौथाई हिस्सा ले लिया। फसल और अनाज पर अधिकार के सवाल पर कई स्थानों पर जोतदारों ओर बटाईदारों में झड़पें हुईं। सशस्त्र पुलिस ने इन स्थानों पर पहुंचकर गिरफ़्तारियां कीं, लाठी चार्ज किए तथा गोलियां चलाईं। पूरे उत्तरी बंगाल में संघर्ष की लहर दौड़ गयी जिसमें जलपाईगुड़ी, दीनाजपुर और रंगपुर की भूमिका अग्रणी रही। मैमन सिंह, मेदनीपुर और 24 परगना भी पीछे नहीं रहे। कलकत्ता और नोआखाली में सांप्रदायिक दंगों के बावजूद मुस्लिम किसानों ने इसमें सक्रिय भाग लिया और आंदोलन को कई योग्य नेता दिए, किसान महिलाएं भी भारी संख्या में आंदोलन में शामिल हुईं और प्रायः आंदोलन का नेतृत्व भी संभाला। तथापि सरकार के दमन, कांग्रेस और लीग की उदासीनता तथा किराए पर ज़मीन उठाने वाले बंगाली मध्यम वर्ग के कारण और इन सबसे महत्वपूर्ण बिगड़ती हुई साम्प्रदायिक स्थिति के कारण यह आंदोलन बिखर गया। मार्च 1947 के अंत में कलकत्ता में दुबारा दंगों की शुरुआत तथा इसके परिणाम ने अंततः आंदोलनकारियों को आंदोलन स्थगित करने पर मज़बूर कर दिया।

## तेलंगाना आंदोलन

यद्यपि तेलंगाना आंदोलन शुरू में तेभागा आंदोलन की तरह व्यापक नहीं था लेकिन हैदराबाद रियासत के तेलगू भाषी तेलंगाना क्षेत्र का यह आदोलन अपने प्रकार के सभी आंदोलनों से अधिक स्थायी और लड़ाकू प्रवृत्ति का था। इस आंदोलन के अधिक उग्र होने के निम्न कारण थे।

i) निज़ाम सरकार विद्रोही किसानों को दबाने में सर्वथा असफल रही।

ii) आंदोलन के नेता विद्रोही किसानों की सभी श्रेणियों सर्वहारा, निर्धन किसान तथा कुछ मध्यम वर्गीय किसानों को उनके दमनकर्त्ताओं के विरुद्ध लम्बे सशस्त्र संघर्ष में लामन्द करने में सफल रहे। तेलंगाना में एक ओर जागीरदारों तथा इजारेदारों **और दूसरी ओर** देशमुखों एवं पटेल और पटवारियों द्वारा नियंत्रित एवं शोषित खेतिहर परिस्थितियों के मुद्दे को लेकर महत्वपूर्ण घटनाएं घटीं। जागीरदार और इजारेदार ज़मींदारों की भांति विशिष्ट ज़मीन (सर्फेखास) में मध्यस्थ थे लेकिन व्यवहार में वे ज़मीन के मालिक के रूप में कार्य करते थे। इसके तहत वे अपने अधिकार से परे निम्न कार्य करते थे।

- काश्तकारी की नीलामी
- काश्तकारों से किराए की उच्च दरें वसूल करना
- कच्चे काश्तकारों को समय-समय पर बेदखल कर देना
- लोगों से मुफ़्त मज़दूरी (वेटी) तथा मुफ़्त सेवाएं (वेतीचाकरी) प्राप्त करना।

रियासत अधिकृत भूमि (दीवानी) की स्थिति में भी कुछ विशेष अंतर नहीं था। दीवानी में पट्टेदारों अथवा तथाकथित किसान क्षेत्रपतियों के बीच से एक नया ज़मींदार वर्ग उभरने लगा। पूर्व में यह वर्ग राजस्व वसूली के ठेकेदार (देशमुख) और कर संग्राहक (पटेल पटवारी) थे जिनकी नौकरियां 1860 के दशक में जब निज़ाम सरकार द्वारा काश्तकारों से सीधे कर वसूल करना शुरू किया गया तो समाप्त हो गयी थीं। इन्हें मुआवज़े के रूप में काफी ज़मीने दी गयी थीं। राजस्व कर्मचारियों के रूप में ज़मीन संबंधी जानकारी एवं प्रभाव के प्रयोग, सर्वेक्षण रिकार्डों में धोखा धड़ी तथा बन्दोबस्त क्रियान्वयन में हस्तक्षेप द्वारा देशमुखों और पटेल-पटवारियों ने जमकर ज़मीन हथिया ली। एक बार इतनी अधिक ज़मीन होने तथा उच्च दरों पर इन ज़मीनों को किराए पर उठाना आरंभ कर देने के बाद वे काफी शक्तिशाली और प्रभावशाली हो गए और ग्रामीण समाज में उनका प्रभुत्व हो गया। गांवों में सभी किसानों से वे वेती और वेतीचाकरी की मांग करने लगे। साथ-साथ उनमें ज़मीन के लिए अतृप्त लालसा बनी रही जो कि यदि अब धोखा धड़ी के द्वारा संतुष्ट नहीं हो सकती थी तो वे उसे सभी प्रकार के दबाव और दमन तथा बलपूर्वक संतुष्ट करना चाहते थे। आर्थिक संकट (1930 के दशक के आरंभ में) तथा मंहगाई (1940 के दशक के आरंभ में) के काल में देशमुखों को लाभ पहुँचा क्योंकि निर्धनता से ग्रस्त किसानों ने जब भी कठिनाईयों से निपटने के लिए इनसे ऋण लिया, ऋण का भुगतान न कर पाने के कारण उन्हें अपनी ज़मीन इन देशमुखों को देनी पड़ी। 1940 के दशक तक देखमुख और पटवारी इतनी ज़मीन लूट चुके थे कि कुछ जिलों में क्षेत्र की 60 से 70 प्रतिशत ज़मीन पर इनका कब्ज़ा था और इनमें से कुछ के पास तो व्यंक्तिगत रूप में 100,000 एकड़ अथवा उससे भी अधिक ज़मीन थी। तेलंगाना के किसानों का विद्रोह इसी ज़मीन की लूट, गैर कानूनी लेवी, वेती तथा वेतीचाकरी लेने के कारण था जो समस्त जनता को समान रूप से प्रभावित कर रहा था। इस असंतोष को कम्युनिस्टों, आंध्र महासभा के गठन तथा नालगोडा, वारंगल और करीम नगर जिलों में वेती, वेतीचाकरी तथा गैर कानूनी लेवी के विरुद्ध प्रदर्शनों की एक पूरी शृंखला आयोजित कर के मूर्त रूप दे दिया गया। 1945 तक ज़मीदारों की ज़्यादतियों का विरोध किसानों को बलपूर्वक बेदखल किए जाने के विरुद्ध सक्रिय प्रतिरोध बन गया। अपने कानूनी विरोधों और शांतिपूर्ण मोर्चों पर ज़मींदारों के गुंडों और ज़मींदारों की समर्थक रियासती पुलिस द्वारा कुठाराघात होते देख कर तेलंगाना, विशेषकर नालगोंडा के किसानों को हथियार उठाने पड़े यद्यपि 1946 के आरंभ से ही किसानों और ज़मींदारों के गुंडों के बीच छिट पुट झड़पें होती रहीं थी। लेकिन असली लड़ाई 4 जुलाई 1946 को शुरू हुई जबकि जनगांव (नालगोंडा) के विसूनरी देशमुख के सशस्त्र आदमियों ने किसानों की प्रदर्शनकारी भीड़ पर गोली चलाकर डोडी कुमारैया की हत्या कर दी। कुमारैया की शहादत ने व्यापक किसान संघर्ष का सूत्रपात कर दिया जिसका मुकाबला पुलिस न कर सकी। निज़ाम सरकार ने कम्युनिस्ट पार्टी तथा आंध्र सभा को हैदराबाद रियासत ने गैर

कानूनी घोषित करते हुए उभरती हुई किसानों की शक्ति को अपनी पूरी सैनिक शक्ति लगाकर दबाना शुरू कर दिया। खून, खराबे, यातनाओं और बर्बादी के परिणामस्वरूप 1947 के आरंभ में ऐसा लगा कि सेना विद्रोहियों पर काबू पा लेगी लेकिन 1947 के मध्य में विद्रोह ने व्यापक रूप धारण कर लिया उसके उपरांत इस संघर्ष के पूर्ण गुरिल्ला युद्ध का रूप ले लेने के बाद विद्रोहियों पर सेना के काबू पाने का भ्रम जाता रहा तेलंगाना किसानों का यह सशस्त्र संघर्ष 1951 तक निरंतर चलता रहा। इसका महत्व इस बात से समझा जा सकता है कि अपने चरमोत्कर्ष पर इस आंदोलन ने लगभग 300 गांवों और 16000 वर्ग मील के क्षेत्र जिसकी जनसंख्या लगभग 38 लाख थी पर अपना नियंत्रण स्थापित कर लिया था। प्रभाव क्षेत्र में सबसे महत्वपूर्ण बात यह है कि यह आंदोलन बुनियादी तौर पर स्वतंत्र भारत के इतिहास का अंग है।

**बोध प्रश्न 3**

1 नौसेना (रॉयल इन्डियन नेवी) के भारतीय सैनिकों द्वारा प्रस्तुत की गयी विभिन्न मांगों का उल्लेख करें।

.................................................................................................................

.................................................................................................................

.................................................................................................................

.................................................................................................................

.................................................................................................................

2 प्रत्यक्ष एवं अप्रत्यक्ष टकराव का बुनियादी अंतर क्या था?

.................................................................................................................

.................................................................................................................

.................................................................................................................

.................................................................................................................

.................................................................................................................

3 निम्नलिखित वक्तव्यों को पढ़ें और उनके सामने सही ( ✓ ) अथवा गलत ( × ) का निशान लगाएं।

i) आज़ाद हिन्द फ़ौज मुकद्मों से सम्बन्धित संघर्ष ने हिन्दू और मुसलमानों को बांट दिया। ☐

ii) बिहार का किसान आंदोलन काश्तकारी के मुद्दे से संबंधित था। ☐

iii) ट्रैवनकोर संघर्ष पूर्णतयः खेतिहर था। ☐

iv) तेलंगाना आंदोलन स्वतंत्रता के बाद तक भी चलता रहा। ☐

v) पटेल और जिन्ना ने भारतीय नौ सैनिकों को आत्मसमर्पण करने को कहा। ☐

vi) तेलंगाना आंदोलन का सूत्रपात कम्युनिस्टों ने किया। ☐

## 35.5 सारांश

1945 से 1947 के बीच की जनकार्रवाइयों पर दृष्टिपात करने से यह स्पष्ट हो जाता है कि व्यापक स्तर पर आम जनता में उपनिवेश विरोधी जागरूकता मौजूद थी जो कि किसी भी नव उपनिवेशवादी षडयंत्र का मुकाबला करने के लिए आवश्यक आंतरिक शक्ति थी। इन

जन कार्रवाइयों ने ऐसे समय में जबकि साम्प्रदायिकता का जहर फैलाया जा रहा था और फूट डालने की कोशिश की जा रही थी, यह भी स्पष्ट कर दिया कि भारतीय जनता में अपने मतभेदों से ऊपर उठकर कन्धे से कन्धा मिलाकर संघर्ष करने की अद्‌भुत क्षमता है। भारत के निराशपूर्ण माहौल में आशा की यही एक किरण थी। मुस्लिम लीग के नेता अंग्रेज़ों की उंगलियों पर नाच रहे थे और अपनी मांगों के बीच इतने खो चुके थे कि इन सकारात्मक पहलुओं पर नज़र डालने की उन्हें फुरसत ही नहीं थी। यह अब राष्ट्रवादियों, विशेषकर उन राष्ट्रवादियों को जो जीवन भर जन साधारण की शक्ति और एकीकृत भारत के लिए संघर्षरत रहे, का काम था कि वह इन वर्षों में आशा की जो किरण दिखाई थी उसके सहारे आगे बढ़ते। लेकिन अब तक वे ऐसी परिस्थिति में पहुंच चुके थे कि वह किसी न किसी रूप में एक समझौते पर पहुंचने के लिए व्याकुल थे और धर्म के आधार पर भारत के विभाजन की संभावना के सम्मुख भी न तो उनमें इतनी शक्ति थी और न ही इच्छा कि वह किसी बड़े संघर्ष की तैयारी करते। परिणामस्वरूप कांग्रेस ने 1945-47 के दौरान के अधिकतर जन संघर्षों की उपेक्षा करनी शुरू कर दी और यदि उन्हें इन संघर्षों में टकरावपूर्ण परिस्थिति की कोई संभावना नज़र आई तो उसमें व्यवधान डालने तथा उनकी भर्त्सना करने में भी हिचकिचाहट नहीं दिखाई। शांतिपूर्ण ढंग से सत्ता के हस्तांतरण के प्रति अपनी तीव्र इच्छा के कारण वे इस संभावना को भी न देख पाए कि यदि किसी प्रकार देश का विभाजन होता है तो राष्ट्रवादी अपने हिस्से में नव उपनिवेशवादी षडयंत्रों से सुरक्षित रहने का कितना भी प्रयास कर लें, बाकी के आधे हिस्से में इन षड्यंत्रों के विरुद्ध वे शक्तिहीन होंगे क्योंकि इस समय तक उपनिवेशवाद ने इस उपमहाद्वीप से अपनी आशाएं छोड़ी नहीं थी।

## 35.6 शब्दावली

**प्रत्यक्ष कार्रवाई** : 16 अगस्त, 1946 को मुहम्मद अली जिन्ना की मुसलमानों से अपील। यह अपनी मुस्लिम लीग के बिना ही अंतरिम सरकार गठित करने के अंग्रेज़ी सरकार के निर्णय के बाद की गयी और इसके परिणामस्वरूप बड़े पैमाने पर सांप्रदायिक दंगे हुए।

## 35.7 बोध प्रश्नों के उत्तर

**बोध प्रश्न 1**

1 i)✓ ii)✓ iii) × iv) × v) ✓ vi) ✓

2 आप के उत्तर में अंग्रेज़ों द्वारा मुस्लिम लीग को मुसलमानों की एक मात्र प्रतिनिधि संस्था मानना, कांग्रेस को मुसलमानों के प्रतिनिधित्व का अधिकार न देना, भारतीयों के बीच किसी प्रकार के संवैधानिक समझौते की संभावना न पैदा होने देना तथा मुस्लिम लीग को विभिन्न तरीकों से समर्थन देना और उन्हें प्रोत्साहित करना आदि शामिल होना चाहिए। देखें उपभाग 35.2.3

3 पाकिस्तान की संभावना विभिन्न वर्गों के लिए भिन्न अर्थ रखती थी। मुसलमानों के मध्यम वर्ग के लिए नौकरियों की निश्चितता, व्यापारी वर्ग के लिए हिन्दू व्यापारियों के साथ स्पर्धा में व्यापार हितों की सुरक्षा तथा पंजाब और बंगाल के मुस्लिम किसानों के लिए हिन्दू बनियों और ज़मींदारों के शोषण से मुक्ति था।

**बोध प्रश्न 2**

1 i) × ii) × iii) ✓ iv) ×

2 आप विश्व युद्ध के बाद की बदली हुई राजनीतिक परिस्थिति, सरकार की कांग्रेस के प्रति बदली हुई नीति, जिसमें मुख्यतः कैदी कांग्रेस नेताओं के साथ बातचीत आरंभ करने की इच्छा थी जिससे कि नये सिरे से कोई संघर्ष न हो सके, का उल्लेख करें। देखें भाग 35.3

2 लेबर पार्टी की विजय से भारतीय राष्ट्रवादियों में अंग्रेज़ी सरकार द्वारा उनकी मांग पूरी किए जाने की आशाएं जगीं। विस्तृत जानकारी के लिए देखें उपभाग 35.3.2

**बोध प्रश्न 3**

1 इसके अंतर्गत आम राष्ट्रीय मांगें जैसे आज़ाद हिन्द फ़ौज के कैदियों की रिहाई, राजनीतिक कैदियों की रिहाई और भारत-चीन तथा जावा से भारतीय सैन्य टुकड़ियों की वापसी के अतिरिक्त वेतन, अच्छे बर्ताव तथा समान वेतन जैसी विशिष्ट मांगें शामिल थीं।

2 प्रत्यक्ष टकराव की नीति अंग्रेज़ी सरकार के विरुद्ध लक्षित थी जबकि दूसरी ओर अप्रत्यक्ष टकराव सीधे सरकार के विरुद्ध न होकर उनके स्वदेशी प्रतिनिधियों जैसे ज़मींदारों और रजवाड़ों आदि के विरुद्ध लक्षित था। फिर भी इन अप्रत्यक्ष टकरावों ने सरकार के विरुद्ध जनता को एकजुट करने में काफ़ी मदद की।

3 i) ✗ ii) ✓ iii) ✗ iv) ✓ v) ✓ vi) ✓

# इकाई 36 साम्प्रदायिकता और भारत का विभाजन

## इकाई की रूपरेखा


36.0 उद्देश्य
36.1 प्रस्तावना
36.2 पाकिस्तान बनने की पृष्टभूमि
  36.2.1 मुस्लिम लीग के स्वरूप में परिवर्तन
  36.2.2 हिन्दू साम्प्रदायिकता का उग्रवादी चरण
  36.2.3 अंग्रेज़ों की नीति
36.3 द्वितीय विश्वयुद्ध के बाद की स्थितियां
  36.3.1 शिमला कांफ्रेंस और चुनाव
  36.3.2 कैबिनेट मिशन
  36.3.3 अंतरिम सरकार की स्थापना
  36.3.4 अंग्रेज़ों के वापस लौटने की समय सीमा का निर्धारण
  36.3.5 तीन जून की योजना और इसका परिणाम
36.4 कांग्रेस और विभाजन
36.5 साम्प्रदायिक समस्या के प्रति कांग्रेस का रवैया
  36.5.1 समझौते की नीति
  36.5.2 बुनियादी असफलता
36.6 सारांश
36.7 शब्दावली
36.8 बोध प्रश्नों के उत्तर


## 36.0 उद्देश्य

इस इकाई को पढ़ने के बाद आप :

- ब्रिटिश शासन के अंतिम दशक में साम्प्रदायिकता की प्रकृति को व्याख्यायित कर सकेंगे,
- पाकिस्तान की मांग की पृष्ठभूमि की जानकारी दे सकेंगे,
- भारत के विभाजन से संबंधित राजनीतिक गतिविधियों को पहचान सकेंगे, और
- पाकिस्तान के निर्माण में अंग्रेज़ी, लीग और कांग्रेस की भूमिका का मूल्यांकन कर सकेंगे।

## 36.1 प्रस्तावना

खंड IV की इकाई 14 में आपने उन विभिन्न शक्तियों की जानकारी प्राप्त की जिसके कारण आधुनिक भारत में साम्प्रदायिकता का जन्म और विकास हुआ। आपने 1940 ई. तक की साम्प्रदायिकता से संबंधित प्रमुख गतिविधियों की जानकारी पहले ही प्राप्त कर ली है। वस्तुत: 1940 का दशक साम्प्रदायिकता का सबसे संकटकालीन और निर्णायक चरण था। इसी काल में पाकिस्तान की माँग को सामने रखा गया और प्रचारित किया गया। इसी दशक (1947) में पाकिस्तान का निर्माण भी हुआ। इस इकाई में इस बात का प्रयत्न किया गया है कि आप पाकिस्तान बनने की प्रक्रिया से परिचित हो सकें। साथ ही साथ इससे जुड़ी प्रमुख घटनाओं से आपका साक्षात्कार कराया जाएगा।

## 36.2 पाकिस्तान बनने की पृष्ठभूमि

पाकिस्तान की मांग एकाएक सामने नहीं आयी। 1937 के बाद राजनीतिक गतिविधियों ने कुछ इस प्रकार का रुख लिया जिससे शनैः शनैः पाकिस्तान की मांग जोर पकड़ती गयी। 1937 के बाद हिंदू और मुस्लिम साम्प्रदायिक शक्तियों की राजनीति में गंभीर परिवर्तन हुए। पाकिस्तान की मांग को स्वीकार कर और बढ़ावा देकर अंग्रेज़ों ने आग में घी डालने का काम किया।

### 36.2.1 मुस्लिम लीग के स्वरूप में परिवर्तन

1937 में मुस्लिम साम्प्रदायिकता ने एक नया लख अख्तियार किया। 1937 में प्रांतीय विधान सभाओं के लिए हुए चुनाव में मुस्लिम लीग मुसलमानों के लिए आरक्षित 492 सीटों में से मात्र 109 सीटों पर ही विजय प्राप्त कर सकी अर्थात् उसे कुल मुस्लिम वोट का मात्र 4.8 प्रतिशत ही प्राप्त हुआ। चुनाव के इस नतीजे से लीग के सामने यह स्पष्ट हो गया कि उसे अपना प्रभाव मुस्लिम जनता, ख़ासकर शहर में रहने वाले निम्न मध्यवर्गीय मुसलमानों के बीच बढ़ाना होगा। चूँकि लीग का मौजूदा सामाजिक आधार भूमिपतियों और वफ़ादार लोगों तक ही सीमित था, अतः इस लक्ष्य की प्राप्ति के लिए एक सुधारवादी सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक कार्यक्रम की बात सोची नहीं जा सकती थी। अतः लीग ने "इस्लाम ख़तरे में है" का नारा दिया और हिंदू राज की आशंका से मुसलमानों को भयभीत किया। बहुत जल्द ही एक धर्म को ख़तरे से बचाने का नारा दूसरे धर्म अनुयायियों के प्रति विद्वेष में बदल गया। डब्ल्यू. सी. स्मिथ के अनुसार साम्प्रदायिक दुष्प्रचार "धर्मोत्साह, आतंक, तिरस्कार और घृणा" से परिपूर्ण था। जिन्ना और अन्य लीग के नेताओं ने ऐलान कर दिया कि कांग्रेस का उद्देश्य स्वतंत्रता प्राप्ति नहीं बल्कि हिंदू राज्य की स्थापना है। उनके अनुसार कांग्रेस का मूल उद्देश्य मुस्लिमों पर आधिपत्य स्थापित करना है और उनके धार्मिक विश्वास पर कुठाराघात करना है। एक बार मुसलमानों के मन में हिंदू राज्य का भय बैठा देने के बाद लीग के नेताओं के लिए ऐसे राष्ट्र की मांग काफ़ी आसान हो गयी, जिसमें मुसलमान स्वतंत्रता से जी सकें और अपने धार्मिक विश्वास की रक्षा कर सकें। 1937 के बाद की लीग की इस घृणा और भय फैलाने की नीति के फलस्वरूप पाकिस्तान की माँग सामने आयी। मार्च 1940 के लाहौर अधिवेशन में लीग ने प्रसिद्ध लाहौर प्रस्ताव जारी किया और इसमें मुसलमानों के लिए इस आधार पर अलग संप्रभु राज्य की मांग की कि "हिंदू" और "मुसलमान" दो अलग राष्ट्र हैं।

### 36.2.2 हिंदू साम्प्रदायिकता का उग्रवादी चरण

1937 के चुनाव में हिन्दू सम्प्रदायवादियों की स्थिति मुस्लिम सम्प्रदायवादियों की तुलना में बहुत खराब रही। अपने अस्तित्व की रक्षा के लिए अब उनके सामने एक ही रास्ता बचा कि वे जनता का सहयोग प्राप्त करें। उनकी स्थिति तब और नाज़ुक हो गयी जब 1938 में कांग्रेस ने सम्प्रदायवादियों को अपने संगठन से अलग-अलग कर दिया। अब हिन्दू सम्प्रदायवादियों को नये आधार और नये कार्यक्रम की ज़रूरत थी। इसके लिए उन्होंने धर्म का सहारा लिया और मुस्लिम लीग की तरह उन्होंने घृणा और भय का प्रचार किया। मदन मोहन मालवीय के स्थान पर हिन्दू महासभा के वी. डी. सावरकर और राष्ट्रीय स्वयं सेवक संघ के एम.एस. गोलवलकर नये नेता के रूप में सामने आये, जिन्होंने अपने संगठनों को फासिस्ट स्वरूप प्रदान किया। गोलवलकर की पुस्तक "हम" हिन्दू सम्प्रदायवाद का घोषणा पत्र बना। इसमें मुसलमानों की निन्दा की गयी और कांग्रेसियों की यह कहकर आलोचना की गयी कि "ये हमारे कट्टर शत्रु" का समर्थन कर रहे हैं। इस पुस्तक में यह भी कहा गया कि मुसलमान भारत में तभी रह सकते हैं जब वे अपने को विदेशी मानना छोड़ दें और हिन्दू बन जायें, अन्यथा उन्हें कोई विशेषाधिकार या अल्पसंख्यक होने की विशेष सुविधा तो नहीं ही मिलेगी और न नागरिक अधिकार ही प्रदान किये जायेंगे। उन्होंने भारत को हिन्दू राष्ट्र बनाने की घोषणा की और मुसलमानों से कहा कि या तो वे यह देश छोड़ दें या दूसरी श्रेणी के नागरिक बनकर रहने के लिए तैयार हो जायें। इस प्रकार हिन्दू संप्रदायवादियों ने दो राष्ट्र के सिद्धांत को स्वीकार किया और पृथक राष्ट्र की माँग को दृढ़ बनाया।

1946-47 तक हिन्दू संप्रदायवादियों का स्वर काफी द्वेषपूर्ण हो गया। दंगों के भड़कने और कांग्रेस द्वारा उन्हें रोकने में असफलता के कारण हिन्दू सम्प्रदायवादियों का प्रभाव काफ़ी तेज़ी से बढ़ा। इसका सबसे बड़ा कारण यह था कि उन्होंने अपने को हिन्दुओं का रक्षक कहा। उन्होंने कांग्रेसी नेताओं पर यह आरोप लगाया कि वे अहिंसा और साम्प्रदायिक एकता पर बल देकर हिन्दुओं को कमज़ोर बना रहे हैं। हिन्दू सम्प्रदायवादियों ने हिन्दुओं से अपील की कि वे मुसलमानों से बदला लें और उन्हें सबक सिखायें। विभाजन के बाद उनकी स्थिति और मज़बूत हो गयी क्योंकि साम्प्रदायिक विद्वेष के वातावरण में उन्हें फलने-फूलने का अच्छा मौका मिला। उन्होंने मांग की कि पाकिस्तान एक इस्लामी राज्य है, अतः भारत को भी एक हिन्दू राज्य घोषित करना चाहिए। जब दंगों के ज़रिये अव्यवस्था फैला कर सरकार को उखाड़ फेंकने में वे असफल रहे तब वे हिन्दू सम्प्रदायवादी नेताओं पर आक्षेप लगाने लगे। यहां तक कि गाँधी जी को भी नहीं बख्शा गया, क्योंकि मुसलमानों और पाकिस्तान के प्रति उनका रवैया नरमी का था। राष्ट्रीय स्वयं सेवक संघ और महासभा की गोष्ठियों में गांधी जी की हत्या का आह्वान किया गया और 30 जनवरी 1948 को महासभा के एक सदस्य ने महात्मा गांधी की हत्या कर दी। गांधी जी की हत्या से यह सिद्ध होता है कि साम्प्रदायिकता और साम्प्रदायिक शक्तियां अपने उग्रवादी चरण में पहुँच चुकी थीं। साम्प्रदायिकता के इसी रुख के कारण पाकिस्तान के निर्माण के लिए अनुकूल वातावरण तैयार हुआ। गांधी जी की हत्या इसी उग्रवादी साम्प्रदायिकता का एक दुखद परिणाम थी।

### 36.2.3 ब्रिटिश नीति

मुस्लिम साम्प्रदायिकता को भड़काने में अंग्रेज़ सरकार की महत्वपूर्ण भूमिका थी। अंग्रेज़ों ने मुस्लिम सम्प्रदायवादियों की खुलेआम सरकारी सहायता की। उनकी फूट डालो और शासन करो की नीति ने 1937 तक हिन्दू और मुसलमानों के बीच कभी न पाटी जाने वाली खाई खोद डाली। हिंदुस्तानियों को विभाजित करने की दूसरे प्रकार की कोशिशें नाकाम हो चुकी थीं। इसके पहले उपनिवेशवादी शक्तियों ने राष्ट्रीय आंदोलनों के खिलाफ भूमिपतियों तथा पिछड़ी और अनुसूचित जातियों को खड़ा करने की कोशिश की। उन्होंने कांग्रेस के वामपंथी और दक्षिण पंथी दलों को विभक्त करने की भी कोशिश की थी, पर उन्हें कोई सफलता नहीं मिली। 1937 के चुनाव के बाद यह स्पष्ट हो गया कि अंग्रेज़ सरकार के पास साम्प्रदायिकता का ही एक रास्ता बच गया था जिसके माध्यम से हिंदुस्तानियों को विभाजित किया जा सकता था।

द्वितीय विश्वयुद्ध छिड़ने के बाद वाइसरॉय लिनलिथगो ने प्रयत्नपूर्वक मुस्लिम लीग को प्रोत्साहित किया। काँग्रेस इस बात पर अड़ी थी कि विश्वयुद्ध के बाद अंग्रेज़ों को भारत छोड़ देना होगा। लेकिन युद्ध से पहले ही सत्ता हिंदुस्तानियों के हाथ में सौंप दी जानी चाहिए। अंग्रेज़ी शासन ने यह तर्क दिया कि पहले हिन्दू और मुस्लिम हस्तांतरण की प्रक्रिया पर सहमत हो जायें तभी बात आगे बढ़ सकती है। सरकारी तौर पर लीग को मुस्लिम हित के प्रतिनिधि के रूप में स्वीकार किया गया। (हालांकि पिछले चुनाव का परिणाम मुस्लिम लीग के इस दावे से मेल नहीं खाता था) और अंग्रेज़ों ने उनसे यह भी वादा किया कि बिना लीग की सहमति से कोई भी राजनीतिक समझौता नहीं किया जायेगा। इस प्रकार लीग को ऐसी वीटो शक्ति प्राप्त हुई जिसका उपयोग जिन्ना ने युद्ध की समाप्ति के बाद किया।

#### क्रिप्स मिशन—मार्च-अप्रैल, 1942

मार्च 1942 में स्टैफोर्ड क्रिप्स (यह लेबर पार्टी का नेता था जिसके बहुत से कांग्रेसी नेताओं के साथ दोस्ताना संबंध थे।) के नेतृत्व में एक आयोग भारत पहुँचा। प्रकट रूप में जिसका उद्देश्य था जल्द से जल्द भारत में स्वशासी सरकार की स्थापना, पर क्रिप्स ने जिन प्रावधानों की घोषणा की, उससे काफ़ी निराशा उत्पन्न हुई। इसमें पूर्ण स्वतंत्रता देने की बात नहीं की गई थी बल्कि भारत को और वह भी युद्ध के बाद डॉमिनियन स्टेटस का दर्जा देने की बात की गयी। और इसमें प्रस्तावित संविधान सभा के निर्माण का प्रावधान था जिसमें भारतीय रजवाड़ों का प्रतिनिधित्व राजाओं के प्रतिनिधियों द्वारा होना था। इसमें यह बिल्कुल स्पष्ट था कि नये कार्यकारिणी परिषद में नियंत्रण पूरी तरह अंग्रेज़ शासकों के

अधीन रहना था। कांग्रेस ने इस प्रस्ताव को अस्वीकार कर दिया। एमरी, जो भारत में सचिव थे, ने इस प्रस्ताव को रूढ़िवादी, प्रतिक्रियावादी और संकुचित कहा। लेकिन क्रिप्स प्रस्ताव ने अप्रत्यक्ष रूप से पाकिस्तान बनने में महत्वपूर्ण भूमिका निभायी। इसमें एक धारा थी जिसे "लोकल आप्शन" (स्थानीय विकल्प) के रूप में जाना जाता है। इसके अनुसार प्रांतों को यह अधिकार दिया गया कि भविष्य में अपनी स्थिति निर्धारित करने के लिए ब्रिटेन से सीधा समझौता कर सकते हैं और इसके साथ ही साथ भविष्य में बनने वाले नये संविधान को अस्वीकार भी कर सकते हैं।

हालाँकि क्रिप्स मिशन असफल रहा लेकिन इसने मुस्लिम लीग को एक तरह से प्रोत्साहित किया। प्रांतीय स्वायत्तता के प्रावधान ने पाकिस्तान बनने की माँग को वैधानिक रूप प्रदान किया। जिस समय भारतीयों द्वारा इस समस्या को बहुत हल्के ढंग से लिया जा रहा था उस समय पाकिस्तान बनाने की माँग को सरकारी तंत्र ने काफ़ी तेज़ी से प्रोत्साहित किया।

**बोध प्रश्न 1**

1 मुस्लिम लीग ने "इस्लाम खतरे में है" का नारा क्यों दिया? (उत्तर दस पंक्तियों में दीजिए)

..............................................................................................................

..............................................................................................................

..............................................................................................................

..............................................................................................................

..............................................................................................................

..............................................................................................................

..............................................................................................................

..............................................................................................................

..............................................................................................................

..............................................................................................................

2 निम्नलिखित वक्तव्यों को पढ़िए और सही (✓) गलत (✗) चिह्न लगाइए।

i) 1937-38 के बाद हिन्दू सम्प्रदायवाद ने फासीवादी रुख़ अपनाया। ☐

ii) पाकिस्तान बनने की प्रक्रिया में क्रिप्स प्रस्ताव मील का पत्थर साबित हुआ। ☐

iii) 1942 के बाद अंग्रेज़ सरकार ने मुस्लिम साम्प्रदायिकता के प्रसार को रोकने की कोशिश की। ☐

## 36.3 द्वितीय विश्वयुद्ध के बाद की परिस्थितियां

इस भाग में हम द्वितीय विश्वयुद्ध के बाद से लेकर पाकिस्तान बनने तक की घटनाओं का क्रमबद्ध विवरण आपके सामने प्रस्तुत करने जा रहे हैं। दो वर्ष की इस अवधि के दौरान जो घटनाएं घटीं उनसे भारत के विभाजन और पाकिस्तान के निर्माण में काफ़ी सहायता मिली।

### 36.3.1 शिमला कांफ्रेंस और चुनाव

द्वितीय विश्वयुद्ध की समाप्ति के बाद वाइसरॉय वैवेल ने जून 1945 के मध्य में कांग्रेसी नेताओं को जेल से रिहा कर दिया। उन्हें अंतरिम समझौते के लिए शिमला में आमंत्रित किया। इस कांफ्रेंस में इस बात पर विचार होना था कि भारतीय किस तरह अपने देश पर

शासन करेंगे। कांग्रेस सहयोग के लिए तैयार थी और उसने अपन प्रतिनिधियों की सूची भी भेज दी। लेकिन जिन्ना अंग्रेज़ों द्वारा प्रदत्त अपनी वीटो शक्ति को आज़माना चाहते थे। उन्होंने ज़ोर दिया कि कार्यकारिणी परिषद् में मुसलमानों को नामज़द करने का अधिकार केवल लीग को ही है। सरकार मुस्लिम लीग के इस दावे के कारण धर्म संकट में पड़ गयी क्योंकि इसमें पंजाब के उन यूनियनिस्ट पार्टी के मुसलमानों को प्रतिनिधित्व नहीं मिल पा रहा था जिन्होंने युद्ध के दौरान अंग्रेज़ों की दृढ़तापूर्वक सहायता की थी। लेकिन वैवेल ने अतीत की वफ़ादारी की अपेक्षा वर्तमान और भविष्य के हितों को अधिक महत्व दिया और उसने मुस्लिम लीग की मांग को अस्वीकार करने के बजाय कांफ्रेंस को भंग करने की घोषणा कर दी। जिन्ना की वीटो शक्ति कामयाब हुई।

19. शिमला में नेहरू और जिन्ना

### चुनाव-अंतिम हथियार

केन्द्रीय और प्रांतीय विधान सभाओं के चुनावों में लीग ने सीधा साम्प्रदायिक नारा दिया—"लीग और पाकिस्तान के लिए वोट देने का मतलब है इस्लाम के लिए वोट देना।" चुनाव की सभाओं के लिए मस्जिदों का उपयोग किया गया और पीरों से यह अनुरोध किया गया कि वे यह फ़तवा जारी करें कि मुसलमान लीग को ही वोट दें। मुस्लिम जनता से यह कहा गया कि कांग्रेस और लीग में से किसी एक को चुनने का मतलब है **गीता** और **क़ुरान** में से किसी एक को चुनना। इस साम्प्रदायिक माहौल में अगर लीग ने सभी मुस्लिम सीटों पर विजय प्राप्त की तो कोई आश्चर्य की बात नहीं है।

## 36.3.2 कैबिनेट मिशन

1946 के आरंभ में अंग्रेज़ अधिकारी पूरी तरह समझ गये थे कि अब उनके लिए यही

अच्छा होगा कि वे सम्मानजनक ढंग से भारत से लौट जायें। मार्च 1946 में कैबिनेट मिशन भारत भेजा गया। इसका उद्देश्य एक राष्ट्रीय सरकार की स्थापना करना और सत्ता हस्तांतरण की संवैधानिक व्यवस्था को खोजना था। जब अंग्रेज़ों ने भारत छोड़ने का निर्णय लिया तो यह विश्वास किया गया कि फूट डालो और राज करो की पुरानी नीति अब नहीं चल सकती। इसके पक्ष में यह तर्क भी सामने रखा गया कि स्वतंत्रता के बाद एकीकृत भारत ब्रिटेन के हक में लाभप्रद होगा। इस तर्क के पीछे यह विश्वास भी निहित था कि एकीकृत भारत की सैन्य शक्ति राष्ट्रमंडल (कामनवेल्थ) की प्रतिरक्षा की सक्रिय सहयोगी बन सकेगी और यदि भारत और पाकिस्तान का बँटवारा हो गया तो भारत की सैन्य शक्ति दुर्बल हो जायेगी। भारत पाकिस्तान के आपसी झगड़े से राष्ट्रमंडल (कॉमनवेल्थ) की शक्ति भी कमज़ोर होगी। इस नीति परिवर्तन के कारण कांग्रेस और लीग के प्रति अंग्रेज़ों का रवैया बदल गया। ब्रिटेन के प्रधानमंत्री एटली ने 15 मार्च 1946 को घोषणा की कि "बहुसंख्यक के निर्णय पर अल्पसंख्यकों को वीटो लगाने का अधिकार नहीं दिया जायेगा।" यह नीति जून 1945 की शिमला कांफ्रेंस के समय वाइसरॉय वैवेल की नीति से बिल्कुल विपरीत थी, शिमला कांफ्रेंस में जिन्ना ने मुसलमानों को नामज़द करने के एकाधिकार का दावा किया। जिन्ना की मांग रद्द कर दी गयी और कांफ्रेंस भंग कर दी गयी थी। कैबिनेट मिशन का यह भी विश्वास था कि पाकिस्तान का कोई अलग अस्तित्व नहीं है इसलिए मिशन ने जो योजना बनायी उसके अंतर्गत देश की एकता को ध्यान में रखते हुए मुस्लिम अल्पसंख्यक के हितों की रक्षा की बात की गयी। संविधान के स्वरूप निर्धारण के लिए कार्यकारी दल को तीन भागों में विभाजित किया गया। मद्रास, बंबई, संयुक्त प्रान्त, बिहार, मध्य प्रांत और उड़ीसा को समूह "क" में रखा गया। पंजाब, उत्तर पश्चिम सीमांत प्रदेश और सिन्ध को समूह "ख" में रखा गया और समूह "ग" का निर्माण आसाम और बंगाल को मिलाकर हुआ। प्रतिरक्षा, विदेशी मामलों और संचार को केंद्र के अधीन रखा गया। प्रथम आम चुनाव के बाद कोई प्रांत अपने समूह को छोड़ सकता था और 10 वर्ष के बाद समूह और केन्द्रीय संविधान में परिवर्तन की मांग कर सकता था।

### समूहीकरण की नीति में अस्पष्टता

समूहीकरण के मसले पर कांग्रेस और लीग के बीच मतभेद हो गया। कांग्रेस की यह मांग थी कि प्रांतों के पास यह विकल्प होना चाहिए कि आरंभ में यदि वे न चाहे तो किसी समूह विशेष में शामिल न हों। आम चुनावों तक इस निर्णय के लिए इंतज़ार करना उचित नहीं है। कांग्रेस के इस विरोध का कारण यह था कि आसाम और उत्तर-पश्चिम सीमांत प्रदेश को समूह "ग" और "ख" में रखा गया था। जबकि दोनों प्रांतों में कांग्रेस की सरकार थी। लीग ने यह मांग की कि प्रांतों को केन्द्रीय संविधान में तुरंत परिवर्तन करने का अधिकार दिया जाये। इसके लिए आगे 10 वर्षों तक इंतज़ार करना ठीक नहीं। आधारभूत समस्या यह थी कि कैबिनेट मिशन प्लान में यह स्पष्ट रूप से नहीं कहा गया था कि समूहीकरण अनिवार्य था या वैकल्पिक। वस्तुतः जब कैबिनेट मिशन से स्पष्टीकरण मांगा गया तो उसने ऐसा करने से इंकार कर दिया। कैबिनेट मिशन का यह विश्वास था कि इस अस्पष्टता की नीति से कांग्रेस और लीग की परस्पर विरोधी स्थिति में सामंजस्य स्थापित हो जायेगा : पर इससे मामला और उलझता गया।

इस अस्पष्टता के कारण स्वाभाविक रूप से लीग और कांग्रेस अपने फायदे के हिसाब से प्लान की व्याख्या करने लगे। सरदार पटेल यह निष्कर्ष निकालकर खुश हो रहे थे कि अब पाकिस्तान का मामला समाप्त हो चुका है और लीग की वीटो शक्ति वापस ले ली गयी है। 6 जून, 1946 को अपने वक्तव्य में लीग ने यह स्पष्ट कर दिया कि उसने प्लान को इसी कारण स्वीकार किया है क्योंकि इसमें अनिवार्य समूहीकरण की बात की गयी है जो पाकिस्तान निर्माण का आधार है। 7 जून, 1946 को अखिल भारतीय कांग्रेस कमेटी को नेहरू जी ने संबोधित करते हुए कहा कि कांग्रेस संविधान सभा में सम्मिलित होगी। एक संप्रभु निकाय होने के कारण विधान सभा केवल कार्यप्रणाली के नियमों को सूत्रबद्ध करेगी। यह समझा जा रहा था कि मिशन द्वारा बनाये गये नियमों को संशोधित किया जा सकता है। नेहरू के भाषण का तत्काल लाभ उठाकर 29 जुलाई 1946 को लीग ने कैबिनेट मिशन प्लान को अस्वीकार कर दिया।

### 36.3.3 अंतरिम सरकार की स्थापना

अंग्रेज सरकार इस दुविधा में पड़ गयी कि वह लीग के सम्मिलित होने का इंतज़ार करे या योजना को कामचलाऊ रूप से कार्यान्वित करे और केवल कांग्रेस के साथ अंतरिम सरकार की स्थापना करे। वैवेल लीग को साथ लेकर चलना चाहते थे, पर ब्रिटेन की सरकार कांग्रेस को साथ लेकर चलने के पक्ष में थी। ब्रिटेन की सरकार को यह विश्वास था कि कांग्रेस के साथ सहयोग, आने वाले समय के लिए हितकारी होगा। इस नीति के तहत कांग्रेस को अंतरिम सरकार बनाने का निमंत्रण मिला। 2 सितम्बर, 1946 को जवाहर लाल नेहरू की अध्यक्षता में अंतरिम सरकार का गठन हुआ। जिन्ना और लीग को नज़रअंदाज़ करते हुए अंतरिम सरकार की स्थापना ब्रिटिश नीति में एक महत्वपूर्ण परिवर्तन का संकेत करती है। पहली बार जिन्ना के इस दावे को अंग्रेज़ों ने नज़रअंदाज़ कर दिया कि लीग की सहमति के बगैर कोई संवैधानिक समझौता नहीं किया जा सकता है।

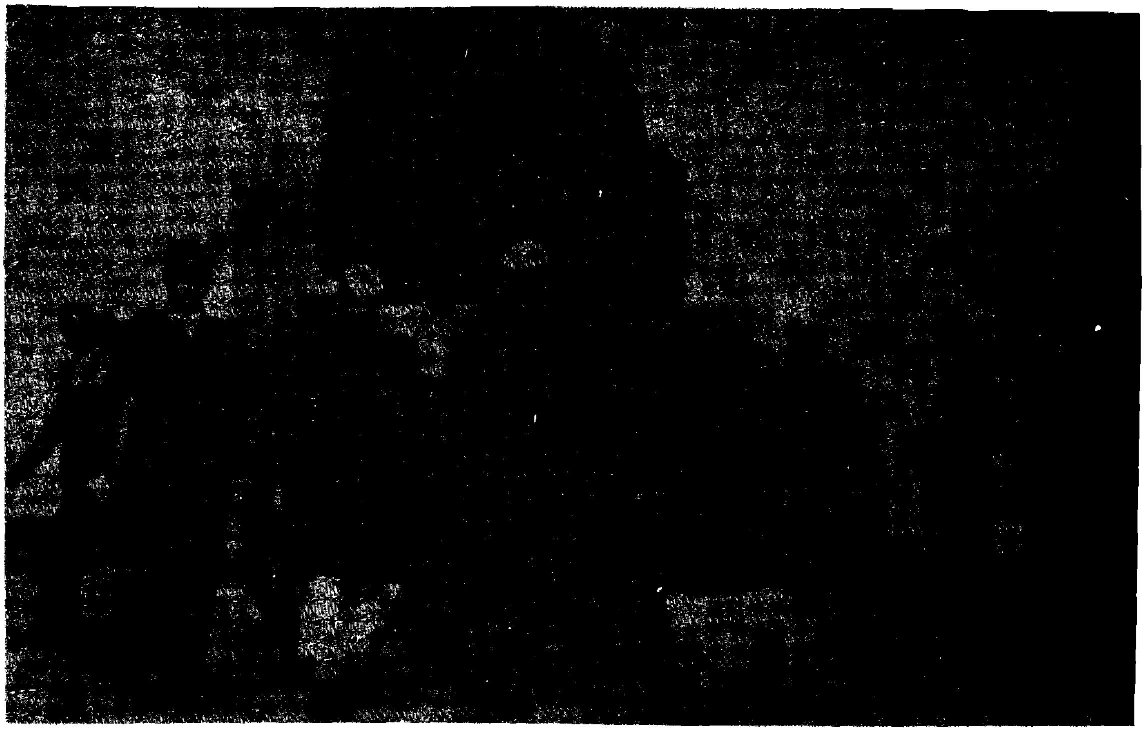

20. अंतरिम सरकार के सदस्य

**लीग द्वारा प्रत्यक्ष कार्रवाई**

हालांकि जिन्ना को विश्वास था कि अंग्रेज़ अपनी पुरानी नीति का अनुसरण करेंगे। उन्होंने ब्रिटिश प्रधानमंत्री एटली को चेतावनी दी कि यदि अंग्रेज़ कांग्रेस के समक्ष घुटने टेकते हैं और उन्हें अहमियत देते हैं, तो मुसलमान संघर्ष करने के लिए बाध्य हो जायेंगे। यह कोई ख़ाली धमकी नहीं थी क्योंकि लीग ने प्रत्यक्ष कार्रवाई की योजना अब तक बना ली थी। 16 अगस्त 1946 को कलकत्ता में प्रत्यक्ष कार्रवाई का आह्वान किया गया और एक नया नारा लगाया गया। "लड़कर लेंगे पाकिस्तान" इस साम्प्रदायिक आग को मुसलमान साम्प्रदायिक दलों ने हवा दी। इस समय बंगाल में सुहरावर्दी के नेतृत्व में लीग का मंत्रीमंडल था। उन्होंने प्रत्यक्ष रूप में तो नहीं लेकिन इस मामलें से उदासीन रहकर सम्प्रदायिक वातावरण को बिगड़ने का मौक़ा दिया। इससे हिन्दू सम्प्रदायवादी तत्त्वों में प्रतिक्रिया हुई, दंगें हुए और पाँच हज़ार लोग मारे गये। इसे कलकत्ते के नरसंहार के नाम से जाना जाता है। अक्तूबर 1946 के आरंभ में पूर्वी बंगाल के नोआखली में गड़बड़ी पैदा हुई और प्रतिक्रिया स्वरूप अक्तूबर, 1946 के अंत में बिहार में मुसलमानों पर हमला किया गया। आने वाले महीनों में संयुक्त प्रांत, बम्बई और उत्तर-पश्चिमी सीमांत प्रांत में दंगे हुए। इस साम्प्रदायिक आंधी को रोका नहीं जा सका।

अंग्रेज़ों द्वारा लीग से समझौता

इस कत्लेआम को जिन्ना रोक सकते थे। अतः अंग्रेज़ अधिकारियों ने मुसलमानों को प्रसन्न करने की अपनी पुरानी नीति को फिर से अपनाया। वे यह जानते थे कि लीग उन्हीं का बनाया हुआ है पर अब उसका स्वरूप इतना घातक हो गया है कि उसे वश में नहीं किया जा सकता। वैवेल लगातार कोशिश कर रहे थे कि लीग को सरकार में शामिल किया जाये। इसी समय भारत सचिव (सेक्रेटरी ऑफ़ स्टेट) पैथिक लारेंस ने उनका समर्थन किया। लारेंस का कहना था कि यदि लीग को शामिल नहीं किया गया तो गृह युद्ध अवश्यम्भावी होगा। इस प्रकार 26 अक्तूबर, 1946 को लीग अंतरिम सरकार में शामिल हुई।

**अंतरिम सरकार : संघर्ष का दूसरा दौर**

अंतरिम सरकार में लीग के शामिल होने से झगड़ा समाप्त नहीं हुआ बल्कि इससे संघर्ष का एक नया क्षेत्र खुल गया, लीग को अंतरिम सरकार में शामिल होने के लिए पाकिस्तान या सीधी कार्रवाई का त्याग करने की शर्त नहीं थी। इसके अतिरिक्त उन्होंने कैबिनेट मिशन प्लान के अल्पावधि और दीर्घावधि पहलुओं को स्वीकार नहीं किया था। लीग के नेताओं और खासकर जिन्ना ने खुले आम यह घोषणा की कि अंतरिम सरकार अन्य तरीकों से गृह युद्ध जारी रखने का केवल एक माध्यम है। जिन्ना यह सोचते थे कि प्रशासन पर कांग्रेस का नियंत्रण लीग के हित में नहीं है और इसी कारण वे चाहते थे कि लीग को भी सत्ता में हिस्सा मिले। अंतरिम सरकार को उन्होंने एक ऐसे आधार के रूप में देखा जिसके सहारे लीग को पाकिस्तान के निर्माण में मदद मिल सकती थी।

अंतरिम सरकार में कांग्रेस और लीग के सदस्यों के बीच मतभेद तुरंत उभरकर सामने आ गये। लियाक़त अली ख़ान के अलावा लीग ने अंतरिम सरकार में प्रतिनिधि के रूप में अपने दूसरे दर्जे के नेताओं (लियाक़त अली ख़ान को छोड़कर) को भेजा इससे उनका मन्तव्य साफ हो गया कि वे सरकार चलाने में कांग्रेस के साथ भागीदारी नहीं करना चाहते। दूसरी तरफ यह मंशा भी स्पष्ट हो गयी कि दोनों के बीच सहयोग असंभव हैं। लीग के मंत्रियों ने अपना एक सिद्धांत सा बना लिया था कि कांग्रेसी मंत्रियों द्वारा लिये गये किसी भी निर्णय का विरोध किया जाये। कार्यकारिणी परिषद के पहले होने वाली तैयारी की बैठकों में लीग नेताओं ने कभी हिस्सा नहीं लिया, जिसमें कांग्रेसी सदस्य एक आम निर्णय लेते थे ताकि वैवेल की नीति सफल न हो सके।

**अंतरिम सरकार टूटने के कगार पर**

कांग्रेसी नेताओं ने आरम्भ में ही लीग के नेताओं को शामिल किये जाने पर असहमति व्यक्त की। उनका कहना था कि कैबिनेट मिशन प्लान को स्वीकार किये बिना लीग को अंतरिम सरकार में शामिल नहीं किया जाना चाहिए। बाद में जब सरकार के अन्दर और बाहर लीग की असहयोग नीति स्पष्ट हो गयी तब कांग्रेसी सदस्यों ने यह मांग की कि लीग या तो प्रत्यक्ष कार्रवाई को बन्द करे या सरकार छोड़ दे । हाँलाकि 6 दिसम्बर 1946 को ब्रिटिश सम्राट ने लीग के समूहीकरण पर दृढ़ बने रहने का समर्थन किया था फिर भी 9 दिसम्बर 1946 के संवैधानिक सभा में लीग ने भाग लेने से इंकार कर दिया। टकराव की स्थिति उत्पन्न हो गयी। तब लीग ने यह मांग की कि संवैधानिक सभा को भंग कर देना चाहिए। क्योंकि यह अप्रतिनिधिक है। 5 फरवरी 1947 को अंतरिम सरकार के कांग्रेसी सदस्यों ने वैवेल के पास एक पत्र भेजा जिसमें यह माँग की गयी कि लीग के नेताओं को इस्तीफा देने के लिए कहा जाए। इससे एक संकट की स्थिति उत्पन्न हो गयी।

## 36.3.4 अंग्रेज़ों के वापस लौटने की समय सीमा का निर्धारण

एटली ने 20 फ़रवरी 1947 को संसद में यह घोषणा की कि 30 जून 1948 तक अंग्रेज भारत छोड़ देंगे। एटली की इस घोषणा से संकटपूर्ण स्थिति थोड़ी देर के लिए टली। वैवेल के स्थान पर माउंटबेटेन भारत के वाइसरॉय बनाये गये। इस संवैधानिक संकट का यह कोई हल नहीं था पर एक बात स्पष्ट हो गयी कि अँग्रेज़ भारत छोड़ने के अपने निर्णय पर टिके हुए हैं। कांग्रेस ने एक बार फिर लीग से सहयोग की मांग की। नेहरू ने लियाक़त अली ख़ान से अनुरोध किया :

अंग्रेज़ अब हमारे देश से जा रहे हैं और इस निर्णय की ज़िम्मेदारी हम सब के कंधों पर समान रूप से पड़नी चाहिए। इसके लिए यह ज़रूरी है कि इस मामले पर विचार करने के लिए हम दूर-दूर रहकर बात न करें बल्कि आपस में विचार-विमर्श कर हल निकालें। लेकिन एटली की घोषणा की प्रतिक्रिया जिन्ना पर कुछ दूसरे ढंग से हुई। वे आश्वस्त थे कि अब उन्हें केवल पाकिस्तान की मांग पर अड़े रहने की ज़रूरत है। वस्तुतः उद्घोषणा से यह स्पष्ट था कि सत्ता का हस्तांतरण एक से अधिक प्राधिकारों के बीच होगा। ऐसा वातावरण इसलिए बन रहा था क्योंकि संवैधानिक सभा में मुस्लिम बहुल प्रांत शामिल नहीं हो रहे थे और यह संपूर्ण भारतीय जनता का प्रतिनिधित्व नहीं कर रही थी।

एटली के वक्तव्य के सम्बन्ध में पंजाब के गवर्नर की यह चेतावनी सही साबित हुई कि अब इसके परिणामस्वरूप व्यवस्था का बिखरना अवश्यमभावी था और इस स्थिति में लोग अधिक से अधिक शक्ति अख्तियार करने की कोशिश करेंगे। उनकी चेतावनी सही सिद्ध हुई। लीग ने पंजाब में नागरिक अवज्ञा आन्दोलन शुरू किया जिसके कारण यूनियनिस्ट पार्टी के खिज्र हयात ख़ान के नेतृत्व वाली मिली-जुली सरकार समाप्त हो गयी। अतः जब माउंटबेटन भारत पहुँचे तब भारत की स्थिति पूरी तरह दुर्दमनीय थी। लीग युद्ध करने के लिए आमादा थी। और वह संप्रभु पाकिस्तान से कम कुछ भी स्वीकार करने को तैयार नहीं थी। कैबिनेट मिशन प्लान की प्रासंगिकता समाप्त हो चुकी थी। अतः इस पर विचार करने का कोई मतलब नहीं था। अब अंग्रेज़ों के सामने एक ही उपाय बचा था—देश की एकता को क़ायम करने के लिए सारा बल लगाना, क्योंकि लीग से और समझौता संभव नहीं था। कांग्रेस और लीग के बीच मध्यस्थता की नीति को छोड़ना अब ज़रूरी था। यह नीति अपनायी गयी कि जो एकता का विरोध करेंगे उन पर दबाव डाला जायेगा और जो एकता के पक्षधर होंगे उन्हें समर्थन मिलेगा। हालांकि कुछ वर्षों बाद एटली ने कहा था, "हम संयुक्त भारत चाहते थे। हम अपने सम्पूर्ण प्रयत्नों के बाद ऐसा नहीं कर सकें।" पर सच्चाई यह थी कि अंग्रेजों ने अस्पष्ट नीति अपनायी और दोनों पक्षों को समर्थन देकर अपनी स्थिति सुरक्षित रखनी चाही। इस तथ्य में पूरी सच्चाई है कि अराजकता की स्थिति को अंग्रेज़ों ने रोकने की कोशिश नहीं की। उन्होंने दंगों को रोकने के लिए बल प्रयोग नहीं किया, जबकि ऐसा करना समय की मांग थी।

## 36.3.5 तीन जून की योजना और इसका परिणाम

तीन जून 1947 की बैठक में भारत-पाकिस्तान के बँटवारे की बात तय हो गयी। इसमें तय किया गया कि भारत का विभाजन इस तरीके से किया जाय जिससे भारत की एकता सुरक्षित रहे। पाकिस्तान के निर्माण की बात मान कर लीग की अहम मांग पूरी की गयी थी, अतः कांग्रेस की भारत की एकता की मांग को अधिक से अधिक पूरा करने की कोशिश की गयी। मसलन माउंटबेटन ने कांग्रेस के इस प्रस्ताव का समर्थन किया कि भारतीय रजवाड़ों को स्वतंत्र रहने का विकल्प नहीं दिया जा सकता। माउंटबेटन यह महसूस कर रहे थे कि स्वतंत्रता के बाद भारत को कामनवेल्थ में रखने के लिए कांग्रेस को खुश रखना आवश्यक है। 3 जून योजना में यह निर्णय लिया गया कि 15 अगस्त 1947 को भारत और पाकिस्तान को सत्ता का हस्तान्तरण डॉमिनियन स्टेटस के आधार पर हो जायेगा।

कांग्रेस डॉमिनियन स्टेटस का दर्जा प्राप्त करने के लिए राज़ी थी क्योंकि इससे सत्ता का हस्तांतरण तुरन्त हो जाता और साम्प्रदायिक संकट से जूझने की शक्ति मिल जाती। साम्प्रदायिक विद्वेष और दंगों को रोकने में अंग्रेज़ अधिकारी बहुत उत्साहित नहीं थे। सरदार पटेल ने वाइसरॉय को दिये गये अपने इस वक्तव्य में स्थिति को पूरी तरह स्पष्ट कर दिया। "आप खुद शासन करना नहीं चाहते और न ही हमें शासन चलाने देना चाहते हैं। अंग्रेज़ उत्तरादायित्व छोड़ चुके थे। इसका सबसे बड़ा प्रमाण यह था कि उन्होंने भारत छोड़ने की तिथि घटाकर 15 अगस्त, 1947 कर दी।

जिस तेज़ी से देश का विभाजन हुआ वह भारतीय दृष्टिकोण से बड़ा ही दुखदायी था। अंग्रेज़ों को इससे फायदा हुआ क्योंकि बिगड़ती साम्प्रदायिक स्थिति के उत्तरदायित्व से उन्हें मुक्ति मिल गयी। सत्ता का हस्तान्तरण और देश का विभाजन दोनों ही जटिल प्रक्रियाएँ थीं

**21. भारत में मांउटबेटन का स्वागत करते हुए नेहरू (मार्च, 1947)**

और ये दोनों ही 3 जून से 15 अगस्त, 1947 के बीच के बहत्तर दिनों में सम्पन्न हुईं। कुछ अंग्रेज अधिकारी जैसे सेनाध्यक्ष और पंजाब के गवर्नर का यह मत था कि शांतिपूर्ण विभाजन के लिए कम से कम दो वर्षों का समय मिलना चाहिए। जिन्ना ने मामले को यह कहकर और बिगाड़ दिया कि वे भारत और पाकिस्तान के लिए सामान्य गवर्नर जनरल के रूप में माउंटबेटन को स्वीकार नहीं करेंगे। अब कोई ऐसी संस्था नहीं रह गयी थी जहाँ विभाजन से उठने वाली समस्याओं को रखा जा सके। यहाँ तक कि दिसम्बर 1947 में कश्मीर में युद्ध होने से संयुक्त रक्षा तंत्र भी टूट गया।

### विभाजन के दौरान कत्लेआम

विभाजन की तीव्रता और सीमा आयोग के निर्णयों में विलम्ब ने विभाजन की त्रासदी को और गंभीर बना दिया। ये माउंटबेटन के निर्णय थे। संकटपूर्ण स्थिति के उत्तरदायित्व से बचने के लिए माउंटबेटन ने सीमा आयोग का निर्णय सुनाने में विलम्ब किया। (जबकि यह 12 अगस्त, 1947 को तैयार हो गया था।) इसके कारण आम नागरिक और अधिकारी उलझन में पड़ गये। लाहौर और अमृतसर के बीच के गाँवों में रहने वाले लोग इस आशा में अपने निवास स्थानों पर टिके रहे कि वे सही सीमा के अन्तर्गत रह रहे हैं। देशान्तरण उन्मत्त मामला बन जाता है और अक्सर इसका परिणाम होता है कत्लेआम अधिकारीगण अपने स्थानांतरण के चक्कर में पड़े हुए थे और उन्हें कानून और व्यवस्था की कोई चिन्ता नहीं थी। लखार्ट (Lackhart) ने, जो 15 अगस्त से लेकर 3 दिसंबर 1947 तक भारतीय सेनाध्यक्ष थे, इस स्थिति का स्पष्ट ब्यौरा इन शब्दों में दिया "अगर प्रशासनिक सेवा और सैन्य सेवा के अधिकारियों को विभाजन के पहले अपने देश भेज दिया जाता, तो अव्यवस्था को रोकने में ज़्यादा सफलता मिलती।"

22. लाखों बेघर हुए : विभाजन के दिनों का चित्र

**बोध प्रश्न 2**

निम्नलिखित कथनों को पढ़ें और सही ( ✓ ) या गलत ( x ) का निशान लगायें।

i) मुस्लिम लीग ने सामाजिक-आर्थिक कार्यक्रम को चुनाव का आधार बनाया था। ☐

ii) कांग्रेस कार्यकर्त्ताओं के असहयोग के कारण अंतरिम सरकार सफल नहीं हो सकी। ☐

iii) जिन्ना की इच्छा थी कि मांउटबेटन भारत और पाकिस्तान के सामान्य गवर्नर जनरल बनें। ☐

iv) कैबिनेट मिशन प्लान के गुण दोषों का उल्लेख करें। (पाँच पंक्तियों में उत्तर दें)।

..........................................................................................................

..........................................................................................................

..........................................................................................................

..........................................................................................................

..........................................................................................................

## 36.4 कांग्रेस और विभाजन

सवाल यह पैदा होता है कि कांग्रेस ने विभाजन क्यों स्वीकार किया। लीग और अंग्रेज़ों की सहमति की बात तो समझ में आती है. पर कांग्रेस ने, जो इतने दिनों में भारत की एकता के लिए संघर्ष कर रही थी, अपना प्रयत्न क्यों छोड़ दिया? एक मत यह है कि सत्ता प्राप्ति के लोभ के कारण कांग्रेसी नेताओं ने विभाजन स्वीकार कर लिया। लेकिन यह मत सही नहीं है। भारत का विभाजन किसी नेता की व्यक्तिगत असफलता का परिणाम नहीं था, बल्कि सम्पूर्ण संगठन की बुनियादी असफलता का फल था।

कांग्रेस को अंततः विभाजन स्वीकार करना पड़ा क्योंकि वे मुस्लिम जन समुदाय को राष्ट्रीय मुख्यधारा में शामिल नहीं कर पाये और 1937 के बाद मुस्लिम सम्प्रदाय के बढ़ते चरण को रोक भी नहीं पाये। 1946 तक कांग्रेसी नेताओं के सामने यह स्पष्ट हो गया कि मुसलमान लीग के साथ हैं क्योंकि चुनाव में 80% मुस्लिम आरक्षित सीटों पर लीग की विजय हुई थी। एक साल बाद विभाजन अवश्यमभावी हो गया जब पाकिस्तान का मामला मत पेटी तक सीमित न रहकर सड़कों पर आ गया। साम्प्रदायिक दंगों से सारा देश आक्रांत हो उठा और अन्ततः कांग्रेसी नेताओं ने यह महसूस किया कि गृह युद्ध होने से अच्छा है कि भारत का विभाजन हो जाय।

अंतरिम सरकार की असफलता इस बात का स्पष्ट संकेत थी कि पाकिस्तान बनने की प्रक्रिया को अब कोई रोक नहीं सकता। नेहरू जी ने टिप्पणी की कि अंतरिम सरकार संघर्ष का क्षेत्र थी और सरदार पटेल ने 14 जून 1947 की अखिल भारतीय कांग्रेस की बैठक में दिये गये अपने भाषण में कहा कि पाकिस्तान वास्तव में पंजाब और बंगाल में ही क्रियारत नहीं हैं बल्कि उसके अंकुर अंतरिम सरकार में भी निहित हैं। सबसे बड़ी बात यह है कि अंतरिम सरकार को प्रांतों में हस्तक्षेप करने का कोई अधिकार नहीं था। (जबकि बंगाल में लीग का मंत्रिमंडल था। कलकत्ता और नोआखाली में दंगे हुए। इन दंगों में लीग मंत्रिमंडल न केवल निष्क्रिय रहा बल्कि उसके मामले को और गंभीर बना दिया) नेहरू जी ने महसूस किया कि जब गलियों में हत्याएँ हो रही हों और व्यक्तिगत एवं सामूहिक स्तर पर क्रूरता का वातावरण छाया हुआ हो तब पद पर बने रहने का कोई मतलब नहीं होता है। सत्ता के शीघ्र हस्तांतरण से एक ऐसी सरकार के हाथ में शक्ति आयेगी जो अपना उत्तरदायित्व समझ सकें।

विभाजन को स्वीकार करने के पीछे एक कारण यह भी था कि कांग्रेस यह नहीं चाहती थी कि देश टुकड़ों में विभक्त हो जाय। कांग्रेस ने वाइसरॉय और अंग्रेज़ सरकार की इस नीति

का समर्थन किया था कि भारतीय रजवाड़ों को स्वतंत्र रहने का विकल्प नहीं दिया जाय। अनुरोध या बल प्रयोग द्वारा उन्हें भारत या पाकिस्तान की यूनियन में शामिल कर लिया जाय।

**गांधी जी और विभाजन**

यह सभी लोग मानते हैं कि भारत के विभाजन के समय गांधी जी इतने निराश हो गये थे कि उन्होंने 125 वर्ष तक ज़िन्दा रहने की इच्छा भी त्याग दी थी। एक आम धारणा यह भी थी कि सत्ता के लोभ में गांधी जी के शिष्यों नेहरू और पटेल ने उनकी सलाह की अवहेलना की थी। गांधी जी पर इस विश्वासघात का प्रतिकूल असर पड़ा। लेकिन सार्वजनिक रूप से वे (गांधी जी) अपने शिष्यों की आलोचना नहीं करना चाहते थे।

गांधी जी के शब्दों में, उनकी लाचारी का मुख्य कारण यह था कि जनता पूर्णरूप से साम्प्रदायिक हो गयी थी, मुसलमान हिन्दुओं पर संदेह करने लगे थे तथा हिन्दू और सिक्ख भी यह विश्वास करने लगे थे कि अब परस्पर सह अस्तित्व संभव नहीं था। हिन्दुओं और सिखों की विभाजन की इच्छा के कारण गांधी जी एक ऐसे जन नेता रह गये थे जिन्हें एकता के लिए किए जा रहे संघर्ष में जनता का समर्थन प्राप्त नहीं था। मुसलमानों ने उन्हें अपना दुश्मन घोषित कर रखा था। जब अधिकांश जनता विभाजन चाहती थी, तब उसे स्वीकार करने के अतिरिक्त गांधी जी के पास कोई चारा नहीं था। 4 जून, 1947 की प्रार्थना सभा में गांधी जी ने कहा था "आपकी मांगों की पूर्ति हुई क्योंकि आपने इसकी इच्छा व्यक्त की थी। कांग्रेस ने कभी विभाजन की मांग नहीं की, लेकिन कांग्रेस जनता की नब्ज को पहचान सकती है। इसने महसूस किया कि हिन्दू और ख़ालसा भी ऐसा चाहते हैं।

समाजवादियों और गांधीवादियों ने गांधी जी से यह अपील की कि कांग्रेसी नेताओं को नज़रअंदाज़ कर एकता के लिए संघर्ष की शुरुआत की जाय। गांधी जी ने स्पष्ट किया कि समस्या यह नहीं है कि अंग्रेज़ी नेताओं को छोड़कर वे आगे बढ़ने में हिचक रहे हैं। गांधी जी ने 1942 में कुछ कांग्रेसियों की असहमति के बावजूद भारत छोड़ो आंदोलन शुरू किया था। उस समय उनका फैसला सही साबित हुआ। गांधी जी ने उपयुक्त माहौल देखकर ही इस आंदोलन का आह्वान किया था। 1947 में खास समस्या यह थी प्रभावकारी शक्तियाँ लुप्त हो गयी थीं जिनके आधार पर कोई कार्यक्रम बनाया जा सकता था। उन्होंने स्वीकार किया "आज मैं अनुकूल परिस्थितियों को दूर-दूर तक नहीं देख पा रहा हूँ। अतः मुझे उस समय का इन्तज़ार करना पड़ेगा।"

पर यह समय कभी नहीं आया। राजनीतिक गतिविधियाँ तेज़ी से करवट ले रही थीं। 3 जून को विभाजन की घोषणा हुई और 15 अगस्त 1947 को भारत का विभाजन हो गया। 14 जून 1947 के अखिल भारतीय कांग्रेस समिति की घोषणा में गांधी जी ने कांग्रेसियों को सलाह दी कि वर्तमान समय की माँग को देखते विभाजन को स्वीकार कर लेना चाहिए, लेकिन इसे हृदय से स्वीकार नहीं किया जाना चाहिए और जब स्थिति सुधर जाय तब फिर से भारत को एक करने की कोशिश करनी चाहिए।

## 36.5 साम्प्रदायिक समस्या के प्रति कांग्रेस का रवैया

कई बार ऐसा कहा जाता है कि यदि कांग्रेस जिन्ना से समझौता कर लेती तो विभाजन को रोका जा सकता था। यह समझौता 1940 में भी हो सकता था जब जिन्ना ने पृथक राज्य की मांग की थी। 1942 में क्रिप्स मिशन भारत आया और 1946 में कैबिनेट मिशन प्लान आया। दोनों ही अवसरों पर जिन्ना से समझौता किया जा सकता था। मौलाना आज़ाद ने अपनी आत्मकथा "इण्डिया विन्स फ्रीडम" में इस पक्ष का समर्थन किया है। यह मत इस तथ्य की उपेक्षा करता है कि जिन्ना ने जो माँग की थी, वह कांग्रेस के लिए स्वीकार करना असंभव था। जिन्ना ने माँग की थी कि कांग्रेस से तभी समझौता हो सकता है जब कांग्रेस अपने को हिन्दू निकाय और लीग को मुस्लिम के प्रतिनिधि के रूप में स्वीकार कर ले। इस मांग को स्वीकार कर लेने के बाद कांग्रेस का धर्मनिरपेक्ष ढाँचा नष्ट हो जाता। यह न केवल उन राष्ट्रवादी मुसलमानों के साथ विश्वासघात होता जो अपनी व्यक्तिगत हानि की

परवाह न करते हुए कांग्रेस के साथ थे, साथ ही भारतीय जनता और उनके भविष्य के साथ भी खिलवाड़ होता। जिन्ना की माँग स्वीकार करने पर भारत एक फासिस्ट हिन्दू राज्य ही बन पाता। राजेन्द्र प्रसाद के शब्दों में कांग्रेस "अपने अतीत को नकारकर, अपने इतिहास को झुठलाकर और अपने भविष्य के साथ छल करके ही ऐसा कर सकती थी।"

### 36.5.1 समझौते की नीति

कांग्रेस ने इन शर्तों पर जिन्ना से समझौता करने से इन्कार तो कर लिया पर जिन्ना के दुराग्रह के बावजूद कांग्रेस ने मुसलमानों को रियायत देने की एकतरफा घोषणा की। कांग्रेस ने 1942 में क्रिप्स मिशन के साथ किये गये समझौते में मुस्लिम बहुल प्रांत की स्वायत्तता देने की बात मान ली। 1944 में गांधी जी ने जिन्ना से बात की और इस बात को स्वीकार किया कि मुस्लिम बहुल प्रांतों को आत्म निर्णय का अधिकार मिलना चाहिए। जब कैबिनेट मिशन प्लान ने यह प्रस्ताव रखा कि अगर मुस्लिम चाहें तो मुस्लिम बहुल प्रांतों (समूह ख और ग) के लिए अलग संविधान सभा का गठन किया जायेगा, तब कांग्रेस ने इसका विरोध नहीं किया। कांग्रेस ने अनिवार्य समूहीकरण का विरोध किया, (क्योंकि इसके ज़रिए उत्तर-पश्चिमी सीमान्त प्रदेशों और आसाम को उन समूहों में शामिल होने के लिए बाध्य किया जा सकता था जिनमें शामिल होने की उनकी इच्छा नहीं हो सकती थी।) लेकिन 1946 के अंत में नेहरू जी ने घोषणा की कि उनकी पार्टी संघ न्यायालय के निर्णय को स्वीकार करेगी कि समूहीकरण अनिवार्य होना चाहिए या वैकल्पिक। इसलिए जब ब्रिटिश कैबिनेट ने 6 दिसंबर 1946 के अपने वक्तव्य में यह स्पष्ट किया कि समूहीकरण अनिवार्य होगा तो कांग्रेस ने उसे चुपचाप मान लिया। जैसा कि हमने पहले बताया है कि जब ब्रिटेन की सरकार ने 20 फ़रवरी 1947 को भारत छोड़ने की घोषणा कर दी, तब नेहरू ने लियाक़त अली ख़ान से सहयोग की अपील की। अतः जब कांग्रेस ने 3 जून की योजना और विभाजन को स्वीकार किया तो यह लीग की माँग के सामने अंतिम समर्पण था। वस्तुतः मुस्लिम बहुल राज्य संबंधी लीग की लगातार माँग के कारण ही भारत को कटु यथार्थ से गुज़रना पड़ा और कांग्रेस ने इस कटु यथार्थ को स्वीकार किया।

इस प्रकार रियायत की नीति को जिसके सहारे मुसलमानों को यह आश्वासन दिया जाता रहा कि उनके हित सुरक्षित रहेंगे, साम्प्रदायिक माँगों के सामने झुकना पड़ा। उदाहरण के लिए कांग्रेस ने अलगाव की नीति को, मुसलमानों की नीति को मुसलमानों का भय समाप्त करने के लिए स्वीकार कर लिया। कांग्रेस को यह आशा थी कि मुसलमान इस अधिकार का उपयोग नहीं करेंगे। यह एक सद्भावना पूर्ण विचार था, जबकि 1940 तक आते-आते मुस्लिम साम्प्रदायिकता का आधार अल्पसंख्यकों का डर नहीं रह गया था बल्कि उसका एक ही उद्देश्य था—एक स्वतंत्र संप्रभु मुस्लिम राष्ट्र की स्थापना। परिणामस्वरूप कांग्रेस हर बार रियायतें देती रही और यह देख कर कि कांग्रेस नरम पड़ रही है, जिन्ना अपनी मांगों को बढ़ाते गये। इन रियायतों से साम्प्रदायिकता की जड़ें कमज़ोर नहीं हुईं बल्कि इससे जिन्ना और लीग की शक्ति और मज़बूत हुई और उनकी इस क़ामयाबी को देखते हुए ज़्यादा से ज़्यादा मुसलमान उनके साथ आ गये। मुस्लिम साम्प्रदायिकता के साथ हिन्दू साम्प्रदायिकता भी तेज़ी के साथ उभरी। हिन्दू साम्प्रदायवादियों ने अपने को हिन्दुओं के हितों का एकमात्र संरक्षक प्रदर्शित किया और कांग्रेस पर आरोप लगाया गया कि मुसलमानों को अपने पक्ष में करने के लिए वह हिन्दुओं का अहित कर रही है।

### 36.5.2 बुनियादी असफलता

कांग्रेस साम्प्रदायिकता के बढ़ते चरण को रोक नहीं पायी। इसका सबसे बड़ा कारण यह था कि 1940 में साम्प्रदायिकता का जो चरित्र था उसे कांग्रेस समझ नहीं पायी। हालाँकि कांग्रेस धर्मनिरपेक्षता के प्रति प्रतिबद्ध थी और गांधी जी ने हिन्दू मुस्लिम एकता के लिए अपनी जान दे दी लेकिन बुनियादी कमज़ोरी यह थी कि राजनीति और विचारधारा के स्तर पर साम्प्रदायिकता से लड़ने की दूरगामी योजना सामने नहीं आ सकी। कांग्रेसी नेता यह विश्वास करते थे कि रियायतें देने और समझौता करने से साम्प्रदायिक समस्या हल हो जायेगी। प्रो. विपिन चन्द्र के अनुसार साम्प्रदायिकता मूलतः एक विचारधारा है जिसे कभी भी स्वीकार नहीं करना चाहिए और न ही किया जा सकता है। इसके साथ संघर्ष करना चाहिए और इसका विरोध करना चाहिए......कांग्रेस और राष्ट्रीय आंदोलन की सबसे बड़ी कमज़ोरी यह थी कि वह ऐसा नहीं कर सकी। "(इंडियाज़ स्ट्रगल फॉर इंडिपेंन्डेंस)।

23 मौलाना आजाद

**बोध प्रश्न 3**

1 निम्नलिखित प्रश्नों को पढ़कर सही (✓) और गलत (×) का निशान लगायें।

i) सत्ता के लोभ में कांग्रेस ने विभाजन स्वीकार किया। ☐

ii) अंग्रेज़ सरकार ने अपनी पिछली नीतियों के तहत विभाजन को स्वीकार किया। ☐

iii) पाकिस्तान के निर्माण में कांग्रेस की रियायत और समझौते की नीति बहुत बड़ा कारण थी। ☐

iv) कांग्रेस की वास्तविक असफलता का कारण यह था कि वह साम्प्रदायिकता से लड़ने के लिए लम्बी अवधि की योजना नहीं बना सकी। ☐

2 भारत के विभाजन के सन्दर्भ में गांधी जी ने अपने को असहाय क्यों पाया? पांच पंक्तियों में उत्तर दीजिए।

..........................................................................................................

..........................................................................................................

..........................................................................................................

..........................................................................................................

..........................................................................................................

## 36.6 सारांश

भारत का विभाजन मुस्लिम लीग की पाकिस्तान की माँग को लेकर हुआ। पृथक राष्ट्र की

लीग 1940 के बाद तेज़ी से उभरी। जिन्ना के नेतृत्व में लीग ने संवैधानिक तरीकों से और प्रत्यक्ष कार्रवाई करके राजनीतिक गतिरोध की ऐसी स्थिति उत्पन्न कर दी जिससे विभाजन अवश्यमभावी हो गया। लेकिन पाकिस्तान के निर्माण में अंग्रेज़ों का बहुत बड़ा हाथ था। अंग्रेज़ शासकों ने बढ़ते हुए राष्ट्रीय आंदोलन में गतिरोध उत्पन्न करने के लिए साम्प्रदायिक शक्तियों का इस्तेमाल किया। लीग को मुसलमानों की एक मात्र प्रतिनिधि संस्था के रूप में स्वीकार किया और उसे वीटो की शक्ति दी। अंत में जब अंग्रेज़ों की नज़र में अखंड भारत सुविधाजनक प्रतीत होने लगा, तब उन्होंने इसे एक रखने का थोड़ा प्रयत्न किया, पर जिन्ना की कारगर धमकियों के सामने उनकी एक न चली। साम्प्रदायिक दंगों को अधिकारीगण रोक नहीं पाये और विभाजन अवश्यमभावी हो गया। कांग्रेस अपनी सम्पूर्ण प्रतिबद्धता के बावजूद भारत की अखंडता की रक्षा नहीं कर सकी। इसके दो कारण थे। यह राष्ट्रीय आन्दोलन में मुस्लिम जनता को शामिल करने में असफल रही और साम्प्रदायिकता से लड़ने की सही नीति नहीं अपना सकी।

24. शरणार्थियों को नेहरू की सांत्वना

## 36.7 शब्दावली

**फूट डालो और शासन करो** : अंग्रेज़ों की शासन करने की नीति, जिसके तहत भारतीय समाज को विभाजित करने की कोशिश की जाती थी।

**स्थानीय विकल्प धारा** : यह क्रिप्स प्रस्ताव की एक धारा थी, जिसके अनुसार भारतीय डॉमिनियन का कोई हिस्सा इसमें शामिल होने से इंकार करने के लिए स्वतंत्र था। इसके कारण पाकिस्तान की माँग को काफी वैधानिक बल मिला।

## 36.8 बोध प्रश्नों के उत्तर

**बोध प्रश्न 1**

आपके उत्तर में निम्नलिखित बातें शामिल होनी चाहिए–

1 i) 1937 के चुनाव में लीग का प्रदर्शन

ii) इसके आधार के प्रसार की ज़रूरत

iii) मुसलमानों को आकर्षित करने के लिए धार्मिक नारों का उपयोग कर उन्हें हिन्दुओं के विरुद्ध करना।

iv) मुसलमानों के लिए पृथक राष्ट्र की माँग को बार-बार दुहराना देखिए उपभाग 36.2.1

2 i) ✓ ii) ✓ iii) ×

**बोध प्रश्न 2**

1 i) × ii) × iii) ×

2 इसका सकारात्मक पक्ष यह था कि इसने भारतीय अखंडता के सिद्धांत को स्वीकार किया। इसका दोष यह था कि प्रांतों का समूहीकरण अनिवार्य है या वैकल्पिक, इसके संबंध में कोई स्पष्टीकरण नहीं किया था। देखिए उपभाग 36.3.2

**बोध प्रश्न 3**

1 i) × ii)✓ iii)✓ iv)✓

2 गांधी जी असहाय इसलिए थे क्योंकि i) जनता में साम्प्रदायिकता तेज़ी से फैलती जा रही थी। ii) अब वे अखंडता के प्रयास में जनता को साथ लेकर नहीं चल सकते थे iii) मुसलमानों, हिन्दुओं और सिक्खों के विभाजन को अन्ततः स्वीकार कर लिया था।

# UNIT 37 THE ESTABLISHMENT OF DEMOCRATIC POLITY IN INDIA

## Structure


37.0 Objectives
37.1 Introduction
37.2 The Concept of Democracy: A History
 37.2.1 The Early Liberals
 37.2.2 Limits of Liberal Democracy
37.3 The Evolution of Democratic Ideas and Institutions in India
 37.3.1 The Impact of the British Rule
 37.3.2 The Perception of the Constituent Assembly
37.4 The Question of Fundamental Rights and Directive Principles
37.5 Towards a Democratic State Structure
 37.5.1 Parliamentary System at the Centre
 37.5.2 The State
37.6 The Electoral System
 37.6.1 Towards a Democratic Representation
 37.6.2 Limits
37.7 Federal Polity Vs. Centralism: Options of a Democratic State
 37.7.1 Historical Background to Federalism
 37.7.2 The Partition and Federalism
 37.7:3 The Constraints of the Administrative and Financial Structure
37.8 Let Us Sum Up
37.9 Keywords
37.10 Answers to Check Your Progress Exercises


## 37.0 OBJECTIVES

After reading this Unit you will learn about:

- the evolution of the concept of democracy,
- the evolution of democratic ideas and institutions in India,
- the limits within which these ideas and institutions function.

## 37.1 INTRODUCTION

Democracy is the watchword of the developing nations today. All shades of political opinions equally proclaim their adherence to it. However, in practice, it might mean quite different things to different classes, groups and parties. Thus, there is no one agreed definition of democracy. In India too the ideas and institutions of democracy grew up in the context of different perceptions of different classes, groups and parties. The context of anti-colonial struggle and the post-independence developments gave these perceptions a definite direction.

## 37.2 THE CONCEPT OF DEMOCRACY: A HISTORY

As a concept, the word democracy originated probably in the fifth century B.C. to describe the system of government found among few of the Greek City States. The translation of Greek word provides us with a basic definition of democracy as 'rule by' or 'of the people'.

In the modern context, these views were first revived and articulated in the early modern Europe as a critique of precapitalist ideology and rule. Seventeenth and eighteenth century Europe witnessed the emergence of capitalism and the erosion of the existing feudal order. It was during this period that revived democratic ideas acquired their conceptual apparatus and practical social meaning in the principles of liberalism.

### 37.2.1 The Early Liberals

The early liberals, like the Levellers, John Locke and later Rousseau, Mill and others, rejected the hitherto dominant view that society constituted natural hierarchy. They rejected the paternalistic theory of authority and government based on the principle of the divine right of kings. These liberals located the ultimate source of authority in the consent of the people. The right to life, liberty and property were considered fundamental for human development. But they did not provide any blue-print for a society in which these rights could be enjoyed by each individual. The right to equality was to be only an abstract principle, and remains so to date, as a kind of formal equality before law. Most liberals, with the exception of Rousseau, upheld that the right to estate and property was of overwhelming concern for the growth of the individual personality and social prosperity. Whereas in Locke's and Mill's philosophy, consent based authority could be interpreted as the essence of bourgeois democracy, in Rousseau's thought it implied the Utopian notion of popular sovereignty and direct democracy under a small state system.

### 37.2.2 Limits of Liberal Democracy

Liberal democracy in practice has had its limitations. It does not provide us with a democratic model where all people can exercise equally the right to vote. One of the staunch protagonists of liberal democracy J.S. Mill, for example, advocated the system of plural voting for less numerous richer classes. This was intended to maintain a proper numerical balance in favour of the ruling capitalist class as opposed to the strength of the working people. It was only with the introduction of universal adult suffrage in this century that the ideas of democracy acquired a representative character. With this development, democracy indeed became a house-hold word to be defined (or actualized)in terms of the system of voting. Thus, democracy is essentially identified today with a system of government installed in power through free and fair elections.

**The Nature of Democratic Representation**

Now the question arises, as to how representative these representative (or democratic) governments and their electoral systems are? Has the universal voting right made the governments they vote for more democratic? In this context, when we study the functioning of various political institutions of representative democracy, (i.e.- parliamentary or Presidential forms of government, the unitary or federal structures of political power and the pattern of franchise or voting), we find that their actual operation in modern politics is predominantly determined by the nature of the prevalent party-system. The growth of the political parties in the last two hundred years or so has been the most significant political development in the polities of modern democracies. It is only through the competition between the political parties for political power by the mechanism of electoral system that democracy is supposedly realized.

**Political Parties and Democracy**

Invariably, the ruling parties in modern democracies are based on the principle of leadership, centralization, discipline, and patronage-based power. This inevitably breeds bureaucratization of these parties, and thereby the elitist pattern of decision making. Thus, Joseph Schumpeter defines democracy as "that institutional arrangement for arriving at political decisions in which individuals acquire the power to decide by means of competitive struggle for people's vote." The struggle for the people's vote takes place not according to the will or interests of an ordinary sovereign voter, rather the ruling parties in liberal democracies represent the will of the dominant classes. Whenever, any party ceases to function in this way, it is projected as a threat to social order and peace.

The political parties do not exist in a vacuum. They are not created just for the sake of their own leaders and the rank and file. They essentially survive with the support of the social force of certain classes, whose interests they protect and further. In all class-divided societies this class-bias is evident in their policies and programmes. It is by studying the ideology, policy, programme and the character of the dominant political parties, which alternately or regularly came to power that the actual nature of democracy or its representativeness can be understood. Such analysis also testifies that ruling class parties usually win elections by working out highly populist strategies for the mass manipulation of the voters.

**Participatory Democracy?**

In the foregoing context of elitist, bureaucratic and populist distortion of democracy, some authors have suggested the alternative of 'participatory democracy' as a way out.

According to them, the real essence of democracy can be captured only if there exists an institutional arrangement of decision-making, based upon various levels of people's participation. Such political framework of democracy is possible, only if the people realize that they are equally enjoying the fruit of socio-economic development. In other words the actual democracy can exist only under a participatory socialist polity, where people become their own political master or genuine sovereign voters.

**Check Your Progress 1**

1) Liberal democracy's theorists (Locke, Rousseau etc.) said that:
   i) society was divided into various classes and groups because one group or class was biologically more fit than the others.
   ii) authority to rule came from the consent of the people.
   iii) authority to rule was given by God
   iv) none of these

2) Politics in majority of the modern day democratic states
   i) is determined by the nature of the prevalent party-system
   ii) is determined by 'participatory democracy'
   iii) is determined by divine right of the king
   iv) None of the above

## 37.3 THE EVOLUTION OF DEMOCRATIC IDEAS AND INSTITUTIONS IN INDIA

Democratic ideas and institutions grew up in the context of the impact of British rule, the national movement and the development of post independence polity.

### 37.3.1 The Impact of the British Rule

In the evolution of the modern democratic ideas and institutions in India, the experience of British Colonial rule and of the anti-colonial freedom struggle was decisive. It was only when the pre-Colonial Indian Society was put into the melting pot of colonial rule that the ideas of democracy and nationalism started to take shape, in the beginning of nineteenth century. Colonial exploitation required a new economic and administrative infrastructure, which in turn set new social forces of production into motion. Out of these came a new social mobility, which allowed the growth of reformist, nationalist, liberal and democratic ideas.

**Indian Renaissance and Democracy**

The demand for the introduction of democratic and representative institutions in India dates back to the days of Raja Ram Mohan Roy and Indian Renaissance. However renaissance in India marked only a half-hearted advance towards a liberal democracy. It lacked a radical self-critical appraisal of India's social structure and its value system.

Even this half-hearted advance through Renaissance the movement lacked the support of any prominent social class. It was confined to a tiny section of educated people. Thus it lacked a revolutionary will and the power for the social and ideological transformation of Indian society. Unlike the social movements of antifeudal revolution in the west, and transition to capitalism the democratic movement in India took place without any break with pre-capitalist ideologies. Thus democracy and capitalism in India always remained impregnated with a strong sense of revivalism and with local parochial traditions of caste, language, region and religion.

The introduction of Western education in India was the most significant development in the growth of liberalism, democracy and nation-building in the modern Indian context. It provided the educated manpower to organise business and industry along scientific lines. It produced the leadership of the national movement. The organization of the Congress-nationalist platform was achieved with the initiative of the educated elite. In fact, according to the early nationalists, the unity of the educated elite signified Indian national unity (Surendranath Banerjee).

### The Early Nationalists and Democracy

The success of the early nationalists lay in the spread of the message of democracy and nationalism among educated Indians. In the beginning, they demanded the introduction of representative institutions within the framework of British overlordship over India.

Even the political message of the slogans like 'Swaraj' and 'Swadeshi' did not go beyond the confines of British rule.

In the beginning, therefore, the Indian National Congress lacked the militancy and programme essential for a decisive struggle for independence and democracy in India. The English educated elite was too deeply drawn into the charm of the colonial ethos and its value-system to seek any real radical break with the British rule. In the process, early Congress politics, during the moderate era, were hampered by its incapacity to seek mass support for its policies and action, outside the narrow circle of the English educated elite. This limitation was sought to be overcome by the extremist leadership. They tried to achieve this goal not on the basis of a specific socio-economic policy of mass-mobilization against colonial exploitation, but with the help of the religious ideology of Hindu revivalism. Instead of achieving a democratic consenses of all communities on the basis of a common socio-economic programme of nationalism, Hindu revivalism led to communal division between Hindus and Muslims. The religious extremists therefore strengthened the Muslim fear that Congress was an essentially Hindu party. Thus the alienation of Muslims from Congress led to the weakening of the movement of democracy and nationalism in India.

### Democracy in the Age of Mass Movements

In the twentieth century the movement of nationalism and democracy registered significant advances. The Minto-Morley Reforms of 1909 permitted a minority of indirectly elected members to the central legislative council and majority of directly elected members to enter the provincial council. The 1919 Act introduced the system of dyarchy in India. The 1935 Act was passed in the aftermath of the Khilafat, the Non-cooperation and the Civil Disobedience Movements. During these movements large section of Indian people were drawn in the struggle for democracy and freedom. This included a section of capitalist class, the middle classes, the working class and peasantry. The participation of the working people in these movements immensely enhanced the stature and strength of the nationalist movement and its leadership. Finally, as a result of the Quit India Movement and post-World War II social situation, power was transferred to the Indians. However, the independence of India witnessed the worst communal holocaust and the partition of the country.

OLDSMOBILE
FOR STYLE
LEADERSHIP

The Statesman

INAUGURATION OF TWO DOMINIONS

Midnight Session Of Constituent Assembly In New Delhi

PLEDGE OF SERVICE AND DEDICATION

DAY OF REJOICING IN INDIA

SWEARING-IN CEREMONIES TODAY

EARLDOM FOR LORD MOUNTBATTEN

SWEARING-IN OF NEW GOVERNORS

NEW CABINET FOR INDIAN DOMINION

MEMORABLE SCENES IN INDIA'S CAPITAL

TWO HOLIDAYS

SCENES OF SPLENDOUR IN KARACHI

MOUNTBATTEN'S ADDRESS TO PAKISTAN ASSEMBLY

"THIS IS A PARTING BETWEEN FRIENDS"

PAKISTAN DOMINION CENTRAL MINISTRY

25. Newspaper Report on Partition and Independence.

### 37.3.2 The Perception of the Constituent Assembly

The establishment of the 385 members Constituent Assembly by the colonial government in 1946 was the culmination of the struggle for democratic government and independence in India. It represented various shades of opinion including Hindus, Muslims and Sikhs. But this body of Constitution-makers was not fully representative in character. 292 members of it were chosen by the legislative assemblies of 11 provinces (ruled directly by British) elected on a restricted franchise of about one-fifth of the adult population. 93 members were nominated by the rulers of the native states under the overall hegemony of the British. The partition of the country in August 1947 reduced the size of this body to 298 of which 208 owed their loyalty to the Congress party.

The Constituent Assembly gave direction to the establishment of democratic institutions in India. It functioned, both as the Parliament as well as the Constitution making body until January 1950. The Congress Party being the most influential section, naturally had a direct impact on the philosophy of the Indian Constitution. The real shape of the Indian Constitution was determined not by an autonomous body of legal experts, but by the liberal creed of the Congress party. The Constitution was, above all, a legal form of the political philosophy upheld by the Congress party. And, all the decisions about the establishment of liberal-democratic institutions in India: The form of government, federalism, securalism and democratic rights were taken at the level of the Congress party and its high command. This was confessed in the floor of the Assembly by the Chairman of the Drafting Committee of the Indian Constitution Dr. Ambedkar himself by saying that: "They had to go to another place to obtain a decision and come to Assembly".

However, there was nothing wrong in such an overwhelming influence of the Congress per se in the making of the Constitution. Constitutions are never made entirely within a legalistic framework. Both the Philadelphia convention of 1787 and French National Assembly of 1778-91 also went far beyond the legalistic terms and references. However, there was a major difference between them and the Indian Constituent Assembly. They marked a radical liberal revolutionary break in their social situation while this was not the case in India. The independence of India highlights a compromise with the social situation that has imposed the reality of Partition . This historical situation appeared beyond the control of the Congress party and its leadership. The division of the country, however, gave a free hand to the Congress party in the Constituent Assembly to evolve a constitutional framework of its own choice. Earlier it had lacked this freedom while negotiating with the Muslim League.

**26. Nehru Signing the Constitution (24.1.1950).**

## 37.4 THE QUESTION OF FUNDAMENTAL RIGHTS AND DIRECTIVE PRINCIPLES

Both the leadership of the Congress party and an overwhelming majority of the Constituent Assembly members were deeply influenced and impressed by the western liberal tradition of democracy. From the beginning of the freedom struggle itself, their advocacy of basic human rights and political freedom of individual citizens epitomized the liberal democratic creed. The Congress Party was duty bound to incorporate these promises in the Indian Constitution. The Fundamental Rights were therefore declared as the most sacred part of the Constitution. The individual, rather than the village, family, caste or community was regarded as the basic legal unit. In the background of a highly communal structure characterised by social division and local-parochial particularistic ties and an inward-looking social outlook, this was a great step forward in the direction of bourgeois justice and equality.

Further, the right to freedom of speech and expression, religion and faith, assembly and association, occupation, and the acquisition, holding or disposing off property were made enforceable by the system of courts. In this context the process of judicial review and the independence of the judiciary were regarded as sacred. A hierarchical system of courts was, therefore, provided with the Supreme Court of India standing at its apex. The objective of judicial review and the independence of judiciary was to defend the rights and property of individual citizens. The courts were vested with absolute powers to interpret the Constitution in this context of bourgeois democracy in India.

On the other hand the Directive Principles of the Constitution (as enunciated in the Part IV of the Indian Constitution) were declared to be fundamental, but not enforceable by any court, in the governance of the country. Therefore, these directives have not been realized in practice. In fact recent trends in policy and programme of the Indian state point towards the reversal of these directives.

**Check Your Progress 2**

Tick ( ✓ ) the correct statement:

1) The early nationalists
   i) were able to take democratic ideals and values to the people.
   ii) were not able to take democratic ideals and values to the people.
   iii) tried to take democratic values to the people through the vehicle of religious revivalism.
   iv) None of the above.

2) The hall mark of the achievement of Indian democracy in the post independence period was that
   i) caste and community came to be regarded as the basic legal units.
   ii) the individual came to be recognized as the basic legal unit.
   iii) both (i) & (ii) are correct.
   iv) None of the above.

## 37.5 TOWARDS A DEMOCRATIC STATE STRUCTURE

The evolution of liberal traditions of authority has a long history in India. It was not established overnight by the decision of the Constituent Assembly. From the period of the Indian Renaissance until Independence in 1947, the Indian political elite had become familiar with the working of British system of governance. The influence of this experience with the working the British model was naturally overwhelming in the choice of the state structure to govern Indian polity in the future. Therefore, when the Constituent Assembly was entrusted with the task of creating a formal institutional network of state-power in India, they willingly opted for the Parliamentary system of government patterned on the Westminster model.

### 37.5.1 Parliamentary System at the Centre

The Parliamentary system of governance envisages the collective responsibility of the executive (i.e. the Council of Ministers) to the Legislature. The decision-making authority here rests with the Council of ministers led by the Prime Minister. The Prime Minister is not only the leader of the majority party or coalition of parties in the Parliament, but he is also the spokesman of the nation and the state. His influence is overwhelming in shaping the policy of the state and government. Therefore, it is argued by some that it is neither the Parliamentary nor the Cabinet form of government that is in operation in the contemporary period. According to many political scientists and commentators (in India and Britain), what exists in reality is the Prime Ministerial form of Government. The institution of presidency is merely nominal. It is created for five years by an electoral college consisting of the members of both houses of the Union Parliament and the legislative assemblies of the states. The President of India acts on the aid and advice of the Council of Ministers led by the Prime Minister.

### 37.5.2 The State

Like the Centre, at the state level also the real executive power is vested in the Chief Minister by virtue of his position as the leader of the majority party in the state legislature. The role of the Governor has been the major bone of contention from the beginning. It has become very controversial, as on the one hand he acts as the nominee of the Centre by virtue of his being appointed by it, and on the other hand according to the Constitution he is supposed to act in accordance with the will of the majority party and its leadership in the state legislature. Thus, there always exists a conflict in his role as centre's loyal nominee vis-a-vis his loyalty to the Constitution. This conflict becomes far more prominent if the ruling party at the state level happens to be in political opposition to the ruling party at the Centre.

## 37.6 THE ELECTORAL SYSTEM

The introduction of the representative system of government based on universal adult franchise was one of the most significant advances towards the democratization of the Indian political system. For this purpose, the Election Commission (Article 324) was created to supervise the entire procedure and machinery for national and state elections.

### 37.6.1 Towards a democratic representation

India's experience with elections on the whole has been positive. They have become the chief system by which the strength of any leadership or a party is tested. Although, the introduction of universal suffrage strengthened the already established caste-class authority in terms of economic power, social position and political authority, but it also gave a voice to the hitherto disenfranchised sections of society. In this way the elections have become central to the legitimacy of political authority in India. In case they cease to be the key instruments of political legitimation the political system of India itself might be threatened. Whenever electoral choices were seen as being critically important in the health of democracy, the Indian voters have utilized their right to franchise with wisdom.

Elections, in this way, have become a part and parcel of India's political life. They are more or less taken for granted for the solution of any crisis. This is evident in case of Jammu and Kashmir, Assam, and Tamil Nadu. The functioning of the electoral system in India then has been central for the continued health of its democratic system. According to Morris Jones, therefore, miraculously the elections are "one of the things Indians — do well".

### 37.6.2 Limits

However, within the context of Indian politics, we find that elections have not revolutionized the situation. They were not introduced with any revolutionary aim either. They were utilised as a vehicle for legitimizing the existent social and economic power of the dominant castes and classes. Therefore, with few exceptions, they have not been helpful to the toiling people as a weapon to diminish the socio-economic and political hold of vested interests. For example a Survey of the Panchayat Samitis in Andhra Pradesh in the mid-1960s, for instance showed that "high caste, more land, more money and more education" continued to be "the requisite for political success".

Finally, it can be said that in certain cases the vested interests have manipulated the institution of elections to maintain their hold. This was sought to be done even by resorting to caste, communal, linguistic and regional chauvinism. There is also an ongoing debate on the use of radio, television and electronic media for meeting political ends. No small party or individual social workers can easily reach to the mass of the voters without adequate media network and the funds to fight elections.

## 37.7 FEDERAL POLITY VS. CENTRALISM: OPTIONS OF A DEMOCRATIC STATE

One of the strongest features of democracy in the contemporary world is the decentralization of decision-making, resource mobilization and its allocation. This is a requirement of any modern large-scale society, its politics and economy. Federalism provides an adequate organizational structure for the administration of the large-scale societies of modern nation-states.

### 37.7.1 Historical Background To Federalism

In the context of a highly diverse society like that of India, federalism exists as the sole medium of satisfying the political and cultural aspirations of its distinct communities. The first major democratic consensus towards this direction was taken in 1916, when both the Congress Party and the Muslim League reached an accord known as the Lucknow Pact. The basis of this consensus was the federal character of the future Indian state. However, this consensus was not followed upon in the best spirit as a necessity for Indian unity. From the very beginning therefore, while the Congress Party was motivated by achievement of maximum extent of centralization, the Muslim League worked for the utmost possible decentralization.

In the conflict between these two perceptions, the question of residuary power was keenly debated. While the Congress nationalists and various other Hindu majority factions fought for vesting these powers with the Centre, the Muslim League and other minority groups wanted them within the orbit of the state governments power. This debate about the demarcation of powers between centre and states was a stumbling block facing the All Parties Committee headed by Pandit Moti Lal Nehru, the Round Table Conference and all subsequent negotiations, leading to the two Missions sent by the British Government to India between 1942- 47. While the nationalists led by the Congress made compromise after compromise to avert the partition of India, the Muslim League stood finally for the partition of India rather than for a strong federal polity.

### 37.7.2 Federalism after the Partition

After the partition of India, instead of going for federal polity a strong case of a unitary centre was therefore made by the Constitution makers. Yet the need to organize India along federal principles could not be ignored. So, what we have in India is a federal form of government with unitary essence. The Constitution itself provided innumerable provisions by which the centre and a strong ruling party at the centre could easily infringe upon the powers of federating units. For example, the Constitution empowers the governors of the state (nominated by the centre) to dismiss the elected state governments. The power of the centre to give direction to the state and its power to declare emergency also tended to strengthen the forces of centralism.

### 37.7.3 The Constraints of the Administrative and Financial Structure

The administrative and financial structure of Indian state, its economy and its organization also leads to the strengthening of the centralized political structure in India. The resources for various development plans in agriculture, industry, education and health had to come through arrangements with the Planning Commission established in March 1950. In the process the Planning Commission became biased in favour of centralization and the activities of socio-economic development became central subjects.

Finally, bureaucracy in India existed as a legacy of the colonial state. Of approximately, 1,000 ICS Officers serving at the time of independence, 453 were Indians and became the policy makers of Indian state. Not everyone in the Constituent Assembly was convinced

about their overwhelming importance to the independent Indian state. Many democrats, reformers and the nationalists even wanted to get rid of them. But, the votaries of the centralized state prevailed ultimately. Patel, for example, defended their utility by saying that:

> "I have worked with them during difficult period ... Remove them and I see nothing but a picture of chaos all over the country". Even the radical Nehru concurred in their continuance by saying that: "the old distinction and differences have gone... In the difficult days ahead our service and experts have a vital role to play and we invite them to do so as comrades in the service of India".

In addition to the bureaucracy, the role of para-military forces like the Central Reserve Police Force (CRPF), the Border Security Force (BSF) and the Central Industrial Security Force (CISF) is also instrumental in strengthening the centralized political power structure in India.

**Check Your Progress 3**

Tick ( ✓ ) the correct statement:

1) The weakness of the electoral system in India is that
   i) it has come to be manipulated by national and regional elite by using caste, communal and regional chauvinism.
   ii) it has no weakness at all.
   iii) it has given effective representation to the toiling poor and depressed classes.
   iv) None of the above.

2) What are the constraints in making India a truly federal structure?

......................................................................................................................................

......................................................................................................................................

......................................................................................................................................

......................................................................................................................................

......................................................................................................................................

## 37.8 LET US SUM UP

After reading this unit you were able to know:

- about a brief history of the concept of democracy.
- about the way in which the idea of democracy and its institutions have shaped up in India.
- about the limits of both the concept of liberal democracy as well its practise, mainly through the Indian experience.

## 37.9 KEY WORDS

**Plural Voting** : A system of voting in which one person gets more than one vote.

**Disenfranchised sections**: Those sections of a society who do not have the franchise i.e. right to vote and elect a representative.

**Consensus**: Complete agreement on an issue.

**Universal Suffrage**: right to vote and elect representative for every individual.

**Political legitimation:** Political recognisation that certain art or idea is legal.

**Paternalistic theory of authority**: a theory that gave the king, the authority to rule since he had to look after his subjects as a father looks after his son.

**Pre-capitalist ideologies**: ideologies i.e. world views which existed prominently before capitalism. In Indian context they can be identified as religion or caste. These world views in contrast to capitalism's global spread were local in nature.

**Concept of natural hierarchy**: a concept which talked of society being divided into rich and poor because of natural reasons i.e. reasons of biology. So biologically the fittest man became rich and the unfit became poor.

**Westminster Model**: The parliamentary form of government which has evolved in Britain. Westminster is the place where the British Parliament is located.

## 37.10 ANSWERS TO CHECK YOUR PROGRESS EXERCISES

**Check Your Progress 1**

1) iii) 2) i)

**Check Your Progress 2**

1) iii) 2) ii)

**Check Your Progress 3**

1) i) 2) See Section 38.7. Your answer should include

a) role of historical factors.

b) constraints of administrative and financial structure.

## SOME USEFUL BOOKS FOR THIS BLOCK


Amit K. Gupta (ed) — *Myth and Reality*, (Manohar, New Delhi-1987)

Bipan Chandra — *Communalism in Modern India* (Vikas, New Delhi, 1986)

D.N. Panigrahi (ed) — *Economy, Society and Politics in Modern India* (Vikas, New Delhi, 1984)

Sumit Sarkar — *Modern India* (Macmillan, New Delhi, 1983)

— Indian Constitution (NCERT)

— Democracy in Practice (NCERT)

# इकाई 38 भारत में नियोजन और औद्योगिकीकरण

## इकाई की रूपरेखा


38.0 उद्देश्य
38.1 प्रस्तावना
38.2 स्वतंत्रता के समय औद्योगिक संरचना
- 38.2.1 औपनिवेशिक शासन के तीन चरण
- 38.2.2 सीमान्त वृद्धि
- 38.2.3 दुर्बलताएं और बाधाएँ

38.3 नियोजन की भूमिका से संबंधित प्रारंभिक विचार
38.4 औद्योगिक विकास में घरेलू बाज़ार की भूमिका
- 38.4.1 घरेलू बाज़ार की सीमाएँ
- 38.4.2 बम्बई योजना

38.5 स्वातंत्र्योत्तर प्रारंभिक प्रयास
- 38.5.1 औद्योगिक नीति प्रस्ताव 1948
- 38.5.2 औद्योगिक नीति प्रस्ताव 1956
- 38.5.3 प्रारंभिक प्रयासों का मूल्यांकन

38.6 औद्योगिक विकास को प्रोत्साहन
38.7 नियोजन और क्रियान्वयन के उद्देश्य
- 38.7.1 नियंत्रण और विनियमन की भूमिका
- 38.7.2 दूसरी योजना का प्रारूप

38.8 औद्योगिक संरचना, वृद्धि और नीति में परिवर्तन
- 38.8.1 वृद्धि दर में गिरावट
- 38.8.2 गिरावट के कारण
- 38.8.3 नीतिगत बाधाएँ
- 38.8.4 संरचनागत बाधाएँ

38.9 उद्योग का स्वामित्व और नियंत्रण
- 38.9.1 प्रारंभिक एकाधिकार
- 38.9.2 एकाधिकार पर नियंत्रण के प्रयास
- 38.9.3 विदेशी पूँजी पर प्रतिबन्ध के प्रयास
- 38.9.4 लघु उद्योगों का विकास

38.10 उद्योग और नियोजन : एक मूल्यांकन
38.11 सारांश
38.12 शब्दावली
38.13 बोध प्रश्नों के उत्तर


## 38.0 उद्देश्य

इस इकाई को पढ़ने के बाद आप :

- भारत में आर्थिक और औद्योगिक विकास की पृष्ठभूमि के बारे में संक्षिप्त जानकारी प्राप्त कर सकेंगे,
- भारत में नियोजन के कुछ प्रारंभिक विचारों के बारे में जान पायेंगे,
- उन आधारभूत अवधारणाओं के बारे में जान सकेंगे जिनमें कि नियोजन की समझ निहित थी,
- नियोजन के क्षेत्र में स्वतंत्रता के पश्चात किये गये प्रारंभिक प्रयासों को समझ सकेंगे,
- योजना प्रारूपों के विकास के बारे में जान पायेंगे,
- भारत में आर्थिक नियोजन की बाधाओं और इन बाधाओं के विषय में विभिन्न विचारों को समझ सकेंगे।

## 38.1 प्रस्तावना

प्रारंभिक इकाइयों में आपने पढ़ा था कि ब्रिटिश शासन के दौरान भारत की अर्थव्यवस्था को किस तरह अल्पविकास की अवस्था में रहना पड़ा था। इस दौर में जो कुछ भी विकास हुआ था वह ब्रिटिश शासन की बाधाओं के बावजूद हुआ था। औपनिवेशिक शासन की जो भी बाधाएँ थीं वे 1947 में भारतीय स्वतंत्रता के साथ ही समाप्त हो गयीं। अब सामने सवाल यह था कि एक अल्पविकसित अर्थव्यवस्था की समस्याओं से कैसे निपटा जाए। इस मामले में प्रगतिशील राष्ट्रवादियों और भारतीय उद्योगपतियों के बीच विचारों की ज़बर्दस्त समानता उभर कर आयी। दोनों ही इस बात पर सहमत थे कि योजनाबद्ध आर्थिक विकास का तरीका उपनिवेशकालीन भारतीय अर्थव्यवस्था की क्षति को पूरा करेगा और विकास का नया रास्ता भी खोलेगा। इस इकाई में हम ऐतिहासिक पृष्ठभूमि को ध्यान में रखते हुए विकास के इस नये रास्ते का मूल्यांकन करने का प्रयास करेंगे।

## 38.2 स्वतंत्रता के समय औद्योगिक संरचना

पूर्व इकाइयों में हमने भारतीय अर्थव्यवस्था पर औपनिवेशिक शासन के प्रभाव के बारे में पढ़ा था। ध्यान देने योग्य महत्वपूर्ण बात यह है कि यह प्रभाव समय और स्थान दोनों ही दृष्टियों से असमान था। मतलब यह कि ब्रिटिश शासन के कुछ कालों में उपनिवेशवाद का हानिकारक या लाभदायक प्रभाव, आर्थिक दृष्टि से अन्य कालों की अपेक्षा भिन्न था। इसी तरह, भारत के कुछ भागों में औपनिवेशिक शासन का प्रतिकूल प्रभाव दूसरे भागों की तुलना में अधिक था। उदाहरण के लिए प्रभाव की कालगत भिन्नता इस बात से ज़ाहिर होती है कि मुख्य रूप से 19वीं शताब्दी में भारतीय वस्त्र उद्योग को, विशेषकर हथकरघा उद्योग को, सस्ते अंग्रेज़ी कपड़े के आयात ने भारी क्षति पहुँचाई। लेकिन 18वीं शताब्दी के प्रारंभ में जब यूरोपीय व्यापारी वस्तुतः भारतीय कपड़े का निर्यात कर रहे थे, तब स्थिति पूरी तरह भिन्न थी। उसी तरह, स्थान संबंधी प्रभाव भिन्नता का उदाहरण इस तथ्य में मिलता है कि अंग्रेज सरकार की नीतियों से पश्चिमी भारत की तुलना में पूर्वी भारत की अर्थव्यवस्था को अधिक क्षति पहुँची। यही वह कारण है कि क्यों गुजरात और महाराष्ट्र, बिहार-असम-उड़ीसा और यहाँ तक कि बंगाल की तुलना में आज भी अधिक विकसित हैं। दरअसल, औपनिवेशिक शासन के दौरान पश्चिमी भारत में कुछ औद्योगीकरण हो गया था।

### 38.2.1 औपनिवेशिक शासन के तीन चरण

औपनिवेशिक शासन के तीन विभिन्न चरणों की पहचान करना संभव है :

i) **प्रथम चरण** : यह वह चरण है जिसमें ईस्ट इंडिया कंपनी एक व्यापारिक कंपनी के रूप में कार्य करती थी, जो भारतीय माल के साथ ही साथ तैयार माल को भी यूरोपीय बाज़ारों में ले जाती थी। यह व्यापार मूल उत्पादक से अधिक व्यापारी को समृद्ध बनाता था। यह चरण 17वीं शताब्दी के प्रारंभ से लेकर 19वीं शताब्दी के प्रारंभ तक रहा।

ii) **द्वितीय चरण** : इस चरण में 19वीं शताब्दी का अधिकांश भाग आता है। इस दौर में भारत में निर्मित वस्तुओं का स्थान सस्ती अंग्रेज़ी वस्तुओं ने ले लिया। इस कारगुज़ारी के परिणामस्वरूप बहुत से भारतीय हस्तशिल्प उत्पादक और कारीगर बर्बाद हो गये। इस काल में औद्योगिकीकरण की प्रक्रिया में गिरावट के बारे में इतिहासकारों का ध्यान खींचा है। उनके अनुसार उद्योगों में लगे लोगों की संख्या का अनुपात कम हो गया था, जबकि कृषि में इस अनुपात में वृद्धि हो गयी थी। यह वह दौर भी था जिसमें विश्व भर में ब्रिटिश पूँजी के लिए भारत सस्ते कच्चे माल और सस्ती मज़दूरी का स्रोत हो गया था।

iii) **तृतीय चरण** : बीसवीं शताब्दी के आरंभ में साम्राज्यवादी आर्थिक नीति में परिवर्तन आए। ब्रिटिश शासन की नीतियों में ये परिवर्तन, भारत में राष्ट्रीय आन्दोलन जैसी घटनाओं के घटित होने, सोवियत क्रान्ति तथा अमरीका और जर्मनी के औद्योगिक शक्तियों के रूप में उभरते जैसी घटनाओं के बाह्य दबावों के कारण आए। इन घटनाओं ने ब्रिटिश साम्राज्यवाद को कमज़ोर बना दिया था। इस चरण में—जो लगभग इस शताब्दी के प्रारंभ से शुरू हुआ और स्वतंत्रता के समय तक चला—जो राजनीतिक रियायतें अंग्रेज़ सरकार ने भारतीय जनता को दी थीं, उनका उल्लेख पूर्व इकाइयों में किया जा चुका है। आर्थिक रियायतों, में इस्पात, चीनी, वस्त्र, कागज़ और सीमेंट जैसे अनेक भारतीय उद्योगों को शुल्क संरक्षण (Tariff Protection) दिया जाना सबसे महत्वपूर्ण था।

घरेलू बाज़ार का पोषण करने वाले उद्योगों का विकास भारत के औद्योगिकीकरण में एक नये चरण का प्रतीक बना। पहले विश्व युद्ध तक विनिर्माण (Manufacturing) गतिविधि जूट, तम्बाकू, चाय, कॉफ़ी, रबर, अभ्रक और मैगनीज़ जैसे उत्पादों तक सीमित रही। ये सब आवश्यक रूप से निर्यात प्रधान उत्पाद थे। 1920 और 1930 के दशकों में संरक्षण अनुदान से वस्त्र, चीनी, कागज़, सीमेंट और इन्जीनियरिंग सामान आदि, जैसे आयात का विकल्प बनने वाले उद्योगों को बढ़ने में मदद मिली।

## 38.2.2 सीमान्त वृद्धि

इन प्रत्यक्ष परिवर्तनों के बावजूद ब्रिटिश शासन के दौरान औद्योगिकीकरण का राष्ट्रीय आर्थिक वृद्धि पर कुल प्रभाव केवल सीमान्त प्रभाव ही था। स्वतंत्रता से पहले की शताब्दी में आर्थिक विकास की प्रकृति का मूल्यांकन करते हुए प्रसिद्ध अर्थशास्त्री ए. वैद्यनाथन ने कहा है :

> "कुल मिलाकर स्वतंत्रता पूर्व का युग भारतीय अर्थव्यवस्था के लिए तकरीबन ठहराव या गतिरोध का युग था। बीसवीं शताब्दी के पूवार्द्ध में कुल वास्तविक उत्पादन में वृद्धि दो प्रतिशत वार्षिक से भी कम आंकी गयी है, और प्रति व्यक्ति उत्पादन में वृद्धि आधा प्रतिशत या इससे भी कम थी। उत्पादन के ढाँचे में या उत्पादकता के स्तरों में शायद ही कोई परिवर्तन हुआ था। आधुनिक विनिर्माण (Manufacturing) की वृद्धि को संभवतः पारंपरिक हस्तशिल्प के विस्थापन ने निष्प्रभावी कर दिया था, और यह वृद्धि हर हाल में इतनी कम थी कि उत्पादन की कुल स्थिति पर इससे फ़र्क नहीं पड़ना था।"

स्वतंत्रता पूर्व भारत में औद्योगिक विकास की प्रकृति का एक और पहलू भी था, वह यह कि अधिकांश आधुनिक उद्योग विदेशियों द्वारा नियंत्रित थे, और भारतीय व्यापारी इस क्षेत्र में युद्ध के दौरान ही ठीक तरह से प्रवेश कर सके। तात्पर्य यह कि द्वितीय चरण की अधिकांश निर्यात-प्रधान विनिर्माण गतिविधि मुख्य रूप से यूरोप के अथवा ब्रिटिश व्यापारिक घरानों के नियंत्रण में थी। केवल तीसरे चरण में ही भारतीय उद्यमियों के व्यापार घराने उभर कर आ सके। विनिर्माण उद्योग के स्वामित्व की जो स्थिति हमारे सामने आती है, वह तालिका-1 से स्पष्ट होती है :

**तालिका-1**
**विनिर्माण उद्योग में विदेशी पूँजी**

| विदेशियों के शेयर, कुल शेयरों के प्रतिशत के रूप में | स्थापित उद्यम | | | |
|---|---|---|---|---|
| | 1949 से पहले | | 1950-60 के मध्य | |
| | संख्या | प्रतिशत | संख्या | प्रतिशत |
| 1-19 | 259 | 31.9 | 56 | 22.9 |
| 20-49 | 54 | 6.6 | 63 | 25.8 |
| 50-79 | 62 | 7.6 | 65 | 26.6 |
| 80-99 | 16 | 2.0 | 7 | 2.9 |
| 100% | 420 | 51.9 | 53 | 21.8 |
| योग | 811 | 100.0 | 281 | 100.0 |

**स्रोत** : इन्डस्ट्रिअलाइज़ेशन ऑफ़ इंडिया, जी.के. शिरोकर, पीपुल्स पब्लिशिंग हाउस, नई दिल्ली, 1980, पृ. 95, तालिका-2

उपरोक्त तालिका यह दर्शाती है कि स्वतंत्रता के समय किस तरह विनिर्माण उद्योग में विदेशी पूँजी का प्रभुत्व बना हुआ था, और स्वतंत्रता के बाद भी औद्योगिक क्षेत्र में किस तरह इस पूँजी की भूमिका महत्वपूर्ण बनी रही।

यह संक्षिप्त विवरण यह स्पष्ट करता है कि,

- अंग्रेज़ी व्यापार का भारत में प्रमुख स्थान बना रहा
- भारत में अंग्रेज़ सरकार द्वारा लागू की गयी नीतियों ने भारतीय उद्यमों को प्रोत्साहित नहीं किया।

यूरोप के अधिकांश औद्योगिक अर्थतंत्रों के मामलों में संबंधित देशों की राष्ट्रीय सरकारों ने अपने व्यापारी वर्ग की वृद्धि के समर्थन में महत्वपूर्ण भूमिका निभायी। परंतु भारत में ऐसा नहीं हुआ, और युद्ध काल से पहले तो बिल्कुल भी नहीं हुआ।

औपनिवेशिक सरकार केवल अंग्रेज़ी व्यापार समूहों को संरक्षण देने में रुचि रखती थी। उसका देश के औद्योगिक विकास में प्रोत्साहन देने का कोई इरादा नहीं था।

## 38.2.3 दुर्बलताएं और बाधाएँ

रोचक बात यह है कि सरकार के इस प्रकार के विरोधी रवैये के बावजूद भारतीय उद्यमों की थोड़ी बहुत वृद्धि हुई। जब अंग्रेज़ सरकार ने 1930 और 1940 के दशकों में भारतीय उद्यमों को समर्थन देने का रुख़ अपनाया तो इन उद्यमों ने इसे उत्साह के साथ स्वीकार किया। लेकिन युद्ध काल के दौरान उद्योग क्षेत्र में किया गया अधिकांश निवेश कृषि-आधारित और उपभोक्ता वस्तुओं वाले उद्योगों में ही किया गया। ऐसा कुछ उद्योगों को संरक्षण देने की नीति के तहत भी हुआ। इसने पूंजीगत सामग्री वाले उद्योगों के विकास को प्रोत्साहित नहीं किया। पूँजीगत सामग्री वाले उद्योगों को हतोत्साहित ही किया गया। क्योंकि इंग्लैंड भारत को पूंजीगत सामग्री का निर्यात करने वाला एक प्रमुख निर्यातक था और वह नहीं चाहता था कि उसके भारतीय प्रतिद्वन्द्वी उभर कर आयें।

पूंजीगत सामग्री क्षेत्र की ग़ैर मौजूदगी के अलावा एक और दुर्बलता थी जो औद्योगिक उत्पादन के बेहतर विकास में बाधा बनी रही। यह बाधा तकनीकी कौशल की कमी, अपर्याप्त आधारभूत संरचनागत विकास (विशेष रूप से बिजली, परिवहन और संचार के क्षेत्र में) के कारण पैदा हुई थी।

ये प्रमुख बाधाएँ औद्योगिक विकास के क्षेत्र में स्वतंत्रता से पहले थीं। स्वतंत्रता के पश्चात सरकार ने नियोजन और राज्य के हस्तक्षेप के माध्यम से इन बाधाओं को दूर करने का प्रयास किया। कच्चे माल या वित्त के अभाव के कारण ब्रिटिश भारत में औद्योगिक विकास में बाधा नहीं आयी बल्कि इसका कारण, भारतीय दृष्टिकोण से, कच्चे माल और वित्त का दुरुपयोग था। स्वतंत्रता के बाद योजनाबद्ध औद्योगिकीकरण के माध्यम से राज्य ने इसे दूर करने का प्रयास किया।

स्वातंत्र्योत्तर भारत में औद्योगिकीकरण के नियोजन की यही पृष्ठभूमि थी। इस पृष्ठभूमि की प्रमुख विशेषताएं ये थीं :

1) वैज्ञानिक और तकनीकी विकास का निम्न स्तर,
2) वस्त्र और चीनी जैसी उपभोक्ता वस्तु उद्योगों की प्रमुख भूमिका और पूंजीगत सामग्री वाले उद्योगों की अपेक्षाकृत अनुपस्थिति,
3) विनिर्माण गतिविधि में विदेशी पूंजी का प्रमुख स्थान,
4) परिवहन, विद्युत, औद्योगिक वित्त और तकनीकी जनशक्ति प्रशिक्षण जैसी आधारभूत संरचनागत सुविधाओं का अपर्याप्त विकास,
5) और, सबसे अधिक महत्वपूर्ण था, उद्योग के लिए उपयुक्त घरेलू बाज़ार का न होना।

इन सारी विशेषताओं को उन बाधाओं के रूप में मान्यता दी गयी थी जिन्हें कि भविष्य में दूर किया जाना था। राष्ट्रवादी नेताओं और व्यापारियों ने समान रूप से यह महसूस किया कि भारत में तीव्र औद्योगिकीकरण के लिए आधारभूत ज़रूरतें ये थीं :

1) आधारभूत संरचनागत सुविधाओं का प्रावधान,
2) निवेश योग्य संसाधनों को उद्यमियों तक पहुंचाने के तरीके ईजाद करना,
3) विनिर्मित सामग्री के लिए घरेलू मांग पैदा करना।

लेकिन यह तब तक संभव नहीं था जब तक स्वयं सरकार इनमें से प्रत्येक आवश्यकता पर कुछ न कुछ कार्रवाई करे। इसी संदर्भ में 'नियोजन' को औद्योगिकीकरण के आधार के रूप में देखा गया।

## 38.3 नियोजन की भूमिका से संबंधित प्रारंभिक विचार

जवाहरलाल नेहरू को 1938 में ही राष्ट्रीय योजना समिति का अध्यक्ष बनाया गया था। इस समिति का गठन भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस द्वारा किया गया था। कांग्रेस पार्टी का 1937 में हुआ फैज़पुर अधिवेशन इस दृष्टि से महत्वपूर्ण है कि इसमें एक प्रखर वामपक्षी गुट उभर कर आ गया था। यह गुट सोवियत संघ में योजनाबद्ध औद्योगिकीकरण के अनुभव से काफ़ी उत्प्रेरित था। इस गुट का मानना था कि यदि भारत स्वतंत्र हुआ तो उसे नियमबद्ध तथा राज्याश्रित औद्योगिकीकरण की ऐसी ही किसी नीति को अपनाना पड़ेगा। उनकी इस मान्यता से सभी लोग सहमत थे। यह तथ्य आमूल परिवर्तनवादी कांग्रेसियों और रूढ़िवादी व्यापारियों, दोनों के ही लेखन से स्पष्ट होता है। उदाहरण के लिए राष्ट्रीय योजना समिति ने विचार प्रकट किया था :

> "गरीबी और बेरोज़गारी, राष्ट्रीय सुरक्षा और आमतौर पर आर्थिक विकास की समस्याओं को बिना औद्योगिकीकरण के नहीं सुलझाया जा सकता। औद्योगिकीकरण की दिशा में एक कदम के रूप में राष्ट्रीय नियोजन की व्यापक रूपरेखा तैयार की जानी चाहिए। जो योजना बने उसमें भारी प्रमुख उद्योगों, मध्यम उद्योगों और कुटीर उद्योगों के समुचित विकास का प्रावधान होना चाहिए।"

चार वर्ष बाद लगभग इसी प्रकार के विचार उस दस्तावेज़ में प्रकट किए गये थे जिसे आमतौर पर 'बंबई योजना' के नाम से जाना जाता था। यह दस्तावेज़ 1944 में जे. आर. डी. टाटा, जी.डी. बिड़ला और लाला श्रीराम सहित अनेक प्रमुख व्यापारियों ने तैयार किया था। बंबई योजना में कहा गया था :

"हमने जिस प्रकार के आर्थिक विकास का प्रस्ताव किया है वह तब तक संभव नहीं होगा जब तक इस विकास को एक केन्द्रीय निदेशक सत्ता (Central Directing Authority) के आधार पर नहीं किया जाये। इसके अलावा इस विकास में शामिल वित्तीय ज़िम्मेदारियों के असमान वितरण को रोकने के लिए राज्य के नियंत्रणकारी उपायों की भी जरूरत होगी।"

ऊपर दिये गये उदाहरण अनेक भिन्न स्रोतों से लिये गये हैं :

- पहला, जो "राष्ट्रीय योजना समिति" (National Planning Committee) से लिया गया है, उन लोगों के विचार प्रकट करता है जो समाजवादी दृष्टिकोण रखते थे और मानते थे कि भारत तभी औद्योगीकृत हो सकता है जब वह राज-नियंत्रित नियोजन को अपनाये।
- दूसरा, जो बंबई योजना से लिया गया है, कुछ सार्वजनिक प्रमुख उन भारतीय व्यापारियों के दृष्टिकोण को प्रकट करता है जो आमतौर पर सरकारी हस्तक्षेप और नियंत्रण के विरोधी थे।

यह समान दृष्टिकोण इस तथ्य को उजागर करता है कि भारत में लगभग प्रत्येक व्यक्ति ने औद्योगिकीकरण से संबंधित जो बुनियादी बाधाएँ थीं उन्हें मान्यता दी और उन्हें निजी क्षेत्र की असमर्थता समझा क्योंकि उसे औपनिवेशिक शोषण की दो शताब्दियों ने बहुत कमज़ोर कर दिया था जिससे औद्योगिकीकरण के लिए संरचना प्रदान करने के विशाल कार्य को हाथ में लेने की क्षमता उसमें नहीं थी। इसके आलावा प्रमुख व्यापारी यह अच्छी तरह जानते थे कि देहातों की गरीबी के कारण विनिर्मित सामग्री के लिए घरेलू बाजार बहुत

सीमित है। जब तक सरकार सार्वजनिक व्यय तथा निवेश कार्यक्रमों के माध्यम से और कृषि के रूपान्तरण के माध्यम से, धन व्यय नहीं करेगी तब तक आधुनिक उद्योग के लिए वृद्धि संभव नहीं होगी।

## 38.4 औद्योगिक विकास में घरेलू बाज़ार की भूमिका

जैसा कि पहले कहा जा चुका है, स्वतंत्रता के समय भारत में उद्योगों के तीव्र विकास में सबसे प्रमुख बाधा यह थी कि यहां घरेलू बाज़ार का पर्याप्त विकास नहीं हुआ था। इस तथ्य के परिप्रेक्ष्य में दो प्रश्न पैदा होते हैं :

i) घरेलू बाज़ार पर्याप्त रूप से विकसित क्यों नहीं था? और,
ii) घरेलू बाज़ार तथा औद्योगिक विकास के बीच ठीक-ठीक सम्बन्ध क्या था?

दूसरे प्रश्न का उत्तर आसान है। जब तक बाज़ार में किसी वस्तु की निश्चित मांग न हो तब तक कोई भी उद्यमी उसके उत्पादन में निवेश करने के लिए प्रेरित नहीं होगा। ऐसा हुआ है कि उत्पादनकर्ताओं ने किसी वस्तु का निर्माण केवल बाहरी बाज़ारों के लिए अथवा निर्यात के लिए ही किया है। लेकिन इस प्रकार का निर्यात-आधारित उत्पादन भारत जैसे विशाल और पिछड़े अर्थतंत्र वाले देश में तीव्र औद्योगिकीकरण का आधार नहीं हो सकता था। विशेष रूप से उस स्थिति में तो बिल्कुल भी नहीं, जहां प्राधिकांश विदेशी व्यापार योरोप के लोगों के नियंत्रण में हो। इस तरह औद्योगिकीकरण की श्रेष्ठतम शर्त यही थी कि घरेलू बाज़ार का विस्तार किया जाये।

### 38.4.1 घरेलू बाज़ार की सीमाएं

लेकिन भारत में आम जनता की ग़रीबी ने विनिर्मित वस्तुओं के घरेलू बाज़ार को सीमित कर रखा था। ब्रिटिश शासन ने भारतीय ग्रामीण जनता को निर्धन बना दिया था और उसे जीवन यापन के निम्न स्तर पर बने रहने के लिए मज़बूर कर दिया था। जब लोग निम्न स्तर पर जीवन यापन करते थे तो वे अपना अधिकांश धन भोजन पर व्यय करते थे। अभोज्य पदार्थों की मांग केवल तभी बढ़ती है जब आमदनी बढ़ती है। इसलिए भारत में उद्योग के विकास की पहली आवश्यकता ग्रामीण और शहरी आमदनियों को बढ़ाने की थी ताकि अधिकांश लोग विनिर्मित सामग्री की खपत को बढ़ा सकें और इस प्रकार उद्योग के लिए घरेलू बाजार का विस्तार कर सकें।

### 38.4.2 बंबई योजना

इन स्थितियों को देखते हुए औद्योगिक उत्पादन की मांग बढ़ाने के एक तरीके के रूप में भारतीय राजनीतिक और व्यापारिक नेताओं और अर्थ-शास्त्रियों ने कृषि संबंधी उत्पादन और आमदनियों की संवृद्धि पर बल दिया। 'बंबई योजना' में इस तथ्य को स्पष्ट रूप से स्वीकार किया गया है। इस योजना में भूमि सुधार और कृषि क्षेत्र में सरकारी निवेश, विशेष रूप से सिंचाई के लिए, और उद्योग तथा सेवाओं जैसे अन्य क्षेत्रों में सार्वजनिक निवेश की बात प्रमुखता से कही गई ताकि घरेलू मांग पैदा की जा सके। इसी संदर्भ में राज्य के हस्तक्षेप और नियोजन को निरंतर औद्योगिकीकरण के लिए आवश्यक तत्व माना गया। कृषि में वृद्धि उद्योग के लिए कच्चा माल पैदा करके और मज़दूरों के लिए जीवन यापन की ज़रूरी सामग्री पैदा करके भी औद्योगिकीकरण में सहयोग देती है। भारत जैसे कृषि प्रधान समाज में कृषि संबंधी समृद्धि औद्योगिकीकरण की कुंजी है। यहां अधिकांश आबादी कृषि पर निर्भर करती है और यह उद्योगों के लिए घरेलू बाज़ार तैयार करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभा सकती है।

**बोध प्रश्न 1**

1 सही कथन पर (✓) निशान लगाइए:

i) राष्ट्रवादी नेताओं और भारतीय उद्योगपतियों ने पाँचवें दशक में योजनाबद्ध अर्थव्यवस्था के विरुद्ध मुक्त बाज़ार अर्थव्यवस्था की माँग की। ( )

ii) राष्ट्रवादी नेता एक योजनाबद्ध अर्थव्यवस्था चाहते थे, लेकिन भारतीय उद्योगपति, पाँचवें दशक में, मुक्त बाज़ार अर्थव्यवस्था चाहते थे। ( )

iii) राष्ट्रवादी नेता और भारतीय उद्योगपति दोनों ही पाँचवें दशक से भारत के लिए एक योजनाबद्ध अर्थतंत्र चाहते थे। ( )

iv) राष्ट्रवादी नेता और भारतीय उद्योगपति दोनों को ही पाँचवें दशक में यह नहीं मालूम था कि भारतीय अर्थव्यवस्था के विकास के लिए कौन सा रास्ता अपनाया जाए। ( )

2 घरेलू बाजार को :

i) औद्योगिक वृद्धि के लिए विस्तृत होना चाहिए। ( )

ii) औद्योगिक वृद्धि के लिए सिकुड़ा हुआ होना चाहिए ( )

iii) औद्योगिक वृद्धि के लिए जैसा का तैसा बना रहना चाहिए। ( )

iv) दोनों (ii) और (iii). ( )

3 दो कारण बताइये जिनकी वजह से औपनिवेशिक शासन के दौरान भारतीय उद्योग क्षेत्र विस्तार नहीं पा सका?

..........................................................................................................

..........................................................................................................

..........................................................................................................

..........................................................................................................

..........................................................................................................

## 38.5 स्वातंत्र्योत्तर प्रारंभिक प्रयास

यही वह औद्योगिक परिदृश्य था (पूर्व वर्णित) जिसकी पृष्ठभूमि में 1948 में स्वतंत्र भारत की संसद द्वारा **पहला औद्योगिक नीति प्रस्ताव** (Industrial Policy Resolution) (आई. पी. आर.) पारित किया गया। कई अर्थों में आई.पी.आर. 1948, भारत में साम्राज्यवादी सरकार द्वारा अप्रैल 1945 में जारी किये गये एक **औद्योगिक नीति वक्तव्य** (Industrial Policy Statement) का ही संशोधित रूप था। इस वक्तव्य को भारत में युद्धोत्तर औद्योगिक निर्माण के आधार रूप में देखा गया था। इसमें बंबई योजना के कुछ विचार भी शामिल थे।

### 38.5.1 औद्योगिक नीति प्रस्ताव 1948

भारत सरकार ऐक्ट 1935 के अंतर्गत औद्योगिक विकास एक प्रान्तीय विषय था। लेकिन 1945 के 'नीति वक्तव्य' के अनुसार भारत सरकार इसके विचार क्षेत्र के अंतर्गत लगभग बीस उद्योगों को ले आयी। इनमें ये उद्योग शामिल थे :

- लोहा और इस्पात,
- मोटर वाहन और परिवहन वाहन,
- हवाई जहाज,
- विद्युत मशीनरी.
- भारी मशीनरी,
- मशीनों के औज़ार,
- भारी रसायन,
- उर्वरक,
- दवाएं और औषध,
- सीमेंट,
- चीनी

- रबर उत्पाद,
- कोयला और,
- विद्युत इत्यादि।

आई. पी. आर. 1948, से ये उद्योग तथा कुछ अन्य उद्योग,केन्द्र के विचार क्षेत्र में आ गये। आई. पी. आर. 1948 में औद्योगिक नीति के कुछ निश्चित लक्ष्य निर्धारित किये गये जिनमें आर्थिक शक्ति के संकेन्द्रीकरण (Concentration) को रोकना शामिल था। इस प्रस्ताव में उद्योगों के विकास में सरकार की एक प्रगतिशील सक्रिय भूमिका तय की गयी। सरकार के लिए जो दिशा निर्देश तय किये गये वे थे :

"आगे कुछ समय के लिए राज्य, राष्ट्रीय सम्पत्ति की वृद्धि में अपनी वर्तमान गतिविधि को, जहां भी यह पहले से चल रही है, और विस्तार देकर, और वर्तमान इकाइयों को अधिग्रहण करके चलाने के बजाय दूसरे क्षेत्रों में उत्पादन की नयी इकाइयों पर ध्यान देकर, अधिक शीघ्रता से अपना योगदान कर सकता है।"

कुछ उद्योग पूरी तरह सार्वजनिक क्षेत्र के लिए आरक्षित थे (परमाणु ऊर्जा और शस्त्र आदि) और कुछ को उन उद्योगों में शामिल किया गया था जिनमें निजी क्षेत्र को, अगर यह राष्ट्रीय हित में हो तो, निवेश की अनुमति प्रदान की जा सकती थी। लेकिन उनके भावी विकास की ज़िम्मेदारी सरकार की ही थी (इस्पात, कोयला, उड्डयन आदि)। बाकी सारे उद्योग निजी क्षेत्र के लिए खुले थे। प्रस्ताव में यह भी संकेत किया गया था कि कुछ मामलों में औद्योगिक अवस्थिति यानी उद्योगों के स्थान से संबंधित कुछ निश्चित निर्देशों का पालन किया जाएगा। इस प्रस्ताव में अधिक समतापूर्ण औद्योगिक वृद्धि सुनिश्चित करने के लिए कुटीर और लघु उद्योगों के महत्व को भी स्वीकार किया गया था।

### 38.5.2 औद्योगिक नीति प्रस्ताव 1956

औद्योगिक नीति प्रस्ताव 1948 के बाद औद्योगिक नीति प्रस्ताव 1956 लाया गया। इस प्रस्ताव का प्रारूप, संसद द्वारा समाज के समाजवादी ढांचे की स्थापना को सरकार की सामाजिक और आर्थिक नीतियों के उद्देश्य के रूप में स्वीकार किये जाने के पश्चात् तैयार किया गया। तृतीय पंचवर्षीय योजना भी इसके साथ ही शुरू की गयी जिसमें वृद्धि के लिए अपनायी जाने वाली नीति में उद्योग, विशेष रूप से भारी उद्योग की वृद्धि पर विशेष बल दिया गया था।

भारत में योजनाबद्ध औद्योगिकीकरण की वास्तविक प्रक्रिया जिसे बंबई योजना 1944, औद्योगिक नीति वक्तव्य 1945, औद्योगिक नीति प्रस्ताव 1948, और 1956 जैसे अनेक नीति वक्तव्यों में प्रकट किया गया था, उद्योग ऐक्ट 1951 या द्वितीय पंचवर्षीय योजना (1956) के लागू हो जाने के बाद शुरू हुई थी। उद्योग एक्ट 1951, में उद्योगों का विकास और नियमन शामिल था। उद्योग (विकास और विनियमन) ऐक्ट 1951, वह औज़ार था जिसके माध्यम से सरकार ने औद्योगिक नीति प्रस्ताव 1948 द्वारा निर्देशित अपने लक्ष्यों को पूरा करने का प्रयास किया। सरकार को जो सबसे अधिक महत्वपूर्ण अधिकार प्राप्त किया था, वह था—मध्यम और बड़े औद्योगिक प्रतिष्ठानों की स्थापना के लिए लाइसेंस जारी करने का अधिकार। इस ऐक्ट में सरकार को उत्पादन की मात्रा, आयात और विक्रय कोटा, मूल्य और मज़दूरी और वेतन तय करने का अधिकार भी प्रदान किया गया था। द्वितीय पंचवर्षीय योजना ने, औद्योगिकीकरण की नीति का जिसे भारत के लिए पहले ही आवश्यक मान कर स्वीकार कर लिया गया था, औचित्य भली प्रकार सिद्ध कर दिया।

### 38.5.3 प्रारंभिक प्रयासों का मूल्यांकन

कुल मिला कर स्वातंत्र्योत्तर काल के प्रारंभ में औद्योगिक नीति का उद्देश्य सार्वजनिक क्षेत्र की जिसे प्रायः राज्य का पूंजीवाला क्षेत्र कहा जाता है, केन्द्रीय भूमिका सुनिश्चित करना था। सार्वजनिक क्षेत्र को राज्य का पूंजीवाला क्षेत्र इसलिए कहा जाता है क्योंकि यहां उद्यमों में राज्य निवेशकर्ता हैं। देश के समग्र औद्योगिक विकास में इस क्षेत्र ने केन्द्रीय स्थान प्राप्त कर लिया है। इसके अलावा इस अवधि में यह सुनिश्चित करने के प्रयास भी किये गये कि निजी भारतीय उद्यमों को समुचित संरक्षण मिले। इसके साथ ही विदेशी पूंजी को कड़ी

निगरानी में रखा गया। वास्तव में विदेशी पूंजी की भूमिका पर नीति वक्तव्य बहुत ही कड़ा था। औद्योगिक नीति प्रस्ताव 1948 और 1956 बहुत से क्षेत्रों में किसी भी प्रकार की विदेशी भागीदारी नहीं चाहते थे। लेकिन व्यवहार में इस पर अमल नहीं हो सका और शीघ्र ही राष्ट्रीय हित में विदेशी पूंजी के प्रवेश की अनुमति दे दी गयी। इसके बावजूद औद्योगिक नीति प्रस्ताव 1948 और 1956 औद्योगिक नीति के निर्देशक सिद्धान्तों के आधार बने।

---

वह सार्वजनिक क्षेत्र जो अर्थव्यवस्था के नियामक शिखर पर और उस निजी क्षेत्र के साथ मिलकर कार्यरत था जिसे व्यवस्थित या ''विनियमित'' किया जाना था और बाहरी प्रतियोगिता के विरुद्ध जिसे आरक्षण भी दिया जाना था।

---

राज्य के समर्थन और नियमन के संरक्षक छाते के नीचे औद्योगिक क्षेत्र को आयात-स्थानापन्न औद्योगिकीकरण (Import Substitution Industrialisation) यानी ऐसा औद्योगिकीकरण जिससे आयात किया जाने वाला माल घरेलू स्तर पर तैयार किया जा सके, के माध्यम से आत्मनिर्भरता प्राप्त करने के लिए प्रोत्साहित किया गया। इस प्रकार औद्योगिक नीति के दोहरे लक्ष्य थे :

i) मिश्रित अर्थ व्यवस्था की स्थापना (यहां मिश्रित से तात्पर्य सार्वजनिक और निजी क्षेत्र के साथ-साथ बने रहने से है)।
ii) आत्मनिर्भर औद्योगिक अर्थतंत्र की वृद्धि करना (आत्म-निर्भर से यहां तात्पर्य है अर्थ व्यवस्था के आवश्यक और महत्वपूर्ण क्षेत्रों में विदेशी पूंजी, प्रोद्योगिकी या निवेश पर निर्भर न रहना)।

## 38.6 औद्योगिक विकास को प्रोत्साहन

हम यह समझ चुके हैं कि घरेलू आबादी की बढ़ती हुई आमदनी के आधार पर घरेलू बाज़ार का वर्धन किस तरह आगे जाकर औद्योगिक विकास के लिए एक महत्वपूर्ण प्रोत्साहन बनता है। भारत जैसे कृषि प्रधान समाज में इस प्रकार का बाज़ार मुख्य रूप से ग्रामीण आय में वृद्धि और कृषि संबंधी बचतों के माध्यम से विकसित किया जा सकता है। विनिर्मित सामग्री की मांग का एक और स्रोत आयात का स्थानापन्न हो सकता है।

अगर एक देश को किसी वस्तु का आयात रोकना हो तो वह इसके घरेलू उत्पादन को प्रोत्साहित करेगा और इसी के अनुसार औद्योगिक गतिविधि को बढ़ावा देगा। पहले से स्थापित सुदृढ़ उद्योगों के मुकाबले में नये उद्योगों को हानि से बचाने के लिए सरकार उन्हें संरक्षण प्रदान कर सकती है, यह धारणा शिशु उद्योग सिद्धांत पर आधारित है जो यह सुझाव देता है कि उद्योगों को उनके शैशव यानी प्रारंभ में संरक्षण की ज़रूरत होती है ताकि वे अधिक विकसित अर्थतंत्रों में स्थापित अपने प्रतियोगियों का मुकाबला कर सकें। आयात-स्थानापन्न औद्योगिकीकरण प्रायः निर्यात प्रधान औद्योगिकीकरण से प्रकृति में भिन्न होता है। निर्यात-प्रधान औद्योगिकीकरण में औद्योगिक विकास की प्रेरणा घरेलू बाज़ार से नहीं मिलती बल्कि विदेशी बाज़ार या निर्यात बाज़ार से मिलती है।

---

भारत में अर्थशास्त्रियों का विश्वास था कि भारत जैसे विशाल अर्थतंत्र में जिसका घरेलू बाज़ार विशाल किन्तु अप्रयुक्त है, औद्योगिक विकास की प्रेरणा बाहरी बाज़ारों पर आधारित निर्यात-प्रधान औद्योगिकीकरण से न आकर, घरेलू बाज़ार के विस्तार पर आधारित आयात-स्थानापन्न औद्योगिक विकास से आनी चाहिए।

---

## 38.7 नियोजन और क्रियान्वयन के उद्देश्य

औद्योगिक नीति के उद्देश्यों में इन बातों को भी शामिल किया गया है : (इन्हें 1973, 1978 और 1980 में, अपनाये गये औद्योगिक नीति प्रस्तावों में पुनः घोषित किया गया है)।

- औद्योगिक उत्पादन और उत्पादकता को, विशेषकर प्रमुख उद्योग क्षेत्रों में बढ़ाना,
- संतुलित क्षेत्रीय विकास लाना,
- लघु उद्योगों को प्रोत्साहित करना,
- एकाधिकार नियंत्रण के माध्यम से आर्थिक शक्ति के संकेंद्रीकरण को रोकना,
- घरेलू उद्योगों में विदेशी निवेश को सीमित और विनियमित करना,
- रोज़गार पैदा करना और मूल्य स्थिरता को बनाए रखना और,
- आवश्यक निवेश सामग्री और वस्तुओं के आयात को प्रतिबंधित करना।

### 38.7.1 नियंत्रण और विनियमन की भूमिका

सरकार ने उद्योग (विकास और विनियमन) ऐक्ट 1951 का प्रयोग उन नीतियों के क्रियान्वयन के लिए किया जिन नीतियों को इन लक्ष्यों को पूरा करने के लिए निर्धारित किया गया था। उद्योग नीति का एक प्रमुख साधन लाइसेंस पद्धति को बनाया गया। सरकार ने उद्योग स्थापित करने के लिए लाइसेंस जारी करने का अधिकार दो कारणों से अपने पास सुरक्षित रखा :

1) सरकार चाहती थी कि उद्योगों की अवस्थिति और स्वामित्व बिखरा हुआ रहे यानी उद्योगों पर एक ही व्यक्ति या समूह का स्वामित्व न हो और ये उद्योग किसी एक ही भौगोलिक क्षेत्र में स्थापित न हों।
2) और, उपभोक्ताओं तथा श्रमिकों के हितों को संरक्षण प्राप्त हो।

इन लक्ष्यों को किस हद तक प्राप्त किया जा सका यह एक विवाद का विषय है। उदाहरण के लिए, औद्योगिक लाइसेंस नीति जांच समिति (1969) ने पाया कि सरकारी विनियमन के बावजूद एकाधिकारी घरानों ने, विशेषकर बिड़ला समूह ने, जारी किये गये अधिकांश लाइसेंस बटोर लिये थे। इसी प्रकार यह पाया गया कि पश्चिमी भारत जैसे औद्योगिक रूप से विकसित क्षेत्र लगातार विकसित हुए और उत्तरी और पूर्वी भारत के बड़े हिस्से औद्योगिक रूप से पिछड़े बने रहे।

यहां हमारे विचार के लिए एक प्रश्न पैदा होता है—सरकारी विनियमन ने वास्तव में किस सीमा तक औद्योगिक अवस्थिति और स्वामित्व के ढांचे को परिवर्तित किया?

बिना इस प्रकार के विनियमन के अगर उद्योगों को विकसित होने दिया गया होता तो क्या यह विकास वस्तुतः अब तक हो चुके विकास से भिन्न होता? सरकार के कुछ आलोचक कहते हैं कि सारी गड़बड़ी नियंत्रण लागू करने से हुई। ये लोग नियंत्रणों का विरोध करते हैं और उद्योगों को विनियमन मुक्त करने का तर्क देते हैं। अन्य का मत है कि गड़बड़ी वास्तव में नियंत्रणों के कारण नहीं है, बल्कि उनके क्रियान्वयन में है।

### 38.7.2 दूसरी योजना का प्रारूप

प्रथम पंचवर्षीय योजना में औद्योगिकीकरण का कोई परिप्रेक्ष्य स्पष्ट नहीं था। इस योजना का प्रारूप जल्दी में तैयार किया गया था और जो **आवश्यक** था उसकी तुलना में जो **संभव** था उसके वास्तविक मूल्यांकन के आधार पर इसे तैयार किया गया था।

लेकिन दूसरी योजना का परिप्रेक्ष्य बहुत सोच विचार कर तैयार किया गया था। प्रसिद्ध सांख्यिकीविद् प्रोफेसर पी. सी. महलानोबिस (P.C. Mahalanobis) के निर्देशन में एक दीर्घावधि प्रत्यक्ष योजना तैयार की गयी जिसमें भारी उद्योगों के विकास को प्राथमिकता दी गयी। भारत के पास धातु और खनिज जैसे कच्चे पदार्थों के प्रचुर संसाधन थे, इसलिए यह सुझाव दिया गया कि भारत को इस्पात, कोयला, भारी मशीनरी, तेल परिशोधन कारखाने,

सीमेंट आदि जैसे 'आधारभूत' उद्योगों पर अपने प्रयास संकेन्द्रित करने चाहिए ताकि तीव्र औद्योगिक विकास का आधार तैयार किया जा सके। औद्योगिकीकरण में अग्रणी भूमिका उपभोक्ता वस्तु विनिर्मित करने वाले उद्योगों के बजाय पूंजीगत और आधारिक माल तैयार करने वाले उद्योगों को दी जानी चाहिए। इस प्रकार की औद्योगिक वृद्धि द्वारा पैदा की गयी मांग कुछ समय बाद उपभोक्ता वस्तु उद्योगों को प्रोत्साहित करेगी और उस समय तक औद्योगिक क्षेत्र, समुचित मध्यवर्ती माल और मशीनरी पैदा करने की स्थिति में आ जायेगा।

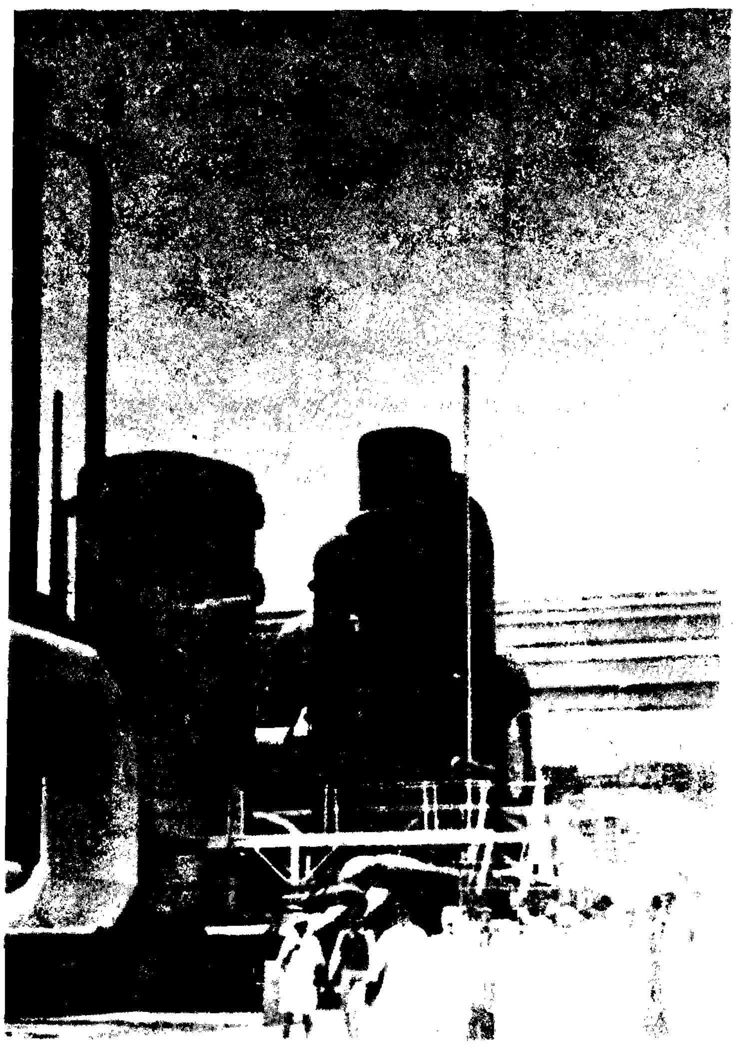

चित्र 1 औद्योगिक विकास के लिये सार्वजनिक क्षेत्र में प्रयास, सिंदरी फर्टिलाइज़र फैक्ट्री

इस नीति के क्रियान्वयन के लिए आवश्यकता यह थी कि आधारिक और पूंजीगत माल या सामग्री वाले उद्योग क्षेत्र में बड़ी मात्रा में निवेश किया जाये। निजी क्षेत्र आवश्यक भारी निवेश करने में सक्षम नहीं था। इसमें निजी क्षेत्र की रुचि भी नहीं थी क्योंकि इस निवेश से कम लाभ प्राप्त होना था और वह भी एक लम्बे समय के बाद। भारी निवेश की यह ज़िम्मेदारी सार्वजनिक क्षेत्र यानी राज्य के पूंजीवाले क्षेत्र ने निभाई। इससे सार्वजनिक क्षेत्र की भूमिका का महत्व सामने आया। पश्चिम जर्मनी और सोवियत संघ जैसे देशों के सहयोग से भारत अपने इस्पात उद्योग और भारी अभियांत्रिकी, भारी रसायन और अन्य मूल उद्योगों को विकसित करने में सफल हुआ।

इस क्षेत्र में किये गये निवेश और इस निवेश से पैदा हुई आय और रोज़गार ने, जो व्यवहार में मूल लक्ष्यों से नीचे ही रहे, विकास की एक प्रभावशाली दर को बनाये रखा। औद्योगिक उत्पादन के विकास की दर में तेज़ी से वृद्धि हुई। फलस्वरूप प्रथम पंचवर्षीय योजना की 5.7 प्रतिशत विकास दर से बढ़ कर दूसरी योजना में यह दर 7.2 प्रतिशत हो गई और तीसरी योजना के दौरान यह 9 प्रतिशत तक पहुंच गयी। पूंजीगत माल वाले उद्योगों ने प्रगति का सबसे अधिक प्रभावशाली कीर्तिमान स्थापित किया। भारत के औद्योगिक विकास का यह आधार सातवें दशक के मध्य तक बना रहा।

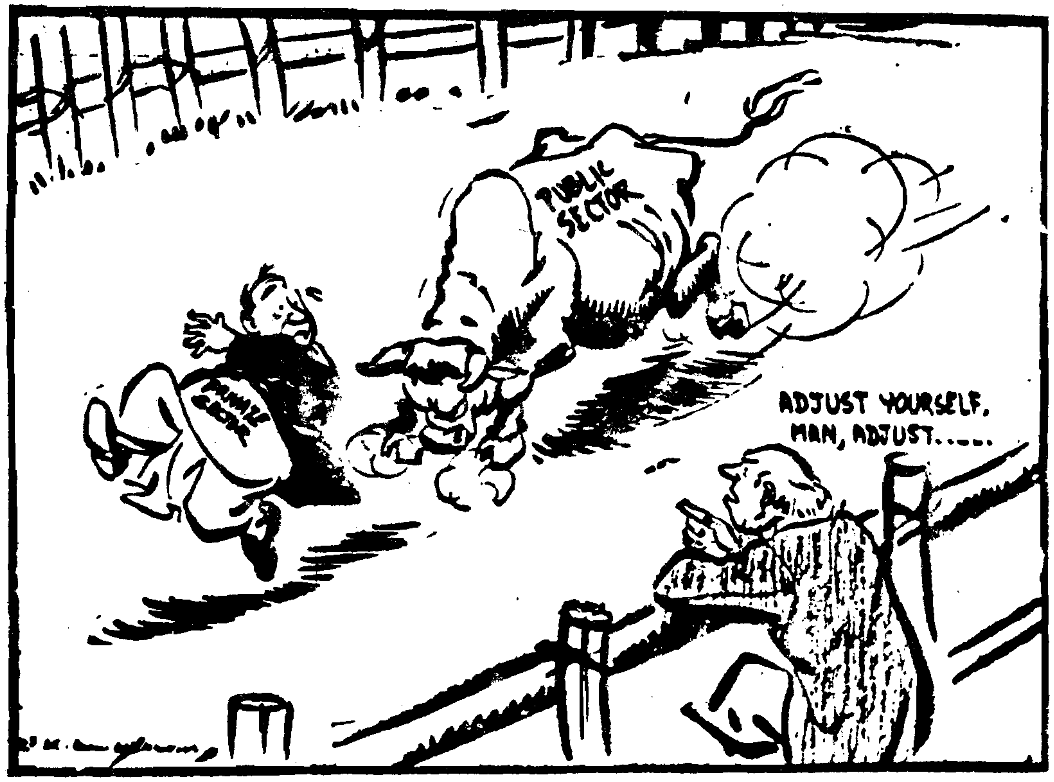


2 सार्वजनिक और निजी क्षेत्र के बीच संबंध दर्शाता हुआ एक कार्टून

**बोध प्रश्न 2**

1 सही कथन पर ( ✓ ) लगाइए।
आयात-स्थानापन्न औद्योगिकीकरण का अर्थ है :
- i) वही जो निर्यात प्रधान औद्योगिकीकरण का होता है। ( )
- ii) वे वस्तुएँ जो पहले आयात की जाती थीं, अब सरकार द्वारा उनका आयात प्रतिबंधित कर दिये जाने पर देश में ही निर्मित की जाती हैं। इससे घरेलू औद्योगिक विकास को प्रोत्साहन मिलता है। ( )
- iii) औद्योगिक सामग्री को कृषि सामग्री का स्थानापन्न बनाना। ( )
- iv) इनमें से कोई भी नहीं। ( )

2 दूसरी योजना के प्रारूप ने :
- i) इस्पात, कोयला इत्यादि जैसे भारी उद्योगों के विकास को प्राथमिकता दी। ( )
- ii) साबुन, प्रक्षालक (detergents) वस्त्र, जैसे उपभोक्ता सामग्री वाले उद्योगों को प्राथमिकता दी। ( )
- iii) पर्यटन, विज्ञापन जैसे सेवा सामग्री वाले क्षेत्र में विकास को प्राथमिकता दी।( )
- iv) इनमें से कोई भी नहीं। ( )

3 भारत की उद्योग नीति के प्रमुख उद्देश्यों को लगभग दस पंक्तियों में समझाइये।

........................................................................................................

........................................................................................................

........................................................................................................

........................................................................................................

........................................................................................................

........................................................................................................

........................................................................................................

........................................................................................................

## 38.8 औद्योगिक संरचना, वृद्धि और नीति में परिवर्तन

इसमें कोई संदेह नहीं है कि राज्य के हस्तक्षेप और नियोजन ने भारत में औद्योगिक उत्पादन के ढांचे को बहुत अधिक प्रभावित किया है औद्योगिक क्षेत्र के कुल उत्पादन में अभियांत्रिकी वस्तुएँ, भारी मशीनी औज़ार और उपकरण, रसायन, विद्युत और इलेक्ट्रानिक उपकरण जैसे आधुनिक उद्योगों की हिस्सेदारी बढ़ी है। दूसरी ओर पटसन, चीनी, सूती वस्त्र जैसे पारंपरिक उद्योगों की हिस्सेदारी कम हुई है। वस्त्र उद्योग के मामले में भी, सूती वस्त्र और हथकरघा उद्योगों का भाग कम हुआ है जबकि सिंथेटिक वस्त्रों के उद्योग की हिस्सेदारी बढ़ी है। उत्पादों में हुए ये परिवर्तन भारतीय उद्योग के संरचनागत परिवर्तनों की ओर संकेत करते हैं। इनकी उपेक्षा नहीं की जा सकती।

### 38.8.1 वृद्धि दर में गिरावट

यहां जो बात चिंताजनक है, वह है औद्योगिक उत्पादन की वृद्धि दर में आयी गिरावट। सार्वजनिक निवेश और लागत के विस्तार से मिले प्रोत्साहन ने, जिसका कि हम पहले ही उल्लेख कर चुके हैं, घरेलू उद्योगों के लिए घरेलू बाज़ार के फैलाव में काफी मदद की। इसके अलावा, विदेशी प्रतियोगिता के विरुद्ध भारतीय उद्योगों को प्रदान किए गए संरक्षण ने (सस्ती आयातित प्रौद्योगिकी और सामग्री के रूप में) भी घरेलू विनिर्माण को प्रोत्साहित करने में मदद दी। इसी कार्य को हमने "आयात-स्थानापन्न" औद्योगिकीकरण बताया है। इस प्रकार के औद्योगिक विकास का कुल प्रभाव, औद्योगिक उत्पादन के सूचकांक में हुई महत्वपूर्ण वृद्धि में देखा जा सकता है। इसके प्रति हम पहले ही ध्यान आकर्षित कर चुके हैं। लेकिन योजनाबद्ध औद्योगिकीकरण के पहले पन्द्रह वर्षों में स्थापित यह कीर्तिमान बाद के वर्षों में यथावत नहीं बनाये रखा जा सका। औद्योगिक उत्पादन की 1965-1976 की अवधि में वार्षिक संयुक्त वृद्धि दर 4.1 प्रतिशत तक नीचे आ गयी। हाल ही के वर्षों में (1980 से) यह दर बढ़ कर 5 प्रतिशत तक पहुंची है। परन्तु यह अभी भी द्वितीय और तृतीय पंचवर्षीय योजना अवधियों में प्राप्त की गयी दरों के स्तर से नीचे है।

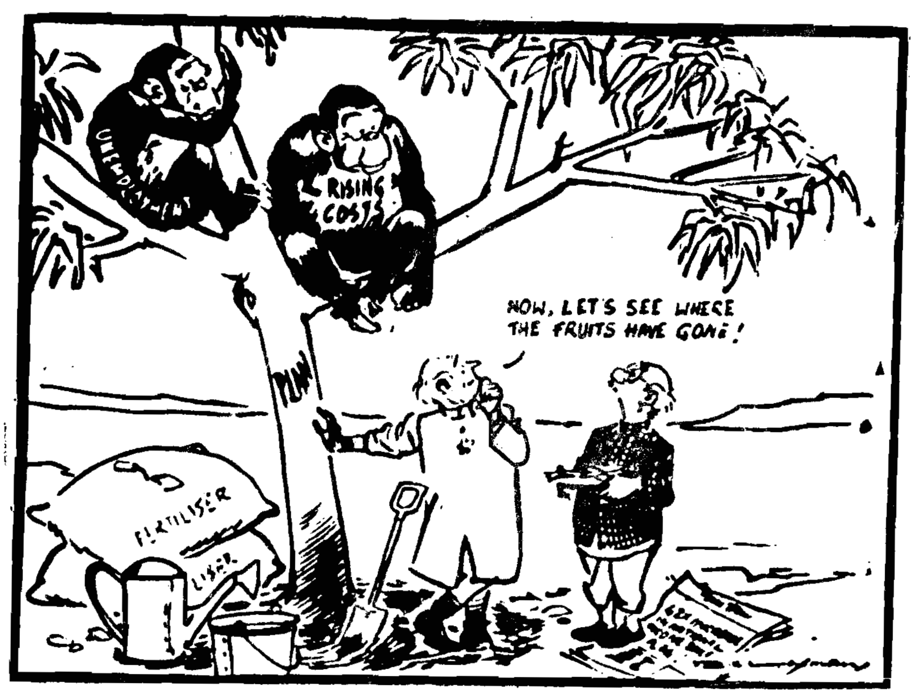


3 वृद्धि में गिरावट दर्शाता हुआ एक कार्टून

### 38.8.2 गिरावट के कारण

गिरावट की इस प्रवृत्ति के कारणों को प्रकट करने के लिए कई स्पष्टीकरण सामने आये हैं। मोटे तौर पर उन्हें दो वर्गों में रखा जा सकता है।

i) वे, जो इस गिरावट का कारण सरकार द्वारा अपनाये गये नीतिगत हस्तक्षेप को मानते हैं, और,
ii) वे, जो बताते हैं कि इस गिरावट के लिए "संरचनागत" कारक ज़िम्मेदार हैं।

**तालिका 2 : औद्योगिक उत्पादन के सूचकांक में वार्षिक संयुक्त दरें (प्रतिशत)**

| उद्योगों के प्रकार | 1951-55 प्रथम योजना | 1955-60 द्वितीय योजना | 1960-65 तृतीय योजना | 1965-76 वार्षिक योजनाएं और चतुर्थ योजना |
|---|---|---|---|---|
| 1 | 2 | 3 | 4 | 5 |
| आधारिक या मूल उद्योग | 4.7 | 12.1 | 10.4 | 6.5 |
| पूंजीगत माल उद्योग | 9.8 | 13.1 | 19.6 | 2.6 |
| मध्यवर्ती माल उद्योग | 7.8 | 6.3 | 6.9 | 3.0 |
| उपभोक्ता सामग्री उद्योग | 4.8 | 4.4 | 4.9 | 3.4 |
| अ) उपभोक्ता-टिकाऊ वस्तुएं | - | - | 11.0 | 6.2 |
| ब) उपभोक्ता अटिकाऊ वस्तुएं | - | - | - | 2.8 |
| सामान्य सूचकांक | 5.7 | 7.2 | 9.0 | 4.1 |

**स्रोत :** एस. एल. शेट्टी, 'स्ट्रक्चरल रेट्रोग्रेशन इन दी इंडियन इकानामी सिंस दी मिड सिक्सटीज़, इकॉनामिक एण्ड पॉलीटिकल वीकली, 1978, बंबई।

### 38.8.3 नीतिगत बाधाएँ

पहले वर्ग द्वारा यह तर्क दिया गया कि स्वातंत्र्योत्तर काल में सरकार द्वारा लगाये गये लाइसेंस नियंत्रण, मूल्य और वितरण नियंत्रण आदि जैसे व्यापक रूप से लगाये गये नियंत्रणों ने निजी उद्यमों के विकास में बाधा पहुंचाई और इनमें किये गये निवेश को कम लाभप्रद बनाया। सुझाव यह दिया गया कि इस प्रकार के नियंत्रणों को हटाने से निवेश की दर में वृद्धि होगी और इससे उत्पादन की विकास दर में वृद्धि होगी।

भारत सरकार द्वारा हाल ही में किया गया इन नियंत्रणों का उदारीकरण, निवेश को प्रोत्साहन देने के उद्देश्य से उठाया गया कदम बताया गया है। इस दृष्टिकोण के आलोचक मानते हैं कि नियंत्रण हटाना नियंत्रणों के निकृष्ट क्रियान्वयन का विकल्प नहीं हो सकता और नियंत्रणविहीनता का परिणाम, आर्थिक शक्ति के और अधिक संकेन्द्रीकरण में निकलेगा और इससे सरकार संतुलित क्षेत्रीय विकास, रोज़गार वृद्धि, प्राथमिक और आवश्यक उद्योगों के वृद्धि को प्रोत्साहन, और विलास वस्तु उद्योगों की वृद्धि के हतोत्साहन उद्योग नीति के लक्ष्यों को पूरा नहीं कर सकेगी।

### 38.8.4 संरचनागत बाधाएँ

नीतिगत बाधाओं के तर्क को अस्वीकार करने वाले अर्थशास्त्रियों के पास कोई ऐसी परिकल्पना नहीं है जिसे वे सर्वसम्मति से स्वीकार कर सकें क्योंकि संरचनागत बाधाओं की परिकल्पना के अनेक अलग-अलग तर्क हैं :

i) सर्वाधिक रूप से स्वीकृत दृष्टिकोण यह है कि जब तक कृषि की वृद्धि उचित दर से

नहीं होती तब तक भारत की औद्योगिक वृद्धि को निरंतर बनाये नहीं रखा जा सकता। अतः तर्क यह दिया जाता है कि उद्योग की बाधाएँ कृषि के कारण पैदा होती हैं। अगर कृषि में वृद्धि की दर उच्चतर हो जाये तो औद्योगिक वृद्धि दर अपने आप बढ़ जायेगी। भारत की विशाल जनसंख्या को देखते हुए और इस तथ्य को ध्यान में रखते हुए कि भारत के पास पर्याप्त विदेशी मुद्रा भंडार था जिससे यह अनाज का आयात कर सकता था, छठे दशक और सातवें दशक की शुरुआत में खाद्य आपूर्ति एक बड़ी बाधा नहीं थी। फिर भी बढ़ती हुई जनसंख्या के साथ कृषि की वृद्धि न होने की असमर्थता को औद्योगिक वृद्धि की बाधा माना जाता है। यह बाधा कई तरह से सक्रिय है—कृषि का धीमा विकास उद्योग के लिए उपलब्ध आवश्यक कच्चे माल की बचत (surplus) को कम कर देता है और विनिर्मित माल के लिए घरेलू बाज़ार को निरुद्ध कर देता है।

ii) इस तर्क का एक अन्य पक्ष यह सुझाता है कि जब कृषि उत्पादन मांग के साथ-साथ नहीं बढ़ता तब कृषि उत्पादों के मूल्यों में वृद्धि हो जाती है और चूंकि भोजन घरेलू व्यय का एक आवश्यक हिस्सा है, इसलिए लोग खाने की वस्तुओं पर अधिक व्यय करते हैं और अभोज्य वस्तुओं पर कम। इस तरह विनिर्मित वस्तुओं की मांग में बाधा आती है।

iii) संरचनागत बाध्यता का एक पक्ष परिसम्पत्तियों और आमदनियों के वितरण में बढ़ती हुई असमानता के रूप में भी सामने आता है। कुल जनसंख्या में ग़रीबों की हिस्सेदारी बढ़ रही है, इसलिए जैनता की क्रय शक्ति घट रही है।

iv) एक पूरी तरह भिन्न परिकल्पना सामने रखी गयी है जिसमें औद्योगिक वृद्धि की गिरावट को सार्वजनिक निवेश और व्यय में आयी गिरावट से जोड़ा गया है। पहली तीन योजना अवधियों में औद्योगिक वृद्धि को सार्वजनिक निवेश और व्यय से प्रोत्साहन दिया गया था। लेकिन सातवें और आठवें दशकों में इस प्रवृत्ति में कमी आयी क्योंकि राज्य, निवेश के लिए संसाधन जुटाने में शहरी और ग्रामीण धनवानों पर कर लगाने को उत्सुक नहीं था। इसी लिए उसे सार्वजनिक निवेश में कटौती के लिए मजबूर होना पड़ा। सार्वजनिक निवेश के लिए धन जुटाने के प्रयास के रूप में राज्य घाटा वित्तप्रबंध (deficit financing) का सहारा ले सकता था, और लिया भी, लेकिन इससे मूल्यों में वृद्धि हुई। मुद्रास्फीति को रोकने के लिए सरकार को घाटा वित्तप्रबंध को सीमित करना पड़ा और इससे सरकार की निवेश की क्षमता भी सीमित हुई।

संरचनागत बाधा के सभी तर्कों में एक समान बात यह है कि ये सभी तर्क औद्योगिक वृद्धि की बाधा को मांग पक्ष की ओर से पैदा हुआ मानते हैं। यानी यह बाधा औद्योगिक उत्पादों की अपर्याप्त मांग के परिणामस्वरूप पैदा हुई है इसलिए जो समाधान सुझाये गये हैं वे मांग को बढ़ाने से संबंध रखते हैं और यह मांग कृषि क्षेत्र की आमदनी बढ़ा कर तथा सरकारी और सेवा क्षेत्र की आमदनी बढ़ा कर पैदा की जा सकती है।

बहुत कम अर्थशास्त्री ऐसे हैं जो आपूर्ति (Supply) की बाधाओं को सातवें दशक के मध्य के बाद औद्योगिक गिरावट का कारण मानते हैं। न तो वित्त की कमी थी न कच्चे माल का अभाव था। कुशल और अकुशल श्रमिकों का भी कभी अभाव नहीं रहा। आपूर्ति पक्ष में एकमात्र अभाव विदेशी मुद्रा से संबंधित था और क्योंकि भारतीय उद्योग, महत्वपूर्ण क्षेत्रों में तकनीक के आयात के बिना विस्तार नहीं कर सकता था और आवश्यक विदेशी मुद्रा भंडार का अभाव था, इसलिए औद्योगिक विकास में बाधा आयी। ऐसा मुख्य रूप से अपर्याप्त निर्यात के कारण हुआ। इसी लिए सरकार ने एक ओर तो निर्यात को प्रोत्साहन देने और दूसरी ओर आयात में कटौती की नीतियां लागू कीं।

कृषि क्षेत्र में किसी महत्वपूर्ण सकारात्मक परिवर्तन के अभाव में भारतीय उद्योग, वृद्धि की निम्न दर के घेरे में बना रहा।

## 38.9 उद्योग का स्वामित्व और नियंत्रण

अब तक हमने औद्योगिक नीति और औद्योगिक वृद्धि पर इस नीति के पड़ने वाले प्रभाव की चर्चा की है। हमने औद्योगिकीकरण को प्रोत्साहित करने में राज्य की बहुत ही महत्वपूर्ण भूमिका को भी रेखांकित किया है। औद्योगिक नीति का एक और महत्वपूर्ण पक्ष, एकाधिकारों को रोकने और लघु उद्यमों के विकास को प्रोत्साहित करने के सरकार के दायित्व का है।

### 38.9.1 प्रारंभिक एकाधिकार

भारतीय व्यापार के इतिहास का यह एक महत्वपूर्ण पक्ष रहा है कि औद्योगिक गतिविधि के विकास के प्रारंभिक चरणों में ही चंद उत्पादक प्रभुत्वशाली व्यापार समूहों के रूप में उभर आये। टाटा, बिड़ला, श्रीराम आदि औद्योगिक घराने इस बात का उदाहरण हैं। घरेलू बाज़ार के छोटे होने के कारण उन्होंने विनिर्माण क्षेत्र में ऐसी महत्वपूर्ण स्थिति प्राप्त कर ली कि अन्य उत्पादकों के लिए अधिक सम्भावनाएं ही नहीं रहीं। परिणामतः जो उत्पादन के क्षेत्र के अग्रणी थे, वे ही लगभग एकाधिकारवादी हो गये। द्वितीय विश्व युद्ध के समय तक इस्पात उद्योग में टाटा परिवार ने जो हैसियत प्राप्त की वह इसी बात का उदाहरण है। एक और कारक, जिसने 'एकाधिकारों के अपरिपक्व विकास' नाम से जानी जाने वाली स्थिति लाने में योगदान किया, वह प्रबंध एजेंसी थी जिसे ब्रिटिश और भारतीय, दोनों ही व्यापारियों ने विकसित किया था। इस प्रबंध एजेंसी के कारण एक व्यापार समूह एक फ़र्म के प्रबंधन पर प्रभावशाली नियंत्रण रख सकता था। यह नियंत्रण उस स्थिति में भी कायम रहता था जब कि इस समूह विशेष के शेयर उस फ़र्म में बहुतायत में नहीं होते थे। इन सब कारणों से स्वतंत्रता के समय पारसी, मारवाड़ी, पंजाबी और कुछ कम सीमा तक चेट्टियार व्यापार घराने जो कि बंबई, बंगाल और मद्रास में सक्रिय थे, औद्योगिक क्षेत्र पर हावी हो गये। औद्योगिक परिदृश्य के दूसरे छोर पर कुटीर और ग्रामीण उद्योग, तथा लघु उद्योग थे जिनका सरकार में भी प्रभाव नहीं था और बाज़ार पर भी नियंत्रण नहीं था।

### 38.9.2 एकाधिकार पर नियंत्रण के प्रयास

इन्हीं कारणों से उद्योग (विकास और विनियमन) ऐक्ट 1951 का एक लक्ष्य इस परिदृश्य को बदलना और बड़े व्यापारिक घरानों पर नियंत्रण लगाना और उन्हें विनियमित करना था। एक वस्तु के उत्पादन के लिए, अगर उसे बड़े औद्योगिक प्रतिष्ठान के अंदर तैयार किया जाना हो तो, औद्योगिक लाइसेंस प्राप्त करने की प्रक्रिया को एक नियंत्रणकारी कदम के रूप में देखा गया। लाइसेंस की पद्धति एक ऐसा तरीका है जिससे उद्योगों के स्थान, स्वामित्व, प्रौद्योगिकी और उत्पादन को विनियमित किया जा सकता था।

लेकिन व्यवहार में सरकार हमेशा ही ऐसा नहीं कर सकी। यह तथ्य 'औद्योगिक लाइसेंस नीति जांच समिति' की रिपोर्ट (1969) में साफ-साफ उभर कर आया। इस रिपोर्ट के अनुसार बिड़ला जैसे बड़े औद्योगिक घरानों ने लाइसेंस पद्धति का इस्तेमाल अपने हित में किया और अधिकांश लाइसेंस बटोर कर अनेक उद्योगों पर अपना एकाधिकार नियंत्रण बढ़ा लिया।

### 38.9.3 विदेशी पूंजी पर प्रतिबंध के प्रयास

स्वामित्व का एक और पक्ष जिस पर सरकार नियंत्रण लगाना चाहती थी, वह विदेशी पूंजी की भागीदारी का था। सरकार ने विदेशी व्यापार घरानों और बहुराष्ट्रीय निगमों (Multi-national Corporations) को नियंत्रित करने के प्रयास किये :

1 भारतीय कंपनियों में विदेशी कंपनियों की इक्विटी की एक निश्चित सीमा निर्धारित करके, और

2 विदेशी कंपनियों की सहायक कंपनियों की गतिविधियों को विनियमित करके।

इन नियंत्रणकारी उपायों के बावजूद विदेशी व्यापार घराने भारतीय अर्थ व्यवस्था में अपनी

उपस्थिति बनाये रखने में सफल रहे और हाल ही के वर्षों में विदेशी प्रौद्योगिकी के आयात के माध्यम से वे इस उपस्थिति को बढ़ाने में भी सफल हुए हैं। प्रौद्योगिकी प्राप्त करने के लिए भारतीय कंपनियों को विदेशी सहयोग का सहारा लेना पड़ा, इसलिए उन्हें भारतीय व्यापार में विदेशी साझेदारी को मंजूर करने के लिए भी मजबूर होना पड़ा। कुछ विदेशी व्यापार समूह प्रौद्योगिक सहयोग-समझौतों के माध्यम से आए और इसके अलावा कई विदेशी समूह स्वतंत्रता के बाद भी भारत में ही बने रहे थे। परिणामस्वरूप इस तथ्य के बावजूद कि राज्य ने भारतीय व्यापार समूहों की वृद्धि को समर्थन और सहयोग दिया विदेशी पूंजी महत्वपूर्ण बनी रही।

सरकार ने उद्योग क्षेत्र में नियोजन और विनियमन की भूमिका में स्वामित्व का विनियमन भी शामिल किया था। सरकार की नीति का उद्देश्य एकाधिकारों की वृद्धि को रोकना और विदेशी पूंजी की भूमिका को प्रतिबंधित करना था लेकिन अनेक सरकारी समितियों के प्रतिवेदनों में यह बताया गया है कि यह उद्देश्य प्राप्त नहीं किया जा सका। ऐसा एकाधिकारी व्यापार घरानों और विदेशी व्यापार समूहों, दोनों के ही कारण हुआ। दोनों ही भारतीय उद्योग क्षेत्र में लगातार मज़बूत होते रहे। इसके बावजूद यह सच है कि सरकार ने ग़ैर-एकाधिकारी घरेलू उद्यमी समूहों के विकास में ठोस मदद की है।

### 38.9.4 लघु उद्योगों का विकास

जैसा कि पहले कहा जा चुका है, भारतीय उद्योग नीति का एक लक्ष्य लघु उद्योगों का विकास करना भी था। इस लक्ष्य को प्राप्त करने के लिए लघु उद्योगों के संरक्षण और नये उद्यम समूहों को प्रोत्साहित करने के लिए सरकार ने कई नियम और कानून बनाये। हालांकि इस प्रकार के समूहों का विकास देश के कुछ विशेष क्षेत्रों तक सीमित रहा है फिर भी यह प्रवृत्ति किसी भी प्रकार से कम महत्वपूर्ण नहीं है।

पंजाब और हरियाणा, तटवर्ती आन्ध्र प्रदेश या पश्चिमी महाराष्ट्र जैसे राज्यों में हरित क्रान्ति ने बड़ी संख्या में लघु उद्योग प्रतिष्ठानों के उभरने में सहयोग किया है। इसी प्रकार बंबई, दिल्ली और मद्रास जैसे प्रमुख औद्योगिक केन्द्रों के आसपास नये उपाश्रित नगर उभर कर आ रहे हैं जिनमें भारतीय और अप्रवासी भारतीय उद्यमियों की तीव्र गतिविधियां नज़र आती हैं। इनमें से अधिकांश उद्यमी, सरकार (केन्द्र और राज्य दोनों ही सरकारें) से वित्तीय और आधारभूत संरचनागत मदद पाकर ही उभरे हैं। इसमें कोई संदेह नहीं है कि यह एक ऐसा क्षेत्र है जिसमें भारतीय उद्योग नीति बहुत सफल रही है। नये लोग विनिर्माण गतिविधि में शामिल हो रहे हैं और ऐसा मुख्य रूप से राज्य की नियामक और सहयोगात्मक भूमिका के कारण ही संभव हुआ है। फिर भी, औद्योगिक वृद्धि के दृष्टिकोण से इस प्रवृत्ति को, और इसके महत्व को हमें बढ़ा-चढ़ा कर नहीं देखना चाहिए क्योंकि लघु उद्योग इकाइयां प्रायः 'बीमार' हो जाती हैं और बड़े प्रतिष्ठानों की प्रतियोगिता का सामना न कर पाने के कारण बंद हो जाती हैं। शायद इस प्रकार की इकाइयों द्वारा किया गया वास्तविक उत्पादन उतना महत्वपूर्ण नहीं है जितना कि इस प्रकार की स्थापित होती हुई इकाइयों की संख्या।

हाल ही के वर्षों में अप्रवासी भारतीय, बेशी या अधिशेष उत्पादन करने वाले किसान, ठेकेदार, तकनीकविद आदि के नये उद्यम समूह उभर कर आये हैं। वे उपभोक्ता सामग्री वाले उद्योगों में पैठ कर रहे हैं और विदेशी सहयोग प्राप्त करने की दिशा में सक्रिय हैं। यह प्रवृत्ति भारतीय उद्योग की वृद्धि में एक नये चरण की सूचक है, लेकिन वृद्धि पर इसके दीर्घावधि प्रभाव का अभी से मूल्यांकन करना अपरिपक्वतापूर्ण कदम होगा। जो बात स्पष्ट है, वह यह कि औद्योगिक नीति में हाल ही में जो परिवर्तन लाये गये हैं लगभग वे सभी भारतीय अर्थ व्यवस्था के उपभोक्ता सामग्री वाले क्षेत्र पर आधारित वृद्धि को बढ़ावा देने के उद्देश्य से प्रेरित हैं।

## 38.10 उद्योग और नियोजन : एक मूल्यांकन

इस संक्षिप्त सर्वेक्षण से यह स्पष्ट हो जाता है कि भारतीय उद्योग और व्यापारिक उद्यमों ने

पिछली शताब्दी से लेकर अब तक एक लम्बा सफर तय किया है। भारतीय उद्योग क्षेत्र पहले पटसन और चीनी जैसे कृषि-आधारित उत्पादों तक ही सीमित था लेकिन अब इसका विस्तार बहुत ही आधुनिकतम वस्तुओं तक हो गया है। इसमें भी कोई संदेह नहीं है कि आज भारत एक प्रमुख औद्योगिक राष्ट्र है और उपनिवेश उपरान्त के तीसरी दुनिया के देशों में से भारत विशालतम औद्योगिक देश है। इसके बावजूद संतुलित क्षेत्रीय विकास, आर्थिक शक्ति के संकेन्द्रीकरण में कमी और आत्म-निर्भरता (विदेशी पूंजी और प्रौद्योगिकी पर निर्भर न रहने के अर्थों में) जैसे उद्योग नीति संबंधी नियोजन के कुछ उद्देश्य अभी तक प्राप्त नहीं किये जा सके हैं।

इसके अलावा कृषक समाज का आमूल परिवर्तन करने में असफलता और परिणामस्वरूप उत्पन्न हुई कृषि संबंधी आय और अधिशेष की धीमी गति ने उद्योगों पर मांग संबंधी बाधा पैदा कर दी है। छठे दशक में और सातवें दशक के प्रारंभ में सार्वजनिक क्षेत्र की स्थापना और उद्योग के लिए आधारभूत संरचना के निर्माण में किये गये सार्वजनिक निवेश और व्यय ने औद्योगिक उत्पादन की वृद्धि की उच्च दर को बनाये रखने में मदद की परन्तु बाद में सार्वजनिक निवेश के कम होते जाने से औद्योगिक उत्पादन में मंदी आई है।

**बोध प्रश्न 3**

1 सही कथन पर (✓ ) निशान लगाइये।
स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद के 15 वर्षों की तेज़ औद्योगिक वृद्धि के बाद :
   i) भारतीय अर्थ व्यवस्था उपनिवेशकालीन अपनी स्थितियों में वापस लौट गयी ( )
   ii) भारतीय अर्थ व्यवस्था ने अपेक्षाकृत अधिक तीव्र वृद्धि की ओर गुणात्मक छलांग लगायी, ( )
   iii) भारतीय अर्थ व्यवस्था में गतिरोध पैदा हुआ और हल्की गिरावट आयी, ( )
   iv) दोनों (i) और (ii) ( )

2 सही कथन पर (✓ ) निशान लगाइये।
विकास में भारत की धीमी गति के बारे में संरचनागत बाधाओं का तर्क है कि :
   i) भारतीय अर्थ व्यवस्था बहुत अधिक नियंत्रित है और इसमें बाज़ार की शक्तियों को पूरी तरह सक्रिय होने का मौका नहीं मिलता, ( )
   ii) भारतीय अर्थ व्यवस्था का विकास तब तक नहीं होगा जब तक इसमें माल की आमद या आपूर्ति नहीं बढ़ायी जायेगी, ( )
   iii) भारतीय अर्थ व्यवस्था का विकास उस समय तक नहीं होगा जब तक कि भारत में औद्योगिक उत्पादों की मांग नहीं बढ़ जाती, ( )
   iv) उपरोक्त में से कोई भी नहीं, ( )

3 भारतीय उद्योग नीति के संदर्भ में नियोजन के लक्ष्य किस सीमा तक पूरे हुए हैं? दस पंक्तियों में उत्तर दीजिए।

........................................................................................................
........................................................................................................
........................................................................................................
........................................................................................................
........................................................................................................
........................................................................................................
........................................................................................................
........................................................................................................
........................................................................................................
........................................................................................................

## 38.11 सारांश

इस इकाई को पढ़ कर आपने जाना कि :

- औपनिवेशिक शासन के अंतर्गत औद्योगिकीकरण, राष्ट्रीय वृद्धि पर केवल सीमान्त प्रभाव ही डाल सका।
- अर्थ व्यवस्था के विभिन्न क्षेत्रों में हुए असमान विकास के कारण तथा विकास के क्षेत्रीय असंतुलन के कारण देश के अधिकांश क्षेत्र पिछड़े रह गये। इससे भारतीय उद्योगपतियों और राष्ट्रवादियों ने नियोजित आर्थिक विकास के बारे में सोचना शुरू किया।
- विदेशी वस्तुओं की बाढ़ को रोकने के लिए और शिशु भारतीय उद्योग को संरक्षण देने के लिए योजनाकारों ने भारतीय विनिर्माण को संरक्षण देने, घरेलू उत्पादन को प्रोत्साहन देने ताकि यह उत्पादन विदेशी वस्तुओं का स्थान ले सके (आयात, स्थानापन्न) और भारतीय विनिर्मित वस्तुओं के लिए बाज़ार तैयार करने की रणनीति अपनायी।
- स्वातंत्र्योत्तर काल में भारतीय नियोजन ने उद्योगों के नियंत्रण और विनियमन पर ज़ोर दिया ताकि भारी और मूल उद्योगों को बढ़ावा मिल सके और जिससे निजी क्षेत्र के विनिर्माण को आधारभूत ढांचा प्रदान किया जा सके। योजना में स्वामित्व पर प्रतिबंध और नियंत्रण, और लघु उद्योगों को प्रोत्साहन जैसे तत्वों को भी शामिल किया गया।
- तीव्र वृद्धि के प्रारंभिक दौर के बाद भारतीय अर्थ व्यवस्था को वृद्धि की गति में मंदी का सामना करना पड़ा।
- मूल रूप से वृद्धि में आयी गिरावट के बारे में दो मुख्य दृष्टिकोण सामने आते हैं। एक दृष्टिकोण के अनुसार ऐसा सरकारी नियंत्रण के कारण बाज़ार की शक्तियों के स्वतंत्र क्रिया-कलाप में आयी बाधा के कारण हुआ है, जबकि दूसरा दृष्टिकोण औद्योगिक गिरावट का कारण, मांग पक्ष को लेकर अर्थ व्यवस्था की संरचनागत बाधा को मानता है। यह बाधा विनिर्मित माल के लिए पर्याप्त घरेलू बाज़ार उपलब्ध न होने की है।

## 38.12 शब्दावली

**टैरिफ़ प्रोटेक्शन (शुल्क संरक्षण)** : घरेलू उत्पादन करने वाले किसी भी उत्पादनकर्ता को किसी बाहरी (विदेशी) उत्पादनकर्ता के सामने प्रतियोगिता में खड़े रहने में सक्षम बनाने के लिए आयात शुल्क या लेवी लगाकर संरक्षण प्रदान करना। इससे देश में ही उत्पन्न माल की तुलना में आयात मंहगा हो जाता है। उदाहरण के लिए 1985 तक भारत इलेक्ट्रॉनिक सामान पर भारी शुल्क लगाता था और इस प्रकार भारतीय इलेक्ट्रॉनिक उद्योग को प्रोत्साहन देता था।

**इन्फ्रास्ट्रक्चरल फैसिलिटीज़ (आधारभूत संरचनागत सुविधाएं)** : एक औद्योगिक संयंत्र निर्मित करने के लिए मूल सुविधाएं। इसमें आधारभूत मशीनरी, ऊर्जा संसाधन आदि शामिल हैं।

**स्टेट स्पान्सर्ड (राज्याश्रित)** : पूरी तरह राज्य से सहायता प्राप्त।

**होम मार्केट (घरेलू बाज़ार)** : देश में उत्पादित सामग्री के लिए देश के अन्दर ही उपलब्ध बाज़ार।

**आउटपुट (उत्पादन)** : औद्योगिक और कृषि उद्यमों में तैयार किया गया अंतिम उत्पादन।

**मोनोपोली (एकाधिकार)** : अनेक उद्योगों पर एक ही व्यक्ति या उद्योग समूह का अधिकार।

**डीरेग्यूलेशन ऑफ़ इंडस्ट्री (उद्योगों की नियंत्रण मुक्ति)** : उद्योगों पर सरकार का नियंत्रण या विनियमन लागू न रहना।

**इनवेस्टमेंट (निवेश)** : किसी भी उद्यम में इसकी उत्पादकता बढ़ाने के लिए मुद्रा, पूंजी या श्रम लगाने का काम निवेश कहलाता है।

**सप्लाई (आपूर्ति)** : बाज़ार में उपलब्ध सामग्री और सेवाएं।
**मल्टी नेशनल कॉरपोरेशन्स (बहुराष्ट्रीय निगम)** : वे निगम जिनके व्यापार हित अपने देश की सीमाओं से बाहर अन्य देशों तक फैले हुए हैं।
**सैटेलाइट टाउन्स (उपाश्रित नगर)** : पहले से ही स्थापित विशाल औद्योगिक नगरों के आस-पास विकसित होने वाले शहर। उदाहरण के लिए नयी दिल्ली के निकट फ़रीदाबाद। ये शहर मुख्य औद्योगिक शहरों को सेवाएं तथा अन्य औद्योगिक सुविधाएं उपलब्ध कराते हैं।

## 38.13 बोध प्रश्नों के उत्तर

**बोध प्रश्न 1**

1) iii 2) i 3) देखिये उपभाग 38.2.1
आपके उत्तर में (i) औपनिवेशिक शासन द्वारा पैदा की गयी बाधाओं (ii) घरेलू बाज़ार की वृद्धि का अभाव शामिल होने चाहिए।

**बोध प्रश्न 2**

1) ii 2) i

**बोध प्रश्न 3**

1) iii 2) iii

# इकाई 39 नियोजन और भूमि सुधार

## इकाई की रूपरेखा


39.0 उद्देश्य
39.1 प्रस्तावना
39.2 कृषि नीति और स्वतंत्रता आंदोलन
39.3 स्वतंत्रता पूर्व भूमि व्यवस्था
39.4 भूमि सुधारों का नियोजन
39.4.1 बिचौलियों का उन्मूलन
39.4.2 भूमि हदबन्दी
39.4.3 अन्य उपाय
39.5 भूमि सुधारों के सामाजिक परिणाम
39.6 सारांश
39.7 शब्दावली
39.8 बोध प्रश्नों के उत्तर


## 39.0 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के बाद आप :

- भारतीय कृषि के प्रति अंग्रेज़ों की नीति की जानकारी प्राप्त कर सकेंगे,
- आज़ादी के समय भारत के विभिन्न क्षेत्रों में विद्यमान भूमि व्यवस्था से परिचित हो सकेंगे,
- 1947 के उपरांत भारत सरकार द्वारा कृषि विकास के लिए अपनाये गये विभिन्न उपायों की जानकारी प्राप्त कर सकेंगे, और
- ग्रामीण समाज पर इन उपायों से पड़ने वाले प्रभावों को इंगित कर सकेंगे।

## 39.1 प्रस्तावना

इस इकाई में हम यह समझने का प्रयास करेंगे कि हमारे देश में आज़ादी के बाद आरंभ हुई नियोजन प्रक्रिया को ग्रामीण समाज में आर्थिक और सामाजिक परिवर्तन के लिए किस प्रकार प्रयुक्त किया गया। इस दिशा में उठाए गये कदम मुख्यतः भूमि सुधार, जैसे बिचौलियों का उन्मूलन तथा काश्तकारों को भूमि अधिकार देने की सुरक्षा आदि से संबंधित थे। इसके साथ ही कृषि विकास के लिए भूमि प्रबंध को सुधारा गया। इस प्रक्रिया में प्रशासनिक एवं भूमि संबंधी पुनर्गठन भी किया गया। नियोजन के संदर्भ में भूमि सुधारों को दो स्तरों पर देखा जाना चाहिए।

- भूमि स्वामित्व की संरचना में संस्थागत परिवर्तन तथा सामाजिक एवं आर्थिक विकास में इसकी उत्पादन संबंधित उपयोगिता
- कृषि अर्थव्यवस्था की प्रशासनिक एवं तकनीकी प्रक्रियाओं में हुए परिवर्तन जिनसे किसानों एवं खेतिहर मज़दूरों के सामाजिक कल्याण के लिये भूमि सुधारों द्वारा किये जा रहे संस्थागत उपायों का भरपूर उपयोग किया जा सके।

दोनों उपाय परस्पर संबंधित थे लेकिन संस्थागत पक्ष को इस प्रक्रिया में प्राथमिकता मिली। यह स्वतंत्रता आंदोलन के दौरान प्रस्फुटित हुई ऐतिहासिक शक्तियों की उपज थी। कई दशकों तक चलने वाले आंदोलन ने भारत में एक कृषि नीति तथा ग्रामीण क्षेत्र के

सामाजिक एवं आर्थिक विकास की नीति उभारने का मार्ग प्रशस्त किया। इस नीति को तैयार करने में भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस ने एक राजनीतिक पार्टी तथा राष्ट्रीय आंदोलन दोनों हैसियतों से महत्वपूर्ण भूमिका निभाई।

## 39.2 कृषि नीति तथा स्वतंत्रता आंदोलन

भारत में अंग्रेज़ी राज्य ने, जिसे समाप्त करने के लिए भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस ने स्वतंत्रता आंदोलन चलाया, भारतीय अर्थ व्यवस्था के अंतर्गत कृषि एवं उद्योग दोनों ही क्षेत्रों में गंभीर अवरोध खड़े किए। अंग्रेज़ों की नीतियों के कारण भारत में उद्योग नष्ट होने लगे। इन्हीं नीतियों के कारण भूमि सम्बंधी विशेष अधिकार प्रदान करने का सिलसिला शुरू हुआ जो कि स्वभावतः शोषण जनित एवं ग़ैर उत्पादक प्रक्रिया थी। निस्संदेह भारतीय कृषि संरचना के सुव्यवस्थित अध्ययन में अंग्रेज़ों की महत्वपूर्ण भूमिका रही, किंतु इस अध्ययन का मूल उद्देश्य अधिक से अधिक मात्रा में भू-राजस्व वसूली था। उदाहरण के लिए **बैडेन पॉवेल** ने अपनी पुस्तक **द लैंड सिस्टम ऑफ़ ब्रिटिश इण्डिया (1892)** में भारत में भूमि व्यवस्था, ग्रामीण समुदायों के उद्‌भव एवं विकास तथा उनकी आंचलिक विभिन्नताओं की विस्तृत व्याख्या की है तथा हेनरी एस. मैने ने अपनी पुस्तक **द विलेज कम्युनिटीज़ इन ईस्ट एण्ड वेस्ट (1876)** में ग्रामीण सामाजिक संरचना, भूमि संबंध तथा भूमि अधिकार का भारतीय तथा ब्रिटेन की पृष्ठभूमि में तुलनात्मक अध्ययन प्रस्तुत किया है किंतु विश्लेषण तथा ऐतिहासिक तुलनात्मक अध्ययनों के प्रयासों के पीछे परिवर्तन अथवा सुधारों के उद्‌देश्य नहीं थे। यही नहीं 1928 में गठित कृषि पर रॉयल कमीशन की रिपोर्ट जो कि "ग्रामीण जनता के कल्याण एवं विकास को प्रोत्साहन देने के उद्‌देश्य से कृषि में सुधारों की सिफारिश" की ओर लक्षित थी उसने अपना दायरा सीमित रखा। इसका कारण यह था कि कमीशन को यह निर्देश था कि वह मौजूदा भूमिस्वामित्व तथा काश्तकारी अथवा भू-राजस्व व सिंचाई की दरें तय करने के संदर्भ में किसी प्रकार की सिफारिशें न भेजें। औपनिवेशिक सरकार के राजस्व को क्षति पहुँचा कर ग्रामीण जनता के कल्याण का प्रयास नहीं किया जा सकता था। भूमि व्यवस्था की अंग्रेज़ी नीति का प्रत्यक्ष उद्‌देश्य अधिकतम भू-राजस्व एकत्र करना था जो कि बहुधा काश्तकारों के परंपरागत तथा मान्य अधिकारों का उल्लंघन करके किया जाता था, विशेष कर ज़मीन के जोतदारों का। यह नीति ज़मीन पर विभिन्न स्तर के अधिकारों के साथ भूस्वामियों की नयी श्रेणियों का कृत्रिम सृजन कर रही थी। इसका एकमात्र उद्‌देश्य अधिक से अधिक भू-राजस्व एकत्रित करना था। इस प्रक्रिया का विस्तृत ब्योरा आज़ादी के तुरंत बाद उत्तर प्रदेश सरकार द्वारा प्रकाशित ज़मींदारी उन्मूलन कमेटी की रिपोर्ट (1948) में उपलब्ध है। इसमें अंग्रेज़ी भूमि व्यवस्था का सांख्यिकीय और ऐतिहासिक मूल्यांकन किया गया है और भूमि व्यवस्था संबंधी कुछ आंकड़े भी प्रस्तुत किए गये हैं। इस रिपोर्ट में इस बात का ज़िक्र है कि किस प्रकार अंग्रेज़ों ने एक वर्ग को ज़मीन के अधिकारों से सम्मानित कर किसान और सरकार के बीच बिचौलियों के रूप में खड़ा किया था। भू-राजस्व वसूली की सुविधा को ध्यान में रखते हुए उन्हें ज़मींदार कहा जाता था। ज़मींदारी व्यवस्था को विभिन्न क्षेत्रों में विभिन्न नामों से वैधानिक मान्यता दी गयी। यह वैधानिक मान्यता अंग्रेज़ों की वित्तीय और प्रशासनिक सुविधा के तहत प्रदान की गयी। यह तथ्य एरिक स्टोक्स के अध्ययन में स्पष्ट होकर सामने आता है। उन्होंने डी. टी. रोवर्ट का हवाला दिया है, "कोई व्यक्ति ज़मींदार है या नियत मूल्य देने वाला जोतदार या दाखिलदार, यह सब शुद्ध रूप से तकनीकी और वैधानिक मसला है। मूल बात यह है कि वह भूमि वाजिब या ग़ैर वाजिब दरों पर उसके पास जोत है या नहीं और यह जोत पर्याप्त है या नहीं।"

विभिन्न नामों से विभिन्न प्रांतों में ज़मींदारी अधिकारों की स्थापना से एक ऐसे वर्ग का उदय हुआ जिसका भूमि पर अधिकार था और वह अंग्रेज़ सरकार को भू-राजस्व दिया करता था। वे मनमाने और अनियमित तरीके से कर वसूल करते थे और किसानों, खेतिहर मज़दूरों और जोतदारों का शोषण करते थे। देश के अधिकांश हिस्सों में इस वर्ग और इसके आर्थिक और सामाजिक शोषण के ख़िलाफ़ कृषक आंदोलन हुए। (इकाई 7 और 28 में आपने इसका अध्ययन किया है)। अपनी प्रकृति में राजनीतिक होते हुए भी भारतीय

राष्ट्रीय कांग्रेस इन परजीवी संस्थाओं के उन्मूलन और सुधार के लिए कृत्त संकल्प थी। इस प्रेरणा के पीछे गांधीवादी विचारधारा का प्रभाव था।

- भारत में नियोजन और अर्थशास्त्रीय प्रशासन का केन्द्र गांव होना चाहिए,
- पंचायत और स्थानीय निकायों के माध्यम से इसे स्वशासन का अधिकार मिलना चाहिए,
- खेत जोतने वाले का ज़मीन पर अधिकार होना चाहिए,
- भूमि से जुड़े हुए सभी प्रकार के वार्षिकीभोगी और शोषण संबंधों की समाप्ति होनी चाहिए।

गांधी जी ने ग्रामीण-शहरी आर्थिक संबंधों के ऐसे पारस्परिक सहयोग और सह अस्तित्व की वकालत की जिसमें एक, दूसरे पर पूरी तरह निर्भरता न हो और न ही शोषण की गुंजाइश हो। भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस ने कुछ सुधारों के बाद इस नीति को अपना लिया। कांग्रेस के औपचारिक प्रस्तावों और रिपोर्टों से यह स्पष्ट है। (उदाहरण के लिए इकाई 30 में फ़ैज़पुर कृषि कार्यक्रम देखिए)

आज़ादी के तुरंत बाद भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस के अध्यक्ष ने 1949 में कांग्रेस कृषि सुधार समिति गठित की ताकि भारत में भूमि सुधार की विस्तृत नीति बनायी जा सके। इसमें ज़मीदारी, ताल्लुकेदारी और जागीरदारी आदि बिचौलियों के अधिकारों की समाप्ति का प्रस्ताव रखा गया। इसके अतिरिक्त इस समिति ने सहकारी संगठनों के माध्यम से खेती करने पर बल दिया। इसने किसानों की जोतों की न्यूनतम और अधिकतम सीमा निर्धारित कर दी ताकि कृषि विकास और ग्रामीण समृद्धि तेज़ी से हो सके। इसके लिए गांवों में प्रशासनिक और विकासात्मक संस्थाओं की स्थापना का भी प्रावधान रखा गया। इस समिति ने सहकारी समिति द्वारा पूरे गांव की खेती सामूहिक रूप से करने का प्रस्ताव रखा। इस प्रस्ताव पर पूरे देश में काफी बहस हुई। इस बहस में कांग्रेस पार्टी के अन्दर से ही दो प्रकार के विचार सामने आये। एक वर्ग सहकारी खेती तथा दूसरा व्यक्तिगत किसान परिवार द्वारा खेती पर बल दे रहा था। इस विवाद में स्पष्ट रूप से भारत में दो विरोधी दृष्टिकोण सामने आये।

- पहला दृष्टिकोण सामुदायिक दर्शन पर आधारित है जिसका तर्क है कि भूमि सामुदायिक सम्पत्ति है न कि व्यक्तिगत।
- दूसरा दृष्टिकोण पूंजीवादी है, जिसके अनुसार भूमि व्यक्तिगत या पारिवारिक संपत्ति है।

भारत के भूमि सुधारों में व्यक्तिगत या पारिवारिक अधिकार के दर्शन को वरीयता प्राप्त हुई, हालाँकि भूमि सुधार नीतियों में सामुदायिक दर्शन को समाविष्ट करने की चेष्टा भी की गयी। गांधी जी के शिष्य आचार्य विनोबा भावे ने सामुदायिक अधिकार के सवाल पर राष्ट्रव्यापी आंदोलन शुरू किया जिसे सर्वोदय आन्दोलन के रूप में जाना जाता है। सर्वोदय स्वेच्छा से प्रेरित और ग़ैर सरकारी आन्दोलन था। यह आंदोलन उसी समय छेड़ा गया था, जब भूमि सुधार संबंधी नीतियाँ बनायी और कार्यान्वित की जा रही थीं (1950 के दशक के आरंभिक वर्षों में)।

## 39.3 स्वतंत्रता पूर्व भूमि व्यवस्था

भारत में नियोजन के दौरान लाये गये भूमि सुधारों की प्रकृति को समझने के पहले यह आवश्यक है कि हम आज़ादी के समय मौजूद भूमि व्यवस्था की प्रकृति को समझ लें। इस समय दो प्रकार की भूमि व्यवस्था मौजूद थी—ज़मीदारी और रैयतवाड़ी। देश के विभिन्न क्षेत्रों में यही दो भूमि व्यवस्थाएं स्थापित थीं। ये व्यवस्थाएं एक तरफ काश्तकार और सरकार के बीच और दूसरी तरफ काश्तकार और जोतदार और खेतिहर मज़दूरों के बीच संबंधों का निर्धारण करती थीं। काश्तकारों के अधिकारों को कानून और रीति रिवाज की सहायता से संस्थागत रूप दे दिया गया था। काश्तकार जोतदारों से भू-राजस्व वसूल करके सरकार को उसका हिस्सा प्रदान किया करते थे। जोतदार कानून और रीति-रिवाज से बंधे

होने के कारण काश्तकारों द्वारा तय किया गया लगान देने के लिए बाध्य था। इसके अतिरिक्त जोतदारों को काश्तकारों के खेतों में बेगार करना पड़ता था और विशेष आयोजनों पर सामग्री के रूप में कर देना पड़ता था।

ज़मीदारी प्रथा उत्तर भारतीय राज्यों और रैयतवाड़ी दक्षिणी और पश्चिमी भारत में मौजूद थी। ज़मीदारी व्यवस्था में भूमि पर कुछ ऐसे लोगों का अधिकार हो गया जो खुद खेती नहीं करते थे, लेकिन उनकी विशेषता यह थी कि वे अपने इलाके के प्रभावशाली लोग थे जिनमें जोतदारों से लगान वसूल करने की शक्ति थी। अंग्रेज़ भू-राजस्व अधिकारी अस्थायी (सामान्यतः 30 वर्षों के लिए) या स्थायी आधार पर "भूमि व्यवस्था" किया करते थे। इस संस्था के निर्माण से एक विदेशी साम्राज्य भारतीय किसानों के सम्पर्क में आये बिना लगान वसूल करने में सफल रहा। इससे एक नये ज़मीदारी वर्ग का उदय हुआ। कुछ स्थितियों में प्रारंभिक काश्तकारों को ही स्वीकार कर लिया गया। इस व्यवस्था में तीन प्रकार के हित एक साथ काम कर रहे थे—

- वह सरकार जो भू-राजस्व प्राप्त करती थी,
- वह ज़मीदार जो जोतदारों से भू-राजस्व वसूल करता था,
- जोतदार जो भू-राजस्व देता था और ज़मीदार की सेवा करता था।

इनके अतिरिक्त संयुक्त प्रांत में जिसे आज हम उत्तर प्रदेश के नाम से जानते हैं, एक अलग तरह की ज़मीदारी व्यवस्था मौजूद थी।

ज़मीदारी व्यवस्था का एक दूसरा रूप जागीरदारी व्यवस्था था। देश के अनेक हिस्सों में राजाओं ने अपने दरबारियों एवं सामन्तों के ज़िम्मे ज़मीन छोड़ दी थी। राजस्थान और हैदराबाद राज्य ऐसे उदाहरण हैं, हालांकि देश के दूसरे हिस्सों में भी यह व्यवस्था मौजूद थी। जागीरदारी व्यवस्था में लगान और नज़राना पेश करने के अतिरिक्त कुछ प्रशासनिक और सैनिक सेवाएं भी उपलब्ध करानी पड़ती थी। जागीरदार ज़मीन के मालिक नहीं होते थे बल्कि अपने मालिक की तरफ से लगान वसूल करने के लिए प्रशासक की भूमिका निभाते थे।

इस व्यवस्था में भूमि संबंध निम्नलिखित प्रकार का था :

i) पहला, वह राज्य अथवा रियासत जो जागीरदार को उसकी सेवा और दायित्व के लिए जागीरदारी अधिकार प्रदान करती थी।
ii) दूसरा, जागीरदार लगान वसूलने का अधिकार एक व्यक्ति या व्यक्ति समूह को दे देता था जो उसे लगान वसूल करके देता था।
iii) तीसरा, ज़मीन का मालिक पट्टे पर जोतदारों को लगान वसूल करने के लिए भूमि देता था।

इस व्यवस्था में जोतदारों का अपने मालिक के साथ संबंध ज़मीदारी व्यवस्था से भिन्न नहीं था, ख़ासकर आर्थिक और सामाजिक दायित्वों के संदर्भ में।

रैयतवाड़ी व्यवस्था ज़मीदारी व्यवस्था से भिन्न थी क्योंकि इसमें किसान खुद मालिक था और बिचौलियों की इसमें कोई भूमिका नहीं थी। जोतदार ही अपनी जोत का मालिक था और वह सीधे सरकार को भू-राजस्व दिया करता था। हालांकि बाद में बाज़ारी ताकतों के दबाव, जैसे रेल और सड़कों का विस्तार और कई प्रकार के सामाजिक और आर्थिक कारणों से जोतदारों की कंगाली से एक नया आयाम सामने आया। खुद लगान न देने की स्थिति में ये लोग अपनी ज़मीन काश्तकारों के पास रेहन रखने लगे। इस प्रक्रिया में उत्तरी राज्यों की ज़मीदारी प्रथा की झलक इस व्यवस्था में भी मिलने लगी। रैयतवाड़ी व्यवस्था बम्बई और मद्रास प्रेसीडैन्सी और हैदराबाद के कुछ हिस्सों में मौजूद थी। ज़मीदारी और रैयतवाड़ी काश्तकारी भूधारण व्यवस्था में अन्तर होते हुए भी इनमें एक आधारभूत समानता यह थी कि ये सामाजिक शोषण संबंधों पर आधारित थे और इन्होंने ग्रामीण अर्थव्यवस्था में एक अनउत्पादक वातावरण तैयार किया :

- लगान का संबंध प्रति एकड़ उपज के मूल्य से बिल्कुल नहीं था।
- काश्तकार-जोतदारों को प्राप्त भूमि की अवधि की अनिश्चितता के कारण भी कृषि में निवेश (लागत) को धक्का पहुँचा।

- मालिक केवल लगान वसूलने की ताक में रहते थे और शोषण के तरीके अपनाते थे।
- जनसंख्या पर दवाब पड़ने से जोतों का उपविभाजन हुआ और इससे जोतदारों के पास इतना अधिशेष नहीं बच पाता था कि वे उसे भूमि में निवेशित करें।

इस प्रकार भूमि व्यवस्था की गुणवत्ता और कृषि उत्पादन में भारी कमी आई। इससे खेती में उस परम्परागत तकनीक का ही इस्तेमाल होता रहा जिसे भारतीय किसान सैकड़ों वर्षों से अपनाता चला आ रहा था। इससे कृषि अर्थव्यवस्था दुहरे संकट में फँस गयी।

i) पहला, कृषि में सामाजिक संबंध शोषण और दमन पर आधारित हो गया,
ii) दूसरे, भारत में प्रति एकड़ उत्पादकता काफी गिर गयी।

इन सामाजिक और आर्थिक समस्याओं को दूर करने के लिए आज़ादी के बाद भारत में योजना और भूमि सुधारों का सूत्रपात हुआ।

**बोध प्रश्न 1**

1) आज़ादी के पहले की भूमि व्यवस्था का उल्लेख दस पंक्तियों में करें

........................................................................................................
........................................................................................................
........................................................................................................
........................................................................................................
........................................................................................................
........................................................................................................
........................................................................................................
........................................................................................................
........................................................................................................
........................................................................................................

2) 1947 के बाद कांग्रेस में खेती के ढांचे से संबंधित चल रहे विवाद का ज़िक्र पांच पंक्तियों में करें।

........................................................................................................
........................................................................................................
........................................................................................................
........................................................................................................
........................................................................................................

3) निम्नलिखित वक्तव्यों को पढ़ें और सही ( ✓ ) और ग़लत ( X ) का निशान लगायें।
   i) भूमि व्यवस्था की अंग्रेज़ी नीति का उद्देश्य भारतीय कृषि का विकास करना था।
   ii) अंग्रेज़ों की नीति के फलस्वरूप सरकार और जोतदार के बीच बिचौलियों का वर्ग निर्मित हुआ।
   iii) कांग्रेस कृषि सुधार समिति का गठन भारत में प्रभावकारी भूमि सुधारों की कार्यनीति तैयार करने के लिए किया गया था।
   iv) 1947 के पहले की विभिन्न भू-व्यवस्थाओं से भूमि की उत्पादकता (उपज) में वृद्धि हुई।

## 39.4 भूमि सुधारों की योजना

स्वतंत्रता के बाद योजना बनाते समय भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस के नेतृत्व में बनी कृषि नीति और भारतीय अर्थव्यवस्था की संरचनात्मक समस्या को ध्यान में रखा गया। इस बात में कोई संदेह नहीं है कि भारतीय कृषि के पतन का मुख्य कारण ज़मींदारी, जागीरदारी और रैयतवाड़ी व्यवस्था है लेकिन इसके अतिरिक्त हमारी सामाजिक और आर्थिक संरचना भी कृषि के पतन के लिए ज़िम्मेदार है। मसलन रोज़गार के अन्य साधन उपलब्ध न होने के कारण कृषि पर जनसंख्या का दबाव बढ़ना। इससे प्रति व्यक्ति भूमि का अनुपात असंतुलित हुआ और परिणामस्वरूप जोतों का उपविभाजन होने लगा। प्रथम, कृषि श्रम जाँच पड़ताल (1951) ने स्पष्ट किया है "कुल कृषक परिवारों में 20% लोग भूमिहीन मज़दूर हैं। जिनके पास जोतने के लिए ज़मीन है, उनमें से 38 प्रतिशत ऐसे हैं जिनके पास 2.5 एकड़ से भी कम ज़मीन है और खेती योग्य भूमि के 6 प्रतिशत हिस्से पर ही इनका अधिकार है। खेती करने वाले परिवारों में 59 प्रतिशत ऐसे हैं जिनके पास 5 एकड़ से भी कम ज़मीन है और यह कुल खेती योग्य ज़मीन का 16 प्रतिशत है।"

जोतों का उपविभाजन भी एक बदसूरत तस्वीर प्रस्तुत करता है। भारत सरकार के द फार्म मैनेजमेंट स्टडीज़ में स्पष्ट है कि उत्तर प्रदेश और पश्चिमी बंगाल में ढाई एकड़ जोत के औसतन 3.6 टुकड़े हुए हैं। 200 से 25 एकड़ तक के बड़े जोतों की भी स्थिति बहुत अच्छी नहीं थी। और इसका औसतन 17 टुकड़ों में विभाजन हुआ है। खेतों के छोटे-छोटे टुकड़ों में बँटे होने की समस्या को चकबन्दी के माध्यम से सुलझाया जा रहा है। कृषि संबंधी अन्य संरचनात्मक समस्याओं का संबंध आधुनिकीकरण द्वारा भूमि के अधिकतम उपयोग और खेती करने के तरीके से सम्बद्ध है। इसके अतिरिक्त सिंचाई, खाद, भूमि की उर्वरता में कमी आदि समस्याएं भी कृषि के सामने हैं। आधुनिकीकरण के ये मुद्दे भूमि सुधारों के संस्थागत पहलू से जुड़े हुए हैं।

स्वतंत्रता प्राप्ति के तुरन्त बाद योजना आयोग, केन्द्रीय सरकार और अन्य राज्य सरकारों ने भूमि सुधारों के बृहत् कार्यक्रमों को जारी किया। इसके अन्तर्गत मिलकियत ढाँचे में संस्थागत और संरचनात्मक परिवर्तन किये गये, भू स्वामित्व की नयी अवधारणा सामने आयी, कृषि क्षेत्रों में आधुनिकीकरण की मांग की गयी और ग्रामीण क्षेत्रों में सामुदायिक स्तर पर सहायता पहुँचाने वाले संस्थानों का गठन किया गया। प्रथम पंचवर्षीय योजना लागू होने के तुरन्त बाद 1950 के दशक में ये कार्यक्रम आरंभ किये गये।

भूमि सुधार कार्यक्रम में निम्नलिखित कदम उठाये गये —
- बिचौलियों का उन्मूलन
- काश्तकारी सुधार और
- भूमि अधिग्रहण के लिए भूमि जोतों की सीमा का निर्धारण।

**इन सुधारों का एकमात्र उद्देश्य था—भारतीय किसान को ज़मीदार और जागीरदार जैसे बिचौलियों के चंगुल से मुक्त करना और उनकी ज़मीन को सुरक्षा प्रदान करना ताकि कृषि के आधुनिकीकरण के लिए वे उसमें पूँजी लगा सकें।**

### 39.4.1 बिचौलियों का उन्मूलन

बिचौलियों का उन्मूलन भूमि सुधार का एक प्रमुख कदम था। यह वर्ग, जैसा कि हम पहले बता चुके हैं भूमि के विकास के लिए बिना कोई पूँजी निवेश किये हुए, जोतदारों से मनमानी रकम वसूल करते थे। वे अपने व्यक्तिगत ऐशोआराम और शान शौकत के लिए किसानों से अतिरिक्त कर वसूल करते थे, मसलन घोड़े, हाथी खरीदने के लिए, अपने परिवार में जन्म, विवाह और अन्य खुशियां मनाने के लिए। कभी-कभी ज़मीदार या जागीरदार अपने शौक के लिए भी कर वसूल करते थे। लगान और कर की वसूली ज़मीदार के कारिन्दों द्वारा बड़े रूखे और कभी-कभी क्रूर ढंग से की जाती थी। लगान न देने या देर से देने की स्थिति में ज़मीन से बेदख़ल करना आम बात थी। किसानों को दिया हुआ काश्तकारी अधिकार ज़मीदारों या जागीरदारों की मर्ज़ी पर आधारित था। वे किसान को कभी भी उनकी भूमि से बेदख़ल कर सकते थे। बाद में भारत के कुछ हिस्सों में ऐसी

काश्तकारी की व्यवस्था की गयी जिसमें किसान को उसकी भूमि से विशेष परिस्थितियों में और वह भी केवल कानून की प्रक्रिया के द्वारा हटाया जा सकता था लेकिन इस प्रकार के काश्तकारों की अवधि भी ज़मीदारों की रज़ामन्दी पर आधारित थी क्योंकि ज़मीदार बहुत चालाकी से किसानों को उनकी ज़मीन से बेदख़ल कर देता था।

भूमि सुधार का पहला कदम इस प्रकार के बिचौलियों का (उत्तर प्रदेश में ज़मीदारी उन्मूलन अधिनियम) उन्मूलन था जो कई शताब्दियों से गाँवों में समृद्ध और शक्तिशाली बने हुए थे। भूमि सुधार के अतिरिक्त यह एक समाज सुधार भी था क्योंकि पहली बार कारीगरों, मज़दूरों और किसानों को बिचौलियों के बंधन से मुक्ति मिली। चाहे, ज़मीदार हों या ताल्लुकेदार, बिचौलियों के अधिकार सरकार द्वारा ले लिये गये। अब काश्तकार सरकार को सीधे लगान देने के लिए उत्तरदायी हो गये। इसके अतिरिक्त गाँवों की साझी भूमि जिसे पहले भूमिपतियों की सम्पत्ति माना जाता था या जिनका उस पर नियंत्रण रहता था, जैसे घर बनाने की जगह (आबादी भूमि) चारागाह, जंगल, तालाब, झील आदि पर से ज़मीदारों का नियंत्रण समाप्त कर दिया गया और इसे ग्राम पंचायतों के ज़िम्मे सौंप दिया गया।

भूमि सुधारों के साथ-साथ ग्राम पंचायत व्यवस्था भी लागू की गयी जो निर्वाचक सिद्धांत के व्यापक मताधिकार पर आधारित थी। ग्रामीण स्तर के भूमि संसाधनों पर ग्रामीण पंचायत का नियंत्रण हो गया। ग्राम पंचायत के अध्यक्ष को मुखिया या प्रधान कहते हैं जो चुनाव द्वारा चुना जाता है। इस कदम का भी सामाजिक, राजनीतिक और सांस्कृतिक महत्व है। ज़मीदारों जैसे बिचौलिये वर्ग के उन्मूलन, भूमि सुधार और इसके साथ-साथ ग्राम पंचायतों की स्थापना से ग्रामीण जीवन में एक सामाजिक और मनोवैज्ञानिक परिवर्तन आया। सामाजिक रूप से देखें तो ज़मीदारी प्रथा के उन्मूलन का अर्थ था—एक बड़ी संख्या में ग्रामीण काश्तकारों, कारीगर और मज़दूरों आदि का शोषण से मुक्त होना। राजनीतिक रूप से इसने ग्राम पंचायत के चुनाव का आधार निर्मित किया। यह चुनाव वयस्क मताधिकार पर आधारित था, जिसमें किसी प्रकार के विशेषाधिकार या जाति, धर्म आदि के आधार पर भेदभाव को स्थान नहीं दिया गया था। इसने लोकतंत्रीकरण की प्रक्रिया को मज़बूत किया और देश में मताधिकार पर आधारित राजनीति को लागू करने में मदद की, जो नागरिक अधिकारों, व्यापक मताधिकार, समानता और स्वतंत्रता जैसे सिद्धांतों पर आधारित थी।

दूसरी तरफ बिचौलियों को उनके काश्तकारी अधिकारों का मुआवज़ा दिया गया, जिसे सरकार ने अपने नियंत्रण में ले लिया था। फिर भी, उनके पास वह ज़मीन रह गयी, जिस पर वे खुद खेती करते या करवाते थे। इसे खुदकाश्त ज़मीन कहते थे। काश्तकार ज़मीदारी उन्मूलन के पहले भूमिपतियों को लगान देते थे। आज़ादी के बाद उन्हें सिरदार का अधिकार दिया गया, उन्हें भूमि जोतने का स्थायी अधिकार दिया गया, पर वे वह ज़मीन बेच नहीं सकते थे। जिन लोगों ने एक वर्ष के लगान का दस गुना अदा किया उन्हें भूमिधर बना दिया गया, ये अपनी ज़मीन बेच सकते थे। लगभग प्रत्येक काश्तकार को यह अधिकार आरंभिक भुगतान के बाद प्रदान कर दिया गया लेकिन बाद में कुछ राज्यों में नीति को उदार बनाकर अधिक लोगों को यह अधिकार दिया गया। ज़मीदारों को मुआवज़ा देने के मसले पर काफी बहस हुई। इसके अतिरिक्त काश्तकारों को स्वामित्व का अधिकार दिये जाने, उन्हें भूमिधर बनाये जाने पर भी काफी वाद-विवाद हुआ। अन्ततः भूमिपतियों, ताल्लुकेदारों और जागीरदारों आदि को मुआवज़ा दिया गया।

> यह आंकलित किया गया है कि पूरे देश में बिचौलियों को मुआवज़े की राशि में 635 करोड़ रुपये दिये गये।

भूमि सुधारों में काश्तकारी सुधार सबसे महत्वपूर्ण था। बिचौलियों के उन्मूलन से खेत जोतने वाले का अधिकार अपनी ज़मीन पर स्थापित हुआ। इसने एक ऐसी व्यवस्था को समाप्त किया जो शोषण और असमानता पर आधारित होने के साथ-साथ प्रगतिशील कृषि की राह में रोड़ा भी थी। काश्तकारी सुधारों से खेतिहरों का ज़मीन पर अधिकार स्थापित हो गया। इसके पहले खेतिहरों का काश्तकारी संबंध पराधीनता पर आधारित था, अब यह संबंध सरल और विवेकपूर्ण काश्तकारी संबंध में परिवर्तित हो गया। अब सभी काश्तकार भूमिधर और सिरदार के रूप में बदल गये, उन्हें सीधे सरकार को लगान देना था। पूर्ववर्ती भूमिपतियों ने खुदकाश्त ज़मीनों पर भूमिधर अधिकार प्राप्त किया, उन्हें अतिरिक्त भू-राजस्व नहीं देना पड़ा। इसके अतिरिक्त उन्हें भूमि अधिकारों के बदले मुआवज़ा भी

दिया गया।

इन काश्तकारी सुधारों ने गाँवों में भूमि संबंधों में एक स्थिरता कायम की, पर पूरी तरह से सामाजिक और आर्थिक असमानता दूर नहीं हो पायी, क्योंकि भूमिपतियों के पास खुदकाश्त भूमि के रूप में काफी ज़मीन रह गयी। अधिकांश भागों में भूमिपतियों ने स्थिति का अंदाज़ा लगाते हुए, काफी ज़मीन खुदकाश्त के अन्तर्गत शामिल कर ली। उन्होंने उन किसानों को बेदखल कर दिया जो मर्ज़ी पर आधारित काश्तकार थे। इससे सामाजिक असमानता बनी। इसके अतिरिक्त उन्होंने जंगली इलाकों, फलों के बागानों और घास के मैदानों को पारिवारिक बागान घोषित कर खुदकाश्त जमीन में शामिल कर लिया जिस पर पंचायत का अधिकार होने का भय था। इन अनियमितताओं के बावजूद बिचौलियों के अधिकारों के उन्मूलन से ग्रामीण जीवन में एक भारी संस्थागत और मनोवैज्ञानिक परिवर्तन आया।

### 39.4.2 भूमि हदबन्दी

ग्रामीण अर्थव्यवस्था में सामाजिक समानता लाने का प्रयत्न भूमि सुधारों का एक महत्वपूर्ण पक्ष था। यह भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस और उन राजनीतिक पार्टियों की नीतियों के अनुकूल था जिन्होंने स्वतंत्रता संग्राम को नेतृत्व प्रदान किया था। हमारे संविधान में यह शामिल किया गया कि धन और शक्ति का संकेन्द्रण नहीं होगा और समाज के सभी वर्गों में इसका न्यायोचित वितरण होगा। इस प्रकार, विकास के लोकतांत्रिक तरीके से समाजवाद कायम करने पर बल दिया गया। ग्रामीण समाज के परिप्रेक्ष्य में इस उद्देश्य की पूर्ति योजना आयोग की उस नीति के माध्यम से होनी थी जिसमें खेती योग्य ज़मीन रखने की सीमा निर्धारित कर दी गई थी और महत्वपूर्ण बात यह थी कि भूमि हदबंदी का एक स्तर निर्धारित कर दिया गया था। उत्पादकता के लिहाज़ से एक क्षेत्र से दूसरे क्षेत्र और एक टुकड़े से दूसरे टुकड़े की ज़मीन के मूल्य में अंतर होता है। इसके बावजूद एक आम सिद्धांत विकसित करना आवश्यक था जिसके आधार पर ज़मीन रखने की सीमा का निर्धारण हो सके। 20वीं सदी के छठे दशक के प्रारंभिक वर्षों में योजना आयोग ने एक पारिवारिक जोत का निर्धारण किया जिसकी आमदनी 1200 रु. सालाना के बराबर हो। इसमें सुझाव दिया गया कि एक परिवार के पास जिसमें 5 सदस्य हों, पारिवारिक जोत की तिगुनी ज़मीन होनी चाहिए अर्थात् इतनी ज़मीन होनी चाहिए जिससे 3600 रु० प्रति वर्ष आमदनी हो सके। इसका निर्धारण भूमि की गुणवत्ता, खेती की तकनीक और उस समय उपस्थित अन्य मुद्दों को ध्यान में रखकर किया जाना था।

भूमि की हदबंदी का कानून 1950 के दशक में ही लागू हुआ पर इसकी कार्रवाई विभिन्न राज्यों में अलग-अलग हुई। उदाहरण के लिए, आंध्रप्रदेश के तेलंगाना प्रदेश में, महाराष्ट्र के मराठवाड़ा में और कर्नाटक के मैसूर में भूमि हदबन्दी का आधार तीन हज़ार रुपये प्रति वर्ष रखा गया और इसके लिए 18 से लेकर 27 एकड़ ज़मीन रखने की बात की गई। पंजाब में हदबंदी की सीमा 30 एकड़ (सिंचाई सुविधा के साथ) और 60 एकड़ (शुष्क इलाका) निर्धारित की गई। विस्थापित व्यक्तियों के लिए सिंचित भूमि 50 एकड़ और शुष्क भूमि की 100 एकड़ की सीमा रखी गई। केरल में ज़मीन की गुणवत्ता के आधार पर यह सीमा 15 से लेकर 32 एकड़ रखी गई। उत्तर प्रदेश में ज़मीन की गुणवत्ता के आधार पर 40 से लेकर 80 एकड़ तक की सीमा निर्धारित की गयी। 50 के दशक की हदबंदी में फिर से सुधार लाया गया और अधिकांश राज्यों में हदबंदी की सीमा और कम की गयी।

भूमि हदबंदी के पीछे मुख्य उद्देश्य यह था कि अधिशेष भूमि का वितरण कमज़ोर भूमिहीन और अनुसूचित जातियों के बीच कर दिया जाएगा लेकिन इनके माध्यम से अधिकांश अतिरिक्त भूमि प्राप्त नहीं की जा सकी क्योंकि भूमिपतियों ने अपनी अधिशेष भूमि अपने रिश्तेदारों, दोस्तों और अन्य लोगों के नाम हस्तांतरित कर दी। इसे बेनामी हस्तांतरण कहते हैं। इसे बेनामी इसलिए कहते हैं क्योंकि इसमें भूमि एक व्यक्ति को हस्तांतरित कर दी जाती है, लेकिन वह व्यक्ति वास्तविक जोतदार नहीं होता है। वास्तविक जोतदार भूमि का असली मालिक बना रहा जिसने हदबंदी के कानून से बचने के लिए बेनामी हस्तांतरण किए। यह एक ऐसी समस्या बन गयी जिसने ग्रामीण भारत के कृषि रूपांतरण को अवरुद्ध कर दिया और यह समस्या आज तक विद्यमान है।

### 39.4.3 अन्य उपाय

भूमि सुधार की योजना नीति का ज़ोर केवल बिचौलियों की समाप्ति, काश्तकारी सुधारों और हदबंदी तक ही सीमित नहीं था। इसमें भारी निवेश के माध्यम से भूमि की उत्पादकता बढ़ाने पर भी बल दिया गया था। इस संदर्भ में एक महत्वपूर्ण कदम था—खेतों की चकबंदी। भूमि पर दबाव बढ़ रहा था और परंपरागत कानून के अनुसार पिता की मृत्यु के बाद भूमि का विभाजन उसके बेटों के बीच समान भागों में होने से भूमि का उपविभाजन हो रहा था और शनैः शनैः खेत टुकड़ों-टुकड़ों में विभक्त हो रहे थे। पचास के दशक के आरंभिक वर्षों में भूमि का उपविभाजन अपनी चरम सीमा पर था। भूमि के इस विभाजन और टुकड़ों-टुकड़ों में बंटे होने के कारण कृषि को काफी लंबे समय से नुकसान उठाना पड़ रहा था। 1953-54 में योजना आयोग के एक अध्ययन से यह स्पष्ट है कि :

| | |
|---|---|
| आंध्रप्रदेश में | 82.8 प्रतिशत |
| गुजरात और महाराष्ट्र में | 66 प्रतिशत |
| मध्यप्रदेश में | 77.2 प्रतिशत |
| मैसूर में | 70 प्रतिशत |
| पंजाब में | 83.9 प्रतिशत |
| केरल में | 98.4 प्रतिशत |
| राजस्थान में | 62.4 प्रतिशत |
| उत्तर प्रदेश में | 94.9 प्रतिशत |

खेत आकार में दस एकड़ से कम थे। खेत के टुकड़ों में विभक्त होने का दृश्य और भी निराशाजनक था। उदाहरण के लिए पंजाब के गाँवों में सर्वेक्षण से यह तथ्य सामने आया कि 1898 ऐसे खेत के टुकड़े थे जिनका आकार 1/5 एकड़ से भी कम था और 34.5 प्रतिशत जोतदारों के खेत 25 टुकड़ों में विभक्त थे। देश के दूसरे हिस्सों में भी स्थिति इससे अच्छी नहीं थी। आज़ादी के पहले सहकारी संस्थाओं के माध्यम से चकबंदी का काम किया जा सकता था। यह प्रक्रिया पंजाब में 1921 में शुरू हुई लेकिन दूसरे राज्यों में इसे लागू नहीं किया गया हालांकि सेन्ट्रल प्रोविन्स (आज का मध्यप्रदेश) और बम्बई में क्रमशः 1928, 1929 में इससे संबंधित कानून था। परिणामतः भूमि चकबंदी की शुरुआत व्यवस्थित ढंग से प्रथम पंचवर्षीय योजना से ही हो सकी।

इस योजना में निम्नलिखित कदम उठाए गये :
- भूमि की गुणवत्ता निर्धारित करने के लिए सर्वेक्षण हुआ
- भूमि की गुणवत्ता निर्धारित करने के लिए इसका वर्गीकरण किया गया
- खेत मालिकों के जोतों का पुनः निर्धारण
- भूमि स्वामित्व को लेकर होने वाले विवादों का निपटारा
- ऐसी भूमि का निर्धारण जो खेती योग्य न हो।

इसका अनउपजाऊ भूमि के रूप में वर्गीकरण करना जैसे वन, भूमि, घास के मैदान, फलों के बाग, तालाब, झील, निवास स्थान आदि।

इस सर्वेक्षण के बाद चकबंदी की प्रक्रिया शुरू हुई जिसमें जोतों के विभाजन को कम करने का प्रयास किया गया ताकि किसान वैज्ञानिक ढंग से खेती कर सकें। इसके अतिरिक्त चकबंदी के माध्यम से किसान अपने खेतों की अच्छी देखभाल भी कर सकता था।

> प्रथम पंचवर्षीय योजना के अंतर्गत बंबई में 21 लाख एकड़, मध्यप्रदेश में 29 लाख एकड़, पंजाब में 48 लाख एकड़, उत्तर प्रदेश में 44 लाख एकड़, पेप्सू में जो अब पंजाब का हिस्सा है, 13 लाख एकड़ भूमि की चकबन्दी की गयी।

1957 के अंत तक लगभग 150 लाख एकड़ की चकबंदी हो चुकी थी और 120 लाख एकड़ की चकबंदी का कार्य चल रहा था। यह प्रक्रिया आज तक चल रही है। भूमि का उपविभाजन आज भी हो रहा है और चकबंदी के माध्यम से इसे रोकने का प्रयास किया जा रहा है। कुछ राज्यों ने ऐसे कानून पास किये हैं जिनके तहत एक सीमा से कम आकार की भूमि का हस्तांतरण नहीं किया जा सकता है लेकिन भूमि पर पारंपरिक अधिकार संबंधी कानून और भूमि पर जनसंख्या के बढ़ रहे दबाव के कारण जोतों के उपविभाजन को

रोकना बहुत ही कठिन कार्य सिद्ध हो रहा है। ऐसा लगता है कि भूमि सुधार की यह प्रक्रिया निरंतर चलती रहेगी।

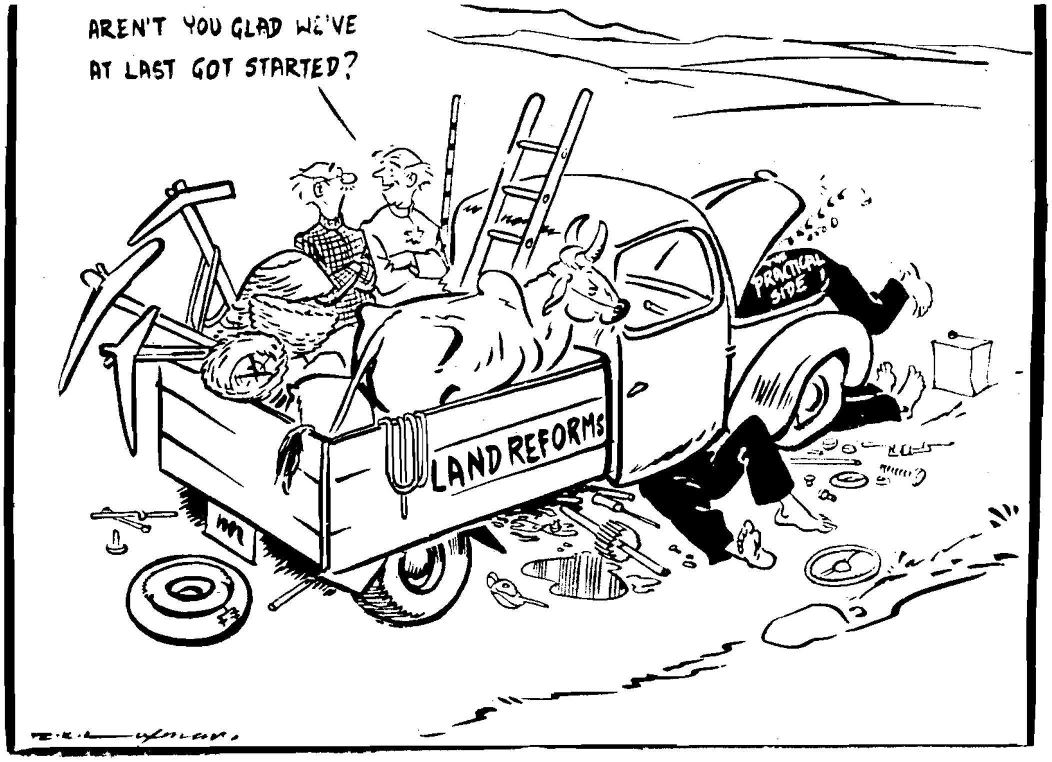


**चित्र 4 भूमि सुधारों पर टाइम्स ऑफ़ इन्डिया में आर. के. लक्ष्मण का कार्टून 14 जनवरी, 1959**

## 39.5 भूमि सुधारों के सामाजिक परिणाम

भूमि सुधारों के लिए अपनाये गये जिन उपायों का अध्ययन अब तक आपने किया, उनसे ग्रामीण जीवन की सामाजिक और आर्थिक स्थिति में भारी परिवर्तन हुए। आर्थिक दृष्टि से कृषि की उत्पादकता हरित क्रांति के दौरान तेज़ी से बढ़ी। किसानों का नया वर्ग जो पहले भूमिपतियों का काश्तकार हुआ करता था, उसको इस भूमि सुधार और योजना आयोग द्वारा लागू किए गए कृषि संबंधी विकास कार्यक्रमों से सबसे ज़्यादा फ़ायदा हुआ। परंपरागत रूप से खेती के पुराने तरीके उनके पास थे और वे कड़ी मेहनत करने में सक्षम थे। इसके साथ ही उन्होंने आधुनिक तकनीकों का इस्तेमाल किया, जिससे उत्पादकता में वृद्धि हुई। 50-60 के दशकों में जहाँ देश में खाद्यानों की कमी थी वहीं 70-80 के दशकों में देश खाद्यानों के मामले में आत्मनिर्भर हो पाया था। हमारे देश में योजनाबद्ध विकास के तहत भूमि सुधार के कार्यक्रम महत्वपूर्ण उपलब्धि थे। भूमि सुधारों के अतिरिक्त सामुदायिक विकास प्रोजेक्टों, सिंचाई साधनों और उर्वरक के उपयोग में वृद्धि, आधुनिकतम बीजों का उपयोग, आदि ने हरित क्रांति को सफल बनाने में महत्वपूर्ण भूमिका अदा की। इसने किसानों के बड़े वर्गों को समृद्ध बनाया, ऐसा भूमिपतियों के ज़माने में नहीं हो सकता था। इस प्रकार गाँवों की आर्थिक गतिविधि का आधार विस्तृत हो गया। सामाजिक दृष्टि से लोगों की राजनीतिक हिस्सेदारी भी बढ़ी और इस प्रकार लोकतांत्रिक मूल्यों का फैलाव गाँवों तक हुआ।

लेकिन हरित क्रांति योजना के तहत कृषि समृद्धि और भूमि सुधार के कुछ निषेधात्मक परिणाम भी सामने आए।

- किसानों और भूमिहीन मज़दूरों के बीच की आर्थिक असमानताएँ बढ़ीं क्योंकि भूमिहीन मज़दूरों की तुलना में किसान अधिक समृद्ध हुए।
- देश के विभिन्न गाँवों में सामाजिक तनाव पैदा हुए क्योंकि समृद्ध किसान गाँवों के गरीबों का शोषण करने लगे।
- आधुनिक कृषि, नई तकनीकों जैसे सिंचाई, आधुनिक बीज, रासायनिक खाद और

कीटनाशक दवाओं पर आधारित थी, इसलिए छोटे और सीमान्त किसान अपनी गरीबी और संसाधनों की कमी के कारण इनका इस्तेमाल नहीं कर सकते थे। इससे सामाजिक असमानता और बढ़ी।

- छोटे और सीमान्त किसान पट्टे पर बड़े किसानों को घाटा सहकर भी अपनी ज़मीन जोतने के लिए देने लगे।

कई जगहों पर बटाईदारी और मौखिक काश्तकारी (बिना लिखा पढ़ी के दी गई काश्तकारी) एक बार फिर उभर कर सामने आयी। छोटे और सीमान्त किसानों की कमज़ोर आर्थिक स्थिति के कारण खेती में फिर से कम पूंजी लगने लगी। इस समस्या का समाधान खेती के सहकारी तरीके से हो सकता था लेकिन कुछ सामाजिक कारणों से जैसे जाति और वर्गों में विभाजन आदि के कारण भारत में ऐसा संभव न हो सका। गाँवों में जनसंख्या के बढ़ते हुए दबाव और रोज़गार के अभाव के कारण यह स्थिति और भी विकट हो गयी।

इन समस्याओं के समाधान के लिए कई कदम उठाने पड़ेंगे। कृषि को उद्योग के रूप में परिणत करना होगा ताकि यह रोज़गार प्रदान कर सके। जहां कहीं भी संभव हो स्वेच्छा के आधार पर सहकारी खेती को बढ़ावा दिया जाये और इस व्यवस्था को पूर्ण प्रशासनिक और आर्थिक समर्थन प्रदान किया जाये। भूमि सुधारों में जो कमी रह गयी है उसे सख़्त प्रशासनिक तरीकों से दूर करना होगा। अन्तिम रूप से यह कहना संगत होगा कि औद्योगिक और कृषि नीति में पूँजी संसाधनों, मूल्य निर्धारण, खाद्यानों को बाज़ार में बेचने आदि से संबंधित एक विवेकपूर्ण न्यायोचित संबंध का आधार बनाने का प्रयत्न किया जाना चाहिए। इसके बाद ही गाँवों में रहने वाले लोग ख़ुशहाल हो सकेंगे क्योंकि उनका एकमात्र आधार कृषि ही है।

**बोध प्रश्न 2**

1) निम्नलिखित वक्तव्यों को पढ़िए और सही (✓) और गलत (X) का निशान लगाइये।
   i) भारत सरकार द्वारा अपनाये गयें उपायों का उद्देश्य बिचौलिये वर्ग से किसानों को मुक्त कराना था। ( )
   ii) काश्तकारी सुधारों से भारतीय समाज की आर्थिक और सामाजिक असमानता समाप्त हो गयी। ( )
   iii) भूमि हदबंदी के पीछे उद्देश्य यह था कि अधिशेष भूमि को प्राप्त कर उन्हें ग्रामीण समाज के भूमिहीन वर्गों के बीच बाँट दिया जाये। ( )
   iv) खेतों की चकबन्दी का काम सबसे पहले पंजाब में शुरू हुआ। ( )

2) आज़ादी के बाद लागू किये गये भूमि सुधारों के सामाजिक परिणामों का उल्लेख करें। (उत्तर दस पंक्तियों में दीजिए।)

..........................................................................................................
..........................................................................................................
..........................................................................................................
..........................................................................................................
..........................................................................................................
..........................................................................................................
..........................................................................................................
..........................................................................................................
..........................................................................................................
..........................................................................................................

## 39.6 सारांश

इस इकाई में यह कोशिश की गयी है कि आज़ादी के पहले और बाद में हुए कृषि सुधारों से आप परिचित हो जायें। आज़ादी के समय भारतीय कृषि की दशा दयनीय थी। इसकी निम्न कमियाँ थीं।

- विकास की गति अत्यंत धीमी थी।
- कम उत्पादकता
- शोषणात्मक काश्तकारी व्यवस्था
- निवेश और विस्तार की कम से कम गुंजाइश
- बिचौलियों (ज़मींदारों, जागीरदारों और महाजनों) का वर्चस्व, जिनकी रुचि अल्पावधि हितों में थी।

इस व्यवस्था में सबसे ज़्यादा हानि खेतिहरों को हुई। खुद कृषि को इससे काफी हानि पहुंची। यह औपनिवेशिक शासन का एक अभिशाप था।

स्वतंत्रता के बाद भारतीय सरकार द्वारा दुहरी नीति अपनायी गयी।

- भारतीय कृषि की उन बुराइयों को समाप्त करने की कोशिश की गयी, जो उसे दीमक की तरह चाट रही थीं। इस प्रक्रिया में पुरानी भूमि व्यवस्थाओं और बिचौलियों के वर्चस्व को समाप्त कर दिया गया।
- दूसरी तरफ भारतीय कृषि के विकास और विस्तार के लिए नये सिरे से प्रयास प्रारंभ किया गया। ऐसा कृषि को योजनाबद्ध आर्थिक विकास का अंग बनाकर ही किया जा सकता था। इस व्यवस्था के तहत कई सुधारों के कई उपाय अपनाये गये, मसलन भूमि की हदबन्दी, चकबन्दी आदि।

इन सुधारों का परिणाम काफी प्रभावकारी सिद्ध हुआ। इससे कृषि में काफी बदलाव आया और इसके विकास की गति तीव्र हुई। इन सकारात्मक इच्छुक परिवर्तनों के बावजूद कुछ नकारात्मक परिवर्तन भी सामने आये। इनका वर्णन भाग 40.5 में हुआ है। अन्त में यह कहा जा सकता है कि भारत में हुए भूमि सुधारों का प्रमुख योगदान यह है कि इसने भारतीय कृषि को एक दिशा प्रदान की और विकास का मार्ग प्रशस्त किया।

## 39.7 शब्दावली

**शुष्क भूमि** : ऐसी भूमि जहां सिंचाई सुविधाएं न हों।
**हदबंदी** : एक कानूनी पाबंदी, जिसके अनुसार कोई व्यक्ति एक सीमा तक ही ज़मीन रख सकता है।
**पंचवर्षीय योजना** : 1951-52 में भारत सरकार द्वारा योजनाबद्ध आर्थिक विकास का एक प्रयास (प्रत्येक योजना के लिए पाँच वर्षों का समय निर्धारित हुआ और उसी के अनुसार लक्ष्यों का निर्धारण हुआ)। योजनाबद्ध विकास की यह पद्धति सोवियत संघ के प्रयोगों पर आधारित थी।
**काश्तकारी सुधार** : काश्तकारों को सुरक्षा और संरक्षण देने संबंधी सुधार।

## 39.8 बोध प्रश्नों के उत्तर

**बोध प्रश्न 1**

1) देखें भाग 39.3

2) बहस भूमि सुधार के दो प्रतिरूपों पर केंद्रित थी सहकारी खेती और व्यक्तिगत खेती। सहकारी खेती की धारणा समुदाय वादी दृष्टिकोण और व्यक्तिगत खेती की धारणा पूंजीवादी दृष्टिकोण का प्रतिनिधित्व करती है। देखें भाग 39.2
3) i) × ii) ✓ iii) ✓ iv) ×

**बोध प्रश्न 2**

1) i) ✓ ii) × iii) ✓ iv) ✓
2) अपने उत्तर में सकारात्मक पहलुओं (ग्रामीण समृद्धि, आर्थिक गतिविधियों का प्रसार, ग्रामीण क्षेत्रों की बढ़ती राजनीतिक हिस्सेदारी और व्यापक लोकतंत्रीकरण) और नकारात्मक परिणामों (आर्थिक असमानता, गांवों में बढ़ता सामाजिक तनाव आदि) का उल्लेख करें।

# इकाई 40 विदेश नीति–1947-1964

## इकाई की रूपरेखा


40.0 उद्देश्य
40.1 प्रस्तावना
40.2 भारतीय विदेश नीति के सिद्धांत
40.3 भारतीय विदेश नीति का विकास
40.4 गुट-निरपेक्ष आन्दोलन
40.5 निरस्त्रीकरण
40.6 पाकिस्तान
 40.6.1 कश्मीर
 40.6.2 सिंधु नदी जल विवाद
 40.6.3 पाकिस्तान को सैन्य सहायता
40.7 चीन
 40.7.1 तिब्बत विवाद
 40.7.2 भारत-चीन सीमा पर तनाव
 40.7.3 1962 का चीनी आक्रमण
40.8 दक्षिण और दक्षिण पूर्व एशिया
40.9 पश्चिमी एशिया
40.10 बड़ी शक्तियाँ और अन्य प्रमुख शक्तियाँ
 40.10.1 संयुक्त राज्य अमरीका
 40.10.2 सोवियत संघ
 40.10.3 ब्रिटेन
 40.10.4 फ्रांस
 40.10.5 जापान
 40.10.6 आस्ट्रेलिया
40.11 अफ्रीकी देश
40.12 सारांश
40.13 शब्दावली
40.14 बोध प्रश्नों के उत्तर


## 40.0 उद्देश्य

इस इकाई को पढ़ने के बाद आप :

- भारतीय विदेश नीति के आधारभूत सिद्धांतों को जान सकेंगे,
- भारतीय विदेश नीति के प्रमुख मुद्दों को पहचान सकेंगे,
- पाकिस्तान और चीन के साथ भारत के संबंध का विश्लेषण कर सकेंगे,
- अफ्रीका और एशिया के देशों के साथ भारत के संबंधों की व्याख्या कर सकेंगे, और
- बड़ी शक्तियों और अन्य प्रमुख शक्तियों के प्रति भारतीय दृष्टिकोण को समझ सकेंगे।

## 40.1 प्रस्तावना

इस इकाई में 1947 से लेकर 1964 तक की भारतीय विदेश नीति की चर्चा की गई है। चर्चा की शुरूआत भारतीय विदेश नीति के आधारभूत सिद्धांतों से की गयी है और 1947 के बाद की भारतीय विदेश नीति पर प्रकाश डाला गया है। इस इकाई में गुट-निरपेक्ष आंदोलन और भारत द्वारा निरस्त्रीकरण के जरिए, शान्ति कायम करने के प्रयासों की भी

चर्चा की गयी है। इन मुद्दों के अतिरिक्त भारत-पाक और भारत-चीन संबंधों पर भी प्रकाश डाला गया है। साथ-ही-साथ विश्व के अन्य देशों के साथ भारत के संबंधों पर टिप्पणी की गयी है।

## 40.2 भारतीय विदेश नीति के सिद्धांत

भारतीय विदेश नीति के आधारभूत सिद्धांतों की व्याख्या इस प्रकार की जा सकती है :

i) भारत कभी भी द्विपक्षीय या बहुपक्षीय सैन्य संधि के पक्ष में नहीं रहा है। विश्व की समस्याओं को सुलझाने में सैन्य शक्ति की भूमिका का भारत ने हमेशा विरोध किया है। शीत युद्ध शुरू होने के बाद अमरीका और सोवियत संघ में अस्त्र बढ़ाने की होड़ लग गयी। नये-नये आण्विक अस्त्र तैयार हुए और नयी-नयी सैन्य संधियाँ कायम की गयीं। भारत का विचार था कि ऐसा करने से देशों के बीच तनाव बढ़ेगा और इसकी परिणति सशस्त्र संघर्ष में होगी। अतः भारत ने शांति कायम करने की दृष्टि से अपने को हर तरह के गुटों से अलग रखा।

ii) भारतीय विदेश नीति अपने आप में स्वतंत्र है, भारत दो बड़ी शक्तियों में से किसी के गुट में शामिल नहीं है। पर ऐसा मानना सही नहीं कि भारत की विदेश नीति "तटस्थ" है। वस्तुतः अन्तर्राष्ट्रीय मुद्दों पर भारत कभी "तटस्थ" नहीं रहा बल्कि इसके गुण और दोष के आधार पर विभिन्न अन्तर्राष्ट्रीय मंचों से अपनी सम्मति स्पष्ट रूप से ज़ाहिर करता रहा है। भारत की इस नीति से कुछ बड़ी शक्तियां खुश नहीं थीं लेकिन तीसरे विश्व के कई देशों ने भारत की इस नीति की प्रशंसा की।

iii) भारत ने सभी देशों से मित्रता बनाये रखने की कोशिश की। खास बात यह है कि भारत ने अमरीकी गुट (पूँजीवादी व्यवस्था) और सोवियत गुट (साम्यवादी व्यवस्था) के देशों से बिना किसी भेदभाव के मित्रता की। भारत ने कभी भी एक देश को दूसरे देश से लड़ाने की नीति पर अमल नहीं किया। भारत में सरकार का ढाँचा लोकतांत्रिक है। लेकिन विदेश नीति के मामले में भारत न पश्चिमी लोकतांत्रिक देशों से अधिक जुड़ा और न ही साम्यवादी देशों से इस कारण दूर हुआ।

iv) भारत बहुत दिनों तक ब्रिटेन का उपनिवेश रहा, अतः इसने स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद से ही उपनिवेशवाद विरोधी नीति का अनुगमन किया। विश्व के मानचित्र पर भारत के एक स्वतंत्र शक्ति के रूप में उभरने के साथ ही एशिया-अफ्रीका-लातिनी अमरीका के देशों में उपनिवेशों के स्वतंत्र होने का सिलसिला शुरू हुआ। भारत की आज़ादी के बाद श्रीलंका, बर्मा और इंडोनेशिया आज़ाद हुए। इसके बाद भारत ने विभिन्न अन्तर्राष्ट्रीय मंचों से उपनिवेशवाद के ख़िलाफ़ बोलकर अफ्रीकी देशों की स्वतंत्रता में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई।

v) भारत ने अपनी विदेश नीति के तहत नस्लवाद विरोधी नारा बुलंद किया। जैसा कि पहले बताया जा चुका है (इकाई 16 में) गांधी जी ने 19वीं शताब्दी के आरंभ में दक्षिण अफ्रीका में नस्लवाद के ख़िलाफ़ संघर्ष किया था। लेकिन मानव सभ्यता के लिए यह शर्मनाक बात है कि नस्लवाद अपने क्रूर रूप में आज भी दक्षिण अफ्रीका में मौजूद है। यह नस्लवाद विश्व मत और सभ्यता के सभी सिद्धांतों को नकारता हुआ आज भी वर्तमान है। भारत ने सबसे पहले 1946 में संयुक्त राष्ट्र संघ में यह मुद्दा उठाया था। उसके बाद आज तक भारत विश्वव्यापी नस्लवाद विरोधी आंदोलन में सक्रिय हिस्सा ले रहा है।

vi) भारत इस विचार का समर्थक रहा है कि अस्त्रों की होड़ और सैन्य संधियों को रोके बिना विश्व-शांति कायम करना असंभव है। भारत निरस्त्रीकरण को विश्वशांति की कुंजी मानता है। इसके अतिरिक्त निरस्त्रीकरण से अस्त्रों पर खर्च की जाने वाली विशाल राशि की बचत होगी और इस राशि का उपयोग ग़रीब देशों के विकास के लिए किया जा सकता है।

## 40.3 भारतीय विदेश नीति का विकास

स्वतंत्रता के आरंभिक वर्षों में कुछ लोग भारतीय विदेश नीति को "तटस्थ" मानते थे। क्योंकि भारत दोनों गुटों (पश्चिमी गुट और सोवियत गुट) से अलग था, लेकिन तटस्थता एक वैधिक अवधारणा है और इस दृष्टि से भारत कभी भी "तटस्थ" नहीं रहा। वस्तुतः इसने सभी महत्वपूर्ण अन्तर्राष्ट्रीय मुद्दों पर उनकी गुणवत्ता के आधार पर अपनी राय (सम्मति) प्रकट की है। अतः भारत की विदेश नीति को स्वतंत्र विदेश नीति कहना चाहिए न कि तटस्थ। 1955 की बाडुंग कांफ्रेंस के बाद "गुट निरपेक्ष" शब्द सामने आया और गुट-निरपेक्ष देशों की पहली कान्फ्रेंस 1961 में बेलग्रेड में हुई। पहली बार जब भारतीय विदेश नीति के सिद्धांत सामने आये, उस समय विश्व दो गुटों में बंटा हुआ था। संयुक्त राज्य अमरीका और सोवियत संघ इन दो गुटों का प्रतिनिधित्व कर रहे थे और इनके बीच विश्व पर प्रभाव जमाने के लिए प्रतिस्पर्धा चल रही थी। पचास और साठ के दशकों में भारत ने कई अन्तर्राष्ट्रीय मुद्दों पर अपनी अलग राय व्यक्त की। बहुत बार यह राय बड़ी शक्तियों को पसन्द नहीं आई।

जैसे-जैसे समय बीतता गया भारतीय विदेश नीति की प्रशंसा की जाने लगी। दो बड़ी शक्तियों के बीच तनाव में कमी आने पर भारतीय विदेश नीति का महत्व और भी बढ़ गया। दोनों देशों के बीच आण्विक और परम्परागत अस्त्रों की होड़ ने विश्व में एक नयी स्थिति उत्पन्न कर दी। शक्ति संतुलन में निम्नलिखित कारणों से आधारभूत परिवर्तन आया :

- चीन-सोवियत संघ टकराव,
- वियतनाम में अमरीकी हस्तक्षेप,
- फ्रांस का स्वतंत्र आण्विक क्षमता हासिल करने का निर्णय,
- चीन द्वारा आण्विक हथियारों का निर्माण।

इस प्रकार शक्ति संतुलन द्विध्रुवीय से बदल कर विश्व के बहुत से देशों में बंटकर बहुध्रुवीय हो गया। कुछ समय बाद भारत ने भी अपनी सैन्य शक्ति बढ़ा ली जिसे नज़रअंदाज़ नहीं किया जा सकता था। परिस्थितियों के बदलने के साथ भारतीय विदेश नीति में भी परिवर्तन आया पर इसने अपने आधारभूत सिद्धांतों को नहीं छोड़ा। भारतीय विदेश नीति बहुत कुछ इन बातों पर निर्भर थी :

- उत्तरी और पश्चिमी सीमाओं पर सुरक्षा की मांग,
- हिन्द महासागर क्षेत्र में होने वाले परिवर्तन से उत्पन्न चुनौतियाँ,
- विदेश से अनुदान और सहायता प्राप्त करने की ज़रूरत, और
- दूसरे देशों के साथ व्यापार का विकास।

## 40.4 गुट-निरपेक्ष आन्दोलन

गुट-निरपेक्ष आन्दोलन भारत के प्रयासों का परिणाम था। इस आन्दोलन ने अन्तर्राष्ट्रीय मसलों पर बड़ी शक्तियों की "गुट राजनीति" को चुनौती दी। इसके अतिरिक्त इससे उन देशों के बीच मैत्री संबंध स्थापित हुए, जो उपनिवेशवादी प्रभुत्व से स्वतंत्र होना चाहते थे। इस आन्दोलन का दूसरा लक्ष्य विश्व-शान्ति के लिए प्रयास करना था। 1961 की बैलग्रेड कांफ्रेंस में गुट-निरपेक्ष आंदोलन का स्वरूप स्पष्ट रूप से सामने आया।

गुट-निरपेक्ष आन्दोलन के पांच पथ-प्रदर्शक नेता थे :

- यूगोस्लाविया के राष्ट्रपति टीटो
- मिश्र के राष्ट्रपति नासिर
- घाना के राष्ट्रपति नकरूमाह (Nkrumah)
- इन्डोनेशिया के राष्ट्रपति सुकार्नो
- भारत के प्रधानमंत्री नेहरू

चित्र 5 बेलग्रेड कांफ्रेंस (1961)

पहली गुट-निरपेक्ष कांफ्रेंस की प्रारंभिक समिति ने गुट-निरपेक्ष देशों के लिए निम्नलिखित मानक सूत्रबद्ध किए :

i) इन देशों को सहअस्तित्व और गुट निरपेक्षता के आधार पर स्वतंत्र नीति अपनानी चाहिए या इस नीति के पक्ष में रहना चाहिए।
ii) इन्हें हमेशा राष्ट्रीय स्वतंत्रता का समर्थन करना चाहिए।
iii) इन्हें बहुपक्षीय सैन्य संधियों में हिस्सा नहीं लेना चाहिए और बड़ी शक्तियों के आपसी टकराव के साथ नहीं जुड़ना चाहिए।
iv) अगर इन्होंने दूसरे देश की सेना को अपने यहाँ अड्डा बनाने की छूट दी है तो यह रियायत बड़ी शक्तियों के संघर्ष के संदर्भ में नहीं दी जानी चाहिए।
v) अगर ये किसी द्विपक्षीय या क्षेत्रीय रक्षा समझौता के सदस्य हैं तो यह समझौता बड़ी शक्तियों की राजनीति के संदर्भ में नहीं होना चाहिए।

साधारणतः गुट-निरपेक्ष कांफ्रेंस हर तीसरे साल होती है। इसकी दूसरी बैठक 1964 में काहिरा में हुई।

## 40.5 निरस्त्रीकरण

अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर भारत ने हमेशा निरस्त्रीकरण के लिए काम किया। संयुक्त राष्ट्र के घोषणा पत्र की तैयारी की प्रक्रिया में भारत गहरे रूप से जुड़ा हुआ था। अन्तर्राष्ट्रीय निरस्त्रीकरण के लक्ष्य को हासिल करने के लिए घोषणा पत्र के अनुच्छेद ग्यारह में यह कहा गया कि आम सभा अन्तर्राष्ट्रीय शांति और सुरक्षा कायम करने के लिए सहयोग के सिद्धांत को मद्देनज़र रख सकती है। इसके अन्तर्गत निरस्त्रीकरण और शस्त्रीकरण को नियंत्रित करने से संबंधित बातें भी शामिल की जा सकती हैं और सदस्यों या सुरक्षा परिषद या दोनों से ही ऐसे सिद्धांतों की सिफ़ारिश कर सकता है। भारत ने 1947 में गठित परमाणु ऊर्जा आयोग का समर्थन किया और 1962 में अठारह राष्ट्रों की निरस्त्रीकरण कान्फ्रेंस आयोजित की। संयुक्त राज्य अमरीका और सोवियत संघ सम्पूर्ण या आंशिक निरस्त्रीकरण की प्रक्रिया पर असहमत थे इसलिए यह मुद्दा सुलझ नहीं सका है। भारत आण्विक जमाव का कट्टर

आलोचक रहा है और इसके संयुक्त राष्ट्र तथा अन्य विश्व मंचों से इसके ख़िलाफ़ अपनी आवाज़ बुलंद की।

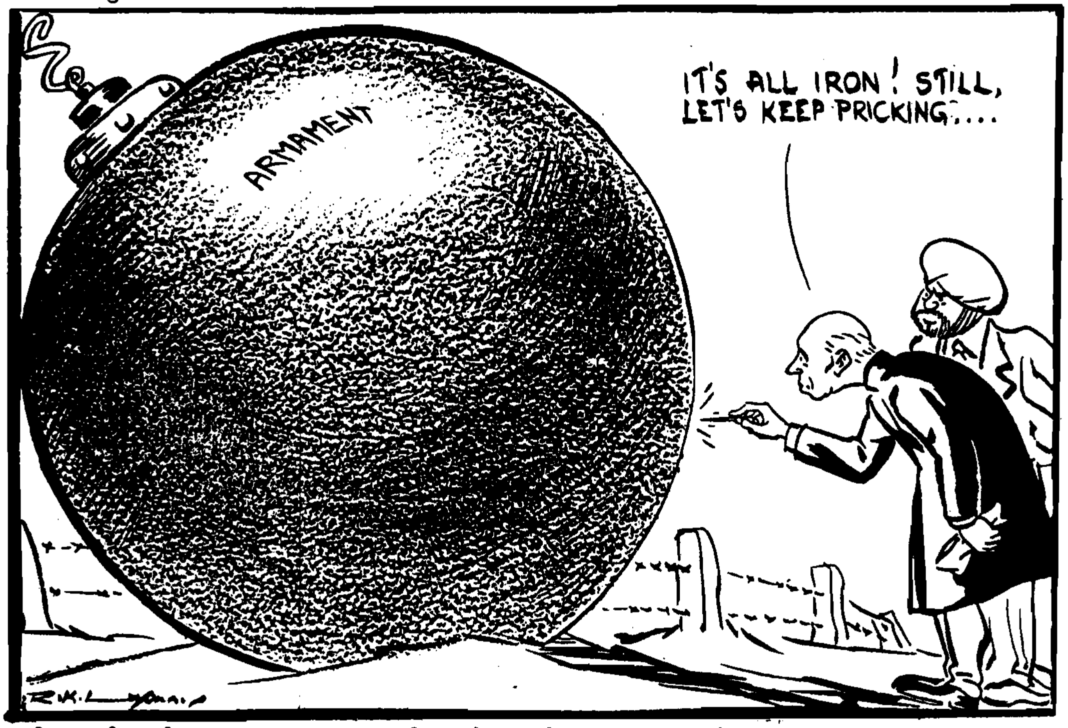


चित्र 6 निरस्त्रीकरण पर टाइम्स ऑफ़ इन्डिया में आर.के. लक्ष्मण का कार्टून (25 नवम्बर, 1950)

**बोध प्रश्न 1**

1) भारतीय विदेश नीति के तीन महत्वपूर्ण सिद्धांतों का उल्लेख पाँच पंक्तियों में कीजिए।

..........................................................................................................

..........................................................................................................

..........................................................................................................

..........................................................................................................

..........................................................................................................

2) गुट-निरपेक्ष से आप क्या समझते हैं? गुट निरपेक्ष देशों को कौन-कौन से सिद्धान्तों का पालन करना पड़ता है (10 पंक्तियों में उत्तर दीजिए)।

..........................................................................................................

..........................................................................................................

..........................................................................................................

..........................................................................................................

..........................................................................................................

..........................................................................................................

..........................................................................................................

..........................................................................................................

..........................................................................................................

..........................................................................................................

3) सही और गलत उत्तर के सामने क्रमशः (✓) और (✗) का निशान लगायें।

i) भारत ने सैन्य संधियों की रचना का विरोध नहीं किया। ( )

ii) अन्तर्राष्ट्रीय मुद्दों पर भारत हमेशा तटस्थ रहा। ( )

iii) भारतीय विदेश नीति ने विश्व शांति पर सबसे ज़्यादा ज़ोर दिया। ( )

iv) अन्तर्राष्ट्रीय मसलों पर दो बड़ी शक्तियों (गुट-राजनीति) द्वारा उत्पन्न तनाव की स्थिति को दूर करने के लिए गुट निरपेक्ष आन्दोलन एक सामूहिक प्रयास के रूप में सामने आया। ( )

## 40.6 पाकिस्तान

पाकिस्तान भारत का प्रमुख विरोधी रहा है। पाकिस्तान और भारत के बीच अनबन का कारण पाकिस्तान और भारत के विभाजन के तरीके में निहित है। 1947 के विभाजन से दोनों देशों के सामने कुछ नयी समस्यायें खड़ी हो गयीं। दोनों देश अस्त्रों की होड़ में लग गये, जिसका परिणाम हुआ भारत-पाक युद्ध। इसके कारण दोनों देशों के विकास में बाधा पड़ी, क्योंकि अधिकांश पूँजी युद्ध में खर्च हो गयी। आरंभ से ही पाकिस्तान सभी क्षेत्रों में भारत की बराबरी करने की कोशिश कर रहा था। उसकी दूसरी समस्या अपनी अलग पहचान बनाने की भी थी। विभाजन बनावटी और अप्राकृतिक था, 1947 तक यह हिस्सा (जो बाद में पाकिस्तान बना) भूगोल, इतिहास, परम्परा और संस्कृति की दृष्टि से भारत का एक अंग था। इसलिए पाकिस्तान के लिए यह ज़रूरी हो गया कि वह अपनी स्वतंत्र पहचान स्थापित करे। इसलिए सभी अन्तर्राष्ट्रीय मंचों पर पाकिस्तान ने भारत से होड़ शुरू कर दी और प्रमुखता प्राप्त करने के लिए सभी प्रकार के हथकंडों का उपयोग करने लगा। उदाहरण के लिए, पाकिस्तान ने पश्चिमी एशिया के मुस्लिम राज्यों से धार्मिक संबंध स्थापित करने शुरू किये। लेकिन इसके बावजूद पश्चिमी एशियाई देशों के साथ भारत के संबंध बहुत सौहार्दपूर्ण रहे।

पाकिस्तान की प्रतिरक्षा की दृष्टि में भारत का आकार, जनसंख्या, संसाधन और कार्यक्षमताएं गंभीर चुनौती बने हुए थे। इसका परिणाम यह हुआ कि पाकिस्तान अपनी सैन्य शक्ति बढ़ाने में विशेष रूप से संलग्न रहा। इस उद्देश्य से उसने विश्व के अनेक देशों से सैनिक सहायता मांगी। पाकिस्तान पश्चिमी गुट में शामिल हो गया और इस तरह वह भी शीत युद्ध का भागीदार बन गया। भारत ने भी प्रतिरक्षा के लिए अपनी सैन्य शक्ति को मज़बूत बनाया। हालांकि भारत ने हमेशा एक साथ बैठकर विभिन्न मुद्दों को सुलझाने की नीति की वकालत की।

### 40.6.1 कश्मीर

कश्मीर, भारत और पाकिस्तान के बीच एक अहम् समस्या बना रहा। भारत ने 26 अक्तूबर, 1947 को कश्मीर को अपना हिस्सा बना लिया, लेकिन पाकिस्तान इसे मानने के लिए तैयार नहीं था और उसने जनजातीय कबीलों की आड़ में छुपकर आक्रमण किया। भारत ने पाकिस्तानी आक्रमणकारियों को कश्मीर से खदेड़ दिया। इसमें शेख अब्दुल्लाह के नेतृत्व में जन-समुदाय ने महत्वपूर्ण भूमिका अदा की। दुर्भाग्य की बात यह है कि भारत ने इस काम को पूरा किये बगैर संयुक्त राष्ट्र संघ की सुरक्षा परिषद में शिकायत दायर कर दी। यह मामला जनवरी, 1948 में दायर किया गया, फलतः 1 जनवरी, 1949 को युद्ध-विराम की घोषणा की गई। 1947 में भारत ने अन्तर्राष्ट्रीय निरीक्षण के अन्तर्गत कश्मीर में जनमत संग्रह कराने का प्रस्ताव रखा लेकिन 1955 में कुछ बदली हुई परिस्थितियों के कारण, इसे वापस ले लिया गया। हालांकि कश्मीर के मसले पर संयुक्त राष्ट्र और अन्य अन्तर्राष्ट्रीय मंचों पर कूटनीतिक लड़ाई चलती रही, पर युद्ध की नौबत 1964 तक नहीं आई। लेकिन कश्मीर की समस्या का कोई समाधान नहीं निकला और दोनों देशों के संबंधों पर इसका प्रतिकूल असर पड़ा। वस्तुतः अब दोनों देश अपनी सीमा की रक्षा करने में तत्पर हो गये और इनमें से कोई भी बलपूर्वक इसे बदलने की इच्छा ज़ाहिर नहीं कर रहा था।

### 40.6.2 सिन्धु नदी जल विवाद

विभाजन ने अनेक समस्याएं उत्पन्न कीं जिनमें एक है सिन्धु नदी जल का बटवारा। दोनों

देश सिन्धु और उसकी सहायक नदियों के जल का ज़्यादा से ज़्यादा उपयोग करना चाहते थे। भारत और पाकिस्तान खाद्यान में आत्मनिर्भर होना चाहते थे, अतः वे सिंधु के जल का अधिक से अधिक उपयोग करना चाहते थे। विभाजन के बाद सिन्धु नदी से सिंचित होने वाले 280 लाख एकड़ क्षेत्र में से 50 लाख एकड़ भूमि भारत के पास रह गयी। अधिकांश पश्चिमी नदियाँ समुद्र में मिल जाती थीं। जबकि पाकिस्तानी नहरें पूर्वी नदियों पर आश्रित थीं। इन नदियों का पानी पूर्वी पंजाब से होकर पाकिस्तान में जाता था। भारत का कृषि विकास भी रावी, व्यास और सतलज जैसी पूर्वी नदियों के जल पर आश्रित था। पाकिस्तान की नहरों का वह भाग, जो नदी से जुड़ा था, भारतीय भूभाग में पड़ता था। तनाव का कारण यही था। पाकिस्तान में बाढ़ आने या अकाल पड़ने पर पाकिस्तानी शासक भारत को दोषी ठहराते थे। उन्होंने पानी की समस्या के लिए भारत को दोषी ठहराया और न्यायसंगत बटवारे की मांग की। दूसरी ओर भारत इस समस्या को सुलझाने के लिए तत्पर था। विश्व बैंक की देख-रेख में 17 अप्रैल, 1959 को वाशिंगटन में नहर के जल के बटवारे से संबंधित अंतरिम समझौता हुआ। इसके बाद दोनों देशों के बीच व्यापक समझौतों का एक सिलसिला चला। 19 सितम्बर, 1969 को कराची में नहर जल संधि पर हस्ताक्षर किए गये।

### 40.6.3 पाकिस्तान को सैन्य सहायता

पाकिस्तान ने संयुक्त राज्य अमरीका के साथ परस्पर प्रतिरक्षा सहयोग समझौता किया और सितम्बर, 1954 में वह दक्षिण पूर्व एशिया संधि संगठन (South-East Asia Treaty Organisation SEATO) का सदस्य बन गया। 1955 में पाकिस्तान केन्द्रीय संधि संगठन (बगदाद समझौता) का सदस्य बन गया। 1959 में पाकिस्तान ने संयुक्त राज्य अमरीका के साथ सहयोग का द्विपक्षीय समझौता किया जिससे अमरीका ने पाकिस्तान को बड़े पैमाने पर आर्थिक और सैनिक सहायता देना शुरू किया। इसके कारण पाकिस्तान की सैनिक शक्ति बढ़ गयी। इससे भारत को अपनी सुरक्षा का खतरा पैदा हो गया। इसके बावजूद भारत ने किसी प्रमुख शक्ति के साथ गठबंधन नहीं किया।

## 40.7 चीन

स्वतंत्रता के बाद भारत ने सबसे पहले चीन से राजनयिक (Diplomatic) संबंध स्थापित किये। उस समय चीन में च्यांग काई शेक की राष्ट्रीय सरकार का शासन था। 1949 में साम्यवादियों ने राष्ट्रीय सरकार को उखाड़ फेंका और माओत्सेतुंग के नेतृत्व में नयी सरकार का गठन हुआ। भारत ने 30 दिसम्बर, 1949 को इस सरकार को मान्यता दे दी। इसके बाद भारत ने लगातार यह कोशिश की कि चीनी जनतांत्रिक गणराज्य संयुक्त राष्ट्र संघ में शामिल कर लिया जाए। आज़ादी के बाद से ही भारत ने चीन के साथ मित्रता का संबंध रखा लेकिन इसका परिणाम बहुत ही निराशाजनक रहा। भारत-चीन संबंध के तनाव को समझने के क्रम में तिब्बत की गतिविधियों, सीमा विवादों और 1962 के चीनी आक्रमण से संबंधित विभिन्न पहलुओं को जानना आवश्यक है।

### 40.7.1 तिब्बत विवाद

1950 में चीन की जन मुक्ति सेना (Chinese People's Liberation Army) तिब्बत में प्रवेश कर गयी और इसे अपने अधीन कर लिया। भारत को इससे गहरा धक्का लगा। तिब्बत क्षेत्र में 2,000 मील की सीमा परम्परागत रूप से भारत के अधीन थी। भारत को यह अधिकार अंग्रेज़ शासन से प्राप्त हुआ था। इसके बावजूद भारत ने चीन से लड़ाई नहीं की और मित्रता का संबंध बनाये रखा। 1954 में भारत ने चीन से समझौता करके तिब्बत पर चीन के अधिकार को मान लिया। इस संधि में पाँच सिद्धान्त शामिल थे। अतः इसे पंचशील भी कहा जाता है। ये भारत और चीन के संबंधों के निर्देशक सिद्धान्त बने। ये पांच सिद्धान्त थे :

- एक-दूसरे की क्षेत्रीय अखंडता और संप्रभुता का सम्मान,

- एक-दूसरे पर आक्रमण नहीं करना,
- एक-दूसरे के मामले में हस्तक्षेप नहीं करना,
- समानता और आपसी हित, और
- शांतिपूर्ण सह-अस्तित्व।

1954 की संधि के तहत भारत ने चीन को नयी दिल्ली, कलकत्ता और कलिंगपोंग में अपने वाणिज्यिक एजेंसियों की स्थापना की छूट दी। इसके जवाब में चीन ने भारत को तिब्बत में व्यापार केन्द्र स्थापित करने की इजाज़त दी।

चित्र 7 नेहरू तथा चीन के प्रधानमंत्री चाऊ-एन-लाई

1959 में तिब्बत में एक जन-विद्रोह हुआ जिसे चीन ने शीघ्रता से दबा दिया। इसके परिणामस्वरूप भारत में गहरा रोष प्रकट किया गया। जब दलाई लामा तिब्बत से भागकर भारत आये तब उन्हें राजनीतिक शरण दी गई। चीन को यह बात ज़रा भी पसन्द नहीं आई। 1959 में चीन ने लौंगणू पर कब्जा कर लिया और लद्दाख में भारतीय क्षेत्र का 12,000 वर्ग मील यू क्षेत्र हथिया लिया। इसके बाद दोनों देशों के बीच सीमा समस्या पर विरोध पत्र, स्मरण पत्र, ज्ञापन पत्र भेजे गये। इनमें दोनों देशों द्वारा अपने-अपने दावों की बात की गई।

## 40.7.2 भारत-चीन सीमा पर तनाव

तिब्बत में होने वाली गतिविधियों से प्रेरित होकर चीन ने भारतीय सीमा का उल्लंघन करना शुरू कर दिया। चीन ने भारतीय भूक्षेत्र के बड़े भाग पर अपना दावा किया जिसे भारत ने दृढ़तापूर्वक अस्वीकार कर दिया। अप्रैल, 1960 में चीन के प्रधानमंत्री चाउ

एन-लाई सीमा विवाद को सुलझाने के लिए नयी दिल्ली आये, लेकिन समस्या का कोई समाधान सामने नहीं आया। दोनों देशों के अधिकारियों ने एक-दूसरे के देश का दौरा किया। लेकिन कोई समझौता नहीं हो सका और सीमा पर छिटपुट आक्रमण होते रहे। भारतीय सीमा का उल्लंघन करके चीनी लगातार भारत पर दबाव डालते रहे।

## 40.7.3 1962 का चीनी आक्रमण

अक्तूबर, 1962 में चीन ने उत्तरी पूर्वी सीमान्त एजेंन्सी (NEFA नेफ़ा, आधुनिक अरुणाचल प्रदेश) और लद्दाख पर आक्रमण कर दिया। इस प्रकार चीन और भारत के बीच युद्ध शुरू हो गया जिसमें भारत की हार हुई। नवम्बर, 1962 में चीन ने वापस लौटने की एकतरफा घोषणा कर दी। युद्ध के दौरान पश्चिमी शक्तियों ने भारत को सैनिक सहायता दी। सोवियत संघ ने भी भारत का समर्थन किया। लेकिन चीन ने लद्दाख के बड़े भाग पर अपना अधिकार जमाये रखा। इससे चीन के अधिकार क्षेत्र में सिन कियांग और दक्षिणी चीन को जोड़ने वाला सामरिक महत्व का क्षेत्र कब्ज़े में आ गया।

इस धक्के के बाद भारतीय विदेश नीति की सार्थकता पर प्रश्नचिन्ह् लगाया जाने लगा। भारत ने ऐसा राजनयिक (Diplomatic) रास्ता खोजने की कोशिश की जिसमें चीन पर यह दबाव डाला जा सके कि वह भारत का हिस्सा लौटा दे। पर उसे सफलता नहीं मिली। 1962 में कोलम्बो में भारत-चीन विवाद के शांतिपूर्ण समझौते के लिए अफ्रीका और एशिया के देशों की एक बैठक हुई। इसमें इन्डोनेशिया, कम्बोदिया, बर्मा, संयुक्त अरब गणराज्य, घाना और श्रीलंका शामिल हुए। पर चीन के नकारात्मक रवैये के कारण कोई समाधान नहीं निकल सका। इस प्रकार सीमा विवाद को लेकर भारत और चीन के संबंध तनावपूर्ण बने रहे।

1962 के बाद चीन ने दक्षिण और दक्षिण पूर्व एशियाई क्षेत्र में अपनी स्थिति मज़बूत करनी शुरू कर दी। जहां भी संभव हुआ उसने भारतीय प्रभाव को रोकने की कोशिश की और पाकिस्तान तथा बर्मा के साथ गहरे संबंध स्थापित किये। दूसरी ओर, इन परिस्थितियों के दबाव में आकर भारत अपनी सैन्य शक्ति बढ़ाने के लिए मजबूर हुआ।

**बोध प्रश्न 2**

1) भारत और पाकिस्तान के तनावपूर्ण संबंधों के महत्वपूर्ण कारणों का उल्लेख दस पंक्तियों में कीजिये।

..........................................................................................................................

..........................................................................................................................

..........................................................................................................................

..........................................................................................................................

..........................................................................................................................

..........................................................................................................................

..........................................................................................................................

..........................................................................................................................

..........................................................................................................................

..........................................................................................................................

2) 1950 में चीन द्वारा तिब्बत पर कब्ज़ा करने पर भारत का क्या रवैया था (पाँच पंक्तियों में उत्तर दीजिये)।

..........................................................................................................................

..........................................................................................................................

..........................................................................................................................

..............................................................................................

..............................................................................................

3) निम्नलिखित में से कौन-से वक्तव्य सही (✓) और कौन-से गलत (X) हैं?
   i) सिंधु जल के बंटवारे को लेकर भारत और पाकिस्तान के बीच कोई तनाव नहीं था। ( )
   ii) पाकिस्तान दक्षिण पूर्वी एशियाई संधि संगठन का सदस्य बना। ( )
   iii) 1954 के बाद तिब्बत एक स्वतंत्र देश बन गया। ( )
   iv) 1962 के बाद भारत के प्रतिरक्षा बजट में भारी बढ़ोत्तरी हुई। ( )

## 40.8 दक्षिण और दक्षिण-पूर्व एशिया

भारत ने दक्षिण और दक्षिण-पूर्व एशियाई देशों से संबंध विकसित करने पर विशेष बल दिया और इस क्षेत्र के शांति और विकास में महत्वपूर्ण भूमिका अदा की। दो बड़ी शक्तियों के बीच चल रहे शीत युद्ध से भारत उस क्षेत्र में शांति दूत की भूमिका नहीं निभा सका। लेकिन भारत ने इन सभी देशों के साथ मित्रता का संबंध और सहयोग बनाये रखा। जेनेवा कांफ्रेंस में भारत को उस क्षेत्र का शांतिदूत बनाया गया और वह अन्तर्राष्ट्रीय नियंत्रण आयोग का अध्यक्ष बना। हमने यहां भारत और दक्षिण तथा दक्षिण-पूर्व एशियाई देशों के आपसी संबंधों की आपको जानकारी दी है।

**नेपाल :**
नेपाल हिमालय के दक्षिणी ढलान और भारत की उत्तरी सीमा के बीच बसा हुआ है। अतः भारतीय सुरक्षा की दृष्टि से नेपाल का सामरिक महत्व है। भारत इस तथ्य को समझ रहा था, अतः जुलाई, 1950 में उसने नेपाल के साथ एक संधि की। भारत ने नेपाल की संप्रभुता, क्षेत्रीय अंखडता और स्वतंत्रता को मान्यता दी। यह समझौता हुआ कि किसी भी प्रकार के मन-मुटाव, किसी समस्या पर हुई गलतफहमी से दोनों देश एक-दूसरे को अवगत करायेंगे।

**भूटान :**
भूटान हिमालय से घिरा और चीन की सीमा से लगा हुआ एक देश है। भूटान सामरिक रूप से भारत से जुड़ा हुआ है। अगस्त, 1949 में दोनों देशों ने चिरस्थायी शांति और मित्रता के लिए एक संधि की। भारत ने यह वादा किया कि वह भूटान के घरेलू मामलों में हस्तक्षेप नहीं करेगा। दूसरी तरफ भूटान विदेशी संबंधों के लिए भारत के परामर्श पर चलने के लिए तैयार हो गया।

**श्रीलंका :**
श्रीलंका हिन्द महासागर में स्थित है और भारत का पड़ोसी देश है। श्रीलंका में होने वाली किसी भी गतिविधि का भारत की सुरक्षा और शांति पर प्रभाव पड़ता है। श्रीलंका में मुख्य रूप से सिंहली और तमिल रहते हैं। इन दोनों समुदायों में लगातार संघर्ष और झगड़े होते रहते हैं। 1958 और उसके बाद के सिंहली-तमिल दंगे काफी गंभीर प्रकृति के थे। इन अवसरों पर भारतीयों ने संसद में और संसद के बाहर तमिलों के पक्ष में सहानुभूति व्यक्त की। हालांकि श्रीलंका की सरकार को यह बात अच्छी नहीं लगी। भारत श्रीलंका के जातीय झगड़ों को उनका आन्तरिक मामला मानता है। भारत का श्रीलंका से मित्रता का संबंध है और दोनों के बीच आर्थिक और व्यापारिक संबंध भी कायम है। श्रीलंका गुट-निरपेक्ष आन्दोलन का समर्थक है। यह किसी सैन्य सहबंध का सदस्य नहीं है।

**बर्मा :**
यू-नू के नेतृत्व में बर्मा के संबंध भारत से काफ़ी अच्छे रहे। दोनों देशों ने

अफ्रीकी-एशियाई भाईचारे की चेतना जगाने का काफी प्रयास किया। लेकिन यू-नू को हटाए जाने के बाद वहां तानाशाही कायम हो गयी। और 1962 के बाद बर्मा की विदेश नीति अपने आप में सिमट कर रह गयी। हालांकि, भारत ने बर्मा से एक पड़ोसी के नाते सौहार्द और मित्रता का संबंध बनाये रखा।

**थाईलैंड :**

थाईलैंड, जो अतीत में कभी भी उपनिवेश नहीं रहा था, सितम्बर, 1954 में दक्षिण-पूर्व एशियाई संधि संगठन (सीटो) का सदस्य बना। द.पू.ए.सं. (सीटो) का मुख्यालय बैंकॉक में स्थापित हुआ। शीत युद्ध में सोवियत गुट के खिलाफ थाईलैंड ने अमरीकी गुट का समर्थन किया। इसके बावजूद कुछ सांस्कृतिक साम्य और सामान्य आर्थिक हितों को मद्देनज़र रखते हुए भारत ने थाइलैंड से मित्रता का संबंध बनाए रखा। आर्थिक संबंध सुधारने के लिए दोनों देशों के बीच आपसी समझौते होते रहे।

**कम्बोदिया :**

प्रिंस नरोदम सिंहानुक की अध्यक्षता में कम्बोदिया का संबंध भारत से मित्रतापूर्ण रहा। इन दोनों देशों ने मिलकर शीत-युद्ध का हिस्सा बनने से अपने को बचाया। अन्तर्राष्ट्रीय नियंत्रण आयोग का अध्यक्ष होने के नाते भारत ने संतोषजनक ढंग से इस देश की भारत और चीन के साथ लगी सीमाओं का निर्धारण किया। 1955 के बांडुंग कान्फ्रेंस में कम्बोदिया और भारत ने सक्रिय हिस्सा लिया। नेहरू और सिंहानुक एक दूसरे के प्रशंसक थे और इससे दोनों देशों के सौहार्दपूर्ण संबंधों में वृद्धि हुई।

**लाओस :**

लाओस के साथ भी भारत का गहरा संबंध था। भारत ने लाओस की तटस्थता की नीति का समर्थन किया। लाओस ने गुट निरपेक्ष नीति का अनुकरण किया और दोनों देशों के विचार अंतर्राष्ट्रीय मुद्दों पर एक समान रहे।

**वियतनाम (उत्तर और दक्षिण) :**

भारत, वियतमिन्ह की समाप्ति, इसके दो भागों में बंटने तथा इन दोनों वियतनामों के आपसी संघर्ष से काफी चिन्तित था। भारत का संबंध एक परामर्शदाता के स्तर पर वियतनाम लोकतांत्रिक गणराज्य और वियतनाम गणराज्य दोनों से था। भारत उस क्षेत्र के विकास और शांति के लिए काम करना चाहता था। लेकिन दक्षिण वितयनाम में जहां न्गो-दिन्ह-दियेम का शासन था, वह भारत को सहयोग नहीं दे रहा था। यह शासन अमरीका के प्रभाव में था। भारत ने क्रमशः 1957-58 में दिल्ली आने पर न्गो-दिन्ह-दियेम और हो-यी-मिन्ह का भरपूर स्वागत किया। भारत दोनों वियतनामों की एकता पर असम्बद्ध रहना चाहता था। हो-यी-मिन्ह और हिन्द-चीन में उसके स्वतंत्रता संग्राम को भारतीय जनता का पूर्ण समर्थन प्राप्त था।

**फिलिपिन्स :**

दक्षिण पूर्व एशियाई संधि संगठन (सीटो) के सदस्य के रूप में फिलिपिन्स पश्चिमी गुट का मित्र था। इस देश के साथ भारत के राजनयिक संबंध थे और भारत ने इसके साथ आर्थिक संबंध स्थापित करने की कोशिश की लेकिन भारत अपने इस उद्देश्य में सफल नहीं हुआ। भारत यह चाहता था कि अफ्रीका और एशिया के देश पश्चिमी गुट के साथ सैन्य संधि न करें। लेकिन फिलिपिन्स ने न केवल सैन्य संधि की, बल्कि अमरीका को क्लार्क वायुसेना अड्डा और सुबिक सेना अड्डा भी प्रदान किया।

**मलेशिया :**

मलेशिया में मलय, चीन और भारतीय समुदाय के लोग रहते हैं और वहां लोकतांत्रिक सरकार है। इसने अफ्रीकी एशियाई बंधुत्व को मज़बूत करने की दिशा में भारत का समर्थन किया। यह भी दक्षिण ओर दक्षिण पूर्व एशिया के प्रति चीनी जनवादी गणराज्य के रवैये से आशंकित था। मलेशिया ने अंतर्राष्ट्रीय मंचों पर भारत का समर्थन किया। भारत के साथ इसके गहरे आर्थिक संबंध रहे। मलेशिया ने भारतीय संयुक्त उद्योगों का स्वागत किया। नेहरू और टुंकु अब्दुल रहमान दोनों की शिक्षा ब्रिटेन में हुई थी और अधिकांश अन्तर्राष्ट्रीय मुद्दों पर दोनों का दृष्टिकोण समान था। इस तरह भारत और मलेशिया का संबंध आपसी विश्वास और सहयोग पर आधारित था। भारत ने इन्डोनेशिया की

"मलेशिया को ध्वस्त करने की योजना" का विरोध किया और मलेशिया के राष्ट्र निर्माण को अपना समर्थन दिया।

**इन्डोनेशिया :**

दक्षिण पूर्व एशियाई क्षेत्र में इंडोनेशिया सबसे बड़ा देश है। इंडोनेशिया स्वतंत्रता आंदोलन के नेता सुकार्नो नेहरू के दोस्त थे। मार्च, 1951 में चिरस्थायी शांति और अपरिवर्तनीय मित्रता को बढ़ाने के लिए भारत और इंडोनेशिया ने मैत्री की संधि की। आरम्भ में इंडोनेशिया ने अफ्रीकी एशियाई एकता को दृढ़ करने के प्रयास का समर्थन किया। उसने उपनिवेशवाद को समाप्त करने में भी भारत का साथ दिया। इसने 1955 में बांडुंग में अफ्रीकी एशियाई कांफ्रेंस के नेतृत्व में पुरानी स्थापित शक्तियों के ख़िलाफ नई उदित शक्तियों के संघर्ष की अवधारणा सामने रखी। इसने उपनिवेशवाद, नव उपनिवेशवाद, साम्राज्यवाद के ख़िलाफ़ जिहाद छेड़ दिया। अंतर्राष्ट्रीय संबंधों में भारत ने इन उग्र विचारों का समर्थन नहीं किया। भारत ने नई उदित शक्तियों का सदस्य बनने से इंकार कर दिया। इससे भारत इंडोनेशिया संबंधों पर असर पड़ा। जब चीन ने भारत पर आक्रमण किया तब इंडोनेशिया चुप रहा और भारत के साथ सहानुभूति भी ज़ाहिर नहीं की। यहां तक कि सुकार्नो ने पश्चिमी गुट के विरोध में जकार्ता-पिन्डी-पेकिंग-प्योंग-यौंग के निर्माण का समर्थन किया। सितम्बर, 1964 में अयूब-सुकार्नो ने कश्मीर के मामले पर पाकिस्तान का समर्थन किया और अगले वर्ष इंडोनेशिया ने नई उदित शक्तियों से अनुरोध किया कि पाकिस्तान-भारत के युद्ध में पाकिस्तान की सहायता करें। इसके बावजूद भारत और इंडोनेशिया के बीच राजनयिक, सांस्कृतिक और आर्थिक संबंध कायम रहे। भारत ने कभी भी इंडोनेशिया का विरोध नहीं किया।

**चित्र 8 बांडुंग सम्मेलन (अप्रैल 1955) में पाकिस्तान के सम्भावित रवैये पर टाइम्स ऑफ़ इन्डिया में आर.के. लक्ष्मण का कार्टून (24 मार्च, 1955)**

## 40.9 पश्चिमी एशिया

भारत, मिश्र, ईरान, सऊदी अरब, ईराक, जौर्डन, तुर्की, सुडान, यमन, कुवैत आदि पश्चिमी एशिया के देशों के साथ मित्रता का संबंध स्थापित करने के लिए लगातार

कोशिश करता रहा है। पश्चिमी एशिया के देशों में विश्व तेल का 60% भंडार है। यह क्षेत्र दो सामरिक महत्व के समुद्री मार्गों को जोड़ता है। काला सागर और भू-मध्य सागर यहीं आकर मिलते हैं और लाल सागर स्वेज़ नहर के ज़रिए भू-मध्य सागर से जुड़ता है। भारत ने इस क्षेत्र में फैले मनमुटाव को दूर करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है।

**i) फिलिस्तीन समस्या :**

अरब-इज़राइल मनमुटाव या स्वेज़ संकट, किसी भी मामले को गौर से देखने पर यह स्पष्ट हो जाता है कि भारत ने हमेशा अरब देशों का समर्थन किया ताकि उस देश में शांति और विकास हो सके। फिलिस्तीन समस्या और पश्चिमी एशिया के अनेक झगड़ों का मामला संयुक्त राष्ट्र संघ में दर्ज हुआ, लेकिन फिलिस्तीन का मसला सबसे ज़्यादा उलझा हुआ था। संयुक्त राष्ट्र के सामने फिलिस्तीन का मसला सबसे पहले अप्रैल, 1947 में ग्रेट ब्रिटेन द्वारा रखा गया था। इसने आम सभा में फिलिस्तीन के भविष्यगत ढांचे पर विचार करने की मांग की। ब्रिटेन के अनुरोध पर आम सभा ने फिलिस्तीन पर विचार करने के लिए विशेष समिति नियुक्त की। अगस्त, 1947 में इस समिति ने अपनी रिपोर्ट प्रस्तुत की जिसमें यह प्रस्तावित किया गया कि फिलिस्तीन को अरब राज्य, यहूदी राज्य और अंतर्राष्ट्रीय निरीक्षण में विशेष क्षेत्र में विभक्त कर दिया जाय। जेरूसेलम को विशेष क्षेत्र में शामिल होना था। समिति के प्रस्ताव को आम सभा में दो तिहाई मतों से स्वीकार कर लिया गया। आम सभा ने फिलिस्तीन से संबंधित अनुमोदन को कारगर करने के लिए एक आयोग गठित किया। अंतर्राष्ट्रीय क्षितिज पर इज़राइल उभरता हुआ राज्य था जिसे पश्चिमी शक्तियों का सहयोग प्राप्त था। लेकिन अरब देश इसके अस्तित्व को स्वीकार करने के लिए तैयार नहीं थे। इसके बाद फिलिस्तीनियों द्वारा स्वदेश की मांग को जनसमर्थन प्राप्त हुआ और यह समस्या उलझती ही चली गई। प्रत्येक चरण में भारत ने संयुक्त राष्ट्र के बाहर और भीतर फिलिस्तीनियों का पक्ष लिया।

**ii) स्वेज़ संकट :**

स्वेज़ संकट एक ऐसा मसला बना जिसके कारण विश्व की शांति को ख़तरा उत्पन्न हो

चित्र 9 नेहरू तथा मिश्र के राष्ट्रपति नासिर

गया। जुलाई, 1956 में मिश्र के राष्ट्रपति ने स्वेज़ नहर के राष्ट्रीयकरण की घोषणा की और मिश्र में स्वेज़ नहर कम्पनी के कोष को ज़ब्त कर लिया। ग्रेट ब्रिटेन और फ्रांस ने इस राष्ट्रीयकरण पर नाराज़गी व्यक्त की। उनके विचार में मिश्र की सरकार की यह कार्रवाई 1968 की कौन्सटैनटिनोपोल की संधि के अनुकूल नहीं थी जिसमें स्वेज़ नहर को अंतर्राष्ट्रीय चार्टर के अधीन रखा गया था। ब्रिटेन और फ्रांस तथा मिश्र की सरकार ने एक-दूसरे के खिलाफ़ आरोप लगाया और अपने-अपने दावे की घोषणा की। भारत और संयुक्त राज्य अमरीका ने झगड़े को मिटाने के लिए अपने प्रस्ताव सामने रखे, पर मिश्र ने उसे मंज़ूर नहीं किया। भारत ने यह सुझाव दिया कि स्वेज़ नहर को मिश्र के अभिन्न अंग के रूप में मान्यता दी जानी चाहिए। इसने संयुक्त राष्ट्र संघ की सुरक्षा परिषद में इस सवाल पर मिश्र का समर्थन किया।

अक्तूबर, 1956 में इज़राइल, फ्रांस और ब्रिटेन ने स्वेज़ नहर क्षेत्र के मिश्री ठिकानों पर हमला बोल दिया। भारत और अफ्रीकी एशियाई गुट ने मिश्र के प्रति अपनी सहानुभूति व्यक्त की और तत्काल युद्ध रोकने की मांग की। अन्ततः नवम्बर में युद्ध विराम की घोषणा हुई। और इस प्रकार संयुक्त राष्ट्र संघ ने अपनी आपात सेना भेजने की योजना बनायी ताकि झगड़े के निपटारे का निरीक्षण कर सके। मिश्र ने संयुक्त राष्ट्र संघ की सेना को रखना मंज़ूर कर लिया और एक बार फिर कॉन्सटैन्टिनोपोल की संधि की शर्तों को मानने के लिए तैयार हो गया। इस स्वेज़ संकट को सुलझाने में भारत ने महत्वपूर्ण भूमिका निभाई।

**बोध प्रश्न 3**

1) दस पंक्तियों में भारत और श्रीलंका के संबंधों पर विचार कीजिए।

..................................................................................................................
..................................................................................................................
..................................................................................................................
..................................................................................................................
..................................................................................................................
..................................................................................................................
..................................................................................................................
..................................................................................................................
..................................................................................................................
..................................................................................................................

2) लगभग दस पंक्तियों में भारत और इंडोनेशिया के संबंधों को स्पष्ट कीजिए।

..................................................................................................................
..................................................................................................................
..................................................................................................................
..................................................................................................................
..................................................................................................................
..................................................................................................................
..................................................................................................................
..................................................................................................................
..................................................................................................................
..................................................................................................................

3) स्वेज़ संकट से आप क्या समझते हैं? भारत का इसके प्रति क्या रवैया था? दस पंक्तियों में उत्तर दीजिए।

..........................................................................................................

..........................................................................................................

..........................................................................................................

..........................................................................................................

..........................................................................................................

..........................................................................................................

..........................................................................................................

..........................................................................................................

..........................................................................................................

..........................................................................................................

4) सही उत्तर के लिए (✓) और गलत उत्तर के लिए ( X ) का निशान लगायें।
   i) भारत ने अपने सभी पड़ोसियों के साथ शांतिपूर्ण सह-अस्तित्व की नीति अपनाई। ( )
   ii) 1949 की संधि के अनुसार भूटान भारत की सलाह के बगैर किसी अन्य देश से संबंध स्थापित नहीं कर सकता था। ( )
   iii) भारत ने थाईलैंड के साथ कोई संबंध नहीं रखा क्योंकि थाईलैंड दक्षिण पूर्व एशियाई संधि संगठन (सीटो) का सदस्य था। ( )
   iv) हो-ची-मिन्ह और हिन्द-चीन में उसके स्वतंत्रता संघर्ष को भारतीय जनता का पूर्ण समर्थन प्राप्त था। ( )
   v) भारत ने इंडोनेशिया की मलेशिया को ध्वस्त करने की योजना का विरोध किया ( )

## 40.10 बड़ी शक्तियाँ और अन्य प्रमुख शक्तियाँ

आज़ाद होने के बाद से ही भारत बड़ी शक्तियों और विश्व की अन्य प्रमुख शक्तियों के साथ अपने संबंध में संतुलन बनाए रखने की कोशिश करता आया है। इस भाग में हम इन संबंधों की चर्चा करेंगे।

### 40.10.1 संयुक्त राज्य अमरीका

हालांकि भारतीय स्वतंत्रता संघर्ष को अमरीका के तत्कालीन राष्ट्रपति रूज़वेल्ट ने अपना समर्थन दिया था, पर चीन में साम्यवाद के उदय के पहले अमरीका ने इस क्षेत्र में कोई विशेष रुचि नहीं दिखाई। भारत की आज़ादी के आरम्भिक वर्षों में अमरीका ने कश्मीर के मसले पर सुरक्षा परिषद् में पाकिस्तान का समर्थन किया। अमरीका चाहता था कि भारत उसके द्वारा संरक्षित सैन्य संधि में शामिल हो जाय। भारत और अमरीका के दृष्टिकोण का मतभेद गहरा होता चला गया। इसके बाद भारत ने किसी भी प्रकार के उपनिवेशवाद का विरोध किया जबकि अमरीका ने उपनिवेशवाद का विरोध अपनी नीति के लाभ के अनुरूप किया। अमरीका ने उस उपनिवेशवाद का विरोध नहीं किया जहां साम्यवादी शक्तियां इसके ख़िलाफ़ लड़ रही थीं। इस मामले में उसने उपनिवेशवादी शक्तियों का समर्थन किया। भारत ने चीनी जनवादी गणराज्य को मंजूरी दी। उसने लगातार यह कोशिश की कि चीन को संयुक्त राष्ट्र संघ में शामिल कर लिया जाय। इन सब बातों से अमरीका और भारत के संबंध मित्रतापूर्ण नहीं रह सके। इन मतभेदों के बावजूद आर्थिक और तकनीकी क्षेत्रों में भारत को अमरीका से सहायता मिलती रही। 1962 के भारत-चीन युद्ध के दौरान

अमरीका ने भारत को सैनिक सहायता प्रदान करने का प्रस्ताव रखा। इस काल के दौरान आइज़ेनहॉवर (अमरीका के भूतपूर्व राष्ट्रपति) और केनेडी (अमरीकी राष्ट्रपति) ने भारत की यात्रा की। इन सहयोगों के बावजूद भारत ने अमरीका की "नियंत्रण नीति" को स्वीकार नहीं किया गुटनिरपेक्ष बना रहा।

**चित्र 10 नेहरू और आइज़ेनहोवर**

## 40.10.2 सोवियत संघ

सोवियत संघ ने भारतीय स्वतंत्रता संघर्ष का समर्थन किया था। 1947 के बाद अन्तर्राष्ट्रीय क्षितिज पर भारत और सोवियत संघ एक दूसरे के करीब आते गये। सोवियत नेता भारत से

**चित्र 11 नेहरू और केनेडी**

निम्नलिखित कारणों से प्रभावित हुए :

- भारत ने चीनी जनवादी गणराज्य को मंज़ूरी दी।
- संयुक्त राष्ट्र संघ में इसने उपनिवेशवाद विरोधी संघर्ष का समर्थन किया।
- कोरिया में युद्ध विराम का प्रयत्न और चीन को आक्रमणकारी मानने से इंकार किया।
- इसने सोवियत गणराज्य के खिलाफ़ गुट में शामिल होने से इंकार कर दिया।

कश्मीर के मसले पर सोवियत संघ ने भारत का समर्थन किया। 1955 में सोवियत नेता बुल्गानिन और ख्रुश्चेव भारत आये और दोनों देशों के बीच व्यापार समझौते हुए। बाद में गोआ के मसले पर सोवियत संघ ने भारत का समर्थन किया। स्वेज़ संकट के दौरान भारत और सोवियत संघ ने समान रूप से आक्रमण का विरोध किया था। तृतीय पंचवर्षीय योजना में सोवियत संघ ने भारत को 5000 लाख डॉलर दिये। इसने भारत को तेल भी दिया, जबकि पश्चिमी कम्पनियों ने भारत को तेल देने से इंकार कर दिया था।

चित्र 12 नेहरू रूस में

जब 1962 में चीन ने भारत पर आक्रमण किया तब सोवियत संघ ने न केवल अपनी सहानुभूति व्यक्त की बल्कि मिग लड़ाकू जहाज़ बनाने में सहयोग प्रदान किया। सोवियत नेताओं ने भारत की गुटनिरेपक्षता और शांतिपूर्ण सहअस्तित्व की नीति का समर्थन किया।

### 40.10.3 ब्रिटेन

हालांकि भारत ब्रिटेन के नेतृत्व वाले राष्ट्रमंडल का सदस्य था पर यह ब्रिटेन की गतिविधियों के प्रति सतर्क था। ब्रिटेन के रवैये ने भारत को और भी सतर्क कर दिया। इसने कश्मीर के मसले पर पाकिस्तान का समर्थन किया और दोनों देश दक्षिण पूर्व एशिया संधि संगठन (सीटो) के सदस्य की हैसियत से मित्र भी बन गये। स्वाभाविक रूप से भारत इन गतिविधियों से नाराज़ हुआ। भारत ने ब्रिटेन की पश्चिम एशियाई नीति का भी विरोध किया। भारत ने स्वेज़ नहर पर कब्ज़ा करने के लिए आक्रमण करने और मिश्र की आज़ादी को खतरा पहुंचाने की ब्रिटेन की कार्रवाई की निन्दा की। इस प्रकार, भारत ने सोवियत संघ के साथ मिलकर आंग्ल-फ्रांसीसी आक्रमण का विरोध किया। इससे ब्रिटेन नाराज़ हुआ, पर अन्ततः पश्चिम एशिया में उसे अपनी कार्रवाई बन्द करनी पड़ी और संकट के राजनीतिक हल के लिए राज़ी होना पड़ा। हालांकि ब्रिटेन और भारत के बीच बहुत से मामलों में विरोध था, पर कई अवसरों पर ब्रिटेन ने भारत के प्रति सहानुभूति व्यक्त की। 1962 में जब चीन ने भारत पर आक्रमण किया था, तब सहानुभूति का पहला संदेश ब्रिटेन ने भेजा था और भारत का समर्थन किया था।

### 40.10.4 फ्रांस

फ्रांस के साथ भी भारत ने मैत्री संबंध बनाने की कोशिश की। अफ्रीकी एशियाई देशों से सम्बद्ध मसलों पर विचार करते समय फ्रांस ने भारतीय दृष्टिकोण को महत्व दिया। भारत के हिन्द-चीन राज्यों से उपनिवेशवाद समाप्त करने के प्रयास ने फ्रांस को काफी प्रभावित किया। वियतनाम, लाओस, और कम्बोदिया के सत्ता के हस्तांतरण में भारतीय सुझावों को वरीयता दी गई। पर स्वेज़ संकट में भारत द्वारा आक्रमण का विरोध किए जाने पर फ्रांस नाराज़ हुआ। बाद में फ्रांस ने भारत फ्रांसीसी संबंध को सुधारने की कोशिश की। चीनी आक्रमण के समय भारत के प्रति फ्रांस का रवैया सहानुभूतिपूर्ण था। वह भारत को सामरिक महत्व के अस्त्र देने के लिए भी राज़ी हो गया।

### 40.10.5 जापान

जहां तक जापान का संबंध है, भारत ने द्वितीय विश्वयुद्ध में जापान की भूमिका पर मित्र शक्तियों के विचार को स्वीकार नहीं किया। भारत ने जापान से द्वितीय विश्वयुद्ध का हर्जाना मांगने से इंकार कर दिया। जून 1952 में भारत और जापान के बीच शांति संधि पर हस्ताक्षर हुए, जिसके बाद दोनों देशों के बीच आर्थिक और वाणिज्यिक संबंध स्थापित हुए। निम्नलिखित गतिविधियों से भारत और जापान संबंध और भी दृढ़ हुए :

- नागरिक उड्डयन समझौता (नवम्बर, 1955)
- सांस्कृतिक समझौता (फ़रवरी, 1956)
- प्रथम येन ऋण समझौता (फ़रवरी, 1958)
- भारत-जापान व्यापार समझौता (फ़रवरी, 1958)

लघु उद्योग में भारत और जापान के एक साथ काम करने और इसमें जापान के सहयोग से दोनों देशों के आपसी संबंध मज़बूत हुए। अन्य तकनीकी क्षेत्रों में भी जापान ने भारत को सहयोग दिया।

### 40.10.6 आस्ट्रेलिया

भारत, आस्ट्रेलिया के साथ भी निकटता स्थापित करने के लिए प्रयत्नशील रहा है। आस्ट्रेलिया प्रशांत और हिन्द महासागर से लगा हुआ है अतः दक्षिण-पूर्व एशिया और इस उप-महाद्वीप के लिए इस देश का सामरिक महत्व है। आस्ट्रेलिया चीन के ख़िलाफ़ तटस्थीकारक की भूमिका अदा कर सकता है और इस क्षेत्र के देशों के प्रतिरक्षा संबंधी हितों का ख्याल रख सकता है। भारत और आस्ट्रेलिया राष्ट्रमंडल के सदस्य हैं। जब आस्ट्रेलिया दक्षिण-पूर्व एशियाई संधि संगठन (सीटो) में शामिल हुआ और दक्षिण तथा दक्षिण पूर्व एशियाई देशों के साथ उसने संबंध स्थापित किये तो भारत ने इसके प्रति अपना कोई उत्साह नहीं दिखाया। भारत आस्ट्रेलिया के साथ गहरा आर्थिक और सांस्कृतिक संबंध स्थापित करना चाहता था और आस्ट्रेलिया ने भी भारत की इस इच्छा का सम्मान किया। आस्ट्रेलिया ने कभी भी पाकिस्तान का पक्ष नहीं लिया और भारत के हितों के खिलाफ़ कभी भी चीन के साथ दोस्ती नहीं की।

## 40.11 अफ्रीकी देश

भारत ने अफ्रीकी देशों में चल रहे स्वतंत्रता आंदोलनों को अपना समर्थन दिया। इसने एशिया में उपनिवेशवाद के खिलाफ़ चल रहे संघर्ष को अफ्रीका के साथ जोड़ने की कोशिश की और उपनिवेशवाद के ख़िलाफ़ विश्व मत बनाने में सक्रिय भूमिका निभाई। 1949 के बाद संयुक्त राष्ट्र संघ में अफ्रीकी-एशियाई गुट का उदय, अफ्रीका और एशिया के लोगों की सामान्य इच्छा का प्रतिफलन था। बाद में जब भारत, मिश्र और अन्य देशों ने मिलकर गुटनिरपेक्ष आन्दोलन की शुरूआत की तो कई अफ्रीकी देशों ने इसका सदस्य बनकर अफ्रीकी-एशियाई बंधुत्व को मज़बूत किया। भारत ने अपनी आज़ादी के पहले ही दक्षिण अफ्रीका की नस्लवादी नीति का विरोध किया था। स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद इसने दक्षिण अफ्रीका की नस्लवादी भेदभाव और रंगभेद की नीति का विरोध सभी अन्तर्राष्ट्रीय

मंचों पर किया। भारत ने दक्षिण अफ्रीका से अपने सभी व्यापारिक संबंध तोड़ दिये।

ज़ांबिया, तनज़ानिया, कीनिया और सूडान भारत के अच्छे दोस्त रहे हैं। बाद में अल्जीरिया, लीबिया, मोरक्को, टुनीसिया आदि देशों के साथ भी दोस्ती और सहयोग के संबंध स्थापित हुए। भारत ने इन देशों को कपड़ा, जूट, चाय, तम्बाकू, मसाला, चीनी और हल्के इंजीनियरिंग के सामान निर्यात किये और कच्चा सूत, तांबा, फास्फेट आदि खनिज पदार्थ आयात किये। कई अफ्रीकी देशों के साथ भारत के संबंध सौहार्दपूर्ण हैं।

**बोध प्रश्न 4**

1) लगभग 10 पंक्तियों में सोवियत संघ के साथ भारत के संबंधों की चर्चा कीजिये।

..........................................................................................................

..........................................................................................................

..........................................................................................................

..........................................................................................................

..........................................................................................................

..........................................................................................................

..........................................................................................................

..........................................................................................................

..........................................................................................................

..........................................................................................................

2) पांच पंक्तियों में अफ्रीकी देशों में चल रहे स्वतंत्रता आंदोलनों के प्रति भारत के रवैये की व्याख्या कीजिये।

..........................................................................................................

..........................................................................................................

..........................................................................................................

..........................................................................................................

..........................................................................................................

3) अंतर्राष्ट्रीय मुद्दों पर भारत और संयुक्त राज्य अमरीका के दृष्टिकोण के आधारभूत अंतर को पांच पंक्तियों में बताइये।

..........................................................................................................

..........................................................................................................

..........................................................................................................

..........................................................................................................

..........................................................................................................

## 40.12 सारांश

संक्षेप में हमने 1947 से 1964 के दौरान भारतीय विदेश नीति के सभी पक्षों पर दृष्टिपात

कर लिया है। विभिन्न देशों के साथ भारत के आपसी संबंधों का चर्चा इस इकाई में की गई। इस अवधि के दौरान भारत दक्षिण प्रशांत सागर और लातिनी अमरीकी देशों के साथ अपने संबंध दृढ़ नहीं कर सका था। अतः इस इकाई में उन पर प्रकाश नहीं डाला गया है। 1947 और 1964 की भारतीय विदेश नीति का एक ही उद्देश्य था—अपने को एक स्वतंत्र देश के रूप में प्रतिष्ठित करना और अपने राष्ट्रीय हितों का विकास करना। लेकिन भारत ने कई अंतर्राष्ट्रीय मंचों पर विकासशील और अविकसित देशों के हितों की प्राथमिकता पर भी ज़ोर दिया। इसने पश्चिमी या साम्यवादी देशों के साथ सैन्य संधि करने से इंकार किया और गुटनिरपेक्ष आन्दोलन को आगे बढ़ाया। इसने शांतिपूर्ण सह-अस्तित्व और विकास की नीति अपनाई, अंतर्राष्ट्रीय राजनीति को भारत का यह महत्वपूर्ण योगदान है। हालांकि 1962 के चीनी आक्रमण के कारण भारत को एक गहरा धक्का लगा फिर भी 1947-64 का काल भारतीय विदेश नीति का आधार बना।

## 40.13 शब्दावली

**निकोलिम विरोधी** : उपनिवेशवाद, नव उपनिवेशवाद और साम्राज्यवाद विरोध
**रंगभेद** : दक्षिण अफ्रीका की एक राजनीतिक व्यवस्था, जिसमें कानून द्वारा विभिन्न नस्लों के लोगों के अलग-अलग अधिकार हैं और उनके साथ अलग-अलग ढंग का बर्ताव किया जाता है। इस व्यवस्था से अफ्रीका के अश्वेतों पर श्वेतों के आधिपत्य को बल मिलता है।
**अस्त्रों की होड़** : हथियार बनाने के लिए देशों के बीच प्रतिस्पर्धा।
**बांडुंग कान्फ्रेंस** : इंडोनेशिया में 1955 में उन अफ्रीकी एशियाई देशों की कान्फ्रेंस हुई, जिनके आपसी हित और इच्छाएं मेल खाती थीं। अंतर्राष्ट्रीय मामलों में इस कान्फ्रेंस से एक नयी शक्ति का उदय हुआ।
**द्वि-ध्रुवी** : दो गुटों के बीच विभाजन। दो से अधिक गुटों के बीच विभाजन को बहु-ध्रुवी कहते हैं।
**गुट-राजनीति** : दो या अधिक देशों द्वारा एक गुट बनाना।
**नियंत्रण की नीति** : अनुमोदित सीमा के भीतर अन्य देश की शक्ति या नियंत्रण का क्षेत्र।
**निरस्त्रीकरण** : हथियार, ख़ासकर आण्विक हथियारों में कमी।
**जेनेवा कान्फ्रेंस** : कोरिया और हिन्द चीन के संकट पर विचार करने के लिए 1954 में जेनेवा में उन्नीस देशों की कान्फ्रेंस हुई। इस कान्फ्रेंस में वियतनाम को दो भागों—उत्तरी वियतनाम और दक्षिणी वियतनाम में बंटवारा करने का निर्णय लिया गया। उत्तरी वियतनाम में साम्यवादियों की सरकार बनी और दक्षिण वियतनाम में गैर-साम्यवादियों का शासन स्थापित हुआ।
**अंतर्राष्ट्रीय नियंत्रण आयोग** : जेनेवा कान्फ्रेंस में हिन्द-चीन में युद्ध विराम के निरीक्षण और कार्यान्वयन के लिए एक आयोग गठित किया गया। उसमें भारत, कनाडा और पोलैंड सदस्य थे। भारत इस आयोग का अध्यक्ष था।
**नयी उदित शक्तियाँ** : लोकतंत्र, राष्ट्रवाद, समाजवाद और साम्यवाद।
**गुटनिरपेक्ष** : बिना किसी गुट में बंधे हुए किसी देश द्वारा अंतर्राष्ट्रीय मुद्दों पर स्वतंत्र निर्णय लेना।
**पुरानी स्थापित शक्तियाँ** : साम्राज्यवाद, उपनिवेशवाद, अभिजात तंत्र।

## 40.14 बोध प्रश्नों के उत्तर

**बोध प्रश्न 1**

1) भारतीय विदेश नीति के तीन महत्वपूर्ण सिद्धांत हैं—सैन्य संधि में शामिल नहीं होना, अंतर्राष्ट्रीय मुद्दों पर स्वतंत्र विचार और निरस्त्रीकरण के माध्यम से विश्व शांति के लिए काम करना। इन सिद्धांतों को दो या तीन वाक्यों में लिखिए। देखिए भाग 40.2.

2) गुटनिरपेक्ष का मतलब है—एक देश द्वारा स्वतंत्र निर्णय लेना। इसमें अंतर्राष्ट्रीय मुद्दों पर निर्णय लेते वक्त कोई देश किसी गुट के निर्णय से प्रभावित नहीं होता है। इसके साथ-साथ आपको गुटनिरपेक्ष के सिद्धांतों की भी चर्चा करनी चाहिए, जैसे-किसी सैन्य संधि में हिस्सा न लेना, दूसरे देशों में उपनिवेशवाद विरोधी आन्दोलन को समर्थन देना आदि। देखिए भाग 40.4.

3) i) × ii) × iii) ✓ iv) ✓

**बोध प्रश्न 2**

1) इस प्रश्न में निम्नलिखित बातें शामिल की जानी चाहिए—
भारत के आकार, जनसंख्या, संसाधन और शक्ति के कारण पाकिस्तान की चिन्ता, पाकिस्तान के लिए अलग पहचान बनाने का प्रश्न। कश्मीर का मसला, नदी-जल के बंटवारे से उत्पन्न विवाद और प्रमुख शक्तियों द्वारा पाकिस्तान को सैनिक सहायता प्रदान करना। देखिये भाग 40.6.

2) चीन द्वारा तिब्बत पर कब्ज़ा कर लेने पर भारत हतप्रभ रह गया, लेकिन चीन से संबंध बनाये रखने के लिए भारत ने चीनी कार्रवाई का सक्रिय विरोध नहीं किया। देखिये भाग 40.7.

3) i) × ii) ✓ iii) × iv) ✓

**बोध प्रश्न 3**

1) प्रतिरक्षा की दृष्टि से भारत के लिए श्रीलंका का महत्व, श्रीलंका में जातीय मुठभेड़ के प्रति भारत का रवैया, भारत और श्रीलंका के बीच आर्थिक और व्यापारिक संबंध, इन सभी मुद्दों की चर्चा इस उत्तर में होना चाहिए। देखिए भाग 40.8.

2) पहले, इंडोनेशिया ने एशियाई क्षेत्र में उपनिवेशवाद के ख़िलाफ़ और शांति स्थापित करने के लिए भारत का समर्थन किया, बाद में इंडोनेशिया ने अपना रुख़ बदल दिया, 1962 के चीनी आक्रमण के समय इंडोनेशिया ने भारत का समर्थन नहीं किया, इंडोनेशिया ने कश्मीर के मसले पर पाकिस्तान का समर्थन किया। फिर भी भारत और इंडोनेशिया का राजनयिक संबंध बना रहा। इन सब बातों की चर्चा आपके उत्तर में होनी चाहिए। देखिये भाग 40.8.

3) मिश्र के राष्ट्रपति द्वारा स्वेज़ नहर का राष्ट्रीयकरण, ग्रेट ब्रिटेन और फ्रांस की प्रतिक्रिया। भारत द्वारा मिश्र सरकार का समर्थन और आक्रमणकारी देशों से शांति का आह्वान। देखिये भाग 40.9.

4) i) ✓ ii) ✓ iii) × iv) ✓ v) ✓

**बोध प्रश्न 4**

1) सोवियत संघ के साथ भारत का मैत्रीपूर्ण संबंध, सोवियत संघ द्वारा भारत की गुटनिरपेक्ष और शांति की नीति का समर्थन, भारत-चीन युद्ध और भारत-पाक युद्ध के दौरान भारत की सहायता। दोनों देशों के बीच राजनयिक और आर्थिक संबंध। देखिये भाग 40.10.

2) उपनिवेशवादी शासन और रंगभेद के ख़िलाफ़ भारत का खड़ा होना, अफ्रीकी स्वतंत्रता आंदोलन के प्रति भारत की सहानुभूति और समर्थन, संघर्ष कर रहे अफ्रीकियों के पक्ष में विश्व जनमत बनाने का भारत का प्रयत्न। देखिये भाग 40.11.

3) सैन्य संधियों में शामिल होने का मसला, उपनिवेशवाद विरोधी आन्दोलन का बिना किसी शर्त समर्थन, कश्मीर का मामला आदि। देखिये भाग 40.10.

# इकाई 41 धर्मनिरपेक्षता : सिद्धांत और व्यवहार

## इकाई की रूपरेखा


41.0 उद्देश्य
41.1 प्रस्तावना
41.2 धर्मनिरपेक्षता की अवधारणा
41.3 धर्मनिरपेक्षता का उदय
41.4 धर्मनिरपेक्षता का स्वरूप
41.5 धर्मनिरपेक्ष राज्य और धर्मनिरपेक्ष विचारधारा की आवश्यकता
41.6 धर्मनिरपेक्षता का अर्थ और परिभाषा
41.7 भारतीय धर्मनिरपेक्षता का विकास
- 41.7.1 पारम्परिक समाज की बाधाएं
- 41.7.2 राष्ट्रवाद और धर्मनिरपेक्षता
- 41.7.3 प्रारंभिक संघटन की सीमाएं
- 41.7.4 गांधीवादी आदर्श
- 41.7.5 आमूल परिवर्तनकारी धर्मनिरपेक्षतावाद

41.8 स्वातंत्र्योत्तर भारत के लिए धर्मनिरपेक्षता का विकल्प (1947-1964)
- 41.8.1 साम्प्रदायिकता की समस्या
- 41.8.2 धर्मनिरपेक्षता का भारतीय आदर्श
- 41.8.3 राजनीति में धर्म की निरन्तरता : एक बड़ी बाधा

41.9 भारतीय धर्मनिरपेक्षता का वैधिक आधार
- 41.9.1 धार्मिक स्वतंत्रता : एक मौलिक अधिकार
- 41.9.2 राज्य का दर्जा धर्म से ऊपर

41.10 सारांश
41.11 शब्दावली
41.12 बोध प्रश्नों के उत्तर


## 41.0 उद्देश्य

इस इकाई को पढ़ने के बाद आप :

- "धर्मनिरपेक्षता" शब्द के उद्भव और पृष्ठभूमि के बारे में बता सकेंगे
- धर्मनिरपेक्षता की संकल्पना का विवेचन कर सकेंगे
- राष्ट्रीय आंदोलन के दौरान धर्मनिरपेक्षता की अवधारणा का विकास बता सकेंगे
- यह भी बता सकेंगे कि स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद भारत ने धर्मनिरपेक्ष रास्ता किस तरह चुना
- भारतीय धर्मनिरपेक्षता के वैधिक आधार का विश्लेषण कर सकेंगे।

## 41.1 प्रस्तावना

भारतीय राष्ट्रीय आंदोलन के दौरान प्रचलित विभिन्न प्रवृत्तियों और धाराओं के बारे में आप पढ़ चुके हैं। राष्ट्रीय आंदोलन के दौरान उत्पन्न और विकसित बहुत से विचारों को स्वातंत्र्योत्तर काल में अपनी-अपनी दिशा खोजनी थी। इस इकाई में हम ऐसे ही एक महत्वपूर्ण विचार "धर्मनिरपेक्षता" की चर्चा करेंगे। धर्मनिरपेक्षता जो रूप ग्रहण कर रही है वह आज का एक अत्यधिक महत्वपूर्ण विचारणीय विषय है।

इसी विचारणीय विषय को केन्द्र में रखते हुए यह इकाई धर्मनिरपेक्षता की अवधारणा के

उद्भव को पाश्चात्य विश्व में तलाशने का प्रयास करती है। स्वातंत्र्योत्तर काल में धर्मनिरपेक्षता का विकास कैसे हुआ, और अब भारत में यह क्या रूप ग्रहण कर रही है, ये दूसरे पक्ष हैं, जिन पर इस इकाई में विचार किया गया है।

## 41.2 धर्मनिरपेक्षता की अवधारणा

धर्मनिरपेक्षता जीवन का एक आधुनिक दृष्टिकोण है। यह दृष्टिकोण आधुनिक पाश्चात्य जगत के औद्योगिक बाज़ार-समाजों में उत्पादन, वितरण और खपत के व्यापक सामाजिक संगठनों की पैदाइश था।

प्रारंभ में धर्मनिरपेक्षता के विचार की वकालत कुछ बुद्धिजीवियों द्वारा (निजी रूप से) की गई थी। यूरोप में सामन्तवादी विरोधी विद्रोहों के प्रबल होने के दौरान नए उभरते बुर्जुआ-वर्ग (उद्योग व्यापार आदि गतिविधियों में लगे उद्यमी तथा अन्य व्यवसायों में लगा मध्यवर्ग) ने (एक वर्ग के बतौर) इस विचार का समर्थन किया, और इसे आगे बढ़ाया। यह बुर्जुआ-वर्ग मानता था कि आधुनिक उद्योग और कृषि-अर्थव्यवस्था की भाँति ही, आधुनिक राष्ट्र राज्य की सामाजिक और राजनीतिक संस्थाएं सामाजिक संगठनों के पिछड़े सिद्धान्तों से नियंत्रित नहीं की जा सकतीं। पूर्व पूंजीवादी समाज का सांस्कृतिक गढ़ धर्म था, इसलिए धर्म ही बुर्जुआ बुद्धिवादी आलोचना का लक्ष्य बना।

इस तरह वैध विचारधारा के रूप में धर्मनिरपेक्षता की आवश्यकता को नया महत्व मिला। जैसे ही बुर्जुआ-वर्ग के हाथ में थोड़ी राजसत्ता आई वैसे ही धर्मनिरपेक्षता को आधुनिक राज्य के संवैधानिक दर्शन का दर्जा मिला, और राज्य की नीति के रूप में संस्थात्मक वैधता प्राप्त हुई। ऐसा इसलिए भी हुआ क्योंकि किसी भी राज्य की उदार और लोकतांत्रिक पहचान के लिए धर्मनिरपेक्षता एक आवश्यक गुण बन गई थी। आधुनिक राज्य निर्माण की उन परिस्थितियों में लोगों की अपनी-अपनी धार्मिक सम्बद्धताओं के बावजूद समाज में उभरते विभिन्न वर्गों और समूहों के बीच पारस्परिक सहिष्णुता की प्रवृत्ति पैदा हुई। यह ऐतिहासिक आवश्यकता ही बाद में राज्य की नीति और प्रशासन के सार्वजनिक और राजनीतिक गुण के रूप में संस्थापित हुई। इस तरह धर्मनिरपेक्षता का संस्थानीकरण हुआ। इससे धार्मिक संघर्ष को टालने की आवश्यकता पैदा हुई। यही वजह थी कि 19वीं शताब्दी के यूरोप के अधिकांश दार्शनिकों ने राज्य द्वारा जनता या उसके किसी भी वर्ग पर किसी भी धर्म के लादे जाने के विरुद्ध तर्क प्रस्तुत किए। राज्य का धर्म (चर्च) से अलगाव आधुनिक राज्य व्यवस्था का एक आधारभूत सिद्धांत बन गया। उदाहरण के लिए, जब अमरीकी संविधान में पहले संशोधन के रूप में यह जोड़ा गया कि "कांग्रेस किसी भी धर्म की स्थापना के लिए या किसी भी धर्म के स्वतंत्र पालन को रोकने के लिए कोई कानून नहीं बनाएगी" तो यह दृष्टिकोण अमरीका में एक आधारभूत संवैधानिक वैधिक गुण के रूप में प्रतिष्ठित हो गया।

धर्मनिरपेक्षीकरण की यह प्रक्रिया सभ्य समाज के सामाजिक-सांस्कृतिक आधार को नए ऐतिहासिक परिवर्तनों की वैज्ञानिक भावना के अनुसार सुधारने के लिए भी आवश्यक थी। इसी प्रकार, धर्मनिरपेक्ष राज्य का संगठन, बुर्जुआ राजसत्ता के वैधिक सैद्धांतिक आधार के लिए एक महत्वपूर्ण मापदण्ड बन गया। धर्मनिरपेक्षतावादी विचारधारा की आवश्यकता को धर्म से नहीं, बल्कि नए उभरते वर्ग से ताकत मिली। इसके अलावा, आधुनिकता और आधुनिकीकरण की प्रवृत्ति सर्वव्यापी थी। विचारधारा और राजनीति के क्षेत्र में इसने लोकतांत्रिक परिवर्तनों को प्रोत्साहित किया। सामन्तवाद विरोधी विद्रोहों से भरे उत्तर-पुनर्जागरण काल के पश्चिम यूरोपीय संदर्भ में आधुनिक होने का अर्थ था धर्मनिरपेक्षीकरण की प्रवृत्तियों को बढ़ावा देना। इसमें मानव स्वतंत्रता का विस्तार भी अन्तर्निहित था। इसने एक व्यक्ति और व्यक्ति समूह को संप्रभुता प्रदान की—यानी स्वयं उसे (या उनको) ही उसके (या उनके) भाग्य का स्वामी बना दिया। ऐसा हर क्षेत्र में हुआ, चाहे वह उत्पादन का क्षेत्र हो, सामाजिक परिवर्तन का या राज्यतंत्र अथवा राजनीतिक संस्थाओं का। मानव इतिहास और राजनीतिक संस्थाओं के निर्माता के रूप में ईश्वर को नहीं, बल्कि स्वयं जन या जन समुदाय को मान्यता दी गई। इस प्रकार आधुनिकता,

सामन्तवाद विरोधी और परम्परा विरोधी दृष्टिकोण का प्रतीक बन गई। धर्मनिरपेक्षता नई आधुनिक बैद्धिकता का कारगर सैद्धांतिक हथियार बन गई। यह सब इस तरह हुआ कि प्रत्येक व्यक्ति के निजी जीवन में भी धर्म और अन्धविश्वास के बजाय विज्ञान और बुद्धि को महत्व मिलना शुरू हो गया।

## 41.3 धर्मनिरपेक्षता का उदय

"धर्मनिरपेक्ष" और "धर्मनिरपेक्षीकरण" शब्द हमारे यहाँ अंग्रेज़ी शब्द "सेक्यूलर" (Secular) और "सेक्यूलराइज़ेशन" (Secularization) के रूपान्तरण हैं। इन अंग्रेज़ी शब्दों का प्रयोग यूरोप में तीस वर्ष तक चले युद्ध की समाप्ति पर सन् 1648 में पहली बार हुआ और तभी इनको बौद्धिक विचारधारात्मक लोकप्रियता मिली। इनका प्रयोग चर्च की सम्पति को राजा के नियंत्रण में हस्तांतरित किए जाने के संदर्भ में हुआ। फ्रांस की क्रांति के बाद 2 नवम्बर, 1798 को टैलीरेन्ड (एक वयोवृद्ध फ्रांसीसी राजनीतिज्ञ) ने फ्रांस की राष्ट्रीय सभा (फ्रेन्च नेशनल असेम्बली) में घोषणा की कि गिरजाघरों से संबंधित सारी वस्तुएँ राष्ट्र के अधिकार में हैं। काफी बाद में, 1851 में जार्ज जेकब होलियोग (George Jacaobe Holyoaake) ने "सेक्यूलरिज़्म" (धर्मनिरपेक्षतावाद) शब्द गढ़ा।

धर्मनिरपेक्षतावाद ने राजनीतिक दर्शन का स्वरूप 1850 में ही ग्रहण किया। इसे राजनीतिक और सामाजिक संगठन का एकमात्र तार्किक आधार घोषित किया गया। यूरोप के अधिकांश परिवर्तनवादी बुद्धिजीवियों और सुधारकों ने इसे प्रगति का आंदोलन करार दिया। जब 13 अप्रैल, 1853 को राबसपियर (Robespierre) के सम्मान में आयोजित एक सार्वजनिक सभा में लुई ब्लॉक (Louis Blank), नादौ (Nadaud) कुसुली (Kussuli) तथा अन्य उग्र प्रवक्ताओं ने भाग लिया तो धर्मनिरपेक्ष आंदोलन शुरू हो गया। इस सभा में अभिजात, पादरी, राजनीतिज्ञ और सामाजिक कार्यकर्ता भी शामिल थे। राजनीतिक आंदोलन के इसी चरण में होलियोक (Holydoke) ने धर्मनिरपेक्षता की व्याख्या भौतिक साधनों द्वारा मानव कल्याण को बढ़ावा देने वाले और दूसरों की सेवा को जीवन का आदर्श बनाने वाले साधन के रूप में की। साथ ही, होलियोक ने सभ्य समाज के धार्मिक आधार पर ही प्रश्नचिन्ह लगाते हुए कहा :

> "ऐसे रूढ़िवादी धर्म से एक ग़रीब व्यक्ति को क्या लेना-देना है, जो अपनी शुरूआत ही उसे (गरीब व्यक्ति) एक दीन हीन पापी बता कर करता है, और अन्त उसे एक असहाय ग़ुलाम बना कर करता है। एक गरीब व्यक्ति स्वयं को एक हथियारबन्द दुनियां में पाता है, जहां शक्ति ही ईश्वर है और गरीबी बेड़ी है।"

होलियोक के लेखन में धर्मशास्त्र की जो आलोचना की गयी है उस में इसीलिए समाजवादी मानवतावाद का मूल परिवर्तनवादी तत्व पाया जाता है। फिर भी, स्वयं धर्म विरोधी (नास्तिक) होना ज़रूरी नहीं है। लेकिन चार्ल्स ब्राडलाफ (Charles Bradlaugh) ने, जिसने 1860 के बाद से धर्मनिरपेक्ष आंदोलन को बहुत अधिक प्रभावित किया, ज़ोर देकर कहा कि एक धर्मनिरपेक्षतावादी को कट्टर निरीश्वरवादी (नास्तिक) होना चाहिए। यह दृष्टिकोण उसी के समान था जो बाद के दिनों में बहुत से मार्क्सवादियों, समाजवादियों और साम्यवादियों ने अपनाया।

## 41.4 धर्मनिरपेक्षता का स्वरूप

"धर्मनिरपेक्षता" और "धर्मनिरपेक्षीकरण" शब्द, यूरोप और उत्तरी अमरीका के सभ्य समाजों में पिछले कई दशकों में जो कुछ होता रहा था, उसके वैचारिक निर्धारण के परिणामस्वरूप गढ़े गए थे। इस तरह ये शब्द, व्यापक और जटिल समाजों की राजनीतिक पुनर्व्यवस्था की विचारधारात्मक या सैद्धांतिक अभिव्यक्ति थे और इन समाजों के

औद्योगीकरण, शहरीकरण तथा बुर्जुआकरण के परिणाम थे। हालांकि धर्मनिरपेक्षता का उदय पश्चिमी उदार समाजों में हुआ था, फिर भी इन समाजों में धर्मनिरपेक्षीकरण की प्रक्रिया अधूरी और आंशिक रही।

## 41.5 धर्मनिरपेक्ष राज्य और धर्मनिरपेक्ष विचारधारा की आवश्यकता

वैधिक धर्मनिरपेक्ष राज्य और विचारधारा को स्थापित करना आधुनिक राष्ट्र राज्य की एक आवश्यकता बन गया था। उदाहरण के लिए बोदिन (Bodin) ने तर्क दिया :

> "जब दो या अधिक धर्म पहले से मौजूद हों...........तो राज्य द्वारा धार्मिक एकरूपता लागू करने का प्रयास न केवल निरर्थक, बल्कि निरर्थक से भी बुरा साबित होता है। ऐसा करने का अर्थ होगा गृह युद्ध को जन्म देना और राज्य को कमज़ोर बनाना।"

पश्चिम में धर्मनिरपेक्ष राज्य की स्थापना रातों-रात नहीं हो गई थी। ऐसा समाज में व्यापक रूप से मौजूद धर्मनिरपेक्ष सामाजिक भावना की अनिवार्य परिणति के रूप में हुआ था। वास्तव में, आधुनिक पश्चिमी जगत में धर्मनिरपेक्ष राज्य का विकास, सभ्य समाज के धर्मनिरपेक्षीकरण की प्रगति का परिचायक था। एक बड़ी सीमा तक राज्य का धर्मनिरपेक्षीकरण सभ्य समाज के धर्मनिरपेक्षीकरण के बाद हुआ। धर्मनिरपेक्षता की भावना उद्योग, विज्ञान और प्रौद्योगिकी, और अन्ततः बाज़ार क्षेत्र में मौजूद थी। बाज़ार-अर्थव्यवस्था के विनियमन के लिए धर्मनिरपेक्ष, कानून और राजनीति की ज़रूरत थी। तात्पर्य यह है कि आधुनिक पाश्चात्य राजनीति के इतिहास में, एक विचारधारा के रूप में धर्मनिरपेक्षीकरण की प्रक्रिया, वह प्रक्रिया थी जिसमें सभ्य समाज, राज्य, और इसकी समग्र संस्कृति के ढांचे में एक प्रगतिशील सामाजिक परिवर्तन निहित था। इस प्रक्रिया के तहत ही समाज और राजनीति में बहुलवाद (Pluralism) का उदय हुआ।

> सार रूप में, इस सामाजिक परिवर्तन को धर्म और धर्मशास्त्रीय व्यवस्था की जकड़ से राज्य की मुक्ति (या अलगाव) के रूप में चित्रित किया जा सकता है। इसका यह अर्थ भी है कि एक सभ्य समाज के सार्वजनिक सामाजिक जीवन में बुद्धिसंगत, विज्ञानसम्मत, गैर धार्मिक यानी धर्मनिरपेक्षता को प्रभुखता प्राप्त हो गई थी, जबकि धर्म एक व्यक्ति या समुदाय के चुनाव पर निर्भर, नितांत संकुचित निजी सीमा तक सिमट कर रह गया था।

आधुनिकता, धर्मनिरपेक्षीकरण और धर्मनिरपेक्षता का यह प्रगतिशील विचारधारात्मक अर्थ आज भी यथावत है।

## 41.6 धर्मनिरपेक्षता का अर्थ और परिभाषा

पूर्ववर्ती व्याख्या से यह स्पष्ट है कि "धर्मनिरपेक्ष", "धर्मनिरपेक्षराज्य" और "धर्मनिरपेक्षता" जैसे शब्द ऐसे समाज या राज्य की पहचान कराते हैं जिसमें राजनीति, प्रशासन और सार्वजनिक सामाजिक जीवन का धर्म से पूरी तरह अलगाव होता है। "सैक्यूलर" (धर्मनिरपेक्ष) शब्द का शब्दकोषीय अर्थ उन तत्वों से जुड़ा है जो आध्यात्मिक नहीं हैं, या जिनका चर्च (धर्मस्थान) से कोई सम्बन्ध नहीं है। इस तरह एक राज्य, उसकी नीति और उसकी समग्र राजनीतिक संस्कृति का धर्मनिरपेक्ष चरित्र इस बात से तय होता है कि वे धार्मिक संस्कृति के मकड़ जाल की जकड़ से किस सीमा तक मुक्त हैं। इसी तरह, समाज के धर्मनिरपेक्षीकरण को दैनिक जीवन में, यहां तक कि लोगों के निजी जीवन में, धर्म के असंगत होते जाने से नापा जा सकता है। उदाहरण के लिए, किसी विशेष क्षेत्र या देश के लोगों को धार्मिक निहित स्वार्थों और धार्मिक विचारों के नाम पर एक राजनीतिक

शक्ति के रूप में न उभारा जा सके और न संघठित (Mobilized) किया जा सके, तो इस क्षेत्र या देश विशेष के समाज को स्पष्टतः धर्मनिरपेक्ष नागरिक संस्कृति वाला समाज कहा जा सकता है। इसी प्रकार किसी देश की सत्ता, राज्य और समाज को जकड़ में लेने वाले सामाजिक आर्थिक संकट को सुलझाने के लिए गैर धार्मिक समाधान खोजती है, तो इसकी राजनीतिक संस्कृति को भी धर्मनिरपेक्ष कहा जा सकता है।

धर्मनिरपेक्षीकरण की प्रक्रिया कई तत्वों से निर्धारित होती है। आधुनिक राष्ट्र राज्य के उभरने की प्रकृति, उसकी ऐतिहासिक परिस्थितियों की विशिष्टताएं, राज्य के वैज्ञानिक और प्रौद्योगिक विकास का स्तर आदि सामन्ती प्रतिक्रिया को पराजित करने में निर्णायक भूमिका निभाते हैं। (धर्मनिरपेक्षता का प्रसार सामन्ती व्यवस्था के टूटने से जुड़ा हुआ है) अतः यूरोप और उत्तरी अमरीका में जल्दी विकसित हो जाने से पूंजीवाद सामन्ती व्यवस्था को उखाड़ फेंकने में काफी हद तक सफल रहा, जब कि तीसरी दुनियां के देशों में पूंजीवाद का विकास अपेक्षाकृत देर से हुआ, इसलिए यहां यह सामन्ती व्यवस्था को यूरोप की तरह झटका नहीं दे सका।

इसके अतिरिक्त, धर्मनिरपेक्ष शिक्षा, धर्मनिरपेक्ष साहित्य और धर्मनिरपेक्ष इतिहास लेखन की भूमिका भी ग़ैर धार्मिक अर्थों में राष्ट्र और राष्ट्रीय विकास को परिभाषित करने में मदद करती है। इस तरह "धर्मनिरपेक्षीकरण" को एक ऐसी प्रक्रिया के रूप में परिभाषित किया जा सकता है जिसके द्वारा समाज और संस्कृति के क्षेत्रों को धार्मिक संस्थाओं और प्रतीकों से मुक्त कराया जाता है।

**बोध प्रश्न 1**

1) सही उत्तर पर (✓) चिन्ह लगाइए।
   आधुनिकता का मानना है कि :
   i) ईश्वर सार्वभौम स्वामी है,
   ii) मशीन सार्वभौम स्वामी है,
   iii) एक व्यक्ति या व्यक्ति समूह सार्वभौम स्वामी है,
   iv) इनमें से कोई भी नहीं।

2) सही उत्तर पर (✓) चिन्ह लगाइए।
   औद्योगीकरण, शहरीकरण और आधुनिक राज्य की स्थापना :
   i) को धर्मनिरपेक्षता के उदय के साथ जोड़ा जा सकता है,
   ii) का धर्मनिरपेक्षता से कोई संबंध नहीं है,
   iii) को धर्मप्रधान समाजों की शुरूआत से जोड़ा जा सकता है,
   iv) उपरोक्त में से कोई भी नहीं।

3) "धर्मनिरपेक्ष" शब्द से आप क्या समझते हैं, लगभग 50 शब्दों में बताइए।

.........................................................................................................

.........................................................................................................

.........................................................................................................

.........................................................................................................

.........................................................................................................

## 41.7 भारतीय धर्मनिरपेक्षता का विकास

भारतीय धर्मनिरपेक्षता का विकास उपनिवेशवाद और पारम्परिक व्यवस्था की दमनकारी संस्थाओं के विरुद्ध दुहरे संघर्ष की पृष्ठभूमि में हुआ।

### 41.7.1 पारम्परिक समाज की बाधाएं

भारतीय समाज में आधुनिकीकरण की प्रक्रिया शुरू होने से पूर्व, और शुरू होने के बाद भी, परम्परावाद की अपनी महत्वपूर्ण जगह बनी रही।

भारतीय सामाजिक जीवन में सक्रिय धर्म और पुनरुत्थानवाद की पारम्परिक ताकतों के प्रबल प्रवाह ने धर्मनिरपेक्षीकरण और आधुनिकीकरण की प्रक्रिया को बहुत क्षति पहुंचाई। आधुनिकता कभी भी ऐसी प्रभावी सामाजिक ताकत नहीं बन सकी जो भारत के ग्रामीण और शहरी सामाजिक जीवन का रूपान्तरण करने में सक्षम होती। कुल मिलाकर भारत आज भी पारम्परिक समाज बना हुआ है। अधिकांश मामलों में लोगों के जीवन में धर्म का अभी भी पूरा दखल बना हुआ है। फ्रांसीसी विद्वान लुई डयूमोंट (Louis Dumont) के शब्दों में "भारत में धर्म समाज का अंग है।" राजनीति और अर्थनीति न तो यहां स्वायत्त सत्ताएं हैं, और न यही धर्म के साथ उनका विवाद है। वास्तव में, राजनीति और अर्थनीति सिर्फ धर्म से घिरी हुई है, या फिर उसमें फंसी हुई है।

भारत में जाति की राजनीति और सामाजिकी इसका ज्वलंत उदाहरण है। अभी तक धर्म संस्कृति और भारत की प्रभावी राजनीति के बीच कोई प्रमुख दरार या महत्वपूर्ण अलगाव देखने को नहीं मिला है। इस तरह के ऐतिहासिक अलगाव के बिना भारतीय सामाजिक जीवन के मुख्य प्रवाह में धार्मिक संस्कृति को सार्थक तरीके से व्यक्ति का निजी मसला नहीं बनाया जा सका। इसलिए, भारत में नागरिक समाज का धर्मनिरपेक्षीकरण कभी भी सही मायनों में शुरू नहीं हो सका। परिणामतः विरोध में उठती तमाम आवाज़ों के बावजूद, धर्म और राजनीति का गठजोड़ भारतीय राजनीतिक संस्कृति का प्रमुख लक्षण बना हुआ है।

### 41.7.2 राष्ट्रवाद और धर्मनिरपेक्षतावाद

पारम्परिक स्वरूप वाले भारतीय समाज के आधुनिक राष्ट्रीय राज्य-व्यवस्था में बदलने की प्रक्रिया मात्र एक शताब्दी पुरानी है। ऐतिहासिक अतीत में भारतीय लोगों में राष्ट्रवाद की वैसी भावना का विकास नहीं हुआ था जिसने 19वीं शताब्दी के अन्त तक यूरोप को बदल दिया था। भारत पर विदेशियों की विजय और इसके उपनिवेशीकरण का मुख्य कारण भी विभिन्न क्षेत्रों में राष्ट्रीयता की भावना का अभाव था। भारत की कक्षबद्ध (अलग-अलग खानों में बंटी हुई) संस्कृति और समाज की सभी संस्थाएं राष्ट्रीय एकता की किसी भी भावना के विपरीत जाती थीं। जाति की इस विलक्षण प्रथा पर टिप्पणी करते हुए राजा राममोहन राय ने कहा था:

> "मुझे यह कहते हुए अफ़सोस होता है कि धर्म का वर्तमान स्वरूप जिससे हिन्दू चिपके हुए हैं, उनके राजनीतिक हितों के लिए अनुकूल नहीं है। जाति के विशेष वर्णों और उनके भी असंख्य विभाजन तथा उप-विभाजनों ने उन्हें देशप्रेम की भावना से वंचित कर दिया है।"

भारत की पारम्परिक संस्थाओं में देशभक्ति तथा राष्ट्रीयता की भावनाओं की ऐतिहासिक अनुपस्थिति का इसके भावी राजनीतिक विकास पर उल्लेखनीय प्रभाव पड़ा। 19वीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध में, जब भारतीयों के मन में राष्ट्रवादी भावनाओं का बीजारोपण हुआ तो उन्हें प्रारंभिक बिन्दु से ही चलना पड़ा। स्वयं राष्ट्रवाद (धर्मनिरपेक्षवाद की तरह) एक विचारधारा के रूप में एक हद तक विदेशी आयात था। धर्मनिरपेक्षता की भांति ही राष्ट्रवाद भी केवल कुछ मध्यवर्गीय उदारवादियों तक ही सीमित था। ये प्रारंभिक उदारवादी, हालांकि अपने निजी जीवन में नास्तिक या अज्ञेयवादी (Agnostic) थे, परन्तु राजनीति या सार्वजनिक जीवन में धर्मनिरपेक्ष रुख़ बनाये रखते थे। ऐसा करने में उनका उद्देश्य होता था कि सभी भारतीयों का एक समुदाय बनायें और साथ ही अंग्रेज़ों से रियायतें प्राप्त करें। इस काम की उनकी क्षमता इस बात से तय होती थी कि वे शिक्षित कुलीनों के छोटे से समूह से बाहर, विशाल जन समुदाय का समर्थन (अपने काम के लिए) किस हद तक जुटा पाते हैं। दूसरे शब्दों में, धर्मनिरपेक्ष बुद्धिजीवी वर्ग को पारम्परिक राजनीति से टकराना पड़ता था। और यह टकराहट व्यावहारिक राजनीति में बहुत चुनौतीपूर्ण होती है। यानी, कौन परिवर्तन लाएगा, और किसमें, धर्मनिरपेक्ष उदार बुद्धिजीवी वर्ग पारम्परिक धार्मिक लोगों को प्रभावित कर लेगा या स्वयं यह बुद्धिजीवी वर्ग ही पारम्परिक संस्कृति के प्रवाह में बह जाएगा?

### 41.7.3 प्रारंभिक संघठन (Mobilization) की सीमाएँ

यहां इस पर ध्यान दिया जाना चाहिए कि भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस की स्थापना के कुछ ही वर्षों में पारम्परिक समाज ने राष्ट्रीय संघठन (लामबन्दी) के मानदंड स्थापित करने शुरू कर दिये थे। यानी, लगभग शुरू से ही राष्ट्रवादी राजनीति और राष्ट्रनिर्माण की परियोजना पर साम्प्रदायिक और धार्मिक कट्टरपंथी विचारधाराओं का शिकंजा कसना शुरू हो गया था। उदारवादियों और उनकी धर्मनिरपेक्ष विचारधारा के सामने बालगंगाधर तिलक, अरविंद घोष, लाला लाजपतराय जैसे हिन्दू पुनरुत्थानवादी नेताओं और मुस्लिम पुनरुत्थानवादियों द्वारा शीघ्र ही चुनौतियां खड़ी कर दी गईं। राष्ट्रीय संघठन धर्म और संस्कृति के सवालों पर होना शुरू हो गया। अन्ततः इससे हिन्दू-मूसलमानों के बीच अलगाववाद को बढ़ावा मिला। धर्मनिरपेक्षता (और राष्ट्रवाद) की प्रक्रिया को उस समय और भी अधिक क्षति पहुंची जब राष्ट्रीय संघठन के लिए धार्मिक प्रतीकों और पद्धतियों का इस्तेमाल किया गया। नरमपंथियों के आंग्ल प्रभावित धर्मनिरपेक्ष नेतृत्व ने अपने धर्मनिरपेक्ष राजनीतिक संकल्प के अनुरूप हिन्दू प्रसंगों और प्रतीकों को कांग्रेस की कार्रवाइयों से बाहर रखने का भरसक प्रयास किया। परन्तु उनका उच्च वर्गीय धर्मनिरपेक्ष दृष्टिकोण अपने आप में ही कांग्रेस के अवरुद्ध विकास का प्रमुख कारण बन गया। इसलिए कांग्रेस की दुविधा और भी जटिल हो गई। कांग्रेस का हिन्दूकरण करने का अर्थ था, कांग्रेस के प्रति पहले से ही शंकालु मुसलमानों को कांग्रेस से दूर करना और राष्ट्रीय संघठन के लिए धर्म का इस्तेमाल न करने का मतलब था कांग्रेस को उसकी मूल कुलीनतावादी नाकारा स्थिति में ले आना।

### 41.7.4 गांधीवादी आदर्श

आखिकार राष्ट्रीय संघठन के लिए धर्म और राजनीति में तालमेल बिठाने का काम गांधी जी पर छोड़ दिया गया। गांधी जी ने राजनीतिक आन्दोलन के लिए धर्म की ज़रूरत की खुले रूप से घोषणा की, "जो लोग यह कहते हैं कि धर्म को राजनीति से कुछ लेना-देना नहीं है, वे नहीं जानते कि धर्म का क्या मतलब है।" उन्होंने कहा, "मेरे लिए प्रत्येक छोटी से छोटी गतिविधि भी उसी से नियंत्रित होती है जिसे मैं अपना धर्म मानता हूँ।" और 1920 तक कांग्रेस का नेतृत्व गांधी जी के हाथ में आ गया। इसके साथ ही धर्मनिरपेक्ष राष्ट्रवादियों के प्रारंभिक मत का प्रभाव भी समाप्त हो गया।

प्रारंभिक नरमपंथियों (या उदार धर्मनिरपेक्षतावादी) का मानना था कि धार्मिक चेतना की सक्रियता का सर्वाधिक रचनात्मक क्षेत्र सार्वजनिक जीवन के बजाय व्यक्ति का निजी जीवन है। उन्होंने देशवासियों के सामने भारत के भविष्य का एकीकृत और राष्ट्रीय स्वरूप प्रस्तुत किया।

राष्ट्र निर्माण के प्रारंभिक उदार धर्मनिरपेक्ष सिद्धांत के विरुद्ध गांधी जी ने राष्ट्रीय चेतना पैदा करने के लिए लोक धर्म की भूमिका को आवश्यक बताया। वे जनता की धार्मिक भावना के सहारे राष्ट्रीय आंदोलन के राजनीतिक आधार को व्यापक बनाना चाहते थे।

राष्ट्रीय आन्दोलन का गांधीवादी आदर्श हिन्दू लोकाचारों से गहराई से जुड़ा हुआ था, फिर भी यह धार्मिक बहुलवाद पर आधारित था, जिसमें भारत और विश्व के सभी धर्मों के प्रति समान आदर की भावना निहित थी। उनकी धार्मिक संवेदनशीलता एक सच्ची लोकतांत्रिक प्रकृति से जुड़ी थी। ख़िलाफ़त आंदोलन को उनका समर्थन, और बाद में इस आंदोलन का भारत के राष्ट्रीय आंदोलन में रूपान्तरण होना, गांधी जी की इसी संवेदनशीलता का उदाहरण है। यही कारण है कि धर्मनिरपेक्षता (या राष्ट्रवाद) के गांधीवादी आदर्श को "संयुक्त धर्मनिरपेक्षता या सभी धर्मों के प्रति आदर या सर्वधर्म सद्भाव के रूप में भी रखा गया है।"

धर्मनिरपेक्षता का यह गांधीवादी स्वरूप गरीबों और अमीरों के बीच शीघ्र ही लोकप्रिय हो गया। आंशिक रूप से यह सफलता इसलिए भी मिली थी कि यह स्वरूप भारत की धार्मिक मूल्य व्यवस्था के पारम्परिक मुख्य प्रवाह पर अत्यधिक निर्भर करता था। गांधी जी की धार्मिक पृष्ठभूमि वैष्णव परम्परा की थी। इस परम्परा ने उन्हें भारत के लोकनायकों से जुड़े प्रतीकों और पुराण कथाओं की प्रत्यक्ष जानकारी दी जिनका इस्तेमाल गांधी जी ने

अपनी राजनीति में किया। उदाहरण के लिए, स्वतंत्र भारत के आदर्श राज्य को उन्होंने "रामराज्य" का नाम दिया। गांधी जी की आम जनता पर निर्भरता ने भी सम्पन्न वर्ग को भयभीत नहीं किया, आंशिक रूप से इसलिए कि उन्होंने अहिंसा और न्यासी सिद्धांत (ट्रस्टीशिप सिद्धांत) का प्रतिपादन किया और वर्ग संघर्ष की किसी भी धारणा तथा निजी सम्पति के समाजीकरण का विरोध किया। इस तरह धर्मनिरपेक्षता के गांधीवादी आदर्श ने राष्ट्रीय आंदोलन पर एकाधिकार स्थापित कर लिया। यह आदर्श विभिन्न समुदायों और क्षेत्रों की बहुलवादी राष्ट्रीय पहचान का आधार बन गया। लेकिन हिन्दुत्व के प्रतीकों पर इसकी अधिकाधिक निर्भरता (जैसे कि रामराज्य) ने मुसलमानों के विलगाव (Alienation) को बढ़ावा दिया। धर्म और राजनीति के समन्वय के गांधीवादी आदर्श की सबसे बड़ी कमज़ोरी यह थी कि इसने विभिन्न धर्मों के बीच फर्क को स्वीकार नहीं किया। अगर धर्मों को ही समाज का विधायक तत्व मान लिया जाय तो निश्चित रूप से धार्मिक मतभेद राजनीतिक मतभेद बनकर उभरेंगे। जो धार्मिक रूप से भिन्न हैं वे उन्हीं राजनीतिक सिद्धांतों के सवाल पर एक नहीं हो सकते जो राजनीतिक सिद्धांत स्वयं ही धर्म पर टिके हुए हैं। व्यवहार में इसने और अधिक संघर्षों को बढ़ावा दिया, ऐसे संघर्षों को जिन्हें विभिन्न धार्मिक दृष्टिकोणों से पोषण प्राप्त होता है।

## 41.7.5 आमूल परिवर्तनवादी (Radical) धर्मनिरपेक्षतावाद

प्रारंभिक उदारवादी धर्मनिरपेक्ष सिद्धांत और गांधीवादी आदर्श के विरोध में, एक अन्य प्रकार का धर्मनिरपेक्ष आदर्श स्वतंत्रता आंदोलन के दौरान उभर कर आया। इसे आमूल परिवर्तनवादी धर्मनिरपेक्षतावाद कहा जा सकता है। इस आदर्श के प्रवर्तक वर्ग ने प्रारंभिक राष्ट्रवादियों (जिन्होंने भारत में राष्ट्रीय चेतना के विकास को जन्म दिया था और भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस की स्थापना की थी) के कुछ विचारों को स्वीकारते हुए, भारत की सामाजिक-आर्थिक समस्याओं के प्रति उनके कुलीनतावादी उच्चवर्गीय दृष्टिकोण को नकार दिया। इन परिवर्तनवादी धर्मनिरपेक्षतावादियों के पास राष्ट्रीय नवोत्थान का वैकल्पिक आर्थिक और राजनीतिक कार्यक्रम था। इनका कहना था कि लोकधर्म और नैतिक पुनरुत्थान की भाषा के स्थान पर वर्ग संघर्ष और सामाजिक समानता की भाषा लायी जानी चाहिए। इन लोगों ने एक समाजवादी, लोकतांत्रिक और धर्मनिरपेक्ष भारत की संकल्पना प्रस्तुत की। उन्होंने यह तर्क भी दिया कि धर्म को भारतीय नागरिकों के केवल निजी जीवन तक ही सीमित रहना चाहिए। भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस में जवाहरलाल नेहरू इस विचार के अग्रणी प्रवक्ता थे। कांग्रेस के बाहर साम्यवादियों ने धर्मनिरपेक्षता के इस मत को भरपूर समर्थन दिया।

**बोध प्रश्न 2**

1) सही उत्तर पर (✓) चिन्ह लगाइए।
   गांधी जी और आमूल परिवर्तनवादी धर्मनिरपेक्षतावादियों के बीच मुख्य अन्तर को इस प्रकार स्पष्ट किया जा सकता है :
   i) इन दोनों के बीच अन्तर की बात करना संभव नहीं है।
   ii) गांधी जी ने धर्म और राजनीति के अलगाव पर ज़ोर दिया जबकि आमूल परिवर्तनवादी धर्मनिरपेक्षतावादियों ने धर्म और राजनीति के समन्वय पर ज़ोर दिया।
   iii) गांधी जी ने धर्म और राजनीति के समन्वय पर ज़ोर दिया जबकि आमूल परिवर्तनवादी धर्मनिरपेक्षतावादियों ने धर्म और राजनीति के अलगाव की बात कही।
   iv) उपरोक्त में से कोई भी नहीं।

2) गांधी जी ने धर्म और राजनीति के रिश्ते की किस तरह व्याख्या की, इसे लगभग 100 शब्दों में लिखिए। क्या इस संबंध में उनका प्रारंभिक राष्ट्रवादियों से कोई मतभेद था?

......................................................................................................................

......................................................................................................................

..............................................................................................................................

..............................................................................................................................

..............................................................................................................................

## 41.8 स्वातंत्र्योत्तर भारत के लिए "धर्म निरपेक्षता का विकल्प (1947-1964)

भारतीय राष्ट्र निर्माण के सन्दर्भ में गांधी जी की प्रतिमा यह थी कि उन्होंने कांग्रेस सोपानिकी (Hierarchy) के अन्दर से अपने उत्तराधिकारी के रूप में सभी नेताओं (जैसे कि सरदार पटेल, डा. राजेन्द्र प्रसाद आदि) के बीच में जवाहरलाल नेहरू को चुना। गांधी जी जानते थे कि जो चीज़ स्वयं वे राष्ट्र को नहीं दे पा रहे थे वह जवाहरलाल नेहरू दे सकते थे। गांधी जी, नेहरू की नेतृत्व क्षमता और भारत के भविष्य संवारने की उनकी संकल्पना से परिचित थे। भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस और इसकी वर्गकतारों (कांग्रेस के अन्दर अलग-अलग वर्गों के लोग) के ढाँचे के भीतर गांधी-नेहरू का संयुक्त नेतृत्व वस्तुतः एक दूसरे का पूरक था।

यह सच है कि जब भारत को आज़ादी मिली तब नेहरू के हाथों में नेतृत्व की बागडोर थी। लेकिन बहुत से मुद्दों पर वे कांग्रेस पार्टी, भारतीय राज्य और भारतीय समाज को भारतीय राज्य व्यवस्था के अपने आदर्श के अनुरूप मोड़ने में अक्षम थे। उदाहरण के लिए, धर्मनिरपेक्षता का ऐसा ही एक मसला था जिस पर वे अपने विचारों के अनुसार नहीं चल सके। धर्मनिरपेक्षता के जिस आदर्श की पैरवी वे शुरू से ही करते रहे थे, उसे क्रियान्वित करने के लिए वे पर्याप्त समर्थन नहीं जुटा सके। यानी वे धर्मनिरपेक्षता का ऐसा वैधिक संस्थात्मक ढांचा खड़ा नहीं कर सके जो राष्ट्र की राजनीति और उसके प्रशासन में धर्म के प्रयोग का निषेध कर पाता। नेहरू की असफलता के कारण बहुत स्पष्ट थे। यह असफलता उनकी निजी असफलता नहीं थी, बल्कि असफलता की वजहें, स्वयं राजनीति में बनी हुई थीं।

### 41.8.1 साम्प्रदायिकता की समस्या

इसके अलावा, भारत की आज़ादी और विभाजन से पहले और बाद में साम्प्रदायिक हिंसा का जो लावा फूटा उसने रूढ़िवादी संप्रदायवादियों की स्थिति को और भी मज़बूत किया। यहाँ तक कि राष्ट्रपिता महात्मागांधी भी, जिन्होंने राजनीतिक संघठन के लिए लोकधर्म की वैधता को हमेशा सही ठहराया था, कट्टर रूढ़िवादी हिन्दू आक्रामकता की ताकत के सामने अकेले पड़ गए (और अन्ततः एक हिन्दू धर्मान्ध ने उनकी हत्या कर दी)। हिन्दू सम्प्रदायवादियों ने एक ऐसे राज्य की वकालत की जो केवल हिन्दू धर्म, हिन्दू संस्कृति और हिन्दी भाषा को प्राथमिकता दे। उन्होंने जो नारा उछाला, वह था—"हिन्दी, हिन्दू, हिन्दुस्तान"। व्यवहारवादी कट्टर हिन्दू भारत में उसी प्रकार का हिन्दू राष्ट्र चाहते थे जैसा कि पाकिस्तान में जिन्ना ने मुसलमानों को प्रदान किया था। इस तरह पाकिस्तान के भय ने भारत में लोकतांत्रिक धर्मनिरपेक्ष संस्थाओं के निर्माण में बाधा पहुँचाई क्योंकि पाकिस्तान का बनना हिन्दू साम्प्रदायिक आन्दोलन को हवा देने का कारण बना। कांग्रेस पार्टी के आन्तरिक और बाह्य हिन्दू साम्प्रदायिक दबावों के सामने गांधी जी और नेहरू दोनों का ही नेतृत्व अलग-अलग और कमज़ोर पड़ गया। पटेल तथा उनके जैसे अन्य नेताओं ने खुले आम प्रतिज्ञा की कि जब तक सोमनाथ मन्दिर की भव्यता को पुनः प्रतिष्ठित नहीं कर दिया जाता, वे चैन से नहीं बैठेंगे। इन नेताओं के प्रभुत्व के सामने नेहरू को आमूल परिवर्तनवादी धर्म-निरपेक्षतावाद के अपने आदर्श से पीछे लौटना पड़ा।

चित्र 13 नेहरू, जिन्ना और मांउटबेटन भारत के विभाजन पर विचार विमर्श करते हुए

## 41.8.2 धर्म-निरपेक्षता का भारतीय आदर्श

इन परिस्थितियों के अन्तर्गत स्वतंत्र भारत के लिए धर्म-निरपेक्षता का जो आदर्श अपनाया गया उसे अधिक से अधिक एक समझौता कहा जा सकता है। यह समझौता कट्टर हिन्दू साम्प्रदायिकता और आमूल परिवर्तनवादी धर्म-निरपेक्षता के दो अतिवादी विपरीत ध्रुवों को टालकर किया जाना था। अतः विकल्प के रूप में केवल गांधीवादी आदर्श ही सामने था। इस तरह, स्वतंत्र भारत का धर्मनिरपेक्ष स्वरूप उस गांधीवादी दर्शन के आधार पर ही तय किया गया जो रूढ़िवादी हिन्दू अखण्डता (Monopithioity) और धर्म को आरोपित किए जाने के विरुद्ध बहुलता को प्रश्रय देता था। हिन्दूवादी राज्य व्यवस्था अपनाकर अल्पसंख्यकों का तथाकथित रूप से भारतीयकरण करने का प्रस्ताव भी इस रूप में रद्द कर दिया गया। जवाहरलाल नेहरू और डॉ. भीमराव अम्बेडकर (जो नेहरू की धर्मनिरपेक्षता की संकल्पना से सहमति रखते थे) के प्रयासों से जो रणनीति तैयार हुई, वह "धार्मिक तटस्थता" (या धर्मनिरपेक्षता) की थी। यह नीति "धार्मिक बहुलवाद" से भिन्न थी क्योंकि धार्मिक बहुलवाद राजनीति में विभिन्न धार्मिक मूल्यों के अधिकाधिक प्रयोग का पोषक होता है, जब कि "धार्मिक तटस्थता" का मतलब है प्रत्यक्ष धार्मिक प्रचार और राजनीति तथा राज्य व्यवस्था में धर्म के प्रयोग से परहेज़ रखना।

अपनी निजी हैसियत से नेहरू ने भारत में लोकतंत्र की संस्था का विकास करने का भरसक प्रयास किया। 1947 से 1964 तक उन्होंने अनेक ऐसे कदम उठाए जो स्वतंत्र भारत को आधुनिकीकरण की ओर ले जाने वाले थे। वे अच्छी तरह जान गए थे कि अपनी अर्थव्यवस्था, राजनीति और समाज का आधुनिकीकरण किए बिना भारत एक आत्मनिर्भर देश नहीं बन सकता। इसलिए उन्होंने धर्मशास्त्र और धर्मतंत्रीय आदर्शों को नकार कर विज्ञान और प्रौद्योगिकी को प्राथमिकता दी। उनके लिए पूजा, उपासना की पद्धतियों की तुलना में स्वास्थ्य और गरीबी के मसले कहीं अधिक वास्तविक महत्व के विषय थे। नेहरू का मानना था कि धार्मिकता भारत के हितों की पहले ही बहुत अधिक क्षति कर चुकी है। लेकिन विभाजन के बाद के राजनीतिक दबावों से उत्पन्न कठिन परिस्थितियों ने भारत में धर्मनिरपेक्षतावादियों की स्थिति को कमज़ोर बना दिया। नेहरू जानते थे कि पीछे लौटना अपरिहार्य हो गया था, जिसे टाला नहीं जा सकता था। इसलिए धर्म को आंशिक रूप से राज्य से अलग कर दिए जाने के बावजूद, इसे देश के सार्वजनिक राजनीतिक जीवन से अलग नहीं किया जा सका। यही कारण था कि भारत की राजनीतिक संस्कृति साम्प्रदायिक

दंगों के खूनी रंग से रंगी रही। यहां साम्प्रदायिक समस्या का केन्द्र धर्म ज़रूर रहा, मगर एक आस्था के रूप में नहीं, बल्कि एक राजनीतिक हथियार के रूप में। धर्म के राजनीतिक औज़ार के रूप में इस्तेमाल ने ही भारत में राष्ट्र-निर्माण और आधुनिकीकरण की प्रक्रिया को बुरी तरह क्षति पहुँचाई।

### 41.8.3 राजनीति में धर्म की निरन्तरता : एक बड़ी बाधा

देश के राजनीतिक जीवन से धर्म को अलग न कर पाना, स्वतंत्रता के बाद भारतीय धर्मनिरपेक्षता की एक बड़ी असफलता थी। धर्म को व्यक्ति के निजी जीवन तक सीमित रखने के लिए केवल वैधिक प्रावधान करके ही सही तौर पर धर्मनिरपेक्ष संस्था के निर्माण की कार्रवाई को भारत में आगे बढ़ाया जा सकता था। केवल वैधिक शुरुआत से ही आधुनिकीकरण और धर्मनिरपेक्षीकरण की प्रक्रिया गति पकड़ सकती थी। इसी आधार पर ही धर्मनिरपेक्ष सिद्धांतों और परम्पराओं का संस्थानीकरण देश के सामान्य सामाजिक जीवन और राजनीतिक संस्कृति को प्रभावित कर सकता था और आखिरकार इससे नागरिकों के निजी जीवन में भी धर्म का दखल कम हो सकता था। केवल तभी लोकधर्म के बजाय विज्ञान और बुद्धिजीवी शिक्षा के प्रसार से राष्ट्रनिर्माण किया जा सकता था।

जन विज्ञान (Popular Science) और तर्क के प्रभाव से ही नागरिकों की जीवन दृष्टि को पूर्णरूप से बदला जा सकता है। विज्ञान और तर्क से प्रकृति के कार्य व्यापार की व्याख्या करके प्रकृति और मूल शक्ति के उपयोग की कार्य विधि तैयार की जा सकती है। बीमारियों का उन्मूलन, साफ सुन्दर आवास, जीवन की आधारभूत आवश्यक वस्तुओं का उत्पादन आदि सभी कुछ मौजूदा विज्ञान और प्रौद्योगिकी के इस्तेमाल से संभव बनाया जा सकता है। यह धारणा कि आम तौर पर लोग विज्ञान और प्रौद्योगिकी के प्रयोग को समझने में सक्षम नहीं होते, वस्तुतः निहित स्वार्थ के लोगों द्वारा पैदा की गई है ताकि वे अपना नियंत्रण बनाये रख सकें। उनका यह नियंत्रण लोगों को विज्ञान से दूर हटाता है। अगर धर्मनिरपेक्षता यहां "विज्ञान जनता के लिए", "जानकारी जनता के लिए", "विज्ञान आत्म-निर्भरता और राष्ट्रीय एकता के लिए" जैसा आंदोलन बन सकती तो साम्प्रदायिकता को इसके अपने गढ़ में ही पराजित किया जा सकता था। इस दिशा में प्रयत्न किए गए थे परन्तु भारतीय धर्मनिरपेक्षता की दिशा विज्ञान और तर्क से हटकर सभी धर्मों के प्रति सद्भाव की ओर मुड़ गई और इससे इसके सकारात्मक विकास का आधार ही डगमगा गया। फिर भी इतना तो कहा ही जा सकता है कि स्वातंत्र्योत्तर काल की 'धर्मनिरपेक्षता' का मौजूदा स्वरूप वास्तविक धर्मनिरपेक्षता की ओर ही बढ़ा हुआ एक कदम है।

## 41.9 भारतीय धर्मनिरपेक्षता का वैधिक आधार

डॉ. ई. स्मिथ के अनुसार, धर्मनिरपेक्ष राज्य, "वह राज्य है जो धर्म को निजी और सामूहिक स्वतंत्रता प्रदान करता है, एक व्यक्ति को बिना उसके धर्म-सम्बन्ध पर विचार किए नागरिक मानता है, जो संवैधानिक रूप से किसी धर्म विशेष से बंधा नहीं होता, और न किसी धर्म को प्रोत्साहित करता है, न किसी धर्म को बाधित करता है।"

आगे उसका कहना था :

> "धर्म निरपेक्ष राज्य एक व्यक्ति को किसी विशेष धर्म समूह का सदस्य मानने के बजाय एक नागरिक मानता है। नागरिकता की शर्तों की परिभाषा में धर्म का कोई स्थान नहीं होता और एक नागरिक के अधिकार और कर्त्तव्य उसके धार्मिक विश्वास से प्रभावित नहीं होते।"

राज्य की इस प्रकार की नीति का एक तार्किक परिणाम यह होता है कि सार्वजनिक पद या किसी सरकारी सेवा में नियुक्ति पाना किसी व्यक्ति के धर्म पर निर्भर नहीं करता। स्मिथ ने भारतीय संविधान की कई धाराओं के आधार पर यह सिद्ध किया कि भारत पश्चिम की उदारतावादी लोकतांत्रिक परम्परा जैसा ही धर्मनिरपेक्ष राज्य है।

### 41.9.1 धार्मिक स्वतंत्रता : एक मौलिक अधिकार

भारतीय संविधान के निर्माता प्रारम्भ से ही यह मानकर चले थे कि धर्म और उपासना की

स्वतंत्रता को भारत के प्रत्येक नागरिक के मौलिक अधिकार के रूप में घोषित करने की आवश्यकता है। भारतीय संविधान की प्रस्तावना में सभी नागरिकों को "सामाजिक प्रतिष्ठा और अवसर की समानता" प्रदान करने का पवित्र संकल्प व्यक्त किया गया है। भारतीय संविधान में धार्मिक भेदभाव न बरतने का सिद्धांत विशेष रूप से शामिल है। यह सिद्धांत आम तौर पर लागू होता है, और सार्वजनिक रोज़गार के क्षेत्र में विशेष रूप से। उदाहरण के लिए, संविधान के अनुच्छेद 15 (i) में कहा गया है :

"राज्य धर्म, वंश, जाति, लिंग, जन्म स्थान के आधार पर, या इनमें से किसी एक के आधार पर कोई भेदभाव नहीं बरतेगा।"

अनुच्छेद 16 (i) में कहा गया है :

"राज्य के अधीन किसी भी पद पर नियुक्ति या रोज़गार पाने संबंधी मामलों में सभी नागरिकों को अवसर की समानता रहेगी।"

इसी प्रकार अनुच्छेद 25 (i) "अन्तकरण (Conscience) की स्वतंत्रता और स्वतंत्र व्यवसाय और धर्मपालन की स्वतंत्रता.......की गारंटी देता है। लेकिन भारत में कानून, राजनीति से धर्म को अलग रखने का कोई प्रावधान प्रस्तुत नहीं करता। यही कारण है कि मुस्लिम लीग और हिन्दू महासभा जैसी साम्प्रदायिक पार्टियाँ राजनीति में सक्रिय रही हैं।

## 41.9.2 राज्य का दर्जा धर्म से ऊपर

हालांकि ध्यान देने योग्य बात यह है कि भारत में धर्म की तुलना में राज्य को सर्वोच्च स्थान मिला हुआ है। उदाहरण के लिए, भारतीय संविधान की प्रारूप समिति के अध्यक्ष स्वयं डॉ. अम्बेडकर जैसे व्यक्ति ने कहा था : "किसी भी समुदाय के लोगों को यह नहीं मान लेना चाहिए कि वे संसद की सार्वभौमिक अधिकार सीमा से बाहर हैं।" हालांकि भारतीय संविधान धार्मिक भेदभाव के किसी भी सिद्धांत के विरुद्ध बोलता है, परन्तु यह राज्य को दलित समुदाय (उदाहरण बतौर, अनुसूचित जाति और अनुसूचित जनजाति) के पक्ष में कानून बनाने से नहीं रोक सकता। यह विधि निर्माण "सकारात्मक पक्षपात" के सिद्धांत पर आधारित है। यह धर्मनिरपेक्षता की वैज्ञानिक भावना के अनुरूप भी है। इसी कारण वी.पी. लूथरा भारतीय राज्य को "न्याय प्रशासनवादी (Jurisdictionalist) के रूप में मानते हैं। उनके अनुसार भारतीय राज्य सभी धर्मों को समान दर्जा देता है, अन्तःकरण और उपासना की समान स्वतंत्रता प्रदान करता है, परन्तु धर्म के प्रति अपनी ज़िम्मेदारी से पूरी तरह विमुख नहीं होता। यह धर्मों की गतिविधियों पर सर्तक निगरानी रखता है, और जब ज़रूरी हो तब हस्तक्षेप भी कर सकता है। धर्मनिरपेक्षता का यह वैधिक संवैधानिक आदर्श नेहरू युग (1947-64) में कमोबेश संतोषप्रद ढंग से काम करता रहा। इस काल में भारत के विभिन्न धार्मिक समुदायों के सामने भारतीय राज्य की नीति 'धार्मिक तटस्थता' की बनी रही।

**बोध प्रश्न 3**

1) स्वातंत्र्योत्तर काल में अपनाया गया धर्मनिरपेक्षता का आदर्श :
   i) मूल रूप से नेहरूवादी (आमूल परिवर्तनवादी) आदर्श था।
   ii) मूल रूप से गांधीवादी आदर्श था।
   iii) मूल रूप से गांधीवादी और नेहरूवादी आदर्शों का मिला-जुला रूप था।
   iv) उपर्युक्त में से कोई भी नहीं।

2) भारतीय संविधान की उन दो मुख्य विशेषताओं का उल्लेख कीजिए जो कानूनी तौर पर धर्मनिरपेक्षता की भावना को सुरिक्षत करती हैं।

........................................................................................................

........................................................................................................

........................................................................................................

........................................................................................................

3) जन विज्ञान धर्मनिरपेक्षता की समझ के प्रसार में जो भूमिका अदा कर सकता है, उस पर लगभग 50 शब्दों में टिप्पणी कीजिए।

............................................................................................................

............................................................................................................

............................................................................................................

............................................................................................................

## 41.10 सारांश

इस इकाई को पढ़ने के बाद आप ने जाना कि :

- धर्मनिरपेक्षता उस पश्चिमी समाज के आधुनिक दृष्टिकोण के रूप में उभरी जो एक नए व्यापक सामाजिक ढांचे को अपना रहा था, जिसमें सामाजिक संगठन के प्राचीन और सर्वाधिक पिछड़े सिद्धांत यानी धर्म की भूमिका निरन्तर कम होती जा रही थी।
- जैसे-जैसे यूरोप में तर्क और बौद्धिकता को प्रमुखता मिलती गई वैसे-वैसे 'धर्मनिरपेक्ष' शब्द को विचारधारात्मक स्वरूप मिलता गया।
- धर्मनिरपेक्षता की पहचान धर्म से राज्य के अलगाव के रूप में बनती गई।
- भारत में धर्मनिरपेक्षता का विकास आधुनिक राष्ट्रीय आंदोलन की बढ़ती हुई मांगों के साथ हुआ। एक अखिल भारतीय आंदोलन के लिए धर्म और जाति की बाधाओं से निपटने की खातिर राष्ट्रवादियों द्वारा साधन और तरीके खोजने के प्रयास किए गए। इनमें से दो प्रमुख प्रयास गांधीवादी धर्मनिरपेक्षता और आमूल परिवर्तनवादी धर्मनिरपेक्षता के थे।
- भारत ने स्वतंत्रता प्राप्ति के पश्चात् राष्ट्रीय आंदोलन की धर्मनिरपेक्ष विरासत को अपना लिया। व्यवहार में जो धर्मनिरपेक्षता स्वीकार की गई वह गांधीवादी और आमूल परिवर्तनवादी आदर्शों के बीच एक समझौते के रूप में थी।
- स्वातंत्र्योत्तर काल के भारत के संविधान ने भारतीय धर्मनिरपेक्षता को कानूनी आधार देने के लिए राज्य से धर्म के अलगाव को धार्मिक स्वतंत्रता के मौलिक अधिकार के रूप में महत्व दिया।

## 41.11 शब्दावली

**नया क्रांतिकारी बुर्जुआवर्ग** (New revolutionary bourgeoisie) : ऐतिहासिक रूप से यूरोप के उस वर्ग के संदर्भ में उद्धृत जो पूर्व पूंजीवादी हितों के विरुद्ध संघर्ष में उभर कर आया। इसमें विभिन्न व्यवसायों में लगा मध्यवर्ग, उद्योग चलाने वाले, व्यापारी आदि उद्यमी शामिल थे।

**बुद्धिवादी** (Rationalist) : वे लोग जो बुद्धि को मानव अस्तित्व का आधार मानते हैं।

**विचारधारात्मक** (Ideological) : किसी विशेष विश्व दृष्टि से संबंधित उदाहरण के लिए, धर्मनिरपेक्षता आधुनिक विश्व दृष्टि का नया अंग बन गई जो समाज में बड़े पैमाने पर पूंजीवाद के उभरने के साथ ही उभरी।

**संवैधानिक दर्शन** (Constitutional Philosophy) : संविधान का निर्माण किया जाता है। है।

**संस्थात्मक वैधता** (Institutional Legitimacy) : एक संस्था द्वारा प्रदान की गई वैध मान्यता।

**सामंतवाद विरोधी विद्रोह** (Anti-feudal revolts) : यूरोप में आधुनिक व्यापक पूंजीवादी व्यवस्था के उभरने के दौरान मौजूदा सामन्ती व्यवस्था के विरुद्ध अनेक विद्रोह हुए। ये विद्रोह नई व्यवस्था को रोकने या उसे स्थानीय स्तर तक सीमित रखने के दबावों के विरुद्ध हुए। क्योंकि आधुनिक उत्पादन, साधनों की प्रकृति बड़े पैमाने पर, उत्पादन की थी, इसलिए नई व्यवस्था की प्रकृति स्थानीयता जैसी सीमाओं को तोड़ने की थी। फ्रांसीसी क्रांति को उस समय का सबसे बड़ा सामन्तवादी विरोधी विद्रोह कहा जा सकता है।

**भारत की कक्षबद्ध संस्कृति** (Compartmentalist Culture of India) : जाति और धर्म की संस्थाओं की जकड़ जो भारतीय समाज को साफ़-साफ़ और गहराई से विभाजित करती है और अलग-अलग खानों में बांटती है। इसलिए हम भारत की कक्षबद्ध यानी खानों या कक्षों में विभाजित संस्कृति की बात करते हैं।

**अज्ञेयवादी** (Agnostic) : ऐसा व्यक्ति जो ईश्वर के अस्तित्व यानी ईश्वर है या नहीं के बारे में निश्चित नहीं होता।

**बुद्धिजीवी वर्ग** (Intelligentsia) : समाज का वह वर्ग जो व्यावसायिक रूप से अध्ययन, मनन और विचारों के विकास से संबंध रखता है।

**बहुलवादी संस्कृति** (Phiralist Culture) : भारत की बहुलवादी संस्कृति से तात्पर्य है भारत में बहुत सी सांस्कृतिक धाराओं का मौजूद रहना।

## 41.12 बोध प्रश्नों के उत्तर

**बोध प्रश्न 1**

1) (iii) 2) (i)
3) विशेष रूप से देखिए भाग 41.6 । आपकें उत्तर में आधुनिक समाज की सभी गतिविधियों में धर्म और राजनीति के अलगाव का उल्लेख होना चाहिए।

**बोध प्रश्न 2**

1) (iii)
2) देखिए उपभाग 41.7.3 और 41.7.4 आपके उत्तर में यह बात प्रमुखता से आनी चाहिए कि जन संघठन के लिए लोकधर्म के प्रयोग की आवश्यकता गांधी जी के सामने कैसे आई। प्रारंभिक राष्ट्रवादी जनता को संघठित करने में सफल होने के लिए धर्म और परम्परा के घेरे में पहले ही आ गए थे।

**बोध प्रश्न 3**

1) (iii)
2) भाग 41.9 देखिए।
   आपके उत्तर में धार्मिक स्वतंत्रता के मौलिक अधिकार, सभी धर्मों की समानता और राज्य के धर्म से ऊपर होने के प्रावधान का विशेष रूप से उल्लेख होना चाहिए।
3) उपभाग 41.8.3 देखिए।
   आपके उत्तर में इस बात पर बल दिया जाना चाहिए कि जन विज्ञान किस तरह दैनिक जीवन तथा अन्य गतिविधियों का वैज्ञानिक अर्थों में खुलासा करके रूढ़ियों और अंधविश्वासों को दूर करने में सहायक हो सकता है। इसको स्पष्ट करने के लिए अपने दैनिक अनुभवों पर ध्यान दीजिए और उन पर विचार कीजिए।

# इस खंड के लिए कुछ उपयोगी पुस्तकें

श्री कृष्ण महेश्वरी : **भारत में आयोजन तथा आर्थिक विकास**, केन्द्रीय हिन्दी निदेशालय दिल्ली।
एम.एल. श्रीनिवास : **आधुनिक भारत में सामाजिक परिवर्तन**, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली।
वेद ढान सुधीर : **भारत की विदेश नीति : बदलते संदर्भ**, नेशनल पब्लिशिंग हाउस, नई दिल्ली।
बी. बी. तायल : **भारतीय शासन और राजनीति**, नेशनल पब्लिशिंग हाउस, नई दिल्ली।
सुनील कुमार सेन : **भारत का कृषि आंदोलन**, के.पी. बागची एंड कंपनी कलकत्ता।